पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका

रयणसार

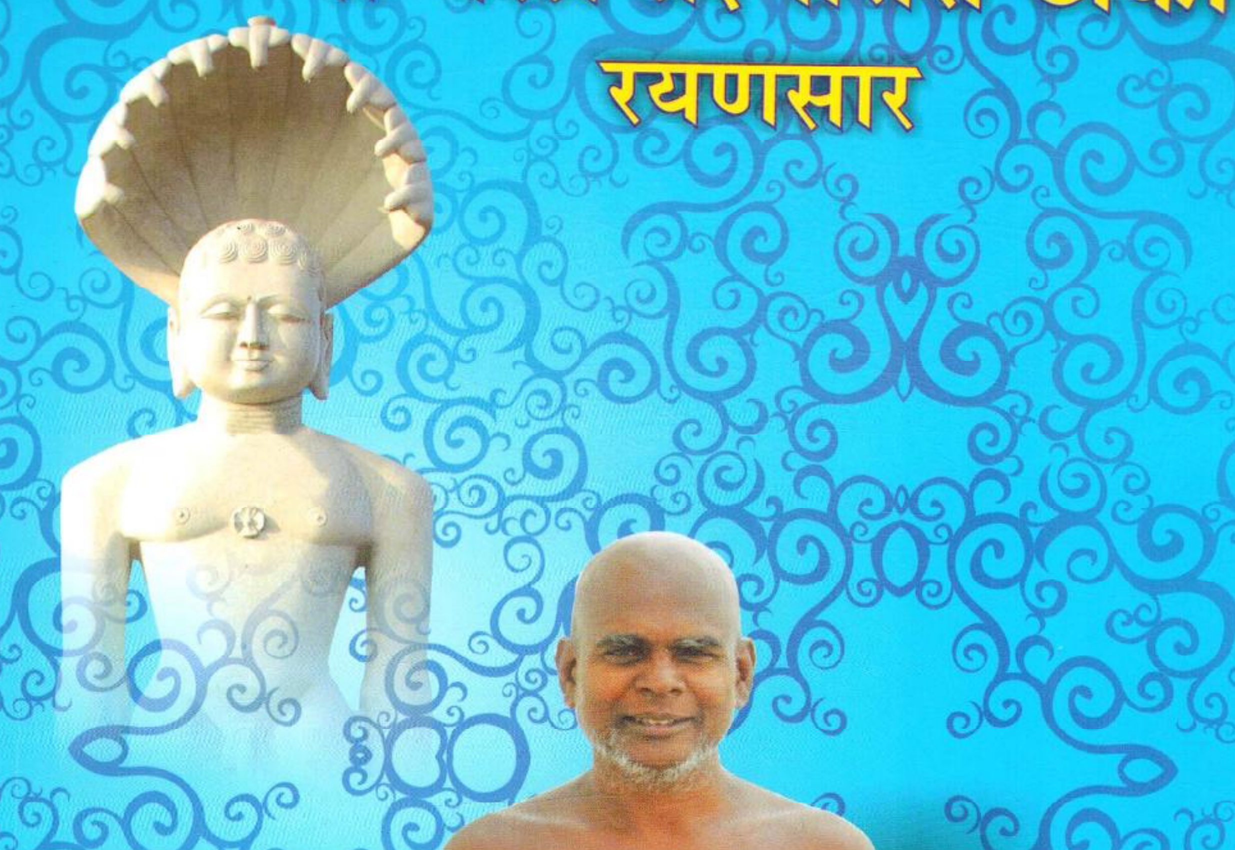

लेखक
प.पू. 108 आचार्य श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज

पुष्प संख्या-10

पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका
रयणसार

लेखक

प.पू. 108 आचार्य श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज

प्रसंग

आचार्य श्री १०८ वासुपूज्यसागरजी महाराज के द्वारा महामृत्युञ्जयी चंद्रप्रभुपंचकल्याणक महोत्सव महेवा के अवसर पर प्रकाशित

प्रबंध सम्पादक

बा.ब्र. भाग्या दीदी

(नेहल दीदी)

मूलकृतिकार : आचार्य कुंदकुंदस्वामी
मूल कृति : रयणसार

अनुवादक : प.पू. 108 आचार्य श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज
अनुवादक कृति : पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका

निर्देशिका : प.पू. 105 आर्यिका श्री श्रेयमतीमाताजी

प्रबन्ध सम्पादकः बा० ब्र० भाग्या दीदी (नेहल दीदी)

प्रकाशन सम्वत् 2073, सन् 2016 चैत्र शुक्ल त्रयोदशी

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियां

प्राप्ति स्थान : आचार्य श्री ससंघ

मूल्य : संगोपांग स्वाध्याय

पुण्यार्जक :

(१) श्री भागमल एवं महेन्द्रीकुमारी जैन, चित्तौड़गढ़, राजस्थान
पुत्र गुणसागर, पुत्रवधू पायल, पुत्र ज्ञानसागर, पुत्रवधू रितु,
पौत्री एकांशी, पौत्र आकाश, पौत्री वैशाली, पौत्र विशाल

(२) श्री पूरनचंद जैन, दिल्ली
पुत्र हंसकुमार, पुत्रवूधू सुमन, पौत्र अमित, पौत्रवधू वर्षा,
पौत्री सुरभि, पौत्र प्रयाग, पड़पौत्री पारथी, पड़तौत्र अर्शित।

(३) श्री जयप्रकाश एवं कुसुम जैन, फिरोजपुर झिरका, हरियाणा
पुत्र लविश जैन, पुत्री शिरया जैन।

(४) श्री महावीरप्रसाद जैन, धनबाद झारखंड

(५) श्री विनुबेन प्रफुल्लभाई जैन, अहमदाबाद

अंतर्ध्वनि

साधु और श्रावकधर्म का वर्णन करने वाला यह श्री रयणसार ग्रंथ आ. श्री कुंदकुंद स्वामी की अमूल्य कृति है। यद्यपि इसका संपादन, प्रकाशन अनेक जगहों से हो चुका है किंतु इस ग्रंथ का अध्ययन शिक्षा दीक्षा गुरु आ. श्री पार्श्वसागरजी महाराज के मुखकमल से करीब 30वर्ष पहले किया था तब से सतत हम इसका पठन, चिंतन, मनन करते रहे। आ. श्री के द्वारा बोये गये इस बीज को अंकुरित कर महावृक्ष के अमृतफल सभी के लिए प्रदान कर रहे हैं अतः सभी जिनेंद्रभक्त इस **पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका** का पान कर लाभान्वित होवे।

इसमें जो निर्दोष कथन है वह जिनेंद्र महावीर का, पूर्वाचार्यों का है तथा परंपरागत कथन करने का हमारा प्रयास है अतः अध्ययनशील सज्जन पुरुष संसोधन कर सदोष निर्दोष का निर्णय कर निर्दोष को ग्रहण कर सदोष का त्याग करें और हमको सूचित करें ताकि आगे का मार्ग प्रशस्त हो। अगला प्रकाशन पुनः शुद्ध रूप मे हो ऐसी मेरी भावना है।

संघस्थ आ. श्री श्रेयमती माताजी, बा.ब्र. सुगंधभैय्याजी, बा.ब्र. नेहलदीदी(भाग्यादीदी) बा.ब्र. गुंजा दीदी ने अपनी अपनी सामर्थ्यानुसार पूर्ण सहयोग किया है तभी यह कार्य संपन्न हो पाया है। संसोधन पं. रतनचंदजी एवं पं. महावीरप्रसादजी (रामपुरवाले) ने किया है तथा टाइपिंग कंपोजिंग का कार्य बा. ब्र. नेहलदीदी ने किया है। इन सभी को भरपूर आशीर्वाद।

श्रीमान भागमलजी जैन चित्तौड़गढ़, श्री पूरनचंद जैन, दिल्ली, श्री जयप्रकाश जैन, फिरोजपुर झिरका ने अपनी सत्लक्ष्मी के द्वारा इस **पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका** रयणसार ग्रंथ का प्रकाशन कराया है। इन्हींने 2110 में सुरक्षाचक्रज्ञानवर्धिनी प्रश्नोत्तरी टीका (छहढाला) 2000 प्रतियों का भी प्रकाशन करवाया था। इसमें महावीरप्रसाद जैन धनबाद (झारखंड) एवं विनुबेन प्रफुल्लभाई जैन (अहमदाबाद) वालों का भी इसमें यथायोग्य सहयोग है इन सभी को दोनों हाथों से भरपूर आशीर्वाद।

पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका का प्रमाण 4218 + चूलिका प्रमाण 85 = 4303

आ. श्री पार्श्वसागरजी महाराज (कोटला) वालों
के प्रथम शिष्य
आ. वासुपूज्यसागर महाराज

पुरोवचन

जैनधर्म ने आचार और विचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी उपलब्धियाँ दी हैं। जैनों ने ही अहिंसा को सम्यक्चारित्र के राजमार्ग पर प्रचारित कर शांति, सद्भावना, मैत्री और व्यापक उदारवृत्ति की संभावनाओं को व्यवहारिक अवसर प्रदान किया है। **''जिओ और जीने दो''** अहिंसा दर्शनरूपी क्षीरसिंधु से निकला हुआ महामूल्य मणि है जो पशुबल के प्रतीक **मत्स्यन्याय** के विरोध में मानवता की विजय का सिंहनाद या दुंदुभिघोष है। विचार के क्षेत्र में अनेकांतधारा को प्रसारित कर जैनदर्शन ने व्यक्तियों में एकांत मस्तिष्क की चिंतनग्रंथियों को उद्वेलित कर दिया है। तनमन की बाह्याभ्यंतर सकल ग्रंथियों को खोलकर दिगंबर मुनियों ने चारित्र की चारूशाला में जिस वीतरागपाठ को पढ़ा है उसकी असंदिग्ध प्रामाणिकता ने महाव्रतों की छाया में समाज को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का अमृतफल प्रदान कर अमर कर दिया है। प्रस्तुत 'रयणसार' ग्रंथ में उसी आचारविचार पर श्रमण, आर्यिका, श्रावक और श्राविका की शिक्षा के हेतु आ. श्री कुंदकुंद ने तीर्थंकर महावीरवाणी को गुरु परंपरा से प्राप्त कर तीर्थंकरों के विषय को गूँथा है।

वर्तमान में चारों तरफ से शिथिलाचार की आवाज उठ रही है। धर्म शिथिलाचार से नहीं चलता। एरंडवृक्ष की दुर्बल लकड़ी महाप्रासादों के लिये खंभा नहीं बन सकती। **''चारित्तं खलु धम्मो''** धर्म का स्वरूप तो चारित्र ही है यदि वह विचार मात्र बन जाएगा तो धर्म की साक्षात् स्थिति का लोप हो जायेगा। तीर्थंकरों का धर्म तो चारित्र में ही स्थित है। मणि को लाक्षा में आरोपित नहीं किया जाता और चारित्र रूप महामणि को शिथिलाचार रूप चांडाल के हाथों में नहीं दिया जा सकता। प्राचीनता का आदर्श सदैव रक्षणीय है। वह आदर्श ही तो हमें विगत सहस्त्र पीढ़ियों में मनु, पुरु आदि प्रवर वंश जगतप्रदीपकों का दायाद बनाता है तथा उत्तराधिकार सौंपता है। आधुनिकता जहाँ तक प्राचीनता को सम्मान के साथ साथ उच्चासन प्रदान करती है वहाँ तक उसे साथ में लेकर मूल सिद्धांतों की यथावत् रक्षा करते हुए मोक्षमार्ग पर चलते रहना सनातन श्रमण संस्कृति को अभीष्ट है। **सुधारवाद के नाम पर शास्त्रों की स्वानुकूल व्याख्या करना, परंपरा से प्राप्त आचार विचार को क्रांति के नाम से उत्क्रांत करना निंद्य है**। इस विषय में मुनि और श्रावकों को आगम मार्ग का आश्रय कभी नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि **''मार्गस्थो नावसीदति''** जो सन्मार्ग पर चलता है वह कभी दुःखी नहीं होता। दिगंबर जैनाचार्य मुनियों को पक्ष विपक्ष का परित्याग कर मोक्षमार्गियों के लिये शास्त्रानुसार निरूपण करना उचित है। मैं तो निम्न गाथा से अपनी दिनचर्या में बड़ी सहायता पाता हूँ जिसमें अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगियों के लिये कहा गया है-

अज्झयणमेव झाणं, पंचेंदियणिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचमयाले पवयणसारब्भासमेव कुज्जाओ।। र.सा. 82

भ. महावीर की दिव्यध्वनि से प्रसूत आगमसाहित्य का अध्ययन ही ध्यान है। उसीसे पंचेंद्रियों तथा कषायों का सहज ही निग्रह होता है सो इस पंचमकाल में प्र.सा. का अभ्यास करना ही श्रेयस्कर है।

मुनिलिंग आचार पालन में परम सहायक है क्योंकि निर्ग्रंथ होने पर किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखने से धर्मध्यान में स्वाभाविक सौंदर्य सौकर्य आता है। यदि नहीं आया तो मुनिलिंग का वैशिष्ट्य अकिंचन हो जाएगा तब मुनि की गुरुता लघुता में आ जायेगी और **'वर्णवर्तिका संसार'** वीतराग मुनियों का इतिहास लिखते समय **'अमृतप्रक्षालित इंदु'** में लांछन देखकर लिखेगा। इस प्रकार का अवसर न आने देने के लिये शिथिलाचार का उन्मूलन किया जाना अनिवार्य है। नीति है **''वनेऽपि दोषाः प्रभवंति रागिणां। गृहेऽपि पंचेंद्रिय निग्रहस्तपः।।''** यदि इस सूक्ति का लक्ष्य निर्ग्रंथ मुनियों में घटित होने लगे तो यह पंचमकाल की महातपा कालजयी पाणिपात्र मुनियों पर साहसिक विजय होगी परंतु विश्वास है कि ऐसा कभी नहीं होगा। आप्तवाणी और सम्यक्चारित्र

का संबल साथ रहते वीतराग निर्ग्रंथ सदा ही निर्लांछन रहेंगे किंतु इसके लिए थोड़ा श्रमत्यागियों और रागियों को भी करना होगा। त्यागी परिग्रहवान न हो और रागी श्रावक अपने को संयत करें, वे धर्म को श्वासोच्छ्वासवत् जीवन का अनिवार्य अंग बनायें, उनका रोम रोम धर्ममय होना चाहिये। तीर्थंकर की पूजा प्रक्षाल, देवदर्शन का नियम, अतिथिदान पुण्य, देव गुरूपास्ति आदि धार्मिक क्रियाकलापों को करने के बाद भी सतत उनकी गूंज प्राणियों को सुनायी देती रहे। जो धर्म को अपने रक्तादि, अपने श्वास, स्वात्मचिंतन, क्रियाओं में एकाकार नहीं कर लेता उसका सम्यग्दृष्टि होने का दंभ केवल अभिमान कहा जायेगा। जैसे पुष्प का सुगंधरूप **''जह फुल्लं गंध मयं भवदि''** तथा कोमलता एकनिष्ठ रहती है, जैसे गन्ने की मिठास गन्ने में अभिन्न होकर रहती है वैसे ही धर्म और धर्मी अविनाभावसंबंध से रहें यही धार्मिक और धर्मात्मा का उत्तमलक्षण है ऐसे ही त्यागी विशुद्धत्यागी ही रहें और समाज के मार्गदर्शन तथा आत्मकल्याण साधना में निमग्न रहें, शिथिलाचार भी उनके अंदर नहीं रहना चाहिए तभी जिनवाणी में प्रोक्त अहिंसाधर्म रूपी सुवर्ण कलश की सर्वोपरिता इस काल में अक्षुण्ण रह सकेगी। जैसे कुलांगना सतीत्व की रक्षा करती है वैसे ही मोक्षमार्गियों को अपने मोक्षमार्ग की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि काँच का बर्तन और चारित्र का रत्नपात्र थोड़ी सी ठोकर से टूट जाता है फिर उसे जोड़ना कठिन है। नीति है-

''नः सदश्वाः कशाघातं न सिंहा घनगर्जितम्। परैरंगुलिनिर्दिष्टं न सहंते मनस्विनः।।''

प्रशस्तमना सज्जन लोकापवाद सहन नहीं कर सकते। अग्नि बुझ सकती है किंतु शीतल नहीं हो सकती। लोक में अग्नि की उष्णता को ही पूजते हैं, शीतल राख को नहीं अतः मनस्वी रहकर आचार को सर्वथा तत्स्वरूप दशा में पालन करते रहना उचित है हीनाचारी बनकर नहीं।

ऐसे ही विशुद्ध आचारविचार, आत्मध्यान, स्वपर विवेक, वीतमोहता से परिणत होते हैं, ध्यानयोग से उस आत्मतत्त्व को जानने का प्रयास करते रहने से ही मुक्ति मिलती है। उस आत्मा की विशुद्धि के लिए ही देवपूजा, व्रतपालन, गुणग्रहण का निर्देश किया है। ये सभी साधन आत्मोपलब्धि के लिये हैं। उस आत्मा का कोई भौतिक चित्रांकन नहीं किया जा सकता, प्रस्तरशिल्प भी तैयार नहीं हो सकता, छैनी से टंकोरकर मूर्ति नहीं बनायी जा सकती उस स्वसंवेद्य को तो ध्यान से ही देखा व अनुभव किया जा सकता है। उस आत्मचिंतन को जो स्वसमय की गंगा में अवगाहन करते हैं उन्हें शिवत्व की प्राप्ति में विलंब नहीं होता। ''र.सा.'' इसी तथ्य को अपने प्रमाणित शब्दों में घोषणा करता है- **दव्वगुणपज्जएहिं जाणइ परसमय ससमयादिविभेयं।**

अप्पाणं जाणइ सो सिवगइ पहणायगो होइ।।127।।

जो द्रव्य गुण पर्यायों के द्वारा परसमय स्वसमय आदि भेदों को और आत्मा को भी जानता है वह शिवगति का पथनायक होता है -

आचार्योयत्तमराप्तरिं तिलिद तत्वज्ञानिंगल कोंडकुं—
डाचार्य सकलानयोगं दोलगं तत्सारमंकोंडु पू —
र्वाचार्यावलिये जेयिं समयसार ग्रंथमंमाडि वि—
द्याचातुर्यमनी जगक्के मेरेदर चारित्र चक्रेश्वरर्।। —गोगामृत 3

आप्तस्वरूप आचार्यों में उत्तम, महान, तत्त्वज्ञानी, चारित्रचक्रवर्ती आ. श्री कुंदकुंद संपूर्ण अनुयोगों के सार का मंथन कर पूर्वाचार्य परंपरा से प्राप्त आध्यात्मिकज्ञान को ''समयसार प्राभृत'' की रचना के द्वारा अपनी स्वानुभव विद्याचातुरी के रूप में इस जगत में सुकीर्ति को प्राप्त हुए।

धर्मानुरागी डॉ. देवेंद्रकुमार शास्त्री द्वारा रयणसार का विद्वत्तापूर्ण संपादन स्वाध्यायी एवं अध्ययनार्थी को गमकसिद्ध होगा और डॉ. साहब का परिश्रम सफल होगा ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है।

—आचार्य श्री विद्यानंद

प्रस्तावना

* आ. श्री कुंदकुंद स्वामी का परिचय *

भारतीय तत्त्वचिंतन के इतिहास में आगम परंपरा का संवहन करते हुये महान तत्त्वान्वेषी, स्वानुभूति स्वसंवेद्य परमात्म परमानंद को प्राप्त, आ. शिरोमणि, चारित्रचक्रवर्ती, आध्यात्मिक ज्ञानगंगा प्रवाहित करने वाले भगवत् कुंदकुंद का व्यक्तित्व सूर्य और चंद्र के समान स्वयं प्रकाशित है। उनके तत्त्वज्ञान में जहाँ निर्मलज्ञान की भास्वर सूर्य की छटाएं लक्षित होती हैं वहीं अहिंसा, करुणा, समता और वैराग्य की शीतलता प्राप्त होती है। यह अद्भुत समन्वय हमें भारतीय चिंतकों में केवल आ. कुंदकुंद में ही परिलक्षित होता है। इन्होंने अपने युग की जनपद भाषा में परमतत्त्व का जो सार निबद्ध किया है वह वास्तव में अनुपम है। भारतीय मनीषी उस परमतत्त्व को केवल स्वानुभूति से ही प्राप्त कर सकते हैं किंतु उस अखंड, अतींद्रिय, स्वसंवेद्य और परमब्रह्म स्वरूप परमात्मतत्त्व को प्राप्त करने की विधि क्या है? आ. कुंदकुंद का चिंतन स्पष्ट है कि आत्मज्ञान के बिना परमतत्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती है। आत्मज्ञान स्वात्मानुभूति को पाने के लिये सर्वप्रथम दृष्टि सम्यक् होनी चाहिये। सम्यग्दृष्टि होने के लिये आचार विचारों में निर्मलता और आत्मतत्त्व में रुचि होना आवश्यक है। दृष्टि को बदले बिना दुःख नहीं छूटता है ऐसे ही आत्मा की सामान्य विशेषात्मक दशाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से वर्णन किया गया है। आ. श्रीजी ने भावसत्ता को शाश्वत, अव्यय, अविनाशी बताया है ऐसे ही शब्द को तथा पुद्गल के स्कंध, स्कंधदेश, स्कंधप्रदेश और परमाणु आदि भेद भौतिकविज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक चिंतन के निदर्शक हैं।

जन्म एवं निवासस्थानः- आ. कुंदकुंद का जन्म दक्षिण भारत में हुआ है। श्रवणबेलगोल के शिलालेख में उनका नाम 'कौंडकुंद' मुनीश्वर कहा है। 'कौंडकुंदपुर' के निवासी होने से उनका नाम 'कुंदकुंद' प्रचलित हुआ। पुरातत्त्वीय प्रमाणों के आधार पर अब यह निश्चित हो चुका है कि आ. कुंदकुंद का जन्मस्थान आधुनिक 'कोंकोंडल' ग्राम है, जो अनंतपुर जिले के गुट्टी तालुक में गुंटकल रेलवे स्टेशन से लगभग 4 मील की दूरी पर स्थित है। 'कोंड' कन्नड़ भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'पहाड़ी' है पर्वत पर या पर्वत के निकट बसा होने के कारण यह 'कोंडकुंड' कहा जाता था। यह आज भी पर्वतमालाओं से सटा हुआ है यद्यपि यह आज आंध्रप्रदेश में है पर उस समय कर्नाटक में था ऐसा शिलालेखों में स्पष्ट उल्लेख है।

यद्यपि आ. कुंदकुंद के मूल नाम का पता नहीं है संभवतः उनका मुनि अवस्था का मूल नाम पद्मनंदि था। उनके अन्य नाम व्यक्तित्व के परिचायक हैं। आ. कुंदकुंद के वक्रग्रीव, महामति ऐलाचार्य, गृद्धपिच्छ और पद्मनंदी ये पाँच नाम हैं। एक गुरु पट्टावली के अनुसार आ.कुंदकुंद का जन्म वि. सं. 49 में पौष कृष्ण अष्टमी को हुआ था। वे केवल 11 वर्ष की अवस्था तक घर में रहे। उनको जन्म काल से ही माता अध्यात्मरस में अवगाहन कराने लगी थी और घंटों तक पालने में झुलाती हुई **''शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि''** की लोरियाँ सुनाया करती थी जिससे बाल्यकाल में ही वे संसार से विरक्त हो अध्ययन में लीन हो गए। 33 वर्ष की अवस्था में उन्होंने दिगंबर जैन मुनिदीक्षा ली थी। वे 51 वर्ष तक आचार्य रहे। उनकी आयु 95 वर्ष 10 मास और 15 दिन की कही गयी है।

समय तथा युग :- शेषगिरि राव ने अपने लेख ''द एज ऑव कुंदकुंद'' में विस्तार पूर्वक कहा है कि मेरे पास तमिल साहित्य में और लोकबोली में इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि प्राकृत में आ. कुंदकुंद ने अपने ग्रंथ निबद्ध किए हैं। प्राकृत केवल समझी ही नहीं जाती थी किंतु आंध्र

और कलिंगदेश में जन सामान्य के द्वारा व्यवहृत थी। रामतीर्थ में इस युग की उपलब्ध मिट्टी की सीलें और अमरावती के शिलालेख इस प्राकृत बोली से साम्यता रखते हैं अतएव मेरी समझ में यह युग ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्धी होना चाहिये। (जैन गजट, 18 अप्रैल 1922, पृ. 91) भाषा की दृष्टि से विचार करने पर यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है क्योंकि आ. कुंदकुंद की रचनाओं में प्रयुक्त प्राकृत प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की अंतःस्वरीय ध्वनिग्रामिक संरचना के अधिक निकट है। शक संवत् 388 में उत्कीर्ण मर्करा के ताम्रपत्रों में कोंडकुंदान्वय की परंपरा के छह प्राचीन आचार्यों के उल्लेख मिले हैं। डॉ. ए. चक्रवर्ती ने 'पंचास्तिकाय' की प्रस्तावना में और डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने 'प्रवचनसार' के परिचय में आ. कुंदकुंद का समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ''कोंडकुंड'' कन्नड़ शब्द का इतिहास तथा दक्षिण भारत में उपलब्ध प्राचीनतम सांस्कृतिक सामग्री ईसा से कई शताब्दी पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध करती है। श्री पी.बी. देसाई प्रबल प्रमाणों के साथ आ. कुंदकुंद को ईसा की प्रथम शताब्दी में मानते हैं। उनके समर्थन में एक अन्य प्रमाण भी उपलब्ध होता है कि तिरुवल्लुवर तथाकथित 'तिरुक्कुरल' के रचनाकार और आचार्य कुंदकुंद एक ही थे। तिरुवल्लुवर का रचना काल ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग माना जाता है। 'तिरुवल्लुवर' में 'तिरु' आदरसूचक उपसर्ग है। उनका वास्तविक नाम अज्ञात है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'तिरुक्कुरल' या 'थिरुकुरल' मानी जाती है। प्रो. ए. चक्रवर्ती के अनुसार निश्चित ही यह तिरुक्कुरल एलाचार्य आ. कुंदकुंद की अमर रचना है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि इस रचना में प्रयुक्त अपरिग्रह, मूढ़ता, अरम अमण (श्रमण) तथा थेर आदि जैनों के पारिभाषिक शब्द हैं। इस कृति का रचनाकाल ईसा की प्रथम और द्वितीय शताब्दी या इससे पूर्व मानने वालों में श्री के.एन. शिवराज पिल्लै, श्री टी.एस. कंदसामी मुदलियार, श्री वी.आर. रामचंद्र दीक्षितार, श्री पूर्ण सोमासुंदरम्, मु.गो. वेंकट कृष्णान, डॉ. ओमप्रकाश, श्री टी.पी. मीनाक्षीसुंदरम्, श्री अवधनंदन, जी.एस.दुरैस्वामी, इत्यादि अनेक विद्वान हैं।

(डॉ. रवींद्रकुमार सेठः तिरुवल्लुवर एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन, पृ.6)

यह भी दृष्टव्य है कि तमिल का प्राचीनतम साहित्य जैनसाहित्य है। पं. के. भुजबली शास्त्री के अनुसार तमिल संघकाल की रचनाओं में तिरुक्कुरल ही अंतिम रचना है। तमिलभाषा आदि के कवि जैन ही हैं। आ. कुंदकुंद निश्चयतः ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग हुए थे। इसका सब से प्रबल प्रमाण ''प्र.सा'' की वह गाथा है जो प्रथम शती के प्राकृत महाकवि विमलसूरि के 'पउमचरिय' में उपलब्ध होती है।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण।।233।। प्रवचनसार
कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरें जे।
ज्ञानी के छिन माँहि, त्रिगुप्ति तें सहज टरें ते।। छहढाला
जं अन्नाण तवस्सी खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं।
कम्मं तं तिहि गुत्तो खवेइ नाणी मुहुत्तेण।।120, 177।। पउमचरिय

इससे मिलती जुलती गाथा 'तित्थोगाली' में है जो अंगबाह्य की रचना मानी जाती है।

जं अण्णाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेइ उस्सासमेत्तेण।।107।। भ.आ.

गुरुपट्टावली और विभिन्न पट्टावलियों में उन्हें मूलसंघ का नायक कहा गया है। प्रो. हॉर्नले द्वारा पट्टावली के अनुसार आ. कुंदकुंद का समय ई. 8 कहा गया है। (इंडियन एंटिक्वेरी, जिल्द 21, पृ. 60-61)। उमास्वामी आ. कुंदकुंद के परवर्ती हैं। अधिकतर पट्टावलियों में उनका जन्म

संवत् 101, कार्तिक शु. अष्टमी कहा गया है। किसी किसी गुर्वावली में उनसे काष्ठासंघ की उत्पत्ति मानी गयी है। उन दोनों आचार्यों की रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से भी यही प्रतीत होता है कि आ. कुंदकुंद उमास्वामी के पूर्व हुए थे।

प्राकृत पट्टावलि में आ. कुंदकुंद के दीक्षागुरु का नाम **आ.जिनचंद्र** लिखा है, उनके पिताश्री का नाम **करमुंड** और माताजी का नाम **श्रीमती** था, वे महाजन श्रेष्ठी थे। आ. कुंदकुंद बा. ब्र. रहे। साधक अवस्था में उन्होंने घोर तपश्चरण किया था। मलयदेश के अंतर्गत हेमग्राम वर्तमान में पोन्नूर के सन्निकट नीलगिरि पर्वत की श्रृंखला में कुंदकुंदाद्रि के नाम से प्रसिद्ध है- यह नीलगिरि आ. कुंदकुंद की पावन चरणरज से परिव्याप्त है। कांचीपुर (अभी कांजीपुरम्) उस युग में जैनधर्म का उच्च केंद्र था। आ. कुंदकुंद का अधिकांश समय यहीं पर व्यतीत हुआ था।

रचनाएँ:- श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने आ. कुंदकुंद की 22 रचनाओं का उल्लेख निम्न प्रकार किया है 1. प्रवचनसार 2. समयसार 3. पंचास्तिकाय 4. नियमसार 5. बारसणुवेक्खा 6. दंसण ापाहुड 7. चारित्तपाहुड 8. सुत्तपाहुड 9. बोधपाहुड 10. भावपहुड 11. मोक्खपाहुड 12. लिंगपाहुड 13. शीलपाहुड 14. रयणसार 15. सिद्धभक्ति 16. श्रुतभक्ति 17. चारित्रभक्ति 18. योगिभक्ति 19. आचार्यभक्ति 20. निर्वाणभक्ति 21. पंचगुरुभक्ति 22. थोस्सामि थुदि (तीर्थंकरभक्ति)।

इनके अतिरिक्त 'मूलाचार' और 'थिरुकुरल' भी आ. कुंदकुंद की रचनाएं प्रमाणित हो चुकी हैं। इस प्रकार आ. कुंदकुंद की रची हुई चौबीस रचनाएं उपलब्ध होती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ स्तोत्र भी लिखे हुए मिलते हैं। डॉ. ए.एन. उपाध्ये प्रवचनसार की भूमिका में मूलाचार आ. कुंदकुंद की रचना है यह निर्णय लिख चुके हैं और आ. शांतिसागरजी म. मूलाचार को शोलापुर से प्रकाशित करा चुके हैं। उनकी रचनाओं से प्रमाणित है कि आ. कुंदकुंद मुनिचर्या के संबंध में अत्यंत सावधान एवं जागरूक थे।

थिरुक्कुरल :- यह एक अत्यंत आश्चर्यजनक बात है कि जैन और शैव दोनों ही तिरुक्कुरल को पवित्र ग्रंथ मानते हैं। नीलकेशी नामक बौद्ध ग्रंथ के विशद भाष्यकार समयदिवाकर जैनमुनि इस ग्रंथ को महान बताते हैं। यद्यपि इस रचना के प्रारंभिक मंगलाचरण में कवि ने किसी भगवान की संस्तुति का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है फिर भी कमलगामी, अष्टगुण युक्त विशेषणों से तथा उपलब्ध जैन पारिभाषिक शब्दावली से यह स्पष्ट है कि इस कृति के रचनाकार जैन थे। कवि के कुछ स्तुतिपरक वाक्य इस प्रकार हैं, ''धन्य है उस पुरुष को जो आदि परमपुरुष के पादारविंद में रत रहता है, जो न किसी से राग करता है और न किसी से द्वेष (ईश्वरस्तुति प्रकरण 4)।'' यदि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो तो तुम्हारी यह संपूर्ण विद्वत्ता किस काम की?

''जो उस परमपुरुष जितेंद्रिय के दर्शाए हुये धर्ममार्गानुसरण करते हैं वे अमरपद प्राप्त करते हैं।''

''जो मनुष्य अष्टगुण संयुक्त परमब्रह्म के चरण कमलों में नमन नहीं करता वह उस अशक्त इंद्रिय के समान है जिसमें अपने गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है।''

यद्यपि प्रचलित धारणानुसार इस काव्य के रचयिता तिरुवल्लुवर/ संत वल्लुवर हैं और यह 'तमिलवेद' है किंतु कनकसभाई पिल्लै और टी.वी. कल्याणसुंदर मुदलियार ने स्पष्ट रूप से इसमें अहिंसा धर्म का प्रतिपादन होने के कारण इसे जैन रचना बताया है। पाश्चात्य विद्वानों में एलिस और ग्राउल का भी यही निश्चित विचार है। प्रो. ए.चक्रवर्ती, अणुव्रत परामर्शक मुनिश्री नागराजजी तथा पं. के. भुजबली शास्त्री इसे आ. कुंदकुंद की ही रचना मानते हैं। प्रो. ए. चक्रवर्ती के अनुसार तमिल के प्रसिद्ध कवि मामूलनार का समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है। उनका स्पष्ट कथन है कि कुरल के वास्तविक रचयिता थीवर हैं, न कि वल्लुवर किंतु अज्ञानीजन वल्लुवर को उसका रचयिता बताते हैं परंतु बुद्धिमानगण मूर्खों की ऐसी बातें स्वीकार नहीं करते। स्वयं प्रो. चक्रवर्ती ने आ. कुंदकुंद के थीवर और एलाचार्य इन दो नामों का उल्लेख किया है। ताड़पत्र

प्रतियों के पठन से पता चलता है कि इस ग्रंथ के टीकाकार भी जैन थे। एक प्रति में स्पष्ट रूप से एलाचार्य विरचित थिरुक्कुरल लिखा मिलता है।

जैन विद्वान 'जीवकचिंतामणि' ग्रंथ के टीकाकार नचिनार किनियर ने अपनी टीका में सर्वत्र रचनाकार का नाम थीवर निर्दिष्ट किया है। वास्तव में तिरु, थिरु या थीवर कोई नाम न होकर विशेषण हैं इसलिये तमिल साहित्य में सामान्यत: 'थीवर' शब्द का प्रयोग जैनश्रमण के अर्थ में किया जाता है। इतिहास के पठन से पता चलता है कि ईसा पूर्व शताब्दी में मिस्त्र में जैनश्रमण तपस्वियों को 'थेरापूते' कहा जाता था। थेरापूते का अर्थ है - मौनी, अपरिग्रही। यथार्थ में थेर थेरा या थीवर शब्द मूल स्थविर शब्द से निष्पन्न हुआ है। स्थविर शब्द का अर्थ है निर्ग्रंथ मुनि। कन्नड़ में 'थेर' का अर्थ है तत्त्वज्ञानी और रथ, ऊँचा भी। स्वयं आ. कुंदकुंद ने 'स्थविर' के लिये 'थेर' शब्द का प्रयोग किया है। उनके ही शब्दों में -

'गुरू आयरिय उवज्झायाणं पव्वतित्थेर कुलयराणं णमंसामि।'-निषिद्धिकादंडक

'पव्वतित्थेरकुलयराणं' का अर्थ है- 'प्रवर्तितस्थविरकुलकराणां'।

इस प्रकार 'थिरुकुरल' दो शब्दों से मिलकर बना है- 'थिरु' और 'कुरल'। थिरु का अर्थ स्थविर और 'कुरल' का अर्थ एक छंद है। स्थविर ने कुरलछंद में जिसे गाया था वह थिरुक्कुरल है। कुरलछंद संस्कृत के अनुष्टुपश्लोक से भी छोटा कहा गया है। यह तमिल का विशिष्ट छंद है जो 'थिरुक्कुरल' की रचना के अनंतर प्रचलित हुआ। तमिल साहित्य की जैनरचनाओं में 'थिरुक्कुरल', नालडियार, मणिलमेखलै, शिलप्यधिकार और जीवकचिंतामणि अत्यंत प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। थिरुक्कुरल में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। इस रचना में अधिकतर सूक्तियाँ नीतिपरक हैं इसलिये इसे काव्यात्मक नीति रचना भी कहा गया है। आ. कुंदकुंद ने इस ग्रंथ की रचना कर सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांतों के प्रचार का दायित्व अपने शिष्य तिरुवल्लुवर को सौंप दिया था। श्रावक तिरुवल्लुवर इस रचना को लेकर मदुरा की सभा में गए और वहाँ विद्वानों के समक्ष यह ग्रंथ प्रकट किया। तभी से तिरुवल्लुवर इसके रचयिता प्रसिद्ध हो गए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि न केवल तमिल प्रदेश में किंतु सारे भारतवर्ष में इसके पूर्व ऐसी सुंदर रचना किसी संत ने नहीं की थी तभी तो भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य का कथन है- ''यदि कोई चाहे कि भारत के संपूर्ण साहित्य का मुझे पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाये तो तिरुक्कुरल को पढ़े बिना उसका अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता।'' (द्रष्टव्य है 'तिरुक्कुरल' (तमिलवेद) : एक जैन रचना मुनिश्री नागराज के लेख से उद्धृत।)''

पंचास्तिकाय :- विषय की दृष्टि से आ. श्री कुंदकुंद ने सर्वप्रथम पंचास्तिकाय की रचना की होगी क्योंकि इसमें मूल 27 पदार्थों का कथन किया है। विश्व की रचना जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन 6 द्रव्यों के परस्पर संयोग से मानी है। आ. कुंदकुंद के शब्दों में ''ये छहों द्रव्य परस्पर में दूधपानी की तरह एकक्षेत्रावगाही रूप में मिले हुए हैं फिर भी अपने अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं।'' (पंचा. गाथा 7)।

उन्होंने द्रव्य का लक्षण सत् और उत्पाद (उत्पत्ति), व्यय (विनाश) ध्रौव्य (नित्यता) तथा गुण पर्याय कहा है। प्रत्येक वस्तु भाववान है और सत्तावाली है। सत्ता सत् का भाव अस्तित्व है जिससे वस्तु मात्र का अस्तित्व सिद्ध होता है तथा जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन लक्षणों से युक्त है। इस प्रकार तत्त्व चिंतन के क्षेत्र में, दार्शनिक जगत में आ. कुंदकुंद अपनी मौलिक रचना के कारण आज भी अजेय हैं।

प्रवचनसार :- द्रव्य का स्वरूप ज्ञात होने पर ही उनके परस्पर में संयोग संबंध, अनुबंध और अर्थक्रियादि का ज्ञान होता है। प्रवचसार में मुख्य रूप से ज्ञानतत्त्व, ज्ञेयतत्त्व और चारित्रचूलिका का वर्णन किया गया हैं। आचार्य कहते हैं- **''जो ज्ञानात्मक आत्मा को स्व चैतन्य द्रव्यत्व से**

संबद्ध और अपने से भिन्न अन्य को परद्रव्यत्व से संबद्ध जानता है वह मोह का क्षय करता है।'' प्र. गा. 89

समयसार :- स.सा. आ. कुंदकुंद की प्रौढ़ तथा श्रेष्ठ रचना है। इसमें प्रमुख रूप से शुद्धात्मानुभूति का वर्णन किया गया है जो भावलिंगी श्रमण को प्राप्त होती है। 'समयसार' का अर्थ निर्मल आत्मा। निर्ग्रंथमुनि निर्मल आत्मा बनते हैं। शुद्धात्मा की पूर्णतः प्राप्ति होना ही शिवपद है। मोक्ष की प्राप्ति भेदविज्ञान से ही संभव है। विशिष्ट भेदज्ञान के बल से जब जीव ज्ञान तथा तप के द्वारा कर्मबंध और आत्मा को पृथक्[2] कर देता है तब सहज समाधि में अवस्थित होकर शुद्धात्म संवित्तिरूप वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान में लीन हो बंध और आत्मा के स्वभाव को जानकर निर्विकल्प समाधि में स्थिर परमयोगी ही कर्मों को निर्मूल करता है। कर्मों का उन्मूलन कर देने पर शिवत्व की प्राप्ति होने में विलंब नहीं होता है ऐसे ही स.सा. रूपी शुद्धात्मा को उपलब्ध करने योग्य परम तपस्वी मुनि कहे गये हैं। समयसार में नौ अधिकार हैं। इनमें क्रमशः जीव अजीव, कर्ता कर्म, पुण्य पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष और सर्वविशुद्ध ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। इसीमें अन्य मतमतांतरों का कथन किया गया है क्योंकि समयसार का उद्गमस्थान दृष्टिवादअंग है। इसमें तदुभय वक्तव्यता की व्याख्या की है अतः शुद्धात्मा के कथन के साथ अशुद्धात्मा का कथन अधिकांश रूप में किया गया है जो पूर्ण ग्रंथ के आलोडन से अनुभव होगा अतः इसमें गौण रूप से अशुद्ध आत्मा का भी कथन किया है जो अजीव, कर्ता कर्म, पुण्य पाप, आश्रव बंध के कथन से सिद्ध है।

नियमसार :- उक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार एक एक क्रम से रचीं गयीं आध्यात्मिक रचनाएँ हैं। 'नियमसार' में रत्नत्रय को मोक्ष का मार्ग निरूपित किया गया है। इसमें जीव के बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा ये तीन भेद किये हैं। आ. कुंदकुंद के वचन हैं कि व्यवहार नय से केवली भगवान सबको जानते और देखते हैं किंतु परमार्थ से केवलज्ञानी आत्मा को जानते और देखते हैं। (नि. गा.159) अतः स्थूल व्याख्यान की अपेक्षा या अन्यमतियों की अपेक्षा ज्ञान को स्वपर प्रकाशक कहा है और स्वसमय तथा सूक्ष्म व्याख्यान की अपेक्षा ज्ञान को परप्रकाशक तथा दर्शन को स्वप्रकाशक कहा है। बृ.द्र.सं. गा. 44 इस प्रकार आ. कुंदकुंद ने व्यवहार और परमार्थ दोनों दृष्टियों से वर्णन किया है। अपने किसी भी ग्रंथ में उन्होंने अपनी इस युगपत् दृष्टि को त्यागा नहीं है। दोनों नयों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर सर्वत्र विवेचन किया है। जब ज्ञान सहज परमात्मा को जान लेता है तब अपने आपको और समस्त ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करता है। इस संपूर्ण विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि आ. कुंदकुंद की दृष्टि अत्यंत विशद एवं स्पष्ट है। अनुभूति और तर्क की कसौटी पर खरी उतरती है। उसमें मौलिकता और चिंतन की गंभीरता है अतएव नय पक्षों से और पक्षातीत स्वानुभूति का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। 'नियमसार' और 'रयणसार' इन दोनों ही रचनाओं में आचार संबंधी वर्णन होने के कारण जहाँ व्यवहार नय से प्रतिपादन किया गया है वहीं निश्चयनय का कथन छूटने नहीं पाया है। आचार्य दोनों नयों को तथा प्रमाण को ध्यान में रखकर कथन करते हैं यही अनेकांत दृष्टि है। कहा भी है-

इदि णिच्छयववहारं जं भणियं कुंदकुंदमुणिणाहे।
जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाणं।। द्वा.प्रे. 91

आ.श्री के स.सा., प्र.सा. और नि.सा. को 'नाटकत्रय' भी कहा है। श्री नेमिचंद्रजी ने 'सूर्यप्रकाश' में-

अंते समयसारं च नाटकं च शिवार्थदं,
पंचास्तिकायनामाढ्यं वीरवाचोपसंहितम्।
आद्यं प्रवचनं चैव अंत्यस्थं सारसंज्ञकं,
संबोधार्थं च भव्यानां चक्रे सत्यपदार्थदम्।।
यत्याचाराभिधं ग्रंथं श्रावकाचारमंजसा,

ध्यानग्रंथं क्रियापाठं प्रत्याख्यानादिसद्विधीन्।
प्रतिघस्त्रांही नाशार्थं प्रतिक्रमणसंयुतं,
मुनीनां च गृहस्थानां चक्रे सामायिकं तदा।।
जिनेंद्रस्नानपाठं च स्नपनार्थं जिनस्य वै,
यस्याकरणमात्रेण प्राप्नुवन्ति सुरैः प्लवम्।।
प्रभूणां पूजनं चापि तेषां गुणविभूषितं,
स्तवनं चित्तरोधार्थं रचयामास स मुनिः।।345-350।।

इससे स्पष्ट है कि 'समयसार' सभी रचनाओं के अंत में रचा गया है। यथार्थ में आ. कुंदकुंद ने आध्यात्मिक स्तोत्र स्तुति, पूजा पाठ आदि सभी विषयों को ताड़पत्रों में उकेरा है। इन सभी रचनाओं में हमें दो बातें मुख्य लक्षित होती हैं, प्रथम भावविशुद्धि और दूसरी परपदार्थों में अनासक्ति। 'रयणसार' में भी यही वृत्ति मुख्य है।

रयणसार :- जिस प्रकार रयणसार में मुनिधर्म और श्रावकधर्म का वर्णन किया है उसी प्रकार 'प्रवचनसार' में आगम के सारभूत शुद्धात्म तत्त्व का, 'नियमसार' में नियम के साररूप शुद्ध रत्नत्रय का और 'समयसार' में शुद्धात्मा का वर्णन किया है। ये तीनों ही ग्रंथ 7वें गुणस्थानवर्ती श्रमणों को ध्यान में रखकर उकेरे हैं और अंत में सहजलिंग से ही मुक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इसी भाव को आ. जयसेन ने अपनी स.सा. ता.वृ. गा. 51 की टीका में अत्यंत विशदता और स्पष्टता के साथ निरूपित किया है:-

यद्यप्ययं व्यवहारनयो बहिर्द्रव्यावलम्बत्वेनाभूतार्थस्तथापि रागादिबहिर्द्रव्यावलम्बन रहित विशुद्ध ज्ञान स्वभावस्वावलम्बनसहितस्य परमार्थस्य प्रतिपादकत्वाद्दर्शयितुमुचितो भवति। यदा पुनर्व्यवहारनयो न भवति तथा शुद्धनिश्चयनयेन त्रसस्थावरजीवा न भवंतीति मत्त्वा निःशंकोपमर्दनं कुर्वन्ति जनाः।

यथार्थ में अध्यात्मशास्त्र को समझने के लिये व्यवहार और निश्चय दोनों ही दृष्टियों की अपेक्षा है। निरपेक्ष नय मिथ्या कहे गये हैं। व्यवहारनय अपनी अपेक्षा से सत्य है पर निश्चयनय की अपेक्षा से असत्यार्थ एवं अभूतार्थ है। आ. अमृतचंद्रजी ने **''न चैतद्विप्रतिषिद्धं निश्चय व्यवहारयोः साध्य साधन भावत्वात् सुवर्णस्वर्णपाषाणवत्। अतएवोभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थप्रवर्तनेति।''** -पं. का. 159 वीं की टीका

निश्चय साध्य है और व्यवहार साधन। इन दोनों दृष्टियों से आ. कुंदकुंद ने इन ग्रंथों की रचना की है अतएव 'ज्ञानी ज्ञान का कर्त्ता है'' यह कथन भी व्यवहार है। व्यवहार कारण है और निश्चय कार्य। कहा भी है -

मोक्षहेतुः पुनर्द्वेधा निश्चयाद् व्यवहारतः।
तत्र आद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम्।। त.शासन. 28

तथा - **जीवोऽप्रविश्य व्यवहारमार्गं, न निश्चयं ज्ञातमुपैति शक्तिं।**
प्रभाविकाशे क्षणमंतरेण, भानूदयं को वदते विवेकी।। -आराधनासार 7, 30

स्वसंवेदन की अनुभूति शब्दों में नहीं कही जा सकती अतः जन सामान्य को ध्यान में रखकर 'अष्टपाहुड' आदि जिन ग्रंथों की रचना की गयी है उनमें रयणसार व्यवहार रत्नत्रय का प्रतिपादन करने वाला अपूर्व ग्रंथ है। अन्य रचनाओं की भाँति इसमें भी शुद्ध आत्मतत्त्व को लक्ष्य में रखकर गृहस्थ और मुनि के चारित्र का निरूपण किया है। मुख्य रूप से यह आचार शास्त्र है। निम्नलिखित समानताओं के कारण यह आ. कुंदकुंद की रचना सिद्ध होती है —

1- संघटना की दृष्टि में आ. कुंदकुंद की रचनाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है सारमूलक और पाहुडमूलक रचनाएं। भक्ति और स्तुतिविषयक रचनाएँ इनसे भिन्न हैं। प्रवचनसार, समयसार, नियमसार और रयणसार के अंत में 'सार' शब्द का प्रयोग ही रचना सादृश्य को सूचित करता है।

2- प्र.सा., नि.सा. द.पा. और र.सा. का प्रारंभ तीर्थंकर महावीर के मंगलाचरण से होता है। 'नियमसार' की भाँति रयणसार में भी ग्रंथ का निर्देश किया गया है- यथा

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं।।1।। प्र.सा.
णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।।1।। नि.सा.
काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकमं समासेण।।1।। द.पा.

तथा **णमिऊण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।**
वोच्छामि रयणसारं सायारणयारधम्मीणं।।1।। र.सा.

उक्त गाथाओं में तथा 'समयसार' में भी 'वोच्छामि समयपाहुड' शब्द साम्य भी है।

3- इन सभी ग्रंथों के अंत में रचना का पुनः नामोल्लेख किया है। सागार गृहस्थ और अनगार मुनि दोनों के लिये आगम का सार बताया गया है। कहा है -

बुज्झदि सासणभेयं सागारणगारचरियया जुत्तो।
जो सो पवयणसारं लहुणा कालेण पप्पोदि।।275।। प्र.सा.
सम्मत्तणाण वेरग्गतवोभावं णिरीहवित्तिचरित्तस्स।
गुणसीलसहावं उप्पज्जइ रयणसारमिणं।।152।। र.सा.

4- इसके अतिरिक्त रयणसार में दो तीन स्थलों पर (गा. 148, 84, 105) 'प्रवचनसार' के अभ्यास का उल्लेख किया है जो शुद्ध आत्म रूप आगम के सार तत्त्व और प्रवचनसार ग्रंथ का भी सूचक हो सकता है। पंचा. ''**एवं पवयणसारं पंचत्थिसंगहं वियाणित्ता।**'' (103)

5- **णिच्छयववहारसरूवं जो रयणत्तयं ण जाणइ सो।**
जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं।।109।। र.सा.
दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।16।। स.सा.

आ. अमृतचंद्र कहते हैं : ''**येनैव हि भावेनात्मा साध्यः साधनं च स्यात्तेनैवायं नित्यमुपास्य इति स्वयमाकूय परेषां व्यवहारेण साधुना दर्शनज्ञानचारित्राणि नित्यमुपास्यानीति प्रतिपाद्यते।।**'' साधु को रत्नत्रय का भेद/ साधन और अभेद/ साध्य जिस किसी भाव से नित्य सेवन करना चाहिये। आ. श्री जयसेनजी ने इसका विस्तार से स्पष्टीकरण किया है। वास्तव में रत्नत्रय मोक्षमार्ग है, जिसका सभी रचनाओं में कुछ शब्दों को बदलकर वर्णन किया है किंतु रयणसार में यह वर्णन सरल है।

6- **इदि सज्जणपुज्जं रयणसार गंथं णिरालसो णिच्चं।**
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं ठाणं।।155।। रयणसार
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं।।106।। मोक्षपाहुड

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं।।164।। भावपाहुड

जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाणं ।।91।। द्वादशानुप्रेक्षा

जो समयपाहुडमिणं ..... सो पावदि उत्तमं सोक्खं ।।415।। समयपाहुड

उक्त सभी पंक्तियों में एक क्रम तथा शब्द साम्य परिलक्षित होता है।

7- सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि की महिमा आ. कुंदकुंद की सभी रचनाओं में प्रकारांतर से मिलती है। र.सा. में अधिकांश सम्यग्दर्शन का कथन है। जैसे अ- सम्यग्दर्शन के बिना देव, गुरु धर्मादि का दर्शन नहीं होता, आ- सम्यक्त्व सूर्य के समान है, इ- सम्यक्त्व कल्पतरु के समान है, ई- सम्यक्त्व औषधि है। कहा है -

पुव्वं सेवइ मिच्छामलसोहणहेउ सम्मभेसज्जं।

पच्छा सेवइ कम्मामयणासणचरियसम्मभेसज्जं।।62।। रयणसार

मिथ्यामल की शुद्धि हेतु सम्यक्त्व रूपी औषधि का सेवन कर पश्चात् कर्मरोग को मिटाने के लिये चारित्र रूपी औषधि का सेवन करना चाहिये। आ. जयसेन ने स.सा. गा. 233 में लगभग यही भाव व्यक्त किया है।

भयविसणमलविवज्जिय संसारसरीरभोगणिव्विण्णो।

अट्ठगुणंगसमग्गो दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।।

सम्यग्दर्शन के 8 अंग, 8 गुण होते हैं। सम्यग्दृष्टि 7 व्यसन, 7 भय, 25 शंकादि दोषों से रहित, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त, पंच परमेष्ठियों का भक्त होता है। रयणसार

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।

सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका।।228।। समयसार

सम्यग्दृष्टि निःशंक एवं निर्भय होते हैं क्योंकि वे सातों भयों के त्यागी होते हैं। सम्यक्त्व के बिना दान, पूजा, जप, तप आदि सब निरर्थक कहा गया है। यह भाव र.सा. की गाथा 9 एवं 142 तथा ता.वृ.स.सा. की गा. 292 में लगभग समान रूप से वर्णित है।

8 मोक्षपाहुड और रयणसार की निम्न लिखित गाथाओं में साम्य लक्षित होता है-

देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसायसंजुत्ता।

अप्पसहावेसुत्ता ते साहु सम्मपरिचत्ता।।93।। र.सा.

तथा - **जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।**

जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।31।। मो.पा.

अण्णाणी विसयविरत्तादो होइ सयसहस्सगुणो।

णाणी कसायविरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं।।63।। र.सा.

एवं- **उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।**

तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेइ अंतो मुहुत्तेण।।53।। मो.पा.

सम्मत्त विणा रुई भत्तिविणा दाणं दयाविणा धम्मो।

गुरुभत्ति हीण तवगुणचारित्तं णिप्फलं जाण।।73।। र.सा.

इसी प्रकार **तच्चरुई सम्मत्तं तच्च गहणं च हवई सण्णाणं।**

चारित्तं परिहारो परूवियं जिणवरिंदेहिं।।38।। मो.पा.

कम्मादविहाव सहाव गुणं जो भाविऊण भावेण।

णियसुद्धप्पा रुच्चइ तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं।।113।। र.सा.

तथा - **अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।**

संसारतरणहेउ धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठो।।85।। भावपाहुड

9- यथा- **तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्त्तापि हि श्रुता।**

निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्।।२३।। पद्मनंदिपंचविंशतिका

10- आ. श्री कुंदकुंद ने र.सा. एवं द्वा.प्रे. में भी उत्तमपात्र आदि का नामनिर्देश किया है। कहा है -

अविरददेसमहव्वय आगमरुइणं वियारतच्चण्हं।

पत्तंतरं सहस्सं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।106।। रयणसार

उत्तमपत्तं भणियं सम्मत्तगुणेण संजुदो साहू।

सम्मादिट्ठी सावय मज्झिमपत्तो हु विण्णेयो।।17।।

णिद्दिट्ठो जिणसमये अविरदसम्मो जहण्णपत्तोति।

सम्मत्तरयणरहिओ अपत्तमिदि संपरिक्खेज्जो।।18।। द्वादशानुप्रेक्षा

11- इसी तरह 'मूलाचार' और 'रयणसार' के भावों में कहीं कहीं साम्यता है।

पुव्वं जो पंचेंदिय तणुमणुवचिहत्थपायमुंडाउ।

पच्छा सिरमुंडाउ सिवगइ पहणायगो होइ।।69।। रयणसार

एवं- **पंच वि इंदियमुंडा वचमुंडा हत्थपायमणमुंडा।**

तणु मुंडेण वि सहिया दसमुंडा वण्णिया समये।। 9।। मू.चा. 85 अ. 3

12- भावापेक्षया 'स.सा.' और 'र.सा.' में "ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता"। यह बात दोनों में कही है।

णाणब्भासविहीणो सपरं तच्चं ण जाणए किं वि।

झाणं तस्स ण होइ हु जाव ण कम्मं खवेइ णहु मोक्खो।।82।। रयणसार

तथा- **णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं बहू वि ण लहंते।**

तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं।।205।। -समयसार,

आ. जयसेन ने ता.वृ.स.सा. 233 में ध्यान को अग्नि कहा है। जिनलिंग धारण किये बिना मोक्षमार्ग का नेता नहीं होता र.सा. 150। सम्यक्त्व के बिना व्रतादि का पालन करना व्यर्थ है र.सा. 111 में। र.सा. और प्र.सा. में द्रव्य, गुण और पर्यायों से स्व परसमय को जानने वाला कहा है क्योंकि मोह का क्षय हो जाता है। यथा-

दव्वगुणपज्जएहिं जाणइ परसमय ससमयादि विभेयं।

अप्पाणं जाणइ सो सिवगइपहणायगो होइ।।127।। र.सा.

और **जो जाणदि अरिहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**

सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।80।। प्र.सा.

'र.सा.' में कहा है कि जो विकथाओं से उन्मुक्त अधःकर्म और उद्देशिक दोषों से रहित, धर्मोपदेश देने में कुशल और बारह भावनाओं से युक्त होता है वह ज्ञानी मुनि है।

विकहाइविप्पमुक्को आहाकम्माइविरहिओ णाणी।

धम्मुद्देसणकुसलो अणुपेहाभावणाजुदो जोई।।87।। र.सा.

तथा – **आधाकम्माईया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।।**

कह ते कुव्वइ णाणी परदव्वगुणाउ जे णिच्चं।।286।। स.सा.

ऐसे ही अन्य स्थलों में कतिपय पारिभाषिक शब्दों के सटीक प्रयोग तथा वाक्यविन्यास का सादृश्य है। विस्तार के भय से उन सब बातों का उल्लेख नहीं किया है।

मुनिश्री विद्यानंदजी ने 'र.सा.'- आ. कुंदकुंद की मौलिक कृति'' शीर्षक लेख में जो 'वीरवाणी' में प्रकाशित हो चुका है - आ. समंतभद्र के 'रत्न.श्रा.' पर 'र.सा.' का प्रभाव सप्रमाण दर्शाते हुए कहा है कि 'र.सा.' का 'रत्नकरंड' पर पूरा प्रभाव है। प्रतीत होता है कि आ. उमास्वामी, सिद्धसेन, पूज्यपाद, अमितगति प्रभृति आ. कुंदकुंद के 'र.सा.' से प्रभावित थे। समंतभद्र स्वामी ने तो 'रत्नकरंड' 'र.सा.' के सादृश्य में रचा गया है। प्राकृत में 'रयण' का संस्कृत 'रत्न' और 'सार' व 'करंड' शब्दों में बहुत कुछ भावसाम्य है।''

ग्रंथ की अंतरंग परीक्षा से स्पष्ट है कि 'र.सा.' की रचना 'प्र.सा.' और 'नि.सा.' के पश्चात् हुई है और र.सा. के कर्ता कोई भट्टारक या मुनि नहीं थे जैसा कि भ्रमवश समझ लिया है यदि कोई आ. कुंदकुंद के नाम पर रचना कर्ता तो उनकी किसी रचना को ध्यान में रखकर गाथाओं की संख्या, विषय संरचनादि में तालमेल अवश्य बैठाता परंतु इसमें विषय निश्चित क्रम से श्रावक एवं साधुओं के लिये कहा है। इसके अतिरिक्त इसमें 'प्र.सा.' और 'नि.सा.' के कुछ विचारों की पूरक गाथाएं भी मिलती है। जैसे-

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।

जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं।।82।। प्रवचनसार

णियतच्चुवलद्धिविणा सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण।

सम्मत्तुवलद्धिविणा णिव्वाणं णत्थि णियमेण।।79।। रयणसार

प्र.सा. में मोह को दूर किए बिना आत्मतत्त्व की उपलब्धि नहीं होती है और र.सा. में आत्मज्ञान के बिना सम्यक्त्व की और सम्यक्त्व के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ये कथन परस्पर में सापेक्ष होने से एक दूसरे के पूरक हैं। कहा भी है-

दव्वगुणपज्जयाणं चित्तं जो कुणइ सो वि अण्णवसो।

मोहंधयारववगय समणा कहयंति एरिसयं।।145।। नियमसार

जो अपने चित्त को द्रव्य गुण और पर्यायों में लगाता है वह शुद्ध स्वभाव में न होने से परवश है ऐसा निर्मोही श्रमणों का कथन है।

दव्वगुणपज्जएहिं जाणइ परसमय ससमयादिविभेयं।

अप्पाणं जाणइ सो सिवगइ पहणायगो होइ।।127।। रयणसार

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण।

पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं।।2।। समयसार

जो परसमय और स्वसमय आदि भेदों को द्रव्य गुण पर्यायों से जानता है वह अपने को जानता है वही हितोपदेशी होता है। इसीको स्पष्ट किया है कि रत्नत्रय में स्थित सिद्धपरमात्मा 'स्वसमय' और पुद्गल कर्मप्रदेशों में स्थित समस्त संसारी आत्मायें 'परसमय' हैं ऐसा जानो।

इस कथन से अत्यंत स्पष्ट है कि आ. कुंदकुंद के सिवाय अन्य कोई ऐसी सटीक रचना उकेर नहीं सकता। रचना सरल होने पर भी गूढ़ अर्थ से गुंफित है। रचना साम्य की दृष्टि से भी कुछ

स्थल द्रष्टव्य हैं-

1- **कालमणंतं जीवो मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।।140।।** रयणसार

कालमणंतं जीवो जम्मजरा मरण पीडिओ दुःखं।।34।। भावपाहुड

2- **पावारंभणिवित्ती पुण्णारंभे पउत्तिकरणं पि।।84।।** रयणसार

असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।।45।। द्रव्यसंग्रह

3- **जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो ताव।।77।।** रयणसार

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोह्णं पि।।69।। समयसार

4- **दया विणा धम्मो -** 73 रयणसार

धम्मो दयाविसुद्धो - 24 बोधपाहुड

5- **अज्जवसप्पिणिभरहे धम्मज्झाणं पमादरहिदोत्ति।।51।।** रयणसार

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।।76।। मोक्षपाहुड

भाव साम्य की दृष्टि से कुछ अन्य स्थल हैं -

जो सो होइ कुदिट्ठी ण होइ जिणमग्गलग्गरवो।।3।। रयणसार

तथा - **सम्माइट्ठी सावयधम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।**

विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।।94।। मोक्षपाहुड

इसी प्रकार - **णाणेण झाणसिज्झी झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं।**

णिज्जरणफलं मोक्खं णाणब्भासं तदो कुज्जा।।138।। रयणसार

और- **दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।**

जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स।।152।। पंचास्तिकाय

एवं - **णाणब्भासविहीणो सपरं तच्चं ण जाणए किं पि।**

झाणं तस्स ण होइ दु जाव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खं।।82।। रयणसार

तथा- **णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तणाहिसंबद्धं।**

जाणदि जदि णिच्छयदो जो सो मोहक्खयं कुणदि।।89।। प्रवचनसार

इसी प्रकार **विकहाइविप्पमुक्को आहाकम्माइविरहियो णाणी।।87।।** रयणसार

और **आधाकम्मादीया पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।**

कह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा हु जे णिच्चं।।286।। समयसार

इसी प्रकार **संजम तव झाणज्झयणविणाणए गिण्हये पडिग्गहणं।**

वंचइ गिण्हइ भिक्खु ण सक्कदे वज्जिदुं दुक्खं।।103।। रयणसार

तथा **ण हि णिरवेक्खो चागो ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।**

अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिओ।।220।। प्रवचनसार

एवं **देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसायसंजुत्ता।**

अप्पसहावे सुत्ता ते साहू सम्मपरिचत्ता।।93।। रयणसार

और- **जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तोअप्पणे कज्जे।।31उत्तरार्ध।।** मोक्षपाहुड

इसी प्रकार - **वयगुणसीलपरीसहजयं च चरियं तवं छडावसयं।**

झाणज्झयणं सव्वं सम्मविणा जाण भववीयं।।111।। रयणसार

तथा **किं काहिदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो।**

अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स।।124।। नियमसार

एवं **उवसमणिरीहझाणज्झयणाइ महागुणा जहा दिट्ठा।**

जेसिं ते मुणिणाहा उत्तमपत्ता तहा भणिया।।107।। रयणसार

"मो.पा." और र.सा. में सम्यग्दृष्टि श्रावकधर्म का कर्तव्य बताया है।

सम्माइट्ठी सावयधम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।

विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।।94।। मोक्षपाहुड

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।।10 पूर्वार्द्ध।। र.सा.

जिन विद्वानों के अनुसार जिन बातों के कारण 'रयणसार' ग्रंथ पूर्ण रूप से आ. कुंदकुंद की रचना या प्रकृति से मेल नहीं खाता उनमें एक गण-गच्छादि का उल्लेख भी है तथा यह कथन मू.चा. अ. 5 गा. 389-390 में किया है। आ. कुंदकुंदजी मूलसंघ के अधिष्ठाता थे और देशीयगण से उनके अन्वय का घनिष्ठ संबंध था। मर्करा के ताम्रपत्र में देशीयगण के साथ कुंदकुंदान्वय का भी उल्लेख है (द्रष्टव्य हैः जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश पृ. 604) आ. कुंदकुंद के समय में संघ, गण, गच्छ और कुल आदि प्रचलित थे। कहा है- **आचार्योपाध्याय तपस्विशैक्ष्यग्लान गणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम्।** त.सू. अ. 9, सू. 24

ऐसे ही शिलालेखों में तथा ग्रंथ प्रशस्तियों में उल्लेख मिलते हैं । कहा भी है—

सिरिमूलसंघ देसियगण पुत्थयगच्छ कोंडकुंदाणं।

परमण्ण इंगलेसर बलिम्मि जादस्स मुणिपहाणस्स।। भा.त्रि.118, परमा.सार 226

तो आयरियउवज्झायसिस्ससाधम्मिगे कुलगणे य।।709।। भ.आ.

समणं गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं।

समणेहि तं पि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो।।203।। प्र.सा.

तथा - **"रत्नत्रयोपेतः श्रमणगणः संघः"** सर्वार्थसिद्धि अ.6 सू.13

आ. श्री कुंदकुंद के समय में ही गण गच्छ उत्पन्न हो गये थे फिर भी मुनियों को गण गच्छादि भेदों में नहीं पड़ना चाहिये (गा. 144) क्योंकि मुनियों का गण गच्छ तो रत्नत्रय है। उनके ही शब्दों में —

रयणत्तमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।

संघो गुणसंघाओ समयो खलु णिम्मलो अप्पा।।153।। र.सा.

आ. कुंदकुंद के समय में शिथिलाचार बढ़ रहा था। अतः विधि निषेध करना आवश्यक हो गया था।

"र.सा." और "भा.पा." में **<u>भाव</u>** का महत्त्व बताया है जो निश्चय सम्यक्त्व एवं समभाव का सूचक है।

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च।

भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे।।99।। भा.पा.

उवसमतवभावजुदो णाणी सो भावसंजदो होई।

णाणी कसायवसगो असंजदो होइ सो ताव।।60।। र.सा.

मुनि के लिये भावसंयम नितांत अनिवार्य है। भाव श्रमण मुनि ही निश्चय सुख प्राप्त करते हैं। जो भावसंयमी मुनि कषायों के आधीन नहीं होते। श्रमण समभावी होते हैं— 'सम मणइ तेण सो

समणो'। कहा भी है -

इसी प्रकार "सम्मं" शब्द का प्रयोग भी "र.सा." और "भा.पा." में मिलता है। यथा-

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो।।140।। भा.पा.

तथा — **सुदणाणब्भासं जो ण कुणइ सम्मं ण होइ तवयरणं।**
कुव्वंतो मूढमई संसारसुहाणुरत्तो सो।।85।। र.सा.

इसी प्रकार सम्मत्तगुण, सम्माइट्ठी, सावय आदि का वर्णन मो.पा. की भाँति र.सा. में किया गया है। कहीं कहीं भाव समान है और कहीं कहीं पूरक वचन हैं। अतः ग्रंथ की अंतरंग परीक्षा से निश्चित होता है कि यह आ. कुंदकुंद की ही रचना है। "मो.पा." में भी रत्नत्रय का वर्णन किया है

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं।।43।। मो.पा.

तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।
चारित्तं परिहारो पजंपियं जिणवरिंदेहिं।।38।। मो.पा.

मो.पा. और र.सा. में सम्यग्दर्शन को प्रधान तथा मुनिधर्म को श्रेष्ठ कहा है। सम्यग्दर्शन श्रावक और मुनियों के लिये समान रूप से हितकारी है। ज्ञानी स्वसंवेद्य परिणति में लीन होकर बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का त्यागी जिनेंद्र कथित मुनिधर्म को मानने से सम्यग्दृष्टि दुःखों से रहित हो जाता है। आ. कुंदकुंद के ही शब्दों में —

णियसुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावत्थवज्जिओ णाणी।
जिणमुणिधम्मं मण्णइ गयदुक्खो होइ सद्दिट्ठी।।6।। र.सा.

सम्यग्दर्शन की व्याख्या इन रचनाओं में कई प्रकार से की गयी है। जैसे -

1- तत्त्व में रुचि होना अथवा सात तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

2- धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। **दंसण मूलो धम्मो** द.पा. 2

3- जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्त्व और आत्मश्रद्धान निश्चय सम्यक्त्व है।

4- आत्मा का दर्शन करना सम्यग्दर्शन है।

5- जिनदेव का श्रद्धान करना और सम्यक्त्व के आठों अंगों का पालन करना सम्यग्दर्शन है।

6- जिनवाणी पर श्रद्धान करना और ज्यों का त्यों बोलना सम्यग्दर्शन है।

यथार्थ में सम्यक्त्व श्रद्धान का विषय है। जीवादि तत्त्वों की प्रतीति के बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। यदि "अ.पा." आ. कुंदकुंद की रचना है, तो "र.सा." भी उनकी ही एक प्रामाणिक रचना है। भाषा और विषय की दृष्टि से इन रचनाओं में बहुत कुछ साम्य लक्षित होता है।

आगम परंपरा के संवाहक : आ. कुंदकुंद

जैनसिद्धांत और अनेकांतदर्शन में **आ. कुंदकुंद ने अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहा।** उन्होंने केवलियों के वचनानुसार ही स.सा., नि.सा. और र.सा. आदि की रचना की है। अतः ये वचन प्रमाण हैं-

वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।1।। स.सा.
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं।।1।। नि.सा.

पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं

पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लइ सो हु सद्दिट्ठी।।2।। र.सा.

तं एयत्तविभत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।

जदि दाएज्ज पमाणं चुकिज्ज छलं ण घेत्तव्वं।।5।। स.सा.

निर्मल शुद्धात्मा का वर्णन करते हुये आ. ने स्पष्ट कहा है कि शुद्धात्मा को मैं बतला सकूं तो उसे स्वीकार कर लेना और यदि कहीं चूक जाऊँ तो छल ग्रहण नहीं करना। प्रमत्ताप्रमत्त और परमहंस दशा को भी पार कर परमात्मा ने जो कहा है वही कहा जाता है। शुद्धात्मानुभूति का वर्णन वास्तव में शब्दों में नहीं किया जा सकता। परमानंद को जो जानता है वह कह नहीं सकता और जो कहता है वह वास्तव में जानता नहीं है फिर आ. कुंदकुंद उसका वर्णन कैसे कर सकते हैं? परमार्थ से अखंडात्मा का वर्णन ही नहीं हो सकता अतः व्यवहार का सहारा लेकर वर्णन किया गया है। आ. कुंदकुंद कहते हैं कि जैसे किसी अनार्य को अनार्यभाषा बोले बिना समझाया नहीं जा सकता वैसे ही व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश नहीं हो सकता। ''स.सा.'' गा. 8 में ये ही विचार निबद्ध हैं। निर्मल आत्मा की प्राप्ति के लिये सर्वत्र आगम में निर्ग्रंथ होकर शुद्धोपयोग में लीन रहना यह एक ही उपाय बताया है।

णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकसाया।

पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।।80।। मो.पा.

बहिरब्भंतरगंथविमुक्को सुद्धोवजोयसंजुत्तो।

मूलुत्तरगुणपुण्णो सिवगइपहणायगो होइ।।132।। र.सा.

<u>दार्शनिक चिंतन</u> :- आ. कुंदकुंद के दार्शनिक चिंतन में स्पष्टतः अनेकांत परिलक्षित होता है। अनेकांत जैनागम की मूल दृष्टि है, जिनमत में प्रवेश करने वाले को उभयनय नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि व्यवहार के बिना व्यवहारतीर्थ और परमार्थ के बिना वस्तु तत्त्व नष्ट हो जायेगा। कहा है-

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।

एगेण विणा छिज्जइ तित्त्थं अण्णेण पुण तच्चं।।12।। स.सा. टीका, आत्मख्याति

उभयनयों के विषयों में कोई विरोध नहीं है। जैसे व्यवहार से स्वर्णपाषाण स्वर्ण का साधन है वैसे ही निश्चयनय को समझने के लिए व्यवहारनय साधन है। जहाँ आ. कुंदकुंद उभयनयों को एक दूसरे का पूरक तथा आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त करने के लिये आवश्यक मानते हैं वहीं नय के विकल्पों को शुद्ध जीव का स्वरूप नहीं मानते क्योंकि शुद्धात्मा पक्षातिक्रांत है। जीव बंधक है यह व्यवहार का पक्ष है और आत्मा अबंधक है यह परमार्थ का पक्ष है आ. अमृतचंद्रसूरि ने इसीको कहा है जो उभयनयों को यथार्थ जानकर मध्यस्थ होता है वही परमतत्त्व को प्राप्त करता है यही अनेकांत दृष्टि है। इस दार्शनिक चिंतन के अनुसार किसी एक द्रव्य का सप्तभंगों से कथन किया जाता है। आ. कुंदकुंद के शब्दों में-

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।

दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण संभवदि।।14।। पं.का.

जैसे उपनिषदों में परमतत्त्व को 'नेति नेति' कह कर मन, बुद्धि, इंद्रिय और वाणी के अगोचर बताया है वैसे ही स्याद्वाद की भाषा में सभी द्रव्य अपने मूल रूप में ''अवक्तव्य'' होने से वाणी से कह नहीं सकते हैं।

<u>तात्त्विक विवेचन में मौलिकता</u> :- ''आ. कुंदकुंद के प्राकृत-वाङ्मय की भारतीय संस्कृति को देन'' शीर्षक निबंध में डॉ. दरबारीलाल कोठिया ने लिखा है कि आ. कुंदकुंद के प्राकृत-वाङ्मय

का बहुभाग तात्त्विक निरूपण मौलिक है। स.सा. और नि.सा. में शुद्धात्मा का या तत्त्वों का विशद विवेचन उपलब्ध है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मो.पा. 4-7 में आत्मा के बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा तथा इनके स्वरूप का प्रतिपादन भी अद्वितीय है। नि.सा. 159 में व्यवहारनय से आत्मा को सर्वज्ञ और निश्चयनय से आत्मज्ञ निरूपित करना एक नया विचार है ऐसे ही गा. 160 में केवली के ज्ञान और दर्शन के युगपत् का सर्वप्रथम समर्थन मिलता है। पुद्गल के दो तथा छह भेदों का निरूपण गा. 20-24 में, परमाणु का स्वरूप गा. 26 में, कर्मभूमिज और भोगभूमिज ये मनुष्यों के दो भेद गा. 16 में उपलब्ध हैं। अध्यात्म विवेचन में आ. श्री ने जो उभयनयों का अवलंबन लिया है सो यह भी उनकी अपूर्व विचारणा है। इन नयों की प्ररूपणा हमें इससे पहले के साहित्य में नहीं मिलती है। आ. श्री की यह दृष्टि उत्तरकालीन ग्रंथकारों के द्वारा समादृत एवं पुष्ट हुई है और इसीसे उन्हें सर्वत्र पूज्यता प्राप्त हुई तथा मूलसंघ के संस्थापक घोषित किये गये। आ. कुंदकुंद ने जिनशासन के मार्गदर्शक के रूप में गृहस्थ और साधु जीवन का जो स्पष्ट तथा विशद विवेचन किया और श्रावकधर्म के बिना मुनिधर्म का पालन नहीं हो सकता क्योंकि उनके समय में लोग यह समझने लगे थे कि जैनधर्म नितांत निवृत्तिमार्ग है। श्री दलसुख मालवणिया ने ''आचारांग का श्रमणमार्ग'' पारिभाषित करते हुये लिखा है- ''ब्राह्मणों से श्रमण का मुख्य लक्षण व्यावर्तक है। श्रमणों के मार्ग में गृहस्थधर्म का त्याग करना अत्यंत आवश्यक समझा गया है। संभवतः श्रमणमार्ग में गृहस्थ वर्ग का कोई स्थान ही नहीं था'' परंतु आ. कुंदकुंद की दृष्टि से यह मेल नहीं खाता है। इसलिये उन्होंने श्रावक और मुनिधर्म का एक साथ व्यवहार और परमार्थ दोनों रूपों में वर्णन किया है। यद्यपि संपूर्ण जैन वाङ्मय में मोक्ष के लिये मुनि पद की आवश्यकता है और मोक्ष की प्राप्ति मुनिधर्म के सम्यक् पालन से ही संभव है परंतु श्रावकधर्म की उपेक्षा नहीं की गई है बल्कि श्रावकधर्म मुनिधर्म का साधक कहा गया है। इसी प्रकार सम्यक्त्व की विशुद्धि के बिना समस्त तत्त्वों को भी जान लेने से क्या? अनेक तप आदि क्रियायें भी शुद्ध सम्यग्दर्शन के बिना संसार की जनक हैं ऐसा जिनोपदेश है। कहा है-

किं जाणिऊण सयलं तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।
सम्मविसोहिविहीणं णाणतवं जाण भववीयं।।110।। रयणसार

ऐसे ही वनवास करना, कायक्लेश, उपवास, अध्ययन, मौन आदि कार्य समता रहित श्रमण के निष्फल हैं।

किं काहादि वणवासो कायकलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स।।124।। नि.सा.

श्री योगींद्रदेवः- गिरिगहनगुहाद्यारण्यशून्यप्रदेश-
स्थितिकरणनिरोधध्यानतीर्थोपसेवा।
प्रपठनजपहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धिः।
मृगय तदपरं त्वं भो प्रकारं गुरुभ्यः।।
दंसणरहिय जि तउ करहिं ताहं णिप्फल विणिट्ठ।।55।। सावयधम्म दोहा

मिथ्याज्ञानी मुनि संपूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता कर्मों को क्षय न करता हुआ सुख नहीं पाता।

मुनि रामसिंहः- **जसु मणि णाणु ण विप्फुरइ कम्महं हेउ करंतु।**
सो मुणि पावइ सुक्खु ण वि सयलइं सत्थ मुणंतु।।24।। पाहुडदोहा
मोक्खं असद्दहंता अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहं तस्स णाणं तु।।274।। स.सा.

सद्दहदि य पत्तयदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य।

धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं।।275।। स.सा.

मोक्षतत्त्व का अश्रद्धानी अभव्य जो अध्ययन करता है वह अध्ययन कुछ भी गुणकारी नहीं है क्योंकि वह ज्ञान का अश्रद्धानी है। यह अभव्यजीव भोग के निमित्त धर्म का श्रद्धान करता है, प्रतिति करता है, रुचि करता है और अनुष्ठान रूप से स्पर्श करता है परंतु कर्मक्षय में निमित्तभूत धर्म का श्रद्धानादि नहीं करता। कहा भी है - **एहु धम्मु जो आयरइ बंभणु सुहु वि कोइ।**

सो सावउ किं सावयहं अण्णु किं सिरि मणि होइ।।76।।

मज्जु मंसु महु परिहरइ संपइ सावउ सोइ।।77।। सावयधम्मदोहा

श्रावकधर्म के संबंध में जैनाचार्यों की दृष्टि व्यापक एवं उदार रही है। जो मद्य मांसादि का सेवन नहीं करता वह ब्राह्मण हो या शूद्र या जो भी हो वही श्रावक है।

उनके ही शब्दों में - **जोण्णाणं णिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं।**

अणुकंपयोवयारं कुव्वदु लेवो जदि विअप्पं।।251।। प्रवचनसार

एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।

चरिया परेत्ति भणिदा ता एव परं लहदि सोक्खं।।254।। प्र.सा.

आ. कुंदकुंद ने कहा है कि जैनी निरपेक्ष रूप से गृहस्थ और मुनिधर्म में स्थित हो करुणा भाव से दूसरों का उपकार करते हैं। यह प्रशस्त प्रवृत्ति मुनियों के अल्परूप में और गृहस्थों के उत्कृष्ट रूप में होती है गृहस्थ इसी शुभ प्रवृत्ति से उत्कृष्ट सुख प्राप्त करते हैं।

पुव्वं सेवइ मिच्छामल सोहण हेउ सम्मभेसज्जं।

पच्छा सेवइ कम्मामय णासण चरिय सम्मभेसज्जं।।62।। रयणसार

रायाइमलजुदाणं णियअप्पारूवं ण दीसए किं पि।

समलादरिसे रूवं ण दिस्सए जह तहा णेयं।।91।। रयणसार

"र.सा." में कर्मों की बीमारी को दूर करने का उपाय बताते हुये सबसे पहले मिथ्यात्वरूपी मल की शुद्धि के लिए सम्यक्त्वरूपी औषधि का सेवन करो। सुविज्ञवैद्य रोगी का मलशोधन करने के बाद ही दवा से लाभ पहुंचाता है। जैसे धुंधले दर्पण में अपना प्रतिबिंब स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता वैसे ही रागादिक मिथ्यात्वमल से मलिन रहते हुये आत्मा का शुद्धस्वरूप अनुभव में नहीं आता।

ज्ञान की सर्वश्रेष्ठता:- णाणेण झाणसिज्झी झाणादो सव्वकम्मणिज्जरणं।

णिज्जरणफलं मोक्खं णाणब्भासं तदो कुज्जा।।138।। र.सा. आ. कुंदकुंद का उद्देश्य है शुद्धात्म ज्ञान प्राप्त करना। वे कहते हैं कि ज्ञान से ध्यान की सिद्धि, ध्यान से संपूर्ण कर्मों की निर्जरा और निर्जरा का फल मुक्ति है। अतः मुक्ति प्राप्ति के लिये ज्ञानाभ्यास करना परमावश्यक है। यथा-

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदि।

जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।267।। मूलाचार

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।

जेण मित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।268।। मूलाचार

जिससे तत्त्वज्ञान होता है, जिससे चित्त का व्यापार रुक जाता है और जिससे आत्मा विशुद्ध होती है उसे जिनशासन में ज्ञान कहा गया है। जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिससे मोक्ष में प्रीति करता है, जिससे मित्रता प्राप्त होती है उसे जिनशासन में ज्ञान कहा गया है। कहा है-

यह रयणसार सम्यक्त्व, ज्ञान, वैराग्य और तप आदि का उत्पादक है। कहा है-

सम्मत्तणाण वेरग्गतवोभावं णिरीहवित्तिचरित्तस्स।

गुणसीलसहावं उप्पज्जइ रयणसारमिणं।।152।। रयणसार

तप रहित ज्ञान और ज्ञान रहित तप व्यर्थ है। दोनों से युक्त मनुष्य मोक्ष पाता है। कहा भी है-

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।

तम्हा णाणतवेण संजुत्तो लहइ णिव्वाणं।।59।। मोक्षपाहुड

जो जानता है सो ज्ञान है। ज्ञान आत्मा में रहता है। आत्मा से भिन्न अन्यत्र ज्ञान का अस्तित्व नहीं है अतएव जीव ज्ञान है। उनके ही शब्दों में —

जो जाणदि सो णाणं ण हवदि णाणेण जाणगो आदा।35।। पूर्वार्ध

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिधा समक्खादं।।36।। पूर्वार्ध प्र.सा.

धर्म का स्वरूपः- आ. कुंदकुंद की धर्म विषयक मान्यता बहुत गहरी और सुलझी हुई है। उन्होंने चारित्र और दानपूजा आदि को धर्म कहा है। चारित्र का तीनों स्तरों पर उनका विवेचन अपूर्व है। व्यवहार में सदाचार ही धर्म है। यदि सभी व्यक्ति दुराचारी हों तो समाज का टिकना असंभव है। समाज की रक्षा के लिये सदाचार अमोघ अस्त्र है। धर्म प्राणीमात्र को जीना सिखाता है। धर्म को सुनकर जीवन में उतारने वालों का धर्म ही जीवन है। श्रावक का जीवन आरामतलबी और ऐय्याश कभी नहीं हो सकता क्योंकि श्रावक 'श्रमण' की तैयारी का जीवन है। श्रावक का आदर्श श्रमण जीवन है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी घरद्वार छोड़कर साधु हो जाएं। वास्तव में विषयकषायों को जीतना ही साधकों का लक्ष्य होना चाहिये। 'श्रमण' दुर्धर तप करते हैं। श्रावकों को भी परम पुरुषार्थी होना चाहिये इसके बिना यथार्थ श्रावक नहीं है। साधु बनकर जो पाप करते हैं वे दुर्गति को प्राप्त होते हैं। आ. कुंदकुंद के शब्दों में -

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।

पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।78।। मो.पा.

द्रव्यमिथ्याचारित्री साधु नहीं हो सकते क्योंकि वे निर्मल आत्मा का ज्ञान, श्रद्धान नहीं करते अतः वे साधु बनके क्या कर सकते हैं?

अप्पाणं पि ण पिच्छइ ण मुणइ ण वि सद्दहइ ण भावेइ।

बहुदुक्खभारमूलं लिंगं घेत्तूण किं कुणई।।77।। रयणसार

ईमानदारी के साथ धनोपार्जक श्रावक अपनी शक्त्यनुसार जिनपूजा करता है, उत्तमपात्रों को दान देता है और सम्यक्त्व पूर्वक धर्म पालक को धार्मिक और मुक्तिमार्ग में लगा हुआ समझना चाहिए। कहा है-

जिणपूया मुणिदाणं करेइ जो देइ सत्तिरूवेण।

सम्माइट्ठी सावय धम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ।।12।। र.सा.

व्यवहार में चारित्र धर्म है, दया के बिना कोई धर्म नहीं हो सकता सो जहाँ दया है वहाँ धर्म है, विशुद्ध दया या अहिंसा समान अर्थ के प्रकाशक हैं, विश्वधर्मों में अहिंसा का ही सर्वाधिक महत्त्व बताया है, बिना अहिंसा के कोई वास्तविक धर्म नहीं हो सकता। निश्चय से समभावी होना चारित्र है इसके दो स्तर कहे जा सकते हैं, प्रथम स्तर की भूमिका में मनुष्य की दिनचर्या में क्रोध मान माया लोभ आदि कषायों की मंदता होनी चाहिये। द्वितीय भूमिका में शुद्धात्मानुभूति की ओर सदा लक्ष्य रहना चाहिए तथा परिणामों की विशुद्धता के साथ साथ मोही अज्ञानी जीवों की अशुद्ध व्यवहारिक क्रियाओं को देखकर उनकी उपेक्षा एवं निंदा न कर माध्यस्थ्यभाव रखना चाहिये।

तृतीय भूमिका में आत्मज्ञान हो जाने पर सदा विशुद्ध अखंड परमात्मा की स्वसंवेदनात्मक अनुभूति में लीन रहना चाहिए। इनका अलग अलग विस्तार से वर्णन आ. कुंदकुंद की रचनाओं में मिलता है वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि कौन साधु सम्यग्दर्शन का त्यागी होता है?

देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसायसंजुत्ता।

अप्पसहावे सुत्ता ते साहू सम्मपरिचत्ता।।93।। रयणसार

''रयणसार'' में मिथ्याबुद्धि के कारण मोह मदिरा में उन्मत्त हो अपने को भूलकर आत्मा के सच्चे स्वरूप को नहीं जान पाता है। कहा है -

मिच्छामइमयमोहासवमत्तो बोल्लए जहा भुल्लो।

तेण ण जाणइ अप्पा अप्पाणं सम्मभावाणं।।47।। रयणसार

ज्ञानी अपनी शुद्ध आत्मा में सदा लीन रहता है। यथा -

णिय सुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावत्थवज्जिओ णाणी।6 पूर्वार्ध। र.सा.

<u>लोककल्याण की भावना</u> **:- ण वि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।**

को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेव सावओ होइ।।27।। द.पा.

आ. कुंदकुंद और र.सा. में लोककल्याण की भावना स्पष्टतः परिलक्षित होती है। वे कहते हैं कि वचन प्रमाण और नय रूप हैं और नयप्रमाण मतमतांतर रूप हैं अतः जिनधर्म पालने के लिये मनुष्यों को रुकावट नहीं होनी चाहिए। मानव अपने गुणों के कारण सभी में श्रेष्ठ है। शरीर, कुल और जाति भी वंदनीय नहीं होते, गुणहीन श्रमण और श्रावक की कोई वंदना नहीं करता। उनके ही शब्दों में -

णहि दाणं णहि पूया णहि सीलं णहि गुणं ण चारित्तं।

जे जइणा भणिया ते णेरइया होंति कुमाणुसा तिरिया।।36।। रयणसार

आ. कुंदकुंद कहते हैं कि जो मनुष्य दानपूजा नहीं करते, शील और गुणों को नहीं पालते वे चारित्रवान नहीं होते। दुश्चरित्री मरकर नरकों में जाकर फिर वापिस आकर कुमानुष होते हैं। कहा है-

णवि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।

सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को।।38।। रयणसार

आ. कुंदकुंद ने विधि निषेध संबंधी जो भी बातें कही हैं वे केवल जैनों के लिये नहीं हैं वरन् प्राणी मात्र के लिये समान रूप से हितकारी हैं अतः यह नहीं समझना कि जो जैनधर्म मानता है वह सम्यग्दृष्टि है और जो नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है। वास्तव में यह भ्रम है। आ. कुंदकुंद ने जो योग्यायोग्य, नित्यानित्य, हेयोपादेय, सत्यासत्य, भव्याभव्य और अच्छे बुरे को नहीं जानता है सो उसे ही मिथ्यादृष्टि कहा है। यथा-

मोह ण छिज्जइ अप्पा दारुणकम्मं करेइ बहुवारं।

णहु पावइ भवतीरं किं बहुदुक्खं वहेइ मूढमई।।8।। रयणसार परिशिष्ट

मूढ़ प्राणी अपने मोह को नहीं छोड़ता अतः वह अनेक दारुण कर्मों को करता हुआ संसार में भटकता रहता है, संसार का अंत न पाता हुआ अनेक दुःखों को भोगता है। कहा है-

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।

तो रयणत्तय मज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं।।43।। रयणसार

आ. श्री ने गृहस्थ और साधु के लिये मिथ्याबुद्धि एवं अंधविश्वास त्याग करने का उपदेश दिया है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना नियम से सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र नहीं होता है सो रत्नत्रय में

सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है।

अन्य ग्रंथों में 'रयणसार' के संदर्भ :- न तो ''र.सा.'' की कोई प्राचीन संस्कृत टीका मिलती है और न ही 17वीं शताब्दी के पूर्व के ग्रंथों में उद्धरण ही मिलते हैं। भूधरदासजी के ''चर्चा समाधान'' में निर्माल्य के प्रसंग में ''र.सा.'' का उल्लेख मिलता है। उसमें पृ. 76 पर गाथा सं. 32, 33, 35 और 36 इन चारों के उद्धरण के साथ लिखा हुआ है ''दूजे देवधन के ग्रहण का फल आ.कुंदकुंद कृत र.सा. विषें कह्या है।

इसी प्रकार पं. दौलतराम कृत ''क्रियाकोष'' में पृ. 8 पर ''र.सा.'' की **गुण वय तव सम** 137 उद्धृत कर श्रावक की त्रेपन क्रियाओं का उल्लेख किया गया है। पं. सदासुखदासजी ने ''र.श्रा.'' की वचनिका में लिखा है ''कुंदकुंदस्वामी ने स.सा., प्र.सा., पं.का., र.सा., अ.पा. कूं आदि लेय अनेक ग्रंथ रचे ते अवार प्रत्यक्ष वांचने, पढ़ने में आवैं हैं।'' (पंचम अधिकार, पृ.236)

'र.सा.' की 128, 129 गा. द्वारा श्री कुंदकुंद ने कहा है कि परमात्मा स्वसमय है और क्षीण-मोही तक जीव ''परसमय'' हैं। स्व. आ. ज्ञानसागरजी म. ने 'स.सा.' की प्रस्तावना के अंतर्गत लिखा है इससे स्पष्ट है कि असंयत सम्यग्दृष्टि 'स्वसमय' नहीं है किंतु परसमय है।

पाठ संपादन पद्धति :- अभी तक प्रकाशित 'रयणसार' में दो तरह के पाठ मिलते हैं। एक के अनुसार पद्य सं. 167 और दूसरे के अनुसार 155 हैं। माणिकचंद ग्रंथमाला से प्रकाशित ''षटप्राभृतादि संग्रह'' में प्रथम पाठ देखने को मिलता है। दूसरा पाठ मुख्य रूप से 1907 में प्रकाशित पं. कल्लप्पा भरमप्पा के मराठी अनुवाद वाले संस्करण में मिलता है। इनके अलावा कन्नड़ में टी.वी. नागप्पा के द्वारा संपादित तथा चामराजनगर से प्रकाशित संस्करण में 165 गाथाएं मिलती है। कन्नड़ में प्रकाशित र.सा. की 167 गाथाओं में से आठवीं और 154वीं गाथाएं नहीं हैं। सन् 1942 में मैसूर से प्रकाशित श्री ब्रह्मसूरि शास्त्री के द्वारा संपादित ग्रंथ में पद्य संख्या 167 ही है। इसमें हिंदी अनुवाद और पद्यानुवाद भी है। पद्यानुवाद किसी पुराने कवि का लिखा हुआ है। हिंदी पद्यानुवाद की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर से प्राप्त हुई है। यह दि. जैन तेरहपंथी बडा मंदिर, जयपुर की वेष्टन सं. 1523 में पृ. 45-56 में संकलित है। इसमें पद्यानुवाद के कर्ता का नाम नहीं है। इसमें 156 पद्य हैं किंतु अंतिम दो प्रशस्ति के हैं इसलिये 154 पद्यों का यह अनुवाद है। इसकी रचना तिथि वि. सं. 1768 है। कहा भी है

कुंदकुंदमुनि मूल कवि गाथा प्राकृत कीन।
ता अनुक्रम भाषा रच्यौ गुन प्रभावना लीन।।155।।
सतरह सै अठसठि अधिक जेठ सुकुल ससिपूर।
जे पंडित चातुर निरखि दोष करै सब दूर।। 156।।

इति श्री रयणसार ग्रंथ यतिश्रावकाचार संपूर्ण समाप्तः। शुभं भवतु।।

श्री दि. जैन सरस्वती भंडार धर्मपुरा नया मंदिर दिल्ली में र.सा. की हस्तलिखित चार प्रतियाँ हैं। इनमें से एक प्रति में 154 गाथाएं हैं। इन्हीं गाथाओं का हिंदी पद्यानुवाद किया गया है। मूल प्रति और हिंदी पद्यानुवाद में केवल एक गाथा का अंतर है। मूल प्रति में 37वीं गाथा है पर हिंदी पद्यानुवाद में नहीं है तथा मूलप्रति में गा. सं. 101 नहीं हैं पर हिंदी में है। हिंदी पद्यानुवाद में उसकी संख्या 88 है। इससे निश्चित रूप में एक पाठ परंपरा का पता चलता है।

''र.सा.'' की कई प्रकाशित तथा हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इन सभी में 167 गाथाएँ हैं। वि. सं. 1977 में पं. पन्नालाल सोनी द्वारा संपादित एवं प्रकाशित ''र.सा.'' में 167 गाथाएँ हैं तथा हिंदी पद्यानुवाद और अन्य प्रतियों में तथा ताड़पत्रीय प्रतियों में भी गाथाओं के क्रम में कुछ भिन्नता है। इस ग्रंथ के संपादन की मूल में दो समस्याएं हैं। गाथाओं की मूल संख्या कितनी है

और उनका क्रम क्या है?

गाथा प्रक्षेपः- ग्रंथ संपादन के प्रारंभ में ही इस बात के बराबर संकेत मिलते रहे हैं कि इसमें कुछ गाथाएं प्रक्षिप्त हैं किंतु इसका क्या प्रमाण है? हमें इस बात का सर्व प्रथम संकेत तथा प्रमाण ''र.सा.'' की प्रकाशित पुस्तक की आठवीं गाथा में प्राप्त होता है। यह गाथा किसी भी प्राचीन हस्तलिखित प्रति में, ताड़पत्रीय प्रतियों में तथा हिंदी अनुवाद में भी नहीं है। गाथाओं की अंतरंग परीक्षा से भी स्पष्ट है कि इस रचना में यह गाथा प्रक्षेप परवर्ती काल की है। जितनी भी प्राचीन प्रतियां हमारे देखने में आई हैं वे प्रायः 152 से 155 गाथाओं तक की हैं किंतु परवर्ती काल में इनकी संख्या 156 से लेकर 170 तक पहुंच गई। गाथाओं की सबसे कम संख्या वीरवाणी विलास जैन सिद्धांतभवन मूडबिद्री की ताड़पत्रीय प्रति सं. 41 (कन्नड़) में 152 गाथाएं हैं। उसमें प्रकाशित प्रति की 167 गाथाओं में से 8, 34, 37, 46, 55, 57, 66, 67, 80, 83, 92, 111, 122, 123, 167 ये नहीं हैं। ब्यावर प्रति में गा. संख्या सबसे अधिक 176 मिलती है। यद्यपि प्रति के अंत में 155 संख्या दी हुई है पर 126 गाथा के अनंतर 5, 6 क्रम से 55 तक की संख्या मिलती है। इस प्रति में 154, 161, 52, 53, 54, 91, 96, 160, 162 गाथाओं की पुनरुक्ति मिलती है अतएव 167 संख्या ही है। दिल्ली के श्री दि. जैन नयामंदिर की ख और ग इन दो प्रतियों में 170 गाथाएं है परंतु क्रम संख्या की भूल इन प्रतियों में भी है। केवल ''ग'' प्रति में एक अधिक गाथा मिली है जो इस प्रकार है-

पूयसूयरसाणाणं खाराभियभक्खणाणंपि।
मणु जाइ जहा मज्झे बहिरप्पाणं तहा णेयं।।141।। पाठ अशुद्ध है।

आमेर शास्त्रभंडार तथा महावीरभवन जयपुर की हस्त. प्रति वेष्टन सं. 1810 को ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रति में अनेक प्रक्षिप्त गाथाएं हैं। यद्यपि इस प्रति में लेखन संवत् का उल्लेख नहीं हैं किंतु प्रति प्राचीन है। इसमें गाथाओं की कुल संख्या 155 है।

य प्रति जीर्ण और प्राचीनतम है। इस प्रति की एक विशेषता यह है कि इसमें गाथाओं की मूल संख्या 155 है पर हाशिए में किसी वाचक ने जहाँ तहाँ 12 गाथाएं अतिरिक्त लिख दी हैं जिन पर क्रम संख्या नहीं है। इससे स्पष्ट है कि रचना में क्षेपक गाथाएं किसीने मिश्रित कर दी है क्योंकि ताड़पत्रीय प्रतियों में अधिकांश गाथाओं की संख्या 155 है। मूडबद्री जैन मठ शास्त्रभंडार की ताड़पत्रीय प्रति सं. 336 में तथा मैसूर विश्वविद्यालय की कन्नड़ टीका सहित सं. 53 (क) में भी गाथाओं की संख्या 155 है। गाथाओं की सब से कम संख्या 152 वीरवाणीविलास जैनसिद्ध ांत भवन मूडबद्री की प्रति में है। इसी प्रकार मूडबद्री जैन मठ की प्रति सं. 815 में भी गाथाओं की संख्या 152 है। इस प्रकार अधिकतर प्रतियों में उपलब्ध गाथा संख्या और पाठ संपादन की विधि से निर्धारित गाथा की संख्या से 155 निश्चित की गई है।

इस ग्रंथ के संशोधन में उपयोगी हस्तलिखित प्रतियों का परिचय इस प्रकार है —

अ प्रति - यह आमेर शास्त्रभंडार, जयपुर स्थित प्राचीनतम प्रति है। वि.सं. 1810।10+4।। पत्र सं.10 गाथा सं.155 हैं। इसमें 170 गाथाओं में से 8, 17, 34, 37, 46, 55, 57, 62, 63, 66, 67, 96, 111, 122 और 123 गाथाएं नहीं हैं।

श्री दि० जैन सरस्वती भंडार धर्मपुरा नया मंदिर दिल्ली में ''र.सा.'' की 4 हस्तलिखित प्रतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

क प्रति- सं. 32, पत्र सं. 8, गाथा सं. 170 प्रति नवीन है।

ख प्रति- सं. 32, पत्र सं. 8, गाथा सं. 170 प्रति नवीन है।

ग प्रति - सं. 32, पत्र सं. 10, गाथा सं. 170 प्रति नवीन है।

घ प्रति- सं. 32, पत्र सं. 12, गा. सं. 154 प्रति प्राचीन है। र.सा. की 170 गा. में से 8, 34, 46, 53, 54, 55, 57, 60, 63, 66, 67, 101, 111, 122, 123, 136 ये 16 गा. नहीं है।

प- प्रति श्री दि. जैन पाटोदीमंदिर जयपुर। वेष्टन सं. 946, पत्र. सं. 10, गाथा सं. 153, संस्कृत टिप्पणी सहित ग्रंथ में गा. सं. 8, 17, 34, 37, 46, 55, 57, 63, 66, 67, 96, 119, 122, 123 नहीं है।

फ- प्रति श्री दि. जैन तेरहपंथी बड़ामंदिर जयपुर। वेष्टन सं. 1522। पत्र सं. 7-17। गा. 155 प्रति प्राचीन है। इसमें गा. सं. 8, 34, 37, 46, 57, 63, 66, 67, 96, 111, 122, 123 नहीं है।

श्री दि० जैन तेरहपंथी बड़ा मंदिर जयपुर में 3 अन्य हस्त. प्रतियां भी हैं जो वि.सं. 1883 की लिखी है। इनमें से एक प्रति में 155 हैं और अन्य दो में 170 गाथाएं हैं।

ब- प्रति ऐ. पन्नालाल दि. जैन सरस्वतीभवन ब्यावर। क्रम सं 3591-839। पत्र सं. 11 गाथा सं. 175 ले. सं. वैशाख वदी 8 शनिवार वि. सं. 1995।

इस प्रति में कई गाथाओं के लेखन में पुनरावृत्ति हुई है। दो बार लिखी जाने वाली गाथाओं की संख्या इस प्रकार है- 52, 53, 54, 60, 91, 122, 126, 154, 166, 167, 168, 171, 173

इनमें से 126 नं. की गाथा का उल्लेख 3 बार मिलता है ऐसे ही गाथाओं की कुल संख्या 161 है।

म प्रति - मूडबद्री जैनमठ का भंडार, ताड़पत्र प्रति क्र.सं. 336, गा. सं. 155

इस प्रति में मुद्रित 167 गाथाओं में से निम्न लिखित 12 गाथायें नहीं हैं।

8, 34, 37, 46, 55, 57, 66, 67, 111, 122, 123 वस्तुतः यह संख्या 11 ही है।

व प्रति - वीर वाणी विलास जैन सिद्धांत भवन, मूडबद्री। क्र.स. 41। गाथा सं. 155 इस प्रति में मुद्रित 167 गाथाओं में से निम्नलिखित 12 गाथाएं नहीं है-

8, 34, 46, 55, 57, 66, 67, 83, 111, 122, 123।

यद्यपि गाथाओं की संख्या 152 है पर आगे पीछे होने से संख्या में कुछ गड़बड़ी प्रतीत होती है। पाठ भेद के अनुसार केवल 12 गाथाएं कम हैं।

इसी प्रकार उत्तर भारत की प्रतियों में भी क्रम संख्या ठीक न होने से लोगों को भ्रम हुआ प्रतीत होता है। कई प्रतियों में भीतर की क्रम संख्या कम या अधिक हो गई है। जब हमने प्रतियों का अंतरंग परीक्षण किया तो 170 गाथा वाली प्रतियों जैसी ही 175 गाथाओं वाली प्रतियां है। उसमें एक ही गाथा कहीं कहीं एक से अधिक बार दुहराई गई है। गाथाओं की पुनरावृत्ति होने से भी बड़ा भ्रम फैला है।

यद्यपि "र.सा." की कई प्रतियाँ दक्षिण से उत्तरभारत तक के अनेक शास्त्रभंडारों में हैं जिनको देखकर यह कहा जा सकता है कि इस ग्रंथ के पठन पाठन का प्रचलन रहा है और इसलिये कोई कारण नहीं है जो इसकी प्रामाणिकता में कोई संदेह हो किंतु असुविधावश उन प्रतियों को प्राप्त करने और देखने का सुयोग नहीं मिल सका है। हमारी जानकारी में इसकी दो प्रतियां क्रम सं. 282 और 286 जैनमठ श्रवणबेलगोल में हैं। इसकी एक प्रति विश्वविद्यालय मैसूर में क्रम सं. 53 क उपलब्ध है जिसमें गाथा सं. 155 है। जैन मठभंडार मूडबद्री में इसकी एक अन्य प्रति क्रम सं. 815 है जिसमें गाथाओं की संख्या 152 है। वहीं पर क्रम सं. 186 की प्रति में गाथाओं की संख्या 156 बताई है। ये सभी ताड़पत्रीय प्रतियाँ हैं। इनकी लिपि कन्नड़ है। क्रम सं. 815 वाली प्रति में कन्नड़ टीका भी है किंतु उसमें प्रारंभिक पत्र नहीं है।

श्री दि. जैन पंचायतीमंदिर दिल्ली में भी इसकी एक हस्त. प्रति थी जो एक बार देखने के

पश्चात् पुनः मिलान के लिये नहीं मिल सकी। इसमें ये गाथाएं नहीं हैं। 8, 42, 46, 47, 52, 53, 57, 60, 63, 66, 67, 91, 96, 101, 102, 108, 109, 110, 111, 113, 125, 150, 151, 152 किंतु यह संख्या सही नहीं है। अंतरंग परीक्षा से ही इसका निश्चय किया जा सकता है। अंत में हिंदी पद्यानुवाद को भी ध्यान में रखा गया है। हिंदी के पद्यानुवाद में इसकी संख्या 154 है। इसमें जिन गाथाओं का पद्यानुवाद नहीं है उनकी कुल संख्या 14 है- 8, 34, 37, 46, 55, 57, 60, 63, 66, 67, 111, 122, 123, 136। हिंदी पद्यानुवाद को देखने से पता चलता है कि लगभग ढाई सौ वर्षों के पूर्व तक परंपरा ठीक चल रही थी। आ. कुंदकुंद की रचना का भाव भी बराबर समझते थे किंतु बीच में पठन पाठन में शिथिलता आने से पाठ भेदों में गड़बड़ी, लिपि में अशुद्धियों की अधिकता और प्रक्षेपक गाथाओं का समावेश मिलता है।

प्रस्तुत संस्करण में उक्त सभी बातों को ध्यान में रखकर गाथाओं का विचार किया गया है। यथासंभव मूलानुसार संशोधन किया है। प्रामाणिकता के लिये नाना पाठों का भी यथास्थान निर्देश किया है। परिशिष्ट में उद्धरणों से भी स्पष्ट है कि रचना आगमानुकूल है। विस्तार के भय से कुछ ही संदर्भों का चयन किया गया है। अतः संदर्भों का संकलन कर आगम की प्रामाणिक परंपरा का उल्लेख किया जा सकता है जो एक स्वतंत्र अनुसंधान का विषय है।

हिंदीभाषानुसार पाठकों के पठनार्थ ''मिथ्यात्व'' और ''सम्यक्त्व'' इन पारिभाषिक शब्दों के पर्याय रूप में ''अविश्वास'' और ''विश्वास'' शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। आशा है कि पाठक इनको मान्यता देंगे। इनसे अर्थज्ञान में कोई कमी नहीं आती है। इनकी अर्थवत्ता में सामान्य भाव निहित है। कुछ अन्य शब्दों के पर्याय रूप में ''नय'' प्रमाणांश ''निक्षेप'' आरोप ''मूढ़ता'' लोकरूढ़ि, अनायतन कुसंसर्ग व्यसन कुटेव श्रावक सद्गृहस्थादि उदाहृत है।

श्री माणिकचंद्र दि. जैन ग्रंथमाला और परमश्रुत प्रभावक मंडल, बम्बई के प्रकाशनों के बिना सोनगढ़ से अनेक ग्रंथों का प्रकाशन हुआ है। आ. कुंदकुंद परम आध्यात्मिक संत थे। उनकी दृष्टि परमार्थ की ओर थी किंतु वे व्यवहार को सर्वथा हेय नहीं समझते थे। हमारे विचार से र.सा. में श्रावकों की 53 क्रियाओं, दानपूजादि का विषय भी उनकी अन्य रचनाओं में प्राप्त होता है फिर क्या कारण है कि र.सा. को कुछ लोग प्रामाणिक नहीं मानते? किंतु अपने विचारों की छानबीन करने का कोई समय नहीं निकाल सका था। इसी बीच इंदौर से विहार करते हुये पूज्य मुनिश्री विद्यानंदजी म. का निमच पदार्पण हुआ और तभी प्राकृत भाषा के कुछ शब्दों के संदर्भ में चर्चा हुई। धीरे धीरे शब्दों की चर्चा ने वार्ता का रूप ले लिया। मुनिश्रीजी की अनुसंधान विषयक रुचि तथा ध्यानाध्ययन की प्रवृत्ति ने मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। वस्तुतः र.सा. का संपादन और अनुवाद का यह कार्य पूज्य मुनिश्रीजी की सतत प्रेरणा और आशीर्वाद का फल है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है इसलिये हमारे सामने एक शुद्ध संस्करण तैयार करने की समस्या थी ''र. सा.'' का प्रारंभिक कार्य पूज्य मुनिश्रीजी के निर्देशन में प्रारंभ हुआ था किंतु इसकी मूल समस्या की ओर मुनि श्री का ध्यान हमने एक लेख लिखकर दिलाया था, जो ''अनेकांत'' (25, 4-5, पृ. 151) में र.सा. आ. कुंदकुंद की रचना'' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। हमने अपनी समझ से तथा उत्तरभारत की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर जो पाठ निश्चित किये थे उनका मिलान स्वयं मुनि श्रीजी ने श्री महावीरजी में कन्नड़ की मुद्रित प्रति के आधार पर किया था। तदनंतर पाठभेद की प्रक्रिया उतनी जटिल नहीं रह गई। दक्षिण भारत की प्रतियों से मिलान करने के लिये हमने पं. के. भुजबली शास्त्री से निवेदन किया। उन्होंने समय समय पर हमारी जो सहायता की तथा श्री पं. देवकुमार जैन मूडबद्री ने श्री वीरवाणी विलासजैन सिद्धांतभवन मूडबद्री तथा जैनमठ का भंडार मूडबद्री की ताड़पत्रीय प्रतियों का मिलान कर हमारी जो सहायता की उन सभी के लिये हम बहुत आभारी हैं मठ के भंडार से प्रति प्राप्त करने में पं. नागराजजी शास्त्री और ट्रस्टी श्रीमान बी. नागकुमारजी सेठी की कृपा के लिये कृतज्ञ हैं। इसी प्रकार डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल

जयपुर ने प्रति प्रदान कर और पं. हीरालालजी सिद्धांत शास्त्री ने ब्यावर भंडार से हस्तलिखित प्रति भेज कर जो सहायता प्रदान की और समय[2] पर पं. मूलचंद्रजी शास्त्री से जो लाभ मिला है तदर्थ आभारी हैं। पूज्य मुनि श्रीजी का यदि आशीर्वाद प्राप्त न हुआ होता तो यह कार्य संपन्न होना कठिन था। वास्तव में यह उनके आशीर्वाद का ही फल है। स्वस्ति श्री चारुकीर्ति भट्टारकजी के परम स्नेह व सौजन्य से प्राप्त ताड़पत्रीय चित्रों के लिये कृतज्ञता ज्ञापन करना उपचार मात्र है। श्रद्धेय पाटोदीजी तथा माणिकचंद्रजी पांड्या से प्राप्त सतत स्नेह तथा सहयोग को व्यक्त करने के लिये शब्द सीमित प्रतीत होते हैं। वास्तव में उनके अध्यवसाय तथा सद्प्रयत्न से एवं डॉ० नेमीचंदजी जैन की सौंदर्यमूलक दृष्टि से यह रचना इस नयनाभिराम रूप में प्रकाशित हो सकी है। अंत में नई दुनिया प्रेस वालों का आभार है जिन्होंने कम समय में इस रूप में प्रकाशन कर इसे सुलभ बनाया।

प्रस्तावना लेखक
देवेंद्रकुमार शास्त्री।
संशोधन और संवर्धन कर्ता
आ. पार्श्वसागरजी महाराज
कोटला वालों के
प्रथम शिष्य
आ.वासुपूज्यसागरजी

श्री पार्श्वनाथ जयंती,
पौष कृ. 10 वीर निर्वाण सं. 2500

संक्षिप्त शब्द संकेत सूची

आ.	आचार्य
क्र.	क्रमांक
गा.	गाथा
पंचा.	पंचास्तिकाय
प्र.सा.	प्रवचनसार
भा. पा.	भावपाहुड
मो. पा.	मोक्षपाहुड
द.पा	दर्शनपाहुड
स.सा.	समयसार
र.सा.	रयणसार

मोहंधयार पडियाण जणाण विसंजुत्ताण।
णिम्मलणाणवियासे दिणयर किरणोहसब्भासो।।
णाणं णरस्स सारो भणियं खलु कुंदकुंदमुणिणाहे।
सम्मत्त रयणसारो आलोयदु सव्वदा लोये।।

मोहांधकार में पड़े हुए और विषय वासनाओं से लिपटे हुए अज्ञानी जनों के लिये सूर्य की किरणों की भांति निर्मल ज्ञान का प्रकाशक तथा ज्ञान ही जिसमें मनुष्य का सर्वोत्तम है ऐसे लोक में भगवत् कुंदकुंदाचार्य का कहा हुआ सभी रत्नों में श्रेष्ठ सम्यक्त्व रूप यह 'रयणसार' सदा आलोकित रहे।

अनुक्रमणिका
अ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
23	अनिबद्ध मंगल किसे कहते	92
25	अचित्त मंगल किसे कहते	93
37	अतिशय क्षेत्र मंगल किसे	94
85	अठारह दोषों में से कौन से	100
102	अयोगी सकल परमात्मा को	103
174	अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान	113
187	अज्ञानांधकार किसे कहते	115
191	अभिन्न गुरु किसे कहते हैं	115
197	असंयमी गृहस्थ को धर्म	116
212	अनुराग प्राप्त वस्तु में	119
238	अनायतन किसे कहते हैं	123
250	अनंतानुबंधी आदि कषायों	124
251	अतिक्रम दोष किसे कहते	125
253	अतिचारदोष किसे कहते	125
254	अनाचार दोष किसे कहते	125
327	अनाज्ञाकारी होने से	138
339	अरूपी पदार्थ कौन कौन	140
345	अध्ययन किसे कहते हैं	140
349	अनुल्लंघ्य किसे कहते हैं	141
350	अदृष्टेष्ट किसे कहते हैं	141
353	अभव्य और दूरानुदूर	141
361	अनुप्रेक्षा स्वाध्याय किसे	142
368	अन्यमतियों के शास्त्रों का	143
390	अशुद्ध औषधि किसे कहते	146
392	अशुद्ध औषधिदान क्यों	146
399	अभयदान किसे कहते हैं	147
401	अभयदान क्यों देना	148
437	असंयमी जीवों की	154
438	असंयम कितने प्रकार का	154
450	अरिहंत प्रभु को कौन सा	156
464	अशुद्ध मन किसे कहते हैं	158
510	अपात्र किसे कहते हैं	165
530	अबद्धायुष्क दाता को	168
593	अतिशयक्षेत्र किसे कहते	177
617	अनाज्ञाकारी पुत्र प्राप्ति	180
644	अर्धचक्रवर्ती पद क्या सुपात्र	184
654	अभव्यसम भव्य किसे कहते	186
709	अतिथिसंविभाग...कैसी	194
734	अविवेकतापूर्वक आहार देने	198
761	अनेकवस्त्रधारी जैन मुनियों	203
817	अपने गुणों का वखान	211
819	अयशकीर्ति का उदय चौथे	211
838	असंयमी गृहस्थों को काले	214
841	अविवेकीदातागण पात्र विशेष	215
857	अपने पक्ष के अनुसार दिन..	217
922	अभव्यजीव व्रतादि का पालन	226
930	अणुव्रती कितने प्रकार के	227
936	अणुव्रत और महाव्रत	228
965	अव्रती और अणुव्रती	233
993	अचेतन वस्तुओं के समान	236
1056	अल्परक्तचाप...किसे कहते	246
1066	अपस्मार, हिस्टीरिया	248
1070	अजीर्णरोग किसे कहते हैं	249
1076	अनंतानुबंधी कषाय का	250
1087	अव्रती गृहस्थों में मूलगुणों	252
1088	अव्रती गृहस्थों में...अभाव	252
1089	अव्रतियों में....विशुद्धि कैसे	252
1090	अणुव्रती और महाव्रतियों के	252
1104	अचारित्री और कुचारित्री	254
1113	अकार्य किसे कहते हैं?	256
1116	अकार्य समझकर..सकता	256
1125	अश्रेय किसे कहते हैं	257
1135	अतत्त्व किसे कहते हैं	258
1137	अतत्त्व क्या द्रव्य रूप है	258
1138	अतत्त्व का क्या स्वतंत्र	258
1140	अधर्म किसे कहते हैं	259
1147	अज्ञानी को मिथ्यादृष्टि	260
1150	अयोग्य किसे कहते हैं	260
1154	अनित्य किसे कहते हैं	260
1160	असत्य किसे कहते है	261
1165	अभव्य किसे कहते हैं	261
1172	अनुमानज्ञान किसे कहते	262
1177	अनिष्ट किसे कहते हैं	262
1214	अबुद्धि पूर्वक दुर्भावना	267
1227	अशुभतैजस समुद्घात	268

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1239	अनिष्ट से क्या हानि है	270
1245	असूयावान, ईर्ष्यालू व्यक्ति	271
1260	अपराधी किसे कहते हैं	272
1263	अपराधी के सामने आने	273
1264	अपराधी युद्ध क्यों	273
1286	असंख्यात किसे कहते हैं	276
1287	अनंत किसे कहते हैं	276
1357	अनिह्नवाचार किसे कहते	284
1360	अर्थाचार किसे कहते हैं	284
1417	अर्थपर्याय और व्यंजन...के	292
1418	अर्थपर्याय और...पर्याय किसे	292
1450	अकामनिर्जरा और सविपाक	295
1491	अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान	301
1512	अव्रती अणुव्रती विषयसेवते	303
1527	अनुभव किया है इस पद से	305
1550	अवधिज्ञान और....नहीं होता	308
1552	अव्रती सम्यग्दृष्टियों के	309
1553	अव्यक्त रूप में धर्मध्यान	309
1571	अशुभभाव और शुभभाव	311
1572	अशुभभावों का फल क्या	311
1574	अशुभभावों को जानकर	311
1575	अशुभ भावों से तिर्यंचगति	312
1578	अनुभागबंध किसे कहते	312
1580	अशुभभावों से कहाँ कहाँ	312
1581	अशुभभाव और शुभभावों	312
1609	अभावात्मक अज्ञान में	316
1613	अशुभ पक्षपाती किसे कहते	317
1624	अशुभ लेश्या किसे कहते	318
1630	अशुभगति कौन सी है	319
1643	असूया किसे कहते	321
1676	अशुद्ध जीवद्रव्य किसे कहते	325
1681	अधर्मद्रव्य किसे कहते	325
1699	अस्तिकाय किसे कहते	327
1706	अजीवतत्त्व किसे कहते हैं	328
1716	अजीवतत्त्व के भेद और	329
1717	अजीवाश्रव किसे कहते हैं?	329
1718	अजीवबंध किसे कहते हैं?	329
1719	अजीवसंवर किसे कहते हैं?	329
1720	अजीवनिर्जरा किसे कहते हैं?	329
1721	अजीवमोक्ष किसे कहते हैं?	329
1754	अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं	333
1755	अनित्यभावना किसे	333
1759	अनित्यभावना के चिंतन	333
1760	अशरणभावना किसे कहते	334
1765	अधःप्रवृत्त संक्रमण किसे	334
1777	अन्यत्व भावना किसे कहते	336
1778	अन्यत्व भावना का चिंतन	336
1779	अशुचिभावना किसे कहते	336
1780	अशुचिभावना का चिंतन	336
1807	अविपाक निर्जरा किसे कहते	339
1808	अकाम निर्जरा किसे	339
1813	अनादिअनिधन किसे कहते	340
1814	अनादिअनिधन भंग क्या	340
1815	अनादिअनिधन भंग द्रव्य	340
1816	अनादि को समझाने	340
1824	अपराध फल प्रदाता	341
1858	अभीक्षण ज्ञानोपयोग	345
1875	अर्हद्, अर्हद्भक्ति और.भावना	347
1876	अरहंत अरिहंत और अरुहंत	347
1899	अभक्त और भक्त मनुष्यों	350
1947	अभव्यजीवों के और मंद	356
1977	अव्रतियों के क्षमादि धर्मों का	359
2011	अपहृत संयम किसे	362
2021	अभ्यंतर तप किसे कहते हैं	363
2027	अभ्यंतर तप के अनेक भेदों	364
2028	अभ्यंतर सभी तपों से	364
2029	अभ्यंतर सभी ध्यान	364
2031	अभ्यंतर तप रूपी ध्यान शुभ	364
2032	अभ्यंतर सभी शुक्लध्यान	364
2040	अव्रती अणुव्रती तप करते हैं	365
2143	असंयम के साथ कौन कौन	378
2144	असंयम के साथ चारित्र	378
2145	असंयम के साथ विशेष	378
2151	असंयम के साथ में क्या	378
2153	असंयम के साथ में विशेष	379
2186	असाताकर्मोदय से	383
2190	असंयमी या देशसंयमी जीव	384
2203	अज्ञानी की अपेक्षा	386
2207	अविनयी जीव और विनय.	387
2235	अभव्यजीवों को क्या ये	390

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2254	अखंड ब्रह्मचर्यव्रत पालन	393
2283	अन्यथा उपयोग करना	396
2284	अज्ञानीजीव विषयों में	397
2285	अज्ञानीजीव को समझाने	397
2340	असत्प्रलापियों के ऊपर	405
2348	अनेक मुंडनों के बाद में	406
2375	अपने से बड़ों को न मानने	409
2377	अशुभगति और अशुभायु	409
2378	अपने से बड़ों को,	409
2388	अनुष्ठान से मतलब	411
2391	अन्यसंघी साधुओं की	411
2397	अपने ही शिष्य को संबोधन	412
2399	अधोगति तिर्यग्गति और	413
2436	अभयदान आदि सभी दान	417
2453	अभक्त को और धर्म निंदक	419
2468	अप्रमत्त वीतरागी जीव	421
2476	अभी अनेक जैनों को	422
2486	अभ्यंतर वृत्तिपरिसंख्यान	423
2490	अवमौदर्य तप किसे कहते	424
2494	अनशन और उपवास	424
2517	अरिहंत सिद्ध सर्वव्यापी	427
2553	अनंतसुख स्वरूपी	433
2554	अनंतसुख.....भावना कौन	433
2555	अनंतसुख की....गृहस्थ	433
2562	अयोगकेवली को और क्या	434
2568	अभव्य जीवों के कौन सा	434
2616	अन्यमतिसाधुओं को	441
2621	अज्ञानी किसे कहते हैं	441
2631	अभेदज्ञान प्राप्त करने के	443
2657	अध्ययन का व्युत्पत्ति परक	446
2659	अध्ययन को ध्यान क्यों	446
2661	अध्ययन करते समय मन	447
2662	अध्ययन करते....कषायों	447
2665	अध्ययन कौन सा ध्यान	447
2666	अध्ययन और स्वाध्याय	447
2748	अतत्त्व का चिंतन मुनि क्यों	457
2749	अतत्त्व का स्वतंत्र...कैसे	457
2765	अध:कर्म किसे कहते हैं	460
2770	अध:कर्म दोष केवल आहार	460
2775	अध:कर्म के साथ आदि	461
2776	अध:कर्म का त्यागी हो	461
2810	अशुभध्यानाध्ययन किसे	467
2821	अशुभ तैजसऋद्धि का	468
2828	अशुभतैजस समुद्घात किसे	469
2856	अनेकजन कहते हैं कि	473
2887	अपनी आत्मा का निर्मल	478
2919	असूया किस कर्मोदय से	482
2924	अपराधी से झगड़ा करने	482
2925	अपराधी और निरपराधी में	483
2936	अनादिमिथ्यादृष्टि और	484
2937	अर्धपुद्गल परीवर्तन काल	484
2956	अव्यक्त मिथ्यादृष्टि गुरु संसार	487
2957	अव्यक्त मिथ्यागुरु जलयान	487
2971	अप्रमत्तपना किस गुणस्थान	489
2995	अन्याय अभक्ष्य सेवियों को	492
2996	अव्रती सम्यग्दृष्टि को संकल्पी	493
2997	अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ	493
2999	अशुभारंभ किसे कहते	494
3024	अपहरण किसे कहते	498
3046	असूया का क्या फल है	502
3084	अब राजा तो रहे नहीं	507
3102	अठारह प्रकार की वर्गणायें	510
3122	अनादिकालीन संस्कार	514
3127	अध्यात्ममार्ग को केवल	515
3130	अध्यात्ममार्ग अकर्तावादी	515
3153	अपने आपकी प्रशंसा	519
3161	अनगार और साधु	520
3177	अध्ययन के भेद और नाम	522
3194	अध्ययन और आहार क्यों	524
3204	अक्षमृक्षणवृत्ति किसे कहते	525
3219	अनेक घरों से लाकर	528
3220	अभिघट दोष किसे कहते	529
3243	अजीव पुद्गल कितने तत्त्व	532
3286	अशुद्धाहार किसे कहते हैं	538
3288	अशुद्ध औषधि ग्रहण करने	538
3291	अनंत परमाणुओं से	539
3298	अग्निसेवन में कैसे आती	540
3303	अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति	541
3386	अरिहंतों की द्रव्य गुण और	551
3387	अरिहंतों को जानने से	551

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3388	अपना प्रयोजन सिद्ध न	551
3394	अरिहंतादि चार परमेष्ठि	552
3397	अपकार किसे कहते हैं	552
3431	अध्ययन के दो भेद कौन	557
3455	अथवा इन चार चरणों	560
3469	अमूर्तिक वस्तुओं को हाथ	562
3474	अजीवतत्त्व के 6 भेद	563
3476	अतिसंक्षेप से तत्त्व कितने	563
3564	अमेध्य किसे कहते हैं	576
3572	अशुभ स्वप्न किसे कहते	577
3577	अशुभ स्वप्न से क्या हानि	577
3648	असंसार किसे कहते हैं	587
3671	असत्विश्वास को मिथ्या	590
3712	अयोगकेवली परमात्मा किसे	595
3736	अशुभ मनकरण किसे	598
3737	अशुभ वचनकरण किसे	598
3738	अशुभ कायकरण किसे	598
3744	अस्सही किसे कहते हैं	599
3753	अशुभ से निवृत्ति और शुभ	600
3780	अभ्यंतर परिग्रह किसे कहते	603
3829	अवसर्पिणी काल किसे कहते	610
3840	अवसर्पिणी काल दोष से	611
3868	अणुव्रत किसे कहते हैं	616
3871	अणुव्रतों के स्वामी कौन कौन	616
3873	अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं	616
3874	अपराधी जीवों की विराधना	616
3879	अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं	617
3881	अचौर्याणुव्रती मोक्षमार्गी	617
3885	अकेले की रतिक्रीड़ा को	618
3888	अविवाहित अपने से छोटों को	618
3897	अनर्थदंड त्याग व्रत किसे	619
3901	अपध्यान अनर्थदंड और	619
3904	अनर्थदंड के क्या इतने	619
3912	अतिथिसंविभाग किसे कहते	620
3913	अतिथि को कालवाची	620
3914	अतिथि के लिए किस किस	621
3948	अर्थसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे	624
3949	अवगाढ़ सम्यग्दर्शन किसे	624
3971	अकाम...स्वामी कौन कौन हैं	627
4005	अशुद्ध सम्यग्दर्शन किसे	631
4009	अगाढ़ दोष किसे	632
4017	अन्यदृष्टि प्रशंसा अतिचार	633
4018	अन्यदृष्टिस्तव किसे कहते हैं	633
4019	अन्यदृष्टि प्रशंसा...दृष्टि स्तव	633
4023	अशुद्ध सम्यग्दर्शन क्या	634
4024	अशुद्ध सम्यग्दर्शन...संसार	634
4034	अलंकार किसे कहते हैं	636
4035	अलंकार ज्ञान किसे कहते हैं	636
4067	अवसन्न मुनि किसे कहते हैं	640
4072	अनादिसादिकालीन कर्मों	641
4166	अध्येता और श्रोता को	656
4167	अध्येता श्रोता वक्ता आदि	656
4205	अप्रत्याख्यानावरण कषाय का	664
4212	अपध्यान अनर्थदंड के	665

आ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
100	आचार्य श्री ने किस	102
237	आपकी चर्या और स्वरूप	122
307	आहारार्थ पानी भरना,	134
315	आचार्य श्री ने दान पूजा ये	136
323	आजकल जैनों में चारित्र	137
333	आर्तरौद्रध्यान करना भी	139
347	आप्त किसे कहते हैं	140
357	आगम और आगमाभास	142
362	आम्नाय स्वाध्याय किसे	142
366	आ. श्री कुंदकुंद को ने	142
367	आजकल मुनिजन प्रतिष्ठायें	143
385	आहार किस क्रम से लेना	145
386	आहारपानी कब और	146
396	आजकल कॉलेज आदि में	147
397	आजकल धर्मशिक्षा का	147
413	आवासदान क्यों देना	150
434	आत्मबल मनोबल के	153
484	आजकल आहारदान के	161
485	आजकल...सुने जा रहे हैं	162
486	आजकल....देखी जाती है	162
487	आजकल....कैसे होती है	162
488	आजकल......से होती है	162
492	आहारदान दाता कैसा	163
594	आजकल अतिशय क्षेत्रों	177

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
689	आजकल फेशन की	190
704	आहार के लिए तैयार की	193
719	आहार के बाद आहार	195
736	आचार्य श्री....वर्णन किया	199
738	आचार्य श्री ने आहारदान	199
743	आहार किस प्रकार का	200
827	आजकल इन दोनों प्रकार	212
861	आत्मकल्याण या लोकोत्तर	217
865	आ. श्री....क्यों नहीं कहा	217
934	आजकल व्रतों की प्रवृत्ति	228
939	आ. श्रीजी ने पाँच पापों	229
943	आजकल अनेक जैनी	229
999	आचार्य श्री ने जिनेंद्र के	237
1023	आबाधा किसे कहते हैं,	241
1026	आज वर्तमान में ये दोनों	241
1027	आप इस विषय को	241
1050	आम्लपित्त रोग किसे	246
1098	आजकल भाषा के	253
1117	आजकल व्यक्ति शराब	257
1143	आत्मा में युगलधर्म कितने	259
1218	आजकल लौकिक प्राणी	267
1232	आयु....रौद्रध्यान है क्या	269
1233	आयु बंध का कारण	269
1234	आयुकर्म के बंध का मुख्य	269
1236	आयु के बंध योग्य 26 अंश	269
1258	आध्यात्मिक दृष्टि में भंडण	272
1280	आचार्य श्री ने इन तिर्यंचों	275
1291	आहारसंज्ञा किसे कहते हैं	276
1312	आत्मा अनंत धर्मात्मक	279
1314	आज वर्तमान में प्राणी	279
1322	आजकल मनुष्यों ने अपनी	280
1369	आचार्यपद उपाधि उपधि	285
1394	आ.....उदाहरण क्यों दिया	289
1465	आजकल तो बहुत जैनी	297
1489	आर्तध्यान किसे कहते हैं	300
1507	आदेश और उपदेश में क्या	303
1542	आहार दानदाता सदाचार	307
1543	आज जिनमुद्राधारी अनेक	307
1567	आगमाज्ञा न मानने वाले	310
1631	आर्तध्यान को अशुभ क्यों	319
1637	आर्तध्यान की उत्पत्ति का	321
1638	आर्तध्यान की...अंतरंग	321
1682	आकाशद्रव्य किसे कहते	325
1733	आदि के तीन ध्यानों को	330
1734	आदि के दो आर्तरौद्र	331
1753	आश्रव बंध संसार के	333
1786	आश्रव किसे कहते हैं?	337
1787	आश्रव के भेद और नाम	337
1788	आश्रवभावना किसे कहते	337
1789	आश्रव किन परिणामों से	337
1879	आचार्यभक्ति और आचार्य..	348
1880	आचार्यभक्ति क्यों करना	348
1883	आवश्यक, आवश्यका....	348
1885	आज श्रावक और साधुओं	349
1905	आर्यकर्म किसे कहते हैं	351
1911	आचार्य श्री ने दयादि धर्म	352
1915	आचार्य श्री ने क्षमाधर्म	352
1943	आर्जवधर्म किसे कहते हैं	356
1949	आर्जवधर्म कैसे उत्पन्न होता	357
1961	आर्जवधर्म चौथे पाँचवें	358
2005	आपने अनेक जगहों पर	362
2038	आदि की तीन चौकड़ी	365
2053	आकिंचन्यधर्म किसे कहते	366
2060	आ. श्री ने आकिंचन्यधर्म	367
2063	आकिंचन्यधर्म चौथे	367
2082	आत्मा और कर्मों को सर्वथा	369
2108	आजकल प्रसूति करते समय	372
2125	आ. श्री...गाथा क्यों रची	375
2130	आ.श्री...आपने क्यों किया	376
2171	आयुर्वेद या औषधिदान का	381
2176	आ...भेद और नाम कौन	382
2240	आजीविका संबंधित षडा..	391
2245	आर्हन्त्य क्रिया किसे कहते	392
2248	आजकल सप्तपरम स्थान	392
2260	आ.श्री मल्लिषेण ने ये	394
2294	आजकल यह फल तो प्राप्त	398
2336	आजकल गर्भवती विधवायें	404
2360	आप्तपना कब प्राप्त होता है	407
2367	आजकल वास्तव में पूर्ण	408
2380	आचार्यभक्ति के बिना	410

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2408	आकर किसे कहते हैं	414
2545	आत्मज्ञान बिना मुनिदीक्षा	432
2546	आजकल साधुवर्ग अपनी	432
2547	आजकल....हैं या परोक्ष	432
2548	आत्मा को नहीं जानने	432
2594	आ.श्री ने दान दया आदि	438
2653	आचार्य....दे सकते है क्या	445
2671	आ..करने को कहा है क्या	448
2688	आठ, नौ, दस प्रकार के	451
2693	आरंभ किस हेतु और कैसे	451
2734	आराधना किसे कहते हैं?	456
2739	आराधना करनेवाले सम्य...	456
2745	आराधनाओं की साधना	457
2792	आजकल कुत्तों की सेवा	464
2830	आहारक समुद्घात किसे	469
2858	आत्मा शुद्धबुद्ध है और	473
2869	आत्मा को सर्वथा निर्दोष	475
2870	आत्मसाधक साधुवर्ग	475
2964	आत्मस्वभाव में कौन	488
2994	आत्मस्वभाव....कौन है	492
2998	आरंभ किसे कहते हैं, भेद	493
3113	आश्रमादि के निमित्त साधु	512
3129	आजकल असंयमी गृहस्थ	515
3140	आहार के निमित्त साधु	517
3141	आहारसंज्ञा की उत्पत्ति	518
3142	आहार संज्ञा का अंतर्भाव	518
3146	आहार के कितने भेद हैं	518
3154	आत्मप्रशंसक साधु को	519
3167	आहार किसे कहते हैं, भेद,	521
3210	आहार दानदाता को आते	526
3212	आहार देकर जानेवालों	527
3221	आगमानुसार नित्य आहार	529
3257	आहार के समय क्रोध करने	534
3258	आहार के समय कलह	534
3262	आहार के समय संक्लेश	535
3264	आहार के समय रोष से	535
3267	आहार के बिना शेष समयों	535
3282	आश्रव बंध होना सदोषता	537
3300	आदि की दो वनस्पतियों	540
3312	आरंभ अनेक प्रकार का	542
3313	आजीविका संबंधी कार्य	542
3347	आर्यखंडोत्पन्न सभी वर्णों में	546
3360	आगमरुचिक किसे कहते	548
3378	आचार्य उपाध्याय साधु	550
3389	आत्मा को जानने वाला	551
3412	आगमाज्ञा पालक साधु को	554
3429	आवश्यकों के कितने भेद	557
3447	आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध	559
3515	आत्मलक्ष्य भूलकर	568
3528	आर्ष विवाह किसे कहते	570
3531	आसुरविवाह किसे कहते	571
3588	आत्मसुख और मोक्ष	579
3604	आहार से जीवों की उत्पत्ति	581
3606	आहार और औषधि में क्या	582
3615	आजकल मनुष्य इतने	583
3682	आत्मज्ञ जीव किस पद	592
3683	आत्मज्ञ जीव क्या सीधा	592
3702	आत्मा और परमात्मा	594
3716	आत्मा के ये तीन भेद	596
3723	आजकल अनेक त्यागी	597
3747	आवश्यक कार्य किसे कहते	599
3797	आप्त पदवी को प्राप्त करने	606
3798	आप्त के लक्षण को कौन	606
3849	आश्रव बंध के समान रात्रि	613
3941	आज्ञासमुद्भव सम्यग्दर्शन	624
3977	आर्त रौद्रध्यानों से किन	628
4069	आर्त रौद्रध्यान को छोड़ने	640
4070	आर्त रौद्रध्यान के त्याग से	640
4091	आदेश किसे कहते हैं	644
4092	आगम किसे कहते हैं	644
4127	आचार्य क्या करते हैं और	649
4129	आचार्यमुद्रा किसे कहते हैं	649
4169	आठ मूलगुण और 12 उत्तर	657

इ

8	इन नियमों का पालन कौन	91
11	इन नामों को मंगल क्यों	91
27	इन बाह्य चेतन, अचेतन	93
29	इन दोनों प्रकार के मंगलों	93
149	इन ज्ञानों के साथ में 'बल'	110

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.	प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
163	इन रत्नों का उपयोग किन	19	1330	इनके अलावा इस मिथ्यात्व	281
164	इन रत्नों में से किन रत्नों	112	1338	इन सुदृष्टि और कुदृष्टि का	282
167	इन दोनों के लक्षण और	112	1341	इन दर्शन आदि पाँचों के	282
196	इन पाँचों परमेष्ठियों को	116	1356	इनका बहुमान किस प्रकार	284
220	इन धर्मों को क्यों और	135	1365	इनके पालक को क्या	285
343	इन ध्यानों का क्या फल	140	1424	इन चारों भावों को सर्वथा	292
344	इन ध्यानों के स्वामी कौन	140	1495	इन आर्तध्यानों के स्वामी	302
365	इन स्वाध्यायों का क्या	142	1520	इन दोनों इंद्रियों के	305
407	इन सामग्रियों के देने को	148	1561	इंद्र और प्रतींद्र किसे कहते	310
476	इन चारों दानों में से कौन	160	1565	इन पदवियों को कौन कब	310
477	इन दानों में त्यागधर्म और	160	1566	इन पदवियों को कौन से	310
514	इन पात्रों का कथन करते	166	1569	इन पदवियों को कौन से	311
557	इन हेतुओं से जिनबिंबार्थ	172	1600	इन हिंसा आदि सभी	315
577	इन चार प्रकार के मुनिसंघों	175	1601	इन पापों का क्या फल है	315
585	इनसे आत्मप्रभावना और	176	1616	इन शुभाशुभ पक्षपातों का	317
604	इन सप्तक्षेत्रों को जानकर	178	1628	इन विकथाओं को अशुभ	319
634	इनके अलावा और कौनसी	183	1650	इन दंडों को अशुभ क्यों	322
753	इनके अलावा और भी धर्म	202	1653	इन दंडों से क्या आध्या..	322
867	इंद्रपद और अहमिंद्र पद को	218	1662	इन गारवों को अशुभ क्यों	323
881	इन आत्मप्रदेशों के कंपन	220	1664	इन ख्याति पूजा लाभ की	323
900	इन जर जोरू और जमीन	222	1668	इन द्रव्यों को शुभ भाव	324
912	इन आचार्यों ने कहाँ कहाँ	224	1669	इन द्रव्यों में मन के लगाने	324
929	इन व्रतों के स्वामी कौन	227	1687	इन चारों द्रव्यों को अखंड	326
976	इन दोनों संस्कारों की विधि	235	1688	इन द्रव्यों में किसके कितने	326
991	इन आरंभों को कौन कैसे	236	1693	इन द्रव्यों में उपयोग लगाने	326
996	इन कार्यों को अपना धर्म	237	1697	इन्हीं द्रव्यों में मन लगाने	327
1043	इन अवस्थाओं को कौन	244	1700	इन अस्तिकायों में मन	327
1079	इन दोनों पंचमकालों में	250	1707	इन दोनों तत्त्वों के कितने	328
1119	इन कर्तव्यों को श्रेय क्यों	257	1722	इन तत्त्वों का जीव और	329
1141	इन युगलधर्मों को धर्मद्रव्य	259	1738	इन तत्त्वों में मन लगाने को	331
1142	इन युगलधर्मों पर विश्वास	259	1750	इन औषधियों में किन किन	332
1196	इन सद्गुणों के अभाव में	265	1751	इन जीवादि 9 पदार्थों में	332
1220	इनके अलावा और भी	267	1820	इन लोकों में कौन कौन	341
1229	इन रौद्रध्यानों का फल एक	269	1840	इन बारह प्रकार की भावना	343
1279	इन तिर्यंचोंवत् आचरण	275	1937	इन तीन प्रकार के मार्दव	356
1288	इनके द्वारा क्या जाना	276	2009	इंद्रियसंयम किसे कहते हैं	362
1299	इन संज्ञाओं के सेवन का	277	2013	इन अपहृत और उपेक्षा	363
1300	इन गुणहीन, विवेकहीन	277	2014	इन युगल संयमधर्मों का	363
1301	इन मनुष्यों में पाप की	277	2020	इन अनशनादि को बाह्य	363
1306	इन तीनों की पूर्ति किस	278	2022	इन प्रायश्चित्तादि तपों को	363

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2023	इन तपों को कौन से जीव	363
2024	इन तपों को किस प्रकार	363
2079	इनके अलावा और भी	369
2180	इन दोनों प्रकार के रोगों	382
2277	इन पाँच प्रकार की वर्गणा	396
2278	इन वर्गणाओं को कौन से	396
2313	इन तीन प्रकार की सामग्री	401
2320	इंद्रिय मुंडन से मतलब यहाँ	402
2321	इंद्रिय मुंडन के साथ में	402
2324	इंद्रिय के साथ मुंडन पद	402
2334	इन दोनों ध्यानों को दुर्ध्यान	404
2354	इन सभी मुंडनों को करने	407
2439	इंद्रियसुख और भोगोपभोग	417
2466	इंद्रियसुख में कौन सा जीव	421
2496	इन तपों को बहिरंग तप	425
2504	इन दोनों प्रकार के तपों	425
2617	इन अन्यमति साधुओं को	441
2654	इन साधुओं के संबंध में	445
2680	इन लौकिकविषयों का	449
2709	इन पुण्य समरंभ समारंभ	453
2771	इन सभी क्रियाओं को	460
2790	इन भावनाओं का चिंतन	463
2807	इन कष्टों को सहन करना	466
2822	इन दोनों ऋद्धियों का फल	468
2877	इन तीनों योगों को धारण	476
2880	इन योगों.....प्राप्त होता है	477
2902	इन दंडों से क्या हानि	480
2913	इन शल्यों की उत्पत्ति	481
2945	इन विषयों के कितने भेद	485
2968	इन उभय कार्यों को बताने	489
2982	इन पुरुषार्थों से क्या प्राप्त	491
3005	इन दोनों प्रकार के आरंभों	495
3015	इन कार्यों को करने से	497
3031	इन उपकरणों का प्रयोग	499
3080	इन लक्षणों का अर्थ क्या	507
3081	इन लक्षणों के अलावा	507
3114	इनका प्रयोग करने वाला	512
3117	इन पापारंभों की प्रवृत्ति	513
3152	इन अग्नियों का क्या फल	519
3158	इन दोनों में किस प्रकार	519
3183	इन कालों में धर्मध्यान कैसे	523
3184	इन कालों में सभी मलेच्छा	523
3185	इन ध्यानों को करने के	523
3224	इन धातुओं और उपधातुओं	530
3253	इन सद्धेतुओं के बिना	534
3256	इन क्रोधादि शब्दों का	534
3276	इन मुनियों के कौन कौन	537
3281	इन पाँचों मुनियों में कौन	537
3289	इनका जीवन भोगशाला	539
3319	इन दृष्टांतों का क्या मतलब	543
3365	इन पात्रों के माध्यम से	548
3380	इन गुरुओं को पानी के	550
3399	इनके उपकार और अपकार	553
3400	इन पाँचों परमेष्ठियों से	553
3419	इन दोषों से सम्यग्दर्शन का	555
3492	इन तीनों प्रकार की आत्मा	565
3507	इंद्रियसुख किसे कहते हैं	567
3508	इंद्रिय सुख खाज खुजलाने	567
3509	इंद्रिय सुख को सुखाभास	567
3510	इंद्रिय सुख को कुत्ते की	567
3511	इंद्रिय सुख कितने प्रकार	567
3518	इंद्रियसुख किसे कहते हैं	569
3545	इन सभी को अपनी आत्मा	573
3562	इंद्रिय सुख दुःख रूप ही है	575
3567	इन मलों का क्या फल है	576
3620	इनका फल कौन से जीव	584
3650	इन तीनों अवस्थाओं से	587
3655	इन परिणाम वालों को क्या	588
3686	इन प्रजापालकों को	592
3696	इन एकांतों के स्वामी कौन	593
3724	इन सभी दोषों के अलग	597
3739	इनके अलावा और भी	598
3749	इनकी वंदना स्तुति पूजा	600
3776	इन योगों का अंतर्भाव	603
3800	इन तीनों का क्षय करने के	606
3816	इंद्र किसे कहते हैं, कितने	608
3822	इन लौकिक पूज्यों के द्वारा	438
3831	इन उभय कालों के दोष से	609
3847	इनका त्याग किनको	613
3984	इनको जानकर क्या करना	628

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.	प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
4082	इन दोनों अंधकारों को	643	886	इस गाथा से सैद्धांतिक	221
4085	इन दोनों प्रकाशों में क्या	643	887	इस चरणानुयोगग्रंथ में कर्म	221
4119	इन ध्यानों का क्या फल है	648	909	इस विषय को समझाने के	224
4195	इंद्रियविषय कैसे हैं और	662	1014	इस विषय को पुनः और	239
4196	इंद्रियविषय को सुख और	662	1080	इस काल में मनुष्य विषय	251
52	इस ग्रंथ का मंगलाचरण	95	1081	इस काल में मूलोत्तरगुणों	251
53	इस ग्रंथ रचना का निमित्त	95	1092	इस काल में चारित्र की	252
54	इस ग्रंथ रचना का हेतु क्या	95	1126	इस हीन चर्या को, चारित्र	257
55	इस रयणसार ग्रंथ में गाथा	96	1175	इष्ट किसे कहते हैं	262
56	इस ग्रंथ का नाम क्या है	96	1244	इस गर्व का क्या फल है,	270
57	इस ग्रंथ के कर्ता कौन हैं?	96	1267	इस गाथा में स्पष्टतः	273
59	इस रयणसार ग्रंथ में ग्रंथ	96	1283	इस कुटिलता से कौन सी	275
64	इस ग्रंथ में किन गृहस्थों	97	1296	इहलोकसंज्ञा किसे कहते	277
65	इस ग्रंथ का उद्भव स्थान	97	1298	इहलोक और परलोक किसे	277
66	इस ग्रंथ का उद्भवस्थान	97	1309	इस गाथा का दूसरा	278
68	इस मंगलाचरण में विदेह	97	1318	इसका क्या फल है?	279
106	इस मंगलाचरण में वर्धमान	103	1319	इस कुष्ट रोग से कुल भंग	280
111	इस रयणसार ग्रंथ में किस	104	1404	इस साम्यभाव को कौन सा	290
113	इस रयणसार ग्रंथ में सर्व	104	1440	इस अवस्था को कौन सा	294
114	इस रयणसार में सर्व प्रथम	104	1443	इस उपशमभाव तथा उपशम	294
115	इसका क्या कारण है	104	1445	इस उपशमभाव का गाथा	295
139	इस प्रकार बोलनेवाले को	108	1454	इस उपशमभाव...दूसरा	295
151	इस गाथा में किन ज्ञानों	110	1472	इस गाथा में ग्रंथकारजी ने	298
155	इसी विषय को विशेष रूप	110	1490	इष्टवियोगज आर्तध्यान	300
259	इस 7वीं गाथानुसार यहाँ	125	1505	इस..''पंचमयाले'' इस पद	302
322	इस ग्रंथ में दानपूजा न	137	1509	इस काल में कौन से प्राणी	303
325	इस संबंध में गुरुजन	138	1510	इस काल में यहाँ पर कौन	303
335	इस काल में उत्कृष्ट ध्यान	139	1513	इस जीव ने अनादिकाल से	303
341	इस धर्मध्यान का काल	140	1544	इस गाथा में किसका वर्णन	308
342	इस पंचमकाल में कौन	140	1560	इस काल में मुनिजन	310
428	इस गाथा में 'सत्तिरूवेण'	153	1644	इस असूया को अशुभ	321
505	इस धर्मध्यान का फल	165	1802	इस करणलब्धि का क्या	339
559	इस दृष्टि से जिनमूर्ति	172	1821	इस लोक में जीव परप्रेरणा	341
581	इस चतुर्विध मुनिसंघ के	175	1870	इस घातायुष्क जीव को	347
605	इस गाथा में ग्रंथकार ने	176	1936	इस मार्दवधर्म को	355
633	इसके अलावा और भी	183	1965	इस आर्जवधर्म के स्वामी	358
695	इस प्रकार ग्रंथकार ने इन	191	1999	इस संयम धर्म को	361
722	इस गाथा में ग्रंथकार ने	196	2041	इसके अलावा क्या 4थे, 5	365
782	इस प्रकार वैय्यावृत्ति करने	206	2110	इसमें संदेह नहीं है ऐसा	373
876	इस लक्ष्मी को प्राप्त करने	219	2118	इहलोक दृष्टि मिथ्यादृष्टि	374

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2160	इस विषयको....आचार्यश्री	379
2323	इस पाँच को संख्येयवाची	402
2472	इस गाथा में किस जीव को	421
2480	इस प्रकार शैय्या आसन	425
2503	इस गाथा में तप के साथ	425
2536	इस गाथोक्त चार क्रियाओं	430
2717	इस उत्कृष्ट पुण्य का फल	454
2719	इसके बाद में जिनेंद्र	454
2723	इस 85 नं. की गाथा में	455
2725	इस जीव के सम्यक्तप	455
2801	इस ठगविद्या का क्या फल	465
2836	इस गाथा में किन मुनियों	470
2896	इस व्यक्ति में मनदंड है	479
2899	इस मायाचार रूपी गूढ़	480
2900	इसमें वचन दंड है यह कैसे	480
2901	इसमें काय की उद्दंडता है	480
2974	इस स्थान को सातिशय	490
2977	इस स्थान को निरतिशय	490
3061	इस वाचालपने से क्या	504
3076	इस काल में लोकानुकूल	506
3128	इस अध्यात्ममार्ग का स्वामी	515
3136	इस विषय को पुनः कैसे	517
3178	इस काल में किस स्वाध्याय	522
3179	इस काल में शुक्लध्यान	522
3366	इस 106 नं. की गाथा में	548
3594	इस छद्मस्थ ज्ञान रूपी	580
3773	इस विशुद्धि को क्या	603
3777	इस 132वीं गाथा में संक्षेप	603
3794	इस 133वीं गाथा में किसके	605
3898	इस अनर्थदंड के भेद तथा	619
3999	इस संसार में पंच परावर्तन	630
4146	इस ग्रंथ का नाम रयणसार	652
4150	इस रयणसार ग्रंथ का	653
4156	इस ग्रंथ को जो नहीं देखता	654
4157	इस रयणसार को न मानने	654
4158	इस रयणसार ग्रंथ के विषय	654
4159	इस रयणसार ग्रंथ को न	654
4160	इस रयणसार...क्यों कहा?	654
4188	इस क्रम का उल्लंघन करने	661

ई

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1246	ईर्ष्या कितने प्रकार की होती	271
2604	ईश्वर के समान क्या सभी	439
2921	ईर्ष्या कौन से प्राणी करते है	482
3047	ईर्ष्यालु साधु धर्म का कैसे	502

उ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
285	उत्कृष्ट समाधिमरण का	129
300	उपवास किसे कहते हैं	133
311	उपवास जीवहिंसा का	135
404	उपकरण किसे कहते हैं?	148
406	उपकरणदान किसे कहते	148
441	उपरोक्त तीन प्रश्नों का	155
511	उत्तम साधक किसे कहते हैं	165
590	उपसर्गों के द्वारा एकदम से	176
655	उत्तम रूप प्राप्त होना सुपात्र	186
657	उत्तम लक्षण किसे कहते हैं?	186
658	उत्तम लक्षण प्राप्त होना	186
661	उत्तम शिक्षा किसे कहते हैं?	187
662	उत्तम शिक्षा की प्राप्ति होने	187
664	उत्तम शील किसे कहते हैं?	187
665	उत्तम शीलवान किसे कहते	187
666	उत्तम शील की प्राप्ति होने	187
667	उत्तम चारित्र किसे कहते हैं	187
668	उत्तम चारित्र की प्राप्ति को	187
673	उत्पत्ति और प्राप्ति में क्या	188
725	उपसर्ग, परीषह, शारीरिक	197
740	उदराग्नि के अनुसार	199
748	उपकरण एवं उपकरण दान	201
749	उपकरण दान देना चाहिये	201
788	उक्त गुणवान द्रव्य से स्त्री,	207
793	उन कल्पवृक्षों के नाम कौन	208
794	उन भोगभूमिजों को पानांग	208
795	उन भोगभूमिजों को तूर्यांग	208
796	उन.....प्रकार के होते हैं?	208
797	उन...वस्त्रांग जाति के..देते	208
798	उन..भोजनांग..कल्पवृक्ष...	208
799	उन..आलयांग जाति के	208
800	उन..दीपांग जाति के कल्प	208

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
801	उन..कल्पवृक्ष क्या देते हैं	208
802	उन...मालांग जाति के	208
803	उन...तेजांग जाति के.हैं?	209
891	उभय कारणों से कार्य	221
917	उत्तम पात्रों को भौतिक	226
918	उत्तमपात्रों के पास में ये	226
1024	उदय, उदय आबाधा,	241
1025	उदीरणा आबाधा किसे	241
1055	उच्च रक्तचाप/हाई ब्लड	246
1097	उच्चारण करने में और	253
1114	उत्थान में सहायभूत कौन	256
1158	उपादेय किसे कहते हैं	260
1204	उग्र, तीव्र और दुष्ट क्रोध	266
1205	उग्रक्रोध किसे कहते है	266
1254	उभय कार्यों की सिद्धि	271
1354	उपधानाचार किसे कहते हैं	284
1361	उभयाचार किसे कहते	284
1436	उपशमभाव किसे कहते हैं?	294
1437	उपशमभाव क्या समीचीन	294
1438	उपशमभाव को मंदकषाय	294
1441	उपशमभाव को मिथ्यादृष्टि	294
1455	उपशमभाव से पाप और	296
1460	उपशमभाव से इसलोक	296
1461	उपशमभाव से परलोक	296
1462	उपशमभाव से ये सब	296
1463	उपशमभाव से मोक्ष के	296
1729	उत्पाद और व्यय क्या एक	330
1763	उद्वेलना संक्रमण किसे	334
1903	उपसर्ग क्या राग से किये	351
1912	उत्तम क्षमा धर्म किसे कहते	352
1986	उत्तम सत्यधर्म....है क्या?	360
1987	उत्तम सत्यधर्म अप्रतिपाती	360
1988	उत्तम सत्यधर्म औपशमिक	360
2012	उपेक्षासंयम किसे कहते	362
2045	उत्तमत्यागधर्म किसे कहते	366
2046	उत्तम त्यागधर्म...है या शुद्ध	366
2047	उत्तम त्यागधर्म को शुभ	366
2048	उत्तम त्यागधर्म कौन सा	366
2055	उत्तम आकिंचन्य धर्म कब,	366
2056	उत्तम आकिंचन्यधर्म..भाव	367
2059	उत्तम आकिंचन्यधर्म शुद्ध	367
2065	उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म किसे	367
2066	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म कैसे	367
2070	उत्तम ब्रह्मचर्य...कैसा है	368
2140	उपशमभाव और तप से	377
2188	उत्तर प्रकृतियों का और	383
2210	उपरोक्त प्र. 2208 में परस्पर	387
2252	उस कुंवारिका को	392
2297	उत्तम पात्र किसे कहते हैं	399
2387	उपजाऊ भूमि किसे कहते	411
2431	उत्तम मध्यम जघन्य पात्रों	417
2492	उपवास तप किसे कहते हैं	454
2493	उपवास तप किसलिए	454
2523	उपशम....प्राप्त नहीं करता	428
2540	उत्कृष्ट श्रावक और उत्कृष्ट	431
2866	उपादान उपादेय संबंध	474
2868	उपादान उपादेय किसे	474
2961	उभयश्रेणियों में क्या	488
2962	उभयश्रेणीगत परिणामों	488
2979	उपशमश्रेणी प्रतिपात	490
3001	उपरोक्त कार्यों में जीवों की	494
3007	उदरपूर्ति के कारणभूत	495
3023	उपरोक्त उदाहरणों को	498
3029	उपकरण किसे कहते हैं	499
3038	उपकारक होने से आहार	500
3195	उदराग्नि प्रशमन किसे	524
3203	उदराग्नि प्रशमनवृत्ति का	525
3254	उपरोक्त फल क्या आहार	534
3348	उच्च वर्णों में क्या सभी	546
3355	उत्तमपात्रपना और मध्यम	547
3367	उपशम किसे कहते हैं	549
3396	उपकार किसे कहते हैं	552
3464	उत्तर प्रकृति किसे कहते	562
3465	उत्तरोत्तर प्रकृति किसे	562
3640	उपशम सम्यक्त्व नैमित्तिक	586
3708	उत्तम अंतरात्मा किसे कहते	595
3722	उक्त दोषों को त्याग कर	596
3830	उत्सर्पिणीकाल किसे	610
3864	उदुम्बर फलों का त्याग	615

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3916	उत्तम गृहत्यागी श्रावक	621
3943	उपदेशसमुद्भव सम्यग्दर्शन	624
3974	उत्कर्षण, अपकर्षण,	627
4111	उपसर्ग परीषहों को जीतने	647
4193	उत्तम पात्र को देखकर	662

ऊ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
549	ऊर्ध्वगमन स्वभाव और	170
2384	ऊसर भूमि किसे कहते हैं?	410
2385	ऊसर भूमि में मकान	411
3458	ऊपर अधिकतर निर्धारणार्थ	561

ऋ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1660	ऋद्धि गारव किसे कहते	323

ए

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
70	एकहजारआठ नामों के	98
534	एकमात्र भोगविलासी क्षेत्रों	168
884	एकेंद्रिय जीवों के उदराग्नि	220
1534	एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा	306
1535	एकत्त्वविभक्त...है क्या	306
1774	एकत्व भावना किसे कहते	335
1775	एकत्व भावना का चिंतन	335
2303	एक भवावतारी पद कैसे	399
2682	एक प्रकार का पाप कौन	450
2965	एकसाथ एकसमय में	488
3292	एकेंद्रियजीवों से भुक्त	539

ऐ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
18	ऐसा क्यों होता है	92
496	ऐसे असंयमी अव्रती	163
499	ऐसे पूर्ण असंयमी गृहस्थों	164
656	ऐसा सुंदर रूप किस	186
860	ऐसा सुरीला स्वर किस	217
1037	ऐसा व्यक्ति नासिका रहित	243
1186	ऐसे मनुष्यों को लौकिक	264
1201	ऐसे गुणवान व्यक्तियों की	265
1749	ऐलोपैथिक, होम्योपैथिक,	332
1818	ऐसे लोक में जीव क्या	340
2261	ऐसा साधु किस गति को	394
2392	ऐसा ही हमारे लिए भी	411
3134	ऐसा होने पर लोकव्यवहार	516
3483	ऐसा विश्वास कौन करेगा	564
3584	ऐसा जीव दुःस्वप्न नहीं	578
3621	ऐसा क्यों होता है	584
4168	ऐसा करने से क्या प्राप्त	656

औ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
306	औषधि देना पाप है क्योंकि	134
388	औषधि किसे कहते हैं और	146
391	औषधिदान क्यों देना चाहिये	146
1608	औदयिक भाव रूप अज्ञान	316
1610	औदयिक....क्या दोष है?	316
1919	औपशमिक भाव क्षमाधर्म	353
1980	औपशमिकभाव क्षमादि	359
2035	औपशमिकभाव तपधर्म	364
2049	औपशमिकभाव त्यागधर्म	366
2061	औपशमिकभाव आकिंचन्य	367
2071	औपशमिकभाव ब्रह्मचर्य	368
2169	औषधि का प्रयोग रोग	381
2603	औदारिक शरीर किसे	439
2983	औदयिक भाव पुरुषार्थ का	491
3240	औदारिकशरीर के बिना	532
3599	औषधि का उपयोग कैसे	581
3600	औषधियों के कितने कितने	581
3601	औषधि से जब इतने	581
3602	औषधियां इतनी हिंसक	581
3603	औषधियों से जीवों	581
3644	औदयिकादि भावों को	587
4199	औदारिक काययोग और	663
4200	औदारिक...क्या आपत्ति है	663

अं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
893	अंतरंग परिग्रह किसे कहते	222
894	अंतरंग परिग्रह क्या	222
1033	अंगहीन अवस्थाओं को	242
1558	अंत तक इन चारों की	309
1776	अंतरायकर्म का बंध	336
2042	अंतरंगतप को प्र. 2036	365
2505	अंतरंगतप किसे कहते	426
2506	अंतरंगतप के भेद	426

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2508	अंतरंग तप का फल	426
2509	अंतरंगतप के छह भेद	426
3489	अंतरात्मा सामान्यतः किसे	565
3583	अंतरंग लक्षण	578
3586	अंतरात्मा इंद्रिय	578
3627	अंतरात्मा किसे कहते हैं?	585
3628	अंतरात्मा के परिणाम	585
3634	अंतरात्मा और परमात्मा का	585
3635	अंतरात्मा और संसारी	585
3659	अंतरात्मा और....प्रशस्त	589
3697	अंतरात्मा किन किन गुण.	593
3791	अंधभक्त किसे कहते	605

क

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
5	क्या ये नियम केवल ग्रंथ	92
15	क्या पापपुण्य प्रकृतियां	92
28	क्या ये तीनों मंगल	93
38	क्या सभी अतिशय या	94
116	क्या गृहस्थ धर्म स्वीकार	104
142	क्या ये दोनों ज्ञान सम्यक्,	109
214	क्या संसारी कर्माधीन	119
227	क्या छहों संहनन वाले मुनि	121
235	क्या ज्ञानादि आठों के	122
244	क्या सम्यग्दृष्टि व्यसनों के	124
292	क्या इन दानों से मोक्ष	131
380	क्या तुष्टि पुष्टिकारक आहार	145
479	क्या वास्तव में ये फल	160
495	क्या पूर्ण असंयमी अव्रती	163
503	क्या विधवाविवाह करने	164
529	क्या दाता को दान का	167
531	क्या सुपात्र दान का इतना	168
582	क्या अणुव्रती और	175
591	क्या ये चरमशरीरी मुनि	177
599	क्या ये सभी कल्याणक	178
671	क्या पुण्योदय से मोक्षमार्ग	188
792	क्या कल्पवृक्ष के समान	208
834	क्या भूल करना आसान है	214
846	क्या ये मंत्र सम्यक् और	215
906	क्या ये सभी सामग्रियां	223
940	क्या मकारों को जिनेंद्रभक्त	229

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1082	क्या जन्मकाल से ही	251
1136	क्या वास्तव में अतत्त्व	258
1161	क्या वस्तुयें भी अपनी	261
1237	क्या सभी रौद्रध्यानों के	270
1281	क्या इन तिर्यंचों में सर्वथा	275
1313	क्या रत्नत्रय की एकता का	279
1380	क्या सभी मिथ्यादृष्टि जीव	267
1397	क्या सभी मिथ्यादृष्टि जीव	290
1414	क्या सभी पर्यायें सादिसांत	291
1430	क्या पारिणामिकभाव अर्थ	293
1431	क्या पारिणामिकभाव सभी	293
1432	क्या नैमित्तिकभाव भी	293
1446	क्या उपशमभाव से कर्मों	295
1521	क्या सभी जीवों ने काम	305
1530	क्या ये ज्ञान केवल	306
1532	क्या श्रुत, परिचित और	306
1545	क्या प्रमाद सहित भी धर्म	308
1548	क्या सभी दिगंबर जैन	308
1564	क्या पाँचवें स्वर्गवासी सभी	310
1606	क्या वास्तव में ज्ञान	316
1665	क्या इतने ही अशुभ भाव	323
1690	क्या परमाणु परमाणु रूप	326
1696	क्या द्रव्यों में अशुद्धपना	327
1768	क्या ये संक्रमण सभी	334
1827	क्या जैनगण सृष्टिकर्ता	342
1853	क्या इस काल में व्रती	345
1901	क्या वैय्यावृत्ति करना,	351
1906	क्या आर्यखंड में सभी	351
2078	क्या मोह की देशघाती	368
2090	क्या मिथ्यादृष्टि मनुष्य	370
2111	क्या सभी कर्मों की	373
2157	क्या सिर्फ ज्ञानमात्र	379
2165	क्या यहाँ बोलने वाले को,	380
2175	क्या हेतु केवल शुभ	382
2193	क्या वीतराग चारित्र से	384
2246	क्या अर्हंत प्रभु घातिया	392
2376	क्या केवल बड़े ही उपकार	409
2401	क्या पूर्ण मध्यलोक में	413
2424	क्या मिथ्यादृष्टि जीव	416
2452	क्या गुरु भक्ति के बिना	418

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2465	क्या त्याग और ग्रहण के	421
2497	क्या इन तपों को करते	425
2537	क्या यह आधार आधेय	430
2552	क्या छद्मस्थ प्राणी अनंत	433
2569	क्या सम्यग्दर्शन के बिना	434
2596	क्या अज्ञान पूर्वक तप	438
2636	क्या सभी ध्यानों की	444
2660	क्या सभी प्रकार के ग्रंथों	447
2669	क्या सभी गतियों में सदा	448
2706	क्या यह पुण्यपाप का	453
2711	क्या विधि और निषेध में	453
2713	क्या ये सभी पुण्यारंभ	453
2789	क्या योगियों को अनुप्रेक्षाओं	463
2819	क्या शुभ और अशुभ ये	468
2849	क्या सिद्धों में इतने ही	472
2860	क्या शुद्धपना सर्वथा	474
2872	क्या जिनेंद्रोपदेश से मिथ्या	475
2916	क्या ये शल्यें समस्त संसारी	481
2959	क्या 10वें गुणस्थान में	487
3033	क्या इन उपकरणों का	499
3069	क्या ''कु'' विशेषण सदा	505
3070	क्या ''सु'' विशेषण भी सदा	505
3079	क्या ये सभी लक्षण मूर्खों	507
3116	क्या पापारंभ से कष्ट होता	513
3120	क्या साधु भी मिथ्यादृष्टि	513
3123	क्या बहिरंग परिग्रह में	514
3202	क्या सभी प्रकार का	525
3265	क्या यहाँ सभी व्यंतरों को	535
3266	क्या सभी यक्ष सम्यग्दृष्टि	535
3337	क्या सभी देव तीर्थंकर	545
3341	क्या सभी तिर्यंचों में	546
3346	क्या सभी मनुष्यों में सभी	546
3376	क्या केवल आचार्य ही	550
3393	क्या केवल चरमशरीरी मुनि	552
3401	क्या पूर्ण दर्शनमोहनीयकर्म	553
3436	क्या ये दोनों मार्ग एकसाथ	558
3457	क्या सम्यग्दर्शन की प्राप्ति	581
3485	क्या वर्तमान में कर्मोदया	564
3582	क्या अणुव्रती महाव्रती बनने	578
3598	क्या सभी बीमारियों की	580
3626	क्या ये सभी परिणाम एक	585
3629	क्या ये परिणाम सभी	585
3693	क्या पर समय वाला जीव	593
3735	क्या ये तीनों करण	598
3957	क्या ये क्रियायें मुनिआर्यिका	625
4071	क्या आत्म सुख के लिये	641
4074	क्या सूर्योदय से अंधकार	641
4132	क्या सिद्ध भगवंत भी	650
4133	क्या अर्थपर्याय का त्रिकाल	650
4152	क्या मिथ्यात्व पूर्वक श्री	653
4202	क्या महाव्रतीजन सबके	663

क

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
41	कल्याणकक्षेत्र मंगल किसे	94
184	कबूतर और तोते की	115
221	कल्याण करने वाले अरिहंत	120
269	कषायों के त्याग का क्या	127
410	कन्यादान क्यों देना चाहिये	149
537	कर्मभूमि के कितने भेद	169
791	कल्पवृक्ष किसे कहते हैं,	207
823	कर्मक्षय के निमित्त पुण्य	212
848	कष्टदायक मिथ्या यंत्र किसे	216
859	कर्णप्रिय शुभवचन किसे	217
880	कर्मयोग किसे कहते हैं?	220
883	कर्मों का विभाग पुण्य पाप	220
1127	कलंक और बदनामी में	257
1130	कर्मक्षय के निमित्त पुण्य	258
1268	कषायों की शक्ति, वासना	273
1275	कछुए के स्वभाव वाले	275
1420	कर्मों के क्षयोपशम से होने	292
1421	कर्मों के.....हैं या अशुद्ध?	292
1422	कर्मोदय से होने वाले भाव	292
1423	कर्मकृत कितने भाव हैं	292
1498	कष्टी किसे कहते हैं	301
1576	कर्मप्रकृतियों का अशुभ	312
1602	कषाय किसे कहते हैं भेद	315
1735	करणलब्धि के परिणाम	331
1792	कर्मों का संवर किस क्रम	338
1801	करणलब्धि किसे कहते	339
2154	कषाय 10वें गुणस्थान तक	379

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2156	कषायों के वशीभूत हुए	379
2162	कर्मों के क्षय में और निर्जरा	380
2187	कर्म रोग को दूर करने के	383
2268	कर्म बंधक जीवों की	395
2312	कनक आदि पद से किस	401
2329	कर्ण इंद्रिय का मुंडन किस	403
2394	कर्मोदय होने मात्र से	412
2402	कहाँ किसके कितने गुण	413
2406	कर्वट किसे कहते हैं	414
2518	कर्मों का क्षय और शुद्धा	427
2535	कदाचित् आगमज्ञानी	430
2642	कर्मों की निर्जरा और क्षय	444
2644	कर्मों के क्षय के बिना	444
2825	कषाय समुद्घात किसे	468
2918	कषाय और शल्य में क्या	482
2950	कषायों का क्या फल है	486
2952	कषायासक्त को आ. श्री ने	486
2958	कषायें किस गुणस्थान	487
3034	कमंडलु का प्रयोग किस	499
3059	कषाय और कलह में	503
3087	कलिकाल किसे कहते	508
3099	कर्मों की दस अवस्थायें	510
3119	कषाय सहित साधु	513
3151	कषाय भी अग्नि है और	519
3169	कवलाहार किसे कहते हैं,	521
3196	कम या ज्यादा आहार	524
3225	कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों	530
3226	कर्मभूमिज....क्यों कहा?	530
3227	कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य	530
3314	कर्मों से बचने के उपाय	542
3342	कर्मभूमिज तिर्यंच क्या	546
3368	कषायों के मंदोदय को	549
3369	कषायों के...स्वामी कौन	549
3441	कर्म किसे कहते हैं	559
3449	कर्मविभाव और आत्म	560
3524	कलत्र किसे कहते हैं, भेद	570
3548	कर्मफलचेतना किसे कहते	573
3549	कर्मचेतना किसे कहते हैं	573
3554	कर्मचेतना...मिथ्या क्यों	574
3622	कर्मफल कौन से जीव	584
3641	कर्मों के निमित्त से कौन	586
3729	करण किसे कहते हैं,	598
3730	करण आवश्यकों को	429
4039	कर्म...इनका क्या फल	636
4080	कर्म क्षय हो जाते हैं	642
4104	कर्मों का संवर निर्जरा होने	646
4105	कर्मों के क्षय से कर्मवान	646
4120	कर्मों का क्षय कितने प्रकार	648
4121	कर्म प्रकृतियां सत्त्व से क्षय	648

का

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
42	काल मंगल किसे कहते	94
109	कायशुद्धि किसे कहते	103
189	कामांधकार और मिथ्यां	115
279	कांडक और एक संयमकां.	128
354	कापथघट्टनम् ऐसा क्यों कहा	141
702	कालक्षेप किसे कहते हैं	192
726	कायक्लेश आदि से उत्पन्न	197
966	कामादि के कारण धर्म	233
1112	कार्य किसे कहते हैं	256
1345	कालाचार किसे कहते हैं	283
1502	कापोत लेश्या किसे कहते	302
1514	कामभोग की कथा किसे	304
1515	कामेंद्रिय किसे कहते हैं	304
1533	काम, भोग और बंध की	306
1588	कामसुख को पाप क्यों	313
1589	कामसेवन करने में कितने	314
1648	कायदंड किसे कहते हैं	322
1685	काल द्रव्य किसे कहते हैं	325
1686	कालद्रव्य के कितने भेद	326
1689	कालाणु और पुद्गल	326
1691	कार्यपरमाणु और कारण	326
1702	काल द्रव्य को अस्तिकाय	327
1730	कारण के अनुरूप ही कार्य	330
1894	कारुण्य भावना किसे	349
2346	कामसेवन संबंधी स्वप्न	406
2478	कायक्लेश तप किसे	423
2620	कायक्लेशतप के भेद	441
2895	कायदंड कैसे उत्पन्न होता	479
3757	काय गुप्ति किसे कहते	601

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
4013	कांक्षा अतिचार दोष किसे	633
4112	कायर व्यक्ति क्या कर्मठता	647
4135	कारण के अनुसार ही कार्य	650
4137	कामधेनु, कल्पवृक्ष और	651

कि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
14	क्रिया के भेद और किस	91
355	किसीका खंडन करने वाले	141
373	किस प्रकार की वस्तु का	144
448	किस नय से इन पाँचों	156
449	किन किन मुनियों को	156
553	किन उपायों से कमाया	171
631	किराये के मकान वाहन	182
670	किस पापकर्म के अभाव	188
935	क्रियाओं के दो नाम कौन	228
2192	किस चारित्र से मूलोत्तर	384
2438	किस प्रकार का दान देना	417
2461	किन पदार्थों का त्याग	420
2462	किन पदार्थों को ग्रहण	420
2475	''किं तजियं, किं भजियं,	422
2558	क्रिया का स्वरूप, अंतर	435
2581	किला, परकोटा और खाई	436
2606	किस जीव के बिना कैसे	440
2646	किस ध्यान से किस किस	445
2944	किस विषय का क्या फल	485
2953	किस कषाय के उदय से	486
3020	किस आरंभ से किस कर्म	497
3036	किस प्रकार से पीछी का	499
3311	किस समय हिंसा का	542
3456	किस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति	560
3478	''किं बहुणा'' बहुत कहने	563
3516	किंपाकफल किसे कहते	568
3522	किस शरीर के साथ एकता	569
3617	''किंबहुणा'' इस पद का	584
3823	''किंबहुणा हो'' गाथा में	609
3911	किये गये परिग्रह प्रमाण	620
3959	किस ज्ञान से किस ध्यान	626
3970	किस ध्यान से किस कर्म	627

कु

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
126	कुल तत्त्व कौन कौन से	107
509	कुपात्र किसे कहते हैं	165
535	कुभोगभूमि कीप्राप्ति	168
622	कुमित्र किसे कहते हैं,	181
1045	कुष्ट रोग के लक्षण कौन	245
1109	कुपात्रदान से कुभोगभूमि	255
1110	कुमानुष से कुभोगभूमिज	256
1198	कुसंगति किसे कहते हैं?	265
1199	कुसंगति का क्या फल है	265
1282	कुटिलता किसे कहते है	275
1317	कुष्ट रोग किसे कहते हैं,	279
1568	कुपुत्र किसे कहते हैं	311
2253	कुंवारिका को ब्रह्मचारिणी	392
2372	कुगुरु और कुशिष्य किसे	409
2499	कुतप किसे कहते हैं	425
3066	कुशीली मुनियों के द्वारा	505
3067	कुशीली मुनियों के भेद	505
3273	कुशील मुनि किसे कहते	536
3883	कुशील/मैथुनपाप.... हैं?	617
3884	कुशील....मैथुन..में अंतर	617
3985	कुशल व्यक्ति किसे कहते	629
3986	कुशल व्यक्ति के तप होता	629
4051	कुल किसे कहते हैं	638
4065	कुशीलमुनि/पदभ्रष्ट मुनि	640
4179	कुशील, मिथ्यादर्शन,	659

कू

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
456	कूटना पीसना आदि कार्य	157

के

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
328	केवल अनाज्ञाकारी होने से	138
451	केवली प्रभु कौन सा दान	156
675	केवल योग की प्रवृत्ति को	188
958	केवलियों के भावमनोयोग	232
1054	केन्सर रोग किसे कहते हैं	246
1202	केवल धर्म शिबिर लगाने	265
1248	केवल गुण कीर्तन करने को	271
1255	केवल भाग्य से या पुरुषार्थ	272
1256	केवल याचना करने वालों	272

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1350	केवली के...वर्जनीय क्यों है	283
1351	केवली के सामने...सकते	283
1366	केवल इन आचारों के	285
1623	केवल योग की प्रवृत्ति को	318
1695	केवलियों के शुभ अशुभ	326
1944	केवल योगों की सरलता	356
2126	केवल अंतरंग या बहिरंग	375
2349	केवल शिर मुंडन करने	406
2703	केवल संरंभादि का त्याग	452
2714	केवल पुण्यार्जक संरंभ	453
2794	केवल दोषवादन करने को	464
2831	केवली समुद्घात किसे	469
2985	केवल मोह के उदय से	491
3361	केवल आगम रुचि को	548
3493	केवल जानने का नाम	565
3863	केवल मद्य मांस मधु का	615

को

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
318	कोई कोरा अध्यात्मवादी	137
2128	क्रोधादि और शरीर को	376
2907	क्रोध शल्य किसे कहते हैं	481
3534	कोर्टमेरिज/प्रेमविवाह को	572
4097	कोई बलात् आ. श्री	645

कौ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
230	कौनसा सम्यग्दृष्टि जीव	121
387	कौन सा और किसके	146
395	कौन सा ज्ञानदान करना	147
979	कौन सी विधि के कौन	235
1415	कौन कौन सी पर्यायें किन	291
1731	कौन सा शुक्लध्यान	330
1933	कौन सा मार्दवधर्म सादि	355
2400	कौन किसमें निवास करते	413
2470	कौन सा प्रमादी जीव	421
2525	कौन सा सम्यग्दृष्टिजीव	428
2533	कौन सा जीव आत्मा को	430
2832	कौन से समुद्घात किस	469
2920	कौन किसके साथ ईर्ष्या	482
3137	कौन से साधु दूसरों के	517
3138	कौन से साधु अपनी	517
3310	कौन सी हिंसा कब और	542
3351	कौन सा अपसरण किस	547
3591	कौन किसको नहीं छोड़ता	579
3673	कौन सा अविश्वास	590
3921	कौन सी मिश्रसामग्री दान	621
3976	कौन सा ध्यान किस भाव	628
4076	कौन से उदाहरण एकदेश	642

कं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
813	कंजूस को नपुंसक के	210
814	कंजूस लोभी दानदाता को	210

कृ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
352	कृत्सार्वं किसे कहते हैं	141
498	कृत कारित अनुमोदना	164
783	कृत कारित....क्यों कहा	206
1500	कृष्ण लेश्या किसे कहते हैं	301

ख्

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1663	ख्याति पूजा लाभ किसे	323
3434	ख्याति, पूजा, लाभ और	557
3439	ख्याति पूजा....चाहता है?	558

ख

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1182	खरकर्म किसे कहते है	263
1183	खरकर्म और पापकर्म में	263

खु

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
565	खुले मैदान में ऊंचे चबूतरे	173
3767	खुली जगह में या चौराहे	602

खे

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
608	खेत विशेष किसे कहते हैं	179
2405	खेट किसे कहते हैं	414

ग्

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1994	ग्यारहवें गुणस्थान में	360

ग

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
130	गणधर किसे कहते हैं	107

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1064	गद्‌गदत्व, मिन्मिनत्व और	247
1243	गर्व किसे कहते हैं, भेद	217
1270	गर्दभ स्वभावी व्यक्ति	153
1683	गमन और स्थिति क्या	198
2342	गमनागमन और स्थिर	325
2874	गर्मी के दिनों में पर्वत पर	476
3011	गर्भपात आदि क्यों कराया	496
3012	गर्भपात आदि को पाप	496
3013	गर्भपातादि में हिंसादि पाँचों	496
3657	गति किसे कहते हैं,	588
3770	गर्मी के दिनों में पर्वत के	602
3771	गर्मी में पर्वत पर रहने से	602
3814	गणेंद्र किसे कहते हैं	608
4049	गण, गच्छ किसे कहते	638

गा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
95	गाथा में वर्धमान कौन	102
470	गाथा में सुख के लिए उत्तम	159
490	गाथा में पंचाश्चर्य नहीं	162
717	ग्रासपतन दोष किसे कहते	195
718	ग्रासहरण दोष किसे कहते	195
727	गाथा में दो तपों को कहा	197
866	गाथानुसार दान देने से	218
904	गाथा में जर जोरू जमीन	223
984	गाथोक्त शेषधन किसे	236
1222	गाथोक्त परिणाम किस	268
1247	गायन और गायक किसे	271
1473	गाथा में ''अवसर्पिणी'' पद	298
1475	गाथा में ''भरहे'' पद का	299
1503	गाथोक्त व्यक्ति अभी भी	302
1658	गारव किसे कहते हैं, भेद	323
2085	गाथा 55-56 में कहे हुए	369
2120	गाथा में ग्रंथकारजी ने ''हि'	374
2269	गाथा में क्षपक पद का	395
2310	गाथा में भूमि पद से किस	401
2311	गाथा में महिला पद से	401
2390	गाथा में मुनि नाम नहीं	411
2404	ग्राम किसे कहते हैं	414
2575	गाथा में ''णियमेण'' ऐसा	435
2645	गाथा का विधि रूप में किस	444
2754	गाथा के पूर्वार्ध में किसका	458
2755	गाथा के उत्तरार्ध में किसका	458
2778	गाथा के पूर्वार्ध में क्या	461
3089	गाथाओं में कथित साधु	508
3144	गाथा में किस अंश से	518
3421	गाथोक्त परिणाम संसार के	556
3422	गाथोक्त परिणामों को ग्रंथ	556
3432	गाथोक्त सभी परिणाम	557
3454	गाथा में भेदविज्ञान के	560
3461	गाथा में ''णियमेण''	561
3471	गाथा में सात तत्त्व किस	562
3519	गाथा में इंद्रियसुख के	569
3544	गाथा में आदि पद का	573
3596	गाथा में ''पक्खालिय''	580
3819	गाथा में व्यंतरों और	608
3835	गाथा में ''मिच्छत्तबलेण	611
3843	गाथा में श्रावकों की	612
4041	गाथोक्त सभी परिणामों के	636
4062	गाथोक्त परिणामों में,	639

गी

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1277	गीध, चील, कौवेवत्	275
3769	ग्रीष्म योग किसे कहते हैं	602

गु

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
186	गुरु किसे कहते हैं, भेद	115
207	गुणस्थानानुसार बहिरात्मा	118
326	गुरुजन अपराधी हैं इसे	138
821	गुणकीर्तन करनेवाले के	212
937	गुण, मूलगुण, उत्तरगुण	228
1766	गुणसंक्रमण किसे कहते	334
2373	गुरुभक्ति विहीन शिष्य को	409
2374	गुरु का नाम छिपाने से	409
2381	गुरुभक्ति के बिना मुनियों	410
2382	गुरुभक्ति के बिना मुनि	410
2383	गुरु पद से किस किसको	410
2451	गुरुभक्ति के बिना क्या	418
2455	गुरु भक्ति के बिना तप	419
2781	गुरुवर्य क्या देते हैं	462
2783	गुरुवर्य किस प्रकार का	462

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2884	गुप्तियों से अघातिया कर्मों	477
3073	गुरुकुल के बिना साधु	506
3424	गुण के भेद, स्वामी और	556
3675	गुण..उत्तरगुणों में क्या अंतर	591
3700	गुणस्थानों में जानों ऐसा	594
3701	गुणस्थान किसे कहते	594
3707	गुणस्थानों की अपेक्षा इनके	594
3754	गुप्ति किसे कहते हैं कितने	600
3758	गुप्तियों का क्या फल है	600
3882	गुरु की आज्ञा नहीं	617
3894	गुणव्रत किसे कहते हैं,	619
3906	गुणव्रतों को क्यों धारण	620
3918	गुरुओं को दासी दास	621
3920	गुरुओं को कौन सी	621
3940	गुणस्थानों की अपेक्षा	624
4192	गुणहीन व्यक्ति किसे कहते	662

गू

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2898	गूढ़ रहस्य को विशेष	480
3304	गूढ़सिर किसे कहते हैं?	541
3305	गूढ़संधि किसे कहते हैं?	541
3306	गूढ़पर्व किसे कहते हैं	541

गो

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1346	गोसर्गकाल किसे कहते हैं	283
3207	गोचरी किसे कहते हैं?	526
3208	गोचरीवृत्ति किसे कहते हैं?	526
3209	गो के समान ही साधुओं को	526

गृ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
60	गृहस्थ श्रावक किसे कहते हैं	96
120	गृहस्थ के बिना मुनिधर्म	105
198	गृहस्थाचार्यों को धर्मगुरु	117
264	गृहादि का त्याग कर साधु	126
480	गृहस्थ भोजन देने मात्र से	161
595	गृहस्थ असंयमी देवी	177
967	गृहस्थ आजीविका और	233
968	गृहस्थधर्म की संतति परंपरा	233
1856	गृहस्थधर्म की यह गाथा	345
2189	गृहस्थ कौन सी उत्तर	383
2471	गृहस्थों के समान मुनियों	421
2584	गृहस्थ किसे कहते हैं,	436
2593	गृहस्थ धर्म पालन किये	438
2656	गृहस्थों के द्वारा देशना	446
2772	गृहस्थों को अधःकर्म का	461
2890	गृहस्थों को क्या शुद्धात्मा	478
3032	गृहरागी अणुव्रती और	499
3162	गृहस्थों के भेष से भिन्न	520
3170	गृहस्थों ने आहार जैसा	521
3217	गृहस्थों को बिना कष्ट दिये	528
3893	गृहस्थों के अणुव्रतों को	618
3966	गृहीत अगृहीत ये दोनों	626
3968	गृहीत अगृहीत का संक्षिप्त	627
4056	गृह परिवार के त्यागी	638

गं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1	ग्रंथनिर्माण में कितने और	90
2	ग्रंथ पद का अर्थ क्या	90
71	ग्रंथकार ने जिनको नम	98
110	ग्रंथकर्ता ने यहाँ किसको	103
810	ग्रंथकार ने विमान को	210
905	ग्रंथकारजी ने इन बाह्य	223
1107	ग्रंथकारजी ने ऐसा कथन	255
1311	ग्रंथकारजी ने सम्यग्दर्शन	278
1339	ग्रंथकारजी ने शेष आचारों	282
1474	ग्रंथांतरों में अवसर्पिणी के	299
2073	ग्रंथकारजी ने ब्रह्मचर्य	368
2730	ग्रंथकारजी ने यहाँ ज्ञाना	455
2779	ग्रंथकारजी गाथा के	461
3530	गंधर्वविवाह किसे कहते हैं	571
3593	ग्रंथकारजी ने ज्ञान को	580
3821	ग्रंथकारजी ने तिर्यंचों का	609

घा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1869	घातायुष्क सम्यग्दृष्टि किसे	347
2327	घ्राण इंद्रिय का मुंडन किस	403

घो

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2407	घोष किसे कहते हैं	414

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
	च	
409	चतुर्विध मुनिसंघ उपकरणों	149
566	चबूतरे पर विराजमान कर	173
576	चतुर्विध मुनिसंघ किसे	175
636	चक्रवर्ती की 9 निधियां	183
637	चक्रवर्ती की सेना के 6	183
638	चक्रवर्ती के 14 रत्न कौन	183
640	चक्रवर्ती का वैभव क्या	184
643	चक्रवर्ती पद क्या सुपात्र	185
1435	चक्रवर्तियों से मलेच्छ राज	293
2008	चरणानुयोग की अपेक्षा	362
2588	चरमशरीर, अचरमशरीर	437
2592	चरमशरीरी, अचरमशरीरी	437
2837	चरम द्वीचरम समयवर्ती	470
4007	चल दोष किसे कहते हैं	632
	चा	
955	चारित्र किसे कहते हैं, भेद	231
1091	चारित्र कैसे उत्पन्न होता है	252
1171	चार ज्ञानधारी गणधर श्रुत	262
1363	चारित्राचार किसे कहते हैं,	285
1902	चारों प्रकार के उपसर्ग	351
2543	चारहजार मुनि और दो	431
2687	चार, पाँच, छह और सात	450
2737	चारित्राराधना किसे कहते	456
3427	चारित्र के कितने भेद हैं	556
3590	चारित्र की अपेक्षा मोक्ष	579
3964	चारित्रगुण का परिणमन	626
	चि	
2812	चिंतन को ध्यान और	467
	चे	
405	चेतन...उपकरण क्यों कहा	148
431	चेतनाचेतन धनबल के	153
440	चेतन परमेष्ठियों की, चेतन	154
750	चेतन.....किसे कहते हैं?	201
994	चेतन स्वरूप नवदेवताओं	236
1633	चेतनादि सामग्री धर्म में	319
1634	चेतना.....ऐसा क्यों कहा?	319
2685	चेतनपाप, अचेतनपाप और	450
2946	चेतन...विषय कौन कैसे हैं	485
	चै	
556	चैत्य में/ जिनबिंब में धन	171
	चो	
1587	चोरी को पाप क्यों कहा?	313
3878	चोरी पाप किसे कहते हैं?	617
	चौ	
256	चौथे, पांचवें, छठवें गु. में	125
1480	चौर्यानंदी रौद्रध्यान किसे	299
2003	चौथे पाँचवें गुणस्थान में	361
2051	चौथे....धर्म कैसे होता है?	366
3328	चौथे से सातवें नरक तक	544
3705	चौथे...अंतरात्मा क्यों कहा	426
3979	चौथे, 5वें गुणस्थानवर्ती के	628
	चं	
51	चंवर को मंगल क्यों कहा	95
812	चंचापुरुष किसे कहते हैं	210
	छ	
47	छत्रत्रय को मंगल क्यों	95
173	छद्मस्थमुनियों के और गृह	113
716	छोटित दोष किसे कहते हैं	195
1829	छह द्रव्यों का सामूहिक	342
3308	छिन्नरुह किसे कहते हैं	541
3860	छने पानी को पीने में तथा	615
3862	छाना गया जल त्रसजीवों	615
4054	छात्र किसे कहते हैं?	638
4216	छेदोपस्थापना संयम किसे	665
	छं	
4036	छंद किसे कहते हैं और	636
	ज्	
688	ज्योतिष के माध्यम से उत्तम	190
1069	ज्वर किसे कहते हैं, भेद,	248

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3044	ज्यादा उपकरण साधु नहीं	502
3108	ज्योतिष विद्या किसे कहते	511
3111	ज्योतिषविद्या, मंत्रविद्या का	512

ज

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
81	जनम मरण आत्मा का न	99
129	'जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं'	107
136	जब ये सभी धर्मानुरूप	108
513	जघन्य साधक किसे कहते	165
543	जब इतना क्लिष्ट काल है	170
588	जलसिद्ध किसे कहते हैं?	176
897	जर किसे कहते हैं?	222
899	जमीन किसे कहते हैं?	222
901	जब ये जर आदि वस्तुयें पाप	222
941	जब जैनी इन मकारों का	229
1052	जलोदर रोग किसे कहते हैं	246
1083	जन्म के 40 या 45 दिन के	251
1111	जब परिणामों से ही इन पदों	256
1226	जब यहरौद्रध्यान लोभ	268
1276	जलूक जैसे स्वभाव वाले	275
1470	जब...उपशम भाव देता..	298
1471	जब...यह संसार कैसे हुआ?	298
1482	जब पाप पाँच और रौद्रध्यान	299
1770	जब पंचपरमेष्ठी कर्मों को	335
1982	जब ये क्षमादि चारों धर्म	359
2109	जच्चा और बच्चा किसे	372
2136	जब द्वीपायन मुनि भावलिंगी	377
2152	जब अविरतसम्यग्दृष्टि का	378
2173	जब रत्नत्रय की उत्पत्ति एक	382
2185	जब द्रव्यकर्म 8 प्रकार के	383
2289	जब छोड़ना ही है तो ग्रहण	398
2299	जघन्य पात्र किसे कहते हैं?	399
2448	जब तीर्थंकर केवली के पास	418
2582	जब परकोटा और खाई	386
2618	जब क्षपक का ऐसा स्वरूप	441
2774	जब मुनियों को सूक्ष्म दोष	461
3026	जब कर्म एक ही प्रकार का	498
3043	जब उपकरण धर्म के, मुनि	501
3100	जब ये कर्म सदा एक से	510
3150	जब चारों कषायें छठवें	518
3211	जब दाता ने शुद्धि बोल दी	526
3245	जब शरीर का ऐसा स्वभाव	532
3296	जलादि के समान पृथ्वी के	540
3309	जब प्राणों की विराधना	541
3316	जब हम हिंसा नहीं कर रहे	543
3323	जघन्य पात्रों के कितने भेद	544
3330	जघन्यपात्र सम्यग्दृष्टि नारकी	545
3799	जन्म जरा मृत्यु किसे कहते	606
3802	जब ये जन्म जरा मृत्यु के	606
3837	जब मिथ्यात्व की बंध उदय	611
3858	जब सभी प्राणी आयु के क्षय	614
3980	जब आर्त रौद्रध्यानों से	628
4022	जघन्यलब्धिवाला सम्यग्दर्शन	634
4078	जले हुए बीजवत् ही पुद्गल	642
4089	जब मिथ्यात्व अंधकार	643
4141	जब ये जड वस्तुएं हैं तो	651
4147	जब रयणसार के दो भेद हैं	653
4154	जब रत्नत्रय ही आत्मा है तो	654

जा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
552	जाति कुल और धर्म के	167

जि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
105	जिन, जिनवर और जिनवर	103
119	जिसने दिनचर्या, रोटी बेटी	105
125	'जिणेहिं' इस पद का क्या	106
222	जिनधर्म को क्यों मानता है?	120
223	जिनधर्म क्या है?	120
226	जिनधर्म और मुनिधर्म में	121
228	जिनधर्म और मुनिधर्म को	121
402	जिसने अभयदान नहीं दिया	148
403	जिसने अभयदान दिया है	148
436	जिनपूजा से जिनेंद्र पूजा को	154
443	जिनपूजा किस फल की	155
444	जिनेंद्र पूजा किस प्रकार	155
462	जिनपूजा किन भावों से	158
467	जिनपूजा का फल क्या है?	159
468	जिनपूजा का फल कहाँ प्राप्त	159
555	जिनेंद्र प्रणीत सप्त धर्मक्षेत्र	171
558	जिनबिंब क्यों बनवाना और	172
562	जिनबिंबों को गुप्त क्यों	173

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
569	जिनमंदिर और जिनबिंब	174
570	जिनमंदिर....बनवाना चाहिए	174
584	जिनयात्रा किसे कहते हैं?	176
981	जिनपूजा किसे कहते हैं	235
982	'जिन' पद से किन किन	235
1100	जिसके उच्चारण स्थान कंठ,	253
1335	जिनवचन के बिना सत्या	282
1888	जिनधर्म प्रभावना तथा आत्म	349
2226	जिसके साथ सात फेरे डाले	389
2532	जिनलिंगधारी कितने परमेष्ठी	429
2676	जिनेंद्र प्रणीत प्रवचन का	444
2720	जिनेंद्रोपदेश सबके लिए	454
3139	जिह्वा के निमित्त कौन से	517
3283	जिनकल्पी दीक्षा किन किन	537
3381	''जिण'' पद से किस किस	550
3728	जिनलिंगधारी योगी रत्नत्रय	598
4122	जिनमुद्रा किसे कहते हैं?	649
4123	जिनमुद्रा और मुनिमुद्रा में	649
	जी	
961	जीर्णोद्धार किसे कहते हैं,	232
963	जीर्णोद्धार किन किन का	233
964	जीर्णसंयमी किसे कहते हैं?है?	233
1585	जीवों के प्राणों की विराधना	313
1670	जीव द्रव्य किसे कहते हैं,	324
1705	जीवतत्त्व किसे कहते हैं?	328
1708	जीव में अजीव तत्त्व किसे	328
1709	जीवभावाश्रव किसे कहते हैं	328
1710	जीवभावबंध किसे कहते हैं?	328
1711	जीवभाव संवर किसे कहते	328
1712	जीवभाव संवर किन परिणामों	328
1713	जीवभाव निर्जरा किसे कहते	328
1714	जीवभाव निर्जरा किन	328
1715	जीवभाव मोक्ष किसे कहते	329
1823	जीव संसार में परप्रेरणा से	341
1831	जीव ने रत्नत्रय बिना कहाँ	342
2440	जीव विपाकी प्रकृति किसे	417
2444	जीवविपाकी कितनी प्रकृतियां	418
2605	जीव के बिना किस शरीर	439
2607	जीव के बिना शरीर की	440
3242	जीव कितने तत्त्व रूप	532
3414	जीवादि तत्त्व, द्रव्य, अस्ति-	555
3468	जीव को अनादि से मुक्त	562
3475	जीव तत्त्व के 7 भेद कैसे	563
3477	जीवादि तत्त्वों के बिना बहुत	563
3857	जीवदया नामक मूलगुण	614
3993	जीव संसार में कब से भ्रमण	630
3994	जीव कहाँ भ्रमण कर रहा है?	630
3995	जीव किसके साथ भ्रमण कर	630
3996	जीव क्यों भ्रमण कर रहा है?	630
3997	जीव किस रूप में भ्रमण कर	630
3998	जीव के भ्रमण का काल	630
	जु	
4016	जुगुप्सा करने से क्या हानि	633
	जे	
919	जेलपेन, डॉटपेन, स्याहीपेन	226
	जै	
319	जैनधर्म निवृत्तिप्रधान है अतः	137
320	जैनधर्म को सर्वथा प्रवृत्ति या	137
679	जैनेतरसाधुओं के वैमानिक	189
1467	जैनधर्म, जैनजाति, जैनकुल	297
1468	जैनजाति किसे कहते हैं?	297
1469	जैनकुल किसे कहते हैं	298
1724	जैसे ईंधन के जल जाने पर	329
2365	जैन और जिनेंद्र किसे कहते	408
3856	जैन अंधभक्ति क्यों नहीं	614
	जो	
321	जो गृहस्थ दानपूजा आदि	137
374	जो धर्म के, दान के योग्य	144
408	जो व्यक्ति उपकरण दान	148
580	जो शरीर से अकेले हैं उन्हें	175
723	'जो दुःखी है वह जैनी नहीं	196
898	जोरू किसे कहते हैं?	222
1031	जो भव्य प्राणी गाथोक्त फल	240
1073	जो व्यक्ति नाना प्रकार के	249
1106	जो मनुष्य गाथोक्त कार्यों को	255
2127	जो केवल अंतरंग त्याग से	375

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2256	जो कन्या मिथ्यात्व अन्याय	393
3261	जो हानि नहीं चाहते हैं	535
3410	जो उभयरत्नत्रय को नहीं	554
4161	जो इस ग्रंथ की भावना नहीं	655

झं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1586	झूंठ वचन को पाप क्यों	313
3317	झूंठ आदि पापों को नहीं	543
3875	झूंठ पाप किसे कहते हैं	616

ठ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2799	ठगविद्या के स्वामी कौन[2] हैं	465
2802	ठगविद्या क्या किसीका साथ	465

ड

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3206	डॉक्टर वैद्य की सलाह से	526

त्

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2044	त्यागधर्म किसे कहते हैं	365
2215	त्याग किसे कहते हैं?	388
2227	त्यक्ता...सौभाग्यवती कह	389
2228	त्यक्ता स्त्री और संबंधविच्छेद	390

त

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
84	त.सू. अ. 5 सू. 20 में	100
351	तत्त्वोपदेश किसे कहते हैं?	141
732	तब कोई जहाँ कहीं से भी	198
837	तब अनंतानुबंधी का सत्त्व	214
1134	तत्त्व किसे कहते हैं?	258
1364	तपाचार किसे कहते हैं भेद	285
1703	तत्त्व के सामान्यतः भेद कितने	327
1704	तत्त्वार्थ किसे कहते हैं,	327
1864	तनबल और धनबल की प्राप्ति	346
2015	तपधर्म किसे कहते हैं?	363
2018	तपधर्म के कितने	363
2043	तप का फल क्या है?	365
2119	‘तणुदंडी’ किसे कहते हैं?	374
2141	तप के साथ में चारित्र को	377
2597	तप के बिना क्या ज्ञान की	438
2738	तपाराधना किसे कहते हैं	456
2930	तब ऐसे ही लोकोत्तर	483
2991	तब आत्मा में महामलिनता	492
3165	तब साधुओं को किसके हाथ	520
3404	तप का उत्कृष्टफल मोक्ष	553
3428	तप के कितने भेद हैं	556
3472	तत्त्व सात ही होते हैं	563
3922	तप किसे कहते हैं, भेद	622

ता

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3198	तामसी भोजन किसे कहते हैं	525

ति

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1278	तिर्यंचों जैसे आचरण वाले	275
1898	तिर्यंच और देव भी उपसर्ग	350
2627	तिर्यंच तिर्यंचों को धर्मोपदेश	442
3340	तिर्यंचगति में कौन कौन	546

ती

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
40	तीर्थक्षेत्र मंगल किसे कहते हैं	94
160	तीव्र कषायवाला नहीं हो ऐसा	111
586	तीर्थक्षेत्र किसे कहते हैं?	176
597	तीन कल्याणक वाले तीर्थक्षेत्र	177
607	तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले	179
760	तीर्थंकर और अरहंतों की	203
983	तीर्थ और तीर्थवंदना किसे	235
1000	तीर्थंकर प्रभु कम और गणधर	237
1206	तीव्रक्रोध किसे कहते हैं	266
1841	तीर्थंकर प्रकृति शुभ है या	243
1842	तीर्थंकर प्रकृति को स्थितिबंध	243
1843	तीर्थंकर प्रकृति के बंध के	243
1844	तीर्थंकर प्रकृति शुभ है तो इसे	243
1877	तीर्थंकर भक्ति न कहकर	348
1909	तीन मकार और 5 उदुम्बर	352
1926	तीनों प्रकार के क्षमाधर्मों के	355
1973	तीव्रोदय, मंदोदय, मंदतरोदय,	358
2649	तीर्थंकर अरिहंतों से देशना	445
2684	तीन प्रकार के पाप कौन	450
2761	तीर्थंकरप्रकृति की सत्तावाले	459
2873	तीव्र कायक्लेश तप किसे	276
3279	तीर्थंकर प्रकृति वाले जीव	537
3326	तीसरे नरक से सातवें नरक	544
3403	तीव्र तप किसे कहते हैं और	553
3406	तीव्र तपस्वी साधु जिनेंद्र	553
3721	तीन दोष किसे कहते हैं	596

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
	तु	
383	तुष्टि पुष्टिकारक या महान	145
	ते	
363	तेरापंथादि आम्नायों के	142
	तै	
2817	तैजसऋद्धि से यदि रौद्रध्यान	467
2818	तैजसऋद्धि की प्राप्ति किन	468
	तो	
76	तो क्या ये दोनों गुणस्थान	98
83	तो फिर जनम मरण किसका	99
231	तो क्या चारों गतियों के जीव	121
334	तो फिर कौन सा ध्यान करना	139
418	तो फिर अर्थ और सामग्री	150
419	तो फिर घर घर में चौके क्यों	151
420	तो फिर दीदी चौके की शुद्धि	151
421	तो फिर दीदी आप ही	151
426	तो क्या जैनधर्म भोग	152
500	तो फिर मुनि चंद्रगुप्तजी ने	164
501	तो फिर आजकल आचरण	164
526	तो फिर सभी देवों को	167
561	तो फिर बाहुबली की मूर्ति	172
563	तो फिर समवशरण में भगवान	172
567	तो फिर कैसे मंदिर बनवाना	173
579	तो फिर सर्वत्र पहली	175
620	तो पुत्रियां माँ बाप के उपकार	181
672	तो फिर स्वामीजी ने सकल	188
676	तो फिर 14वें गुणस्थान में	189
683	तो क्या सभी भावलिंगी	189
706	तो फिर मुनियों के हाथ में	193
759	तो तीर्थंकर और अरिहंतों की	203
835	तो क्या मानव भूलों का	214
836	तो भूलों का सुधार कितने	214
839	तो क्या सभी गृहस्थों को	214
840	तो क्या सभी त्यागी व्रती	214
868	तो क्या सौ इंद्रों में से सभी	218
885	तो एकेंद्रिय जीवों के धातु	220
895	तो क्या केवल इतना ही	222
902	तो क्या केवल अंतरंग कारण	223
903	तो क्या ये तीनों दुःख रूप	223
942	तो क्या सभी संसारमार्गी	229
1086	तो फिर इन संस्कारों को	252
1102	तोतली बोली बोलने वालों	254
1162	तो क्या सभी वस्तुयें अपनी	261
1235	तो क्या ये 26 अंश सभी	269
1321	तो फिर आजकल मनुष्य	280
1429	तो कौन सी शुद्ध अर्थपर्याय	293
1447	तो उपशम भाव कर्मों को क्षय	295
1459	तो फिर मोक्ष की प्राप्ति किस	296
1518	तो क्या केवल भोजनपान से	304
1537	तो क्या इस अवस्था के पहले	306
1591	तो क्या इन अंगों के अलावा	314
1594	तो क्या ये जीव केवल स्त्रियों	315
1595	तो क्या ये जीव बाल्य, यौवन	315
1640	तो क्या सभी प्रकार का प्रमाद	321
1642	तो क्या सभी प्रमाद कषायोदय	321
1748	तो क्या सभी दूध, दही, घी	332
1752	तो क्या पाप पदार्थ में भी मन	332
1769	तो क्या सभी उत्तर प्रकृतियों	334
1771	तो फिर अशरण भावना का	335
1782	तो क्या सभी मनुष्यों का शरीर	336
1783	तो क्या सभी तिर्यंचों का	337
1784	तो क्या मोक्षमार्गी धर्मात्मा	337
1817	तो क्या केवल लोक ही अनादि	340
1855	तो फिर मुनियों के ये सप्तशील	345
1868	तो क्या शुभायु का बंध होने	346
1907	तो क्या मलेच्छखंड में केवल	351
1925	तो क्या सांख्यमत या अन्य	354
1990	तो फिर ग्रंथकारजी ने यहाँ	360
2034	तो फिर आ. कुंदकुंदजी ने तप	364
2093	तो फिर मलेच्छखंडोत्पन्नों को	370
2094	तो फिर क्या आर्यखंडोत्पन्न	370
2097	तो क्या भावपुरुषवेदी को	371
2098	तो फिर दिगंबर मुनिदीक्षा का	371
2099	तो क्या लौकिक दिनचर्या में	371
2102	तो फिर वह बहिरात्मा जीव	372
2112	तो क्या कर्मों का फल बंध	373
2124	तो कोई केवल शरीर को	375
2129	तो फिर ग्रंथकारजी ने ऐसा	376
2146	तो क्या संज्वलन कषाय के	378

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2148	तो फिर प्रत्याख्यानावरणीय	378
2158	तो फिर कर्मों का क्षय किससे	379
2191	तो फिर मूलोत्तर शेष कर्मों का	384
2213	तो क्या पुरुषों का बिना प्यार	387
2214	तो फिर क्या प्यार पूर्वक रोना	388
2219	तो फिर वैराग्य पूर्वक त्याग	388
2265	तो फिर वह क्षपक साधु किन	394
2266	तो फिर नारायण प्रति.	394
2267	तो क्या ये पद पुण्य के फल	395
2271	तो क्या क्रियायें निष्फल	395
2276	तो फिर यहाँ किस वस्तु	396
2420	तो क्या सभी वेदनायें सभी	415
2510	तो फिर अंतरंगतप में अंतिम	426
2522	तो फिर क्षायिक सम्यग्दर्शन	428
2528	तो फिर क्या करना चाहिये	429
2538	तो क्या उपादान उपादेय	431
2573	तो क्या यहाँ इन गुणधर्मों	435
2608	तो क्या जीव के बिना सभी	440
2611	तो क्या केवल कफ, गीले	440
2672	तो फिर किस प्रवचनसार	448
2704	तो क्या समस्त पापाश्रवों	452
2721	तो फिर आचार्यों ने ''सव्व	454
2722	तो कौन से जीवों को उपदेश	454
2743	तो क्या स्त्रियों में एकमात्र	456
2744	तो क्या ये मिथ्यादृष्टि	456
2763	तो फिर शास्त्रकारों ने ऐसा	460
2808	तो फिर ग्रंथकारजी ने	466
2853	तो क्या उभयश्रेणियों में ये	473
2854	तो क्या सभी विकारों के	473
2963	तो क्या विकल प्रत्यक्षज्ञानी	488
2989	तो क्या बंध का कारक	492
3022	तो क्या बालकबालिकादि	498
3090	तो फिर साधुओं को किसकी	508
3131	तो अध्यात्ममार्ग को कर्ता	515
3133	तो लोकव्यवहार सर्वथा	516
3171	तो मूलाचार में गा. 487	521
3182	तो फिर इन कालों में कौन	521
3239	तो क्या बिना आत्मा के	532
3255	तो फिर ग्रंथकारजी ने इसे	534
3299	तो क्या मोक्षमार्गी सभी	540
3373	तो क्या मोक्ष की इच्छा से	549
3513	तो क्या ये सभी विषय	568
3614	तो क्या उत्तम संहनन वाले	583
3694	तो क्या बहिरात्मा एकमात्र	593
3845	तो फिर आचार्यों ने इनके	612
3886	तो क्या मन से कामक्रीड़ा	618
3919	तो फिर कौन सी चेतन	621
4012	तो क्या सभी छद्मस्थों के	633
4027	तो फिर मिथ्यादृष्टि जीव	634
4075	तो फिर यह उदाहरण क्यों	641
4083	तो दोनों अंधकार हानिकारक	643
4090	तो क्या ऐसा सर्वथा नियम है	644
4101	तो फिर सर्वत्र सबके लिए	646
4136	तो फिर सर्वत्र ऐसा ही	651
4215	तो क्या इन पाँच नामों के	665
	तं	
845	तंत्र किसे कहते हैं?	215
	थ	
589	थलसिद्ध किसे कहते हैं	176
	द्र	
32	द्रव्य मंगल किसे कहते हैं	93
239	द्रव्य अनायतन किसे कहते	123
265	द्रव्यसंसार और भावसंसार	126
789	द्रव्यवेद और भाववेद की	207
1132	द्रव्यपाप किसे कहते हैं?	258
1144	द्रव्य में और परस्पर में ये	259
1289	द्रव्यसंज्ञा किसे कहते हैं?	276
1584	द्रव्यपाप और भावपाप किसे	313
1603	द्रव्यकषाय और भावकषाय	316
1667	द्रव्य किसे कहते हैं, भेद	324
2057	द्रव्यकर्म.....किसे कहते हैं	367
2058	द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मों	367
2133	द्रव्य संयत और द्रव्य असंयत	376
2181	द्रव्यकर्म को रोग नाम क्यों	383
2182	द्रव्यकर्म के कितने भेद हैं,	383
2183	द्रव्यकर्मोदय से भावकर्म	383
2410	द्रोण किसे कहते हैं?	414
2753	द्रव्याराधना और भावाराधना	458
2833	द्रव्यलिंगी मुनि किसे कहते	469

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3357	द्रव्य से नपंसुकवेदियों को	547
3358	द्रव्य से नपुंसकवेदी या बांझ	547
3359	द्रव्य स्त्रीवेदी और नपुंसक	548
3442	द्रव्यकर्म किसे कहते हैं?	559
3443	द्रव्यकर्म चेतन है या अचेतन	559
3566	द्रव्यमल और भावमल किसे	576
3674	द्रव्य किसे कहते हैं?	591
3677	द्रव्य गुण और पर्यायों के	591
3869	द्रव्याणुव्रत और भावाणुव्रत	616
3870	द्रव्याणुव्रतों के बिना क्या	616
3928	द्रव्य किसे कहते हैं, भेद	622

द

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
49	दर्पण को मंगल क्यों कहा?	95
1016	''दव्वहरो'' का क्या अर्थ है	240
1342	दर्शनाचार किसे कहते हैं,	282
1343	दर्शन पद से सम्यग्दर्शन को	282
1847	दर्शनविशुद्ध्यादि भावनायें	344
2166	दर्शनमोह के 3 भेदों में से	381
2433	दया किसे कहते हैं,	417
2434	दयाभाव को क्षायोपशमिक,	417
2435	दयाभाव को औदयिकभाव	417
2450	दया के बिना धर्म हो सकता	418
2960	दसवें गुणस्थान में 3 घातिया	488
3743	दरवाजा खोलकर निस्सहि	599

दा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
288	दान किसे कहते हैं?	130
289	दान के भेद कितने हैं	130
302	दान, पूजा, शील और	133
304	दानादि 4 कारणों से अनेक	133
309	दान के ही समान पूजा में	134
372	दान नहीं देने वाले को बहि	144
416	दान न देने वालों को क्या	150
469	दान का फल क्या है और	159
475	दानों में से किस दान का	160
478	दान देने से और भी दूसरे	160
870	दानी किसे कहते हैं?	219
871	दारिद्र और दरिद्री किसे कहते	219
879	दानियों के दारिद्रपना और	220
911	दान पूजा आदि पुण्य हैं,	224
1004	दान कहाँ से दिया जाता हैं?	238
1005	दान किसका दिया जाता है	238
1103	दान देते हुए भी दानियों के	254
1105	दानदाताओं में विशुद्धि न	254
2437	दान को औदयिक,	417
2766	दानपूजा आदि मंगलकार्यों	460
3926	दान किसे कहते हैं, भेद	622
3929	दाता पात्र के लिए क्या	622
3932	दान क्यों दिया जाता है,	623

दि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
158	द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन	111
2255	दिनचर्या बिगड़ने से व्रत	393
2352	दिगंबर जैन साधु केशलोंच	406
2353	दि. जैन साधु सभी मुंडनों	407
3269	दिगंबर जैन निर्ग्रंथ मुनि किसे	536
3270	दिगंबर जैन श्रावक किसे	536
3768	दिन में धूप से शरीर सिक	602
3895	दिगव्रत किसे कहते हैं	619

दी

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
417	दीदीजी! संघ में चौका लगाने	150
975	दीक्षाकल्याणक और ज्ञान.	234
2137	द्वीपायन मुनि को हिंसानंदी	377
2935	दीर्घ संसारी और अल्प	484
4042	दीर्घ संसार किसे कहते हैं	636
4130	दीक्षा किसे कहते हैं और	650

दु

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
203	दुःख भोगता है और दुःखी	117
785	दुर्जन पुरुष, दुर्जन स्त्री, दुर्जन	207
913	दुःख किसे कहते हैं	224
1207	दुष्टक्रोध किसे कहते	266
1209	दुर्भावना किसे कहते हैं	266
1211	दुःश्रुति ज्ञान किसे कहते हैं	266
1212	दुरालापी/दुष्टभाषी किसे	267
1213	दुर्भावना के स्वामी कौन	267
1216	दुर्मति ज्ञान किसे कहते हैं?	267
1324	दुर्जनों के साथ विश्वासघात	280
1497	दुष्ट बुद्धि किसे कहते हैं	301
1621	दुरभिप्राय किसे कहते हैं	317
2116	दुःख कैसे उत्पन्न होता है	374

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2333	दुर्ध्यान किसे कहते हैं, भेद	404
2981	दुर्भाग्य पाप, सौभाग्य पुण्य	490
3592	दुर्वासना का दमन कैसे हो	579
3803	दुःख हरने वाले साधनों को	606
3824	दुःशील मनुष्य किसे कहते	609
3902	दुःश्रुति अनर्थदंड और	619
4213	दुःश्रुति अनर्थदंड के कितने	665

दू

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
104	दूसरा विशेषण ''जिन'' किसे	103
1011	दूसरों के कार्यों में बाधा	239
1265	दूषण लगाने वाले को क्या	273
1266	दूषण लगाने को क्या कहते	273
1747	दूध, दही, घी के सेवन करने	332
1908	दूसरों के साथ में कैसा	351
3287	दूषित आहार पानी ग्रहण	538

दे

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
177	देव शास्त्र गुरु पर विश्वास	114
260	देव गुरु शास्त्र का या देव	126
262	देव शास्त्र और गुरु किसे	126
270	देव शास्त्र गुरु की भक्ति से	127
272	देव शास्त्र गुरु का भक्त हो	127
422	देवपूजा आदि 6 आवश्यकों	151
713	देव शास्त्र गुरु के लिए	194
971	देवार्चक किसे कहते हैं तथा	234
985	देव शास्त्र गुरु के, धर्मायतनों	236
1785	देव, नारकी और तिर्यंचों का	337
1799	देशनालब्धि किसे कहते हैं	339
2147	देशचारित्र की उत्पत्ति कैसे	378
2149	देशचारित्र और सकलचारित्र	378
2414	देश किसे कहते हैं	414
2652	देशनालब्धि किसे कहते हैं	445
2655	देशनालब्धि का क्या फल	446
2942	देह के साथ में संग्रहवाचक	485
3520	देह किसे कहते हैं, भेद और	569
3811	देवेंद्र किसे कहते हैं और	608
3896	देशव्रत किसे कहते हैं	446
3938	देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति के	619
4175	देव शास्त्र गुरु के वंदन में	658

दै

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1347	दैवसिय प्रदोष काल किसे	283
3527	दैवविवाह किसे कहते हैं?	570

दो

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
88	दोष कितने हैं और इनका	101
249	दोष किसे कहते हैं, भेद	124
598	दो कल्याणक वाले तीर्थ	177
2683	दो प्रकार के पाप कौन	450
2931	दोनों प्रकार के याचकों को	483

दं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
310	दांपत्य या अविवाहित	135
1645	दंड किसे कहते हैं, भेद	321
2891	दंड कैसे उत्पन्न होते हैं	479
2933	दंड और शल्य वाला साधु	484
3537	दंपति परस्पर में एकत्व	572

ध्

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
331	ध्यान किसे कहते हैं?	139
332	ध्यान के कितने भेद हैं	139
1725	ध्यान पर्याय का समूल	330
2637	ध्यान के लिए ज्ञानाभ्यास	444
2862	ध्यान का फल क्या है और	474
3176	ध्यान कैसे करना चाहिये	522
3501	ध्यान और स्वाध्याय में क्या	566
3962	ध्यान चारित्रगुण की पर्याय	626
3965	ध्यान को ज्ञानगुण की पर्याय	626
3975	ध्यान से समस्त कर्मों की	628
4106	ध्याता किसे कहते हैं?	647
4107	ध्याता वैराग्यवान होना	647
4108	ध्याता तत्त्वज्ञानी हो ऐसा	647
4109	ध्याता निर्ग्रंथ हो ऐसा क्यों	647
4110	ध्याता समभाव वाला हो	647
4113	ध्याता अहिंसा आदि व्रतों	647
4114	ध्याता हिंसादि पापों का	647
4115	ध्याता सभी प्रकार के हिंसा	648
4148	ध्यान और सामायिक में क्या	653

ध

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
39	धर्मक्षेत्र मंगल किसे कहते हैं	94
123	धर्मोपदेश में ऐसा क्रम क्यों	105

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
159	धर्माचरण का पालक मिथ्या	111
364	धर्मोपदेश स्वाध्याय किसे	142
398	धर्मशिक्षा किसे कहते हैं	147
551	धर्म के विरुद्ध धनोपार्जन के	171
614	धर्माचार्य और गणिनी	180
624	धर्मपत्नी किसे कहते हैं?	182
628	धनधान्य की प्राप्ति को	182
714	धर्मायतनों की चटाई आदि	195
824	धर्म किसे कहते हैं और धर्म	212
889	धनधान्य आदि सामग्री की	221
987	धर्मायतन किसे कहते हैं,	236
1013	धर्मादाद्रव्य के अपहरण	239
1108	धर्मकार्यों को न करने से	255
1139	धर्म किसे कहते हैं	258
1546	धर्मध्यान किसे कहते हैं?	308
1549	धर्मध्यान के कितने भेद हैं	308
1551	धर्मध्यान किसके होता है	308
1593	धर्मपत्नि के साथ मैथुनसेवन	314
1680	धर्मद्रव्य किसे कहते हैं?	325
1839	धर्म और धर्मभावना किसे	343
1910	धर्म/ पुण्य किसे कहते हैं	352
2229	धर्मदृष्टि से सधवा स्त्री	300
2231	धर्मदृष्टि से विधवा किसे	300
2251	धर्मदृष्टि से कुंवारिका को	392
2258	धर्म के बिना क्या पुरुषों	392
2640	धर्मध्यान....किसे कहते हैं	444
2641	धर्मध्यान....नहीं होता है?	444
2650	धर्मदेशना और देशनालब्धि	445
2651	धर्मदेशना किसे कहते हैं	445
2668	धर्मक्षेत्रों के बिना शेष क्षेत्रों	448
2784	धर्मोपदेश के लिए तीन	462
2785	धर्मोपदेश किसे देना चाहिये	462
2786	धर्मोपदेश देने का यह क्रम	462
2787	धर्मोपदेष्टा कुशल होना	463
2788	धर्मोपदेष्टा कुशल योगी को	463
3006	धनवृद्धि के कारणभूत	495
3027	धन धान्य किसे कहते हैं?	498
3028	धन धान्य क्यों ग्रहण किये	498
3085	धनी का, ट्रस्टिओं का सेवक	508
3191	धर्मोपदेश करना चाहिये या	524
3779	धर्म संबंधित सामग्री को	603
3981	धर्मध्यान...ही होती है?	828
4173	धर्मादाद्रव्य हर्ता को क्या क्या	657
4174	धर्मादाद्रव्य खानेवाला कौन	658
4177	धर्मकार्यों में विघ्न डालने से	658
4189	धर्मात्माओं को देखकर	661
4190	धर्मात्मा किसे कहते हैं	661

धा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
131	धारण, पालन, पोषण किसे	108
1008	धार्मिक बोलियों से प्राप्त धन	238
3222	धातु और उपधातु किसे	529

न्

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
369	न्याय, व्याकरण, भौतिकशिक्षा	143
2678	न्याय व्याकरणादि भाषाओं	449
3189	न्यायव्याकरण, नाट्यशास्त्रादि	523

न

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
587	नभसिद्ध किसे कहते हैं?	176
989	नरकायु के आश्रवभूत बह्वा	236
992	नरकायु के विरुद्ध अल्पारंभ	236
1496	नष्ट बुद्धि किसे कहते हैं	301
2419	नरकों में निसर्गज सम्यग्दर्शन	415
2626	नरक और तिर्यंचों में	442
2670	नरक और स्वर्ग में कितने	448
2855	नवीन बंध के लिए नवीन	473
3042	नरकों में, भोगभूमि में,	501
3329	नरकों में नारकी रत्नत्रय	544
3812	नरेंद्र किसे कहते हैं?	608
4030	नय किसे कहते हैं?	635

ना

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
30	नाम मंगल किसे कहते हैं?	93
944	नामनिक्षेप का क्या महत्त्व है	229
945	नामनिक्षेप....उदाहरण है?	229
946	नामनिक्षेप को सही नहीं	230
947	नामनिक्षेप के भेद कितने	230
948	नामनिक्षेप को यदि अपूज्य	230
949	नामनिक्षेप को केवल लोक	230
3324	नारकी जघन्य पात्र कैसे हो	544
3325	नारकी तीनों दान कैसे ग्रहण	544

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3331	नारकी मध्यम उत्तमपात्र	545
4037	नाटक किसे कहते हैं, किन	636

नि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
22	निबद्ध मंगल किसे कहते हैं	92
36	निर्वाणक्षेत्र मंगल किसे	94
101	निकल परमात्मा के माध्यम	102
172	निश्चय सम्यग्दर्शन किसे	113
377	निर्माल्य द्रव्य को पुत्री	144
545	निर्वाण पद को कौन से	170
546	निर्वाण पद की प्राप्ति साक्षात्	170
547	निर्वाण पद किसे कहते हैं?	170
592	निर्वाणक्षेत्र किसे कहते हैं?	177
712	निर्माल्य वस्तु किसके भोग्य	194
744	निर्दोष औषधि दान में देना	200
746	निराकुलतामय स्थान शयन	200
752	निश्चय और व्यवहार मोक्ष	201
986	निर्माल्य द्रव्य को खाने से	236
988	निर्माल्य....ने क्यों बताया?	236
995	निर्माल्य द्रव्य खाने वाले	237
1001	निर्माल्य द्रव्य किसे कहते हैं	238
1002	निर्माल्य द्रव्य किसके समान	238
1096	निर्दोष सम्यग्ज्ञान किसे	253
1153	नित्य किसे कहते हैं	260
1261	निरपराधी किसे कहते हैं	272
1262	निरपराधी युद्ध क्यों करता	272
1358	निह्नव और अनिह्नव का क्या	284
1493	निदान आर्तध्यान किसे	301
1494	निदान...से उत्पन्न होता है	301
1803	निर्जराभावना किसे कहते हैं	339
1804	निर्जरा किन परिणामों से	339
1805	निर्जरा किस प्रकार से होती	339
1810	निर्जरा का क्या फल है	340
1851	निरतिचार व्रत किसे कहते	344
2025	निकटभव्य/आसन्नभव्य जीव	363
2033	निकट भव्यता कितने प्रकार	364
2104	निदान पूर्वक इंद्रिय सुख का	372
2113	निदानबंधक साधु मोक्ष के	374
2247	निर्वाण क्रिया किसे कहते	392
2369	निष्कपट, निःस्वार्थ भाव	408
2513	निज शुद्धात्मा कर्मों के	426
2559	निज तत्त्व की उपलब्धि	434
2560	निज तत्त्व की उपलब्धि	434
2570	निज तत्त्व की प्राप्ति के बिना	434
2643	निर्जरा और मोक्ष में क्या	444
2834	निषेध रूप में मुनिराज	469
2865	निमित्त नैमित्तिक संबंध	474
2867	निमित्त और नैमित्तिक किसे	474
2906	निदान शल्य किसे कहते	480
3274	निर्ग्रंथ मुनि किसे कहते	536
3370	निरीहवृत्ति किसे कहते हैं	549
3408	निश्चय रत्नत्रय किसे कहते	554
3459	निज शुद्धात्मा में रुचिवाले	561
3460	निर्वाण किसे कहते हैं?	561
3462	निज शुद्धात्मा में रुचिवाले	561
3496	निजात्म ज्ञान किसे कहते हैं	566
3497	निजात्म ध्यान किसे कहते	566
3498	निजात्मध्यान को धर्मध्यान	566
3499	निजात्म अध्ययन किसे	566
3500	निजात्म अध्ययन कितने	566
3503	निजात्म ज्ञान, ध्यान और	566
3574	निष्फल स्वप्न कौन होते	577
3587	निजात्मा का भोग करने	578
3633	निकल परमात्मा के कितने	585
3663	निमित्त नैमित्तिक संबंध	589
3664	निमित्त नैमित्तिक किसे	589
3720	निषेध रूप में ये योगी कैसे	596
3740	निस्सहि करण किसे कहते	598
3982	निर्जरा किसे कहते हैं और	628
3987	निपुण व्यक्ति किसे कहते हैं?	629
3988	निपुण व्यक्ति ही संयम का	629
4029	निक्षेप किसे कहते हैं	635
4218	निर्विकल्पध्यान संबंधी	665

नी

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
649	नीचकुल, हीनकुल, विकृत	185
650	नीचकुल किसे कहते हैं	185
1030	नीचगोत्र कर्म का आश्रवबंध	242
1501	नील लेश्या किसे कहते हैं	301

ने

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1067	नेत्ररोग किसे कहते हैं	248

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2356	नेता पद कैसे प्राप्त होता है	407
3685	नेता कितने प्रकार के होते	592
	नो	
3446	नोकर्म किसे कहते हैं तथा	559
3649	नोसंसार किसे कहते हैं	587
	नौ	
1832	नौवें ग्रैवेयिक पर्यंत जन्म	342
	निं	
2791	निंदा किसे कहते हैं, स्वामी	464
2798	निंदा और वंचना में क्या	465
	प्	
1057	प्लीहा रोग और यकृत	246
	प्र	
91	प्रमादी छद्मस्थ जीवों में	101
94	प्राणियों के मनोनुकूल	102
134	प्रवर्तक किसे कहते हैं	108
280	प्रतिज्ञा छोड़ना और छूटना	119
314	प्रमादी 3 परमेष्ठियों ने इन	135
415	प्रतिफल के लिए दान देना	150
602	प्रतिष्ठा किसे कहते हैं?	178
603	प्रतिष्ठाओं के कितने भेद हैं?	178
701	प्रसाद सबको मिलके खाना	192
707	प्रश्न नं. 705 और 706 में	192
858	प्रिय वचन किसे कहते हैं	217
973	प्रतिष्ठा क्यों की जाती है	234
978	प्रतिष्ठा किस किसकी की	235
1179	प्राप्त होने के बाद में यदि	263
1228	प्र. बारहसौछव्वीस और प्र.	268
1407	प्रतिपात किसे कहते हैं?	291
1641	प्रमाद किसके उदय से	321
1882	प्रवचन, प्रवचनभक्ति और	348
1887	प्रभावना कितने प्रकार की	349
1889	प्रवचनवत्सलत्व भावना	349
1890	प्रवचन पद से देव शास्त्र	349
1891	प्रवचन पद से रत्नत्रयधर्म	349
1893	प्रमोदभावना किसे कहते हैं	349
2010	प्राणीसंयम किसे कहते हैं	362
2393	प्राणियों की कुछ क्रियायें	412
2454	प्रसंशक अच्छा होता है या	419
2467	प्रमादी जीव इंद्रिय सुख में	421
2469	प्रमादी सरागी जीव विषय	421
2473	प्रमादीमुनि इंद्रियविषयों में	422
2674	प्रवचनसार किसे कहते हैं	449
2691	प्रमाद और कषाय किसे	451
2692	प्रमाद और कषाय में क्या	451
2911	प्रेम शल्य किसे कहते हैं,	481
2970	प्रमाद का अस्तित्व कार्यरूप	489
2978	प्रतिपात और छूटने में क्या	490
3025	प्रमत्तमुनियों के केवल	498
3088	प्रमादी गृहस्थों के द्वारा	508
3402	प्र.सा. गा. 80 में केवल	553
3581	प्रमादी मध्यम अंतरात्मा	578
3714	प्रतिमाजी से मौन पूर्वक	595
3783	प्रमत्तसंयत मुनि के 24	604
3785	प्रमत्त संयतमुनि को शुद्धो	604
3787	प्रमत्तसंयत मुनियों के 34	604
3788	प्रमत्तसंयत मुनियों के ये	604
3792	प्रमत्तसंयत मुनियों के 28	605
3793	प्रमत्तों के 34 उत्तरगुणों	605
3839	प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन	612
3903	प्रमादचर्या अनर्थदंड और	619
3925	प्रतिमा(व्रत) किसे कहते हैं	622
4031	प्रमाण किसे कहते हैं	635
4046	प्रतिमा(मूर्ति) किसे कहते	637
4095	प्रवचन और... किसे कहते	644
4096	प्रवचनसार का अर्थ आ. श्री	644
4098	प्रवचनसार के अभ्यास का	645
4099	प्रवचनसार का अभ्यास	645
4214	प्रमादचर्या....कितने भेद हैं	665
	प्रा	
1800	प्रायोग्यलब्धि किसे कहते	339
3529	प्राजापत्य विवाह किसे कहते	570
3560	प्राप्त करने में और जानने	575
3909	प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत किसे	620
	प	
97	परमात्मा कैसे बनते हैं?	102
98	परमात्मा के कितने भेद हैं	102

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
375	पतंगा किसे कहते हैं	144
730	पश्चादानुपूर्वी किसे कहते हैं	198
851	परिचर्या किसे कहते हैं और	216
853	पक्षपात किसे कहते हैं, भेद	216
907	पशुपक्षियों के जर जोरू	223
1115	पतन में सहायभूत कौन से	256
1123	पराधीन परतंत्र किसे कहते	257
1124	पराधीन व्यक्ति की दिनचर्या	257
1294	परिग्रहसंज्ञा किसे कहते हैं?	276
1295	परिग्रहसंज्ञा और परिग्रहपाप	276
1297	परलोकसंज्ञा किसे कहते हैं?	277
1320	पशु पक्षी ऐसे रोगी पैदा क्यों	280
1416	पर्यायों के कितने भेद हैं,	291
1476	'पउरा' प्रचुर मात्रा में इस	299
1481	परिग्रहानंदी रौद्रध्यान किसे	299
1526	'परिचय प्राप्त किया है' इस	305
1598	परिग्रह को पाप क्यों कहा	315
1611	पक्षपाती किसे कहते हैं,	316
1614	पक्षपात को अशुभ क्यों	317
1615	पक्षपात अशुभ होने से	317
1739	पदार्थ किसे कहते हैं, भेद	331
1848	पच्चीस मलदोषों के त्याग	344
2107	पहले जन्म देते समय कष्ट	372
2117	परलोक दृष्टि मिथ्यादृष्टि किसे	374
2209	परस्पर में प्यार, वात्सल्य न	387
2225	पति किसे कहते हैं	389
2257	पति के बिना महिलाओं की	393
2359	पथनायक किसे कहते हैं?	407
2362	पति कैसा होना चाहिये	408
2411	पत्तन किसे कहते हैं?	414
2571	परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन की	435
2578	परमावगाढ़सम्यग्दर्शन की	435
2612	परिग्रह कैसे होता हैं?	440
2806	परीषह और उपसर्ग में क्या	466
2835	परिग्रहधारी को मुनि क्यों	470
2949	पत्नि किसे कहते हैं?	486
2980	पतन किस कारण से होता	490
3004	पशुबलि नरबलि क्यों की	494
3014	परिवार नियोजन, गर्भ निरोध,	496
3018	पशुपक्षी मारकर नहीं खाये	497
3121	परिग्रह में आसक्त साधु होते	513
3149	परिग्रह संज्ञा के कितने भेद	518
3168	पर्याप्ति किसे कहते हैं, भेद	521
3363	''पत्तंत्तरं'' पात्रांतर किसे कहते	548
3426	परीषह और परीषहजय किसे	556
3438	''परलोये'' इस पद में ''पर''	558
3490	परमात्मा कैसे हैं?	565
3536	पत्नि को आत्म स्वरूप मानने	572
3630	परमात्मा कैसे होते हैं?	585
3631	परमात्मा के प्रकारांतर से	585
3676	पर्याय किसे कहते हैं?	591
3678	परसमय किसे कहते हैं?	591
3703	पहले से तीसरे गुणस्थान	594
3709	परमात्मा किसके क्षय से	595
3710	परमात्मा साकार है या	595
3742	पहरेदार गुप्त है तो वहाँ	599
3748	परमेष्ठी किसे कहते हैं,	600
3810	परमात्मपद की प्राप्ति किससे	608
3844	परंपरागत जैनों को मद्य	612
3889	परिग्रह के कारण कौन कौन	618
3890	परिग्रहप्रमाणाणुव्रत किसे	618
3950	परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन	624
4102	परमात्मा का ध्यान कौन	646
4103	परमात्मा के ध्यान का क्या	646
4118	''परमप्पज्झाण'' पद का	648
4128	परमोपेक्षा संयम किसे कहते	649
4139	परम रसायन किसे कहते हैं	651
4171	पच्चीस मलदोष कौन कौन	657

पा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
133	पाठक किसे कहते हैं?	108
423	पापात्मकचर्या का त्याग	151
481	पात्र के सामने आने पर	161
525	पापीजीव और पुण्यजीव कौन	167
609	पात्रविशेष होने से दानों में	179
610	पात्रों की अपेक्षा दान के	179
1048	पांडुरोग किसे कहते हैं	245
1065	पाददाह पैरों के तलवों	247
1131	पाप किसे कहते हैं, भेद	258
1499	पापिष्ट किसे कहते हैं	301
1583	पाप का कार्य क्या है, विशेष	313

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1744	पाप के परिणाम और इनका	332
1745	पापोदय से..नहीं मिलता है	332
1746	पापोदय से....प्राप्त होता है	332
1793	पाप का संवर किन परिणामों	338
2242	पारिव्राज्य क्रिया किसे कहते	391
2681	पाप का फल एवं अन्य भेद	450
2689	पाप के 11, 12, 13, 14,	451
2690	पाप के 16, 17, 18, 19	451
2694	पापारंभ किसे कहते हैं	451
2697	पाप संरंभ किसे कहते हैं?	452
2700	पाप समारंभ किसे कहते हैं?	452
2705	पाप कैसे बढ़ता है और पुण्य	452
2932	पाप रूप दंड और शल्यवान	483
3051	पाप के दो भेद और स्वामी	503
3052	पाप और महापाप में क्या	503
3053	पापों और महापापों की	503
3115	पापारंभ किसे कहते हैं?	513
3118	पापों के त्यागी महाव्रतियों	513
3293	पानी में त्रसजीवों का जन्म	539
3320	पात्र और दाता किसे कहते	544
3321	पात्र और दाता के कितने	544
3322	पात्रों..ये भेद क्यों हो गये हैं	544
3353	पात्रता की प्राप्ति किन	547
3364	पात्रों के ये भेद किसने कहे	548
3395	पारदर्शी दर्पण के समान	552
3859	पानी छानकर पीने को	615
3861	पानी छानकर और छने	615
3899	पापोपदेश अनर्थदंड तथा	619
3930	पात्र दाता से क्या ग्रहण	622
3935	पानी...से क्यों गिनाई है	623
4058	पास में होने पर भी बिना	639
4063	पार्श्वस्थ आदि ये पाँच मुनि	639
4064	पार्श्वस्थमुनि किसे कहते हैं	640
4191	पात्रविशेष और अपात्र	661
4210	पापोपदेश अनर्थदंड के	664
	पि	
1242	पिशुनता या चुगलखोरी	270
2912	पिपासा शल्य किसे कहते	481
	पी	
1632	पीड़ा के साधन कौन कौन	319
3035	पीछी का प्रयोग किन किन	499
4059	पीछी किसे कहते हैं इसमें	639
	पु	
137	'पुव्वाइरियक्कमजं' तथा 'तं	108
616	पुत्र प्राप्ति को सुपात्रदान का	180
618	पुत्रपुत्री किसे कहते हैं, भेद	180
619	पुत्री की प्राप्ति को सुपात्रदान	181
786	पुरुष किसे कहते हैं	207
1128	पुण्य की प्राप्ति किन हेतुओं	268
1679	पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं	325
1740	पुण्य से किसकी प्राप्ति होती	331
1794	पुण्य का संवर किन	338
2409	पुर किसे कहते हैं	414
2441	पुद्गलविपाकी प्रकृति किसे	418
2445	पुद्गलविपाकी कितनी प्रकृति	418
2698	पुण्यसंरंभ किसे कहते हैं	452
2701	पुण्य संरंभ का फल क्या है	452
2702	पुण्यसमारंभ किसे कहते हैं?	452
2707	पुण्यारंभ प्रवृत्ति किसे कहते	453
2710	पुण्यारंभ प्रवृत्ति में विधि और	453
2712	पुण्यारंभ प्रवृत्ति के कितने	453
2715	पुण्य का आश्रव किन	453
3271	पुलाक मुनि किसे कहते हैं	536
3538	पुत्र को आत्म स्वरूप मानने	572
3539	पुत्र को धर्मसंतान क्यों	572
3561	पुनः इस गाथा में बहिरात्मा	575
3665	पुण्य के साथ में प्रशस्त	589
3717	पुनः पथनायक का कथन	596
4038	पुराण किसे कहते हैं	636
	पू	
295	पूजा किसे कहते हैं और	131
297	पूजा के भेद कितने हैं और	132
458	पूजादान करने वाला	158
474	पूजा और दान से किसको	160
703	पूजन के लिए तैयार की गई	192
720	पूर्व योजनानुसार भोजन	195
729	पूर्वानुपूर्वी किसे कहते हैं	197

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
882	पूर्वबद्ध कर्मोदय से प्रमादी	220
1006	पूजादान...में क्या अंतर है	238
1007	पूजादान...करना चाहिये	238
1009	पूजादान...को प्राप्त होता है	239
1010	पूजा, दान के द्रव्य को चुराने	239
1012	पूजा..दारिद्रपना क्यों प्राप्त..	239
1015	पूजा..लंगड़ा क्यों होता है	239
1017	पूजा...पैदा हो सकता है...	240
1018	पूजा...गूंगा क्यों होता है	240
1019	पूजा...बहरा क्यों हो जाता..	240
1020	पूजा..अंधा क्यों हो जाता है	240
1021	पूजा..अवस्थाओं को क्यों..	240
1029	पूजा..चांडालादि में क्यों..	242
1035	पूजा...हाथ रहितावस्था...	243
1036	पूजा..पैर रहित अवस्था...	243
1536	पूर्ण एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा	306
2067	पूर्ण निर्दोष उत्तम ब्रह्मचर्य	367

पृ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
360	पृच्छना स्वाध्याय किसे कहते	142
805	पृथ्वी ही सभी रूप में	209
3193	पृच्छना, अनुप्रेक्षा और	524

पै

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2344	पैरों का मुंडन करने को	405
3532	पैशाच विवाह किसे कहते हैं	571

पं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
296	पंचामृत अभिषेक के संबंध	131
455	पंचसूना पाप करते हुए	157
482	पंचाश्चर्य कौन कौन हैं	161
596	पंचकल्याणक वाले तीर्थ	177
977	पंडितवर्ग कल्याणकों के	235
997	पंडितवर्ग ने इस पाप को	237
1077	पंचमकाल में मनुष्य	250
1078	पंचमकाल किसे कहते हैं	250
1340	पंचाचार के नाम कौन कौन	282
1367	पंचाचारों का पालन कराना	285
1523	पंचेंद्रियों में भी सैनी जीवों	305
1524	पंचेंद्रिय सैनी और असैनी	305
1557	पंचमकाल के अंत तक रहने	309
2319	पाँचों इंद्रियों का मुंडन किस	402
2331	पाँचों इंद्रियों का मुंडन करने	403
2664	पाँचों इंद्रिय और मन की 28	447
2667	पंचमकाल में अध्ययन को	448
3180	पंचमकाल में शुक्लध्यान	522
3214	पंक्तिबद्ध घरों के बिना आया	527
3278	पंचमकाल के प्रारंभ में ये	537
3383	पंचपरमेष्ठियों को नहीं जानने	551
3384	पंचपरमेष्ठियों को किस प्रकार	551
3385	पंचपरमेष्ठियों को जानने से	551
3846	पाँच उदुम्बर फलों के त्याग	613
3851	पंचपरमेष्ठियों की भक्ति करने	614

फ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
497	फल में अंतर न होने से	163
601	फल प्राप्त होना और	178
3573	फलवान स्वप्न किसे कहते	577
3867	फसल की रक्षा पक्षियों	616

फि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
294	फिर इन वस्तुओं के देने	131
1425	फिर इन सभी भावों को	292

ब्र

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2064	ब्रह्मचर्यधर्म किसे कहते हैं	367
2069	ब्रह्मचर्यधर्म कौनसा भाव है	367
2075	ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कहाँ	368
2530	ब्रह्म के साथ में "पर"	429
3526	ब्रह्मविवाह किसे कहते हैं	570
3887	ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं	618

ब

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
206	बहिरात्मा क्या सिद्ध प्रभु को	118
208	बहिरात्मावस्था को जानकर	119
209	बहिरात्मा के त्यागी को क्या	119
528	बद्धायुष्क जीवों को सुपात्र	167
896	बहिरंग परिग्रह किसे	222
990	बहुआरंभ किस प्रकार से	236
1269	बंदर स्वभावी मनुष्य	274
1355	बहुमानाचार किसे कहते	284
1378	"बहुलालावं" अधिक प्रलाप	287
1881	बहुश्रुत भक्ति और बहुश्रुत	348

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2101	बहिरात्मा जीव बाह्य भेष	372
2105	बहिरात्मा जीव विषयसुख	372
2106	बहिरात्मा जीव बाह्य भेष	372
2489	बलात्कार किसे कहते हैं	424
3272	बकुश मुनि किसे कहते हैं	536
3488	बहिरात्मा किसे कहते हैं	565
3546	बहिरात्मा कहाँ और कैसे	573
3568	बहिरात्माओं को समझाने के	576
3569	बहिरात्माओं की इंद्रिय	576
3618	बहिरात्मपने के संपूर्ण भावों	584
3623	बहिरात्मावस्था को जानकर	584
3624	बहिरात्मपने को छोड़कर	585
3625	बहिरात्मपने के भाव कौन	585
3638	बहिर्मुखी परिणाम किसे	586
3704	बहिरात्मा के भेद और	594
4025	बहुत बोलने से क्या ऐसा	534
	बा	
515	बाराती और घराती किसे	166
724	बाह्य मौसम और शरीर की	196
818	बाह्य में निंदा और प्रसंशा	211
820	बाहर में गुणकीर्तन किया	212
962	बार बार अभिषेक करने से	232
969	बालयति तीर्थंकरों के समान	233
1596	बालक बालिकाओं का	315
2019	बाह्यतप के कितने भेद	363
2487	बाह्य वृत्तिपरिसंख्यान तप के	424
2520	बाह्यपरिग्रह का त्याग मुनि	427
2966	बाह्य कार्यों में जागने वाला	488
3021	बालक...पापाश्रव होता है	498
3778	बाह्य परिग्रह किसे कहते	603
3781	बाह्याभ्यंतर परिग्रह इतना ही	604
3784	बाह्याभ्यंतर परिग्रह के	604
4172	बारहभावना, 5 अतिचार के	657
4217	बाह्यचर्या संबंधी छेदो...	656
	बि	
117	बिना गृहस्थ बने मुनि	104
491	बिना सोचेसमझे आहार	163
574	बिना कीमत पठनार्थ धर्म	174
575	बिना कीमत के स्वाध्याय	175
1333	बिना ज्ञान के यह जीव	284
2212	बिना स्नेह के महिलाओं का	387
2218	बिना वैराग्य के त्याग को	388
2542	बिना आत्मा के पहंचाने	431
2580	बिना परकोटे के राजा की	436
3237	बिना आत्मा के शरीर की	531
3238	बिना शरीर के क्या आत्मा	532
3605	बिना कीटाणओं के भूंख	582
3745	बिना बताये विहार कर	599
4117	बिना संहननधारियों के भी	648
	बी	
86	बीमारियां स्थिर अस्थिर नाम	101
3945	बीजसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे	624
	बु	
1215	बुद्धि पूर्वक और अबुद्धि	267
	बे	
382	बे-लगाम घोड़े की तरह	145
	बो	
1830	बोधिदुर्लभ किसे कहते हैं?	342
1838	बोधिदुर्लभ भावना किसे	34
	बं	
1528	बंध किसे कहते हैं और	305
1529	बंध के भेद और नाम कौन	305
2030	बंध कराने वाले अभ्यंतर	364
3352	बंधापसरण किसे कहते हैं	547
	भ	
69	भ. महावीर का कितने नामों	97
127	'भणियं' इस पद का क्या	107
218	भविष्य में अपनी आत्मा को	120
246	भय किसे कहते हैं, कितने	124
247	भयों के 28 और 112	124
276	भव भ्रमण की सीमा	128
542	भरत ऐरावत क्षेत्रों के	169
923	भद्र....दीक्षा ले सकता है	227
924	भद्र......किसे कहते हैं	227
925	भद्रपरिणामी..सकता है क्या	227
926	भद्र.... मिथ्यादृष्टि क्यों कहा	227

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1051	भगंदर रोग किसे कहते हैं	246
1053	भस्मक रोग किसे कहते हैं	246
1164	भव्य किसे कहते हैं	261
1292	भयसंज्ञा किसे कहते हैं	276
1758	भरयौवन को अंजुली के	333
1900	भक्त श्रावक या शिष्यगण	351
2204	भक्ति किसे कहते हैं और	386
2206	भक्ति के बिना विनय करना	386
2368	भक्ति कौन और क्यों करता	408
2430	भक्ति के बिना दान को व्यर्थ	416
2443	भवविपाकी प्रकृति किसे	418
2447	भवविपाकी कितनी प्रकृतियां	418
2782	भक्तगण आदिकों की प्रार्थना	462
3147	भयसंज्ञा के कारण और	518
3413	भगवान के कहने से इस	554
3415	भव्यसेन (अभव्यसेन) मुनि	555
3818	भवनवासी देवों को कहाँ से	608
3853	भक्त किसे कहते हैं?	614
3854	भक्ति के कितने भेद हैं, नाम	614
4206	भव्यवरजीव शीघ्र ही मोक्ष	664
4207	भव्य के साथ ''वर''	664

भ्रा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
710	भ्रामरीवृत्ति किसे कहते हैं	194
2549	भ्रांति किस कारण से होती	432
3218	भ्रामरीवृत्ति किसे कहते हैं	528
4001	भ्रमण करते हुये सम्यग्दर्शन	631

भा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
33	भाव मंगल किसे कहते हैं	93
240	भाव अनायतन किसे कहते	123
424	भावात्मक पापों का त्याग न	152
536	भारत से बाह्य शेष देशों को	168
685	भावलिंगी मुनियों के भी	190
890	भाग्य और पुरुषार्थ किसे	890
1094	भावों से चारित्र की विशुद्धि	253
1099	भाषा की उच्चारण संबंधी	253
1133	भावपाप किसे कहते हैं?	258
1251	भाग्य और...में क्या अंतर है	271
1252	भाग्य और पुरुषार्थ के भेद	271
1290	भाव संज्ञा किसे कहते हैं	276
1590	भाव स्त्रीवेदियों के शरीर	314
1627	भावात्मक विकथा किसे	319
2054	भावकर्म चैतन्य विकार	366
2096	भावनपुंसक और भावस्त्री	371
2556	भावना और ज्ञान में क्या	433
2851	भावी नैगमनय से प्राप्त होते	472
2857	भाग्य और पुरुषार्थ में कौन	473
2992	भाग्य....और कौन बड़ा है	492
3105	भाग्य....क्या एक ही है	511
3444	भाव कर्म किसे कहते हैं	569
3713	भावात्मक हितोपदेशीपना	595

भि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
192	भिन्न गुरु किसे कहते	116
3268	भिक्षु किसे कहते हैं, भेद	536
4142	भिन्न वस्तुओं से सुख दुःख	652

भु

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1392	''भुल्लो'' भूला हुआ किसे	289
1393	''भुल्लो'' पागल या भुलक्कड़	289

भू

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
217	भूतकाल में अपनी आत्मा	120
830	भूल को सर्वथा अनादि	213
831	भूल को एक जीव की	213
832	भूल के भेद, नाम और	213
1508	भूतकाल वालों को उपदेश	303
2304	भूमि, महिला और स्वर्ण	400
3112	भूतकविद्या के द्वारा	512
4155	भूतभावी अर्थव्यंजन पर्यायों	654

भे

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2457	भेदविज्ञान किसे कहते हैं	420
2458	भेदविज्ञान क्यों करना	420
2459	भेदविज्ञान करने को क्यों	420
2628	भेदविज्ञान कैसे होता है	443
3681	भेद विज्ञानी जीव किसको	592

भो

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
182	भोग किसे कहते हैं और	114
268	भोगों के त्याग का क्या अर्थ	127
379	भोजनपान की सामग्री का	144
425	भोग न भोगने वालों को	152

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
516	भोगभूमि किसे कहते हैं	166
519	भोगभूमियों के कितने भेद	166
523	भोगभूमियों में कौन कौन	167
541	'भोगसग्गमही' को अखंड	169
625	भोगपत्नी किसे कहते हैं?	182
626	भोगपत्नी की प्राप्ति को	182
826	भोग के निमित्त पुण्य किसे	212
1129	भोग के निमित्त पुण्य का	258
1516	भोगेंद्रिय किसे कहते हैं	304
1519	भोग और उपभोग किसे	304
1742	भोग के निमित्त पुण्य किसे	332
3344	भोगभूमिज तिर्यंच जघन्य	546
3666	भोग के निमित्त पुण्य का	590
3668	भोग निमित्तक पुण्य के साथ	590
3910	भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत	620
4197	भोगभूमिजों में सम्यग्दर्शन	662

भौ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1334	भौतिकज्ञानी जीव क्या बाह्य	282

भं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
741	भूंख से उदर को कितना	200
1257	भंडण किसे कहते हैं, भेद	272
2217	भूंख हड़ताल करने को धर्म	388
2922	''भंडण'' किस कारण से	482
3166	'भुंजेइ जहा लाहं' दिगंबर	521

म

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
13	मन वचन काय की चर्या के	91
140	मतिज्ञान किसे कहते हैं	109
233	मद किसे कहते हैं, कितने	122
234	मद के 8, 32 आदि भेद	122
287	मरण के कितने भेद हैं,	129
435	मनोबल के टूटने पर भी	153
512	मध्यम पात्र किसे कहते हैं	165
540	मलेच्छ और मलेच्छाचरण	169
630	मकान वाहनादि सुपात्रदान	182
751	मध्यम जघन्य पात्रों को	201
874	महाश्री किसे कहते हैं	219
878	महावैभव किसे कहते हैं	220
914	मनोनुकूल सामग्री के मिलने	225
921	मन के बिना व्रत, गुण और	226
956	मन के बिना इन सबको	231
1042	मनुष्यों में इंद्रिय विकलता	244
1176	मनोनुकूल सामग्री को इष्ट	262
1178	मन के प्रतिकूल सामग्री को	263
1617	मनुष्य और तिर्यंचगति किस	317
1619	मद किसे कहते हैं और	317
1646	मनदंड किसे कहते हैं?	321
1649	मनदंड, वचनदंड और काय	322
1781	मनुष्यों का शरीर इतना	337
2211	महिला किसे कहते हैं	387
2298	मध्यम पात्र किसे कहते	399
2335	मन का मुंडन करने वाले	404
2337	मन मुंडन किसे कहते हैं	404
2338	मन मुंडन के बाद में वचन	404
2413	मटंब किसे कहते हैं?	414
2501	महापुरुष तपों से क्यों	425
2609	मक्खी किसे कहते हैं,	440
2610	मक्खी कष्ट क्यों पाती है	440
2686	मन वचन काय कृत पाप	450
2793	मलेच्छों में, नीच मनुष्यों में	464
2892	मनदंड कैसे उत्पन्न होता है	479
3008	मद्य, मांस के व्यापार, चोरी	495
3016	मद्य मांस मधु के व्यापार	497
3280	महाव्रतों की उत्पत्ति और	537
3343	मध्यमपात्र और जघन्यपात्र	546
3345	मनुष्यों में कितने पात्र होते	546
3377	महागुण किसे कहते हैं	550
3416	मलिन सम्यग्दर्शन सहित	555
3417	मलिन सम्यग्दर्शन से क्या	555
3418	मलिन सम्यग्दर्शन किसे	555
3451	मन से चिंतन हो रहा है यह	560
3453	मन अतिसूक्ष्म होने से मन	560
3473	मध्यम रुचिवाले शिष्यों की	563
3480	मन का विषय क्या है?	564
3512	मन का क्या विषय है	567
3580	मध्यम अंतरात्मा दुःस्वप्नों	577
3585	मध्यम अंतरात्मा किसका	578
3589	मध्यम अंतरात्मा मोक्षसुख	579
3706	मध्यम अंतरात्मा किसे कहते	594

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3755	मन गुप्ति किसे कहते हैं	600
3820	मनुष्यों के राजा नरेंद्र से	608
4008	मलिन दोष किसे कहते हैं	632
4048	महाव्रती साधुओं की भी	638
4131	मन वचन काय के बिना	650
4181	मलिन जल, स्वर्ण और भव्य	659
4194	मध्यम जघन्य पात्र को	662

मा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
611	माता पिता किसे कहते हैं?	180
612	माता पिता कितने प्रकार के	180
613	माता पिता प्राप्त होना सुपात्र	180
1194	मायाचार किसे कहते हैं और	264
1618	मात्सर्य किसे कहते हैं और	317
1620	मात्सर्य और मद में क्या	317
1666	मान को मद, मात्सर्य,	323
1886	मार्ग और मार्ग प्रभावना	349
1895	माध्यस्थ भावना किसे कहते	350
1928	मार्दवधर्म किसे कहते हैं?	355
1929	मार्दवधर्म क्षायिकभाव कहाँ	355
1930	मार्दवधर्म कैसा है और कौन	355
1931	मार्दवधर्म में उत्तम, क्षायिक	355
1932	मार्दवधर्म शुभ, शुद्ध, साद्य.	355
1934	मार्दवधर्म को अप्रतिपाती	355
1935	मार्दवधर्म को क्षायोपशमिक	355
1939	मार्दवभाव धर्म कहाँ उत्पन्न	356
1946	मायाचार कैसे और किसके	356
2179	मानसिक रोग किसे कहते	382
2827	मारणांतिक समुद्घात किसे	469
2904	मायाशल्य वालों की अवस्था	480
2908	मानशल्य किसे कहते हैं, यह	481
2909	मायाशल्य किसे कहते हैं, यह	481
3741	मालिक या पहरेदार के	599
3880	मालिक की आज्ञा से वस्तु	617
3942	मार्गसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे	624

मि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
26	मिश्र मंगल किसे कहते हैं	93
157	मिथ्यादृष्टि जीव धर्माचरण	111
301	मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्या	133
460	मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षमार्ग में	158
623	मित्र प्राप्ति को सुपात्रदान	181
863	मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं	217
1075	मिथ्यात्व कर्म का उदय किस	249
1240	मिथ्यादेव, मिथ्याशास्त्र और	270
1241	मिथ्यादेवशास्त्रगुरु मोक्षमार्ग	270
1323	मिथ्यात्व किसे कहते हैं?	280
1329	मिथ्यात्व का क्या फल है	281
1386	मिथ्या मतिज्ञान किसे कहते	288
1387	मिथ्या मतिज्ञान कैसे उत्पन्न	288
1388	मिथ्या मतिज्ञान को मद/	288
1396	मिथ्यादृष्टियों की दिनचर्या	290
1405	मिश्र साम्यभाव को प्रमत्त	290
1605	मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं	316
2076	मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में	368
2086	मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के शुभ	369
2089	मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्दर्शन	370
2114	मिथ्याभाव किसे कहते हैं	374
2167	मिथ्यात्वकर्म को, अविश्वास	381
2429	मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी	416
2521	मिथ्यादृष्टि जीव कर्मों का	428
2526	मिथ्यादृष्टि जीव जिनदीक्षा	429
2527	मिथ्यादृष्टि जीव ''अत्थु ण,	429
2576	मिथ्यात्व कर्म का बंध उदय	435
2740	मिथ्यादृष्टि आराधक जीव	456
2741	मिथ्यादृष्टि जीव क्या वास्तव	456
2905	मिथ्यात्व शल्य किसे कहते	480
2954	मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी	487
2955	मिथ्यात्व के उदय से	487
3190	मिथ्याशास्त्रों को जिनेंद्र	523
3540	मित्र किसे कहते हैं?	572
3541	मित्र को आत्म स्वरूप मानने	572
3542	मित्र को बतलाने के लिये	572
3543	मित्र बनकर भी कष्टावस्था	573
3608	मिर्च मसाले नमक आदि	582
3833	मिथ्यात्व के साथ में ''बलेण	610
3836	मिथ्यात्व किस सम्यग्दर्शन	611
3841	''मिच्छत्तबलेण'' मिथ्यात्व	611
3973	मिथ्यादृष्टि जीवों को	627
4088	मिथ्यात्व अंधकार कहाँ पर	643
4178	मिथ्यातप, मिथ्याभेष, मिथ्या	659

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
	मु	
61	मुनि किसे कहते हैं?	96
62	मुनियों को रात्रि में या दिन	96
118	मुनि हुए बिना मोक्ष की	104
121	मुनियों के बिना गृहस्थधर्म	105
329	मुनि क्या करते हैं?	329
330	मुनियों का क्या धर्म है	329
442	मुनियों के समान आर्यिका.	155
445	मुनियों को दान किस	155
446	मुनिपद से किस किस को	156
453	मुनियों को क्या गृहस्थ ज्ञान	156
578	मुनि, आर्यिकादि 4 को न	175
681	मुनि पद धारण कर लौकिक	189
682	मुनियों के भी अशुभलेश्यायें	189
691	मुनियों के कष्टजन्य आर्तध्यान	191
692	मुनिजन वर्तमान में मुनि	191
693	मुनिजन वर्तमान में मुनि	191
696	मुनियों के आहार के पश्चात्	192
708	मुनियों के निमित्त बनाया	193
762	मुनियों के कितने भेद हैं	203
763	मुनिपद से आर्यिकाओं को	203
908	मुनियों या चतुर्विध संघ के	223
910	मुनिदान आदि के बिना	224
950	मुनि कैसे आराधना करते	230
951	मुनियों को मौन रहना	231
952	मुनि आदि के मूलगुण	231
1547	मुनियों के आज इस क्षेत्र	308
1555	मुनियों के धर्मध्यान होता	309
1556	मुनि धर्मध्यानी द्रव्यलिंगी	309
1678	मुक्तजीव किसे कहते हैं	325
1857	मुनियों के व्रतों को हाथी के	345
2456	मुनि कदाचित् गुरु भक्ति	419
2474	मुनि इंद्रियविषयों में काय,	422
2746	मुनि किस भाव से क्या	457
2747	मुनिराज तत्त्वों का चिंतन	457
2756	मुनियों का मन वचनकृत	458
2757	मुनि के साथ राज पद क्यों	458
2759	मुनिजन यदि विकथाओं के	459
2762	मुनि आदिनाथजी आहार	459
2768	मुनिजन अधःकर्म का त्याग	460
2773	मुनियों को ये दोष क्यों	461
2795	मुनिजन दूसरों की निंदा से	464
2800	मुनियों के ठगविद्या कैसे हो	465
3050	मुनियों की अपेक्षा गुण किसे	502
3060	मुखर या वाचाल किसे कहते	503
3172	मुनिजन किसके निमित्त	522
3213	मुनिजन आहार के लिए कैसे	527
3249	मुनिजन किस हेतु आहार	533
3250	मुनिजन किन किन कारणों	533
3251	मुनिजन इन हेतुओं के बिना	533
3284	मुनिजन आहार किसके	537
3374	मुनिनाथ किसे कहते हैं	550
3375	मुनिनाथों को क्या कहते हैं	550
3467	मुक्त जीव किसे कहते हैं	562
4057	मुनिजन वस्त्रों में, पुस्तकों में	539
4060	मुनि इसे क्यों धारण करते	539
	मू	
236	मूढ़ता किसे कहते हैं कितने	122
875	मूर्च्छा के अभाव को यदि	219
980	मूर्तियों में क्या दोष है जो	235
1046	मूल रोग किसे कहते हैं	245
1061	मूर्च्छारोग किसे कहते हैं?	247
1063	मूर्च्छारोग और संन्यास रोग	247
2273	मूर्तिक या रूपी तथा	395
2279	मूर्ख लोभी जीव किन	396
2280	मूर्ख लोभी इन सामग्रियों	396
2281	मूर्ख और लोभी किसे कहते	396
2614	मूढ़ किसे कहते हैं	441
3077	मूर्ख साधुओं के द्वारा	506
3082	मूर्खों का ऐसा लक्षण करने	507
3463	मूल प्रकृति किसे कहते हैं	561
3555	मूढ़मति किसे कहते हैं,	574
3559	मूर्ख व्यक्ति विषयसुख को	575
3786	मूलगुण और उत्तरगुणों से	604
3789	मूलगुणों के निर्दोष पालक	604
	मै	
1293	मैथुनसंज्ञा किसे कहते हैं	276
1483	मैथुन पाप में सभी रौद्रध्यान	299
1484	मैथुनानंद नाम का स्वतंत्र	300

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1488	मैथुन कर्म इंद्रिय सुख है	300
1592	मैथुन सेवन में ये जीव किस	314
1892	मैत्री भावना किसे कहते हैं	349
3148	मैथुनसंज्ञा के कितने भेद हैं	518
	मो	
112	मोक्ष को प्राप्त कराने वाले	104
170	मोक्ष को महावृक्ष की उपमा	113
190	मोहांधकार तथा कषायां..	115
229	मोक्षफल को कौनसा जीव	121
735	मोक्ष में रत साधुओं को दान	199
1184	मोक्षमार्गी पापकर्म कैसे कर	264
1389	मोह को मदिरा की उपमा	288
1390	मोह किसे कहते हैं, मोह पद	289
1398	मोक्षमार्गी और संसारमार्गी	290
1464	मोक्ष किन जीवों को प्राप्त	297
1570	मोक्षपाहुड की इन गाथाओं	311
1728	मोह का क्षय 10वें के अंत	330
1741	मोक्ष के या कर्मक्षय के	331
2080	मोह के पूर्ण उपशम होने पर	369
2081	मोह के क्षय से कौन[2] धर्म	369
2103	मोक्ष के निमित्त बहिरात्मा	372
2115	मोक्षसुख किसे कहते हैं और	374
2241	मोक्षमार्ग संबंधित षडावश्यक	391
2358	मोहनीय कर्म के क्षय से	407
2563	मोक्ष में क्या अनंत गुण पूर्ण	434
2751	मोक्षपथ/मोक्षमार्ग किसे	458
2752	मोक्षपथाराधना किसे कहते	458
3175	मोहनीय कर्म के क्षय या	522
3197	मोक्षमार्गी साधु तामसी और	525
3201	मोक्षमार्गी साधुजन क्या	525
3506	मोही साधु परम रसायन	567
3616	मोक्षमार्गी जीवनपर्यंत विषय	583
3658	मोक्षगति/ सिद्धगति किसे	588
3667	मोक्ष के निमित्त पुण्य किसे	590
3855	मोक्षमार्ग में कौन सी भक्ति	614
3983	मोक्ष प्राप्ति का साक्षात्	628
4186	मोक्षमार्गी बनने के पहले क्या	661
4187	मोक्षमार्गी को कर्म क्षय करने	661

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
	मं	
9	मंगल किसे कहते हैं?	91
10	मंगल पद के पर्यायवाची	91
12	मंगल पद का पदच्छेद	91
20	मंगलाचरण किसे कहते हैं	92
21	मंगलाचरण के कितने भेद	92
43	मंगल द्रव्य कितने हैं और	94
67	मंगलाचरण किन किन	97
564	मंदिर और समवशरण में	173
571	मंदिर निर्माण में धनखर्च	174
844	मंत्र किसे कहते हैं?	215
2679	मंत्रशास्त्र, ज्योतिषादि शास्त्रों	449
3017	मांस पौष्टिक आहार होने से	497
3110	मंत्र कौन सा समीचीन	512
3826	मांसपिंड किसके समान होता	609
3827	मांसाहारी व्यक्ति किस	609
	मृ	
1479	मृषानंदी रौद्रध्यान किसे	299
4068	मृगचारीमुनि किसे कहते	640
	य	
63	यदि मुनियों को मौन रहने	97
79	यदि सयोगी अयोगीकेवलियों	99
128	यदि केवलज्ञानी स्याद्वाद रूप	107
370	यदि मुनिजन मनोरंजनार्थ	143
432	यदि धर्मायतनों में राशि	153
439	यदि असंयमी पूज्य नहीं हैं	154
454	यदि पूर्ण असंयमी गृहस्थ	156
472	यदि इंद्रियसुख उत्तम नहीं	160
518	यदि ये कल्पवृक्ष पृथ्वि.	166
532	यदि सुपात्रदान से उत्तम	168
615	यदि इन मातापिताओं ने	180
642	यदि ऐसा है तो क्या सभी	184
646	यदि ब्रह्मदत्त और सुभौम	184
731	यत्रतत्रानुपूर्वी किसे कहते हैं	198
747	यदि सुपात्रों के लिये आवास	201
787	यदि इन गुणवालों को पुरुष	207
804	यदि ये कल्पवृक्ष पृथ्वी	209
815	यदि उत्थान कराने का उद्देश्य	210

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
843	यंत्र किसे कहते हैं?	215
847	यंत्र और तंत्र ये समीचीन	215
892	यदि बाह्य वैभव पुण्य का	222
954	यदि मुनियों के लक्षण नहीं	231
957	यदि मन के बिना चारित्र	117
959	यदि ऐसा है तो केवलियों के	117
960	यदि.....भावयोग कैसे बनेंगे	232
974	यदि वस्त्रधारी किसीको मुनि	274
998	यदि धर्मकार्यों को	237
1084	यदि ये संस्कार नहीं किये	251
1093	यदि चारित्र है तो विशुद्धि	253
1146	यदि ऐसा है तो सयोगी	259
1152	यदि ऐसा है तो धर्म सामग्री	260
1156	यदि इन अर्थव्यंजनपर्यायों	260
1368	यदि मुनि आर्यिकाओं के	285
1370	यदि आचार्यपद परिग्रह नहीं	286
1373	यदि मिथ्यादृष्टि स्याद्वादानु.	286
1383	यदि होनहारानुसार ही सभी	287
1698	यदि द्रव्य 6 ही हैं तो इस	327
1723	यदि अपनी आत्मा शुद्ध	329
1761	यदि सभी अशरण हैं तो	334
1874	यदि त्यागीव्रतियों की सेवा	347
1884	यदि ये षडावश्यक समय	348
1923	यदि चौथे गुणस्थान में	353
2004	यदि अव्रती के संयम है तो	362
2087	यदि मिथ्यादृष्टियों के शुभ	369
2123	यदि कोई सर्व प्रथम क्रोधादि	375
2163	यदि यहाँ ज्ञानी पद से	380
2164	यदि बलात् भेदविज्ञानी अर्थ	380
2170	यदि रोग होने के पहले ही	381
2262	यदि ऐसा है तो देवायु बिना	394
2292	यदि सम्यग्ज्ञानी जीव अन्यत्र	398
2301	यदि मुनिजन रागद्वेष के	399
2322	यदि संख्यावाची पाँच का	402
2339	यदि पद विरुद्ध, धर्म विरुद्ध	404
2363	यदि नौकर अपने मालिक	408
2364	यदि जैन जिनेंद्र की भक्ति	408
2386	यदि ऊसर भूमि से आजीविका	411
2396	यदि क्रिया फलवती ही होती	412
2416	यदि राज्य के अनेक राजा हो	414
2421	यदि गुरुभक्ति का इतना	415
2449	यदि ऐसा है तो सिद्धों का	418
2564	यथाख्यातचारित्र किसे कहते	434
2566	यथाख्यात चारित्र को	434
2567	यथाख्यात...कहा है क्या	434
2600	यदि सज्जनों को ऊपरवाले	438
2729	यदि इस गाथा का अर्थ	455
2733	यदि सम्यग्दृष्टि भोगासक्त	456
2742	यदि ऐसा है तो क्या	456
2760	यदि मुनियों को विकथाओं	459
2861	यदि ऐसा है तो शुद्धभाव	474
2885	यदि गुप्तियों से कर्मों का	477
2917	यदि मुनियों के शल्यें नहीं	481
2938	यथाजात रूपधारी साधु	485
3075	यदि गुरु भी ऐसा ही	506
3132	यदि ऐसा है तो लोकव्यवहार	516
3135	यदि लोकव्यवहार सही है	516
3187	यदि ये मुनिगण आहार ग्रहण	523
3205	यदि इस वृत्ति का पालन न	526
3327	यदि वहाँ दाता नहीं हैं तो	544
3372	यदि सभी इच्छाओं के त्यागी	549
3411	यदि यह साधु अज्ञानी है	554
3470	यदि द्रव्य गुण पर्यायें सर्वथा	562
3514	यदि ये विषय हानिकारक	568
3576	यदि अशुभ स्वप्न आये तो	577
3612	यदि व्याधि पर्यंत औषधि	583
3695	यदि ऐसा है तो यह एकांत	593
3825	यज्ञ किसे कहते हैं	609
3917	यदि गुरुओं को गाय भैंस	621
3960	यदि ऐसा है तो पाँचवें तक	626
4149	यदि समझ में नहीं आता हो	653
4204	यदि ऐसा है तो आ. श्री के	664
58	यह र.सा.ग्रंथ किस अनुयोग	96
152	यह मिथ्याज्ञान क्या आत्म	110
154	यह मिथ्याज्ञान स्वपरोभय	110
165	यह सम्यग्दर्शन रूपी रत्न	112
178	यह गाथा परार्थ रूप है या	114
232	यह परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन	122
336	यह धर्मध्यान किन जीवों के	139
337	यह धर्मध्यान है ऐसा किस	139

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
340	यह धर्मध्यान किस ज्ञान का	140
473	यह उत्तम सुख तीनों लोकों	160
494	यह कैसे जाना कि यहाँ	163
548	यह निर्वाण पद बौद्धमत	170
554	यह सुवित्त किन किन कार्यों	171
600	यह कैसे मालूम हुआ कि	178
641	यह उत्कृष्ट फल किस पात्र	184
829	यह तत्त्व व्यवस्था की भूल	213
1022	यह कर्म इस प्रकार फल	240
1028	यह उदाहरण उदीरणा	241
1034	यह व्यक्ति दूसरों के इंद्रिय	242
1038	यह व्यक्ति कर्ण रहित	243
1039	यह व्यक्ति हृदयहीन क्यों हो	244
1040	यह व्यक्ति अंगुलि विहीन	244
1041	यह जीव दृष्टिविहीन अवस्था	244
1074	यह मोही प्राणी जानता हुआ	249
1185	यह मनुष्य लौकिक है	264
1217	यह जीव दुर्मति ज्ञान के द्वारा	267
1225	यह रौद्रध्यान कौन सा भाव	268
1230	यह रौद्रध्यान मोक्ष का	269
1310	यह सम्यग्दर्शन किसके	278
1371	यह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि	286
1372	यह मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानानु.	286
1374	यह मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष के	286
1375	यह मिथ्यादृष्टि जीव क्या	286
1376	यह मिथ्यादृष्टि जीव निरंतर	287
1377	यह मिथ्यादृष्टि जीव हमेशा	287
1379	यह मिथ्यादृष्टि जीव मन में	287
1400	यह साम्यभाव कैसे उत्पन्न	290
1401	यह साम्यभाव किस गुण.	290
1402	यह साम्यभाव कहाँ से कहाँ	290
1403	यह साम्यभाव पहले गुण.	290
1409	यह वीतराग सम्यग्दृष्टि पद	291
1413	यह सराग सम्यग्दृष्टिपना	291
1439	यह अवस्था कैसे प्राप्त होती	294
1442	यह अवस्था किन किन कर्मों	294
1449	यह सकामनिर्जरा किसके	295
1451	यह अकामनिर्जरा किसके	295
1607	यह मिथ्याज्ञान कौन सा	316
1635	यह तीन प्रकार की सामग्री	320
1726	यह ध्यान किस गुण की	330
1835	यह जीव नौवें ग्रैवेयिक तक	343
1846	यह दर्शनविशुद्धि भावना	344
1878	यह अर्हद्भक्ति कब और क्यों	348
1916	यह क्षायिक उत्तम क्षमाधर्म	353
1917	यह औपशमिक भाव क्षमा	353
1924	यह कैसे जाना कि चौथे	354
1938	यह मार्दवधर्म कैसा है और	356
1951	यह क्षायिकभाव उत्तम	357
1952	यह आर्जवधर्म उत्तम कैसे है	357
1953	यह उत्तम आर्जवधर्म	357
1954	यह उत्तम आर्जवधर्म सादि	357
1955	यह उत्तम आर्जवधर्म अक्षय	357
1956	यह उत्तम आर्जवधर्म शुद्ध	357
1957	यह क्षायोपशमिक आर्जवधर्म	357
1962	यह औपशमिकभाव आर्जव	358
1963	यह औपशमिक...तक होता	358
2016	यह तपधर्म किसके समान	363
2017	यह उत्तम तपधर्म कहाँ कैसे	363
2074	यह ब्रह्मचर्यधर्म सदोष है या	368
2134	यह शास्त्रज्ञानी या सम्यग्ज्ञानी	377
2135	यह कैसे मालुम कि द्वीपायन	377
2138	यह सम्यग्ज्ञानी भावअसंयत	377
2139	यह जीव द्रव्यअसंयत कब	377
2197	यह व्यक्ताव्यक्त अज्ञानी	384
2198	यह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव	385
2199	यह साधु विषयों से	385
2379	यह कैसे समझा जाये की	410
2395	यह कैसे जाना कि 10वें और	412
2423	यह मिथ्यादृष्टि जीव गुरुभक्ति	415
2482	यह तप करने को क्यों कहा	423
2488	यह तो इंद्रिय और मन के	424
2491	यह अवमौदर्य तप क्यों	424
2534	यह मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा	430
2550	यह भ्रांति क्यों होती है	432
2599	यह कार्य जब दोनों का है	438
2677	यह शास्त्राभ्यास किस हेतु	449
2724	यह जीव श्रुतज्ञानाराधना	455
2803	यह वंचना किसको फल	465
2852	यह नय कैसा है और	472

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2929	यह प्राणी याचना क्यों करता	483
2940	यह शरीर कौन सी प्रकृति	485
3054	यह पाप है या महापाप	503
3078	यह मूर्ख है यह कैसे	507
3098	यह संसारी जीव अपनी इच्छा	509
3106	यह कार्य भाग्य से हुआ है	511
3159	यह व्यवस्था कब से चली	519
3160	यह विषयकषायों की व्यवस्था	520
3228	यह शरीर चर्ममय है, चर्म से	530
3229	यह शरीर अनित्य है,	531
3230	यह शरीर जड़ स्वभावी है,	531
3349	यह पात्रपना क्यों स्वीकार	547
3356	यह पात्रता किन जीवों	547
3553	यह अवस्था क्षीणमोहियों	574
3672	यह असत्विश्वास पूर्ण रूप से	590
3801	यह जन्म जरा मरण का	606
3891	यह परिग्रहप्रमाणाणुव्रत	618
3952	यह सम्यग्ज्ञान कहाँ से कहाँ	625
3963	यह चारित्रगुण का परिणाम	626
4014	यह कांक्षा अतिचार दोष	633
4203	यह रयणसार आ. श्री	663
4209	यह जीव उपसर्ग परीषहों को	664
103	यहाँ सयोगी सकलपरमात्मा	103
122	यहाँ पर आ. श्री ने गृहस्थ	105
124	यहाँ 'पुव्वं' पद का क्या	106
176	यहाँ 27 तत्त्वों के श्रद्धान	113
204	यहाँ गाथा में ज्ञानी किसे	118
205	यहाँ ''ज्ञानी'' पद से किस	118
211	यहाँ अनुरागी का क्या अर्थ	119
225	यहाँ गाथा में ''जिणमुणि	121
261	यहाँ समय शब्द के शास्त्र	126
316	यहाँ दानपूजा को मुख्यधर्म	136
324	यहाँ गुरुजन से क्या मतलब	138
376	यहाँ बहिरात्मा जीव को	144
427	यहाँ ग्रंथकार ने क्या एकांत	152
493	यहाँ देवगति संबंधी दाताओं	163
502	यहाँ असंयमी और अव्रती से	164
544	यहाँ के मनुष्य और तिर्यंच	170
550	यहाँ ग्रंथकार ने वित्त के	171
606	यहाँ पात्र विशेष कौन कौन	179

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
627	यहाँ कौनसी पत्नी को सुपात्र	182
728	यहाँ ग्रंथकार ने बाह्य तपों	197
757	यहाँ मुनि पद से किस	203
758	यहाँ मुनि पद से तीर्थंकर	203
764	यहाँ आर्यिका पद से किस	203
765	यहाँ शिक्षा दीक्षा से क्या	204
766	यहाँ संग्रह, निग्रह, धारण,	204
767	यहाँ श्रावक पद से किस	204
768	यहाँ श्राविका पद से किस	204
769	यहाँ अनगार पद से प्रमत्त	204
816	यशःकीर्ति किसे कहते हैं	211
828	यहाँ किस पुण्यार्जन की	213
862	यहाँ इस गाथा में किस	217
877	यहाँ किस लक्ष्मी से प्रयोजन	220
888	यहाँ समृद्धि का क्या अर्थ है	221
1307	यहाँ सामान्य रत्नत्रय की	278
1328	यहाँ किस सज्जन से	281
1331	यहाँ गाथा में मिथ्यात्व के	281
1349	यहाँ प्रदोष काल में कौन	283
1382	यहाँ से मनुष्य और तिर्यंच	287
1395	यहाँ स्त्री और नपुंसक का	289
1654	यहाँ किन दंडों से प्रयोजन	322
1822	यहाँ पर परप्रेरणा का क्या	341
1826	यहाँ पर ''ऊपर वाले'' इस	341
1837	यहाँ बोधि पद का क्या अर्थ	342
1862	यहाँ शक्ति के अनुसार	346
1863	यहाँ शक्ति से कौन सी	346
2077	यहाँ उत्तम क्षमादिधर्मों का	371
2095	यहाँ पर इन उभयवेदियों	371
2131	यहाँ ''ज्ञानी'' पद से कौन	376
2196	यहाँ अज्ञानी पद से किस	384
2200	यहाँ ज्ञानी पद से कौन सा	385
2202	यहाँ ज्ञानी पद से मुनियों को	385
2275	यहाँ वस्तु नाम से क्या	396
2282	यहाँ फल से क्या मतलब है	396
2306	यहाँ ग्रंथकारजी ने विषधर	400
2314	यहाँ ग्रंथकारजी ने रत्नत्रय	401
2330	यहाँ 5 कर्मेंद्रिय और	403
2389	यहाँ भाव का अर्थ......	411
2418	यहाँ आ. श्री ने शिष्यों को	415

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2432	यहाँ पात्र किसे कहते हैं	417
2477	यहाँ र.सा. में पहले काय	423
2507	यहाँ कार्य कारण और कारण	426
2529	यहाँ लिंग शब्द से जिनलिंग	429
2531	यहाँ लिंग...गृहस्थलिंग को	429
2539	यहाँ ग्रंथकारजी ने मुनि और	431
2551	यहाँ श्री ग्रंथकारजी ने आत्मा	433
2572	यहाँ यथाख्यातचारित्र से	435
2579	यहाँ निषेध पूर्वक कथन	435
2630	यहाँ भेदविज्ञान करने को	443
2648	यहाँ पश्चादानुपूर्वी क्रम से	445
2658	यहाँ अध्ययन को क्या कहा	446
2675	यहाँ आ. श्री कुंदकुंदजी कृत	449
2695	यहाँ केवल आरंभ का त्याग	451
2811	यहाँ चिंतन को अध्ययन	467
2871	यहाँ बिना प्रसंग के मंगल	475
2886	यहाँ योग का अर्थ मन वचन	477
2923	यहाँ किस प्रकार के झगड़े	482
2927	यहाँ किस याचक से प्रयोजन	483
3058	यहाँ लक्ष्य और लक्षण क्या	503
3181	यहाँ कितने समय तक	522
3390	यहाँ ''जिण और सिद्ध'' इन	512
3405	यहाँ दीर्घ पद का प्रयोग	553
3448	यहाँ आदिकाल और नवीन	560
3535	यहाँ भी यह भारतीय	572
3565	यहाँ किस अमेध्य से प्रयोजन	576
3691	यहाँ किस नेता से प्रयोजन	592
3692	यहाँ जिनेंद्र भगवान ने	593
3782	यहाँ किस प्रकार के परिग्रह	604
3805	यहाँ साधना कहा है और	607
3808	यहाँ पर परमात्मा किसे	607
3809	यहाँ पर परमात्मपद से	607
3915	यहाँ चेतन अचेतन और	621
4000	यहाँ सादि मिथ्यादृष्टि जीवों	631
4081	यहाँ मिथ्यात्व को अंधकार	643
4093	यहाँ सम्यग्दर्शन से तीनों	634
4143	यहाँ गाथा में सम्यग्दर्शन की	652

या

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1249	याचना किसे कहते हैं	271
1250	याचना करने वालों को	271
2926	याचक किसे कहते हैं, भेद,	483
3259	याचनाशील मांगकर खाने	534
3260	याचना करने से क्या हानि	335

ये

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3	ये नियम किसने और कहाँ	90
4	ये नियम क्यों बताये हैं	90
6	ये नियम लौकिक कार्यों में	91
17	ये पाप पुण्य प्रकृतियां	92
19	ये अभव्यजीव, अनादि	92
77	ये दोनों गुणस्थानवाले	98
78	ये सयोगी अयोगीकेवली	99
143	ये दोनों ज्ञान समीचीन कैसे	109
144	ये दोनों ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसे	109
145	ये दोनों ज्ञान मिश्रज्ञान कैसे	109
146	ये दोनों ज्ञान समीचीन होने	109
148	ये दोनों ज्ञान सम्यक्त्व प्रकृति	110
150	ये दोनों ज्ञान समीचीन कब	110
185	ये दृष्टांत किन जीवों को	115
193	ये पाँचों परमेष्ठी किस प्रकार	116
194	ये पाँचों परमेष्ठी अभिन्नगुरु	116
195	ये पाँचों परमेष्ठी भिन्न गुरु	116
255	ये चारित्र संबंधी दोष किन	125
257	ये चलादि, शंकादि दोष	125
338	ये अवधि और मनःपर्ययज्ञान	140
457	ये आहारादि दान किसके	157
483	ये पंचाश्चर्य चौथे काल में	161
489	ये पंचाश्चर्य दाता के लिए	162
517	ये कल्पवृक्ष किस प्रकार के	166
520	ये भोगभूमियां कहाँ कहाँ	166
533	ये शलाका पुरुष और पुण्य	168
583	ये सप्त धर्मक्षेत्र किस प्रकार	175
645	ये महापुरुष केवल सुपात्रदान	184
647	ये दो चक्री, नारायण, प्रति	184
653	ये नीच कुलीन आदि मनुष्य	185
737	ये दान कौन देते हैं किसको	199
755	ये उपकरण निर्दोष हैं या	202
931	ये अणुव्रत और महाव्रत	227
932	ये व्रत प्रवृत्ति प्रधान होते हैं	228
1085	ये संस्कार अन्यमतियों के	251
1145	ये युगलधर्म शुद्ध होते हैं या	259

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1163	ये युगल वस्तुयें किस कारण	261
1166	ये भव्य अभव्य भाव क्या	261
1208	ये तीनों अवस्थायें क्या	266
1381	ये आतंकवादी ऐसा क्यों	285
1444	ये दोनों भाव किस गुणस्थान	294
1563	ये लौकांतिक देव कितने	310
1604	ये कषायें किसके समान हैं	316
1636	ये तीनों प्रकार की सामग्रियां	320
1651	ये तीनों दंड मानकषाय के	322
1652	ये दंड किन किन कषायों	322
1684	ये तीनों द्रव्य किस प्रकार	325
1692	ये धर्मादिक तीन द्रव्य क्या	326
1694	ये परद्रव्य होने से इनमें	326
1701	ये अस्तिकाय शुद्ध हैं या	328
1896	ये भावनायें सम्यग्दृष्टियों के	350
1897	ये भावनायें इस क्रम से क्यों	350
1964	ये दोनों आर्जवभाव क्या	358
2006	ये दोनों संयमधर्म शुभ	362
2039	ये दोनों तपभाव शुभ या शुद्ध,	365
2052	ये दोनों त्यागभाव शुभ-शुद्ध,	366
2302	ये ज्ञानी मुनिजन किस फल	399
2307	ये विषयकषाय भूतकालीन	400
2308	ये विषयकषायें वर्तमान भव	400
2309	ये विषयकषायें भावी भवों	400
2317	ये औषधि और मंत्र दोनों	401
2357	ये क्षायिक सातभाव कौन	407
2495	ये छह बहिरंग तप किस	424
2498	ये अनशन आदि तप ही	425
2502	ये छह बहिरंग दुर्धर तप	425
2565	ये दोनों भाव कहाँ और कैसे	434
2577	ये सात और नौ लब्धियां	435
2585	ये गृहस्थ किस मार्ग के	437
2586	ये तीनों गृहस्थ किस किस	437
2587	ये तीनों गृहस्थ चरमशरीरी	437
2589	ये दोनों शरीर वाले मनुष्य	437
2590	ये दोनों शरीर वाले जीव	437
2716	ये तीन जीव किस प्रकार से	453
2850	ये विशेषण प्रमत्ताप्रमत्त	472
2878	ये योग समीचीन हैं या	476
2881	ये तीनों योग वास्तव में	477
2882	ये तीनों योग कायक्लेश	477
2893	ये अतिक्रम आदि 4 दोष	479
2951	ये कषायें आत्मा को	486
2967	ये दोनों कार्य एकसाथ	489
3277	ये पाँचों मुनि किन किन	537
3334	ये देवगण जघन्य पात्र होने	545
3335	ये देवगण और नारकी	545
3336	ये देवगण धर्मदेशना को प्राप्त	545
3350	ये उत्तम मध्यम और जघन्य	547
3379	ये गुरुवर्य किसके समान हैं	550
3420	ये 33 दोष किन किन	555
3433	ये परिणाम मोक्ष के ही हेतु हैं	557
3445	ये द्रव्यकर्म और भावकर्म	559
3466	ये प्रकृतियां चेतन हैं या	562
3491	ये तीनों प्रकार की आत्मायें	565
3575	ये स्वप्न किस प्रकार के	577
3670	ये विशेष्य विशेषण समीचीन	590
3688	ये भावनायें मिथ्याचारित्र होने	592
3690	ये मार्गदर्शक होने से इनके	592
3725	ये सभी परिणाम किन	597
3726	ये सभी परिणाम कहाँ किस	597
3727	ये भाव आत्मा के, रत्नत्रय	597
3832	ये दोनों काल क्या कालद्रव्य	597
3838	ये पाँचों सर्वघाती प्रकृतियां	611
3866	ये व्रत किसके समान हैं	615
3892	ये अणुव्रत कब तक के लिये	616
3905	ये अनर्थदंड किससे उत्पन्न	619
3955	ये 53 क्रियाएं किन किन	625
3956	ये क्रियायें केवल अणुव्रतियों	625
4040	ये गाथोक्त सभी परिणाम	636
4138	ये तीनों किस प्रकार से फल	651
4140	ये चारों किस गति के प्राणी	651
4151	ये गाथोक्त भाव किस रयण	653

यो

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1149	योग्य किसे कहते हैं	260
1167	योग्यता कितने प्रकार की	261
1945	योगों की सरलता किसे	356
1948	योगों की सरलता को	356
2804	योगियों को इस मायाचार	466
2805	योगी उपसर्ग और परीषहों	466

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2813	योगीजन शुभ ध्यानाध्ययन	467
2814	योगीजन शुभ फल का	467
2815	योगियों के आर्तध्यान कैसे,	467
2883	योग निरोध रूपी गुप्तियां	477
2990	योग भी बंध के कारक	492
3719	योगी कैसे होते हैं?	596
3750	योगी गुप्तियों से सहित हो	600
3759	योग किसे कहते हैं? योगों	601
3760	योग का अर्थ मन वचन	601
3774	योग क्यों धारण किये जाते	603
3775	योग धारण किये बिना	603
4124	योगी एवं भोगीजन	649
	र	
162	रत्न किसे कहते हैं?	112
273	रत्नत्रय से सहित है यह	127
274	रत्नत्रयधारी किस फल को	128
275	रत्नत्रय का क्या फल है	128
278	रत्नत्रय से संसार का अंत	128
281	रत्नत्रय के बिना क्या समाधि	129
293	रक्त, किडनी नेत्रादि शरीर	131
833	रत्नत्रय में किस किस प्रकार	213
1180	रत्नत्रय धर्म भी अनेक बार	263
1304	रत्नत्रय की प्राप्ति क्रम से	278
1305	रत्नत्रय की प्राप्ति में क्रम	278
1517	रसनेंद्रिय एवं स्पर्शनेंद्रिय को	304
1659	रस गारव किसे कहते हैं	323
1836	रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति करना	343
1904	रत्नत्रय धर्म में मन लगाने	351
2315	रत्नत्रय धर्म से शारीरिक	401
2318	रक्षक तथा भक्षक किसे	401
2326	रसना इंद्रिय का मुंडन किस	403
2425	रक्षक के बिना रक्ष्य की	416
2481	रसपरित्याग तप किसे कहते	423
3407	रत्नत्रय से अनभिज्ञ जीव के	554
3828	रक्तपायी मांसाहारी व्यक्ति	609
3934	रक्तदान, किडनीदान, नेत्र	623
4073	रत्नत्रय धर्म कर्मों का क्षय	641
4087	रत्नत्रय रूपी लोकोत्तर दीपक	643
4164	रयणसार ग्रंथ सज्जनों द्वारा	656
4165	रयणसार ग्रंथ कैसा है और	656

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
	रा	
635	राज्य के 7 अंग कौन कौन	183
1049	राजरोग या राजयक्ष्मा रोग	245
1348	रात्रिय प्रदोष काल किसे	283
2403	राजा के बिना राज्य कैसे	414
2415	राष्ट्र किसे कहते हैं	414
2889	राग आदि पद से किन	478
3083	राजादि का सेवक साधु	507
3199	राजसी भोजन किसे कहते	525
3533	राक्षस विवाह किसे कहते हैं	571
3848	रात्रि में भोजन करने का	613
3850	रात्रिभोजन करने में कौन से	613
3936	रात्रिभोजन त्याग करने को	623
	रु, रू	
381	रूखा सूखा आहारदान क्यों	145
1238	रुष्ट किसे कहते हैं, भेद	270
1457	रुकने का नाम संवर है	296
1582	रुचि का क्या अर्थ है और	312
2172	रुग्णावस्था में क्या आत्म	382
	रो, रौ	
1224	रौद्रध्यान किसे कहते हैं	268
1477	रौद्रध्यान के भेद और नाम	299
1487	रौद्रध्यान पर्याय रूप होने से	300
1629	रौद्रध्यान को अशुभ क्यों	319
1639	रौद्रध्यान की उत्पत्ति के	321
2184	रोगोत्पादक कर्म का बंध	383
2316	रोग नाशक औषधि और	401
3263	रौद्रध्यान से परिणत साधु को	535
	लू	
1068	लूता/मकड़ी रोग किसे	248
	ले	
674	लेश्या की उत्पत्ति कैसे होती	188
677	लेश्याओं के स्वामी कौन	189
1622	लेश्या किसे कहते हैं और	317
	लो	
7	लोकोत्तर कार्यों में ये नियम	91
291	लोकोत्तरदानों के नाम कौन	130

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
298	लोकोत्तर पूजा किसे कहते	132
378	लोक में दान के अनेक भेद	144
807	लोभ कषाय और लोभी	209
808	लोभी मनुष्य किसे कहते हैं	210
811	लोभी पुरुषों के दुर्जनों के	210
1189	लोकोत्तर संगति किसे कहते	264
1259	लोकदृष्टि में भंडण/ झगड़ा	272
1327	लोकोत्तर सज्जन किसे कहते	281
1812	लोक किसे कहते हैं और यह	340
1819	लोक का प्रमाण कितना है	340
2249	लोकव्यवहार में अविवाहित	392
2250	लोक में यदि कुंवारी को स्त्री	392
2613	लोभ और लोभी की उत्पत्ति	441
2910	लोभ शल्य किसे कहते हैं,	481
2928	लोकोत्तर याचक को क्यों	483
3124	लोकव्यवहार किसे कहते हैं	514
3126	लोकव्यवहार में चतुर साधु	515
3689	लोकोत्तर नेतागण किसे	592
3933	लोकव्यवहार में दान किसे	623
4163	लोकव्यवहार में सज्जन किसे	656
	लौ	
44	लौकिक मंगल कौन कौन हैं	95
290	लौकिकदानों के नाम कौन	130
371	लौकिक दैनिक पत्र पत्रिका	143
539	लौकिक प्रजा पात्रों को	169
663	लौकिक शिक्षा की प्राप्ति	183
864	लौकिक प्रियवचन को सुन.	217
1181	लौकिक जन किसे कहते हैं	263
1188	लौकिक संगति किसे कहते	264
1190	लौकिक संगति का पहला	264
1191	लौकिक संगति का दूसरा	264
1192	लौकिक संगति का तीसरा	264
1193	लौकिक संगति से ये तीन	264
1195	लौकिक जनों की संगति से	265
1197	लौकिक संगति के भेद तथा	265
1200	लौकिक सत्संगति किसे	265
1203	लौकिक पद का अर्थ लोक	265
1253	लौकिक और लोकोत्तर	271
1326	लौकिक सज्जन किसे कहते	281
1562	लौकांतिक देव किसे कहते	310
1743	लौकिक पुण्य कार्य कौन	332
2100	लौकिक दिनचर्या में प्रीति	371
2161	लौकिक कार्यों की सिद्धि	380
2232	लौकिक विधवा को समाज में	390
2296	लौकिक कार्यों में सहायक	399
3107	लौकिक और लोकोत्तर	511
3125	लौकिक प्राणी किसे कहते	514
3731	लौकिक व्यक्तियों के आधीन	598
4086	लौकिक दीपक से क्या	643
	लं	
873	लंपटता या लोभ किसे कहते	219
	व्	
175	व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे	113
243	व्यसन किसे कहते हैं, कितने	124
245	व्यसन और पाप में क्या	124
252	व्यतिक्रम दोष किसे कहते	125
1003	व्यापार में लेनदेन में दी हुई	238
1273	व्याघ्र जैसे आचरण वाले	274
1486	व्यवहारनय को द्रव्यार्थिकनय	300
3409	व्यवहार रत्नत्रय किसे कहते	554
3597	व्याधि किसे कहते हैं?	580
3611	व्याधि के रहते हुये क्या	582
3613	व्याधि के रहते औषधि सेवन	583
	व्र	
927	व्रत किसे कहते हैं इसके	227
3048	व्रत, गुण, शील विहीन साधु	502
3049	व्रतों की उत्पत्ति कैसे और	502
3057	व्रत, गुण, शील के बिना	503
3423	व्रत कैसे ग्रहण किये जाते	556
	व	
99	वर्धमान स्वामी सकल	102
108	वचन शुद्धि किसे कहते हैं?	103
216	वर्तमान में अपनी आत्मा	120
412	वस्त्रदान क्यों देना चाहिए	149
452	वर्तमान में चेतन अरिहंत	156
775	वर्तमान में साधुओं की सेवा	205
806	वहाँ मिट्टी ही हवादि रूप	209

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
842	वर्तमान में दान मोक्ष का	215
1120	वह कौन सा कर्तव्य है जो	257
1155	वर्तमान पर्याय को अनित्य	260
1168	वस्तुओं के कुछ या अधिक	261
1169	वस्तुओं के अनेक युगलों में	262
1210	वचन और काय की क्रिया	266
1466	वर्तमान में अनेक जैनी दुःखी	279
1540	वर्तमान में दिगंबर जैन साधु	340
1559	वर्तमान में मुनियों के केवल	309
1626	वचनात्मक विकथा किसे	319
1647	वचनदंड किसे कहते हैं	322
2236	वर्तमान में त्यक्ता, तलाक	391
2272	वस्तु किसे कहते हैं, भेद	395
2341	वचन मुंडन के बाद हाथ का	405
2583	वर्तमान में अब खाई पर	436
2875	वर्षाकाल में वृक्षों के नीचे	476
2894	वचनदंड कैसे उत्पन्न होता	479
2984	वर्तमान में दुःख और सुख	491
3104	वर्तमान में कार्य की सिद्धि	510
3192	वचनात्मक और मौनोपदेश	524
3452	वचन से चिंतन हो रहा है	560
3636	वस्तु स्वरूप कैसा है?	586
3637	वस्तुओं का स्वभाव कैसा है	586
3642	वस्तु स्वरूप भावों को संसार	587
3656	वस्तु स्वरूप भाव संसार के	588
3662	वस्तु स्वरूप किस प्रकार का	589
3698	वर्तमाननय से स्वसमय किसे	593
3756	वचन गुप्ति किसे कहते हैं?	600
3761	वर्षायोग किसे कहते हैं तथा	601
3762	वर्षाकाल में योगीजन आहार	601
3765	वर्षाकाल में खुली जगह में	602
3865	''वय'' पद से किस को	615
4043	वसतिका किसे कहते हैं?	637
4045	वसतिका और घर मकान में	637
4079	वज्रपात से पर्वत के टुकड़ों	642
	वा	
348	वादी और प्रतिवादी किसे	141
359	वाचना स्वाध्याय किसे कहते	142
872	वास्तव में दारिद्र और दरिद्री	219
2026	वास्तव में उत्तम तपधर्म कौन	364
2366	वास्तव में पूर्ण रूप से जैन	408
2718	वास्तव में पुण्य वृद्धि किन	454
	वि	
96	विशेष्य और विशेषण किसे	102
188	विषयांधकार किसे कहते	114
400	विधि और निषेध पूर्वक इन	148
504	विपाकविचय धर्मध्यान किसे	165
506	विपाकविचय...क्या अंतर है	165
507	विपाकविचय...के होता है	165
629	विदेशों में, मलेच्छ क्षेत्रों के	182
652	विकृतकुल किसे कहते हैं	185
694	विदेशों में भी धन वैभव से	191
809	विमान किसे कहते हैं	210
1032	विकलांग अवस्थाओं को	252
1151	विषयभोग में सहायक सामग्री	260
1219	विरुद्ध स्वभावी किसे कहते	267
1352	विरात्रि काल और संधिकाल	284
1353	विनयाचार किसे कहते हैं	284
1625	विकथा किसे कहते हैं, भेद	318
1764	विध्यात संक्रमण किसे कहते	334
1795	विशेषतः संवर किन परिणामों	338
1798	विशुद्धिलब्धि किसे कहते हैं	338
1849	विनय और विनयसंपन्नता	344
2205	विनय किसे कहते हैं, विनय	386
2230	विधवा किसे कहते हैं,	390
2300	विषयों के परित्यागी ज्ञानी	399
2371	विकार और निर्विकार किसे	409
2479	विविक्तशैय्यासन तप किसे	423
2663	विषय और कषाय क्या चेतन	447
2758	विकथाओं की उत्पत्ति कैसे	459
2764	विकथाओं के साथ में संग्रह	460
2797	विश्वासघात करने का क्या	465
2864	विशेष ज्ञान दर्शन स्वभाव	474
2943	विषय किससे ग्रहण किये	485
2947	विषयों को ग्रहण करने में	485
2948	विषयासक्त साधु को आचार्य	486
3156	विषयकषायासक्त साधु क्या	519
3157	विषय और कषाय में क्या	519

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3362	''विचारतच्चणहं'' विचार	548
3479	विषय किसके माध्यम से	564
3481	विषयविरक्ति किसे कहते हैं?	564
3482	विषयों में किस प्रकार का	564
3484	विषय विरक्त साधु किसको	564
3486	विषय कषायों से विरक्त कौन	564
3517	विषमिश्रित लड्डू कैसे और	568
3525	विवाह किसे कहते हैं तथा	517
3547	विभावचेतना किसे कहते हैं	573
3552	विभाव चेतना को आत्म	574
3556	विषयासक्त व्यक्ति आत्म	574
3557	विषयसुख में रमण करने	575
3558	विषयलंपटी किसको नहीं	575
3563	विष्टा में जन्मा कीड़ा विष्टा में	575
3643	विकारी भावों को वस्तु	587
3651	विलक्षण किसे कहते हैं	587
3669	विशेष्य विशेषण किसे कहते	590
3680	विभेद किसे कहते हैं	591
3718	विधि और निषेध किसे कहते	596
3772	विशुद्धि किसे कहते हैं,	602
3927	विधि किसे कहते हैं, भेद	622
3931	विधि, द्रव्य, दाता और	623
3947	विस्तारसमुद्भव सम्यग्दर्शन	624
4015	विचिकित्सा ग्लानि करना	633
4125	''विराय'' किसे कहते हैं?	649
4153	विशेष मिथ्यादृष्टि पद से	653

वी

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
72	वीतराग किसे कहते हैं	98
73	वीतराग के कितने भेद हैं,	98
1362	वीर्याचार किसे कहते हैं,	285
1408	वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव किसे	291
1554	वीतरागता पद से यहाँ क्या	309
2345	वीर्यपात, वीर्य निकालना,	405
3795	वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी..	606

वृ

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2483	वृत्तिपरिसंख्यानव्रत किसे	423
2484	वृत्तिपरिसंख्यान व्रत करने को	423
2485	वृत्तिपरिसंख्यान तप के	423
3763	वृक्ष के नीचे वर्षाकाल में	601
3764	वृक्ष के पत्ते घने होने पर जोर	601

वे

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
16	वे कौनसी प्रकृतियां हैं जो	92
560	वेदी के विना धरती पर ही	172
699	वे कौन सी सामग्रियां हैं जो	192
869	वे सौ इंद्र कौन कौन हैं जो	218
1492	वेदना आर्तध्यान किसे कहते	301
2638	वे कौन से ध्यान हैं कि	444
2708	वे कौन से कार्य हैं जो	453
2769	वे नौ कोटियां किस प्रकार	460
2824	वेदना समुद्घात किसे कहते	468
3101	वेश्या की तरह क्या ये कर्म	510
3619	वो कौन से बीज हैं जिनका	584
4006	वेदक और क्षायोपशमिक	632

वै

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
770	वैय्यावृत्ति किसे कहते हैं	204
771	वैय्यावृत्ति किन अवस्थावालों	204
772	वैय्यावृत्ति किसकी करनी	204
773	वैय्यावृत्ति कितनी मात्रा में	205
774	वैय्यावृत्ति कहाँ करना चाहिये?	205
777	वैय्यावृत्ति साधुओं की पूंछकर	205
779	वैय्यावृत्ति कभी कभी करना	206
780	वैय्यावृत्ति किस प्रकार से	206
781	वैय्यावृत्ति के कितने भेद हैं	206
1866	वैय्यावृत्य और वैय्यावृत्य	346
1867	वैय्यावृत्ति कब और कैसे	346
1873	वैय्यावृत्ति क्यों करना चाहिये	347
2216	वैराग्य किसे कहते हैं?	388
2263	वैराग्य, संयम और ज्ञान ये	394
2264	वैराग्य, संयम और ज्ञान के	394
2826	वैक्रियिक समुद्घात किसे	468
3045	वैरागियों को अधिक सोचने	502
3338	वैमानिक देवों में मारकाट	545
3817	वैमानिक देवों का अर्थ कहाँ	608

वं

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
46	वंदनमाला को मंगल क्यों	95
2796	वंचना, ठगना, धोका देना	465

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.

श्

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
48	श्वेतवर्ण को मंगल क्यों कहा	95
711	श्वानवृत्ति किसे कहते हैं और	194
1059	श्वास रोग और हिचकी रोग	247
1271	श्वानवृत्ति वाले व्यक्ति जिन.	274
3215	श्वभ्रपूरण किसे कहते हैं,	527
3216	श्वेतांबर साधुओं जैसे दि.	527

श

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
82	शरीर का जनम मरण मानने	99
89	शरीर..अव्याप्तिदोष कैसे	101
90	शरीर का...कैसे आता है	101
181	शरीर से विरक्त होना किसे	114
267	शरीर के रहते शरीर का	127
680	शलाकापुरुषों में अशुभ	189
733	शरीर की प्रकृति को जान..	198
1359	शब्दाचार किसे कहते हैं	284
1655	शल्य किसे कहते हैं और ये	322
1656	शल्य के कितने भेद हैं,	322
1657	शल्यों को अशुभ क्यों कहा	322
1860	शक्तितस्त्याग और शक्ति.	346
1861	शक्तितस्तप और शक्तितस्तप	346
2121	शरीर को दंड दिये बिना	375
2332	शरीर मुंडन के बाद मन का	404
2602	शरीर किसे कहते हैं, भेद	439
2903	शल्यों की उत्पत्ति कैसे होती	480
2914	शल्यों का अस्तित्व किस	481
2934	शरीर में सुंदरता, ग्राह्यता	484
2939	शरीर में अनुराग क्यों	485
2941	शरीरासक्त साधु को क्या	485
3223	शरीर कैसा है, किससे पुष्ट	530
3231	शरीर नाना दुःखों का	531
3234	शरीर कर्मों का कारण है	531
3235	शरीर के बिना आत्मा	531
3244	शरीर आत्मा से भिन्न	532
3246	शरीर धर्मानुष्ठान का साधन	532
3247	शरीर को धर्म का साधन	533
3248	शरीर धर्म का अंतरंग	533
3315	शत्रुओं के समान विरोधी	542
3521	शरीर और आत्मा को एक	569
3523	शरीर और आत्मा क्या	569
4032	शब्द किसे कहते हैं, भेद	635
4033	शब्द ज्ञान किसे कहते हैं?	635
4094	श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है	644

शा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
346	शास्त्र किसे कहते हैं?	140
356	शास्त्र के लिए केवल आप्तो.	141
429	शारीरिक बलानुसार पूजा	153
572	शास्त्रदान में धन किस	174
573	शास्त्रों को लिखना	174
938	श्रावकों के मूलगुण कितने	228
953	श्रावकों के समान मुनियों	231
972	शास्त्रजी का जीर्णोद्धार	234
1072	शारीरिक रोगों की प्राप्ति	249
1852	श्रावकों के 70 दोष कौन	345
2178	शारीरिक रोग किसे कहते हैं	382
2816	शास्त्रों में मुनियों के रौद्र..	467
3037	शास्त्रों का प्रयोग क्यों और	499
3039	श्रावकादि को मोक्षमार्ग	500
3041	शास्त्रजी के बिना मुनियों के	501
3687	शांतिनाथादि चक्रवर्तिओं के	592
3842	श्रावक श्राविकाओं की 53	612
4047	श्रावकों की 11 प्रतिमाओं में	637

शि

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
568	शिखर सहित मंदिर बनवाने	173
1060	शिरोरोग किसे कहते हैं, भेद	247
2347	शिर मुंडन करने को क्यों	406
3796	शिवगति पथनायक पद से	606
3907	शिक्षाव्रत किसे कहते हैं,	620
4053	शिष्य किसे कहते हैं और	638

शी

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
299	शीलधर्म किसे कहते हैं	133
1511	श्री समयसारजी में ऐसा न	303
1850	शीलव्रतेष्वनतिचार और	344
2544	श्री आदिनाथजी ने भ्रष्ट	432
2750	शील किसे कहते हैं और	458
3055	शील के बिना साधु हो	503
3056	शील की उत्पत्ति कैसे होती	503

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3425	शीलधर्म के कितने भेद हैं	556
3766	शीतयोग किसे कहते हैं	602
	शु	
141	श्रुतज्ञान किसे कहते है	109
213	शुद्धात्मा किसे कहते हैं	119
389	शुद्ध औषधि किसे कहते हैं	146
463	शुद्ध मन किसे कहते हैं?	158
678	शुभलेश्याओं की प्राप्ति को	189
849	शुभ यंत्रों से जीवन कैसे	216
850	शुभ यंत्रों..इसमें क्या हेतु है	216
854	शुभ पक्षपात और अशुभ	216
1419	शुद्ध अर्थपर्याय और	292
1426	शुद्ध व्यंजनपर्याय और	292
1427	शुद्ध पर्यायों में कौनसी	292
1428	शुद्ध अर्थपर्याय की प्राप्ति	293
1531	श्रुत, परिचित और अनुभूत	306
1573	शुभ भावों का क्या फल है	311
1579	शुभभावों से देवायु के साथ	312
1612	शुभ पक्षपाती किसे कहते हैं	316
1671	शुद्ध जीवद्रव्य किसे कहते	324
1672	शुद्ध सिद्धजीवों...हैं क्या	324
1673	शुद्ध सिद्धजीवों के ये भेद	324
1674	शुद्ध सिद्धजीवों के भेद इतने	325
1675	शुद्ध सिद्धजीवों के सूत्रगत	325
1727	शुक्लध्यान दो भाव रूप में	330
1732	शुक्लध्यान को दो भाव रूप	330
1736	शुक्लध्यान को पारिणामिक	331
1737	शुक्लध्यान को औदयिक	331
2088	शुभोपयोग किन जीवों के	370
2514	शुद्ध घी या शुद्ध सोना तथा	427
2515	शुद्ध सिद्ध आत्मा का पर	285
2639	श्रुतज्ञान से धर्मध्यान और	285
2731	श्रुतज्ञान के भेद और	444
2809	शुभ ध्यानाध्ययन किसे	466
2820	शुभ तैजसऋद्धि का प्रयोग	468
2829	शुभ तैजस समुद्घात किसे	469
2888	शुद्धात्मानुभव में बाधक हेतु	478
3000	शुभारंभ किसे कहते हैं?	494
3030	शुभ और अशुभ उपकरण	499

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3285	शुद्ध आहार क्यों ग्रहण	538
3290	शुद्ध आहार को दिव्य	539
3571	शुभस्वप्न किसे कहते हैं?	577
3578	शुभ स्वप्न आये तो क्या	577
3579	शुभ स्वप्न से क्या लाभ है	577
3732	शुभ मनकरण किसे कहते	598
3733	शुभ वचनकरण किसे कहते	598
3734	शुभ कायकरण किसे कहते	598
3991	श्रुताभ्यास से क्या प्राप्त होता	630
4004	शुद्ध सम्यग्दर्शन किसे कहते	631
4021	शुद्ध सम्यग्दर्शन का क्या	633
4176	श्रुत में भेद और स्वाध्याय	658
	शू	
1047	शूलरोग किसे कहते हैं, यह	245
2092	शूद्रों को मुनिदीक्षा और	370
2222	शूरता किसे कहते हैं	389
	शे	
697	शेषाक्षत किसे कहते हैं	192
698	शेषाक्षत का प्रयोग कहाँ	192
700	शेषाक्षत के समान आहार	192
1118	श्रेय किसे कहते हैं	257
2512	शेष पाँच अंतरंग तपों का	426
2647	शेष धर्मध्यान और शुक्ल.	445
	शौ	
1966	शौचधर्म किसे कहते हैं,	358
1968	शौचधर्म कौन सा भाव है	358
	शं	
241	शंकादि 8 दोष किसे कहते	123
242	शंकादि 8 दोषों से क्या	123
4010	शंकातिचारदोष किसे कहते	632
	ष	
313	षट्कायिक जीवहिंसा के	135
	स्	
31	स्थापना मंगल किसे कहते	93
135	स्थविर किसे कहते हैं?	108
156	स्वच्छंद तथा मनमानी	111
161	स्वतंत्र और स्वच्छंद में क्या	111

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
358	स्वाध्याय के कितने भेद हैं	142
411	स्वर्णदान क्यों देना चाहिए	149
430	स्वशक्ति को विचारे बिना	153
521	स्वर्गभूमि को भोगभूमि क्यों	167
522	स्वर्गभूमि किसे कहते हैं	167
524	स्वर्गों में कौन निवास करते	167
527	स्वर्ग एक है या अनेक?	167
632	स्वयं के मकान वाहनादि	183
686	स्नातक और छद्मस्थ मुनियों	190
852	स्व मान्यतानुसार अन्यक्षेत्र-	216
1121	स्वाधीन स्वतंत्र किसे कहते	257
1122	स्वतंत्र/ स्वाधीन व्यक्ति की	257
1577	स्थितिबंध किसे कहते हैं	312
2177	स्व पर और उभय के निमित्त	382
2208	स्नेह किसे कहते हैं?	387
2221	स्फूर्ति के बिना क्या सुभट	389
2325	स्पर्शन इंद्रिय का मुंडन	403
2633	स्वतत्त्व और परतत्त्व किसे	443
2838	स्नातक मुनियों के लिए	470
2839	स्नातक... क्यों लगाया	470
2840	स्नातक...विशेषण क्यों	470
2841	स्नातक..णिक्कलंकओ...	471
2842	स्नातक..णियदो.क्यों लगाया	471
2843	स्नातक..णिम्मल...लगाया	471
2845	स्नातक मुनियों के लिए ...	471
2846	स्नातक..''निष्काम''...	471
2847	स्नातक मुनि किसे कहते हैं	471
2848	स्नातक मुनि के भेद और	472
3010	स्त्री पुरुषों की संख्या में वृद्धि	495
3071	स्वच्छंद और स्वच्छंदी किसे	505
3072	स्वच्छंदी मुनियों से जिनधर्म	506
3074	स्वच्छंदी मुनि गुरु के पास में	506
3103	स्वस्थान संक्रमण और पर	510
3155	स्वादासक्त साधु मिथ्यादृष्टि है	519
3188	स्वाध्याय किन किन ग्रंथों	523
3275	स्नातक मुनि किसे कहते हैं	536
3502	स्वाध्याय और ध्यान ये	566
3550	स्वभाव या ज्ञानचेतना किसे	573
3570	स्वप्न किसे कहते हैं, भेद	577
4044	स्वयं के द्वारा बनवाई गई	637
4201	स्वभाव और लक्षण में क्या	663

स

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
24	सचित्त मंगल किसे कहते हैं	93
50	सफेद घोड़े और बालकन्या	95
75	सयोगी अयोगी गुणस्थान	98
80	सयोगी..पूर्ण वीतरागी...	99
92	सर्वज्ञ किसे कहते हैं	101
166	सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोग	112
168	सम्यग्दर्शन को रत्न क्यों	112
169	सम्यक्त्व रत्न के साथ में	113
171	सम्यग्दर्शन के भेद और नाम	113
183	सम्यग्दृष्टि जीव संसार शरीर	114
199	सम्यग्दृष्टि इन गुरुओं की	117
200	सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि	117
210	सम्यग्ज्ञानी जीव किसका	119
219	सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी जीव	120
224	सम्यग्दृष्टि जीव मुनियों को	120
248	सम्यग्दृष्टि जीव के भय होते	120
266	सभी प्रकार के विषयकषायों	127
282	समाधिमरण किसे कहते हैं	129
283	समाधिमरण किन किन	129
284	समाधिमरण को आत्महत्या	129
286	समाधिमरण कौन कौन जीव	129
305	सभी प्रकार के आरंभ हिंसा	133
308	समीचीन दान किसके	134
312	सम्यग्दर्शन के...दान पूजा	135
317	सम्यगाचार के बिना	137
414	समदत्तीदान क्यों देना	150
459	सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्ग में	158
461	सम्यग्दृष्टि जीव संसारमार्ग में	158
465	सम्यग्दृष्टि जीव के क्या	159
466	सम्यग्दृष्टि जीव के किस	159
669	सकल चारित्र की प्राप्ति होना	188
684	सभी संहनन वाले क्या	189
745	सदोष औषधि किसे कहते हैं	200
754	सदोष आहार एवं उपकरण	202
756	सदोष उपकरण आहार पानी	202
784	सज्जन पुरुष, सज्जन स्त्री	207
790	सज्जन पुरुषों को कल्पवृक्ष	207
855	सपक्ष और विपक्ष किसे	217

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
856	सपक्षपात और विपक्षपात	217
928	सप्त व्यसनों या अनेक	227
1095	सम्यग्ज्ञान की विशुद्धि	253
1148	सम्यक् भेदविज्ञान का	260
1159	सत्य किसे कहते हैं	261
1170	समस्त विषयों पर विश्वास	262
1302	सम्यक्त्व के बिना नियम से	277
1303	सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने पर	278
1315	सम्यक्त्व को गुण क्यों कहा	279
1316	सम्यग्दर्शन को गुण क्यों नहीं	279
1325	सज्जन किसे कहते हैं नाम	280
1391	सम्यग्दर्शनों के साथ में	289
1411	सराग सम्यग्दर्शन किसे	291
1412	सराग सम्यग्दर्शन के स्वामी	291
1433	सराग सम्यग्दर्शन के कौन	293
1434	सराग सम्यग्दर्शन के स्वामी	293
1448	सकामनिर्जरा या अविपाक	295
1452	सकाम, अकाम या अविपाक	295
1504	सम्यग्दृष्टि मुनि, अणुव्रती	302
1538	सम्यग्दृष्टि गृहस्थ और मुनि	307
1539	सम्यग्दृष्टि साधु और श्रावक	307
1597	समस्त पापों के संग्रह या	315
1599	सचित्त अचित्त और मिश्र	315
1767	सर्वसंक्रमण किसे कहते हैं	334
1806	सविपाक निर्जरा किसे कहते	339
1809	सकाम निर्जरा किसे कहते हैं	339
1811	समयप्रबद्ध किसे कहते हैं?	340
1845	सम्यग्दर्शन और दर्शनविशुद्धि	344
1854	सप्तशील किसे कहते हैं?	345
1927	सरागी मुनि किसे कहते हैं	355
1983	सत्यधर्म किसे कहते हैं?	359
1984	सत्यधर्म कैसे उत्पन्न होता है,	359
1985	सत्यधर्म वचनात्मक होने से	360
1989	सत्यधर्म...भाव क्यों नहीं है	360
1991	सत्यधर्म में उत्तम विशेषण	360
1992	सत्यधर्म का विरोधी कौन है	360
1993	सत्यधर्म औपशमिक भाव	360
2068	सदोष ब्रह्मचर्य धर्म किसे	367
2122	सर्व प्रथम शरीर को दंडित	375
2142	सम्यग्दर्शन, चारित्र, तप ये	377
2168	सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र	381
2195	सम्यक्चारित्र से ही कर्मों	384
2234	सप्तपदी क्यों लगाई जाती	390
2237	सज्जाति पद किसे कहते हैं	391
2238	सद्गृहस्थ पद किसे कहते	391
2239	सद्गृहस्थ क्रियाओं के भेद	391
2287	सम्यग्ज्ञानी चेतनाचेतन धन	397
2288	सम्यग्ज्ञानी सुपात्रदान में	397
2290	सम्यग्ज्ञानी जीव पापकर्म से	398
2291	सम्यग्ज्ञानी जीव सुपात्रदान	398
2305	सर्प किसे कहते हैं, कैसा है	400
2361	सती नारी कैसी होनी चाहिये	407
2422	सद्भक्ति किसे कहते हैं	415
2426	सम्यग्दर्शन के बिना रुचि	416
2427	सम्यग्दर्शन के बिना जपतप	416
2428	सम्यग्दर्शन के बिना रुचि को	416
2460	समस्त ज्ञेय पदार्थों में त्याग	420
2516	सर्वज्ञ शुद्ध सिद्ध आत्मा	427
2524	''सम्मउम्मुक्को'' इस पद से	428
2574	सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष	434
2591	सभी मनुष्यों में, सभी कालों	437
2619	सर्वश्रेष्ठ मुनि को संबोधन के	441
2624	सम्यक् भेदविज्ञान की प्राप्ति	442
2632	सर्वथा भेदज्ञान या सर्वथा	443
2673	सदोष के परिहार के लिए	449
2696	समरंभ किसे कहते हैं, भेद	452
2699	समारंभ किसे कहते हैं, भेद	452
2726	सम्यगाराधना के बिना इस	455
2727	सम्यग्दृष्टि जीव विषयसुख में	455
2735	सम्यग्दर्शनाराधना किसे	456
2736	सम्यग्ज्ञानाराधना किसे कहते	456
2823	समुद्घात किसे कहते हैं,	468
2876	सर्दियों में चौराहों पर या	476
2879	सम्यक्रत्नत्रय सहित आर्तरौद्र	476
2897	सर्वथा जानकारी हो जाती है	480
3002	सब्जी फल सुधारने में त्रस	494
3009	सप्त व्यसनों का सेवन कराके	495
3232	सर्वांग शरीर में कितने रोग	531
3233	सर्वांग शरीर के 1-1अंगुल में	531
3252	सद्धेतु पूर्वक आहार ग्रहण	534

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3302	सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति	541
3307	समभंग किसे कहते हैं?	541
3332	सभी देवगण कौन से पात्र हैं	545
3333	सभी देव देवांगनायें अणुव्रती	545
3339	सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र सभी	546
3354	सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र	547
3371	समस्त प्रकार की इच्छाओं	549
3551	सयोगी अयोगी केवलज्ञानियों	573
3595	सम्यग्दर्शन को जल की	580
3609	सम्यग्दृष्टि जीव विषय भोगों	582
3610	सम्यग्दृष्टि गृहस्थ विषयभोगों	582
3632	सयोगी अयोगी परमात्मा के	585
3660	सभी प्रकार की अंतरात्मायें	589
3711	सयोगकेवली परमात्मा किसे	595
3751	सयोगिकेवलियों के ये गुप्तियां	600
3752	सरागी प्रमत्ताप्रमत्त मुनियों	600
3790	सदोष मुनियों को मानने	605
3813	सकलचक्री और अर्धचक्री	608
3834	सम्यक्त्व के नाश होने पर	610
3876	सत्याणुव्रत किसे कहते हैं?	616
3877	सत्याणुव्रती मोक्षमार्गी नारद	617
3923	''सम'' समता भाव किसे	622
3937	सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं	623
3939	सम्यक्त्व प्रकृति के उदय	624
3951	सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं,	624
3953	सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं	625
3954	सम्यक्चरित्र कहाँ से कहाँ	625
3972	सविपाक निर्जरा और	627
3989	समता किसे कहते हैं?	629
4003	सम्यग्दर्शन के भी शुद्ध और	631
4026	सम्यग्दर्शन के बिना जीव	634
4028	समस्त सुखों की प्राप्ति रत्नत्रय	635
4052	समय, संघ एवं जाति किसे	638
4084	सम्यग्दर्शन को दीपक क्यों	643
4126	''सम्मत्त संजुदो'' किसे	649
4144	सम्यग्दृष्टि जीव किस फल	652
4145	सम्यग्दर्शन का या रत्नत्रय	652
4162	सज्जन किसे कहते हैं?	656
4170	सप्त व्यसन और सप्त भयों	657
4182	सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि	660
4198	सहारनपुर में एक श्राविका	663
4208	सम्यग्दृष्टि...व्यतीत करते हैं	664

सा

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
258	सातिशय अप्रमत्तसंयत	125
271	साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति के	127
690	साताजनित सुख की प्राप्ति	190
715	साधुओं के करपात्र में अर्पण	195
721	साधुओं के निमित्त आहार	196
776	साधुओं की वैय्यावृत्ति के	205
778	साधुओं से पूंछकर साधुओं	206
1071	सामान्यतया भोजन किस	249
1173	साधन किसे कहते हैं?	262
1174	साध्य किसे कहते हैं?	262
1399	साम्यभाव किसे कहते हैं?	290
1406	साम्यभाव प्रतिपाती है या	291
1541	साधुवर्ग शुद्धाशुद्ध का	307
1661	सातगारव किसे कहते हैं	323
1833	सादि मिथ्यादृष्टि जीव नौवें	342
1834	सादि मिथ्यादृष्टि जीव नौवें	342
1865	साधुसमाधि तथा साधुसमाधि	346
2244	साम्राज्य क्रिया किसे कहते	392
2500	सामान्य प्राणी इन तपों से	425
2541	साक्षात् दुःखानुभव असाता	431
2561	सामान्य और विशेष	434
2780	साधुओं को क्या करना	461
2969	साधु आत्मकार्य ज्यादा और	489
2972	सातवें गुणस्थान के भेद और	489
2973	सातवाँ सातिशयअप्रमत्त	489
2975	सातवाँ स्वस्थान अप्रमत्त या	490
2976	सातवाँ स्वस्थान निरतिशय	490
3040	साधुओं को साधुओं के प्रति	501
3086	साधुओं के आहार की	508
3091	साधुओं को साधुओं की सेवा	509
3094	साधुओं की वैय्यावृत्ति कब	509
3095	साधुओं की वैय्यावृत्ति हमेशा	509
3096	साधुसमाधि किसे कहते हैं	509
3097	साधुभक्ति किसे कहते हैं	509
3163	साधु मोक्षमार्ग में रत होते हैं	520
3164	साधुओं को अपने संकल्प से	520
3200	सात्त्विक आहार किसे कहते	525

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3301	साधारण वनस्पति किसे	540
3435	साधु इनको क्यों चाहता है	558
3487	साधु और स्वादु क्रमशः	565
3495	सात तत्त्वों के और त्रिधात्मा	565
3679	सामान्यतया स्वसमय किसे	591
3746	सामाजिक मंदिरों से केवल	599
3804	साध्य, साधक, साधना और	607
3806	साधना करने वाला कौन	607
3807	साधु का मतलब सज्जन	607
3908	सामायिक शिक्षाव्रत किसे	620
3924	सामायिक शिक्षाव्रत और	622
3990	सामायिक कर्ता को क्या	629
4100	साधकतम साधन मान लिया	645
	सि	
45	सिद्धार्थ को एवं पूर्ण कलश	95
74	सिद्धजीव सर्वदेश वीतरागी	98
2993	सिद्धों में क्या परम पुरुषार्थ	492
3382	''सिद्ध'' पद से किन किन	551
3391	सिद्धों से धर्मदेशना नहीं	552
3392	सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष के लिए	552
3398	सिद्ध प्रभु या चारों परमेष्ठी	552
3661	सिद्धगति का अर्थ सिद्धों का	589
3699	सिद्धों को स्वसमय क्यों नहीं	593
3715	सिद्ध परमात्मा किसे कहते	596
4134	सिद्धों में ध्यान पर्याय का	650
	सी	
739	सीमित आहार ग्रहण करने	199
	सु	
508	सुपात्र किसे कहते हैं और	165
538	सुपात्रदान और अपात्र दान	169
621	सुमित्र किसे कहते हैं?	181
639	सुपात्रदान से और भी	184
648	सुकुल/उत्तमकुल/निर्दोषकुल	185
659	सुमति किसे कहते हैं?	186
660	सुमति प्राप्त होना सुपात्रदान	186
825	सु- अच्छा लगे, ख- इंद्रियों	212
915	सुपात्र के बिना दान को	225
916	सुपात्रों को किस वस्तु का	225
920	सुपुत्र के बिना बहुत धन	226
1274	सुअर समान आचरण वाले	275
1337	सुदृष्टि और कुदृष्टि किसे	282
1522	'सुनी है' इस पद से किस	305
1825	सुप्रीमकोर्ट और राष्ट्रपतिवत्	341
2220	सुभट किसे कहते हैं?	389
2223	सुभट स्फूर्ति के बिना शोभा	389
2243	सुरेंद्रता क्रिया किसे कहते	391
2293	सुपात्रदान के क्या फल हैं?	398
2295	सुपात्र किसे कहते हैं, भेद	395
2370	सुगुरु किसे कहते हैं और	408
3504	सुखामृत या शुभामृत किसे	566
3505	सुखामृत...किसके समान है	566
4055	सुयजात किसे कहते हैं	638
4185	सुगति और दुर्गति से यहाँ	660
	सू	
132	सूरि किसे कहते हैं	108
1332	सूरदास क्या आँख के बिना	281
2915	सूत्र में व्रती पद से किस	481
3944	सूत्रसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे	624
	से	
2417	सेनापति के बिना देश, ग्राम	415
3092	सेवा किसे कहते हैं और	509
	सै	
3318	सैनिकों से देश की, समाज	543
	सो	
138	'सो हु सद्दिट्ठी' इन पदों का	108
1101	सो कैसे स्पष्ट करो?	253
3297	सोना चांदी हीरा आदि	540
3967	सो कैसे यह सिद्ध करके	626
	सौ	
2224	सौभाग्यवती और दुर्भाग्यवती	389
	सं	
87	संसारी आत्मा का जनम	101
147	संशय, विपर्यय और	109
179	संसार किसे कहते हैं,	114
180	संसार से विरक्त होना	114
201	संसार...क्यों नहीं करता	117

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
202	संसार शरीर और भोगों के	117
263	संसार शरीर और भोगों का	126
277	संसार भ्रमण का अंत	128
471	सांसारिक सुख उत्तम क्यों	159
970	संयमीजनों का जीर्णोद्धार	234
1062	संन्यास रोग किसे कहते हैं	247
1187	संगति किसे कहते हैं, भेद	264
1231	संज्वलन कषाय के उदय में	269
1284	संज्ञा के कितने भेद हैं	276
1285	संख्यात किसे कहते हैं	276
1456	संवर किसे कहते हैं?	296
1458	संवर कहाँ पूर्ण होता है	296
1485	संग्रहनय और व्यवहारनय में	300
1506	संबोधन और उपदेश में क्या	302
1525	संमूर्च्छन मनुष्य असैनी क्यों	305
1677	संसारी जीवद्रव्य किसे कहते	325
1756	संसार में दृश्य पदार्थों को	333
1757	संसार में इन दृश्य पदार्थों	333
1762	संक्रमण किसे कहते हैं,	334
1772	संसार भावना किसे कहते हैं	335
1773	संसार कबसे है, कबतक	335
1790	संवर और संवरभावना किसे	337
1791	संवर किन परिणामों से और	337
1796	संवरतत्त्व और संवरभावना	338
1828	संसार तथा संसारभावना	342
1859	संवेग और संवेग भावना	345
1871	संबोधन करने से किसको	347
1872	संबोधन किसे कहते हैं,	347
1958	संज्वलन कषाय की तीव्रोद.	357
1967	संज्वलन लोभ का क्षय किस	358
1995	संयम और संयमधर्म किसे	361
1996	संयमधर्म कहाँ कैसे उत्पन्न	361
1997	संयमधर्म कौनसा भाव है	361
1998	संयमधर्म औपशमिक भाव	361
2000	संयम और चारित्र में क्या	361
2001	संयमधर्म को क्षायोपशमिक	361
2007	संयममार्गणानुसार संयम धर्म	362
2037	संज्वलन कषाय के उदय	365
2132	संयत और असंयत पद से	376
2194	संसार में क्या सभी चारित्र	384

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2274	संसारी जीवों को मूर्तिक या	396
2350	संन्यासी किसे कहते हैं और	406
2351	संपत्ति कैसे नष्ट होती है	406
2398	संबोधन किसे कहते हैं,	413
2412	संवाहन किसे कहते हैं	414
2511	संपूर्ण घाति अघातिकर्मों के	426
2519	संपूर्ण कर्मों का क्षय किस	429
2601	संसारी जीव और मुक्त जीव	439
2728	संसारसुख किसे कहते हैं	455
2732	सांसारिक इंद्रियसुख में	455
2777	संसार में रहता है ऐसा न	461
3062	संघविरोधी साधु जिनधर्म के	504
3063	संघविरोधी साधुओं के चारों	504
3064	संघ विरोधी साधु जिनमुद्रा	504
3065	संघ विरोध का और क्या	504
3068	''संघविरोधीकुशीलाः''	505
3093	संयमी मोक्षमार्गियों की सेवा	509
3145	संज्ञा किसे कहते हैं	518
3174	संयम किसे कहते हैं	522
3236	संसार और मोक्ष की सिद्धि	531
3241	संसार में आत्मा और शरीर	532
3645	संसारी जीव किसे कहते हैं	587
3646	संसार में जीवों की कितनी	587
3647	संसार किसे कहते हैं?	587
3652	संसार भ्रमण का कारण क्या	587
3653	संसार भ्रमण के कारणभूत	587
3946	संक्षेपसमुद्भव सम्यग्दर्शन	624
3978	संसारमार्ग के और मोक्षमार्ग	628
3992	संसार कैसा है इसमें कौन	630
4002	संसार भ्रमण किसे कहते हैं	631
4050	संतति या परंपरा किसे कहते	638
4061	संस्तर किसे कहते हैं, कितने	639
4066	संसक्त मुनि किसे कहते हैं	639
4180	संस्तुति, स्तुति और प्रशंसा	659

ह

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
215	हम अपनी आत्मा को सर्वथा	119
384	हरे फल सब्जी आदि का	645
3003	हमारा हेतु भी धर्म का होने से	494
3294	हवा भी अशुद्ध वस्तुओं	539
3450	हमारा चिंतन भावात्मक है	560

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
3815	हरींद्र किसे कहते हैं	608
3852	हम भगवान बनने के लिये	614
4077	हवा से ताड़ित मेघ की	642
	हा	
705	हाथ में दी गई आहारसामग्री	193
1221	हास्यादि 9 नोकषायें ईषत्	267
1272	हाथीवत् आचरण वाले व्यक्ति	382
2343	हाथों का मुंडन न करने से	405
3143	हास्यादि पाँच राग कषायों में	518
	हि	
93	हितोपदेश और हितोपदेशी	102
742	हितकारी आहार हो ऐसा	200
1336	हिताहित को समझने के	282
2355	हितोपदेशी किसे कहते हैं	407
3684	हितोपदेशी पद किस क्रम से	592
	ही	
651	हीनकुल किसे कहते हैं?	185
687	हीन संहनन वाले भावलिंगी	190
2233	हीनदृष्टि से देखने वालों को	390
4116	हीन संहनन वालों के ध्यान	648
	हृ	
1058	हृदय रोग किसे कहते हैं,	247
	हे	
1157	हेय किसे कहते हैं	260
2174	हेतु किसे कहते हैं और	382
2463	हेयोपादेय का विचार क्यों	420
2464	हेयोपादेय का विचार नहीं	420
3437	हे साधु तूँ ख्याति, पूजा,	558
3440	हे साधु! यदि तूँ मोक्ष चाहता	558
3494	हेय, उपादेय और ज्ञेय का	558
3654	हेतु और अविनाभाव संबंध	588
	हो	
1384	होनहार किसे कहते हैं?	288
1385	''होनहार'' पद से भव्यत्व	288
3019	होम्योपैथिक, एलोपैथिक,	497
	हिं	
933	हिंसादि पापों में रति के	228
1478	हिंसानंदी रौद्रध्यान किसे	299
3872	हिंसा पाप किसे कहते हैं?	616
3900	हिंसादान अनर्थदंड और	619
4211	हिंसादान अनर्थदंड के	665
	क्ष	
1044	क्षयरोग किसे कहते हैं	245
1453	क्षय किसे कहते हैं और	295
1797	क्षयोपशमलब्धि किसे कहते	338
1913	क्षमाधर्म को पृथ्वी के समान	352
1914	क्षमाधर्म में उत्तम, क्षायिक	352
2083	क्षमादि धर्मों का यही क्रम है	369
2259	क्षपक की, साधु की शोभा	393
2270	क्षपक कुछ भी प्राप्त नहीं	395
2615	क्षपक किसे कहते हैं?	441
	क्षा	
1308	क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति	278
1410	क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनि	261
1918	क्षायोपशमिक भाव कैसे	353
1920	क्षायोपशमिकभाव क्षमाधर्म	353
1921	क्षायोपशमिक..उत्पन्न होता है	353
1922	क्षायोपशमिक...नहीं कहा	353
1940	क्षायोपशमिकभाव मार्दवधर्म	356
1941	क्षायोपशमिकभाव..पाँचवें..	356
1942	क्षायोपशमिक..क्यों नहीं..	356
1950	क्षायिकभाव आर्जवधर्म कैसे	357
1959	क्षायोपशमिकभाव..चौथे...	357
1960	क्षायोपशमिक..आर्जवधर्म..	358
1969	क्षायिकभाव शौचधर्म कैसे	358
1970	क्षायिकभाव उत्तम शौचधर्म	358
1971	क्षायोपशमिकभाव..भाव है	358
1972	क्षायोपशमिकभाव...कौन है	358
1974	क्षायोपशमिक...होता है?	359
1975	क्षायोपशमिक..शौचधर्म...	359
1976	क्षायोपशमिक..अव्रतियों के..	359
1978	क्षायिक...कितना काल है?	359
1979	क्षायिक..जघन्योत्कृष्ट...	359
1981	क्षायोपशमिक..चारों धर्मों..	359
2002	क्षायोपशमिक संयमधर्म के	361
2036	क्षायोपशमिक तपधर्म कैसे	364

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
2050	क्षायोपशमिक त्यागधर्म कैसे	366
2062	क्षायोपशमिकभाव आकिंचन्य	367
2072	क्षायोपशमिकभाव ब्रह्मचर्य	368
2084	क्षायोपशमिक सभी भावधर्म	369
2150	क्षायिकभाव से मोक्षमार्ग की	378
2986	क्षायिक और उपशमभाव	491
2987	क्षायोपशमिकभाव पुरुषार्थ	491
2988	क्षायोपशमिकभाव पुरुषार्थ	491
3639	क्षायिकभाव नैमित्तिक	586
4020	क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में	633
	क्षु	
1223	क्षुद्र किसे कहते हैं	268
3607	क्षुधानाशक आहार ही	582
	क्षे	
34	क्षेत्र मंगल किसे कहते हैं?	93
35	क्षेत्र मंगल के कितने भेद	93
2442	क्षेत्रविपाकी प्रकृति किसे	418
2446	क्षेत्रविपाकी कितनी प्रकृतियां	418
	त्र	
303	त्रस स्थावर जीवों की हिंसा	133
3295	त्रसजीवों से निर्मित खाद	539
	त्रि	
107	त्रियोगशुद्धि किसे कहते हैं	103
2091	त्रिवर्णवाले मनुष्य उभयश्रेणी	370
	ज्ञ	
153	ज्ञान को स्व परोभय घातक	110
393	ज्ञान किसे कहते हैं	146
394	ज्ञानदान क्यों करना चाहिये	147
433	ज्ञानबल के अनुसार ही	153
1344	ज्ञानाचार किसे कहते हैं,	283
2155	ज्ञानी कषाय के वशीभूत	379
2159	ज्ञान से कर्मों का क्षय होता	379
2201	ज्ञानी पद से इन दो	385
2286	ज्ञानी जीव धन संपत्ति आदि	397
2557	ज्ञान और अनुभव में क्या	433
2595	ज्ञान के बिना तप की	438
2598	ज्ञान और तप का कार्य क्या	438
2622	ज्ञानाभ्यास किसे कहते हैं	442
2623	ज्ञानाभ्यास का फल भेद	442
2625	ज्ञानाभ्यास क्या सभी	442
2629	ज्ञानाभ्यास कहाँ करना	443
2634	ज्ञानाभ्यास के बिना क्या स्व	443
2635	ज्ञानाभ्यास के बिना और	443
2767	ज्ञानी अधःकर्म से विरहित	460
2859	ज्ञाता, दृष्टा, शुद्ध, बुद्ध यह	474
2863	ज्ञाता दृष्टा आत्मा का	474
3173	ज्ञान, सम्यग्ज्ञान और मिथ्या	522
3958	ज्ञान में समीचीनता कैसे	625
3961	ज्ञान से ध्यान की सिद्धि	626
4011	ज्ञान और चारित्र में शंका	632
4183	ज्ञान और विवेक में क्या	660
4184	ज्ञान और विवेक..क्यों किया	660

चूलिका

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
1	चूलिका किसे कहते हैं?	666
2	यदि स्त्रियाँ अभिषेक नहीं	666
3	तीर्थंकर बालक को काजल	668
4	इंद्राणी देवांगनाओं ने या	668
5	इंद्राणी, देवांगनाओं,	668
6	ये पुराणग्रंथ मूलसंघ	668
7	क्या मूलसंघ आचार्यों ने	668
8	ये पुराणग्रंथ विरुद्ध कथन	668
9	मूलसंघ की परिभाषा तथा	669
10	गुरुओं के चरणस्पर्श करते	670
11	आजकल मुनिवर्ग हीनाचार	670
12	गोत्रकर्म किसे कहते हैं, भेद	670
13	आचरण संबंधी उच्च नीच	671
14	जैनधर्म हिंदुधर्म की या	671
15	पुत्रमुख देखे बिना अवि.	671
16	क्या भगवान की भी पत्नि	671
17	धर्मदीक्षा शिक्षागुरु की पत्नि	671
18	क्या भगवान की प्रतिमा का	672
19	आत्महत्या किसे कहते हैं?	672
20	आत्महत्या कैसे करता है?	672
21	नरक और स्वर्ग में जाकर	672
22	आ. श्री समंतभद्रजी क्या	672
23	चारित्र भ्रष्ट मोक्ष प्राप्त कर	672
24	असंयम को संयममार्गणा में	673
25	आचार्य संघ में आर्यिकाओं	673

रयणसार

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.
26	यदि इनका संघ में रहना	673
27	अपनी सेवा के लिए आचार्य	673
28	कुशीलमुनियों के भेद और	673
29	तीर्थंकर प्रकृतिवाले प्रमत्त	673
30	क्या ये महामुनि प्रतिक्रमण	674
31	पूजादान आदि छह कर्तव्य	674
32	इन दोनों की चर्या समान	674
33	क्या इंद्रियों के सभी विषय	674
34	क्या रात्रि में मुनियों के सामने	674
35	नारायण, प्रतिनारायण, राज्य	674
36	इस शताब्दी में किन श्रावक	674
37	तीन और आठ शल्यों में	675
38	श्री आदिनाथ मुनिराज को 7	675
39	ऐसी क्या क्रूरता थी जो इतनी	675
40	तो क्या आदिनाथ के नरकायु	675
41	एक सज्जन बोले कि आपके	675
42	संवरतत्त्व कौन सा भाव है?	675
43	निर्जरा तत्त्व कौन सा भाव है?	675
44	मोक्षतत्त्व कौन सा भाव है?	675
45	गुण कौन सा भाव है?	675
46	देश और समाज का सुधार	675
47	सदाचार सद्विचार क्या	676
48	शिथिलाचार और भ्रष्टाचार में	676
49	शिथिलाचार..उत्पत्ति का	676
50	शिथिलाचार...कहते हैं	676
51	भावमन चेतन कैसे और	676
52	आहार लेना क्या ऐषणा	676
53	तो फिर ऐषणासमिति क्या है	676
54	संघ में चैत्यालय न होने से	676
55	संघ में चैत्यालय होना	677
56	केवलज्ञान क्या सभी को	677
57	पर्यायों को क्रम से जानने	677
58	तो फिर केवलज्ञान युगपत	677
59	एक समय में एक ही पर्याय	677
60	पर्यायों को भी सर्वथा युगपत्	677
61	पर्यायें कितने प्रकार की होतीं	677
62	प्रक्षाल और अभिषेक में क्या	677
63	जाप, ध्यान, संक्रांति,	678
64	आहारादि चारों संज्ञायें क्या	678
65	प्रतींद्र कैसे व कितने होते	678
66	आठों कर्मों के निमित्त से	678
67	अशुभयोग कहाँ से कहाँ	678
68	शुभयोग कहाँ से कहाँ तक	679
69	योग और उपयोग में क्या	679
70	आचार्यों को कर्तव्य पालन के	679
71	पूर्वग्रंथकर्ताओं पर आक्षेप करने	679
72	सोला किसे कहते हैं	679
73	सोला का भोजन कौन कौन	679
74	ये तीनों पात्र कौन कैसे होते हैं?	680
75	सोला का भोजन करने का	680
76	ऐसे सोले का भोजन क्यों	680
77	ऐसा भोजनपान करने, न करने से	680
78	अव्रती, अणुव्रती वस्त्रधारी को	680
79	यदि आपने अव्रती, अणुव्रती	680
80	तो फिर आपने इनको सोला	680
81	यदि पादप्रक्षालन और अर्चना	680
82	इन वस्त्रधारियों को आहार	681
83	तो फिर इन उपर्युक्त पात्रों की	681
84	यदि ऐसा है तो आप इन वस्त्र	681
85	तब सोला का वास्तविक अर्थ	681

प्र.सं.	प्रश्न	पृ.सं.

गाथानुक्रमणिका

गा.नं.	गाथा	पृ.सं
	अ	
24	अणयाराणं वेज्जावच्चं	202
49	अज्जविसप्पिणिभरहे पउरा	298
50	अज्जविसप्पिणिभरहे पंचयमाले	302
51	अज्जविसप्पिणिभरहे धम्मज्झाणं	308
52	असुहादो णिरयाऊ सुहभावादो दु	311
63	अण्णाणी विसयविरत्तादो	384
77	अप्पाणं पि ण पिच्छइ	430
83	अज्झयणमेवझाणं	486
89	अवियप्पो णिद्दंदो णिम्मोहो	470
106	अविरददेसमहव्वय आगमरुइणं	543
	आ	
94	आरंभे धणधण्णे उवयरणे	493
	इ	
16	इह णियसुवित्तबीयं	171
119	इंदियविसयसुहाइसु मूढमई	574
155	इदि सज्जणपुज्जं रयणसारं	655
	उ	
40	उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो	266
60	उवसमतवभावजुदो	376
100	उयरग्गिसमणमक्खमक्खण	524
107	उवसमणिरीहझाणज्झयणाइ	549
136	उवसमई सम्मत्तं मिच्छत्तबलेण	610
	ए	
46	एक्कु खणं ण विचिंतइ	286
	क	
75	कायकिलेसुववासं	422
76	कम्मु ण खवेइ जो हु	428
104	कोहेण य कलहेण य	534
110	किं जाणिऊण सयलं तच्चं	554
113	कम्माद-विहाव-सहावगुणं	559
117	किंपायफलं पक्कं	568
124	किं बहुणा हो तजि	583
134	किं बहुणा हो देविंदाहिंद	607
139	कुसलस्स तवो णिवुणस्स	629
140	कालमणंतं जीवो मिच्छत्तसरूवेण	630
142	किं बहुणा वयणेण दु	634
151	कामदुहिं कप्पतरुं चिंतारयणं	651
	ख	
17	खेत्तविसेसे काले ववियि	178
34	खयकुट्ठमूलसूलो	245
41	खुद्दोरुद्दोरुट्ठो	268
112	खाईपूयालाहंसक्काराई	557
	ग	
33	गयहत्थपायणासियकण्ण	242
71	गुरुभत्तिविहीणाणं सिस्साणं	410
137	गुणवयतवसमपडिमादाणं	612
154	गंथमिणं जो ण दिट्ठइ	654
	च	
125	चउगइसंसारगमण कारण भूयाणि	586
	ज	
12	जिणपूया मुणिदाणं	152
21	जो मुणिभुत्तविसेसं भुंजइ	191
26	जसकित्तिपुण्णलाहे देइ	211
27	जंतं मंतं तंतं परिचिरियं	215
31	जिण्णुद्धारपइट्ठा जिणपूया	232
78	जाव ण जाणइ अप्पा	431
96	जोइसवेज्जामंतोवजीवणं	511
97	जे पावारंभरया कसायजुत्ता	513
120	जेसिं अमेज्झमज्झे उप्पण्णाणं	575
133	जं जाइजरामरणं दुहदुट्ठविसाहि	605
150	जिणलिंगधरो जोई	649
	ण	
1	णमिऊण वड्ढमाणं परमप्पाणं	90
6	णिय सुद्धप्पणुरत्तो	117

गा.नं.	गाथा	पृ.सं
36	णहि दाणं णहि पूया	254
37	ण वि जाणइ कज्जमकज्जं	256
38	णवि जाणइ जोग्गमजोग्गं	259
59	ण हु दंडइ कोहाइ	374
61	णाणी खवेइ कम्मं	379
79	णिय तच्चुवलद्धिविणा	433
82	णाणब्भासविहीणो सपरं तच्चं	442
88	णिंदावंचणदूरो परीसहउवसग्ग	463
98	ण सहंति इयरदप्पं	570
108	णवि जाणइ जिणसिद्धसरूवं	550
109	णिच्छयववहारसरूवं जो	554
116	णिय अप्पणाणझाणज्झयणं	565
138	णाणेण झाणसिज्झी झाणादो	625
143	णिक्खेवणयपमाणं सद्दालंकार	635

त

44	तणुकुट्ठी कुलभंगं कुणइ जहा	279
86	तच्चवियारणसीलो मोक्ख	457
90	तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो	475

द

8	देवगुरुसमयभत्ता संसार	126
9	दाणं पूया सीलं उववासं	130
10	दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे	136
11	दाणु ण धम्मु ण चागु ण भोगु	143
14	दाणं भोयणमेत्तं दिण्णइ	161
15	दिण्णइ सुपत्तदाणं विसेसदो होइ	165
28	दाणीणं दालिद्दं लोहीणं हिं हवेइ	219
45	देवगुरुधम्मगुणचारित्तं	281
55	दव्वत्थिकायछप्पणतच्चपयत्थेसु	323
92	दंडत्तय सल्लत्तय मंडियमाणो	479
93	देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता	484
105	दिव्वुत्तरण सरिच्छं जाणिच्चाहो	536
118	देहकलत्तपुत्तमित्ताइ	569
127	दव्वगुणपज्जएहिं जाणइ	591

ध

गा.नं.	गाथा	पृ.सं
29	धणधण्णइसमिद्धे	221
57	धरियउ बाहिरलिंगं परिहरियउ	371
149	धम्मज्झाणब्भासं करेइ तिविहेण	646

प

2	पुव्वं जिणेहि भणियं जहट्ठियं	106
13	पूयफलेण तिलोए सुरपुज्जो	158
30	पत्तविणा दाणं य सुपुत्तविणा	225
32	पुत्तकलत्तविदूरो दालिद्दो	238
48	पुव्वट्ठियं खवई कम्मं	294
62	पुव्वं सेवइमिच्छामलसोहणहेउ	380
69	पुव्वं जो पंचेंदियतणुमणुवचि	402
70	पतिभत्तिविहीण सदीभिच्चो य	407
84	पावारंभणिवित्ती पुण्णरंभे	450
145	पिच्छे संत्थरणे इच्छासु लोहेण	637
148	पवयणसारब्भासं	644

ब

102	बहुदुक्खभायणं कम्मकारणं	529
128	बहिरतरप्पभेयं परसमयं भण्णए	593
132	बहिरब्भंतरगंथविमुक्को	603

भ

5	भयविसणमलविवज्जिय	114
68	भू महिला कणथाई लोहाहि	400
99	भुंजेइ जहा जाहं लहेइ जइ	520
135	भुत्तो अयोगुलोसइयो तत्तो	609

म

3	मदिसुदणाणबलेण दु	111
7	मयमूढमणायदणं	122
18	मादुपिदुपुत्तमित्तं	179
47	मिच्छामइमयमोहासवमत्तो	288
58	मोक्खणिमित्तं दुक्खं वहेइ	373
81	मक्खी सिलिम्मि पडिओ	440
114	मूलुत्तरूत्तरदव्वादो	561
122	मलमुत्तघडव्वचिरं	579
126	मोक्खगइगमणकारण भूयाणि	588

प्र.सं. गा.नं.	प्रश्न गाथा	पृ.सं. पृ.सं
129	मिस्सोति बाहिरप्पा तरतमया	594
130	मूढत्तय सल्लत्तय दोसत्तय	596
146	मिहिरो महंधयारं मरुदो मेहं	641
147	मिच्छंधयाररहियं हिययमज्झम्मिव	642
	र	
56	रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मे	323
72	रज्जं पहाणहीणं	413
91	रायाइमलजुदाणं णिय अप्पारूवं	478
101	रसरुहिरमंसमेदट्ठि	529
131	रयणत्तयकरणत्तयजोगत्तयगुत्तित्तय	597
153	रयणत्तयमेव गणं गच्छं	654
	ल	
39	लोइयजणसंगादो होइ	263
	व	
42	वाणरगद्दहसाणगयवग्घ	274
54	विकहाइसु	313
64	विणओ भत्तिविहीणो महिलाणं	386
65	सुहडो सूरत्त विणा	388
66	वत्थुसमग्गोमूढो लोही ण लहइ	385
67	वत्थुसमग्गो णाणी सुपत्तदाणी	397
87	विकहाइविप्पमुक्को	458
111	वयगुणसीलपरीसहजयं चरियं	556
115	विसयविरत्तो मुंचइ विसयासत्तो	563
144	वसदी पडिमोवयरणे	637
	स	
4	सम्मत्तरयणसारं मोक्खमहारुक्ख	111
19	सत्तंगरज्जणवणिहिभंडार	183
20	सुकुलसुरूवसुल्क्खणसुमइ	185
22	सीदुण्हवाउपिउलं सिलेसिमं	196
25	सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं	206
35	सम्मविसोहीतवगुणचारित्त	250
43	सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं	277
65	सुहडो सूरत्तविणा महिला	388
73	सम्मत्तविणा रुई भत्तिविणादाणं	416
80	सालविहीणो राओ	436
85	सुदणाणब्भासं जो ण कुणइ	454
95	संघविरोहकुसीला संच्छदा	493
103	संजमतवझाणज्झयणविणाणए	533
121	सिविणे वि ण भुंजइ विसयाइं	576
123	सम्माइट्ठी णाणी अक्खाण	580
141	सम्मद्दंसणसुद्धं जाव दु लभदे	631
152	सम्मत्तणाणवेरग्गतवोभावं	652
	ह	
23	हियमियमण्णंपाणं	198
53	हिंसाइसु मोहाइसु मिच्छाणाणेसु	313
74	हीणादाणवियारविहीणादो	419

श्री महावीराय नमः श्री कुंदकुंद गुरवे नमः

टीकाग्रंथ

पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका

रयणसार

अनुवादक का मंगलाचरण

सदा वीर प्रभु देव हैं संमुख रहत गणेश।
पाँच देव रक्षा करें सिद्ध शास्त्र गुरवेश।।
पंच परम गुरु को नमूं जिनवाणी मन धार।
तत्त्वों को धारण करुं कर्मों का हो क्षाल।।

अर्थ- महावीर वर्धमान तीर्थंकर अरिहंत प्रभु, गणधर, सिद्ध परमेष्ठी, जिनवाणी, दीक्षाशिक्षा (प्रायश्चित्त) दायक गुरु आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी ये पाँच धर्मायतन सम्मुख रहकर हमारी हमेशा रक्षा करें। कर्मों को क्षय करने के लिए जिनवाणी और तत्त्वों को हृदय में धारण कर पाँचों परमेष्ठियों एवं समस्त धर्मायतनों को नमस्कार करता हूँ।

ग्रंथकार का मंगलाचरण

णमिऊण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार धम्मीणं ।।1।।

नत्वा वर्द्धमानं परमात्मानं जिनं त्रिशुद्ध्या।
वक्ष्ये रत्नसारं सागारानगार धर्मिणम्।।१।।

परमप्पाणं परमात्मा **वड्ढमाणं** वर्द्धमान **जिणं** जिनको **तिसुद्धेण** त्रियोग शुद्धि पूर्वक **णमिऊण** नमस्कार कर **सायारणयारधम्मीणं** धर्मयुक्त गृहस्थ और मुनियों के लिए **रयणसारं** रत्नसारग्रंथ को **वोच्छामि** (मैं आ. श्री कुंदकुंद) कहूँगा।

प्र.-1 ग्रंथनिर्माण में कितने और किन किन नियमों को ध्यान में रखना चाहिये?

उत्तर- ग्रंथनिर्माण में 6 नियमों को ध्यान में रखना चाहिये। **नामः-** 1. मंगलाचरण 2. निमित्त 3. हेतु 4. प्रमाण 5. नाम 6. कर्ता।

प्र.-2 ग्रंथ पद का अर्थ क्या परिग्रह ले सकते हैं?

उत्तर- यद्यपि ग्रंथ का अर्थ परिग्रह है पर प्रकरण वश ग्रंथ का अर्थ शास्त्र करना चाहिये, अन्य नहीं।

प्र.-3 ये नियम किसने और कहाँ पर बताये हैं?

उत्तर- ये नियम यथार्थ में संसार शरीर और भोगों से विरक्त जिनेंद्र के आज्ञापालक, मोक्षमार्ग के आराधक निर्ग्रंथ दिगंबर जैनाचार्य यतिवृषभ ने परंपरागत आर्षग्रंथ तिलोयपण्णत्ति गा. 7 में बताये हैं।

प्र.-4 ये नियम क्यों बताये हैं?

उत्तर- इन नियमों को जाने पहंचाने बिना मोक्षमार्ग में तथा मोक्षमार्ग के साधनों में सम्यग्विश्वास उत्पन्न नहीं हो सकता है अतः इन नियमों को बताना परम आवश्यक है।

प्र.-5 क्या ये नियम केवल ग्रंथ निर्माण या व्याख्यान में प्रयोग किये जाते हैं?

उत्तर- नहीं, ये नियम ग्रंथ निर्माण और व्याख्यान में प्रयोग के साथ साथ लौकिक तथा लोकोत्तर कार्यों में भी किये जाते हैं क्योंकि इनके बिना कार्यों में सफलता प्राप्त नहीं होती।

प्र.-6 ये नियम लौकिक कार्यों में किस प्रकार से प्रयोग किये जाते हैं?

उत्तर- देखो! बाजार से कोई वस्तु खरीदना है या कोई कार्य करना है तो उसके प्रति समर्पित, आकर्षित होकर मन वचन काय से तदनुकूल आचरण मंगलाचरण है। परिवार का, साथियों का दुःख दूर करना निमित्त है। निजकी आकुलता व्याकुलता दूर करना हेतु है। वह वस्तु या कार्य गणना की अपेक्षा कितनी संख्या में है वह प्रमाण है। वस्तु या कार्य के आदानप्रदानार्थ शब्द संकेत नाम है। वस्तु का निर्माण कार्य किसने किया है वह कर्ता। इस प्रकार ये 6 नियम लौकिक कार्यों में भी प्रयोग किये जाते हैं।

प्र.-7 लोकोत्तर कार्यों में ये नियम क्यों और किस प्रकार से प्रयोग में लाये जाते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग में उत्साह पैदा करने, दृढ़ता, मजबूती लाने, पापकर्मों का संवर और असंख्यातगुणी निर्जरा करने के लिए, संसार बंधन से छूटने के लिए ये नियम प्रयोग में लाये जाते हैं। जैसे मुनिदीक्षा ग्रहण करने के प्रति समर्पित होना मंगलाचरण, आश्रव बंध से छूटना निमित्त, संवर निर्जरा प्राप्त करना हेतु, अनेक भेद रूप प्रमाण, सकल संयम/ सकल व्रत नाम, मोक्षमार्ग का साधक कर्ता।

प्र.-8 इन नियमों का पालन कौनसे जीव करते हैं?

उत्तर- सभी सैनी, पंचेंद्रियपर्याप्तक, भव्याभव्य, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव इनका पालन करते हैं।

प्र.-9 मंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- त्रियोंगों की जिन क्रियाओं से पापकर्म की हानि, पुण्य की वृद्धि, आत्मशुद्धि, शाश्वतसुख की प्राप्ति हो उसे मंगल कहते हैं।

प्र.-10 मंगल पद के पर्यायवाची नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ, सौख्यादि पर्यायवाची नाम हैं।

प्र.-11 इन नामों को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- इन नामों में उपयोग केंद्रित करने से कषायों का मर्दन होता है एवं ज्ञानावरणादि द्रव्यमल, अज्ञान, असंयम, अदर्शन आदि भावमल हीनता को प्राप्त होकर नष्ट होते हैं इसलिए मंगल कहा है।

प्र.-12 मंगल पद का पदच्छेद अर्थ क्या है?

उत्तर- **मं पापं घातिकर्मं, गलं- गालयति इति मंगलं** अथवा **मंगं पुण्यं अनंतचतुष्टयं, ल- लाति इति मंगलं** अर्थात् अपने जिन आचार विचारों के द्वारा हिंसादि पापों का, जुआ खेलना आदि व्यसनों का, विषयकषायों का, पाप रूपी घातियाकर्मों का अंत, विनाश या क्षय होना अथवा केवलज्ञानादि अनंतचतुष्टय की, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अहमिंद्र आदि उत्तम पदों की प्राप्ति होना मंगल का अर्थ है।

प्र.-13 मन वचन काय की चर्या के द्वारा अनंतचतुष्टय की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर- जैसे वस्त्रों को धारण करने और उतारने की क्रिया होती है वैसे ही कर्मों को बांधने और क्षय करने की क्रिया है। इसी क्रिया से घातियाकर्मों का क्षय तथा अनंतचतुष्टय की प्राप्ति होती है या क्रिया नाम चारित्र का है। विरुद्ध चारित्र से ही कर्मों का बंध और अविरुद्ध चारित्र से क्षय होता है।

प्र.-14 क्रिया के भेद और किस क्रिया से किस फल की प्राप्ति होती है?

उत्तर- क्रिया तीन प्रकार की होती है। 1. पाप बंध की 2. पुण्य बंध की 3. पापपुण्य बंध की अथवा पाप को क्षय करने की, पुण्य को क्षय करने की और पापपुण्य को क्षय करने की या पाप कर्म को पुण्य कर्म से, पुण्यकर्म को पापकर्म से तथा पाप को पाप से या पुण्य को पुण्य से नष्ट कर सकते हैं किंतु ऐसे कर्मों को नष्ट करने से संसार का अंत नहीं होता है। संसार का अंत करने के लिए समूल पापकर्म को धर्मध्यान रूप पुण्यकर्म से क्षय कर बाद में क्रमशः पापपुण्य कर्म को शुक्लध्यान रूपी शुभ और शुद्ध क्रिया से क्षय करके मोक्षफल की प्राप्ति होती है आदि इन क्रियाओं का यही फल है।

प्र.-15 क्या पापपुण्य प्रकृतियां सत्ता से क्षय होने पर पुनः बंध को प्राप्त होतीं हैं?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही सत्ता से विच्छेद हो जाने पर परिणामविशेष से ये प्रकृतियां पुनः बंध जातीं हैं।

प्र.-16 वे कौनसी प्रकृतियां हैं जो पुनः बंध को प्राप्त हो जातीं हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधीकषाय, उच्चगोत्र, सातावेदनीय, आहारकशरीरादि पाप पुण्यप्रकृतियां सत्ता से व्युच्छिन्न हो जाने के बाद में भी तीव्र संक्लेश या विशुद्ध परिणामों से पुनः बंध को प्राप्त हो जातीं हैं।

प्र.-17 ये पाप पुण्य प्रकृतियां कितनी बार पुनः बंध को प्राप्त हो सकती हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधीकषाय असंख्यातबार, आहारकशरीर संख्यातबार तथा अनेक पुण्यप्रकृतियां अनंतबार सत्ता से क्षय को प्राप्त होकर पुनः परिणाम विशेषों के द्वारा सत्ता/ बंध को प्राप्त हो जातीं हैं।

प्र.-18 ऐसा क्यों होता है और कौनसे जीव प्राप्त करते हैं?

उत्तर- अनंत संसार के मूलभूत जड़ व चेतन रूप मिथ्यात्वकर्म के समूल क्षय न होने से पुनः बंध को प्राप्त होता है। अनंतानुबंधीकषाय को सादिमिथ्यादृष्टि तथा पुण्यप्रकृतियों को अभव्य एवं भव्य अनादिमिथ्यादृष्टि और सादिमिथ्यादृष्टि भव्य पुनः बंध को प्राप्त करते हैं।

प्र.-19 ये अभव्यजीव, अनादिमिथ्यादृष्टि भव्यजीव और दूरानुदूरभव्यजीव पुण्य प्रकृतियों को पुनः पुनः अनंतबार बंध को क्यों प्राप्त होते हैं?

उत्तर- क्योंकि ये जीव अनंत पंचपरावर्तन कर निगोद में, सूक्ष्म और बादर स्थावरजीवों में जन्म लेकर, पुण्यप्रकृतियों की उद्वेलनाकर तथा सजातीय पाप प्रकृतियों में पुण्य प्रकृतियों की सर्व संक्रमण के द्वारा सत्ता से नष्ट कर अनादि नित्यनिगोदिया जीवों के समान प्रकृतियों की सत्ता कर लेते हैं। इस विषय को सूक्ष्म रूप से समझने के लिए कर्मकांड, धवला टीका आदि ग्रंथों को देखना चाहिये।

प्र.-20 मंगलाचरण किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्ण शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिए त्रियोग से किये गये सम्यगाचरण को मंगलाचरण कहते हैं।

प्र.-21 मंगलाचरण के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मंगलाचरण के 2 भेद, 3 भेद, 6 भेद, संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं। **2 नामः-** निबद्ध मंगल और अनिबद्ध मंगल अथवा द्रव्य मंगल और भाव मंगल। **3 नामः-** सचित्त मंगल, अचित्त मंगल और मिश्र मंगल। **6 नामः-** नाम मंगल, स्थापना मंगल, द्रव्य मंगल, भाव मंगल, क्षेत्र मंगल और काल मंगल।

प्र.-22 निबद्ध मंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- ग्रंथकर्ता के द्वारा शास्त्र के प्रारंभ में, मध्य में और अंत में गद्य या पद्य रूप में पंचपरमेष्ठियों के प्रति नमस्कारात्मक शब्द रचना के लिपिबद्ध करने को निबद्ध मंगल कहते हैं।

प्र.-23 अनिबद्ध मंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- ग्रंथकर्ता के द्वारा शास्त्र के प्रारंभ, मध्य और अंत में गद्य या पद्य रूप में पंचपरमेष्ठियों के प्रति नमस्कारात्मक शब्दरचना के लिपिबद्ध न करने को, मौखिक बोलने को अनिबद्ध मंगल कहते हैं।

प्र.-24 सचित्त मंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- चेतन स्वरूप पंचपरमेष्ठी को सचित्तमंगल कहते हैं क्योंकि इनके द्वारा आत्मा में पवित्रता आती है। इनके बिना प्रारंभ में किसी भी जीव को आत्मपवित्रता न प्राप्त हुई थी, न है और न होने वाली है।

प्र.-25 अचित्त मंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- पाँचों परमेष्ठियों के, नव देवताओं के प्रतिबिंबों को, जिनवाणी को, अचेतन स्वरूप धर्मायतनों को अचित्त मंगल कहते हैं।

प्र.-26 मिश्र मंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- शरीर सहित रत्नत्रय युक्त संसारी छद्मस्थ और केवली आत्मा को या पीछी कमंडलु सहित आचार्य उपाध्याय और साधु संघ को, जिनबिंब सहित दिगंबर जैनाचार्य संघ को मिश्र मंगल कहते हैं।

प्र.-27 इन बाह्य चेतन, अचेतन और मिश्र सामग्री को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- धर्मानुकूल इष्टकार्यों में सहायक होने से इन बाह्य चेतनाचेतन, मिश्रसामग्री को मंगल कहा है।

प्र.-28 क्या ये तीनों मंगल लौकिक और लोकोत्तर भी होते हैं?

उत्तर- हाँ, ये तीनों लौकिक और लोकोत्तर के भेद से दो दो प्रकार के होते हैं।

प्र.-29 इन दोनों प्रकार के मंगलों से किस किस फल की प्राप्ति होती है?

उत्तर- लौकिक मंगल से लौकिक फल की और लोकोत्तर मंगल से उभय फलों की प्राप्ति होती है।

प्र.-30 नाममंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग के साधक संयमी साधु और सिद्ध परमेष्ठियों के नामों को या मोक्षमार्ग में साधनभूत संज्ञाओं को नाममंगल कहते हैं।

प्र.-31 स्थापनामंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- पंचपरमेष्ठियों की कृत्रिम और अकृत्रिम बिंबों की, धर्मायतनों की स्थापना निक्षेप के द्वारा संकल्प पूर्वक स्थापित करने को तदाकार अतदाकार स्थापनामंगल कहते हैं।

प्र.-32 द्रव्यमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- शरीरधारी चार परमेष्ठियों के शरीर को तथा इनमें सहायक सामग्री को द्रव्यमंगल अथवा अनादि और सादिकालीन कर्मों को छेदनेवाली वचन तथा काय की क्रिया को द्रव्यमंगल कहते हैं।

प्र.-33 भावमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय स्वरूप परिणामों को तथा इन परिणामों से संबंधित नाना भावों को भावमंगल कहते हैं।

प्र.-34 क्षेत्रमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस आकाशप्रदेश या भूमिप्रदेश में स्थिर होकर मोक्षमार्गस्थ संयमी वीतरागी आत्माओं ने आत्मसाधना कर मोक्षपद प्राप्त किया है उसे क्षेत्रमंगल कहते हैं। स्थिर का मतलब है योगों का अभाव करना।

प्र.-35 क्षेत्रमंगल के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- क्षेत्रमंगल के पाँच भेद हैं। निर्वाणक्षेत्र, अतिशयक्षेत्र, धर्मक्षेत्र, तीर्थक्षेत्र, कल्याणकक्षेत्र।

प्र.-36 निर्वाणक्षेत्रमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस स्थान पर चरमशरीरी पूज्य रत्नत्रयधारी, सर्व आरंभपरिग्रह के त्यागी, वैरागी साधुओं ने अनादि सादिकालीन कर्मों को क्षय कर मोक्षपद प्राप्त किया है उसे निर्वाणक्षेत्रमंगल कहते हैं।

प्र.-37 अतिशयक्षेत्रमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस स्थान पर संसारी दुःखी प्राणियों की मनोकामनायें पूर्ण हों तथा अनहोनी चमत्कारी घटनायें घटीं हो या घटें, उत्पन्न हों उसे अतिशयक्षेत्रमंगल कहते हैं।

प्र.-38 क्या सभी तीर्थक्षेत्रों के अतिशय या चमत्कार मिथ्या होते हैं?

उत्तर- नहीं, जिन क्षेत्रों में प्रतिष्ठाचार्यों और धर्माचार्यों ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धि पूर्वक जिनबिंब के साथ देवीदेवताओं तथा यक्षयक्षणियों की स्थापना की है वे धर्मात्माओं पर आये हुए कष्टों को भली प्रकार से दूरकर रक्षा करते हैं उन्हें सम्यक् अतिशयक्षेत्र कहते हैं। आजकल बहुत सारे नामधारी अपनेआप को ज्ञानी माननेवाले यक्षयक्षणियों को नहीं मानते हैं तो उन्होंने अतिशयक्षेत्रों को नहीं माना है क्योंकि तीर्थंकरप्रभु या जिनबिंब अपना माहात्म्य स्वयं नहीं बताते हैं इनकी महिमा को बताने वाले इनके भक्त ही होंगे। जो भक्त को नहीं मानता वह भगवान को भी नहीं मानता अतः सभी चमत्कार मिथ्या न होकर मोक्षमार्ग में सहायक होने से समीचीन और जो अतिशय संसार को बढ़ाते हैं, अनेक प्रकार के दुःख प्राप्त कराते हैं वे असमीचीन अतिशय होते हैं।

प्र.-39 धर्मक्षेत्रमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ रत्नत्रय की, आत्मसाधना या प्रवृत्तिधर्म की आराधना की जाय उसे धर्मक्षेत्रमंगल कहते हैं।

प्र.-40 तीर्थक्षेत्रमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ से आत्मा संसारबंधन को तोड़ने या संसार से पार होने में तत्पर हो उसे तीर्थक्षेत्रमंगल कहते हैं।

प्र.-41 कल्याणकक्षेत्रमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ से तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाली महान आत्माओं ने गर्भोत्सव, जन्मोत्सव, दीक्षोत्सव, ज्ञानोत्सव और मोक्षपद प्राप्त किया है उसे कल्याणकक्षेत्र मंगल कहते हैं।

प्र.-42 कालमंगल किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस समय के माध्यम से आत्मा में पवित्र परिणाम उत्पन्न हों उस समय को कालमंगल कहते हैं। जैसे पर्यूषण पर्व, अष्टाह्निका पर्व, सोलहकारण पर्व, दीपावली, अक्षयतृतीया, श्रुतपंचमी, अष्टमी आदि।

प्र.-43 मंगल द्रव्य कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- झारी, कलश, दर्पण, चंवर, ध्वजा, पंखा, छत्र और साथिया ये 8 मंगल द्रव्य हैं। (ति. गा. 1880 अ. 4)

भृंगार कलशादर्श पात्री संखा समुद्गकाः।
पालिका धूपनी दीपकूर्चाः पाटलिकादयः।।364।।
अष्टोत्तर शतं तेऽपि कंस तालनकादयः।
परिवारोऽत्र विज्ञेयः प्रतिमानां यथायथम्।।365।। ह.पु. अधि. 5

अर्थः- झारी, कलश, दर्पण, पात्री, शंख, साथिया, ध्वजा, धूपनी, दीप, कूर्च, पाटलिका तथा झांझ,

मंजीरा आदि 108-108 उपकरण प्रतिमाओं के परिवार स्वरूप जानना चाहिये।

प्र.-44 लौकिक मंगल कौन कौन हैं?

उत्तर- सिद्धार्थ (पीली सरसों), पूर्ण कलश, वंदन माला, छत्र, श्वेत वर्ण, दर्पण, सफेद घोड़ा, बाल कन्या, चंवर इनके अलावा लोक में हाथी, हंस, मोर आदि को भी मंगल माना है।

प्र.-45 सिद्धार्थ को एवं पूर्ण कलश को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- व्रत, नियम, संयमादि गुणों से साधित जिनवरों को ही समस्त अर्थों की सिद्धि हो जाने के कारण परमार्थ से सिद्ध संज्ञा प्राप्त है इसलिए सिद्धार्थ पीली सरसों को भी मंगल कहा है क्योंकि लौकिक और लोकोत्तर सभी शुभकार्यों में पीली सरसों को प्रयोग में लाने से इसे मंगल कहा है। पानी से भरे हुए पूर्ण कलशवत् पूर्ण केवलज्ञान से युक्त होने के कारण अर्हंतप्रभु लोक में मंगल हैं सो पूर्णकलश को मंगल कहा है। खाली या कम भरे कलश को **अध जल गगरी छलकत जाय** जैसा मंगल नहीं कहा।

प्र.-46 वंदनमाला को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- 24 तीर्थंकर वंदनीय होते हैं इसलिए भरत चक्रवर्ती ने अपने दरवाजे के ऊपर निकलते और प्रवेश करते हुए 24 तीर्थंकरों के बिंबों की रचना कराई थी इसलिए वंदनमाला को मंगल कहा है।

प्र.-47 छत्रत्रय को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- संसार के समस्त प्राणियों को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए अरिहंत भगवान एकमात्र आश्रय हैं और सिद्धशिला छत्राकार है इसलिए तीन छत्रों को मंगल कहा है।

प्र.-48 श्वेतवर्ण को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- अरिहंत भगवान का शुक्लध्यान तथा शुक्ललेश्या रंग रहित श्वेत होने से श्वेतवर्ण को मंगल कहा।

प्र.-49 दर्पण को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- जैसे दर्पण के सम्मुख आये हुए समस्त चराचर पदार्थों का पूर्ण प्रतिबिंब पड़ता है वैसे ही जिनेंद्र भगवान केवलज्ञान के द्वारा समस्त चराचर पदार्थों को एकसाथ जानते हैं इसलिए दर्पण को मंगल कहा है।

प्र.-50 सफेद घोड़े और बालकन्या को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- जिस प्रकार वीतराग सर्वज्ञ जिनेंद्र भगवान लोक में मंगल स्वरूप हैं उसी प्रकार उत्तम जाति का घोड़ा और बाल कन्या राग द्वेष रहित सरल चित्त वाली निर्विकार होने से मंगल कहा है।

प्र.-51 चंवर को मंगल क्यों कहा?

उत्तर- कर्मरूपी शत्रुओं को जीतकर जिनेंद्रदेव मोक्ष को प्राप्त हुए हैं इसलिए शत्रु समूह पर जीत को दर्शाने वाला चंवर मंगल कहा है।

प्र.-52 इस ग्रंथ का मंगलाचरण क्या है?

उत्तर- **णमिऊण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।**

वोच्छामि रयणसारं सायारणयार धम्मीणं॥1॥

प्र.-53 इस ग्रंथ रचना का निमित्त क्या है?

उत्तर- ग्रंथ रचना का निमित्त आर्य खंडोत्पन्न मनुष्य और मनुष्यनी, कदाचित् मलेच्छ खंडोत्पन्न भद्र परिणामी मिथ्यादृष्टि मोक्षमार्ग में प्रवेश करने के इच्छुक राजा प्रजादि भव्यजीव, मोक्षमार्गस्थ

अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ, अणुव्रती प्रतिमाधारी और महाव्रती मुनिजन हैं।

प्र.-54 इस ग्रंथ रचना का हेतु क्या है?

उत्तर- इस ग्रंथ रचना का हेतु आत्म निर्मलता होना, विषयकषायों का निग्रह करना, पापकर्मों का संवर करना, परिणामों में अत्यंत उत्कृष्टता होने पर गुणस्थानानुसार पुण्य कर्मों का भी संवर होना विशेषतया असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होना और निष्कर्ष रूप में परंपरा से मोक्ष प्राप्त होना हेतु है।

प्र.-55 इस रयणसार ग्रंथ में गाथाओं का प्रमाण कितना तथा हीनाधिक क्यों हो गया?

उत्तर- इस ग्रंथ की अधिकांश प्रतियों में गाथाओं का प्रमाण 155 और कुछ में 175 तक हैं। ग्रंथ का स्वाध्याय करने वाले अध्येताओं ने अध्ययन करते समय प्रसंगानुसार तदनुकूल आर्ष प्रणीत ग्रंथों में से गाथाओं को उद्धृत कर लिपिबद्ध किया इससे गाथाओं का प्रमाण हीनाधिक हो गया अतः आर्ष वचन होने से गाथायें अप्रमाण नहीं है, प्रमाण ही हैं सो ये गाथायें मूल ग्रंथ की न होने से इन्हें क्षेपक कहा है या ग्रंथ कर्ता भी कदाचित् विषयप्रकरण से संबंधित गाथाओं को चूलिका रूप में निबद्ध कर देते हैं। पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका में प्रश्नोत्तरों का प्रमाण 4218+ चूलिका प्रमाण 85 = 4303

प्र.-56 इस ग्रंथ का नाम क्या है और यह नाम क्यों रक्खा?

उत्तर- रत्नों का सार तथा गृहस्थ और मुनियों से संबंधित रत्नों के समान मोक्षमार्ग का कथन होने से इस ग्रंथ का नाम रयणसार रक्खा है एवं आ. श्री ने यहाँ पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीका नाम दिया है।

प्र.-57 इस ग्रंथ के कर्ता कौन हैं?

उत्तर- इस ग्रंथ के कर्ता आ. श्री कुंदकुंद हैं और इस ग्रंथ के मूलकर्ता तो तीर्थंकर भगवान महावीर या भूतकालीन अनंतानंत तीर्थंकर अरिहंत प्रभु हैं क्योंकि सभी तीर्थंकर अरिहंत प्रभु मोक्षमार्ग का ही प्रतिपादन करते हैं। उत्तरकर्ता अनेक ऋद्धियों से संपन्न गणधर, द्वादशांग के पाठी श्रुतकेवली तथा उत्तरोत्तर ग्रंथकर्ता परंपरागत आरातीय आचार्य भगवंत हैं।

प्र.-58 यह रयणसार ग्रंथ किस अनुयोग का है?

उत्तर- इस ग्रंथ में मुख्यता से चरणानुयोग का वर्णन है एवं प्रसंगानुसार द्रव्यानुयोग का भी है।

प्र.-59 इस रयणसार ग्रंथ में ग्रंथकर्ता ने क्या प्रतिज्ञा की है?

उत्तर- इसमें ग्रंथकर्ता ने सर्व प्रथम गृहस्थधर्म की और बाद में मुनिधर्म को कहने की प्रतिज्ञा की है।

प्र.-60 गृहस्थ श्रावक किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- ज्वर से पीड़ित व्यक्तिवत् जो आहारादि संज्ञाओं से पीड़ित हैं, विषयकषायों, आरंभपरिग्रह से युक्त हैं उन्हें गृहस्थ और श्रावक कहते हैं। गृहस्थों के दो भेद हैं। **नामः-** अव्रतीसम्यग्दृष्टि गृहस्थ श्रावक तथा अणुव्रतीप्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टि गृहस्थ एवं अगृहस्थश्रावक।

प्र.-61 मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वालों के समान सतत मौनपूर्वक संयमी आत्मसाधकों को मुनि कहते हैं।

प्र.-62 मुनियों को रात्रि में या दिन में मौन रहना चाहिये ऐसा कहाँ लिखा है?

उत्तर- जब तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले श्रावक मुनिदीक्षा लेते हैं तब वे केवलज्ञान की प्राप्ति पर्यंत या छद्मस्थ अवस्था में मौन से ही आत्मसाधना करते हैं। योगभक्ति की अंचलिका में भी योगियों को "**मोण**" मौन पूर्वक आत्मसाधना करने को ही कहा है तथा द्रव्यसंग्रह में भी '**साधयति**

णिच्चसुद्धं साहू स मुणी णमो तस्स' नित्य ही शुद्धात्मा की साधना करने वालों को साधु / मुनि कहते हैं। अब जो नित्य ही शुद्धात्मा की साधना करता है वह कब और कैसे बोलेगा? अतः शास्त्रों में केवल आचार्य श्री को बोलने के लिए, उपाध्याय को पढ़ाने के लिए और साधुओं को मौन पूर्वक साधना करने को कहा है। जहाँ कहीं कुछ प्रसंगों पर मुनियों ने गृहस्थों से वार्तालाप किया है तो वहीं पर शीघ्र ही प्रायश्चित्त करने को भी कहा है।

प्र.-63 यदि मुनियों को मौन रहने को कहते हो तो भाषा समिति मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर- मुनियों का भाषासमिति मूलगुण अवश्य है किंतु आम प्रजा के साथ में बोलने को नहीं कहा है केवल दीक्षा शिक्षादायक गुरु के साथ बोलने को कहा है फिर भी प्रायश्चित्त का विधान किया है यदि यहाँ मुनियों के भाषा समिति में बोलने के लिए कहते हो तो तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मुनियों को भी बोलने के लिए कहो अतः समिति की प्रतिज्ञा के साथ साथ महाव्रत महान व श्रेष्ठ हैं क्योंकि समिति प्रवृत्ति मार्ग में ही निर्दोष एवं निवृत्तिमार्ग में सदोष हैं तथा समितियां निवृत्तिमार्ग की विराधना करनेवाली हैं। जैसे वेश्या और परस्त्रीसेवन के त्याग की अपेक्षा अपनी पत्नि का सेवन करना निर्दोष है किंतु अखंड ब्रह्मचर्य का खंडन होने से निज पत्नि का सेवन करना भी सदोष ही है क्योंकि द्रव्यहिंसा सभी में बराबर होती है।

प्र.-64 इस ग्रंथ में किन गृहस्थों का वर्णन है?

उत्तर- इस ग्रंथ में क्वचित् कदाचित् भद्र परिणामी भावमिथ्यादृष्टि जीवों का, अव्रतीसम्यग्दृष्टि और अणुव्रती दर्शनप्रतिमा से लेकर उद्दिष्टत्याग प्रतिमा पर्यंत गृहस्थों का वर्णन है।

प्र.-65 इस ग्रंथ का उद्भवस्थान कौनसा है?

उत्तर- इसका उद्भवस्थान गर्भाधानादि 108 क्रियाओं की अपेक्षा क्रियाविशाल पूर्व, प्रतिमाओं के कथन की अपेक्षा उपासकाध्ययनांग, मुनिधर्म की अपेक्षा आचारांग है। इनमें केवल स्वसमय का ही कथन है।

प्र.-66 इस ग्रंथ का उद्भवस्थान अंग और पूर्व है यह कैसे जाना?

उत्तर- गाथाओं के अर्थ से तथा प्रतिज्ञा वाक्य से जाना कि इस ग्रंथ का उद्भवस्थान द्वादशांगवाणी ही है।

प्र.-67 मंगलाचरण किन किन कारणों से किया जाता है?

उत्तर- **नास्तिकत्व परिहारः शिष्टाचार प्रपालनं। पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्नौ शास्त्रादौ तेन संस्तुति।।**

अर्थः- अविश्वास को दूर करने के लिए, आज्ञाकारी बनने के लिए, सातिशय पुण्य की प्राप्ति के लिए तथा प्रारंभ किये हुए कार्य निर्विघ्न संपन्न हो इसलिए मंगलाचरण किया जाता है।

प्र.-68 इस मंगलाचरण में विदेहक्षेत्रस्थ तीर्थंकरों को नमस्कार क्यों नहीं किया?

उत्तर- यहाँ आ. श्री ने मंगल स्वरूप भ. वर्धमान को नमस्कार किया है क्योंकि जिससे या जिनकी परंपरा में मार्गदर्शन प्राप्त किया है उनका ही स्मरण, गुणगान, गुणकीर्तन किया जाता है और आ. श्री कुंदकुंद जैसे विदेहक्षेत्रस्थ श्री सीमंधरस्वामीजी से ज्ञान प्राप्त कर नाम छिपा लें या उनका नाम स्मरण न करें तो फिर सामान्य साधुओं की तो बात ही क्या? अर्थात् महापुरुष मोक्षमार्गी कृतघ्नी नहीं होते हैं, परकृत उपकार को नहीं भूलते हैं। यदि आ. श्री कुंदकुंदजी विदेहक्षेत्र गये होते तो वे अपने ग्रंथों में कहीं पर भी नाम अवश्य ही स्मरण करते पर उन्होंने नहीं लिया क्योंकि वे सत्य महाव्रती थे अतः नमस्कार नहीं किया।

प्र.-69 भ. महावीर का कितने नामों से स्तवन, गुणकीर्तन किया जाता है?

उत्तर- भ. महावीर के प्रचलित 5 नामों से, नाममाला उत्तरार्ध 116 गाथानुसार 8 नामों से और

सहस्त्रमष्टोत्तर स्तोत्र नामानुसार 1008 नामों के द्वारा गुणकीर्तन स्तवन किया जाता है। नाम- वीर, अतिवीर, सन्मति, महावीर और वर्धमान। इन्हीं 5 नामों में महति, अंतकाश्यप तथा नाथान्वय नामों को मिलाने से भ. महावीर के 8 नाम हो जाते हैं। बृहद् रूप में जिनेंद्र के स्तवन करने वाले पाठ को सहस्त्रनाम स्तोत्र न बोलकर सहस्त्रमष्टोत्तर स्तोत्र बोलना चाहिये अर्थात् 1000 नामों में 8 नाम अधिक को सहस्त्रमष्टोत्तर कहते हैं। इसीको हिंदी में सहसअठोत्तर कहते हैं क्योंकि आदिनाथ स्तवन की अंतिम लाईन में **पठेदष्टोत्तर नाम्नां सहस्त्रं पाप शांतये।।** इस प्रकार पापों की शांति के लिए 1008 नामों को पढ़े।

प्र.-70 एकहजारआठ नामों के द्वारा भगवंतों का स्तवन कौन करते हैं?

उत्तर- गणधर, चक्रवर्ती, इंद्रादि महापुरुष, महाज्ञानी 1008 नामों के द्वारा भगवंतों का स्तवन करते हैं।

प्र.-71 ग्रंथकार ने जिनको नमस्कार किया है वे वर्धमान कैसे हैं?

उत्तर- ग्रंथकार ने जिनको नमस्कार किया है वे वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेश लक्षण से युक्त आप्त, स्नातकमुनि सयोगकेवली हैं। जब वर्धमान का अर्थ व्यक्तिवाचक किया जायेगा तब अंतिम 24वें तीर्थंकर का ग्रहण होगा और जब गुणवाचक अर्थ करेंगे तब ढाईद्वीपस्थ भरत ऐरावत विदेहक्षेत्रस्थ त्रिकाली अनंतानंत तीर्थंकरों का, अरिहंतों का ग्रहण होगा सो सभी को नमस्कार किया है।

प्र.-72 वीतराग किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन्होंने सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक निर्विकल्प धर्मध्यान या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान से मोहनीय कर्म को, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान से शेष तीन घातियाकर्मों के क्षय से होने वाले को एकदेश वीतराग और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के द्वारा अघातिया कर्मोदय से उत्पन्न होने वाले पाप पुण्य रूप विकारी भावों के, कर्मों के क्षय से होने वाले को सर्वदेश वीतराग कहते हैं।

प्र.-73 वीतराग के कितने भेद हैं, नाम और स्वामी कौन हैं?

उत्तर- एकदेश वीतराग और सर्वदेश वीतराग ये दो भेद हैं। सयोगी, अयोगी एकदेश वीतराग हैं और सिद्ध सर्वदेश वीतराग हैं क्योंकि ये 18 दोष घाति और अघातिकर्मोदय से होते हैं।

प्र.-74 सिद्धजीव सर्वदेश वीतरागी क्यों हैं?

उत्तर- सिद्ध समस्त घाति और अघातिकर्मों के क्षय से हुए हैं, कर्मों का क्षय होने से तत्संबंधी विकारों का भी क्षय हो जाता है इसलिए पूर्ण वीतरागी सिद्ध भगवंत हैं।

प्र.-75 सयोगी अयोगी गुणस्थान वाले सर्वदेश वीतरागी क्यों नहीं हैं?

उत्तर- ये दोनों केवली अघातिया कर्मोदय से उत्पन्न विकारों से सहित होने से पूर्ण वीतरागी नहीं हैं।

प्र.-76 तो क्या ये दोनों गुणस्थान वाले वीतरागी नहीं हैं?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही ये एकदेश वीतरागी हैं और यह वीतरागता घातियाकर्मों के क्षय से हुई है।

प्र.-77 ये दोनों गुणस्थानवाले एकदेशवीतरागी हैं तो सर्वदेशवीतरागी क्यों नहीं?

उत्तर- **पज्जत्ती पाणावि य सुगमा भाविंदियं ण जोगिह्मि।**
तहिं वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ।।701।। जी.कां.

अर्थः- श्वासोच्छ्वास, कायबल, वचनबल, आयुप्राण सयोगकेवली के ये चार प्राण, इन्हीं के वचनबल का अभाव होने से 3 प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण का अभाव होने से 2 प्राण तथा कायबल प्राण का अभाव होने से अयोगकेवली के 1 आयु प्राण है। आवीचिमरण प्रत्येक श्वासोच्छ्वास में हो रहा है, पंडितपंडित मरण शेष बचा है सो इनको एकदेश वीतरागी कहा है, सर्वदेश वीतरागी नहीं।

प्र.-78 ये सयोगी अयोगीकेवली एकदेशवीतरागी हैं तो क्या इनमें कुछ दोष हैं?

उत्तर- घातिया कर्मोदय से उत्पन्न दोष पूर्णतः नष्ट हो चुके हैं किंतु अघाति कर्मोदय से उत्पन्न दोष मौजूद हैं अतः **समयट्ठिदिगो बंधो।।274।।** क.कां. में एकसमय की स्थितिवाला स्थितिबंध भी स्वीकार किया है। शरीर होना, गमनागमन होना, आत्मप्रदेशों का चंचल होना, प्राण व पर्याप्तियां होना आदि दोष हैं।

प्र.-79 यदि सयोगी अयोगीकेवलियों के दोष मौजूद हैं तो इन्हें वीतरागी क्यों कहा?

उत्तर- छद्मस्थ मुनियों की अपेक्षा दोनों केवली वीतरागी हैं किंतु सिद्धों की अपेक्षा सदोषी, विकारी हैं अतः **अर्पितानर्पित सिद्धेः ।।32।।** सूत्रानुसार अपेक्षा भेद से सकल परमात्मा सदोषी और निर्दोषी हैं।

प्र.-80 सयोगी अयोगीकेवलियों को पूर्ण वीतरागी मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- उभय केवलियों को पूर्ण वीतरागी मानने में आपत्ति यह है कि सयोगी के 4, 3, 2 प्राण तथा अयोगी के आयु प्राण का अस्तित्व अन्यथा बन नहीं सकता और जब ये प्राण नहीं तो आवीचिमरण, तद्भवमरण और पंडितपंडित मरण नहीं हैं तो मोक्ष भी नहीं, जब मोक्ष नहीं तो मोक्ष के कारण संवर और निर्जरा तत्त्व नहीं, मोक्ष के बिना संसार की सिद्धी नहीं एवं संसार के बिना संसार के कारण आश्रव बंध का अस्तित्व बन नहीं सकता। आश्रव बंध के कारणभूत जीव, अजीव तत्त्व भी नहीं बन सकते और ऐसा होने पर सर्वापहार लोप होने से शून्यवादी बौद्धमत का प्रसंग आता है अतः इन आपत्तियों से बचने के लिए उभय केवलियों को **पूर्ण वीतरागी नहीं मानना ही न्याय संगत है।**

प्र.-81 जनम मरण आत्मा का न मानकर शरीर का माना जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- हाँ, आपत्ति है। यदि जनम मरण शरीर का माना जाय तो 18 दोषों में से 16 दोष जीव में तथा दो दोष शरीर में होने से आप्त का लक्षण वीतराग विशेषण बन नहीं सकता है, अव्याप्ति दोष भी आता है। कुछ वीतरागता आत्मा में और कुछ वीतरागता शरीर में होने से अतिव्याप्ति दोष भी आता है। प्रकारांतर से असंभव दोष भी आता है अतः पूरे के पूरे अठारह दोष छद्मस्थ सरागी जीवों के ही होते हैं, शरीर में नहीं, पुद्गलों में नहीं क्योंकि गुणदोषों का संबंध एकमात्र जीवों से ही है। गुण और दोष रूप में परिणमन जीव का ही होता है तथा जीवों के परिणामों के निमित्त से पुद्गलकर्मों में परिणमन होता है और विकारी आत्मा से संबद्ध पूर्व कर्मोदय से वर्तमान में आत्मा का विकार रूप परिणमन होता है ऐसा अन्योन्य संबंध है।

प्र.-82 शरीर का जनम मरण मानने पर असंभव दोष कैसे?

उत्तर- आयुकर्म भवविपाकी प्रकृति है, पुद्गलविपाकी नहीं। आश्रवबंध का परिणाम जीव में ही होता है शरीर में नहीं। यदि आश्रवबंध शरीर का माना जाय तो शरीर के छूटने पर आश्रवबंध भी छूट जायेगा तब उदय किसमें होगा और जब संसारी आत्मा में आयुकर्म का बंध उदय नहीं है तो पूर्ण शुद्ध मानने में क्या आपत्ति है? अतः उक्त हेतुओं से शरीर का जनममरण मानना असंभव दोष है या जनममरण शरीर का मानने पर भी जन्मकल्याणक और निर्वाणकल्याणक भी शरीर का ही होगा फिर ये 2 कल्याणक शरीर के और शेष 3 कल्याणक आत्मा के मानने पड़ेंगे। यदि आपने जन्म शरीर का माना तो गर्भ भी शरीर का मानो। **जो कर्ता है वही भोक्ता है** इसके अनुसार शरीर को ही जनममरण का कर्ताभोक्ता मानना पड़ेगा जबकि दिगंबर जैनाचार्यों ने सभी ग्रंथों में आत्मा को ही कर्ताभोक्ता माना है शरीर को नहीं। जीव, उपयोगमय, अमूर्तिक, कर्ता, स्वदेहप्रमाण, भोक्ता, संसारस्थ, सिद्ध, स्वभाव से ऊर्ध्वगमन इन 9 अधिकारों के द्वारा द्र.सं. में जीव को सिद्ध किया है अतः शरीर का जनम मरण मानना ही असंभव दोष है।

प्र.-83 तो फिर जनम मरण किसका तथा आयुकर्म का क्षय और उदय किसके है?

उत्तर- आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कयं तेसिं।।248।। स.सा.
आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरंति तुमं कह ते मरणं कयं तेहिं।।249।। स.सा.

अर्थः- आयु कर्म के क्षय से जीवों का मरण होता है ऐसा जिनेंद्र भगवान ने कहा है। जब तुम किसी जीव की आयु का हरण नहीं करते हो तो फिर तुमने उसका मरण कैसे किया? ऐसे ही दूसरे जीव तुम्हारी आयु का हरण नहीं कर सकते तब फिर उनके द्वारा तुम्हारा मरण किस तरह किया जा सकता है?

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवियं कयं तेसिं।।251।। स.सा.
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आउं च ण दिंति तुमं कहं णु ते जीवियं कयं तेहिं।।252।। स.सा.

अर्थः- आयु के उदय से जीव जीवित रहता है ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं। तुम किसीको आयु नहीं देते फिर तुमने उनको जीवन कैसे दिया? ऐसे ही तुम्हें कोई दूसरा जीव आयु नहीं देता है फिर उनके द्वारा तुम्हारा जीवन कैसे किया गया? यहाँ पर आ. श्री ने जो साधु आत्मकर्तृत्व को छोड़कर परकर्तृत्व में रचपच कर नाना प्रकार से दुःखी होता है तब आचार्य महोदय परकर्तृत्व को छुड़ाने के लिए सभी प्राणी अपने अपने कर्मोदयानुसार अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं ऐसा कहा है और जो जीव केवल एकांगी दृष्टि बनाकर परोपकार, धर्मप्रभावना, जीवरक्षा आदि में स्वच्छंद विचरण कर रहे हैं तब निमित्त नैमित्तिक संबंध को दृष्टि में रखकर परकर्तृत्व का विधान किया है अन्यथा मोक्षमार्ग नहीं बन सकता। **आयुकर्म का क्षय** उदय और उदीरणा के भेद से दो प्रकार का होता है। **कर्म का उदय** स्वमुख और परमुख के भेद से दो प्रकार का होता है। **स्वमुखः-** स्वयं अपने रूप से उदय में आने को स्वमुख से उदय कहते हैं। **परमुखः-** संक्रमण कर अपनी सजातीय प्रकृति रूप से उदय में आने को परमुख से उदय कहते हैं।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो।।30।। पं.का.

अर्थः- जीव बल, इंद्रिय, आयु और उच्छ्वास इन चार या दस प्राणों से जीवित है, जीवित रहेगा और जीवित था वह जीव है। आचार्यों ने सर्वत्र जीव का प्राणों के संयोग से जीवन और वियोग से मरण कहा है।

प्र.-84 त.सू. अ. 5 सू. 20 में 'सुखदुःखजीवित मरणोपग्रहाश्च' जनम मरण पुद्गल का उपकार क्यों कहा और कहा है तो गुरु शिष्य के वचनों में विरोध क्यों?

उत्तर- त.सू. में आयुकर्म के द्रव्य पुद्गलपिंड की अपेक्षा पुद्गल का उपकार कहा है और आ. श्री कुंदकुंद ने स.सा. के बंधाधिकार में भाव आयुकर्म की अपेक्षा से कथन किया है अतः दृष्टि भेद होने से गुरु शिष्य के वचनों में विरोध कैसा? अर्थात् विरोध नहीं है।

प्र.-85 अठारह दोषों में से कौन से दोष किस कर्म के निमित्त से होते हैं?

उत्तर- **असाताकर्मोदय** से क्षुधा[1] तृषा[2], **मोहोदय** से भय[3] द्वेष[4] राग[5] मोह[6] चिंता[7] खेद[8] मद[9] अरति[10] विस्मय[11] विषाद[12], **आयुकर्मोदय** से जन्म[13], **क्षय से** मरण[14], **दर्शनावरणीय कर्मोदय** से निद्रा[15], **वीर्यांतरायकर्मोदय** से बुढ़ापा[16] स्वेद[17], **स्थिर अस्थिर नामकर्मोदय** से रोग[18] दोष होते हैं।

प्र.-86 बीमारियां स्थिर अस्थिर नामकर्मोदय के निमित्त से कैसे उत्पन्न हो सकतीं हैं?

उत्तर- स्थिर रहने वाली धातु उपधातुएं अस्थिर हो जायें और अस्थिर रहने वाली धातु उपधातुएं स्थिर हो जायें तथा वात पित्त कफ का परस्पर में मिश्रण हो जाये या हीनाधिक हो जायें तो रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्र.-87 संसारी आत्मा का जनम मरण नहीं मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- संसारी आत्मा का जनम मरण नहीं मानने में आपत्ति यह है कि अभयदान क्यों देना, जीवरक्षा क्यों करना, समितियों का पालन क्यों करना, जब जीवहिंसा नहीं तो मारकाट संबंधी अपराधों के लिए कोर्ट कचहरी में क्यों जाना, कत्ल संबंधी कानून क्यों बनाना, **जीओ और जीने दो** का नारा क्यों लगाना आदि? अतः हिंसापाप और अहिंसाधर्म आदि की व्यवस्था नहीं बन सकती एवं लोक व्यवहार में तथा धर्म में भी अनेक आपत्तियां उपस्थित होगी तथा समयसार भी अप्रमाण हो जायेगा आदि ये ही आपत्तियां हैं।

प्र.-88 दोष कितने हैं और इनका अस्तित्व किसमें है तथा किसमें नहीं?

उत्तर- तीर्थंकरों ने संग्रहनय से 18 दोष कहे हैं, हीनाधिक नहीं। इनका अस्तित्व एकमात्र संसारी, सरागी विकारी छद्मस्थजीवों में है। क्षीणमोहीवीतरागी, सयोगी, अयोगी भगवंतों के कुछ दोष होते हैं और कुछ नहीं। सिद्धों में और पुद्गल आदि 5 मूर्तिक अमूर्तिक द्रव्यों में अनादिकाल से ये दोष न थे, न हैं और न होंगे।

प्र.-89 शरीर का जनम मरण मानने पर अव्याप्तिदोष कैसे आता है?

उत्तर- जो लक्षण लक्ष्य के एकदेश में रहे उसे अव्याप्तिदोष कहते हैं। जब दिगंबराचार्यों ने 18 दोष पूर्ण रूप से आत्मा में माने हैं फिर आपने कुछ दोष आत्मा में एवं कुछ दोष नहीं माने हैं इस कारण अव्याप्तिदोष आता है। यदि आप अव्याप्तिदोष के भय से पूर्ण दोषों का अस्तित्व शरीर में मानते हो तो इस मान्यता से आत्मा पूर्ण शुद्ध त्रिकाली सत्स्वरूप अपरिणामी कहलाया तब ऐसी मान्यता से आप सांख्यमती क्यों न कहलायेंगे? शुद्ध द्रव्य का लक्षण शुद्ध होगा और अशुद्ध द्रव्य का लक्षण अशुद्ध होगा। यदि आप्त का लक्षण वीतराग है तो अनाप्त का लक्षण सराग 18 प्रकार के विकारी परिणाम है अतः अपूर्ण दोष मानना ही अव्याप्ति दोष है क्योंकि यहाँ पर लक्ष्य आत्मा है तो अलक्ष्य शरीर है।

प्र.-90 शरीर का जनम मरण मानने पर अतिव्याप्ति तथा असंभव दोष कैसे आता है?

उत्तर- जो लक्षण लक्ष्य से अलक्ष्य में चला जाये उसे अतिव्याप्तिदोष कहते हैं। 18 दोषों का लक्ष्य स्वरूप छद्मस्थ आत्मा में पूरा अस्तित्त्व न मानकर जनममरण का अस्तित्व अलक्ष्य स्वरूप शरीर में मान लेने से अतिव्याप्तिदोष आता है क्योंकि आपने 18 दोष शरीर में नहीं माने हैं। जनममरण शरीर का नहीं होता है क्योंकि प्राणों का संयोग वियोग आत्मा में होता है और जो जिसमें नहीं है उसमें उसका आरोपण करना ही असंभवदोष है। यदि शरीर में ये दोष माने जाये तो निर्दोष बनने के लिए शरीर को तप करना पड़ेगा।

प्र.-91 प्रमादी छद्मस्थ जीवों में रागादि 18 दोषों का सद्भाव मानना लक्षण नहीं है किंतु विभाव है, विकार है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- तीर्थंकर आप्त का लक्षण वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशीपना है वैसे ही संसारी, छद्मस्थ, सरागी, अनाप्त आत्मा में सरागता, अल्पज्ञता/ पूर्ण ज्ञानाभाव और हितोपदेशीपने का अभाव माना जाये तो कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि जब आप्त और अनाप्त दोनों अलग अलग हैं तो इन दोनों के लक्षण भी भिन्न भिन्न ही होना चाहिये, नहीं तो संसारी अनाप्त जीवों की पहचान कैसे हो सकती है?

प्र.-92 सर्वज्ञ किसे कहते हैं?

उत्तर- जो त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य गुण पर्यायों को हस्तरेखा के समान यथावत् उदय उदीरणा को उदय उदीरणा रूप में, काल अकाल को काल अकाल रूप में, शक्ति और व्यक्ति को शक्ति और व्यक्ति रूप में आदि अनंत युगल धर्मों को जिसकी जैसी अवस्था है उसको उसी रूप में जानने को सर्वज्ञ कहते हैं।

प्र.-93 हितोपदेश और हितोपदेशी किसे कहते हैं तथा कैसे प्रतिपादन करते हैं?

उत्तर- केवलज्ञान से ज्ञेयों को यथावत् जानकर भव्यों को हितकारी मार्ग बताने को हितोपदेश कहते हैं और हितोपदेश करने वाले को हितोपदेशी कहते हैं, जो स्याद्वादानुसार तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं।

प्र.-94 प्राणियों के मनोनुकूल उपदेश को धर्मोपदेश, हितोपदेश कह सकते हैं क्या?

उत्तर- प्राणियों के मनोनुकूल उपदेश को धर्मोपदेश, हितोपदेश न कहकर पापोपदेश कहते हैं क्योंकि ऐसा उपदेश मनोरंजन युक्त, स्वार्थ गर्भित होने से संसार बंधन से छुटकारा नहीं करा सकता। यदि रोगी की इच्छानुसार औषधि हो तो रोग नष्ट न होकर रोग की वृद्धि होती है अतः औषधि रोगानुसार होने से रोग नष्ट होता है ऐसे ही धर्मोपदेश संसारनाशक होना चाहिये, संसारवर्धक नहीं।

प्र.-95 गाथा में वर्धमान कौन हैं तथा विशेष्य और विशेषण क्या है?

उत्तर- वर्धमान स्वामी परमात्मा हैं, जिन हैं। यहाँ वर्धमान स्वामी विशेष्य हैं तो परमात्मा, जिन विशेषण हैं।

प्र.-96 विशेष्य और विशेषण किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनकी महिमा बताई जाये उन्हें विशेष्य और महिमा बताने को विशेषण कहते हैं।

प्र.-97 परमात्मा कैसे बनते हैं?

उत्तर- घातियाकर्मों को क्षयकर अनंत चतुष्टयधारी तथा अघातिया कर्मों को क्षयकर अनंत गुणधारी शुद्ध परमात्मा बनते हैं।

प्र.-98 परमात्मा के कितने भेद हैं, नाम तथा परिभाषा क्या है?

उत्तर- सकलपरमात्मा और निकलपरमात्मा ये दो भेद हैं। **सकल परमात्मा के 2 भेद-:** शरीर और योग सहित सयोगकेवली तथा सशरीर एवं योग रहित अयोगकेवली। **निकलपरमात्मा-:** सिद्धपरमेष्ठी।

प्र.-99 वर्धमान स्वामी सकल परमात्मा हैं या निकल परमात्मा?

उत्तर- जब वर्धमान स्वामी धर्म की 12सभाओं के मध्य में मोक्षमार्ग का प्रतिपादन कर रहे थे तब सकलपरमात्मा थे एवं अघातियाकर्मों को क्षय कर सिद्ध हुए सो वर्तमान में निकल परमात्मा हैं।

प्र.-100 आ. श्री ने किस परमात्मा को क्यों नमस्कार किया है और किसको नहीं?

उत्तर- यहाँ रयणसार में सयोगी सकलपरमात्मा को नमस्कार किया है क्योंकि इनका समवशरण होता है, धर्मोपदेश होता है, प्रयोग रूप में मोक्षमार्ग दिखाई देता है, ये धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, ये ही साक्षात् परमगुरु हैं किंतु अयोगी सकलपरमात्मा तथा निकल परमात्मा को नमस्कार नहीं किया है क्योंकि इनका न समवशरण होता है, न धर्मोपदेश होता है, न प्रयोग रूप में मोक्षमार्ग दिखाई देता है। अयोगकेवली एकतरफा रंगीन दर्पणवत् और सिद्धात्मा पारदर्शी दर्पणवत् हैं। जिस प्रकार पारदर्शी दर्पण में अपना प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता उसी प्रकार निकल परमात्मा के माध्यम से अपनी आत्मा दिखाई नहीं देती।

प्र.-101 निकल परमात्मा के माध्यम से क्या अपना हित या अहित होता है?

उत्तर- उपादानोपादेयापेक्षया इनके माध्यम से अपना हिताहित नहीं होता किंतु निमित्त नैमित्तिक

संबंध की अपेक्षा इनसे अपना हिताहित भी होता है। जैसे पानी से उत्पन्न हुआ कीचड़ पानी से ही धुल जाता है ऐसे ही निकल परमात्मा के स्वरूपानुसार दिनचर्या का पालन करने से हित और न करने से अहित होता है।

प्र.-102 अयोगी सकल परमात्मा को मंगलाचरण में नमस्कार किया है या नहीं?

उत्तर- नहीं, क्योंकि इन अयोगकेवली सकल परमात्मा का विहार और उपदेश नहीं होता है, कुछ ही क्षणों में मोक्ष होने वाला है। अयोगकेवली और सिद्धों में किंचित् अंतर को छोड़कर शेष में समानता है।

प्र.-103 यहाँ सयोगी सकलपरमात्मा को नमस्कार किया है यह कैसे जाना?

उत्तर- दूसरे नं. की गाथा से जाना जाता है कि आ. श्री ने सयोगी सकलपरमात्मा को नमस्कार किया है क्योंकि सयोगकेवली के बिना शेष दूसरों से वचनात्मक धर्मोपदेश नहीं होता है। यद्यपि छद्मस्थ गणधरादि धर्मोपदेश देते हैं फिर भी ये स्वयं अपना प्रतिपादन न करके केवली प्रणीत प्ररूपणा को ही दुहराते हैं।

प्र.-104 दूसरा विशेषण "जिन" किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन्होंने विषयकषाय रूपी शत्रुओं को पूर्ण रूप से जीत लिया है अथवा जिनको घातियाकर्म संबंधी कुछ भी अंतरंग बहिरंग शत्रु जीतने के लिए शेष नहीं बचे हैं उनको जिन कहते हैं।

प्र.-105 जिन, जिनवर और जिनवरवृषभ किसे कहते हैं?

उत्तर- अव्रती सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती सम्यग्दृष्टि को जिन कहते हैं। इनमें श्रेष्ठ समस्त महाव्रतियों को जिनवर कहते हैं। इनमें भी श्रेष्ठ तीर्थंकर, अरिहंत और सामान्य केवलियों को जिनवर वृषभ कहते हैं। इन्हीं तीनों को संक्षेप में या चूलिका रूप में जिन कहते हैं किंतु यहाँ जिन पद से केवलियों को ग्रहण किया है।

प्र.-106 इस मंगलाचरण में वर्धमान स्वामी को किस प्रकार से नमस्कार किया है?

उत्तर- इस मंगलाचरण में आ. श्री ने श्री वर्धमान स्वामी को त्रियोगों की शुद्धि पूर्वक नमस्कार किया है।

प्र.-107 त्रियोगशुद्धि किसे कहते हैं तथा मन शुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- मन वचन काय की शुद्धि को त्रियोगशुद्धि कहते हैं। आत्मभावों में ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना के, आर्त रौद्रध्यान के, अशुभ लेश्याओं के, शृंगार अलंकार के, आरंभ परिग्रह के, विषयकषायों के, आहार आदि संज्ञाओं के, जुआ आदि व्यसनों के, हिंसादि पापों के भाव न होने को मनशुद्धि कहते हैं।

प्र.-108 वचन शुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- मनशुद्धि पूर्वक पूर्वापर विरोध रहित, स्ववचन बाधित दोष रहित, प्रत्यक्ष अनुमान आदि की बाधा से रहित, पक्षपात पंथवाद से रहित बालकवत् जैसा का तैसा उच्चारण करने को वचनशुद्धि कहते हैं।

प्र.-109 कायशुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- सूतक पातक रहित, शरीर से रजस्राव, वीर्य आदि मलमूत्र खून पीवादि धातुउपधातुओं के बाहर न आने को, शारीरिक साध्यासाध्य रोग न होने को और सज्जातित्त्व को कायशुद्धि कहते हैं।

प्र.-110 ग्रंथकर्ता ने यहाँ किसको कहने की प्रतिज्ञा की है?

उत्तर- आचार्य श्री ने यहाँ भगवान महावीर को नमस्कार करके रयणसार ग्रंथ को कहने की

प्रतिज्ञा की है।

प्र.-111 इस रयणसार ग्रंथ में किस धर्म को कहने की प्रतिज्ञा की है?

उत्तर- मोक्षमार्ग और मोक्ष को प्राप्त कराने वाले धर्म को कहने की प्रतिज्ञा की है।

प्र.-112 मोक्ष प्राप्त कराने वाले धर्म के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मोक्ष प्राप्त कराने वाले धर्म के दो भेद हैं। **नाम-:** 1. गृहस्थधर्म 2. मुनिधर्म। गृहस्थ धर्म परंपरा से मोक्ष को प्राप्त कराने वाला है तो मुनिधर्म साक्षात् मोक्ष को प्राप्त कराने वाला है।

प्र.-113 इस रयणसार ग्रंथ में सर्व प्रथम किस धर्म को कहने की प्रतिज्ञा की है?

उत्तर- इस रयणसार ग्रंथ में सर्व प्रथम गृहस्थधर्म को और बाद में मुनिधर्म कहने की प्रतिज्ञा की है।

प्र.-114 इस रयणसार में सर्व प्रथम गृहस्थधर्म को कहने की प्रतिज्ञा क्यों की है?

उत्तर- बिना सद्गृहस्थ बने मुनिधर्म का निर्दोष पालन नहीं हो सकता कारण मुनिधर्म या मुनि बनने के लिए गृहस्थधर्म, गृहस्थावस्था योनिभूत है क्योंकि मुनियों की उत्पत्ति गृहस्थों से ही होती है, अन्य से नहीं।

प्र.-115 इसका क्या कारण है?

उत्तर- गृहस्थ ही आरंभपरिग्रह का, विषयकषायों का, परिवारादि का, वस्त्राभूषण का त्याग कर मुनि बनता है। यदि गृहस्थ बिगड़ा हुआ है तो वह सही मुनि कैसे बनेगा? अतः गृहस्थ का सही होना ही राजमार्ग है।

प्र.-116 क्या गृहस्थ धर्म स्वीकार किये बिना मुनिधर्म का पालन नहीं हो सकता?

उत्तर- सर्वव्यापी राजमार्ग तो यही है कि समीचीन गृहस्थ धर्म का पालन किये बिना मुनिधर्म का पालन नहीं हो सकता है पर ऐसे नियम को सुनकर या पढ़कर यदि कोई अहंकारी बन जाता है और ''**अपुत्रस्य गति र्नास्ति**'' बिना पुत्र का मुंह देखे सद्गति नहीं होती है ऐसा विश्वास बना लिया है तो इस बात पर कहते हैं कि अपवादमार्ग में इंद्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति अपने अपने 500-500 शिष्यों को लेकर भ. महावीर के समवशरण में मानस्तंभ को देखकर मिथ्यात्व गुणस्थान से असंयम सहित रत्नत्रय को प्राप्त कर अंतर्मुहूर्त में भ. महावीर के पास पहुंचकर, सकल संयम सहित सीधे अप्रमत्तगुणस्थान को प्राप्त हुए। ललितांग अंजनचोर, गजकुमार आदि मिथ्यात्व से मुनिपद को सीधे प्राप्त हुए। विद्युतचोर आदि 500 चोर जंबुकुमार के साथ भ. महावीर के समवशरण में मुनिपद को प्राप्त हुए अतः अपवादमार्ग में बिना अणुव्रती बने भी मुनि अवस्था प्राप्त होती है अतः गृहस्थधर्म स्वीकार किये बिना भी मुनिधर्म का पालन हो सकता है। कहा भी है-: ''**सासण पमत्तवज्जं अपमत्तंतं समल्लियइ मिच्छो।**'' क.कां. गा. 557 **अर्थ-:** मिथ्यादृष्टि जीव सासादन और प्रमत्तसंयत गुणस्थान को छोड़कर अप्रमत्त पर्यंत चार गुणस्थानों को प्राप्त होता है।

प्र.-117 बिना गृहस्थ बने मुनिदीक्षा लेने पर भी गृहस्थों के आश्रित तो होना पड़ेगा?

उत्तर- नहीं, कोई जरूरी नहीं है कि मुनिदीक्षा लेने के बाद गृहस्थों का आश्रय लेना ही पड़े क्योंकि शास्त्रों में ऐसे अनेक दृष्टांत हैं कि मुनिदीक्षा लेकर आहार विहार निहार का त्यागकर तद्भव में ही पंडितपंडितमरण कर मोक्ष प्राप्त किया या अचरम शरीरी होने से पंडितमरण कर महान ऋद्धि धारी इंद्र, अहमिंद्र, लौकांतिक देव पदवी पाकर भवांतर में मोक्ष प्राप्त किया। जैसे भरत बाहुबली, गजकुमार, सुकुमाल, चिलातपुत्र आदि तथा वर्तमान में अनेक गृहस्थ, श्रावक श्राविकायें समाधि के समय आहार विहार का त्याग कर यथार्थ में मुनिदीक्षा, आर्यिकादीक्षा लेकर समाधिमरण को प्राप्त हुए है और कर रहे हैं।

प्र.-118 मुनि हुए बिना मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है क्या?

उत्तर- असंभव ही है किंतु केवल मुनि बनने से ही मोक्ष मिल जाये ऐसा भी नियम नहीं है। यदि मुनि बनने के बाद विषयकषायों, आरंभपरिग्रहों, पंथवाद पक्षपात में लग गया या वास्तव में मुनिपने के परिणाम नहीं आये तो मोक्ष कैसे मिलेगा? अभव्य, दूरानुदूर भव्यों को मुनि बनने के बाद में भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है अतः अंतरंग बहिरंग से मुनि बनने पर ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

प्र.-119 जिसने दिनचर्या, रोटी बेटी बिगाड़ ली है उसका सुधार संभव है या नहीं?

उत्तर- देखो! बिगड़ा हुआ काना गन्ना यदि पुनः खेत में बो दिया जाय तो बहुत अच्छा रसदार हृष्ट पुष्ट गन्ना प्राप्त होता है ऐसे ही यदि आचारविचार, रोटीबेटी से बिगड़े हुए गृहस्थ भी कदाचित् सत्शिक्षा सत्संगति और सत्संस्कारों से युक्त मुनिदीक्षा लेकर गजकुमार, अंजनचोर जैसे उत्कृष्ट तप, ध्यान कर अनादि सादिकालीन घातिअघातिकर्मों को क्षयकर अखंड, पूर्ण, निर्मल, शुद्धात्मा को, मोक्ष को प्राप्त हुए अतः बिगड़े हुए गृहस्थ भी योग्य द्रव्य क्षेत्र काल भाव को पाकर सुधर सकते हैं, असंभव नहीं है।

प्र.-120 गृहस्थ के बिना मुनिधर्म का पालन हो सकता है क्या?

उत्तर- हाँ, गृहस्थों के बिना भी भरत बाहुबली जैसे मुनिधर्म का पालन और मोक्ष भी प्राप्त हो सकता है।

प्र.-121 मुनियों के बिना गृहस्थधर्म का पालन हो सकता है क्या?

उत्तर- मुनियों के बिना सद्गृहस्थधर्म का पालन एक क्षणमात्र भी नहीं हो सकता है क्योंकि मुनियों के बिना चतुर्विध मुनिसंघ की व्यवस्था नहीं बन सकती है, अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत का धारण पालन कैसे होगा? देशनालब्धि और धर्मदेशना किससे प्राप्त होगी? गृहस्थ वैय्यावृत्ति किसकी करेगा? साधुसमाधि आचार्यभक्ति पूजा किसकी करेगा? नवधाभक्ति किसकी करेगा? आदि कर्तव्यों का पालन न होने से मोक्षमार्ग ही समाप्त हो जायेगा अतः मुनियों के बिना गृहस्थ का जीवन निर्वाह और धर्म का पालन न होने से पशुवत् जीवन हो जाता है, संयम सहित मोक्षमार्ग समाप्त हो जाता है। यहाँ उत्तरभारत में जब मुनियों का विहार बंद हो गया या मुनियों का अभाव हो गया तब उस समय समाज की कैसी दयनीय दशा थी और अभी वर्तमान में जहाँ मुनियों का विहार नहीं हो रहा है वहाँ की समाज की दशा द्रष्टव्य है, विचारणीय है।

प्र.-122 यहाँ पर आ. श्री ने गृहस्थधर्म को कहने की सर्व प्रथम प्रतिज्ञा की है और बाद में मुनिधर्म की किंतु आ. श्री अमृतचंद्र ने पु.उ. 18 में गृहस्थधर्म के वक्ता को भगवत् प्रवचन में निग्रह का स्थान बताया तब इन दोनों के कथनों में विरोध क्यों?

उत्तर- आ. श्री कुंदकुंदजी के सामने सामान्य श्रोतागण आर्य, मलेच्छ, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, भव्य अभव्य, जैन अजैन बैठे हुए हैं तब उन्हें मोक्षमार्ग समझाने, प्रवेश कराने, देव शास्त्र गुरु का यथार्थ भक्त बनाने, समीचीन सद्गृहस्थ बनाने के लिए गृहस्थधर्म को कहने की प्रतिज्ञा की है और आ. श्री अमृतचंद्रजी के समक्ष ब्रह्मचारी, वानप्रस्थाश्रम वाले, ऐलक क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें आदि हैं तब इनके सामने गृहस्थ बनने का उपदेश देना व्यर्थ है क्योंकि मार्गदर्शन, धर्मोपदेश पतन के मार्ग से छुड़ाकर ऊपर उठने उठाने को दिया जाता है, न कि नीचे गिरने गिराने के लिए। इस पद्धति का उल्लंघन करने वाले वक्ता को निग्रह का स्थान बतलाया है अतः धर्मोपदेश ऊपर उठने के लिए और पापोपदेश नीचे गिरने के लिए होता है। पतित मनुष्यों को सही सद्गृहस्थ व सद्धर्म में प्रवेश कराने को गृहस्थधर्म का उपदेश और सद्गृहस्थों को मुनि बनने के लिए मुनिधर्म का उपदेश दिया जाता है अतः कोई विरोध नहीं है।

प्र.-123 धर्मोपदेश में ऐसा क्रम क्यों और केवलियों ने पहले किसका उपदेश दिया है?

उत्तर- वक्ता श्रोताओं के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानकर समझकर अपना वक्तव्य प्रारंभ करे

अन्यथा बिना सोचे समझे वक्तव्य देने से दोनों ही कुपथगामी बन जायेंगे। पुण्यपाप से, संसार मोक्ष से, संसारमार्ग मोक्षमार्ग से अनभिज्ञ व्यक्ति के सामने मुनिधर्म के उपदेशक को भी निग्रह का स्थान कहा है अपात्र के सामने ऐसा उपदेश ऊसरभूमि में बीज बोने के समान, अंधे के सामने दीपक के समान, भैंस के सामने बीन बजाने के समान है। विशेष त्यागी व्रती, महाव्रती के सामने सामान्य गृहस्थ धर्म का उपदेश व्यर्थ है। इसी तरह महान तपस्वी दृढ़ ज्ञानीध्यानी मुनियों के सामने सामान्य मुनिधर्म का उपदेश भी व्यर्थ है इनके सामने तो उत्कृष्ट ज्ञानध्यान, श्रेणी आरोहण का उपदेश ही सार्थक है। उपदेश का क्रम श्रोताओं की अपेक्षा से है। केवलियों ने सर्वप्रथम द्वादशांगवाणी रूपी अंगप्रविष्ट के आचारांग में मुनिधर्म का, उपासकाध्ययनांग में श्रावकधर्म का, क्रियाविशाल में अव्रतीश्रावकों का वर्णन किया है अथवा केवलियों ने दिव्यध्वनि के द्वारा ॐकार रूप में उपदेश दिया है और द्वादशांग वाणी रूप में विभाग गणधरादिकों ने किया है।

नोटः- यहाँ 123 प्रश्नोत्तरों पर्यंत मंगलाचरण का अर्थ समाप्त हुआ अब दूसरी गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यग्दृष्टि कौन?

पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं।
पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लई सो हु सद्दिट्ठी।।2।।

पूर्वं जिनैः भणितं यथास्थितं गणधरैः विस्तरितं।
पूर्वाचार्यक्रमजं तत् कथयति सः खलु सद्दृष्टिः

पुव्वं पूर्व में **जिणेहिं** सर्वज्ञ **भणियं** कथित **गणहरेहिं** गणधरों से **वित्थरियं** विस्तृत **पुव्वाइरियक्कमजं** पूर्वाचार्यानुसार **जहट्ठियं** यथास्थित **तं** जो उसे **बोल्लइ** बोलता है **सो** वह **हु** निश्चय से **सद्दिट्ठी** सम्यग्दृष्टि है।

अर्थ- पूर्व काल में/ भूतकाल में सर्वज्ञ के द्वारा कहे हुए गणधरों से विस्तृत, पूर्वाचार्यों के क्रम से प्राप्त उपदेश को जो ज्यों का त्यों बोलता है वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के तीसरे काल के अंतिम चरण में और चौथे काल के अंतिम चरण तक भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थंकरों ने तथा भूतकालीन अनंतानंत चौबीस तीर्थंकरों ने, केवलज्ञानियों ने चराचर पदार्थों को यथावत् जानकर वचनों के द्वारा, दिव्यध्वनि के द्वारा भव्यजीवों को यथावत् मोक्षमार्ग से संबंधित 27तत्त्वों का उपदेश दिया है और गणधरों ने इसीका प्रमाण नय निक्षेपों के द्वारा निर्णय कर विस्तार किया है। इसी तरह पूर्वाचार्यों ने क्रमशः जैसा का तैसा कहा है वैसा ही जो उच्चारण करता है वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

प्र.-124 यहाँ 'पुव्वं' पद का क्या अर्थ है और हुंडावसर्पिणी काल का क्या दोष है?

उत्तर- यहाँ **पुव्वं** का अर्थ अनंतानंत भूतकालीन उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल है। कर्मभूमि के तीसरे काल के अंतिम चरण से लेकर चौथे काल के अंतिम चरण तक या अनंतानंत चौबीस तीर्थंकरों का सूचक है। तीसरे काल में आदिनाथ का जन्म लेना, मोक्ष में गमन होना, सम्मेदशिखर के अलावा अन्य क्षेत्रों से तीर्थंकरों का मोक्ष होना, अयोध्या के अलावा अन्यत्र तीर्थंकर प्रकृतिवालों का जन्म लेना आदि सैकड़ों घटनायें हुंडावसर्पिणि काल दोष से घटीं हैं शेष अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीकालों में नहीं होतीं हैं।

प्र.-125 'जिणेहिं' इस पद का क्या अर्थ है और इन्होंने कबतक उपदेश दिया?

उत्तर- **जिणेहिं** तृतीया विभक्ति के बहुवचन का रूप है। जो तीर्थंकर सर्वज्ञकेवली और सर्वज्ञ केवलियों का सूचक है क्योंकि सर्वज्ञ तीर्थंकरों के समान 27 तत्त्वों का समस्त केवलियों ने धर्मोपदेश दिया है अन्य अन्य प्रकार से नहीं। यदि केवली अन्यथा धर्मोपदेश करने लगें तो केवलज्ञान को

भी अन्यथा मानने का प्रसंग आयेगा किंतु केवलज्ञानी न अन्यथा जानते हैं और न ही अन्यथा प्रतिपादन करते हैं। हाँ इतना अंतर अवश्य है कि श्री आदिनाथजी ने 1000 वर्ष तथा 14 दिन कम 1 लाख पूर्व वर्ष तक धर्मोपदेश दिया क्योंकि आदिनाथ भगवान का योगनिरोध काल 14 दिन का है इसलिए उपदेश काल में 14 दिन कम किये तो श्री महावीर ने 29 वर्ष 9 महिना 22 दिन तक उपदेश दिया अतः काल गणना की अपेक्षा तत्त्व प्रतिपादन के संकोच विस्तार में अंतर पड़ सकता है किंतु सामान्य तत्त्वोपदेश में कोई अंतर नहीं है। भगवान महावीर का केवलीकाल तीस वर्ष का या 29 वर्ष 5 मास 20 दिन का है, इसमें 66 दिन तक उपदेश नहीं हुआ और मोक्ष में जाने के दो दिन पहले उपदेश समाप्त हुआ। इस प्रकार केवलीकाल में 68 दिन कम करने से उक्त काल प्राप्त होता है।

प्र.-126 कुल तत्त्व कौन कौन से हैं और कितने हैं?

उत्तर- जीवादि 7 तत्त्व, जीव पुद्गलादि 6 द्रव्य, जीवादि 5 अस्तिकाय, जीवादि 9 पदार्थ इन सभी को मिलाने से 27 तत्त्व हो जाते हैं क्योंकि इन सभी में द्रव्य गुण और पर्यायों का अस्तित्व है केवल विवक्षा भेद से तत्त्व, द्रव्य अस्तिकाय और पदार्थ नाम हो जाते हैं।

प्र.-127 'भणियं' इस पद का क्या अर्थ है?

उत्तर- **'भणियं'** यह क्रियापद होने से वचन की क्रिया का सूचक है। 13वें गुणस्थान में सत्यवचन और अनुभयवचन के अस्तित्त्व को बतलाता है। यहाँ वचन की क्रिया है तो क्रिया के कर्ता को भी बताता है क्योंकि क्रिया कर्ता के बिना नहीं होती है अतः समस्त केवलियों ने सत्य वचन और अनुभयवचन के द्वारा समवशरण की 12 धर्मसभाओं के मध्य में 27 तत्त्वों का स्याद्वाद रूप में प्रतिपादन किया है, सर्वथा रूप में नहीं ऐसे ही वाच्य वाचक में निमित्त नैमित्तिक संबंध है जो नाना जीवापेक्षया अनादिकाल से है।

प्र.-128 यदि केवलज्ञानी स्याद्वाद रूप में ही तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं तो श्री आदिनाथजी के उपदेश को सुनकर मारीचिमुनि मिथ्याज्ञान को क्यों प्राप्त हुए?

उत्तर- केवलज्ञानी स्याद्वाद रूप में ही धर्मोपदेश करते हैं परंतु उस मारीचिमुनि के कषाय का उद्रेक होने से, होनहार बुरा होने से, संसार भ्रमण शेष रहने से समीचीन तत्त्वोपदेश को सुनकर भी मिथ्याज्ञान को, ज्ञानमद को, प्रज्ञापरीषह को प्राप्त कर, असहनशील होकर पतन के मार्ग में लग गया। जैसे वर्षा होने से अनेक प्राणी, पशुपक्षी किसान आदि लाभ उठाते हैं तो कुम्हार हानि उठाता है, अधिक वर्षा होने से कीचड़ भी साफ हो जाता है तो खेती भी नष्ट हो जाती है अथवा सूर्योदय होने से अनेकों को लाभ होता है तो उल्लु अंधा हो जाता है अतः इसमें वक्ता का दोष नहीं है किंतु श्रोता का ही दोष है।

प्र.-129 'जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं' इन पदों का क्या अर्थ है?

उत्तर- जिस प्रकार भूतकाल में अनंतानंत केवलियों ने तत्त्वों का अति सूक्ष्म सूत्र रूप में प्रतिपादन किया है उसीका उसी प्रकार गणधरों ने, श्रुतकेवलियों ने विस्तार से सूत्र रूप में ही कथन किया है यही इन पदों का अर्थ है।

प्र.-130 गणधर किसे कहते हैं?

उत्तर- **सिस्साणुग्गह कुसलो धम्मुवदेसो य संघवट्टवओ।**

मज्जादुवदेसोवि य गणपरिरक्खो मुणेयव्वो।।156।। मू.चा. समा.4

अर्थः- व्रत समिति गुप्तिधारक, 8 मदों और 7 भयों से मुक्त, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारीबुद्धि, संभिन्नश्रोतृत्व बुद्धि, परमावधि सर्वावधिज्ञान से युक्त, तप्ततप ऋद्धि के प्रभाव से मलमूत्र से

रहित, दीप्ततप ऋद्धि के प्रभाव से सर्वकाल उपवासी होकर भी शरीर के तेज से दशों दिशाओं के प्रकाशक, उत्कृष्ट बलधारी, सर्वौषधि ऋद्धि के कारण शरीर से स्पर्शित हवापानी को औषधि रूप में, अमृतस्त्रावीऋद्धि के बल से हस्तपुट में प्राप्त आहार को अमृत स्वरूप में परिणमाने में समर्थ, महातप गुण से कल्पवृक्ष के समान, अक्षीणमहानस ऋद्धि के बल से आहार को अक्षय रूप परिणमाने में समर्थ, घोरतपऋद्धि के बल से जीवों के कष्टनिवारक, संपूर्ण विद्याओं के स्वामी, आकाशचारण ऋद्धि से सबके रक्षक, वचन और मनऋद्धि के धारक, अणिमादि आठ ऋद्धियों से संपन्न, सभी में श्रेष्ठ, बिना परोपदेश के अक्षर वा अनक्षर रूप सब भाषाओं में कुशल, समवशरण में स्थित सभी श्रोताओं को हमारी हमारी भाषाओं में हमको ही कहते हैं इस प्रकार सबको विश्वास कराने वालों को अथवा गण के रक्षक को गणधर कहते हैं अथवा मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविकाओं को धारण, पालन, पोषण करने में समर्थ अधिकारी को गणधर कहते हैं।

प्र.-131 धारण, पालन, पोषण किसे कहते हैं?

उत्तर- **धारण-:** अव्रती, अणुव्रती और महाव्रतियों को एकत्रित कर रोककर रखने को धारण कहते हैं। **पालन-:** शिक्षा दीक्षा देकर योग्य बनाने को पालन कहते हैं। **पोषण-:** आहार आदि के द्वारा उपसर्ग परीषहों को जीतने में सक्षम बनाने को, धर्मोपदेश करने में कर्मठ बनाने को पोषण कहते हैं।

प्र.-132 सूरि किसे कहते हैं?

उत्तर- शिष्यों पर अनुग्रह करने में कुशल अधिपति को आरंभ परिग्रह के त्यागी को सूरि कहते हैं।

प्र.-133 पाठक किसे कहते हैं?

उत्तर- आचार्य श्री के द्वारा प्रदत्त शिष्य शिष्याओं के पढ़ाने वाले को निर्ग्रंथ पाठक कहते हैं।

प्र.-134 प्रवर्तक किसे कहते हैं?

उत्तर- आचार्य के द्वारा संग्रहीत संघ में धर्मप्रवृत्ति कराने वाले को प्रवर्तक कहते हैं।

प्र.-135 स्थविर किसे कहते हैं?

उत्तर- आचार्य के द्वारा संग्रहीत शिष्य शिष्याओं के लिए मर्यादा के उपदेशक को स्थविर कहते हैं।

प्र.-136 जब ये सभी धर्मानुरूप संघ की व्यवस्था करते हैं तो ऐसा भेदाभेद क्यों?

उत्तर- एवंभूतनय की अपेक्षा कार्य भेद से नामों में भेद किये गये हैं किंतु मुद्रा में भेद नहीं है।

प्र.-137 'पुव्वाइरियक्कमजं' तथा 'तं बोल्लई' इन दोनों पदों का क्या अर्थ है?

उत्तर- गणधरों के, श्रुतकेवलियों के बाद में परंपरागत आरातीय आचार्यों ने जैसा कहा है वैसा ही पोस्टमेन की तरह अपनी तरफ से किंचित् भी परिवर्तन किये बिना दुःखसुख का, लाभ हानि का, हिताहित आदि का यथावत् सूचनापत्र पहुंचा देता है ऐसे ही आरातीय आचार्यों के वचनों को जैसा का तैसा बोलता है।

प्र.-138 'सो हु सद्दिट्ठी' इन पदों का क्या अर्थ है और वह कौन होता है?

उत्तर- निश्चय से वह यथावत् बोलनेवाला आज्ञाप्रधानी, आज्ञाविचय धर्मध्यानी होनेसे सम्यग्दृष्टि है।

प्र.-139 इस प्रकार बोलनेवाले को सम्यग्दृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- निर्विकार बालकवत् अपनी तरफ से कुछ भी मिलावट न कर जिनाज्ञा का ही प्रतिपादन करने वाला होने से आज्ञाविचय धर्मध्यानी है, प्रभावना अंग, वात्सल्य अंग का पालक, आज्ञाकारी सुपुत्रवत् होने से आचार्य श्री ने आज्ञाप्रधानी सम्यग्दृष्टि कहा है।

नोटः- यहाँ 139 प्रश्नोत्तरों पर्यंत दूसरी गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब तीसरी गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्यादृष्टि कौन?

मदि सुद णाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लइ जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होइ कुदिट्ठी ण होइ जिणमग्गलग्गरओ।।3।।

मतिश्रुतज्ञानबलेन तु स्वच्छंदं कथयति जिनोपदिष्टमिति।
यः स भवति कुदृष्टिर्न भवति जिनमार्गलग्नरतः।।

इदि इस प्रकार **जो** जो व्यक्ति **मदिसुदणाणबलेण** मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से **जिणुद्दिट्ठं** सर्वज्ञ कथित तत्त्व को **सच्छंदं** स्वेच्छानुसार **बोल्लइ** बोलता है **सो** वह **जिणमग्गलग्गरओ** मोक्षमार्ग में लगा हुआ होने पर भी **ण होइ** मोक्षमार्ग में रत नहीं है **दु** किंतु वह **कुदिट्ठी** मिथ्यादृष्टि **होइ** होता है।

प्र.-140 मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर इंद्रिय और मन की सहायता से या जिस जीव के जितनी इंद्रियां हैं उनके उनकी सहायता से उत्पन्न विकल्पात्मक ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

प्र.-141 श्रुतज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- श्रुतज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम होने पर इंद्रिय और मन की सहायता से या जिसके जितनी इंद्रियां हैं उनके उनकी सहायता से मतिज्ञान के द्वारा ज्ञात विषय में विशेष जानने को श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्र.-142 क्या ये दोनों ज्ञान सम्यक्, मिथ्या और मिश्र रूप हो सकते हैं?

उत्तर- हाँ, ये दोनों ज्ञान सम्यक् भी होते हैं, मिथ्या भी होते हैं और मिश्र रूप भी होते हैं।

प्र.-143 ये दोनों ज्ञान समीचीन कैसे होते हैं और इनके स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- ये दोनों मतिज्ञान और श्रुतज्ञान मिथ्यात्व कर्म तथा अनंतानुबंधी कषाय के करणलब्धि के अंतिम भेद स्वरूप अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों से उदयाभाव में या सत्ता से क्षय होने पर सम्यक् होते हैं। **स्वामी-:** चौथे गुणस्थान से 12वें गुणस्थान तक के जीव हैं।

प्र.-144 ये दोनों ज्ञान मिथ्याज्ञान कैसे होते हैं और इनके स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- जैसे मिठाई अनेक गुणों से संपन्न होने पर भी जहर के संसर्ग से जीवनहर्त्री होती है वैसे ही मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दोनों मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से युक्त आत्मघातक मिथ्याज्ञान होते हैं। **स्वामी-:** मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान वाले हैं।

प्र.-145 ये दोनों ज्ञान मिश्रज्ञान कैसे होते हैं और इनके स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- दर्शनमोहकर्म के जात्यंतर रूप सर्वघाती सम्यक्मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से ये दोनों ज्ञान सम्यक् और मिथ्या रूप मिश्रज्ञान होते हैं। **स्वामी-:** एकमात्र सम्यक्मिथ्यात्व गुणस्थान वाले हैं।

प्र.-146 ये दोनों ज्ञान समीचीन होने पर भी सदोष क्यों होते हैं?

उत्तर- ये दोनों ज्ञान समीचीन होने पर भी संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय के कारण सदोष हो जाते हैं।

प्र.-147 संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय ये दोष किस कारण से होते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी कषायोदय से ये दोष उत्पन्न होते हैं या सम्यग्ज्ञानियों के भी ज्ञानावरणीयकर्म का विशेष क्षयोपशम न होने से ज्ञेयपदार्थों के संबंध में ये दोष उत्पन्न हो जाते हैं तभी तो द्वादशांगपाठी भी सर्वज्ञकेवलियों से प्रश्न पूंछकर समाधान प्राप्त करते हैं।

प्र.-148 ये दोनों ज्ञान सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से सदोष क्यों नहीं होते हैं?

उत्तर- ज्ञान और चारित्र में दोष पैदा करने का अधिकार सम्यक्त्व प्रकृति रूपी दर्शनमोह का नहीं है।

प्र.-149 इन ज्ञानों के साथ में 'बल' पद का प्रयोग ग्रंथकार ने क्यों किया?

उत्तर- ज्ञानमद को बतलाने के लिए यहाँ ज्ञान के साथ में बल का प्रयोग किया है। बल का अर्थ यहाँ घमंड है और यह घमंड अनंतानुबंधी मान कषायोदय से होता है। यह मान बाह्य में जिस वस्तु के माध्यम से होता है उसका वही नाम हो जाता है। जैसे ज्ञान के आश्रय से मान हुआ तो ज्ञानमद, धन के माध्यम से मान हुआ तो धनमद, आदर सम्मान के माध्यम से हुआ तो पूजामद है ऐसे ही सर्वत्र लगा लेना चाहिये।

प्र.-150 ये दोनों ज्ञान समीचीन कब होते हैं?

उत्तर- दर्शनमोहनीय कर्म की 6 प्रकृतियों के उदयाभाव और सम्यक्त्व प्रकृति के उदय में, उदयाभाव में या 5 अथवा 7 प्रकृतियों के उपशम या क्षय होने पर ये दोनों ज्ञान सम्यग्ज्ञान/ समीचीन होते हैं।

प्र.-151 इस गाथा में किन ज्ञानों से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ मिथ्याज्ञान से प्रयोजन है क्योंकि ग्रंथकर्ता ने **'बलेण'** पद का प्रयोग किया है। **'बलेण'** जो तृतीया विभक्ति एकवचन का रूप है, हेतु परक है। **साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः** प.मु. सू.11। अविनाभावी संबंध को हेतु कहते हैं- जिसके सद्भाव या अभाव में कार्य के होने या न होने का नियम है।

प्र.-152 यह मिथ्याज्ञान क्या आत्मघातक है या परघातक है या उभय घातक है?

उत्तर- मिथ्याज्ञान भावात्मक होने से आत्मघातक है और वचनात्मक तथा कायात्मक होने से स्वपरोभय का घातक है। जैसे प्रमाद केवल भावात्मक होनेसे आत्मघाती है और वही प्रमाद वचन काय के व्यापार से युक्त स्वपरोभय प्राणों का घातक, समस्त पापोत्पादक बन जाता है या उपादान उपादेय की अपेक्षा आत्मघातक तथा निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा सर्व घातक हो जाता है।

प्र.-153 ज्ञान को स्व परोभय घातक क्यों कहा?

उत्तर- वास्तव में ज्ञान का घातक ज्ञानावरणीयकर्म है। कहा है **मतिश्रुताऽवधि मनःपर्यय केवलानाम्॥6॥** त.सू. अ. 8। ज्ञानावरणीय कर्म के ये 5 भेद हैं किंतु मिथ्याज्ञान मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से मिश्रित होता है। परीषहों के होने पर मोक्षमार्ग का समूल विनाश नहीं होता है किंतु मिथ्याज्ञान से मोक्षमार्ग का समूल विनाश हो जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि परीषहों के साथ परिणमन करते हुए अंतर्मुहूर्त से ज्यादा समय हो गया तो नियम से संयम सहित मोक्षमार्ग नष्ट हो जाता है अतः निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय से युक्त ज्ञान को स्व परोभय घातक कहा है।

प्र.-154 यह मिथ्याज्ञान स्वपरोभय घातक कैसे होता है?

उत्तर- जब मिथ्याज्ञानी तीव्र कषायी होकर जिनेंद्र के नाम पर मनमाना सोचता है तब आत्मघातक और तदनुकूल वचन बोलता है तथा काय से संकेत करता है तब स्वपरोभय घातक होता है।

प्र.-155 इसी विषय को विशेष रूप से स्पष्ट कीजिये?

उत्तर- जैसे कंपनी के नाम पर कोई माल में मिलावट कर सप्लाई करे तो सर्वत्र अपराधी है, दोषी है पकड़े जाने पर सर्वत्र अविश्वास का, निंदा का पात्र बन जाता है। वह अपराधी चारों तरफ से दंडित किया जाता है ऐसे ही जिनेंद्र के नाम पर स्वच्छंद बोलने वाला सर्वत्र कष्ट उठाता है अतः मिथ्याज्ञानी सर्वत्र घातक है।

प्र.-156 स्वच्छंद तथा मनमानी बोलने वाले को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- ये पंथवादी, पक्षपाती अनेक वक्ता, पंडितवर्ग, त्यागी व्रती, साधुगण जिनेंद्र के, आगम के नाम पर मनमानी बोलने लगे हैं। यदि उनसे पूंछा जाय कि ऐसा कथन किस शास्त्र में किस आचार्य ने लिखा है तो वैसा कथन शास्त्रों में नहीं मिलता है। यदि पक्षपात, पंथवाद रूप में देव गुरु की वाणी होती तो मिथ्यामतों के समान जैनधर्म भी हो जाता या दूषित उपदेशक देव और गुरुओं को समीचीन कैसे कहेंगे? ये देव गुरु क्या लोभी लालची, दलालों, वकीलों जैसे थे? यदि थे तो इन्हें वीतरागी त्यागी मोक्षमार्गी क्यों कहा? अतः तीर्थंकरों और गणधरों के वचनों का विस्तार करने वाले गुरुओं के वचन भी निर्दोष होना चाहिये इसलिए पंथवादी, पक्षपाती वक्ता मोक्षमार्गी आयतन न होकर मोक्षमार्ग का घातक एवं अनायतन ही होता है।

प्र.-157 मिथ्यादृष्टि जीव धर्माचरण का पालन कर सकता है क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही पाल सकता है क्योंकि प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन को मिथ्यादृष्टि ही प्राप्त करता है किंतु क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन को सादिमिथ्यादृष्टि और उपशम सम्यग्दृष्टि भी प्राप्त करते हैं अतः मिथ्यादृष्टि भी धर्माचरण का पालन करता है इसमें कोई दोष नहीं है।

प्र.-158 द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन को कौन प्राप्त करता है?

उत्तर- इन दोनों सम्यग्दर्शनों को एकमात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त करता है।

प्र.-159 धर्माचरण का पालक मिथ्यादृष्टि जीव किस प्रकार का होना चाहिये?

उत्तर- धर्माचरण का पालक मिथ्यादृष्टि भद्र परिणामी, मंदकषायी होना चाहिये, तीव्र कषायी नहीं।

प्र.-160 तीव्र कषायवाला नहीं हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- तीव्र कषायवाला मिथ्यादृष्टि जीव सर्व प्रथम मोक्षमार्ग की आराधना ही नहीं कर सकता कदाचित् पर के दबाव वश या अन्य किसी कारण वश मोक्षमार्ग की आराधना करता हुआ, पालन करता हुआ भी कुपुत्रवत् मोक्षमार्गी नहीं बन सकता ऐसे ही तीव्र कषायी मोक्षमार्ग का आराधक न होकर महाविराधक होता है अतः आ. श्री कुंदकुंदजी ने **'ण होई जिणमग्गलग्गरओ'** इस पद के द्वारा मोक्षमार्ग में लगा हुआ होने पर भी मोक्षमार्ग में रत नहीं है ऐसा कहा है।

प्र.-161 स्वतंत्र और स्वच्छंद में क्या अंतर है?

उत्तर- स्वतंत्र मानव अपनी मानमर्यादा का, अपने से बड़ों की, माँबाप की, राजाओं की, राजनेताओं की, देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का पालन करता है, स्वाधीन होता है, पापों से, व्यसनों से भयभीत या त्यागी सम्यग्दृष्टि होता है। स्वच्छंद मानव सांढ की तरह मानमर्यादा को नष्ट कर सर्वत्र अनाज्ञाकारी होता है, अपनी कुचेष्टाओं के द्वारा सज्जनों को कलंकित करता है अतः स्वतंत्रता में सुख संपन्नता है तो स्वच्छंदता में दुःख से भरा हुआ निंदनीय जीवन है यही अंतर है।

नोटः- यहाँ 161 प्रश्नोत्तरों तक तीसरी गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब आगे चौथी गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यग्दर्शन और इसके भेद

सम्मत्तरयणसारं मोक्खमहारूक्खमूलमिदि भणियं।
तं जाणिज्जइ णिच्छयववहारसरूवदो भेयं।।4।।

सम्यक्त्वरत्नसारं मोक्षमहावृक्षमूलमिति भणितं।
तज्ज्ञायते निश्चय व्यवहार स्वरूपतो भेदम्।।

सम्मत्तरयणसारं अनंत रत्नों में सारभूत सम्यक्त्व को **मोक्खमहारूक्खमूलं** मोक्षरूपी महान वृक्ष

का मूल है **इदि भणियं** ऐसा कहा है **तं** उसको **णिच्छयववहारसरूवदो** निमित्त या पर्याय की अपेक्षा निश्चय व्यवहार के **भेयं** भेद से **जाणिज्जइ** दो प्रकार का जानो।

प्र.-162 रत्न किसे कहते हैं?

उत्तर- जो चेतनाचेतन भोगोपभोग की इष्ट सामग्री अपने को अत्यंत प्रिय, बहुमूल्य, मोहक हो, निर्दोष और ठोस हो उसे रत्न कहते हैं।

प्र.-163 इन रत्नों का उपयोग किन कार्यों में करते हैं?

उत्तर- कुछ रत्नों का भोग के लिए, कुछ का आजीविका के लिए, कुछ का शौकश्रृंगार के लिए, पूजा प्रतिष्ठा के लिए और कुछ रत्नों का उपयोग मोक्ष के निमित्त करते हैं।

प्र.-164 इन रत्नों में से किन रत्नों का उपयोग मोक्ष के निमित्त करते हैं?

उत्तर- एकमात्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी तीन रत्नों का उपयोग मोक्ष के निमित्त करते हैं।

प्र.-165 यह सम्यग्दर्शन रूपी रत्न चेतन है या अचेतन?

उत्तर- सम्यग्दर्शन अचेतन है, जड़ स्वरूप है क्योंकि आत्मा में सिर्फ ज्ञानदर्शन ही चेतन हैं शेष अनंत गुणधर्म अचेतन हैं। इस सम्यग्दर्शन को मोक्षमार्ग में प्रथम स्थान प्राप्त है। यदि यह सम्यग्दर्शन चेतन होता तो **'उपयोगो लक्षणम्। स द्विविधोऽष्ट चतुर्भेदः।'** ये दोनों सूत्र सदोष हो जायेंगे क्योंकि इन सूत्रों में ज्ञान दर्शन और इनके भेदों को ग्रहण किया है, सम्यग्दर्शन को नहीं।

प्र.-166 सम्यग्दर्शन और दर्शनोपयोग में क्या अंतर है तथा स्वामी कौन किसके हैं?

उत्तर- दर्शनमोहाभाव से सम्यग्दर्शन और दर्शनावरणीय कर्म के उदयाभाव या क्षय से दर्शनोपयोग होता है जैसे श्रद्धान में सम्यक् मिथ्या विशेषण लगाया जाता है वैसे दर्शनोपयोग में सम्यक् मिथ्या विशेषण नहीं लगाये जाते हैं अतः दोनों के लक्षणों में स्वामी और उत्पत्ति के आधारों में अंतर होने से दोनों में अंतर है। सम्यग्दर्शन के स्वामी मोक्षमार्गी हैं तो दर्शनोपयोग के सभी जीव मात्र हैं।

प्र.-167 इन दोनों के लक्षण और आधार कौन कौन हैं?

उत्तर- सम्यग्दर्शन का लक्षण विश्वास करना है तो दर्शनोपयोग का लक्षण आत्मसंवेदन करना है और सम्यग्दर्शन का आधार सम्यक्त्व गुण है तो दर्शनोपयोग का आधार दर्शनगुण है।

प्र.-168 सम्यग्दर्शन को रत्न क्यों कहा, क्या यह विषयभोगों के काम में आता है?

उत्तर- नहीं, सम्यग्दर्शन को रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले पुद्गलों जैसा रत्न नहीं कहा है किंतु मोक्षमार्ग में मुख्य होने से रत्न कहा है। रत्न के साथ में **'सार'** पद कहा है, सार का अर्थ उत्तम, निर्दोष, श्रेष्ठ या विपरीतता का परिहार करना है क्योंकि जो रत्न आत्मसाधना में, मोक्षमार्ग में उत्तम हो, निर्दोष हो, ठोस हो, अप्रतिपाती हो, घातक न हो उसे सार कहते हैं। मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से आत्मा में अनंत गुणधर्मों की अपेक्षा सम्यग्दर्शन सारभूत है ऐसा कहा है। त.सू. अ. 2 सू. 8, 9 में उपयोग को चेतन कहा है, सम्यग्दर्शन को नहीं। यदि सम्यग्दर्शन को चेतन कहते तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के पहले किस रूप में था तथा अभव्य, दूरानुदूर भव्य और अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीवों के इस चेतनपने का अभाव मानने से अव्याप्ति दोष आ जायेगा क्योंकि लक्षण सर्वव्यापी सभी अवस्थाओं में रहता है। सम्यग्दर्शन दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय या क्षयोपशम से होता है। दर्शनोपयोग दर्शनावरणीयकर्म के क्षय या क्षयोपशम से होता है। सम्यग्दर्शन विषयभोगों का साधन न होकर मोक्ष का साधन है। हाँ, सम्यग्दर्शन के साथ में जो कषायों का मंदोदय है तथा आत्मसाधना के समय में जो योगों से सातिशय पुण्य का आश्रव बंध होता है उसके उदय में आने पर इंद्रियसुख की सामग्री प्राप्त होती है अतः ऐसे पुण्य की प्राप्ति सम्यग्दर्शन के सद्भाव में होने के कारण अभेद

विवक्षा में या उपचार से **'सम्यक्त्वं च'** सम्यग्दर्शन को भी इंद्रियसुख का साधन कहा है अतः अनेकांतवादियों के यहाँ स्याद्वाद नय से कथन होने के कारण वस्तु व्यवस्था सर्वत्र निरवद्य है, निर्दोष है तथा लोकव्यवहार में भी किसी प्रकार से बाधा नहीं आती है।

प्र.-169 सम्यक्त्व रत्न के साथ में 'सार' पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- **विवरीय परिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।3।। अर्थः-** नि.सा. में कहा है कि मोक्षमार्ग के विरुद्ध मिथ्यात्रय के परिहार के लिए **'सार'** पद का प्रयोग किया है। रत्न शब्द से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को तथा देव शास्त्र गुरु को ग्रहण किया है। संसार में चेतन अचेतन इष्ट अनिष्ट आदि अनंत रत्न बताये हैं उनके परिहार के, त्याग के, पृथक्करण के लिए आ. श्री कुंदकुंदजी ने सम्यक्त्व रत्न के साथ में सार पद कहा है। देव शास्त्र गुरु ही परमार्थ हैं, सारभूत हैं।

प्र.-170 मोक्ष को महावृक्ष की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- जैसे विशाल वृक्ष जीवनोपयोगी अनेक प्रकार की सुखसामग्री अनेक प्राणियों को शांति, छाया, शीतलता, खाने को सब्जी फल, पीने योग्य रस, पहनने ओढ़ने योग्य पत्ते छाल आदि देता है वैसे ही मोक्षस्थान शुद्धात्मा को आत्मसुख शांति प्रदाता होने से मोक्ष को महावृक्ष की उपमा दी है।

प्र.-171 सम्यग्दर्शन के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- यहाँ आ. श्री ने सम्यग्दर्शन के दो भेद कहे हैं। **नाम-:** निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन।

प्र.-172 निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं और स्वामी कौन हैं?

उत्तर- केवलज्ञान से समस्त चराचर, रूपी अरूपी पदार्थों को, पूर्ण अंशों को, अप्रतिपाती स्वभाव को जानकर यथावत् विश्वास होने को, परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन या निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। **स्वामी-:** सयोगकेवली, अयोगकेवली और सिद्ध भगवंत हैं।

प्र.-173 छद्मस्थमुनियों के और गृहस्थों के निश्चय सम्यग्दर्शन क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं, क्योंकि छद्मस्थों के केवलज्ञान न होने से समस्त रूपी अरूपी, चराचर पदार्थ प्रदेश प्रत्यक्ष न होने से, प्रत्यक्ष जानकारी न होने से अपूर्ण विश्वास है, जैसी जानकारी होगी वैसा ही विश्वास होगा। केवलज्ञान होने पर विश्वास प्रत्यक्ष और परोक्षज्ञान होने पर विश्वास परोक्ष होता है अतः अपूर्ण विश्वास होने से छद्मस्थ मुनियों, अणुव्रती और अव्रतियों के निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं कहा।

प्र.-174 अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानियों के निश्चयसम्यग्दर्शन क्यों नहीं कहा?

उत्तर- **रूपिष्ववधेः** अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान केवल रूपीपदार्थों को जानते हैं, अरूपीपदार्थों को नहीं अतः इनका विषय भी अपूर्ण होने से विश्वास भी अपूर्ण है। जब ये दोनों ज्ञान अमूर्तिक पदार्थों को प्रत्यक्ष नहीं जानते तो उनमें विश्वास कैसे होगा? अतः इनके साथ में रहने वाले विश्वास को निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं कहा किंतु व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है।

प्र.-175 व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं और स्वामी कौन हैं?

उत्तर- परोक्ष, अपूर्ण, प्रतिपाती विश्वास को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं। **स्वामी-:** चौथे गुणस्थान से लेकर क्षीणमोही 12वें गुणस्थान तक के अव्रती, अणुव्रती और महाव्रती हैं।

प्र.-176 यहाँ 27 तत्त्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन क्यों नहीं कहा?

उत्तर- कहा ही है केवल इनका नाम नहीं लिया है क्योंकि इन्हीं 27 तत्त्वों में छद्मस्थ ज्ञानों के द्वारा उत्पन्न विश्वास व्यवहार सम्यग्दर्शन तथा केवलज्ञान के होने पर उत्पन्न विश्वास निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है।

प्र.-177 देव शास्त्र गुरु पर विश्वास करना व्यवहार सम्यग्दर्शन क्यों नहीं कहा?

उत्तर- देव शास्त्र गुरु सम्यग्दर्शन के कारण होने से कार्य कारण में अभेद कर इन पर विश्वास करना व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है जिसका सर्वत्र आचार्यों ने विधान किया ही है।

प्र.-178 यह गाथा परार्थ रूप है या स्वार्थ रूप?

उत्तर- यह गाथा स्वार्थ रूप ही है क्योंकि इसमें सम्यग्दर्शन का कथन और भेदों को बताया है। सम्यग्दर्शन आत्मगत है इससे केवल अपने स्वरूप की ही सिद्धि होती है। **स्वार्थ-:** अपने प्रयोजन की सिद्धि को, **परार्थ-:** पर के प्रयोजन की सिद्धि को परार्थ कहते हैं।

नोटः- यहाँ 178 प्रश्नोत्तरों तक चौथी गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब आगे पाँचवीं गाथा का अर्थ करते हैं।

शुद्ध सम्यग्दृष्टि का लक्षण

भय विसण मलविवज्जिय संसार सरीर भोग णिव्विण्णो।
अट्ठ गुणंग समग्गो दंसण सुद्धो हु पंचगुरु भत्तो।।5।।

भयव्यसनमलविवर्जितः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
अष्टगुणाङ्ग समग्रः दर्शनशुद्धः खलु पंचगुरुभक्तः।।

भयविसणमल विवज्जिय सप्त भय, सप्त व्यसन और 25 मलदोषों का त्यागी **संसारसरीरभोग णिव्विण्णो** संसार, शरीर और भोगों से विरक्त **अट्ठगुणंगसमग्गो** 8 गुण और 8 अंगों सहित **दंसणसुद्धो** शुद्ध सम्यग्दृष्टि हु ही **पंचगुरूभत्तो** पंचपरमेष्ठी गुरु का भक्त होता है।

प्र.-179 संसार किसे कहते हैं, कितने प्रकार का है, क्या कारण है?

उत्तर- संसरण करने को, परिभ्रमण करने को, एक गति से दूसरी गति में, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में नवीन शरीर ग्रहण करने के लिए मरणकर गमन करने को संसार कहते हैं। **भेदः-** 5 हैं। **नामः-** द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। **कारण-:** आश्रवबंध, मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग संसार के कारण हैं।

प्र.-180 संसार से विरक्त होना किसे कहते हैं?

उत्तर- आश्रव बंध के कारणों का त्याग करने को अथवा विषयकषायों के दमन करने को या मन में संवेग/ कंपन होने को संसार से विरक्त होना या संसार के कारण कार्य से विरक्त होना कहते हैं।

प्र.-181 शरीर से विरक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- शरीर नामकर्मोदय से प्राप्त सप्तमल धातुओं से युक्त या अयुक्त पुद्गलपिंड को शरीर कहते हैं ऐसे शरीर को सुगंधित पदार्थों से, वस्त्राभूषणों से सजाने के त्याग को या माध्यस्थभाव को शरीर से विरक्ति कहते हैं। यहाँ औदारिकशरीर से मतलब है क्योंकि मनुष्य और कदाचित् तिर्यंच मोक्षमार्गी शरीर से विरक्त होते हैं। जैसे श्री पार्श्वनाथ का जीव हाथी और महावीर का जीव सिंह की पर्याय में शरीर से विरक्त हो गया था।

प्र.-182 भोग किसे कहते हैं और भोगों से विरक्त होना किसे कहते हैं?

उत्तर- पाँचों इंद्रियों तथा मन के द्वारा ग्रहण करने योग्य स्पर्श, रस, गंध, रूप और शब्दों को भोग कहते हैं। इन विषयों के प्रति माध्यस्थ भाव रखने को या हर्ष विषाद न करने को भोगों से विरक्त होना कहते हैं।

प्र.-183 सम्यग्दृष्टि जीव संसार शरीर और भोगों से विरक्त होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि जीव निरंतर कबूतर जैसी दृष्टि को छोड़कर तोते की तरह दृष्टि रखता है। मन वचन काय की चेष्टा तदनुरूप करता है और सोचता है कि मैंने अनादिकाल से या अनेकभवों से अबतक संसार, शरीर और भोगों में फंसकर नाना प्रकार के मानसिक, वाचनिक कायिक, क्षेत्रजन्य, कालजन्य, आगंतुक मान सम्मान हानि आदि के कष्ट भोगे हैं और अब हम इन्हीं के चक्कर में लगे रहे तो पुनः पूर्व भुक्त कष्ट भोगने पड़ेंगे अतः इनके प्रति रागद्वेष परिणाम न कर उदासीन होना ही श्रेष्ठ है इसीमें सुखशांति है, अन्यथा कष्ट ही है ऐसा विचार कर इनसे विरक्तपने को या माध्यस्थ भाव को धारण करता है सो ऐसा कहा है।

प्र.-184 कबूतर और तोते की दृष्टि किस प्रकार की होती है?

उत्तर- कबूतर को एकबार भोजन और प्यार मिल जाय तो भगाने पर भी पुनः पुनः लौटकर वहीं आता है इसके विपरीत तोते को कितना ही खिलाओ, पिलाओ, प्यार करो, सोने के पिंजड़े में रखो कदाचित् पिंजड़े की खिड़की खुली मिलने पर निकलकर उड़ जाय तो वापिस पिंजड़े में नहीं आता अर्थात् कबूतर खुला होने पर भी बंधा है और तोता बंधा होने पर भी खुला है।

प्र.-185 ये दृष्टांत किन जीवों को संबोधन करने के लिए दिये हैं?

उत्तर- कबूतर का दृष्टांत मिथ्यादृष्टि के लिए व तोते का सम्यग्दृष्टि के लिए दिया है। मिथ्यादृष्टि घर में कितना ही दुःखी हो पर न तो विरक्त होता है, न घरपरिवार को त्यागता हैं किंतु सम्यग्दृष्टि को हर तरह से संपन्नता, अनुकूलता मिलने पर भी किंचित् प्रतिकूलता हुई कि घर परिवारादि छोड़कर दीक्षा ले लेता है अतः ये दृष्टांत मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टियों को संबोधन के लिए दिए हैं।

प्र.-186 गुरु किसे कहते हैं, भेद कितने हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जिनके द्वारा आत्मा का भवभवांतरों के अज्ञानांधकार, विषयांधकार, कामांधकार, मिथ्यांधकार, मोहांधकार, कषायांधकार आदि दूर हों, नष्ट हों और अंतरंग में धर्म का प्रकाश हो उसे गुरु कहते हैं। भेद दो हैं। **नाम-**: अभिन्नगुरु और भिन्नगुरु।

प्र.-187 अज्ञानांधकार किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्याज्ञान को, क्षायोपशमिक सत्ज्ञान को, दर्शनचारित्र मोहोदय से और मतिश्रुतावधि ज्ञानावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न ज्ञान को अज्ञानांधकार कहते हैं। जैसे वस्तु को विपरीत, संशय, अनध्यवसाय युक्त, कम, अधिक, अन्यथा तथा एकांतरूप से जानना।

प्र.-188 विषयांधकार किसे कहते हैं?

उत्तर- पाँचों इंद्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य सामग्री को, तत्संबंधी अभिलाषा को, ग्रहण करने को या पाँचों इंद्रियों के विषयों में रमण करने को विषयांधकार कहते हैं।

प्र.-189 कामांधकार और मिथ्यांधकार किसे कहते हैं?

उत्तर- ब्रह्मचर्यधर्म को, शीलव्रत को दूषित करने के लिए पाँचों इंद्रियों के विषयों में रमण कर काम की अभिलाषा और क्रिया में डूबने को कामांधकार तथा कल्याण के मार्ग में समीचीन विश्वास न करने को या संसारमार्ग को हित रूप में समझकर विश्वास करने को मिथ्यांधकार कहते हैं।

प्र.-190 मोहांधकार तथा कषायांधकार किसे कहते हैं?

उत्तर- दर्शनमोहोदय होने पर शराबीवत् धर्म कर्तव्यों को छोड़कर परवस्तुओं में आत्महित के योग्य विश्वास करने को मोहांधकार तथा कषायाधीन हो हिताहित के न जानने को कषायांधकार कहते हैं।

प्र.-191 अभिन्न गुरु किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मगत अनादि सादिकालीन नाना अंधकारों को स्वयं के पुरुषार्थ से, स्वयं की साधना आराधना से दूर करने के प्रयत्नविशेष को अभिन्नगुरु/ स्वयंबुद्ध कहते हैं। स्वयं अपनी आत्मा का

आत्मा ही गुरु है।

प्र.-192 भिन्न गुरु किसे कहते हैं, कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- स्वयं की आत्मा से भिन्न चेतन स्वरूप वैराग्य युक्त, शृंगारालंकार, आरंभ परिग्रह के त्यागी महाव्रती मुनिजनों को, सिद्धों को भिन्न गुरु कहते हैं। 5 भेद हैं। **नाम-:** अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु।

प्र.-193 ये पाँचों परमेष्ठी किस प्रकार के गुरु होते हैं?

उत्तर- ये पाँचों परमेष्ठी अभिन्न गुरु और भिन्न गुरु के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

प्र.-194 ये पाँचों परमेष्ठी अभिन्नगुरु किस प्रकार से होते हैं?

उत्तर- जब कोई अनादि या सादि भव्यमिथ्यादृष्टि, अव्रतीसम्यग्दृष्टि, देशव्रती संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर मुनिदीक्षा लेता है तब वह स्वयं साधु परमेष्ठी हुआ फिर वही मुनि अपने आपको संबोधन करने वाला होने से उपाध्याय परमेष्ठी कहलाया। जब वही आत्मा अपने आपके दोषों का प्रक्षालन करता है तब आचार्य परमेष्ठी हुआ। जब वही आत्मा आत्मध्यान के द्वारा घातिचतुष्टय कर्मों को सत्ता से क्षय कर देता है तब सयोगी अयोगीअरहंत परमेष्ठी कहलाया और जब वे ही अरिहंत परमेष्ठी अघातिया कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करते हैं तब सिद्ध परमेष्ठी हुए अतः अपनी आत्मा ही पंचपरमेष्ठी स्वरूप होने से अभिन्नगुरु है।

अरुहासिद्धाइरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेष्ठी।

ते वे हु चिट्ठदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।104।। मो.पा. बा.वे.12

अर्थ-: ये पाँचों परमेष्ठी अपनी आत्मा में ही होने से आत्मस्वरूप ही हैं अतः ये ही शरण हैं।

स्वस्मिन् सदाभिलाषत्वादभीष्ट ज्ञापकत्वतः।

स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः।।34।। इष्टोपदेश

अर्थः- अपनी आत्मा में आत्मा की प्राप्ति का इच्छुक योगी को आत्मसुख प्राप्त करना ही इष्ट होने से अपने द्वारा आप ही प्रेरक होने से अपनी आत्मा ही आत्मा का गुरु है।

प्र.-195 ये पाँचों परमेष्ठी भिन्न गुरु किस प्रकार से होते हैं?

उत्तर- संपूर्ण आरंभपरिग्रह, विषयकषायों, शृंगारालंकार के त्यागी, यथाजात रूपधारी, मूलोत्तर गुणों के पालक को साधु परमेष्ठी, आचार्य के द्वारा प्रदत्त शिष्यशिष्याओं को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावानुसार पाठक को उपाध्याय परमेष्ठी, ये स्वयं द्वादशांग वाणी का और तत्कालीन स्वसमय, परसमय के उपलब्ध साहित्य को भली प्रकार से जानते हैं। धर्म के योग्य भव्यों को धर्म की शिक्षा दीक्षा देने वाले, आत्मसाधना में, जिनधर्म की आराधना में उत्पन्न हुए दोषों को प्रायश्चित्त से दूर कराके मोक्षमार्ग में लगाने वाले, पंचाचार का पालन करने कराने वाले को आचार्य, घातिकर्मों को क्षयकर अनंतचतुष्टय प्राप्त करने वाले को अरहंत कहते हैं। ये योगों से सहित होने के कारण सयोगी और योगों का अभाव होने से अयोगी कहलाते हैं। समस्त द्रव्य भावकर्मों को क्षय कर मोक्ष पाने वाले को सिद्ध कहते हैं अतः इन पाँचों परमेष्ठियों की सत्ता हमारी आत्मा से भिन्न होने के कारण इन्हें भिन्न पंचपरमेष्ठी गुरु कहते हैं।

प्र.-196 इन पाँचों परमेष्ठियों को भिन्न पंचगुरु क्यों कहा?

उत्तर- इन पाँचों परमेष्ठियों की सत्ता अपनी आत्मा से भिन्न होने से, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न होने से, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म भिन्न होने से, पुरुषार्थ और लक्षण भिन्न होने से इनको भिन्न पंचगुरु कहा है।

प्र.-197 असंयमी गृहस्थ को धर्मदीक्षागुरु कह सकते हैं क्या?

उत्तर- ये धर्मदीक्षा गुरु न होकर असंयमी देशसंयमी गृहस्थों से भी विविध अंधकार दूर होने से गृहस्थाचार्य कहलाते हैं सो इन्हें धर्मगुरु, विशेष धर्मदीक्षाशिक्षागुरु नहीं कह सकते हैं फिर भी गृहस्थाचार्यों के संसर्ग से अनेक अंधकार दूर हो जाते हैं जो शास्त्रों में पढ़े जाते हैं और वर्तमान में भी देखे जा रहे हैं।

प्र.-198 गृहस्थाचार्यों को धर्मगुरु कहने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- गृहस्थाचार्यों के पास में संयमधर्म, त्यागधर्म, तपधर्म, व्रतसमिति, सकलसंयम पूर्वक रत्नत्रय धर्म न होने से ये धर्मगुरु नहीं हो सकते हैं। कहीं का कहीं मिलावट कर कहना ही आपत्ति है इससे मोक्षमार्ग की व्यवस्था बिगड़ती है, मर्यादा का उल्लंघन होता है, अनधिकार चेष्टा भी है।

प्र.-199 सम्यग्दृष्टि इन गुरुओं की किसके निमित्त क्या करता है और क्या नहीं?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि इन गुरुओं की भक्ति आराधना कर्मक्षय के निमित्त करता है, पतन के, संसार, शरीर और भोगों के निमित्त नहीं ।

प्र.-200 सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि किसके समान होती है और किसके समान नहीं?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि की दृष्टि गीदड़ के समान कायर पलायनवादी न होकर सिंहवत् उच्च निर्भीक स्वतंत्र और स्वाभिमानी होती है।

प्र.-201 संसार शरीर भोगों के और परिवार के निमित्त भक्ति क्यों नहीं करता?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि आत्मदृष्टि होने से संसार शरीर भोगों से विरक्त होने के कारण जो जिसको नहीं चाहता वह उसके प्रति न समर्पित होता है, न विचार करता है, न वार्तालाप करता है इस नियमानुसार वह इनके प्रति भक्ति नहीं करता है।

प्र.-202 संसार शरीर और भोगों के निमित्त कौनसा जीव भक्ति करता है?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि, विकारी, विषयासक्त कदाचित् असंयमी सम्यग्दृष्टि भी संसार शरीर और भोगों के निमित्त भक्ति करता है क्योंकि वह इनको व्यक्त और अव्यक्त रूप से चाहता व आसक्त होता है तभी तो नाना योनियों में भ्रमण करता हुआ दुःख भोगता है।

प्र.-203 दुःख भोगता है और दुःखी होता है इन दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर- मनोबल और कायबल होने से कदाचित् पांडवों, सुकुमालादि मुनियों की तरह शारीरिक कष्ट होने पर भी अंतरंग से दुःखी नहीं होता। ऐसे दृष्टांत वर्तमान में भी देखे जा रहे हैं कि शारीरिक बीमारी है बाहर से दुःखी दिखने पर भी अंतरंग में शरीर के प्रति विरक्ति होने से दुःखी नहीं होता किंतु धर्मध्यान, भद्रध्यान में उपयोग लगाकर सुखानुभव करता है। दुःख भोगना पूर्व कर्मोदय से होता है और दुःखी होना दुःख पर्याय से परिणत होना पुरुषार्थ है यही इन दोनों में अंतर है। यदि सर्वथा कर्मोदय से ही दुःखी होता है तो सर्वकाल कर्मचेतना और कर्मफल चेतना होने से मोक्षमार्ग नहीं बन सकता, न संवर निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। हाँ, इतना अवश्य है कि लक्ष्य से गिरा तो अवश्य ही दुःख भोगता है और दुःखी होता है।

नोटः- यहाँ 203 प्रश्नोत्तरों पर्यंत पाँचवीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 6वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यग्दृष्टि किस फल को?

णियसुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावत्थ वज्जिओ णाणी।
जिणमुणिधम्मं मण्णइ गयदुक्खो होइ सद्दिट्ठी।।6।।

निजशुद्धात्मानुरक्तः बहिरात्मावस्थावर्जितो ज्ञानी ।

जिनमुनिधर्मं मन्यते गतदुःखो भवति सद्दृष्टिः ।।

णाणी ज्ञानी **णियसुद्धप्पणुरत्तो** निज शुद्धात्मानुरागी **बहिरप्पावत्थवज्जियो** बहिरात्मावस्था का त्यागी **जिणमुणि धम्मं** जिनमुनि धर्म को **मण्णइ** मानने वाला **गयदुक्खो** दुःखों से रहित **सद्दिट्ठी** सम्यग्दृष्टि होइ होता है।

प्र.-204 यहाँ गाथा में ज्ञानी किसे कहा है?

उत्तर- बहिरात्मपने को छोड़कर निज शुद्धात्मा में प्रीति करने वाले को ज्ञानी कहा है।

प्र.-205 यहाँ ''ज्ञानी'' पद से किस गुणस्थान वाला ज्ञानी लेना और किसे नहीं लेना?

उत्तर- यहाँ ज्ञानी पद से आरंभपरिग्रह के, विषयकषायों के, भोगों के त्यागी महाव्रती मुनियों को ग्रहण करना चाहिये। अव्रती असंयमी ज्ञानियों को नहीं क्योंकि ये त्यागी न होकर भोगी होते हैं।

प्र.-206 बहिरात्मा क्या सिद्ध प्रभु को कह सकते हैं?

उत्तर- जिनकी आत्मा पूर्ण शुद्धस्वभाव से बाहर है उसे बहिरात्मा कहते हैं और यह अवस्था पूर्ण रूप से सभी संसारी जीवों की, सभी गुणस्थान वालों की होती है, सिद्ध भगवंतों की नहीं क्योंकि सिद्धों के द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म क्षय हो चुके हैं। अरिहंतों के अघातिया कर्मोदय के कारण विकार मौजूद है तभी तो आश्रवबंध होता है। यदि सयोगी अरिहंतों के विकार नहीं हो तो आश्रवबंध नहीं हो सकता है। अयोगियों के अघातियाकर्मों के सत्त्व और उदय के कारण औदयिकभाव रूप विकार मौजूद है इस अपेक्षा से सिद्धभगवंत बहिरात्मा नहीं हैं किंतु पूर्ण रूप से परमात्मा हैं।

प्र.-207 गुणस्थानानुसार बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- **आवासं जइ इच्छसि अप्पसहावेसु कुणदि थिर भावं।**
तेण दु सामण्णगुणं संपुण्णं होइ जीवस्स।।147।। नि.सा.

अर्थः- यदि तूँ आवश्यकों की इच्छा करता है तो आत्मस्वभाव में स्थिर हो क्योंकि तभी मुनि के श्रमण गुण पूर्ण होते हैं। दसवें गुणस्थान के चरमसमय में उत्कृष्ट धर्मध्यान से या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान से मोहनीय कर्म को क्षय कर 12वें गुणस्थान के प्रथम समय में अहिंसा महाव्रत, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान से शेष तीन घातियाकर्मों के क्षय से सत्यमहाव्रत, अचौर्यमहाव्रत सयोगकेवली के, अयोगकेवली के प्रथमसमय में ब्रह्मचर्य महाव्रत और इसीके अंतिम समय में व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के द्वारा चारों अघातिया कर्मों के क्षय से अपरिग्रह महाव्रत पूर्ण होता है। इस गाथानुसार समस्त गुणस्थान वाले संसारीजीव बहिरात्मा हैं क्योंकि आवश्यकों की पूर्ति या शुद्धात्मा में पूर्ण स्थिरता सिद्धों में ही होती है।

अंतरबाहिर जप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।।150।। नि.सा.

अर्थः- जो साधु मन के विकल्प, बाह्यजल्प (वचन के विकल्प) में वर्तता है वह बहिरात्मा और जो दोनों प्रकार के विकल्पों में नहीं वर्तता है वह अंतरात्मा है। इस गाथानुसार 12वें गुणस्थान तक श्रुतज्ञान होने से दोनों प्रकार के विकल्प मौजूद हैं, सभी मनोयोग और वचनयोग हैं, आत्मप्रदेशों में होनेवाला कंपन ही विकार है, इसीसे क्षेत्रांतरक्रिया हो रही है। मोहकर्म के बिना शेष 7 कर्मानुसार आत्मा में कार्य भी हो रहा है आदि कारणों से 12वें गुणस्थान तक बहिरात्मा जीव माने गये हैं।

जो धम्मसुक्कझाणम्मि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा।
झाणविहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि।।159।। नि.सा.

अर्थः- जो श्रमण धर्मध्यान, शुक्लध्यान में परिणमन कर रहे हैं वे अंतरात्मा हैं तथा धर्मध्यान,

शुक्लध्यान से विहीन प्रमत्त गुणस्थान वाले मुनि बहिरात्मा हैं। इस गाथानुसार आर्तध्यान, कदाचित् रौद्रध्यान अशुभ लेश्यायें, चारों संज्ञायें, विकथायें, इंद्रिय विषयवासनादि प्रमादों में परिणत साधु बहिरात्मा हैं। **मिस्सोत्ति बाहिरप्पा ॥129॥** र.सा. **अर्थः-** मिश्र गुणस्थान पर्यंत तारतम्यता से हीन परिणामों के साथ बहिरात्मावस्था कही है। यहाँ तीसरे गुणस्थान तक मोक्षमार्ग का अभाव या मोक्षमार्ग से बाहर होने से बहिरात्मा कहा है।

उत्कृष्टा बहिरात्मा गुणस्थानादिमे स्थिताः।
द्वितीये मध्यमा मिश्रे गुणस्थाने जघन्यका इति॥193॥ कार्ति.अनु. टीका

अर्थः- मिथ्यात्व गुणस्थान में जीव उत्कृष्ट बहिरात्मा है। दूसरे गुणस्थान में स्थित मध्यम बहिरात्मा है और तीसरे गुणस्थान में स्थित जघन्य बहिरात्मा है। **'अक्खाणि बाहिरप्पा'॥5॥** मो.पा. **अर्थ-:** अव्रती और अणुव्रती इंद्रियविषयों में रमणता से प्रमादी बने हुए हैं अतः आ. श्री कुंदकुंदजी ने इनको बहिरात्मा कहा है।

प्र.-208 बहिरात्मावस्था को जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- अपने अपने गुणस्थानानुसार बहिरात्मावस्था को छोड़कर, विकल्प जालों को त्याग कर आगे अपने परिणामों को उत्कृष्ट बनाना चाहिये जिससे अपना ही मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है।

प्र.-209 बहिरात्मा के त्यागी को क्या कहते हैं?

उत्तर- बहिरात्मा के त्यागी को सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी, संयमीज्ञानी, केवलज्ञानी और सिद्ध भगवंत कहते हैं।

प्र.-210 सम्यग्ज्ञानी जीव किसका अनुरागी है?

उत्तर- सम्यग्ज्ञानी जीव निज शुद्धात्मा का अनुरागी होता है।

प्र.-211 यहाँ ''अनुरागी'' पद का क्या अर्थ है?

उत्तर- यहाँ अनुरागी का अर्थ गाढ़ प्रीतिवान ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सम्यग्ज्ञानी का कथन चल रहा है। यदि मिथ्याज्ञानी का, विषयभोगों का प्रकरण होता तो अनुरागी का अर्थ रागवान कर सकते थे।

प्र.-212 अनुराग प्राप्त वस्तु में होता है या अप्राप्त वस्तु में?

उत्तर- अनुराग प्राप्तव्य वस्तु में होता है, प्राप्त वस्तु में नहीं। यदि प्राप्त वस्तु में भी अनुराग माना जाये तो केवलियों को, सिद्धों को भी अपनी आत्मा में अनुराग करने का प्रसंग आयेगा। प्राप्त वस्तु में रमणता स्थिरता होती है और पाने योग्य वस्तु में अनुराग होता है। इस कारण सम्यग्दृष्टियों के, प्रमत्तों के छद्मस्थों के शुद्धात्मा में अनुराग होता है ऐसा कहा है।

प्र.-213 शुद्धात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- केवल, शुद्ध, एकमात्र अकेली, परद्रव्य की मिलावट के बिना, द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म के क्षय से उत्पन्न ज्ञानादि अनंत गुणों के समूह रूप वस्तु को शुद्धात्मा कहते हैं। जैसे शुद्ध घी, शुद्ध सोनाचांदी आदि में किंचित् भी मिलावट, बट्टा न होने से शुद्ध कहे जाते हैं। इन हेतुओं से सिद्ध परमेष्ठी ही शुद्धात्मा है।

प्र.-214 क्या संसारी कर्माधीन प्राणियों को शुद्धात्मा कह सकते हैं?

उत्तर- हाँ, परमपारिणामिक भाव या शुद्ध नय की अपेक्षा अभेद नय से सभी जीवों को शुद्ध कह सकते हैं।

प्र.-215 हम अपनी आत्मा को सर्वथा शुद्ध मान लें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं मान सकते हैं, यदि आप अपनी आत्मा को सर्वथा शुद्ध मानते हो तो सभी कर्म, आरंभ परिग्रह, विषयवासनादि दुष्कर्म प्रत्यक्ष अनुमानादि के द्वारा दिखाई दे रहे हैं, अल्प श्रुतज्ञानी का विषय भी बन रहे हैं तब कैसे कहते हो कि हम सर्वथा शुद्ध हैं? ऐसा मानना या कहना आत्मवंचना है, दूसरों को धोखा देना है।

प्र.-216 वर्तमान में अपनी आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध, सो कैसे?

उत्तर- वर्तमान में अपनी आत्मा शुद्ध नहीं है किंतु शुद्ध रूप में होने की योग्यता है। यदि वर्तमान में अपनी आत्मा पूर्ण शुद्ध है तो आश्रवबंध, विषयकषाय, संवर आदि का सत्त्व कैसे बन सकता है?

प्र.-217 भूतकाल में अपनी आत्मा शुद्ध थी या अशुद्ध?

उत्तर- भूतकाल में अपनी आत्मा सर्वथा न शुद्ध थी न अशुद्ध। भूतकाल में यदि शुद्ध थी तो वर्तमान में अकस्मात् अशुद्धि आ गई क्या? ऐसा मानने से सिद्धों को पुनः संसार में अधःपतन करना होगा तभी अशुद्धि बन सकती है, अन्यथा नहीं अतः भूत में भी अपनी आत्मा शुद्ध नहीं थी।

प्र.-218 भविष्य में अपनी आत्मा को शुद्ध मान सकते हैं या नहीं?

उत्तर- हाँ, भविष्य में आत्मा शुद्ध हो सकती है ऐसा मानने में कोई दोष नहीं है किंतु वर्तमान में अपनी अशुद्धात्मा है तभी तो पुरुषार्थ से भविष्य में शुद्ध हो सकती है। यदि शुद्ध करना चाहें तो, अन्यथा नहीं।

प्र.-219 सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी जीव किसको मानता है?

उत्तर- जिनधर्म और मुनिधर्म को अथवा जिनेंद्र प्रणीत यथाजात स्वरूप मुनिधर्म को मानता है।

प्र.-220 इन धर्मों को क्यों और किस हेतु मानता है?

उत्तर- ये युगल धर्म तीनों लोकों में श्रेष्ठ, अनंत गुणधर्मों से संपन्न, लोक में पूज्यों के द्वारा भी पूज्य, जगतोद्धारक हैं। इनके द्वारा ही मेरा कल्याण हो सकता है क्योंकि इन्होंने अपना स्वयं का कल्याण किया है, कल्याण के मार्ग में लगे हैं और लगाते हैं इस हेतु जिनधर्म और मुनिधर्म को मानता है।

प्र.-221 कल्याण करने वाले अरिहंत को कल्याण के मार्ग में लगे है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- क्योंकि सभी अरिहंतों ने अभी अपना पूर्णतः कल्याण नहीं किया है, यदि कल्याण कर लिया होता तो लोकांत में जा विराजते किंतु अभी मोक्षपद प्राप्त करने के लिए साधना कर रहे हैं, साधक हैं, निर्वाण कल्याणक प्राप्त करना शेष है इसलिए कल्याण के मार्ग में लगे हैं ऐसा कहा है।

प्र.-222 जिनधर्म को क्यों मानता है?

उत्तर- **सव्वेवि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।**
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं।।82।। प्र.सा.

मुनियों ने जिन उपायों से पूर्वबद्ध घातियाकर्मों को क्षय करके जिनेंद्र पद पाया है और कुछ का क्षय करेंगे तथा इन्हीं उपायों का भव्य जीवों के लिए उपदेश दिया है कि हे भव्य जीवो! यदि हित चाहते हो तो इन उपायों को अपने जीवन में उतारो क्योंकि इन्हीं उपायों से ही कर्म नष्ट होकर शुद्धात्मा की प्राप्ति होगी ऐसा सुनकर समझकर कल्याणकारी जिनधर्म को मानता है।

प्र.-223 जिनधर्म क्या है?

उत्तर- जिन उपायों से लौकिक सुखों की और लोकोत्तर शुद्धात्म सुख की प्राप्ति हो या समस्त प्रकार के दुःखों का, कर्मों का क्षय हो वही उपाय जिनधर्म है या शुद्धात्म प्राप्ति का उपाय ही जिनधर्म है।

प्र.-224 सम्यग्दृष्टि जीव मुनियों को और मुनिधर्म को क्यों मानता है?

उत्तर- अंतरंग बहिरंग परिग्रहत्यागी महाव्रती, नग्न मुद्राधारी, केशलुंचनकारक, पीछीकमंडलुधारी, शारीरिक संस्कारों के त्यागी, विषयवासना के त्यागी, 28, 25, 36 मूलगुणधारी मुनियों को, प्रतिज्ञानुसार भव्यजीवों को मौन से या बोलकर मोक्ष और मोक्षमार्ग का स्वरूप बतलाना, पालन करना कराना यही मुनिधर्म है जो स्वपर प्रकाशक है, तारक है ऐसे मुनिधर्म को जीवन में उतारने से वर्तमान में अनेक आकुलताओं से विमुक्त, सुखी होने के लिए, मुनि बनने के लिए मुनियों को और मुनिधर्म को मानता है।

प्र.-225 यहाँ गाथा में ''जिणमुणिधम्मं'' का अर्थ क्या है?

उत्तर- **जिणमुणिधम्मं** को अखंड पद मानकर अर्थ करने पर जिनेंद्र की चर्या ही मुनिधर्म है और पदच्छेद कर अर्थ करने पर जिनधर्म और मुनिधर्म ये दोनों अलग अलग हैं।

प्र.-226 जिनधर्म और मुनिधर्म में क्या अंतर है?

उत्तर- जिनेंद्र वज्रवृषभनाराच संहनन के धारी, चरमशरीरी, जिनकल्पी मुनि अपनी प्रतिज्ञा को चरणानुयोगानुसार निर्दोष पालते हैं किंतु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावानुसार छहों संहनन वाले चरम अचरम शरीरी जिनकल्पी स्थविरकल्पी मुनिजन अपनी प्रतिज्ञा को निर्दोष और सदोष पालते हैं यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-227 क्या छहों संहनन वाले मुनिदीक्षा ले सकते हैं और इसका क्या फल है?

उत्तर- **जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।**

भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया॥53॥ बो.पा.

अर्थ-: मुनिदीक्षा छहों संहनन वालों के कही गई है। यह दीक्षा कर्मक्षय का कारण बताई है ऐसी दीक्षा की भव्य पुरुष निरंतर भावना करते हैं इस कारण छहों संहननधारी मुनिदीक्षा ले सकते हैं।

प्र.-228 जिनधर्म और मुनिधर्म को मानने तथा पालने का क्या फल है?

उत्तर- इन युगल धर्मों को मानने से, पालने से शारीरिक, वाचनिक, मानसिक, आगंतुक, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावजन्य दुःखों से, जनम मरण और बुढ़ापे के दुःखों से मुक्त हो जाते हैं यही फल है।

प्र.-229 मोक्षफल को कौनसा जीव प्राप्त करता है?

उत्तर- इस प्रकार मोक्षफल को निकट भव्य सम्यग्दृष्टि जीव ही प्राप्त करता है।

प्र.-230 कौनसा सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षफल को प्राप्त करता है?

उत्तर- मोक्षफल को साक्षात् परमावगाढ़ सम्यग्दृष्टि ही प्राप्त करता है क्योंकि इस परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन के आगे और कोई दूसरा सम्यग्दर्शन नहीं है जिसको प्राप्त करना शेष बचा हो इस कारण परमावगाढ़ सम्यग्दृष्टि ही मोक्षफल को प्राप्त करता है ऐसा कहा है क्योंकि सामान्य सम्यग्दर्शन से साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। यदि सामान्य सम्यग्दर्शन से साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होने लगे तो चारों गतियों के सम्यग्दृष्टि सीधे मोक्ष में चले जायेंगे फिर कर्मभूमिज आर्यखंडोत्पन्न उच्चकुलीन मनुष्य मुनि को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है इस नियम की कोई सार्थकता नहीं रहेगी। कहा भी है-

सुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।

जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहि॥29॥ शी.पा.

अर्थ-: देखो! क्या कुत्ते, गधे, गायादि पशु तथा स्त्रियों को मोक्ष देखने में आता है? अर्थात् नहीं आता है किंतु चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष का जो साधन करते हैं उन्हीं को मोक्ष देखा जाता है।

प्र.-231 तो क्या चारों गतियों के जीव मोक्ष पुरुषार्थ नहीं साधते हैं?

उत्तर- अचरम शरीरी चारों गतियों के जीव मोक्षमार्ग को साधते हैं मोक्ष को नहींसोइनको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है किंतु कर्मभूमिज आर्यखंडोत्पन्न, 3 वर्णवाले उच्चगोत्री, आचारविचार, रोटीबेटी से शुद्ध चरमशरीरी मोक्ष और मोक्षमार्ग को साधते हैं इसलिए इन मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.-232 यह परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन किस गुणस्थान में प्राप्त होता है?

उत्तर- 13वें गु.स्था. में केवलज्ञान के द्वारा सभी चराचर पदार्थों को जानने के बाद में उत्पन्न होनेवाला श्रद्धान ही परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन है। इसको व्ययधर्म की अपेक्षा 12वें के चरमसमय में तथा उत्पादधर्म की अपेक्षा 13वें के प्रथमसमय में परमावगाढ़ संज्ञा प्राप्त होती है।

नोटः- यहाँ 232 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 6वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब आगे 7वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निर्दोष सम्यग्दृष्टि

मय मूढ मणायदणं संकाइ वसण भय मईयारं।
जेसिं चउदालेदे ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।

मद मूढमनायतनं शंकादि व्यसन भयमतीचारं।
येषां चतुश्चत्वारिंशत् एतानि न संति ते भवंति सद्दृष्टयः।।

जेसिं जिनके **मयमूढमणायदणं** 8 मद, 3 मूढ़ता, 6 अनायतन, **संकाइवसणभयमईयारं** शंकादिक 8 दोष, 7 व्यसन, 7 भय और 5 अतिचार ये **चउदालेदे** 44 दोष **ण** नहीं **संति** हैं **ते** वे **सद्दिट्ठी उपशम**सम्यग्दृष्टि या क्षायिकसम्यग्दृष्टि **होंति** होते हैं।

प्र.-233 मद किसे कहते हैं, कितने हैं, क्या हानि है और क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- अपने को बड़ा मानकर दूसरों को छोटा समझकर, नीच मानकर अपमान तिरस्कार करने को, नीचा दिखाने को या जिस किसी भी चेतन अचेतन विषयों के माध्यम से अपने में उत्पन्न अहंकार को मद कहते हैं। 8, 32 और असंख्यातलोक प्रमाण भेद हैं। इन मदों से अपना ही सम्यग्दर्शन तथा मोक्षमार्ग नष्ट हो जाता है यही हानि है। रावणवत् कष्ट भोगना ही इनका फल है।

प्र.-234 मद के 8, 32 आदि भेद किस प्रकार से हैं?

उत्तर- **8 मदः-** ज्ञानमद, पूजामद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऋद्धिमद, तपमद, शरीरमद। अनंतानुबंधी मान के साथ में ज्ञानादि 8 मद होने से अनंतानुबंधी मान के 8 भेद हो जाते हैं ऐसे ही अप्रत्याख्यानावरण मान के 8, प्रत्याख्यानावरण मान के 8, संज्वलन मान के 8 भेद ये सभी 32 भेद और इन्हीं 32 भेदों में सांपरायिकाश्रव के 108 भेदों से गुणा करने पर 3456 भेद हो जाते हैं।

प्र.-235 क्या ज्ञानादि आठों भावों के माध्यम से मान होता है या अन्य प्रकार से भी?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही होता है। ये ज्ञानादि 8 नाम केवल उपलक्षण मात्र हैं या हाथी के पैर के समान हैं। जैसे जिस विषय के माध्यम से ज्ञान होता है उसी ज्ञान का अहंकार करने को ज्ञानमद कहते हैं सो ऐसे विषय संख्यातासंख्यात और अनंत प्रकार के हैं तब ज्ञानमद के संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं ऐसे ही प्रत्येक मदों के विषय और मात्रानुसार भेद प्रभेद समझना चाहिये।

प्र.-236 मूढ़ता किसे कहते हैं कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अविवेकता पूर्वक आचारविचारों को, दिनचर्या को या गलत को सही और सही को गलत मानकर आचरण करने को मूढ़ता कहते हैं। तीन या असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। **नामः-** देवमूढ़ता, गुरु मूढ़ता और लोक मूढ़ता या समय मूढ़ता या धर्ममूढ़ता।

प्र.-237 आपकी चर्या और स्वरूप पूर्व परंपरागत यथावत् चला आ रहा है तो इसे

लोकमूढ़ता क्यों न माना जाय क्योंकि जैसे वो नग्न थे वैसे ही आप भी हैं?

उत्तर- हमारे पूर्व के साधुवर्ग नग्न रहते थे हम इस भाव से न नग्न हैं, न नग्नदीक्षा ली है किंतु नग्नावस्था में और वस्त्रधारी अवस्था में क्या विशेषता है, क्या अंतर है आदि भली प्रकार से सोचसमझकर कुछ विकारों को नष्ट कर तथा कुछ विकारों को नष्ट करने के लिए नग्नमुद्रा धारण की है तब मूढ़ता कैसे? हाँ, जिनका विकारीभेष है, स्वपरघातक है, अनेक आरंभपरिग्रह से, विषयकषायों से, अभक्ष्य भक्षण से, कामवासना युक्त जीवन है उनके मूढ़ता अवश्य है क्योंकि इन विकृतभेषों में प्रमादकारक, अनिष्टकारक, अनुपसेव्य, त्रसविघात, बहुविघात, कंदमूल, मद्य मांस मधु का भक्षण, रात्रिभोजन सेवन, अनछना पानी पीना, अनछने पानी से बना भोजनादि करना हो रहा है। आरंभ परिग्रही ही हैं फिर भी साधु कहलाते हैं। इन्हीं साधकों और भक्तों की ही मूढ़ता है, शेष की नहीं।

नार मरी और संपत्ति नाशी मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी।
मूड़ मुड़ाये तीन गुण शिर की मिट जाये खाज।
खाने को लड्डू मिलें लोग कहें महाराज।।

ये लोकोक्तियां विकृत भेषधारियों को ही लागू होती हैं, यथाजात रूप धारियों को नहीं।

प्र.-238 अनायतन किसे कहते हैं, कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जिन चेतनाचेतन पदार्थों से अपना मोक्षमार्ग, आत्मसाधना बिगड़ने लगे ऐसे बाधक साधनों को अनायतन कहते हैं। भेद 2 हैं। **नामः-** द्रव्य अनायतन और भाव अनायतन।

प्र.-239 द्रव्य अनायतन किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग बिगाड़ने वाले आत्मभिन्न साधनों को द्रव्य अनायतन कहते हैं। ये अपने दूरवर्ती या निकट के परिवार, नातेदार, रिश्तेदार जिनेंद्रभक्त होने पर भी मिथ्यामोह के कारण मोक्षमार्ग में बाधक बन जाते हैं। यदि जिनेंद्रभक्त मोक्षमार्गी साधकों में बाधा उत्पन्न करने लगे तो वह जिनेंद्रभक्त कैसा? क्या वह जिनधर्म की प्रभावना करने वाला कहलायेगा? नहीं, केवल उसने मनोरंजन के लिए या अन्यों को ठगने के लिए जिनेंद्र के नाम का चोला धारण किया है वास्तव में वह जिनेंद्रभक्त जिनधर्म का पालक नहीं हैं। इनके 6 भेद हैं। **नाम-:** कुदेव, कुदेवभक्त, कुशास्त्र, कुशास्त्रभक्त, कुगुरु, कुगुरुभक्त। अप्रभावक बाधक जिनेंद्रभक्त।

प्र.-240 भाव अनायतन किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न हुए आत्मपरिणामों को भाव अनायतन कहते हैं। इसके असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। आश्रव बंध के परिणामों के जो नाम हैं वे ही भाव अनायतनों के नाम हैं क्योंकि ये परिणाम भी मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में अत्यंत बाधक बन जाते हैं।

प्र.-241 शंकादि 8 दोष किसे कहते हैं और इनका फल क्या है?

उत्तर- मोक्षमार्ग में, देव शास्त्र गुरु, अपनी आत्मा में, जीवादि 27 तत्त्वों में संदेहादि करने को शंकादि दोष कहते हैं। इन शंकादि दोषों के द्वारा भी सम्यग्दर्शन मलिन होता है तथा ये अधिक समय तक ठहर जायें तो इससे सम्यग्दर्शन का पूर्ण रूप से विनाश भी हो जाता है यही इनका फल है।

प्र.-242 शंकादि 8 दोषों से क्या हानि है?

उत्तर- जब लोकव्यवहार में शंका कांक्षादि परिणामों के उत्पन्न होने पर, प्रयोग में आने पर परस्पर में विश्वास, प्रेम टूट जाता है, घृणा पैदा हो जाती है, बोलचाल, आनाजाना बंद हो जाता है ऐसे ही मोक्षमार्ग में सम्यग्दृष्टियों के ये परिणाम होने लगे तो विश्वास प्रेम मलिन हो जाता है, विनाश

को प्राप्त हो जाता है और मिथ्यादृष्टि होकर दीर्घ संसारी बन जाता है यही हानि है।

प्र.-243 व्यसन किसे कहते हैं, भेद तथा व्यसनों से क्या हानि है?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ जुआ खेलना, शराब पीना आदि अशिष्ट आदतों को या जिन आदतों के होने पर मोक्षमार्ग में गमन करने के, त्यागी व्रती बनने के भाव न हो या जिन लौकिक आदतों को छोड़ने में असह्य बैचेनी हो उसे व्यसन कहते हैं। इन व्यसनों के 7 भेद, अनेक या अनंत भेद हैं। इन आदतों के होने पर तन मन धन और धर्म चारों नष्ट होते हैं, निंदा होती है यही महान हानि है।

प्र.-244 क्या सम्यग्दृष्टि व्यसनों के त्याग के साथ साथ पापों का भी त्यागी होता है?

उत्तर- भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टि ही व्यसनों का त्याग करता है, सम्यग्दृष्टि नहीं। यदि सम्यग्दृष्टि व्यसनों का त्याग करता है ऐसा माना जाय तो सम्यग्दृष्टियों के व्यसनों का चर्या रूप में अस्तित्व मानना पड़ेगा तब कहना सही होगा कि सम्यग्दृष्टि व्यसनों का त्याग करता है किंतु ऐसा नहीं है अतः सम्यग्दृष्टि के पापों के किंचित् त्याग को अणुव्रत कहा है, महाव्रत नहीं।

प्र.-245 व्यसन और पाप में क्या अंतर है?

उत्तर- तीव्र अनंतानुबंधी और मिथ्यात्वोदय से जीवन, जाति, कुल, धर्म को कलंकित करने वाली खोटीआदतों को व्यसन और अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय और प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि कषायोदय से जीवहिंसादि कार्यों में प्रवृत्ति करने को पाप कहते हैं यही व्यसन और पाप में अंतर है।

प्र.-246 भय किसे कहते हैं, भेद तथा क्या हानि है?

उत्तर- भयकषाय के उदय से सत् असत् कार्यों में उत्पन्न हुए कंपन भाव को भय कहते हैं। इसके 7, 28 आदि अनंत भेद हैं। डरपोंक स्वभाव वाला व्यक्ति लौकिक और लोकोत्तर कार्यों में कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर पाता और अंतरंग में सतत कंपायमान होने से दुःखी रहता है, सुखी न होना ही हानि है।

प्र.-247 भयों के 28 और 112 भेद कैसे कैसे होते हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोदय से 7 भयों का गुणा करने पर 28 भेद होते हैं। अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से 28 भेद, प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से 28 भेद, संज्वलन कषायोदय से सहित 28 भेद होते हैं, इन सभी को मिलाने से भयों के 112 भेद हो जाते हैं।

प्र.-248 सम्यग्दृष्टि जीव के भय होते हैं या नहीं?

उत्तर- जैसे अपने कमरे में किसी भी प्रकार का भय, संकोच नहीं होता है किंतु दूसरे के कमरे में निवास करने या प्रवेश करने पर मन में संकोच, भय होता है वैसे ही सम्यग्दृष्टि को अपने कर्तव्यों के पालन करने में किसी भी प्रकार का संकोच, भय नहीं होता है किंतु बाहर का या दूसरों का कार्य करने में संकोच या भय होता है अतः सम्यग्दृष्टि को भय होता है और नहीं भी इसमें अनेकांत है।

प्र.-249 दोष किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- की हुई प्रतिज्ञा में, मोक्षमार्ग में, रत्नत्रय में व्यवहार में उत्पन्न असावधानी को, मलिनता को दोष कहते हैं। दोषों के 4 भेद हैं। **नाम-:** अतिक्रमदोष, व्यतिक्रमदोष, अतिचारदोष और अनाचारदोष।

प्र.-250 अनंतानुबंधी आदि कषायों की शक्ति किस प्रकार है?

उत्तर- अनंतानुबंधीकषाय सर्वघाति होने से मोक्षमार्ग में, अप्रत्याख्यानावरणीयकषाय देशसंयम को घातने में सर्वघाति होने से, प्रत्याख्यानावरणीयकषाय सकलचारित्र को घातने में सर्वघाति होने से और संज्वलनकषाय यथाख्यातचारित्र को घातने में सर्वघाति होने से अनाचारदोष रूप है किंतु

अनंतानुबंधी कषाय सर्वकाल सर्वत्र सर्वघाती है शेष कषायें देशघाति और सर्वघाती हैं।

प्र.-251 अतिक्रम दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- की हुई प्रतिज्ञा में या मन की निर्मलता में किंचित् मलिनता को या शुद्धि की हानि को अतिक्रम दोष कहते हैं। जैसे रुपया में चाराना की हानि होना।

प्र.-252 व्यतिक्रम दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- उक्त मलिनता में कुछ वृद्धि होना व्यतिक्रम दोष हैं। जैसे रुपये में आठाने की हानि होना।

प्र.-253 अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- उक्त दोष में और भी वृद्धि होना अतिचार दोष हैं। जैसे रुपया में बाराना की हानि होना।

प्र.-254 अनाचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- की हुई प्रतिज्ञा के समूलविनाश को अनाचारदोष कहते हैं। जैसे पूर्णतः रुपया की हानि होना।

प्र.-255 ये चारित्र संबंधी दोष किन किन कर्मों के निमित्त से होते हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय से मोक्षमार्ग में अनाचार दोष उत्पन्न होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से असंयम पूर्वक चौथे गुणस्थान के सामान्य रत्नत्रय में अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोष तथा चारित्र अंश की वृद्धि न होने से अनाचार दोष भी उत्पन्न होते हैं। प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से देशसंयम पंचम गुणस्थानवर्ती जीवों के जघन्य वृद्धि अंश रूप एकदेश रत्नत्रय में अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचारदोष उत्पन्न होते हैं। संज्वलन कषायोदय से सकलचारित्र में ये तीनों दोष उत्पन्न होते हैं।

प्र.-256 4थे, 5वें, 6वें गु. में अनाचारदोष किससे उत्पन्न होते हैं और फल क्या है?

उत्तर- सम्यग्दर्शन की अपेक्षा इन गुणस्थानों में आदि की छह प्रकृतियों के उदय से अनाचार दोष उत्पन्न होता है। चारित्र की अपेक्षा चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से देशचारित्र नहीं होना, पंचम गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से सकलचारित्र नहीं होने देना और संज्वलन कषायोदय से यथाख्यात चारित्र नहीं होना ही अनाचार है क्योंकि अनाचार दोषों से तत्संबंधी गुण उत्पन्न नहीं होते तथा कदाचित् गुण मौजूद होने पर अनाचारदोष उत्पन्न हो जाय तो गुण नष्ट हो जाते हैं।

प्र.-257 ये चलादि, शंकादि दोष सम्यग्दर्शन में किस कर्मोदय से होते हैं?

उत्तर- क्षायिक सम्यग्दर्शन और उपशम सम्यग्दर्शन में ये दोष उत्पन्न ही नहीं होते हैं। वेदकसम्यग्दर्शन में देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चल, मल और अगाढ़दोष, शंका, कांक्षादि अतिचार दोष चौथे से सातवें निरतिशय अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक उत्पन्न हो सकते हैं सर्वथा होते ही हैं ऐसा नियम नहीं है।

प्र.-258 सातिशय अप्रमत्तसंयत गुणस्थान संसार काल में कितनी बार प्राप्त होता है?

उत्तर- सातिशय अप्रमत्त संयत 7वां गुणस्थान एक जीव को कम से कम एकबार और अधिकाधिक पाँच बार ही प्राप्त होता है। इनमें से चारबार प्राप्त होकर छूटकर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक भ्रमण कर सकता है, पाँचवीं बार में नियम से क्षपकश्रेणी आरोहण कर क्रमशः कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्र.-259 इस 7वीं गाथानुसार यहाँ पर कौन सा सम्यग्दर्शन ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- पूर्ण निर्दोष होने से क्षायिक और उपशम सम्यग्दर्शन तो पूर्ण रूप से ग्रहण करने योग्य हैं किंतु वेदक सम्यग्दर्शन सर्वथा न निर्दोष है और न सदोष, केवल आर्यखंडगत कर्मभूमिजों

के, भोगभूमिजों के, नारकियों के, सामान्य देवों और तिर्यंचों के ही क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में दोषों की संभावना है। **विशेष देवों में**, अनुदिश अनुत्तरवासी अहमिंद्रों में, कर्मभूमिज निर्वृत्ति अपर्याप्तावस्था में, कृतकृत्य वेदक सम्यग्दर्शन में दोषों की संभावना नहीं है क्योंकि यह थोड़े ही समय में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने वाला है अतः ये सभी ग्राह्य हैं किंतु बनावटी दिखावटी सम्यग्दर्शन को गाथा में ग्रहण नहीं किया है।

नोटः- यहाँ 259 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 7वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब आगे 8वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मोक्षसुख के पात्र?

देव गुरु समय भत्ता संसार सरीर भोग परिचत्ता।
रयणत्तय संजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।।8।।

देव गुरु समय भक्ताः संसार शरीर भोग परित्यक्ताः।
रत्नत्रय संयुक्तास्ते मनुष्याः शिवसुखं प्राप्ताः।।

देवगुरुसमयभत्ता देव, गुरु, शास्त्र या मोक्षमार्गस्थधर्मों के भक्त **संसारसरीरभोगपरिचत्ता** संसार, शरीर, भोगों के त्यागी **देवगुरुसमयभत्ता** देव, गुरु, शास्त्र के भक्त **रयणत्तय संजुत्ता** रत्नत्रय से युक्त **ते** वे **मणुया** मनुष्य **सिवसुहं** मोक्षसुख को **पत्ता** प्राप्त करते हैं।

प्र.-260 देव गुरु शास्त्र का या देव गुरु धर्म का भक्त हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे पुत्र माता पिता का आज्ञाकारी है, कुलदीपक है तो वह मातापिता की चल अचल संपत्ति का अधिकारी होता है, शुभाशीर्वाद प्राप्त करता है वैसे ही देव शास्त्र गुरु की या देव गुरु धर्म की मोक्षमार्ग रूपी संपत्ति का अधिकारी निष्कपट, निःस्वार्थी भक्त ही होता है, कुपुत्रवत् अनाज्ञाकारी कुशिष्य नहीं।

प्र.-261 यहाँ समय शब्द के शास्त्र और धर्म ये दो ही अर्थ क्यों किये?

उत्तर- समय शब्द के अनेक अर्थ होते हैं जैसे समय शब्द काल द्रव्य की पर्याय, आयुकर्म की पर्याय, सामायिक ध्यानादि पर्याय का, चेतन आत्मा की अर्थपर्याय का, शास्त्र का, धर्म का वाचक है फिर भी प्रसंगानुसार यहाँ समय शब्द के शास्त्र और धर्म ये दो ही अर्थ ग्रहण किये हैं, शेष नहीं।

प्र.-262 देव शास्त्र और गुरु किसे कहते हैं?

उत्तर- घातियाकर्मों को क्षयकर अनंतचतुष्टय प्राप्त करने वाले वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी को देव कहते हैं। देवों की वाणी को शास्त्र कहते हैं। यथाजात रूपधारी जिनमुद्राधारी को गुरु कहते हैं।

प्र.-263 संसार शरीर और भोगों का त्यागी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से अनुरंजित परिणाम का नाम या आश्रवबंध के हेतुओं का नाम भावसंसार है सो इसका त्यागी हो, औदारिक शरीर नामकर्मोदय से प्राप्त धातु उपधातुओं से सहित शरीर के प्रति ममत्व, लगाव झुकाव का त्यागी हो, भोगवासनाओं के प्रति रागद्वेष, आसक्ति, प्रेम प्रीति का त्यागी हो। यदि संसार शरीर भोगों का त्यागी, विरक्त नहीं है तो वह यथार्थ में मोक्षमार्गी या सम्यग्धर्मात्मा कैसे बन सकता है? अतः इनका त्यागी हो ऐसा कहा है।

प्र.-264 गृहादि का त्याग कर साधु बनता है तो संसार का त्याग कर क्या बनेगा?

उत्तर- घरपरिवारादि का त्याग कर साधु बन जाता है यह ठीक है पर संसार का त्याग कर मोक्ष में जायेगा अतः गुणस्थानानुसार भावसंसार का त्यागी ही विशेष संयमी मोक्षमार्गी बनेगा, अन्य नहीं।

प्र.-265 द्रव्यसंसार और भावसंसार किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म सहित शरीरादि नोकर्मों को द्रव्यसंसार और भावमिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी को या आश्रव बंध के भावों को या औदयिकभावों को भावसंसार कहते हैं।

प्र.-266 सभी प्रकार के विषयकषायों को भावसंसार मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि जबतक आत्मा में विषयकषाय रूप भावसंसार मौजूद है तबतक वीतराग मोक्षमार्ग उत्पन्न नहीं होता है कारण कि दसवें गुणस्थान तक कषाय मौजूद होने से आचार्यों ने सराग मोक्षमार्ग माना है और मोहनीय कर्म का सर्वथा उपशम या क्षय होने पर वीतराग मोक्षमार्ग माना है।

प्र.-267 शरीर के रहते शरीर का त्यागी क्यों कहा या त्याग कैसे कर सकता है?

उत्तर- वास्तव में शरीर नामकर्म की प्रकृति है। आयुकर्म के क्षय से स्थूल शरीर के छूटने पर भी नामकर्म का क्षय न होने से शरीर पुनः प्राप्त हो जाता है और नामकर्म के क्षय होने पर कालांतर में कभी भी नवीन शरीर प्राप्त नहीं होता है अतः शरीर के त्याग का मतलब है शरीर के प्रति ममत्व, लगाव झुकाव का त्याग।

प्र.-268 भोगों के त्याग का क्या अर्थ है?

उत्तर- ये इंद्रियां अहमिंद्रोंवत् अपना[2] कार्य करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं, परतंत्र नहीं। इनको अपना विषय ग्रहण करने को दूसरों की आज्ञा नहीं लेनी पड़ती है अतः भोगों के प्रति आसक्ति का त्याग करना कहा है, कषायों के त्याग से भोगों का भी त्याग हो जाता है।

प्र.-269 कषायों के त्याग का क्या अर्थ है?

उत्तर- क्रोधादि कषायोदयानुसार परिणमन नहीं करना, उपेक्षा बुद्धि होना या क्रोधादि कषायों को उत्पन्न करने वाले कारणों के मिलने पर उपयोग नहीं लगाना ही कषायों के त्याग का अर्थ है।

प्र.-270 देव शास्त्र गुरु की भक्ति से क्या साक्षात् सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है?

उत्तर- नहीं, देव शास्त्र गुरु की भक्ति में तन्मयता होने से दर्शनमोहनीय का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होता है और उपशमादि के होते ही तत्क्षण सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है अतः सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का साक्षात् कारण दर्शनमोहनीय कर्म का उपशमादि है और बाह्य कारण देव शास्त्र गुरु की भक्ति है।

प्र.-271 साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए रत्नत्रय से सहित हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान, परमयथाख्यातचारित्र, पंडितपंडितमरण हैं इनके अलावा शेष सब परंपरा कारण हैं अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए रत्नत्रय सहित हो ऐसा कहा है।

प्र.-272 देव शास्त्र गुरु का भक्त है यह कैसे पहंचाना जाये?

उत्तर- संसार शरीर भोगों से विरक्त ही देव शास्त्र गुरु का भक्त हो सकता है, दूसरा नहीं क्योंकि सर्वप्रथम **उदासोऽहम्** बाद में **दासोऽहम्** पद प्राप्त होता है कारण जो संसार, शरीर, भोगों और मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का त्यागी नहीं है वह देव शास्त्र गुरु का यथार्थ भक्त न होकर दिखावटी/ बनावटी भक्त होता है।

प्र.-273 रत्नत्रय से सहित है यह कैसे पहंचाना जाये?

उत्तर- जो देव शास्त्र गुरु का भक्त है वही रत्नत्रय का धारी हो सकता है। जो अभक्त, अश्रद्धानी है वह रत्नत्रयधारी कैसे हो सकता है? साधन को अपनाये बिना साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती अतः जिसने **दासता** को प्राप्त नहीं किया है वह **सोऽहम्** अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता सो देव शास्त्र गुरु की सेवा करने से, आज्ञा पालन करने से ही/ दासता से ही रत्नत्रयधारी की पहंचान होती है।

प्र.-274 रत्नत्रयधारी किस फल को प्राप्त करता है, उदासोऽहम् आदि का अर्थ क्या है?

उत्तर- रत्नत्रयधारी जीव यदि चरमशरीरी है तो तद्भव में मोक्ष प्राप्त करता है। यदि अचरमशरीरी है तो पर्यायांतर से मोक्ष पाता ही है क्योंकि **सोऽहम्** के बाद ही **अहम्** अवस्था प्राप्त होती है। इन चारों का संक्षिप्त अर्थः- **उदासोऽहम्ः-** मिथ्यादृष्टियों की उत्कृष्ट वैरागी अवस्था। **दासोऽहम्ः-** मोक्षमार्गी प्रमत्तों की अवस्था। **सोऽहम्ः-** उभयश्रेणी की अवस्था। **अहम्ः-** अरिहंत और सिद्धों की अवस्था।

प्र.-275 रत्नत्रय का क्या फल है?

उत्तर- जिसने एक भी बार रत्नत्रय धर्म को प्राप्त कर लिया है वह संसार में कम से कम एक अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल तक रह सकता है इससे ज्यादा नहीं यही इसका फल है।

प्र.-276 भव भ्रमण की सीमा किस परिणाम से होती है?

उत्तर- बालबालमरण से अनादि मिथ्यादृष्टि अनंतानंत भवों तक, सादिमिथ्यादृष्टि असंख्यातभवों तक, बालमरण से अव्रतीसम्यग्दृष्टि संख्यातासंख्यात भवों तक, बालपंडितमरण से दस भवों तक और पंडितमरण से 7-8 भवों तक संसार में भ्रमण कर मुक्त होते हैं। पंडितपंडितमरण वाले तत्क्षण मोक्ष प्राप्त करते हैं।

एकम्मि भव गहिणे समाहि मरणेण जो मदो जीवो।
ण हि सो हिंडइ बहुसो सत्तट्ठभवे पमोत्तूण ।।681।। भ.आ.

वेमाणिएसु कप्पोवगेसु णियमेण तस्स उववादो।
णियमा सिज्झदि उक्कस्सएण वा सत्तमम्मि भवे।।2080।। भ.आ.

संखेज्जाऽसंखेज्जा वा सेसा भवा जहण्णाए।।49।। भ.आ.

अविरदसम्मादिट्ठिस्स संकिलिट्ठस्स हु जहण्णा।।50।। भ.आ.

अर्थः- एक ही भव में समाधिमरण करने वाला मुनि एवं अणुव्रती श्रावक अधिकतम 7-8 भवों तक संसार में भ्रमण करते हैं इससे ज्यादा नहीं।681, 2080। जघन्य सम्यक्त्व आराधना से संख्यात असंख्यात भव अवशेष रहते हैं।49। जघन्य आराधना संक्लेश परिणाम वाले अविरत सम्यग्दृष्टि के होती है।50।

प्र.-277 संसार भ्रमण का अंत किससे होता है?

उत्तर- संसारभ्रमण का अंत पंडितपंडित मरण से होता है। इसीका नाम निर्वाण/मोक्ष है और यह अवस्था 14वें अयोगकेवली गुणस्थान के अंतिम समय में अंतिम परिणाम से प्राप्त होती है।

प्र.-278 रत्नत्रय से संसार का अंत होता है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- यदि रत्नत्रय से संसार का अंत होता तो असंख्यातबार क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन को, प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन को, देशसंयम को, अनंतानुबंधीकषाय की विसंयोजना, 8बार संयमकांडक को, 4बार उपशमश्रेणी को ग्रहणकर छोडता है अतः अपूर्ण रत्नत्रय से संसार का अंत नहीं होता है सो ऐसा कहा है। हाँ, इतना अवश्य है कि यह रत्नत्रय संसारभ्रमण की सीमा बांधता है।

प्र.-279 कांडक और एक संयमकांडक किसे कहते हैं?

उत्तर- समूह को कांडक कहते हैं और चार बार भाव सहित सकलसंयम को धारणकर छोड़ने को एक संयमकांडक कहते हैं।

प्र.-280 प्रतिज्ञा छोड़ना और छूटना किसे कहते हैं तथा इनमें क्या अंतर है?

उत्तर- की हुई प्रतिज्ञा को सावधानी से न निभाने को छोड़ना कहते हैं तथा काल पूरा होने पर

स्वप्नवत् स्वतः पतन होने को छूटना कहते हैं। छोड़ना पुरुषार्थ पूर्वक है और छूटना दुर्भाग्यवशात् है यही अंतर है।

प्र.-281 रत्नत्रय के बिना क्या समाधिमरण हो सकता है?

उत्तर- समाधिमरण रत्नत्रयधर्म के बिना नहीं हो सकता यह यथार्थ नियम है पर रत्नत्रयधारी नियम से समाधिमरण करेगा ही ऐसा भी नियम नहीं है। यदि नियम होता तो संख्यातासंख्यात बार रत्नत्रय को धारण कर क्यों छोड़ता? रत्नत्रयधर्म मरण के समय छूट गया तब समाधिमरण कैसे होगा? किंतु यह नियम अवश्य है कि समाधिमरण रत्नत्रयधारी को ही प्राप्त होता है, मिथ्यादृष्टि को नहीं।

प्र.-282 समाधिमरण किसे कहते हैं?

उत्तर- उत्पन्न हुई आधि, व्याधि और उपाधि में सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक रागद्वेष रूपी विकारों के न होने को या माध्यस्थभाव पूर्वक शरीर के त्याग को समाधिमरण कहते हैं।

प्र.-283 समाधिमरण किन किन हेतुओं से किया जाता है?

उत्तर- भयंकर उपसर्ग परीषह, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा, रोगादि कारणों से समाधिमरण स्वीकार किया जाता है।

प्र.-284 समाधिमरण को आत्महत्या मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- आपत्ति ही है। जब देशसैनिक देश, समाज की, धन संपत्ति की, धर्म की रक्षा करने के लिए अपना जीवनदान दे देते हैं, मृत्यु को वरण कर लेते हैं उसे आत्महत्या न कहकर शहीद होना कहा, देश के लिए बलिदान देना कहा तब यदि कोई धर्मात्मा गृहस्थ या साधु आत्मधर्म की, ऋषि मुनि प्रणीत धर्म की रक्षा के लिए समीचीन संयम पूर्वक मृत्यु को स्वीकार करता है तो उसे आत्महत्या क्यों कहा जाय? सांसारिक आकांक्षाओं से जूझकर मरण करना आत्महत्या अवश्य ही है पर समाधिमरण आत्महत्या नहीं है।

प्र.-285 उत्कृष्ट समाधिमरण का क्या फल है?

उत्तर- पंडितपंडित मरण से चरमशरीरी उसी भव में मोक्ष प्राप्त करता है। अचरमशरीरी मुनि ने अपने जीवन काल में जो आत्माराधना, आत्मसाधना, संयमाराधना की है सो इस धर्म और धर्म के संस्कारों को भवांतरों में ले जाने के लिए समाधिमरण ही समर्थ है, अन्य नहीं यही फल है।

प्र.-286 समाधिमरण कौन कौन जीव करते हैं?

उत्तर- समाधिमरण को सभी मोक्षमार्गी अव्रती, अणुव्रती, महाव्रती सम्यग्दृष्टिजीव करते हैं।

प्र.-287 मरण के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मरण के 17 भेद हैं। **नाम-: 1. आवीचिमरण-** प्रतिक्षण आयु के एक एक निषेक का उदय में आकर समाप्त होना। **2. तद्भवमरण-** वर्तमान आयु का समाप्त होना। **3. अवधिमरण-** इस वर्तमान में जितनी और जो आयु भोग रहे हैं उतनी वैसी ही आयु आगे के भव में भी होना। **4. आद्यंतमरण-** वर्तमान आयु के समान अगले भव में आयु नहीं होना। **5. बालमरण/ बालबालमरण-** 1 से 4 गुणस्थान तक के जीवों का मरण **6. पंडितमरण-** 6वें से 11वें गुणस्थान तक का **7. आसन्नमरण-** पार्श्वस्थादि भ्रष्टमुनियों का **8. बालपंडितमरण-** अणुव्रतियों का **9. ससल्लमरण-** निदानादि शल्यों सहित **10. बलायमरण-** विनयगुप्ति आदि शुभभावों से रहित मरण **11. वोसट्टमरण-** इंद्रियविषयों के आधीन होकर **12. विप्पाणसमरण-** भयंकर उपसर्गादि से संयम में दोष नहीं लग जायें, मैं ऐसी वेदना सह नहीं सकता और नहीं सहा जाये तो चारित्र में दोष उपस्थित होगा इस हेतु श्वांसनिरोध द्वारा मरण करना। **13. गिद्धपुट्ठमरण-** उक्त कारणों से मुनि का शस्त्र से प्राण त्याग करना। **14. भक्तप्रत्याख्यानमरण-** काय और कषाय को कृश करके सल्लेखना करना। **15. प्रायोपगमनमरण-** स्वपर की वैय्यावृत्ति का त्यागकर मरण करना। **16. इंगिणी**

मरण- दूसरों से सेवा न कराकर स्वयं की स्वयं सेवाकर मरण करना। **17. केवलीमरण-** 14वें गुणस्थान में पंडितपंडित मरणकर निर्वाण प्राप्त करना। भ.आ. 25। इन 17 भेदों में से बालमरण, बालपंडितमरण, भक्तप्रत्याख्यानमरण, इंगिनीमरण, प्रायोपगमनमरण और पंडितपंडितमरण ये समाधिमरण के 6 भेद तथा शेष असमाधिमरण के भेद हैं।

नोटः- यहाँ 287 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 8वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 9वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मोक्ष और संसार का हेतु

दाणं पूया सीलं उववासं बहुविहंपि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीह संसारं।।9।।

दानं पूजा शीलं उपवासः बहुविधमपि क्षपणमपि।
सम्यक्त्वयुतं मोक्षसुखं सम्यक्त्वं विना दीर्घसंसारः।।

सम्मजुदं सम्यग्दर्शन सहित **दाणं** दान **पूया** पूजा **सीलं** शील **उववासं** उपवास **बहुविहंपि** अनेकविध **खवणं** व्रत नियमादि **मोक्खसुहं** मोक्ष के हेतु कहे हैं और **सम्मविणा** सम्यक्त्व के बिना **दीहसंसारं** दीर्घसंसार के हेतु कहे हैं।

प्र.-288 दान किसे कहते हैं?

उत्तर- चेतन, अचेतन सामग्री में स्वामित्वपने के, अधिकारपने के या अपनत्वभाव के त्याग पूर्वक सत्पात्र के लिए मोक्षमार्ग में, धर्मसाधन में सहायभूत सामग्री समर्पण करने को दान कहते हैं।

प्र.-289 दान के भेद कितने हैं और फल क्या है?

उत्तर- लौकिक और लोकोत्तर के भेद से दान के अनेक भेद प्रभेद हैं। लौकिकदान के फल से लौकिक सुखसुविधायें प्राप्त होती हैं, लौकिक प्राणियों के द्वारा कीर्ति प्रशंसा प्राप्त होती है, बिना प्रयास के संकटों में अनेक साथी हो जाते हैं। लोकोत्तरदान के फल से पापकर्मों का संवर, पुण्यकर्मों का सातिशय आश्रव बंध, असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा, आत्मशुद्धि, आत्मानंद, सत्कीर्ति, संकटों में अनेक देवीदेवता, पशुपक्षी और मानव सहायक हो जाते हैं आदि उत्तमोत्तम लौकिक और लोकोत्तर फलों की प्राप्ति होती है।

प्र.-290 लौकिकदानों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व गुण. में मिथ्यात्व पूर्वक मिथ्यादृष्टियों के लिए पशुपक्षियों का दान, स्वर्णदान, भूमिदान, कन्यादान, पुत्रदान, गांव-नगर का दान, दीनदुःखियों के लिए, भिखारियों के लिए वस्त्रदान, भोजनदान, मनोनुकूल अनेक तरह की पढ़ाई की, आजीविका आदि की व्यवस्था करना ये सब लौकिकदान हैं।

प्र.-291 लोकोत्तरदानों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक, धर्मबुद्धि सहित, सावधानी से, योगों की शुद्धि पूर्वक, नवधाभक्ति सहित, पंचसूना पापों के बिना उत्तमपात्रों को आहारदान, उपकरणदान आदि देना, उत्तम पात्र आर्यिकाओं के लिए, मध्यम पात्र ऐलक, जघन्य पात्र क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं के लिए संयम रक्षणार्थ पीछी, शरीर की लज्जा मर्यादा रखने के लिए वस्त्र रूपी उपकरणदान, अनुकूल वसतिका आदि देना, यदि इन पात्रों के ज्ञानावरणीय कर्म का उत्कृष्ट, निर्दोष और विशेष क्षयोपशम हुआ है तो शास्त्र संपादन के लिए कागज, स्याही, कलम-हॉल्डर आदि की व्यवस्था करना लोकोत्तरदान है क्योंकि ये दान मोक्ष के निमित्त दिये जाते हैं।

प्र.-292 क्या इन दानों से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर- इन दानों से साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है किंतु ये दान एकमात्र मोक्षमार्ग के अंग हैं और कालांतर में मोक्ष की प्राप्ति में सहायक सामग्री प्राप्त कराते हैं।

प्र.-293 रक्त, किडनी नेत्रादि शरीर के अंगों का दान देना यह कौन सा दान है?

उत्तर- ये वास्तविक दान नहीं हैं। भारतीय संस्कृति में जैन जैनेतर ऋषिमुनियों ने अहिंसावादी धर्मग्रंथों में इन दानों का नाम ही नहीं लिया है। इन वस्तुओं के दानों को कुदान, पाप का दान कहा है। यदि इनका दान वास्तविक दान है तो मद्य, मांस, मधु का, कंदमूलों का, सप्त व्यसनों का त्याग क्यों कराया? फिर वेश्याकर्म को भी सही मानना पड़ेगा। जो इन वस्तुओं के देने को दान कहते हैं, जीवनदान कहते हैं वे जैनमतानुयायी नहीं हैं, अहिंसावादी नहीं हैं और भारतीय धर्म संस्कृति के न जानकार हैं, न विश्वासी हैं।

प्र.-294 फिर इन वस्तुओं के देने को दान किसने कहा है?

उत्तर- जो मांसाहारी, शराबी, वेश्यागमनादि कुकर्मों में आसक्त हैं। नाना प्रकार की साध्यासाध्य बीमारियों से ग्रस्त हैं तो इन व्यक्तियों को लोलुपता वश ये वस्तुयें चाहिये, मांगने पर कोई नहीं देगा अतः औषधिदान, जीवनदान के नाम पर मांगा, बच्चों को पढ़ाया, पत्रिकाओं में, टी.वी. में विज्ञापन निकाला आदि हेतुओं से इन विदेशियों ने इनको दान कहा है। जैसे मांस लोलुपियों को मांस खाने के लिए कोई मांस नहीं दे रहा था तो उन्होंने देवीदेवताओं के नाम पर अज्ञानियों/ नादानों से बलि के रूप में मांगा तो अज्ञानियों/ नादानों ने देवीदेवताओं के नाम पर बकरे, मुर्गे, गाय, भैंस वगैरह दे दिये। सदाचारिणी माँ अपने बच्चों को खाती है क्या? नहीं खाती है तो ये देवी देवता क्या अपने भक्तों को खा सकते हैं? नहीं खा सकते हैं।

प्र.-295 पूजा किसे कहते हैं और यह पूजा अभिषेक पूर्वक करना चाहिये या नहीं?

उत्तर- कर्म क्षय के निमित्त मोक्षमार्गस्थ चेतन अचेतन धर्मायतनों का आदर सम्मान करने को, गुणकीर्तन, गुण प्रशंसा करने को, सद्गुणों को देखकर प्रसन्न होने को या उत्तम निर्दोष, अमूल्य सामग्री अर्पण समर्पण करने को पूजा कहते हैं। अष्टद्रव्य पूजन अभिषेक पूर्वक ही होती है क्योंकि आ. श्री कुंदकुंदजी ने प्राकृत भक्तिओं में सर्व प्रथम **'दिव्वेण ण्हाणेण'** ऐसा कहा है। अभिषेक/ शांतिधारा का अर्थ सविस्तार वर्णन आंतरिक पीड़ा दिग्दर्शन प्र. 748-753 तक पृ.176-185 में किया जा चुका है वहाँ देखना चाहिये।

प्र.-296 पंचामृत अभिषेक के संबंध में किस प्रकार से अवर्णवाद करते हैं?

उत्तर- आ. श्री देवनंदीजी के शिष्य मुनि सकलकीर्तिजी ने कविनगर गाजियाबाद में महाराष्ट्र औरंगाबाद के पास के गांव की विशेष घटना बताई थी कि शास्त्रज्ञ, आचारविचार से, जातिकुल से शुद्ध एक श्राविका मंदिरजी में जिनबिंब का पंचामृताभिषेक कर रही थी उस समय एक आर्यिकासंघ की मुख्य आर्यिका ने उस श्राविका से कहा हे वेश्या! यह पाप क्यों कर रही हो? उन बहनजी ने पंचामृताभिषेक करने के बाद में मुख्य आर्यिका से हाथ जोड़कर विनय पूर्वक प्रार्थना की कि आपके दीक्षाशिक्षा गुरु कौन हैं, किस प्रांत के हैं, उनके मातापिता कौन हैं? मुख्य आर्यिका ने अपने गुरु का और गांव का नाम सदलगा बताया तब उस श्राविका ने कहा कि आपके गुरु कर्नाटक के हैं और उनके मातापिता पंचामृतभिषेक करते थे तो वे भी वेश्या और व्यभिचारी कहलाये तथा आपके गुरु वेश्या और व्यभिचारी की संतान कहलाये जब आपके गुरु ऐसे हैं तब आप कौन हैं? इसी तरह एक घटना और है, एक जगह मंदिर में पुजारीजी एक ही थाली में जिनेंद्रप्रतिमा और पद्मावती की प्रतिमा को रखकर अभिषेक कर रहे थे तो उस समय एक मुनिश्री बोले हे पुजारी! पतिपत्नि की मूर्ति को एकसाथ रखकर क्यों अभिषेक कर रहे हो तब पुजारीजी ने अभिषेक को रोककर कहा कि कहाँ वीतरागी भगवान की प्रतिमा और कहाँ सरागी देवांगना की प्रतिमा ये

एक स्थान पर होने से पतिपत्नि कैसे? तो साधुओं की, आर्यिका, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, गृहस्थ श्रावक, श्राविकाओं की फोटुएं धर्मग्रंथों में एकसाथ छप रही हैं या सफर करते समय गाड़ियों में एक ही सीट पर यात्रीगण एकसाथ बैठते हैं तो क्या वे सभी दंपति हैं? हाँ, यदि एकसाथ बैठने से दंपति हैं तो घरों में पितापुत्री, माँबेटा, भाईबहन, गुरुशिष्या कौन हैं, क्या ये संबंध बन सकते हैं? आजकल कुछ त्यागीवर्ग अपनी चर्याओं के द्वारा अपना परिचय अजैनों के समान दे रहे हैं। क्या ऐसे परिचय से आगम की, धर्म की रक्षा होगी या विच्छेद होगा? इन पंथवादों के कारण आर्ष प्रणीत कितने ग्रंथों को गलत ठहराओगे? यदि वे ग्रंथ मिथ्या हैं, शास्त्राभास हैं तो वे ग्रंथकर्ता कौन हुए? उनको पूजने वाले, अर्घ चढ़ाकर नमस्कार करने वाले कौन हुए? क्या यह शास्त्र और गुरु का अवर्णवाद नहीं है?

प्र.-297 पूजा के भेद कितने हैं और फल क्या है?

उत्तर- **का भक्ति पूजा? अर्हदादि गुणानुरागो भक्तिः। पूजा द्वि प्रकारा द्रव्यपूजा भावपूजा चेति। गंध पुष्प धूपाक्षतादि दानं अर्हदादि उद्दिश्य द्रव्यपूजा अभ्युत्थान प्रदक्षिणी करण प्रणमनादिका कायक्रिया च, वाचा गुणसंस्तवनं च। भावपूजा मनसः तद्‌गुणानुस्मरणम्। अर्थ-:** भक्ति और पूजा किसे कहते हैं? अर्हंत आदि के गुणों में अनुराग भक्ति। पूजा दो प्रकार की है द्रव्यपूजा और भावपूजा। अर्हंतादि का उद्देश्य करके गंध पुष्प धूप अक्षत आदि अर्पित करना द्रव्यपूजा है तथा उनके आदर में खड़े होना, प्रदक्षिणा करना, प्रणामादि करना रूप शारीरिकक्रिया और वचन से गुणों का स्तवन करना ही द्रव्य पूजा है। मन से उनके गुणों का स्मरण करना भावपूजा है। भ.आ. गा. 46 टीका, पृ. 87। अथवा लौकिक और लोकोत्तर पूजा। लौकिक प्राणियों की भक्ति, गुणगान, गुणकीर्तन, हाथ जोड़ना, नमस्कार करना, आरती उतारना, अर्घ समर्पण करना, अनेक सामग्रियां दान देना आदि लौकिक पूजा है। इनसे लोक में आदरसम्मान प्राप्त होना, प्रशंसा होना, भोग संपदायें प्राप्त होना, नाना उपाधियां प्राप्त होना आदि लौकिकपूजा का फल है। लोकोत्तर पूजा से लोकोत्तर राजामहाराजा, इंद्रादिक देवदेवांगनाओं के द्वारा आदरसम्मान प्राप्त होना परमेष्ठी पद प्राप्त होना आदि लोकोत्तर पूजा का फल है या पूजा के तीन भेद भी हैं- गाथा- चतुर्विधदान निरूपण

भृत्यैश्च बंधुभिः पूज्यैरिंद्रैर्जिनपतेः कृता।
तामसी राजसी पूजा सात्त्विकी भवति ध्रुवम्।।47।। दानशासन

अर्थ- सेवकों से जो पूजा कराई जाती है वह तामसी पूजा, अपने बंधुओं से जो पूजा कराई जाती है वह राजसी पूजा और जो पूजा स्वयं अपने हाथों से की जाती है वह सात्त्विकी पूजा कहलाती है।

दद्याद्दश फलान्याद्या परा शतफलान्यपि।
तृतीया स्वर्गमोक्षश्रीसंगसौख्यफलान्यरम्।।48।। महर्षिवासुपूज्यकृत।

अर्थ- पहली तामसी पूजा दसवां भाग सदोष फल देती है, दूसरी राजसी पूजा सौवां भाग सदोष फल देती है, तीसरी सात्त्विकी पूजा स्वर्ग व मोक्षलक्ष्मी का संग कराकर अनंतसुख देती है।

प्र.-298 लोकोत्तर पूजा किसे कहते हैं?

उत्तर- **चेदिय-: चैत्यं प्रतिबिंबं इति यावत्। कस्य? प्रत्यासत्तेः श्रुतयोरेवार्हत् सिद्धयोः प्रतिबिंब ग्रहणं अथवा मध्यप्रक्षेपः पूर्वोत्तर गोचर स्थापना परिग्रहार्थस्तेन साध्वादिस्थापना आदि गृह्यते। अर्थ-:** चैत्य को प्रतिबिंब कहते हैं, चैत्य शब्द अर्हंत और सिद्ध के समीप है अतः सिद्ध और अर्हंत के ही प्रतिबिंब ग्रहण करना या उससे पूर्व और उत्तर की स्थापना ग्रहण करने के लिए चैत्य शब्द को मध्य में रखा है उससे साधु आदि की स्थापना का भी ग्रहण होता है। भ. आ. गा. 45 की टीका पृ. 85। नवदेवताओं की, कृत्रिमाकृत्रिम धर्मायतनों की, चैत्य चैत्यालयों की प्रशंसा करना,

नमस्कार करना, हाथ जोड़ना, अष्टद्रव्यसामग्री, अष्टमंगलद्रव्य अर्पण करना, निष्कपट, निःस्वार्थभाव से समर्पित होने को लोकोत्तर पूजा कहते हैं।

प्र.-299 शीलधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- अखंड बालब्रह्मचर्य पालन करने को, पतिव्रत या पत्निव्रत पालन करने को शीलधर्म कहते हैं।

प्र.-300 उपवास किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयकषायों का, दुर्ध्यानों का, आरंभ परिग्रह का, चारों प्रकार के आहार का त्याग कर आत्म स्वभाव के अत्यंत निकट या आत्मस्वभाव में निवास करने को, ठहरने को उपवास कहते हैं।

प्र.-301 मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यादृष्टि जीव उपवास करते हैं या नहीं?

उत्तर- वास्तव में मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायाभाव में ही धर्मध्यान तथा धर्मध्यान के अंग स्वरूप उपवासादि होते हैं। धर्मध्यान के बिना उपवास को लंघन कहा है। सम्यग्दर्शन के बिना न धर्मध्यान है, न विषयकषायों का त्याग हो पाता है। इस गुणस्थान में कदाचित् उपवास करने की भूमिका बन सकती है।

प्र.-302 दान, पूजा, शील और उपवास ये धर्म श्रावकों के हैं या साधुओं के?

उत्तर- यह चार प्रकार का व्यवहारधर्म मुख्यतया गृहस्थ श्रावकों के लिए निश्चयधर्म का साधक है। आरंभ परिग्रह के त्यागी मुनिजन भावप्रधानतया भावों से सूक्ष्मता पूर्वक या वचन और काय रूप कारित अनुमोदना से इन्हीं धर्मों को पालते हैं। मुनियों का यह धर्म शीघ्रता से मोक्ष को प्राप्त कराता है तथा गृहस्थों को परंपरा से मुनि पद अंगीकार कराकर मोक्ष प्राप्त कराता है।

प्र.-303 त्रस स्थावर जीवों की हिंसा का साधन होने से दानादि को धर्म क्यों कहा?

उत्तर- **ण्हवणोवलेवण संमज्जण छुहावण फुल्लरोवण धूवदहणादिवावारेहि जीववहाविणाभावेहि विणा पूजाकरणाणुवत्तीदो च।** ज.ध. 1 का. 82 गा. 1 पृ. 91 **अर्थः-** अभिषेक, अवलेप करना, संमार्जन करना, चंदन लगाना, फूल चढ़ाना और धूप जलानादि जीववध के अविनाभावी व्यापारों के बिना पूजा करना बन नहीं सकता अतः इतना होने पर भी आचार्यों ने श्रावकों के उपकारार्थ कर्म बंधन को ढीला करने के लिए इन कार्यों को करने के लिए कहा है। आरंभ करो ऐसा नहीं कहा तब आचार्यों को दोष कैसे लगेगा? इन कार्यों की तैयारी करने में आरंभ होने से जीव विराधना अवश्य होती है पर समिति होने से, स्थूलपापों का त्याग होने से, पापकर्मों की संवर निर्जरा एवं आत्मनिर्मलता होने से तथा मोक्षमार्ग के अंग होने से इनको धर्म कहा है, आरंभ को नहीं क्योंकि दानादि कार्यों में आरंभ न होने से जीवहिंसा नहीं होती है किंतु इनकी तैयारी करने में आरंभ अवश्य होता है तथा असावधानी होने से जीवहिंसा के कारण पापकर्मों का आश्रवबंध अवश्य होता है जो नगण्य है और सावधानी होने से संवर निर्जरा होती है।

प्र.-304 दानादि 4 कारणों से अनेक कार्य कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- जिस प्रकार एक ही दीपक से प्रकाश, प्रताप, सेंकना, तापना, जलाना, पकाना, अंधकार का भागना, शास्त्रजी पढ़ना पढ़ाना, देखना आदि अनेक कार्य देखे जाते हैं वैसे ही इन दानादिकों से अनेक कार्य आगम और प्रत्यक्ष से जाने, देखे जाते हैं।

प्र.-305 सभी प्रकार के आरंभ हिंसात्मक होते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, यदि सभी आरंभ हिंसात्मक होने लगें तो मोक्षमार्ग ही नहीं बन सकता तथा समिति भी नहीं बन सकती। जिन कार्यों को करने से त्रस स्थावर जीवों की विराधना होती है, कष्ट होता है केवल वो ही आरंभ हिंसात्मक हैं, शेष नहीं क्योंकि बहुत से आरंभ कार्य ऐसे हैं कि जिनमें समितियों का प्रयोग होने से किंचित् भी त्रसस्थावर जीवों की हिंसा नहीं होती है। जैसे ध्यानाध्ययन,

व्रतसमिति के पालन में सावधानी से उठना बैठना, चलना, सोना, खाना पीना आदि अतः जहाँ जीवों की हिंसा है वहाँ नियम से आरंभ है किंतु जहाँ आरंभ है वहाँ हिंसा हो भी सकती है और नहीं भी इसमें उभयतः व्याप्ति न होकर एकतरफा व्याप्ति है। यदि सभी आरंभ हिंसात्मक हों तो केवली आदि गृहस्थ हिंसक कहलायेंगे, अहिंसक नहीं एवं केवलियों के आहार, विहार, धर्मोपदेश रूपी चर्या होने से हिंसक मानने का प्रसंग आयेगा।

प्र.-306 औषधि देना पाप है क्योंकि औषधि से जीवहिंसा होती है, कीटाणुओं के पैदा हुए बिना शारीरिक रोग नहीं हो सकते धातु उपधातुओं के मिश्रित होने पर वात पित्त कफ, मलमूत्रादि में विकार होने से लैब में जहरीले कीटाणुओं की संख्या, कार्य प्रणाली का ज्ञान हो जाता है तब औषधियों से ये कीटाणु मार दिये जाते हैं और नवीन पैदा नहीं हो पाते अतः हिंसात्मक होने से औषधि को दानधर्म क्यों कहा?

उत्तर- रत्नत्रयधर्म मोक्ष का हेतु है और रत्नत्रय के बाह्य साधन देव शास्त्र गुरु हैं। इनकी रक्षा करना धर्म है आदि हेतुओं से औषधिदान को धर्म कहा है क्योंकि शुद्ध औषधि से मोक्षमार्गस्थ साधकों को निरोगता प्राप्त होने से धर्मध्यान शुक्लध्यान की सिद्धि होती है या गृहस्थों के विरोधीहिंसा का त्याग न होने से धर्म विरोधी साधनों को दूर करने के लिए साम दाम दंड और भेद नीति को अपनाने से ही मोक्षमार्ग की रक्षा हो सकती है अन्यथा धर्मायतनों का विनाश होना अवश्यंभावी है अतः मोक्षमार्ग की रक्षक होने से औषधि देने को दानधर्म कहा है तथा कामभोग के हेतु पूर्वक औषधि देने को पाप ही कहा है, पुण्य नहीं।

प्र.-307 आहारार्थ पानी भरना, छानना, गर्म करना, फलादि सुधारना, संशोधन करना, कूटनापीसना, छाननाबीननादि कार्यों में त्रसस्थावर जीवों की विराधना होने से आहार देने को धर्म का अंग क्यों कहा?

उत्तर- उत्तमादि पात्रों को आत्मसाधना में सहायक, मोक्ष के हेतु आहार देने को दानधर्म कहा है क्योंकि पेट खाली होने से, उदराग्नि की वृद्धि होने से, भूंखप्यास के सताने से मन सामायिक, ध्यानाध्ययन, तपश्चरण में नहीं लग रहा है, गमनागमन में, उठने बैठने में, प्रवचन में, कमजोरी होने के कारण असावधानी हो रही है समिति का पालन नहीं हो रहा है आदि हेतुओं से प्रतिज्ञा पालन करने के लिए आहार देने से समितियों का पालन हो सकता है। केवल आहार देने मात्र से इन सबका दान दिया ऐसा कहा है। आहार की भूमिका बनाने में, सामग्री तैयार करने में स्थावर जीवों की हिंसा अवश्य होती है पर विशेष आत्मलाभ के सामने, संवर निर्जरा की तुलना में यह हिंसा नगण्य है, ना के बराबर है। गृहकार्यों के करने से जो पापकर्मों का उपार्जन किया है उस पाप को धोने के लिए यह दान पानी के समान है, पाप को पाप से नहीं धोते हैं, जैसे रक्त के धब्बे को रक्त से न धोकर पानी से धोते हैं या आहार की भूमिका को, आहार तैयार करने को दान नहीं कहा है किंतु आहार दान के साथ लोभ त्याग को दान कहा है तब पाप कैसा?

प्र.-308 समीचीन दान किसके समान है और इसका क्या फल है?

उत्तर- समीचीन दान पानी के समान है। जैसे गंदे कपड़े को साबुन सोड़े और पानी से धोते हैं बिना इनके मैल साफ हो नहीं सकता वैसे ही लौकिक और गृहकार्यों के द्वारा उपार्जन किये हुए पापकर्मों को नष्ट करने के लिए, घटाने के लिए समीचीन दान साबुन सोड़े और पानी के समान है यही दान का फल है।

प्र.-309 दान के ही समान पूजा में भी जीवहिंसा होने से इसे धर्म क्यों कहा?

उत्तर- पूजा संबंधी अष्टद्रव्य सामग्री की तैयारी में आरंभ होने से जीवहिंसा होती है क्योंकि गृहस्थों के आरंभी हिंसा का त्याग न होने से, हेतु समीचीन होने से, आत्मनिर्मलता होने से, आत्मशुद्धि और

त्यागधर्म की रक्षक होने से पूजा को धर्म कहा है विशेष पुण्यबंध का कारण कहा है। **कर्मबंध के छेदने और न कोई उपाय** पूजा संवर निर्जरा स्वरूप है सम्यक्त्वाचरणचारित्र, देशचारित्र और मोक्षमार्ग है सो ऐसा कहा है।

प्र.-310 दांपत्य या अविवाहित अवस्था में शीलव्रत का नियम लेने पर पूरा परिवार दुःखी होता है तब शीलव्रत को धर्म क्यों कहा?

उत्तर- शीलव्रत के पालन करने में आत्मशुद्धि होती है, लज्जा मर्यादा तथा शरीर की तुष्टि पुष्टि, निरोगता बनी रहती है, धातु उपधातुओं की रक्षा होती है, नवलाख संमूर्च्छन नपुंसकवेदी तथा असंख्यात करोड़ जीवों को अभयदान दिया जाता है तथा कामसेवन से लिंग के प्रत्येक आघात में असंख्यात करोड़ जीव तथा नवलाख संमूर्च्छन मनुष्य मारे जाते हैं। ये गृहस्थगण मोहांध, कामांध, लोभांध होने के कारण, अपनी आजीविका में कमी होने से दुःखी होते हैं अतः आत्मसुख का कारण होने से शीलव्रत को धर्म कहा है।

प्र.-311 उपवास जीवहिंसा का कारण होने से इसे धर्म क्यों कहा?

उत्तर- आहार पानी का त्याग करने से पेट के कीटाणु असमय में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं सो यह ठीक है पर जरा सोचो पेड़पौधौं को बाहर से खादपानी नहीं मिलने पर भी जड़ों से ही खादपानी खींच कर ग्रहण कर लेते हैं जिससे वे हरेभरे बने रहते हैं ऐसे ही उपवास करने पर भी शरीर में संचित धातु उपधातुओं से क्षुद्र प्राणी अपना भोजनपान कर लेते हैं व आयुकर्म की उदीरणा क्षय से वे असमय में मृत्यु नहीं कर पाते। यदि प्रमत्तों के शरीर में रहने वाले संपूर्ण क्षुद्र प्राणी मर जायें तो केवलीवत् मनुष्यों को न भूंखप्यास लगेगी, न आहार की इच्छा होगी, जिनकी आयु उदय रूप से पूर्ण हो चुकी है उनको मृत्यु से कोई नहीं बचा सकता या उपवास आत्मशुद्धि और ध्यानाध्ययन के लिए, विषयकषायों तथा इंद्रियों पर विजय पाने के लिए किया जाता है तब हिंसा कैसे? क्योंकि हिंसा का कारण प्रमाद और अहिंसा का कारण अप्रमाद है।

प्र.-312 सम्यग्दर्शन के बिना दान पूजा आदि से आत्मा दीर्घसंसारी कैसे होती है?

उत्तर- नरक निगोद से निकल कर उत्तम जाति, कुल, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को प्राप्त कर नाना प्रकार से धर्मसाधना की फिर भी रत्नत्रय के बिना दीर्घ संसारी कहा है क्योंकि निदान पूर्वक मिथ्यात्व और विषयकषायों से नरकायु, तिर्यंचायु, एकेंद्रिय जाति का बंध करके पुनः वहीं पहुंच गया। अब न मालुम कितने कोड़ाकोड़ी सागर काल व्यतीत हो जायें या ढाई पुद्गलपरिवर्तन काल तक निगोद में ही जनम मरण करता रहे इस कारण सम्यग्दर्शन के बिना इन कार्यों को करते हुए भी आ. श्री ने दीर्घ संसारी कहा है।

प्र.-313 षट्कायिक जीवहिंसा के कारण दानादि के उपदेशक अवंदनीय क्यों नहीं हैं?

उत्तर- यद्यपि तीर्थंकरों ने दान पूजा शीलोपवास धर्मों का उपदेश दिया है फिर भी ये पूर्ण निर्दोष हैं क्योंकि इनके मिथ्यात्वादि चार आश्रवबंध के कारणभूत ये प्रत्यय भी नहीं हैं अतः वंदनीय ही हैं।

प्र.-314 प्रमादी 3 परमेष्ठियों ने इन धर्मों का कथन और लेखन कार्य क्यों किया?

उत्तर- जिनेंद्राज्ञा का विस्तार, प्रभावना सर्वकाल चलती रहे, मोक्षमार्ग समाप्त न हो और भव्यजीवों के हितार्थ यह कार्य किया है अन्यथा बिना मार्गदर्शन के मोक्षमार्ग ही समाप्त हो जायेगा। इन तीन परमेष्ठियों ने अपनी तरफ से न कुछ उकेरा है, न लिखा है और न उपदेश दिया है किंतु परंपरा से जैसा उपदेश प्राप्त हुआ है वैसा ही उकेरा है, लिखा है और उपदेश दिया है अतः ये भी निर्दोष होने से सर्वकाल पूज्य हैं।

नोटः- यहाँ 314 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 9वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब आगे 10वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

श्रावकधर्म और मुनिधर्म का वर्णन

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइ धम्मे तं विणा तहा सो वि।।10।।

दानं पूजा मुख्यः श्रावकधर्मे न श्रावकाः तेन विना।
ध्यानाध्ययनं मुख्यो यतिधर्मे तं विना तथा सोऽपि।।

सावयधम्मे श्रावकधर्म में **दाणं** दान **पूया** पूजा मुख्य है **तेण** उसके **विणा** बिना **सावया** श्रावक **ण** नहीं है **तहा** और **जइधम्मे** मुनिधर्म में **झाणाज्झयणं** ध्यान अध्ययन **मुक्खं** मुख्य है **तं** उसके बिना **सो** मुनिपना नहीं है।

प्र.-315 आ. श्री ने दान पूजा ये 2 कर्तव्य और अनेक आचार्यों ने 6 कर्तव्य बताये हैं सो यह अंतर क्यों तथा आ. श्री ने सर्व प्रथम दान करने को क्यों कहा है?

उत्तर- आ. श्री कुंदकुंदजी ने अंत आदि के दो नाम तथा शेष आ. ने मध्य के 4 नामों के साथ 6 नाम गिनाये हैं अतः दोनों निर्दोष हैं। कोई ऐसा मत समझना की आ. श्री के अनुसार दो को ही पालना मध्य के 4 नहीं, ऐसा समझना मिथ्या है, गलत है क्योंकि मोक्षमार्गियों के लिए आ. श्री कुंदकुंद और समस्त यथाजात दिगंबर जैनमुनि समान मात्रा में प्रमाण हैं। आ. श्री ने संक्षेप से दो नाम तो शेष आ. ने विस्तार से 6 गिनाये हैं। आ. श्री ने सर्वप्रथम दान को इसलिए कहा है कि कोई बालमुनि हैं, कोई नवदीक्षित हैं, कोई बीमार हैं, कोई समाधि सन्मुख हैं, विहारादि की थकावट से घबराये हुए हैं, कमजोर हैं तब उनको आहार औषधि की आकुलता हो रही है तो ऐसे प्रसंग पर निराकुलता प्राप्त कराने के लिए शीघ्र ही सूर्योदय के सवा घंटे बाद आहार देने के लिए सूर्योदय होते ही तैयारी करेगा तभी तो समय पर आहारादि दे पायेगा। यदि सवाघंटे बाद तैयारी करेगा तो आहार औषधि कब देगा? आकुलता बढ़ेगी तो दान का क्या महत्त्व? मौसम के कारण घबराहट होने से ध्यानाध्ययन और परिणाम बिगड़ेंगे तथा समय पर आहार न होने से भूंख प्यास भी मर जायेगी इसलिए आ. श्री ने सर्व प्रथम दान को ग्रहण किया है। सभी कालों और सभी प्रसंगों में दान पहले देना पूजा बाद में ऐसा मत समझना विशेष प्रसंग न हो तो जिनबिंब का अभिषेक करना, पूजा करना और उदराग्नि की वृद्धि के पहले एवं मध्य की सामायिक के पहले दान देना योग्य है।

प्र.-316 यहाँ दानपूजा को मुख्यधर्म और अन्यत्र इनको आवश्यक कर्तव्य क्यों कहा?

उत्तर- मुख्यधर्म या आवश्यक कर्तव्य एक ही बात है केवल शब्द में अंतर है भाव में कोई अंतर नहीं है। गृहस्थगण आजीविका के लिए असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन 6 कर्तव्यों को पालते हैं इनके बिना गृहस्थगण अपनी आजीविका और लोकव्यवहार संपन्न नहीं कर सकते हैं क्योंकि इन खरकर्मों को करने से एकमात्र पापकर्मों का ही आश्रव होता है। इन कर्मों के द्वारा उपार्जित पापकर्मों को कमजोर कर नष्ट करने के लिए तीर्थंकरों ने, गणधरों ने आरातीय आचार्यों ने उपासकाध्ययनांग तथा क्रियाविशालपूर्व में देवपूजा, गुरुपूजा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान का वर्णन किया है। इनके बिना गृहस्थों का ऊर्ध्वगमन के लिए सातिशय पुण्यार्जन होना अशक्य है। अन्यमतियों के माध्यम से कुछ निरतिशय पुण्योपार्जन होता है क्योंकि अजैनों में जो कुछ इंद्रियसुख सामग्री दिखाई दे रही है वह सब अपात्र कुपात्र दान का फल है तभी तो उनके वस्तु तत्त्व के, पुण्य पाप के, इहलोक परलोक के संबंध में अनेक भ्रांतियां हैं जो निष्पक्ष विचार करने पर या तत्त्व समीक्षा करने पर उन्हीं से ही गलत सिद्ध हो जातीं हैं आदि हेतुओं से भी आचार्यों ने उन दानपूजादि को मुख्यधर्म या आवश्यक कर्तव्य कहा है अतः यह व्यवहारधर्म

निश्चयधर्म का साधन है क्योंकि साधन के बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती है ऐसा सभी जैनाजैन न्यायाचार्यों ने स्वीकारा है।

प्र.-317 सम्यगाचार के बिना सातिशय पुण्यार्जन होना अशक्य है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सम्यगाचार के बिना गृहस्थों का उत्कृष्ट सातिशय पुण्योपार्जन न होने से ऊर्ध्वगति में उत्कृष्ट इंद्र अहमिंद्र पद की प्राप्ति होना अशक्य है ऐसा कहा है किंतु निरतिशय पुण्य से बारहवें स्वर्ग तक चला जाता है जो शक्य है, अशक्य नहीं अतः सातिशय पुण्योपार्जन के लिए उत्कृष्ट पुरुषार्थ करना चाहिये।

प्र.-318 कोई कोरा अध्यात्मवादी कहता है कि जैनधर्म अध्यात्मप्रधान है कुछ आचार्यों ने अन्यमतियों से क्रियाकांड लेकर जिनवाणी के नाम से कहा है सो यह क्रियाकांड तो आश्रवबंध है, जैनधर्म नहीं है उसका ऐसा तर्क ठीक है क्या?

उत्तर- यदि इस कोरे अध्यात्मवादी का कहना सत्य है तो तीर्थंकरों ने उपासकाध्ययनांग में 12 व्रतों का, 11 प्रतिमाओं का, मूलोत्तर गुणों का, अभक्ष्य तथा अनेक व्यसनों के त्यागादि का, क्रियाविशाल पूर्व में गर्भाधानादि 108 क्रियाओं का, धारण, पालनपोषण, जन्म के संस्कारों आदि का मोक्षप्राप्ति पर्यंत क्रियाओं का वर्णन क्यों किया या अनाज्ञाकारी साधकों ने तीर्थंकरों के नाम से कथन कर दिया है यदि उनका यह आक्षेप सही है तो द्वादशांगवाणी में क्या और किसका वर्णन है यह अध्यात्मवादी को बताना चाहिये।

प्र.-319 जैनधर्म निवृत्तिप्रधान है अतः प्रवृत्ति को जैनधर्म का अंग कैसे कहा जाय?

उत्तर- इन षडावश्यक रूप प्रवृत्तिधर्म में भी निवृत्ति प्रधान है जैसे पूजा कर्तव्य रूप एक प्रवृत्ति में लगने से उतने समय तक पाप का, घर परिवार का, आरंभ परिग्रह का, विषयभोगों का, श्रृंगारालंकार का, भोजनपान, व्यापार आदि अनेक प्रवृत्तियों का त्याग होने से ये जैनधर्म के षडावश्यक कर्तव्य स्वयं निवृत्ति प्रधान हो जाते हैं अतः जैनधर्म पापक्रियाओं के त्याग की अपेक्षा निवृत्तिप्रधान है तथा मोक्षमार्ग संबंधी षडावश्यक, मूलगुणादि क्रियाओं के पालन की अपेक्षा प्रवृत्तिप्रधान है इस कारण जैनधर्म न सर्वथा प्रवृत्ति प्रधान है और न सर्वथा निवृत्तिप्रधान है केवल चिंतन मनन और दृष्टि परिवर्तन की आवश्यकता है।

प्र.-320 जैनधर्म को सर्वथा प्रवृत्ति या निवृत्तिप्रधान मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- जैनधर्म को सर्वथा प्रवृत्ति या निवृत्तिमार्गी मानने पर क्रमशः क्रियावादी, अक्रियावादीपने का प्रसंग आना ही आपत्ति है क्योंकि सर्वथा क्रिया और अक्रियावादी मोक्षमार्गी न होकर संसारमार्गी हैं।

प्र.-321 जो गृहस्थ दानपूजा आदि नहीं करता है उसे क्या कहा जाय?

उत्तर- जो गृहस्थावस्था में संज्ञाओं से, आरंभ परिग्रह से, नाना पापवर्धक कार्यकलापों से युक्त होते हुए भी दानपूजा नहीं करता है तो वह सच्चा श्रावक नहीं है उसे नाममात्र का या बनावटी जैन कहना चाहिये।

प्र.-322 इस ग्रंथ में दानपूजा न करने वाले को सम्यग्दृष्टि श्रावक क्यों नहीं कहा?

उत्तर- यद्यपि संतान को 9 महिने तक गर्भ में रखकर जन्म दिया है, बड़े कष्ट से पालनपोषण किया, पढ़ायालिखाया पर दुर्भाग्य वशात् कुसंगति से दूषित आचरणवाले को पुत्र न कहकर कुपुत्र कहते हैं ऐसे ही भक्त होकर के भी अनाज्ञाकारी, कर्तव्य विहीन को सम्यग्दृष्टि श्रावक न कहकर मिथ्यादृष्टि दूषित परिणामवाला, जिनधर्म कलंकी, अप्रभावक, निंदक, पतित, कृतघ्नी कहा है।

प्र.-323 आजकल जैनों में चारित्र की हीनता क्यों हो रही है, इसका अपराधी कौन?

उत्तर- उपादान उपादेय की अपेक्षा समाज में, कर्ताधर्ता नेतागणों में मोक्षमार्ग का अभाव होने से

मिथ्यादृष्टि स्वयं अपराधी है और निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा ये सभी गुरुजन अपराधी हैं।

प्र.-324 यहाँ गुरुजन से क्या मतलब है?

उत्तर- यहाँ गुरुजन से मातापिता, मार्गदर्शक, शिक्षादीक्षा दाता, समाज के मुखियाओं से मतलब है।

प्र.-325 इस संबंध में गुरुजन अपराधी क्यों हैं?

उत्तर- बिना मूलगुणधारी, रात्रिभोजन का, कंदमूलों, अनछने पानी का, अनछने पानी से बने भोजन का, जीवदया नहीं करने वाले, गर्भपात कराने वाले, सप्तव्यसनी और अत्याचारी अनाचारी गृहस्थों के हाथ से आहार ले रहे हैं सो ये गुरुजन अपराधी हैं। यदि दातागणों से इन महापापों का त्याग कराकर आहार लेते तो समाज में इतना अत्याचार अनाचार नहीं फैलता। आहार देने के लिए कोई धर्मबुद्धि से, कोई भय से, लज्जा से, प्रेम से या अन्य कारणों से नियम लेते पर लेते तो अवश्य ही। जैसे कोई सगेसंबंधी अपने घर आकर बिना भोजन किये चले जायें तो मन कितना दुःखी होता है ऐसे ही जब अपने घर से जगत पूज्य धर्मगुरु बिना आहार के भूंखे चले जायेंगे तब कैसा लगेगा? अतः इस कष्ट के, बदनामी के भय से नियम लेकर आहार देने से व्यवहार में भी आदरसम्मान प्राप्त होता है। तन मन धन और धर्म की रक्षा होती है, वर्तमान में बिना नियम के आहार देने वाले दातागण अहंकारी हो गये और ऐसा बोलने लगे हैं कि अनेक साधु तो लेते हैं ये नहीं लेते हैं तो मत लेने दो, जाने दो इसी कषाय का फल है कि पूर्वबद्ध पुण्य भी शीघ्र क्षीण हो गया सो ऐसे दाताओं के स्वास्थ्य की, धर्म की हानि हो रही है, कुमरण हो रहा है अतः दान दाताओं को कम से कम 8 मूलगुणों का नियम देकर ही धर्मगुरुओं को आहार लेना चाहिये जिससे समाज की स्थिति बनी रहे क्योंकि धर्म अपने आप अपनी स्थिति नहीं बना सकता, धर्मात्मा ही धर्म को चलाता है अन्यथा भ. पुष्पदंत से भ. शांतिनाथ तक के बीच में धर्म का विच्छेद क्यों हुआ? अतः धर्मगुरुओं को चाहिये कि वे गृहस्थों को अपना निजी भक्त न बनाकर मोक्षमार्गी बनावें।

प्र.-326 गुरुजन अपराधी हैं इसे और भी स्पष्ट कीजिये?

उत्तर- एक छोटा सा बालक छोटी पेंसिल चुराकर लाया और माँ ने चुपचाप रख ली, बालक को कुछ भी नहीं कहा तो धीरे[2] वह बालक बड़ा चोर बन गया, चोरी करते पकड़ा गया और कोतवाल पकड़कर राजा के सामने ले आये, राजा ने चोर को फांसी की सजा सुनाई तब चांडाल चोर को फांसी पर लटकाने के लिए ले जाते हैं, फांसी पर चढ़ाने के पहले पूंछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तब चोर ने कहा माँ से मिलना है। ठीक है, वे राजकर्मचारी चोर को माँ के पास ले गये, पास में आते ही चोर ने माँ के कान काट लिए, उन कर्मचारियों ने चोर से कहा अरे तूने यह क्या किया? चोर ने कहा यदि मेरी माँ मुझे प्रारंभ में ही चोरी करने से रोक देती तो ये दिन नहीं आते, न मौत की सजा मिलती ऐसे ही प्रारंभ में गुरुजन या गृहस्थाचार्य बालक बालिकाओं को इन महापापों का त्याग कराकर आहार लेते तो इतना अत्याचार कोढ़ की तरह न बढ़ पाता। गुरुजन नयी पीढ़ी और बुजुर्गों में चारित्र की हीनता को जानते, देखते, सुनते हुए भी अनदेखी कर देते हैं सो इसीका फल है कि समाज में समाज की इज्जत बिगड़ रही है, बदनामी हो रही है और सरकार के द्वारा पर्याप्त मात्रा में सम्मान प्राप्त नहीं हो रहा है अतः जिस प्रकार संतान को बिगाड़ने में माँबाप का हाथ होता है उसी प्रकार शिष्य शिष्याओं को, समाज को बिगाड़ने में गुरुओं का हाथ होता है।

प्र.-327 अनाज्ञाकारी होने से वह जैन क्या फल पाता है?

उत्तर- जैसे लोक में राजद्रोही अनेक संकटों को प्राप्त होता है वैसे ही अनाज्ञाकारी धर्मद्रोही मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय वाला तथा इनका बंधक उभयलोक में दुर्दशा को प्राप्त होता है।

प्र.-328 केवल अनाज्ञाकारी होने से क्या उभयलोक में दुर्दशा का पात्र बनता है?

उत्तर- नहीं, केवल अनाज्ञाकारी होने से दुर्दशा का पात्र नहीं बनता हैं किंतु अनाज्ञाकारी होने

के साथ साथ यथार्थ मार्ग और मार्ग साधनों में दोषारोपण करने से, समाज और धर्म के विरुद्ध अत्याचार अनाचार करने से नरक निगोद का, दुर्दशा का पात्र बनता हुआ व्यक्ति उभयलोकों में कष्ट ही कष्ट प्राप्त करता है।

प्र.-329 मुनि क्या करते हैं?

उत्तर- सम्यक्रत्नत्रय सहित समस्त प्रकार से आरंभ परिग्रह के त्यागी, विषयकषायों के त्यागी, मौन पूर्वक, आत्मसाधक, ज्ञान ध्यान तप आराधक यथाजात रूपधारी दि. जैनमुनि मोक्षाराधना करते हैं।

प्र.-330 मुनियों का क्या धर्म है?

उत्तर- ध्यानाध्ययन, तपश्चरण, धर्म प्रभावना, आत्मसाधना करना, व्रत समितियों को पालना ही मुनिधर्म है।

प्र.-331 ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- अपने ज्ञानानुसार इष्टानिष्ट ज्ञेय पदार्थों में उपयोग स्थिर करने को ध्यान कहते हैं।

प्र.-332 ध्यान के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- ध्यान के सामान्य और विशेष ये दो भेद, 4 भेद, 16 भेद हैं अथवा अर्थपर्याय या परिणामों की अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं। **नामः-** 5 आर्तध्यान, 5 रौद्रध्यान, 5 धर्मध्यान और 5 शुक्लध्यान। इन ध्यानों के सामान्य से एक एक और विशेष से चार चार भेद हैं सो दोनों मिलकर 5-5 भेद हो जाते हैं।

प्र.-333 आर्तरौद्रध्यान करना भी मुनियों का धर्म है क्या?

उत्तर- आर्तरौद्रध्यान मुनिधर्म नहीं है क्योंकि ये दोनों ध्यान अशुभ होने से एकमात्र संसार के कारण, कलंक रूप हैं। इनका ध्याता मुनि अधोमार्गी है किंतु उभय साधकों के विकार हैं, पाप रूप हैं।

प्र.-334 तो फिर कौन सा ध्यान करना मुनियों का धर्म है?

उत्तर- धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये दोनों संवर और निर्जरा स्वरूप हैं, शुभ और शुद्ध हैं, कर्मकलंक को धोनेवाले हैं, प्रशंसा और कीर्तिकारक हैं, मोक्ष के हेतु हैं। अतः ये ध्यान मुनियों को इष्ट फल देने वाले होने से मुनिधर्म स्वरूप हैं।

प्र.-335 इस काल में उत्कृष्ट ध्यान न होने से मुनि धर्मात्मा कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- यह प्रश्न ही प्रश्नकर्ता को दूषित कर रहा है क्योंकि शंकाकार ने ही कहा है कि उत्कृष्ट ध्यान नहीं है तो आपके कथनानुसार ही उत्कृष्ट मुनि नहीं है सो ठीक ही है अतः इस काल में जैसा द्रव्य और भाव संहनन है वैसा ही धर्मध्यान और धर्मध्यानी मुनि होंगे सो अभी भी यथार्थ धर्मात्मा मुनि मौजूद हैं।

प्र.-336 यह धर्मध्यान किन जीवों के होता है और किन जीवों के नहीं होता?

उत्तर- यह धर्मध्यान जिनके सर्वघाती दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम हुआ है उन रत्नत्रय धारियों के होता है एवं आदि के तीन गुणस्थान वाले जीवों के यह धर्मध्यान नहीं होता है।

प्र.-337 यह धर्मध्यान है ऐसा किस ज्ञान का विषय है?

उत्तर- यह धर्मध्यान एकदेशप्रत्यक्ष परमावधि सर्वावधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तथा सकलप्रत्यक्ष केवलज्ञान का विषय है। ये देशप्रत्यक्षज्ञानी दूसरे जीवों में साक्षात् धर्मध्यान को नहीं जानते किंतु धर्मध्यान घातक कर्मोदय है तो धर्मध्यान नहीं है और धर्मध्यान घातक कर्मोदय नहीं है तो धर्मध्यान है ऐसा जानते हैं क्योंकि ये ज्ञान रूपी पदार्थों को जानने के लिए प्रत्यक्ष हैं और अरूपी पदार्थों के लिए परोक्ष हैं।

प्र.-338 ये अवधि और मनःपर्ययज्ञान अपने विषय को जानने में प्रत्यक्ष है या परोक्ष?

उत्तर- त.सू. प्र.अ. में **''रूपिष्ववधेः और तदनंतभागे मनःपर्ययस्य''** इन दोनों सूत्रों के द्वारा ये दोनों ज्ञान रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं। यदि अरूपी पदार्थों को ये प्रत्यक्ष जानते तो सूत्रकार को इन दो सूत्रों को बनाने की आवश्यकता ही नहीं होती अतः अरूपी पदार्थों को परोक्ष जानते हैं।

प्र.-339 अरूपी पदार्थ कौन कौन हैं?

उत्तर- कर्मनिर्मुक्त शुद्धात्मद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य अरूपी हैं।

प्र.-340 यह धर्मध्यान किस ज्ञान का विषय नहीं है?

उत्तर- यह धर्मध्यान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तथा देशावधिज्ञान का साक्षात् विषय नहीं है।

प्र.-341 इस धर्मध्यान का काल कितना है?

उत्तर- इस उत्कृष्टधर्मध्यान का उत्कृष्टकाल उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है और जघन्य ध्यान का जघन्य काल जघन्य अंतर्मुहूर्त है तथा जिस जीव का जैसा संहनन है वैसा ही धर्मध्यान का काल समझना चाहिये।

प्र.-342 इस पंचमकाल में कौन कौन से ध्यान हो सकते हैं?

उत्तर- इस पंचमकाल में चार आर्तध्यान, चार रौद्रध्यान और चार धर्मध्यान हो सकते हैं।

प्र.-343 इन ध्यानों का क्या फल है?

उत्तर- तीव्र मिथ्यात्व और तीव्र अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ रौद्रध्यान का फल नरकगति है। आर्तध्यान का फल तिर्यंचगति है। उत्कृष्ट धर्मध्यान चरम शरीरी को मोहकर्म का क्षय कराकर मोक्ष को प्राप्त कराता है तो अचरम शरीरी को उत्कृष्ट देवगति तथा बद्धायुष्क जीवों को जघन्य धर्मध्यान भोगभूमि प्राप्त कराता है। उत्कृष्ट शुक्लध्यान से मोक्ष की प्राप्ति तो शेष से देवगति की प्राप्ति होती है और जघन्य तथा मध्यम अवस्था वाले आदि के दोनों ध्यानों से चारों गतियों की प्राप्ति होती है। धर्मध्यान से नरकगति के बिना शेष तीनों गतियों की और शुक्लध्यान से मोक्ष तथा देवगति की प्राप्ति होती है।

प्र.-344 इन ध्यानों के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर- आदि के 3 ध्यानों के स्वामी चारोंगतियों के जीव हैं और शुक्लध्यान के एकमात्र आर्यखंडोत्पन्न, आर्य, उच्चगोत्री, त्रिवर्ण वाले मनुष्य, भावों से तीनों वेदी तथा द्रव्य से पुरुषवेदी मुनि ही स्वामी हैं।

प्र.-345 अध्ययन किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनेंद्रोक्त, परंपरागत आर्ष प्रणीत, प्रमाण नय निक्षेप से निर्दोष शास्त्र पठन को अध्ययन कहते हैं।

प्र.-346 शास्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर- **आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्य मदृष्टेष्ट विरोधकं।**
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्।।9।। र.श्रा. आ.समंतभद्र

अर्थः- आप्त के द्वारा कहा हुआ हो, जिसको वादी प्रतिवादी खंडन न कर सकें, प्रत्यक्ष और अनुमान आदि से जिसमें विरोध नहीं आवे, जिसमें 27 तत्त्वों का उपदेश हो, समस्त प्राणियों का हितकारक हो, मिथ्यामार्ग का, संसारमार्ग का, आश्रवबंध का खंडन करने वाला एवं निषेधक हो उसे समीचीन शास्त्र कहते हैं।

प्र.-347 आप्त किसे कहते हैं?

उत्तर- वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी इन तीन लक्षण वाले को आप्त कहते हैं।

प्र.-348 वादी और प्रतिवादी किसे कहते हैं?

उत्तर- शास्त्रार्थ में या सामान्य तत्त्वचर्चा में सर्व प्रथम शंकाकार या प्रश्नकर्ता को वादी कहते हैं तथा इसके समाधान कर्ता को या उत्तर देने वाले को प्रतिवादी कहते हैं।

प्र.-349 अनुल्लंघ्य किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस नीतिनियम को या प्रतिज्ञा वाक्य को वादीप्रतिवादी खंडन न कर सकें उसे अनुल्लंघ्य कहते हैं।

प्र.-350 अदृष्टेष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर- दृष्ट- प्रत्यक्ष और इष्ट- अनुमान। प्रत्यक्ष और अनुमान आदि से किसी भी प्रकार का विरोध नहीं आये उसे अदृष्टेष्ट कहते हैं, इसे ही निर्दोष कहते हैं। यहाँ प्रत्यक्ष का अर्थ इंद्रिय प्रत्यक्ष से है।

प्र.-351 तत्त्वोपदेश किसे कहते हैं?

उत्तर- अनेकांतात्मक स्याद्वाद नयों से निर्दोष जीवादि द्रव्य गुण पर्यायों के कथन को तत्त्वोपदेश कहते हैं।

प्र.-352 कृत्सार्व किसे कहते हैं?

उत्तर- समस्त चराचर प्राणियों के हित करने वाले को कृत्सार्वं कहते हैं।

प्र.-353 अभव्य और दूरानुदूर भव्यों का हित न होने से कृत्सार्वं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जिस प्रकार सूर्य का उदय समस्त जीवों के हित के लिए होता है पर उल्लू, जन्मांध प्राणी सूर्य के प्रकाश को नहीं देख पाते तो इसमें सूर्य का क्या दोष है? किंतु इन प्राणिओं का ही दोष है उसी प्रकार अभव्य और दूरानुदूर भव्य जीवों का हित नहीं होता है यह बात अवश्य है क्योंकि उनका ऐसा स्वभाव ही है इसमें जिनेंद्र का, शास्त्र का दोष नहीं है इसीलिए शास्त्र का एक विशेषण कृत्सार्वं दिया है अथवा एकदेश में भी सर्वपद का प्रयोग किया जाता है जैसे पैर में दर्द होने पर सर्वांग में दर्द हो रहा है।

प्र.-354 कापथघट्टनम् ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यामार्ग का, विषयभोगों का, आश्रव बंध का निषेधक होने से **कापथघट्टनम्** कहा है।

प्र.-355 किसीका खंडन करने वाले शास्त्र को समीचीन शास्त्र क्यों कहा?

उत्तर- किसी मरीज का स्वास्थ्य अच्छा करना है तो उसे अपथ्य के दोषों का, त्याग का तथा पथ्य के गुणों का और ग्रहण का कथन करना ही पड़ेगा तभी इसके प्रयोग से मरीज को स्वास्थ्य लाभ होता है अन्यथा बीमारी बनी ही रहती है। इसी प्रकार मिथ्यामार्ग का त्याग और सम्यक्मार्ग को ग्रहण नहीं कराया तो कल्याण का मार्ग प्राप्त नहीं होता है, न कल्याण होता है सो दोषों का खंडन करना दोष का स्थान नहीं है इसलिए विक्षेपणी कथा करने वाले शास्त्र को समीचीन शास्त्र कहा है और यह कषाय भी नहीं है।

प्र.-356 शास्त्र के लिए केवल आप्तोपज्ञ कहना पर्याप्त है फिर शेष विशेषणों से क्या मतलब?

उत्तर- आप्त के मौजूद रहने पर शेष विशेषणों की जरूरत नहीं है क्योंकि वक्ता प्रत्यक्ष है श्रोताओं को शंका हुई कि जाकर शीघ्र ही आप्त से बिना तर्कवितर्क के समाधान कर लिया किंतु वर्तमान में आप्त, श्रुतकेवली, सूत्रधर नहीं है और अनाड़ियों ने अरिहंतों, आचार्यों के नाम पर लिखा तो इनकी निर्दोषता की पहचान के लिए शेष विशेषणों को देने की आवश्यकता हुई है। कहा भी है:-

वक्तर्यनाप्ते यद्धेतोः साध्यं तद्धेतु साधितम्।
आप्ते वक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागम साधितम्।।78।। देवागम. आ.समंतभद्र

अर्थः- वक्ता आप्त न होने पर जो हेतु से साध्य होता है वह हेतु साधित कहा जाता है और वक्ता आप्त होने पर जो आप्त के वचन से साधित होता है उसे आगम साधित समझना चाहिये।

प्र.-357 आगम और आगमाभास किसे कहते हैं, इनके वक्ता किस गति के होते हैं?

उत्तर- **आप्त वचनादि निबंधनमर्थज्ञानमागमः।** प.मु. 95 परि.3-: आप्त वचनों के माध्यम से उत्पन्न अर्थज्ञान को आगम कहते हैं। **रागद्वेष मोहाक्रांत पुरुष वचनाज्जातमागमाभासम्।** प. मु. 5 परि. -6 -: रागीद्वेषी मोही पुरुष के वचनों से उत्पन्न हुए आगम को आगमाभास कहते हैं। ये दोनों वक्ता मनुष्यों में ही होते हैं।

प्र.-358 स्वाध्याय के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- स्वाध्याय के 5 भेद हैं। **नाम-:** वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश।

प्र.-359 वाचना स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- आर्ष प्रणीत ग्रंथों का मोक्ष और तत्त्वनिर्णय के निमित्त पठन करने को वाचना स्वाध्याय कहते हैं।

प्र.-360 पृच्छना स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- अध्ययन करते समय उत्पन्न हुई शंकाओं के समाधानार्थ या धारणाज्ञान को बढ़ाने के लिए गुरुजनों से पूंछने को, प्रश्न करने को, जिज्ञासा व्यक्त करने को पृच्छना स्वाध्याय कहते हैं।

प्र.-361 अनुप्रेक्षा स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- निर्णय किये हुए तत्त्वों का पुनः पुनः चिंतन करने को अनुप्रेक्षा स्वाध्याय कहते हैं।

प्र.-362 आम्नाय स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- गुरु प्रदत्त पाठ के निर्दोष उच्चारण करने को आम्नाय स्वाध्याय कहते हैं।

प्र.-363 तेरापंथादि आम्नायों के पाठोच्चारण को आम्नाय स्वाध्याय कहते हैं क्या?

उत्तर- तेरापंथ, बीसपंथ, कानजीपंथ इन तीनों आम्नायों का उपदेश जिनेंद्र प्रणीत और परंपरानुसार आचार्यों ने न किया है, न दिया है, न लिखा है अतः इनका चिंतन करना आम्नाय स्वाध्याय नहीं है किंतु इनका कषाय पूर्वक चिंतन करने से आर्त रौद्रध्यान होता है, जो वर्तमान में सर्वत्र दिखाई दे रहा है।

प्र.-364 धर्मोपदेश स्वाध्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञानपिपासुओं के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर सन्मार्ग बतलाने को, मार्गदर्शन देने को, संबोधन करने को धर्मोपदेश कहते हैं।

प्र.-365 इन स्वाध्यायों का क्या प्रयोजन है?

उत्तर- आदि के 4 स्वाध्यायों का स्वार्थ और धर्मोपदेश का स्व, पर तथा उभयार्थ प्रयोजन है।

प्र.-366 आ. श्री कुंदकुंद ने मुनियों के लिए ध्यानाध्ययन कहा है और आ. श्री समंतभद्रजी ने इनके अलावा तप को भी गिनाया है सो यह अंतर क्यों?

उत्तर- इन युगल आचार्यों के कथनों में कोई अंतर नहीं है क्योंकि अंतरंग तपों के 6 भेदों में से अंतिम अंतरंग तप का भेद ध्यान है अतः आ. श्री कुंदकुंदजी ने अंतरंग तपों के चौथे और अंतिम भेद ध्यान को ग्रहण कर शेष 10 भेदों को ग्रहण कर लिया है क्योंकि जिसने छत को

प्राप्त कर लिया है उसने समस्त सिद्धियों को स्पर्श कर लिया है। इसी प्रकार आ. श्री समंतभद्रजी ने ज्ञान ध्यान और तप को ग्रहण कर समस्त अंतरंग बहिरंग तपों को ग्रहण कर लिया है। ज्ञान से स्वाध्याय अध्ययन। ध्यान से अंतरंग 6 तप। तप से बहिरंग 6 तप। इस प्रकार दोनों आचार्यों ने मुनियों के लिए उभय तपों को कर्तव्य रूप में कहा है।

प्र.-367 आजकल मुनिजन प्रतिष्ठायें कराना, विहार करना, वचनात्मक प्रतिक्रमणादि करना, परसमय वालों के साथ वार्ता करते देखे जाते हैं तो क्या यह सब मुनिधर्म है?

उत्तर- जिनमुद्राधारी महाव्रती स्वपर हित का हेतु बनाकर यदि ये कार्य करते हैं तो ध्यानाध्ययन और प्रभावना में अंतर्भाव होते हैं तथा कषायाधीन होकर यदि ये कार्य किये तो दुर्ध्यानों और मिथ्याज्ञानों में अंतर्भाव हो जाते हैं। जैसे ऑपरेशन संबंधित सभी कार्य ऑपरेशन में गिने जाते हैं वैसे ही यथार्थ वैरागी मुनियों के सभी कार्य हेतु सही होने से ध्यानाध्ययन में ही गिने जाते हैं।

प्र.-368 अन्यमतियों के शास्त्रों का अध्ययन करना क्या सत्स्वाध्याय है?

उत्तर- मिथ्याशास्त्रों को पढ़ना सत्स्वाध्याय नहीं है किंतु स्वसमय और परसमय के प्रमाण, नय, निक्षेपानुसार निर्दोष निर्णय करने कराने के लिए पढ़ना अपायविचय धर्मध्यान और समीचीन स्वाध्याय भी बन जाता है क्योंकि स्वाध्याय और ध्यान ये दोनों ही अंतरंग तप हैं।

प्र.-369 न्याय, व्याकरण, भौतिकशिक्षा, आयुर्वेद, यंत्र मंत्र तंत्र शास्त्रों का, व्यापार, विज्ञान आदि शास्त्रों का पठन पाठन करना समीचीन स्वाध्याय है क्या?

उत्तर- यदि हेतु और विवेक सही है तो सभी मतमतांतरों का, भौतिक शिक्षाओं का अध्ययन हंस दृष्टिवत् समीचीन होता है, अन्यथा मिथ्या होता है। यदि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की सम्यक् जानकारी नहीं है तो दूसरों के द्वारा शंका किये जाने पर समाधान कैसे करोगे? इस कारण आचार्य उपाध्याय साधुओं को द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव को जानकर अपने व्रतों का पालन तथा धर्म की प्रभावना करना चाहिये अन्यथा अजानकार होने से आत्माराधना, व्रतों का पालन तथा धर्म की प्रभावना नहीं कर सकते हैं।

प्र.-370 यदि मुनिजन मनोरंजनार्थ उक्त शास्त्रों का अध्ययन करें तो क्या दोष है?

उत्तर- समीचीन मोक्षमार्गी मुनिजन केवल मनोरंजनार्थ कार्य न करते हुए व्रतसमिति गुप्तियों को पालते हैं, विषयकषायों के, प्रमाद के विजेता होते हैं सो धर्म और अपने जीवन को कलंकित करने वाले कार्य नहीं करते हैं। यदि करने लगें तो मुनियों और गृहस्थों में या लौकिक प्राणियों में कोई अंतर नहीं रहा।

प्र.-371 लौकिक दैनिक पत्रपत्रिकायें महाव्रती दिगंबर मुनिजन पढ़ सकते हैं क्या?

उत्तर- जिनधर्म की, निर्विघ्न आत्मसाधना और आत्मप्रभावना करते हुए, लोकव्यवहार तथा क्षेत्र कालादि की जानकारी के लिए अपने ध्यानाध्ययन से बचे अतिरिक्त समय में पढ़ना हानिकारक नहीं हैं और अपने सत्समय का उल्लंघन कर पढ़ना हानिकारक ही है।

नोटः- यहाँ तक 371 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 10वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 11वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बहिरात्मा की दिनचर्या

दाणु ण धम्मु ण चागु ण भोगु ण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोह कसायग्गि मुहे पडियो मरियो ण संदेहो।।11।।

दानं न धर्मः न त्यागो न भोगो न बहिरात्मज्ञो यः पतंगः सः।
लोभकषायाग्निमुखे पतितः मृतो न संदेहः।।

जो दाणु ण जो दान नहीं करता **धम्मु ण** धर्म नहीं करता **चागु ण** त्याग नहीं करता है **भोगु ण** न्यायपूर्वक भोग नहीं भोगता है **सो** वह **बहिरप्पजो** बहिरात्मा **पयंगो** पतंगा **लोहकसायग्गि मुहे** लोभ कषायाग्नि के मुख में **पडियो** पड़ कर **मरियो** मरता है इसमें कोई **संदेहो** संदेह **ण** नहीं है।

प्र.-372 दान नहीं देने वाले को बहिरात्मा पतंगा क्यों कहा?

उत्तर- संसार में समस्त प्राणीवर्ग दान तो देते हैं किंतु जिस दान से आत्म कल्याण होता है, होने वाला है ऐसा दान न देने वालों को बहिरात्मा पतंगा कहा है।

प्र.-373 किस प्रकार की वस्तु का और कितना दान देना चाहिये?

उत्तर- अपने को वर्तमान में पुण्योदय और पुरुषार्थ से जो चेतनाचेतन मिश्र सामग्री मिली है उसमें से उत्तम चौथा हिस्सा, मध्यम 6वाँ, जघन्य 10वाँ हिस्सा धर्म का होता है उसे दान में देना चाहिये।

प्र.-374 जो धर्म के, दान के योग्य सामग्री का दान नहीं देता है वह कैसा है?

उत्तर- धर्म की, दान की सामग्री पुत्रीवत् निर्माल्य कहलाती है, उस द्रव्य का भोक्ता दाता नहीं होता है। जैसे पाणिग्रहण संस्कारवाला व्यक्ति पुत्री का उपभोक्ता होता है, पिता नहीं अतः इस नियमानुसार देयद्रव्य, धर्म, देव और गुरुद्रव्य को भोगने वाला बहिरात्मापतंगा होता है ऐसा कहा है।

प्र.-375 पतंगा किसे कहते हैं?

उत्तर- चौइंद्रिय नामकर्म और पतंगात्रसनामकर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को पतंगा कहते हैं।

प्र.-376 यहाँ बहिरात्मा जीव को पतंगे की उपमा क्यों दी?

उत्तर- जैसे कीट पतंगा दीपक की लौ/ शिखा को देखकर उसमें गिरकर जलकर मर जाता है ऐसे ही बहिरात्मा लोभकषाय रूपी अग्नि में झुलसकर मर जाता है इसलिए बहिरात्मा जीव को पतंगा कहा है।

प्र.-377 निर्माल्य द्रव्य को पुत्री की उपमा क्यों दी?

उत्तर- जैसे पुत्री का पालन पोषण पर का धन समझ कर, धरोहर समझकर करते हैं स्वयं के भोगने योग्य है ऐसा समझकर नहीं करते ऐसे ही देव, धर्म, गुरु, शास्त्र द्रव्य दाता के स्वयं भोगने योग्य न होने से निर्माल्य द्रव्य को पुत्री की उपमा दी है, पुत्री पूज्य पवित्र होने से निर्माल्य द्रव्य भी पूज्य पवित्र है।

प्र.-378 लोक में दान के अनेक भेद हैं तो यहाँ कौन कैसा दान देना चाहिये?

उत्तर- जीवन में जैसी वस्तु अपने को चाहिये वैसी ही वस्तु दान में देना चाहिये जैसे किसान को जैसा फल चाहिये वैसा ही खेत में बीज बोता है ऐसा नहीं है कि चाहिये कुछ और बोये कुछ। यदि भोजनपान चाहिये तो भोजनपान का दान दो, स्वास्थ्य लाभ चाहिये तो औषधिदान दो, मकानदुकान चाहिये तो वसतिका दान दो, वस्त्र चाहिये तो वस्त्रों का दान दो, ज्ञान चाहिये तो ज्ञानदान दो, मोक्षमार्गोपयोगी उपकरण चाहिये तो उत्तम मध्यमपात्र को तत्संबंधी उपकरणों का दान दो और निर्भयता चाहिये तो अभयदान दो। यदि लोकोपयोगी तथा धनसंपत्ति चाहिये तो जघन्यपात्रों में और सप्तक्षेत्रों में जीवनोपयोगी तथा धनसंपत्ति दान में दो और मोक्ष चाहिये तो सब कुछ त्याग दो अर्थात् सभी का दान दो बिना बोये खेत से किसान को फल कैसे प्राप्त होगा तो ऐसे ही बिना दान दिये इष्ट वस्तु कैसे प्राप्त होगी?

प्र.-379 भोजनपान की सामग्री का दान क्यों देना चाहिये?

उत्तर- जिस गरीब अमीर, योगी भोगी आदि व्यक्ति ने भोजनपान की सामग्री का सुपात्रों को दान नहीं दिया है उसको भोजनपान की सामग्री का एक कण या बूंद भी प्राप्त नहीं होती। कदाचित्

बलात् या लोभ से किसी ने खिला पिला दी या स्वयं खा पी ली तो उल्टी हो जायेगी या अपच ही निकल जायेगी, पेट फूल जायेगा और पेट की, गले की मुँह आदि की अनेक बीमारियां हो जायेंगीं।

प्र.-380 क्या तुष्टि पुष्टिकारक आहार देना चाहिये या नीरस?

उत्तर- वह आहार चाहे रूखा हो, सूखा हो, तुष्टिकारक पुष्टिकारक हो किंतु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, परिश्रम, आयु, शरीर की प्रकृति को समझकर समाधि और धर्मसाधना के योग्य आहार देना चाहिये।

प्र.-381 रूखा सूखा आहारदान क्यों देना या लेना चाहिये?

उत्तर- सर्व प्रथम दाता और पात्र को विवेकवान तथा निर्लोभी होना चाहिये। यदि शरीर में धातु उपधातुयें अधिक मात्रा में बढ़ रही हैं, धर्मसाधना में बाधा आ रही है, शरीर संबंधी क्रियायें करने में परेशानी हो रही है तो शरीर को संतुलित करने के लिए नीरस आहार देना और लेना चाहिये अन्यथा बेलगाम घोड़े की तरह अत्यंत गरिष्ट आहार मोक्षमार्ग से गिराकर कुपथगामी बना देगा।

प्र.-382 बे-लगाम घोड़े की तरह आत्मा को कुपथगामी बना देगा ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे बे-लगाम का घोड़ा चंचल होने से सवारी को यहाँ वहाँ ले जाकर पटक देता है वैसे ही यह शरीर बिना संयम के समितियों में, ध्यानसाधना में सहायक न बनकर बाधक होकर नरकनिगोद में पटक देगा।

प्र.-383 तुष्टि पुष्टिकारक या महान गरिष्ट आहार क्यों देना या लेना चाहिये?

उत्तर- जब आ. समंतभद्रजी को भस्म व्याधि रोग हो गया था तब उनका सामान्य भोजन से रोग शमन नहीं हो रहा था तभी अपने गुरु के पास जाकर समाधिमरण की याचना की किंतु गुरु भविष्य द्दष्टा होने से समाधिमरण के लिए आज्ञा न देकर जिस किसी भी उपाय से इलाज करने को कहा तब आ. श्री ने अपने बुद्धिबल से इस मुनिपद में रहकर इलाज होना असंभव है ऐसा समझकर वस्त्र धारण कर अन्यत्र मंदिरों में जाकर राजाओं के द्वारा आराध्यदेव के लिए अर्पित अत्यंत गरिष्ट शुद्ध भोजन को ग्रहण कर रोग को शमन किया अथवा अभी जीवन अधिक है किसी कारणवश शरीर कमजोर हो चुका है, धर्मसाधना के लिए मन में उत्साह होने पर भी शरीर के माध्यम से धर्मसाधना में बाधा उत्पन्न हो रही है, गमनागमन में, आहार में, उठनेबैठने में शरीर बाधा उत्पन्न कर रहा है तो शारीरिक बल को बढ़ाने के लिए, धातुउपधातुओं की वृद्धि के लिए, समितियों के पालन के लिए तुष्टि पुष्टिकारक, बलवीर्य वर्धक आहार देना और लेना चाहिये अन्यथा असमय में मृत्यु होने से महान असंयम होगा।

प्र.-384 हरे फल सब्जी आदि का आहार क्यों देना और लेना चाहिये?

उत्तर- वात पित्त कफ को संतुलित करने के लिए, गर्मी को शांत करने के लिए, रक्त की शुद्धि के लिए, धातु उपधातुओं की वृद्धि के लिए, मन की स्फूर्ति के लिए, हरे फल सब्जिओं का दान देना चाहिये और पात्र को लेना चाहिये अन्यथा ताजे फलों को सब्जिओं को खाने पीने के लिए तरसते रहोगे, खाने पीने के लिए एक कण भी नहीं मिलेगा। कदाचित् घर में सब्जी फल मौजूद होने पर भी बीमारी होनेसे नहीं खा पाओगे और खा भी लिया तो पचा नहीं पाओगे, न गर्मी शांत होगी, न स्वाद पाओगे बल्की बीमार पड़ जाओगे अतः शक्ति के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानकर हरे सब्जी फलों का दान देना चाहिये।

प्र.-385 आहार किस क्रम से लेना या देना चाहिये?

उत्तर- यदि पथ्यापथ्य का ध्यान न रखते हुए आहार लिया या दिया तो वह आहार जहर का काम करेगा। कदाचित् मरण नहीं हुआ तो बीमार अवश्य हो जाओगे अतः हरी सब्जीफलों के साथ में दूधदही, पानी लेना, दूध के साथ आम्ल पदार्थादि लेना हानिकारक है। धान्य के ऊपर पानी लेना किसी भी मौसम में हानिकारक नहीं है फिर भी आयुर्वेद शास्त्रानुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को

जानकर आहार पानी लेना और देना चाहिये अतः धर्माचरण के लिए स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी होना परम आवश्यक है।

प्र.-386 आहारपानी कब और कितनी मात्रा में लेना चाहिये?

उत्तर- अपनी प्रकृति के अनुसार सोच समझकर आधा पेट गाढ़े पदार्थों से, एक हिस्सा पेय पदार्थों से और एक हिस्सा वायु संचार के लिए खाली रखना चाहिये। भरपूर भोजन के बाद में पेट फूलता है, श्वास लेने में परेशानी होती है, उठने बैठने में, गमनागमन में दिक्कतें होती हैं वे मात्रानुसार भोजन करने से नहीं होंगीं।

प्र.-387 कौन सा और किसके हाथ का भोजनपान नहीं करना चाहिये?

उत्तर- जिस भोजनपान से तन, मन, धन, धर्म नष्ट हो जाये ऐसा भोजनपान नहीं करना चाहिये। जैसे मद्य मांस मधु, कंदमूल, उदुंबर फल, सड़ागला अचारमुरब्बा, सड़ेगले दालचावल रोटी, होटल बाजारों का भोजनपान, अनजाने व्यक्ति के हाथ का भोजन, रोगी के हाथ का और उसके साथ में, उससे स्पर्शित भोजनपान, शराबिमांसाहारियों, असदाचारी असद्विचारी व्यक्तियों के साथ में तथा उनके हाथ का भोजनपान नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा भोजन अनाज्ञाकारी ही करते हैं।

प्र.-388 औषधि किसे कहते हैं और कितने प्रकार की होती है?

उत्तर- शरीर में वात पित्त और कफ के विकार से, मिश्रण से, मारकाटादि से उत्पन्न विकार के शमनार्थ साधनसामग्री को औषधि कहते हैं। वह औषधि शुद्धाशुद्ध के भेद से दो प्रकार की होती है।

प्र.-389 शुद्ध औषधि किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन औषधियों में मद्य मांस मधु, मलमूत्रादि का समावेश नहीं हो तथा जिनागमानुसार जड़ीबूटिओं को भलीप्रकार शोधकर, छानबीनकर, धोकर, सुखाकर, कूटपीस कर, उबालकर आदि तरीकों से मर्यादानुसार तैयार करने को शुद्ध औषधि कहते हैं। ये औषधियां पाँचों स्थावरों के शरीर रूप में होतीं हैं।

प्र.-390 अशुद्ध औषधि किसे कहते हैं?

उत्तर- होम्योपैथिक, ऐलोपैथिक तथा आयुर्वेदिक की जिन औषधियों में मद्य मांस मधु का, मलमूत्रादि का समावेश हुआ है, दो इंद्रियादि त्रसजीव उत्पन्न हो चुके हैं या उत्पन्न होने के लिए योनिस्थान बन चुके हैं तथा जो जिनेंद्र प्रणीत मर्यादा के बाहर की हैं उन औषधियों को अशुद्ध औषधि कहते हैं।

प्र.-391 औषधिदान क्यों देना चाहिये और नहीं देने का क्या फल है?

उत्तर- जिसने औषधिदान दिया है उसे विशल्या की तरह बीमारियां ही नहीं आती हैं फिर भी दुर्भाग्यवशात् कदाचित् बीमारी आ भी जाये तो किंचित् औषधि के प्रयोग से स्वयं में शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ, निरोगता प्राप्त हो जाती है इसलिए औषधिदान देना चाहिये। यदि औषधिदान नहीं दिया है तो बीमारी होने पर अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग करने पर भी, रुपया पैसा खर्च करते हुए भी स्वास्थ्य लाभ नहीं होता है किंतु बीमारी बढ़ती चली जाती है, स्वास्थ्य गिरता जाता है इसलिए निर्दोष औषधिदान देना चाहिये, अशुद्ध औषधि नहीं क्योंकि अशुद्ध औषधिदान से पुण्य के बदले पाप ही बढ़ता है।

प्र.-392 अशुद्ध औषधिदान क्यों नहीं करना चाहिये?

उत्तर- जो औषधियां मद्य मांस मधु के मिश्रण से, रक्त मलमूत्र, अनछने पानी, अमर्यादित दूध घी आदि के द्वारा तैयार की गईं हैं वे हिंसार्थक पापवर्धक होने से सुपात्रों को दान में नहीं देना चाहिये।

प्र.-393 ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- बाह्य विषयक आभास को अथवा जिसके द्वारा अहित का त्याग, हित के मार्ग में प्रवृत्ति, सन्मार्ग में, मोक्षमार्ग में प्रीति उत्पन्न हो, विषयकषायों से, राग आदि विकारों से निवृत्ति हो उसे ज्ञान कहते हैं।

प्र.-394 ज्ञानदान क्यों करना चाहिये और ज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर- बिना ज्ञान के मनुष्य का जीवन पशुओं के समान है क्योंकि बिना ज्ञान के परिवार का पालनपोषण, आजीविका, लोकव्यवहार, सगेसंबंधियों, मित्रों और साधर्मियों के साथ कैसा व्यवहार करना, कैसा नहीं करना, गमनागमन, लेनदेन आदि बन नहीं सकता। इस कारण अपने को ज्ञान प्राप्त करने के लिए दूसरों को ज्ञानदान देना चाहिये। लौकिक और लोकोत्तर ये ज्ञान के दो भेद हैं।

प्र.-395 कौन सा ज्ञानदान देना चाहिये?

उत्तर- जिस ज्ञान से मन विषयकषायों से, आरंभपरिग्रह, शृंगारालंकार, पक्षपात, पंथवाद से विरक्त होकर भेदविज्ञान, चारित्र पालन में स्थिरता हो वही ज्ञानदान करना चाहिये क्योंकि इसी समीचीन ज्ञान से आत्मशुद्धि और सिद्धि होती है। इस अध्यात्मज्ञान के सामने भौतिकज्ञान व्यर्थ है। लौकिकप्राणी लौकिक ज्ञानदान तथा लोकोत्तर प्राणी लोकोत्तर और लौकिक ज्ञानदान दोनों देते हैं।

प्र.-396 आजकल कॉलेज आदि में अध्यापन कराना क्या ज्ञानदान है?

उत्तर- फीस लेकर पढ़ाना पढ़वाना व्यापार है, आजीविका है। ज्ञानदान तो निष्पक्ष, निःस्वार्थ, निष्कपट भाव से सद्भावना पूर्वक दिया जाता है। आजकल धर्मशिक्षा का प्रबंध 5% और 95% लौकिक शिक्षाओं का प्रबंध बालशिक्षा से लेकर प्रौढ़ शिक्षा पर्यंत हो रहा है। इसीकारण डिग्रियां प्राप्त बुद्धिमान भी धर्मसंस्कारों से, सदाचार से विहीन देखे जा रहे हैं अतः कॉलेज आदि में पढ़ाना ज्ञानदान न होकर केवल आजीविका हैं।

प्र.-397 आजकल धर्मशिक्षा का अभाव क्यों हो रहा है?

उत्तर- आजकल केवल एकमात्र धन कमाने का, आजीविका चलाने का उद्देश्य होने से, आत्मकल्याण की भावना न होने से समीचीन ज्ञान का, न्याय का, व्याकरण का, भाषाज्ञान का अभाव हो रहा है ऐसे ज्ञानों के अभाव में जब जैनों का जगह जगह अपमान तिरस्कार होगा जैसा कि 19वीं 20वीं सदी में अजैनों ने किया तब ब्र. गणेशप्रसादवर्णीजी, पं. गोपालदास बरैया आदि विद्वानों ने धर्म का अपमान अनुभव किया तब सभी प्रकार के ज्ञानों का, परसमयों के शास्त्रों का तथा तत्काल संबंधी शास्त्रों का भरपूर अध्ययन किया कराया इसके बाद अन्यमतियों को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया या उनके द्वारा प्रेषित शास्त्रार्थ को स्वीकार कर शास्त्रार्थ में उनको मुँहतोड़ जवाब देकर हमेशा के लिए उनका मुँह बंद कर दिया ऐसे ही अब विधर्मीवर्ग ना मालुम कब आक्रमण कर बैठें अतः जैनों को जगह जगह धर्मशिक्षा का प्रबंध करना चाहिये और अपने को तथा बालक बालिकाओं को धर्मशिक्षा, न्याय व्याकरण और सिद्धांत शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन करना कराना चाहिये यह परमावश्यक है।

प्र.-398 धर्मशिक्षा किसे कहते हैं और इसका अभाव क्यों हो रहा है?

उत्तर- जिस शिक्षा से आत्मा पराधीनता से छूटकर स्वाधीन पूर्ण स्वतंत्र पद को प्राप्त कर ले उसे धर्मशिक्षा कहते हैं। **आतम हित हेतु विरागज्ञान ते लखे आपकूं कष्टदान** अतः ऐसी शिक्षा को आजकल कष्ट देनेवाली, निष्प्रयोजन तथा फल हीन समझ लिया है इस कारण आध्यात्मिक शिक्षा का अभाव हो रहा है।

प्र.-399 अभयदान किसे कहते हैं?

उत्तर- संसार में भयनोकषाय कर्म के उदय से मन में उत्पन्न हुई घबराहट को दूर कर सांत्वना देने को, सांत्वना में सहायक बनने को, रक्षा करने को, सप्त व्यसनों का, पापों का, मिथ्यात्व अन्याय और

अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का त्याग करने को, मूलगुणों का पालन करने को अभयदान कहते हैं।

प्र.-400 विधि और निषेध पूर्वक इन जीवों की रक्षा करने को अभयदान क्यों कहा?

उत्तर- उक्त कार्यों में संख्यात असंख्यात त्रस जीवों की उत्पत्ति होने से या उनमें समावेश होने से सेवन करने पर जीवों की विराधना होती है और त्याग करने से रक्षा होती है इसीलिए इसे अभयदान कहा है।

प्र.-401 अभयदान क्यों देना?

उत्तर- कमजोरी वश भयभीत व्यक्ति स्थिरता से कोई भी कार्य नहीं कर पाता है ऐसा व्यक्ति न व्यापार कर सकता है, न परिवार, समाज, देश आदि को चला सकता है, भयवान होने से छिपकर रहता है। भय के कारण कुछ का कुछ बोल देता है, कर बैठता है अतः ऐसे व्यक्ति को सांत्वना देकर कि हम तुम्हारे हैं, साथ में हैं, घबराओ मत आदि वचनों से उसका साहस बढ़ाना चाहिये क्योंकि अपने को निर्भयता, कठोरपना सामर्थ्यपना चाहिये इसलिए धर्मात्माओं को अभयदान देना चाहिये, पापिओं को नहीं।

प्र.-402 जिसने अभयदान नहीं दिया है उसे क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- धनधान्य, तन, परिवार आदि से संपन्न होने पर भी भयभीत व्यक्ति को कोई भी सहायक, सांत्वना और रक्षक नहीं मिलता है किंतु घबराकर भयभीत होकर यहाँ वहाँ छिपाछिपा फिरता है क्योंकि इसने किसीभी असमर्थ प्राणी को अभयदान नहीं दिया है इसलिए इसे निर्भयपना प्राप्त नहीं होना ही फल है।

प्र.-403 जिसने अभयदान दिया है उसे क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- सर्व प्रथम अभयदानी को ऐसे प्रसंग ही प्राप्त नहीं होते कदाचित् दुर्भाग्यवशात् प्रसंग आ भी जायें तो इसने जिन जिन प्राणियों को अभयदान दिया है वे तथा देवीदेवतागण, मनुष्य, पशुपक्षी आदि भी निर्भय बनाने में सहायक हो जाते हैं।

प्र.-404 उपकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- संसारमार्ग में या मोक्षमार्ग में चेतन, अचेतन और मिश्र सहायक सामग्री को उपकरण कहते हैं।

प्र.-405 चेतन, अचेतन और मिश्र सामग्री परिग्रह है फिर इसे उपकरण क्यों कहा?

उत्तर- अपनी दृष्टि के कारण ही यह चेतनाचेतन और मिश्र सामग्री परिग्रह और उपकरणपने को प्राप्त हो जाती है। दृष्टि लौकिक होने से ये सामग्रियां परिग्रह होकर पतन में सहायक बन जाती हैं तथा दृष्टि समीचीन होने से ये ही सामग्रियां उत्थान के मार्ग में सहायक होकर उपकरण बन जातीं हैं।

प्र.-406 उपकरणदान किसे कहते हैं?

उत्तर- उत्थान के मार्ग में, मोक्षमार्ग में सहायभूत साधनसामग्री पीछी कमंडलु और शास्त्रों के देने को तथा समयानुसार चटाई पाटा, शिष्य शिष्यायें, श्रावक श्राविकायें देने को उपकरणदान कहते हैं।

प्र.-407 इन सामग्रियों के देने को उपकरणदान क्यों कहा?

उत्तर- इन सामग्रियों को देने से जीवरक्षा होती है, शारीरिक अशुद्धि होने पर शुद्धि होती है, अज्ञानांधकार दूर होकर ज्ञान की वृद्धि होती है, धर्म की प्रभावना होती है और उत्कृष्ट रत्नत्रय धर्म की उत्पत्ति वृद्धि, तुष्टि पुष्टि तथा मोक्ष प्राप्ति में बहिरंग सहायक साधन होने से, श्रावक श्राविकायें आगे मुनि आर्यिका आदि बनने से धर्म की परंपरा चलती रहती है अतः इनको उपकरणदान कहा है।

प्र.-408 जो व्यक्ति उपकरण दान नहीं देता है उसे क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- जो व्यक्ति मोक्षमार्गियों को मोक्षमार्ग में सहायभूत उपकरणों को नहीं देता है वह स्वयं

मोक्षमार्गी नहीं बन सकता। कदाचित् मोक्षमार्गी बन भी गया तो उसे भी उपकरणों की प्राप्ति नहीं होती है, यदि बलात् प्राप्त हो भी जायें तो भी वह उनका यथानुरूप उपयोग नहीं कर सकता, प्रमादी बना रहता है।

प्र.-409 चतुर्विध मुनिसंघ उपकरणों का प्रयोग सही ढंग से कैसे नहीं करते हैं?

उत्तर- कुछ त्यागीजन पीछी को झाड़ू कहने लगे हैं, कुछ पीछी को खूंटी में या कील में टांग देते हैं, या शौच जाते समय दूर रख देते हैं, प्रतिलेखन नहीं करते हैं, कुछ आर्यिकायें क्षुल्लिकायें मासिकधर्म के दिनों में पीछी छोड़ देती हैं, पीछी ग्रहण कर वाहनों में सफर करते हैं। यह पीछी तीर्थंकरों का, मुनियों का उत्सर्ग चिह्न है जबकि झाड़ू हिंसार्थक है, आरंभ का साधन है, पापवर्धक है और पीछी जीवरक्षा का चिह्न है आदि। जैसे आ. श्री कुंदकुंदजी ने पंचा. में कहा है:-

णाणं च दुप्पउत्तं मोहो पावप्पदा होंति।।140।। **अर्थ:-** ज्ञान का दुष्प्रयोग करने से पापाश्रव होता है।

णाणस्स णत्थि दोसो का पुरिसाणं वि मंदबुद्धीओ।
जे णाण गव्विदा होऊण विसयेसु रज्जंति।।10।। शीलपाहुड

अर्थ:- जो ज्ञान से घमंडी होकर विषयों में राग करते हैं वह उनके ज्ञान का दोष नहीं है किंतु मंदबुद्धि से युक्त उन कापुरुषों का ही अपराध है। जैसे ज्ञान के दुरुपयोग करने वाले पापी हैं वैसे ही मोक्षमार्ग में सहायक उपकरणों का दुरुपयोग करने वाले पापी ही हैं इसमें संदेह नहीं है अतः उपकरणों का सही रूप में उपयोग करना चाहिये अन्यथा ये धर्म के उपकरण न होकर पाप के साधन हैं।

जदि पडदि दीव हत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो।
जदि सिक्खिदूण अणयं करेदि किं तस्स सिक्ख फलं।।992।। मू.अ.10

अर्थ:- यदि कोई हाथ में दीपक लेकर गड्ढे में गिरे तो दीपक उसका क्या कर सकता है? ऐसे ही यदि कोई ज्ञानी अत्याचार अनाचार करे तो क्या सत्शिक्षा का यही फल है? नहीं, इसमें ज्ञान का कोई दोष नहीं है।

प्र.-410 कन्यादान क्यों देना चाहिये?

उत्तर- अपने साधर्मी भाइओं के लिए या अपने समान आचारविचार धनसंपत्ति वालों को भली प्रकार से गृहस्थ जीवन तथा मोक्षमार्ग चलाने के लिए धर्म के संस्कार, धर्मशिक्षा और सत्संगति वाली कन्या देना चाहिये क्योंकि यदि अपने को ऐसी बहु चाहिये तो ऐसी ही अपनी बेटी देना चाहिये। अपने को धर्मात्मा बहु चाहिये और अपन दूसरों को कुलक्षणी कन्या देवे तो क्या ऐसा न्याय है? नहीं।

प्र.-411 स्वर्णदान क्यों देना चाहिए?

उत्तर- उत्तम रत्न सोनाचांदी आदि अपने को चाहिये तो धर्म और गृहस्थ जीवन चलाने के लिए स्वर्णादि का दान साधर्मियों को देना चाहिये क्योंकि गृहस्थों के पास कदाचित् ये धातु उपधातुयें नहीं है तो उनको लोक व्यवहार में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तथा शृंगारालंकार के बिना अपना सौंदर्य नहीं चमकता ऐसी लोकनीति है अतः स्वर्णादिक का दान देना चाहिये क्योंकि पिताजी की संपत्ति में पुत्र के समान पुत्री का भी हिस्सा होता है इसलिए पुत्री का हिस्सा पुत्री को मिलना चाहिए ऐसा न्याय है।

प्र.-412 वस्त्रदान क्यों देना चाहिए?

उत्तर- अपने को धर्मानुकूल वस्त्र चाहिये तो वैसे ही दूसरों को वस्त्र देना चाहिये क्योंकि वर्तमान

में ऐसे अनेक श्रीमान देखे जा रहे हैं कि भिखारियों जैसे या नौकरों से भी गये बीते वस्त्र पहनते हैं, इनमें सुंदर वस्त्र धारण करने की क्षमता ही नहीं हैं। प्रसंग पर मजदूर भी अच्छे वस्त्र धारण कर लेते हैं किंतु धन धान्य से संपन्न होने पर भी असाध्य बीमारी या किसीके भय के कारण उत्तम वस्त्रादि को धारण नहीं कर पाते।

प्र.-413 आवासदान क्यों देना चाहिए?

उत्तर- गरीबों के पास में तो रहने के लिए स्वयं का मकान होता है क्योंकि ये अतिथियों को, राहगीरों को भी अपने ही मकान में ठहरा लेते हैं किंतु धनवान अतिथियों को अपनी कोठी में न जगह देते हैं और न व्यवस्था करते हैं तथा सोचने लगते हैं कि सारा खर्च हमारे ऊपर आ जायेगा या अपने मकान में ठहराया तो कुछ मांग न लें या ले न जायें आदि अतिथियों के संबंध में नाना प्रकार के विचार कर लेते हैं सो इसीका फल है कि इनके पास रहने के लिए स्वयं की झोपड़ी जैसी भी जगह नहीं रहती है, किराये के मकान में ही जीवन व्यतीत करते हैं और किराये के मकानों को भी पुनः पुनः बदलते रहते हैं, स्थायी नहीं रह पाते।

प्र.-414 समदत्तीदान क्यों देना चाहिए?

उत्तर- अपने समान आचरण वाले धर्मात्माओं को अनेक प्रकार की भोग्य और धर्म के योग्य चेतनाचेतन तथा मिश्र सामग्रियां देना चाहिये क्योंकि कर्मसिद्धांत में अंतरायकर्म की अवांतर प्रकृतियों में सर्व प्रथम दानांतराय को बाद में लाभांतराय को कहा है जो पहले देता है वही बाद में प्राप्त करता है। जैसे किसान खेत में पहले बीज बोता है बाद में खेत से कई गुणा फल पाता है इसलिए प्रतिफल के लिए भी समदत्ती दान देना चाहिये अतः लेने के बाद में देना यह नीति नहीं है।

प्र.-415 प्रतिफल के लिए दान देना निदान आर्तध्यान है तो इसे सत्दान क्यों कहा?

उत्तर- निदान आर्तध्यान में विषयभोगों की सामग्री की आकांक्षा होती है किंतु विपाकविचय धर्मध्यान में किस कर्म या क्रिया का क्या फल है यह विचार किया जाता है अतः क्रियाओं के फल का विचार करना हानिकारक नहीं है किंतु फल चाहना हानिकारक है।

प्र.-416 दान न देने वालों को क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- दान न देने वालों को भिखारीपना प्राप्त होता है। नीतिकारों ने कहा भी है-

बोधयंते न याचंते भिक्षाचारा गृहे गृहे।
दीयतां दीयतां नित्यमदातुः फलमीदृशम्।।

अर्थः- ये भिखारी वर्ग घर घर में भीख मांगने जाते हैं सो ये भीख नहीं मांगते हैं किंतु कर्तव्य पालन के लिए उपदेश दे रहे हैं कि अरे सज्जनो! सतत दीनदुःखियों को, अतिथियों को दान देते रहो क्योंकि हमने तो पूर्व में किसी को दान नहीं दिया है सो इसीका यह फल है कि हमें घर घर में उदरपूर्ति के लिए भीख मांगनी पड़ती है। कहीं कहीं घर घर में मांगने पर भी भिक्षा नहीं मिलती है बदले में अपमान और अपशब्द भी सुनने पड़ते हैं अतः ऐसी अवस्था तुम्हें प्राप्त न हो इसलिए दान देते रहो ऐसा संबोधन कर रहे हैं।

प्र.-417 दीदीजी! संघ में चौका लगाने से क्या आरंभ परिग्रह का दोष नहीं लगता है?

उत्तर- नहीं, संघ में न रुपया पैसा है, न किसी भी प्रकार का फंड है, न बैंकबेलेन्स है और हम सभी बहनें/ दीदियां पगार से काम नहीं कर रहे हैं किंतु हम अतिथिसंविभागशिक्षाव्रत को अपना कर्तव्य मानकर समझकर पालन कर रहे हैं तब हम सभीको आरंभ परिग्रह का दोष कैसे लगेगा?

प्र.-418 तो फिर अर्थ और सामग्री की आपको याचना भी करनी पड़ती होगी?

उत्तर- यह सारी अर्थ और सामग्री की व्यवस्था समाज ही करती है। हम सभी किसीसे कहीं पर

भी किसी भी प्रकार से किंचित् मात्र भी याचना नहीं करते हैं किंतु जिन श्रावक श्राविकाओं ने, माँ बहनों ने या भाईबंधुओं ने आकर पूछा कि दीदी आपको कोई आवश्यकता है तब हम उन्हीं से कहते हैं, दूसरों से नहीं कि हमको यह चाहिये यह नहीं फिर हमें दोष कैसे लगेगा?

प्र.-419 तो फिर घर घर में चौके क्यों नहीं लगते हैं?

उत्तर- नहीं, जगह जगह पर अनेक श्रावक श्राविकायें अपने[2] घरों में चौका लगाने को कहते हैं किंतु वो चौके की शुद्धि को सुनकर के घबड़ा कर, डरकर किनारा कर जाते हैं या अधिकतर धनवानों की स्वकृत दान देने की भावना ही नहीं रही तभी तो जो साधु सर्वत्र सभी के हाथ से लेते हैं तब उनके लिए भी घर में चौका न लगाकर बाहर से नौकरों को बुलाकर बाहर ही चौका लगवाते हैं। रुपये की जगह चार रुपये खर्चकर संघ के नाम पर बोलते हैं कि महाराज का चौका लगाने में इतना खर्च हुआ क्या ठीक है?

प्र.-420 तो फिर दीदी चौके की शुद्धि कैसे होती है?

उत्तर- बाजार से आई हुई सब्जी फल आदि को धोपोंछकर, सुखाकर, छानबीनकर, शोधन करने से शुद्धि होती है क्योंकि बाहर के पानी की लगार का संबंध जबतक टूटता नहीं है तबतक शुद्धि नहीं मानी जाती और आजकल करीब 99% मासिकधर्म के समय अशुद्धि में उन्हीं बर्तनों में, उन्हीं चूल्हों पर भोजन बनाती हैं, खाती हैं, खिलाती हैं तथा शराबी, मांसाहार और गलत आचारविचार वालों को भी उन्हीं बर्तनों में भोजनपान कराते हैं तब उन बर्तनों की और क्षेत्र की शुद्धि कैसे हो आप ही बताओ? हम क्या बतायें?

प्र.-421 तो फिर दीदी आप ही बताओ इन बर्तनों की शुद्धि कैसे होती है?

उत्तर- उच्चवर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के घरों में ऐसे अशुद्ध बर्तनों को राख से मांजकर, धोकर, अग्नि में तपाकर शुद्ध करके फिर काम में लेते थे और अब ऐसी शुद्धि घरों में होती नहीं सो शुद्धि के परिश्रम के भय से घरों में चौके नहीं लगते हैं। जाति, कुल, धर्म विहीन, आचारविचार विहीन घरों में ऐसी शुद्धि न होने से पात्रों के योग्य ये घर नहीं रहे। कहा है- दानशाला का लक्षण

मिथ्यादृशां च मांसादां गेहे जैनाश्रये सति।

नाद्यात्ता नवं कृत्वा शुद्धेऽद्युर्व्रतिकादयः॥4॥ दा.शा. पृ. 97 महर्षि वासुपूज्य

अर्थः- मिथ्यादृष्टि और मकारों के सेवी घरों में कोई जैन रह रहा हो तो उसके घर में व्रती आदि जैनसाधुओं को आहार नहीं लेना चाहिये। हाँ, शुद्धि होने पर कदाचित् मुनिजन आहार ले सकते हैं।

प्र.-422 देवपूजा आदि 6 आवश्यकों के न पालने वाले को बहिरात्मा क्यों कहा?

उत्तर- जो गृहस्थावस्था में रहकर लोभ से, मोह से या अविवेक से या अन्य कारणों से इन कर्तव्यों का पालन नहीं करता है तो वह गृहस्थ अपना समय, अपना धन किस काम में लगायेगा? यदि अपने हाथ से स्वयं धनादि का सदुपयोग नहीं करता है तो वह धन सरकार में, चोर गुंडों में, अड़ोसपड़ोस में जायेगा, आग में जल जायेगा, पानी में बह जायेगा या मरने पर यहीं रह जायेगा अथवा मरण कर धन के पास में सांप बिच्छू बन कर वहीं पैदा होकर रक्षा करता रहेगा। जैसा वर्तमान में सुना जाता है कि वहाँ धन के खजाने में सांप रहता है, रक्षा करता है। **''लोभी का धन लावर खाय शेष बचे सरकारे जाय।''**

प्र.-423 पापात्मकचर्या का त्याग न करने वालों को बहिरात्मा क्यों कहा?

उत्तर- यदि अपनी दिनचर्या में पापों का, अन्याय अभक्ष्य पदार्थों का, मिथ्यात्व का, व्यसनों का, अत्याचार अनाचारों का सेवन चल रहा है तो मनुष्य जीवन पशुपक्षियों से भी गया बीता है या पशुपक्षियों के समान है अतः यदि अपने जीवन को सुरक्षित, सुंदर, उच्च, श्रेष्ठ बनाना, विश्वासपात्र

बनाना चाहते हो तो गलत कार्यों का त्याग करो अन्यथा तन मन धन और धर्म ये चारों ही नष्ट हो जायेंगे, जीवन बदनाम हो जायेगा, धर्म से बहाना बनाकर बच सकते हो पर दुष्कर्म से कैसे बचोगे? ये विषयकषाय जहर के समान, अग्नि के समान हैं अतः विषयकषायों का, विषयभोगों का त्याग न करने वालों को बहिरात्मा कहा है।

प्र.-424 भावात्मक पापों का त्याग न करने वालों को बहिरात्मा क्यों कहा है?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से परिणत आत्मा को या इन भावों का त्याग न करने वालों को बहिरात्मा कहा है तथा प्रत्येक वस्तु अनंतधर्मात्मक है उन अनंत धर्मयुगलों में से एक युगलधर्म विधि निषेध भी है। यह करना है या ऐसा करना है यह विधि है और यह नहीं करना है या ऐसा नहीं करना है यह निषेध है। इस युगल धर्म की अपेक्षा विचार किया जा रहा है जब निषेध धर्म का पालन नहीं किया तो विधिधर्म का भी पालन नहीं हुआ और धर्म का पालन न करने से अधर्मी, पापी, नास्तिक कहलाया। इस कारण एक धर्म के पालन न करने पर उसके प्रतिपक्षी धर्म का भी पालन नहीं किया या एकांगी धर्म का पालन करता हुआ भी प्रतिपक्षी धर्म का पालन न करने से एकांती, एक आँख वाला काना कहलाया सो यह भी मान्यता आत्मकल्याण के लिए घातक है, विनाशक है इसलिए इसे बहिरात्मा पतंगा कहा है।

प्र.-425 भोग न भोगने वालों को बहिरात्मा पतंगा क्यों कहा?

उत्तर- अन्याय, अनीति से भोग भोगनेवालों को या न्यायनीति से भोग न भोगनेवालों को बहिरात्मा पतंगा कहा है। लोकव्यवहार में जैसे राज्य के, पंचों के नियम का उल्लंघन करने से अपराधी कहा वैसे ही त्रिलोकीनाथ के अनाज्ञाकारी अन्यायी अपराधी नेतागण, प्रजागण, गृहस्थ व साधुगणों को बहिरात्मा कहा है अतः नियम विरुद्ध भोग भोगनेवालों को बहिरात्मा कहा है।

प्र.-426 तो क्या जैनधर्म भोग भोगने की बातें करता है?

उत्तर- जैनधर्म में इंद्रियभोगों की न बातें कही हैं, न छूट दी है किंतु पशुवत् जीवन न हो इसलिए न्यायनीति से, संयम, तप, त्यागधर्म आदि का भोग करो, आनंद लो अधर्म का नहीं या गृहस्थावस्था में मोक्षमार्ग की रक्षा करते हुए औषधिवत् रोगविनाशार्थ भोगों को भोगो यही कल्याण का मार्ग है।

प्र.-427 यहाँ ग्रंथकार ने क्या एकांत मिथ्यात्व का कथन नहीं किया है?

उत्तर- नहीं, यहाँ एकांत मिथ्यात्व का कथन नहीं किया है क्योंकि इस ग्रंथ में विशेषतः अधिकतर चरणानुयोग संबंधी दिनचर्या का कथन किया जा रहा है। यहाँ न्यायनीति की बात या शब्द रचना छिपी हुई होने से एकांत मिथ्यात्व का प्रसंग नहीं आता है और न दोष देना चाहिये क्योंकि अपनी दिनचर्या आगमानुकूल होने से सर्वत्र प्रतिष्ठा एवं सुखसंपन्नता प्राप्त कराती है।

नोटः- यहाँ तक 427 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 11वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 12वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

शक्त्यनुसार कर्तव्य पालन

जिणपूया मुणिदाणं करेइ जो देइ सत्तिरूवेण।
सम्माइट्ठी सावयधम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ ।।12।।

जिनपूजां मुनिदानं करोति यो ददाति शक्तिरूपेण।
सम्यग्दृष्टिः श्रावकधर्मी स भवति मोक्षमार्गरतः।।

जो जो **सत्तिरूवेण** तन मन और धन की शक्ति के अनुसार **जिणपूया** जिनपूजा **करेइ** करता है **मुणिदाणं** मुनियों को आहारादि दान **देइ** देता है **सो** वह **मोक्खमग्गरओ** मोक्षमार्ग में रत **धम्मी** धर्मात्मा **सम्माइट्ठी** सम्यग्दृष्टि **सावय** अव्रती अणुव्रती श्रावक होता है।

प्र.-428 इस गाथा में 'सत्तिरूवेण' इस पद से किस शक्ति को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यहाँ **'शक्ति'** पद से शारीरिक, धन, ज्ञान और आत्मशक्ति को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-429 शारीरिक बलानुसार पूजा और दान करना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- शारीरिक शक्ति को न समझकर कमजोरी होने से संकल्प पूर्वक जिनपूजा और मुनियों आदि को आहारदानादि के लिए खड़े हो गये या बैठ गये, ध्यानादि में स्थिर हो गये किंतु ज्यादा खड़े होने की, बैठने की ताकत नहीं है तब परिणाम बिगड़ जाने से विशेष आकुलता होगी, दीवार के सहारे खड़े हो जायेंगे या घोड़े की तरह एक पैर उठाकर मेज की पटली पर रखकर खड़े हो जायेंगे ऐसे प्रसंग पर थकावट होने से नींद भी आ जाती है, कदाचित् आर्तध्यान होने से तिर्यंचायु का आश्रव बंध भी हो सकता है अतः परिणाम न बिगड़ने पायें इसलिए शारीरिक बलानुसार पूजा दानादि धर्मकार्य करना चाहिये।

प्र.-430 स्वशक्ति को विचारे बिना पूजा दान का संकल्प करने से क्या फल होगा?

उत्तर- शारीरिक शक्ति को छिपाकर शक्ति से कम कार्य करने पर मायाचार और लोभकषाय होती है तथा शक्ति से ज्यादा करने पर क्रोध मान कषाय होने से आर्तध्यान रौद्रध्यान होते हैं। कषायों के परिणाम होने से पापाश्रव बंध होता है इसलिए शक्ति से कम और ज्यादा न कर शक्ति के अनुसार ही पूजादान करना चाहिये जिससे परिणाम उज्ज्वल हों क्योंकि **शक्तितस्तपत्याग** करने को कहा है अन्यथा कुफल ही होगा।

प्र.-431 चेतनाचेतन धनबल के अनुसार ही पूजादान करना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- चेतन अचेतन धन की शक्ति को विचारे बिना कार्य कर डाला या खर्च कर दिया तो भी पुनः उसकी पूर्ति के लिए हिंसा, झूंठ, चोरी पापों का सहारा लेना पड़ेगा फिर भी यदि धन की पूर्ति न हुई तो घर में, परिवार में कलह होने से बटवारा, खेंचातानी और मारपीट भी हो सकती है। टेक्स की चोरी होने से हमेशा भयभीत रहेगा, गल्ती को छिपाने के लिए रिश्वत भी देनी पड़ेगी, सी.ए. का सहारा भी लेना पड़ेगा आदि अनेक संकटों का सामना न होवे सो शक्त्यनुसार पूजादानादि में धन खर्च करना चाहिये।

प्र.-432 यदि धर्मायतनों में राशि लिखाकर दान दिया जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- ख्याति पूजा लाभ की भावनासह दान देना मिथ्याचारित्र है और कदाचित् इनकमटेक्स वाले दान राशि की संख्या देखकर दाता से पूछने लगें कि तुमने इतना दान दिया है तो इसका टेक्स दिया है या नहीं? तब झूंठ बोलोगे या राशि मिटाओगे? यही आपत्ति है अतः गुप्त दान देना चाहिए।

प्र.-433 ज्ञानबल के अनुसार ही पूजादान करना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- दानपूजादि धर्मकार्यों की सम्यक् जानकारी न होने से अज्ञान पूर्वक चर्या करने पर भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति और वृद्धि नहीं हो सकती है। कहा भी है **यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः।** भावों से शून्य क्रियायें मोक्षफल को नहीं देती हैं इसलिए कहा है कि ज्ञानबलानुसार दानपूजा आदि कार्य करना चाहिये।

प्र.-434 आत्मबल मनोबल के अनुसार पूजा दान करना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि आत्मबल मनोबल के विचारे बिना धर्मकार्य या लौकिक कार्य किया तो आकुलता, व्याकुलता, घबराहट होने से आत्महत्या का प्रसंग आता है क्योंकि मनोबल टूटने से ही प्राणी आत्महत्या करता है या ऐसा प्राणी कहीं भी निराकुलता को प्राप्त नहीं होता है अतः मनोबल के अनुसार कार्य करना चाहिये।

प्र.-435 मनोबल के टूटने पर भी आत्महत्या नहीं करता फिर ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- पूर्ण रूप से शरीर के छूटने रूप आत्महत्या आयु प्राण के क्षय होने पर होती है किंतु अभी तो 9 प्राण शेष बचे हैं अतः प्रमाद पूर्वक जिस किसी भी प्राण की विराधना करने से आत्महत्या मानी है। त.सू.में प्रमाद से द्रव्य भावप्राणों का वियोग करना हिंसा कहा है अतः मनोबल भी प्राण है, स्व पर और उभय के निमित्त से यथासंभव प्राणों के वियोग को, दुःखी करने को, घबराहट पैदा करने को आत्महत्या ही कहा है। लोक में शरीर के छूटने को हिंसा और जैनसिद्धांत में द्रव्य भावप्राणों के वियोग को हिंसा कहा है।

प्र.-436 जिनपूजा से जिनेंद्र पूजा को ग्रहण करना चाहिये या पाँचों परमेष्ठियों को?

उत्तर- वर्तमान नय से सयोगी अयोगी जिनेंद्र हैं और भूतनय से वर्तमान में सिद्ध परमेष्ठी जिनेंद्र हैं तथा भावीनैगम नय से वर्तमान में आचार्य उपाध्यायसाधु परमेष्ठी जिनेंद्र हैं अतः जिनेंद्र पूजा से पाँचों परमेष्ठियों को, नवदेवताओं को या समस्त धर्मायतनों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि नयानुसार ये सभी जिनेंद्र हैं।

प्र.-437 असंयमी जीवों की अष्टद्रव्य से पूजा कर सकते हैं क्या?

उत्तर- **असंजदं ण वंदे वच्छविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।**

दोण्णिवि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि।।27।। द.पा.

अर्थः- असंयमीजनों की और द्रव्यभाव संयम के बिना वस्त्रविहीनों की भी वंदना नहीं करना चाहिये क्योंकि ये दोनों ही समान हैं। यहाँ आ. श्री ने वंदना करने के लिए मना किया है पूजा तो बहुत दूर रही। यहाँ सर्वघाती दर्शनमोहोदय से युक्त असंयमी को ग्रहण करना चाहिये, सभी असंयमीजनों को नहीं।

प्र.-438 असंयम कितने प्रकार का होता है, नाम तथा स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- असंयम तीन प्रकार का है। **नाम-**: १. अनंतानुबंधी कषायोदय से असंयम, **स्वामी-** मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान वाले २. अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से असंयम, **स्वामी-** सम्यग्मिथ्यात्व और अविरति गुणस्थानवाले ३. प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से असंयम, **स्वामी-** संयमासंयम गुणस्थान वाले।

प्र.-439 यदि असंयमी पूज्य नहीं हैं तो गर्भजन्म कल्याणकों की पूजन क्यों करते हो?

उत्तर- जिस महान आत्मा के गर्भकल्याणक और जन्मकल्याणक मनाते हैं, मनाये जा रहे हैं वे गर्भ से ही क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि या क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानधारी हैं, अनेक ऋद्धियों और अतिशयों से संपन्न हैं, तद्भव मोक्षगामी हैं। इन कल्याणकों को मनाने वाले इंद्रइंद्राणी तीर्थंकरकुमारवत् ही गुणवान हैं और ये इन दो कल्याणकों की अष्टद्रव्य से पूजा एकमात्र मोक्ष के निमित्त ही करते हैं अतः मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय वाले असंयमी अपूज्य हैं किंतु चौथे पाँचवें गुणस्थान वाले असंयमी एकमात्र मोक्ष के, अनर्घ्य पद प्राप्ति के निमित्त पूज्य भी हैं। इस कारण मोक्षमार्गी असंयमी सर्वथा न पूज्य हैं, न अपूज्य इसलिए दिगंबर जैन गृहस्थ और साधुवर्ग इन कल्याणकों की परम भक्ति से, परम प्रीति से पूजा आराधना, जप, तप, व्रत करते हैं। यदि ये असंयमी सर्वथा अपूज्य हैं तो मुनिवर्ग पंचकल्याणक व्रत पंचपरमेष्ठी विधान न करते और न करने का उपदेश देते।

प्र.-440 चेतन परमेष्ठियों की, चेतनाचेतनगुणों की अष्टद्रव्य से पूजा करें या नहीं?

उत्तर- चेतन परमेष्ठियों की और इनके अचेतन प्रतिबिंबों की, मूर्तियों की पूजा करते ही हो इसमें किसीको संदेह नहीं है। इन पाँचों परमेष्ठियों के आत्माश्रित मूलगुण चेतन हैं और शरीराश्रित तथा आत्मा और शरीर से भिन्न सत्तावाले मूलगुण अचेतन हैं। जैसे तीर्थंकर प्रभु के 46 मूलगुणों में से अनंत चतुष्टय मूलगुण आत्माश्रित हैं जो साद्यनंत रहने वाले हैं। गर्भ और जन्म के शरीराश्रित

दश दश अतिशय आयु पर्यंत साथ में रहने वाले हैं। ऐसे ही केवलज्ञान के चौदह अतिशय और आठ प्रातिहार्य शरीर से भिन्न होने पर भी आयु पर्यंत रहने वाले हैं। ये 42 मूलगुण आत्मा के न हुए थे, न हैं और न होने वाले हैं फिर भी ये मूलगुण तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वालों के होते हैं और सभी प्रमादी मोक्षमार्गी द्रव्य और भाव पूर्वक अष्टद्रव्य से पूजा और पंचपरमेष्ठी विधान भी करते हैं। इन आठ प्रातिहार्यों को देवांगनायें लेकर ही चलतीं हैं यदि आप केवल चैतन्यगुणों की ही पूजा करने की प्रतिज्ञा करते हो तो तीर्थंकरों के केवल चार ही मूलगुण की पूजा करो क्योंकि इनके चार ही मूलगुण हैं, 46 नहीं ऐसे ही आचार्य उपाध्याय और साधुओं के 36, 25, 28 मूलगुण इनका विभाग भी आपको करना पड़ेगा कि ये गुण चेतन हैं और ये अचेतन हैं, इनकी पूजा आराधना, जपतप किस हेतु से करना चाहिये या नहीं यह स्पष्ट करो। यदि आप शरीराश्रित अचेतन मूलगुणों की अष्टद्रव्यों से पूजा करते हो तो जो आपने चैतन्य गुणों की अष्ट द्रव्य से पूजा करने की प्रतिज्ञा की है वह हानि को प्राप्त होती है अतः मोक्षमार्ग में धर्म और धर्मायतन पूज्य होने से इनके आश्रित अचेतन चिह्न भी अष्टद्रव्य से पूजे जाते हैं जो वर्तमान में सर्वत्र विधिविधानों में प्रत्यक्ष देखे जा रहे हैं।

प्र.-441 उपरोक्त तीन प्रश्नों का निष्कर्ष क्या है?

उत्तर- द.पा. की 27वीं. गाथा से जो आर्यिकाओं की नवधाभक्ति और अष्टद्रव्य से पूजन का निषेध करते हैं सो यह अर्थ ठीक नहीं हैं क्योंकि आ. श्री ने असंयमिओं की वंदना करने का निषेध किया है, नवधा भक्ति का नहीं। ऐसे ही उनको गर्भजन्मकल्याणक की अष्टद्रव्य से पूजा, मंत्र का जाप, व्रत नहीं करना चाहिये। पुनः जो कहते हैं कि हम केवल चैतन्य परमेष्ठियों और चैतन्य गुणों की ही अष्टद्रव्य से पूजा करेंगे तो उनको क्षेत्र पूजा, चैत्यालय पूजा, जिनवाणी पूजा, प्रातिहार्यों की, शरीराश्रित गुणों की पूजा नहीं करना चाहिये पर मोक्षमार्गी जिनेंद्रभक्त जैन ऐसा नहीं करेगा क्योंकि मुनियों की नवधाभक्ति दान आदि कार्य शरीराश्रित होने से धर्म की व्यवस्था और व्यवहारधर्म की मर्यादा बन नहीं सकती है। जब अचेतन द्रव्य, गुण और पर्यायों की अष्टद्रव्य से पूजा कर अनर्घ पद चाहते हो तो चैतन्य आर्यिका की अष्टद्रव्य से पूजा कर अनर्घ पद की प्राप्ति क्यों नहीं चाहते हो?

प्र.-442 मुनियों के समान आर्यिकाओं की पूजा कैसे कर सकते हैं?

उत्तर- केवल नवधाभक्ति करने से मुनि आर्यिका एक समान हो जायेंगे तो अनर्घपद की प्राप्ति करने के लिए नवदेवताओं की, पंचपरमेष्ठियों की एक साथ एकसमय में एक ही प्रकार से अष्टद्रव्य से पूजा करते हैं तब क्या ये सभी एक समान हो जायेंगे? नहीं, जैसे एकसाथ एक ही समय में अपने दोनों हाथों से पत्नि या पति और माँ या पिता को स्पर्श करने पर पत्नि या पति के प्रति भोग परिणाम और माँ या पिता के प्रति पूज्य परिणाम होता है ऐसे ही मुनियों के समान आर्यिकाओं की अष्टद्रव्य से पूजा करने पर भी एकरूपता कैसे हो जायेगी? पूजा में एकता है किंतु परिणामों की धारा में अंतर रहता ही है।

प्र.-443 जिनपूजा किस फल की प्राप्ति के लिए करना चाहिये?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि जिनेंद्र पूजा एकमात्र मोक्षफल प्राप्ति के निमित्त करते हैं, कर्मबंध के निमित्त नहीं।

प्र.-444 जिनेंद्र पूजा किस प्रकार करना चाहिये?

उत्तर- श्रावकश्राविकाओं को जिनेंद्र या पंचपरमेष्ठियों के प्रति मन वचन काय से बालकवत् आत्म समर्पण कर अभिषेक पूर्वक जल चंदनादि अष्टद्रव्य सामग्री से पूजा करना चाहिये। पूजन संबंधी सभी कार्य जिनपूजा में ही अंतर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे पापकार्य 108 प्रकार से किये जाते हैं वैसे ही 108 तरह से पापकर्म छेदे भी जाते हैं या पुण्योपार्जन भी किया जाता है।

प्र.-445 मुनियों को दान किस प्रकार से देना चाहिये?

उत्तर- मुनियों को दान नवधाभक्ति, सप्त गुण सहित, पंचसूना पाप रहित, सांसारिक फल से निरपेक्ष, कर्मबंधन से छूटने के लिए, मोक्षफल की प्राप्ति के लिए समीचीन भावों से दान देना चाहिये।

प्र.-446 मुनिपद से किस किस को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- मुनि पद से पाँचों परमेष्ठियों को या शरीरधारी चारों परमेष्ठियों को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-447 श्रावक श्राविकागण अरिहंत और सिद्ध भगवंतों को दान दे सकते हैं क्या?

उत्तर- श्रावक श्राविकायें वर्तमान में अरिहंत सिद्धों को कुछ भी दान नहीं दे सकते हैं क्योंकि ये दोनों परमेष्ठी मौजूद नहीं हैं किंतु फिर भी शुभ संकल्प पूर्वक स्थापना और भाव निक्षेप से हृदय कमल में या किसी योग्य शुद्ध भूमिप्रदेश में तदाकार, अतदाकार रूप प्रतिबिंब विराजमान करने को आवासदान, अष्ट मंगल द्रव्य सामग्री दे सकते हैं और देते ही हैं। जैसे समवशरण एवं गंधकुटी की रचना, जिनायतन, सिद्धायतन, वेदी बनवाना, सिंहासन, छत्र, चंवर आदि देना ही अरिहंत, सिद्धों के लिए दान है।

प्र.-448 किस नय से इन पाँचों परमेष्ठियों को किस रूप में ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- भूत नैगमनय से सिद्ध परमेष्ठी साधु तो शेष चार परमेष्ठी वर्तमान नय से साधु हैं। सयोगी, अयोगी केवली स्नातक मुनि हैं। 11वें 12वें गुणस्थान वाले निर्ग्रंथ मुनि हैं, दसवें गुणस्थान वाले कषायकुशील मुनि हैं, शेष पुलाक, बकुश मुनि हैं। वर्तमान में आगमानुसार एकमात्र पुलाक मुनि ही मिलेंगे, शेष नहीं।

प्र.-449 किन किन मुनियों को क्या क्या दान देना चाहिये?

उत्तर- तीनों प्रमत्त साधुओं को ध्यानाध्ययन संयमादि में सहायक आहारादि चारों दान देना चाहिये।

प्र.-450 अरिहंत प्रभु को कौन सा दान देना चाहिये और कौन देता है?

उत्तर- अरहंतों को समवशरण रूप आवासदान देना चाहिये और यह दान धनदकुबेर यक्ष देता है।

प्र.-451 केवली प्रभु कौन सा दान देते हैं और इनकी सभा में कौन कौन बैठते हैं?

उत्तर- केवली भगवान समवशरण में आगत सम्यग्दृष्टियों को ज्ञानदान देते हैं। समवशरण की बारह सभाओं के आठ कोठे देवदेवांगनाओं के, तीन कोठे मनुष्यों के होते हैं और एक कोठा तिर्यंचों का होता है।

प्र.-452 वर्तमान में चेतन अरिहंत नहीं हैं फिर आवासदान कैसे हो सकता है?

उत्तर- आज वर्तमान में यहाँ साक्षात् अरिहंत नहीं हैं तो क्या हुआ फिर भी इनके प्रतिबिंब हैं उनको विराजमान करने के लिए मंदिर में वेदी बनवाना अपने घर के ईशानकोण में जिनबिंब स्थापित करना ही जिनेंद्र को आवासदान देना है और इसको कर्मभूमिज श्रावक श्राविकायें देते हैं। हाँ, अकृत्रिम जिनालयों में भी संकल्पानुसार स्थापना निक्षेप से आवासदान बन जाता है।

प्र.-453 मुनियों को क्या गृहस्थ ज्ञानदान दे सकता है?

उत्तर- वास्तव में ज्ञानदान तो मुनिजन ही देते हैं, ज्ञानदान देने में गृहस्थों का कोई अधिकार नहीं क्योंकि गृहस्थों का जीवन मलिन दर्पणवत् असंयम, आरंभपरिग्रह सहित है फिर भी क्वचित् कदाचित् किसी गृहस्थ के ज्ञानावरण का विशेष क्षयोपशम है तो वे सदाचारीसद्विचारी मूलगुणों के तथा षडावश्यकों के पालक निःस्वार्थ निष्कपट, बिना पगार के मुनियों को ज्ञानदान दे सकते हैं या आचार्यों के द्वारा उकेरे गये, लिखे गये शास्त्रों को प्रकाशन कराकर बिना कीमत के स्वाध्यायार्थ पात्रों को दान में दे सकते हैं।

प्र.-454 यदि पूर्ण असंयमी गृहस्थ पंडित मुनि को ज्ञानदान देवें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- सर्वप्रथम तो आपत्ति यह है कि वह पूर्ण असंयमी जिनेंद्रमत से बाहर ही है और सम्यग्दर्शन के पाँच अतिचारों में अन्यदृष्टि प्रशंसा तथा अन्यदृष्टिस्तव दोष कहे हैं तब उस ज्ञानदाता मिथ्यादृष्टि गृहस्थ गुरु की प्रशंसा अनुमोदना करने से सम्यग्दर्शन की समूल हानि होती है या हो सकती है यही महान आपत्ति है। दृष्टांत- जयपुर से पं. नंदनलालजी आ. श्री शांतिसागरजी के पास जाकर बोले कि हम ज्ञानदान देना चाहते हैं तब आ. श्री ने पं.जी को सातवीं प्रतिमा देकर ज्ञानदान लेना प्रारंभ किया। पंडितजी गृहस्थावस्था में भी मूलगुणों का, षडावश्यकों का पालन करते थे किंतु प्रतिमा रूप व्रत संयम न होने के कारण असंयमी थे।

प्र.-455 पंचसूना पाप करते हुए क्या गृहत्यागियों को, मुनियों को दान दे सकते हैं?

उत्तर- जिन कार्यों को करने से जीवों की विराधना हो, आत्मा मलिन हो उसे पंचसूना पाप कहते हैं। ये 5 हैं। **नामः-** कूटना, पीसना, झाड़ना, पानी भरना, आग जलाना। ये पाँचों पाप हिंसादि रूप नहीं हैं क्योंकि इनमें समितियों का, सावधानी का समावेश पाया जाता है फिर भी इनको करते हुए आहारादि दान नहीं दे सकते हैं अतः गृहत्यागियों को, मुनियों को आरंभ करते हुए आहार देना सदोष है सो ऐसा आहार दाता और पात्र के लिए पापबंध का कारक है।

प्र.-456 कूटना पीसना आदि कार्य करते हुए आहार देना सदोष क्यों है?

उत्तर- **कूटना-** नमक, मिर्च मसाले औषधि आदि को उखली इमानदस्ता आदि में चूर्ण करना। **पीसना-** चटनी, आटा आदि चक्की मिक्सी आदि में पीसना। **झाड़ना-** झाडू आदि से सफाई करना, पोंछा लगाना, भोजनपान के बर्तन मांजना, साफ करना। **पानी भरना-** पीने आदि उपयोग के लिए जलाशय से पानी भरना, छानना, गरम करना आदि। **आग जलाना-** भोजन आदि कार्यों के लिए आग में ईंधन डालनादि इन कार्यों के करने से जीव विराधना होती है। ये कार्य सावधानी से करने पर आरंभी हिंसा और असावधानी से करने पर संकल्पी हिंसा हैं अतः इन कार्यों के समाप्त होने पर ही पात्रदान करना चाहिये किंतु आजकल दातागण कुछ गृहत्यागी, साधु आर्यिकाओं को सामने से या पीछे गरम गरम भोजन तैयार करते हुए, फल सुधारते हुए, मेवा धोते हुए आहार देते हैं और पात्र ऐसा आहार ग्रहण करते हैं सो दोनों में लोभलंपटता होने के कारण पाप के भागी हैं, कर्तव्य के विराधक हैं, पद के घातक हैं क्योंकि इनका मन वश में नहीं हैं।

प्र.-457 ये आहारादि दान किसके समान हैं और इनका क्या फल है?

उत्तर- **गृहकर्मणाऽपि निचितं कर्मविमार्ष्टि खलु गृह विमुक्तानां।**
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि।।114।। र.श्रा.

अर्थः- जैसे रक्त के धब्बे को पानी से धोते हैं, रक्त से नहीं वैसे ही गृहस्थ संबंधी क्रियाओं के द्वारा उपार्जन किये गये पापकर्म को आहारादि दान रूपी जल से धो डालते हैं अतः सत्पात्रदान पानी के समान है

उच्चैर्गोत्रं प्रणते र्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुंदर रूपं स्तवनात् कीर्तिस्तपोनिधिषु।।115।। र.श्रा.

अर्थः- मुनियों को नमस्कार करने से उच्चगोत्र, आहारादि दान देने से भोग सामग्री, पड़गाहन आदि करने से पूजा सम्मान, भक्ति करने से सुंदर रूप और स्तुति करने से सुयश प्राप्त होता है।

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्व दुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम्।।119।। र.श्रा.

अर्थः- आदरवान श्रावकों को प्रतिदिन मनोरथों के पूरक और काम को भस्म करने वाले अरिहंत भगवान के चरणों में समस्त दुःखों को दूर करने वाली नित्य ही नित्यमहपूजा करना चाहिये।

प्र.-458 पूजादान करने वाला पुजारी और दानदाता किसमें रत होता है?

उत्तर- पूजादान करने वाला सम्यग्दृष्टि भक्त श्रावक जिनाज्ञा पालक धर्मात्मा मोक्षमार्ग में रत होता है।

प्र.-459 सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्ग में रत क्यों होता है?

उत्तर- जिसकी दृष्टि विश्वास अर्जुन पांडव के समान स्थिर है वही जीव एकमात्र सुखी होता हुआ और दूसरे जीवों को भी सुख प्राप्त कराता है। वह सुख स्वाधीनता में है, पराधीनता में नहीं क्योंकि पराधीनता ही दुःख है। जिस प्रकार कौवे को दाना प्राप्त होने पर कांव कांव करके अपने सभी साथियों को बुलाकर खिलाता हुआ खाता है उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव भव्यात्माओं को सुखी करता हुआ स्वयं सुखी होता है। इसलिए मोक्षमार्ग में रत होता है क्योंकि मार्गरती ही मार्गगामी होकर मार्गफल को प्राप्त करता है।

प्र.-460 मिथ्यादृष्टि जीव मोक्षमार्ग में रत क्यों नहीं होता है?

उत्तर- जैसे कुत्ते को भोजन मिलने पर सबके सामने न खाकर दूसरे कुत्तों को भगाता हुआ छिपकर खाता है ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीव कलुषित भावों के कारण मोक्षमार्ग में रत न होकर विषयभोगों में रत रहता है।

प्र.-461 सम्यग्दृष्टि जीव संसारमार्ग में रत क्यों नहीं होता है?

उत्तर- संसारमार्ग दुःख स्वरूप है, दुःख का साधन है, अंतरंग बहिरंग आपदाओं से भरपूर है। जब दुःख से भयभीत संसारी प्राणी सुख चाहते हैं तब सम्यग्दृष्टि जीव सुख क्यों नहीं चाहेगा? अतः सम्यग्दृष्टि जीव आत्मसुख मोक्षसुख चाहता है। सम्यग्दृष्टि जीव संसार और संसार के सुख को नहीं चाहता तब संसार और संसार के मार्ग में कैसे रत होगा, कैसे चाहेगा? नीति है जो जिसको नहीं चाहता है वह उसमें कैसे रत होगा?

नोटः- यहाँ तक 461 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 12वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 13वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

पूजा और दान का उत्कृष्ट फल

पूयफलेण तिलोए सुरपुज्जो हवेइ सुद्धमणो।
दाणफलेण तिलोए सारसुहं भुंजदे णियदं।।13।।

पूजा फलेन त्रिलोके सुरपूज्यो भवति शुद्धमनः।
दानफलेन त्रिलोके सारसुखं भुंक्ते नियतम्।।

सुद्धमणो शुद्ध मनकृत **पूयफलेण** पूजा के फल से **तिलोए** तीनों लोकों में, **सुरपुज्ज** देवों से पूज्य **हवेइ** होता है और **दाणफलेण** दान के फल से **तिलोए** त्रिलोक में **णियदं** निश्चित **सारसुहं** श्रेष्ठ सुख को **भुंजदे** भोगता है।

प्र.-462 जिनपूजा किन भावों से करना चाहिये?

उत्तर- जिनपूजा या मोक्षमार्गस्थ धर्मायतनों की पूजा शुद्ध मन से करना चाहिये, अशुद्ध मन से नहीं।

प्र.-463 शुद्ध मन किसे कहते हैं?

उत्तर- विधि रूप में समीचीन रत्नत्रय पूर्वक धर्मध्यान शुक्लध्यान में परिणत होने को या निषेध रूप में विषयकषाय, आरंभपरिग्रह, आहारादि संज्ञाओं एवं अशुभ लेश्याओं के रूप न होने को शुद्ध मन कहते हैं।

प्र.-464 अशुद्ध मन किसे कहते हैं?

उत्तर- शुद्ध भावों से विपरीत आर्त रौद्रध्यान से, शृंगारालंकार से परिणत होने को अशुद्ध मन कहते हैं।

प्र.-465 सम्यग्दृष्टि जीव के क्या सर्वथा शुद्ध मन होता है?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि जब धर्मायतनों और धर्मकार्यों को छोड़ कर आर्तरौद्रध्यानों से परिणत होता है तब अशुद्ध मन होता है अतः बहुलता की अपेक्षा कहा है कि सम्यग्दृष्टि के शुद्ध मन होता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि विषयभोगों को 1% भी महत्त्व नहीं देता है फिर भी कोतवाल के द्वारा पकड़े गये चोरवत् कर्माधीन हो गृहस्थपना अंगीकार करता है। यदि प्रत्येक समय के परिणामों की समीक्षा की जाये तो मालुम हो जायेगा कि सम्यग्दृष्टि के कब शुभ और शुद्ध मन होता है और कब अशुद्ध मन होता है।

प्र.-466 सम्यग्दृष्टि जीव के किस समय कैसा मन होता है यह कैसे मालुम हो?

उत्तर- पुण्यपाप प्रकृतियों के आश्रवबंध से मालुम हो जायेगा कि यह जीव किन परिणामों से परिणत हो रहा है। सही अवस्था की पहंचान गुणस्थानानुसार होगी, कहने सुनने से नहीं। गुणस्थानानुसार पाप परिणामों से, वचनों से परिणत नहीं होना ही या आश्रव को रोकना संवर या बंध व्युच्छित्ति होना ही शुभ और शुद्ध मन है। पापाश्रव बंध का विच्छेद न होना ही अशुद्ध मन है।

प्र.-467 जिनपूजा का फल क्या है?

उत्तर- देव देवांगनाओं, इंद्र इंद्राणिओं और राजा महाराजाओं के द्वारा आदर सम्मान प्राप्त होना पूजा का फल है क्योंकि क्रिया प्रतिक्रिया के समान पूजा से पूजा प्राप्त होती है ऐसा नियम है।

प्र.-468 जिनपूजा का फल कहाँ प्राप्त होता है?

उत्तर- त्रिलोकों में समस्त देवीदेवताओं आदि पूज्यों से पूजा प्राप्त होना ही जिनपूजा का फल है। खरभाग और पंकभाग में भवनवासी और व्यंतरदेव देवांगनाओं से, मध्यलोक में चतुर्निकाय देव देवांगनाओं, इंद्र इंद्राणिओं तथा अनेक राजा महाराजाओं से, ऊर्ध्वलोक में सभी देव देवांगनाओं इंद्र इंद्राणियों और अहमिंद्रों के द्वारा निराकुलतामय या चारों गतियों में जिनपूजा का फल प्राप्त होता है।

प्र.-469 दान का फल क्या है और कहाँ प्राप्त होता है?

उत्तर- तीनों लोकों में उत्तम सुख प्राप्त होना दान का फल है क्योंकि दाता तीनों लोकों में जहाँ जहाँ जाता है तो वहाँ वहाँ की चेतन, अचेतन, मिश्र सामग्रियों के द्वारा श्रेष्ठ सुख को प्राप्त होता है।

प्र.-470 गाथा में सुख के लिए उत्तम विशेषण नहीं दिया है फिर आपने क्यों कहा?

उत्तर- गाथा में ही **सारसुहं** ऐसा कहा है सो सार का अर्थ उत्तम किया है। कहा भी है-

विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।3।। नि.सा.

अर्थः- इससे विपरीत के परिहार के लिए **'सार'** यह वचन निश्चय से कहा गया है अतः आत्मसुख स्वाधीन सुख उत्तम है तो इंद्रियसुख या कर्मजन्यसुख अनुत्तम है। इससे सार का अर्थ उत्तम किया है जो निर्दोष है।

प्र.-471 सांसारिक सुख उत्तम क्यों नहीं है?

उत्तर- यदि सांसारिक सुख उत्तम होता तो मोक्षमार्गी महापुरुषार्थी इंद्रियसुख का त्याग क्यों करते? इंद्रियजन्य सुख केवल दुःख का प्रतिकार, परिहार स्वरूप है और दुःख स्वरूप ही है। कहा भी है-

सपरं बाधा सहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।

जं इंदियेहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तधा।। प्र.सा. अधि.1 गा.76

अर्थ- इंद्रियसुख पराधीन है, बाधा सहित है, बीच में नष्ट हो जाने वाला है, बंध का कारण है,

विषम है, वृद्धि हानि रूप है सो दुःख रूप ही है। इस कारण सांसारिक कर्मजन्य सुख उत्तम नहीं है।

प्र.-472 यदि इंद्रियसुख उत्तम नहीं है तो संसारी प्राणी विषयों में क्यों प्रवृत्ति करते हैं?

उत्तर- संसार में उत्तम कहलाने वाले पुण्य पुरुष शलाका पुरुष भी इंद्रियजन्य दुःख को सहन न करते हुए रमणीय विषयों में रमण करते हैं यदि ये दुःखी नहीं हों तो विषयों में प्रवृत्ति क्यों करते हैं?

प्र.-473 यह उत्तम सुख तीनों लोकों में कब तक रहेगा?

उत्तर- यह उत्तमसुख अनंतानंतकाल तक निर्बाध रहेगा। यदि इस उत्तम सुख में बाधा उत्पन्न होने लगे तो यह उत्तमसुख नहीं कहलायेगा अतः उत्तमसुख क्षायिकभाव होने से सादिअनंत है।

प्र.-474 पूजा और दान से किसको फल प्राप्त होता है?

उत्तर- पूजा से केवल पूजक को ही फल प्राप्त होता है किंतु दान से स्व, पर और उभय को सुख प्राप्त होता है। दानदाता के त्याग तपधर्म से विशेष पुण्य का संचय, पाप का संवर तथा कर्मों की निर्जरा होती है। जिसको दान दिया है उसकी भी घबराहट चिंतायें समाप्त हो जाती हैं। लौकिक और लोकोत्तर कार्य अच्छे चलते हैं तथा एकसाथ दाता और पात्र के मन में निर्मलता, परस्पर में वात्सल्य, धर्मव्यवहार अच्छा चलता है, स्थायी संबंध बना रहता है अतः पूजा का फल स्वयं को तो दान का फल अनेकों को प्राप्त होता है।

प्र.-475 दानों में से किस दान का फल कब तक दाता और पात्र को प्राप्त होता है?

उत्तर- पात्रों को आहारदान का फल थोड़े समय के लिए प्राप्त होता है क्योंकि भूंख प्रतिदिन या अभ्यासानुसार थोड़े दिन के बाद में पुनः लगती है। औषधिदान से जबतक निरोगता है तबतक के लिए प्राप्त होता है। अभयदान से जबतक भयकारक व्यक्ति या वस्तु प्राप्त नहीं होती है तबतक के लिए निर्भयता रहती है। ज्ञानदान का फल भवभवांतर तक या केवलज्ञान प्राप्त होने तक है या दान के संस्कारों की अपेक्षा सभी दानों का फल दाता एवं पात्र को अनेक भवभवांतरों तक प्राप्त होता रहता है।

प्र.-476 इन चारों दानों में से कौन सा दान श्रेष्ठ है और कौन सा नहीं?

उत्तर- ये चारों दान या सभी दान अपनी अपनी जगह पर सभी श्रेष्ठ हैं। जैसे पलंग के चार पायों में से कौन सा श्रेष्ठ है और कौन सा नहीं यह कहा नहीं जा सकता। यदि कोई एकाद पाया छोटा बड़ा हो जाये या टूट जाये तो पलंग की सुंदरता बिगड़ कर अनुपयोगी हो जाता है तथा पाये सही होने से सुंदरता रहती है अतः सभी दान श्रेष्ठ हैं क्योंकि दान के देने लेने से दाता और पात्र में धर्मध्यान की, मोक्ष की सिद्धि होती है।

प्र.-477 इन दानों में त्यागधर्म और तपधर्म कैसे घटित हो सकते हैं?

उत्तर- जब कोई वस्तु सुपात्र को दान में देते हैं तो बाह्य वस्तु देने से बाह्य त्यागधर्म और अंतरंग में लोभ के, विषयवासना के त्याग से अंतरंग त्यागधर्म कहलाया। भविष्य की इच्छाओं का, स्वार्थ का त्याग होने से तपधर्म हुआ क्योंकि **'इच्छा निरोधस्तपः'** इच्छाओं का निरोध करना तप है अतः दान देने में अंतरंग बहिरंग त्यागधर्म और तपधर्म की आराधना हो जाती है तथा विशेष रत्नत्रयधर्म की उत्पत्ति वृद्धि होती है।

प्र.-478 दान देने से और भी दूसरे लोकोत्तर फल प्राप्त होते हैं क्या?

उत्तर- दान देने से दानांतराय लाभांतरायादि पापकर्मों का विशेष क्षयोपशम होता है। जिससे कालांतर में इन कर्मों को समूल क्षय करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है जो कर्म सिद्धांतों से जानी जाती है।

प्र.-479 क्या वास्तव में ये फल प्राप्त होते हैं?

उत्तर- अवश्य ही ये फल प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं है क्योंकि सम्यग्दृष्टिजीव जिनेंद्र के, गुरुओं

के वचनों में संदेह नहीं करता है। इसीके निर्धारणार्थ आ. श्री ने **'णियदं'** निश्चियतः प्राप्त करता है ऐसा कहा है।

नोटः- यहाँ तक 479 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 13वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 14वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

यह पात्र है या अपात्र?

दाणं भोयणमेत्तं दिण्णइ धण्णो हवेइ सायारो।
पत्तापत्तविसेसं संदंसणे किं वियारेण ।।14।।

दानं भोजनमात्रं दीयते धन्यो भवति सागारः।
पात्रापात्रविशेषं संदर्शने किं विचारेण?।।

सायारो गृहस्थ **भोयणमेत्तं** आहार मात्र **दाणं** दान **दिण्णइ** देने से **धण्णो** धन्य **हवेइ** हो जाता है **संदंसणे** मोक्षमार्गस्थ मुद्रा के साक्षात्कार होने पर **पत्तापत्तविसेसं** यह पात्र है या अपात्र ऐसे **वियारेण** विचारों से **किं** क्या प्रयोजन है?

प्र.-480 गृहस्थ भोजन देने मात्र से धन्य हो जाता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- शास्त्रों में दान के अनेक प्रसंग आये हैं उनमें से आहारदान के प्रसंग में पंचाश्चर्यों का वर्णन सर्वाधिक मिलता है अतः आ. श्री ने आहारदाता धन्य होकर पंचाश्चर्य को प्राप्त होता है ऐसा कहा है।

प्र.-481 पात्र के सामने आने पर पात्रापात्र का विचार क्यों करना?

उत्तर- यथाजात रूपधारी दिगंबर जैन मुनियों के सामने आने पर ये मुनि हैं या नहीं, इनकी नवधाभक्ति करना चाहिये या नहीं ऐसे विचारों से क्या? ऐसा आ. श्री ने इसलिए कहा है कि उस समय जैनी कदम[2] पर मुनियों की परीक्षा करने लगे थे अर्थात् वर्तमान में कहानपंथियोंवत् अपनी परीक्षा दिये बिना मुनियों की परीक्षा ले रहे थे तब आ. श्री ने कहा कि केवल भोजन मात्र के लिए क्या परीक्षा करते हो? अरे! परीक्षा देने वाला ही परीक्षा ले सकता है, परीक्षा दिये बिना परीक्षा लेने का कोई अधिकार नहीं है। पहले अपने मूलगुणों, लक्षणों को देखो कि स्वयं में जघन्य श्रावक के भी मूलगुण हैं या नहीं कि केवल दंभ भर रहे हो, आज अव्रतियों में कोई 1% भी मूलगुणधारी श्रावक मिल जाये यह असंभव जैसी बात है, 99% अनछना पानी या जीवानी यथास्थान पहुंचाये बिना **'लकीर के फकीर'** की तरह पानी पी रहे हैं ऐसा छाना हुआ पानी अनछना पानी ही पीना है क्योंकि छाना हुआ पानी एक मुहूर्त के बाद में अनछना हो जाता है। अत्याचारी अनाचारी अनाड़ी ही मुनियों के परीक्षक जगह[2] घूम रहे हैं अतः यहाँ आज्ञाप्रधानी सम्यग्दृष्टि बनने की बात कही जा रही है। आज्ञाप्रधानी बनने के बाद परीक्षाप्रधानी बनोगे तो अधःपतन नहीं होगा किंतु सोचे समझे बिना अहंकार पूर्वक बिना परीक्षा के अविश्वास कर लिया तो इनका अधःपतन होना अवश्यंभावी ही है। जैसे राजा दंडक ने जिनधर्मद्रोही मंत्रियों के द्वारा समझाने पर जैनमुनियों में अविश्वास कर अभिनंदनादि 500 मुनियों को घानी में पिलवा दिया था।

प्र.-482 पंचाश्चर्य कौन कौन हैं?

उत्तर- जयध्वनि, दुंदुभि नाद, पुष्पवृष्टि, मंद सुगंधित पवन और रत्नवृष्टि ये पंचाश्चर्य हैं।

प्र.-483 ये पंचाश्चर्य चौथे काल में होते थे तो आजकल क्यों नहीं होते हैं?

उत्तर- चौथेकाल में उत्कृष्ट दाता और पात्र होने से देवों के द्वारा ये पंचाश्चर्य किये जाते थे किंतु वर्तमान में दाता और पात्र के पुण्यानुसार ये पंचाश्चर्य अब जैनाजैनों के द्वारा होते हुए देखे जा रहे हैं।

प्र.-484 आजकल आहारदान के प्रसंग में जयध्वनि कैसे होती है?

उत्तर- आहार होने के पश्चात् अनेक दर्शकगण आहारदान दाताओं की प्रसंशा करते हैं। जब भी

महाराज आते हैं तभी इनके घर में आहारदान होता है। आप धन्य हैं, आपके तीव्र पुण्योदय है आदि अनेक गुणगान करते हैं। कार्यक्रमों में माला, मुकुट, सॉलादि पहनाकर सम्मानित किये जाते हैं यही जयध्वनि नाम का प्रथम आश्चर्य है। इसमें दाता और दान की प्रसंशा की जाती है।

प्र.-485 आजकल आहारदान के प्रसंग में दुंदुभि बाजे कैसे देखे सुने जा रहे हैं?

उत्तर- कई जगह आचार्यादि प्रभावक साधुओं के विशेष उत्सव, जन्मदिवस, दीक्षादिवस के प्रसंग में आहार के पश्चात् श्रावकगण गीत गाते हुए, बेंडबाजे बजवाते हुए मंदिरजी में लाते हैं तथा चालु दिनों में भी संपन्न घरानों में प्रथमबार आहार होने पर भी बाजे बजवाते, तालियां बजाते हुए आवास स्थान में लाते हैं। आहार के पश्चात् घर में ही तालियां बजाकर गीत गाते, गुणकीर्तन, आरती करते हैं कहीं कहीं थालियां भी बजाते हैं इसे ही दुंदुभिनाद नामक आश्चर्य कहते हैं।

प्र.-486 आजकल आहारदान के प्रसंग में पुष्पवृष्टि किस प्रकार से देखी जाती है?

उत्तर- दीक्षा और दीक्षोत्सवादि विशेष प्रसंगों पर श्रावक श्राविकायें अनेक वनस्पतियों के पुष्पों की वर्षा करते हैं। पंचकल्याणकों के प्रसंग पर तो होती ही है। उन्हीं पुष्पों के नाम पर कागज, प्लास्टिक के, चांदी के पुष्प या केसर में, हल्दी में चावलों को रंग कर पुष्प मानकर पुष्पवृष्टि करते हैं।

प्र.-487 आजकल आहारदान के प्रसंग में मंद सुगंधित पवन कैसे होती है?

उत्तर- आहार के समय कदाचित् गर्मी के मौसम में जब पात्र को पसीनादि बहने लगता है तब दातागण वस्त्र से या हाथ के पंखे से हवा करते हैं इस समय सुपात्र का आहार निर्विघ्न निराकुलतामय अच्छी तरह से हो जाये ऐसी भावना रहती है अतः यही मंद सुगंध पवन बहना आश्चर्य है।

प्र.-488 आजकल आहारदान के प्रसंग में रत्नवृष्टि किस प्रकार से होती है?

उत्तर- आहार होने के पहले या बाद में अनेक श्रावक श्राविकायें आहारदान दाताओं को रुपये देते हैं, सामान लाकर देते हैं कि यह हमारी सामग्री आहार में लगा देना या दाता स्वयं सिक्के, रत्न उछालते हैं आदि प्रकारों से आज इस पंचमकाल में पंचाश्चर्य देखे जा रहे हैं। इन कार्यों से अजैनों में तथा हीन पुण्यात्माओं में बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ तक कि अनेक अजैन परिवार या संस्कारहीन जैन परिवार भी जिनधर्म को, जिनाज्ञा को पालन करने में कर्मठ हो जाते हैं, पुनः स्थितिकरण को प्राप्त होते हैं अतः परिणामों की विशुद्धि के अनुसार दानादि सत्क्रियाओं के किये जाने पर आज भी पंचाश्चर्य होते हैं।

प्र.-489 ये पंचाश्चर्य दाता के लिए होते हैं या पात्र के लिए?

उत्तर- दान दाता श्रावक श्राविकाओं एवं पात्रों की महिमा को बतलाने के लिए ये पंचाश्चर्य किये जाते हैं। इस कारण विधि, द्रव्य, दाता, पात्र तथा दान प्रसंशनीय है। गृहस्थ श्रावक श्राविकाओं के लिए यह दान मोक्षमार्ग का आत्मकर्तव्य का अनन्य अंग है अतः आचार्यों ने इसे मुख्यधर्म आवश्यक कर्तव्य कहा है।

प्र.-490 गाथा में पंचाश्चर्य नहीं कहे हैं फिर आप आ. के नाम पर क्यों कह रहे हो?

उत्तर- ऐसा नहीं है जैसा कि आप कह रहे हैं। आ. श्री. ने स्वयं **'धण्णो'** पद कहा है। जैसे मन में आह्लाद हुए बिना किसी को आप धन्य है ऐसा प्रसंशावाचक शब्द नहीं कह सकते हैं अतः यह जयध्वनि है। धन्य पद के उच्चारण करने पर तालियों की आवाज, होंठों की आवाज आदि होना दुंदुभि का सूचक है, प्रशंसा करते समय मुँह से पुष्प के समान मधुर, कर्णप्रिय, हृदयग्राही, मनोनुकूल वचन निकलते हैं जो वचन पुष्प स्वरूप हैं। ऐसे ही हवा के संबंध में समझना और प्रसंग पर वचन रूपी धन, ज्ञानधन या रुपयों की वर्षा आदि की प्राप्ति होती है। सो यह सब प्रत्यक्ष देखा जा रहा है तब यह गुरु का अवर्णवाद कैसा?

प्र.-491 बिना सोचेसमझे आहार देना, विनय भक्ति करना मूर्खता क्यों नहीं है?

उत्तर- **भुक्तिमात्र प्रदाने तु परीक्षा का तपस्विनाम्।।361** अ. 8 यश.च. **अर्थः-** भोजन मात्र देने के लिए तूं तपस्वियों की क्या परीक्षा करता है। अरे! परीक्षा करना है तो दूसरे कार्यों में करो। क्या भोजन देते समय पशुपक्षियों की, परिवार वालों की, सगेसंबंधियों की, राजनेताओं की, बालबच्चों की और प्रजाजनों की परीक्षा करते हो? नहीं, भूंखे प्यासे को भोजन देने से तत्काल वेदना दूर हो जाती है, मन प्रसन्न हो जाता है आदि जब विषयभोगों में लिप्त व्यक्तियों की परीक्षा नहीं करते हो तो त्यागी व्रती, गृहत्यागी, जिनमुद्राधारियों की क्या परीक्षा करते हो? उनके माध्यम से अपने को पवित्र बना लो, उनकी नवधाभक्ति यदि मूर्खता कहलायेगी तो हमेशा विषयभोगों में नाना पाप कार्यों में आसक्त गृहस्थों को भोजनदान देना, आदर सम्मान करना महामूर्खता क्यों न कहलायेगी?

प्र.-492 आहारदान दाता कैसा हो और किस गति का होना चाहिये?

उत्तर- मोक्षमार्ग की अपेक्षा अव्रतीश्रावक दाता चारों गतियों में होते हैं, चरणानुयोगानुसार दानादि कर्तव्यों का पालनने वाले मनुष्य, देव और तिर्यंचगति में होते हैं। अणुव्रती दाता मनुष्य तिर्यंचों में होते हैं फिर भी यहाँ मनुष्यगति संबंधी दाता को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-493 यहाँ देवगति संबंधी दाताओं को क्यों ग्रहण नहीं किया?

उत्तर- हाँ, ग्रहण कर सकते हैं पर यहाँ मनुष्यगति संबंधित दाताओं की मुख्यता है, इन्हीं का प्रकरण चल रहा है क्योंकि मुनि बनने की सामर्थ्य वाले गृहस्थों की अपेक्षा से कथन किया है।

प्र.-494 यह कैसे जाना कि यहाँ कर्मभूमिज मनुष्य दाताओं की अपेक्षा कथन है?

उत्तर- 8वीं गाथा में **'ते मणुया'** इस पद से तथा 11वीं गाथा में **'चागु ण'** इस पद से जाना जाता है कि यहाँ कर्मभूमिज मनुष्यों का ही प्रकरण है, शेष का नहीं क्योंकि त्याग मनुष्य ही कर सकते हैं, देवगण नहीं अतः त्याग करने की सामर्थ्य होने पर भी त्याग नहीं कर सकते हैं तो ऐसा मोहीजीव बहिरात्मापतंगा लोभकषाय रूपी अग्नि के मुख में पड़कर मरता है इसमें संदेह नहीं ऐसा कहा है।

प्र.-495 क्या पूर्ण असंयमी अव्रती गृहस्थों के हाथ से मुनिजन आहार ले सकते हैं?

उत्तर- नहीं ले सकते हैं क्योंकि ये सदाचारी, सद्विचारी, मूलगुणों का, षडावश्यकों का पालन नहीं करते हैं, देव शास्त्र गुरु के अनाज्ञाकारी हैं ऐसे पूर्ण असंयमी अव्रती गृहस्थों के हाथ से आहार नहीं ले सकते हैं।

प्र.-496 ऐसे असंयमी अव्रती गृहस्थों के हाथ से आहार लेना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- केवल सदाचार सद्विचार विहीन गृहस्थों से आहार लेना चाहिये ऐसा कहने में काय से कृतभंग न होकर कारित और अनुमोदना भंग बन जाता है। जैसे जंगल में वज्रजंघ श्रीमति ने जिन भावों से मुनिराज को आहार दिया था उन्हीं भावों से वहाँ बैठे हुए बंदर, नेवले, सर्प और सुअर/सिंह ने तथा रामसीता के द्वारा आहार देते समय जटायुपक्षी ने भी अनुमोदना से दान दिया था सो इन दृष्टांतों में राजारानियों ने काय से कृतभंग पूर्वक दान दिया और उन तिर्यंचों ने अनुमोदना से दान दिया अतः उक्त प्रश्न में काय से कृतभंग पूर्वक दान का कथन किया है, न कि अनुमोदनाभंग से फिर भी दान के फल में कोई अंतर नहीं है।

प्र.-497 फल में अंतर न होने से सभी अनुमोदना से ही दान देवें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, आपत्ति है। जैसे छत पर चढ़ने की सिढ्ढियों पर क्रम से आरोहण करने पर छत की प्राप्ति होती है उल्लंघन करने पर नहीं या श्रेणी आरोहण में गुणस्थान परिपाटी का उल्लंघन नहीं होता है ऐसे ही यहाँ मनुष्यों को क्रम का उल्लंघन नहीं करना चाहिये, यदि उल्लंघन किया तो अकर्मण्यपने का प्रसंग आता है तथा धर्मकार्यों में काय से कृत भंग को छोड़कर शेष भंगों से फल चाहते हो

तो सांसारिक विषयभोगों को कायकृत भंग से न कर कारित अनुमोदना से विषयानंद प्राप्त कर लो तो क्या आपत्ति है? ठीक ऐसे ही धर्मकार्य काय से कृत करने के बाद कराने और अनुमोदना करने में सुंदरता होती है, अन्यथा नहीं।

प्र.-498 कृत कारित अनुमोदना भंगों का क्या अर्थ है?

उत्तर- कृत- स्वयं कार्य करना। कारित- दूसरों से कार्य कराना या कार्य करने की प्रेरणा देना। अनुमोदना- कार्य करने वालों की हाथ पैर आँखादि के द्वारा सराहना करना या आशीर्वाद देना।

प्र.-499 ऐसे पूर्ण असंयमी गृहस्थों के हाथ से आहार लेने में क्या दोष है?

उत्तर- मोक्षमार्ग के त्यागी, संसारमार्गी गृहस्थों से यदि आहार लेने में दोष नहीं है तो अजैनों से, मलेच्छों से आहार लेने में भी दोष नहीं होना चाहिये किंतु दाताओं के 7 गुणों में श्रद्धा और भक्ति कहा है सो ऐसे अश्रद्धालु अभक्त दाताओं के हाथ से आहार लेने पर पात्र में भी अश्रद्धान पने, अभक्तपने का, अनाज्ञाकारीपने का प्रसंग आता है यही महान दोष है। जैसे **यथा दाता तथा पात्र।**

प्र.-500 तो फिर मुनि चंद्रगुप्तजी ने असंयमी देवों के हाथ से आहार क्यों लिया?

उत्तर- मुनिराज चंद्रगुप्तजी श्रावक श्राविकायें समझकर उनके हाथ से आहार लेते रहे किंतु जब मालुम पड़ा कि यहाँ असंयमी अव्रती देव देवांगनाओं ने नगर बसाकर आहार दिया है और हमने लिया है तब मुनि श्री चंद्रगुप्तजी ने और विशाखाचार्यजी ने संघ सहित प्रायश्चित्त लिया अब यदि असंयमी गृहस्थों के हाथ से आहार लेने में दोष नहीं है तो विशाखाचार्यजी सहित समस्त संघ ने प्रायश्चित्त क्यों लिया?

प्र.-501 तो फिर आजकल आचरणविहीन दाताओं से आहार क्यों लिया जाता है?

उत्तर- उत्तम मध्यम पात्रों को स्वयं सोचना चाहिये कि ऐसे हीनाचारी दाताओं से आहार लेना योग्य है या अयोग्य तथा इससे मोक्षमार्ग की साधना होती है या विराधना। इससे कुछ अंशों में व्यक्तिगत प्रभावना, आकर्षण, संगठन बनाने के लिए आहार लिया जाता है, धर्मप्रभावना के निमित्त नहीं किंतु मोक्षमार्ग की अनंतगुणी विराधना ही होती है ऐसे चारित्रहीन दाताओं में आचारविचार की शुद्धि वृद्धि न होकर अहंकार लोभादि कषायों की पुष्टि वृद्धि ही होती हुई देखी जा रही है और इसीसे समाज का पतन हो रहा है।

प्र.-502 यहाँ असंयमी अव्रती से क्या मतलब है?

उत्तर- रात्रिभोजी, अनछना पानी पीने वाले, तीन मकारों के सेवी, सप्त व्यसनों के सेवी, कंदमूलों के भक्षी, जिनेंद्र के न्याय का उल्लंघन करने वाले अन्यायी, अभक्ष्य सेवी, देवदर्शन नहीं करने वाले, मूलगुणों का पालन नहीं करने वाले, धर्ममार्ग में कलंक पैदा करने वाले असंयमी अव्रती दाताओं से मतलब है।

प्र.-503 क्या विधवाविवाह करने वाले, तलाकविवाह करने वाले न्यायी हैं?

उत्तर- नहीं, ये अन्यायी हैं, अनाज्ञाकारी हैं क्योंकि जिनेंद्र ने, आचार्यों ने जब सदाचारियों को वेश्यासेवन और परस्त्री सेवन का त्याग कराया है तो विधवाविवाह और तलाकविवाह करानेवाले जिनवाणी और आचार्यों के विरुद्ध प्रचार प्रसार करने कराने वाले क्या न्यायी हैं? अन्यायी नहीं हैं तो क्या हैं? क्योंकि जब आ. श्री सोमदेवजी ने नीति. त्रयीसमुद्देश में कहा है- **सकृत परिणयन व्यवहाराः सच्छूद्राः॥11॥** जब सत्शूद्रों में एक ही बार पाणिग्रहण संस्कार होता है तो ये उच्चकुलीन होकर के पुनः परिणयनसंस्कार कराते करवाते हैं तब ये सत्शूद्र से भी नीचे क्यों नहीं हुए या महाशूद्र क्यों नहीं कहलाये?

नोटः- यहाँ तक 503 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 14वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 15वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुपात्रदान का फल

दिण्णइ सुपत्तदाणं विसेसदो होइ भोगसग्गमही।
णिव्वाणसुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥15॥

दीयते सुपात्रदानं विशेषतो भवति भोगस्वर्गमही।
निर्वाणसुखं क्रमशः निर्दिष्टं जिनवरेंद्रैः ॥

सुपत्तदाणं सुपात्र को दान **दिण्णइ** देने से **विसेसदो** विशेषतः **भोगसग्गमही** भोगभूमिज, स्वर्गी **होइ** होता है और **कमसो** क्रमशः **णिव्वाणसुहं** निर्वाणसुख पाता है ऐसा **जिणवरिंदेहिं** सर्वज्ञ केवली भगवान जिनेंद्र देव ने **णिद्दिट्ठं** कहा है।

अर्थ- यहाँ ग्रंथकार महोदय ने विपाकविचय धर्मध्यान और इसका फल बतलाया है।

प्र.-504 विपाकविचय धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- शुभाशुभ चर्याओं से कैसे शुभाशुभ कर्म का आश्रवबंध, संवर निर्जरा होती है? क्या फल है? किस क्षेत्र में, कितनी मात्रा में प्राप्त होता है आदि विचार करना विपाकविचय धर्मध्यान है।

प्र.-505 इस धर्मध्यान का फल कहाँ किस प्रकार से प्राप्त होता है?

उत्तर- उत्कृष्ट फल पापकर्मों का संवर, पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यातगुणी निर्जरा, मोक्ष प्राप्ति में सहायक, बद्धायुष्क को भोगभूमि की, स्वर्ग की प्राप्ति, इन स्थानों के सुख, वैभव, स्वामित्व प्राप्त होना इस धर्मध्यान का साक्षात् फल है तथा बाद में निर्वाण सुख प्राप्त होना यह परंपरा फल है।

प्र.-506 विपाकविचय धर्मध्यान और निदान आर्तध्यान में क्या अंतर है?

उत्तर- विपाकविचय धर्मध्यान में किस कर्म का क्या फल है यह विचार किया जाता है और निदान आर्तध्यान में इस करनी का फल हमें प्राप्त हो यह विचार किया जाता है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-507 विपाकविचय धर्मध्यान क्या मिथ्यादृष्टियों के होता है?

उत्तर- नहीं, मिथ्यादृष्टियों के एकमात्र आर्तध्यान रौद्रध्यान ही होते हैं। इनके कषायों की मंदता होने से सरल परिणाम होते हैं वे परिणाम धर्मध्यान न होकर शुभ लेश्या और शुभयोग स्वरूप हैं।

प्र.-508 सुपात्र किसे कहते हैं और कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- वर्तमाननय से सम्यक्रत्नत्रय से युक्त मोक्षमार्गी को, आत्मसाधक आराधक को तथा भव्यों के मार्गदर्शकों को सुपात्र कहते हैं। भेद तीन हैं। नामः- उत्तमपात्र, मध्यमपात्र और जघन्यपात्र।

प्र.-509 कुपात्र किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी संबंधी विषयकषायों से सहित, अन्याय, अभक्ष्य का सेवन करने वाले तथा नाना प्रकार के विकार युक्त भेष धारण करने वालों को कुपात्र कहते हैं।

प्र.-510 अपात्र किसे कहते हैं?

उत्तर- कुपात्रों के भक्तों को तथा कुपात्रों की आज्ञा पालन करने वालों को अपात्र कहते हैं।

प्र.-511 उत्तम साधक किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्ष के साक्षात् सकलसंयमी को तथा उपचार से आर्यिकाओं को उत्तम साधक कहते हैं।

प्र.-512 मध्यम साधक किसे कहते हैं?

उत्तर- अप्रत्याख्यानावरणकषाय के उदयाभाव वाले प्रतिमाधारियों को मध्यम साधक कहते हैं।

प्र.-513 जघन्य साधक किसे कहते हैं?

उत्तर- सर्वत्र सदा सदाचारी सद्विचारी श्रावक श्राविकाओं को जघन्य साधक कहते हैं।

प्र.-514 इन पात्रों का कथन करते समय गुणस्थानों का नाम क्यों नहीं लिया?

उत्तर- चरणानुयोग में बाह्य लक्षण, बाह्य आचारविचार प्रधान है, गुणस्थान गौण हैं, अभाव नहीं। जैसे विवाह में वरवधू प्रधान होते हैं बाराती घराती नहीं वैसे ही चरणानुयोग में बाह्य दिनचर्या वरवधू के समान और गुणस्थान बाराती घराती के समान हैं यद्यपि बिना बाराती घराती के वरवधु और दुल्हादुल्हन के बिना बाराती घराती नहीं होते हैं। यदि चरणानुयोग में गुणस्थानों की खोज करेंगे तो सर्व प्रथम अपनी खोज करो कि हमारी आत्मा भव्य है या अभव्य, दूरानुदूरभव्य है या निकटभव्य, अनादि मिथ्यादृष्टि है या सादि मिथ्यादृष्टि, गृहीत मिथ्यादृष्टि है या अगृहीत मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि है तो उपशम सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि में कौन सा? यथार्थ में ऐसे निर्णय के बाद में पात्र की परीक्षा करो तो व्यवस्था सही बन सकती है, अन्यथा स्वयं की परीक्षा किये बिना दूसरों की परीक्षा करने चले तो **यतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः** जो कुछ सदाचार सद्विचारों का पालन करते हो वह भी हाथ से चला जायेगा क्योंकि परीक्षक ही परीक्षा ले सकता है। जिसने स्वयं परीक्षा नहीं दी है वह दूसरों की परीक्षा लेने का अधिकारी नहीं है अतः पहले विद्यार्थी बनकर फिर परीक्षा में पास होकर गुरु बनकर परीक्षा लो तब शोभा देता है।

प्र.-515 बाराती और घराती किसे कहते हैं?

उत्तर- दुल्हापक्ष वालों को बाराती और दुल्हन पक्ष वालों को घराती कहते हैं।

प्र.-516 भोगभूमि किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ पर या जिस क्षेत्र में असि मसि कृषि सेवा शिल्प और वाणिज्य इन 6 कर्मों के द्वारा आजीविका न चलाकर केवल पूर्व पुण्योदय से कल्पवृक्षों के द्वारा विषय सामग्री को प्राप्त कर तथा विक्रिया के द्वारा नाना रूप बनाकर भोग भोगे जाते हैं सो उस इंद्रियभोग भोगने वाले क्षेत्र को भोगभूमि कहते हैं।

प्र.-517 ये कल्पवृक्ष किस प्रकार के होते हैं और कितने होते हैं?

उत्तर- लोकपरिभाषा में इन कल्पवृक्षों को पृथ्वीकायिक कहा है तथा ये दस प्रकार के होते हैं।

प्र.-518 यदि ये कल्पवृक्ष पृथ्विकायिक हैं तो क्या मिट्टी पत्थर खाते और पहनते हैं?

उत्तर- पृथ्वि और शेष चार स्थावरों का आधार आधेय संबंध होने से अभेद विवक्षा में पृथ्विकायिक कहकर कथन किया है क्योंकि मिट्टी पत्थर के मिष्ठान्न पक्वान्न तथा वस्त्र नहीं होते हैं किंतु ये वनस्पतियों के होते हैं फिर भी वहाँ मिष्ठान्न, पक्वान्न बनाने के लिए न तेल घी है, न चूल्हा, कड़ाई, चकला, बेलन है किंतु जो स्वाद तुष्टि पुष्टि यहाँ इन सामग्रियों से प्राप्त होती है वही स्वाद आदि वहाँ के वृक्षों से प्राप्त पत्तों से, फलों से होती है या कल्पवृक्ष में वृक्ष नाम है और वृक्ष वनस्पतियों में ही होते हैं शेष चार स्थावरों में नहीं।

प्र.-519 भोगभूमियों के कितने भेद हैं?

उत्तर- दो भेद हैं। **नामः-** मनुष्यों और तिर्यंचों से संबंधित तथा देवों से संबंधित या अवस्थित, अनवस्थित मनुष्यों एवं तिर्यंचों से संबंधित भोगभूमि के उत्तम मध्यम और जघन्य ये तीन भेद हैं। देवों से संबंधित भोगभूमि के भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार भेद हैं।

प्र.-520 ये भोगभूमियां कहाँ कहाँ पर अवस्थित हैं?

उत्तर- आर्य मनुष्यों से संबंधित भोगभूमियां केवल ढाईद्वीप के अंदर ही अवस्थित है। तिर्यंचों संबंधित भोगभूमियां ढाईद्वीप में मनुष्यों के साथ तथा मानुषोत्तर पर्वत के आगे और स्वयंभूरमण द्वीप पर्यंत असंख्यात द्वीपों में जघन्य भोगभूमियां हैं। देवों से संबंधित भोगभूमियां भवनवासी और

कुछ व्यंतरों की अधोलोक के खरभाग और पंकभाग में हैं। कुछ व्यंतरों की और ज्योतिषी देवों से संबंधित भोगभूमियां मध्यलोक में हैं। वैमानिक देवों से संबंधित भोगभूमियां ऊर्ध्वलोक में हैं।

प्र.-521 स्वर्गभूमि को भोगभूमि क्यों कहा?

उत्तर- क्योंकि इन चतुर्निकाय देवों को भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है तथा हमेशा अपरिवर्तनशील सुषमा सुषमा काल रहता है विषय तृप्ति के लिए असि मसि आदि षट्कर्तव्यों का प्रयोग नहीं करना पड़ता है न नाना प्रकार की पापक्रियायें करना पड़ती हैं अतः इनको भोगभूमि कहते हैं।

प्र.-522 स्वर्गभूमि किसे कहते हैं?

उत्तर- देवायु, देवगति, वैक्रियिकशरीरादि पुण्य नामकर्मोदय से प्राप्त क्षेत्र को या भवनत्रिक और वैमानिकदेवों के निवास स्थान को स्वर्ग कहते हैं। ये स्वर्ग स्थान भवनवासी व्यंतरों के अधोलोक में, कुछ व्यंतरों के और ज्योतिषी देवों के मध्यलोक में तथा वैमानिकदेवों के ऊर्ध्वलोक में हैं।

प्र.-523 भोगभूमियों में कौन कौन जीव निवास करते हैं?

उत्तर- मध्यलोक संबंधी उत्तम मध्यम और जघन्य भोगभूमि में आर्य आर्या मनुष्य तथा सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी तिर्यंच निवास करते हैं। यहाँ नपुंसक नहीं होते हैं।

प्र.-524 स्वर्गों में कौन निवास करते हैं और ये अपना समय कैसे व्यतीत करते हैं?

उत्तर- स्वर्गों में चतुर्निकाय देव निवास करते हैं। ये सभी एकमात्र पुण्यफल ही भोगते हैं क्योंकि ये पुण्य के फल हैं, पाप के नहीं। इनको इंद्रियसुख के लिए असि आदि षट्कर्म नहीं करने पड़ते हैं किंतु ये इच्छापूर्ति के लिए कल्पवृक्षों से याचना कर सामग्री लेकर मनोकामना पूर्ण कर लेते हैं। यहाँ बुढ़ापा, बीमारियां नहीं आती हैं, राजनीति, कूटनीति, वैरविरोध, लड़ाई झगड़ा, मारकाट, युद्ध, चोरीडकैती, व्यसनी जीवादि द्रव्य से हिंसादि पाप नहीं करते हैं। एकमात्र सरल परिणामी, भद्र परिणामी पुण्यात्मा जीव होते हैं।

प्र.-525 पापीजीव और पुण्यजीव कौन कौन कहलाते हैं?

उत्तर- पहले दूसरे गुणस्थान वाले पापीजीव एवं शेष सभी गुणस्थान वाले पुण्यजीव कहलाते हैं।

प्र.-526 तो फिर सभी देवों को पुण्यजीव क्यों कहा?

उत्तर- प्र. 524 में केवल पुण्यप्रकृतियों के उदय की अपेक्षा सभी देवों को पुण्यजीव कहा है और प्र. 525 के उत्तर में गुणस्थानों की अपेक्षा पापी और पुण्यजीवों का कथन किया है।

प्र.-527 स्वर्ग एक है या अनेक?

उत्तर- संग्रहनय की अपेक्षा स्वर्ग एक है और व्यवहारनय या भेद नय से स्वर्ग के अनेक भेद हैं।

प्र.-528 बद्धायुष्क जीवों को सुपात्र दान का क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- मिथ्यात्वावस्था में मनुष्यायु या तिर्यंचायु का बंधकर किसी गृहस्थ ने रत्नत्रयधारी उत्तम मध्यम और जघन्य पात्रों को आहारादि दान देकर वैय्यावृत्ति की है तो क्रमशः उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि में जन्म लेता है अथवा सुपात्रों को दान देते समय दाता के भावों में कितनी निर्मलता प्राप्त हुई है तथा दाता ने विषयकषायों का कितना दमन किया है तदनुसार भोगभूमियों की प्राप्ति होती है।

प्र.-529 क्या दाता को दान का केवल इतना ही फल प्राप्त होता है?

उत्तर- नहीं, सुपात्र दान के फल से वह दाता सर्व प्रथम भोगभूमियों में पल्यों पर्यंत इंद्रियसुख भोगकर स्वभाव में सरलता होने से देवायु को बांधकर मरण कर देवों में उत्पन्न होकर सागरों

पल्यों हजारों वर्ष पर्यंत इंद्रियसुखों को भोगकर शेष बचे पुण्य को कर्मभूमि के मनुष्यों में जन्म लेकर उत्तम पदवी को प्राप्त कर राजसुखों को भोगकर पुनः देवगति को प्राप्त होते हैं अथवा कोई कोई मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् सुपात्र दान से एक समय में बांधा गया पुण्यकर्म जब इतना फल देता है तो जो हमेशा दान देते हैं उन्हें कितना फल प्राप्त होगा वह वचनातीत है। जैसे आम, नारियल आदि वृक्षों के फलों को अनेक पीढ़ियों तक मनुष्य प्राप्त कर भोगते रहते हैं अतः सुपात्र दान की महिमा जितनी गाई जाये वह थोड़ी ही है।

प्र.-530 अबद्धायुष्क दाता को दान का क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- यह दाता सुपात्र दान के फल से परिणामों की निर्मलता अनुसार सौधर्मस्वर्ग से लेकर 16वें स्वर्ग तक तथा दान देने के बाद में कदाचित् परिणाम मलिन होने से भवनत्रिक में जन्म ले सकता है।

प्र.-531 क्या सुपात्र दान का इतना ही फल है?

उत्तर- नहीं, यदि देव देवांगनाओं ने धर्मायतनों की अनन्यभक्ति के माध्यम से एकभवावतारी हो शेष भवों का अंत कर दिया है तो मनुष्य भव धारणकर उत्तमसुखों को भोगकर उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्र.-532 यदि सुपात्रदान से उत्तम फल मिलता है तो लौकिक फल किससे मिलता है?

उत्तर- सुपात्रदान से लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रकार के फल प्राप्त होते हैं या मन की मलिनता पूर्वक विषयकषाय, आर्तरौद्रध्यान और मिथ्यात्वोदय से निदान पूर्वक यदि सुपात्र दान दिया है तो निरतिशय पुण्योपार्जन करके मनुष्यों के राजा महाराजाओं के वैभव सुख प्राप्त होते हैं। जैसे दो चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, नारद रौद्र आदि हैं इसके बाद मरण कर नरक के पात्र होते हैं।

प्र.-533 ये शलाका पुरुष और पुण्य पुरुष नरक में क्यों जाते हैं?

उत्तर- ये शलाका पुरुष और पुण्य पुरुष उत्तमदान और उत्तमतप से उपार्जित पुण्य के फल हैं तो भी इसी भव में विषयभोगों में बहुआरंभपरिग्रह में आसक्त हो अंत पर्यंत रमण करते हुए नरकायु को बांधकर धर्म नीति को छोड़कर प्रजा के निमित्त राज्य वैभवादि में आसक्ति के कारण मरणकर नरक में उत्पन्न होते हैं।

प्र.-534 एकमात्र भोगविलासी क्षेत्रों में मोक्षमार्ग न होने पर भी इतना वैभव क्यों?

उत्तर- यद्यपि वहाँ जिनेंद्र मतानुसार मोक्षमार्ग की साधना त्याग तप नहीं है फिर भी राजा प्रजा के सुख के लिए, प्रजा के निमित्त धन वैभव, पढ़ाई, मकान, वस्त्राभूषण, औषधि, शादी आदि कराते हैं, व्यवस्था करते कराते हैं तो वे प्रजा के द्वारा प्रशंसा के पात्र होते हैं, मंगल कामना की जाती है और दान दाताओं की कषायें मंद होने से लोकानुसार सातिशय पुण्यबंध करके अनंतर पुण्योदय से भोगोपभोग की सामग्री उनको प्राप्त होती है। भोगसामग्री से ही भोगों में, व्यसनों में आसक्त होकर अपना समय व्यतीत करते हैं।

प्र.-535 कुभोगभूमि कीप्राप्ति कैसे होती है?

उत्तर- कुपात्रदान, सुपात्रदान से तथा अपात्रदान से भी कुभोगभूमि की प्राप्ति होती है क्योंकि दान से सातिशय और निरतिशय पुण्य की प्राप्ति होती है और पुण्य से भोग संपदाओं की प्राप्ति होती है।

प्र.-536 भारत से बाह्य शेष देशों को कुभोगभूमि कह सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं कह सकते हैं क्योंकि इन देशों में भी आजीविका चलाने के लिए असि मसि आदि षट् कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है सो ये कुभोगभूमि नहीं हैं या इन देशों में कल्पवृक्षों का अभाव है, यहाँ के समान ही किंचित् अंतर के साथ शारीरिक अवगाहना, आयु, भोगसामग्री, वस्त्राभूषण पाये जाते हैं आदि कारणों से उनको कुभोगभूमि नहीं कह सकते हैं, कदाचित् इन

देशों को उपमलेच्छ कह सकते हैं।

प्र.-537 कर्मभूमि के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं एवं फल क्या है?

उत्तर- दो भेद हैं, आर्यखंड और मलेच्छखंड। आर्यमनुष्यों की क्रियायें सांसारिक फल पूर्वक मोक्षफल को भी देती हैं किंतु मलेच्छमनुष्यों की क्रियायें केवल चतुर्गति रूप संसारफल को ही देती हैं।

प्र.-538 सुपात्रदान और अपात्र दान से कुभोगभूमि की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर- मनुष्यायु को बांधकर बाद में सुपात्रदान से सातिशय पुण्यार्जन कर सुभोगभूमि में जन्म लेना था किंतु उस पुण्य को तीव्र विषयभोगों में, पंथवाद, पक्षपात के वैरविरोध में फंस करके सुभोगभूमि की आयु को घटाकर कुभोगभूमि में जन्म ले लेता है।

प्र.-539 लौकिक प्रजा पात्रों को अपात्र कुपात्र समझकर दान देती है या कुछ और?

उत्तर- नहीं, प्रजा अपने[2] शिक्षा संगति और संस्कारानुसार नाना भेषधारियों को ही यथार्थ मानकर आदर सम्मान भक्ति करती है, अपात्र कुपात्र, सदोष मानकर नहीं। ये अपात्र हैं, कुपात्र हैं ऐसा अरिहंतों ने कहा है। यदि उनको सहीगलत की यथार्थ पहंचान हो जाये तो गलत को छोड़कर सही ग्रहण कर सकते हैं।

प्र.-540 मलेच्छ और मलेच्छाचरण वाले यथार्थ समझकर जीवन सुधार सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, कुछ ही प्रतिशत व्यक्ति सुधार कर सकते हैं सभी नहीं। जैसे आजकल गुटका, शराब, मांस, कामसेवनादि को हानिकारक जानकर भी नहीं त्यागते हैं क्योंकि अपने जीवन के उत्थानपतन में शिक्षा संगति और संस्कारों का भी बड़ा महत्त्व है इसलिए गलत को गलत और सही को सही समझकर भी त्याग और ग्रहण नहीं कर पाते अतः सुधार नहीं हो रहा है।

प्र.-541 'भोगसग्गमही' को अखंड पद मानकर अर्थ क्यों नहीं किया?

उत्तर- नहीं, **भोगसग्गमही में मही** बहुवचन का रूप है अतः अलग[2] कथन किया है। यदि अखंड पद होता तो भोगभूमि तथा स्वर्ग एक ही होते तब भोगभूमिज मनुष्य एवं तिर्यंच होते देव नहीं या देव होते तो मनुष्य तिर्यंच नहीं, ऐसा होने से भरतक्षेत्र के आर्यखंड में शाश्वत अशाश्वत कर्मभूमि और भोगभूमि की व्यवस्था नहीं बन सकती तथा भोगभूमि के लिए एकमात्र असंयम, मंद कषाय एवं दान आदि कारण हैं तो स्वर्ग के लिए असंयम, देशसंयम और सकलसंयम कारण हैं अतः अखंड पद मानकर अर्थ नहीं किया है।

प्र.-542 भरत ऐरावत क्षेत्रों के आर्यखंड में भोगभूमि और कर्मभूमि की व्यवस्था क्या शाश्वत है या अशाश्वत तथा गति आगति किस प्रकार से है?

उत्तर- हैरण्यवत और हैमवत जघन्य भोगभूमि, रम्यक और हरिक्षेत्र मध्यम भोगभूमि, देवकुरु उत्तरकुरु उत्तम भोगभूमि है ये शाश्वत भोगभूमियां हैं। मलेच्छखंड, विद्याधर नगरियां, विदेहक्षेत्र ये शाश्वत कर्मभूमियां हैं। अंतर्द्वीपज मलेच्छनगर और कुभोगभूमि ये जघन्य भोगभूमि के समान हैं। भरत ऐरावत क्षेत्र के दोनों आर्यखंड कर्मभूमि से भोगभूमि और भोगभूमि से कर्मभूमि में परिवर्तित होते रहते हैं, अशाश्वत हैं। यहाँ इन दोनों क्षेत्रों में अवसर्पिणी का पहला दूसरा तीसरा काल उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमि का है, चौथा पाँचवां और छठवाँ काल कर्मभूमि का है। इसी प्रकार उत्सर्पिणी का छठवाँ पाँचवां चौथा काल कर्मभूमि का और तीसरा दूसरा पहला काल भोगभूमि का है। इन भोगभूमियों में विद्याधर और विदेहक्षेत्र से आकर जन्मते हैं। कदाचित् मलेच्छ खंड से भी यहाँ जन्म ले सकते हैं। भोगभूमिज एकमात्र देवगति में ही जाते हैं। चौथे काल के मनुष्य चारों गतियों में तथा मोक्ष में भी जा सकते हैं। चौथे काल के जन्मे चरम शरीरी पंचमकाल के प्रारंभ में मोक्ष जाते हैं शेष चारों गतियों में जाते हैं। पंचमकाल के अंतिम चरण में तथा छठवें काल में अत्यंत कलहप्रिय, विषयलोलुपी, अशुभ लेश्याओं वाले, आर्तरौद्रध्यानी, अनावश्यक आरंभ परिग्रही,

पापासक्त मनुष्य मरण कर नरक तिर्यंचगति जाकर वहाँ से वापिस यहीं आते हैं।

प्र.-543 जब इतना क्लिष्ट काल है तो तिर्यंच और नरक से मनुष्यों में क्यों आते हैं?

उत्तर- जितना क्लिष्ट काल यहाँ है इससे अनंतगुणा अधिक क्लिष्ट काल वहाँ नरक तिर्यंच क्षेत्रों में है अतः वहाँ की अपेक्षा यहाँ क्लिष्टता कम होने से वहाँ से मनुष्य और तिर्यंचों में जन्मते हैं क्योंकि जब प्राणी अत्यंत दुःखी होता है तो दुःख से बचने के लिए सरल परिणामों का सहारा लेता है अतः वे तिर्यंच और नारकी अत्यंत दुःखी होने के कारण कुछ मंद परिणाम बना करके उत्तम अवस्था को प्राप्त करते हैं। कहा है- **'स्वभाव मार्दवं च'।।18।। 'निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्'।।19।।** त. सू. अ. 6 स्वभाव सरल होने से तथा शील और व्रत के बिना असंयम होने से मनुष्यायु का तथा चारों आयुओं का आश्रव होता है।

प्र.-544 यहाँ के मनुष्य और तिर्यंच वहाँ की आयु को क्यों बांध लेते हैं?

उत्तर- यहाँ के मनुष्य और तिर्यंच वहाँ की अपेक्षा अत्यंत मंदबुद्धि वाले हैं। जैसे पाश्चात्यदेशों के निवासी मांस शराब आदि के सेवन से त्रस्त होकर हानि समझकर इनको छोड़कर ऊपर उठ रहे हैं और यहाँ के प्राणी अपनी धर्मचर्या से घबराकर वहाँ की दिनचर्या को अपना रहे हैं ऐसे ही ऊपर वाले नीचे जाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं सो वह सोचनीय दयनीय दशा है अर्थात् यहाँ के मनुष्यों को उत्कृष्ट बनने की चिंता नहीं हैं तभी तो निकृष्ट बन रहे हैं किंतु निकृष्ट प्राणी उत्कृष्ट बनने के आचारविचारों से उत्कृष्ट बन जाते हैं।

प्र.-545 निर्वाण पद को कौन से जीव प्राप्त कर सकते हैं?

उत्तर- परम पारिणामिकभाव की अपेक्षा कोई भी जीव निर्वाण पद को प्राप्त नहीं करता है क्योंकि इस भाव की अपेक्षा संसार और मोक्ष नहीं है। जो बंधेगा वही छूटेगा जो बंधा नहीं है वह कैसे छूटेगा? वर्तमाननय से मनुष्य ही निर्वाणपद को प्राप्त करेगा क्योंकि मोक्ष की योग्यता सभी जीवों में होने पर भी सभी जीव मोक्ष पर्याय को उत्पन्न नहीं करते। यह व्यक्त करने की योग्यता केवल आर्यखंडोत्पन्न, पर्याप्तक, उच्चगोत्रीय मनुष्य, भावों की अपेक्षा त्रिवेदियों में और द्रव्य की अपेक्षा पुरुषवेदियों में है, शेष मनुष्यों में नहीं। भावि नैगमनय की अपेक्षा चारों गतियों के समस्त भव्यजीव मोक्षमार्गी बन निर्वाण प्राप्त करेंगे।

प्र.-546 निर्वाण पद की प्राप्ति साक्षात् किस भाव से होती है?

उत्तर- निर्वाण पद की प्राप्ति साक्षात् पंडितपंडित मरण करनेवालों को परमयथाख्यातचारित्र या व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के अंतिम परिणाम से/ परमोत्कृष्ट क्षायिकभाव से होती है।

प्र.-547 निर्वाण पद किसे कहते हैं?

उत्तर- समस्त द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों के क्षय से उत्पन्न पद को निर्वाण पद कहते हैं।

प्र.-548 यह निर्वाण पद बौद्धमत जैसा है क्या?

उत्तर- नहीं, यह निर्वाण पद बौद्धों जैसी कल्पना के अनुसार न होकर वस्तुव्यवस्था के अनुसार है। कर्मों से मुक्त हुए जीव ऊर्ध्वगमन स्वभाव के द्वारा ऊर्ध्वगमन क्रिया करके लोकांत में अक्षय अनंतानंत काल तक के लिए जा विराजते हैं, अब कार्य रूप में परद्रव्यों के साथ अत्यंताभाव होने से पुनः वापिस नहीं आते।

प्र.-549 ऊर्ध्वगमन स्वभाव और ऊर्ध्वगमन क्रिया में क्या अंतर है?

उत्तर- ऊर्ध्वगमन स्वभाव पारिणामिकभाव है और ऊर्ध्वगमनक्रिया नैमित्तिकभाव है। निमित्ताभाव में नैमित्तिक क्रिया का अभाव हो जाता है किंतु पारिणामिक भाव का नहीं यही इन दोनों में अंतर है।

नोटः- यहाँ तक 549 प्रश्नोत्तरों तक 15वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 16वीं गाथा का अर्थ करते है।

सप्तक्षेत्रों में दान का फल

इह णिय सुवित्तवीयं जो ववइ जिणुत्त सत्तखेत्तेसु।

सो तिहुवण रज्जफलं भुंजदि कल्लाण पंचफलं ।।16।।

इह निज सुवित्तबीजं यो वपति जिनोक्त सप्तक्षेत्रेषु ।

स त्रिभुवन राज्यफलं भुनक्ति कल्याण पंचफलम् ।।

इह यहाँ **जो** जो **णिय** निज **सुवित्तवीयं** न्यायनीति से कमाये गये सुवित्तबीज को **जिणुत्त** जिनोक्त **सत्तखेत्तेसु** 7 क्षेत्रों में **ववइ** बोता है **सो** वह **तिहुवण** त्रिभुवन के **रज्जफलं** राज्य एवं **कल्लाण पंचफलं** पंचकल्याणक फल को **भुंजदि** भोगता है।

प्र.-550 यहाँ ग्रंथकार ने वित्त के साथ 'सु' उपसर्ग क्यों लगाया?

उत्तर- ग्रंथकार ने 'सु' उपसर्ग का प्रयोग धनोपार्जन धर्म के अविरुद्ध उपायों से करना चाहिए विरुद्ध कार्यों से नहीं अतः धर्म के अविरुद्ध उपायों को बताने के लिए किया है ऐसा समझना चाहिये।

प्र.-551 धर्म के विरुद्ध धनोपार्जन के उपाय कौन कौन हैं?

उत्तर- जाति कुल और धर्म को कलंकित करने वाले धनोपार्जन के अनेक उपाय हैं जैसे मकारों का, अंडा, चमड़ा, चर्बी का, पशुपक्षियों का, दासीदास, नौकर नौकरानी, कंदमूलों का, जूतों का, वेश्याकर्म, गर्भपात और कीटनाशक दवाइयों का, हिंसक शस्त्रों का, कत्लखानों का, सड़ेगले घुने धान्यों का, चोरी के माल के क्रयविक्रय से, नीचगोत्र कर्मी व्यापार का तथा निरपराधी त्रस और निष्प्रयोजन स्थावर जीवों की हिंसा के कारण ऐसे व्यापारादि कार्य धर्म के विरुद्ध हैं ऐसे व्यापार सच्चे जैनों को नहीं करना चाहिए।

प्र.-552 जाति कुल और धर्म के अनुकूल धनोपार्जन के उपाय कौन कौन हैं?

उत्तर- जिन व्यापारों में षट्कायिकों की हिंसा न हो, स्व पर की रक्षा हो, प्रजा और नेताओं में ईमानदारी, धर्मात्मापने का विश्वास उत्पन्न हो, सज्जनों, धर्मात्माओं में कलंक पैदा न हो आदि उपयों से धनोपार्जन करना चाहिये। जैसे लेखनकार्य, देशसैनिक, खेती, उच्चश्रेणी की नौकरी, उच्च निर्दोष शिल्पकला, ज्वेलर्स, कपड़ा, किरानादि जाति कुल और धर्म के अनुकूल धनोपार्जन के कार्य हैं।

प्र.-553 किन उपायों से कमाया गया धन सुवित्त कहलाता है?

उत्तर- मोक्षमार्ग, अपने उत्तम जाति कुल तथा त्रस स्थावर जीवों की रक्षा करते हुए जो धन कमाया जाता है वह सुवित्त कहलाता है क्योंकि इसमें धर्म की, ईमानदारी की, इज्जत की रक्षा होती है।

प्र.-554 यह सुवित्त किन किन कार्यों में खर्च करना चाहिये?

उत्तर- यह सुवित्त जिनेंद्र प्रणीत सप्त धर्मक्षेत्रों में तथा नव देवताओं के संबंध में खर्च करना चाहिये।

प्र.-555 जिनेंद्र प्रणीत सप्त धर्मक्षेत्र कौन कौन हैं?

उत्तर- चैत्ये चैत्यालये शास्त्रे चतुः संघेषु सप्तसु। सुक्षेत्रेषु व्ययः कार्यो नो चेल्लक्ष्मी निरर्थकः।।

जिनबिंब जिनागार जिनयात्रा प्रतिष्ठितम्। दानपूजा सिद्धांतं लेखनं सप्त क्षेत्रकम्।।

अर्थः- चैत्य- जिनबिंब, चैत्यालय- जिनालय, शास्त्र- जिनवाणी, चतुःसंघ- मुनि आर्यिका, श्रावक क्षुल्लक, श्राविका क्षुल्लिका। जिनबिंब, जिनमंदिर, तीर्थयात्रा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, धर्मायतनों के प्रति नाना दान, अनेक जिनपूजायें, शास्त्र लेखन आदि इन सप्त क्षेत्रों में जो अपनी संपत्ति का सदुपयोग नहीं करता उसकी लक्ष्मी व्यर्थ है अतः भव्य जीवों को इन सप्तक्षेत्रों में धन खर्च करना चाहिये।

प्र.-556 चैत्य में/ जिनबिंब में धन खर्च करने के लिए क्यों कहा?

उत्तर- नवदेवताओं की मूर्ति रूप धर्मायतन की स्थापना करने से रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति होती है। जबतक मूर्ति रहेगी तबतक भव्यजीव पुण्योपार्जन करते हुए कर्म काटते रहेंगे। अभिषेकपूजा आदि मोक्षमार्गानुरूप कार्य करते रहेंगे, धर्मप्रभावना स्थिर रहेगी, दाता का गुणकीर्तन भी यथावसर होता रहेगा अतः जिनबिंबार्थ धन खर्च करने को कहा, इसीसे ही भावी इतिहास भी बनता है।

प्र.-557 इन हेतुओं से जिनबिंबार्थ धन खर्च करना निदान आर्तध्यान क्यों नहीं है?

उत्तर- जिनबिंब बनवाने के लिए धन खर्च करना धर्मध्यान है, निदान आर्तध्यान नहीं क्योंकि निदान आर्तध्यान कार्यकारण भाव से अशुभ ही है, पाप ही है। यह केवल विषयभोगों के लिए, केवल बदला चुकाने या लेने के लिए होता है। जैसे नारायण प्रतिनारायण परस्पर में बदला चुकाने के लिए जन्म लेते हैं।

प्र.-558 जिनबिंब क्यों बनवाना और स्थापना क्यों करना कराना?

उत्तर- मूर्ति के माध्यम से मूर्तिमान बनने के लिए पंचपरमेष्ठियों की, नवदेवताओं की स्थापना करना कराना चाहिये। **'दूज का बदला तीज को'** के अनुसार यदि जिनमूर्ति की स्थापना कराई करवाई है तो कालांतर में अपनी भी मूर्ति की स्थापना भक्तों के द्वारा कराई जायेगी क्योंकि दर्पण के सामने जैसा मुख करोगे वैसा ही दिखाई देगा। यह निदान आर्तध्यान भी नहीं है क्योंकि निदान आर्तध्यान कार्यकारण भाव से अशुभ ही है किंतु जिनबिंब स्वरूप धर्मायतन की स्थापना करने कराने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है या भूमिका है, सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया है, धर्मध्यान की भूमिका है, धर्मध्यान है, सातिशय पुण्यबंध का, संवर निर्जरा का कारण है, पाप की हानि होती है। इस जिनबिंबदर्शन पूजन से निधत्त निकाचितकर्म करण का भी विच्छेद हो जाता है आदि हेतुओं से जिनबिंब की, नवदेवताओं की स्थापना करना कराना चाहिये।

प्र.-559 इस दृष्टि से जिनमूर्ति बनवाना ठीक है पर जिनमंदिर क्यों बनवाना?

उत्तर- बिना आधार के आधेय कैसे रहेगा? यदि तुम हो और तुम्हारे ठहरने का स्थान नहीं हो तो कहाँ रहोगे तथा तुम्हें किन किन अवस्थाओं से गुजरना होगा उस समय कैसा अनुभव होगा ऐसे ही यदि आपने जिनमूर्ति की रचना करवाई है तो उनके विराजमान के लिए स्थान बनवाना ही पड़ेगा।

प्र.-560 वेदी के बिना धरती पर ही श्रीजी को विराजमान करें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- धरती पर विराजमान कर देने से जिनेंद्र भगवान को, पंचपरमेष्ठियों को कोई आपत्ति नहीं है, न हमको आपत्ति है किंतु ऐसा करने से पूजक पूज्य में, विनयवान और विनेय में छोटे बड़े का कोई भेद नहीं रह जाता जबकि पूज्य तथा विनेय ऊंचे स्थान में और पूजक विनयवान को नीचे स्थान में होना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया तो पशुपक्षी आकर बैठेंगे, मलमूत्र क्षेपण करेंगे जिससे जिनबिंब या गुरुबिंब पर अशुद्धि होगी, उपसर्ग होगा तब आपका दिल क्या कहेगा, कैसी वेदना होगी? ऐसी घटना जब अपने पर या अत्यंत निकट सगेसंबंधी या रक्तसंबंधी पर घटेगी तभी अनुभव होगा। अपने ऊपर मलमूत्र पड़ जाये तो स्नान करना पड़ता है तथा साधुओं पर मलमूत्र गिर जाये, सूतक पातक वाले, चांडाल, मांसाहारी, शराबी, मासिक वाली स्पर्श कर जायें तो प्रायश्चित्त रूप में दंडस्नान से शुद्धि होती है अतः त्रिलोकीनाथ के ऊपर ऐसी अशुद्धि या उपसर्ग हो तो इसमें अपनी असावधानी होने से कैसे धर्मात्मा? कैसे विवेकी? सो ऐसी खुली मूर्ति धरती में विराजमान न कर सुरक्षित और बंद स्थान में वेदी पर विराजमान करना चाहिये।

प्र.-561 तो फिर बाहुबली की मूर्ति खुले मैदान में खुली क्यों खड़ी है?

उत्तर- भ. बाहुबली की मूर्ति अवश्य खुली खड़ी है पर यह उनका अतिशय है कि उनके ऊपर पशुपक्षी आकर न बैठते हैं, न निकट में रहते हैं किंतु आकर उड़ जाते हैं स्थिर नहीं रहते हैं अथवा बाहुबली की मूर्ति खुले मैदान में नहीं है उनके चारों तरफ करीब 15-20 फुट ऊंची दीवारों

के कारण आजुबाजु से कोई भी पशुपक्षी प्रवेश नहीं कर सकता है केवल उड़ करके आ सकता है सो भी ना के बराबर है या इनके समान जहाँ ऐसी मूर्तियां खड़ी है वहाँ कैसी अशुद्धि है तथा समाज का या बनवाने वाले का क्या हाल है उस परिवार का क्या हुआ? यह भी जाकर पता करने पर मालुम हो जायेगा क्योंकि जिनमूर्ति असुरक्षित होने से अपनी सुरक्षा नहीं हो सकती है। जैसे अपने घरों में बहुमूल्य आभूषण रत्न आदि को सुरक्षित और गुप्त स्थान में रखते हैं ऐसे ही इन लौकिक जड़ रत्नों की अपेक्षा बहुमूल्य अमूल्य जिनायतनों को क्या सुरक्षित स्थान में नहीं रखना चाहिये? अर्थात् अवश्य ही रखना चाहिये।

प्र.–562 जिनबिंबों को गुप्त क्यों रखना चाहिये? कू7झ7क्र

उत्तर- लोकोक्ति है कि **भोजन, भजन और भोग गुप्त स्थान में होना चाहिये**। इन कार्यों में आम जनता की, चपल बुद्धि वालों की निगाह नहीं पड़ना चाहिये क्योंकि इनमें आम जनता की निगाह पड़ने पर भोजन, भजन और भोग करने वालों का मन भी अस्थिर हो जाता है जिससे इन कार्यों के करने पर भी आनंद नहीं आ पाता ऐसे ही निर्ग्रंथ दिगंबर जिनबिंबों में चलचित्त वालों की निगाह पड़ने से खंड़ित कर सकते हैं अपहरण भी कर सकते हैं अतः जिनबिंब गुप्त स्थान में रहना चाहिये। यह आवासदान भी है।

प्र.–563 तो फिर समवशरण में भगवान खुले क्यों रहते हैं?

उत्तर- नहीं, समवशरण में भगवान खुले नहीं रहते किंतु 8वीं भूमि में भगवान गंधकुटी पर विराजमान होते हैं तथा समवशरण के चारों दरवाजों पर महान शक्तिशाली यक्ष पहरा लगाते हैं जिससे अनाड़ी, अनार्य, शूद्र और शूद्रवत् आचरण वाले प्रवेश नहीं कर पाते यह जिनेंद्र का ही अतिशय है।

प्र.–564 मंदिर और समवशरण में क्या अंतर है?

उत्तर- मंदिर कृत्रिम अकृत्रिम दोनों प्रकार के होते हैं तो समवशरण धनदकुबेर यक्ष कृत कृत्रिम है अतः मनुष्य कृत मंदिरों में अनाड़ियों का भय होता है और ये आपत्तियां भी उत्पन्न करते हैं किंतु देवकृत और अकृत्रिम साधनों में किंचित् मात्र भी आपत्तियों की आशंका न होना ही अंतर है।

प्र.–565 खुले मैदान में ऊंचे चबूतरे पर मूर्ति विराजमान करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- भगवान को और हमें कोई आपत्ति नहीं है। दीवाल में सिर मारने से सिर ही फूटता है दीवाल नहीं ऐसे ही अपनी असावधानी से, प्रमाद से धर्मायतनों में अशुद्धि या विराधना हुई तो अपनी ही विराधना है, अपनी ही अशुद्धि है, अपने ही कर्तव्य की हानि है यही आपत्ति है। बंदरों को देखो, किसी एक बंदर के ऊपर कोई आपत्ति आई तो सभी बंदर उसकी रक्षा के या आपत्ति को दूर करने के लिए जीजान से लग जाते हैं तो अपन समर्थ होने पर भी अपने पूज्यों की सुरक्षा करने में प्रमाद करने से बंदरों से भी गये बीते हो गये? अतः खुले मैदान में खुली मूर्ति नहीं होना चाहिये।

प्र.–566 चबूतरे पर विराजमान कर सर्वतः ऊंची दीवारें खड़ी करने से क्या आपत्ति है?

उत्तर- चबूतरे पर जिनबिंब विराजमान करने के बाद में चारों तरफ से ऊंची दीवारें उठा दी जायें तो नीचे, आगेपीछे, आजुबाजु से कदाचित् सुरक्षा हो सकती है पर ऊपर से कैसे होगी? ऊपर से पक्षीगण अशुद्धि करेंगे, आक्रमणकारी उपद्रवी तोड़फोड़ बंबमारी करेंगे तब कैसे सुरक्षा होगी?

प्र.–567 तो फिर कैसे मंदिर बनवाना चाहिये कि जिससे जिनबिंब की रक्षा हो सके?

उत्तर- जिनालय मजबूत सुंदर नीचे ऊपर चारों दिशाओं से सुरक्षित बनवाना चाहिये। दूर से ही जिनमंदिर की जानकारी के लिए, जिनबिंब की सुरक्षा और शुद्धि के लिए शिखर सहित बनवाने चाहिये। इसलिए जिनेंद्र कथित सप्त क्षेत्रों के दूसरे नंबर में जिनमंदिर को बनवाने की बात कही है।

प्र.–568 शिखर सहित मंदिर बनवाने से जिनबिंबों की सुरक्षा, शुद्धि कैसे होती है?

उत्तर- मंदिरजी के ऊपर शिखर होने से प्रतिमाजी के ऊपर हर किसीके पैर नहीं पड़ेंगे, न पक्षी प्रवेश कर अशुद्धि कर सकते हैं और धर्मात्माओं को धर्म पालन करने के लिए किसीके बिना पूछे अपने आप ही दूर से जानकारी हो जाती है कि यह जिनमंदिर है अतः शिखर होना जरूरी ही है।

प्र.-569 जिनमंदिर और जिनबिंब किसके सूचक हैं?

उत्तर- जिनमंदिर समवशरण का तथा वेदी में विराजमान जिनबिंब तीर्थंकर प्रभु का सूचक है।

प्र.-570 जिनमंदिर और जिनबिंब कितने प्रमाण में बनवाना चाहिए?

उत्तर- अपनी सामर्थ्यानुसार जिनमंदिर और जिनमूर्ति यथास्थान यथाप्रमाण बनवाना चाहिए किंतु मूर्ति के अंगोपांग स्पष्ट होना चाहिए जिससे बीजाक्षरों के आरोपण तथा मंत्रसंस्कार करने में स्पष्टता रहे। यदि ये संस्कार सही नहीं हो पाये तो मूर्ति केवल मूर्ति ही रहेगी, पूज्यता नहीं आ पायेगी।

प्र.-571 मंदिर निर्माण में धनखर्च करना व्यर्थ क्यों नहीं है?

उत्तर- त्रिलोकीनाथ के लिए, धर्मसाधन के लिए, मुनिनिवास के लिए धन खर्च करना अपव्यय है तो अपने निवास के लिए, पापकार्यों में, भोगविलास में, धर्मशाला के नाम से भोगशालादि बनवाने में धन का सदुपयोग है यदि ऐसा विश्वास है तब आपके अनुसार पुण्यपाप की क्या परिभाषा होगी? धर्मायतन और भोगायतन में तथा मोक्षमार्ग में और संसारमार्ग में क्या अंतर है? अतः धर्मायतन के प्रति धनखर्च करना अपव्यय नहीं है और मोह का, विषयकषायों का त्याग अवश्य ही होता है। यदि धर्मायतनों का संसर्ग सेवा आदि धन कमाने के काम में लाये जायें तो आत्मसाधना के लिए कौन से कार्य करना चाहिये? अतः धर्म- कार्य आत्मशुद्धि के लिए किये जाते हैं, न कि भोग भोगने के लिए क्योंकि भोगसाधन करना ही संसार का, पतन का साधन है सो मंदिरजी बनवाने में धन खर्च करना व्यर्थ नहीं है किंतु सार्थक ही है।

प्र.-572 शास्त्रदान में धन किस प्रकार से खर्च करना चाहिये?

उत्तर- शास्त्रों का लेखन कार्य करना कराना, छापना छपवाना, बिना कीमत के स्वाध्यायार्थ शास्त्र देना, शास्त्रों की सुरक्षा के लिए अलमारी, वस्त्रादि देना, कीड़े दीमक आदि लगने के पहले ही शास्त्रों को सुरक्षित रखना, धूप लगाना, धर्म पाठशाला, स्वाध्यायशाला चलाना चलवाना, शास्त्रभंडार रखना आदि सब शास्त्रदान ही है इनमें न्यायनीति से कमाये गये धन को लगाना चाहिये।

प्र.-573 शास्त्रों को लिखना लिखवानादि में धन खर्च करने को क्यों कहा?

उत्तर- शास्त्र संपादन में धन खर्च करने से ज्ञानवृद्धि एवं अज्ञान नाश होने से जिनधर्म की प्रभावना होती है जैसे व्यापार में हानिलाभ, सहीगलत, आयव्यय की यथार्थ जानकारी होने से लाभ होता है, अन्यथा हानि होती है इसलिए शास्त्रदान में धन खर्च करने को कहा है कारण लौकिक पुस्तकों के वितरण से लौकिक ज्ञान और लोकोत्तर शास्त्रों का दान देने से लोकोत्तर ज्ञान की प्राप्ति होती है।

प्र.-574 बिना कीमत पठनार्थ धर्मशास्त्र के लिए धन खर्च करने को क्यों कहा?

उत्तर- आध्यात्मिकज्ञान की प्राप्ति, वृद्धि स्थिति और फल प्राप्ति के लिए, आवरणकर्म क्षयार्थ धर्मशास्त्र दान में देना चाहिये क्योंकि धर्मायतन, धर्मशास्त्र आजीविका के लिए न होते हैं, न बेंचे जाते हैं। जैसे जन्मदाता माँबाप क्या बेंचे जाते हैं? नहीं, तो जिनवाणी माँ, प्रतिष्ठित जिनबिंब और गुरुजन कैसे बेंचे जायेंगे? अर्थात् जिनवाणी माँ, जिनबिंब और गुरुजनों को बेंचने से माँबाप को बेंचने से भी अनंतगुणा अधिक पापकर्मों का आश्रवबंध होता है और वर्तमान का जीवन भी विषयकषायों से भरपूर होकर कलंकित होता है। वर्तमान में मनुष्यों को कर्मबंधन से, दुर्गति में गमन से भय नहीं है, केवल कष्ट से भय है। यदि कार्य से भय है तो कारण से बचना चाहिये, अन्यथा कष्टों से बचने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसी तरह यदि अज्ञानता के कष्टों से भय है तो अज्ञानता का कारण धर्मायतनों को बेंचने से बचना चाहिये अतः धर्मशास्त्रों में, धर्मायतनों

में धन खर्च करने को कहा है जो निर्दोष है।

प्र.-575 बिना फीस के स्वाध्यायशाला पाठशाला चलाने को क्यों कहा?

उत्तर- ये कार्य ऊर्ध्वगति के लिए आत्महितार्थ किये जाते हैं। अध्येताओं से पैसा लेकर अध्ययन कराना आजीविका है, व्यापार है, ज्ञानदान नहीं क्योंकि उदरपूर्ति, विषयतृप्ति के लिए धनोपार्जन, संग्रह, संवर्धन, संरक्षण करना परिग्रह पाप है, अधोगति का मार्ग है, कल्याण का मार्ग बंद हो जाता है अतः निःशुल्क चलाना ही स्वाध्यायशाला, पाठशाला का यथार्थ अर्थ है।

प्र.-576 चतुर्विध मुनिसंघ किसे कहते हैं?

उत्तर- 1. मुनि आर्यिका, श्रावक, श्राविका 2. ऋषि, मुनि, यति, अनगार 3. दर्शनाराधना, ज्ञानाराधना, चारित्राराधना और तपाराधना को चतुर्विध मुनिसंघ कहते हैं। यहाँ चतुर्विध संघ 3 प्रकार से कहा है।

प्र.-577 इन चार प्रकार के मुनिसंघों में क्या अंतर है?

उत्तर- इन मुनिसंघों में भेदाभेद की अपेक्षा से अंतर है। आदि के दो मुनिसंघ भेदविवक्षा से हैं और अंतिम संघ अभेदविवक्षा से है क्योंकि आराधनाओं की सत्ता अपनी आत्मा में ही है जो पृथक् नहीं हो सकतीं हैं।

प्र.-578 मुनि, आर्यिकादि 4 को न मानकर शेष दो को मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इस चतुर्विध संघ को न मानना ही आपत्ति है कारण न समवशरण में 12 सभायें बन सकती हैं, न तीर्थंकर केवली के परिवार की गणना बन सकती है क्योंकि प्रभु के परिवार में मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका को ही ग्रहण किया है, शेष दो संघों को ग्रहण नहीं किया है।

प्र.-579 तो फिर सर्वत्र पहली परिभाषा ही मानी जाये तो क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, पहली परिभाषा के मानने पर तो अकेले मुनि को मुनिसंघ न कहकर अकेलेपन का प्रसंग आयेगा। शरीर से अकेले होने पर भी गुणों की अपेक्षा चतुर्विध मुनिसंघ ही है अतः निर्दोष है।

प्र.-580 जो शरीर से अकेले हैं उन्हें सर्वथा एकलविहारी कहने में क्या दोष है?

उत्तर- हाँ, आपका कहना सत्य है यद्यपि ये शरीर से अकेले हैं, मानमर्यादा का, प्रतिज्ञा का भरपूर पालन करते हैं अपनी दिनचर्या से देव शास्त्र गुरु की परंपरा को न कलंकित करते हैं, न निंदा के पात्र बनते हैं और न पद विरुद्ध कार्य करते हैं तो ये शरीर से अकेले होने पर भी संघ सहित हैं किंतु जो संघ में रहकर भी यदि कलंकित कार्य करते हैं तो उनका अकेला या संघ के साथ में रहना दोष ही है। एकलविहारी होने में गुणदोषों का वर्णन विस्तार से मूलाचार के 5वें समाचार अधिकार में किया है वहाँ देखना चाहिये।

प्र.-581 इस चतुर्विध मुनिसंघ के निमित्त धन किस प्रकार से खर्च करना चाहिये?

उत्तर- चतुर्विध मुनिसंघ के आहार, विहार, निहार में, स्वास्थ्य में, उपकरण, वस्त्र आदि के निमित्त खर्च करना चाहिये। इस प्रकार जिनेंद्र प्रणीत चैत्य आदि सप्त क्षेत्रों में धन खर्च करना चाहिये।

प्र.-582 क्या अणुव्रती और अव्रतियों के लिए धन खर्च नहीं करना चाहिये?

उत्तर- अणुव्रती मध्यम और अव्रती जघन्य श्रावक श्राविकाओं के लिए यथायोग्य धर्मसाधन एवं धर्मवृद्धि के निमित्त चेतनाचेतन, मिश्र धन खर्च करना चाहिये क्योंकि जिन श्रावकश्राविकाओं ने अपने मन को विषयकषायों से न हटाया, न जीता है तथा भोगसामग्री के न मिलने से उनके माथे में गरमी चढ़ जायेगी जिससे जिनधर्म, जैनसमाज की, उसकी व परिवार की बदनामी होगी तथा ये जिनधर्म छोड़कर अन्यमति बन जायेंगे इसकारण धर्म और समाज की स्थिति के लिए चेतनाचेतन, मिश्र धन खर्च करना चाहिये।

प्र.-583 ये सप्त धर्मक्षेत्र किस प्रकार से पुण्यफल देते हैं?

उत्तर- जैसे चिंतामणिरत्न और कल्पवृक्ष चिंतन, याचना करने पर फल देते हैं किंतु ये धर्मक्षेत्र अचिंत्य फल देते हैं। सूर्य, चंद्र, मेघ आदि बिना याचना के फल देते हैं तो क्या ये धर्मक्षेत्र बिना मांगे फल नहीं देंगे? इनसे भी गये बीते हो गये? पुनः दूसरे प्रकार से सप्त धर्मक्षेत्रों का वर्णन करते हैं। जिनबिंब, जिनागार, दान पूजा और शास्त्र क्षेत्र का वर्णन कर चुके हैं अब शेष बचे दो जिनयात्रा और प्रतिष्ठा का वर्णन करते हैं।

प्र.-584 जिनयात्रा किसे कहते हैं?

उत्तर- तीर्थक्षेत्र, निर्वाणक्षेत्र, अतिशयक्षेत्र, पंचकल्याणक क्षेत्रों की वंदना को जाना और अपने साधर्मी भाइयों, चतुर्विध मुनिसंघ, त्यागीव्रतियों, गरीबों, अनाथों को यात्रा कराना, रथयात्रा, पालकी और विमान में जिनबिंब को विराजमान कर वैभव के साथ मंगल विहार कराना आदि प्रभावना के अंग होने से इन्हें जिनयात्रा/रथयात्रा कहते हैं क्योंकि इनसे आत्मप्रभावना और धर्मप्रभावना होती है।

प्र.-585 इनसे आत्मप्रभावना और धर्मप्रभावना कैसे होती है?

उत्तर- इन कार्यों को करते समय अपना स्वयं का तन मन धन और समय लगता है, पापों का, विषयकषायों का और भोजनपान आदि का भी त्याग होता है, पाप कर्मों का संवर, विशेष निर्जरा तथा सातिशय पुण्य का आश्रवबंध होने से आत्मप्रभावना होती है तथा बाहर में जिनधर्म का नाम उजागर होने से, वैभव का विस्तार होने से जिनधर्म की, समाज की प्रभावना, कीर्तिप्रशंसा होती है।

प्र.-586 तीर्थक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस आकाश प्रदेश भूमिप्रदेश में स्थित होकर अनादिसादि कालीन कर्मों का क्षय कर संसारबंधन से छुटकारा प्राप्त हो उसे तीर्थक्षेत्र कहते हैं क्योंकि आगम में नभ सिद्ध, जलसिद्ध और थलसिद्ध कहे हैं।

प्र.-587 नभसिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर- किसी वैरी मनुष्य, विद्याधर, पशुपक्षी, देवीदेवताओं ने चरमशरीरी महामुनि को उठाकर आकाश में ले जाकर वहीं से पटक दिया और बीच में ही घाति अघातिकर्मों का क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया उसे नभसिद्ध कहते हैं अर्थात् शरीर नीचे गिरा और आत्मा सिद्धालय में जा विराजी।

प्र.-588 जलसिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर- उपरोक्त प्रकार किसी शत्रु ने ध्यानस्थ चरमशरीरी मुनि को उठाकर जलाशय में डाल दिया या बाढ़ आदि के द्वारा बहकर जलाशय में पहुंच गये तथा वहीं से क्रमशः कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त करने वालों को जलसिद्ध कहते हैं। इनका भी शरीर जल में रह गया एवं आत्मा सिद्धालय में विराजमान हो गई।

प्र.-589 थलसिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर- ध्यानस्थ मुनि के ऊपर शत्रुओं के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर या नहीं किये जाने पर भी क्रमशः कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त करने वाले को थलसिद्ध कहते हैं।

प्र.-590 उपसर्गों के द्वारा एकदम से आयुकर्म का क्षय कैसे करते हैं?

उत्तर- आयुकर्म की उदीरणा से प्रमत्तसंयत तक क्षय तथा उदयकरण से 14वें गुणस्थान तक क्षय होता है अतः वे चरमशरीरीमुनि 6वें गुणस्थान में रहकर दारुण उपसर्ग परिषहों के होने पर आयुकर्म की उदीरणा करते[2] जब आयुकर्म के अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर क्षपकश्रेणी मांडकर गुणस्थानानुसार क्रमशः आयुकर्म का क्षय करते हैं ऐसे मोक्ष प्राप्त करने वालों को अंतकृतकेवली कहते हैं।

प्र.-591 क्या ये चरमशरीरी मुनि उपसर्ग के पहले ध्यान में स्थित होते हैं या बाद में?

उत्तर- नभसिद्ध वाले मुनि उपसर्गों के संकेत प्राप्त होते ही ध्यान में स्थित हो जाते हैं किंतु शेष दो प्रकार से सिद्ध होने वाले मुनिजन उपसर्ग प्रारंभ होने के पहले या बाद में भी ध्यान में प्रवेश कर सकते हैं।

प्र.-592 निर्वाणक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ से मुनियों ने अनादिकालीन कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त किया है उसे निर्वाणक्षेत्र कहते हैं।

प्र.-593 अतिशयक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ पर देव और गुरुओं के माध्यम से या देवी देवताओं के माध्यम से धर्म की आश्चर्यकारी घटनायें घटें और दुःखी प्राणियों के कष्ट शीघ्रता से शांत हो जाये उन्हें अतिशय क्षेत्र कहते हैं।

प्र.-594 आजकल अतिशयक्षेत्रों का अतिशय क्यों समाप्त हो गया है या हो रहा है?

उत्तर- जब अपने घरों में, व्यापार में स्वामीसेवक का, नौकरमालिक का, गुरुशिष्य का, राजाप्रजा का, नेता जनता का परस्पर में आदरसम्मान, प्रेमव्यवहार, विनयगुण, भक्तिभाव समाप्त होने से परस्पर में भक्तिभाव, रक्ष्य रक्षक भाव भी समाप्त हो जाता है तब कोई भी आक्रमण कर सकता है उस समय कोई बीच में बचाने वाला नहीं आये तब आक्रमण कर्ता अपना बदला लेकर या चुकाकर चला जाता है या कोई समर्थ व्यक्ति बीच में आकर बचाव कर ले तो विवाद झगड़ा समाप्त हो जाता है जैसे आज कहीं पर भी झगड़ा होता है तो उस समय सरकार के द्वारा कर्फ्यू लगा देने से झगड़ा समाप्त हो जाता है ऐसे ही क्षेत्रों में हुआ। जब इन नामधारी अहंकारी जैनों ने मंदिरों में, क्षेत्रों में जाकर देवीदेवताओं का अपमान करना, अपशब्द बोलना प्रारंभ किया तो ये यहाँ का स्थान छोड़कर अन्यत्र चले गये फिर अनाड़ियों ने आकर चोरियां कर ली, अशुद्धियां की, नाना हानियां पहुंचाई तब अतिशय क्षेत्र न रहकर सामान्यक्षेत्र रह गये अब उन क्षेत्रों में जाकर पूजापाठ करने पर भी विघ्नबाधायें एवं भूतबाधायें दूर नहीं होतीं हैं किंतु परेशानियां दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। यदि ये जैनी इनका अपमान तिरस्कार नहीं करते तो क्षेत्रों का अतिशय बना रहता।

प्र.-595 गृहस्थ असंयमी देवी देवताओं को नहीं माने तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- क्षेत्रों में अतिशय देवीदेवता ही करते हैं फिर भी जो इन गृहस्थ असंयमी देवीदेवताओं को नहीं मानते हैं उन्होंने देवों की 4 लाख योनियों को, 26 लाख कुलकोटियों को और त.सू. के छठवें अध्याय के मिथ्यात्वकर्म के आश्रव को बताने वाले सूत्र को तथा अतिशय क्षेत्रों को नहीं माना यही आपत्ति है।

प्र.-596 पंचकल्याणक वाले तीर्थक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ पर तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता और उदयवालों ने इंद्र इंद्राणी, देवदेवांगनाओं के द्वारा गर्भ जन्मादि उत्सवों को प्राप्त किया है उसे पंचकल्याणक वाले तीर्थक्षेत्र कहते हैं।

प्र.-597 तीन कल्याणक वाले तीर्थक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- चरमशरीरी तद्भव मोक्षगामी अविरतसम्यग्दृष्टि असंयमी तथा देशसंयमी गृहस्थों ने दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारणभावनाओं का चिंतन कर तीर्थंकरप्रकृति का बंध करने के बाद उनके दीक्षा कल्याणक, ज्ञानकल्याणक और मोक्षकल्याणक वाले क्षेत्रों को तीनकल्याणक वाले क्षेत्र कहते हैं।

प्र.-598 दो कल्याणक वाले तीर्थक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- चरमशरीरी तद्भवमोक्षगामी मुनियों ने दर्शनविशुद्ध्यादि भावनाओं का चिंतनकर तीर्थंकर प्रकृति बंधक के जहाँ ज्ञान और मोक्षकल्याणक मनाये जायें उन्हें दो कल्याणक वाले तीर्थक्षेत्र

कहते हैं।

प्र.-599 क्या ये सभी कल्याणक एक ही स्थान में होते हैं या अलग अलग?

उत्तर- ये सभी कल्याणक एक ही स्थान में और अलग अलग स्थानों में भी हो सकते हैं। जैसे यहाँ भ.वासुपूज्य के चंपापुर क्षेत्र में पाँचों कल्याणक हुए हैं तथा शेष तीर्थंकरों के अन्य अन्य स्थानों में हुए हैं।

प्र.-600 यह कैसे मालूम हुआ कि भ. वासुपूज्य के यहीं पाँचों कल्याणक हुए?

उत्तर- श्री सम्मेदशिखरजी में भ. वासुपूज्य के एक ही शिला में पाँचों चरण स्थापित हैं इससे मालुम हुआ कि एक ही स्थान पर पांचों कल्याणक हुए हैं। भ. वासुपूज्यजी की टोंक पर अर्घ चढाते समय बोलते हैं कि **वासुपूज्य जिन सिद्ध भये चंपापुर से जेह मन वच तन कर पूजहुं शिखरसम्मेद यजेह।**

प्र.-601 फल प्राप्त होना और फल चाहना इन दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर- धर्म का फल बिना पुरुषार्थ के या पुरुषार्थ पूर्वक मिलना यह प्राप्त होना है किंतु कषायाधीन होकर धर्म का लौकिकफल पदवी, वैभव आदि मुझे मिले ऐसी इच्छा करना फल चाहना है। यह निदानआर्तध्यान, निदानशल्य और कांक्षादोष है और अनाचार स्वरूप भी हो सकता है अतः फल प्राप्त होना गुण है तथा फल चाहना दुर्गुण है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-602 प्रतिष्ठा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनेंद्र की या नवदेवताओं की प्रतिकृति में सत्संकल्प पूर्वक ये वे ही हैं या वह यही है इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की तथा मूर्ति, मंदिर, शिखर, कलश, वेदी आदि के निर्माण करते कराते समय उत्पन्न हुई अशुद्धियों को दूर करने के लिए, धर्म प्रभावना के लिए साधर्मी भाइयों को आमंत्रित कर सबके सामने मंत्रों के द्वारा, विधिविधानों के द्वारा शुद्धि करने को प्रतिष्ठा कहते हैं।

प्र.-603 प्रतिष्ठाओं के कितने भेद हैं?

उत्तर- पंचपरमेष्ठियों के और नवदेवताओं के बिंबों की यथोचित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी, मंदिर, यंत्र, ध्वजदंड, ध्वजा आदि की मंत्रों के द्वारा शुद्धि करना कराना आदि प्रतिष्ठाओं के भेद हैं।

प्र.-604 इन सप्तक्षेत्रों को जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- इन सप्तक्षेत्रों को जानकर इनमें भरपूर अपनी सामर्थ्यानुसार गुप्त रूप से दान करना चाहिये अन्यथा यह तुम्हारा धन सरकार में, चोर गुंडों में, लुटेरों में, शराब में, मांसाहार में, होटलों में, इधरउधर घूमने फिरने में, अशिष्ट शृंगारालंकार में काम आने से दुरुपयोग कहलायेगा अतः धन का सदुपयोग करना चाहिये।

प्र.-605 इस गाथा में ग्रंथकार ने दान का फल क्या बताया है?

उत्तर- ग्रंथकार ने यहाँ दान का फल तीनों लोकों का राज्य, चक्रवर्ती, अर्धचक्री आदि शलाका पुरुष, पुण्य पुरुष पदवी को पाकर पंचकल्याणक फल प्राप्त करना बताया है।

नोटः- यहाँ तक 605 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 16वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 17वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

उत्तम दान का फल

खेत्तविसेसे काले वविय सुबीयं फलं जहा विउलं।

होइ तहा तं जाणहि पत्तविसेसेसु दाणफलं ।।17।।

क्षेत्र विशेषे काले उप्तं सुबीजं फलं यथा विपुलं।

भवति तथा तज्जानीहि पात्रविशेषेषु दानफलम् ।।

जहा जैसे **खेत्तविसेसे काले** उत्तम क्षेत्र, योग्य समय में **सुबीयं** सुबीज **ववियं** बोने से **विउलं** विपुल **फलं** फल **होइ** होता है **तहा** वैसे ही **पत्तविसेसेसु** यथाजात रूपधारी महाव्रती मुनि आर्यिका रूपी उत्तम पात्रों में दिये गये **दाणफलं** दान का फल **जाणहि** जानो।

प्र.-606 यहाँ पात्र विशेष कौन कौन हैं?

उत्तर- यहाँ उग्र परिणामी मिथ्यादृष्टि जीवों की अपेक्षा भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टिजीव, भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अविरतसम्यग्दृष्टि, आगे आगे क्रमशः ये अणुव्रती, मुनिजन, उपाध्याय परमेष्ठी, आचार्य परमेष्ठी, ऋद्धि संपन्न महामुनिजन, गणधर और तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले महामुनिजन पात्र विशेष हैं।

प्र.-607 तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मुनियों में और गणधरों में क्या अंतर है?

उत्तर- तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले महामुनिजन ही सर्वोपरि हैं फिर भी ये केवलज्ञान प्राप्त होने के पहले आहार करते हैं किंतु सभी गणधर प्रभु चरमशरीरी प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान में रहते हुए भी सर्वकाल उपवास युक्त रहते हैं, आहार नहीं करते हैं। आहार न करने की अपेक्षा गणधर प्रभु विशेष हैं इनमें यही अंतर है।

प्र.-608 खेत विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर- अनेक खेतों में से किसी खेत में गन्ना, किसी में कपास, किसी में धनधान्य आदि होते हैं कारण प्रत्येक बीज को भूमि और खाद्यपानी भिन्न[2] मात्रा में चाहिये तभी अलग[2] फल प्राप्त होता है अतः ग्रंथकारजी ने खेत के साथ में विशेष विशेषण लगाया है। जैसे खेत विशेष में बीज बोने से विशेष फल प्राप्त होता है ऐसे ही पात्र विशेष में आहारादि दान देने से विशेष फल प्राप्त होता है।

प्र.-609 पात्रविशेष होने से दानों में क्या विशेषता हो सकती है?

उत्तर- जैसे निर्दोष उपजाऊ भूमि में उत्तम बीज बोने से अधिक फल की प्राप्ति होती है ऐसे ही पात्र विशेषों में दान देने से पुण्य की प्राप्ति, पाप की हानि, संवर निर्जरा में विशेष अंतर हो जाता है क्योंकि आगे आगे परिणामों में अनंतगुणी[2] विशुद्धि में वृद्धि होती जाती है यही फल में विशेषता है।

प्र.-610 पात्रों की अपेक्षा दान के फल में अंतर कैसे हो जाता है?

उत्तर- जैसे अपने परिवार को भोजन कराते समय माँ बहनों के मन में सामान्य उत्साह होता है। दूरवर्ती सगेसंबधियों को भोजन कराने में कुछ विशेष उत्साह होता है, निकट संबंधियों को भोजन कराने में कुछ और विशेष अधिक उत्साह होता है, सदाचारी सद्विचारी अविरत सम्यग्दृष्टियों को, अणुव्रतियों को, ब्रह्मचारियों को, क्षुल्लक क्षुल्लिकाओं को, आर्यिकाओं को, मुनियों को, उपाध्यायों को, आचार्यादि को आहारादि देने में उत्तरोत्तर परिणामों में निर्मलता विशेष होने से दान के फल में अंतर हो जाता है या इन पात्रों में मोक्षमार्ग की विराधना और साधना होने से भी दाताओं के मन में अंतर हो जाता है।

नोटः- यहाँ तक 610 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 17वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 18वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुपात्रदान का फल

मादु पिदु पुत्त मित्तं कलत्त धणधण्ण वत्थु वाहणं विहवं।

संसारसारसोक्खं सव्वं जाणउ सुपत्तदाणफलं ।।18।।

मातृ पितृ पुत्र मित्रं कलत्रधनधान्यवास्तुवाहनविभवं।

संसारसारसौख्यं सर्वं जानातु सुपात्रदानफलं॥

मादु- माता **पिदु** पिता **पुत्त** पुत्र **मित्तं** मित्र **कलत्त** स्त्री **धणधण्ण** धनधान्य **वत्थु** घर **वाहणं** वाहन **विहवं** वैभवादि **संसारसारसव्वंसोक्खं** संसार के सभी उत्तमसुख **सुपत्तदाणफलं** सुपात्रदान का फल **जाणउ** जानो।

प्र.-611 माता पिता किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसकी कुक्षी से जन्म धारण किया है उसे माता तथा गर्भ धारण कराने वाले को पिता कहते हैं अथवा लोकव्यवहार में जनकजननी के समान अनेक प्रकार के मातापिता माने हैं।

प्र.-612 माता पिता कितने प्रकार के होते हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- 5-5 प्रकार के माता और पिता माने हैं। नामः- 1. जन्म देने वाले 2. पालनपोषण संरक्षण करने वाले 3. स्नान श्रृंगार कराने वाले 4. पढाने लिखाने वाले 5. धर्म की शिक्षा दीक्षा देने वाले।

प्र.-613 माता पिता प्राप्त होना सुपात्र दान का फल है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- उपरोक्त सभी मातापिताओं का प्राप्त होना सुपात्रदान का फल नहीं है किंतु स्वयं उत्तम संस्कारी हों, निर्दोष ज्ञानीध्यानी हों, सदाचारी हों, निर्दोष देव शास्त्र गुरु के भक्त हों, सत्शिक्षा देने वाले हों, अहिंसा धर्मानुकूल संस्कार डालने वाले शुभ लक्षणों से युक्त माता पिता का प्राप्त होना सुपात्रदान का फल कहा है।

प्र.-614 धर्माचार्य और गणिनी आर्यिका को जनकजननी कह सकते हैं क्या?

उत्तर- उक्त लोकमान्य मातापिता सिर्फ लौकिकविकास में सहायक होते हैं किंतु धर्माचार्य निर्ग्रंथ मुनि आर्यिकादि लौकिक सदाचार सद्विचार सहित लौकिकविकास कराते हुए आध्यात्मिक विकास भी कराते हैं अतः वास्तव में ये ही परम कल्याणकारक जनकजननी हैं, शेष लौकिक जनकजननी हैं।

प्र.-615 यदि इन मातापिताओं ने सही शिक्षा नहीं दी तो ये कौन हैं?

उत्तर- **माता वैरी पिता शत्रुः येन बालो न पाठितः।**
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा॥ हितोपदेश

अर्थः- जो माता पिता अपनी संतानों को धर्म की, न्यायनीति की शिक्षा नहीं देते हैं वे माता वैरी और पिता शत्रु हैं। जैसे हंसों के बीच में बगुला शोभा नहीं देता ऐसे ही मूर्ख संतान सज्जनों के बीच में नहीं शोभती।

प्र.-616 पुत्र प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- केवल पुत्र होना सुपात्रदान का फल नहीं है क्योंकि पुत्रों की प्राप्ति सभी आर्य मलेच्छ मनुष्यों को, पशुपक्षियों को भी होती है सो ऐसे पुत्रों का होना सुपात्रदान का फल नहीं कहा है किंतु आज्ञाकारी जातिकुल धर्मरक्षक, सदाचारी, अनेक सद्गुण संपन्न दीपक के समान पुत्र होना ही सुपात्रदान का फल है।

प्र.-617 अनाज्ञाकारी पुत्र प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों नहीं कहा?

उत्तर- सुपात्रदान का फल शुभ मंगलकारी कहा है और कुपुत्र की प्राप्ति पाप का फल कहा है क्योंकि कुपुत्र से सतत दुर्ध्यान बना रहता है अतः अनाज्ञाकारी पुत्र की प्राप्ति होना सुपात्रदान का फल नहीं है किंतु कुपात्रदान, अपात्रदान तथा पाप का फल है क्योंकि संतानोत्पत्ति कार्यकारण रूप से अशुभ ही है।

प्र.-618 पुत्रपुत्री किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- सज्जाति एवं सद्कुलवाले बालक बालिकाओं के पाणिग्रहण संस्कार के बाद स्वयं के

रजोवीर्य से पैदा हुई संतान को पुत्रपुत्री कहते हैं। लोकव्यवहार में अपनी निज की संतानवत् पुत्र पुत्रियों के 7-7 भेद हैं, ये भी शास्त्रों से और लोकव्यवहार से जाने जाते हैं।

स्वांगजः पुत्रिकापुत्रे दत्तः क्रीतश्च पालितः।
भगिनीजः शिष्यश्चेति पुत्राः सप्त प्रकीर्तिताः।।9।। त्रैवर्णि.9

पुत्रों के भेद- 7 हैं, 1. अपना लड़का 2. अपनी लड़की का लड़का 3. दत्तकपुत्र 4. मोल लिया हुआ 5. पाला हुआ 6. अपनी बहिन का लड़का 7. शिष्य। ऐसे ही पुत्रियों के 7 भेद समझना चाहिये।

प्र.-619 पुत्री की प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों नहीं कहा?

उत्तर- हाँ, सुपुत्री का होना भीू सुपात्रदान का फल ही समझना चाहिये। आजकल पुत्रों की अपेक्षा पुत्री होना उत्तम है क्योंकि शास्त्रों में और लोकव्यवहार में अनेक पुत्रों ने अपने माँ बाप को कष्ट दिया, बंदी बनाया यहाँ तक की जान से भी मार दिया किंतु भारतीय संस्कृति में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है कि पुत्रियों ने माँ बाप को मारा हो, कष्ट दिया हो, हाँ इतना अवश्य है कि विवाह होने के बाद में भी माँ बाप के पास में आकर या अपने पास में रखकर अंत तक भरपूर सेवा की और बिना घृणा किये मलमूत्र भी साफ किया। इतना होने पर भी आजकल गर्भ में पुत्री की जानकारी होते ही गर्भपात करा देते हैं या पुत्री पैदा होते ही हीनदृष्टि से देखने लगते हैं ऐसे माँ बाप सही माँ बाप नहीं हैं किंतु कृतघ्नी हैं, नीचगोत्र के बंधक हैं, मिथ्यादृष्टि हैं अतः धर्मात्मा आज्ञाकारिणी सुपुत्री की प्राप्ति भी सुपात्रदान का ही फल है, पाप का नहीं।

प्र.-620 तो पुत्रियां माँ बाप के उपकार का बदला किस प्रकार से चुकाती हैं?

उत्तर- भारतीय संस्कृति में पुत्री को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। **कन्या रत्न महीयसे** कहकर कन्या को रत्न की उपमा देकर पुत्र से भी बढ़कर स्थान दिया गया है। पुत्रियां उभयकुल विकासिनी हैं। आजकल भी पुत्रियां अपने माँ बाप की पति से भी बढ़कर सेवा करती हैं। मातापिता को अस्वस्थ जानकर दूर होने पर भी उनकी सेवा के लिए लालायित रहतीं और दौड़ी चली आती हैं। पुत्रों से अधिक मातापिता के उपकार का बदला उपकार से चुकाती हैं। पुत्र अपने कर्तव्य का निर्वाह भले ही न करे लेकिन पुत्रियां माँ बाप की सेवा अवश्य ही करती हैं। मातापिता की चिता में मुखाग्नि देकर पुत्र से बढ़कर काम करती हैं।

प्र.-621 सुमित्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जो निस्वार्थ निष्कपट भाव से आत्मीयता के साथ सुखदुःख में साथ निभाये उसे सुमित्र कहते हैं। जैसे दूध और पानी, जबतक दूध में पानी हैं तबतक पानी दूध को जलने नहीं देता यानि स्वयं जलकर भी दूध की रक्षा करता है ऐसे ही सुमित्र मित्र की आपत्तियों को अपने ऊपर लेकर मित्र की रक्षा करता है।

प्र.-622 कुमित्र किसे कहते हैं, किसके समान है और क्या करना चाहिये?

उत्तर- जो स्वार्थ और कपट पूर्वक दिखावटी प्यार के साथ साथ में रहे, संकट में धोखा देनेवाले को कुमित्र कहते हैं ऐसा मित्र यम के दूत के समान है। हितेच्छुओं को ऐसे मित्रों से बहुत दूर रहना चाहिये।

प्र.-623 मित्र प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- जिनको दान दिया है या जिनके साथ में धर्मादि कार्य किये हैं वे इसी भव में सुखदुःख में साथी बन जाते हैं अंत में वैय्यावृत्ति कर समाधिमरण कराकर भवांतरों में भी साथ निभाते हैं इसलिए सुमित्र की प्राप्ति होना सुपात्र दान का फल कहा है क्योंकि ऐसा मित्र जीवन में दुर्ध्यान

का कारण नहीं बनता है।

प्र.-624 धर्मपत्नी किसे कहते हैं?

उत्तर- वर्णशंकर, जातिशंकर, वीर्यशंकर दोषों से रहित, विधवा, तलाक की हुई, वेश्या और व्यभिचारिणी स्त्रियों के बिना जाति, कुल और धर्म के अनुकूल कुंवारिका का मातापिता, परिवार, सगेसंबंधियों और देवशास्त्रगुरु की साक्षी पाणिग्रहण कर प्राप्त की हुई पत्नी को धर्मपत्नी कहते हैं।

प्र.-625 भोगपत्नी किसे कहते हैं?

उत्तर- जो धर्ममार्ग से, मोक्षमार्ग से पतन कराकर केवल विषयभोगों में, कामसेवन आदि कार्यों में फंसाकर नरक निगोद का, अनेक कष्टों का पात्र बना दे उसे भोगपत्नी कहते हैं।

प्र.-626 भोगपत्नी की प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों नहीं कहा?

उत्तर- भोगातंराय और उपभोगांतराय कर्म का क्षयोपशम होने पर तथा निरतिशय पुण्य के उदय से भोगपत्नी की प्राप्ति होती है इसलिए इसे सुपात्रदान का फल नहीं कहा।

प्र.-627 यहाँ कौनसी पत्नी को सुपात्रदान का फल कहा है?

उत्तर- रानी चेलना के समान धर्मपत्नी को सुपात्रदान का फल कहा है क्योंकि यह धर्मपत्नी स्वयं धर्म पालन करती हुई पति को और परिवार को मोक्षमार्ग में लगाकर मोक्षमार्ग की साधना भी कराती है इसलिए इसे सुपात्रदान का फल कहा है, भोगपत्नी को नहीं। इसी तरह धर्मपति प्राप्त होना सुपात्रदान का फल है।

प्र.-628 धनधान्य की प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- समस्त प्रांतों में सभी प्राणियों को धनधान्य की प्राप्ति अपने² भाग्य और पुरुषार्थानुसार होती है। ऐसा धनधान्य पूर्व में भोग के निमित्त निदान आर्तध्यान पूर्वक निरतिशय पुण्योपार्जन का फल है तथा जो धनधान्य कल्याण में, स्वपर के हित में सहायक हो वह धन धान्य सुपात्रदान का फल जानना चाहिये क्योंकि लोक में खेती, व्यापारादि धनधान्य की वृद्धि के लिए किये जाते हैं अतः जो धनधान्य पुनः सुपात्रदानादि कार्यों में काम आये वही सुपात्रदान का फल जानना चाहिये, शेष नहीं।

प्र.-629 विदेशों में, मलेच्छ क्षेत्रों के निवासियों में इतना वैभव क्यों है?

उत्तर- इन क्षेत्रों में यहाँ के निवासी अपने² संस्कारानुसार फकीरों, कोढ़ियों आदि को करुणा से भरपूर दान देकर निरतिशय पुण्योपार्जन करते हैं तब उस पुण्योदय से इतना वैभव प्राप्त होता है। अतः जब सामान्य दान का इतना फल है तो विशेष दान का फल कितना होगा? अतः लोभियों को भी अपने हृदय की आँख खोलकर भली प्रकार से सोच समझकर सुपात्रों को दान देना चाहिये।

प्र.-630 मकान वाहनादि सुपात्रदान का फल है तो कुपात्र दान का फल क्या है?

उत्तर- सामान्य मकान वाहन आदि कुपात्रदान, अपात्रदान का फल कहा है तभी तो वर्तमान में ही विषयासक्ति, कषायों की वृद्धि देखी जा रही है अतः जो मकान वाहन आदि धर्मध्यान की उत्पत्ति, वृद्धि और स्थिति में सहायक हो, आत्मशांति में सहायक हो वही मकान वाहनादि सुपात्रदान का फल समझना चाहिये तथा जिस मकान वाहनादि के द्वारा अपना जीवन, परिवार, सगेसंबंधी, रिश्तेदार, नातेदार आदि संकट में फंस जायें वह मकान वाहनादि कुपात्र दान का फल है।

प्र.-631 किराये के मकान वाहनादि क्या सुपात्रदान के फल हैं या किसके फल हैं?

उत्तर- किराये का मकान वाहनादि का प्रयोग सुपात्रदान का और निरतिशय पुण्य का फल भी हो सकता है। किराये के मकान वाहन आदि धर्मायतनों के प्रयोग में आने से सुपात्रदान का

फल और धर्म विरुद्ध स्थानों में होने से आकुलता के, असदाचार के कारण होने से कुपात्रदान अपात्रदान के फल हैं। यदि स्वयं की वसतिका का दान नहीं दिया है, न देने की सोची है और बाधा ही डाली है तो स्वयं के मकान वाहनादि सुपात्र दान के फल कैसे हो सकते हैं? अतः निज के मकान वाहन आदि का भी दान देना चाहिये।

प्र.-632 स्वयं के मकान वाहनादि का दान कैसे दिया जाये?

उत्तर- अपने नगरादि में आगंतुक उत्तम मध्यम जघन्य पात्रों को अपने मकानादि में ठहराना वसतिका दान है पर आगंतुक सगेसंबंधी नहीं होना चाहिये क्योंकि इनकी गणना मोक्षमार्गस्थ अतिथियों में नहीं होती है कारण ये धर्मसाधन न मानकर लोकव्यवहार निभाने के लिए आये हैं ऐसे ही वाहनों का दान तीर्थयात्रा, रथयात्रा, चतुर्विध संघ के विहार आदि में अनन्य भक्ति पूर्वक निःशुल्क लगाना चाहिये यही वाहनदान है।

प्र.-633 इसके अलावा और भी वैभव क्या सुपात्रदान का फल है या अन्य का?

उत्तर- जैसे लोक में कुलीन कन्या से शादी करने पर कन्या के साथ अनेक चेतनाचेतन और मिश्र भोगोपभोग की सामग्री मिलती है ऐसे ही सुपात्रदान से वटवृक्ष के समान अधिक मात्रा में सभी सामग्रियां प्राप्त होती हैं क्योंकि सुपात्रदान का फल अनेक भवों तक फलता रहता है।

प्र.-634 इनके अलावा और कौनसी सामग्रियां सुपात्रदान से प्राप्त होती हैं?

उत्तर- ससुराल की सालेसालियां, देवर, जेठादि, अनेक उत्तम पशु आदि सुपात्रदान से प्राप्त होते हैं।

नोटः- यहाँ तक 634 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 18वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 19वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुपात्रदान से चक्रवर्ती पद

सत्तंगरज्ज णव णिहि भंडार छडंग बल चउद्दह रयणं।

छण्णवदि सहस्सेत्थि विहवं जाणउ सुपत्तदाणफलं ।।19।।

सप्तांग राज्य नवनिधि भण्डार षडंगबल चतुर्दशरत्नानि।

षण्णवति सहस्र स्त्री विभवो जानातु सुपात्रदान फलम्।।

सत्तंगरज्ज सप्तांग राज्य **णवणिहि भण्डार** नवनिधि का खजाना **छडंगबल** षडंगसेना **चउद्दह रयणं** 14 रत्न तथा **छण्णवदिसहस्सेत्थि** 96000 रानियां **विहवं** वैभव **सुपत्तदाणफलं** सुपात्रदान का फल **जाणउ** जानो।

प्र.-635 राज्य के 7 अंग कौन कौन से हैं?

उत्तर- राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, किला, सेना ये राज्य के 7 अंग हैं।

प्र.-636 चक्रवर्ती की 9 निधियां कौन कौन हैं?

उत्तर- 1. काल 2. महाकाल 3. पांडु 4. मानव 5. शंख 6. पद्म 7. नैसर्प 8. पिंगल 9. सर्व रत्न हैं।

प्र.-637 चक्रवर्ती की सेना के 6 अंग कौन कौन हैं?

उत्तर- 1. हाथी 2. घोड़ा 3. रथ 4. पदाति 5. नृत्यकी 6. गंधर्व। ये सेना के 6 अंग हैं।

प्र.-638 चक्रवर्ती के 14 रत्न कौन कौन हैं?

उत्तर- 1. पवनंजय घोड़ा 2. विजयगिरि हाथी 3. भद्रमुख गृहपति 4. कामवृष्टि 5. अयोद्ध सेनापति 6. सुभद्रा पट्टरानी 7. वृद्धिसमुद्र पुरोहित 8. छत्र 9. तलवार 10. दंड 11. चक्र 12. काकिणी रत्न 13. चिंतामणी 14. चर्मरत्न। ये 14 रत्न हैं।

प्र.-639 सुपात्रदान से और भी फलों की प्राप्ति होती है क्या?

उत्तर- सुपात्रदान से उत्तम दाता को सकल चक्रवर्ती पद की प्राप्ति के साथ साथ चक्रवर्ती पद के योग्य चेतन अचेतन और मिश्र भोगोपभोग की सामग्री, पूर्ण राज्य में प्रशंसा होना, भगवानवत् पूजा प्राप्त होती है।

प्र.-640 चक्रवर्ती का वैभव क्या क्या है?

उत्तर- सप्तांग राज्य, नवनिधि, छह अंगों से युक्त सेना, 14 रत्न तथा छियानवे हजार रानियां, 18 हजार घोड़े, चौरासीलाख हाथी, नाना बर्तन, रसोइया, षटखंडभूमि, पशुपक्षी आदि चक्रवर्ती का वैभव है।

प्र.-641 यह उत्कृष्ट फल किस पात्र को दान देने से किस दाता को प्राप्त होता है?

उत्तर- यह उत्कृष्ट फल सर्वोत्कृष्ट पात्र को दान देने से उत्तम दृढ़धर्मी निर्दोष सम्यग्दृष्टि को ही धर्मध्यान की अवस्था में प्राप्त होता है और द्रव्य की अपेक्षा उत्तम संहननधारियों को, क्षेत्र की अपेक्षा कर्मभूमि के आर्यखंड में, काल की अपेक्षा चौथे काल में, भावों की अपेक्षा अव्रती अणुव्रतियों को ही प्राप्त होता है।

प्र.-642 यदि ऐसा है तो क्या सभी चक्रवर्ती पद सुपात्रदान के फल हैं?

उत्तर- चक्रवर्तीपद सुपात्रदान के ही फल हैं जो सम्यग्दृष्टियों को प्राप्त होते हैं, मिथ्यादृष्टियों को नहीं।

प्र.-643 चक्रवर्ती पद क्या सुपात्रदान का साक्षात् फल है या परंपरा फल?

उत्तर- सकल चक्रवर्ती राज्यपद सुपात्रदान के साक्षात् फल नहीं हैं क्योंकि कर्मभूमिज सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती, महाव्रती पुनः कर्मभूमि में पैदा नहीं होते। कारण जिन जीवों ने नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु का बंध कर लिया है वे अणुव्रती, महाव्रती नहीं बन सकते हैं तथा ये अणुव्रती, महाव्रती इन तीन गतियों में जन्म नहीं लेते हैं मोक्षमार्गी अचरमशरीरी देवायु बांधकर समाधि मरण कर वैमानिक देवों में ही जन्म लेते हैं और उपार्जित सातिशय पुण्य के फल को भोगकर शेष बचे पुण्य को यहाँ मनुष्य भव में चक्रवर्ती राज्यपद को पाकर पुण्य का उपभोग करते हैं। अतः केवल सुपात्रदान का फल चक्रवर्ती पद नहीं हैं किंतु संयम का भी फल है सो भी साक्षात् फल न होकर बीच में देव पर्याय प्राप्त करनी पड़ती है क्योंकि तीर्थंकर के बिना शेष शलाका पुरुष, पुण्यपुरुष एकमात्र देवगति से ही आते हैं और तीर्थंकर प्रकृति वाले नरक से भी आते हैं।

प्र.-644 अर्धचक्रवर्ती पद क्या सुपात्रदान के साक्षात् फल हैं या परंपरा फल?

उत्तर- अर्धचक्रवर्ती पद भी सुपात्रदान और संयम धारक पालक महामुनियों को निदान पूर्वक प्राप्त होते हैं। ऐसे ही शेष शलाकापुरुष तथा 169 पुण्यपुरुषों को भी सुपात्रदान और संयम का फल समझना चाहिये।

प्र.-645 ये महापुरुष केवल सुपात्रदान के ही फल माने जायें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, केवल एकमात्र सुपात्रदान के फल नहीं हैं क्योंकि इन पदों के योग्य पुण्यार्जन सुपात्रदान के साथ संयम पूर्वक होता है अतः कुछ शलाका पुरुष और पुण्यपुरुष भोगनिदान आर्तध्यान के भी फल हैं।

प्र.-646 यदि ब्रह्मदत्त और सुभौमचक्री भी सुपात्रदान के फल हैं तो ये नरक क्यों गये?

उत्तर- सुपात्रदान और सकलसंयम के आराधक किसीके राज्यवैभव को देखकर तप के फल की आकांक्षा से निदानबंध कर स्वर्ग में जाकर वापिस यहाँ आकर निदानआर्तध्यान के फलरूप इस पदवी को प्राप्त हुए किंतु भोगनिदान के कारण जीवन पर्यंत भोगों में लिप्त हो नरकगति के पात्र हुए।

प्र.-647 ये दो चक्री, नारायण, प्रतिनारायण, नारद, रौद्र नरकगति के पात्र क्यों हुए?

उत्तर- ये पुण्य पुरुष जीवन पर्यंत भोगासक्त, विषयासक्त होकर बहुत आरंभ परिग्रह के कारण नरकायु को बांधकर अशुभ लेश्या, तीव्र रौद्रध्यान से परिणत हो मरण कर नरकगति के पात्र हुए।

नोटः- यहाँ तक 647 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 19वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 20वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुपात्रदान का फल

सुकुल सुरूव सुलक्खण सुमइ सुसिक्खा सुसील चारित्तं।
सुहलेस्सं सुहणामं सुहसादं सुपत्तदाणफलं।।20।।

सुकुलं सुरूपं सुलक्षणं सुमतिः सुशिक्षा सुशीलं चारित्रं।
शुभलेश्या शुभनामः शुभसातं सुपात्रदानफलम्।।

सुकुल सुकुल **सुरूव** सुरूप **सुलक्खण** सुलक्षण **सुमइ** सुबुद्धि **सुसिक्खा** सुशिक्षा **सुसील** सुस्वभाव **चारित्तं** सुचारित्र **सुहलेस्सं** शुभलेश्या **सुहणामं** शुभनाम **सुहसादं** सुखसाता **सुपत्तदाणफलं** ये उत्तमदान के फल हैं।

अर्थ- यहाँ आ. श्री ने प्रकारांतर से बोधिदुर्लभ भावना को कहा है **सो कैसे?** बताते हैं।

प्र.-648 सुकुल/उत्तमकुल/निर्दोषकुल की प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- माता के पक्ष को जाति और पिता के पक्ष को कुल कहते हैं। कुल के साथ जाति को भी ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि जाति कुल का घनिष्ट संबंध है अतः **यथा बीज तथा अंकुर।** सदोष माता पिता से सदोष संतान और निर्दोष माता पिता से निर्दोष संतान की प्राप्ति होती है। जिन पुद्गल वर्गणाओं से शरीर की रचना होती है उसे भी कुल कहते हैं किंतु यहाँ जिस रजोवीर्य से गर्भयोनि में, गर्भथैली, ट्यूब आदि में ठहरकर जन्म धारण करता है उस जाति कुल से प्रयोजन है क्योंकि यहाँ सुपात्रदान का फल बताया जा रहा है। संसार में अनेक आचारविचारवाले मातापिता मौजूद हैं। मलेच्छखंडों में, आर्यखंडों में, भोगभूमि में, कुभोगभूमि में मातापिता होते हैं। यह जातिकुल की शुद्धि अशुद्धि अनादिकाल से चली आ रही है। यदि अनादि से यह नहीं होती तो मोक्षमार्ग और संसारमार्ग नहीं बन सकता। जिस जातिकुल में मोक्ष और मोक्षमार्ग के योग्य सकलसंयम पूर्वक जिनमुद्रा धारण करने की योग्यता है वही जातिकुल उत्तम है, शेष नहीं। यदि मातृपक्ष शुद्ध है और पितृपक्ष अशुद्ध है या मातृपक्ष अशुद्ध है और पितृपक्ष शुद्ध है तो संतान की भी शुद्धि नहीं होती अतः दोनों की शुद्धि होना ही सुपात्रदान का फल है, एक का नहीं।

प्र.-649 नीचकुल, हीनकुल, विकृतकुल आदि की प्राप्ति होना यह किसका फल है?

उत्तर- यह सब हीन पुण्य या पाप का, कुपात्रदान, अपात्रदान का फल है सुपात्रदान का नहीं।

प्र.-650 नीचकुल किसे कहते हैं?

उत्तर- नीचगोत्र कर्मोदय से आचार विचार, दिनचर्या से दूषित कुलों को नीचकुल कहते हैं।

प्र.-651 हीनकुल किसे कहते हैं?

उत्तर- उच्चगोत्री होने पर भी आचारविचार दिनचर्या से दूषित कुलों को, मकारों के सेवी नीचाचरण वाले कुलों को हीनकुल कहते हैं।

प्र.-652 विकृतकुल किसे कहते हैं?

उत्तर- वर्ण संकर, वीर्य संकर, जाति संकर आदि दोषों से युक्त कुलों को विकृत कुल कहते हैं।

प्र.-653 ये नीच कुलीन आदि मनुष्य अपना कल्याण कर सकते हैं या नहीं?

उत्तर- हाँ, यदि इनको सत्संगति मिल जाये तो अपनी सामर्थ्यानुसार अवश्य ही कोई तद्भव में तो कोई भवांतर में मोक्षमार्गी बन सकते हैं पर भव्य होना चाहिये, अभव्य और अभव्यसम भव्य नहीं।

प्र.-654 अभव्यसम भव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- दूरानुदूरभव्य को ही अभव्यसमभव्य कहते हैं मोक्ष में जाने की, मोक्षपर्याय को व्यक्त करने की योग्यता होने पर भी मोक्ष प्राप्त नहीं करता। जैसे अखंडब्रह्मचर्यव्रती के दांपत्य जीवन होने पर भी विजयसेठ विजयासेठानी ने संतान पैदा नहीं की पर इनको नपुंसक, बांझ नहीं कह सकते हैं।

प्र.-655 उत्तम रूप प्राप्त होना सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- देखा जा रहा है कि कोई मातापिता अच्छे धर्मात्मा, सदाचारी, आज्ञाकारी हैं संतान भी धर्मात्मा है किंतु रूप सुंदर नहीं, बेढंगा रूप है, अंगवृद्धि या अंग हीनता है, उपांगों में समानता नहीं है जैसे कुबड़ा रूप होना, लूलालंगडा, काना होना, अंगोपांग छोटा बड़ा, पतला मोटा, भयंकर रूप, चेहरे में रौद्रता होना अतः उत्तम कुल वाला होने पर भी सुंदर रूप होना सुपात्रदान का फल कहा है।

प्र.-656 ऐसा सुंदर रूप किस कर्म के उदय से प्राप्त होता है?

उत्तर- निर्माण और समचतुरस्त्रसंस्थान नामकर्मोदय से सुंदर रूप होता है क्योंकि निर्माण नामकर्मोदय से अंगोपांगों की यथास्थान यथाप्रमाण रचना होती है तथा शुभकर्मोदय से सुंदरता आती है।

प्र.-657 उत्तम लक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर- सभी में प्रेम उत्पादक दिनचर्या, मधुर वचनालाप आदि आदतों को उत्तम लक्षण कहते हैं।

प्र.-658 उत्तम लक्षण प्राप्त होना सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- किसी किसी उत्तम कुल और रूपवालों की आदतें ठीक नहीं होती हैं। वर्तमान में अहिंसावादी महावीर के भक्त शराब पी रहे हैं, अंडा मांस खा रहे हैं, रात्रिभोजन, अनछना पानी आदि अनिष्ट भोजनपान कर रहे हैं, धर्मविरुद्ध विवाह कर करा रहे हैं, जातिकुल और धर्म को कलंकित करने वाली चेष्टायें कर रहे हैं अतः इन आदतों को छुड़ाने के लिए धर्मानुकूल लक्षणों को सुपात्रदान का फल कहा है। इस कारण उत्तम कुल उत्तम रूप प्राप्ति के बाद उत्तम लक्षण प्राप्त होना कठिन है।

प्र.-659 सुमति किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञेय पदार्थों को भली प्रकार से सापेक्ष यथानुरूप रागद्वेष मोह के बिना जानने को सुमति कहते हैं।

प्र.-660 सुमति प्राप्त होना सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ सुमति का मतलब सम्यक्मतिज्ञान से है लौकिक सरल विचारों से नहीं है क्योंकि लोक में बहुत सारे भद्र परिणामी, निष्कपटी, निःस्वार्थी पाये जाते हैं। यदि ऐसे सरल व्यक्ति लोक में नहीं पाये जायें तो समस्त लोक में अमावस्या की रात्रि या नरकों के अंधकारवत् यहाँ भी अंधकार छा जायेगा सर्वत्र एकमात्र पाप ही पाप रहेगा अतः उत्तमकुल, उत्तमरूप और उत्तमलक्षण प्राप्त होने पर भी उत्तम सुमति नहीं पायी जाती है तथा मारकाट चोरी अपहरण आदि अशिष्ट कार्य करते सोचते हुए व्यक्ति देखे जा रहे हैं सो शारीरिक उत्तम चिह्न प्राप्त होने पर भी सुमति प्राप्त होना बड़ा कठिन है क्योंकि अनेक साधु सज्जनों की नारदों जैसी दिनचर्या कुछ ठीक दिखने पर भी विचार अच्छे नहीं होते हैं। जैसे आतंकवादी, उग्रवादी व्यापारी वर्ग धन कमाने के विचार ही करते रहते हैं फिर भी धूम्रपान, मद्यपान आदि नहीं करते इसलिए उत्तम कुल आदि की प्राप्ति के बाद सुमति का प्राप्त होना सुपात्रदान का फल कहा है।

प्र.-661 उत्तम शिक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस अक्षरात्मक या अनक्षरात्मक सत्संकेतों के द्वारा यथार्थ वस्तु स्वरूप का, गुणदोषों का ज्ञान प्राप्त हो उसे उत्तम शिक्षा कहते हैं, इसे ही सम्यक् श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्र.-662 उत्तम शिक्षा की प्राप्ति होने को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- देखा जा रहा है कि उत्तम कुल, जाति, रूप, लक्षण और उत्तम सुमति के प्राप्त होने पर भी लौकिकशिक्षा के साधन भरपूर हैं पर धर्मशिक्षा के साधन प्रायः कर समाप्त हो गये हैं, हो रहे हैं। आज बड़े बड़े संपन्न घरानों में नाना प्रकार की डिग्रियां प्राप्त सदस्यगण मौजूद हैं पर धर्मशिक्षा के नाम पर शून्य हैं, न धर्म की परिभाषा जानते हैं, न जानने की इच्छा है, न जानने की कोशिश कर रहे हैं और न जीवन में उतारे हुए हैं, केवल भोगविलास के लिए जीवन समर्पित किये हुए हैं। भौतिक शिक्षा में, आजीविका की कलाओं में पूर्ण निष्णात हैं किंतु धर्मशिक्षा से धन की प्राप्ति पर्याप्त न होने से धर्म को निस्सार कष्टदायी समझ रहे हैं तभी तो समाज के कार्यकर्ताओं ने धर्मगुरुकुल, विद्यालय समाप्त कर दिये केवल नाम मात्र के रह गये हैं। इनको लौकिक शिक्षा का, आजीविका का साधन बना लिया है। कहीं कहीं पर कुछ धर्मशिक्षा के साधन बन रहे हैं तो भी उनमें लौकिकपुट भर दिया है। विधिविधान, प्रतिष्ठा विवाहादि की विधि तथा उपदेश करना सिखाया जाता है सो यह भी आकर्षण एवं आजीविका के लिए है, आत्मकल्याण, धर्म प्रभावना के लिए नहीं सो धर्मशिक्षा की प्राप्ति होना सुपात्रदान का फल कहा है, लौकिक शिक्षा नहीं।

प्र.-663 लौकिक शिक्षा की प्राप्ति होना किस दान का फल है?

उत्तर- लौकिक शिक्षा की प्राप्ति होना लौकिक शिक्षा, भौतिक शिक्षा के दान का फल है क्योंकि जैसा दिया जायेगा वैसा ही प्राप्त होगा यह स्वाभाविक सर्वमान्य अनादिनिधन नियम है।

प्र.-664 उत्तम शील किसे कहते हैं?

उत्तर- परम ब्रह्मचर्य को या बालकवत् निर्विकार कामवासना रहित परिणाम को उत्तम शील कहते हैं।

प्र.-665 उत्तम शीलवान किसे कहते हैं?

उत्तर- निर्विकार, कामवासना रहित ब्रह्मचर्य परिणाम वाले को शीलवान, ब्रह्मचर्यव्रती कहते हैं।

प्र.-666 उत्तम शील की प्राप्ति होने को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- आजकल धर्मी ज्ञाता कदाचित् शीलपालक भी कहीं कहीं दूसरों के शारीरिक सौंदर्य को देखकर भ्रष्ट बुद्धिवाले देखे जा रहे हैं। धार्मिक कार्यों को आजीविका का साधन बनाने वाले अनेक पोथीज्ञानियों की निगाहों में कलंक देखा जा रहा है। नारदों की तरह पक्षपात पंथवाद के चक्कर में पड़कर समाज को परस्पर में लड़ा रहे हैं अतः ऐसा ज्ञान और शील सुपात्रदान का फल नहीं हैं किंतु धर्मशिक्षा के साथ साथ उत्तम शीलवान होना, निर्दोष ब्रह्मचर्य का पालन करना सुपात्रदान का फल कहा है।

प्र.-667 उत्तम चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्ण रूप से आत्म स्वभाव में स्थिर होने को, अणुव्रत महाव्रत पालन करने को, अशुभ कार्यों से, अशुभ परिणामों से निवृत्ति और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होने को उत्तम चारित्र कहते हैं।

प्र.-668 उत्तम चारित्र की प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- वर्तमान में अनेक ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनें सप्तशीलों का पालन कर रहे हैं, कर रहीं हैं पर मुनि आर्यिका बनने की न तैयारी है, न भावना है। कहीं स्वास्थ्य खराब है, कहीं संहनन नहीं है, कहीं साथी ठीक नहीं है, कहीं समाज साथ नहीं देती है, कहीं कहीं समाज से मुनियों जैसा आदर सम्मान प्राप्ति के साथ साथ माला, मुकुट, मंच के कारण महाव्रत पालने के संस्कार समाप्त

हो गये हैं या महाव्रती बनने के लिए प्रमादी बने हुए हैं अतः सकलचारित्र का पालन करना बड़ा कठिन होने से वर्तमान में मुनियों की संख्या अत्यल्प है इसकारण उत्तम निर्दोष चारित्र प्राप्त होना सुपात्रदान का फल कहा है, सदोष चारित्र नहीं।

प्र.-669 सकल चारित्र की प्राप्ति होना सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- उत्तमपात्र को आहारादि दान का फल मुनिपद नहीं है। पुण्यकर्मोदय से मुनिपद की प्राप्ति मानने पर मुनिपद को, सकलचारित्र को औदयिकभाव मानने का प्रसंग आयेगा फिर पुण्यकर्म को क्षय करने की क्या जरूरत? पुण्य ही मोक्ष स्वरूप हो जायेगा या पुण्य ही आत्मा कहलायेगी और औदयिकभावों से कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, नवीन संवर होना आदि सब कार्य भी मानना होगा फिर कर्मों को क्षय करने के लिए तपश्चरण आदि की आवश्यकता नहीं रह जाती अतः सुपात्र के सामने विषयकषायों का, आरंभपरिग्रह का त्यागकर दान देने से सकलचारित्र की प्राप्ति होती है। सकलचारित्र क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और क्षायिकभाव स्वरूप है क्योंकि क्षयोपशमकरण उपशमकरण और क्षयकरण मोहनीय कर्म में ही होते हैं अतः पूर्ण चारित्र की प्राप्ति संयमघाति पापकर्मोदय के अभाव में और पापक्रियाओं के त्याग से होती है।

प्र.-670 किस पापकर्म के अभाव में सकलचारित्र की प्राप्ति होती है?

उत्तर- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण पापकर्म रूप कषायों के उदयाभाव में सकलचारित्र की और संपूर्ण मोहनीयकर्म के क्षय से, उपशम से यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति होती है।

प्र.-671 क्या पुण्योदय से मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है या नहीं, तो किसके अभाव में?

उत्तर- नहीं, पुण्योदय से मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि पुण्योदय से भोगसामग्रियां और वैभव आदि की प्राप्ति होती है किंतु क्रमशः पापकर्म स्वरूप मोहनीयकर्म के अभाव में मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती हे तथा साधनानुसार जैसे जैसे मोह का अभाव होता जाता है वैसे वैसे रत्नत्रय की वृद्धि होती जाती है।

प्र.-672 तो फिर स्वामीजी ने सकलचारित्र को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- दानांतराय कर्म के क्षयोपशम से सुपात्र को दान दिया तो लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम और प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में सकलचारित्र की प्राप्ति होती है क्योंकि इन दोनों कर्मों का परस्पर में घनिष्ट संबंध है अतः सकलचारित्र की उत्पत्ति साक्षात् प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभाव में तथा लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्ति होती है, कर्मोदय से नहीं।

प्र.-673 उत्पत्ति और प्राप्ति में क्या अंतर है?

उत्तर- जिसका अस्तित्व पहले नहीं था ऐसे अभूतपूर्व नवीन पर्याय के होने को उत्पत्ति कहते हैं तथा जो पास में नहीं है किंतु अनुकूल भाग्य और पुरुषार्थ से वस्तु को अंगीकार कर आत्मसात् कर लेने को प्राप्ति कहते हैं। जैसे खरदूषण का पुत्र शंबूककुमार चंद्रहास खड्ग सिद्ध करने के लिए बांसों के बीच में बैठकर मंत्र जप करने लगा तथा सिद्ध भी हो गया, उत्पन्न हो गया किंतु प्राप्त करने का भाग्य न होने से बांसों के ऊपर ही ऊपर लहराता रहा हाथों में नहीं ले पाया इसकारण उत्पत्ति और प्राप्ति में अंतर है।

प्र.-674 लेश्या की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर- कषाय और योग के निमित्त से लेश्याओं की उत्पत्ति होती है।

प्र.-675 केवल योग की प्रवृत्ति को लेश्या क्यों कहा?

उत्तर- केवल कषायानुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या मानने पर 11वें, 12वें, 13वें गुणस्थान में लेश्याओं का अस्तित्व बन नहीं सकता इसलिए केवल योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहा है।

मिथ्यात्व से 10वें गुणस्थान तक कषाय और योग के निमित्त से और शेष 3 गुणस्थानों में केवल योग के निमित्त से होती है।

प्र.-676 तो फिर 14वें गुणस्थान में लेश्याओं का सद्भाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- 14वें गुणस्थान में कषाय और योग का अभाव होने से लेश्याओं का कथन नहीं किया है क्योंकि निमित्ताभावे नैमित्तिकाभावात्। निमित्त के अभाव होने पर नैमित्तक का अभाव हो जाता है।

प्र.-677 लेश्याओं के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- लेश्याओं के स्वामी मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली पर्यंत हैं।

प्र.-678 शुभलेश्याओं की प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- भोगभूमिजों में और वैमानिकों में एकमात्र शुभलेश्यायें ही होतीं हैं, अशुभ नहीं। अबद्ध ायुष्क जीव सुपात्रदान दाता एकमात्र वैमानिकों की आयु को बांधता है अतः शुभलेश्याओं की प्राप्ति होना सुपात्रदान का फल कहा है। इसी तरह मध्यलोक संबंधी तीनों भोगभूमियों में बद्धायुष्क जीव सुपात्रदान के फल से पैदा होता है। यहाँ पल्यों, सागरों पर्यंत शुभलेश्याओं से परिणमन करता है।

प्र.-679 जैनेतरसाधुओं के वैमानिक देव होने पर शुभलेश्याओं की प्राप्ति क्यों होती है?

उत्तर- जो शुभ लेश्यायें संयम एवं आत्मसाधना में सहायक हो उनको सुपात्रदान का फल कहा है, सभी शुभलेश्याओं को नहीं। जो जैनेतर साधु या गृहस्थों को शुभ लेश्याओं की प्राप्ति होती है वह उनके बालतप और बालव्रत का तथा मंद कषायों का फल है।

प्र.-680 शलाकापुरुषों में अशुभलेश्यायें क्यों होतीं हैं, क्या इन्होंने दान नहीं दिया?

उत्तर- सुपात्रदान और संयमसाधना के बिना इन पदों की प्राप्ति नहीं होती। इन पदों की प्राप्ति के बाद जो विषयकषायों, आरंभपरिग्रह, शृंगारालंकारादि पापों में रत हो अधोगति के पात्र बने सो यह विषयासक्त कषायों के, मिथ्यात्वोदय से परिणमन करने का फल है। इन शलाका पुरुषों के और मुनियों के अशुभ लेश्यायें होना वर्तमान के कुपुरुषार्थ तथा ज्ञान और तप के दुरुपयोग करने का फल है।

प्र.-681 मुनि पद धारण कर लौकिक कार्य कर रहे हैं सो यह किसका फल है?

उत्तर- जो मुनिपद धारण कर लौकिक कार्य कलापों में लगे हुए हैं सो यह मुनिपद का दुरुपयोग करना है और पाप पुरुषार्थ का फल है क्योंकि उत्तम द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की प्राप्ति शुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल भावों के आश्रय से ही हो सकती है, अन्य साधनों से नहीं।

प्र.-682 मुनियों के भी अशुभलेश्यायें होती हैं तो क्या इन्होंने सुपात्रदान नहीं दिया?

उत्तर- इन्होंने गृहस्थावस्था में सुपात्रदान भी दिया था और गृहस्थोचित संयम का पालन भी किया था किंतु बाद में मुनिपद धारण कर अनिष्टकारी बाह्य कारणों के संयोग से मुनियों के भी आर्तध्यान और अशुभ लेश्यायें बन जाती हैं जैसे द्वीपायन मुनि के अशुभ तैजस समुद्घात के कारण अशुभ लेश्यायें हुईं थीं।

प्र.-683 तो क्या सभी भावलिंगी मुनियों के अशुभ लेश्यायें हो जाती हैं?

उत्तर- नहीं, सभी भावलिंगी मुनियों के अशुभ लेश्यायें नहीं होती है किंतु उत्तमसंहननधारी मुनियों के अशुभ तैजस समुद्घात करने से अशुभलेश्यायें हो जाती हैं क्योंकि कषायों की ऐसी ही महिमा है।

प्र.-684 सभी संहनन वाले क्या मुनिदीक्षा धारण कर सकते हैं?

उत्तर- हाँ, छहों संहनन वाले गृहस्थ मनुष्य दिगंबर जैन निर्ग्रंथ मुनिदीक्षा धारण कर सकते हैं, कहा भी है-

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।

भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया।। बो.पा. 53

अर्थ- जिनमार्ग में जिनदीक्षा छहों संहननवालों के कही गई है। यह दीक्षा कर्मक्षय का कारण बताई गई है ऐसी जिनदीक्षा की भावना भव्य पुरुष निरंतर भाते हैं।

प्र.-685 भावलिंगी मुनियों के भी भेद होते हैं क्या तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- हाँ, भावलिंगी मुनियों के भी भेद होते हैं। **पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातकाः निर्ग्रंथाः।।46।।** त.अ.9। **नामः-** पुलाकमुनि, बकुश, कुशील, निर्ग्रंथ, स्नातकमुनि। इन पाँचों में भी आदि के चार भावलिंगी मुनि छद्मस्थ निर्ग्रंथ तथा स्नातक केवली सर्वज्ञ होते हैं।

प्र.-686 स्नातक और छद्मस्थ मुनियों के भी भेद प्रभेद होते हैं क्या?

उत्तर- स्नातक मुनियों के सयोगी और अयोगकेवली ऐसे दो भेद होते हैं। छद्मस्थ/अल्पज्ञानी भावलिंगी मुनियों के भी वीतरागी उपशांतमोही क्षीणमोही मुनि, सरागीमुनियों के श्रेणीआरोहण करने वाले उपशमक और क्षपक, बिना श्रेणी आरोहण करनेवाले प्रमत्त और अप्रमत्त सरागीमुनि होते हैं।

प्र.-687 हीन संहनन वाले भावलिंगी मुनियों के अशुभ लेश्यायें हो सकती है क्या?

उत्तर- हाँ, क्योंकि कमजोर व्यक्ति सोचसमझकर सावधानी पूर्वक गमनागमन करता है सो वह प्रायः गिरता नहीं किंतु मदोन्मत्त व्यक्ति मदांध होकर गमनागमन करता हुआ प्रायः पतन को प्राप्त होता है ऐसे ही हीनसंहनन वाले भावलिंगी पुलाकमुनि निर्बल होने के कारण सावधानी पूर्वक अपनी दिनचर्या को पालने से अशुभ लेश्याओं को प्राप्त नहीं हो पाते किंतु बकुश के हो सकती हैं।

प्र.-688 ज्योतिष के माध्यम से उत्तम नाम रखना क्या सुपात्रदान का फल है?

उत्तर- जिन नामों को सुनकर या बोलकर मंगलभावना उत्पन्न हो, उत्तम पुरुषार्थियों की याद आये ऐसे नामों को सुपात्रदान का फल कहा है तथा जिन नामों को सुनकर या बोलकर नर्तकों की, गानेबजानेवालों की, वैरविरोध की, विषयकषायों की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठे ऐसे अशुभनाम मिथ्यादान के फल हैं। सभी देवों के, भोगभूमियों के, जिनेंद्रभक्त मनुष्यों के नाम पवित्र निर्मल मंगलवाचक होते हैं किंतु आजकल विदेशियों के और अभिनेताओं के नाम रखे जा रहे हैं सो ये पाप के ही फल हैं पुण्य के नहीं अतः देशभेद और ज्योतिष के माध्यम से रखे गये नाम सुपात्रदान के फल हो भी सकते हैं और नहीं भी।

प्र.-689 आजकल फेशन की होड़ में विदेशियों के नाम क्यों रखे जा रहे हैं?

उत्तर- पंचमकाल और छठवेंकाल में यहाँ भरत क्षेत्र के आर्यखंड में जन्मे मनुष्य अत्याचार अनाचार के कारण नरक और तिर्यंचगतिमें जन्म लेते हैं और वापिस वहाँ से मनुष्य पर्याय में जन्म लेते हैं सो इसमें किसीका दोष नहीं है क्योंकि जिनेंद्र और जैनाचार्यों ने ऐसी ही भविष्य वाणी में तथा भरत चक्रवर्ती एवं चंद्रगुप्त सम्राट ने अपने अपने 16-16 स्वप्नों के द्वारा भविष्य में क्या कैसी घटनायें घटेंगीं यह संकेत किया है जो अभी वर्तमान में जैसा का तैसा नजर आ रहा है अर्थात् जिनवाणी अन्यथा कैसे हो सकती है? इन भावी कालों में पैदा होने के लिए अभी से अभ्यास चालू कर दिया है तभी तो उस समय पैदा होंगे। यदि मानव देव शास्त्र गुरु की आज्ञा का यथानुरूप सामर्थ्यानुसार पालन करे तो दुर्गतियों में जाकर क्यों दुःख भोगना पड़े? अतः आधुनिकता की आड़ में विदेशियों के नाम रखे जा रहे हैं, **नकल में भी अकल चाहिये।**

प्र.-690 साताजनित सुख की प्राप्ति को सुपात्रदान का फल क्यों कहा?

उत्तर- सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक साता से असाता और असाता से साता कर्मों का परिवर्तन होते हुए भी मन में कर्मजन्य अनुभव न हो या त्यागीव्रतियों में मोक्षमार्ग की साधना का ही अनुभव हो या उपसर्ग परीषहादि आपत्ति विपत्तियों के आने पर भी सुखानुभव हो उसे सुपात्रदान का फल कहा है।

प्र.-691 मुनियों के कष्टजन्य आर्तध्यान होता है तो क्या इन्होंने सुपात्रदान नहीं दिया?

उत्तर- गृहस्थावस्था में सुपात्रदान दिया हो या न दिया हो सो ठीक है पर उपयोग में स्थिरता पूर्वक असाताजन्य जो आर्तध्यान हो रहा है वह कुपुरुषार्थ का फल है, सुपात्रदान का फल तो धर्मध्यान ही है।

प्र.-692 मुनिजन वर्तमान में मुनि अवस्था में क्या सुपात्रदान देते हैं?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही देते हैं। जैसे संघ में अनेक मुनिजनों की अनेक अवस्थायें भी होतीं हैं तो आचार्य भगवंत और समस्त मुनिवर्ग अपने साधर्मी भाइयों की यथावसर कृत कारित अनुमोदना से आहार की, सेवासुश्रूषा की, वसतिका की, चटाई पाटे की, संस्तर की, औषधि की, हाथपैर शिर आदि के दबाने की, तेल मालिश आदि करने की व्यवस्था स्वयं करते, कराते तथा अनुमोदना भी करते हैं क्योंकि आचार्यों ने वैय्यावृत्ति नित्य करने को कहा है। यदि साधु बनके साधु की वैय्यावृत्ति नहीं करे तो वह साधु कैसा? वात्सल्य अंग कैसा? अतः मुनिजन मुनि अवस्था में सुपात्रदान देते हैं और आहारादि दान वैय्यावृत्ति ही है।

प्र.-693 मुनिजन वर्तमान में मुनि अवस्था में आहारदान कैसे दे सकते हैं?

उत्तर- मुनिजन आहार न स्वयं बनाते हैं, न सामग्री जुटाते हैं किंतु अस्वस्थ मुनियों की, गुरुओं की एवं आगंतुक मुनियों की उचित सेवार्थ आगमानुकूल औषधि, आहारादि की व्यवस्था करा देते हैं क्योंकि वैय्यावृत्ती अंतरंगतप होने से मुनियों का ही धर्म कहा है।

प्र.-694 विदेशों में भी धन वैभव से सुखी देखे जा रहे हैं तो यह किसका फल है?

उत्तर- विदेशों में वहाँ के अनुसार वहाँ के पात्रदान का फल है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र में अपने[2] धर्मानुसार अतिथियों का आदरसम्मान, गुणगान, भोजनदान करते ही हैं और उसीसे सातिशय निरतिशय पुण्य पाप को बांधकर उदय में लाकर या आने पर सुखदुःख का अनुभव करते हैं सो यह दान का ही फल है।

प्र.-695 इस प्रकार ग्रंथकार ने इन दान के फलों को इस क्रम से क्यों कहा?

उत्तर- पूर्व पूर्व के प्राप्त होने के बाद में आगे आगे के फलों का प्राप्त होना अति कठिन है अतः बोधिदुर्लभ भावना का कथन किया है अथवा कुछ फल अघातिया कर्मोदय से और कुछ फल घातियाकर्मों के क्षयोपशम से प्राप्त होते हैं अतः क्रमानुसार फल बतलाया है कि कौन सा फल किसके बाद प्राप्त होता है।

नोटः- यहाँ तक 695 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 20वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 21वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

प्रसाद ग्रहण करने का फल

जो मुणिभुत्तविसेसं भुंजइ सो भुंजइ जिणुवदिट्ठं।
संसारसार सोक्खं कमसो णिव्वाणवर सोक्खं।।21।।

यो मुनिभुक्तविशेषं भुंक्ते स भुंक्ते जिनोपदिष्टं।
संसारसारसौख्यं क्रमशो निर्वाणवरसौख्यम्।।

जो जो **मुणिभुत्तविसेसं** मुनियों के आहार से बचे भोजन को **भुंजइ** खाता है **सो** वह **कमसो**

क्रमशः **संसार सार सोक्खं** इंद्रियसुख और **णिव्वाणवरसोक्खं** मोक्षसुख को **भुंजए** भोगता है ऐसा **जिणुवदिट्ठं** जिनेंद्र भगवान ने कहा है।

प्र.-696 मुनियों के आहार के पश्चात् शेष बचे आहार को क्या कहते हैं?

उत्तर- मुनियों के आहार के बाद में शेष बचे आहार को शेषाक्षत के समान प्रसाद, परम पवित्र उपहार कहते हैं।

प्र.-697 शेषाक्षत किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनेंद्र या पंचपरमेष्ठियों की या नवदेवताओं की या अन्य धर्मकार्यों की पूजन के लिए तैयार की गई सामग्री को पूज्यश्री को अर्पण करने के बाद में शेष बची सामग्री को शेषाक्षत कहते हैं।

प्र.-698 शेषाक्षत का प्रयोग कहाँ कैसे करते हैं और क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- श्रीजी के चरणों में चढ़ाई केसर को अपने मस्तक पर तिलक लगाने में, पुष्पों और पुष्पमाला को गले में पहनते हैं, गंधोदक को आँखों में लगाते हैं। इनको परमपवित्र मानकर, कर्मनाशक समझकर यथास्थान में धारण करना चाहिये। शारीरिक अंग तथा मन विषयकषायों से निवृत्त होना, पवित्र होना ही फल है।

प्र.-699 वे कौन सी सामग्रियां हैं जो शेषाक्षत कहलाती हैं?

उत्तर- गंध, गंधोदक, अक्षत व पुष्प ये शेषाक्षत हैं क्योंकि भक्तगण इनका ही सर्वत्र प्रयोग करते हैं।

प्र.-700 शेषाक्षत के समान आहार सामग्री को ग्रहण करना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- शेषाक्षत सामग्री लगाने योग्य होने से लगाते हैं और आहार सामग्री परमपवित्र होने से हितकारी मानकर भोजन में मिलाकर सपरिवार ग्रहण करते हैं। यदि बिना खाये खिलाये सम्हालकर रख लिया, खानेपीने में कालक्षेप किया तो मर्यादा के बाहर अनेक जीवों का पिंड होने से सचित्त, रसचलित, स्वादविहीन होने से, मांस रक्त खानेपीने वत् दोष आयेगा अतः खर्च कर लेना चाहिये।

प्र.-701 प्रसाद सबको मिलके खाना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- हमने कर्नाटक में अनेक जगहों पर देखा है कि गांव के श्रावक श्राविकायें चौके से दालसब्जी चावल रोटी आदि अपने घर में ले जाकर भोजन सामग्री में मिलाकर पूरे परिवार के साथ ग्रहण करते हैं। एकबार हमने पूछा की आप ऐसा क्यों करते हो तो उन्होंने बताया कि जिस प्रकार हमें पवित्र और सुखी होना है वैसे ही पूरे परिवार को पवित्र और सुखी होना है अतः हम सभी जन ग्रहण करते हैं अथवा कौवा भोजन सामग्री के मिलने पर कांव कांव कर अपने सभी साथियों को बुलाकर खिलाता हुआ खाता है ऐसे ही उत्तम मध्यम जघन्य पात्रों को भोजन कराकर सद्‌गृहस्थों को स्वयं भोजन करना चाहिये।

प्र.-702 कालक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर- कोई भी कार्य करने में अभी करेंगे, एक घंटे बाद करेंगे आदि विलंब कर टालमटोल करने को कालक्षेप कहते हैं अतः **शुभस्य शीघ्रं** धर्मकार्य शीघ्र ही करना चाहिये और अशुभ कार्यों को टालना चाहिये क्योंकि अपने द्वारा बुरी घटनायें जितनी नहीं घटें उतना ही अच्छा है, इसमें ही सभी का हित है।

प्र.-703 पूजन के लिए तैयार की गई सामग्री निर्माल्य है तो पुनः घर क्यों ले आते हैं?

उत्तर- पूजनार्थ तैयार की गई सामग्री अभी निर्माल्य नहीं है किंतु धर्मायतनों को मन वचन काय से अर्पण की गई सामग्री निर्माल्य कहलाती है अतः पूजन से बची हुई शेष सामग्री को वापिस लाने में दोष नहीं है।

प्र.-704 आहार के लिए तैयार की गई सामग्री को निर्माल्य मानने में क्या दोष है?

उत्तर- यदि आप आहारार्थ तैयार की गई सामग्री को निर्माल्य मानते हैं तो जितनी सामग्री आहारार्थ तैयार की है वह टोटल सामग्री आहार में दे देना चाहिये और ऐसा होने पर साधुओं की भ्रामरीवृत्ति न रहेगी। जैसे कुत्ता चांट चांट के खाता है वैसे ही यदि पात्र ने बर्तन साफ कराके पूर्ण सामग्री ले ली तो यह साधु की श्वानवृत्ति ही है अतः यदि आहार सामग्री निर्माल्य है तो पात्र के अलावा गृहस्थों को धान्य का, पक्कान्न मिष्ठान्न का एक कणमात्र भी तथा पानी की, दूध की, रसों की एक बूंदमात्र भी खानापीना नहीं चाहिये, यदि खाया पिया तो निर्माल्य द्रव्य खाया पिया कहलाया। इस कारण अभी वह आहार सामग्री निर्माल्य नहीं है किंतु करपात्र में अर्पण की गई सामग्री कदाचित् निर्माल्य हो सकती है, सर्वथा नहीं।

प्र.-705 हाथ में दी गई आहारसामग्री कदाचित् निर्माल्य हो सकती है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- करपात्र में अर्पण की गई आहारसामग्री को कदाचित् निर्माल्य कहने का कारण यह है कि जब पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले राजा या राजकुमार मुनिदीक्षा लेने के बाद जब पारणा करते हैं तब आ. श्री, मुनि श्री के करपात्र में अर्पण किये हुए उस आहार को सभी श्रावक श्राविकायें ग्रहण करते हैं यह पद्धति भारत के सभी प्रांतों में, नगरों में, गांवों में प्रचलित है और सभी जानते हैं अतः यदि करपात्र में अर्पण की गई आहार सामग्री निर्माल्य है तो सभी गृहस्थ और पंडितों को निर्माल्य खाने का दोष आयेगा इसलिए यह आहारसामग्री कदाचित् निर्माल्य हो सकती है यह ठीक ही कहा है।

प्र.-706 तो फिर मुनियों के हाथ में अर्पित आहार गृहस्थ ग्रहण कर सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, यदि मुनिजन आहार करते समय अपने करपात्र की आहार सामग्री को हाथ से निकालकर गृहस्थ को देते हैं तो यह मुनियों का महान दोष है क्योंकि मूलाचार आदि ग्रंथों में छोटित दोष, ग्रासपतन और ग्रासहरण दोष को टालकर आहार करना चाहिये ऐसा कहा है। यदि मुनि अपने करपात्र का आहार दे सकते हैं तो यह आगम की आज्ञा का उल्लंघन करना है अतः मुनियों के हाथ की आहार सामग्री को न ग्रहण करना चाहिये और ना ही मुनियों को अपने हाथ की आहार सामग्री श्रावकों को देना चाहिये।

प्र.-707 प्रश्न नं. 705 और 706 में पूर्वापरदोष क्यों नहीं है?

उत्तर- दृष्टिभेद होने से पूर्वापर दोष नहीं आता है क्योंकि प्र. 705 के उत्तर में करपात्र के उस आहार को सभी श्रावक श्राविकायें ग्रहण करते हैं और प्र. 706 के उत्तर में कहा है गृहस्थों को देते हैं तब पूर्वापर दोष कैसे? क्योंकि मूर्ति अचेतन है, वह स्वयं आहार ग्रहण नहीं करती हैं किंतु नियोग पूरा करने के लिए मुनिजन अपना करपात्र बनाकर आहार कराते हैं क्योंकि प्रतिमाजी में व्रतों के, गुणों के संस्कार मंत्रों के द्वारा किये जाते हैं पर वह स्वयं पालन नहीं करती किंतु मुनिजन प्रतिज्ञा को स्वयं धारण और पालन करते हैं आदि कारणों से भी इन प्रश्नोत्तरों में पूर्वापर दोष नहीं आता है। **अर्पितानर्पित सिद्धेः**। त.सू. 5, 32

प्र.-708 मुनियों के निमित्त बनाया आहार निर्माल्य ही है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- यदि आपका हठाग्रह है तो बताओ अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत का क्या लक्षण है? यदि पूर्ण सामग्री अतिथि को दे दी और आहार में अतिथि ने पूर्ण सामग्री ले ली, बर्तन खाली कर दिया एक भी बूंद या कण नहीं छोड़ा तो इसे श्वानवृत्ति कहोगे या भ्रामरीवृत्ति? अतः आहार सामग्री पूर्ण रूप से अतिथि को नहीं दी जाती है किंतु भ्रामरीवृत्ति जैसा थोड़ा आहार पात्र को दिया जाता है शेष बहुभाग आहार अपने लिए, परिवार के लिए, देखने वालों के लिए बचाया जाता है इसीसे साधु की जिह्वेंद्रिय विजेता की पहंचान होती है कि ये इंद्रियविजेता हैं या नहीं। आपके कथनानुसार अक्षीणमहानश ऋद्धि भी नहीं बन सकती है क्योंकि इस ऋद्धि के धारक मुनिजन जहाँ जिसके

यहाँ आहार ग्रहण करते हैं उसके घर में शेष बचे आहार को चक्रवर्ती की अक्षौहणी सेना पूर्ण रूप से भोजन कर जाये तो भी वह भोजन समाप्त नहीं हो पाता। आज भी दाता और पात्र के पुण्य और तपानुसार छोटे छोटे बर्तनों में बनाये गये भोजन को भी अनेक श्रावक श्राविकायें कर जाते हैं यह अनेक दातागण जानते हैं किंतु आप जैसे कंजूस गृहस्थ नहीं जानते हैं क्योंकि जब आप दान देते नहीं हैं तो दान की महिमा को कैसे जान सकते हैं?

प्र.-709 अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रतधारी की दिनचर्या किस प्रकार की होती है?

उत्तर- निज की आहारसामग्री का अतिथियों के लिए बटवारा करने को, संविभाग करने को अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत कहते हैं। जैसे गृहस्थ मातापिता अपनी चलाचल संपत्ति का अपना हिस्सा रख कर शेष का बटवारा करते हैं तो उनका जीवन अच्छी तरह से व्यतीत होता है, जीवन में किसी प्रकार से संकट नहीं आता और अपना हिस्सा किये बिना पूरा का पूरा बटवारा कर दिया तो उन माता पिता को हर वक्त कष्ट का सामना करना पड़ता है, घर घर के धक्के खाने पड़ते हैं। कौन बच्चा मातापिता को कबतक खिलायेगा? वह खिलायेगा, तूं खिलायेगा, मैं कहाँ तक खिलाऊं, कबतक सेवा करूं आदि प्रश्न सर्वत्र होते रहते हैं। आजकल देखा जा रहा है कि ऐसे मातापिता कभी इस बेटे के साथ तो कभी उस बेटे के साथ समय समय पर स्थान बदलते फिरते हैं अतः अपना हिस्सा रखकर शेष का बटवारा किया जाता है। ऐसे ही अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत में अपना हिस्सा बचाकर शेष का दान किया जाता है अन्यथा भोजन का समय होने पर भी यदि भोजन नहीं मिला तो भूंख मर जाती है, बीमारियां घेर लेती हैं। असमय होने पर कब बनायेगा कब खायेगा कब क्या काम करेगा? आदि अतः मुनियों के आहार के बाद में शेष बचे आहार को परमपवित्र प्रसाद मानकर ही दातागण ग्रहण करते हैं तभी स्वयं में भी अनुभव होता है कि हमने कैसा आहार दिया है और कैसा देना चाहिये? गुरुजी ने किस प्रकार का आहार ग्रहण कर ध्यानाध्ययन में समय लगाया है स्वास्थ्य कैसा रहा इसकी भी जानकारी हो जाती है यदि स्वयं ने नहीं ग्रहण किया तो कैसे मालुम हो सकता है कि हमने कैसा आहार दिया? योग्य था या अयोग्य?

प्र.-710 भ्रामरीवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- जैसे भौंरा अनेक पुष्पों से थोड़ा[2] रस चूसकर, पूर्णतः न चूसकर सुरक्षित रखता है वैसे ही मुनिजन श्रावकों के हाथ से थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण कर शेष को छोड़ देते हैं उसको भ्रामरीवृत्ति कहते हैं।

प्र.-711 श्वानवृत्ति किसे कहते हैं और किस वृत्ति के कौन स्वामी हैं?

उत्तर- जैसे पालतु कुत्ते को भी भोजन प्राप्त होने पर मुँह में दबाकर भागकर छिपकर अकेला ही खाता है। वैसे ही कंजूस मनुष्य दूसरों को न खिलाता पिलाता हुआ अकेला ही खाता है यही श्वानवृत्ति है अर्थात् भ्रामरीवृत्ति सज्जनों की और श्वानवृत्ति दुर्जनों की होती है इतना संक्षेप में समझना चाहिये।

प्र.-712 निर्माल्य वस्तु किसके भोग्य होती है?

उत्तर- निर्माल्य वस्तु अपने रजोवीर्य से उत्पन्न हुई पुत्री के समान होती है। पुत्री स्वयं पिता के भोग्य न होकर सजातीय भिन्न गोत्रीय के भोग्य होती है। इसी तरह देव शास्त्र गुरु के निमित्त सयोग पूर्वक त्यागी हुई, अर्पण की हुई सामग्री मोक्षमार्गियों के या दाता के भोग्य न होकर दूसरों के भोगने योग्य होती है।

प्र.-713 देव शास्त्र गुरु के लिए अर्पण की गई सभी वस्तुयें निर्माल्य होती हैं क्या?

उत्तर- सभी वस्तुयें निर्माल्य नहीं होती हैं। यदि अर्पण की हुई सभी वस्तुयें निर्माल्य मानी जायें तो गंध का तिलक और गंधोदक को आँखों में कैसे लगा सकते हैं? मंदिर की चटाई, फर्शादि में कैसे

बैठते, सोते हैं? विवाहादि लौकिक कार्यों के लिए मंदिर के बर्तन, कमरा, धर्मशालादि का उपयोग कैसे करते हैं? अतः देव शास्त्र गुरुओं की सभी वस्तुयें निर्माल्य नहीं हैं और न ही कही जाती हैं।

प्र.-714 धर्मायतनों की चटाई आदि गृहस्थों के उपयोगी हैं तब ये निर्माल्य कैसे?

उत्तर- मंदिरों में दाता चटाई आदि देने के बाद में फिर यह चटाई हमारी है या उसकी किंतु मंदिरजी के लिए, मुनिसंघ के लिए देता है और जब जरूरत पड़ती है तब यही कहता है कि मंदिरजी से या महाराजजी के पास से चटाई आदि ले आओ या यह चटाई मंदिरजी की है अतः दान में दी हुई वस्तु अपनी नहीं कहलाती, जिसको दी है उसकी है ऐसा न्याय है सो देते समय दाता को यह बोलना चाहिये कि यह चटाई दरी आदि जघन्य मध्यम पात्रों के लिए यहाँ दी जा रही है तब निर्माल्य नहीं कहलायेगी किंतु ऐसा उच्चारण किये बिना मंदिर को दान में दी है और फिर गृहस्थों ने उपयोग में ली तो निर्माल्य ग्रहण करने का दोष अवश्य लगता। क्या कन्यादान करने के बाद में कोई पुनः कन्या को अपने उपयोग में लेता है? नहीं, अतः धर्मात्मा निर्माल्य वस्तु का प्रयोग नहीं करते यदि उपयोग करने लगें तो धर्मात्मा अधर्मात्मा सज्जन दुर्जनों में क्या अंतर रहा?

प्र.-715 साधुओं के करपात्र में अर्पण की हुई आहार सामग्री निर्माल्य होने से उसे प्रसाद मानकर दातागण वापिस कैसे ले सकते हैं?

उत्तर- साधुओं को अपने करपात्र में आई हुई आहारसामग्री को वापिस नहीं देना चाहिए क्योंकि आचार्यों ने एषणासमिति में 1. छोटितदोष 2. ग्रासपतनदोष 3. ग्रासहरण दोष इन तीनों को टालकर आहार लेना चाहिए ऐसा कहा है। यदि कोई साधु अपने हाथ की सामग्री को निकालकर दूसरों को देते हैं तो दोष युक्त आहार करते हुए देवशास्त्रगुरु की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले हैं।

प्र.-716 छोटित दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- करपात्र में प्राप्त आहार सामग्री लेने में कम आये और नीचे ज्यादा गिरे तो ऐसा आहार छोटित दोष है।

प्र.-717 ग्रासपतन दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- आहार सामग्री करपात्र से स्पर्श कर पूर्णतः नीचे गिर जाये या गिरा देने को ग्रासपतन दोष कहते हैं।

प्र.-718 ग्रासहरण दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- दाता ने मुनियों के करपात्र में आहार का ग्रास रखकर राग, द्वेष, मोह, अज्ञानता और लोभ के कारण ऊपर से ही वापिस उठा या उठवा लेने को ग्रासहरण दोष कहते हैं।

प्र.-719 आहार के बाद आहारसामग्री हाथ में लेकर वापिस कर दे तो क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, पूर्व योजनानुसार होने के कारण दोष ही है, व्रतों की विराधना कषायों से होती है इस कारण भक्तों के प्रति लोभ तथा मनोनुकूल कार्य सिद्धि की अभिलाषा के कारण ग्रास वापिस दिया जाता है, धर्म भाव से नहीं क्योंकि धर्मभाव धर्म का विराधक न होकर साधक ही होता है। इन कार्यों से आगमाज्ञा का उल्लंघन, कर्तव्य की अवहेलना होने से मोक्षमार्ग की विराधना तथा संसारमार्ग की साधना होना ही दोष है।

प्र.-720 पूर्व योजनानुसार भोजनसामग्री वापिस दी है तो दोष कैसे लगेगा?

उत्तर- भले ही पूर्व योजनानुसार जानकारी पूर्वक ज्ञात भाव से आहार सामग्री करपात्र से वापिस दी है तो भी आगम की आज्ञा का उल्लंघन होने से दोष ही है अब केवल देना ही दोष नहीं है किंतु जबसे ग्रास देने का संकल्प किया है तभी से तत्संबंधी कर्मों का आश्रव बंध चालू हो गया। व्रतों की, संयम की विराधना भी चालू हो गई, बाह्य विराधना की अपेक्षा अंतरंग विराधना ही मुख्य

है। बाह्य विराधना से मोक्षमार्ग की विराधना हो या न हो यह संभव है किंतु अंतरंग विराधना से मोक्षमार्ग की विराधना होना ही दोष है।

प्र.-721 साधुओं के निमित्त आहार बनाने से निमित्त दोष क्यों नहीं लगता है?

उत्तर- साधुओं के निमित्त बने हुए आहार के कारण साधुओं को निमित्तदोष देते हो तो तीर्थंकरों या पंच परमेष्ठियों के निमित्त मंदिर, बगीचा, कुँआ खुदवाना, पूजन सामग्री तैयार करना-करवाना, धूप दहनार्थ आग जलाना, दीपक जलाना आदि तैयारी करने से तीर्थंकरों को, अरिहंतों को, पंचपरमेष्ठियों को भी सदोषी मानना पड़ेगा पर ये वीतरागी होने से, इनमें नैमित्तिक भाव न होने से उनके निमित्त आरंभ करने पर भी उन्हें दोष नहीं लगता इसी तरह आहार के माध्यम से साधुओं के मन में नैमित्तिक भाव न होने से किंचित् मात्र भी न दोष लगता है, न आश्रव बंध होता इसीलिये कुछ निमित्तों को कार्य के प्रति साधक बाधक न होने से अकिंचित्कर कहा है तथा कुछ निमित्त कार्य के प्रति साधक बाधक कारण होने से कार्यकारी कहा है, कथंचित् निमित्त को कार्यकारी अकार्यकारी मानने से ही किंचित्कर अकिंचित्कर की व्यवस्था बन सकती है। स्याद्वाद नय से विचारने पर ही निमित्त नैमित्तक संबंध की सम्यक् व्यवस्था बन सकती है अन्यथा नहीं।

प्र.-722 इस गाथा में ग्रंथकार ने दान का फल क्या बताया है?

उत्तर- यहाँ आ. श्री ने दान का फल उभयलोक संबंधी सुखों को प्राप्त करना कहा है क्योंकि जैनी संसार में दुःखी न होकर आयुकर्म का समूल क्षयकर मोक्षसुख को प्राप्त करता है। कहावत है कि **जो दुःखी है वह जैनी नहीं है और जो जैनी है वह दुःखी नहीं है।**

प्र.-723 'जो दुःखी है वह जैनी नहीं और जो जैनी है वह दुःखी नहीं' यह कैसे?

उत्तर- विपाकविचय धर्मध्यानी जैनी सभी कर्मों के लक्षणों का ज्ञाता कदाचित् असाताकर्मोदय से थोड़े समय के लिये दुःखी हो जाता है पर स्थायी नहीं। जैसे जलती हुई सिगड़ी पर दूध उबलता है और हटा देने पर उबलना बंद हो जाता है ऐसे ही वास्तविक जैनी तीव्र असाता कर्मोदय से स्थायी दुःखी नहीं होता किंतु प्रसंग हटते ही दृढ़ श्रद्धानी होने के से सुख का अनुभव करने लगता है।

नोटः- यहाँ तक 723 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 21वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 22वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

प्रकृत्यनुसार आहारादि देना

सीदुण्ह वाउविउलं सिलेसिमं तह परीसहव्वाहिं।
कायकिलेसुववासं जाणिज्जे दिण्णए दाणं ।।22।।

शीतोष्णवातपित्तलं श्लेष्मं तथा परीषहव्याधिं ।
कायक्लेशं उपवासं ज्ञात्वा दीयते दानम्।।

सीदुण्ह शीतोष्ण **वाउविउलं** वात पित्त **सिलेसिमं** कफ प्रकृतिवाले **तह** तथा **परीसहव्वाहिं** परीषह व्याधि **कायकिलेस** कायक्लेश और **उववासं** उपवास को **जाणिज्जे** जान कर **दाणं** दान **दिण्णए** देना चाहिए।

प्र.-724 बाह्य मौसम और शरीर की प्रकृति को जानकर कैसे आहार देना चाहिए?

उत्तर- यदि बाह्य मौसम और शारीरिक प्रकृति शीत है तो शीतनाशक उष्णप्रकृति वाला आहार देना चाहिए जैसे त्रिकुटि, उकाली, लवंग का काढ़ादि अन्यथा शीतकाल में शीतल आहार देने से निमोनिया होकर मृत्यु भी हो सकती है अतः शीतकाल में उष्ण प्रकृति वाला आहार देना और लेना चाहिए। यदि गर्मी और पित्तप्रकृति वाला शरीर है तो पित्तशामक ठंडा दूध, घी, शीतकारक पित्तनाशक आहार देना चाहिए अन्यथा आहार देने से पित्तवृद्धि के कारण भस्मव्याधि रोग, अल्सरादि

रोग पैदा हो सकते हैं जिससे मोक्षमार्ग भी समाप्त हो सकता है। कफप्रकृति होने से शरीर भी फूल जाता है रक्तवाहिनी नलियों में या जहाँ कहीं भी कफ रुकने या जमने से रक्त संचार में कमी या रुकावट होने से शरीर में नाना प्रकार की वेदना, श्वास लेने में कष्ट का अनुभव होने लगता है तथा मृत्यु भी हो सकती है अतः कफनाशक ज्येष्ठमद, शीतोपलादि चूर्ण, लवंगक्वाथादि देना चाहिए। वायु का शरीर होने से वायुनाशक भोजन करना चाहिए, वायुकारक नहीं क्योंकि वायु से भी शरीर में घातक बीमारियाँ उत्पन्न हो जातीं हैं जैसे सर्वांग में जोड़ों में दर्द होना, पेट फूलना, उल्टी होना, गले में दर्द होना, जलन होना आदि। वायु के शरीर में वायुकारक आहार, पित्त के शरीर में पित्तकारक आहार, कफ के शरीर में कफकारक आहार, शीत के शरीर में शीतकारक आहार देना लेना शरीर नष्ट करने के लिये जहरवत् है। ऐसे भोजन से कदाचित् मृत्यु नहीं हुई तो भी मृत्युवत् कष्ट अवश्य होता है जिससे धर्म भी नष्ट होगा और असमय में मरण होगा अतः स्वादानुसार आहार न लेकर स्वास्थ्यानुसार लेना देना चाहिए यही वास्तव में समीचीन दान कहलाता है।

प्र.-725 उपसर्ग, परीषह, शारीरिक रोगों को जानकर आहार औषधि क्यों देना?

उत्तर- उपसर्ग, परीषह, व्याधि आदि की वेदना को दूर करने के लिए मैदालकड़ी, फिटकरी आदि के सेवन और मालिश आदि से उपचार करना चाहिए। निकलते हुए रक्त को चिकने द्रव्यों से या अपने ही मूत्र से रोकना चाहिए। विरुद्ध कारणों को रोकने से और अनुकूल साधनों के जुटाने से अकाल मृत्यु भी रुक जाती है अन्यथा औषधिदान, अभयदान, भोजनदान निष्फलता को प्राप्त हो जायेंगे अतः ये कार्य सफल हैं किंतु उदय क्षय से होने वाली मृत्यु के लिए ये व्यापार निष्फल हैं। उपसर्ग परीषह आदि से जर्जरित अवस्था में शेष बचा हुआ समय धर्मध्यान पूर्वक व्यतीत हो, घबराहट न हो, वेदना का अनुभव न हो, पराधीनता रहित स्वाधीनता से समय व्यतीत हो इसलिये विवेक पूर्वक आहार औषधि आदि देना और लेना चाहिए।

प्र.-726 कायक्लेश आदि से उत्पन्न कमजोरी को जानकर कैसा आहार देना चाहिए?

उत्तर- शरीर निरोग है, न उपसर्ग परीषह हुआ है, वर्षायोग आदि धारण किये हैं या उपवासादि छहों तपों को करने से हीन संहनन होने के कारण, तप विशेष का अभ्यास न होने से कदाचित् कमजोरी की, भूंखप्यास की वेदना का अनुभव हो रहा है जिससे आत्मसाधना में, तत्त्वचिंतन में उपयोग केंद्रित न होकर अस्थिर है तब स्थिरता प्राप्त कराने के लिये योग्य अयोग्य का विचारकर आहारपानी देना चाहिए जिससे त्यागी, व्रती और साधुओं का मन धर्मसाधना में स्थिर हो जावे।

प्र.-727 गाथा में अंत और आदि दो तपों को कहा है फिर आपने छह नाम क्यों कहे?

उत्तर- ग्रंथकार ने अंत आदि के नामों को ग्रहण कर मध्य के चार नामों को बिना कहे ही ग्रहण कर लिया है क्योंकि जिसने रास्ते के आदि अंत को स्पर्श कर लिया है उसने मध्य के रास्ते को पूर्णरूप से स्पर्श कर ही लिया है कारण जिसने प्रथम कदम रखा है वह मध्य को, अंत को प्राप्त हो, न हो यह संभव है पर जो अंत को प्राप्त हुआ उसने आदि, मध्य को स्पर्श किया ही है क्योंकि आदि, मध्य के स्पर्श किये बिना अंत को प्राप्त हो नहीं सकता अतः ग्रंथकार ने संपूर्ण बाह्य छहतपों को ग्रहण किया है ऐसा समझना चाहिए।

प्र.-728 यहाँ ग्रंथकार ने बाह्य तपों को अक्रम से क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर- कथन तीन प्रकार से किया जाता है। **नाम-** 1. पूर्वानुपूर्वी 2. पश्चादानुपूर्वी 3. यत्रतत्रानुपूर्वी।

प्र.-729 पूर्वानुपूर्वी किसे कहते हैं?

उत्तर- क्रमपूर्वक आदि से अंतपर्यंत कथन करने को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं जैसे आदिनाथजी से प्रारंभ कर महावीर तक उच्चारण करना इसी तरह अनशन से लेकर क्रमशः कायक्लेश तक उच्चारण करना।

प्र.-730 पश्चादानुपूर्वी किसे कहते हैं?

उत्तर- अंत से आदि तक के नामों का उच्चारण करने को पश्चादानुपूर्वी कहते हैं। जैसे भ. महावीर से प्रारंभ कर भ. आदिनाथ तक उच्चारण करना ऐसे ही कायक्लेश से लेकर अनशन तक उच्चारण करना।

प्र.-731 यत्रतत्रानुपूर्वी किसे कहते हैं?

उत्तर- आदि, मध्य और अंत में से बीच बीच में जहाँ कहीं से भी नामोच्चारण करने को यत्रतत्रानुपूर्वी कहते हैं। जैसे चौबीस तीर्थंकरों या तपों में से जिस किसी का भी नामोच्चारण कर पूरा उच्चारण करना।

प्र.-732 तब कोई जहाँ कहीं से भी बोल दे वह सब निर्दोष हो जायेगा क्या?

उत्तर- नहीं, यदि वक्ता प्रमादी है तो वह क्रम से, विलोम क्रम से या जहाँ कहीं से भी बोले वह दोष ही है किंतु सावधानी से समिति पूर्वक उच्चारण कर रहा है तो निर्दोष है, अन्यथा निस्संदेह सदोष ही है।

प्र.-733 शरीर की प्रकृति को जानकर आहार औषधि देना चाहिए ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- दाता के 7 गुणों में एक विवेक गुण है यदि आहार योग्य पद्धति से दिया तो अमृत का, पथ्य का काम करता है अन्यथा अपथ्य का, स्वास्थ्य हानि, जहर का काम कर मारक भी बन जाता है।

प्र.-734 अविवेकता पूर्वक आहार देने से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर- अविवेकता से आहार देने पर शुद्धाहार भी जहरवत् मारक हो जाता है जैसे- राजा की माँ बीमार पड़ जाती है। राजा ने राजवैद्य को बुलाकर माँ को दिखाया और निदान कराया वैद्य ने कहा ठीक है स्वास्थ्य जल्दी ठीक हो जायेगा, नौकर को साथ में भेज दो घर से दवाई दे देंगे। वैद्यजी नौकर को लेकर घर गये और नौकर को दवाई देकर कहा कि हिलाकर पिला देना। नौकर दवाई ले आया और राजमाता को हिलाकर दवाई पिलाने लगा राजमाता ने दवाई नहीं पी किंतु जीभ बाहर निकल आई नौकर घबराया घबराते हुए राजा के पास आकर बोला हे स्वामिन्! राजमाता दवाई नहीं पी रहीं हैं तब राजा ने कहा पुनः वैद्यजी को दिखाओ नौकर वैद्यजी के पास जाकर बोला हे वैद्यराज राजमाता को चलकर पुनः देखो वे दवा नहीं पी रहीं हैं वैद्यजी ने आकर देखा कि राजमाता की जीभ बाहर निकली हुई है तब वैद्यजी ने नौकर से पूंछा कि तुमने क्या किया नौकर ने कहा मैंने आपके कहे अनुसार राजमाता को खूब हिलाकर दवा पिलाने लगा तब जीभ निकल आई पर दवा नहीं पी। उस समय वैद्यजी अपने हाथों को माथे में मारकर बोले कि हे सेवक! दवा को हिलाकर पिलाना था और तुम राजमाता को हिलाकर दवा पिलाने लगे जिससे राजमाता की मृत्यु हो गयी इस प्रकार अविवेकी हो आहार देने से हानि ही हानि प्राप्त होती है, लाभ नहीं।

नोटः- यहाँ तक 734 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 22वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 23वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आहारादि दानों के भेद

हिय मियमण्णं पाणं णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।

सयणासणमुवयरणं जाणिज्जा देइ मोक्खरओ।।23।।

हितमित मन्नं पानं निरवद्यौषधि निराकुलं स्थानम्।

शयनासनमुपकरणं ज्ञात्वा ददाति मोक्षरतः।।

मोक्खरओ मोक्षरत साधकों को **हियमियं** हितमित **अण्णं पाणं** अन्नपान **णिरवज्जोसहिं** निर्दोष

औषधि **णिराउलं** निराकुल **ठाणं** स्थान **सयणासणमुवयरणं** शयनासन उपकरण **जाणिज्जा** जानकर **देइ** देता है।

प्र.-735 मोक्ष में रत साधुओं को दान देना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे यात्रार्थी रास्ते में प्रीतिवान नहीं होता है सब कुछ छोड़ता जाता है क्योंकि यात्री प्राप्तव्य स्थान में ही प्रीतिवान होता है, गंतव्य स्थान में नहीं। अपने लक्ष्य पर पहुंचकर ही स्थिर होता है कारण रास्ता गमन करने का साधन है, स्थिर होने का नहीं, ऐसे ही साधु मोक्ष में ही प्रीतिवान हुआ है, मोक्षमार्ग में नहीं इसलिए मोक्षमार्ग में गमन करता है। मार्ग रुकने के लिए नहीं होता है क्योंकि लक्ष्य फल प्राप्ति का बनाया जाता है, मार्ग का नहीं सो आ. श्री ने मोक्षमार्ग में रत न कहकर मोक्ष में रत है ऐसा कहा है।

प्र.-736 आचार्य श्री कुंदकुंदजी ने गाथा 23 में किसका वर्णन किया है?

उत्तर- आ. श्री ने मोक्षमार्ग के योग्य सुपात्रदान का वर्णन किया है। ये दान इस प्रकार हैं - 1. हितकारी- स्वास्थ्यानुसार आहार देना, मितकारी- मात्रानुसार देना 2. निर्दोष औषधि देना 3. निराकुलतामय स्थान, शैय्या, आसन देना अर्थात् आवासदान 4. संयमार्थ पीछी देना, ज्ञानार्थ शास्त्र देना, शुचि के लिये कमंडलु देना यह उपकरण दान है। इस प्रकार ये दान के चार भेद बतलाये हैं।

प्र.-737 ये दान कौन देते हैं किसको देते हैं और किस हेतु देते हैं?

उत्तर- ये दान मोक्षमार्गी श्रावक श्राविकायें आत्मसुख के इच्छुक, विषयकषायों से बचने के लिये देते हैं। मोक्षमार्ग के साधक उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों को कर्मबंधन से छूटने या मोक्ष के निमित्त देते हैं।

प्र.-738 आचार्य श्री ने आहारदान के साथ में हित विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- आचार्य श्री ने आहार के साथ हित विशेषण इसलिये लगाया है कि देखो पशुपक्षियों को कितना ही भोजनपान रख दो सो उनकी हितकारी भोजनपान से उदरपूर्ति हुई कि बाद में एक दाना, एक बूँद पानी भी नहीं खाते पीते हैं। इसीलिये उन पशुपक्षियों के ना डॉक्टर हैं, न ऐसी बीमारियाँ हैं और न ऐसी दवाइयाँ हैं किंतु मनुष्यों में ऐसा संयम न होने से अनेक बीमारियाँ हैं, डॉ. हैं, दवाइयाँ हैं क्योंकि मनुष्यों को थोड़ा समझाया या गीली आँखें दिखा दी या प्रेम बताया तो पेट भरा होने पर भी लोभ से मन गीलाकर गले तक भर लेता है तभी तो मनुष्य आपत्तियों से घिरा हुआ है। यदि मनुष्य स्वास्थ्यानुसार सीमित आहार ग्रहण करे तो अशुद्ध दवाइयाँ नहीं खानी पड़ेगी क्योंकि हितकारी आहार करने से शरीर पूर्ण निरोग रहता है अतः मनुष्यों को अपना स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिए पशुपक्षिओं से दिनचर्या सीखना चाहिये, मनुष्यों से नहीं।

प्र.-739 सीमित आहार ग्रहण करने को क्यों कहा?

उत्तर- सीमित आहार का प्रयोजन उदर में थोड़ी सी जगह खाली रखना है जिससे श्वास लेने में तकलीफ न होगी, गैस नहीं बनेगी, असमय में नींद और बीमारी नहीं आयेगी, ध्यानाध्ययन में मन एकाग्र होगा, जल्दी[2] मलमूत्र क्षेपण करने की बाधा नहीं होगी। तत्त्व चिंतन में एकाग्रता होगी, इस कारण थोड़ा पेट खाली रखने से अनेक गुण प्राप्त होते हैं और दोषों का क्षालन होता है, पाप कर्मों का आश्रव बंध नहीं होता है।

प्र.-740 उदराग्नि के अनुसार आहार करने को क्यों कहा?

उत्तर- जैसे दीपक में तेल घी अधिक या कम मात्रा में डालने से जल्दी बुझ जाता है ऐसे ही उदराग्नि से अधिक मात्रा में आहार करने पर उदराग्नि जल्दी मंद पड जाती है या समाप्त हो जाती है तथा उदराग्नि से कम मात्रा में आहार करने पर उदराग्नि अधिक वृद्धि या शक्तिहीन हो जायेगी अतः उदराग्नि से अधिक या कम मात्रा में आहार लेने से स्वास्थ्य की हानि होती है सो उदराग्नि

की मात्रानुसार आहार लेना चाहिये।

प्र.-741 भूंख से उदर को कितना खाली रखना चाहिये?

उत्तर- भूंख से उदर को इतना खाली रखना जिससे ध्यानाध्ययन में बाधा नहीं आये, कमजोरी न आये और अपने परिणाम भी नहीं बिगड़े वहाँ तक एक दो ग्रासों को आदि लेकर पेट खाली रखना चाहिये।

प्र.-742 हितकारी आहार हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि आहार स्वास्थ्य विरुद्ध है तो न धर्मध्यान होगा न प्रतिज्ञा का पालन होगा। प्रतिज्ञा भंग होने से धर्म की, मोक्षमार्ग की हानि होने से लोक में निंदा होगी आदि हेतुओं से हितकारी आहार हो ऐसा कहा है।

प्र.-743 आहार किस प्रकार का होना चाहिये और कैसा आहार करना चाहिये?

उत्तर- आहार आगमानुसार होना चाहिये। स्पर्श, रस, गंध में, रूप में और शब्दों में मंगलकारी शुभ होना चाहिये, अशुभ नहीं। अनिष्टकारी स्पर्श न हो, रसचलित न हो, दुर्गंधित न हो, कुरूप न हो, सुनने में अशुभ नहीं होना चाहिये जैसे स्पर्श में अनुकूल प्रतिकूल हो तो ग्रहण करने में राग द्वेष उत्पन्न हो जायेंगे अतः स्पर्शनेंद्रिय के अनुकूल और प्रतिकूल होने से आत्मघातक है। रसनेंद्रिय के अनुकूल स्वादिष्ट होने से विषयासक्त होकर रागाविष्ट होगा या प्रतिकूल होने से द्वेष पैदा होगा या अरुचि होगी इससे रागद्वेष होने के कारण विकार वर्धक होगा। घ्राणेंद्रिय के प्रतिकूल शराब, मांस, सड़ीगली वस्तुओं जैसी दुर्गंध होने से द्वेष उत्पन्न होगा और अनुकूल घी, इत्र आदि जैसी सुगंध होने से राग उत्पन्न होगा। चक्षुइंद्रिय के प्रतिकूल होने से द्वेष पैदा होगा तथा मन को मोहित करने वाला अनुकूल रूप होने से राग उत्पन्न होगा। कर्णेंद्रिय के अनुकूल प्रतिकूल आमलेटादि आहार के नामों को सुनकर विषयकषायादि उत्पन्न होने से रागद्वेष होगा। इस प्रकार पाँचों इंद्रियों द्वारा राग द्वेष उत्पन्न करने वाला आहार नहीं होना चाहिये किंतु सात्त्विक सौम्य मर्यादा सहित आगमानुसार होना चाहिये। आहार ग्रहण करते समय पात्र को अपने पंचेंद्रियविजय 5 मूलगुणों को पालन करते हुए आहार ग्रहण करना चाहिये, मूलगुण घातक आहार नहीं होना चाहिये।

प्र.-744 निर्दोष औषधि दान में देना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- निर्दोष औषधि देने से प्रतिज्ञा का, धर्म का पालन होता है और सदोष औषधि देने से श्रावक के भी मूलगुणों का पालन नहीं होता है तो फिर मुनियों के मूलगुणों का पालन कैसे होगा? अतः धर्मरक्षा के लिए सुपात्रों को निर्दोष औषधि दान में देना चाहिये।

प्र.-745 सदोष औषधि किसे कहते हैं?

उत्तर- मद्य मांस मधु, त्रस स्थावरजीवों के शरीर, धातु उपधातुओं, मलमूत्र, आलु, मूली गाजरादि कंदमूलों की मिलावट वाली और मर्यादा के बाहर औषधियों को सदोष औषधि कहते हैं।

प्र.-746 निराकुलतामय स्थान शयन आसन का दान देना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जहाँ जिस स्थान में सुपात्रों को ठहराना है, सुलाना है, बैठाना है उस स्थान में यदि बालक, स्त्रियाँ, नपुंसक हैं, विषयभोगों के साधन मौजूद हैं, डाँस मच्छर हैं, दुर्गंधित है, लड़ाई झगड़ा, नाच गान, कोलाहल, विवाह हो रहा है, सूतक पातक का स्थान है तो ऐसे स्थानों में सुपात्रों को न ठहराना चाहिये, सोना सुलाना, बैठना बैठाना आदि कार्य नहीं करना कराना चाहिये। गृहस्थों जैसी आकुलता व्याकुलता होने से वह मोक्षमार्गी साधु, मुनि नहीं है क्योंकि मन में विकार होने से आत्म साधना में सफलता नहीं मिलती है। जैसे भोजन करते समय मन में घबराहट होने से पेट भर जायेगा पर न स्वाद आयेगा, न आनंद आयेगा इसीलिये निराकुलतामय शयन आसन और आवासदान देना चाहिये।

प्र.-747 यदि सुपात्रों के लिये आवासदान नहीं दिया तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि हीनोत्कृष्ट संहनन और परिणामवाले सुपात्रों को आवासदान नहीं दिया तो सुपात्रपना स्थिर नहीं रह सकता असमय में स्वास्थ्य बिगड़ जाने से आत्मसाधना, धर्मसाधना और धर्मप्रभावना न होकर विराधना होगी अतः सुपात्रों के बिना व्यवहारधर्म और निश्चयधर्म भी नष्ट हो जाता है आदि अनेक आपत्तियाँ हैं।

प्र.-748 उपकरण एवं उपकरण दान किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन साधनों से व्यवहार और निश्चयधर्म का पालन, वृद्धि, स्थिरता हो उन्हें उपकरण कहते हैं और मोक्षमार्गी सुपात्रों को धर्म में सहायभूत साधनों के अर्पण करने को उपकरणदान कहते हैं।

प्र.-749 उपकरण दान देना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- पीछी के बिना जीव रक्षा न होने से संयम का पालन नहीं हो सकता। कमंडलु के बिना लघुशंका, दीर्घशंका, पसीना आदि के आने पर शुद्धि न होने से द्रव्य की अशुद्धि रहती है। शास्त्र के बिना तत्त्वज्ञान की, सूक्ष्मज्ञान की, विशेषज्ञान की प्राप्ति और धारणा नहीं बन सकती क्योंकि अभी वर्तमान में आ. अकंलक जैसे एकपाठी नहीं हैं कि एक ही बार अध्ययन करने के बाद में मजबूत धारणा बन जाये अतः वर्तमान में साधुओं के लिये, सुपात्रों के लिये शास्त्र दान देना चाहिये क्योंकि शास्त्र धारणा ज्ञान के लिये अनन्य कारण हैं। उत्तम पात्र आर्यिकाओं के लिये, मध्यमपात्र ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं के लिये इन तीन उपकरणों के साथ साथ वस्त्रदान भी देना चाहिये। आर्यिकाओं के लिये वस्त्रदान देना परिग्रह नहीं है किंतु उपकरण है क्योंकि उपकरण मोक्षमार्ग में, धर्मसाधन में, आत्मसाधना में सहायक होता है और परिग्रह पाप होने से मोक्षमार्ग में, आत्म साधना में बाधक विराधक होता है यदि आर्यिकाओं की साड़ी को परिग्रह माना जाये तो आर्यिकाओं के अपरिग्रहमहाव्रत कैसे होगा? वह तो भ्रष्ट हो गई तथा वस्त्रदाता भी महाभ्रष्ट कहलाये। इसके अलावा मध्यम, जघन्य पात्रों को भी यथायोग्य धर्मसाधन में, आत्म साधना में सहायक चेतन अचेतन सामग्री देना चाहिये क्योंकि भोग सामग्री पाप को बढ़ाती है तो धर्म में सहायक सामग्री आत्म शुद्धि को प्राप्त कराती हुई बढ़ाती है इस कारण दान स्वपर कल्याण के लिये दिया जाता है आदि कारणों से स्वयं को मोक्षमार्गी बनने के लिये मोक्षमार्ग में सहायक सामग्री दान में देना चाहिये यदि दान में नहीं दी तो अपने को प्राप्त नहीं होगी तब अपन स्वयं मोक्षमार्ग की साधना कैसे करेंगे?

प्र.-750 चेतन अचेतन सामग्री और मिश्र सामग्री किसे कहते हैं?

उत्तर- चेतन सामग्री-: स्वयं और बालक बालिकायें आदि चेतन सामग्री है। **अचेतन सामग्री-:** वस्त्राभूषण, सोना चांदी, मकान दुकान आदि। **मिश्र सामग्री-:** दोनों मिली हुई सामग्री को मिश्र सामग्री कहते हैं।

प्र.-751 मध्यम जघन्य पात्रों को ये सामग्रियां दान में देना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- छठवीं प्रतिमा तक अविवाहित मध्यमपात्र पात्राओं और अव्रती सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र पात्राओं का परस्पर में विवाह कराकर दासीदासादि चेतन सामग्री भी दी जाती है। यदि यौवन से भरपूर बालक बालिकाओं का धर्म के निमित्त विवाह नहीं कराया तब मन वश में न होने से पागलपन आ जायेगा या पशुवत् चेष्टायें करेंगे अतः धर्मसाधन के निमित्त पाणिग्रहण संस्कार कराना, आजीविका या अन्य बाह्य साधनों के निमित्त चेतन अचेतन सामग्री भी देना योग्य है। जैसे पलंग एक लकड़ी से न बनकर 8 लकड़ियों से बनता है ऐसे ही मोक्षमार्ग की साधना एक से न होकर अनेकों से होती है।

प्र.-752 निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग की साधना क्या एक से होती है या अनेक से?

उत्तर- निश्चय मोक्षमार्ग की साधना आत्मगत अनेक कारणों से होती है तो व्यवहार मोक्षमार्ग की साधना अनेक बाह्य चेतन अचेतन मिश्र सामग्री रूप कारणों से होती है।

प्र.-753 इनके अलावा और भी धर्म साधन में सहायभूत सामग्री दे सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही दे सकते हैं। इन चार प्रकार के दानों के अलावा और भी धर्म में सहायक चेतन अचेतन सामग्री देना चाहिये क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुसार धर्माधर्म को, हिताहित को, कल्याण अकल्याण को समझकर धर्म के योग्य सामग्री देना चाहिये एवं धर्म के अयोग्य सामग्री को धर्म में बाधक कारण जानकर नहीं देना चाहिये तथा ऐसा निर्णय आगमाज्ञानुसार होना चाहिये, अपनी इच्छानुसार नहीं क्योंकि इच्छानुसार निर्णय लेने से प्रायः सन्मार्ग छूट जाता है।

प्र.-754 सदोष आहार एवं उपकरण देने से मार्ग और मार्ग फल क्या नष्ट नहीं होगा?

उत्तर- हाँ, सदोष आहार एवं उपकरण देने से अवश्य ही मोक्षमार्ग तथा मोक्षफल नष्ट हो जाता है।

प्र.-755 ये उपकरण निर्दोष हैं या सदोष यह कैसे समझा जाये?

उत्तर- जो आहार, उपकरण आदि मोक्षमार्गानुरूप पात्रों की आत्मसाधना में सहायक हों वे निर्दोष हैं और इनके विपरीत सदोष हैं। उत्तम, मध्यम पात्रों ने उपकरणों के प्रति अपना योग उपयोग लगाया कि हमें प्राप्त हो, हमको दो ऐसी याचना की या साधुओं के सामने वसतिका में झाडूपोंछा, मरम्मत कराना, साधु स्वयं पंखों का छेदनभेदन करें, छीले, कैंची, सुई चलायें, सिलें, पीछी बनाये, बनवाये, कमंडलु सुधारें आदि दोष हैं। शास्त्र निर्दोष हो यदि पात्र का क्षयोपशम कम है, विशेष ऊहापोह तर्कणाशक्ति नहीं है तब उनको लौकिकशास्त्र देने से वे उसीको सही समझकर धारणा बनाकर धर्मोपदेश करने लगेंगे और भक्तगण भी गुरुवाणी, जिनवाणी मानकर विश्वास कर लेंगे जिससे मोक्षमार्ग दूषित होगा। आर्यिकाओं, क्षुल्लिकाओं को गृहस्थों जैसा शरीर का प्रदर्शन कराने वाला वस्त्र न देकर निर्विकारोत्पादक देना चाहिये जो बदन को अच्छी तरह से ढकने वाला हो, यदि वस्त्र शरीर का प्रदर्शक है तो लज्जा मर्यादा, ब्रह्मचर्य का, संयम का पालन न हो पायेगा अतः उपकरण सदोष होने से पात्रों का जीवन बिगड़ेगा और निर्दोष होने से सुधरेगा।

प्र.-756 सदोष उपकरण आहार पानी आदि देने में क्या दोष है?

उत्तर- सुपात्रों को सदोष सामग्री देने से मोक्ष और मोक्षमार्ग बिगड़ता है। आत्मा से कर्मों का क्षय नहीं होता है। आत्माराधना, आत्म ध्यान न होने से संवर निर्जरा न होगी तब मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी? संसारमार्ग में, आश्रवबंध में, विषयविकारों में वृद्धि होने से संसार और संसारमार्ग की, पाप की वृद्धि होगी यही दोष है। जैसे सदोष खाद पानी से भूमि बंजर हो रही है, पेड़ पौधे फलहीन तथा असमय में सूख रहे हैं, इंजेक्शनों के द्वारा पशु पक्षी भी असमय में मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं तो मनुष्य भी गलत भोजनपान से, औषधि के सेवन से, कृत्रिम रजोवीर्य के द्वारा इंजेक्शनों के माध्यम से गर्भ धारण, पालन, पोषण होने से गर्भस्थ संतानें अनेक बीमारियों से युक्त जन्म धारण कर रहीं हैं और जल्दी ही मरण को प्राप्त होतीं हैं तो ऐसे ही सुपात्रों को यदि गलत आहारपानी, औषधि दी गई तो पात्र भी असमय में नष्ट हो जायेंगे यही दोष है।

नोटः- यहाँ तक 756 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 23 वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 24 वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मुनियों की वैय्यावृत्ति कैसे करना?

अणयाराणं वेज्जावच्चं कुज्जा जहेह जाणिज्जा।

गब्भब्भमेव मादाव्व णिच्चं तहा णिरालसया।।24।।

अनगाराणां वैय्यावृत्यं कुर्यात् यथेह ज्ञात्वा।

गर्भार्भकमेव माता इव नित्यं तथा निरालसका।।

जहा जैसे **मादा** माता **गब्भब्भमेव व्व** गर्भस्थ शिशु की **णिच्चं** नित्य **णिरालसया** सावधानी से आलस्य छोड़कर **वेज्जावच्चं** सेवा करती है **तहा** वैसे ही **इह** यहाँ **अणयाराणं** मुनियों की सेवा निरालसी होकर स्थिति को **जाणिज्जा** जानकर **कुज्जा** करनी चाहिये।

प्र.-757 यहाँ मुनि पद से किस किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यहाँ मुनिपद से आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि अनेक भेद वाले समस्त जिनमुद्रा धारी, यथाजात रूप धारी, दिगंबर जैन मुनियों को अथवा सभी मोक्षमार्गियों को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-758 यहाँ मुनि पद से तीर्थंकर तथा अरिहंतों को क्यों ग्रहण नहीं किया?

उत्तर- यद्यपि 757 के उत्तर में तीर्थंकर अरिहंतों का नाम स्पष्ट रूप से ग्रहण नहीं किया है तो भी आदि पद से तीर्थंकर अरिहंत पद को ग्रहण कर लिया है क्योंकि जब सूत्रकार ने सूत्र में पुलाक आदि पाँचों को मुनि कहा है तब यहाँ भी मुनिपद से तीर्थंकर अरिहंतों को ग्रहण कर लेना चाहिये ऐसा अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

प्र.-759 तो तीर्थंकर और अरिहंतों की सेवा किस प्रकार से करते थे और करते हैं?

उत्तर- जिस समय तीर्थंकर और अरहंतप्रभु साक्षात् विराजमान थे उस समय छद्मस्थ मोक्षमार्गी साधकगणों के द्वारा आज्ञा पालन करना, पूजाराधना करना तथा इंद्र आज्ञा से धनद कुबेर यक्ष समवशरणादि की रचना करना भी सेवा ही कहलाती थी। अभी वर्तमान में उनकी प्रतिमाओं की अभिषेक, पूजा, आरती एवं भक्ति आदि करना सेवा है क्योंकि भगवान की सेवापूजा की ऐसा राजस्थान में अभी भी बोलते हैं।

प्र.-760 तीर्थंकर और अरहंतों की वर्तमान में सेवा कर सकते हैं क्या?

उत्तर- क्षेत्र और काल भेद होने से वर्तमान में तीर्थंकर अरिहंतों की साक्षात् पूजा कर सकते हैं क्योंकि विदेहक्षेत्रों में तीर्थंकर और अरिहंत विराजमान हैं, वहाँ करते ही हैं और यहाँ भी अतदाकार स्थापना से करते ही हैं अथवा भक्तिभावों से प्रसन्न मेंढक ने मरणकर देव बनकर साक्षात् प्रभु की पूजा की। यदि मेंढक जैसी आपकी भक्तिभावना है तो कर सकते हैं या मंत्र सिद्ध करने की सामर्थ्य है तो मंत्रों को सिद्ध करके विदेहक्षेत्र में जाकर पूजाराधना कर सकते हैं अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.-761 अनेक वस्त्रधारी जैन मुनियों को क्यों ग्रहण नहीं किया?

उत्तर- महावीर के उपदेश में वस्त्रधारियों को उत्सर्गमार्गी मुनि नहीं माना है क्योंकि गर्भस्थ बालकवत् न होने से वस्त्रधारी जैन मुनि कहलाने वाले होने पर भी उनको यहाँ ग्रहण नहीं किया है।

प्र.-762 मुनियों के कितने भेद हैं और उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर- मुनियों के उत्सर्गमार्गी और अपवादमार्गी ये दो भेद हैं। **उत्सर्गमार्गी मुनि-:** बाह्य चर्या के त्यागी निर्विकल्पध्यान में स्थित परमोपेक्षा संयमधारी उत्सर्गमार्गी मुनि कहलाते हैं। **अपवादमार्गी मुनि-:** पीछी कमंडलु आदि बाह्य सामग्री का उपयोग करने वाले प्रमत्तगुणस्थान वाले मुनियों को अपवादमार्गी कहते हैं किंतु वस्त्रधारियों को मुनिपद से संबोधन न कर गृहस्थलिंगी उत्कृष्ट श्रावक ऐलक क्षुल्लक कहा है।

प्र.-763 मुनिपद से आर्यिकाओं को क्यों ग्रहण नहीं किया या क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर- आचार्य, उपाध्याय और मुनियों जैसा आर्यिका का रूप न होने से या परमेष्ठि पद न होने से ग्रहण नहीं किया है या तीनों परमेष्ठियों के समान व्रतों के संस्कार और बाह्यचर्या होने से ग्रहण कर ही लिया है अन्यथा आर्यिका उपचार से उत्तमपात्र नहीं कहला सकती तथा यह उपचार गधे के सींग की तरह नहीं है।

प्र.-764 यहाँ आर्यिका पद से किस किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यहाँ आर्यिका पद से 28, 25, 36 मूलगुणों की धारी, अध्ययन करने, कराने वाली, शिक्षादीक्षा देने वाली, शिष्याओं का संग्रह निग्रह, धारण पालनपोषण करने वाली को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-765 यहाँ शिक्षा दीक्षा से क्या मतलब है?

उत्तर- यहाँ शिक्षा से मतलब प्रायश्चित्त और दीक्षा से मतलब ऊर्ध्वगति में गमन करने के लिये सहायक व्रत, नियम, संयम हैं सो यहाँ शिक्षा दीक्षा देनेवाली से मतलब गणिनी आर्यिकाओं से है।

प्र.-766 यहाँ संग्रह, निग्रह, धारण, पालन और पोषण से क्या मतलब है?

उत्तर- **संग्रह-:** वैरागी मोक्षमार्गियों को संघ में एकत्रित करना, मिलाना संग्रह है। **निग्रह-:** वैरागी बनकर भी भोगी गृहस्थों जैसी या धर्म और मोक्षमार्ग विरुद्ध चर्यावालों को संघ से निकाल देना निग्रह है। **धारण-:** हर तरह से योग्य शिष्य शिष्याओं को हमेशा के लिए संघ में रखना। **पालन-:** धर्मानुकूल योग्य आहार औषधि आदि से संरक्षण करना, योग्य व्यवस्था जुटाना पालन है। **पोषण-:** उत्तमोत्तम संस्कारों के द्वारा मोक्षमार्ग में दृढ़ मजबूत करना पोषण है। ये कार्य मातृपितृवत् शिष्य शिष्याओं के लिए किये जाते हैं।

प्र.-767 यहाँ श्रावक पद से किस किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- श्रावक पद से ऐलक, क्षुल्लक तथा समस्त अणुव्रती, अव्रती गृहस्थों को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-768 यहाँ श्राविका पद से किस किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यहाँ श्राविका पद से क्षुल्लिका तथा अणुव्रती, अव्रती बहनों को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-769 यहाँ अनगार पद से प्रमत्त पर्यंत चतुर्विध मुनिसंघ को क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर- यहाँ अनगार पद से मोक्षमार्गस्थ समस्त उत्तम मध्यम जघन्य मोक्षमार्गियों की सेवा करना चाहिये ऐसा कहा है। जैसे घर में सभी की सभी सेवा करते हैं। समस्त प्राणी वर्गों में मित्रता का भाव हो, सभी में वात्सल्य भाव हो, सभी में एक समान कृपादृष्टि, दयादृष्टि हो तभी तो तीर्थंकर प्रकृति का आश्रव बंध होता है। जिस प्रकार सूर्य, चंद्र, पेड़ पौधे, मेघ आदि बिना भेदभाव के सभी को एक समान इष्ट सामग्री प्रदान करते हैं उसी प्रकार मोक्षमार्गी बनकर समस्त प्राणियों की यथायोग्य कोटियों से सेवा करूंगा अतः ग्रंथकार ने दृष्टांत में गर्भस्थ संतान के माध्यम से सभी को ग्रहण किया है, केवल एक दो को नहीं।

प्र.-770 वैय्यावृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्गियों की आत्मसाधना में, धर्मपालन में, प्रतिज्ञा को निभाने में आये हुए संकटों को जिस किसी भी उपाय से दूर करने को, मन में उत्पन्न हुए विकल्पों के दूर करने को तथा हाथ पैर दबाना, तैलमालिश करना, आहार देना आदि को वैय्यावृत्ति कहते हैं।

प्र.-771 वैय्यावृत्ति किन अवस्थावालों की कब करना चाहिये?

उत्तर- जब पात्रों का मन धर्म पालन से हट रहा हो, प्रमादी बन रहा हो तभी वैय्यावृत्ति करनी चाहिये या जब जरूरत हो तभी करना चाहिये। वैय्यावृत्ति करने में आचार्यों ने रात्रि दिन का विभाजन नहीं किया है।

प्र.-772 वैय्यावृत्ति किसकी करनी चाहिये?

उत्तर- मोक्षमार्गी धर्मात्माओं की वैय्यावृत्ति करना चाहिये किंतु वैय्यावृत्ति करते समय छोटा, बड़ा, मेरा, उसका, रोगी, निरोगी आदि विचार नहीं करना चाहिये यदि किये तो वह वैय्यावृत्ति नहीं कहलायेगी।

प्र.-773 वैय्यावृत्ति कितनी मात्रा में करनी चाहिये?

उत्तर- मर्मस्थानों को छोड़कर शेष स्थानों की सावधानी से मोक्षमार्गस्थ पात्रों की वैय्यावृत्ति करनी चाहिये। वैय्यावृत्ति करते समय पात्रों के मन में बेचैनी और गुदगुदी न हो वैसी करनी चाहिये। अत्यंत धीरे हाथ से सेवा करने पर गुदगुदी तथा पूर्वभुक्त भोगों की याद आ सकती है, अत्यंत कठोर हाथों से तेलमर्दन करने या दबाने पर अधिक दर्द होने का भी भय रहता है अतः पात्रों की सहनशक्ति के अनुसार सेवा करनी चाहिये।

प्र.-774 वैय्यावृत्ति कहाँ करना चाहिये?

उत्तर- जहाँ प्रसंग हो वहीं करना चाहिये इसमें लज्जा, डरने या लोकेषणा की क्या जरूरत? क्या अपनी माँ, बहनों की, पुत्रियों की डॉक्टरों से जाँच नहीं कराते हैं? क्या डॉ. दुर्भावनाओं से मरीजों की जाँच कर सकता है? जब दूसरों से सेवा कराने में लज्जा नहीं आती है तो स्वयं के द्वारा सेवा करने में लज्जा क्यों?

प्र.-775 वर्तमान में साधुओं की सेवा किस भाव से करना चाहिये?

उत्तर- यह साधु भव्य है या अभव्य, सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि ऐसा विचार किये बिना वर्तमान में धर्म के निमित्त साधुओं की वैय्यावृत्ति करना चाहिये। जैसे केवल अपनी संतान सुरक्षित रहे, स्वास्थ्य अच्छा रहे इस भाव से तथा कुलदीपक होगा ऐसा मानकर माँ बाप सेवा करते हैं। कुलनाशक है ऐसा विचार करने लगें तो माँबाप सेवा ही नहीं कर सकते अतः केवल वर्तमान जीवन को देखकर ही सेवा करना चाहिये।

प्र.-776 साधुओं की वैय्यावृत्ति के लिये गर्भस्थ संतान का उदाहरण क्यों दिया?

उत्तर- जिस प्रकार गर्भस्थ संतान न बोल सकती है, न इशारा कर सकती है, न दौड़ सकती है, न भाग सकती है, न दूसरों से शिकायत कर सकती है, हाँ, कदाचित् रो सकती है इसी तरह साधुवर्ग भी न बोल सकते हैं, न इशारा कर सकते हैं, न दौड़ सकते हैं, न भाग सकते हैं, न अन्यत्र शिकायत कर सकते हैं, न रो सकते हैं, न दीन वचन बोल सकते हैं, न दीनता के भाव लाते हैं आदि हेतुओं से साधु की सेवा के लिये गर्भस्थ संतान का दृष्टांत दिया है क्योंकि गर्भस्थ बालक और साधु में समानता है नीति भी है:- **''बालक बूढ़ो एक समान''** इसी तरह बीमार, कमजोर व्यक्ति भी गोद के बालक के समान हो जाते हैं।

प्र.-777 वैय्यावृत्ति साधुओं की पूंछकर करना चाहिये या बिना पूंछे?

उत्तर- गर्भस्थ या तुरंत के जन्मे बालक-बालिकाओं से जिनकी अभी आँखें ही नहीं खुल पायी हैं तो क्या उनसे पूंछकर दूध पिलाते हैं, सेवा करते हैं, मलमूत्र साफ करते हैं, स्थान बदलाते हैं? नहीं। अपने आप ही बिना पूंछे विवेक से समय और चेष्टानुसार जानकर दूध पिलाते हैं, सेवा करते हैं आदि ठीक वैसे ही मुनियों की, चतुर्विध संघ की और समस्त मोक्षमार्गियों की बिना पूंछे वैय्यावृत्ति करनी चाहिये। पूंछकर सेवा की तो क्या की? पूंछकर पात्र की हाँ बुलवाकर सेवा करने से पात्र भी स्वयं कारित और अनुमोदना से पाप का भागीदार होता है अतः बालवैद्य के समान सेवा करना चाहिये तभी तो विषापहार स्तोत्र में धनंजय कवि ने-

व्यापीडितं बालमिवात्म दोषै, रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम्।।

हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः सर्वस्य जन्तोरसि बालवैद्यः।। 5।।

अर्थ-: अज्ञानता से यह जीव दुःख उपार्जन करता है तथा हिताहित के अन्वेषण में मंद बुद्धि हो रहा है उसको इस दुःख से छुड़ाने के लिए जिनेंद्र देव आदिनाथ के बिना और दूसरा कोई बालवैद्य नहीं है।

प्र.-778 साधुओं से पूंछकर साधुओं को आहारादि देना चाहिये क्या?

उत्तर- जिस साधु से पूंछा है उसी साधु को आहारादि दिया तो उस साधु को अधःकर्म सहित गृहस्थपने का दोष आयेगा क्योंकि ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, आर्यिका तथा मुनियों ने नवकोटि से अधःकर्म का त्याग किया है अतः इन पात्रों से पूंछकर आहारादि न बनाना चाहिये और न इनको देना चाहिये।

प्र.-779 वैय्यावृत्ति कभी कभी करना चाहिये या अहर्निश?

उत्तर- जब लौकिक कार्यकलाप हमेशा करते हैं तो आत्मसंशोधन रूपी वैय्यावृत्ति हमेशा करना चाहिये। कहा भी है **''निशदिन वैय्यावृत्ति करैया सो निश्चय भव नीर तिरैया''** जो अहर्निश धर्मायतनों की वैय्यावृत्ति करता है वह निश्चय से संसार समुद्र से पार होता है- सोलहकारण पूजा की जयमाला।

प्र.-780 वैय्यावृत्ति किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- वैय्यावृत्ति द्रव्य और भाव से या मन, वचन, काय से करना, कराना और अनुमोदना भी करना चाहिये तभी आत्मप्रभावना और धर्मप्रभावना होती है अन्यथा नहीं या मायाचार दिखावट के बिना अपनी शक्त्यनुसार मोक्ष के निमित्त, सोत्साह, सावधानी पूर्वक पात्र की आवश्यकानुसार वैय्यावृत्ति करना चाहिये।

प्र.-781 वैय्यावृत्ति के कितने भेद हैं?

उत्तर- पात्रों के भेदानुसार वैय्यावृत्ति के भी अनेक भेद हैं। जैसे आहारादि देना, शरीर मर्दन, तेलमालिश, सिकाई करना, वसतिका की सफाई करना। पीछे पीछे करीब एक हाथ का अंतर देकर गमन करना, नीचे बैठना, नीचे सोना, नम्रता से बोलना, उद्दंडता नहीं करना, पीछी कमंडलु देना आदि अनेक भेद हैं।

प्र.-782 इस प्रकार वैय्यावृत्ति करने से दाता को क्या लाभ है?

उत्तर- इस प्रकार वैय्यावृत्ति करने से दाता के अंतरंग में विषयकषायों का, सुखिया स्वभाव, प्रमाद का त्याग होने से अंतरंग वैय्यावृत्ति तप है। जिससे विपुलमात्रा में कर्मों का संवर और कर्मों की निर्जरा होती है तथा बाह्य में विनय, मार्दव आदि गुण ख्यापित होना आदि अनेक लाभ प्राप्त होते हैं।

प्र.-783 कृत कारित अनुमोदना से सेवा करनी चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- स्वयं करने को कृत, दूसरों से कराने को कारित और करने वालों की प्रशंसा करने को अनुमोदना कहते हैं। स्वयं करते हुए दूसरे से कराना, प्रशंसा करना शोभा देता है किंतु स्वयं न करते हुए दूसरों से कराना, अनुमोदना करना अशोभनीय है, आत्मवंचना है, स्वकर्तव्यों को नष्ट करना है क्योंकि धर्मकार्यों से समय बचाकर पापकार्यों में लगाना और अपने को धर्मात्मा समझना आत्मवंचना है। आज वर्तमान में प्रमादी धनवान देवपूजा, गुरुओं को दान देना आदि स्वयं न कर नौकरों से कराकर स्वयंको बड़ा धर्मात्मा समझने लगे हैं सो ये बीमार होते हुए भी दूसरों को दवाई खिलाकर स्वस्थ होना चाहते हैं ऐसा समझना चाहिये।

नोटः- यहाँ तक 783 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 24वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 25वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

दान कुदान की शोभा

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहं वा।

लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवं जाणे।।25।।

सत्पुरुषाणां दानं कल्पतरूणां फलानां शोभेव।

लोभीनां दानं यदि विमानशोभा शवं जानीहि।।

सप्पुरिसाणं सत्पुरुषों का **दाणं** दान **कप्पतरूणं** कल्पवृक्ष के **फलाण** फलों की **सोहं** शोभा **वा** सदृश **जइ** और **लोहीणं** लोभियों का **दाणं** दान **सवं** शव की **विमाणसोहा** पालकी के समान **जाणे** जानना चाहिये।

प्र.-784 सज्जन पुरुष, सज्जन स्त्री, सज्जन नपुंसक किसे कहते हैं?

उत्तर- जो सर्वतः मोक्षमार्गस्थ गुणों से संपन्न हो मूलोत्तरगुणों का, षडावश्यकों का पालक हो, सज्जाति, कुलादि उच्चगुण युक्त सदाचारिओं को सज्जन पुरुष, सज्जन स्त्री, सज्जन नपुंसक कहते हैं।

प्र.-785 दुर्जन पुरुष, दुर्जन स्त्री, दुर्जन नपुंसक किसे कहते हैं?

उत्तर- अपनी दिनचर्या से जाति कुल और जिनधर्म को कलंकित करने वाले दुष्चरित्रियों को, पापाचार, व्यसन सेवन, मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य के सेवी को, राजद्रोही, देशद्रोही, समाजद्रोही, परिवारद्रोही, धर्मद्रोही, आत्मघातक को दुर्जन पुरुष, दुर्जन स्त्री, दुर्जन नपुंसक कहते हैं।

प्र.-786 पुरुष किसे कहते हैं?

उत्तर- उत्कृष्ट पुरुषार्थ करने वाले को, जो उत्तम गुणों से संपन्न हो, प्रतिज्ञा को अंत पर्यंत पालन करने में कर्मठ हो, उपसर्ग परीषह को जीतने में कर्मठ हो, गर्भ धारण कराने की सामर्थ्य वाले को पुरुष कहते हैं।

प्र.-787 यदि इन गुणवालों को पुरुष कहते हो तो स्त्री और नपुंसक किसे कहोगे?

उत्तर- शरीर की रचना से भले ही स्त्री या नपुंसक का आकार हो पर अंतरंग में इन गुणों से संपन्न होने के कारण मोक्षमार्ग में पुरुष ही है। शरीर की रचना तो मांसपिंड स्वरूप है, वास्तव में आत्मा का गुणों से उत्थान और दोषों से पतन होता है तभी तो शरीर की रचना से स्त्री, नपुंसक होने पर भी गुणों से संपन्न होने के कारण देवों के द्वारा, राजा महाराजाओं के द्वारा पूज्यता को प्राप्त हुईं तथा दिगंबर जैनाचार्यों ने भी अपने मुखारविंद से और लेखनी से सर्वत्र प्रसंशा की, गुणकीर्तन किया। जो यथावसर शास्त्रों में पढ़ा जाता है।

प्र.-788 उक्त गुणवान द्रव्य से स्त्री, नपुंसक हो तो क्या साक्षात् मोक्ष में जा सकते हैं?

उत्तर- प्र. 787 में उक्त गुणवान द्रव्य स्त्री, नपुंसक मोक्षमार्गी बनकर सोलहवें स्वर्ग तक जा सकते हैं इसके आगे नहीं। जब ये सोलहवें स्वर्ग के आगे नहीं जा सकते हैं तो मोक्ष में जाने की बात तो बहुत दूर रही।

प्र.-789 द्रव्यवेद और भाववेद की रचना किन किन कारणों से होती है?

उत्तर- पुद्गलविपाकी शरीरनामकर्म और अंगोपांग नामकर्मोदय से शरीर संबंधी योनि, स्तन, लिंग दाढ़ी मूंछादि द्रव्यवेद एवं मोहनीयकर्म के भेदों में वेदनोकषायोदय से भाववेद स्त्री, पुरुष और नपुंसक होते हैं।

प्र.-790 सज्जन पुरुषों को कल्पवृक्ष के समान क्यों कहा?

उत्तर- जैसे कल्पवृक्ष प्राणियों की इच्छानुसार, कामनानुसार याचना करने पर इष्ट फल देते हैं वैसे सज्जन पुरुष प्राणियों की इच्छानुसार इष्ट फल देते हैं, किमिच्छिक दान देते हैं अतः फलदान की सामर्थ्य एक समान होने से सज्जन पुरुषों को, उत्तम दानदाताओं को कल्पवृक्षवत् कहा है।

प्र.-791 कल्पवृक्ष किसे कहते हैं, कितने प्रकार के होते हैं और क्या देते हैं?

उत्तर- कल्पनानुसार संसारी जीवों के पाँचों इंद्रिय संबंधी विषय सामग्री प्रदान करने वाले को या आधार आधेय में अभेद विवक्षा कर समस्त प्रकार के मनोनुकूल भोग के निमित्त सामग्री

प्रदान करने वाले को कल्पवृक्ष कहते हैं। ये 10 होते हैं अथवा बुखार जैसी संज्ञाओं के शमनार्थ मात्रानुसार सुख सामग्री देते हैं। ये सभी कल्पवृक्ष अभेद विवक्षानुसार सचित्त, एकेंद्रिय, स्थावर और पृथ्विकायिक तिर्यंच जीव होते हैं।

प्र.-792 क्या कल्पवृक्ष के समान और भी कोई सामग्री इष्ट फल देतीं हैं?

उत्तर- हाँ, कल्पवृक्ष के समान और भी वस्तुयें संसारी प्राणियों को कामनानुसार इष्टफल देतीं हैं। जैसे कामधेनु गाय, चिंतामणी रत्न, रसायन और पारसपत्थर आदि।

प्र.-793 उन कल्पवृक्षों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **नाम-:** 1. पानांग 2. तूर्यांग 3. भूषणांग 4. वस्त्रांग 5. भोजनांग 6. आलयांग 7. दीपांग 8. भाजनांग 9. मालांग 10. तेजांग।

प्र.-794 उन भोगभूमिजों को पानांग कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को पानांगजाति के कल्पवृक्ष मधुर, सुस्वादु छहरसों से युक्त प्रशस्त अतिशीत तुष्टि और पुष्टिकारक 32 प्रकार के पेय द्रव्य देते हैं।

प्र.-795 उन भोगभूमिजों को तूर्यांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को तूर्यांग जाति के कल्पवृक्ष उत्तम वीणा, पटु, पटह, मृदंग, झालर, शंख, दुंदुभि, भंभा, भेरी और काहल आदि नाना प्रकार के वाद्यों को देते हैं।

प्र.-796 उन भोगभूमिजों को भूषणांगकल्पवृक्ष कितने प्रकार के आभूषण देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को भूषणांगजाति के कल्पवृक्ष कंकण, कटिसूत्र, हार, केयूर, मंजीर, कटक, कुंडल, किरीट और मुकुटादि को देते हैं। आर्य के 16 आभूषणः- कुंडल, अंगद, हार, मुकुट, केयूर, भालपट्ट, कटक, प्रालंब, ब्रह्मसूत्र (जनेऊ), नूपुर, दो मुद्रिकायें, मेखला, तलवार, छुरी, ग्रैवेयिक और कर्णपूर। आर्याओं के छुरी और तलवार के बिना शेष 14 आभूषण। ति.प. अ. 4 गा. 365-366

प्र.-797 उन भोगभूमिजों को वस्त्रांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को वस्त्रांग जाति के कल्पवृक्ष नित्य चीनपट्ट, उत्तम क्षौम वस्त्र तथा मन और नयनों को आनंदित करने वाले नाना प्रकार के वस्त्र देते हैं।

प्र.-798 उन भोगभूमिजों को भोजनांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को भोजनांग जाति के कल्पवृक्ष 16-16 प्रकार का आहार, व्यंजन, 14 प्रकार के सूप दाल आदि, 108 प्रकार के खाद्य पदार्थ, 363 स्वाद्य पदार्थ, 63 प्रकार के रसों को देते हैं।

प्र.-799 उन भोगभूमिजों को आलयांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को आलयांग जाति के कल्पवृक्ष स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि सोलह प्रकार के रमणीय दिव्य भवन देते हैं।

प्र.-800 उन भोगभूमिजों को दीपांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को दीपांगजाति के कल्पवृक्ष जलते हुए दीपकों के समान प्रकाश देते हैं।

प्र.-801 उन भोगभूमिजों को भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को भाजनांगजाति के कल्पवृक्ष स्वर्ण और अनेक रत्नों से निर्मित धवल झारी, कलश, गागर, चामर और आसनादि देते हैं।

प्र.-802 उन भोगभूमिजों को मालांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमिजों को मालांग जाति के कल्पवृक्ष वल्ली, तरु, गुच्छ और लताओं से उत्पन्न हुए

16000 भेद रूप पुष्पों की विविध मालाओं को देते हैं।

प्र.-803 उन भोगभूमिजों को तेजांग जाति के कल्पवृक्ष क्या देते हैं?

उत्तर- उन भोगभूमियों को तेजांग जाति के कल्पवृक्ष करोड़ों सूर्यों की किरणों के समान प्रकाश देते हैं। ति.प. अधि.4 गा. 346 से 357 तक देखना चाहिये।

प्र.-804 यदि ये कल्पवृक्ष पृथ्वीकायिक हैं तो वहाँ शेष स्थावरों से क्या प्रयोजन है?

उत्तर- वृक्ष नाम तो वनस्पति का ही है फिर भी आधारआधेय में अभेद करके या आधार को प्रधान कर पृथ्वीकायिक हैं ऐसा कहा है क्योंकि पृथ्वी आधार है तो शेष 4 स्थावरजीव आधेय हैं। यदि भोगभूमि में केवल एक पृथ्वीकायिकजीव ही हैं तो शेष चार स्थावरों के अभाव का प्रसंग आता है।

प्र.-805 पृथ्वी ही सभी रूप में परिणमन करती है ऐसा मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, परमाणु पाँचों स्थावरों में परिणमन करने की शक्ति वाला है पर वह परमाणु एक समय में एक स्थावर रूप से परिणमन कर सकता है, सभी में नहीं फिर स्कंध तो एक समय में एकसाथ पाँचों स्थावर रूप से परिणमन कर ही नहीं सकता ऐसे ही पृथ्वीकायिक स्कंध एक समय में एकसाथ जल अग्नि, वायु और वनस्पति रूप से परिणमन नहीं कर सकता इसी तरह पक्वान्न रूप से पृथ्वी परिणमन नहीं कर सकती क्योंकि कर्मभूमिज मनुष्य मनुष्यनी वनस्पतिकायिक बीज, फल, पत्ते, शाखा, प्रतिशाखाओं को कूट पीसकर अपने पुरुषार्थ से दाल, पूरी, मिठाई हलवा आदि पक्वान्न बनाते हैं, पृथ्वी से, मिट्टी से नहीं। यदि पक्वान्न मिष्ठान्न मिट्टी के ही होते हैं तो क्या तीर्थंकर प्रकृति वाले भी मिट्टी के पक्वान्न मिष्ठान्न खाते हैं क्योंकि इंद्र इंद्राणी कल्पवृक्ष की ही सामग्री लाते हैं तब भोगभूमि और कुभोगभूमि में क्या अंतर रहा? अतः स्कंध को स्कंध रूप से परिणमन करने में कम से कम अंतर्मुहूर्त समय लगता है शीघ्रता से स्कंध रूप में न परिणमन करते हैं और न वे अपना जातिगत स्वभाव छोड़ते हैं। ध. पु. 1 सू. 34 पृ. 257

प्र.-806 वहाँ मिट्टी ही हवादि रूप में परिणमन करती है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- भोगभूमि में यदि मिट्टी पत्थर ही हवापानी आदि रूप में परिणमन कर जाते हैं तो वहाँ पिंडरूप में बादर जलकायिक और बादरवायुकायिकादि जीवों का अभाव प्राप्त होता है और वायुकायिकजीवों के बिना श्वासोच्छ्वास प्राण का भी अभाव प्राप्त होता है या जो जिसमें परिणमन कर रहा है उसका भी अस्तित्त्व होना चाहिये तभी तो वह उसरूप में परिणमन करेगा। यदि उसका उस रूप में अस्तित्त्व नहीं है तो उस रूप में कौन परिणमन करेगा? हवापानी और वनस्पति के बिना भूमि भी ऊसरभूमिवत् हो जाती है फिर वहाँ के पशुपक्षी मधुर स्वादिष्ट हरी हरी घास खाते हैं ऐसा आचार्यों ने क्यों कहा? इस कारण जो जिस रूप में है भोगभूमिज उसको उसी रूप में ग्रहण करते हैं या जैसे यहाँ पर बड़े[2] संपन्न घरानों में राजारानी, सेठसेठानी भोजन बनाना पकाना नहीं जानते केवल खाना जानते हैं ऐसे ही भोगभूमिजों में भरपूर संपन्नता होने के कारण भोजन पकाना, सुधारना नहीं जानते किंतु जैसा उपलब्ध हुआ उसको वैसे ही सेवन कर लेते हैं। देखो पशुपक्षी धान्यों को कच्चा ही खा लेते हैं तो उनमें कितनी ताकत है तथा मनुष्य नाना मिर्चमसालों के, छोंकवघार के संस्कारों से युक्त भोजन करता हुआ भी उतनी ताकत वाला नहीं हो पाता है क्योंकि सब्जीफलों और धान्यों को अग्नि से संस्कारित करने पर उनकी स्वाभाविक सामर्थ्य नष्ट हो जाती है सो मनुष्य कमजोर और बीमार रहता है।

प्र.-807 लोभ कषाय और लोभी किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयभोगों में और तत्संबंधी सामग्री में या पापाश्रव में कारणभूत सामग्री के प्रति आकर्षण भाव को, चेष्टा को लोभ कषाय कहते हैं और इस कषाय से सहित जीव को लोभी कहते हैं।

प्र.-808 लोभी मनुष्य किसे कहते हैं?

उत्तर- संसारी अनायतनों के प्रति लगाव झुकाव वाले को या विषयासक्त को लोभी मनुष्य कहते हैं।

प्र.-809 विमान किसे कहते हैं?

उत्तर- वि- विशेष रूप से। मान- अहंकार से अकड़कर सूखे बांस के समान रहने को मान और दोनों के मिलाने को अथवा देवदेवांगनाओं के निवासस्थान को या आकाश में उड़ने वाले यंत्र को विमान कहते हैं।

प्र.-810 ग्रंथकार ने विमान को किसके समान कहा है?

उत्तर- जब कोई विशेष व्यक्ति मर जाता है तब उसको बांस की लेटने, बैठने योग्य लंबी शैय्या बनाकर या राजा महाराजा या तपस्वीजनों की मृत्यु होने पर बैठने योग्य आसन में विराजमान कर श्मशान की ओर ले जाने के साधन को मृतकशैय्या के समान विमान कहते हैं।

प्र.-811 लोभी पुरुषों के, दुर्जनों के दान को मृतकशैय्या की उपमा क्यों दी?

उत्तर- जैसे मृतकशैय्या की शोभा और प्रशंसा नहीं होती हैं, न पूजा आदर सम्मान होता है वह ठठरी केवल एकमात्र जलाने के काम आती है, अशुभ होती है। वैसे ही लोभी पुरुषों के दान की महिमा ऐसी ही है जो वर्तमान में देख रहे हैं। लोभी दानदाताओं की महिमा की कोई प्रशंसा न कर उल्टी निंदा ही करते हैं। उस मक्खीचूस, कंजूस ने क्या दिया? वह न खाता है, न खिलाता है, किसान के खेत में खड़े चंचापुरुष के समान है जैसे चंचापुरुष न स्वयं खाता है, न भूंखे प्यासे पशुपक्षियों को खाने देता है केवल किसी अन्य व्यक्ति के लिए रक्षा करता है ऐसे ही कंजूस को नपुंसक के समान भी कहा है।

प्र.-812 चंचापुरुष किसे कहते हैं?

उत्तर- किसान खेत में फसल की रक्षा के लिए मनुष्याकार में लकड़ियों को गाढ़कर कपड़े पहनाकर पुतला खड़ा करते है उसको चंचापुरुष कहते हैं या कहीं कहीं सीधा बांस गाढ़कर उस पर काला घड़ा रख देते हैं जो फसल की रक्षा करता हुआ मनुष्यों की दृष्टिदोष से भी रक्षा करता है अर्थात् नजर नहीं लगने देता है।

प्र.-813 कंजूस को नपुंसक के समान क्यों कहा?

उत्तर- जिस प्रकार नपुंसक सर्वांग सुंदर यौवनवती पत्नि को पाकर केवल देखकर, स्पर्श करके मन प्रसन्न कर लेता है पर नपुंसकता के कारण कामसुख का अनुभव नहीं कर पाता इसी प्रकार कंजूस प्राणी धन संपत्ति को पाकर केवल देख करके संभाल करके मन प्रसन्न कर लेता है किंतु उस संपत्ति का भोग उपभोग न करने के कारण उसे नपुंसक के समान कहा है।

प्र.-814 कंजूस लोभी दानदाता को ऐसी उपमा क्यों दी?

उत्तर- लोभीपुरुष सर्वप्रथम दान देता ही नहीं कदाचित् किसी के प्रेम या दवाबवश या अन्य कारणों से अनेकबार प्रेरणा करने पर ख्यातिपूजालाभ की भावना पूर्वक देने के कारण यह उपमा दी है या कल्याण की, आत्महित की भावना न होने से यह उपमा दी है सो यह उपमा पतन के लिए न होकर उत्थान के लिये समझना चाहिये क्योंकि महापुरुषों के वचन उत्थान के लिये होते हैं।

प्र.-815 यदि उत्थान कराने का उद्देश्य है तो अच्छी उपमा देते?

उत्तर- यदि महापुरुष अन्य पतनार्थ शब्दोच्चारण करने लगें तो वे महापुरुष कैसे? अतः कहीं[2] गलत पंथ से हटाकर सन्मार्ग में लाने के लिये लौकिक शब्दों का भी प्रयोग कर लेते हैं जैसे माँ बाप अनाज्ञाकारी पुत्र को कुपुत्र कहते हैं सो उनका कुपुत्र कहना पतन के लिये न होकर सुधारने के लिये है ऐसे ही आचार्य ने यह उपमा दुर्भावनाओं को निकालने के लिये दी है, पतन के लिए नहीं।

नोटः- यहाँ तक 815 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 25वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 26वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सत्पात्र से अनभिज्ञ अविवेकी

जसकित्ति पुण्णलाहे देइ सुबहुगंपि जत्थ तत्थेव।
सम्माइ सुगुणभायण पत्तविसेसं ण जाणंति।।26।।

यशः कीर्तिपुण्यलाभाय ददाति सुबहुकमपि यत्र तत्रैव।
सम्यक्त्वादिसुगुणभाजनपात्रविशेषं न जानन्ति।।

लोभी पुरुष **जसकित्तिपुण्णलाहे** लौकिक यशकीर्ति और पुण्य के लिये **सुबहुगंपि** अनेकविध दान **देइ** देते हैं वे **सम्माइ** सम्यक्त्वादि **सुगुणभायण** उत्तमगुणवान **पत्तविसेसं** पात्रविशेष को **ण** नहीं **जाणंति** जानते हैं।

प्र.-816 यशःकीर्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- स्वयं गुणरूप में परिणमन करने को, गुणों का कथन और चिंतन हो उसे यशःकीर्ति कहते हैं।

प्र.-817 अपने गुणों का बखान दूसरे करें उसे यशकीर्ति नामकर्म क्यों नहीं कहा?

उत्तर- यशःकीर्ति नामकर्म जीवविपाकी प्रकृति होने से इसका फल केवल अपनी आत्मा में ही प्राप्त होता है बाह्य में दूसरों के कहने से नहीं। यदि परकृत गुणप्रशंसा को यशःकीर्ति नामकर्म मानते हो तो जिनकी समाधि हो चुकी है, मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं उनकी प्रशंसा, गुणकीर्तन, पूजाराधना करते हैं, मूर्ति बनवाकर, प्रतिष्ठा कराकर भक्ति आदि मंगलकार्य करते, कराते हैं उनके भी यशःकीर्ति नामकर्मोदय मानना पड़ेगा फिर ऐसा कहने से संसारी जीव मानने का प्रसंग आयेगा फिर सुभग, शुभ नामकर्म का क्या फल है? चित्रकला की, भोग पदार्थों की, जड़ पदार्थों की, हवापानी की, पुष्पों की, सब्जी फलों की, मद्य मांस की, चोरों आदि की भी प्रसंशा की जाती है फिर उनके भी यशःकीर्ति नामकर्म का उदय मानना पड़ेगा अतः वास्तव में अपने आप में गुणों का वर्णन, चिंतन यशःकीर्ति नामकर्म का उदय जानना चाहिये क्योंकि एक ही समय में एकसाथ एक जीव के यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति नाम कर्म का उदय नहीं होता हैं कारण ये दोनों प्रकृतियां सप्रतिपक्षी हैं। एक समय में एक का ही उदय और एक का अनुदय होता है।

प्र.-818 बाह्य में निंदा और प्रसंशा होने को इनका उदय मानने में क्या दोष है?

उत्तर- एकसाथ एक समय में एक जीव की अनेक प्राणी निंदा प्रसंशा करते हुए देखे जा रहे हैं एक ही समय में एकसाथ दोनों प्रकृतियों का उदय मानने से ये सप्रतिपक्षी प्रकृतियां बन नहीं सकती हैं और अयशःकीर्ति का उदय आचार्यों ने चौथे गुणस्थान तक ही माना है जबकि लोक में मुनियों की, केवलियों की भी एक समय में एकसाथ निंदा और प्रशंसा होती है तब इसे क्या कहेंगे? अतः स्वयं में ही दुर्गुणों से परिणमन करना अयशःकीर्ति और गुणों से परिणमन करना यशःकीर्ति मानना चाहिये जो सर्वत्र निर्दोष है।

प्र.-819 अयशःकीर्ति का उदय चौथे गुणस्थान तक होने से गुरुओं की निंदा क्यों हुई?

उत्तर- अयशःकीर्ति नामकर्म प्रकृति जीवविपाकी होने से इसका उदय क.कां. में चौथे गुणस्थान तक ही कहा है इसके आगे नहीं फिर भी यदि आप अयशःकीर्ति नामकर्म के उदय से मुनियों की, केवलियों की निंदा हुई और मुनि भी मानने लगें की क्या करें मेरे अयशःकीर्ति नामकर्म का उदय है तब उनको गृहस्थ मानना पड़ेगा या कर्मसिद्धांत बदलना पड़ेगा। अब बोलो आप किसको बदलना चाहते हो? अतः अयश फैलाने वाला, निंदक नीचगोत्र और अयशःकीर्ति का आश्रवबंध कर रहा है सो मुनियों का अयशः फैलना, निंदा होना स्वयं की अपेक्षा निष्कारण है किंतु करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा सकारण है।

प्र.-820 बाहर में गुणकीर्तन किया जाना यशःकीर्ति है यह अर्थ ठीक क्यों नहीं है?

उत्तर- यह लौकिक परिभाषा है, सिद्धांत की नहीं क्योंकि आगमिक परिभाषाओं को शंकाकारों ने या लौकिक वक्ताओं ने सही नहीं समझा है इसीलिए वे तत्त्वमीमांसा से अनभिज्ञ हैं अतः लौकिक अर्थ लौकिकदृष्टि से ही गलत है तो लोकोत्तर दृष्टि से कहना ही क्या है? इसी भूल से आज वक्तागण अविवेकी हैं अतः गुणकीर्तन कर्ताओं के कदाचित् यशःकीर्ति कर्म का उदय माना जा सकता है।

प्र.-821 गुणकीर्तन करनेवाले के ''कदाचित्'' यशःकीर्ति का उदय है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि गुणकीर्तन करने वाला लौकिक व्यक्ति निःस्वार्थी, निष्कपटी और तत्त्ववेत्ता है तो उसके यशःकीर्ति पुण्यकर्म प्रकृति का उदय है **''कदाचित्''** पद का यह अभिप्राय है।

प्र.-822 पुण्य किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जो आत्मा को पवित्र करे, पवित्रता कराये तथा सहायक हो और सांसारिक इंद्रियसुख सामग्री, पदवी आदि प्राप्त कराये उसे पुण्य कहते हैं। पुण्य के दो भेद हैं। 1. धर्म के निमित्त 2. भोग के निमित्त।

प्र.-823 कर्मक्षय के निमित्त पुण्य होता है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- जो आत्मा को पवित्र करे और कराये उसे पुण्य कहते हैं ऐसा कहा ही है तो अब आप ही बतायें कि कर्मों को क्षय किये बिना आत्मा कैसे पवित्र होगी अतः वास्तव में पुण्य वही है जो अनादि और सादि कालीन कर्मों को क्षय कराकर शुद्धात्मा प्राप्त कराये। जैसे सातावेदनीय आदि।

प्र.-824 धर्म के निमित्त पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन योगों की क्रियाओं से आत्मा संसारबंधन से मुक्त होकर मोक्षसुख को प्राप्त हो ऐसे धर्म की प्राप्ति में सहायभूत साधनों को, पुण्य संचय या कर्मों के क्षय में निमित्त पुण्य को धर्म के निमित्त पुण्य कहते हैं।

प्र.-825 सु-अच्छा लगे, ख-इंद्रियों को- उसे सुख कहते हैं तब परमात्मा सुखी कैसे?

उत्तर- अपने आत्मसुख विनाशार्थ कौन ध्यानाध्ययन, तपश्चरण करेगा? घर, परिवारादि को छोड़कर संन्यासी कौन बनेगा? अतः सभी प्राणी उत्कृष्ट बनने के लिये पुरुषार्थ करते हैं आदि हेतुओं से इंद्रियसुखापेक्षया कोई और विशेष सुख होना चाहिये जो शाश्वत हो, सीमातीत हो, परनिरपेक्ष हो, आत्मोत्थ हो क्योंकि अमरकोश प्र.कांड व्योमवर्ग श्लो. नं.1 में 'खं'- ख को आकाशवाची माना है जैसे- आकाश का अस्तित्व और आधार स्वयं ही है, निर्लेप, निरंजन, निराकार है ऐसे ही आत्मानंद को समझना चाहिये इस कारण अरिहंत और सिद्धों के अतींद्रिय, सीमातीत, अनंतसुख है। इंद्रिय सुख ही सुख है शेष सुख नहीं सो ऐसी मान्यता वालों की दृष्टि में अविवाहित, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी भी सर्वथा पूर्ण दुःखी होंगे तब त्याग, तपधर्म भी निष्फल ठहरेंगे अतः जब संतोषी साधु संन्यासी सदा सुखी होते हैं तब अरिहंत सिद्ध प्रभु अनंतसुखी हैं ऐसा अनुमान से जाना जाता है इसलिए धर्म से आत्मा सुखी होती है यह ठीक ही कहा है।

प्र.-826 भोग के निमित्त पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर- निदान पूर्वक इंद्रिय सुख के लिये दान देना, त्याग, तप करना, दीन, दुःखी प्राणियों की रक्षा करना, व्यवस्था करना, अभय दान देना आदि से सांसारिक वैभव चाहने को भोग के निमित्त पुण्य कहते हैं।

प्र.-827 आजकल इन दोनों प्रकार के पुण्य को चाहने वाले कौन कितने हैं?

उत्तर- जब कोई बंधुवर्ग गुरुओं के पास जाकर सांसारिक इच्छा पूर्वक आशीर्वाद मांगते हैं कि

महाराज इस काम की सफलता के लिये आशीर्वाद दो हमारा काम सफल हो जाये तब इससे मालुम पड़ता है कि इस समय में भोग के निमित्त पुण्य चाहने वाले अधिक हैं और मोक्ष के निमित्त पुण्य को चाहने वाले थोड़े हैं।

प्र.-828 यहाँ किस पुण्यार्जन की बात कही है और इसका फल क्या है?

उत्तर- इस गाथा में आ.श्री ने भोग के निमित्त पुण्यार्जन की बात कही है क्योंकि भोग निमित्तक पुण्य से नारायण प्रतिनारायण आदि महापुरुषों के सुखों को तथा लोक प्रतिष्ठा प्राप्त होना तथा अंत पर्यंत विषयभोगों में आरंभपरिग्रहों में रमण करते हुए मृत्यु कर नरक निगोद के दुःख प्राप्त होना फल कहा है।

प्र.-829 यह तत्त्व व्यवस्था की भूल कब से चली आ रही है?

उत्तर- यह भूल अनादि मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा अनादिकाल से, सादि मिथ्यादृष्टिजीवों की अपेक्षा सादिकाल से, भव भवांतरों से कदाचित् वर्तमान भव की अपेक्षा कुसंगति के कारण नवीन भी भूल हो सकती है पर भूल तो भूल ही है अतः यह भूल अनादि और सादिकाल से चली आ रही है।

प्र.-830 भूल को सर्वथा अनादिकालीन मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- नाना जीवों की अपेक्षा भूल को सर्वथा अनादिकालीन मानने में कोई दोष नहीं है किंतु एक जीव की अपेक्षा नहीं मान सकते हैं। एक जीव की अपेक्षा भूल को सर्वथा अनादि मानने पर सादिमिथ्यादृष्टिपना बन नहीं सकता। यदि वह यथार्थ में मोक्षमार्गी है तो अनादिकालीन भूल कैसी?

प्र.-831 भूल को एक जीव की अपेक्षा भी अनादि मानने में क्या विरोध है?

उत्तर- एक जीव की अपेक्षा भूल को अनादि मानने में आर्षविरोध है क्योंकि कर्मसिद्धांत में यह जीव पल्य के असंख्यातवें भाग के समयों के बराबर प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन को, क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन को, अनंतानुबंधी कषायों की विसंयोजना को तथा देशसंयम को, आठ संयमकांडकों को और चारबार उपशमश्रेणी आरोहण कर, छोड़कर अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल तक संसार में भ्रमण कर जाता है तब क्या इन जीवों ने वस्तुतत्त्व के या आत्मा के संबंध में यदि भूल नहीं सुधारी है तो ये सम्यग्ज्ञानी मोक्षमार्गी कैसे कहलाये? अतः एक जीव की अपेक्षा भूल को अनादि मानने में आगम से विरोध है अथवा अनादिमिथ्यादृष्टि भव्यजीव अभव्यजीव और दूरानुदूर भव्यजीव की अपेक्षा भूल को अनादि मानने में कोई विरोध नहीं है।

प्र.-832 भूल के भेद, नाम और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- भूल के दो और तीन भेद हैं। दो नाम-: अनादिभूल, सादिभूल। तीन भेद-: सम्यग्दर्शन संबंधी भूल, सम्यग्ज्ञान संबंधी भूल और सम्यक्चारित्र संबंधी भूल। स्वामी-: अनादिभूल के स्वामी अनादिमिथ्यादृष्टि जीव हैं। सादिभूल के स्वामी सादिमिथ्यादृष्टि जीव हैं। वेदक सम्यग्दर्शन संबंधी भूल के स्वामी चौथे से सातवें गुणस्थान तक हैं। क्षायिक सम्यग्दर्शन और उपशम सम्यग्दर्शन में तत्त्व श्रद्धान संबंधी किंचित् भी भूल नहीं होती है क्योंकि इनकी निर्मलता में कोई अंतर नहीं है। सामान्य सम्यग्ज्ञान में कोई भूल नहीं होती है किंतु अनंत ज्ञेय पदार्थों के संबंध में भूल हो सकती है पर वह आत्मसाधना में बाधक नहीं है इसीतरह सम्यक्चारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र में कषायों संबंधी भूल होने पर भी गुणस्थानानुसार आत्मसाधना में बाधक नहीं है किंतु यथाख्यात चारित्र में मोहनीय कर्मोदय का पूर्णतः अभाव होने से भूल नहीं होती है।

प्र.-833 रत्नत्रय में किस किस प्रकार से भूल होती है?

उत्तर- क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में 25 मलदोष, चल मलिन अगाढ़ दोष और शंकादि पाँच अतिचार दोष होना ही भूल है। ज्ञेय पदार्थों की जानकारी में तथा नामादि उच्चारण में हीनाधिकपना करना ज्ञान संबंधी भूल है। चारित्र संबंधी असंयम, प्रमाद, कषाय रूप में प्रवृत्ति होना ही भूल है। यदि

इन चर्याओं को भूल नहीं माना जाये तो प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, निंदा, गर्हा प्रायश्चित्त आदि क्यों करना पड़े?

प्र.-834 क्या भूल करना आसान है?

उत्तर- अनादिकाल का दुःसंस्कार होने के कारण भूल करना एकदम आसान है। जैसे अपरिपक्व संतान के पैदा होने पर उसे कितनी सावधानी से सम्हालते हैं वैसे ही आज वर्तमान में अपने रत्नत्रय धर्म को नाजुक बालक के समान समझना चाहिये क्योंकि कुसंगति और कुतर्कों के कारण रत्नत्रय धर्म को छूटने में देर नहीं लगती। जैनी आजकल मुनियों के पास में आकर लौकिक समस्याओं को रखकर महाराज को ही प्रतिज्ञा से गिरा देते हैं किंतु अपने पापों को करने में किंचित् मात्र भी न ढील करते हैं, न छोड़ते हैं इसी कारण से आज त्यागीव्रतियों में भूल होना, करना आसान है। जो मोक्षमार्गी भूल नहीं करना चाहते हैं वे कुसंगति और कुतर्कियों से सावधान रहें तथा काले कोयले के समान असंयमी भोगियों से बचकर रहे।

प्र.-835 तो क्या मानव भूलों का पिटारा नहीं है?

उत्तर- सामान्यतः यह मानव अवश्य ही भूलों का पिटारा है, क्योंकि अनेक गल्तियों को जानता, समझता और समझाता हुआ भी भूलों को नहीं छोड़ पाता। जैसे शराब, धूम्रपान, चायादि के सेवन से तन मन धन धर्म चारों नष्ट हो रहे हैं इस हानि को जानता हुआ भी इनको नहीं छोड़ पाता।

प्र.-836 तो भूलों का सुधार कितने प्रकार से होता है?

उत्तर- भूलों का सुधार दो प्रकार से होता है 1. कर्मोदयाभाव में 2. कर्मों के सत्त्वाभाव में। कर्मोदयाभाव में जो भूल सुधार की है उसका पुनः वापिस आना संभव है, सर्वथा आ ही जाये ऐसा नियम नहीं है। कर्मों के सत्त्व के अभाव में जो भूल सुधार हुई है उसका कालांतर में वापिस आना संभव नहीं है, असंभव ही है।

प्र.-837 तब अनंतानुबंधी का सत्त्व से अभाव होने पर भी पुनः बंध क्यों हो जाता है?

उत्तर- मूल प्रकृतियों का सत्त्व से अभाव होने पर वे मूल प्रकृतियां पुनः बंध को, मिलन को प्राप्त नहीं होती हैं किंतु अनंतानुबंधी कषाय मूल प्रकृति न होकर उत्तरप्रकृति है तथा इसका विसंयोजना के द्वारा सत्त्व से क्षय होता है जो पुनः परिणामों के बिगड़ जाने से इसकी संयोजना संभव है।

प्र.-838 असंयमी गृहस्थों को काले कोयले की उपमा क्यों दी?

उत्तर- जैसे काले कोयले के संसर्ग से काला धब्बा लग जाता है वैसे ही भोगी असंयमी गृहस्थों के संसर्ग से मोक्षमार्ग में या मोक्षमार्गियों के जीवन में पूर्व भुक्त संस्कार जागृत हो जाता है, कलंक पैदा हो जाता है। जो आजकल प्रत्यक्ष देखा जा रहा है जिन जिन त्यागीव्रतियों ने गृहस्थों को अपना सलाहकार बनाया है वे त्यागीव्रती पुनः गृहस्थपने को या गृहस्थों जैसी अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं अतः कोयले की उपमा दी है।

प्र.-839 तो क्या सभी गृहस्थों को इस प्रकार समझना चाहिये?

उत्तर- नहीं, इस कलिकाल में अधिकतर ख्याति पूजा लाभ रूपी दुर्भावना युक्त गृहस्थ पाये जाते हैं तथा कुछ ही प्रतिशत सदाचारी सद्विचारी गृहस्थ पाये जाते हैं। कहीं कहीं असंयमी गृहस्थ सही सलाहकार मिल जाते हैं पर यह अपवाद है अतः सभी गृहस्थ इस प्रकार सरल या धोकेबाज नहीं पाये जाते हैं।

प्र.-840 तो क्या सभी त्यागी व्रती साधुओं को अपना सलाहकार बनाना चाहिये?

उत्तर- नहीं, सभीको अपना सलाहकार नहीं बनाना चाहिये किंतु फिर भी मुद्रा की अपेक्षा इन सभी को मोक्षमार्ग में सलाहकार बनाना योग्य है परंतु **सौ सौ चूहे खाय बिल्ली हज को चली**

न्यायानुसार इनका अशिष्ट आचारविचार अपने अनुभव में आ जाये तो तत्क्षण ही इनसे सलाह लेना छोड़ देना चाहिये।

प्र.-841 अविवेकी दातागण पात्र विशेष को क्यों नहीं जानते?

उत्तर- सम्यग्ज्ञान, विवेक, आगमज्ञान तथा सत्संगति न होने से अविवेकता के कारण पात्र विशेष को नहीं जानते और यह अविवेकता मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषाय के उदय से होती है।

नोटः- यहाँ तक 841 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 26वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 27वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

लोभाधीन दान का फल

जंतं मंतं तंतं परिचरियं पक्खवायपियवयणं।
पडुच्च पंचमयाले भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स।।27।।

यंत्रं-मंत्रं-तंत्रं परिचर्यां पक्षपातप्रियवचनं।
प्रतीत्य पंचमकाले भरते दानं न किमपि मोक्षाय।।

जंतं मंतं तंतं यंत्र, मंत्र तंत्र **परिचरियं** सेवा **पक्खवाय** पक्षपात **पियवयणं** प्रिय वचनादि से **पडुच्च** विश्वास कर **पंचमयाले** वर्तमान में **भरहे** भारत में **किं पि** कोई भी **दाणं** दान **मोक्खस्स** मोक्ष का कारण **ण** नहीं है।

प्र.-842 वर्तमान में दान मोक्ष का कारण नहीं है तो क्या दूसरे कालों में हो सकता है?

उत्तर- नहीं, जब इस काल और इस क्षेत्र में इसी गाथोक्त भावों से दिया गया दान मोक्ष का कारण नहीं है तो इन्हीं भावों से किसी भी काल और किसी भी क्षेत्र में दान मोक्ष का कारण न हुआ, न है और न होगा।

प्र.-843 यंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य गुण पर्यायों के, पंचपरमेष्ठियों के, देवीदेवताओं के नामों को गोल, चौकोर, लंबेचौड़े कागज में, भोजपत्र में, तांबेपीतल, सोनेचांदी के पत्रों में, पत्थरों में या अन्य किन्हीं भी धातुओं में स्वर व्यंजनों में या अंकों में लिखे गये हों या अपने अपने देश के संकेतों के द्वारा जो अंकित किये गये हों उन्हें यंत्र कहते हैं।

प्र.-844 मंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य गुण पर्यायों का, पंचपरमेष्ठियों का, देवीदेवताओं का, महापुरुषों के नामों का भावात्मक वचनात्मक रूप में चिंतन कथन करने को या सद्भावना पूर्वक दुःखियों को सुखी करने के लिए, दुर्भावना पूर्वक सुखी जीवों को दुःखी करने के विचारों को वचनोच्चारण करने को मंत्र कहते हैं।

प्र.-845 तंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- मंत्रों के सिद्ध करने के उपायों को तंत्र कहते हैं।

प्र.-846 क्या ये मंत्र सम्यक् और मिथ्या होते हैं?

उत्तर- मंत्रों को सिद्ध करते समय अपना अभिप्राय समीचीन है तो मंत्र सम्यक् और असमीचीन है तो मंत्र मिथ्या कहलाते हैं, वास्तव में नाम नाम ही हैं ये गलत और सही नहीं होते हैं या नाम भी अनंत धर्मात्मक होने से उपभोक्ता जिस धर्म को अंगीकार करता है उसे वैसा ही अनुभव में आता है।

प्र.-847 यंत्र और तंत्र ये समीचीन होते हैं या मिथ्या?

उत्तर- ये समीचीन और मिथ्या भी होते हैं। **जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी**

अपनी दृष्टि यथार्थ होने से ये समीचीन और दृष्टि मिथ्या होने से मिथ्या हैं। जैसे अपन इन्हीं आँखों से स्त्रीवेदियों को पूज्यदृष्टि से देखते हैं तो वे माँ, बहन, बेटी नजर में आती हैं और भोगदृष्टि से देखते हैं तो पत्नीवत् ऐसे ही इन यंत्र और तंत्र को समीचीन असमीचीन समझना चाहिये।

प्र.-848 कष्टदायक मिथ्या यंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- किसी स्त्रीपुरुष बालकबालिका नेतादि को विषयाभिलाषा पूर्वक अपने आधीन करने, कष्ट में डालने, बदला लेने के लिए लिखित रूप में यंत्र का प्रयोग करने से, व्यक्तियों का लौकिक और लोकोत्तर जीवन बिगड़ जाये उसे कष्टदायक मिथ्यायंत्र कहते हैं।

प्र.-849 शुभ यंत्रों से जीवन कैसे बिगड़ जाता है?

उत्तर- जब व्यक्ति पापोदय के कारण नाना प्रकार से दुःखी होता है, सुखमय जीवन का संतुलन खो बैठता है तब शुभयंत्रों के द्वारा जीवन द्वेष से बदल कर राग रूप में परिणमन करने लगता है इससे रागमय होकर आसक्तिभाव से इंद्रियसुखानुभव करता है। लोकदृष्टि में ऐसा जीवन मंगलमय होने पर भी धर्मदृष्टि से अमंगल ही है क्योंकि विषयानुराग से आत्मा पापकर्मों से लिप्त होती है, आर्तरौद्रध्यान, अशुभ लेश्यायें और लोक में कदाचित् जीवन कलंकित भी माना जाता है अतः शुभयंत्रों से भी जीवन बिगड़ जाता है।

प्र.-850 शुभ यंत्रों से जीवन बिगड़ जाता है इसमें क्या हेतु है?

उत्तर- जैसे भगवान श्री आदिनाथ के मंगलमय धर्मोपदेश को सुनकर मारीचकुमार अहंकार आदि दुर्भावनाओं से उत्थान के बदले पतन के मार्ग में लग गया या आज वर्तमान में देशसैनिकों को या किन्हीं विशेष व्यक्तियों को देशरक्षा आत्मरक्षा आदि के लिए सरकार के द्वारा अस्त्र शस्त्रों के दिये जाने पर भी रक्षा के बदले अपनी ही विराधना या आत्मघात कर लेते हैं सो इसी तरह शुभयंत्रों के द्वारा उपभोक्ता कषायाविष्ट होने से अपना ही घात कर लेते हैं यह हेतु है।

प्र.-851 परिचर्या किसे कहते हैं और परिचर्यानुसार दान देने का क्या फल है?

उत्तर- अपने जाति कुल और मनोनुकूल सुपात्रों की चर्या के होने को परिचर्या कहते हैं। परि उपसर्ग- सर्व प्रकार से, चारों ओर से। चर्या- आचरण। इस क्षेत्र और काल में सर्व प्रकार से पात्र की चर्या को अपनी मान्यतानुसार देख कर दानादि देना मोक्षमार्ग नहीं है, संसार भ्रमण करना ही इसका फल कहा है।

प्र.-852 स्व मान्यतानुसार अन्यक्षेत्र-कालों में सुपात्रदान क्या मोक्षमार्ग हो सकता है?

उत्तर- नहीं, अपनी मान्यतानुसार कार्यकलापों से कल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं होता है। जब विकार पूर्वक यहाँ दान देने से सफलता नहीं मिलती है तो विकार पूर्वक अन्य क्षेत्र और अन्य कालों में भी दान देने से सफलता नहीं मिल सकती है क्योंकि विकारी सभी दिनचर्यायें आत्मघातक ही हैं, आत्मसाधक नहीं।

प्र.-853 पक्षपात किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- गलत के प्रति समर्पित होने को सहायक होने को पक्षपात कहते हैं। भेद 2 हैं। नामः- शुभ, अशुभ।

प्र.-854 शुभ पक्षपात और अशुभ पक्षपात किसे कहते हैं?

उत्तर- **शुभ पक्षपातः-** मोक्षमार्गियों के या निर्दोष लोकव्यवहारियों के प्रति समर्पित, सहायक होने को, बलाधान करने को शुभ पक्षपात कहते हैं। **अशुभ पक्षपातः-** धर्म और समाज में कलंक पैदा करने वाली क्रियायें करने वालों के प्रति सहायक होने को, उनका मनोबल बढ़ाने को अशुभ पक्षपात कहते हैं।

प्र.-855 सपक्ष और विपक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर- जो हमारा साथ दे, हमारे अनुकूल हो उसे सपक्ष तथा विपरीत पक्ष को, शत्रुपक्ष को विपक्ष कहते हैं।

प्र.-856 सपक्षपात और विपक्षपात किसे कहते हैं?

उत्तर- अपने पक्ष के साथियों के प्रति मन वचन काय से सहायक होने को, गिर जाने को सपक्षपात और विपरीत पक्ष की योग पूर्वक सहायता करने को, गिर जाने को विपक्षपात कहते हैं।

प्र.-857 अपने पक्ष के अनुसार दिनचर्या वाले सुपात्रदान का क्या फल है?

उत्तर- इस दाता ने अपनी लौकिक दिनचर्यानुसार पात्र को देखकर दान दिया, सेवा की सो ऐसा दान, ऐसी सेवा से मोक्षसुख, आत्मसुख प्राप्त नहीं होता है क्योंकि इस दाता ने धर्म की महिमा को नहीं समझा है, इस दाता ने लौकिक पक्ष को महत्त्व देकर ही दानादि कार्य किया है ऐसे दानादि कर्तव्यों को पालने से मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति न होकर कदाचित् भोगसंपदाओं के साथ नाना कष्ट प्राप्त हो सकते हैं, सर्वथा नहीं।

प्र.-858 प्रिय वचन किसे कहते हैं और कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर- जिन वचनों को सुनकर मन प्रसन्न हो, पापाश्रवबंध के प्रति माध्यस्थपना हो उसे प्रिय वचन कहते हैं। दो भेद हैं। नामः- लौकिक कर्णप्रिय शुभवचन और लोकोत्तर कर्णप्रिय शुभ वचन।

प्र.-859 कर्णप्रिय शुभवचन किसे कहते हैं और इनका क्या फल है?

उत्तर- सुवाद्य के या बिना वाद्य के मधुर और सुरीली आवाज में संगीत, गद्य पद्य तथा हर्षोत्पादक शब्दों को कर्णप्रिय शुभशब्द कहते हैं। ये वचन कषायोत्पादक होने से आत्मसाधना में बाधक हैं, साधक नहीं।

प्र.-860 ऐसा सुरीला स्वर किस कर्म के उदय से प्राप्त होता है?

उत्तर- ऐसा सुरीला कंठ तालु आदि हर्षोत्पादक शब्दों की कला सुस्वर नाम कर्मोदय से प्राप्त होती है।

प्र.-861 आत्मकल्याण या लोकोत्तर कर्णप्रिय शुभवचन किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन वचनों के द्वारा, वास्तविक वैराग्य उत्पन्न हो, आत्मकल्याण हो, आश्रव बंध का विच्छेद हो, संसार बंधन से छुटकारा प्राप्त हो उसे आत्मकल्याण या लोकोत्तर कर्णप्रिय शुभवचन कहते हैं।

प्र.-862 यहाँ इस गाथा में किस प्रियवचन से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ लौकिक कर्णप्रिय शुभवचन से प्रयोजन है क्योंकि मिथ्याचारित्री दाता का कथन किया है।

प्र.-863 मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व कर्मोदय युक्त ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना सहित आचरण को मिथ्याचारित्र कहते हैं।

प्र.-864 लौकिक प्रियवचन को सुनकर दान देने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- कर्ण प्रिय वचन कर्णेंद्रिय का विषय होने से रागकषाय सहित दान देने से मोक्षमार्ग या मोक्ष फल की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा आ. श्रीजी ने कहा है क्योंकि इस दाता ने वचन को महत्त्व दिया है तभी तो कर्णेंद्रिय के विषय में रमण कर दान देता है जो हिरण और सर्पवत् अपना घात कर लेता है यही फल है।

प्र.-865 आ. श्री कुंदकुंदजी ने पक्षपाती दाता को मोक्षमार्गी क्यों नहीं कहा?

उत्तर- आ. श्रीजी के समय जिनेंद्र के मत में दिगंबर और श्वेतांबर ये दो भेद हो गये थे पर समाज एक ही थी केवल धर्म में बटवारा हुआ था। जैसे परिवार में बटवारा होने पर भोजनपान, व्यापारादि का नामकरण अलग अलग हो जाता है किंतु सूतक पातक का बटवारा नहीं होता है ऐसे ही उस समय दिगंबर श्वेतांबरों में रोटी बेटी का व्यवहार चल रहा था। साधुओं के बाह्याभ्यंतर भेष में भेद हो गया था जैसा कि आजकल दिखाई दे रहा है। उस समय कोई कोई श्रावक ये साधु हमारे हैं और ये उनके हैं, इनके हैं ऐसा विभाग कर दान देने लगे थे तब आ. श्री ने कहा कि इन भावों से आहारादि दान नहीं देना चाहिये क्योंकि मेरी तेरी भावना क्षुद्र प्राणियों की होती है, उच्च बुद्धि वालों की नहीं अतः ये आत्मसाधक प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान वाले, धर्मध्यानी हैं ऐसा विचार कर दान देना ही कल्याण का मार्ग है अन्यथा संसारमार्ग है। आजकल दिगंबर जैनों में कहीं तेरहपंथी, तो कहीं बीसपंथी, तो कहीं कानजीपंथी इन पंथों में भी ये हमारी गुरु परंपरा के और वे उन गुरु की परंपरा के हैं अथवा कोई जिस मुनि, आचार्य, उपाध्याय से प्रभावित है वह उनका ही भक्त है, सबकुछ उन्हीं को समझकर दूसरों को तुच्छ मानता है तब ये जिनमुद्रा के भेदक मोक्षमार्गी कैसे? जैसे अन्यमतियों में जो किसी एक भगवान को या देवीदेवता को मानता है तो वह दूसरों को नहीं मानता। राम कृष्णादि का भक्त दुर्गा, काली आदि को नहीं मानता और इनको मानने वाला उनको नहीं मानता अथवा वेदांतियों की तरह दिगंबर जैनों में भी ऐसी विडंबनायें चल रही हैं। कोई किसी का भक्त है तो कोई किसीका सो अब इन जैनों को. रयणसार की इस गाथा को पढ़ना और समझना चाहिये। यदि ये आ. श्री कुंदकुंदजी को मानते हैं तो उनकी आज्ञा को भी मानना और पालना चाहिये अन्यथा इन जैनों को जिनेंद्रमतानुयायी, कुंदकुंद का अनुयायी, शिष्य भक्त सम्यग्दृष्टि कौन और कैसे कहेगा?

प्र.-866 गाथानुसार दान देने से किस फल की प्राप्ति कहाँ और कब होती है?

उत्तर- जिन भावों या जिस आचरण से भरतक्षेत्र के आर्यखंड, पंचमकाल में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तो इसी प्रकार सभी क्षेत्र और सभी कालों में इन्हीं भावों तथा आचरण से मोक्ष फल की प्राप्ति नहीं होती है। कदाचित् उत्तमपात्रों को चरणानुयोगानुसार निर्दोषविधि पूर्वक आहारादि दान देने से कर्मभूमिज और भोगभूमिज इंद्रियसुख प्राप्त हो सकते हैं पर शाश्वतसुख प्राप्त नहीं होता है क्योंकि मोक्ष प्राप्ति के लिए अंतरंग बहिरंग पूर्ण सामग्री चाहिये। विकल सामग्री से उत्कृष्ट फल/ मोक्षफल की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

प्र.-867 इंद्रपद और अहमिंद्र पद को कौन कौन से जीव प्राप्त कर सकते हैं?

उत्तर- इंद्र पद को एकमात्र भव्य सम्यग्दृष्टि मुनि ही प्राप्त करते हैं, वह इंद्र देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति का भी हो सकता है। अहमिंद्रपद को मनुष्य अभव्य भव्य सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि भी प्राप्त कर सकते हैं।

प्र.-868 तो क्या सौ इंद्रों में से सभी सिंह सम्यग्दृष्टि होते हैं?

उत्तर- सभी सिंह सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं किंतु समवशरण की 12 सभाओं में से तिर्यंचों के कोठे में पहुंचकर जो सिंह साक्षात् प्रभु को नमस्कार करता है वह सिंह इंद्र सम्यग्दृष्टि होता है जैसा कि आ. श्री कुंदकुंद ने पं.का. में ''**इंदसद वंदियाणं**'' से सूचित किया है।

प्र.-869 वे सौ इंद्र कौन कौन हैं जो तीर्थंकर प्रभु को नमस्कार करते हैं?

उत्तर- **भवणालय चालीसा वितरदेवाण होंति बत्तीसा।**
कप्पामर चउवीसा चंदो सूरो णरो तिरियो।।

अर्थ-: भवनवासियों के 20 इंद्र बीस प्रतींद्र कुल चालीस। व्यंतरदेवों के सोलह इंद्र सोलह प्रतींद्र कुल बत्तीस। कल्पवासियों के बारह इंद्र बारह प्रतींद्र कुल चौवीस। ज्योतिषियों का इंद्र चंद्र प्रतींद्र

सूर्य। मनुष्यों का राजा षट्खंडाधिपति चक्रवर्ती। तिर्यंचों का इंद्र सिंह ये सब मिलाकर सौ इंद्र होते हैं।

नोटः- यहाँ तक 869 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 27वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 28वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

दानफल में अंतर

दाणीणं दालिद्दं लोहीणं किं हवेइ महसिरियं।

उहयाणं पुव्वज्जिय कम्मफलं जाव होइ थिरं।।28।।

दानीनां दारिद्र्यं लोभीनां किं भवति महैश्वर्यं।

उभयोः पूर्वार्जित कर्मफलं यावत् भवति स्थिरम्।।

दाणीणं दानियों के **दालिद्दं** निर्धनता और **लोहीणं** लोभियों के **महसिरियं** महान वैभव **किं** क्यों **हवेइ** है? **उहयाणं** उन दोनों के **पुव्वज्जिय** पूर्वकृत **कम्मफलं** कर्मफल **जाव** जब तक **थिरं** स्थिर **होइ** होता है तभी तक यह विषमता पाई जाती है।

प्र.-870 दानी किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयकषायों के त्याग के साथ साथ बाह्य में धनधान्य, वस्त्राभूषण और आहारादि को यथाशक्ति सुपात्रों, त्यागियों के लिए दान देने वालों को दानी कहते हैं।

प्र.-871 दारिद्र और दरिद्री किसे कहते हैं?

उत्तर- रुपया, पशुधन, मकान दुकानादि के अभाव में इच्छापूर्ति के लिए उत्पन्न हुई आकुलता को दारिद्र व विषयासक्त व्यक्ति को, नाना प्रकार से बीमार व्यक्ति को, अपनी मानमर्यादा, लज्जा को खोकर ऊंचनीच घरों में जाकर भीख मांगने वाले को दरिद्री कहते हैं।

प्र.-872 वास्तव में दारिद्र और दरिद्री किसे कहते हैं?

उत्तर- वास्तव में विषयभोगों में लंपट होने को दारिद्र और विषयलंपटी, लोलुपी को दरिद्री कहते हैं।

प्र.-873 लंपटता या लोभ किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- सांसारिक विषयभोगों को बढ़ाने वाली सामग्री में आकर्षण भाव को, लोलुपता को लोभ या लंपटता कहते हैं। भेद अनेक हैं। **नामः-** धन की, वस्त्रों की, आभूषणों की, विषयभोगों की, भोजनपान आदि की, शरीर की, परिवार की, समाज की, देश की, पूजाप्रतिष्ठा, पदवी आदि की आकांक्षा को लोभ कहते हैं। इन भावनाओं से सहित व्यक्ति को लोभी कहते हैं।

प्र.-874 महाश्री किसे कहते हैं तथा भेद नाम और लक्षण क्या है?

उत्तर- लक्ष्मी को, धन को, महान वैभव को महाश्री कहते हैं। भेद दो हैं। **नामः-** अंतरंग और बहिरंग। अनंतचतुष्टय को अथवा मूर्च्छाभाव (मूर्च्छा के अभाव) को अंतरंग लक्ष्मी कहते हैं। बहिरंग में चेतन अचेतन विषयभोगों में साधनभूत सामग्री को बहिरंग महाश्री, महावैभव कहते हैं।

प्र.-875 मूर्च्छा के अभाव को यदि मूर्च्छा-भाव पढ़ा जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- केवल समझ का फेर है यदि आगे और पीछे के पदों को साथ में लेकर अर्थ किया जाय तो कोई दोष नहीं हैं किंतु केवल मूर्च्छाभाव का अर्थ करने से मूर्च्छाभाव यानि अंतरंग बहिरंग परिग्रह पापरूप अर्थ होगा। पौर्वापर्य संबंध को मिलाकर अर्थ किया जाय तो मूर्च्छा का अभाव संपूर्ण मोहनीय कर्म का अभाव होगा। इसी तरह करुणाभाव- करुणा का भाव और करुणा का अभाव ये दोनों अर्थ होते हैं।

प्र.-876 इस लक्ष्मी को प्राप्त करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- अनंतचतुष्टय रूपी अंतरंग लक्ष्मी को प्राप्त करने से मोक्षफल प्राप्त होता है और अंतरंग मूर्च्छा रूप लक्ष्मी से तथा बाह्य वैभव में रममाण होने से नरकनिगोद की प्राप्ति होती है।

प्र.-877 यहाँ किस लक्ष्मी से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ मूर्च्छाभाव और मूर्च्छाफल बहिरंग वैभव से प्रयोजन है जो सांसारिक सुख दुःख रूप है।

प्र.-878 महावैभव किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयभोगों में, वैरविरोध में, नरकायु के आश्रवबंध में साधनभूत चेतनाचेतन सामग्री में असंतोष को, अतृप्तिभाव को तथा प्राप्त सामग्री को महावैभव कहते हैं।

प्र.-879 दानियों के दारिद्रपना और लोभियों के धनवैभव क्यों होता है?

उत्तर- दानी व लोभियों के पाप और पुण्य कर्मों का उदय मौजूद है तभी तक ही यह विषमता पाई जाती है या दानी के आयानुसार धर्मसेवा और जनसेवा में भरपूर दान देने के कारण वैभव की वृद्धि नहीं हो पाती है। लोभी पापकार्यों से अधिक मात्रा में धन कमाकर जोड़कर रखता है किसी भी लौकिक या लोकोत्तरकार्यों में खर्च नहीं करता है सो इसके धन की वृद्धि हो जाती है जैसे नदियों में शुद्ध जल से बाढ़ नहीं आती है किंतु गंदे पानी से बाढ़ें आतीं हैं ऐसे ही गलत कार्यों से धन की वृद्धि होती है, धर्मकार्यों से नहीं।

प्र.-880 कर्मयोग किसे कहते हैं?

उत्तर- शुभाशुभ मन वचन काय से उत्पन्न हुए आत्मप्रदेशों के कंपन को, क्रिया को कर्म कहते हैं।

प्र.-881 इन आत्मप्रदेशों के कंपन का क्या फल है?

उत्तर- इन आत्मप्रदेशों के कंपन से शुभाशुभ फलदायक द्रव्यभावपुण्यपाप कर्म आकर ठहरते हैं इसे ही आश्रव बंध कहते हैं और इन कर्मोदय से आत्मा का सुखीदुःखी होना ही कर्मों का फल है।

प्र.-882 पूर्वबद्ध कर्मोदय से प्रमादी जीव किस प्रकार की अवस्था को प्राप्त करता है?

उत्तर- जैसे नाटकमंच पर नाटकी अनेक प्रदर्शन कर दर्शकों को रुलाता है, हंसाता है, मनोरंजन कराता है वैसे ही पूर्वोपार्जित कर्मोदय से जीव इष्टानिष्ट सुख दुःख रूपी अवस्थाओं को प्राप्त करता है।

प्र.-883 कर्मों का विभाग पुण्य पाप रूप में किस प्रकार से किया गया है?

उत्तर- शुभ भावों के योग से पुण्य का एवं अशुभ भावों के योग से पाप का विभाग किया गया है। जैसे मुँह से या सर्वांग से ग्रहण किया भोजनपानादि उदराग्नि के अनुसार धातु उपधातु रूप में परिणत हो जाता है।

प्र.-884 एकेंद्रिय जीवों के उदराग्नि न होने से भोजन का पाचन कैसे होता है?

उत्तर- एकेंद्रियों के त्रसजीववत् उदराग्नि नहीं है फिर भी अपनी पर्याय एवं सामर्थ्यानुसार आहारवर्गणाओं को ग्रहण कर पाचनशक्ति द्वारा भोजन पचा लेते हैं। यदि एकेंद्रिय जीवों में पाचनशक्ति नहीं मानी जाय तो उनकी मृत्यु होने में देर नहीं लगेगी। जैसे मनुष्य की उदराग्नि बिगड़ जाती है तो उनको मृत्यु का या मृत्युतुल्य कष्टों का सामना करना पड़ता है ऐसे ही वनस्पति आदि एकेंद्रियों में पाचनशक्ति नहीं हो तो वे हवा पानी मिट्टी आदि को ग्रहण कर हरेभरे नहीं हो सकते, तुरंत ही हवापानी को छोड़ देंगे तो सूख जायेंगे।

प्र.-885 तो एकेंद्रिय जीवों के धातु उपधातु मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- जैसी त्रसजीवों के शरीर में धातु उपधातुयें पाई जातीं हैं वैसी एकेंद्रियों के शरीर में नहीं पाई जातीं हैं। यदि एकेंद्रियों के शरीर में त्रसजीवों जैसी धातु उपधातुयें पाई जायें तो इनका सेवन करने वालों के मोक्षमार्ग, सप्तव्यसनों का, मकारों का त्याग, सत्शीलता, सद्मानवतादि

विशेषतायें बन नहीं सकतीं, सभी मांसाहारी बन जायेंगे अतः एकेंद्रिय जीवों के शरीर में त्रसजीवों जैसी धातुउपधातुयें नहीं पाई जाती किंतु भिन्न प्रकार से पाई जाती है तभी तो आयुर्वेद शास्त्रों में एकेंद्रियों के शरीर संबंधी धातुउपधातुओं के, अंगोपांगों के नाम आते हैं या जिन पुद्गल वर्गणाओं से धातु उपधातुओं की रचना होती है वे ही पुद्गल वर्गणायें शुद्ध स्कंध रूप से एकेंद्रिय जीवों के शरीर में भी पाई जाती है, अंतर केवल इतना ही है कि एकेंद्रियों में शक्ति रूप में हैं और त्रस जीवों में व्यक्त रूप में हैं।

प्र.-886 इस गाथा से सैद्धांतिक तत्त्वों का अर्थ भी ले सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, ले सकते हैं। **'पुव्वज्जिय'** से आश्रव, **'जावथिरं'** से स्थितिबंध, **'दालिद्दं'** से अनुभागबंध रूप पाप का फल, **'महासिरियं'** से कर्मोदय रूप पुण्यपाप फल और चारों पदों से प्रदेशबंध को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि बिना प्रकृतिबंध के स्थिति और अनुभागबंध हो नहीं सकता। **'जावथिरं'** से जबतक कर्म आत्मा में मौजूद हैं तबतक कालगणना के कारण प्रदेशबंध को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-887 इस चरणानुयोगग्रंथ में कर्मसिद्धांतरूपी अध्यात्म अर्थ क्यों ग्रहण किया?

उत्तर- यह कोई दोष नहीं हैं जैसे किसी भी छोटे से बीज में जड़ें, तना, शाखा प्रतिशाखा, कोंपल पत्ते, फूल फल होते हैं ऐसे ही प्रत्येक बीजाक्षरों में अनंत[2] शक्तियां पाईं जातीं हैं। इनसे साधकगण अपने[2] ज्ञानानुसार अर्थों को समझकर दूसरों को भी समझाते हैं सो यह विषय ज्ञाता का है।

नोटः- यहाँ तक 887 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 28वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 29वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुखदुःख का कारण

धणधण्णाइ समिद्धे सुहं जहा होइ सव्वजीवाणं।
मुणिदाणाइसमिद्धे सुहं तहा तं विणा दुक्खं।।29।।

धनधान्यादि समृद्धे सुखं यथा भवति सर्वजीवानां।
मुनिदानादि समृद्धे सुखं तथा तं विना दुःखम्।।

जहा जैसे **धणधण्णाइ** धन धान्यादिक की **समिद्धे** समृद्धि से **सव्वजीवाणं** सब जीवों को **सुहं** सुख **होइ** होता है **तहा** वैसे ही **मुणिदाणाइ** मुनिदानादि की **समिद्धे** समृद्धि से **सुहं** सुख होता है **तं** उस धनधान्यादि और उत्तम पात्रों के **विणा** बिना लौकिक और लोकोत्तर शरीरधारियों को **दुक्खं** दुःख होता है।

प्र.-888 यहाँ समृद्धि का क्या अर्थ है?

उत्तर- यहाँ समृद्धि का अर्थ सामग्री है और वह सामग्री भोगोपभोग या धर्मकार्य में उपयोगी होती है।

प्र.-889 धनधान्य आदि सामग्री की प्राप्ति किस कारण से होती है?

उत्तर- धनधान्यादि की प्राप्ति सातिशय और निरतिशय पुण्योदय एवं लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से या भाग्य और पुरुषार्थ से होती है ऐसा सभी जैनाजैन न्यायाचार्य मानते हैं।

प्र.-890 भाग्य और पुरुषार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्वबद्ध पुण्य और पाप कर्मोदय को सद्भाग्य दुर्भाग्य कहते हैं। पुरुष-आत्मद्रव्य और गुण। अर्थ- पर्याय अर्थात् द्रव्य गुण पर्याय को पुरुषार्थ कहते हैं। यह पुरुषार्थ छहों द्रव्यों में पाया जाता है।

प्र.-891 उभय कारणों से कार्यसिद्धि किस प्रकार से मानी गई है?

उत्तर- **अबुद्धिपूर्वाऽपेक्षायामिष्टाऽनिष्टं स्वदैवतः।**

बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टाऽनिष्टं स्वपौरुषात्।।91।। आ.मी.

जो कार्य स्वप्नवत् अबुद्धि पूर्वक मन वचन काय की क्रियाओं से सिद्ध होता है वह भाग्य से और वर्तमान में जो कार्य बुद्धि पूर्वक योगों की क्रियाओं से सिद्ध होता है वह पुरुषार्थ से माना जाता है।

प्र.-892 यदि बाह्य वैभव पुण्य का फल है तो इस वैभव को परिग्रहपाप क्यों कहा?

उत्तर- वैभव प्राप्त होना पुण्य का फल है किंतु अर्जन, स्वीकृति, संग्रह, संवर्धन, संरक्षण करना लोभ, माया, हास्य आदि कषायोदय का या समस्त मोहोदय का कार्य होने से पाप रूप ही है तभी तो धन धान्य आदि को परिग्रहपाप कहा है क्योंकि अंतरंग और बहिरंग परिग्रह में निमित्त नैमित्तिक संबंध है।

प्र.-893 अंतरंग परिग्रह किसे कहते हैं और इसका क्या फल है?

उत्तर- मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न रागद्वेष मोह रूप परिणामों को या घातिया कर्मोदय से उत्पन्न भावों को अंतरंग परिग्रहपाप कहते हैं। आश्रव बंध स्वरूप है, संसार में भ्रमण का कारण है यही इसका फल है।

प्र.-894 अंतरंग परिग्रह क्या केवल मोहोदय से होता है या अन्य कर्मों से भी?

उत्तर- समस्त कर्मोदय से उत्पन्न औदयिकभाव और आश्रवबंध के परिणाम ही अंतरंग परिग्रह है।

प्र.-895 तो क्या केवल इतना ही अंतरंग परिग्रह है या और भी है?

उत्तर- सत्त्व की अपेक्षा चौदहवें गुणस्थान में 85 प्रकृतियां अंतरंग परिग्रह है क्योंकि चौदहवें गुणस्थान में सचित्त अचित्त और मिश्र परिग्रह है कारण कि यहाँ अंतिम समय में परिग्रह त्याग महाव्रत पूर्ण होता है।

प्र.-896 बहिरंग परिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर- भोगोपभोग में सहायभूत चेतन, अचेतन और मिश्र सामग्री को, पाप बंधक कार्यों में सहायभूत जर, जोरू, जमीन को या अध्यात्म मार्ग में शिष्य शिष्याओं और उपकरणों को भी बहिरंग परिग्रह कहते हैं।

प्र.-897 जर किसे कहते हैं?

उत्तर- जड़रूप दृष्टिगोचर होने वाली रुपयापैसा, सोनाचांदी, रत्न, वाहनादि चलसंपत्ति को जर कहते हैं।

प्र.-898 जोरू किसे कहते हैं?

उत्तर- जोरू यद्यपि स्त्रीवाचक है फिर भी पति के लिए पत्नी और पत्नी के लिए पति को, पशुपक्षी आदि चेतन प्राणियों को, परिवार, दासी दासादि को जोरू कहते हैं क्योंकि जैसे पत्नी के माध्यम से पति के मन में रागद्वेष मोह पैदा होते हैं वैसे ही समस्त चेतन प्राणियों के माध्यम से मन में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं अतः जोरू पद से सभी चेतन सामग्री को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-899 जमीन किसे कहते हैं?

उत्तर- मकान, दुकान, गोदाम, खेतीवाड़ी आदि अचल जड़ संपत्ति को जमीन कहते हैं।

प्र.-900 इन जर जोरू और जमीन को परिग्रह क्यों कहा?

उत्तर- ये तीनों चेतन अचेतन और मिश्र सामग्रियां अंतरंग में मूर्च्छा के, कामवासना, विषयवासना आदि नाना विकारों के कारण होने से इनको परिग्रह कहा है।

प्र.-901 जब ये जर आदि वस्तुयें पाप रूप हैं तो इनसे सुख कैसे हो सकता है?

उत्तर- यद्यपि जर आदि वस्तुयें परिग्रह होने से पाप रूप ही है फिर भी इनके कारण साताकर्मोदय

से सुखानुभव अन्यथा दुःखानुभव होता है अतः साता कर्मोदय ही सुख का अंतरंग कारण है। इसके प्रबल उदय में जर जोरू जमीन के बिना भी सुखानुभव होता है। संसार में अनेक गरीब परिवार, भिखारी, ब्रह्मचारी आदि संतोषी व्यक्ति देखे जाते हैं जो केवल उदरपूर्ति के लिए यहाँ वहाँ से लेकर प्रसन्न मन से भोजन कर चैन से सोते हैं। न किसी का भय है, न कल की फिकर है, न मकान दुकान आदि की चिंता है अतः सुखदुःखानुभव के लिए साता असाताकर्मोदय ही अंतरंग कारण मुख्य है और बाह्य सामग्री गौण है।

प्र.-902 तो क्या केवल अंतरंग कारण ही सुखदुःख के हेतु हैं?

उत्तर- नहीं, प्र. 901 में केवल बाह्य सामग्री को मना किया है किंतु द्रव्यकर्मोदय का निषेध नहीं किया है क्योंकि सभी लौकिक और लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि उभय कारणों से होती है, एक से नहीं अतः यहाँ पर आत्मा अंतरंग उपादान कारण है तो सातासातावेदनीय कर्मोदय बाह्य निमित्त कारण है जो सर्वत्र निर्दोष है।

प्र.-903 तो क्या ये तीनों दुःख रूप ही हैं?

उत्तर- नहीं, ये तीनों दुःख रूप नहीं हैं क्योंकि दुःख का अंतरंग कारण असाता वेदनीय कर्म का उदय है। इन बाह्य सामग्रियों के सद्भाव या अभाव में अंतरंग कारण के मौजूद होने पर ही दुःख का अनुभव होता है फिर भी यह बाह्य सामग्री सुख दुःख का नोकर्म है। कारण कि नोकर्म सामग्री के सद्भाव में द्रव्यकर्मों का विपाक देखा जाता है क्योंकि क.कां. गा. 69- 85 तक में सभी कर्मों की नोकर्म सामग्री बताई है।

प्र.-904 गाथा में जर जोरू जमीन का नाम न होने पर भी आपने क्यों कहा?

उत्तर- **'धण धण्णाई'** पद से चलाचल और आदि पद से चेतन सामग्री को ग्रहण कर लेना चाहिये अतः गाथा में ही **धण धण्णाई** पद से जर जोरू जमीन को ग्रहण कर लिया है।

प्र.-905 ग्रंथकारजी ने इन बाह्य सामग्रियों को समृद्धि क्यों कहा?

उत्तर- यह बाह्य सामग्री पुण्य का फल होने से अभेद विवक्षा कर आ.श्री ने इनको समृद्धि कहा है क्योंकि जैसे लोक में ऋद्धियों के माध्यम से सुख प्राप्त होता है वैसे ही यहाँ सामग्रियों के माध्यम से सुख होता है।

प्र.-906 क्या ये सभी सामग्रियां संसारी जीवों के होती हैं और इनका फल क्या है?

उत्तर- असैनी पंचेंद्रिय तक जीवों के, नारकियों के, संमूर्च्छन मनुष्यों के ये चेतनाचेतन सामग्रियां भी होती हैं। देवों के, भोगभूमिजों के, कुभोगभूमिजों के ये सामग्रियाँ होने पर भी इनमें संतोषवृत्ति होने से विरोध नहीं होता है केवल कर्मभूमिज तिर्यंच एवं मनुष्यों में असंतोष होने से वैरविरोध एवं घातप्रतिघात होता है।

प्र.-907 पशुपक्षियों के जर जोरू जमीन कैसे पाई जाती है?

उत्तर- पंचेंद्रिय पशुपक्षियों के भी जर जोरू जमीन पाये जाते हैं। संसार में अधिकतर मनुष्य जानते हैं कि पशुपक्षी भी खाने पीने की सामग्री, अपनी पत्नि, बच्चों और जातिगत समुदाय के तथा रहने के स्थान के पीछे लड़ मरते हैं। जैसे बंदर, कुत्ते, चिड़ियां, गाय भैंस, भेड़ बकरे, कीड़े मकोड़े, ततैया, शेर आदि।

प्र.-908 मुनियों या चतुर्विध संघ के लिये दान आदि देने को समृद्धि क्यों कहा?

उत्तर- दानादि सत्कर्तव्यों का पालन करने से ऋद्धियों की प्राप्ति होती है अतः कार्यकारण में अभेद विवक्षा कर दान आदि को समृद्धि कहा है क्योंकि इनको करने से पापकर्म का क्षयोपशम या मंदोदय होने से चेतनाचेतन सामग्री प्राप्त होती है। सम् + ऋद्धि = समीचीन ऋद्धि समृद्धि,

सम्यक् तप से प्राप्त होतीं हैं।

प्र.-909 इस विषय को समझाने के लिये लोकोत्तर दृष्टांत क्यों नहीं दिया?

उत्तर- यदि किसीको अपना अभिप्राय समझाना है तो उनके अनुभूत विषयों को याद दिलाकर समझाया जाये तो वह शीघ्र ही समझ लेगा अन्यथा समझने में बहुत समय लगेगा। जैसे किसी विदेशी को अन्य भाषा में अपना अभिप्राय समझाना बड़ा कठिन है किंतु उसीकी भाषा में समझाना अत्यंत सरल है ऐसे ही अननुभूत विषय को समझाना कठिन है अतः लौकिक प्राणियों को सर्वप्रथम लौकिक उदाहरण दिया है बाद में लोकोत्तर विषय समझाया है और यह विषय वक्ता का है कि वह श्रोताओं को कैसे समझाये?

प्र.-910 मुनिदान आदि के बिना दुःखी होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- रत्नत्रयधर्म सहित मुनिदानादि षडावश्यक सातिशय पुण्यबंध और मिथ्यात्रय युक्त निरतिशय पुण्यबंध के कारण हैं। जब पापकर्मोदय सहित पापाश्रवबंध चालू है, पुण्य का निरोध है तब एकमात्र दुःख ही होगा जैसे प्रज्ज्वलित दीपक के बिना अंधकार है ऐसे ही पुण्य के बिना जीवन दुःखमय है।

प्र.-911 दान पूजा आदि पुण्य हैं, धर्म नहीं ऐसा कहना क्या ठीक है?

उत्तर- दानपूजा आदि को आ. श्री कुंदकुंदजी, पूज्यपादजी, वीरसेन स्वामीजी, गुणभद्रजी ने पुण्य को व्यवहारधर्म कहा है क्योंकि हितकारी जानकर आर्षवाक्यों में विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है और सदोषवाणी होने से अहितकारी जानकर जनवाणी में विश्वास करना मिथ्यादर्शन कहा है।

प्र.-912 इन आचार्यों ने कहाँ कहाँ दान पूजादि को पुण्य न कहकर धर्म कहा है?

उत्तर- इसी रयणसार में 10वीं, 80वीं, समयसार की 275वीं तथा आ. पूज्यपाद ने वीरभक्ति में कहा है-

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।

धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खय णिमित्तम्।।275।। स.सा.

अर्थ-: वह अभव्य जीव भोग के निमित्तभूत धर्म का श्रद्धान करता है, प्रतिति करता है, रुचि करता है और अनुष्ठान रूप से स्पर्श करता है किंतु कर्मक्षय में निमित्तभूत धर्म का श्रद्धान नहीं करता।

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।

धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः।। वीरभक्ति

आ. श्री वीरसेनजी ने जयधवला पुस्तक नं० 1 में तथा आ. गुणभद्रजी ने आत्मानुशासन में कहा है:- **पापात् दुःखं धर्मात् सुखं सर्वजन प्रसिद्धमिदं।** तथा **धर्म करत संसार सुख धर्म करत निर्वाण।**

आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिः समानाः।।

आदि शास्त्रों व लोक में पुण्य व धर्म को एकार्थवाची मानकर पूर्वाचार्यों ने प्रतिपादन किया है।

पुण्णं पूद पवित्ता पसत्थ सिव भद्द कल्लाणा।

सुह सोक्खादी सव्वे णिद्दिट्ठा मंगलस्स पज्जाया।। ति.प.भा.1 गा.8।।

अर्थः- पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, कल्याण, शुभ, सुखादि ये सब मंगल शब्द के पर्यायवाची हैं।

प्र.-913 दुःख किसे कहते हैं?

उत्तर- मन में उत्पन्न हुईं आकुलता व्याकुलताओं को, पराधीनता को, कर्मों के आधीनपने को, पाँचों इंद्रियविषयों में प्रवृत्ति करने को, अतृप्तिपने को, असाता कर्मोदय से उत्पन्न वेदनानुभव को दुःख कहते हैं।

प्र.-914 मनोनुकूल सामग्री के मिलने को सुख कह सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ कह सकते हैं, मोही प्राणियों से मनोनुकूल सामग्री की प्राप्ति को, आलिंगन को सुख कहते हैं पर यह सुखाभास है, खाज को खुजाने के समान है। इसी तरह इंद्रियविषय सेवन में किंचित् सुखानुभव होता है बाद में कितना कष्ट होता है यह वही जानता है। वास्तव में सुख वही है जो अंत को प्राप्त न हो या दुःख की प्राप्ति न हो उसे सुख कहते हैं अतः इंद्रियसुख के लिये बाह्य सामग्री का प्रयोग केवल दुःख का, आकुलता का प्रतिकार करना मात्र है इसलिये इस सुख को सुखाभास कहा है, यथार्थ में सुख नहीं है।

नोटः- यहाँ तक 914 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 29वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 30वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निष्फलता का कारण

पत्तविणा दाणं य सुपुत्तविणा बहुधणं महाखेत्तं।

चित्तविणा वयगुणचारित्तं णिक्कारणं जाणे।30।।

पात्रविना दानं च सुपुत्रविना बहुधनं महाक्षेत्रं।

चित्तविना व्रतगुणचारित्रं निष्कारणं जानीहि।।

पत्तविणा पात्र के बिना **दाणं** दान **य** और **सुपुत्तविणा** सुपुत्र के बिना **बहुधणं** बहुत धन **महाखेत्तं** बड़े खेत तथा **चित्तविणा** भाव के बिना **वयगुणचारित्तं** व्रत, गुण, चारित्र को **णिक्कारणं** निष्फल **जाणे** जानो।

प्र.-915 सुपात्र के बिना दान को निष्फल क्यों कहा?

उत्तर- जैसी वस्तु की रक्षा करना है वैसा ही पात्र चाहिये तभी वस्तु की रक्षा हो सकती है अन्यथा दोनों बिगड़ जायेंगे जैसे नीबू के रस को या दही आदि को पीतल के बर्तन में रखने से दोनों ही खराब हो जाते हैं अतः चाँदी, स्टील आदि के बर्तनों में रखने से दोनों सुरक्षित रहते हैं इसी तरह कुपात्र अपात्र को दान देने से निरतिशय पुण्य की प्राप्ति तो होती है पर यह मोक्षमार्ग में सहायक न होने से निष्फल कहा है किंतु सुपात्रदान को नहीं क्योंकि सुपात्रदान को उभयलोक में कार्यकारण भाव से सदा सुखकारी कहा है।

प्र.-916 सुपात्रों को किस वस्तु का दान देना चाहिये?

उत्तर- सुपात्रों को आत्मसाधना में सहायक, निर्विकार हो, ध्यानाध्ययन, तपश्चरण, संयम में साधक हो ऐसी पीछी कमंडलु, शास्त्र, चटाई, कॉपी, पेंसिलादि वस्तुयें देना चाहिये। चटाई आदि क्यों देना? हीनसंहनन और हीनपरिणाम होने से ये वस्तुयें देना चाहिये। विशेष निर्दोष ज्ञान होने से इनका संपादन करने के लिए कॉपी, पेन्सिलादि भी देना चाहिये तथा सदोष ज्ञान होने से नहीं देना चाहिये।

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स।

समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणत्ता।।22।। प्र.सा. चा.चू. अ.3

अर्थ-: ग्रहण करते एवं छोड़ते समय मुनि के जिस सामग्री से संयम का घात न हो, काल तथा क्षेत्र का विचार कर मुनि उस सामग्री से लोक में प्रवृत्ति करें तो वह कौन सी सामग्री है? कहा भी है-

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं।

मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदि वियप्पं।।23।। प्र.सा. चा.चू. अ.3

अर्थ-: यदि विकल्प हो तो अपवादमार्गीमुनिजन कर्मबंध में सहायक न हो, अप्रतिकुष्ट हो, अनिंदित हो, असंयमी मनुष्य जिसे नहीं चाहते हो, ममता आदि की उत्पत्ति से रहित हो ऐसी सामग्री को ग्रहण करें।

प्र.-917 उत्तम पात्रों को भौतिक यंत्र लेपटोप आदि दान में दे सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं दे सकते हैं। यद्यपि लोकदृष्टि में इसे आधुनिक संस्कारी व्यक्ति धर्म का साधन मानने लगे हैं किंतु ये भौतिकयंत्र अत्यधिक मात्रा में आर्तरौद्रध्यान का ही साधन है। कारण- यदि ये वस्तुयें पास में है तो रखवाली की चिंता, पहरेदारों को रखने की चिंता, ताला लगाने की चिंता, छिपाने की चिंता आदि आर्तध्यान है और विनष्ट हो जाये तो इष्टवियोग नामका आर्तध्यान है, अनिष्टकारी संयोग होने पर अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान है तथा सुरक्षित होने पर या पुनः मिल जाने पर प्रसन्न होना, हर्षित होना परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है तथा जब अंतिम रौद्रध्यान है तो आदि के सभी रौद्रध्यान बिन बुलाये आ जाते हैं।

प्र.-918 उत्तमपात्रों के पास में ये भौतिकयंत्र हैं तो इनमें और गृहस्थों में क्या अंतर है?

उत्तर- यदि ये उपकरण साधक के पास हैं तो गृहस्थ और साधक की आत्मविराधना में कोई अंतर नहीं है कारण इन यंत्रों में इंटरनेट के द्वारा बाह्य विकारयुक्त चित्र और सूचनायें भी देख और सुन लेते हैं तभी तो वर्तमान में अनेक त्यागीव्रती महाव्रती गृहस्थपने को प्राप्त हुए हैं।

प्र.-919 जेलपेन, डॉटपेन, स्याहीपेन आदि का प्रयोग क्या मोक्षमार्गी कर सकते हैं?

उत्तर- ये अमर्यादित और त्रसजीवों का पिंड होने से इनका ग्रहण एवं प्रयोग नहीं कर सकते हैं। ये अल्कोहल आदि से लिखे गये धर्मशास्त्र क्या भव्यों के मोक्षमार्ग का अवभासन करा सकते हैं? नहीं, जिस प्रकार मंदिर निर्माण में पूर्ण शुद्धि का ध्यान रखा जाता था वैसे ही शास्त्रनिर्माण में भी पूर्णशुद्धि का ध्यान रखा जाता था तभी तो प्राचीन मंदिर और शास्त्र अतिशयकारी होते थे पर आज अतिशय समाप्त हो गया।

प्र.-920 सुपुत्र के बिना बहुत धन, महान खेत आदि व्यर्थ हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- पूत कपूत तो क्यों धन संचे, पूत सपूत तो क्यों धन संचे। बिना सुपुत्र के बहुत धन, मकान, दुकान, खेतीवाड़ी, सोना, चाँदी आदि मृत्यु के बाद कौन भोगेगा? सरकार में जायेगी या चोर, गुंडे खायेंगे या भूमि में, बैंक में या जिसको दिया है उसीके पास ही रखा रह जायेगा या कुपुत्र गलत कार्यों में, शराब पीने में, मांस खाने आदि कुकर्मों में खर्च कर डालेगा इसलिये सुपुत्र के बिना धन संपत्ति को व्यर्थ कहा है।

प्र.-921 मन के बिना व्रत, गुण और चारित्र को व्यर्थ क्यों कहा?

उत्तर- बिना मन के अणुव्रत, महाव्रत, मूलगुण उत्तरगुण, देशचारित्र, सकलचारित्र का पालन करना केवल कायक्लेश कुतप है, समीचीन फल दायक नहीं हैं। मिथ्यात्व और विषय कषायोदय सहित व्रत, उपवास आदि करने से असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा और पाप कर्मों का संवर न होने से निष्फल कहा है।

प्र.-922 अभव्यजीव व्रतादि का पालन कर अहमिंद्र हो जाते हैं फिर व्यर्थ क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि यह अभव्यजीव कषायों के मंदोदय होने पर व्रत, गुण, चारित्र से नौवें ग्रैवेयिक तक दिव्यभोगों को भोगकर, सुखानुभव करते हैं फिर भी दर्शनमोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम न होने से आत्मानंद प्राप्त नहीं कर पाता इसलिये रत्नत्रय धर्म के बिना व्रत गुण चारित्र का पालन करना व्यर्थ कहा है।

प्र.-923 भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव क्या बिना मन के मुनिदीक्षा ले सकता है?

उत्तर- यह मिथ्यादृष्टि जीव मन पूर्वक ही जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण करता है, वर्षादियोगों को धारण करता है, भरपूर धर्म प्रभावना करता है, शिक्षा दीक्षा देता है अंत में शुभलेश्या पूर्वक समाधिमरण कर अंतिम ग्रैवेयिक पर्यंत चला जाता है अतः मन पूर्वक ही व्रतादि का पालन करता है किंतु दर्शनमोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम न होने से इस जीव को शाश्वतसुख नहीं मिलता है।

प्र.-924 भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव किसे कहते हैं?

उत्तर- यथार्थ में सापेक्ष तत्त्वज्ञाता, अशुभ लेश्यायें, आर्त रौद्रध्यान, ख्यातिपूजालाभ की भावना, विषयकषायें अत्यंत मंदपने को प्राप्त हुई हैं ऐसे देव शास्त्र गुरु भक्त को सरल परिणामी, मंद सरल स्वभावी, निकट भव्य, आसन्न भव्य भद्र परिणामी मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्र.-925 भद्रपरिणामी मिथ्यादृष्टि जीव जिनेंद्र भक्त हो सकता है क्या?

उत्तर- भद्र परिणामी मिथ्यादृष्टि देव शास्त्र गुरु का या जिनेंद्र का भक्त हो सकता है और नहीं भी।

प्र.-926 भद्रपरिणामी जीव को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- जो मिथ्यादृष्टि होगा वही सम्यग्दृष्टि बनेगा, जो मोक्षमार्ग के बाहर है वही मोक्षमार्ग में प्रवेश करेगा, जो गिरा है वही उठेगा इसलिए भद्र परिणामी को मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-927 व्रत किसे कहते हैं इसके भेद, नाम और लक्षण कौन कौन हैं?

उत्तर- पाँचों पापों में रति, प्रीति के त्याग को व्रत कहते हैं। दो भेद हैं। **नाम-:** अणुव्रत और महाव्रत। इन पाँचों पापों के थोड़े त्याग को अणुव्रत और पूर्ण त्याग को महाव्रत कहते हैं अथवा अनंतानुबंधी आदि 8 कषाय के उदयाभाव में अणुव्रत तथा अनंतानुबंधी आदि 12 कषाय के उदयाभाव में महाव्रत होते हैं।

प्र.-928 सप्त व्यसनों या अनेक व्यसनों के त्याग को व्रत क्यों नहीं कहा?

उत्तर- इन व्यसनों में प्रवृत्ति मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय में ही होती है। कदाचित् इनके प्रयोग के बिना, त्याग में लौकिक सदाचार सद्विचार तो हो सकते हैं तथा मोक्षमार्ग की भूमिका बन सकती है फिर भी इनके त्याग को व्रत नहीं कहा है कारण सू.जी ने ''**हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।।1।।**'' त.सू. अ.7 पाँचों पापों के त्याग को व्रत कहा है। सूत्र में **परिग्रहेभ्यः** पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया है। इन पापों का परंपरा से आने के कारण आत्मा में ध्रुव संबंध है और ''**ध्रुवमपायेऽपादानम्, अपादाने पंचमी**'' ध्रुव से अलग करना या होना अपादानकारक है तथा इसमें पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है। इसलिए सप्त या अनेक व्यसनों के त्याग को व्रत नहीं कहा।

प्र.-929 इन व्रतों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- अणुव्रतों के ऐल्लक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, गृहस्थ और महाव्रतों के मुनि एवं आर्यिकायें स्वामी हैं।

प्र.-930 अणुव्रती कितने प्रकार के होते हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अणुव्रती दो प्रकार के होते हैं। 1. गृहरागी 2. गृहत्यागी क्योंकि यह अणुव्रत की अपेक्षा अगारी है और अगार का त्याग कर देने से गृह त्यागी अनगारी कहलाता है पर इसको महाव्रती अनगारी नहीं कहा।

प्र.-931 ये अणुव्रत और महाव्रत किसके समान हैं और इनका क्या फल है?

उत्तर- मोक्षमार्ग की रक्षा करने के लिये खेत में लगी हुई बाढ़ के समान हैं जैसे खेत में लगे हुए फसल की रक्षा के लिये कंटीली झाड़ी या तार लगा देते हैं जिससे पशु अंदर जाकर फसल को नष्ट नहीं कर पाते वैसे ही इन व्रतों के कारण विषयकषायें मोक्षमार्ग को नष्ट नहीं कर पाती या

जिनसे पूर्वबद्ध पापकर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा हो, पाप पुण्य कर्मों का संवर हो उसे व्रत कहते हैं।

प्र.-932 ये व्रत प्रवृत्ति प्रधान होते हैं या निवृत्ति प्रधान?

उत्तर- ये व्रत निवृत्ति प्रधान होते हैं क्योंकि हिंसादि पापों के त्याग, रति के विनाश को व्रत कहा है।

प्र.-933 हिंसादि पापों में रति के विनाश को व्रत कहते हैं यह कैसे जाना?

उत्तर- **ध्रुवमपाये अपादानम्, अपादाने पंचमी** - ध्रुव वस्तु से, अखंड वस्तु से अलग होने को अपादान कारक कहते हैं और अपादान कारक में पंचमी विभक्ति होती है। यहाँ पाँचों पाप ध्रुव हैं, अखंड हैं क्योंकि ये भवभवान्तरों से चले आ रहे हैं सो सू. ने **परिग्रहेभ्यः** पंचमी विभक्ति के बहुवचन का प्रयोग किया है अतः विरति- **वि-** विनाश को प्राप्त हुआ है। **रति** - प्रेम, राग, आसक्ति जिनका उसे विरति कहते हैं और विरति का कार्य व्रत है ऐसा यह अर्थ सूत्रकार के द्वारा पंचमी विभक्ति के प्रयोग से जाना जाता है।

प्र.-934 आजकल व्रतों को प्रवृत्ति प्रधान कहने लगे हैं सो यह ठीक है क्या?

उत्तर- नहीं, उनका ऐसा कहना कथंचित् ठीक नहीं है। दिगंबर जैनधर्म के उत्सर्गमार्ग में व्रत प्रवृत्ति प्रधान होने से ही मोक्षमार्ग बन सकता है क्योंकि प्रवृत्ति से कर्म बंधते हैं ऐसा सर्वथा नहीं है किंतु छूटते भी है क्योंकि प्रवृत्ति उभय स्वभाव वाली होती है। प्रवृत्ति और निवृत्ति परस्पर में एकदूसरे की पूरक हैं।

प्र.-935 क्रियाओं के दो नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- क्रियायें दो प्रकार की हैं। 1. प्रवृत्ति रूप 2. निवृत्ति रूप। जैसे- वस्त्र धारण करने की और दूसरी वस्त्रों को उतारने की क्रिया ऐसे ही एक क्रिया कर्मों को बाँधने की है तो दूसरी कर्मों को काटने की है अतः प्रवृत्ति निवृत्ति को लिए हुए है जो मोक्षमार्ग स्वरूप ही है अन्यथा सूत्रकार समिति और अनुप्रेक्षाओं को संवरतत्त्व में ग्रहण नहीं करते अर्थात् इनसे संवर और निर्जरा ही होती है।

प्र.-936 अणुव्रत और महाव्रत कौन से भाव हैं?

उत्तर- इन दोनों व्रतों को त.सू. अ. 2 सू. 3 औपशमिक, सू. 4 क्षायिक, सू. 5 क्षायोपशमिक भाव कहा है। ये तीनों भाव प्रवृत्ति निवृत्ति रूप होने से ही संवर निर्जरा और मोक्षफल प्रदाता हैं अतः ये व्रत औदयिक भाव नहीं हैं। असुहादोविणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।।45।। द्र.सं. औदयिकभाव प्रवृत्ति रूप होने से आश्रवबंध स्वरूप हैं। सूक्ष्मतः विचारने पर औदयिकभाव में भी संवर निर्जरातत्त्व खोज लेते हैं क्योंकि मोक्षमार्गी दोषों में गुणों को तथा संसारमार्गी गुणों में दोषों को देखते हैं सो यह स्वभावगत चर्या है।

प्र.-937 गुण, मूलगुण, उत्तरगुण किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवन को निर्दोष बनाने के लिए आवश्यकों के पालने को गुण कहते हैं। मोक्षमार्ग में साधनभूत प्रधान गुणों को मूलगुण तथा मूलगुणों में ही अवांतर गुणों को उत्तरगुण कहते हैं।

प्र.-938 श्रावकों के मूलगुण कितने हैं और आचार्यों ने नाना तरह से क्यों बताये?

उत्तर- सभी आचार्यों ने गृहस्थों के 8 ही मूलगुण बताये हैं किंतु संख्या में 8 होने पर भी नामों में अंतर है। जैसे आ. श्री समंतभद्रजी ने हिंसादि पाँचों पापों के और तीन मकारों के त्याग को 8 मूलगुण, किन्हीं ने सप्त व्यसनों के त्याग के 7 और उदुम्बर फलों का त्याग एक ये 8 मूलगुण, आ. जिनसेनजी ने मद्य, मांस, जुआ त्याग ये 3 और 5 पापों का एकदेश त्याग ये 8 मूलगुण कहे हैं। आ. अमृतचंद्रजी ने 5 उदुम्बर फलों के त्याग और तीन मकारों के त्याग ये 8 मूलगुण कहे हैं। पं. आशाधरजी ने तीन मकारों का त्याग, रात्रिभोजन त्याग, पाँच उदुम्बर फलों का त्याग, देवदर्शन,

जीवदया, जल छानकर पीना ये 8 मूलगुण कहे हैं।

प्र.-939 आचार्यश्रीजी ने 5 पापों और 3 मकारों के त्याग को मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर- इन मूलगुणों के बिना जिनधर्म और मोक्षमार्ग प्रारंभ ही नहीं होता है अतः इन पापों और तीन मकारों के त्याग को मूलगुण कहा है। ये मूलगुण अनादिकाल से परंपरागत चले आ रहे हैं जो वास्तव में मोक्षमार्गी हैं, आचारविचार से शुद्ध हैं, जिनधर्म की आराधना करते हैं, पालन करते हैं उनके ही ये मूलगुण हैं।

प्र.-940 क्या मकारों को जिनेंद्रभक्त सेवन करते थे जो इनका त्याग कराया?

उत्तर- नहीं, ये वस्तुयें न अनादिकाल से थीं, न खातेपीते थे क्योंकि भोगभूमियों में विकलत्रय प्राणी मांसाहारी, कुटिल परिणामी, तीव्रकषायी नहीं थे। हाँ, कर्मभूमि के प्रारंभ होते ही धीरे[2] कुटिलता और कषायों की वृद्धि और विषयासक्ति के कारण मांसाहार, शराब पीना चालू हुआ। ये तीव्र हिंसक होने से मोक्षमार्गी साधक न होकर विराधक और नीचगोत्री शूद्र थे अतः इनको त्याग कराया।

प्र.-941 जब जैनी इन मकारों का सेवन नहीं करते थे तो इनका त्याग क्यों कराया?

उत्तर- वास्तव में जैन इन वस्तुओं का प्रयोग ही नहीं करते थे किंतु दुर्भाग्यवशात् या मलेच्छों की संगति से शराब के समान मादक पदार्थों का या मद्यांगजाति के कल्पवृक्षों से प्राप्त सामग्री का, मांस के समान अमर्यादित भोजन का और मधु के समान अमर्यादित गीले स्वादिष्ट पदार्थ या जंगलों में अधिक पके हुए फलों को खाते थे तो उनके नाम आचार्य कहाँ तक गिनाते अतः उपलक्षण मानकर एक एक का नाम गिना दिया और इन्हीं के समान दोषदायक समस्त वस्तुओं को समझ कर त्याग करना चाहिये। शेष प्रकार के मूलगुणों का नियम या विरुद्ध वस्तुओं के त्याग का नियम द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों के अनुसार आचार्यों ने अजैनों को जैन बनाने के लिए इनका त्याग बताया क्योंकि यह विषय चरणानुयोग का है।

प्र.-942 तो क्या सभी संसारमार्गी और अजैन इन मकारों का सेवन करते थे?

उत्तर- सभी संसारमार्गी, अजैन इन वस्तुओं का सेवन नहीं करते थे किंतु जो आदिवासी, कदाचित् मलेच्छ थे जिनको अहिंसाधर्म और धर्मगुरुओं का समागम प्राप्त नहीं हुआ ऐसे मनुष्य इनका सेवन करते थे सो इनको बाह्य भूमिका बनाने के लिए, जैनधर्म में दीक्षित करने के लिए इनका त्याग कराया था क्योंकि मैल धोये बिना मलिन वस्त्र में नील चढ़ाया तो परिश्रम व्यर्थ है और मैल धोकर चढ़ाया तो परिश्रम सफल है ऐसे ही इन मकारों का त्याग किये बिना जिनधर्म का पालन करना व्यर्थ है तथा मकारों के त्याग के साथ साथ जिनधर्म को पालने में सफलता मिलती है।

प्र.-943 आजकल अनेक जैनी मकारों का सेवन करने लगे हैं तो इन्हें क्या कहें?

उत्तर- जो जैन होकर भी कुसंगति और कुशिक्षा के कारण धर्म तथा समाज को कलंकित करने वालीं चेष्टायें कर रहे हैं सो ये वास्तव में जैन नहीं हैं किंतु अजैन संसारमार्गी ही हैं फिर भी नामनिक्षेप से इनको जैन कहा है अतः जैनों को वास्तविक जैन बनाने के लिए इनका त्याग कराया जा रहा है सो यह आश्चर्य की बात है कि इन नामधारी जैनों का कैसा होनहार है? भविष्य में जिनधर्म कौन चलायेगा? ये चारित्रहीन समाज के बंधुगण जैन समाज को तथा जिनधर्म को कलंकित कर रहे हैं।

प्र.-944 नामनिक्षेप का क्या महत्त्व है?

उत्तर- बिना नामनिक्षेप के लोकव्यवहार और धर्मव्यवहार नहीं चल सकता है क्योंकि बिना नामकरण के किसका आदानप्रदान किया जाये, कौन शुभ, कौन अशुभ है इसकी जानकारी भी नहीं हो सकती है तथा **यथा नाम तथा गुण** के अनुसार यह नामनिक्षेप भी वस्तुस्थिति की समीचीनता को दर्शाता है। जैसे गृहस्थावस्था में तीर्थंकर प्रकृतिवालों के नाम, दांपत्य एवं पितापुत्र संबंधादि

भी नामनिक्षेप से ही जाने जाते हैं क्योंकि नामनिक्षेप भी जिनवाणी का ही अंग है, जिनेंद्रोपदेश है, मोक्षमार्ग का ही प्रतिपादक है।

प्र.-945 नामनिक्षेप के महत्त्व को समझने के लिए क्या उदाहरण है?

उत्तर- नींबू सूख जाये, सड़, गल जाये, छिदभिद जाये, पिस जाये आदि किसी भी अवस्था में हो तो भी उसे नींबू ही कहेंगे, आमादि नहीं। यह महिमा नामनिक्षेप की ही है कि नींबू की अनेक अवस्थायें होने पर भी नींबू के अस्तित्व को बनाये रखा है, खोया नहीं है। ऐसे ही वर्तमान में अनेक जैनी अपने जैनत्व को खो बैठे हैं फिर भी नामनिक्षेप से उन्हें जैनी ही कहते हैं, अजैन नहीं। भले ही ये भाव, आचारविचार से अजैन ही हों। यदि सर्वथा आचारविचार विहीन जैनों को अजैन कहेंगे तो इनके माँबाप को क्या कहेंगे?

प्र.-946 नामनिक्षेप को सही नहीं मानें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नामनिक्षेप को सर्वथा गलत मानने से तीर्थंकर प्रकृतिवालों के गर्भजन्मतपकल्याणक कैसे मनाओगे? सामाजिक कार्यकर्ताओं को भी अशिष्ट मानने का प्रसंग आयेगा फिर पुण्यपाप की, सदसत् मार्ग की कोई यथार्थ व्यवस्था नहीं बन सकती है।

प्र.-947 नामनिक्षेप के भेद कितने हैं, नाम और लक्षण क्या है?

उत्तर- नामनिक्षेप के 6 भेद हैं। नामः- **1.गौण्यपद** गुणों की मुख्यता से उत्पन्न गौण्यपदनाम। **2.नौगौण्यपद** नाम गुणों की मुख्यता किये बिना उत्पन्न नौगौण्यपदनाम। **3.आदानपद** दंडी, छत्री, मौली आदि आदानपदनाम। **4.प्रतिपक्षपद** विधवा, कुमारी विधुरादि प्रतिपक्षपदनाम। **5.अपचयपद** कान छिदा, नकटादि अपचयपदनाम। **6.उपचयपद** श्लीपदी, गलगंड, दीर्घनासादि उपचयपदनाम। ज.ध. पु.1 का. 24

प्र.-948 नामनिक्षेप को यदि अपूज्य माना जाय तो क्या दोष है?

उत्तर- सर्वथा नामनिक्षेप को अपूज्य नहीं मान सकते हैं क्योंकि ये निक्षेप सम्यग्ज्ञान के भेद हैं, जिनेंद्र का ही मोक्षमार्ग से संबंधित उपदेश है। यदि इन नामनिक्षेपों को सर्वथा अपूज्य माना जाय तो तीर्थंकर कुमार के गर्भ जन्मकल्याणक नहीं मना सकते हैं तथा जिनवाणी और सम्यग्ज्ञान को भी कुछ पूज्यपना और कुछ अपूज्यपना मानने का प्रसंग आयेगा।

प्र.-949 नामनिक्षेप को केवल लोकव्यवहार में ही उपयोगी मानने में क्या दोष है?

उत्तर- नामनिक्षेप को केवल लोकव्यवहारोपयोगी मानने से सम्यग्ज्ञान का अंश नहीं बन सकता है क्योंकि वस्तुतत्त्व की सही जानकारी प्रमाण नय और निक्षेप से ही होती है। कारण सम्यग्ज्ञान मोक्ष का ही हेतु है।

प्रमाणनयनिक्षेपैर्योऽर्थं नाभिसमीक्ष्यते।

अयुक्तं चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं च युक्तवत्।। ध.पु.1 गा.10

जो ण पमाण णएहिं णिक्खेवेणं णिरिक्खदे अत्थं।

तस्साजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं व पडिहाइ। ति.प. भा.1 गा. 82.

अर्थ-: जो तत्त्व आदि का प्रमाण नय निक्षेपों से निर्णय नहीं करता है उसे अयुक्त होने पर भी युक्त तथा युक्त होने पर भी अयुक्त मालुम होता है अतः नामनिक्षेप लोकव्यवहार के साथ[2] मोक्षमार्ग में भी उपयोगी है।

प्र.-950 मुनि कैसे आराधना करते हैं?

उत्तर- **''मौनेन मुनिः''** नाममाला टीका। मुनि मौन पूर्वक शुद्धात्मसाधना करते हैं।

प्र.-951 मुनियों को मौन रहना चाहिये ऐसा विधान कहाँ आया है?

उत्तर- तीर्थंकरप्रकृति की सत्ता वाले मुनि केवलज्ञान प्राप्ति पर्यंत छद्मस्थावस्था में मौन से ध्यानसाधना करते हैं, बोलते नहीं अतः मुनियों की इन्हीं जैसी चर्या होती है, ऐसी सामर्थ्य न हो तो कम से कम सूर्यास्त से सूर्योदय पर्यंत मौन रखना ही चाहिये। योगिभक्ति की अंचलिका में **''आदावण रूक्ख मूल अब्भोवासठाणमोण वीरासण''** योगियों को मौन से ध्यानसाधना करने को कहा है।

प्र.-952 मुनि आदि के मूलगुण कितने कितने हैं?

उत्तर- मुनि के 28, उपाध्याय के 25, आचार्य के 36, तीर्थंकर अरिहंत के 46, सामान्यकेवली के 4 और कर्मक्षय की अपेक्षा सिद्धों के 8 मूलगुण तथा स्वभाव की अपेक्षा अनंत मूलगुण होते हैं।

प्र.-953 श्रावकों के समान मुनियों के भी नाना प्रकार से मूलगुण क्यों नहीं बताये?

उत्तर- नहीं, ईंधन अनेक प्रकार के होने पर भी अग्नि एक ही प्रकार की होती है। जैसे पत्थर, लोहे, लकड़ी, कोयले, तेल, गेस का, घासपत्ती आदि ईंधन में भेद होने पर भी अग्नि और अग्नि के कार्यों में भेद नहीं होता है, न हुआ था, न होगा ऐसे ही ईंधनवत् गृहस्थों के नाना प्रकार से मूलगुण बताये हैं, मुनियों के नहीं। जैसे कर्मभूमिज गृहस्थ मनुष्यों में भेद होने पर भी मुनिमुद्रा में, मुनि के लक्षण में और मूलगुणों में किंचित् मात्र भी भेद नहीं है क्योंकि मुनि अग्नि के समान है तो गृहस्थ ईंधन के समान है।

प्र.-954 यदि मुनियों के लक्षण नहीं बदले तो ये मतमतांतर क्यों हुए?

उत्तर- जबतक यथाजात रूप जिनलिंग में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ था तभी तक मोक्षमार्ग एकरूप में चल रहा था किंतु जब से मुनिलिंग तथा मुनिचर्या में परिवर्तन हुए तभी से ये विकृत लिंग, विकृत चर्या के नाम ही अन्य मतमतांतर हुए। यदि एक ही प्रकार का मुनिलिंग और चर्या बनी रहती तो अन्य मतमतांतरों की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती थी अतः मन और तन के विकार से धर्म का स्वरूप ही बदल गया जो वर्तमान में दिखाई दे रहा है। जैसे परिवार में एकरूपता रहती है तो चल अचल संपत्ति, परिवार अखंड रूप में रहता है किंतु मन तन में विकार होने से व्यवहार में, व्यापार में, परिवार में, चलाचल संपत्ति में बटवारा, वैरविरोध हो जाता है। परिवार के सदस्यगण अनेक संकल्प विकल्पों से पीड़ित हो जाते हैं। इसी तरह धर्म के संबंध में समझना चाहिये अतः मुनियों के रूप में विकार होना ही मतमतांतरों का रूप है।

प्र.-955 चारित्र किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- आत्मस्वभाव में स्थिर होने को, पापों के त्याग को, शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करने को चारित्र कहते हैं। अंतरंग और बहिरंग ये दो भेद, सामायिकादि पाँच भेद हैं। **नामः-** सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यातचारित्र अथवा पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति ये तेरह चारित्र के भेद हैं।

प्र.-956 मन के बिना इन सबको निष्फल व्यर्थ क्यों कहा?

उत्तर- जैसे एक आदि अंकों की बिना शून्यों के कोई कीमत नहीं होती है और अंकों के रहने पर आगे के सभी शून्यों की दस-दसगुणी कीमत बढ़ती जाती है ऐसे ही सम्यग्दर्शन सहित व्रत गुण चारित्र मोक्षदायक हैं अन्यथा इंद्रियजन्य सुख प्राप्त कराते हैं सो सम्यक्मन के बिना व्रत गुण और चारित्र को व्यर्थ कहा है या मोक्षफल प्रदाता न होने से व्यर्थ कहा है किंतु सांसारिक सुखों की अपेक्षा व्यर्थ नहीं कहा है।

प्र.-957 यदि मन के बिना चारित्र व्यर्थ है तो केवलियों के ये सार्थक कैसे होंगे?

उत्तर- प्रमत्त पर्यंत त्यागीव्रती मुनियों के सम्यक्भावमन के बिना व्रत गुण चारित्र को निष्फल कहा है, केवलियों के नहीं कारण एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के द्वारा भावमन का अभाव करके

केवली बने है अतः केवलियों के द्रव्य मनोयोग तथा भाव मनोयोग है, भावमन नहीं है सो आ. श्री ने ठीक ही कहा है।

प्र.-958 केवलियों के भावमनोयोग कैसे और भावमन का अभाव कैसे?

उत्तर- केवलियों के द्रव्य मनोयोग के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में उत्पन्न होने वाला कंपन ही अचेतन भावमनोयोग है, चेतन भावमन नहीं क्योंकि यह भावमन नोइंद्रियावरणकर्म के क्षयोपशम से होता है और केवलियों के नोइंद्रियावरण कर्म का भी क्षय हो चुका है तब भावमन कैसे?

प्र.-959 यदि ऐसा है तो केवलियों के तीनों योग कैसे बनेंगे?

उत्तर- केवलियों के ये तीनों ही योग द्रव्य और भावरूप में होते हैं। यदि केवलियों के भावमनोयोग का अभाव माना जाये तो सत्यमनोयोग और अनुभय मनोयोग का अस्तित्व बन नहीं सकता इसलिए केवलियों के द्रव्ययोग और भावयोग दोनों होते हैं अन्यथा ईर्यापथ आश्रवबंध नहीं हो सकता है।

प्र.-960 यदि ऐसा है तो केवलियों के द्रव्ययोग और भावयोग कैसे बनेंगे?

उत्तर- नामकर्म का सत्त्व और उदय होने के कारण केवलियों के द्रव्ययोग एवं भावयोग दोनों बन जाते हैं अन्यथा 13वें गुणस्थान में सातावेदनीयकर्म का आश्रवबंध हो नहीं सकता।

नोटः- यहाँ तक 960 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 30वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 31वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

धर्मादा द्रव्य के भोगने का फल

जिण्णुद्धार पइट्ठा जिणपूया तित्थवंदणं सेसधणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणुद्दिट्ठं णिरयगइ दुक्खं।।31।।

जीर्णोद्धारप्रतिष्ठा जिनपूजा तीर्थवंदनं शेषधनं।
यो भुंक्ते स भुंक्ते जिनोपदिष्टं नरकगतिदुःखम्।।

जो जो **जिण्णुद्धार पइट्ठा** जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठार **जिणपूया** जिनपूजा **तित्थवंदणं** तीर्थक्षेत्र वंदन से **सेसधणं** बचे धन को **भुंजइ** भोगने वाला **णिरयगइ दुक्खं** नरक के दुःख को भोगता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** सर्वज्ञ ने कहा है।

प्र.-961 जीर्णोद्धार किसे कहते हैं, खंडित होने पर पुनः पूज्य कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, शास्त्र आदि के जीर्णशीर्ण होने पर, अंग उपांगों के घिस जाने पर पुनः लेपादि को लगा लगवाकर यथानुरूप कर करा देने को जीर्णोद्धार कहते हैं। जीर्णोद्धार के बाद में पुनः मंत्रों के द्वारा शुद्धि करने से, प्रतिष्ठा करने कराने से जिनमंदिर आदि पूजने योग्य हो जाते हैं।

प्र.-962 बार बार अभिषेक करने से ही प्रतिमाओं के अंगोपांग घिस जाते हैं अतः अभिषेक एक ही बार करने से अंग उपांग न घिसने से अपूज्यता कैसे होगी?

उत्तर- नहीं, बारबार अभिषेक करने से प्रतिमाओं के अंगोपांग नहीं घिसते हैं किंतु खूब रगड़[2] कर पोंछने से ही प्रतिमाओं के अंगोपांग घिस जाते हैं। यदि पानी से प्रतिमाओं के अंगोपांग घिसते हैं तो जलाशयों में कितने समय से प्रतिमायें या पाषाण पड़े हुए हैं तब ये कबके घिस जाते, चूरचूर हो जाते किंतु और मजबूत हो गये ऐसे ही धातुओं की प्रतिमायें रगड़ने से घिस जाती हैं। जैसे गरारी आदि घर्षण से घिसती हैं ऐसे ही धातुओं की प्रतिमाओं के अंगोपांग अभिषेक से नहीं किंतु रगड़ने से, घर्षण से घिसते हैं। एक ही बार अभिषेक नियम बनाना ही आगमविरुद्ध है क्योंकि संस्कृत अभिषेकपाठ में ''**बहुधा अभिषिंचे**'' पाठ आया है। यदि एकबार करने का नियम बनाने वालों की बात सही है तो अभिषेकपाठ गलत है या पाठ सही है तो एकबार का नियम बनाना

गलत है क्योंकि दोनों सही नहीं हो सकते हैं अर्थत् कषायाविष्ट हो नियम बनाने से ही समाज की शक्ति नष्ट होकर धर्म बदनाम हो रहा है।

प्र.-963 जीर्णोद्धार किन किन का किया, कराया जाता है?

उत्तर- **जीर्णं जिनालयं जिनबिंबं सुदृशं च पुस्तकं पूज्यं।**

पूजकमप्यधिकं स्याद्यदुद्धरेत्पूर्वपुण्यतः पुण्यम्।।12।। दा.शा. चतुर्विधदान निरूपण

अर्थः- जीर्णशीर्ण जिनमंदिर, जिनमूर्ति, सदोषी संघ, जीर्ण शास्त्र, जीर्ण संयमी एवं देवार्चक इत्यादि का जीर्णोद्धार करना, कराना चाहिये। इससे पूर्वकृत पुण्य की अपेक्षा अधिक पुण्य की प्राप्ति होती है।

शिथिले जिनगेहे सति सधना जैना उदासते तेषाम्।

गृहधनतेजोमानप्राणादिकहानिराशु स्यात्।।186।। दा.शा. चतुर्विधदान निरूपण

अर्थः- जिनमंदिरादि के जीर्ण होने पर उसे देखकर धनवान जैनी उपेक्षा कर इनका जीर्णोद्धार न कराकर उदासीन रहते हैं तो उनका घर, धन, तेज, मानसम्मान और प्राणादिक का शीघ्र ही नाश होता है।

प्र.-964 जीर्णसंयमी किसे कहते हैं?

उत्तर- त्यागीव्रती मुनियों का जीवन दिनचर्या शिथिलाचारमय होने को ही जीर्णसंयमी कहते हैं।

प्र.-965 अव्रती और अणुव्रती सम्यग्दृष्टियों का जीर्णोद्धार कैसे करना चाहिये?

उत्तर- यदि कोई अव्रती या अणुव्रती श्रावक श्रद्धान ज्ञान चारित्र से गिर रहा है तो पुनः उसे उसी पद में जिस किसी भी उपाय से स्थिर कर करा देने को जीर्णोद्धार कहते हैं। जीर्णोद्धार का अर्थ स्थितिकरण है।

प्र.-966 कामादि के कारण धर्म से च्युत धर्मात्माओं का जीर्णोद्धार कैसे करें?

उत्तर- यौवनावस्था में मन मैथुनसंज्ञा से पीड़ित होने पर जाति कुल और धर्म की मर्यादा को नष्ट करने के सन्मुख हो रहा है तब ऐसे प्रसंगों पर धर्मोपदेश से, धनादि से, संयमाराधना से सहायता कर स्थितिकरण करना चाहिये। इतना परिश्रम करने पर भी यदि मन कामवासना को पूर्ण रूप से जीतने में असमर्थ है तो उसका जाति कुल और धर्म के अनुसार सदाचारिणी, कुलवान कन्या के साथ और कन्या का कुलवान सदाचारी वर के साथ पाणिग्रहण संस्कार के द्वारा जीर्णोद्धार करना चाहिये क्योंकि गिरने से रोकना है।

प्र.-967 गृहस्थ आजीविका और क्रोधादि के द्वारा मोक्षमार्ग से कैसे पतित होता है?

उत्तर- जब गृहस्थों के पास आजीविका चलाने के लिए मोक्षमार्गानुरूप साधन न होने से जिनधर्म को कलंकित करने वाले ऐसे शराब, अंडे, जूते आदि व्यापारों, नौकरी से आजीविका चलाने लगता है ऐसे ही कषायों के उद्रेक से गृहस्थ धर्म से गिर जाता है अतः ऐसे प्रसंगों पर समीचीन गृहस्थों का जिन धर्मानुकूल व्यापारादि से आजीविका के साधन जुटा देने से उसका जिर्णोद्धार हो जाता है।

प्र.-968 गृहस्थधर्म की संतति परंपरा एक से चल सकती है क्या?

उत्तर- गृहस्थों की संतति परंपरा एक से नहीं चल सकती है क्योंकि संतानोत्पत्ति के लिए दांपत्यक्रिया चाहिये इसके बिना संतानोत्पत्ति ही नहीं हो सकती है किंतु गृहस्थधर्म एक से चल सकता है जैसे पाँच बालयति तीर्थंकरों ने अणुव्रत स्वरूपी गृहस्थधर्म को पूर्ण रूप से निभाया ही था।

प्र.-969 बालयति तीर्थंकरों के समान क्या सभी गृहस्थधर्म का पालन कर सकते हैं?

उत्तर- नहीं, उत्सर्गमार्ग की अपेक्षा गृहस्थधर्म केवल पति या पत्नि से नहीं चल सकता है जैसे एक पहिये से गाड़ी नहीं चलती। यदि बालयति तीर्थंकरोंवत् सभी श्रावक श्राविकायें हो जायें तो

मोक्षमार्ग नहीं चल सकता क्योंकि जब संतान ही नहीं होगी तो मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका कौन बनेगा? क्या पेड़ पौधौं से पैदा होंगे? फिर गर्भजजन्म, गर्भज मिश्रयोनि और मोक्षमार्गानुरूप संहनन का भी अभाव हो जायेगा।

प्र.-970 संयमीजनों का जीर्णोद्धार किस तरह से करना चाहिये?

उत्तर- जब मुनिजन उपसर्ग और परीषहों के कारण अपने संयममार्ग से, समाधि साधना से च्युत हो रहे हों तो उनको धर्मोपदेश और वैय्यावृत्ति आदि के द्वारा मुनिव्रत में दृढ़ करना चाहिये जैसे गिरते हुए मकान को गिरने से बचाने में कम परिश्रम होता है और गिरने पर पुनः उठाने में अधिक परिश्रम होता है। इसी तरह चलायमान या जीर्णशीर्ण होते हुए संयमी मुनियों को मोक्षमार्ग में स्थिर करने के लिए परिश्रम कम होता है और पूर्ण रूप से गिर जाने पर पुनः दीक्षा देकर मुनिपद में स्थिर करने में अधिक परिश्रम होता है।

प्र.-971 देवार्चक किसे कहते हैं तथा उसका जीर्णोद्धार कैसे होता है?

उत्तर- गृहस्थाचार्यों को, विधानाचार्यों, प्रतिष्ठाचार्यों को, धर्मायतनों की पूजा करने, कराने वालों को देवार्चक कहते हैं। जब ये कर्तव्यपथ से, आचारविचार से च्युत हो रहे हों तो इनको चलायमान न होने देने को देवार्चकों का जीर्णोद्धार कहते हैं। देव+अर्चक = देवार्चक। देव और अर्चक में सवर्णदीर्घ संधि हुई है जैसे **व** में **अ** और अर्चक का **अ** इन दोनों को मिलाने से **आ** बन जाता है।

प्र.-972 शास्त्रजी का जीर्णोद्धार किसे कहते हैं?

उत्तर- यदि शास्त्रजी का पत्र, कागज, जिल्द जीर्णशीर्ण हो जाये तो पुनः लिखना लिखवाना, जिल्द बांधना बंधवाना या मुद्रण कराने को या कंठपाठ कराकर यथावस्थित रखने को शास्त्र का जीर्णोद्धार कहते हैं।

प्र.-973 प्रतिष्ठा क्यों की जाती है तथा कौन किसकी करता है?

उत्तर- शुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुसार धर्मायतनों की प्रतिकृति की संकल्प पूर्वक मंत्रों से शुद्धि करने कराने को प्रतिष्ठा कहते हैं। धर्मायतनों की रचना के समय उत्पन्न हुए हिंसादि पापों को दूर करने के लिए और अपूज्य से पूज्य बनाने के लिए की जाती है। तीर्थंकर प्रकृति वालों के पंचकल्याणक एकमात्र सौधर्म इंद्र इंद्राणी आदि चतुर्निकाय के देव देवांगनायें ही मनाते हैं और धातु पाषाणादि की मूर्तिओं की यहाँ पर प्रतिष्ठाचार्य, धर्माचार्य मंत्रों के द्वारा श्रावक श्राविका, बालक बालिकाओं में स्थापनानिक्षेप के द्वारा इंद्र इंद्राणी, देव देवांगनाओं की स्थापना कराकर इनके द्वारा मूर्तियों की प्रतिष्ठा कराई एवं की जाती है।

प्र.-974 यदि वस्त्रधारी किसीको मुनिदीक्षा देवे तो क्या उसे आप मान्य करेंगे?

उत्तर- वस्त्रधारी गृहस्थ किन्हीं भी श्रावकश्राविकाओं को मुनि आर्यिका दीक्षा नहीं दे सकता है कदाचित् गृहस्थ ने मुनिआर्यिका दीक्षा दे भी दी तो क्या वे उस गृहस्थ को दीक्षादायक गुरु मानेंगे? गृहस्थों से दीक्षित मुनि आर्यिका आदि को आप स्वीकार करेंगे? नहीं तो गृहस्थों से प्रतिष्ठित मूर्ति पूज्य कैसे अतः जब वस्त्र धारी गृहस्थ श्रावकश्राविकाओं को मुनिआर्यिका दीक्षा नहीं दे सकता है तो तीर्थंकरों की तथा पंचपरमेष्ठियों की प्रतिमाओं में दीक्षा ज्ञान एवं मोक्ष कल्याणक के संस्कार कैसे कर सकता है?

प्र.-975 दीक्षाकल्याणक और ज्ञानकल्याणक के संस्कार कौन करता है?

उत्तर- इन कल्याणकों के संस्कार का अधिकार एकमात्र शिक्षादीक्षादायक दिगंबर जैनाचार्य परमेष्ठी को ही है, वस्त्रधारियों को नहीं अथवा इन दोनों कल्याणकों के संस्कार आचार्य, उपाध्याय और साधु करते हैं।

प्र.-976 इन दोनों संस्कारों की विधि उपाध्याय और साधु कैसे कर सकते हैं?

उत्तर- यद्यपि उपाध्याय और साधु परमेष्ठी दूसरों को शिक्षा/ प्रायश्चित्त, दीक्षा- व्रत नियम संयम आदि नहीं देते हैं फिर भी विशेष प्रसंग आने पर करते ही हैं अतः ये उभय परमेष्ठी भी संस्कारविधि कर सकते हैं।

प्र.-977 पंडितवर्ग कल्याणकों के संस्कार नग्न होकर करने लगे हैं तो क्या उचित है?

उत्तर- सर्वथा अनुचित है क्योंकि इन पंडितों के पास उभयसंयम का अभाव तथा असंयमी होने के कारण दीक्षा ज्ञान और मोक्ष कल्याणक की संस्कारविधि नहीं कर सकते हैं। जिनेंद्र प्रतिमा के सामने वस्त्रों के त्याग का संकल्प कर मुनि बनकर संस्कार करने के बाद में पुनः वस्त्र धारण कर लेते हैं अतः जब ये पंडितवर्ग स्वयं जिनेंद्र के सामने वस्त्रों के त्याग का संकल्प कर, प्रतिज्ञा नष्ट कर, पद भ्रष्ट हुए तो इन भ्रष्टों के द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमायें कैसे पूज्य हो सकती हैं? भ्रष्ट ही कहलायेंगी। दीक्षादि के संस्कारकर्ता वस्त्रधारी दिगंबराचार्य कहलायेंगे, जो दिगंबर जैनागम परंपरा के सर्वथा विरुद्ध है। इन पंडितों को स्वामी ब्रह्मगुलाल मुनि की कथा पढ़कर शिक्षा लेना चाहिये कि मुनि बनने के बाद पुनः वस्त्रधारण नहीं किये जाते।

प्र.-978 प्रतिष्ठा किस किसकी की जाती है?

उत्तर- अचेतन नवदेवताओं, मंदिर, वेदी, शिखर, कलश, ध्वजादि की प्रतिष्ठायें की जातीं हैं। प्रतिष्ठाग्रंथों में इन सभी की प्रतिष्ठाओं के मंत्र अलग अलग बताये हैं जो महाव्रती दिगंबर जैनाचार्यों के तथा प्रतिष्ठाचार्यों के द्वारा विधि संपन्न कराई जाती है।

प्र.-979 कौन सी विधि के कौन संस्कार करते हैं?

उत्तर- जो संस्कारविधि संयम पूर्वक मोक्ष के निमित्त, शुद्ध आत्मसाधना के निमित्त की जाती है सो वह संस्कारविधि महाव्रती छद्मस्थ प्रमत्तपरमेष्ठी आचार्यभगवंत करते हैं तथा आरंभयुक्त संस्कारविधि को अव्रती, अणुव्रती गृहस्थ प्रतिष्ठाचार्य करते हैं।

प्र.-980 मूर्तियों में क्या दोष है जो प्रतिष्ठा की जाती है?

उत्तर- यदि मूर्तियों में अंग उपांगों की हीनाधिकता है या अमंगल चिह्न हैं तो वह मूर्ति सदोष होने से मंत्रों से भी ये दोष दूर नहीं हो सकते हैं अतः इनकी प्रतिष्ठा नहीं की जाती है परंतु जो लोभवश प्रतिष्ठा कर करा देते हैं उनको नाना कष्टों का सामना करना पड़ता है किंतु यथास्थान यथाप्रमाण और संस्थान सुंदर हो तब बनाते समय जो हिंसा आदि दोष लगे हैं तो दोषों को दूर करने के लिए मंत्रों से प्रतिष्ठा की जाती है।

प्र.-981 जिनपूजा किसे कहते हैं?

उत्तर- एकदेश या सर्वदेश विषयकषाय रूपी अंतरंग कर्मशत्रुओं पर विजय पाने वालों की आराधना, गुणकीर्तन करने, जल चंदनादि निर्दोष सामग्री अर्पण करने को, आरती करने को जिनपूजा कहते हैं।

प्र.-982 'जिन' पद से किन किन को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यद्यपि **जिन** पद का अर्थ अव्रतीसम्यग्दृष्टि, अणुव्रती और महाव्रती होता है फिर भी यहाँ 'जिन' से पंचपरमेष्ठी को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि निर्माल्यद्रव्य खाने से क्या फल प्राप्त होता है इसका वर्णन है।

प्र.-983 तीर्थ और तीर्थवंदना किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस आकाश प्रदेश या भूमिप्रदेश में संसार और संसार के कारणभूत कर्मों का क्षय किया जाये या संसार से तिरा जाये उसे तीर्थ तथा इनके दर्शन पूजन, वंदन, नमस्कार करने को तीर्थवंदना कहते हैं।

प्र.-984 गाथोक्त शेषधन किसे कहते हैं?

उत्तर- गाथा में आये हुए नामों के अलावा शेष धर्मायतनों के निमित्त निकाले हुए धर्मादा को, परोपकारार्थ मन वचन काय से त्यागे हुए धन को शेष धन कहते हैं।

प्र.-985 देव शास्त्र गुरु के, धर्मायतनों के निमित्त दिये गये द्रव्य को क्या कहते हैं?

उत्तर- उक्त धर्मकार्यों के निमित्त दिये गये द्रव्य को, दानद्रव्य को निर्माल्य द्रव्य कहते हैं।

प्र.-986 निर्माल्य द्रव्य को खाने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- निर्माल्य द्रव्य को खाने से नरकगति और नरकगति के दुःख प्राप्त होते हैं।

प्र.-987 धर्मायतन किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग को, मोक्ष को, आत्मसाधना को, आत्मकल्याणार्थ चेतनाचेतन मिश्रसामग्री को धर्मायतन कहते हैं। ये छह होते हैं। नाम-: देव, शास्त्र, गुरु, देवभक्त, शास्त्रभक्त, गुरुभक्त।

प्र.-988 निर्माल्य द्रव्य को खाने का यह फल आ. श्री कुंदकुंदजी ने क्यों बताया?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय सहित निर्माल्यद्रव्य खाने से उत्पन्न हुए बह्वारंभपरिग्रह से नरकायु का आश्रव होता है अतः जो नरक के दुःखों से बचना चाहते हैं वे निर्माल्यद्रव्य, दानद्रव्य का सेवन नहीं करें।

प्र.-989 नरकायु के आश्रवभूत बह्वारंभपरिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर- परिग्रह के साधनभूत कार्यकलापों को आरंभ और इसके फल को परिग्रह एवं इसीमें अतृप्ति, असंतोष भावों को बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह कहते हैं, इन्हीं से नरकायु का आश्रव बंध होता है।

प्र.-990 बहुआरंभ किस प्रकार से किया जाता हैं भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदना के द्वारा जीव विराधना तथा रक्षा के कार्यों से बह्वारंभ किया जाता हैं। दो भेद हैं। नाम-: 1. पापवर्धक बहुआरंभ 2. पुण्यवर्धक या कर्मक्षयकारक बहुआरंभ।

प्र.-991 इन आरंभों को कौन कैसे करते हैं और इनका क्या फल है?

उत्तर- इन आरंभों को असावधानी पूर्वक प्रमादी विषयभोगों की पुष्टि के लिए तथा आत्मसाधक सावधानी पूर्वक आत्मशुद्धि, धर्मप्रभावना के लिए करते हैं। दुःख सुख प्राप्त होना इसका फल है।

प्र.-992 नरकायु के विरुद्ध अल्पारंभपरिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर- नाना आरंभ परिग्रह के होने पर भी मन में संतोष/ तृप्ति भावों को अल्पारंभ और अल्पपरिग्रह कहते हैं। यदि ऐसा नहीं माना जाय तो सकलचक्रवर्ती राजा महाराजा एकमात्र नरकायु को ही बांधेंगे और सभी पशुपक्षियों के ऐसा आरंभ परिग्रह न होने से भोगभूमिज मनुष्य और देव बन जायेंगे।

प्र.-993 अचेतन वस्तुओं के समान क्या चेतन साधकों का भी जीर्णोद्धार होता है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही होता है। जब दुर्भाग्यवशात् या कुसंगति से मोक्षमार्गी साधकों में प्रमाद से महान दोष लगने लगें तो दोषों का छालन करने को और पुनः पूर्ववत् निर्दोषावस्था प्राप्त कराने के लिए चेतनों का जीर्णोद्धार होता है अतः साधकों को निर्दोषावस्था प्राप्त कराने एवं मोक्षमार्ग से पतित न होने देने को स्थितिकरण, वैय्यावृत्त, वात्सल्य, अभयदान देना आदि ही जीर्णोद्धार है।

प्र.-994 चेतन स्वरूप नवदेवताओं की प्रतिष्ठा कैसे और ये नवदेवता चेतन कैसे?

उत्तर- ये 5. पाँचों परमेष्ठी चेतन हैं, **असद्भूत व्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपि चेतन स्वभावः**। आ.प.

160 इनके 6. शरीर/बिंब असद्भूत व्यवहारनय से चेतन हैं। 7. आचरण रूप जिनधर्म, 8.भावज्ञान जिनागम चेतन हैं। **देहं चैत्यालयं प्राहुः॥22॥** आ. योगींद्रदेव, ज्ञानांकुश। 9. शरीर चैत्यालय है। ये 9 देवता चेतन हैं।

प्र.-995 निर्माल्य द्रव्य खाने वाले कौन कौन हैं?

उत्तर- पुजारी, प्रतिष्ठाचार्य, विधानाचार्य, प्रवचनकर्ता और शास्त्रों का संपादन, अनुवाद आदि करके धन लेने वालों ने धर्मकार्यों को मोक्षमार्ग का अंग न समझकर व्यापारीवत् आजीविका का साधन समझ लिया है इस दृष्टि से ये महापापी नहीं हैं किंतु मोक्षमार्गस्थ कार्यों को मोक्षमार्ग न समझकर अविश्वासी होकर आजीविका का साधन बना लिया है अतः मोक्षमार्गी धर्मात्मा नहीं हैं किंतु संसारमार्गी, मिथ्यादृष्टि ही हैं।

प्र.-996 इन कार्यों को अपना धर्मकर्तव्य समझकर करें तो क्या दोष है?

उत्तर- इन्होंने अपना मोक्षमार्ग स्वकर्तव्य समझकर किया है अतः कोई दोष नहीं है क्योंकि आजीविका चलाने के लिए असि, मसि आदि 6 कर्तव्य हैं तो इन कर्तव्यों के द्वारा उपार्जित पापकर्मों का प्रक्षालन करने के लिए देवपूजा आदि 6 कर्तव्य बतलाये हैं अतः यथायोग्य उपयोग करना ही बुद्धिमानी है।

प्र.-997 पंडितवर्ग ने इस पाप को किस कारण से अपना लिया है?

उत्तर- यदि ये समाज के कर्ताधर्ता, ठेकेदार, ट्रस्टीगण इन धार्मिकों की पूर्ण उचित व्यवस्था करते तो प्रतिष्ठाचार्यों को, पंडितों को, विधानाचार्यों को रुपया नहीं मांगना पड़ता, न आकांक्षा होती क्योंकि इनको भी परिवार का पालनपोषण करना है, बच्चों को पढ़ाना लिखाना है, लोकव्यवहार, बेटीव्यवहार भी करना है तब धनाभाव के कारण ये सारी अव्यवस्थायें हो रही हैं अतः इन सज्जनों ने आजीविका के लिए इन कार्यों को चुना है। इसलिए जब समाज ने, ट्रस्टियों ने पंडितों का शोषण करना प्रारंभ कर दिया तो इन बुद्धिमानों को धन मांगने के लिए विवश होना पड़ा अतः धनवान और धीमान दोनों ही लोभ के कारण पतितमार्गी हुए, अविश्वासी हुए, धर्म एवं समाज को कलंकित करने वाले हो रहे हैं।

प्र.-998 यदि धर्मकार्यों को आजीविका का साधन बना लिया जाये तो क्या दोष है?

उत्तर- आत्मसुख एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्मकार्य किये जाते हैं, कामभोग के लिए नहीं किंतु इन भोगियों ने कहीं के विषय को कहीं लगाकर आत्मसाधना से स्वपतन किया। इसी निदान या दुर्बुद्धि के कारण सुख के बदले दुःखी हो रहे हैं कदाचित् धनी होने पर भी अनेक कष्टों से दुःखी है यही महान दोष है।

प्र.-999 आ. श्री ने जिनेंद्र के नाम पर निर्माल्य खाना पाप है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सत्य महाव्रती महापुरुष न झूंठ बोलते हैं और न लिखते हैं। गुणदोषों का कथन जिनेंद्र ने ही किया है और गणधरों ने, आरातीय आचार्यों ने श्रोताओं की अवस्थानुसार विस्तार किया है कि ये भव्य जीव दोषों को छोड़कर, गुणों को ग्रहण कर आत्मकल्याण करें इसलिए निर्माल्य द्रव्य खाना पाप कहा है।

प्र.-1000 तीर्थंकर प्रभु कम और गणधर आदि ज्यादा विस्तार क्यों करते हैं?

उत्तर- जैसे यहाँ पर लौकिक बड़े बड़े पदाधिकारी कम से कम बोलते हैं और कुछ छोटे पदाधिकारी ज्यादा बोलते हैं इसमें ज्ञान की हीनाधिकता कारण नहीं है ऐसे ही तीर्थंकर सर्वज्ञ प्रभु सूत्र रूप में कम से कम उपदेश देते हैं और गणधरादि आचार्यगण पुनः सूत्र रूप में ही कुछ विस्तार करते हैं। जबकि तीर्थंकर प्रभु सर्वज्ञ हैं, पूर्ण ज्ञानी हैं तो गणधरादि अल्पज्ञ हैं और अपूर्ण ज्ञानी हैं अतः श्रोताओं के क्षायोपशमिकज्ञान तथा धारणा शक्ति के अनुसार वक्तागण अपना वक्तव्य देते हैं सो

कुछ ज्यादा विस्तार करते हैं।

प्र.-1001 निर्माल्य द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- देव शास्त्र गुरु के, धर्मस्थानों के, चतुर्विध मुनिसंघ के, बहुबेटियों के, सगेसंबंधियों के उपकारार्थ अर्पण की हुई, त्याग की हुई सामग्री को निर्माल्य द्रव्य कहते हैं।

प्र.-1002 निर्माल्य द्रव्य किसके समान है?

उत्तर- परम विशुद्ध निर्दोष द्रव्य देव शास्त्र गुरु के लिए अर्पण किये जाते हैं सो ये निर्माल्यद्रव्य पुत्रीवत् होने से अग्राह्य हैं। जो पिता अपनी पुत्री को स्वयं भोगता है उसे लोक में क्या कहते हैं? किस दृष्टि से देखते हैं? वैसे ही निर्माल्य खाने वाले को क्या और कैसा कहेंगे? आप स्वयं समझें अधिक कहने से क्या?

प्र.-1003 व्यापार में लेनदेन में दी हुई सामग्री को निर्माल्य कह सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, यह व्यापार है, आजीविका है, न इसमें त्याग की भावना होती है और न त्याग किया जाता है अतः यह निर्माल्य नहीं। त्यागी हुई वस्तु निर्माल्य कहलाती है, व्यापारार्थ लेनदेन आदि नहीं।

प्र.-1004 दान कहाँ से दिया जाता हैं?

उत्तर- घर से, निज की संपत्ति का उपकारार्थ दान दिया जाता है।

प्र.-1005 दान किसका दिया जाता है?

उत्तर- मूलधन का नहीं किंतु व्यापारादि से मूलधन में जो वृद्धि हुई है उसका दान दिया जाता है।

नोटः- यहाँ तक 1005 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 31वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 32 वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

धर्मादाद्रव्य की चोरी का फल

पुत्त कलत्तविदूरो दालिद्दो पंगु मूक बहिरंधो।
चांडालाइकुजाई पूयादाणाइ दव्वहरो।।32।।

पुत्रकलत्रविदूरो दारिद्रः पंगु मूकः बधिरोऽन्धः।
चांडालादिकुजातिः पूजादानादिद्रव्यहरः।।

पूयादाणाइ पूजा दानादि के **दव्वहरो** द्रव्य का हर्ता **पुत्तकलत्तविदूरो** पुत्र स्त्री रहित **दालिद्दो** दारिद्री **पंगु** लंगडा **मूक** गूंगा **बहिरंधो** बहरा अंधा और **चांडालाइ** चांडालादि **कुजाई** कुजातियों में उत्पन्न होता है।

प्र.-1006 पूजादान के द्रव्य में और निर्माल्य द्रव्य में क्या अंतर है?

उत्तर- ये दोनों ही द्रव्य पुत्री के समान हैं केवल अंतर इतना ही है कि निर्माल्य द्रव्य विवाहित पुत्री के समान है तो पूजा, दान का द्रव्य कुंवारी कन्या के समान है क्योंकि अर्पण किया गया द्रव्य निर्माल्य कहलाता है तो अर्पण के योग्य, चढ़ाने के योग्य द्रव्य पूजादान का द्रव्य कहलाता है।

प्र.-1007 पूजादान का द्रव्य कौन सा है और इसका उपयोग कहाँ करना चाहिये?

उत्तर- जो व्यापार, खेती, नौकरी में कमाई होती है उसका चौथा, छठवाँ और दसवाँ हिस्सा दानपूजा और धर्म का होता है इस धर्मादाद्रव्य को बिना ब्याज के अपने गृहकार्यों में लगाना, कामभोगों में खर्च करना, अपहरण करना चोरीपाप है अतः धर्मादाद्रव्य को धर्मकार्यों में ही उपयोग करना चाहिये, अन्यत्र नहीं।

प्र.-1008 धार्मिक बोलियों से प्राप्त धन का उपयोग क्या खानेपीने में कर सकते हैं?

उत्तर- नहीं कर सकते हैं। धर्मकार्य संबंधी बोलियों से प्राप्त धन का उपयोग अपने खानेपीने में, भ्रमण एवं स्वयं के गृहकार्यों में नहीं करना चाहिये क्योंकि बोलियों का रुपया भी मंदिर का होने से निर्माल्य ही है। यदि अपन ही मंदिर के रक्षक बनकर, कमेटीवाले होकर स्वयं के कार्यों में खर्च करने लगें तो निज संपत्ति का उपयोग कहाँ करेंगे? तभी तो कहा है- **''लोभी का धन लावर खाये शेष बचे सरकारे जाय।''**।

प्र.-1009 पूजादान के द्रव्य को चुरानेवाला किस फल को प्राप्त होता है?

उत्तर- धर्मादाद्रव्य को चुराने वाला सदाचारी, सद्विचारी, सुसंस्कारी परिवार को प्राप्त नहीं करता किंतु रात्रिदिन कलही, वैरविरोधी, अनेक संकट लाने वाले परिवार और दुःख रूपी फल को प्राप्त होता है।

प्र.-1010 पूजा, दान के द्रव्य को चुराने से ऐसा फल क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- पूजा, दान के द्रव्य का अपहरण करने से धर्मरूपी पूजा, दान में बाधायें आयेंगी और इसीसे मोक्षमार्ग, सुख का मार्ग रुक जायेगा जब आत्म सुखशांति में बाधा उत्पन्न हुई तो सांसारिकसुख, शारीरिकसुख भी बाधित हो जायेगा सो इंद्रियसुख में साधनभूत सामग्री, स्त्री, पुत्र, पति, पिता, भाईबहनें आदि प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि विषयकषायाधीन हो दूसरों के कार्यों में बाधा डालने से स्वयं ही बाधा को प्राप्त होते हैं।

प्र.-1011 दूसरों के कार्यों में बाधा डालने से अपने किन² कार्यों में बाधायें आतीं हैं?

उत्तर- दूसरों के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में बाधा डालने से स्वयं के दानादि में बाधा आती है। कहा भी है- **विघ्नकरण- मंतरायस्य 6/27, दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् 8/13 जैसी करनी वैसी भरनी।**

प्र.-1012 पूजा, दान के द्रव्य को चुराने से दारिद्रपना क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- जैसे बीज बोये बिना फल नहीं मिलता ऐसे ही धर्मकार्यों में चेतनाचेतन और मिश्र सामग्री का दान दिये बिना ये कैसे प्राप्त होंगे? तभी तो सूत्रकार ने दानातंरायकर्म के बाद ही लाभातंरायकर्म का नाम लिया है। दानातंरायकर्म के क्षयोपशम होने पर दान दिया जाता है तो लाभातंराय के क्षयोपशम होने पर फल प्राप्त होता है अतः धनाभाव और धनाकांक्षा का नाम ही दारिद्रपना है।

प्र.-1013 धर्मादाद्रव्य के अपहरण करने में कितने दोष हैं और फल क्या है?

उत्तर- 1. चोर ने अपनी संपत्ति का दान नहीं दिया 2. दूसरों के धर्मकार्यों में बाधा डाली अतः हीन परिणाम और हीन चर्या होने से दरिद्रपना प्राप्त होता है क्योंकि कर्मबंधानुसार ही उदय पूर्वक फल प्राप्त होता है।

प्र.-1014 इस विषय को पुनः और भी स्पष्ट कीजिये?

उत्तर- जैसे अंधेरे में समिति का पालन न होने से मंगलकार्य नहीं हो सकते हैं जिससे पुण्य की प्राप्ति नहीं होती ऐसे ही पूजा, दान न कर इनके द्रव्य का अपहरण करने से भक्तों के पुण्य को तथा दान के अभाव में पात्र के सद्भाव को छीनने वाला होने से स्वयं का पुण्य नष्ट करता है ऐसा समझना चाहिये कारण दान के बिना पात्र की धर्मचर्या का पालन न होने से पात्रपना ही नहीं रहेगा अतः कष्ट से, दुर्गतियों से बचने के लिए धर्मकार्यों में बाधा नहीं डालना व धर्मादाद्रव्य का अपहरण नहीं करना चाहिये।

प्र.-1015 पूजा, दान के द्रव्य को अपहरण करने वाला लंगड़ा क्यों होता है?

उत्तर- घर से मंदिर में, क्षेत्रों में नंगे पैर पैदल चलकर यात्रा, दर्शन, पूजन, वंदन नहीं किया और सुपात्रों को पास में जाकर दान नहीं दिया, वैय्यावृत्ति नहीं की, धर्मकार्य नहीं किया जिससे यहीं पर पैर बंध जाते हैं, चलने, फिरने की ताकत नहीं रहती है तभी तो आजकल अनेक व्यक्ति पैरों

की बीमारी से इसी भव में गमनागमन नहीं कर पाते, यहीं लूले, लंगड़े हो गये तो भविष्य में क्यों नहीं होंगे? अतः दानपूजा के द्रव्य को अपहरण करने वाला व्यक्ति पैर विहीन एकेंद्रिय पर्याय में जन्म धारण करता है।

प्र.-1016 ''दव्वहरो'' का क्या अर्थ है?

उत्तर- द्रव्यहरण/ अपहरण/ चोरी, परद्रव्य को बलपूर्वक छीनना आदि ये **दव्वहरो** के वाचक हैं।

प्र.-1017 पूजादान के द्रव्य को चुराने वाला जल अग्नि वायु में पैदा हो सकता है क्या?

उत्तर- यद्यपि जल, अग्नि, वायु बाह्य कारणों से गमनागमन और स्थिर होते हैं फिर भी इनके स्थावरनामकर्म, एकेंद्रियजाति नामकर्मोदय होने से स्थावर एकेंद्रिय जीव कहलाते हैं अतः धर्मादा द्रव्य की चोरी करने वाला जीव इन पृथ्वि, जल, अग्नि, वायु में पैदा होता है।

प्र.-1018 पूजादान के द्रव्य को हरने वाला व्यक्ति गूंगा क्यों होता है?

उत्तर- जिनेंद्र पूजा में, जिनेंद्र का, पंचपरमेष्ठियों का, नवदेवताओं का, द्रव्य गुण पर्यायों का, शुभकार्यों का वर्णन करना था सो इसके लिए मुँह बंद रखा, गूंगा जैसा बना रहा और धर्मात्माओं को धर्मवचन बोलने नहीं दिये तथा लोकव्यवहार में, वार्तालाप में, दूसरों की निंदा बदनामी करने में चतुर बना रहा, असमय में अप्रसंग के वाचाल बन वचनशक्ति को नष्ट किया तभी तो वृद्धापन या जवानी में ही गले में रोग के कारण बोला नहीं जाता, बोलना बंद हो जाता है, कोमा में चला जाता है अर्थात् यहीं पर गूंगापन आ गया।

प्र.-1019 पूजा दान के द्रव्य का हर्ता बहरा क्यों हो जाता है?

उत्तर- पूजादान के द्रव्य का हर्ता पूजादान में न सहायक होगा, न जायेगा, धर्म वचनों को, नवधाभक्ति के, शास्त्र के तथा धर्म के वचनों को सुनने में बहरा जैसा बना रहा तभी तो यहीं पर ही बहरापन आ जाता है जिससे मशीन लगाने पर भी वचन सुनाई नहीं देते तथा कोमा में आने पर धर्म के वचन, संबोधन के वचन सुनाई न देने से दुर्मरण कर चौइंद्रिय जीव तक की पर्यायों में जन्म लेकर आयु पर्यंत बहरा बना रहा।

प्र.-1020 पूजादान के द्रव्य को हरने वाला व्यक्ति अंधा क्यों हो जाता है?

उत्तर- निर्माल्य द्रव्यहर्ता धर्मसाधनों को धर्मभाव से न देखकर केवल पापसाधनों को देखता है। धर्मायतनों को न देखने से चक्षुदर्शनावरणीय कर्म को बांधकर तीन इंद्रिय जीवों तक या मनुष्य तिर्यंचों में पैदा होकर अंधा हो जाता है। आज कितने मानव जन्म से, बाल्यकाल में, यौवनावस्था में या वृद्धापन में अंधे हो जाते हैं या मोतियाबिंद और कालेपानी के कारण देख नहीं सकते हैं, अंदर से ही रोशनी चली जाती है अतः भविष्य में भी इससे ज्यादा दुःखद अवस्था प्राप्त होगी तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

प्र.-1021 पूजादान के द्रव्य को हरने वाला इन अवस्थाओं को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- कर्म सिद्धांत में कर्मों के बंध समय में ही आबाधा पड़ती है। आबाधा काल पर्यंत कर्म अपना फल नहीं देता है किंतु आबाधा समाप्त होने पर ही कर्म अपना फल देना प्रारंभ करता है अतः व्यक्ति अविवेकता से, बिना सोचे समझे मनमाना कर्म बांधकर कर्मोदयानुसार ऐसी अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

प्र.-1022 यह कर्म इस प्रकार फल क्यों देता है?

उत्तर- आलोचना पाठ में- **''बहु कर्म किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने।''** तो देवस्तुति में- **कर्म महा रिपु जोर एक न कान करे जी। मन मान्या दुःख देहि काहू सो नाहिं डरें जी।।**
अर्थ-: यह प्राणी कषायवश न्याय अन्याय आदि को न समझकर कर्मों को बांधकर जिनेंद्र के

सामने अपनी करुण पुकार करता है कि हे भगवन् ये आतंकवादीवत् बलवान कर्मरूपी शत्रु अपना फल देने में क्षणमात्र भी देर नहीं करते और कहते हैं कि जब तुमने मनमानी की थी तो मैं भी बिना किसी विलंब के मनमाना दुःख दूँगा, तीर्थंकर जैसे महापुरुषों से मैं नहीं डरा तो तुम जैसों से कैसे डरुंगा? अतः कर्म बंधन से डरो।

प्र.-1023 आबाधा किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- कर्मबंध होने के बाद में जबतक निषेक रचना नहीं होती और कर्म अपना फल देने के सम्मुख नहीं होता तबतक उसे आबाधा कहते हैं। 2 भेद हैं। **नाम-** उदयआबाधा व उदीरणा आबाधा।

प्र.-1024 उदय, उदयआबाधा, आवलि, उच्छ्वास तथा स्तोक किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावानुसार समय पर फल देने के सम्मुख होने को **उदय** और जब तक कर्म फल देने के सम्मुख नहीं होता है तो उतने काल को **उदय आबाधा** कहते हैं । असंख्यात समयों की एक **आवलि** तथा संख्यात आवलियों का एक **उच्छ्वास** व सात उच्छ्वास का एक **स्तोक** होता है।

प्र.-1025 उदीरणा आबाधा किसे कहते हैं?

उत्तर- पुण्य या पापकर्मों का जिस किसी भी प्रकार से स्थितिबंध हुआ हो फिर भी उसकी उदीरणा आबाधा एक आवलिकाल की होती है। ऐसा कर्म एक आवलि काल के बाद में अपना फल देने लग जाता है जो आजकल दोनों प्रकार की अवस्थायें देखी जा रही हैं इनको सम्यक्अनुमान ज्ञान से समझ सकते हैं।

प्र.-1026 आज वर्तमान में ये दोनों आबाधायें कैसे अनुमानगम्य हो रहीं हैं?

उत्तर- आज कोई व्यक्ति तीव्र पुण्य या पाप चाहे छिपके करे या खुलेआम करे तो वह कुछ ही सेकेंडों में, मिनटों में फल देने लग जाता है और कदाचित् ऐसा व्यक्ति बोल भी देता है कि हमने उसके साथ ऐसा किया था सो उसका यह फल हमें प्राप्त हो रहा है।

प्र.-1027 आप इस विषय को स्पष्टतः समझायें?

उत्तर- किसी व्यक्ति ने असत्य वचन या अपशब्द बोला या अपहरण किया तो शीघ्र ही सामने वाले व्यक्ति ने तत्क्षण अपशब्द, गालियाँ, मारपीट कर दी, पकड़े जाने पर शीघ्र ही मारपीट, अपमान, निंदा, बदनामी प्राप्त हो जाती है, विश्वास नष्ट हो जाता है, इज्जत बिगड़ जाती है, कोई सज्जन साथ नहीं देता, धनहरण, देशनिकाला और जानमारी भी हो जाती है तथा कहीं भी कोई घटना घटती है तो पुलिस को, जानने वालों को शीघ्र ही उसी के ऊपर संदेह हो जाता है कि उसने ही यह कार्य किया या कराया है या उसको मालुम होगा यह पापकर्म की उदीरणा का उदाहरण है। किसी ने परोपकार किया तो तत्क्षण ही नाम, परिवार का नाम माईक पर बोल दिया जाता है, पत्रिकाओं में नाम निकाल दिया जाता है कि इन्होंने ऐसा काम किया है। प्रसंग आने पर नाम स्मरण किया जाता है, प्रशंसा की जाती है यह पुण्य का उदाहरण है।

प्र.-1028 यह उदाहरण उदीरणा आबाधा का है, उदय का नहीं यह कैसे जाना जाये?

उत्तर- पुण्यपाप का फल इतना शीघ्र प्राप्त होना बिना उदीरणा आबाधा के हो नहीं सकता और उदय आबाधा के लिये समय चाहिये। जिसका प्रकरण चल रहा है उसीकी चर्चा करना चाहिये। हाँ इतना अवश्य है कि पुण्य, पाप करने के बाद में यदि स्वपर को एक मुहूर्त में या इसके बाद में जो शुभाशुभ फल प्राप्त होता है तो समझना चाहिये कि इसको यह फल उदय आबाधा के अनुसार प्राप्त हुआ है ऐसा आगम से जाना जाता है यथार्थ में तो प्रत्यक्ष केवलज्ञानी ही जानते हैं कि यह कार्य उदय से हुआ है या उदीरणा से।

प्र.-1029 पूजादान के द्रव्य को हरने वाला चांडालादि में क्यों पैदा होता है?

उत्तर- इस जीव ने पूजादान के द्रव्य को चुराकर धर्म और धर्म के कार्यों को कलंकित किया है, अनेकों को धर्मसंकट में डालकर, भय उत्पन्न कराकर धर्म से वंचित किया है, अपने बलवीर्य के कारण औरों को धन का लोभ देकर अपने आधीन कर अपनी प्रशंसा करता करवाता है, प्रसंग आने पर दूसरों की निंदा करके नीचगोत्र का आश्रव बंध कर, मरण कर नीचगोत्री चांडालादि कुजातियों में, दूषित कुलों में और मलेच्छों में पैदा होकर उदरपूर्ति के लिए अत्यंत हीन कार्य कर लेता है क्योंकि इस जीव ने पूर्व भव में उच्च कार्यों में बाधा डालने के कारण उच्चता प्राप्त न कर नीचता प्राप्त कर ली। कारण जो व्यक्ति जिस व्यक्ति, वस्तु या नीतिनियम से घृणा करता है वह उसे बाद में लाख प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं होती है ऐसा न्याय है।

प्र.-1030 नीचगोत्र कर्म का आश्रवबंध कैसे होता है और इसका क्या फल है?

उत्तर- परनिंदा, आत्मप्रशंसा, दूसरों में झूंठा दोष लगाना उनके सद्गुणों का लोप करना, छिपाना और अपने में गुण नहीं होने पर भी गुणवान बताना अपने दोषों को छिपाने, अन्याय अभक्ष्य का सेवन, उच्चजाति कुल और धर्म को कलंकित करने से नीचगोत्र कर्म का आश्रव होता है। इस कर्मोदय में जीव को आचारविचार से हीन जातिकुलों में जन्म लेना ही पड़ता है यह इसका फल है।

प्र.-1031 जो भव्य प्राणी गाथोक्त फल को नहीं चाहते हैं वे क्या करें?

उत्तर- जो भव्य प्राणी गाथोक्त फल को नहीं चाहते हैं और अपने लौकिक एवं लोकोत्तर कार्यों में विघ्न बाधायें नहीं आवे ऐसा चाहते है तो वे सातिशयपुण्य वृद्धि तथा पापहानि के लिए किसी भी व्यक्ति के दानपूजादि धर्मकार्यों में किसी भी प्रकार से विघ्नबाधायें न डालकर नौकोटियों से सहायक होना चाहिये।

नोटः- यहाँ तक 1031 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 32वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 33वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

धर्मादाद्रव्य अपहरण का फल

गयहत्थपायणासिय कण्णउरंगुलविहीणदिट्ठीए।
जो तिव्वदुक्खमूलो पूयादाणाइ दव्वहरो।।33।।

गतहस्तपादनासिक कर्णोर्वंगुल विहीनो दृष्ट्या।
यस्तीव्रदुःखमूलः पूजा दानादि द्रव्यहरः।।

जो जो **पूयादाणाइ** पूजादानादि के **दव्वहरो** द्रव्यहर्ता **तिव्वदुक्खमूलो** तीव्र दुःखों के मूल **गयहत्थपायणासिय** हाथ पैर, नाक, **कण्णउरंगुल** कान, छाती और अंगुली आदि **विहीणदिट्ठीए** दृष्टिहीन अवस्थाओं को पाते हैं।

प्र.-1032 विकलांग अवस्थाओं को कौन जीव क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- पूजादान के द्रव्य को चुराने वाला व्यक्ति पाप के कारण अंगोपांग हीनावस्था को प्राप्त होता है।

प्र.-1033 अंगहीन अवस्थाओं को यह जीव किस कारण से प्राप्त होता है?

उत्तर- पूजादान के द्रव्यहर्ता दूसरों के इंद्रिय शुभविषयों में बाधा डालने से प्रमाद पूर्वक पापबंध कर पापोदय से अंगहीनावस्था को पाता है क्योंकि क्रिया प्रतिक्रियावत् बाधा से बाधा को पाता है।

प्र.-1034 यह व्यक्ति दूसरों के इंद्रिय शुभविषयों में कैसे बाधा डालता है, फल क्या है?

उत्तर- जब कोई पुजारी और दानदाता धर्म कार्य में हाथ लगाये हुए है, शरीर स्थिर है यह शुभ स्पर्श विषय है। जिह्वा के द्वारा दानपूजा के योग्य शब्दोच्चारण करना रसनेंद्रिय का शुभ विषय है।

केसर कर्पूर धूप फल आदि का नासिका से निर्दोष गंध जानकर अर्पण करना घ्राणेंद्रिय का शुभ विषय है। धर्मायतनों को देखना चक्षुइंद्रिय का शुभ विषय है। धर्म और धर्मायतनों के नामों को सुनना कर्णेंद्रिय का शुभ विषय है। धर्मात्मा पुजारी और दाता इन मंगल कार्यों में प्रेम वार्तालाप से, वैरविरोध से या अन्य कारणों से बाधा डालता है। धर्मकार्य के बाहर उपयोग लगवा देने से तथा उनके इन धर्मकार्यों में बाधा डालने से स्वयं में अंतराय कर्मबंध के कारण जब वह पूर्वबद्ध कर्म उदय में आया तब अपने को उन अवस्थाओं की प्राप्ति नहीं होती है जैसे दर्पण के सामने जैसा चेहरा करेंगे वैसा ही प्रतिबिंब दिखाई देगा यही फल है ऐसा शाश्वत नियम है।

प्र.-1035 पूजादान के द्रव्य को हरने वाला हाथ रहितावस्था को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- इसने स्वयं दानपूजा की नहीं और तत्संबंधी सामग्री की चोरी करने से दूसरे व्यक्ति भी नहीं कर पाये। हाथों से पापकर्म करता रहा तब पापोदय के कारण हाथ प्राप्त नहीं हुए। कदाचित् हाथ प्राप्त हुए भी तो भयंकर बीमारी आने से हाथ ही काम नहीं करते या लकवा लग गया। हाथ होने पर भी हाथ का काम न करने से हाथहीन कहा है। बड़े बड़े धनवान बीमारियों को दूर करने के लिए देशविदेशों में जाकर खूब इलाज कराते हैं, लाखों रुपये खर्च करते हैं पर हाथ की बीमारी न पकड़ में आती है, न फायदा होता है किंतु बीमारी अधिक बढ़ती जाती है अतः दान पूजा के द्रव्य हरण का और स्वयं न करने का यह फल है।

प्र.-1036 पूजादान के द्रव्य को हरने वाला पैर रहित अवस्था को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- इसने स्वयं के बल पर नंगे पैर क्षेत्रों में, मंदिरों में जाकर न पूजा की, न दान दिया, न यात्रा की किंतु गमनागमन कर खूब पाप करता रहा। पैरों का दुरुपयोग करने से पैर रहित एकेंद्रिय अवस्था को प्राप्त हुआ। आजकल व्यक्ति धनांध, मदांध बगल में धर्मस्थान होने पर भी न पैदल जाता है, नगर में गुरुजन आये हैं उनके दर्शन और दान देने नहीं जाता है कदाचित् जाना ही पड़ा तो गाड़ियों से जाता है, पैदल जाने में कष्ट का अनुभव करता है सो ऐसी दिनचर्या से ही पैर रहित अवस्था को प्राप्त होता है या पैर होने पर भी पैर अपना काम नहीं करते, नाना प्रकार की बीमारियां आ जातीं हैं या लकवा लग जाता है ऐसे व्यक्तियों को समझाने पर भी नाना बहाने बनाकर बच निकलते हैं पर कर्मों से बहाना बनाकर कैसे बच सकते हैं?

प्र.-1037 ऐसा व्यक्ति नासिका रहित अवस्था को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- यह व्यक्ति मंदिर में जाकर पूजन करता तो पूजन सामग्री सुगंधित है या दुर्गंधित इसकी जानकारी होती पर लोभवशात् सड़ेगले फल, पुष्प, धूप आदि चढ़ा दी जो अनेक जीवों से सहित थी ऐसे ही सुपात्रों को दान देते समय आहार सामग्री सुगंधित है या दुर्गंधित, अनिष्ट सामग्री के अर्पण से पुजारियों के दानियों के मन में खेद उत्पन्न हुआ जिससे यह दाता नासिका रहित अवस्था को प्राप्त हुआ क्योंकि इस व्यक्ति ने धर्मकार्य में नासिका प्राण की विराधना की, हिंसा की, नासिका का दुरुपयोग करने से नासिका प्राप्त नहीं हुई। एकेंद्रिय, द्वींद्रिय पर्याय में पैदा होता है या नासिका होने पर भी नासिका में अनेक रोग हो जाते हैं जिससे नासिका अपना काम ही नहीं कर पाती, हमेशा नजला आदि बना रहता है।

प्र.-1038 यह व्यक्ति कर्ण रहित अवस्था को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- यह मोही मदांध प्राणी कामभोग संबंधी वचनों में आसक्त होकर पूजादान और धर्म के वचनों को न सुनने से जीव चौइंद्रिय पर्यंत अवस्थाओं को प्राप्त हुआ अथवा कान होते हुए भी बहरा हो गया या बहरा जैसा बन गया, सुनी अनसुनी कर देता है आदि कारणों से कर्ण रोगों से पीड़ित होकर कष्ट भोगता है। इसके पास धर्मोपदेश सुनने के लिए समय नहीं है, समझ में नहीं आता है किंतु पापवर्धक वचनों को सुनने के लिए समय है, कर्णमशीन का प्रयोग करता है,

कामभोग संबंधी वचनों को, वाद्य की ध्वनि, संगीत आदि सुनने के लिए सब कुछ अर्पित समर्पित है। जिससे अपने परिवार के, सगेसंबंधियों के लौकिक प्रयोजन के वचनों को सुनने से भी वंचित हो जाता है, नहीं सुन पाता किंतु सुनने के लिए सतत तड़पता ही रहता है।

प्र.-1039 यह व्यक्ति हृदयहीन क्यों हो जाता है?

उत्तर- पूजादान के द्रव्य को चुराकर भक्तों, दानदाताओं को सद्विचार शून्य बना देने से विचारशून्य अवस्था को प्राप्त हाता है, गर्भ से ही हृदय में छेद तथा हृदय संबंधी बीमारी युक्त आता है क्योंकि दानदाताओं का मन दुःखाने, बाधा डालने से स्वयं हृदय बिना सद्विचारशून्यता को प्राप्त होता है।

प्र.-1040 यह व्यक्ति अंगुलि विहीन अवस्था को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- दान पूजन में, हवन में, सामग्री अर्पण करने में उंगलियों का प्रयोग न कर केवल दूसरों के दोषों को बतलाने के लिए उंगलियों का दुरुपयोग रूप अपराध के कारण ही अंगुलिविहीन अवस्था को प्राप्त होता है, अंगुली संबंधी रोग के कारण न खा पाता है, न खिला पाता है, न अंगुलियों से प्यार दे पाता है क्योंकि अंगुलियां मुलायम न होने से मुड़ती नहीं हैं, कार्यशून्य हो गई है, कुष्ट रोग, वायुरोग से पीड़ित हो जातीं हैं।

प्र.-1041 यह जीव दृष्टिविहीन अवस्था को क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- दुर्भावना और दुष्क्रियाओं के द्वारा पुजारियों को, सुपात्रों को, गुणवानों को देखने योग्य न मानकर घृणा करता है या धर्मायतनों का अपनी वाक्चातुर्य कला से अभाव बतला कर और अनेकों को देखने में रोक लगा दी कि वहाँ जाओ मत, जिससे स्वयं में चक्षुदर्शनावरणीय कर्म को बांधकर पूर्वबद्ध कर्मोदय से अंधा हो जाता है या मोतियाबिंदु आदि रोगों को प्राप्त हो जाता है जिससे किसी भी इष्ट वस्तु को न देखने के कारण दुःखी होता है या **'विहीण दिट्ठीए'** सम्यग्दर्शन विहीन मिथ्यादृष्टिपने को प्राप्त होता है।

प्र.-1042 मनुष्यों में इंद्रिय विकलता किस प्रकार की है या किस फल को देती है?

उत्तर- मनुष्यों के लिए इंद्रिय विकलता तीव्र दुःख की मूल है जिससे कोई भी धर्मकार्य नहीं कर सकता है। वर्तमान में जो मनुष्य ऐसे हैं तो वे ही जानते हैं कि इंद्रिय विकलता के कारण पारिवारिक सहायता कितनी मिलती है और नित्यप्रति दिनचर्याओं में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और मोक्षमार्ग तथा लोकव्यवहार संबंधी मंगलकार्यों में कायकृत से भाग नहीं ले सकता है ऐसे फल को देतीं हैं।

प्र.-1043 इन अवस्थाओं को कौन सा जीव प्राप्त करता है?

उत्तर- मोक्षमार्गस्थ धर्मकार्यों में बाधक होकर मन वचनादि 108 भंगों से आश्रवबंध के बाद कर्मोदय से व्यक्ति इन अवस्थाओं को प्राप्त होता है। अधिकतर मनुष्य हीनदिनचर्या के कारण पापबुद्धि से दुष्कर्मों को बांध रहे हैं जिससे यहाँ और परभव में भी दुःखी होंगे। आज मानव दुःख से बचना चाहता है पर न पाप छोडता है, न धर्माचरण का पालन कर रहा है और नित्य प्रति बड़े अच्छे ढंग से नई नई योजनाओं के द्वारा नवीन नवीन पापकार्यों को, विषयकषायों को स्वच्छंद हो सेवन कर ऐसी अवस्थाओं को प्राप्त होता है।

नोटः- यहाँ तक 1043 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 33वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 34वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अनेक रोग कैसे?

खयकुट्ठ मूलसूलो लूय भयंदरजलोयरक्खि सिरो।
सीदुण्हवाहिराई पूयादाणंतराय कम्मफलं।।34।।

क्षयकुष्ठमूलशूललूता भगंदरजलोदराक्षिशिरः।
शीतोष्णव्याधिराजिः पूजादानांतरायकर्मफलम्।।

खयकुट्ठमूलसूलो क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल, **लूयभयंदर** लूता रोग, भगंदर, **जलोयरक्खिसिरो** जलोदर, नेत्र, शिर, **सीदुण्ह** शीतोष्ण, **वाहिराई** व्याधिराजादि **पूयादाणंतराय** पूजादान में अंतराय **कम्मफलं** करने के फल हैं।

प्र.-1044 क्षयरोग किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- शरीर में रहने वालीं धातु उपधातुयें सूखकर या शरीर से बाहर निकल जाने पर उत्पन्न हुई कमजोरी, दुबलेपन, रूखेपन को क्षयरोग कहते हैं। भेद 7 हैं। **नामः-** 1. रसक्षय 2. रक्तक्षय 3. मांसक्षय 4. मेदक्षय 5. अस्थिक्षय 6. मज्जाक्षय 7. शुक्रक्षय। यह क्षयरोग अनुलोम और विलोमक्रम से उत्पन्न होता है।

प्र.-1045 कुष्ठ रोग के लक्षण, कैसे होता है, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- शरीर में उत्पन्न हुई तीव्र खुजली, जलन, सफेददाग या शरीर से गलकर पानी आदि बहने को कुष्ठरोग कहते हैं। वात, पित्त, कफ, रस, रक्त, मांस, लसीका इन सातों के दूषित होने से कुष्ठ रोग होता है। **महाकुष्ठ के 7 नामः-** 1. कपाल 2. औदुम्बर 3. चर्मदल 4. सिध्म 5. काकणक 6. पुण्डरीक 7. ऋक्षजिह्वक। **क्षुद्र कुष्ठरोग के 11 नामः-** 1. एककुष्ट 2. गजचर्म 3. चर्मदल 4. विचर्चिका 5. विपादिका 6. पामा 7. कच्छू 8. दाद 9. विस्फोटक 10. किटिभ 11. अलसक। इस प्रकार कुष्ठरोग के 18 भेद होते हैं।

प्र.-1046 मूल रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- रीढ की हड्डी से संबंधित रोगों को मूलरोग कहते हैं क्योंकि शरीर का मूलाधार रीढ की हड्डी ही है।

प्र.-1047 शूलरोग किसे कहते हैं, यह शूल रोग साध्य है या असाध्य?

उत्तर- दोनों पसलियों, हृदय, नाभि, और पेट इन पाँचों स्थानों में या किसी भी स्थान में कांटा चुभने जैसा दर्द होने को शूलरोग कहते हैं। शूलरोग दोनों प्रकार का है। जीवन के रहते हुए औषधि आदि के प्रयोग से शमन होने वाले रोग को साध्य रोग और जो जीवन को समाप्त कर दे उसे असाध्य कहते हैं।

प्र.-1048 पांडुरोग किसे कहते हैं और कैसे होता है?

उत्तर- दांत, नाखून और नेत्र पीले पड़ जाने को पांडु रोग कहते हैं। इसे सब पीला दिखाई देता है। पांडुरोग पाँच प्रकार का होता है। अतिमैथुन, खट्टा, नमकीन, चरपरे पदार्थ, मिट्टी खाने से, बहुत शराब पीने से, दिन में सोने से पीलिया रोग हो जाता है। वातादि दोष त्वचा और मांस दूषित होने से यह रोग होता है।

प्र.-1049 राजरोग या राजयक्ष्मा रोग किसे कहते हैं तथा कैसे होता है?

उत्तर- जिस रोगी के नेत्र सफेद हों, अन्न से वैर हो, ऊंचे श्वास से हर समय कष्ट हो एवं कष्ट से बारंबार पेशाब होता हो उसे राजयक्ष्मा/राजरोग कहते हैं। अपानवायु, मलमूत्रादि वेगों को रोकने

से, अतिमैथुन से, अति उपवास से, ईर्ष्या, अशिष्ट चिंता से, वैर से, असमय में भोजन करने से वातादि के कुपित होने से ये दोष उत्पन्न होते हैं। इसमें कंधा और पसलियों में दर्द, पैरों में जलन और ज्वर रहता है। इसे टी.बी. भी कहते हैं।

प्र.-1050 आम्लपित्त रोग किसे कहते हैं और यह कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- कुपित हुए खट्टे पित्त को आम्लपित्त कहते हैं। पित्त सामान्य होने से तीक्ष्ण द्रव, दुर्गंधित, नीलवर्ण, पीतवर्ण, गरम तथा कटु रस वाला शुद्ध कहलाता है। चिंता, शोक, भय, तनाव, मानसिक श्रम, गरिष्ठ तथा अधिक मात्रा में खट्टे भोजन से आमाशय में हाईड्रोक्लोरिक आम्ल का श्राव होने से रोग उत्पन्न हो जाता है।

प्र.-1051 भगंदर रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- यह रोग योनि, गुदा तथा मूत्राशय के चारों ओर दारुण छिद्र करके योनि आकार वाले व्रणों को या किसी आशय से संबंध रखने वाले या दो आशयों को मिलाने वाले नाड़ी व्रण को भगंदर रोग कहते हैं। गुदा के चारों ओर दो अंगुल प्रदेश में होने वाली पीड़ा युक्त गांठ होती है, इस गांठ के न फूटने से तीव्र पीड़ा होती है, फूटने पर कम हो जाती है। इसे ही फिस्चुला-इन-एनो कहते हैं।

प्र.-1052 जलोदर रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- पेट में अधिकाधिक मात्रा में जलसंचय को और रक्त का पानी बन जाने को जलोदर कहते हैं।

प्र.-1053 भस्मक रोग किसे कहते हैं तथा यह रोग कैसे पैदा होता है?

उत्तर- खायापिया भोजन अति शीघ्र पच जाये, भूंख पर भूंख लगी रहे उसे भस्मक रोग कहते हैं। भूंख के समय भोजन न मिलने से उदराग्नि शारीरिक रस आदि धातुओं को जलाती है। अत्यंत तीक्ष्ण और रूखा भोजन करने से भस्मक हो जाता है। जठराग्नि के अत्यंत बढ़ने पर भोजन क्षणभर में भस्म हो जाता है।

प्र.-1054 केंसर रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- आमाशय में एक घातक अर्बुद / फोड़े से यहाँ की रक्तनली के फूलने को केंसर कहते हैं। त्रिदोषगुल्म के नाम से केंसर का वर्णन चरकसंहिता में किया है। कोष्ठ में पत्थर की भांति अत्यधिक दर्द करने वाली, शीघ्र पकने वाली, शारीरिकबल, अग्निबल एवं मनोबल को हरने वाली ग्रंथि को त्रिदोष गुल्म कहते हैं। केकड़े के पंजे के समान प्रतीत होने से आयुर्वेद में इसे कर्कस्फोट कहा है।

प्र.-1055 उच्च रक्तचाप/हाई ब्लडप्रेशर किसे कहते हैं और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- किसी व्यक्ति का रक्तचाप सामान्य से अधिक हो जाने को उच्च रक्तचाप कहते हैं। धूम्रपान आदि मादक पदार्थों का सेवन करने से तथा अधिक चिंता, नींद पूरी न होने से, पचनक्रिया बराबर न होने से भी हाई ब्लडप्रेशर हो जाता है।

प्र.-1056 अल्प रक्तचाप/ लो बी.पी. किसे कहते हैं क्या लक्षण है?

उत्तर- रक्तचाप सामान्य से नीचे गिर जाने को अल्प रक्तचाप या लो बी.पी. कहते हैं। इसका अर्थ जीवनी शक्ति घट जाने से मनुष्य अनुत्साही हो जाता है, काम करने को जी नहीं चाहता, थोड़ा काम करने पर थक जाता है, आँखों में अंधेरा, बेहोशी आने लगती है जिससे रोगी गिरने से बचने के लिए बैठ या लेट जाता है।

प्र.-1057 प्लीहा रोग और यकृत/लीवररोग किसे कहते हैं?

उत्तर- प्लीहारोग के समान निदान और लक्षण लीवररोग के हैं अंतर सिर्फ इतना ही है कि प्लीहा की स्थिति बाई पसली में है तो लीवर की स्थिति दाई पसली में, दोनों की चिकित्सा एक सी ही है।

प्र.-1058 हृदय रोग किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अत्यंत गरम, भारी, खट्टे, कड़वे और कषायले पदार्थ लगातार सेवन करने से, बहुत मेहनत करने से, चोट लगने से, भोजन पर भोजन करने से, सदा भयभीत होने से, मलमूत्रादि वेगों को रोकने से हृदय में उत्पन्न विकार को हृदय रोग कहते हैं। पाँच भेद हैं। **नामः-** वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और कृमिज।

प्र.-1059 श्वास रोग और हिचकी रोग किसे कहते हैं एवं ये कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- जैसे तेज दौड़ने से जल्दी[2] श्वास आती है वैसे ही आराम से बैठने पर भी श्वास आने को दमा या श्वास रोग कहते हैं। शीतल अन्नजल खानेपीने से, धूल व धुंए के मुख में जाने से, हवा लगने से, भारी बोझ उठाने से, पैदल चलने से, उपवासादि करने से श्वास, खांसी और हिचकी आती है। हिचकी और श्वास रोग के एक ही कारण हैं। खांसी बढ़ने से, कड़वे और गरम स्वभावी कुपितकारक पदार्थों के सेवन से आमातिसार, वमन होने से, जहर खाने से, पांडुरोग से, बुखार से, मर्मस्थान में चोट से श्वास रोग होता है।

प्र.-1060 शिरोरोग किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मस्तिष्क में शूल चुभने जैसी वेदना को शिरोरोग कहते हैं। 11 भेद हैं। **नामः-** 1. वातज 2. पित्तज 3.कफज 4. सन्निपातज 5. रक्तज 6. क्षयज 7. कृमिज 8. सूर्यावर्त 9. अनंतवात 10. शंक 11. अर्द्धाविभेदक।

प्र.-1061 मूर्च्छारोग किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवितावस्था में सुखदुःखानुभव न होने को मूर्च्छारोग कहते हैं। यह काठवत् बेहोश होकर गिर पड़ता है। संज्ञा बहाने वाली नाड़ियों के वायु आदि दोषों से पीड़ित होने पर एकाएक सुखदुःख के ज्ञान का नाशक तमोगुण प्राप्त होता है। इस तमोगुणी मनुष्य को सुखदुःख का ज्ञान न होने से इसे मूर्च्छा कहते हैं।

प्र.-1062 संन्यास रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस रोग में मनुष्य मुर्दे के समान हो जाता है उसे संन्यास या लंबे समय की बेहोशी कहते हैं। हृदय में स्थित वात पित्त कफ हृदय को दूषित करके संन्यास रोग पैदा करते हैं। यदि इस रोगी की चिकित्सा शीघ्र ही नहीं की जाय तो मृत्यु भी हो जाती है।

प्र.-1063 मूर्च्छारोग और संन्यास रोग में क्या अंतर है?

उत्तर- दोषों के वेग बीतने पर मूर्च्छा और बढ़ा हुआ उन्माद बिना दवा के स्वतः ही शांत हो जाता है परंतु संन्यास रोग बिना दवाओं के शांत नहीं होता है यही इन दोनों में अंतर है। अर्थात् मूर्च्छारोगी देरअबेर से बिना दवा के होंश में आ जाता है किंतु संन्यास रोगी बेहोश होकर बिना दवा के होश में नहीं आता। इस रोग का दूसरा नाम कोमा में जाना भी है।

प्र.-1064 गद्गदत्व, मिन्मिनत्व और मूकता किसे कहते हैं तथा इनका इलाज क्या है?

उत्तर- बोलते समय स्वरव्यंजनों के स्पष्ट न बोलने को **गद्गदत्व**, अक्षरों को नाक से बोलने को **मिन्मिनत्व** और गूंगेपन को **मूकता** कहते हैं। 1. सारस्वत घृत के सेवन से ये तीनों रोग दूर होकर बोली साफ होती है। 2. हल्दी, बच, मीठाकूट, छोटी पीपल, सोंठ, सफेदजीरा, अजमोदा, मुलेठी और सेंधा नमक इनको सम मात्रा में लेकर कूट पीसकर छान कर चूर्ण को घी में मिलाकर चांटने से 21 दिन में रोगी को याद रखने की शक्ति बढ़ जाती है तथा आवाज साफ हो जाती है।

प्र.-1065 पाददाह पैरों के तलवों में जलन क्यों होती है?

उत्तर- पित्त और रक्त कुपित होने से वायु पैरों में दाह करती है या चलते समय पैरों में जलन होने

को पाददाह कहते हैं। पाददाह में मर्यादित मक्खन की मालिश कर थोड़ी सिकाई भी करनी चाहिये वा मसूर की दाल और कपूर दोनों को पीस कर तलवों में लेप करने से दाह शांत हो जाती है।

प्र.-1066 अपस्मार/हिस्टीरिया/मिरगी रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- स्मृति नष्ट करने वाले रोग को **मिरगी** कहते हैं। इसके दौरे से रोगी गिर पड़ता है, फड़कने की चेष्टा करता है, उसकी आँखें भौंहे टेढ़ी हो जाती है, मुंह से लार बहती है, हाथ पांव को इधर उधर पटकता है।

प्र.-1067 नेत्ररोग किसे कहते हैं?

उत्तर- आँखों की ललामी को, सूजन को, मोतियाबिंद को, कालेपानी आदि को नेत्ररोग कहते हैं। शिराओं में रहने वाले वातादि दोष बिगड़ कर ऊंचे भागों में जाकर नेत्रों में रोग उत्पन्न करते हैं। धूप में संतप्त होकर शीतलजल में घुसने से, दूर के पदार्थ टकटकी लगाकर देखने से, नींद आने पर या समय पर न सोने से, दिन में अधिक सोने से, रात में जागने से, नेत्र में धूल, धुंआ जाने से, वमन रोकने से, बहुत वमन करने से, पतले पदार्थ अधिक खाने से, खट्टे रसों के अधिक सेवन से, मलमूत्रादि, अधोवायु का वेग रोकने से, शोकजन्य संताप से, मस्तक में चोट लगने से, अत्यंत तेज चलने वाली सवारी पर बैठने से, ऋतुचर्या में लिखी विधियों से विपरीत चलने से, काम क्रोध आदि के कारण उत्पन्न हुई पीड़ा से, अत्यंत मैथुन करने से, आंसुओं का वेग रोकने से बहुत ही बारीक पदार्थ अथवा छोटे छोटे अक्षरों को पढ़ने से नेत्ररोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्र.-1068 लूता/मकड़ी रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- मकड़ी के मुख की लार, नाखून, मलमूत्र, दाढ़, रज और वीर्य इन सभी में जहर होता है। मकड़ी की लार या चेप शरीर में जहाँ लग जाते हैं वहीं पर ददोरे, चकते, सूजन, घाव, फुंसियां हो जातीं हैं, घाव सड़ने लगता है, जलन होती है, बुखार और दस्त होने लगते हैं। इसे ही लूता रोग कहते हैं।

प्र.-1069 ज्वर किसे कहते हैं, भेद, नाम, लक्षण, उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर- जिस रोग में पसीना न आये, शरीर गरम हो, सारे शरीर में दर्द व जकड़न सी हो उसे ज्वर कहते हैं। ये ज्वर 8 प्रकार के हैं। बिना मेहनत के थकान सी मालुम होना, शरीर का गिर जाना, चित्त का न लगना, बैचेनी सी मालुम होना, शरीर का रंग बदल जाना, स्वाद बिगड़ जाना, आँखों में पानी आना, सर्दी हवा और धूप का कभी अच्छा, कभी बुरा लगना, जम्हाई आना, शरीर टूटना, भारी होना, रोएं खड़े होना, भोजन की इच्छा न होना, आँखों के सामने अंधेरा या चक्कर आना, आनंद का नाश और सर्दी लगना ये ज्वर के सामान्य पूर्व रूप हैं। **1. वातज्वरः-** वात ज्वर आने के पहले जम्हाई या अंगड़ाई आती है। **2. पित्तज्वरः-** पित्त ज्वर आने के पहले नेत्रों में जलन होती है। **3. कफज्वरः-** कफ ज्वर आने के पहले भोजन में अरुचि होती है। **4. वातपित्तज्वरः-** वातपित्त ज्वर आने के पहले जम्हाइयां आती हैं और नेत्रों में जलन होती है। **5. पित्तकफज्वरः-** पित्तकफ ज्वर आने से पहले आँखों में जलन और भोजन में अरुचि होती है। **6. वातकफ ज्वरः-** वातकफ ज्वर आने से पहले जम्हाइयां आती हैं और भोजन में अरुचि होती है। **7. सन्निपातज्वरः-** तीनों ज्वरों के लक्षण मिलने को सन्निपात ज्वर कहते हैं। **8. आगंतुकज्वरः-** बाह्य कारणों से बुखार आने को आगंतुकज्वर कहते हैं। **आगंतुक ज्वर के भेदः-** 1. अभिघातक ज्वर 2. क्षतजज्वर 3. श्रमज्वर 4. कामज्वर 5. भूतज्वरादि। आयुर्वेद में सभी रोगों का होना वात पित्त कफ के कुपित होने से कहा गया है और वात पित्त कफ के कुपित होने का कारण अपथ्य सेवन है। सारे रोग बिना औषधि के केवल पथ्य से ही नष्ट हो जाते हैं परंतु कुपथ्य सेवन से सैकड़ों दवाइयां खाने पर भी आराम नहीं होता है। ज्वर आने के दिन से सातवें दिन तक नया ज्वर, बारवें दिन तक मध्यम और इसके बाद पुराना ज्वर कहलाता है।

प्र.-1070 अजीर्ण रोग किसे कहते हैं इसका लक्षण और दूर करने का उपाय क्या है?

उत्तर- उदराग्नि मंद होने से भोजन के सही ढंग से न पचने को अजीर्ण कहते हैं। शरीर में ग्लानि होना, मल रुक जाना या अधिक दस्त होना, शरीर और पेट भारी होना, खट्टी डकारें आना, अपानवायु में दुर्गंध होना, जी मचलानादि इसके लक्षण हैं। कफ के प्रकोप से आमाजीर्ण, पित्त के प्रकोप से विदग्धाजीर्ण, वायु के प्रकोप से विष्टब्धाजीर्ण तथा रस के शेष रहने से रसशेषाजीर्ण होता है। दिनभर में भोजन न पचने से दिनपाकाजीर्ण होता है। **अजीर्ण होने का कारणः-** बहुत जल पीना, भोजन का समय टालकर भोजन करना, मलमूत्रादि के वेगों को रोकना, रात्रि जागरण, दिन में सोना ये पाँच कारण शरीर संबंधित हैं, ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, शोक, दीनता और मत्सरता ये 7 मानसिक कारण हैं। अजीर्ण रोग शमनार्थ अजीर्णकारक कारणों का त्याग करना, उपवास करना सर्वोत्तम उपाय है किंतु बालकों, वृद्धों और दुर्बलों को उपवास कराना अच्छा नहीं है, उनको उनकी प्रकृति के अनुसार हलका और थोड़ा भोजन देना उचित है। नमक से कफ नाश, चीनी से पित्त नाश, घी से वादी रोग शांत होता है। गुड़ मिली औषधियों से सब रोग शांत होते हैं।

नोटः- इनकी परिभाषा आयुर्वेदिक चिकित्सा, लेखक- डॉ ओमप्रकाश सक्सेना।

प्र.-1071 सामान्यतया भोजन किस क्रम से करना चाहिये?

उत्तर- भोजन में प्रथम मधुररस लेना चाहिए जिससे पक्काशयगत वायु का ह्रास हो, अम्ल और लवणरस के भोजन को मध्य में लेने से पित्ताशय में अग्नि प्रदीप्त हो, शेष कट्वादिरसों को अंत में कफ शमनार्थ लेना चाहिये और फलों में सर्वप्रथम अनारादि अम्लफलों को खायें जिससे वायु शांत हो इसके बाद पीने योग्य वस्तुओं को पीना चाहिए फिर बाद में दाल, चावल, रोटी आदि खाना चाहिये। त्रिदोषनाशक आंवला भोजन के आदि, मध्य और अंत में खाना चाहिये फिर भी अपनी अपनी प्रकृत्यनुसार आहार लेना चाहिये।

प्र.-1072 शारीरिक रोगों की प्राप्ति किस कारण से होती है और क्या फल है?

उत्तर- राग, द्वेष, मोह, अज्ञानता से दानपूजादि धर्मकार्यों में बाधा डालने के कारण शारीरिक बीमारियां प्राप्त होती हैं और ऐसे व्यक्ति लौकिक एवं लोकोत्तर कार्यों में स्वयं बाधित होते हैं। भोगांतराय उपभोगांतराय कर्मोदय से अनेक सामग्रियां प्राप्त होने पर भी आनंद नहीं ले पाता यही इन कर्मों का फल है।

प्र.-1073 जो व्यक्ति नाना प्रकार के कष्टों से बचना चाहते हैं वे क्या करें?

उत्तर- जो व्यक्ति शारीरिक, वाचनिक, मानसिक, आगंतुक, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावजन्य कष्टों से बचना चाहते हैं तो उन्हें दान, पूजादि धर्मकार्यों के द्रव्य का, देव, गुरु के द्रव्य का अपहरण नहीं करना चाहिये तथा धर्मकार्यों में बाधक न बन सहायक होने से सुखशांति की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

प्र.-1074 यह मोही प्राणी जानता हुआ भी ऐसा दुष्कर्म क्यों करता है?

उत्तर- मोही प्राणी विषयकषायों के आधीन होकर परिवार के, समाज के, देश के, लोभ के कारण राजा आदिनाथजी के समान पाप को बांधकर सर्वप्रथम पुण्य का उपार्जन न स्वयं करता है, न दूसरों को करने देता है और जो कर रहा है उसमें विघ्न पैदा करता है, साधनों को तोड़फोड़ देता है तभी तो यह जीव वर्तमान में दुःखी होता हुआ दुःख के साधनों में आकंठ डूबा हुआ है।

प्र.-1075 मिथ्यात्व कर्म का उदय किस गुणस्थान में होता है?

उत्तर- मिथ्यात्वकर्म का उदय सामान्यतया पहले गुणस्थान में ही होता है किंतु विशेषतया मिथ्यात्व से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होता है क्योंकि जब वे महामुनि उपशम या वेदक सम्यग्दृष्टि सातवें गुणस्थान से गिरकर पहले गुणस्थान में आते हैं तो मिथ्यात्वोदय के बिना मिथ्यात्व में आना

बन नहीं सकता। इसीतरह मध्यवर्ती गुणस्थानों के संबंध में समझना चाहिये अथवा मिथ्यात्व प्रकृति के उदय का उत्पाद तथा उपशम वेदक सम्यग्दर्शन के व्यय का समय एक ही है।

प्र.-1076 अनंतानुबंधी कषाय का उदय कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर- सामान्यतया अनंतानुबंधीकषाय का उदय मिथ्यात्व तथा सासादन इन दो गुणस्थानों में ही होता किंतु विशेषतया 4थे-7वें गुणस्थान तक प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन तथा द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के काल में कम से कम एकसमय और अधिक से अधिक छह आवली शेष रहने पर अनंतानुबंधीकषाय के उदय से उभय सम्यग्दर्शन की विराधना कर सासादन को प्राप्त होता है अतः विशेषतया इसका उदय 1-7वें गुणस्थान तक होता है इसी तरह देशसंयम, सकलसंयम की विराधना होकर मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है क्योंकि अनंतानुबंधी कषाय को उभय स्वभावी माना है।

नोटः- यहाँ तक 1076 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 34वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 35वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

वर्तमान के मनुष्य

सम्मविसोही तव गुण चारित्त सण्णाण दाण परिहीणं।
भरहे दुस्समयाले मणुयाणं जायदे णियदं ।।35।।

सम्यक्त्वविशुद्धिस्तपोगुणचारित्रसज्ज्ञानदानपरिहीनां।
भरते दुःषमकाले मनुजानां जायते नियतम्।।

भरहे भरतक्षेत्र **दुस्समयाले** पंचमकाल में **णियदं** निश्चय से **मणुयाणं** मनुष्य **सम्मविसोही** सम्यग्दर्शन की विशुद्धि **तवगुणचारित्त** तप, मूलगुण, चारित्र, **सण्णाणदाण** सम्यग्ज्ञान दान से **परिहीणं** हीन **जायदे** होते हैं।

प्र.-1077 पंचमकाल में मनुष्य सम्यग्दर्शन की विशुद्धि के बिना क्यों पैदा होते हैं?

उत्तर- पूजा, दान आदि सम्यक्त्ववर्द्धनी क्रियाओं का पालन करने से परिणामों में निर्मलता आती है, वृद्धि होती है और इन कार्यों में बाधा डालने से स्वयं में निर्मलता नहीं आती तथा जो है वह विषयकषाय, मोह अज्ञान के द्वारा समाप्त हो जाती है तब सम्यग्दर्शन न होने से सम्यग्दर्शन की विशुद्धि कैसे हो सकती है?

प्र.-1078 पंचमकाल किसे कहते हैं और कितने भेद हैं?

उत्तर- जिस काल में जन्म लेने वाले हीन संहनन और हीन परिणामों के साथ देशसंयम सकलसंयम पूर्वक दोषयुक्त मोक्षमार्ग की साधना करें या नहीं करें, भोगविलासों में, लोकाचार में आकंठ डूबे रहें तथा मोक्ष की प्राप्ति न हो उसे पंचमकाल कहते हैं। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के भेद से पंचमकाल के दो भेद हैं।

प्र.-1079 इन दोनों पंचमकालों में क्या अंतर है?

उत्तर- अवसर्पिणी काल के पंचमकाल में ढाईद्वीप संबंधी भरत ऐरावत क्षेत्र में जन्मे मनुष्य और तिर्यंचों की आयु, अवगाहना, ज्ञान का क्षयोपशम, कला, सामर्थ्य आदि कृष्णपक्षवत् घटते हैं तथा उत्सर्पिणीकाल के पंचमकाल में ये सभी क्रमशः शुक्लपक्षवत् वृद्धि को प्राप्त होते जाते हैं यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-1080 इस काल में मनुष्य विषयलंपटी क्यों पैदा होते हैं?

उत्तर- पंचपरमेष्ठियों की और धर्मायतनों की पूजा, गुणकीर्तन, दान के समय, सांसारिक विषयभोगों का, स्वार्थ का त्याग करना तप है और इसमें बाधा डालने से अंतराय कर्म का बंध किया, **'विघ्नकरणमंतरायस्य'** तथा इसके उदय में स्वयं की दुर्भावनाओं का दमन एवं तप की भावना

न होने से, धन लोभी, तीव्र कषायी बना रहा अतः आ. श्री ने पंचमकाल में तप की विशुद्धि के बिना विषयलंपटी मनुष्य होते हैं ऐसा कहा है।

प्र.-1081 इस काल में मूलोत्तरगुणों की विशुद्धि के बिना मनुष्य क्यों पैदा होते हैं?

उत्तर- पूज्य, पूजा और पूजक में अंतराय डालने से पूज्य पूजा के बिना पूजक की स्थिति नहीं होती ऐसे ही धर्मायतनों के बिना भक्तों द्वारा पूजादान न करने से विशुद्धि, गुणों की वृद्धि, फल की प्राप्ति नहीं होती है। अभी अव्रती गृहस्थ 1% भी मूलगुणधारी नहीं हैं इसीलिए विश्वासघाती, अत्याचारी अनाचारी पैदा हो रहे हैं तथा आजकल गर्भाधान से ही गर्भ और जन्म के बाद भी धर्मविरुद्ध संस्कार, संगति और शिक्षा होने से मूलगुणों में विशुद्धि आदि नहीं हो रही है ऐसा कहा है।

प्र.-1082 क्या जन्मकाल से ही मूलगुणों का पालन होता है?

उत्तर- नहीं, गर्भ और जन्म से मूलगुणों का पालन न हुआ था, न होता है और न होगा किंतु जन्म के सवा या डेढ़ महिना पूर्ण होने के दिन या कदाचित् बाद में भी देव शास्त्र गुरुओं की साक्षी गृहस्थाचार्यों या परिवार के वृद्ध पुरुषों से मूलगुणों के संस्कार किये जाते हैं अतः मूलगुण का पालन गर्भजन्म से न होकर 40 या 45 दिन के बाद से धारण और इनका पालन माँ बाप के द्वारा कराया जाता है अथवा सम्यग्दृष्टि माँ बाप के होने पर पूर्व संस्कारवश गर्भ से ही मूलगुणों का पालन होता है।

प्र.-1083 जन्म के 40 या 45 दिन के बाद मूलगुणों के संस्कार क्यों करते हैं?

उत्तर- जिस क्षेत्र में मासिकधर्म की अशुद्धि चारदिन की मानते हैं उन्होंने 9 X 4 =36 दिन मानकर तथा जहाँ पाँचदिन की अशुद्धि मानते हैं वहाँ 9 X 5=45 दिन के बाद मूलगुणों के संस्कार कराते हैं या इन मूलगुणों का पालन पूर्वपरंपरानुसार बिना संकल्प किये ही अव्रतरूप में गर्भ से ही पालन होता है अन्यथा गर्भाधानादि के मंत्रसंस्कार व्यर्थ हो जायेंगे या माँ को दोहला क्यों होता हैं अर्थात् दोहला का मतलब ही है कि उस गर्भस्थ जीव के शुभाशुभ होनहार की सूचना देना। इसलिए मूलगुणों के संस्कार किये जाते हैं।

प्र.-1084 यदि ये संस्कार नहीं किये जायें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- हमें कोई आपत्ति नहीं है किंतु अग्नि संस्कार के बिना मिट्टी का पात्र अपनी अर्थक्रिया करने में समर्थ नहीं होता है ऐसे ही सत् संस्कारहीन व्यक्ति मोक्षमार्ग की आराधना कर नहीं सकता यही आपत्ति है।

प्र.-1085 ये संस्कार अन्यमतियों के होने से इनका पालन क्यों करना?

उत्तर- यदि ये संस्कार अन्यमतियों के माने जायें तो क्रियाविशाल नामका 13वाँ पूर्व भी अन्यमतियों का मानना पड़ेगा जिससे जिनेंद्रोपदेश नहीं कहलायेगा तथा वर्तमान में महापुराण आदि सद्ग्रंथों को मिथ्याशास्त्र मानने का प्रसंग आयेगा तब इन ग्रंथों को जिनवाणी मानकर, कहकर प्रचार प्रसार भी बंद करना पड़ेगा अन्यथा षड् अनायतन और तीन मूढ़ताओं का पालन होने से मोक्षमार्ग का समूल विनाश होगा अतः मोक्षमार्ग नष्ट न होवे सो इनका पालन करना चाहिये क्योंकि यह संस्कारविधि जिनेंद्रोपदिष्ट ही है। यह संस्कारविधि क्रियाकांड अन्यमतियों का मानने से जैनधर्म अक्रियावादी मिथ्या हो जायेगा, दिगंबर जैनाचार्य अन्यमतों के उपदेश को जैनधर्म में संकलन नहीं करते हैं, दिगंबर जैनाचार्य अचौर्य महाव्रती होते हैं। आजकल कुछ धर्मसंस्कारविहीन पूर्ण असंयमी गृहस्थ पंडितवर्ग इन धर्म संस्कारों को अन्यमतियों के कहने, लिखने लगे हैं तब इन वाक्यों से दिगंबरजैनाचार्यों के पास कोई स्वयं का ज्ञान नहीं था मूर्ख थे ऐसा अर्थ निकलता है और इससे उपासकाध्ययनांग तथा क्रियाविशालपूर्व भी व्यर्थ हो जाता है जिससे स्वयं में ही कुठाराघात होता है अतः धर्मसंस्कारविधि आर्षप्रणीत होने से पालन करना ही चाहिये।

प्र.-1086 तो फिर इन संस्कारों को जीवन में उतारे या नहीं?

उत्तर- यदि आज्ञाकारी सुपुत्र या सत्शिष्य हो तो देव शास्त्र गुरु की आज्ञा को जीवन में उतारो तथा अनाज्ञाकारी हो तो मत उतारो।

प्र.-1087 अव्रती गृहस्थों में मूलगुणों का अभाव है यह कैसे जाना?

उत्तर- वर्तमान में एक भी अव्रती गृहस्थ आगमाज्ञानुसार पानी छानकर नहीं पी रहा है, न त्यागीव्रतियों को पानी छानकर पिला रहा है, अनेक अशुद्ध औषधियों का, अमर्यादित भोजनपान का, मकारों आदि का प्रयोग कर रहा है, षडावश्यकों के पालने में प्रमादी है, परस्पर में गुणीजनों में निष्कपट निःस्वार्थ प्रेम नहीं है, ख्याति पूजा लाभ की भावना, चर्या प्रत्यक्ष में अव्रती गृहस्थों के दिखाई दे रही है आदि हेतुओं से जाना जाता है कि गृहस्थों में मूलगुणों का अभाव है अथवा जब ये आहार देने के लिए हमसे पूंछते हैं तब उनसे नियम के संबंध में हम पूंछते हैं कि आप मूलगुणों का पालन करते हो तो आहार दो अन्यथा नहीं तब वे मना कर देते हैं कि हम इन नियमों का पालन न करते हैं न कर सकते हैं और न नियम लेने को तैयार होते हैं इससे जाना जाता है कि इनमें मूलगुणों का, जैनत्व का अभाव है।

प्र.-1088 अव्रती गृहस्थों में मूलगुणों का अभाव क्यों है?

उत्तर- शरीर में, विषयभोगों में गाढ़ प्रीति, लोकलाज, मित्रों की, सगेसंबंधियों की आधीनता, हम वहाँ नहीं खायेंगे तो रिश्ता नहीं होगा, वे हमारे यहाँ भी आकर भोजनपान नहीं करेंगे सो इस भय से भी अशुद्ध भोजनपान कर लेते हैं और जब इनसे त्याग की बातें करते हैं तब इनमें गृहस्थोचित सदाचार सद्विचारों का, मूलगुणों का और सत्संस्कारों का अभाव है या सद्भाव? स्वयं निर्णय करो।

प्र.-1089 अव्रतियों में मूलगुणों का अभाव होने से गुणों की विशुद्धि कैसे होगी?

उत्तर- नहीं, बिना जड़ के वृक्ष की स्थिति, वृद्धि और फल की प्राप्ति नहीं होती है ऐसे ही मूलगुणों के बिना अव्रतियों में मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है क्योंकि गुणों के बिना गुणवान कैसा? गुणों के सद्भाव में ही गुणों की विशुद्धि हो सकती है अभाव में नहीं।

प्र.-1090 अणुव्रती और महाव्रतियों के मूलगुणों की विशुद्धि हो सकती है क्या?

उत्तर- इन उभय व्रतियों में मूलगुणों का सद्भाव होने से विशुद्धि होना ही चाहिये किंतु विषयकषायों की, ख्याति पूजा लाभ की भावना कूट कूट कर भर चुकी है कि इससे गुणों की विशुद्धि के बदले मलिनता ही कृष्णपक्ष की भांति बढ़ती जा रही है तभी तो धर्म के प्रचार प्रसार के नाम पर अपना नाम, अपना फोटू, अपना प्रवचन, दिनचर्या का रात्रिदिन परिश्रम करके चेनल वालों को बुला कर रुपया दिलाकर टी.वी. पर प्रचार प्रसार किया जा रहा है। अपना स्वतंत्र संगठन बनाया जा रहा है उनके भक्त दूसरे त्यागीव्रतियों के प्रति किंचित् मात्र भी समर्पित नहीं हैं, न ऐसे गुरु अपने भक्तों को प्रेरणा देते हैं कि उनकी भी भक्ति, वैय्यावृत्ति करो, आहारदान दो आदि कारणों से जाना जाता है कि ये व्रती होते हुए भी इनमें मूलगुणों की विशुद्धि नहीं हो रही है अतः आ. श्री ने ठीक ही कहा है कि इस पंचमकाल का ऐसा ही प्रभाव है।

प्र.-1091 चारित्र कैसे उत्पन्न होता है, दृष्टांत और फल क्या है?

उत्तर- गुणस्थानानुसार मोह के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से चारित्र उत्पन्न होता है। जैसे ईंधन के परस्पर में घर्षण से उत्पन्न हुई अग्नि ईंधन को जलाती है ऐसे ही आत्म परिणामों के घर्षण से उत्पन्न चारित्र कर्मों को क्षय कर देता है अर्थात् प्रारंभ में मोहकर्म के मंदोदय में कुछ चारित्र परिणाम हुए फिर धीरे[2] मोहकर्म को क्षयोपशम, उपशम, क्षय करते हुए शेष तीन घातियाकर्मों को क्षय कर देते हैं और बाद में अघातियाकर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं यही फल है।

प्र.-1092 इस काल में चारित्र की विशुद्धि क्यों नहीं होती है?

उत्तर- इस काल में प्रमाद की प्रचुरता, लोकेषणा, निदान की भूमिका और निदान क्रिया होने से तथा यथार्थ में सम्यक् नीति से स्वाध्याय न होने के कारण चारित्र की विशुद्धि नहीं हो पाती है।

प्र.-1093 यदि चारित्र है तो विशुद्धि नियम से होना चाहिये ऐसा है क्या?

उत्तर- इस काल में सर्व प्रथम चारित्र ही उत्पन्न नहीं होता है, कदाचित् पुरुषार्थ किया भी तो उत्पन्न होना कठिन है, यदि किसीके हो भी गया तो बाह्यदृष्टि होने के कारण चारित्र मलिन हो जाता है तथा विशुद्धि नहीं हो पाती क्योंकि हजारों लाखों में कोई एकाद परसेंट ही चारित्र की निर्मलता को प्राप्त कर पाते हैं।

प्र.-1094 भावों से चारित्र की विशुद्धि होती है या अन्य कारणों से?

उत्तर- द्रव्य, क्षेत्र, काल की शुद्धि होने के बाद ही भावों की शुद्धि हो सकती है और भावों की शुद्धि होने के बाद ही चारित्र की शुद्धि होती है अन्यथा नहीं।

प्र.-1095 सम्यग्ज्ञान की विशुद्धि किसे कहते हैं और किस क्रम से होती है?

उत्तर- सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के बाद ज्ञेयों में संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय, न्यूनाधिक आदि ज्ञानों के अभाव को सम्यग्ज्ञान की विशुद्धि कहते हैं और यह विशुद्धि जैसे जैसे विषयकषायों का निग्रह तथा ज्ञानावरणीय कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय होता जाता है वैसे वैसे ही ज्ञान की विशुद्धि होती जाती है।

प्र.-1096 निर्दोष सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- अक्षर, पद, मात्रा, स्वर, व्यंजन, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, संधि, समास, क्रियापद आदि के स्वरूप को यथावत् जानने को, उच्चारण या प्रतिपादन को निर्दोष सम्यग्ज्ञान कहते हैं। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायाभाव या सत्त्वाभाव में तथा गुणस्थानानुसार यथायोग्य कषायाभाव में सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है।

प्र.-1097 उच्चारण करने में और प्रतिपादन करने में क्या अंतर है?

उत्तर- उच्चारण करना आम्नाय स्वाध्याय और प्रतिपादन करना धर्मोपदेश स्वाध्याय है यही अंतर है।

प्र.-1098 आजकल भाषा के उच्चारण की शुद्धि विशुद्धि क्यों नहीं हो पाती है?

उत्तर- स्तोत्रपाठ, भक्तिपाठ, पूजापाठ, शास्त्र स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आलोचनादि के उच्चारण में जल्दबाजी होती है, कौन जल्दी पूरा करेगा इसकी होड़ लगती है। स्तोत्रपाठादि जल्दी पूरा करो क्योंकि बहुत समय हो गया है, वो आने जाने वाले हैं, उनको समय दिया है, भोजनपानादि दिनचर्या का समय हो गया है आदि कारणों से भाषा की शुद्धि और भावों की विशुद्धि नहीं हो पाती है।

प्र.-1099 भाषा की उच्चारण संबंधी गल्तियां कैसे दूर हों?

उत्तर- मन निश्चिंत हो, स्थिर, उच्चारण में सावधानी, उच्चारण एकदम न जल्दी हो, न धीरे हो, थोड़ा सा भी अर्थज्ञान भावज्ञान हो तो ये गल्तियां दूर हो सकती हैं, सुधार हो सकता है अन्यथा नहीं।

प्र.-1100 जिसके उच्चारण स्थान कंठ, तालु आदि सही न हो वह क्या करे?

उत्तर- ऐसे व्यक्ति के वचनोच्चारण में श्रोताओं को गलती नजर आ रही है पर उसकी जानकारी में और अभिप्राय में गलत भावना, असावधानीपना न होने से गलती नहीं है, न पापकर्मों का आश्रव बंध होता है किंतु कर्मबंधन से छुटकारा ही प्राप्त होता है क्योंकि क्रियाओं के करने में और होने में महान अंतर है।

प्र.-1101 सो कैसे स्पष्ट करो?

उत्तर- देखो गोद का बालक निर्विकारी होने से माँ बहनों के शरीर में कहाँ कैसे हाथ मुंह आदि

नहीं लगाता है या कैसी कैसी चेष्टायें करने लगता है अथवा डॉक्टर मरीज के सर्वांग को स्पर्श करता है फिर भी उसे न कोई बदनाम या संदेह करता है, न अपराधी माना जाता है, न हीन दृष्टि से देखा जाता है ऐसे ही यदि कोई युवक ऐसा कार्य करे तो वह समाज में, परिवार में, सरकार में अपराधी मानकर दंडित किया जाता है अतः चेष्टायें और वचनोच्चारण अभिप्रायानुसार सही और गलत हो जाते हैं अथवा कहीं कहीं अभिप्रायानुसार ही वचन निकलते हैं। कहीं अभिप्राय सही होने पर भी मनोवैज्ञानिक डॉक्टर के समान वचनोच्चारण गलत हो जाता है और कहीं अभिप्राय गलत होने पर भी ठगियों की तरह सही वचनप्रयोग होता है।

प्र.-1102 तोतली बोली बोलने वालों के उच्चारण संबंधी दोष कैसे दूर हो सकते हैं?

उत्तर- जिनके जन्म से ही कंठ, तालु आदि बिगड़े हुए हैं तो शुद्धोच्चारण वाले व्यक्ति बार बार शुद्ध बोलने का अभ्यास करायें तो कदाचित् बोली में सुधार हो सकता है किंतु जिन्होंने गुटका, मसाला आदि खाकर शब्दोच्चारण क्रम बिगाड़ लिया है, सुधारने की तैयारी न होने से उनका सुधार असंभव है।

प्र.-1103 दान देते हुए भी दानियों के भावों की विशुद्धि क्यों नहीं होती है?

उत्तर- अहंकार ममकार पूर्वक दान देने से दाता में विशुद्धि नहीं हो पाती। आज दाता भी पक्षपात पंथवाद के दोष से सही दाता नहीं रहे, चारित्रवान न रहकर अचारित्री, कुचारित्री हो गये जो त्याग की बातें करने पर खुलासा हो जाता है। जैसे छिद्रवान चालनी में दूधादि डालने से निकल जाता है ऐसे ही इन दानदाताओं में पक्षपात पंथवाद के दोष से विशुद्धि न हो पाती, न ठहरती है एवं जो है वह भी समाप्त हो जाती है।

प्र.-1104 अचारित्री और कुचारित्री में अंतर क्या है?

उत्तर- जो गृहस्थ संकल्प पूर्वक या कषायाभाव में अणुव्रत और महाव्रतों का पालन नहीं करते हैं वे अचारित्री हैं एवं मोक्षमार्ग विरुद्ध मुद्राधारी अनिष्ट चर्या पालने वाले कुचारित्री हैं यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-1105 दानदाताओं में विशुद्धि न होने का क्या कारण है?

उत्तर- इस पंचमकाल में मिथ्यादृष्टि जीव ही पैदा होते हैं जो गर्भ में आने के पहले और बाद में बारबार डॉक्टरों से परीक्षण कराना, अशुद्ध दवाइयों का प्रयोग करना, टी.वी., पिक्चर देखना, बाजारों में घूमना, होटलों में मोजमस्ती करना इन्हीं संस्कारों का फल है कि छोटे छोटे बालक बालिकायें गुरुओं के सामने आने पर रोते चिल्लाते हैं किंतु टी.वी. को देख सुनकर प्रसन्न होते हैं। ऐसे ही बड़े बड़े समझदार व्यक्ति भोगाकांक्षा में लिप्त त्याग कराने वाले गुरुओं के सामने आने में डरते हैं, घबड़ाते हैं और त्याग न कराने वाले त्यागियों के सामने आने जाने में किंचित् मात्र भी संकोच नहीं करते हैं अतः आ. श्री कुंदकुंदजी ने अपने समकालीन व्यक्तियों के लिए ऐसा कहा है यदि इस समय आ. श्री होते तो वे कैसा क्या लिखते? कितने दुःखी होते मालुम हो जाता फिर भी आजका ढीट मानव उनकी ऐसी दुःखदर्द की कहानी को न देखता है, न सुनता किंतु अंधाबहरा बन जाता है। जब आज का मानव मानवता को छोड़कर अपने परम उपकारी माँ बाप की सेवा नहीं करता है तो फिर वह किसकी करेगा? ऐसे कृतघ्नी नर नारियों को कौन समझाये? अतः इन संस्कारहीन दानदाताओं में भावों की विशुद्धि न होने का यही कारण है।

नोटः- यहाँ तक 1105 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 35वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 36वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

दानहीन दाता

ण हि दाणं ण हि पूया ण हि सीलं ण हि गुणं ण चारित्तं।

जे जइणा भणिया ते णेरइया कुमाणुसा तिरिया होंति ।।36।।

न हि दानं न हि पूजा न हि शीलं न हि गुणो न चारित्रं।

ये यतिना भणितास्ते नारका कुमानुषाः तिर्यंचः भवन्ति।।

जे जो **दाणं** दान **ण हि** नहीं देते **पूया** पूजा **ण हि** नहीं करते **सीलं** शील **ण हि** नहीं पालते **गुणं** गुणों को **ण** नहीं धारते **चारित्तं** चारित्र **ण हि** नहीं पालते **ते** वे अगले जन्म में **णेरइया** नारकी **कुमाणुसा** हीनाचारी मनुष्य और **तिरिया** तिर्यंच **होंति** होते हैं ऐसा **जइणा** जिनेंद्र तीर्थंकरों ने **भणिया** कहा है।

प्र.-1106 जो मनुष्य गाथोक्त कार्यों को नहीं करते हैं वे क्या फल प्राप्त करते हैं?

उत्तर- धर्माचरण का पालन नहीं करने वाले मनुष्य मरकर नारकी कुमानुष और तिर्यंच होते हैं।

प्र.-1107 ग्रंथकारजी ने ऐसा कथन बारबार क्यों किया?

उत्तर- 9वीं गाथा में ये कार्य सम्यग्दर्शन के बिना संसारमार्ग कहा है। 10वीं में आवश्यकों का पालन नहीं करने वालों को श्रावक नहीं है ऐसा कहा है। 11वीं में इन कार्यों को नहीं करने वालों को बहिरात्मा पतंगा कहा है। 36वीं में इन कार्यों के अकारक मनुष्य मरकर नारकी, कुमानुष और तिर्यंच होते हैं सो यह ठीक ही कहा है। पत्थर में भी बारंबार रस्सी के रगड़ने से या पानी के गिरने से गड्ढा हो जाता है ऐसे ही कभी न कभी इस मोही प्राणी को शब्दों की चोट मारने से बात मन में चुभेगी तो सुधार संभव है परंतु अभी मानव इतना हठीला हो गया है कि इसको बात ही नहीं लगती। कहा है **'लातों के देव बातों से नहीं मानते'** जब ये गुरुओं की बात नहीं मानते हैं तो इनको कर्मों की, चोरों की, गुंडों की, राजकर्मचारियों की आज्ञा मानना ही पड़ेगी क्योंकि इनके पास में अपनी बात मनवाने के लिए हाथ में डंडा पिस्तोलादि हैं किंतु आचार्यों के पास में केवल शब्द हैं, मानो या मत मानो तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है पर अभी मनमानी कर रहे हो सो फल देते समय कर्म भी मनमानी करेगा तब फिर बचने के लिए कहाँ, किसके पास जाओगे, जब भ. आदिनाथजी, भ. पार्श्वनाथजी को कर्मों ने नहीं छोड़ा तो तुम किस खेत की मूली हो अतः सावधान हो यदि दुःखों से बचना चाहते हो तो कुकर्मों से बचकर, त्यागकर सम्यक् रीति से धर्माराधना करो।

प्र.-1108 धर्मकार्यों को न करने से मनुष्य कुमानुष, कुभोगभूमिज कैसे हो सकता है?

उत्तर- कुपात्रदान से कुमानुष या कुभोगभूमि की प्राप्ति होती है क्योंकि अपात्र, कुपात्र को दान देते समय कषायें मंद होने से भाव निर्मल हो जाते हैं और यहाँ मंदभावों का नाम ही मार्दव है- **स्वभाव मार्दवं च।।** त.सू. अ. 6 सू.18 इससे मनुष्यायु का आश्रव होकर इससे कुभोगभूमि की प्राप्ति होती है। ठीक ऐसे ही इन धर्मकार्यों को न करने से क्रोधादि कषायों की तीव्रता और छलकपट होने से नारकी एवं तिर्यंच होते हैं।

प्र.-1109 कुपात्रदान से कुभोगभूमि की प्राप्ति होती है या सुपात्रदान से भी?

उत्तर- यतियों के, तीर्थंकरों के कहने से कुभोगभूमि की प्राप्ति नहीं होती है किंतु मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के मंदोदय पूर्वक अपात्र कुपात्र सुपात्रों को दान देते समय परिणाम अत्यंत मंद होने से लेश्यायें भी शुभ हो जातीं हैं जिससे मनुष्यायु का बंध कर लिया। केवल मंद परिणाम होने से भोगभूमि में पैदा होना चाहिये था किंतु मर्यादा का उल्लंघन कर, भोगासक्त हो, मरण कर कुभोगभूमि में पैदा होता है यहाँ एक पल्य की आयु, एक कोश का शरीर, सुंदर वनस्पति के फलफूल पत्ते खाने वाला, सुस्वादु मिट्टी खाने वाला हुआ अतः स्वकृत आश्रवबंध के उदयगत परिणामों से पैदा हुआ ऐसा समझना चाहिये।

प्र.-1110 कुमानुष से कुभोगभूमिज मनुष्य अर्थ क्यों लिया?

उत्तर- यद्यपि लोक में कुमानुष नाम से आदि मानव, आदिवासी या जंगली मनुष्य अर्थ लिया जाता है किंतु यहाँ ग्रंथकार ने कुपात्र अपात्र दान के फल का वर्णन किया है क्योंकि दान का फल भोगभूमिज होना है अतः सत्पात्र दान से सुभोगभूमि तो अपात्र कुपात्र दान से कुभोगभूमि की प्राप्ति होती है सो ठीक ही है।

प्र.-1111 जब परिणामों से ही इन पदों की प्राप्ति होती है तो तीर्थंकरों ने क्यों कहा?

उत्तर- तुम्हारे उदयागत भावों से या कर्मों के विपाक से इन पदों की प्राप्ति होती है, हमारे कहने से नहीं ऐसा तीर्थंकरों ने कहा है। यदि सर्वज्ञ प्रभु परिणामों का फल नहीं बतलाते तो तुम्हें कैसे मालुम पड़ता कि इन परिणामों का यह फल है और अजानकारी से अनिष्टभावों का त्याग तथा इष्टभावों की प्राप्ति का पुरुषार्थ क्यों करते? अतः धर्मोपदेश का फल ही उत्कृष्टमार्ग में उत्साह होना, अनिष्ट मार्ग में हेय बुद्धि होना है। जैसे हित के इच्छुक माँबाप अपनी संतानों को अहित के मार्ग से बचाकर सन्मार्ग में लगाते हैं।

नोटः- यहाँ तक 1111 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 36वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 37वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अविवेकी मिथ्यादृष्टि

णवि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं य पुण्णपावं हि।

तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मउम्मुक्को ।।37।।

नापि जानाति कार्यमकार्यं श्रेयोऽश्रेयश्च पुण्यपापं हि।

तत्त्वमतत्त्वं धर्ममधर्मं स सम्यक्त्वोन्मुक्तः।।

य जो **कज्जमकज्जं** कार्याकार्य **सेयमसेयं** श्रेयाश्रेय **पुण्णपावं** पुण्यपाप **तच्चमतच्चं** तत्त्वातत्त्व **धम्ममधम्मं** धर्माधर्म को **हि** निश्चय से **णवि** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** वह **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्को** उन्मुक्त है।

प्र.-1112 कार्य किसे कहते हैं व किस भाव से करना चाहिये?

उत्तर- मानवजीवन को सफल बनाने को उत्थान में सहायभूत अवश्य करने योग्य कर्तव्यों को कार्य कहते हैं और ये कार्य निःस्वार्थ निष्कपट पूर्वक परोपकार करना, परदुःख हरण करना आदि हैं।

प्र.-1113 अकार्य किसे कहते हैं?

उत्तर- मानव जीवन को असफल या कलंकित बनाने, पतन में सहायभूत, संसार में भ्रमण कराने वाले, कष्ट देने वाले कर्तव्यों को या मानवता के विरुद्ध, न करने योग्य चेष्टाओं को अकार्य कहते हैं।

प्र.-1114 उत्थान में सहायभूत कौन से कार्य हैं?

उत्तर- आप्तोक्त उत्थान में सहायक मूलगुण, षडावश्यक आदि आज्ञा का पालन करना ही कार्य है। जैसे गुलाब का फूल स्वयं सुगंधित होता हुआ दूसरों को सुगंधित करता है ऐसे ही इन जिनेंद्रोक्त कार्यों को करने से स्वयं का उत्थान होता हुआ दूसरों का भी उत्थान होता है।

प्र.-1115 पतन में सहायभूत कौन से अकार्य हैं?

उत्तर- अनाप्तोक्त आज्ञा पालना, अन्याय अभक्ष्य का सेवन करना, अविवेकतादि ही अकार्य हैं।

प्र.-1116 अकार्य समझकर भी क्या कोई कार्य कर सकता है?

उत्तर- जिसने जिस किसी भी कार्य को अंतरंग से गलत समझ लिया है वह उस कार्य को कर

ही नहीं सकता है जैसे भोजनपान में मरी हुई मक्खी पड़ी हो तो कोई कितना ही भूखा प्यासा व्यक्ति हो पर भावी कष्टों को समझकर वह भोजनपान ग्रहण नहीं करता।

प्र.-1117 आजकल व्यक्ति शराब पीनादि को गलत समझकर भी क्यों नहीं छोड़ पाते?

उत्तर- आजकल व्यक्ति शराब पीना आदि दुष्कार्यों को हानिकारक समझकर भी खोटी आदत होने से नहीं छोड़ पाता क्योंकि सर्व प्रथम उसने अंतरंग में एकत्त्वभाव से हानिकारक नहीं समझा है केवल दूसरों को समझाने के लिए ही समझा है। यदि व्यक्ति आत्मविश्वास पूर्वक समझ ले तो उससे आत्महित होता है अन्यथा आत्महित न होकर केवल बाह्य प्रशंसा होती है।

प्र.-1118 श्रेय किसे कहते हैं?

उत्तर- भूत या वर्तमान में महापुरुषों से आचरित कार्यों को, आत्मशांति के उपायों को श्रेय कहते हैं।

प्र.-1119 इन कर्तव्यों को श्रेय क्यों कहा?

उत्तर- जिनेंद्रोक्त कर्तव्यों को पालने से मोक्ष प्राप्ति में कारण होने से इन कर्तव्यों को श्रेय कहा है।

प्र.-1120 वह कौन सा कर्तव्य है जो श्रेय कहलाता है और इसका क्या फल है?

उत्तर- वास्तविक संन्यासिओं का कर्तव्य वैराग्य भावना पूर्वक ध्यानाध्ययन तपश्चरण करना ही श्रेय कर्तव्य कहलाता है। आत्मकल्याण कारीपना, स्वतंत्रता प्राप्त होना आदि ही इसका फल है।

प्र.-1121 स्वाधीन स्वतंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- अपने आपके आधीन रहने को स्वाधीन स्वतंत्र कहते हैं। स्वाधीन/ स्वतंत्र ये दोनों एकार्थवाची हैं।

प्र.-1122 स्वतंत्र/ स्वाधीन व्यक्ति की चर्या किस प्रकार की होती है?

उत्तर- अपने आचारविचारों से अपनी मानमर्यादा, लज्जा स्थिर रहनेवाली, जातिकुल धर्म को कलंकित नहीं करने वाली दिनचर्या स्वतंत्र/स्वाधीन व्यक्ति की होती है।

प्र.-1123 पराधीन परतंत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयकषायों के और दूसरे प्राणियों के आधीन आज्ञावर्ती होने को पराधीन/ परतंत्र कहते हैं।

प्र.-1124 पराधीन व्यक्ति की दिनचर्या किस प्रकार की होती है?

उत्तर- मदारी और बंदर जैसी परतंत्र व्यक्ति की दिनचर्या संसार में भ्रमण कराने वाली होती है।

प्र.-1125 अश्रेय किसे कहते हैं?

उत्तर- सदैव हीनाचार विचारवालों की, अन्याय अभक्ष्य सेवन करने वाली दिनचर्या को अश्रेय कहते हैं।

प्र.-1126 इस हीन चर्या को, चारित्र की हीनता को अश्रेय क्यों कहा?

उत्तर- इस चारित्र की हीनता से अपना वर्तमान का जीवन कलंकित होता है, बदनाम होता है, दुर्गतियों में जाकर कष्ट भोगना पड़ता है, अकल्याणकारी है आदि कारणों से चारित्र की हीनता को अश्रेय कहा है।

प्र.-1127 कलंक और बदनामी में क्या अंतर है?

उत्तर- व्रत भंगपना या गलत चर्या आत्मगत होने को कलंक कहते हैं और यही गलत चर्या व्यक्त होकर आम जनता में चर्चा का विषय बन जाने को बदनामी कहते हैं यही अंतर है।

प्र.-1128 पुण्य की प्राप्ति किन हेतुओं से होती है?

उत्तर- जो आत्मा को कष्ट से बचाये, उभयसुख प्राप्ति में साधन हो, पवित्रता, लोकमान्यता को और रत्नत्रय को प्राप्त कराये आदि हेतुओं से या भोग के और कर्मक्षय के निमित्त पुण्य की प्राप्ति होती है।

प्र.-1129 भोग के निमित्त पुण्य का संचय किस प्रकार से होता है?

उत्तर- लौकिक व लोकोत्तर धर्माराधना से निदानध्यान पूर्वक भोग के निमित्त पुण्य का संचय होता है।

प्र.-1130 कर्मक्षय के निमित्त पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर- कर्मक्षयार्थ रत्नत्रय की आराधना के समय पुण्याश्रव बंध होने के बाद पूर्वबद्ध कर्मोदय से कर्मों को क्षय करने में साधनभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों की प्राप्ति को कर्म क्षय के निमित्त पुण्य कहते हैं।

प्र.-1131 पाप किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- घातियाकर्मों के आश्रवबंध रूप कार्यकारण चर्या को पाप कहते हैं। 2, 4, 47 भेद हैं। द्रव्यपाप और भावपाप। ज्ञानावरणीय आदि 4 मूल प्रकृतियां। इनकी 47 उत्तर प्रकृतियां एवं और भी अनेक भेद हैं।

प्र.-1132 द्रव्यपाप किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मघातक पुद्गलपिंड को या वचन और काय संबंधित अशुभ कार्यों को द्रव्य पाप कहते हैं।

प्र.-1133 भावपाप किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयकषाय, आर्त रौद्रध्यान और प्रमाद आदि आंतरिक परिणामों को भावपाप कहते हैं।

प्र.-1134 तत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर- केवलज्ञान से निर्दोष सिद्ध द्रव्य गुण और पर्यायों की सापेक्ष अवस्था को तत्त्व कहते हैं।

प्र.-1135 अतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर- स्याद्वाद और केवलज्ञान से दूषित द्रव्य गुण पर्यायों की निरपेक्षावस्था को अतत्त्व कहते हैं।

प्र.-1136 क्या वास्तव में अतत्त्व का अस्तित्त्व है?

उत्तर- हाँ, जैसे वस्तु में सद्भाव और अभाव धर्म वास्तविक हैं वैसे तत्त्व का प्रतिपक्षी अतत्त्व भी वास्तविक है। यदि अतत्त्व का अस्तित्व नहीं माना जाये तो संसारभ्रमण, चौरासीलाखयोनियां चतुर्गतिभ्रमण, नाना प्रकार के सुखदुःख की अवस्थाओं का भी अस्तित्व नहीं बन सकता है अतः तत्त्वों के स्वभाव में प्रक्रिया बदल जाने से अतत्त्वपना बन जाता है जो न्यायग्रंथों से समझ सकते हैं।

प्र.-1137 अतत्त्व क्या द्रव्य रूप है, गुणरूप है या पर्याय रूप है?

उत्तर- भेदनय या परिणामी धर्म की अपेक्षा यह अतत्त्व पर्याय रूप है और अभेद नय या अपरिणामी धर्म की अपेक्षा द्रव्य तथा गुण रूप है अन्यथा अतत्त्व श्रद्धान मिथ्यादर्शन बन नहीं सकता। आत्मद्रव्य गुण पर्याय को एक मानकर/अभेद मानकर आत्मद्रव्य ही मिथ्यात्व रूप है, मिथ्यात्वोदय से सम्यक्त्व गुण और गुणवान में अभेद कर सम्यक्त्व गुण ही मिथ्यात्व रूप है।

प्र.-1138 अतत्त्व का क्या स्वतंत्र अस्तित्त्व है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही है। जब गुणों का गुणों के साथ में अत्यंताभाव संबंध है तो इस अतत्त्व का भी अपने आप में स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध है क्योंकि गुण अनादिअनंत स्वभाव वाले हैं।

प्र.-1139 धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षसुख, अनंतसुख, शाश्वत आत्मानंद तथा सांसारिक इंद्रियजन्य सुख प्राप्त कराने वाले

उपायों को धर्म कहते हैं और ऐसा धर्म रत्नत्रय तथा रत्नत्रय में सहायक सामग्री ही है।

प्र.-1140 अधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- संसार में भ्रमण कराने वाले और नाना प्रकार के कष्ट देने वाले उपायों को अधर्म कहते हैं।

प्र.-1141 इन युगलधर्मों को धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- ये धर्म और अधर्म युगलधर्म आत्मगत होने से स्वभाव विभाव रूप हैं, पर्यायधर्म की अपेक्षा नैमित्तिक है, सादिअनंत, सादिसांत स्वभाव वाले हैं, अमूर्तिक मूर्तिक हैं जबकि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य ये दोनों स्वतंत्र हैं, अमूर्तिक हैं, स्वाभाविक हैं, अनादिअनंत हैं और निर्निमित्तिक, निर्विकार, निष्क्रिय हैं।

प्र.-1142 इन युगलधर्मों पर विश्वास नहीं करने वालों को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- इन युगलधर्मों पर विश्वास नहीं करने वालों को मिथ्यादृष्टि इसलिए कहा है कि इनके पास युगल धर्मों की यथार्थ परीक्षा करने का साधनभूत सम्यग्ज्ञान नहीं है क्योंकि कार्य के अभाव में बाह्य साधन को कारण कौन कहेगा? यहाँ सम्यग्ज्ञान कार्य है और सम्यग्दर्शन कारण है।

प्र.-1143 आत्मा में युगलधर्म कितने हैं?

उत्तर- आत्मा में अनंत युगलधर्म हैं और ये सभी चेतनाचेतनात्मक हैं। सभी चेतन अचेतन द्रव्यों में पाये जाते हैं। अचेतन द्रव्यों में ये युगलधर्म अचेतन और चेतन द्रव्यों में चेतन ही होते हैं।

प्र.-1144 द्रव्य में और परस्पर में ये युगलधर्म किस प्रकार से रहते हैं?

उत्तर- ये युगलधर्म द्रव्य के साथ में तादात्म्यपने से और धर्मों का धर्मों के साथ में अविनाभाव संबंध रूप में रहते हैं। ये युगलधर्म गुणरूप होने से अपरिणामी एवं नैमित्तिक भाव होने से पर्याय स्वभाव वाले हैं।

प्र.-1145 ये युगलधर्म शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?

उत्तर- अशुद्ध द्रव्यों में अशुद्ध युगलधर्म होते हैं और शुद्ध द्रव्यों में शुद्ध होते हैं क्योंकि पर्याय के बिना द्रव्य गुण और द्रव्य गुणों के बिना पर्याय का अस्तित्व नहीं रहता है अतः एक के अशुद्ध और शुद्ध होने पर प्रतिपक्षी तथा अविनाभावी संबंधियों का अशुद्ध और शुद्ध होना अवश्यंभावी है।

प्र.-1146 यदि ऐसा है तो सयोगी अयोगी अरहंतों के शुद्धाशुद्धपना कैसे?

उत्तर- अनंतचतुष्टय की अपेक्षा सयोगी अयोगी अरिहंत पूर्ण शुद्ध हैं और अघाति कर्मोदय की अपेक्षा अशुद्ध ही हैं इस कारण सयोगी अयोगी अरिहंतों के शुद्धाशुद्धपना कहा है।

नोटः- यहाँ तक 1146 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 37वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 38वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्यादृष्टि कौन?

णवि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।

सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउम्मुक्को।।38।।

नापि जानाति योग्यमयोग्यं नित्यमनित्यं हेयमुपादेयं।

सत्यमसत्यं भव्यमभव्यं स सम्यक्त्वोन्मुक्तः।।

जो **जोग्गमजोग्गं** योग्यायोग्य **णिच्चमणिच्चं** नित्यानित्य **हेयमुवादेयं** हेयोपादेय **सच्चमसच्चं** सत्यासत्य और **भव्वमभव्वं** भव्याभव्य को **णवि** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** वह **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्को** उन्मुक्त है।

प्र.-1147 अज्ञानी को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- सम्यक् भेदविज्ञान का अभाव होने से मिथ्याज्ञानी को, अज्ञानी को मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-1148 सम्यक् भेदविज्ञान का अभाव किसके होता है?

उत्तर- सर्वघाति दर्शनमोह के 6 कर्मों के उदयानुसार परिणत जीव के सद्भेदविज्ञानाभाव होता है।

प्र.-1149 योग्य किसे कहते हैं?

उत्तर- लौकिक और लोकोत्तर धर्म क्रियाओं में, दिनचर्याओं में सहायक सामग्री को योग्य कहते हैं।

प्र.-1150 अयोग्य किसे कहते हैं?

उत्तर- लौकिक और लोकोत्तर धर्म कार्यों में, सुखशांति में बाधक सामग्री को अयोग्य कहते हैं।

प्र.-1151 विषयभोग में सहायक सामग्री को योग्य क्यों नहीं कहा?

उत्तर- विषयभोगों में सहायक सामग्री को लोकदृष्टि, भोगियों की दृष्टि में योग्य कह सकते हैं किंतु मोक्षमार्ग में, आत्म साधना में बाधक और कर्म बंधन में सहायक होने से अयोग्य ही है, योग्य नहीं।

प्र.-1152 यदि ऐसा है तो धर्म सामग्री को विषयभोगों के लिए अयोग्य कहो?

उत्तर- हाँ, धर्म सामग्री विषयभोगों के लिए अयोग्य ही है तभी तो अभी के भोगीजन धर्मसामग्री को और धर्म को अयोग्य समझकर ही स्वीकार नहीं करते। जैसे सेठ सुदर्शन के पत्नीव्रत के कारण ही मित्राणी के सामने अपने आप को 'मैं नपुंसक हूँ, नामर्द हूँ' ऐसा कहते ही मित्राणी ने सेठसुदर्शन को अपने इष्ट कार्य में अयोग्य समझकर छोड़ दिया, निकाल दिया। यदि मित्राणी सेठ सुदर्शन को अपने मनोनीत कार्य में सहायक समझती, योग्य समझती तो क्यों छोड़ देती, क्यों निकाल देती? कभी नहीं।

प्र.-1153 नित्य किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य गुणों को, ध्रौव्य स्वभाव, सत्स्वभाव को, अपरिणामी, शाश्वत स्वभाव को नित्य कहते हैं।

प्र.-1154 अनित्य किसे कहते हैं?

उत्तर- पर्यायधर्म को, उत्पाद व्ययधर्म, परिणामी स्वभाव को चिर स्थायी न होने को अनित्य कहते हैं।

प्र.-1155 वर्तमान पर्याय को अनित्य क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं कहा क्योंकि वर्तमान में अर्थव्यंजनपर्याय मौजूद है सत् स्वरूप है उसे अनित्य कैसे कहेंगे? यदि सत्स्वभाव को ही वर्तमान नय से असत् कहा तो झूंठ पाप के अनेक भेदों में से तीसरे नंबर का झूंठ है अतः भूत भाविकाल में वर्तमान पर्याय का अस्तित्व न होने से या चिर स्थायी न होने से असत् कहा है।

प्र.-1156 यदि इन अर्थव्यंजनपर्यायों का त्रिकाली अस्तित्व माना जाय तो क्या दोष है?

उत्तर- युगल पर्यायों को त्रिकाली सत् मानने पर प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव नहीं बन सकते हैं एवं इन अभावों का लोप करने पर, नहीं मानने पर कार्यद्रव्य अनादिअनंत हो जायेगा तथा अपूर्वकरण परिणाम, अभूतपूर्वसिद्ध भी नहीं बन सकते हैं, परिवर्तनशील अवस्थायें न बनने से इनका त्रिकाली सत् नहीं है।

प्र.-1157 हेय किसे कहते हैं?

उत्तर- छोड़ने योग्य अहितकारी सामग्री को, पाप में सहायक सामग्री, आश्रवबंध को हेय कहते हैं।

प्र.-1158 उपादेय किसे कहते हैं?

उत्तर- ग्रहण करने योग्य संवर निर्जरा की सामग्री को, साधकावस्था में धर्मायतनों को, रत्नत्रय को, देव शास्त्र गुरु को, षट्कर्तव्यों को, मूलगुणों को, अणुव्रत महाव्रतों को, संवर निर्जरा को उपादेय कहते हैं।

प्र.-1159 सत्य किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य गुण पर्यायों की सापेक्ष सत्ता का कथंचित् रूप से कथन और चिंतन करने को सत्य कहते हैं।

प्र.-1160 असत्य किसे कहते हैं?

उत्तर- नयनिरपेक्ष द्रव्य गुण पर्यायों का स्वेच्छानुसार कथन चिंतन करने को असत्य कहते हैं।

प्र.-1161 क्या वस्तुयें भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर लेतीं हैं?

उत्तर- हाँ, तभी तो संसार में अत्याचार, अनाचार, भूकंप, युद्ध महायुद्ध, बाढ़ें, तूफान, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि भयावह कार्य हो रहे हैं। सर्वत्र हा हाकार मच रहा है, सभी असुरक्षितपने का अनुभव कर रहे हैं, बहुबेटियां और कमजोर मानव सर्वत्र भयभीत है अतः ये सब वस्तुओं की मर्यादा के उल्लंघन के फल हैं।

प्र.-1162 तो क्या सभी वस्तुयें मर्यादा का उल्लंघन करतीं हैं?

उत्तर- अशुद्ध जीव और पुद्गल ये दो ही वस्तुयें अपनी[2] मर्यादा का उल्लंघन कर लेतीं हैं, शेष नहीं, तभी तो वास्तविक मोक्षमार्गी साधकगण निरंतर प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना आदि करते हैं।

प्र.-1163 ये युगल वस्तुयें किस कारण से अपनी मर्यादा का उल्लंघन करतीं हैं?

उत्तर- ये जीव और पुद्गल परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा मिथ्यात्व, प्रमाद, विषयकषायों के कारण अपनी[2] मर्यादा का उल्लंघन कर लेतीं हैं तभी तो संसार में नाना ईतियां भीतियां हो रही हैं।

प्र.-1164 भव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्ष, रत्नत्रय, होनहार की योग्यता के व्यक्त करने को, परिणामी स्वभाव को भव्य कहते हैं।

प्र.-1165 अभव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षप्राप्ति, रत्नत्रयप्राप्ति की योग्यता होने पर भी व्यक्त करने की योग्यता न होने, अपरिणामी स्वभाव को या सिद्धों का पुनः संसार रूप में परिणमन न करने को अभव्य कहते हैं।

प्र.-1166 ये भव्य अभव्य भाव क्या सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं?

उत्तर- पारिणामिक भाव की अपेक्षा ये दोनों भाव सभी द्रव्यों में पायें जाते हैं और नैमित्तिक भाव की अपेक्षा केवल जीवद्रव्य तथा पुद्गलद्रव्य में ही पाये जाते हैं।

प्र.-1167 योग्यता कितने प्रकार की होती है, नाम और लक्षण क्या हैं?

उत्तर- योग्यता दो प्रकार की होती है। **नाम-** शक्ति की योग्यता और व्यक्त करने की योग्यता। द्रव्य और गुणों में शक्ति है पर वह व्यक्त होगी ही ऐसा नियम नहीं हैं। जैसे अभव्य जीव में सिद्धत्व, केवलज्ञान प्राप्त करने की शक्ति है पर केवलज्ञानावरण सर्वघाती कर्मोदय से इसका एक अंश, एकप्रदेश मात्र भी व्यक्त नहीं हो सकता है। यदि अभव्य जीवों के इन गुणधर्मों की शक्ति ही न मानी जाये तो अघातियाकर्मों का, केवलज्ञानावरण कर्म का अस्तित्व ही नहीं बन सकता है अतः योग्यता योग्यता रूप में ही रहती है।

प्र.-1168 वस्तुओं के कुछ या अधिक युगलों से अनजान को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ वस्तुओं के कुछ या अधिक युगलों को सही रूप में न जानने को और सम्यग्ज्ञान के अभाव में मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-1169 वस्तुओं के अनेक युगलों में विश्वास करने वाले को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- यदि धर्मी पर विश्वास किया है तो धर्मों पर विश्वास करना ही चाहिये, यदि नहीं किया तो धर्मी पर विश्वास कैसा? जैसे पिताजी पर विश्वास किया है तो पिताजी की बातों पर भी पूरा विश्वास करना चाहिये। पिताजी की एक बात पर विश्वास न करने से सभी बातों पर अविश्वास हो जाता है ऐसे ही अनेक धर्मों को मानकर भी एक धर्म पर विश्वास नहीं किया तो समस्त विश्वास जहर के समान मारक हो जाता है।

प्र.-1170 समस्त विषयों पर विश्वास करना पूर्णज्ञान का कार्य है तो अल्पज्ञानियों का विश्वास पूर्ण कैसे हो सकता है?

उत्तर- यदि कुछ धर्मयुगलों को जानकर विश्वास कर लिया तो इसीके समान समस्त धर्म युगलों को अनुमान ज्ञान से विश्वास कर लेना चाहिये। जैसे मंडी में किसी माल को क्रयविक्रय करने के लिए थोडा सा सेंपल लेकर या देकर पूरे माल का क्रयविक्रय कर लेते हैं ऐसे ही थोड़ा सा अविश्वास पूर्ण विश्वास को और थोड़ा सा विश्वास भी संपूर्ण अविश्वास को नष्ट कर देता है अतः जितना और जैसा अपने पास ज्ञान है उतना वैसा ही सम्यक् सापेक्ष विश्वास करना चाहिये, शेष में अनुमानज्ञान के द्वारा विश्वास करना चाहिये।

प्र.-1171 चार ज्ञानधारी गणधर श्रुतकेवली अनंत धर्मयुगलों को न प्रत्यक्ष जानते हैं, न प्रत्यक्ष विश्वास है तो फिर उन्हें मिथ्यादृष्टि क्यों न माना जाये?

उत्तर- आपका कहना सत्य है कि छद्मस्थ पूर्ण श्रुतकेवली, गणधरादि अनंतयुगलों को न प्रत्यक्ष जानते हैं, न प्रत्यक्ष विश्वास है फिर भी अश्रद्धान के मूल प्रत्यय मिथ्यात्व और अनंतानुबंधीकषाय का या संयमघाती का उदयाभावी क्षय होने से मिथ्यादृष्टि असंयमी उन्हें नहीं कह सकते अतः अनंत धर्मयुगलों को प्रत्यक्ष जानने, विश्वास करने वाले को सर्वदर्शी, परमावगाढ़ सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

प्र.-1172 अनुमानज्ञान किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमानज्ञान कहते हैं। दो हैं। नाम- सम्यक् और मिथ्या अनुमान।

प्र.-1173 साधन किसे कहते हैं?

उत्तर- इष्टानिष्ट कार्यों की सिद्धि में सहायक उपायों को साधन कहते हैं। जैसे छत की प्राप्ति के लिए जीना, आत्मसिद्धि के लिए रत्नत्रयधर्म और सम्यक्रत्नत्रय युक्त साधुपद साध्य सिद्धि के लिए साधकतम साधन है।

प्र.-1174 साध्य किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसकी प्राप्ति के लिए उपाय किया जाये या साधन के, पुरुषार्थ के फल को साध्य कहते हैं।

प्र.-1175 इष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसको सज्जन धर्मात्मागण प्राप्त करना चाहते हैं, सिद्ध करना चाहते हैं और प्राप्ति के बाद में कभी भी कालांतर में छूटे नहीं, अलग नहीं हो, कोई छीन नहीं सके उसे इष्ट कहते हैं।

प्र.-1176 मनोनुकूल सामग्री को इष्ट कह सकते हैं क्या?

उत्तर- लोकव्यवहार में, लौकिक प्राणियों की दृष्टि में मनोनुकूल सामग्री को इष्ट कह सकते हैं किंतु आत्म साधना, आराधना में यह सामग्री अनिष्ट ही है, पतन और भ्रमण कराने वाली होने से इष्ट नहीं हो सकती।

प्र.-1177 अनिष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर- कष्टकारक होने से जिसको सज्जन पुरुष प्राप्त नहीं करना चाहते हैं, कदाचित् दुर्भाग्यवशात्

मिल गया तो उससे दूर रहना चाहते हैं अतः आत्मसाधना में बाधक सामग्री को अनिष्ट कहते हैं।

प्र.-1178 मन के प्रतिकूल सामग्री को अनिष्ट कह सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, भोगियों के मन के प्रतिकूल सामग्री को अनिष्ट कह सकते हैं फिर भी मोक्षमार्गियों के प्रतिकूल सामग्री के मिलने पर माध्यस्थभाव को धारण कर वैराग्य भावों को बढ़ाकर आत्मकार्यों में स्थिर होने से वह सामग्री इष्टानिष्ट प्रतिभासित नहीं होती है। यदि वैरागी को मन के प्रतिकूल सामग्री अनिष्ट मालुम होने लगे, अनुभव में आने लगे तो वह वैरागी कैसा? वह तो अनिष्टसंयोगी आर्तध्यानी बगुला भेषी है।

प्र.-1179 प्राप्त होने के बाद में यदि छूट जाये तो उसे इष्ट कह सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, परमार्थ दृष्टि से इष्ट वही है जो प्राप्त होने के बाद में अनंतानंत काल व्यतीत होने पर भी छूटे नहीं यह निश्चित है किंतु संसार में मनोनुकूल विषयभोगों की सामग्री को भी थोड़े समय के लिए इष्ट कह देते हैं पर जरा सोचो तो सही छूटने पर जो अनंतगुणी आकुलता प्राप्त करा दे तो वह इष्ट कैसा?

प्र.-1180 रत्नत्रय धर्म अनेक बार प्राप्त होकर छूट जाता है तो क्या यह अनिष्ट है?

उत्तर- जहाँ पर आचार्यों ने रत्नत्रयधर्म को परम इष्ट कहा है वहाँ पर रत्नत्रय के पूर्ण अंशों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि अपूर्ण अंश व्यवहार दृष्टि से इष्ट हैं किंतु परमार्थदृष्टि से पूर्ण अंश ही इष्ट हो सकते हैं अन्यथा इष्टानिष्ट की परिभाषा ही घटित न हो सकेगी।

नोटः- यहाँ तक 1180 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 38वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 39वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कुसंगति का फल एवं त्याग

लोइयजणसंगादो होइ मइमुहर कुडिलदुब्भावो।

लोइयसंगं तम्हा जोइवि तिविहेण मुंचाहो।।39।।

लौकिकजनसंगात् भवति मतिमुखरकुटिलदुर्भावः।

लौकिकसंगं तस्मात् दृष्ट्वा त्रिविधेन मुंचतात्।।

लोइयजण लौकिक जन **संगादो** संगति से **मइमुहर** मन चपल **कुडिल** कुटिल और **दुब्भावो** दुर्भावना युक्त **होइ** हो जाता है **तम्हा** अतः **लोइयसंगं** कुसंगति को **जोइवि** जानकर **तिविहेण** त्रियोगों से **मुंचाहो** छोड़ो।

प्र.-1181 लौकिक जन किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि गृहस्थ या साधु जो खरकर्मों से अपनी आजीविका चला रहे हैं तथा त्यागीव्रती भी आजीविका के कार्यों में लगकर जर जोरु जमीन के चक्कर में पड़ वैरविरोध को करते कराते हुए समय व्यतीत कर रहे हैं उनको लौकिक जन कहते हैं।

प्र.-1182 खरकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन कार्यों में प्रत्यक्षतः अनेक जीवों की विराधना हो रही हो उन्हें खरकर्म कहते हैं। जैसे हिंसक कारखाना, बूचड़खाना चलाना, शराब बनाना, वेश्याकर्म कराना आदि खरकर्म कहलाते हैं।

प्र.-1183 खरकर्म और पापकर्म में क्या अंतर है?

उत्तर- खरकर्म करनेवालों के मोक्षमार्ग की भूमिका ही नहीं बनती जबकि पापकर्म करनेवालों के मोक्षमार्ग भी बन जाता है। संवर और अवस्थित असंख्यात गुणश्रेणी कर्म निर्जरा भी होने लगती है यही अंतर है।

प्र.-1184 मोक्षमार्गी पापकर्म कैसे कर सकता है?

उत्तर- अणुव्रतियों के हिंसादि पाँचों पापों का थोड़ा त्याग और प्रवृत्ति ज्यादा होती है अतः संयमघाती मोहकर्म का प्रबल उदय होने से तथा हीन पुरुषार्थी होने से मोक्षमार्गी प्रमादी पापकर्म कर लेता है।

प्र.-1185 यह मनुष्य लौकिक है ऐसा जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- यह मनुष्य लौकिक है ऐसा जानकर त्रियोग से उसकी संगति का त्याग करना चाहिये।

प्र.-1186 ऐसे मनुष्यों को लौकिक क्यों कहा?

उत्तर- लौकिककार्यों को करने वाला होने से, इसीमें फंसानेवाला होने से लौकिक कहा है।

प्र.-1187 संगति किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अपने स्थान को छोड़कर सामने वाले व्यक्तियों के पास जाकर संपर्क करने को, वार्तालाप या दिनचर्या करने को संगति कहते हैं। दो भेद हैं। **नामः-** लौकिक संगति और लोकोत्तर संगति।

प्र.-1188 लौकिक संगति किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनेंद्र मत के बाहर मिथ्यादृष्टि, बहिरात्मा, विषयभोगी, लंपटी, असंयमी, लौकिक कार्यों को करने वाले जुआदि व्यसनसेवी व्यक्तियों के पास में गमन कर पहुंचने को लौकिक संगति कहते हैं।

प्र.-1189 लोकोत्तर संगति किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रयधर्म के फल को प्राप्त करने वाले अरिहंत सिद्धपद की प्राप्ति के लिए साधक आचार्य, उपाध्याय, साधु, अंतरात्मा सज्जन, मोक्षमार्गियों में, मुनिसंघों में जाकर मिल जाने को लोकोत्तर संगति कहते हैं।

प्र.-1190 लौकिक संगति का पहला फल क्या है?

उत्तर- लौकिक संगति से बंदरों जैसा मन चंचल होने से अच्छे कार्यों में लग नहीं पाता। लौकिक प्राणियों की दिनचर्यानुसार अपनी दिनचर्या हो जाती है **'संसर्गजाः दोषगुणाः भवन्ति'**। धागे को गुड़, में लगाने से स्वादिष्ट और चमड़े आदि में लगाने से दुर्गंधित हो जाता है ऐसे ही सज्जनों की संगति से गुण और दुर्जनों की संगति से दुर्गुण प्राप्त हो जाते हैं अतः जैसा मन हो वैसी संगति करो।

प्र.-1191 लौकिक संगति का दूसरा फल क्या है?

उत्तर- लौकिक जनों की संगति का दूसरा फल मन में तिर्यंचों जैसी कुटिलता, वक्रता, छलकपट होना है।

प्र.-1192 लौकिक संगति का तीसरा फल क्या है?

उत्तर- लौकिक जनों की संगति का तीसरा फल दुर्भावना कहा है जो पाप रूप है, अशुभ है, पतन स्वरूप है, कष्ट देने वाली है, आर्तरौद्रध्यान तथा कृष्ण नील कापोत लेश्या स्वरूप है।

प्र.-1193 लौकिक संगति से ये तीन ही फल प्राप्त होते हैं या और भी?

उत्तर- लौकिक जनों की संगति से इन तीन फलों के अलावा और भी अनिष्टकारी फल प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार हैं जैसे सज्जनों के प्रति, धर्म और धर्मात्माओं के प्रति लज्जा मर्यादा, विनयशीलता समाप्त हो जाती है। हिताहित के, कर्तव्याकर्तव्य के विवेकादि गुण नष्ट हो जाते हैं व उद्दंडता आदि दुर्गुण आ जाते हैं।

प्र.-1194 मायाचार किसे कहते हैं और फल क्या है?

उत्तर- मन, वचन, काय से भिन्न भिन्न आचारविचार को मायाचार कहते हैं। जैसे व्यापारी मन में धन कमाने का विचार करता है, ग्राहक के सामने वचन से बोलता है कि दो पैसा कमाना है या मूल

कीमत पर दे रहा हूँ या बंद करने का समय होने से घाटे में दे रहा हूँ आदि। काय से नापतोल में कम ज्यादा करता है, डांडी मारता है, मिलावट करता है, नकली को असली कहकर देता है आदि का नाम कुटिलता है। इस कुटिलता से तिर्यंचायु का और स्त्रीवेद का आश्रवबंध होना फल है।

प्र.-1195 लौकिक जनों की संगति से ये सद्‌गुण कैसे समाप्त हो जाते हैं?

उत्तर- आज पाश्चात्य संगति और संस्कृति के कारण लज्जा मर्यादा समाप्त हो रही है। मातापिता, गुरुजनों के सामने किसानों, मजदूरों की तरह बोलने लगते हैं। मातापिता गुरुजन नीचे बैठे हैं, खड़े हैं, बेटाबेटी, बहुऐं या पत्नी कुर्सी पर बैठीं हैं, झूला झूल रही हैं और बड़ों को बैठे बैठे ही ऑडर चलाती हैं ऐसा करो, ऐसा मत करो आदि ऐसे ही हिताहित का, कर्तव्याकर्तव्यादि का विवेक समाप्त होने से, जो मन में आया सो खाया और किया सो इसीका फल है कि चारित्रहीनता, दुरभिमानता, अनाज्ञाकारितादि दोष पाये जा रहे हैं।

प्र.-1196 इन सद्‌गुणों के अभाव में क्या हानि है?

उत्तर- इन सद्‌गुणों के अभाव में गुणहीन व्यक्तियों के द्वारा जब अपने साथ घटनायें घटती है तब पता चलता है कि गुणहीनता का क्या फल है? इसी तरह जब अपन स्वयं गुणहीनता पूर्वक व्यवहार करते हैं तो इनको भी तकलीफ होती होगी अतः कष्ट और कलंक से बचने के लिए, गुणवान बनने के लिए सद्‌गुणों को अपनाना चाहिये अन्यथा गुणहीनता से सर्वत्र सभी को हानि ही हानि होती है आदि हेतुओं से गुणवानों की संगति करना तथा गुणहीनों की संगति छोड़ना चाहिये। इससे ही स्वपर की रक्षा होती है।

प्र.-1197 लौकिक संगति के भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- लौकिक संगति के दो भेद हैं। नाम-ः कुसंगति और लौकिक सत्संगति।

प्र.-1198 कुसंगति किसे कहते हैं?

उत्तर- सप्त व्यसनसेवी, अनर्गल पापासक्त तथा धर्मविरुद्ध व्यक्तियों की संगति को कुसंगति कहते हैं।

प्र.-1199 कुसंगति का क्या फल है?

उत्तर- इस कलिकाल में अनेक सज्जनों की संगति से दुर्जन सज्जन नहीं बन पाते किंतु दुर्जनों की संगति से अनेक सज्जनों को दुर्जन बनने में देर नहीं लगती है।

प्र.-1200 लौकिक सत्संगति किसे कहते हैं?

उत्तर- सदाचारी, सद्विचारी, मंदकषायी, शुभ लेश्या वालों की संगति को लौकिक सत्संगति कहते हैं।

प्र.-1201 ऐसे गुणवान व्यक्तियों की संगति को लौकिक सत्संगति क्यों कहा?

उत्तर- लौकिक गुणवान व्यक्तियों के सत्संग में कथंचित् धर्मचर्चा, आध्यात्मिक चर्चा तो होती है किंतु तदनुसार दिनचर्या न होने से इनकी संगति को लौकिक सत्संगति कहा है।

प्र.-1202 केवल धर्म शिबिर लगाने को, शामिल होने को क्या सत्संग कह सकते हैं?

उत्तर- नहीं कह सकते हैं जैसे केवल औषधि के लाने से, सम्हालकर रखने से, विश्वास कर लेने से बीमारी दूर नहीं होती है किंतु रोगानुसार पथ्यापथ्य पालने और औषधि सेवन से रोग दूर होता है ऐसे ही यदि सत्संग है तो एकत्व रूप में विश्वास, ज्ञान और चर्या होना चाहिये तभी यह यथार्थ में धर्म शिबिर कहलायेगा अन्यथा चर्या, चर्चा में भिन्नता होने से मायाचार/ छलकपट का शिबिर है और भोले जीवों को ठगना है।

प्र.-1203 लौकिक पद का अर्थ लोकस्थित व्यक्ति करने में क्या दोष है?

उत्तर- लौकिक पद का यह अर्थ करने पर सभी 14 गुणस्थान वाले महापुरुषार्थियों को लौकिक

व्यक्ति मानने का प्रसंग आने से फिर लोकोत्तर व्यक्ति कौन होगा? यहाँ लुक् धातु से इकण् प्रत्यय स्वामीवाचक लगाने से लौकिक पद की निष्पत्ति हुई है जिसका अर्थ होता है लोक का स्वामी इस कारण लोक के स्वामी कर्ताधर्ता महापुरुष न होकर केवल मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

नोटः- यहाँ तक 1203 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 39वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 40वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्यादृष्टि कौन?

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मइरदो विरुद्धो सो जीवो सम्मउम्मुक्को।।40।।

उग्रस्तीव्रो दुष्टो दुर्भावो दुःश्रुतो दुरालापः।
दुर्मतिरतो विरुद्धः स जीवो सम्यक्त्वोन्मुक्तः।।

जो **उग्गो** उग्र **तिव्व** तीव्र **दुट्ठो** दुष्टस्वभावी **दुब्भावो** दुर्भावना युक्त **दुस्सुदो** दुःश्रुत **दुरालावो** दुष्टभाषी **दुम्मइरदो** दुर्मति में रत **विरुद्धो** विरुद्ध स्वभाव वाला है **सो** वह जीव **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्को** उन्मुक्त है।

प्र.-1204 उग्र, तीव्र और दुष्ट क्रोध में क्या अंतर है?

उत्तर- सामान्यतया क्रोधकषायोदय की अपेक्षा इन तीनों परिणामों में कोई अंतर नहीं है फिर भी जघन्य मध्यम और उत्तम की अपेक्षा सामान्य क्रोध, क्रोधतर और क्रोधतम प्रत्यय की अपेक्षा अंतर हो जाता है।

प्र.-1205 उग्रक्रोध किसे कहते हैं?

उत्तर- सामान्य क्रोध में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों के निमित्त से कुछ वृद्धि होने को उग्र क्रोध कहते हैं।

प्र.-1206 तीव्रक्रोध किसे कहते हैं?

उत्तर- उग्रक्रोध के उदय से उत्पन्न हुए परिणामों में कुछ अधिक वृद्धि होने को तीव्र क्रोध कहते हैं।

प्र.-1207 दुष्टक्रोध किसे कहते हैं?

उत्तर- क्रोधतर, क्रोधतम कषायोदय से उत्पन्न परिणामों में अधिकतम वृद्धि होने को दुष्टक्रोध कहते हैं।

प्र.-1208 ये तीनों अवस्थायें क्या केवल क्रोधकषाय की होती हैं?

उत्तर- नहीं, ये तीनों अवस्थायें क्रोध कषायवत् मान माया लोभ हास्यादि कषायों की भी होतीं हैं।

प्र.-1209 दुर्भावना किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- घाति अघातिकर्मों की पापप्रकृतियों में तीव्र स्थितिअनुभागबंध कराने वाली, पापाश्रवबंध कराने वाली भावना को, विचारों को दुर्भावना कहते हैं। **भेद-** संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हैं। **नाम-** अशुभ मन वचन काय की क्रियाओं के नाम ही दुर्भावनाओं के नाम हैं।

प्र.-1210 वचन और काय की क्रिया को दुर्भावना क्यों कहा, इनसे क्या हानि है?

उत्तर- कार्य कारण में अभेद कर आत्मा में मलिनता लाने के कारण वचन और काय की क्रिया को भी दुर्भावना में ग्रहण कर लिया है क्योंकि मन की दुर्भावना से अपना ही पतन होता है तो दुर्भावना पूर्वक वचन और काय की क्रियाओं से स्वपरोभय तथा धर्म का पतन होता है यही हानि है।

प्र.-1211 दुःश्रुतज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- सर्वघाति दर्शनमोहोदय से युक्त तथा श्रुतज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से उत्पन्न ज्ञान को

दु:श्रुतज्ञान या चोरशास्त्र, हिंसाशास्त्रादि परमार्थशून्य उपदेशों को मिथ्या श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्र.-1212 दुरालापी/दुष्टभाषी किसे कहते हैं?

उत्तर- दुर्जनों जैसे या किसानों मजदूरों जैसे वचनालाप करने वाले को दुरालापी/दुष्टभाषी कहते हैं।

प्र.-1213 दुर्भावना के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- दुर्भावना के स्वामी बुद्धि पूर्वक मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर प्रमत्त गुणस्थान पर्यंत और अबुद्धि पूर्वक 7वें गुणस्थान से 10वें गुणस्थान तक के महामुनि हैं।

प्र.-1214 अबुद्धि पूर्वक दुर्भावना के स्वामी श्रेणीवाले मुनि क्यों कहे?

उत्तर- उभयश्रेणियों में यद्यपि सर्वोत्कृष्ट धर्मध्यान और शुक्लध्यान स्वीकार किया है फिर भी कषाय कर्म का उदय और तदनुरूप परिणति होने से पापप्रकृतियों का स्थितिअनुभागबंध हो रहा है इस कारण कषायों को ही अशुभभावनायें, दुर्भावनायें कहा है।

प्र.-1215 बुद्धि पूर्वक और अबुद्धि पूर्वक किसे कहते हैं?

उत्तर- अपनी जानकारी में आने वाले स्थूल विचारों को बुद्धि पूर्वक एवं जो विचार छद्मस्थों का विषय न हो किंतु एकमात्र प्रत्यक्ष ज्ञानियों का विषय हो उसे अबुद्धि पूर्वक कहते हैं।

प्र.-1216 दुर्मति ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम तथा दर्शनमोहोदय से मिश्रित मतिज्ञान को मिथ्या मतिज्ञान कहते हैं। बिना किसी के उपदेश के निरपराधी प्राणियों को बांधने, छेदने, मारने, काटने, जाल बनाने, जलाने आदि कष्ट देने के विचारों को मिथ्यामतिज्ञान या दुर्मति ज्ञान कहते हैं।

प्र.-1217 यह जीव दुर्मति ज्ञान के द्वारा किस प्रकार से जानता है?

उत्तर- यह जीव मिथ्या मतिज्ञान से शुभाशुभकार्यों को यथार्थरूप में न जानकर शराबी वत् अन्यथा जानता है और जो जानता है उसमें भी निर्णायकपने की दृढ़ता न होने से अस्थिरपने से जानता है।

प्र.-1218 आजकल लौकिक प्राणी अपने विषयों को दृढ़तापूर्वक ही जानते हैं तभी तो लोकव्यवहार सही चलता है अन्यथा सर्वत्र संदेह होने से लोकव्यवहार कैसे चलेगा?

उत्तर- कदाचित् मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायों के मंदोदय होने पर मतिज्ञानावरण तथा श्रुतज्ञानावरण कर्म के विशेष क्षयोपशम से उत्पन्न ज्ञानों के द्वारा बाह्य विषयों को भली प्रकार से जान लेने पर भी इसे सम्यग्ज्ञान न कहकर मिथ्याज्ञान ही कहा है। लौकिक विषयों को यथावत् जानने से मोक्षमार्ग प्रशस्त नहीं होता है क्योंकि कल्याण का मार्ग भेदविज्ञान से प्रारंभ होता है इस कारण लोक में संदेह हो या ना हो इससे आत्मा का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।

प्र.-1219 विरुद्ध स्वभावी किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग के या सज्जनों के विपरीत स्वभावी को या मिथ्यामार्गी को विरुद्ध स्वभावी कहते हैं।

प्र.-1220 इनके अलावा और भी मोक्षमार्ग के विरुद्ध स्वभाव हो सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, हो सकते हैं वे परिणाम मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से उत्पन्न विषयकषायों को तथा हास्य, रति, अरति आदि नोकषायों को, प्रमाद और अज्ञान को विरुद्ध स्वभाव कहते हैं।

प्र.-1221 हास्यादि 9 नोकषायें ईषत् कषायें हैं फिर इनको विरुद्ध स्वभावी क्यों कहा?

उत्तर- जैसे सेनापति का बल पाकर सेना काम करती है यदि सेनापति का बल न मिले तो सेना कुछ भी काम नहीं कर सकती वैसे ही ये हास्यादि 9 नोकषायें कषाय रूपी सेनापति का बल पाकर काम कर डालतीं हैं अन्यथा ये जली हुई रस्सी के समान है तभी तो दोनों श्रेणियों में

हास्यादि 9 नोकषायों का उदय होने पर भी ध्यान और ध्यानफल की प्राप्ति में कोई बाधा नहीं डाल पातीं हैं तथा प्रायः ये 9 नोकषायें मृत तुल्य हो जातीं हैं किंतु अनंतानुबंधी कषायों के उदय में न धर्मध्यान होता है, न धर्मध्यान की भूमिका बन पाती है अतः इन हास्यादि कषायों को कषायों के समान कहा है जो विरुद्ध स्वभावी है।

प्र.-1222 गाथोक्त परिणाम किस किस कर्म के निमित्त से होते हैं?

उत्तर- दुर्मति और दुश्रुत परिणाम मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होते हैं। उग्र, तीव्र, दुष्टादि भाव चारित्र मोहोदय से होते हैं।

नोटः- यहाँ तक 1222 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 40वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 41वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्यादृष्टियों के परिणाम

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो अणिट्ठपिसुणो सगव्वियोसूयो।

गायणजायणभंडण दुस्सण सीलो दु सम्मउम्मुक्को।।41।।

क्षुद्रो रुद्रो रुष्टो अनिष्टः पिशुनः सगर्वितोऽसूयः।

गायक याचक भंडक दूषक शीलस्तु सम्यक्त्वोन्मुक्तः।।

दु जो **खुद्दो** क्षुद्र **रुद्दो** रौद्र **रुट्ठ** रुष्ट **अणिट्ठ** अनिष्ट **पिसुणो** चुगलखोर **सगव्विय** घमंडी **असूयो** ईर्ष्यालु **गायण** गायक **जायण** याचक **भंडण** झगड़ालु **दुस्सणसीलो** दोषस्वभावी आदि इन परिणामों वाले जीव **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्को** उन्मुक्त मिथ्यादृष्टि है।

प्र.-1223 क्षुद्र किसे कहते हैं?

उत्तर- नीचगोत्र का आश्रवबंध कराने वाले परिणामों को तथा तत्संबंधी क्रियाओं को क्षुद्र कहते हैं।

प्र.-1224 रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- पापों, सप्तव्यसनों का सेवन करके सफलता मिलने पर प्रसन्न होने को रौद्रध्यान कहते हैं।

प्र.-1225 यह रौद्रध्यान कौन सा भाव है तथा किस कर्म के उदय से होता है?

उत्तर- लोभ, राग के कारण रौद्रध्यान औदयिकभाव है। यद्यपि रौद्रध्यान की भूमिका समस्त कषायोदय में बनती है किंतु वर्तमान में केवल लोभोदय से हर्षभाव उत्पन्न होता है सो इसे ही रौद्रध्यान कहते हैं।

प्र.-1226 जब यह रौद्रध्यान लोभ कषायोदय से होता है तो किस लोभोदय से?

उत्तर- अनंतानुबंधी तीन लोभ, हास्य रति, त्रिवेदोदय से रौद्रध्यान होता है, संज्वलन के उदय से नहीं क्योंकि ग्रंथकारों ने पाँचवें गुणस्थान तक ही रौद्रध्यान का अस्तित्व माना है इसके आगे नहीं।

प्र.-1227 अशुभ तैजस समुद्घात कहाँ होता है और इसमें कौन सा ध्यान होता है?

उत्तर- रौद्रध्यान का उत्पाद और सकलसंयम का व्यय एक ही समय में होने से, अशुभ तैजस समुद्घात 6वें गुण. में संज्वलन के तीव्रोदय में हिंसानंदी रौद्रध्यान होता है यही अनेकांत की महिमा है।

प्र.-1228 प्र. बारहसौछव्वीस और प्र. बारहसौसत्तावीस में पूर्वापर विरोध क्यों नहीं है?

उत्तर- विवक्षा भेद होने से दोनों प्रश्नोत्तरों में कोई विरोध नहीं है। प्र. 1226 में सामान्य या बहुलता की अपेक्षा कथन किया है कि 5वें गुण. तक ही रौद्रध्यान होता है इसके आगे नहीं तथा प्र. 1227 में विशेष या अल्पता की अपेक्षा अशुभतैजससमुद्घात अशुभतैजसऋद्धि की अपेक्षा कहा

है क्योंकि **तैजसमपि** त. अ. 2 सू. 48 में तैजसशरीर की, ऋद्धि की प्राप्ति और उपयोग प्रमत्त मुनियों के ही होता है।

प्र.-1229 इन रौद्रध्यानों का फल एक ही प्रकार का है या अलग अलग?

उत्तर- नहीं, रौद्रध्यान की उत्पत्ति के कारण अलग अलग होने से फल भी अलग अलग होते हैं जैसे अनंतानुबंधी कषायोदय से उत्पन्न रौद्रध्यान मुख्यतया नरकगति का, अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से उत्पन्न रौद्रध्यान तिर्यंचगति आदि तीन गतियों का, प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से उत्पन्न रौद्रध्यान देवगति का कारण है। यह रौद्रध्यान मुख्य कारणों के सद्भाव में संसार का कारण एवं मुख्य कारणों के अभाव में पापकर्म के आश्रवबंध के साथ साथ मोक्ष का भी कारण है।

प्र.-1230 यह रौद्रध्यान मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है?

उत्तर- कार्य की उत्पत्ति में सद्भावात्मक और अभावात्मक ये दो कारण माने हैं अतः रौद्रध्यान मोक्षमार्ग की प्राप्ति वृद्धि, फलप्राप्ति में अभावात्मक परंपरा कारण है और परेमोक्षहेतू सूत्र से विरोध भी नहीं है।

प्र.-1231 संज्वलन कषाय के उदय में रौद्रध्यान क्यों नहीं होता है?

उत्तर- क्योंकि यह रौद्रध्यान असंयम प्रत्यय है, हिंसादि पापों से उत्पन्न होता है, आदिकी 12 कषायों के अभाव में मुनिपना प्राप्त होता है इसलिए रौद्रध्यान संयम प्रत्यय नहीं है क्योंकि संयम रूपी तीक्ष्ण शस्त्र के द्वारा रौद्रध्यान की जड़ों का छेदन भेदन कर दिया जाता है यद्यपि सकल संयम के साथ में प्रमाद रहता है और प्रमाद से सभी पाप होते हैं फिर भी यह प्रमाद संज्वलन कषाय संबंधी होने से पापों का अस्तित्व नहीं रहता है कारण यह प्रमाद बिजली के चमकने जैसा होता है जैसे बिजली चमकी और क्षणमात्र में विनाश को प्राप्त हो जाती है अतः मुनियों के रौद्रध्यान और हिंसादि पाप नहीं होते हैं। कदाचित् प्रमाद व कषायों की तीव्रता होने से पापों में एवं रौद्रध्यानों में भावात्मक प्रवृत्ति हो जाती है तभी तो प्रतिक्रमण करते हैं।

प्र.-1232 आयु कर्म के बंध का कारण रौद्रध्यान है क्या?

उत्तर- नहीं, आयुबंध का कारण न केवल कषाय है और न केवल रौद्रध्यान। यदि आयुबंध का कारण कषाय और रौद्रध्यान होता तो जी.कां. कषाय. के कथन में जलरेखावत् क्रोधादि में किसी भी आयु का बंध न होने से अबंध कहा है फिर भी कर्मकांड में 7वें गुण. तक देवायु का बंध कहा है अतः आयुबंध का कारण केवल रौद्रध्यान नहीं है किंतु लेश्या और अपकर्षकाल भी है।

प्र.-1233 आयु बंध का कारण कषाय है क्या?

उत्तर- आयुबंध का कारण कषाय भी नहीं है यदि कषाय होती तो 10वें गुणस्थान तक कषायों का सद्भाव तथा लोभकषाय का उदय होने से आयुकर्म का बंध होना ही चाहिये था पर होता नहीं है।

प्र.-1234 आयुकर्म के बंध का मुख्य कारण क्या है?

उत्तर- आयुकर्म बंध के मुख्य कारण आठ अपकर्षकाल तथा लेश्याओं के उत्तम, मध्यम, जघन्य भेद से अठारह अंश इस प्रकार दोनों मिलाकर आयु बंध के योग्य 26 अंश होते हैं।

प्र.-1235 तो क्या ये 26 अंश सभी जीवों के होते हैं?

उत्तर- चरमशरीरी तद्भव मोक्षगामियों के ये कोई भी अंश नहीं होते हैं क्योंकि इनको मोक्ष में जाना है यदि ये नवीन आयु का बंध करेंगे तो चरमशरीरी और तद्भव मोक्षगामी नहीं हो सकते हैं इसी तरह नित्यनिगोदिया जीवों के भी इसमें से कुछ अंश नहीं होते हैं और कुछ होते हैं इनके अलावा समस्त प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थान पर्यंत जीवों के यथासंभव ये स्थान पाये जाते हैं।

प्र.-1236 आयु के बंध योग्य 26 अंशों में कौन किन जीवों के पाये जाते हैं?

उत्तर- 8 अपकर्षकाल सभी जीवों के पाये जाते हैं किंतु जिनके जो या जितनी लेश्यायें होतीं हैं उनके उतने ही उत्तम मध्यम जघन्य अंश पाये जायेंगे। जैसे सातवें नरक के नारकियों में परम कृष्णलेश्या है तो उनके स्वस्थान संक्रमण में ही उत्तम, मध्यम, जघन्य अंश बनते हैं ऐसे ही सभी नारकियों के यथासंभव अशुभ लेश्याओं के उत्तम, मध्यम, जघन्य अंश, भवनत्रिक देवों में आदि की चार लेश्यायें, वैमानिक देवों के तीन शुभ लेश्यायें और सर्वार्थसिद्धि में एक शुक्ललेश्या, भोगभूमियों के तीन शुभ लेश्यायें, एकेंद्रियों के, विकलत्रयों के तीन अशुभ लेश्यायें तथा कर्मभूमिज मनुष्य, तिर्यंचों के छहों लेश्यायें होतीं हैं।

प्र.-1237 क्या सभी रौद्रध्यानों के परिणाम समान होते हैं या असमान?

उत्तर- नहीं, सभी रौद्रध्यानों में सामान्य जाति की अपेक्षा समानता है फिर भी शक्ति और फल की अपेक्षा असमानता है तथा गुणस्थानों की अपेक्षा भी आगे[2] हीनता है क्योंकि आगे[2] गुणस्थानानुसार कषायों की शक्ति और वासनाकाल भी कम[2] होने से रौद्रध्यानों की मात्रा में अंतर हो जाता है।

प्र.-1238 रुष्ट किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- क्रोधोदय से उत्पन्न भावों को या असहनशीलता को रुष्ट कहते हैं। अनंतानुबंधी आदि चारों कषायों के क्रोध के 4 और असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं जो अनाद्यनंत, अनादिसांत, सादिसांतभंग सहित हैं।

प्र.-1239 अनिष्ट से यहाँ क्या हानि है?

उत्तर- जो इष्ट नहीं उसे अनिष्ट कहते हैं। मोक्षमार्ग में सहायक षडायतन, पंचपरमेष्ठी इष्ट हैं तो इनसे विरुद्ध षड्अनायतन अनिष्ट हैं जैसे जहर के संसर्ग से पौष्टिक दूध भी मारक हो जाता है वैसे ही मोक्षमार्ग मिथ्या देव आदि के संसर्ग से, साहचर्य से मलिन और नष्ट हो जाता है यही हानि है।

प्र.-1240 मिथ्यादेव, मिथ्याशास्त्र और मिथ्यागुरु को अनिष्ट क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यादेव, मिथ्याशास्त्र, मिथ्यागुरु के निमित्त से मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र की उत्पत्ति के साथ साथ मोक्षमार्ग भी नष्ट हो जाता है इसीलिए इन तीनों को अनिष्ट कहा है ।

प्र.-1241 मिथ्यादेवशास्त्रगुरु मोक्षमार्ग में सर्वथा अनिष्ट हैं क्या?

उत्तर- मिथ्यादेवशास्त्रगुरु मोक्षमार्ग में सर्वथा अनिष्ट नहीं किंतु यदि साधक दृढ़धर्मी है तो इनके द्वारा शीघ्र ही आत्मसिद्धी करता हुआ जैसे भ. महावीर ने इंद्रभूति आदि 1503 को मोक्षमार्गी बना दिया। हाँ, साधक कमजोर ध्यानी है तो इनके लिए वे मिथ्यादेवादि अनायतन कारण बन जाते हैं।

प्र.-1242 पिशुनता या चुगलखोरीपना किसे कहते हैं?

उत्तर- नारद की तरह कलह, वैरविरोध के लिये यहाँ की बातें वहाँ और वहाँ की बातें यहाँ, घटी या अघट घटनायें सुनकर परस्पर में झगड़ा करा देने को पिशुनता या चुगलखोरी कहते हैं।

प्र.-1243 गर्व किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मान को गर्व कहते हैं। इसके अनंतानुबंधी आदि मान चार, संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हैं। इन्हीं 4 मानों को ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप, शरीर से गुणा करने पर 32 भेद हो जाते हैं।

प्र.-1244 इस गर्व का क्या फल है, मानी व्यक्ति कैसा होता है और क्या हानि है?

उत्तर- बाहुबलि मुनिराज मान के कारण घोर तप करके भी केवलज्ञान को प्राप्त नहीं हुए तथा त्रिखंडी रावण मान कषाय के कारण नरकगति का पात्र हुआ जैसे जो पेड़ अकड़े खड़े रहते हैं वे तूफान और बाढ़ आने के कारण जड़मूल से उखड़ जाते हैं या टूट जाते हैं अपना अस्तित्त्व ही खो बैठते हैं यही हानि है।

प्र.1245 असूयावान ईर्ष्यालू व्यक्ति कैसा होता है?

उत्तर- दूसरों के धन, वैभवादि शक्तियों को देखकर सुनकर जलनभाव को, ईर्ष्या को असूया कहते हैं। यह व्यक्ति इतना गूढ़ होता है कि इसके रहस्य को समझना देवों के लिए भी बड़ा कठिन है।

प्र.-1246 ईर्ष्या कितने प्रकार की होती है और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधी मायादि चार प्रकार की, संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रकार की ईर्ष्या होती है।

प्र.-1247 गायन और गायक किसे कहते हैं इसे सम्यग्दर्शन से उन्मुक्त क्यों कहा?

उत्तर- धनादि की आकांक्षा कर जिस किसी भी व्यक्ति के गुणों को गद्य पद्य रूप में वचनों के द्वारा लय पूर्वक गाने को गायन कहते हैं और गाने वाले को गायक कहते हैं क्योंकि ऊंचनीच, गुण दोष का विचार किये बिना केवल धनाकांक्षा से गुणकीर्तन, प्रसंशा करने के कारण मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-1248 केवल गुण कीर्तन करने को मिथ्यात्व कहा है क्या?

उत्तर- नहीं, केवल गुण कीर्तन करना, स्तवन करना मिथ्यात्व नहीं है यदि इसे मिथ्यात्व कहोगे तो मुनियों के मूलगुणों में स्तुति और वंदना मूलगुण क्यों कहे? श्रावकों के आवश्यक कर्तव्यों में से पूजा की जयमाला में गुणकीर्तन, स्तवन करना दोष न होकर गुण है अतः उद्देश्यानुसार गुण और दोष हो जाते हैं।

प्र.-1249 याचना किसे कहते हैं?

उत्तर- लौकिक व लोकोत्तर, भोगोपभोग और धार्मिक सामग्री मांगने को याचना कहते हैं।

प्र.-1250 याचना करने वालों को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- यह याचक अपने पुरुषार्थ तथा भाग्य पर विश्वास न कर, पुरुषार्थहीन हो शक्ति को छिपाकर घर घर में उदरपूर्ति के लिए भीख मांगने चल दिया यह याचक विवेकहीन, प्रमादी होकर भक्ष्याभक्ष्य का, नीचऊंच का, मानापमान की चिंता न होने से मिथ्यादृष्टि कहा। यदि ये भिखारी शरीर से परिश्रम करें तो स्वास्थ्य भी अच्छा रहे, मानसम्मान की रक्षा हो, परिवार में संस्कार अच्छे पड़ेंगे, धर्म एवं प्रभुभक्ति के लिये भी समय निकल आयेगा अतः अपने भाग्य और पुरुषार्थ पर विश्वास न होने से याचक को मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-1251 भाग्य और पुरुषार्थ में क्या अंतर हैं?

उत्तर- पूर्वबद्ध कर्मोदय में आने से भाग्य और बुद्धि अबुद्धि पूर्वक योगक्रिया से पुरुषार्थ हैं यही अंतर है।

प्र.-1252 भाग्य और पुरुषार्थ के भेद नाम और लक्षण बताओ?

उत्तर- भाग्य और पुरुषार्थ के दो दो भेद हैं। **भाग्य के दो भेद-:** जो आत्मसुखशांति में सहायक चेतन अचेतन सामग्री प्राप्त कराये उसे **सौभाग्य** तथा जो नाना आकुलताओं की, कष्टों की प्राप्ति में सहायक चेतन अचेतन सामग्री प्राप्त कराये उसे **दुर्भाग्य** कहते हैं। **पुरुषार्थ के दो भेद-:** रत्नत्रय प्राप्ति की भूमिका, उत्पत्ति, वृद्धि और फल की प्राप्ति के लिए वर्तमान में मन वचन काय की उद्देश्यानुसार क्रिया को **सम्यक् पुरुषार्थ** और चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कराने वाले, नाना कष्टों को प्राप्त कराने वाले कार्यकलापों को अथवा मिथ्या आचरण को **मिथ्या पुरुषार्थ** कहते हैं।

प्र.-1253 लौकिक और लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि भाग्य से होती है या पुरुषार्थ से?

उत्तर- लौकिक और लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों से होती है।

प्र.-1254 उभय कार्यों की सिद्धि भाग्य से हुई है या पुरुषार्थ से यह कैसे समझें?

उत्तर- अबुद्धिपूर्वक जिन कार्यों की सिद्धि स्वप्नवत् बिना प्रयत्न के होती है उन्हें भाग्य से और

जिनकी सिद्धि मन, वचन और काय के प्रयत्न से हुई है उसे पुरुषार्थ से सिद्ध हुआ ऐसा समझना चाहिये अतः उभय साधनों से ही कार्यों की सिद्धि होती है, एक से नहीं।

प्र.-1255 केवल भाग्य से या पुरुषार्थ से कार्य सिद्धि मानने में क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, भाग्य के बिना पुरुषार्थ और पुरुषार्थ के बिना भाग्य की सिद्धि नहीं हो सकती अतः मुख्य और गौण की विवक्षानुसार कार्य की सिद्धि होती है यह नियम सभी न्यायाचार्य मानते हैं।

प्र.-1256 केवल याचना करने वालों को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- केवल याचकों को मिथ्यादृष्टि नहीं कहा है किंतु अपने भाग्य और पुरुषार्थ पर विश्वास न कर केवल भोग सामग्री मांगने वालों को मिथ्यादृष्टि कहा है यदि धर्म के निमित्त कदाचित् धर्म सामग्री मांगता है तो हानिकारक नहीं है क्योंकि याचना कर्मों को काटने के लिये की है, ना कि कर्मों को बांधने के लिये। यदि मांगना ही है तो क्षुद्र वस्तु क्यों मांगते हो? उत्कृष्ट, चिरस्थायी शाश्वत वस्तु मांगो जो प्राप्त होने के बाद में कभी छूटे नहीं तथा रखवाली की भी चिंता न करनी पड़े।

प्र.-1257 भंडण किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- नारकियों या कुत्तों की तरह क्षण क्षण में लड़ाई झगड़ा करने को भंडण कहते हैं। दो भेद हैं। नामः- अध्यात्म या अंतरंग और बहिरंग लोकदृष्टि।

प्र.-1258 आध्यात्मिक दृष्टि में भंडण का क्या फल है?

उत्तर- अध्यात्मदृष्टि की अपेक्षा किसी भी प्रकार से लड़ाई झगड़ा किया जाय तो वह कषायभाव होने से हानिकारक है, आत्मा में मलिनता लाने वाला है, मोक्षमार्ग को नष्ट करने वाला है। कदाचित् आत्मसंशोधन के लिये अंतर्बाह्य विकारों से युद्ध करना पड़े तो हानिकारक नहीं है क्योंकि उद्देश्यानुसार ही आत्मोत्थान और पतन होता है। अध्यात्म युद्ध कषाय पूर्वक किया जाये तो संसारभ्रमण होता है और समीचीन ध्यानरूपी शस्त्र से युद्ध किया जाये तो कर्म विकार नष्ट होकर शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है यही फल है।

प्र.-1259 लोकदृष्टि में भंडण/ झगड़ा करने का क्या फल है?

उत्तर- लोकदृष्टि में झगड़ालु व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं- निरपराधी और अपराधी। निरपराधी अपराधी के द्वारा विवाद किये जाने पर न्यायनीति पूर्वक स्व, पर, समाज, देश और धर्म की रक्षा के लिये प्रतिवाद करता है, जवाब देता है। अपराधी दूसरों की धन, संपत्ति बहु, बेटियों को अपहरण करने के लिये या परेशान करने के लिये झगड़ा करता है यह अपराधी अन्यायपूर्वक अपने हिताहित को परिवार की, समाज की बदनामी को नहीं देखता है, यही फल है तथा और भी अनेक फल हो सकते हैं।

प्र.-1260 अपराधी किसे कहते हैं?

उत्तर- गलती करने वाले को, प्रमादी, विषयकषायासक्त व्यक्ति को, कर्म बंधक को अपराधी कहते हैं।

प्र.-1261 निरपराधी किसे कहते हैं?

उत्तर- गलती न करने वाले को, सावधानी पूर्वक स्वाधीन निर्दोष को, आश्रवबंध के अभाव करने वाले को, क्षय करने वाले को निरपराधी कहते हैं।

प्र.-1262 निरपराधी युद्ध क्यों करता है?

उत्तर- निरपराधी समर्थ हो या असमर्थ अपने, परिवार, राज्य, देश, धर्म में आये हुए संकट को उपद्रवी राजाओं से, शत्रुओं, चोरों से रक्षा और सुरक्षित करने के लिये युद्ध करता है। समर्थ होकर भी यदि रक्षा नहीं करे या दुश्मन का प्रतिवाद नहीं करे तो वह समर्थ मर्द और मर्दाना किस काम का?

प्र.-1263 अपराधी के सामने आने पर निरपराधी युद्ध न करे तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि समर्थ निरपराधी न्यायनीति से अपराधी का प्रतिवाद न करे तो सर्वत्र हमेशा अराजकता, अत्याचार बढ़ेगा जैसे सीता के चोर रावण से यदि रामलक्ष्मण युद्ध नहीं करते तो कोई भी हर किसी की बहुबेटियों को अपहरण कर लेगा सभी असुरक्षित रहेंगे, शत्रुओं, चोरों का अवरोधक न होने से अपराध प्रतिदिन बढ़ता ही है अतः समर्थों को अपराधियों का मर्दन करना परम आवश्यक है।

प्र.-1264 अपराधी युद्ध क्यों करता है?

उत्तर- विषयकषायाधीन व्यक्ति समर्थ या असमर्थ अपराधी निरपराधी और कमजोरों से धनादि की, विषयकषायों की पुष्टि, वृद्धि के लिये युद्ध करता है वह बाद में भले ही हार जाये, नीचा हो जाये।

प्र.-1265 दूषण लगाने वाले को क्या कहते हैं और क्या फल प्राप्त करता है?

उत्तर- अपने को निर्दोष बतलाने एवं दूसरों को बदनाम करने के लिये झूंठा दोष लगाने को मायावी, मायाचारी, छलीकपटी कहते हैं। इससे नीचगोत्र कर्म का आश्रवबंध करता है, यही फल पाता है।

प्र.-1266 दूषण लगाने को क्या कहते हैं?

उत्तर- झूंठा दोष लगाने को, आरोपण करने को अवर्णवाद कहते हैं।

प्र.-1267 इस गाथा में स्पष्टतः किसका वर्णन किया गया है?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय से उत्पन्न परिणामों का कार्य बताया है जो मोक्षमार्ग का विरोधी है।

प्र.-1268 कषायों की शक्ति, वासनाकाल और फल किस प्रकार है?

उत्तर- कषायों की फलदान सामर्थ्य को शक्ति, कषायों के संस्कार काल को और इनके फल को इस सारणी के द्वारा निम्न प्रकार से समझना चाहिये।

	अनंतानुबंधी कषाय	अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय	प्रत्याख्यानावरणीय कषाय	संज्वलन कषाय
क्रोध चार प्रकार का	पत्थर रेखा के समान	पृथ्वी रेखा के समान	धूली रेखा के समान	जल रेखा के समान
मान चार प्रकार का	पत्थर के समान	हड्डी के समान	काष्ठ के समान	बेंत के समान
माया चार प्रकार की	बांस की जड़ के समान	मेढ़े के सींग के समान	गोमूत्र के समान	खुरपा के समान
लोभ प्रकार का	कृमि राग के समान	चक्रमल के समान	शरीर के मैल के समान	हल्दी के रंग के समान
वासना काल	छह महीने से ज्यादा	छह महीने तक	पंद्रह दिन रात तक	अंतर्मुहूर्त काल
फल	मोक्षमार्ग नहीं होने देता और यदि मोक्षमार्ग है तो अनंतानुबंधी. के उदय में आकर नष्ट कर देता है ।	अणुव्रती नहीं होने देता और अणुव्रती है तो अप्रत्याख्या.वरण के उदय में आकर नष्ट कर देता है ।	महाव्रती नहीं होने देता और महाव्रती है तो प्रत्याख्याना. के उदय में आकर नष्ट कर देता है।	वीतरागी नहीं होने देता और है तो संज्वलन. के उदय में आकर नष्ट कर देता है ।

नोटः- यहाँ तक 1268 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 41वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 42वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

जिनधर्मनाशक मनुष्य

वाणर गद्दह साणगय वग्घ वराहकराह।

पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।।42।।

वानर गर्दभ श्वान गज व्याघ्र वराह कच्छपाः।

पक्षि जलौक स्वभावो नरः जिनवर धर्म विनाशकः।।

वाणर बंदर **गद्दह** गधा **साण** कुत्ता **गाय** हाथी **वग्घ** वाघ **वराह** शूकर **कराह** कच्छप **पक्खि** पक्षी **जलूय** जोंक **सहाव** स्वभाव वाला **णर** मनुष्य **जिणवर** जिन **धम्म** धर्म का **विणासु** विनाश करने वाला है।

प्र.-1269 बंदर स्वभावी मनुष्य जिनधर्म के विनाशक हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे बंदर स्वभाव से चंचल होता है और पालन पोषण करने वाले को ही दांत दिखाता है, काटकर मांस भी खा लेता है, जीवन भी हर लेता है वैसे ही चंचल जैनी अपनी चंचलता के कारण मद्य, मांस, वेश्या सेवन आदि से जिनधर्म को ही बदनाम कर रहे हैं। आजकल ऐसे चपल साधुओं एवं जैनों की पद विरुद्ध चर्या से अजैनों के मध्य धर्मात्माओं को मुंह नीचे करना पड़ता है जब कोई आकर बोलता है कि वे महाराज ऐसा करते हैं, बोलते हैं तब उस समय शास्त्र को झूंठा कहो या उन मुनि की दिनचर्या को अतः आचार्य श्री जी ने ठीक ही कहा है कि बंदरवत् चंचल स्वभावी गृहस्थ और मुनि जिनधर्म के विनाशक हैं।

प्र.-1270 गर्दभ स्वभावी व्यक्ति जिनधर्म का कैसे विनाश करते हैं?

उत्तर- गधे के समान मूर्ख व्यक्ति कुछ का कुछ आचरण कर बैठते हैं, बेढंगा बोलते हैं ऐसे अजैनीभाई जैनधर्म गुणहीन हैं, विवेकहीन हैं, चारित्र भ्रष्ट गृहस्थ और साधु हो रहे हैं आदि अनेक दोषों के साथ साथ जैनों को ये हीनदृष्टि से देखने लगे हैं अतः ऐसे हीनाचारी गृहस्थ और साधु जिनधर्म के विनाशक हैं।

प्र.-1271 श्वानवृत्ति वाले व्यक्ति जिनधर्म के विराधक कैसे हैं?

उत्तर- ओछे बुद्धि नरन सो वैर भली न प्रीति। काटे चाँटे श्वान के दोउ तरह विपरीत।। जैसे कुत्ता मालिक के कंधे पर पैर रखता है, गाल चांटता है वैसे ही श्वानवृत्ति वाले व्यक्ति भी जिनधर्म तथा गुरुओं के साथ, जैनी जैनियों के साथ अनर्गल व्यवहार करते हैं सो इन आचरणों से जैनाजैन तथा राजनेतागण भी इन जैनों को तुच्छ समझने लगे हैं इसीसे जिनधर्म की विराधना और बदनामी करने वाले मनुष्य हैं ऐसा कहा है।

प्र.-1272 हाथीवत् आचरण वाले व्यक्ति जिनधर्म की विराधना कैसे करते हैं?

उत्तर- जैसे क्रोधी हाथी महावत को सूंढ़ से पकड़कर पैर से दबाकर फाड़ देता है, चबा लेता है वैसे ही हाथीस्वभावी व्यक्ति भी गुरुजनों के सामने भक्ति करते हैं और अपने भौतिक कार्यों की सिद्धि न होते देखकर या अपने भोग विलासों में बाधक कारण जानकर अशिष्ट आचरण करने लगते हैं गुरुओं को ही मारने पीटने तथा बदनाम करने लगते हैं ऐसे ही कुछ शिष्यगण, जैनगण धर्म की, गुरु की इज्जत को बिगाड़ने में किंचित् भी संकोच नहीं करते हैं जो अनेक जगह देखा और सुना जा रहा है।

प्र.-1273 व्याघ्र जैसे आचरण वाले व्यक्ति जिनधर्म को कैसे नष्ट करते हैं?

उत्तर- वाघ के समान क्रूरता, दुष्टता के कारण व्यक्ति जिनधर्म को दूषित कर रहे हैं क्योंकि क्रूरता, दुष्टता जैनियों का, मोक्षमार्गियों का लक्षण नहीं है, क्रूरता, दुष्टता होना कसाई का लक्षण है सो

आ. श्री ने क्रूर, दुष्ट स्वभाव वाले जिनधर्म के विराधक हैं ऐसा कहा है।

प्र.-1274 सुअर समान आचरण वाले व्यक्ति जिनधर्म के विराधक हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे सुअर पकवान, मिष्ठान्न को छोड़कर मल खाता है ऐसे ही मनुष्य गुण और दोषों को एकसाथ, एकसमय में, एक ही व्यक्ति में देख लें, सुन लें तो भी वे दोषों को ग्रहण करेंगे, गुणों को नहीं अतः दोष दृष्टि वाले व्यक्ति जिनधर्म के विनाशक हैं ऐसा कहा है।

प्र.-1275 कछुए के स्वभाव वाले व्यक्ति जिनधर्म के विनाशक हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे कछुआ मंद गति से गंतव्य स्थान में पहुँच भी जाता है कदाचित् स्फूर्ति न होने से बीच में ही मारा जाता है ऐसे ही मूर्खता के कारण स्फूर्ति न होने से जैनी भी धर्माचरण को आज करेंगे, कल करेंगे ऐसा विचारकर अनाज्ञाकारी होकर जिनधर्म के विनाशक हैं ऐसा कहा है।

प्र.-1276 जलूक स्वभाव वाले व्यक्ति जिनधर्म के विनाशक हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे जोंक को स्तन पर लगाने से वह दूध न पीकर रक्त पीती है या फोड़े पर चिपकाने से पीव पीती है शुद्ध खून नहीं ऐसे ही जो व्यक्ति किन्हीं प्राणियों में एकसाथ, एकसमय में गुण दोषों के दिखाई देने पर भी दोषों को ही ग्रहण करता है, गुणों को नहीं सो ऐसे स्वभाव वाले व्यक्ति जिनधर्म के विनाशक हैं।

प्र.-1277 गीध, चील, कौवेवत् आचरण वाले व्यक्ति क्या जिनधर्म के रक्षक हैं?

उत्तर- नहीं, इन जैसे स्वभावी भी जिनधर्म के विराधक हैं। जैसे ये पक्षी दूर से ही माँस को देखकर झपटकर खाने के लिए लड़ मरते हैं अतः ऐसी दृष्टिवाले जिनधर्म के रक्षक न होकर भक्षक हैं।

प्र.-1278 तिर्यंचों जैसे आचरण वाले जिनधर्म के विराधक हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जो कुटिल परिणामी हैं जिनकी आहारादि चारों संज्ञायें खुलेआम प्रकट हैं, हिताहित, कर्तव्याकर्तव्य, भक्ष्याभक्ष्यादि का ज्ञान न होने से, पापों की बहुलता होने से इन्हें जिनधर्म के विराधक तिर्यंच कहा है।

प्र.-1279 इन तिर्यंचोंवत् आचरण वाले मनुष्यों को जब जिनधर्म का विराधक कहा है तो जिनमें अनेक दुर्गुण हैं उन्हें क्या कहा जाये?

उत्तर- एक एक दुर्गुण वाले जब जिनधर्म के विराधक हैं तो अनेक दुर्गुणी मनुष्य महाविराधक हैं।

प्र.-1280 आचार्य श्री ने इन तिर्यंचों के उदाहरण क्यों दिये?

उत्तर- जैसे तिर्यंच अपनी अविवेकता आदि दोषों के कारण अपना जीवन उच्च, श्रेष्ठ नहीं बना पाते हैं वैसे ही मनुष्य अपनी विवेकहीनता आदि दोषों के कारण हित नहीं कर पाते हैं इसीलिये आचार्य श्री ने जीवन की निष्फलता को बतलाने के लिये इन तिर्यंचों के उदाहरण दिये हैं।

प्र.-1281 क्या इन तिर्यंचों में सर्वथा दुर्गुण ही होते हैं?

उत्तर- नहीं, इन तिर्यंचों में अनेक सद्गुण भी होते हैं फिर भी यहाँ पतित, धर्मविहीनों को संबोधन करने को इन तिर्यंचों के दृष्टांत दिये हैं कि हे भव्यो! आप नर से नारायण बनने का पुरुषार्थ करो।

प्र.-1282 कुटिलता किसे कहते हैं?

उत्तर- मन में बाजार जाने की सोची, वचन से मंदिर जाने के लिये कहा, शरीर से होटल, बगीचा, जंगल आदि के लिये चल दिये सो ऐसी चर्या को ही कुटिलता/ ठगविद्या कहते हैं।

प्र.-1283 इस कुटिलता से कौन सी हानि प्राप्त होती है?

उत्तर- ऐसी कुटिलता से सर्वत्र विश्वास, प्रेम हट जाता है, किया कराया संपूर्ण परिश्रम, उपकार,

सहायता आदि नष्ट हो जाती है। तिर्यंचगति आदि पापकर्मों का आश्रव बंध होता है। साथी भी दुःखी होकर संकट में पड़ जाते हैं आदि हानि प्राप्त होती है।

प्र.-1284 संज्ञा के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **संज्ञा के भेदः-** दो, चार, छह, संख्यात, असंख्यात और अनंत हैं। नामः- **दो भेदः-** द्रव्यसंज्ञा और भावसंज्ञा। **चार भेदः-** आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा। **छह भेदः-** इन्हीं चारों में इसलोक संज्ञा और परलोक संज्ञा को मिलाने से छह भेद हो जाते हैं। वचनों की अपेक्षा संख्यात भेद, त्रसजीवों की अपेक्षा असंख्यात और एकेंद्रिय एवं परिणामों की अपेक्षा भी अनंत भेद हैं।

प्र.-1285 संख्यात किसे कहते हैं?

उत्तर- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के द्वारा जाने गये उत्तम, मध्यम, जघन्य विषय को संख्यात कहते हैं।

प्र.-1286 असंख्यात किसे कहते हैं?

उत्तर- अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान से जाने गये उत्तम, मध्यम, जघन्य विषय को असंख्यात कहते हैं।

प्र.-1287 अनंत किसे कहते हैं?

उत्तर- केवलज्ञान के द्वारा जाने गये उत्तम, मध्यम, जघन्य समस्त विषय को अनंत कहते हैं।

प्र.-1288 इनके द्वारा क्या जाना जाता है?

उत्तर- इनसे किसी वस्तु या परिणामों की संख्या जानी जाती है कि ये इतने हैं और इतने नहीं ।

प्र.-1289 द्रव्यसंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य कर्मों की उदय उदीरणा से भोग सामग्री के मिलन को, संयोग को द्रव्यसंज्ञा कहते हैं।

प्र.-1290 भाव संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- आहारादि भोगसामग्री के प्रति ग्रहण, सेवन करने की आकांक्षा को भाव संज्ञा कहते हैं।

प्र.-1291 आहारसंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- असाता वेदनीय की उदयउदीरणा से आहारपानी आदि की आकांक्षा को आहारसंज्ञा कहते हैं।

प्र.-1292 भयसंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- भय कर्म की उदयउदीरणा और वीर्यांतराय कर्म के उदय से उत्पन्न परिणामों को, कमजोरीपने के कारण भीरू स्वभाव को, डरपोंकपने को भयसंज्ञा कहते हैं।

प्र.-1293 मैथुनसंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- वेदकर्म की उदयउदीरणा से अकेले या परस्पर में स्त्री पुरुषों के कामवासना पूर्वक आलिंगन परिणाम को, अंतःसंताप के दूर करने की आकांक्षा को मैथुनसंज्ञा कहते हैं।

प्र.-1294 परिग्रहसंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- लोभकषाय की उदयउदीरणा से भोग उपभोग सामग्री की आकांक्षा को, तत्संबंधी सामग्री को, अर्जन, स्वीकृति, संग्रह, संवर्धन, संरक्षण करने की परिचर्या को परिग्रहसंज्ञा कहते हैं।

प्र.-1295 परिग्रहसंज्ञा और परिग्रहपाप में क्या अंतर है?

उत्तर- परिग्रहसंज्ञा प्रमाद रूप है, केवल लोभकषाय की उदयउदीरणा से दसवें गुणस्थान तक होती है, इससे सकलसंयम और उत्कृष्ट धर्मध्यान, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान का घात नहीं होता है, लोभोदय की अपेक्षा औदयिकभाव है और परिग्रहपाप पाँचवें गुणस्थान तक आदि की तीन चौकड़ी कषायोदय की अपेक्षा औदयिकभाव है, सकलसंयम का पूर्णतः घातक है, परिग्रहसंज्ञा

अणुव्रती महाव्रतियों के भी होती है किंतु परिग्रहपाप अणुव्रतियों तक ही होता है, तत्त्ववेत्ता इन दोनों में और भी अंतर बतला सकते हैं।

प्र.-1296 इहलोकसंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- इसलोक संबंधी नाना प्रकार की संसार शरीर भोगों की आकांक्षा को इहलोकसंज्ञा कहते हैं।

प्र.-1297 परलोकसंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- परलोक संबंधी नाना प्रकार की आकांक्षाओं को या निदान करने को परलोकसंज्ञा कहते हैं।

प्र.-1298 इहलोक तथा परलोक किसे कहते हैं?

उत्तर- वर्तमान पर्याय को इहलोक तथा परभव या भावी भव को परलोक कहते हैं।

प्र.-1299 इन संज्ञाओं के सेवन का क्या फल है?

उत्तर- इनके सेवन से जीव तत्काल या सामान्यतया आगे के समय में, अगले भव में, जीवन में नाना प्रकार के दुःखों के प्राप्त होने को, लोक में निंदा आदि अवस्थाओं के प्राप्त होने को संज्ञाओं का फल कहते हैं।

प्र.-1300 इन गुणहीन, विवेकहीन व्यक्तियों को ग्रंथकारजी ने क्या कहा है?

उत्तर- इन गुणहीन, विवेकहीन व्यक्तियों को आचार्य श्री ने पशु और पशुवत् कहा है क्योंकि इनकी पशुओं जैसी दिनचर्या तथा आश्रव बंध होने से वास्तव में इनको तिर्यंच ठीक ही कहा है।

प्र.-1301 इन मनुष्यों में पाप की बहुलता क्यों है?

उत्तर- **एत्थमुदा णिरयदुगं णिरय तिरिक्खादु जणणमेत्थ हवे।।863** त्रि.सा.। आजकल मनुष्य अधिकतर नरकतिर्यंचगति से आते हैं और मरकर वापिस वहीं जाते हैं इसी कारण पूर्व अभ्यासानुसार मनुष्यों में खुले आम हिंसादि पापों की बहुलता देखी जा रही है। मनुष्यों की कीमत शाक सब्जी जैसी हो गई है, थोड़े से रुपये पैसों के लिये हत्या कर दी जाती है, बात बात में व्यक्ति धन के, विषयभोगों के निमित्त झूंठ बोल रहा है, लोकव्यवहार में झूंठ बोले तो बोले किंतु धर्म में झूंठ बोलकर बच निकलता है। अपने दुष्कर्मों को छिपाने में, दूसरों पर दोष लगाने में, इज्जत बिगाड़ने में, चलाचल संपत्ति को चुराने, छिपाने में चतुर है, दूसरों की बहुबेटियों को बुरी निगाह पूर्वक देखने में, स्पर्श करने में लालायित है, ऐसे ही चेतन अचेतन और मिश्र भोगोपभोग सामग्री के संचय करने में लोभाविष्ट है अतः वर्तमान में पाप की बहुलता देखी जा रही है इसीलिये ये देखने में इंसान लगने पर भी आचार विचार से, दिनचर्या से पशुपक्षी, नारकी ही हैं।

नोटः- यहाँ तक 1301 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 42वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 43वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।
तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं ।।43।।

सम्यक्त्वं विना सज्ज्ञानं सच्चारित्रं न भवति नियमेन।
ततो रत्नत्रयमध्ये सम्यक्त्वगुणोत्कृष्ट इति जिनोपदिष्टम्।।

णियमेण नियमतः **सम्मविणा** सम्यक्त्व के बिना **सण्णाणं** ज्ञान और **सच्चारित्तं** चारित्र **ण** सम्यक् नहीं **होइ** होते हैं **तो** अतः **रयणत्तय मज्झे** रत्नत्रय में **सम्मगुणक्किट्ठमिदि** सम्यक्त्व श्रेष्ठ है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्र प्रभु ने कहा है।

प्र.-1302 सम्यक्त्व के बिना नियम से शेष दो की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर- एक अंक के बिना शून्य की कोई कीमत नहीं किंतु एक अंक के होने से आगे के सभी शून्यों की कीमत दसगुणी[2] बढ़ती जाती है ऐसे ही सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और चारित्र की कोई कीमत नहीं किंतु सम्यक्त्व के होते ही ज्ञान तथा चारित्र समीचीन और महत्त्वपने को प्राप्त होते हैं।

प्र.-1303 सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने पर कौन कौन से कार्य प्रारंभ हो जाते हैं?

उत्तर- अपूर्वकरण रूपी करणलब्धि के तथा सम्यग्दर्शन के प्राप्त होते ही पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, नवीन पापकर्मों का संवर, अनुभागकांडकघात, स्थितिकांडकघात गुणसंक्रमण, परिणामों की विशुद्धि, पाप परिणामों की हानि, प्रतिक्षण पुण्य परिणामों की वृद्धि होती जाती है।

प्र.-1304 रत्नत्रय की प्राप्ति क्रम से होती है या अक्रम से?

उत्तर- अनादि मिथ्यादृष्टि या सादि मिथ्यादृष्टि जीवों को इन तीनों की उत्पत्ति, प्राप्ति अक्रम से एक ही क्षण में, एक ही परिणाम से, एकसाथ में होती है किंतु उत्कृष्ट अंशों की पूर्णता क्रम से होती है।

प्र.-1305 रत्नत्रय की प्राप्ति में क्रम और अक्रम का क्या अर्थ है?

उत्तर- यहाँ क्रम का अर्थ एक के बाद दूसरे की प्राप्ति और अक्रम का अर्थ एकसाथ प्राप्त होना है।

प्र.-1306 इन तीनों की पूर्ति/पूर्णता किस क्रम से होती है?

उत्तर- मोहनीय और आवरण कर्म के क्षय से बारहवें गुणस्थान के चरम समय में तथा सयोगकेवली तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय में युगपत् सम्यग्दर्शन और ज्ञान की पूर्णता होती है। चौदहवें गुणस्थान के उपान्त्य और अंतिम समय में क्रमशः अघातिया कर्मों की 72 और 13, 12, 11, 10 प्रकृतियों का समूल क्षय करके परम उत्कृष्ट अंश रूप में यथाख्यात चारित्र की पूर्णता होती है।

प्र.-1307 यहाँ सामान्य रत्नत्रय की उत्पत्ति का कथन है या विशेष अंशों की?

उत्तर- इस गाथा में रत्नत्रयधर्म के पूर्ण अंशों की उत्पत्ति का कथन किया गया है जघन्य अंशों की उत्पत्ति का नहीं। यदि सामान्य रत्नत्रयधर्म की उत्पत्ति में क्रम होता तो अनिवृत्तिकरणलब्धि के परिणामों में भी अंतर मानना पड़ेगा। हाँ, इतना अवश्य है कि क्षायिकसम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में क्रम है किंतु उपशम सम्यग्दर्शन और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में क्रम नहीं है।

प्र.-1308 क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति किस क्रम से होती है?

उत्तर- इसकी प्राप्ति इस क्रम से होती है- क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव सर्वप्रथम तीन करणों को करके अनिवृत्तिकरण के चरम समय में एकसाथ अनंतानुबंधी चार कषाय का क्षय करता है। तत्पश्चात् पुनः अधःकरण और अपूर्वकरण को व्यतीत करके अनिवृत्तिकरण के संख्यातभाग व्यतीत हो जाने पर मिथ्यात्व का क्षयकर पुनः अंतर्मुहूर्तकाल व्यतीतकर सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय करता है। तत्पश्चात् अंतर्मुहूर्त काल व्यतीत कर सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय कर क्षायिकसम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। क.कां. गाथा 336।

प्र.-1309 इस गाथा का दूसरा अभिप्राय भी ले सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, इस का दूसरा अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन के होते ही मिथ्याज्ञान तथा मिथ्याचारित्र प्रध्वंसाभाव को प्राप्त कर प्रागभाव सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रपने को प्राप्त होते हैं अतः उत्पत्ति में क्रमभेद न होने पर भी समीचीनपने को कौन, कब और कैसे प्राप्त होते हैं यह बताया गया है।

प्र.-1310 यह सम्यग्दर्शन किसके समान है?

उत्तर- यह सम्यग्दर्शन नाव खेने वाले के समान है। जैसे बिना खेवटिया के नाव गंतव्य स्थान पर नहीं पहुँच पाती वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना मोक्षमार्ग की और मोक्षफल की प्राप्ति नहीं हो पाती है।

प्र.-1311 ग्रंथकारजी ने सम्यग्दर्शन को उत्कृष्ट क्यों कहा?

उत्तर- ज्ञान और चारित्र में यथार्थता सम्यग्दर्शन से ही आती है, मोक्षमार्ग में प्रधान कारण, बीज रूप है। जैसे बिना बीज के अंकुरोत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, फल की प्राप्ति नहीं होती ऐसे ही बिना सम्यग्दर्शन के मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, स्थिति वृद्धि, मोक्षफल की प्राप्ति नहीं होती अतः उत्कृष्ट कहा है।

प्र.-1312 आत्मा अनंत धर्मात्मक है तो तीनों की एकता को मोक्षमार्ग क्यों कहा?

उत्तर- गृहस्थ जीवन या गृह व्यवहार, समाज व्यवहार, व्यापार में लेनदेन, सगेसंबंधियों का व्यवहार विश्वास ज्ञान और चारित्र इन तीनों से ही होता है ऐसे ही वात, पित्त, कफ के संतुलन से स्वास्थ्य अच्छा और असंतुलन से बिगड़ जाता है ठीक ऐसे ही मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से संसारमार्ग तो सम्यक्रत्नत्रय की प्राप्ति की एकता में अपूर्णता का नाम मोक्षमार्ग कहा है।

प्र.-1313 क्या रत्नत्रय की एकता का नाम मोक्षमार्ग है?

उत्तर- रत्नत्रय की एकता का नाम मोक्षमार्ग नहीं है किंतु एकता में अपूर्ण अंश का नाम मोक्षमार्ग है।

प्र.-1314 आज वर्तमान में प्राणी दुःखी क्यों है?

उत्तर- आजकल अविश्वास, अज्ञान और गलत दिनचर्या होने के कारण प्राणी दुःखी है।

प्र.-1315 सम्यक्त्व को गुण क्यों कहा?

उत्तर- वास्तव में गुण अपरिणामी स्वभाव वाले होते हैं अनादिकाल से अनंतकाल तक एक ही स्वभाव में रहते हैं किंतु जो उत्पाद व्यय स्वभाव वाली है, सादिसांत, सादिअनंत भंग वाली है वह पर्याय है अतः उपचार नय के नौ भेदों में से सम्यक्त्व पर्याय को सम्यक्त्व गुण कहा है।

प्र.-1316 सम्यग्दर्शन को गुण क्यों नहीं कहा?

उत्तर- सम्यग्दर्शन दर्शनमोहनीयकर्म के उपशम, क्षय और क्षयोपशम से उत्पन्न होता है, पर्याय रूप है, परिणामी, उत्पाद व्यय स्वभावी होने से सम्यग्दर्शन को गुण नहीं कहा है। हाँ, कदाचित् नयापेक्षया पर्याय में गुण का आरोपण कर पर्याय को गुण कह सकते हैं।

नोटः- यहाँ तक 1316 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 43वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 44वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्यात्व का फल

तणुकुट्ठी कुलभंगं कुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।
दाणाइ सुगुणभंगं गइभंगं मिच्छत्तमेव हो कट्ठं।।44।।

तनुकुष्टी कुलभंगं करोति यथा मिथ्यात्वमात्मनोऽपि तथा।
दानादिसुगुणभंगं गतिभंगं मिथ्यात्वमेव अहो! कष्टम्।।

जहा जैसे **तणुकुट्ठी** शरीर का कोढ़ी **कुलभंगं** अपने जातिकुल को दूषित **कुणइ** करता है अर्थात् इसके माँबाप, नानानानी भी कोढ़ी होंगे **तहा** वैसे ही **मिच्छमप्पणो** मिथ्यात्व अपने **दाणाइ** दानादि **सुगुणभंगं वि** सद्गुणों को भी तथा **गइभंगं** सद्गति को विनाश कर देता है **हो** अहो **मिच्छत्तमेव** ऐसे मिथ्यात्व के लिए **कट्ठं** कष्ट है, आश्चर्य है।

प्र.-1317 कुष्ट रोग किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- रक्त में पित्तादि के मिश्रण से उत्पन्न विकार को कुष्टरोग कहते हैं। दाद, खाज, सफेद दाग, गलित कुष्टादि कोढ़ के अनेक भेद हैं। खाने में मकड़ी आने से, दूषित रजोवीर्य से, तामसी भोजन, शराब और मांसाहार करने से भी कुष्टरोग होता है। यह संक्रामक रोग है, उड़कर के भी लग जाता है।

प्र.-1318 इसका क्या फल है?

उत्तर- शरीर का कुष्ट रोगी माँबाप की परंपरा को दूषित कर देता है, इसके साथ उठनेबैठने सोने, भोजनपान करने से, निकट में रहने से, मुँह से मुँह लगाकर वार्तालाप करने से भी कुष्टरोग हो जाता है सो परिवारजन, निकट संबंधी, रिश्तेदार, नातेदारादि सभी कुष्टरोगी से भयभीत रहते हैं।

प्र.-1319 इस कुष्ट रोग से कुल भंग कैसे होता है?

उत्तर- बीजांकुर न्यायानुसार कोढ़ी अपने जाति कुल को कलंकित कर देता है इससे पापा, दादा, परदादादि के विषय में भी संदेह हो जाता है कि उनके भी यह रोग रहा होगा और कहते भी हैं कि यह रोग वंशानुगत है। वंशानुगत का मतलब ही है कि माँ, बाप के दूषित रजोवीर्य से दूषित संतान होना तभी तो आजकल पेट से ही केंसर, रसोली, पीलिया, लूले, लंगड़े, अंधे, काने आदि होते हैं।

प्र.-1320 पशु पक्षी ऐसे रोगी पैदा क्यों नहीं होते हैं और मनुष्य क्यों होते हैं?

उत्तर- क्योंकि पशु पक्षियों का आहार विहार, दिनचर्या, कामक्रीड़ा समय पर ही होती है, असमय में नहीं इसीलिये पशु पक्षी ऐसे पैदा नहीं होते हैं। ये पशु पक्षीगण अपनी परंपरा के विरुद्ध कुछ भी कार्य नहीं करते। गलत भोजनपान को जानकर, छोड़कर भूंखे, प्यासे चले जाते हैं किंतु मनुष्य जिह्वा लंपटता के कारण गरम गरम चटपटा खा लेता है। जानता हुआ भी दूषित भोजनपान, कामक्रीड़ा न छोड़ता है, न दिनचर्या सुधारता है इसलिए मनुष्य जन्म से ही रोगी, संस्कारहीन, अंगविहीन पैदा हो रहे हैं। जो पालतु पशुपक्षी बीमार पड़ रहे है सो वह चारित्र, दिनचर्या विहीन मनुष्यों की कुसंगति का फल है।

प्र.-1321 तो फिर आजकल मनुष्य रोग सहित क्यों पैदा होते हैं?

उत्तर- आजकल मनुष्य अपनी दिनचर्या, आहार, विहार, कामक्रीड़ा बिना समय के असमय में जब कभी भी कर लेते हैं इसीलिये मनुष्यों की संतानें नाना बीमारियों सहित पैदा हो रहीं हैं अतः मनुष्यों को अपना जीवन और संतान परंपरा को सुरक्षित रखने के लिये पशुपक्षिओं से सीखना चाहिए, मनुष्यों से, डॉक्टरों से नहीं।

प्र.-1322 आजकल मनुष्यों ने अपनी दिनचर्या क्यों बिगाड़ ली है?

उत्तर- आजकल मनुष्य अपने पतन को, स्वास्थ्य को न देखता हुआ केवल स्वाद और भोगाभिलाषा के कारण विषयलंपटी हो होटलों में, बाजारों में, पार्टियों में, विवाहादि में सड़ागला, जहरीला, अनछने पानी का बना हुआ, रात्रि का बना हुआ, पैप्सी, कोकाकोला, फेन्टा, मिनलर वाटर आदि भोजनपान करने लगे, लज्जा, मर्यादा छोड़कर कामक्रीड़ा आदि कारणों से बीमार माँ बाप की बीमार संतानें पैदा होने लगीं।

प्र.-1323 मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर- वस्तु तत्त्वादि का अपनी कल्पना से जैसा का तैसा इच्छानुकूल शराबी के समान विश्वास कर लेने को अथवा सज्जनों का विश्वासघात करने को मिथ्यात्व कहते हैं।

प्र.-1324 दुर्जनों के साथ विश्वासघात कर सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, किसीके भी साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिये क्योंकि विश्वासघात करने से अपना ही धर्म नष्ट होता है। सामने वाले दुःखी हों या ना हों यह उनके भाग्य और पुरुषार्थ पर है तुमने विश्वासघात करके अपना पतन तो कर ही लिया क्योंकि जब कोई अपने साथ में विश्वासघात करता है तो अपने को कितना धक्का लगता है तब अपन दूसरों साथ विश्वासघात करेंगे तो उसे कितना धक्का लगेगा? जरा सोचो अतः किसीके भी साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिये। सज्जन को अपनी सज्जनता नहीं छोडनी चाहिये।

प्र.-1325 सज्जन किसे कहते हैं नाम और भेद कौन कौन हैं?

उत्तर- उत्तम सद्‌गुण वालों को सज्जन कहते हैं। लौकिक सज्जन और लोकोत्तर सज्जन ये दो भेद हैं।

प्र.-1326 लौकिक सज्जन किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्रय सहित लौकिक न्यायनीति, ईमानदारी आदि सद्‌गुणवानों को लौकिक सज्जन कहते हैं।

प्र.-1327 लोकोत्तर सज्जन किसे कहते हैं?

उत्तर- सम्यक् रत्नत्रय सहित मोक्षमार्ग, आत्मा की साधना करने वालों को लोकोत्तर सज्जन कहते हैं।

प्र.-1328 यहाँ किस सज्जन से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ मोक्षमार्ग का प्रसंग होने से अव्रती सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती आदि लोकोत्तर सज्जनों से प्रयोजन है।

प्र.-1329 मिथ्यात्व का क्या फल है?

उत्तर- अपना ही मोक्षमार्ग नष्ट होना, सद्‌गुणों का विनाश, सुखशांति भंग होना, लोकव्यवहार में विश्वास, प्रेम टूट जाना, दुर्गतियों में जाकर दुःख भोगना, यहीं पर निंदाबदनामी होना आदि उभयलोक में कष्ट प्राप्त होना, सातिशय पुण्य को निरतिशय पुण्य पाप में बदल देना ही मिथ्यात्व का फल है।

प्र.-1330 इनके अलावा इस मिथ्यात्व का और कौन सा फल प्राप्त होता है?

उत्तर- मिथ्यात्व और विषयकषायों के कारण वैमानिक देवों की आयु को, सम्यग्दर्शन को तथा तत्संबंधी पुण्य को, सुख को घातकर घातायुष्क हो नीचे गिराना, अनुत्कृष्टावस्था प्राप्त कराना भी इसका फल है।

प्र.-1331 यहाँ गाथा में मिथ्यात्व के लिये बड़ा कष्ट है, दुःख है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जो अविश्वास परिणाम सर्वविनाश कर दे, कल्याण का मार्ग, सद्‌गुणों का, सद्गति का विनाश कर दे, लोक में अविश्वास पैदा करा दे तो उसके लिये दुःख ही है ऐसे ही जो व्यक्ति थोड़ा विनाश कर दे, बिगाड़ कर दे तो उसके लिये मन में कितना दुःख होता है कि इसने हमारा इतना बिगाड़ कर दिया उसके लिये रात्रि दिन हाय निकलती है तो जो संपूर्ण सद्‌गुणों का विनाश कर दे उसके लिये क्या हाय न निकलेगी?

नोटः- यहाँ तक 1331 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 44वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 45वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आगम के बिना समीचीनता कैसे?

देवगुरुधम्मगुणचारित्तं तवायार मोक्खगइभेयं।

जिणवयणसुदिट्ठिविणा दीसइ किह जाणए सम्मं।।45।।

देवगुरुधर्मगुणचारित्रं तपाचारं मोक्षगतिभेदं।

जिनवचनसुदृष्टि विना दृश्यते कथं ज्ञायते सम्यक्त्वम्।।

देवगुरुधम्म देव, गुरु, धर्म, **चारित्तं तवायार** चारित्र, तपाचार **मोक्खगइभेयं** मोक्षगति के भेदों को **जिणवयण** जिनवचन रूपी **सुदिट्ठि विणा** सुदृष्टि बिना **सम्मं** यथार्थ **किह** कैसे **दीसइ** देख और **जाणए** जान सकता है?

प्र.-1332 सूरदास क्या आँख के बिना कुछ देख सकता है?

उत्तर- नहीं, जैसे घोर अंधकार में बिना प्रकाश के नेत्रवान् कुछ भी नहीं देख सकता ऐसे ही सूरदास सूर्योदय होने पर भी कुछ भी नहीं देख सकता है इसके लिये सर्वत्र अंधकार ही अंधकार है।

प्र.-1333 बिना ज्ञान के यह जीव क्या कुछ जान सकता है?

उत्तर- जैसे अचेतन जड़ वस्तुयें किसी भी प्रकार से सुखदुःख अच्छेबुरे आदि को नहीं जानतीं ऐसे ही सम्यग्ज्ञान के बिना मनुष्य अंतरंग बहिरंग विषयों को स्थिरता से यथार्थ रूप में नहीं जानता है।

प्र.-1334 भौतिकज्ञानी जीव क्या बाह्य विषयों को नहीं जानता है?

उत्तर- भौतिकज्ञानी भी बाह्य विषयों के कुछ ही अंशों को जान सकता है या जानता है किंतु मिथ्याज्ञान होने के कारण सूक्ष्मज्ञेय विषय को किंचित् मात्र भी समीचीन रूप में नहीं जानता। कदाचित् किन्हीं विशेष वक्ताओं या शास्त्रों के माध्यम से जान लेता है, दूसरों को समझा देता है पर यह हित का मार्ग नहीं है।

प्र.-1335 जिनवचन के बिना सत्यासत्य, शुभाशुभ को क्या व्यक्ति देख सकता है?

उत्तर- जैसे लोक में मातापिता की या सज्जनों की शिक्षा के बिना संतानें कुछ भी सद्व्यवहार को न जान पातीं, न देख पातीं हैं वैसे ही स्याद्वाद के बिना प्राणी कुछ भी पुण्यापुण्य को, कर्तव्याकर्तव्य को, निजात्मा परमात्मा को न देख सकता है, न जान सकता है, न अनुभव कर सकता है।

प्र.-1336 हिताहित को समझने के लिये जिनवचन का इतना महत्त्व क्यों है?

उत्तर- अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले पाँच लब्धियाँ होतीं हैं। उनमें तीसरी देशनालब्धि है। इस देशनालब्धि में मोक्षमार्गोपयोगी स्याद्वाद रूप से समस्त तत्त्वों का उपदेश सुनकर, भलीप्रकार समझकर प्रायोग्यलब्धि से परिणमन कर करणलब्धि के द्वारा रत्नत्रय को प्राप्त करता है अतः अपनी आत्मा के समान ही जिनवचन का विशेष महत्त्व है।

प्र.-1337 सुदृष्टि और कुदृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर- समीचीन, नय सापेक्ष विश्वास को सुदृष्टि और सदोष दृष्टि, मिथ्याविश्वास को कुदृष्टि कहते हैं।

प्र.-1338 इन सुदृष्टि और कुदृष्टि का क्या फल है?

उत्तर- लोकव्यवहार में यदि दृष्टि निर्दोष है, सही है तो सर्वत्र निष्कपट, निस्वार्थ विश्वास होता है, आदर सम्मान प्राप्त होता है और दृष्टि गलत है तो सर्वत्र निंदा, बदनामी प्राप्त होती है, अपमान, तिरस्कार प्राप्त होता है और कोई विश्वास नहीं करता है तथा मोक्षमार्ग में दृष्टि सही है तो मोक्षार्थ आत्मा का ऊर्ध्वगमन होता है तथा कुदृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है तो नीचे नरकनिगोद में अंतिम वातवलय पर्यंत गमन कर जो नाना प्रकार के जन्म मरण, ताड़न पेलन, छेदन भेदन आदि अनंत दुःखों को भोगता है, यही इन दोनों का फल है।

प्र.-1339 ग्रंथकारजी ने शेष आचारों का नाम न लेकर तपाचार को ही क्यों कहा?

उत्तर- पंचाचारों में अंतिम आचार का नाम तपाचार है। जब अंतिम तपाचार का स्मरण किया है तो आदि के चार नाम बिना उच्चारण किये ही ग्रहण कर लिये जाते हैं जैसे जिसके पास एक रुपया है तो उसके पास 99 पैसे अवश्य ही है क्योंकि 99 पैसों के बिना रुपया बनता नहीं है। हाँ इतना अवश्य है कि जिसके पास 50, 75 पैसे हों तो उसके पास रुपया नहीं होगा ऐसे ही जहाँ तपाचार है वहाँ नियम से शेष चार आचार होंगे ही होंगे किंतु जहाँ आदि के एक, दो आचार हैं वहाँ आगे के हों या नहीं हों यह संभव है।

प्र.-1340 पंचाचार के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, चारित्राचार और तपाचार ये आचारों के पाँच नाम हैं।

प्र.-1341 इन दर्शन आदि पाँचों के साथ में आचार पद क्यों लगाया?

उत्तर- इन दर्शन आदि के साथ में आचार पद लगाने का प्रयोजन यह है कि ये केवल पढ़ने पढ़ाने,

सुनने सुनाने, रटने रटाने के लिये नहीं किंतु दिनचर्या, आत्मा में तद्रूप परिणमन करने, प्रयोग में लाने के लिये, आज्ञार्थक रूप में पालने के लिए प्रत्येक के साथ में आचारपद लगाया गया है।

प्र.-1342 दर्शनाचार किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- चल, मलिन, अगाढ़दोष और शंकादि पाँच अतिचारों को टालकर निःशंकितादि अंगों का निर्दोष पालन करने को दर्शनाचार कहते हैं। 8 भेद हैं। **नामः-** निःशंकिताचार, निःकांक्षिताचार, निर्विचिकित्साचार, अमूढ़दृष्टि आचार, उपगूहनाचार, स्थितिकरणाचार, वात्सल्याचार, प्रभावनाचार।

प्र.-1343 दर्शन पद से सम्यग्दर्शन को ग्रहण करना है या चक्षुदर्शन को?

उत्तर- यहाँ आँखों से देखने योग्य दर्शन ग्रहण नहीं करना क्योंकि यहाँ पर मोक्षमार्ग से, मुनिधर्म से संबंधित दर्शनाचार का वर्णन है अतः दर्शन से यहाँ सम्यग्दर्शन और दर्शनाचार को ग्रहण करना है।

प्र.-1344 ज्ञानाचार किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- ज्ञानानुसार ज्ञान संबंधी निर्दोषाचरण को और ज्ञानवृद्धि के कारणभूत ज्ञान सामग्री के प्रति समर्पित, नम्रवृत्ति होने को ज्ञानाचार कहते हैं। 8 भेद हैं। नामः- कालाचार, विनयाचार, उपधानाचार, बहुमानाचार, अनिह्नवाचार, व्यंजनाचार, अर्थाचार और उभयाचार।

प्र.-1345 कालाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- गोसर्गकाल, प्रदोषकाल, प्रदोषकाल और विरात्रिकाल इन चार कालों में पठन पाठनादि न करने को कालाचार कहते हैं। चारों संध्याओं की अंतिम दो दो घड़ियों में, दिग्दाह, उल्कापात, वज्रपात, इंद्रधनुष, सूर्यचंद्रग्रहण, तूफान, भूकंप आदि उत्पातों के समय में सिद्धांतग्रंथों का पठन पाठन वर्जित है। हाँ स्तोत्र, आराधना, अध्यात्म, इतिहास, न्याय, व्याकरण, धर्मकथादि ग्रंथों का पठन पाठन कर सकते हैं।

प्र.-1346 गोसर्गकाल किसे कहते हैं?

उत्तर- सूर्योदय से 1 मुहूर्त पहले और एक मुहूर्त बाद तक काल को गोसर्गकाल कहते हैं।

प्र.-1347 दैवसिक प्रदोष काल किसे कहते हैं?

उत्तर- मध्याह्न से दो घड़ी पश्चात् और रात्रि से दो घड़ी पहले के काल को प्रदोष काल कहते हैं।

प्र.-1348 रात्रिक प्रदोष काल किसे कहते हैं?

उत्तर- रात्रि से दो घड़ी बाद और मध्यरात्रि से दो घड़ी पहले के काल को प्रदोष काल कहते हैं।

प्र.-1349 यहाँ प्रदोष काल में कौन कौन सा कार्य वर्जनीय है?

उत्तर- समवसरण की 12 सभाओं के बाहर केवली, श्रुतकेवली, गणधरादि से उपदेशित सूत्रों का अध्ययन अध्यापन वर्जनीय नहीं किंतु उक्त वक्ताओं के उपदेश होते समय पठनपाठन वर्जनीय है।

प्र.-1350 केवली के सामने अध्ययन अध्यापन वर्जनीय क्यों है?

उत्तर- जब सर्वज्ञ केवली भगवंत का उपदेश ही इन संधिकालों में होता है और वक्ता के सामने मौजूद होने पर अनुप्रेक्षा रूप अध्ययन में संदेह के लिए किंचित् मात्र भी स्थान नहीं है तब वर्जनीय कैसे हो सकता है? अथवा केवली के उपदेश के समय पठनपाठन वर्जनीय ही है। यदि उपदेश के बीच में स्वयं पठनपाठन करोगे तो केवली के उपदेश से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? अतः स्वकृत पठनपाठन निषिद्ध है।

प्र.-1351 केवली के सामने अध्यापन कैसे कर सकते हैं?

उत्तर- केवली भगवान का उपदेश समाप्त होने के बाद वाचना पृच्छना, सुनना सुनाना नाम का

अध्यापन स्वाध्याय अव्रती, अणुव्रती और महाव्रतीजन करते भी है जो प्रसंग से जाना जाता है।

प्र.-1352 विरात्रि काल और संधिकाल किसे कहते हैं?

उत्तर- मध्यरात्रि से दो घड़ी पश्चात् और सूर्योदय से दो घड़ी पहले के काल को विरात्रि काल कहते हैं। सूर्योदय के एक मुहूर्त पहले और एक मुहूर्त तक काल को, मध्याह्न काल के एक मुहूर्त पहले और एक मुहूर्त बाद तक काल को, सूर्यास्त होने के एक मुहूर्त पहले और एक मुहूर्त काल तक तथा रात्रि में 12 बजे के एक मुहूर्त पहले और एक मुहूर्त बाद तक कालों को संधिकाल (संध्याकाल) कहते हैं। ये 4 होते हैं।

प्र.-1353 विनयाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- शुद्ध जल से हाथ पाँव धोकर, शुद्ध स्थान में पर्यंकासनादि से बैठकर नमस्कार पूर्वक शास्त्र के पठन पाठन करने को विनयाचार कहते हैं। स्वाध्याय करते समय शास्त्रजी को नाभि से ऊपर चौकी पर रखकर अध्ययन करना चाहिये। नाभि के नीचे, जंघाओं पर, पैरों पर, धरती पर नहीं रखना चाहिये।

प्र.-1354 उपधानाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- धारणा सहित पूर्वापर संबंध मिलाते हुए, याद रखते हुए अध्ययन करने को उपधानाचार कहते हैं।

प्र.-1355 बहुमानाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञान, पुस्तक और शिक्षक का पूर्ण आदर करने को बहुमानाचार कहते हैं।

प्र.-1356 इनका बहुमान किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- वस्तु तत्त्व को जानते समय संदेह, विपर्यय, अनध्यवसाय और हीनाधिकतादि दोषों से रहित जानना ज्ञान का बहुमान है। शास्त्रजी के पृष्ठों को मोड़ना, फाड़ना, पुस्तक के अंदर अधिक मात्रा में दूसरे निशान रख देना, कहीं का कहीं रख देना, अध्ययन करके जहाँ कहीं शास्त्रजी को छोड़ देना, सूतक पातक आदि अशिष्ट आचरण वालों के हाथ में पकड़ा देना आदि दोषों को टालना शास्त्रजी का बहुमान है। गुरुजी के आने पर खड़ा होना, उनके पीछे गमन करना, नीचे बैठना, उनके सामने अशिष्ट हंसी, मजाक नहीं करना, विषयकषाय रूप प्रवृत्ति नहीं करना, दूसरों की निंदा नहीं करना आदि गुरु की विनय है और इनसे उल्टे कार्य करना ज्ञान, शास्त्र और गुरु की अविनय है।

प्र.-1357 अनिह्नवाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस गुरु से, शास्त्र से ज्ञान प्राप्त किया है उसका नाम न छिपाने को अनिह्नवाचार कहते हैं।

प्र.-1358 निह्नव और अनिह्नव का क्या अर्थ है?

उत्तर- निह्नव का अर्थ **छिपाना** है तो अनिह्नव का अर्थ **नहीं छिपाना** है।

प्र.-1359 शब्दाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- शब्द शास्त्र के अनुसार अक्षर, पद, वाक्य का यत्न पूर्वक शुद्ध पठन पाठन करने को शब्दाचार कहते हैं। व्यंजनाचार, श्रुताचार, अक्षराचार, ग्रंथाचार आदि सब एकार्थवाची हैं।

प्र.-1360 अर्थाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- शब्द के यथार्थ शुद्ध अर्थ के अवधारण करने को अर्थाचार कहते हैं।

प्र.-1361 उभयाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- अर्थ और शब्द दोनों के शुद्ध पठन पाठन करने को उभयाचार कहते हैं।

प्र.-1362 वीर्याचार किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अपने अंतरंग बहिरंग बल वीर्य को छिपाये बिना दिनचर्या निभाने को वीर्याचार कहते हैं। भेद पाँच हैं। **नामः-** 1. उत्कृष्ट मनोबल के अनुसार पुरुषार्थ करना। 2. मार्दव पूर्वक दिनचर्या का पालन करना। 3. शारीरिक बल के अनुसार दिनचर्या का पालन करना। 4. उत्साह पूर्वक दिनचर्या का पालन करना। 5. चारित्रशक्ति के अनुसार कर्तव्य का पालन करना।

प्र.-1363 चारित्राचार किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति को अथवा आत्मस्वभाव में स्थिर होने को चारित्र और इन्हीं के अनुसार दिनचर्या को चारित्राचार कहते हैं। 13 भेद हैं। नामः- 5 महाव्रत, 5 समिति, 3 गुप्ति।

प्र.-1364 तपाचार किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन से हैं?

उत्तर- नवीन कर्मों को रोकने में तथा पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करने में अनन्य साधन को तपाचार कहते हैं। दो भेद हैं फिर प्रत्येक के छह छह भेद हैं । **अंतरंग तप** के 6 भेद हैं। **नामः-** प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्त, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान। **बहिरंग तप** के 6 भेद हैं। नामः- अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशैय्यासन, कायक्लेश। तपाचार के ये बारह भेद हैं।

प्र.-1365 इनके पालक को क्या कहते हैं और ये क्या करते हैं?

उत्तर- इन पंचाचारों के पालक को आचार्य कहते हैं और ये शिष्य शिष्याओं से पालन करवाते हैं।

प्र.-1366 केवल इन आचारों के पालन करने वालों को आचार्य क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं, यदि केवल इन पाँच आचारों का पालन करने वालों को आचार्य कहा जाय तो फिर इन आचारों के पालक होने से मुनि, आर्यिका पद कैसे बनेगा? तब ये भी आचार्य कहलायेंगे फिर शास्त्रों में आचार्यों ने शिक्षा, दीक्षा देना, शिष्यों का संग्रह निग्रह करना, जिनधर्म की प्रभावना करना यह आचार्य का लक्षण कहा है सो बन नहीं सकता क्योंकि केवल पंचाचारों का पालन करना शिष्यों का तथा आचारों का पालन करना कराना आचार्यों का काम है अतः केवल इन पंचाचारों का पालन करने वालों को आचार्य न कहकर शिष्य शिष्यायें कहा है।

प्र.-1367 पंचाचारों का पालन कराना आचार्यों का मूलगुण है या उत्तरगुण?

उत्तर- आचार्यों के 36 मूलगुणों में पंचाचारों का नाम होने से मूलगुण है, उत्तरगुण नहीं।

प्र.-1368 यदि मुनि आर्यिकाओं के पंचाचार मूलगुण नहीं हैं तो ये क्यों पालते हैं?

उत्तर- ये मुनि आर्यिकायें स्वेच्छा से पालन नहीं करते किंतु आचार्य की प्रेरणा से या प्रायश्चित्त रूप में पालते हैं सो मूलगुण नहीं कहा अतः आचार्य के मूलगुण हैं और शिष्य शिष्याओं के उत्तरगुण हैं।

प्र.-1369 आचार्य पद उपाधि उपधि होने से मान कषाय का साधन क्यों नहीं है?

उत्तर- आचार्यपद उपाधि उपधि परिग्रह नहीं है क्योंकि यह पद गुण नाम है और उपाधि उपधि परिग्रह है, पाप है। उपाधि में गुणधर्म का, कर्तव्य का पालन नहीं होता है। आचार्यपद धर्म की प्रभावना करने वाला है। शिष्यों का संग्रह, निग्रह करने वाला है। हाँ, मैं आचार्य हूँ, तपस्वी हूँ, सब पर मेरा अधिकार है, मैं सर्वेसर्वा हूँ, पुराना दीक्षित हूँ आदि विचार पूर्वक अहंकार आ जाय तो आचार्य पद मान कषाय का साधन बन जाता है किंतु जिनका संसार दीर्घ है, होनहार खोटा है उसी आचार्य को अहंकार होता है, सभी को नहीं। समाधि के समय संघ संचालन की जिम्मेदारी, शिक्षादीक्षा देना आदि का त्याग किया कराया जाता है किंतु आत्मसाधना का, दसधर्मों का, बारह तपों का, पंचाचारों का, अष्टप्रवचन माताओं का त्याग नहीं किया जाता है अथवा जो अपने दोषों का क्षालन करें वे आचार्य कहलाते हैं तो क्या इसका भी त्याग किया है? नहीं, यदि आचार्य पद उपाधि है तो उपाध्याय, साधु और अरिहंतादि तीर्थंकर पद भी उपाधि है ऐसा प्रसंग क्यों न

आयेगा? सो ऐसी बात नहीं है मोक्षमार्गस्थ प्रभावक पदों में गुणधर्म होने से उपाधि उपधि परिग्रह नहीं है किंतु संसारस्थ पदों में सद्गुणों का अभाव होने से परिग्रह है, पाप है, दुखदायक है अतः उपाधि आगंतुक होने से विकार है तो पद स्वाभाविक होने से निर्विकार है।

प्र.-1370 यदि आचार्यपद परिग्रह नहीं है तो आजकल आचार्यों में विवाद क्यों?

उत्तर- जो जिनलिंग धारण करके परस्पर में लड़ाईझगड़ा करते हैं, एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे हुए हैं वे साधु मोक्षमार्गी नहीं हैं किंतु गृहस्थ हैं, नारकी हैं, पशु हैं, व्यंतर हैं आदि नाना शब्दों का प्रयोग आ. श्री कुंदकुंदजी ने किया है। जैसे घरों में माँबाप कुलकलंकी बच्चों को कह देते हैं कि यह हमारा पुत्र नहीं हैं या कुपुत्र है ऐसे ही आ. श्री ने ऐसे ही साधुओं के लिये कहा है सो कोई दोष नहीं है। वर्तमान में साधुओं के परस्पर में विरोध से ही समाज और धर्म बदनाम हो रहा है कि देखो ये जैनी साधक ऐसे हैं।

नोटः- यहाँ तक 1370 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 45वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 46वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मोही जीव की योगक्रिया

एक्कु खणं ण विचिंतइ मोक्खणिमित्तं णियप्पसाहावं।
अणिसं करेय पावं बहुलालावं मणे विचिंतेइ।।46।।

एकं क्षणं न विचिंतयति मोक्षनिमित्तं निजात्मस्वभावं।
अनिशं करोति पापं बहुलालापं मनसि विचिंतयति।।

मोक्ख मोक्ष के **णिमित्तं** निमित्त **एक्कु** एक **खणं** क्षणमात्र भी **णियप्प** निजात्म **साहावं** स्वभाव का **विचिंतइ** चिंतन **ण** नहीं करता है किंतु **अणिसं** सतत **करेय पावं** काय से पाप करता है **बहुलालावं** पाप के लिए बहुत बोलता है और **मणे** मन में **विचिंतेइ** पाप का ही चिंतन करता है।

प्र.-1371 यह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव आत्म चिंतन करता है या नहीं?

उत्तर- यह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि विषयभोगों के, कषायों के निमित्त आर्त, रौद्रध्यान रूप में अपनी आत्मा का ज्ञानानुसार चिंतन करता है सो इसका चिंतन संसार के लिये है, मोक्ष के लिए नहीं।

प्र.-1372 यह मिथ्यादृष्टि जीव ज्ञानानुसार चिंतन करता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इस मिथ्यादृष्टि जीव को जिस प्रकार का सम्यक् या मिथ्या उपदेश प्राप्त होता है वैसा ही आत्मा का चिंतन करता है। यदि जिनेंद्र मतानुसार उपदेश प्राप्त हुआ है तो आत्मा का स्याद्वाद रूप से चिंतन करता है और लौकिक वक्ताओं का उपदेश प्राप्त हुआ है तो आत्मा का लोकानुसार ही चिंतन करता है क्योंकि चिंतक को जैसी जानकारी होगी वैसा ही वह चिंतन करेगा यह स्वाभाविक नियम है सो ऐसा कहा है।

प्र.-1373 यदि मिथ्यादृष्टि स्याद्वादानुसार आत्मचिंतक है तो इसे मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि का सम्यक् देशनालब्धि अनुसार आत्मचिंतन करना समीचीन है फिर भी इसे करणलब्धि के परिणाम प्राप्त न होने से श्रद्धान और चारित्र की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-1374 यह मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष के निमित्त आत्मा का चिंतन क्यों नहीं करता है?

उत्तर- जैसे ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को मधुर, स्वादिष्ट भोजन अच्छा नहीं लगता वैसे ही मिथ्यादृष्टि को आत्म स्वभाव मोक्ष के निमित्त न ही रुचता है, न ही भावना करता है तब कैसे चिंतन करेगा?

प्र.-1375 यह मिथ्यादृष्टि जीव क्या यथानुरूप मोक्ष को नहीं जानता है?

उत्तर- अनंत जीव मोक्ष के रूप को नहीं जानते हैं, कुछ मोक्ष शब्द से स्वर्ग को ही मोक्ष जानते

हैं, कुछ शब्द रूप से जानते हैं, कुछ शब्द और अर्थ रूप से भी जानते हैं अतः मिथ्यादृष्टि मोक्ष के रूप को जानते भी हैं और नहीं भी। यदि सर्वथा नहीं जानते हैं तो ये रत्नत्रयधर्म रूपी मोक्षमार्ग को कैसे प्राप्त करेंगे तथा जब मार्ग नहीं तो मार्गफल भी नहीं और मार्ग है तो मार्गफल भी है अतः इसमें अनेकांत है।

प्र.-1376 यह मिथ्यादृष्टि जीव निरंतर क्या करता है?

उत्तर- यह मिथ्यादृष्टि जीव निरंतर प्रमाद, विषयकषायासक्त होने के कारण हिंसादि पापों को, जुआ आदि सप्त व्यसनों को, आहार आदि संज्ञाओं को, कृष्ण आदि अशुभ लेश्याओं को काय से सतत् करता है।

प्र.-1377 यह मिथ्यादृष्टि जीव हमेशा कैसे वचन बोलता है?

उत्तर- यह मिथ्यादृष्टि प्रमाद और विषयकषायासक्त होने के कारण पापवर्धक, वैरविरोध वर्धक, भोग विलास के, आश्रव बंध तत्त्व के अनुरूप वचन बोलता है, क्वचित् कदाचित् धर्म के वचन भी बोलता है।

प्र.-1378 "बहुलालावं" अधिक प्रलाप किसे कहते हैं?

उत्तर- लौकिक, लोकोत्तर वक्ता के वक्तव्य को सुनकर श्रोता ऊब जायें सो उसे बहुप्रलाप कहते हैं।

प्र.-1379 यह मिथ्यादृष्टि जीव मन में कैसा विचार करता है?

उत्तर- किस बालक बालिका का अपहरण करना है, कहाँ से मकान में घुसना है, कैसे पकड़ना है, किस समय कहाँ, कैसे, कब मारकाट करना, मारना, चोरी करना आदि का मिथ्यादृष्टि जीव निरंतर विचार करते हैं, इन्हीं के संबंध में प्रस्ताव पास किये जाते हैं, बम विस्फोट करते हैं आदि कष्टदायक विचार करते हैं।

प्र.-1380 क्या सभी मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा सोचते, बोलते और कार्य करते हैं?

उत्तर- नहीं, सभी मिथ्यादृष्टि देवगण, अहमिंद्र, पशुपक्षी और भोगभूमिज ऐसा न सोचते हैं, न बोलते हैं, न शरीर से कार्य करते हैं। नारकी क्षेत्र और काल के कारण ऐसा कार्य मन, वचन, काय से करते हैं सो इनकी यहाँ बात नहीं है किंतु जिनका होनहार अत्यंत खोटा है ऐसे कर्मभूमिज दुर्बुद्धि आतंकवादी, उग्रवादी मनुष्य मन, वचन काय से इस प्रकार सोचते हैं, बोलते हैं और कार्य करते हैं।

प्र.-1381 ये आतंकवादी ऐसा क्यों सोचते हैं, बोलते हैं और कार्य करते हैं?

उत्तर- इस अवसर्पिणी के पंचमकाल में अनार्यों, मलेच्छों का राज्य होगा, उन्हींका बोलबाला होगा तभी तो छठवाँ काल आयेगा और यह व्यवस्था अनंतोंबार घट चुकी है तथा भविष्य में घटती रहेगी अन्यथा ऐसे अनंत पंचपरावर्तन नहीं हो सकते हैं इसलिये उग्रवादियों की ऐसी दिनचर्या हो रही है।

प्र.-1382 यहाँ से मरकर मनुष्य तिर्यंच की नरक, तिर्यंच में गतिआगति किस प्रकार है?

उत्तर- **एत्थमुदा णिरयदुगं णिरय तिरिक्खादु जणणमेत्थ हवे।।863** त्रि.सा. जब प्राणी अत्यधिक दुःखी होता है तो धर्म की सोचता है, सुख चाहता है, परिणामों को सरल करता है इस हेतु से नारकी, तिर्यंच कुछ सरल परिणामों से मनुष्यायु को बांधकर मरण कर कर्मभूमि में जन्म ले लेते हैं किंतु यहाँ मनुष्य भोगासक्त, कामासक्त, आरंभ, परिग्रह में आकंठ डूबा हुआ, नरकायु, तिर्यंचायु को बांधकर वहाँ पैदा हो जाता है क्योंकि यह संसारचक्र अनादिकाल से चला आ रहा है और अनंतकाल तक चलता रहेगा।

प्र.-1383 यदि होनहारानुसार ही सभी घटनायें घटतीं हैं तो क्रमबद्ध पर्याय गलत क्यों?

उत्तर- नहीं, सर्वथा ऐसा ही होनहार है ऐसा हमने नहीं कहा है। क्रमबद्धपर्याय वालों की दृष्टि में

आज इतने पशुपक्षी, मुर्गा, मछली आदि मारे काटे जा रहे हैं वे सब अपनी मौत से ही मर रहे हैं ऐसा नियम बन जाता है किंतु उदीरणा क्षय से उदयकाल के पहले असमय में अकाल मरण से मर रहे हैं ऐसा नियम कांजी मतवालों की और टोडरमल स्मारक वालों की दृष्टि में बन ही नहीं सकता अर्थात् वे अवलंबनाकरण संक्रमण, अपकर्षण, उत्कर्षण उदीरणा और अंतरकरण को नहीं मानते यदि वे इन करणों को मानते होते तब वे क्रमबद्ध पर्याय की बात न बोलते, न लिखते, न प्रवचन करते, न पुस्तकों में छापते अतः सभी घटनायें एकमात्र क्रमबद्ध मानने में परस्थान संक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणसंक्रमण, सर्वसंक्रमण, असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा, अविपाकनिर्जरा, सकामनिर्जरा आदि कुछ भी नहीं बन सकते हैं।

प्र.-1384 होनहार किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्वबद्ध कर्मोदयानुसार वर्तमान में समय पर होने वाले शुभाशुभ कार्यों को होनहार कहते हैं।

प्र.-1385 ''होनहार'' पद से भव्यत्वभाव को लिया जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- घातियाकर्मों के उदय उपशम क्षय क्षयोपशम का निमित्त न होने से भव्यत्वभाव को परिणामिक कहा है जो निष्क्रिय है, द्रव्यस्वरूप है किंतु अघातियाकर्मों के उदय से होने के कारण भव्यत्वभाव को नैमित्तिक कहा है इसलिए सर्वत्र आचार्यों ने भविष्य में रत्नत्रयधर्म, मोक्ष को प्राप्त करेगा उसे भव्य कहा है। अतः सर्वथा होनहार (भव्य) को अल्लंघनीय मानना ही आगमाज्ञा का उल्लंघन करना है यही आपत्ति है।

नोटः- यहाँ तक 1385 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 46वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 47वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अनात्मज्ञ

मिच्छामइ मयमोहासवमत्तो बोलए जहा भुल्लो।
तेण ण जाणइ अप्पा अप्पाणं सम्मभावाणं ।।47।।

मिथ्यामतिमदमोहासवमत्तः वदति यथा विस्मृतः।
तेन न जानाति आत्मा आत्मानं साम्यभावान्।।

जहा जैसे **भुल्लो मत्तो** भुलक्कड़ **बोलए** बोलता है वैसे ही **मिच्छामइ** कुमतिज्ञानी **मय** मद **मोहासव** मोहमदिरा से **तेण** मत्त हुआ **सम्मभावाणं** साम्यभाव रूपी **अप्पा** अपनी **अप्पाणं** आत्मा को **ण** नहीं **जाणइ** जानता है।

प्र.-1386 मिथ्या मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- परउपदेश और परनिमित्त के बिना असमर्थ, समर्थ मनुष्य, पशुपक्षी ये हमारे आधीन कैसे हों, इनका कहाँ, कैसे क्रयविक्रय हो, कैसे दुःखी हों आदि अनिष्टकारी विचार करने को मिथ्या मतिज्ञान कहते हैं।

प्र.-1387 मिथ्या मतिज्ञान कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से यह मतिज्ञान सर्वघाति दर्शनमोहोदय युक्त मिथ्या हो जाता है।

प्र.-1388 मिथ्या मतिज्ञान को मद/ मदिरा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे शराब पीने से नशा उत्पन्न हो जाता है वैसे ही मिथ्यामतिज्ञान के द्वारा घमंड उत्पन्न हो जाता है इसीलिये अभेद विवक्षा में यहाँ मिथ्या मतिज्ञान को ही मद कहा है तो कोई दोष नहीं है।

प्र.-1389 मोह को मदिरा की उपमा क्यों दी?

उत्तर- जैसे शराबी मदिरा पीकर अपनी ज्ञान शक्ति खोकर मान मर्यादा को नष्ट कर सर्वत्र अपमानित

होता है, हीन दृष्टि से देखा जाता है, कोई विश्वास नहीं करता है, जहाँ कहीं भी गंदी जगहों में पड़ा रहता है, मक्खियाँ भिनकती रहतीं हैं, कुत्ते मुँह में पेशाब कर जाते हैं आदि नाना कष्टों को भोगता हुआ अपना तन, मन, धन और धर्म चारों को नष्ट करता है ऐसे ही मोही जीव इनसे भी नीची अवस्थाओं को प्राप्त हो जाता है जो शास्त्रों से मोहियों की महिमा को जानते हैं तथा वर्तमान में देख रहे हैं, घर में रहकर नाना कष्ट भोगते हैं, मारपीट सहन करते हैं किंतु संयम, तप, त्याग धर्म पालने के लिये तैयार नहीं होते हैं अतः मोह को मद न कहकर महामद की उपमा दी है। शराब का नशा तो खटाई खाने से या थोड़ी सी मारपीट से उतर जाता है परंतु मोह का नशा मरते दम तक भी नहीं छूटता है, बढ़ता ही जाता है अतः यह उपमा सार्थक है।

प्र.-1390 मोह किसे कहते हैं, मोह पद से किसको ग्रहण करना और किसको नहीं?

उत्तर- जो शुभाशुभ पदार्थों के प्रति विश्वास को, स्थिरता को प्राप्त न हो, आकर्षण को, राग, द्वेष को प्राप्त हो उसे मोह कहते हैं। अध्यात्म ग्रंथों में मोह से मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व को ग्रहण किया है, देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति को नहीं क्योंकि देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से सम्यग्दर्शन में अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार दोष होते हैं अनाचार दोष नहीं अतः मोह पद से मोक्षमार्ग के घातक कर्मों को ग्रहण करना चाहिये साधक कर्मों को नहीं क्योंकि बाधक कारण त्याज्य और साधक कारण उपादेय होते हैं।

प्र.-1391 सम्यग्दर्शनों के साथ में दर्शनमोह कर्म का कहाँ तक, कैसा संबंध है?

उत्तर- क्षायिकसम्यग्दर्शन में तथा क्षायिकसम्यग्दर्शन वाले के उपशम और क्षपकश्रेणी में दर्शनमोह का असत्त्व है, उपशमसम्यग्दृष्टि तथा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि के उपशमश्रेणी में दर्शनमोह का सत्त्व 4-11वें गुणस्थान तक है। वेदकसम्यग्दर्शन में 4 से 7 तक सम्यक्त्वप्रकृति का सत्त्व और उदय है।

प्र.-1392 "भुल्लो" भूला हुआ किसे कहते हैं?

उत्तर- मतिज्ञानावरण कर्म और श्रुतज्ञानावरण कर्म के मंद क्षयोपशम होने पर विशेष हिताहित, कर्तव्याकर्तव्य आदि का ज्ञान न होने से, गर्मी से मन में उत्पन्न हुई व्याकुलता को, बेढंग का कार्य करने को या अत्यंत मंद बुद्धि को अथवा किसी भी प्रकार के विषय को शीघ्रता से भूलने को "भुल्लो" भूला हुआ कहते हैं।

प्र.-1393 "भुल्लो" पागल या भुलक्कड़ पुरुष कैसी चेष्टायें करता है?

उत्तर- अत्यंत मंद बुद्धि वाला व्यक्ति स्वेच्छा से कुछ भी शुभाशुभ चेष्टायें नहीं करता है, न स्वेच्छा से खाता है, न पीता है, न स्नान करता है, न कपड़े बदलता है, न करवट बदलता है किंतु शरीर संबंधी क्रियाओं को कराने के लिये माँ, बाप या नौकर आदि को साथ में लगना पड़ता है और तीक्ष्ण बुद्धिवालों के दिमाग में गर्मी चढ़ जाने के कारण नाना स्वपर घातक जीवन को बिगाड़ने वाली चेष्टायें करता है, कभी हंसता है, रोता है, गाता है, बातें करता है, दौड़ता है, पत्थर मारता है, गालीगलोच करता है तथा जहाँ कहीं भी लज्जा मर्यादा को छोड़कर मलमूत्र क्षेपण कर देता है माँ, बहन, बेटियों के सामने अनर्गल चेष्टायें करता है अतः मनःस्थिति सही न होने से पागल पुरुष शुभाशुभ चेष्टायें कर लेता है।

प्र.-1394 आचार्य श्री कुंदकुंदजी ने यह उदाहरण क्यों दिया?

उत्तर- मिथ्यादृष्टियों के परिणामों को बताने के लिये पागल पुरुष का दृष्टांत दिया है जैसे लोक में पागल पुरुष बिना स्थिरता के नाना चेष्टायें करता है वैसे ही मोही, अविवेकी, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव चेष्टायें करता है अतः दृष्टिकोण सही न होने से पागल, उन्मत्त, भुलक्कड़, शराबी की उपमा दी है।

प्र.-1395 यहाँ स्त्री और नपुंसक का नाम न लेकर पुरुष का नाम क्यों लिया?

उत्तर- वेदोच्चारण में स्त्री, पुरुष, नपुंसक होने के कारण पुरुषवेद को मध्य में कहा है अतः पुरुषवेद

मध्य दीपक के समान आगे पीछे के नामों को ग्रहण कर लेता है अथवा पुरुषवेद महान होने से भी पुरुष के ग्रहण कर लेने पर शेष दो का ग्रहण हो जाता है जैसे राजा के ग्रहण करने पर राजा से संबंधित सभी सामग्री ग्रहण कर ली जाती है ऐसे ही प्रधान के ग्रहण कर लेने पर अप्रधानों का ग्रहण अपने आप हो जाता है।

प्र.-1396 मिथ्यादृष्टियों की दिनचर्या बहिर्भूत होने से वह क्या नहीं जानता है?

उत्तर- मिथ्यादृष्टियों की दिनचर्या बहिर्भूत होने से वे अपनी आत्मा और आत्मा के साम्यभावों को नहीं जानते, न जानने की कोशिश करते हैं, न सुनने के लिये तैयार हैं तब इनका सुधार कैसे हो?

प्र.-1397 क्या सभी मिथ्यादृष्टि जीव अपनी आत्मा के स्वभाव को नहीं जानते हैं?

उत्तर- नहीं, भद्र परिणामी जीवों के अलावा शेष मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा के स्वभाव को नहीं जानते हैं तथा भद्र परिणामी जीव भी गुरु उपदेश से, आगमाभ्यास से आत्मा के स्वभाव को जानते हैं तभी तो करण लब्धि से परिणत होकर स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा आत्मा को जान कर मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का खंडन कर मोक्षमार्गी बनते हैं और इन कार्यों का एक ही समय है।

प्र.-1398 मोक्षमार्गी और संसारमार्गी क्या एक ही समय में हो सकते हैं?

उत्तर- हाँ, तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीव एक ही समय में एकसाथ उभयमार्गी होते हैं क्योंकि इसका नाम ही मिश्रगुणस्थान है। इसके अलावा अन्य शेष गुणस्थानों में इन दोनों पर्यायों का अन्योन्याभाव है, एक समय में एक ही मोक्षमार्ग या संसारमार्ग हो सकता है, दोनों नहीं। संसारमार्ग का प्रध्वंसाभाव होते ही मोक्षमार्ग और मोक्षमार्ग का प्रध्वंसाभाव होते ही संसारमार्ग होता है ऐसा अकाटच नियम है।

प्र.-1399 साम्यभाव किसे कहते हैं?

उत्तर- मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हि समो। प्र. सा. 7 प्र. अ.। चारित्रमोहनीय के अभाव में उत्पन्न हुए आत्मभावों को साम्यभाव कहते हैं। यह साम्यभाव संयम प्रत्यय है।

प्र.-1400 यह साम्यभाव कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- चारित्रमोहनीय के उपशम से औपशमिक साम्यभाव, क्षय से क्षायिक साम्यभाव और चारित्रमोह के सर्वघाती स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, इन्हीं के आगामी काल में उदय में आने वाले स्पर्धकों का सदवस्था रूप उपशम और देशघाती के उदय से क्षायोपशमिक साम्यभाव उत्पन्न होता है।

प्र.-1401 यह साम्यभाव किस गुणस्थान में उत्पन्न होता है और कहाँ तक रहता है?

उत्तर- औपशमिक साम्यभाव एकमात्र ग्यारहवें गुणस्थान में, क्षायिक साम्यभाव बारहवें गुणस्थान में और क्षायोपशमिक साम्यभाव सातवें गुणस्थान में उत्पन्न होकर 6 से 10वें गुणस्थान तक रहता है।

प्र.-1402 यह साम्यभाव चेतन है या अचेतन?

उत्तर- आत्मद्रव्य और चारित्रगुण में अभेद विवक्षा में चेतन है एवं चारित्रगुण की अपेक्षा अचेतन है क्योंकि आत्मा में ज्ञान दर्शन गुण को छोड़कर शेष सभी अनंत गुण, स्वभावधर्म अचेतन हैं।

प्र.-1403 यह साम्यभाव पहले गुणस्थान से लेकर पाँचवें तक क्यों नहीं होता है?

उत्तर- क्योंकि यहभाव मिथ्यात्व, विषयकषाय और संयमघाती असंयम के साथ में नहीं रहता है।

प्र.-1404 इस साम्यभाव को कौन सा सम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त करता है?

उत्तर- वर्तमाननय से वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव ही साम्यभाव को प्राप्त करता है, सराग सम्यग्दृष्टि नहीं।

प्र.-1405 मिश्र साम्यभाव को प्रमत्तसंयत मुनि प्राप्त करता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इस मिश्र/ क्षायोपशमिक साम्यभाव को वर्तमान नय और भावी नैगमनय से समझना चाहिए क्योंकि प्रमत्त तथा अप्रमत्त आदि गुणस्थान वाले मुनिजन ही इस भाव को प्राप्त करते हैं, दूसरे नहीं।

प्र.-1406 साम्यभाव प्रतिपाती है या अप्रतिपाती और इसके स्वामी कौन जीव हैं?

उत्तर- साम्यभाव प्रतिपाती तथा अप्रतिपाती है। औपशमिक और क्षायोपशमिक साम्यभाव प्रतिपाती तथा क्षायिक साम्यभाव अप्रतिपाती ही है। क्षायिक साम्यभाव के स्वामी चरमशरीरी मुनि और औपशमिकभाव एवं क्षायोपशमिकभाव रूप साम्यभाव के चरमशरीरी और अचरमशरीरी मुनि हैं।

प्र.-1407 प्रतिपात किसे कहते हैं?

उत्तर- किसी स्थान को छोड़कर या छूटकर नीचे गिरने को प्रतिपात कहते हैं, केवल छोड़ने को नहीं।

प्र.-1408 वीतराग सम्यग्दृष्टि जीव किसे कहते हैं?

उत्तर- 11वें गुणस्थानवर्ती उपशांतमोही और 12वें गुण. क्षीणमोही मुनियों को वीतराग सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

प्र.-1409 यह वीतराग सम्यग्दृष्टि पद प्रतिपाती है या अप्रतिपाती?

उत्तर- 11वें गुणस्थान वाला वीतरागी प्रतिपाती है तथा 12वें गुणस्थान वाला वीतरागी अप्रतिपाती है।

प्र.-1410 क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनि वीतरागता प्राप्त करते हैं या नहीं?

उत्तर- हाँ, चरमशरीरीमुनि क्षपक तथा उपशमश्रेणी आरोहण करते हैं तो वर्तमान में ही 11वें 12वें गुणस्थानवाले वीतराग सम्यग्दृष्टि पद प्राप्त कर लेते हैं, अचरमशरीरीमुनि उपशमश्रेणी आरोहण कर 11वें गुणस्थान वाला वीतरागसम्यग्दृष्टि पद प्राप्त कर लेते हैं, अन्य नहीं।

प्र.-1411 सराग सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं और कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर- राग सहित सम्यग्दर्शन को या प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य गुणवाले सम्यग्दर्शन को सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह चौथे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.-1412 सराग सम्यग्दर्शन के स्वामी कौन कौन हैं और उन्हें क्या कहते हैं?

उत्तर- सराग सम्यग्दर्शन के स्वामी अव्रती, अणुव्रती, महाव्रती सरागी हैं इन्हें सराग सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

प्र.-1413 यह सराग सम्यग्दृष्टिपना प्रतिपाती है या अप्रतिपाती?

उत्तर- क्षपकश्रेणी वाले सराग सम्यग्दृष्टि पद अप्रतिपाती है, शेष सराग सम्यग्दृष्टि पद प्रतिपाती है।

प्र.-1414 क्या सभी पर्यायें सादिसांत ही होतीं हैं?

उत्तर- नहीं, सभी पर्यायों में से कुछ पर्यायें अनादिअनंत, अनादिसांत, सादीसांत, सादिअनंत होतीं हैं।

प्र.-1415 कौन कौन सी पर्यायें किन किन भंगों वाली होतीं हैं?

उत्तर- अभव्य और दूरानुदूर भव्य जीवों के अनादिअनंत भंगवाली, अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यों के अनादिसांत भंगवाली, सादि मिथ्यादृष्टियों के, सरागी सम्यग्दृष्टियों के और छद्मस्थ जीवों के सादिसांत भंगवाली पर्यायें होतीं हैं, केवलियों के तथा सिद्धों के सादिसांत एवं सादिअनंत पर्यायें होतीं हैं।

प्र.-1416 पर्यायों के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- पर्यायों के दो भेद हैं। **नामः-** अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय। अर्थपर्याय/गुणपर्याय क्षणवर्ती तथा व्यंजनपर्याय चिरस्थायी होती है। अर्थपर्याय एकसमय मात्र की होती है किंतु परंपरा की अपेक्षा अनादिअनंत, अनादिसांत, सादिसांत, सादिअनंत काल तक रहतीं हैं। व्यंजनपर्याय आयु पर्यंत होती है और संतान परंपरा की अपेक्षा चारों प्रकार की होती है। ये दोनों पर्यायें सभी द्रव्यों में पायी जातीं हैं।

प्र.-1417 अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय के कितने कितने भेद हैं?

उत्तर- अर्थपर्याय के शुद्ध, अशुद्ध तथा व्यंजनपर्याय के भी शुद्ध और अशुद्ध ये ही दो दो भेद हैं।

प्र.-1418 अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- गुणों के परिणमन को अर्थपर्याय तथा द्रव्य के परिणमन को व्यंजनपर्याय कहते हैं।

प्र.-1419 शुद्ध अर्थपर्याय और अशुद्ध अर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- गुणों को और गुण पर्यायों को घातने वाले कर्मों के समूल क्षय या उपशम से उत्पन्न पर्याय को शुद्ध अर्थ पर्याय तथा उदय और क्षयोपशम से उत्पन्न पर्याय को अशुद्ध अर्थपर्याय कहते हैं अथवा शुद्ध गुणों के परिणमन को शुद्ध अर्थपर्याय और अशुद्ध गुणों के परिणमन को अशुद्ध अर्थपर्याय कहते हैं।

प्र.-1420 कर्मों के क्षयोपशम से होने वाले कौन से भाव शुद्ध हैं या अशुद्ध?

उत्तर- रत्नत्रय सहित क्षायोपशमिकभाव उपयोग शुभ और रत्नत्रय के बिना यही भाव अशुद्ध है।

प्र.-1421 कर्मों के क्षयोपशम से होने वाले सभी भाव क्या शुद्ध होते हैं या अशुद्ध?

उत्तर- कर्मों के क्षयोपशम से होने वाले सभी भाव प्रायः कर अशुद्ध ही होते हैं फिर भी अशुभ भावों की अपेक्षा ज्ञानदर्शन उपयोग रूपी शुभ भावों को संयम सहित होने से शुद्ध कहा जाता है।

प्र.-1422 कर्मोदय से होने वाले भाव शुद्ध हैं या अशुद्ध?

उत्तर- कर्मोदय से होने वाले सभी भाव अशुद्ध ही हैं, शुद्ध नहीं क्योंकि ये कर्मकृत हैं।

प्र.-1423 कर्मकृत कितने भाव हैं और ये सभी भाव शुद्ध हैं या अशुद्ध?

उत्तर- **कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।**
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं।।58।। पं.का.

अर्थ-: द्रव्यकर्म के बिना आत्मा के औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव भी नहीं हो सकते अतः जीव के ये चार भाव कर्मकृत हैं। क्षायिकभाव परमशुद्ध है, औपशमिकभाव अपेक्षाकृत शुद्ध है, क्षायोपशमिकभाव साधन की अपेक्षा शुद्ध और विराधना की अपेक्षा अशुद्ध तथा औदयिक भाव कथंचित् शुद्धाशुद्ध, न सर्वथा शुद्ध है न सर्वथा अशुद्ध।

प्र.-1424 इन चारों भावों को सर्वथा उपादानकृत ही माने तो क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, इन सभी भावों को सर्वथा आत्मोपादान कृत मानने से संसार व संसार के कारण आश्रवबंध तथा मोक्ष और मोक्ष के कारण संवर निर्जरा बन नहीं सकते यही महान दोष है क्योंकि ये दोनों अवस्थायें बिना कर्मों के बन नहीं सकती किंतु ये चारों भाव नैमित्तिक भाव है।

प्र.-1425 फिर इन सभी भावों को सर्वथा कर्मकृत ही माने तो क्या दोष हैं?

उत्तर- जो दोष आत्मोपादान कृत में आते हैं वे ही दोष इन भावों को सर्वथा द्रव्यकर्मकृत मानने में आते हैं।

प्र.-1426 शुद्ध व्यंजनपर्याय और अशुद्ध व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- शुद्ध द्रव्य के आकार को या परिणमन को शुद्ध व्यंजनपर्याय और अशुद्ध द्रव्य के आकार को या परिणमन को अशुद्ध व्यंजनपर्याय अथवा मलिन करने वाले कर्मों के समूल क्षय से उत्पन्न आत्मा की अवस्था को शुद्ध व्यंजनपर्याय और विकारी जीवद्रव्य के परिणमन को अशुद्ध व्यंजनपर्याय कहते हैं।

प्र.-1427 शुद्ध पर्यायों में कौनसी पर्याय प्रतिपाती है और कौन सी अप्रतिपाती?

उत्तर- कदाचित् शुद्ध अर्थपर्याय प्राप्ति के बाद छूट जाने से प्रतिपाती है अन्यथा अप्रतिपाती है अथवा व्यय धर्म की या प्रध्वंसा भाव की अपेक्षा भी प्रतिपाती है किंतु शुद्ध व्यंजन पर्याय प्राप्त होने के बाद नहीं छूटती, अनंतानंत काल तक रहेगी अतः अप्रतिपाती है।

प्र.-1428 शुद्ध अर्थपर्याय की प्राप्ति होने के बाद में छूट सकती है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- औपशमिक और क्षायोपशमिक शुद्ध अर्थपर्याय की प्राप्ति होने के बाद में नियम से प्रतिपातपने को प्राप्त होतीं हैं इसलिए कहा है कि शुद्ध अर्थपर्याय प्रतिपाती और अप्रतिपाती दोनों प्रकार की होती है।

प्र.-1429 तो कौन सी शुद्ध अर्थपर्याय अप्रतिपातीपने को प्राप्त होती है?

उत्तर- क्षायिकभाव रूप शुद्ध अर्थपर्याय अप्रतिपातीपने को प्राप्त होती है।

प्र.-1430 क्या पारिणामिकभाव अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय रूप भी होता है?

उत्तर- पारिणामिकभाव द्रव्य रूप होने से उभय पर्यायरूप नहीं है क्योंकि यह अपरिणामी स्वभावी है।

प्र.-1431 क्या पारिणामिकभाव सभी द्रव्यों में पाया जाता है?

उत्तर- हाँ, यह पारिणामिकभाव सामान्यतया सभी द्रव्यों में पाया जाता है किंतु कुछ विशेष पारिणामिकभाव जैसे भव्यत्व, अभव्यत्व, जीवत्व आदि जीव में ही पाये जाते हैं।

प्र.-1432 क्या नैमित्तिकभाव भी सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं तथा यदि ऐसा है तो आचार्यों ने इन तीन द्रव्यों में नैमित्तिक भावों का निषेध क्यों किया?

उत्तर- केवल जीव और कर्मपुद्गलों में ही नैमित्तिकभाव पाये जाते हैं, शेष 4 द्रव्यों में नहीं या जब कालद्रव्य धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य के परिणमन में बाह्य निमित्त है तो परिणमन करना ही नैमित्तिक भाव है अन्यथा यदि इनमें नैमित्तिकभाव न माना जाये तो कालद्रव्य को निमित्तपना नहीं कहा जा सकता है अतः जब निमित्त नैमित्तिक संबंध है तो इन तीनद्रव्यों में भी नैमित्तिकभाव होना चाहिये। जिस प्रकार जीव और पुद्गलद्रव्य में नैमित्तिक भाव होते हैं वैसे भाव इन द्रव्यों में न होने से निषेध किया है, सर्वथा नहीं अन्यथा कार्य की उत्पत्ति अंतरंग बहिरंग कारणों से होती है यह नियम नहीं बन सकता है एवं कार्य लिंगं हि कारणम्। गा. 68 आ.मी. दू.चरण। कार्य कारण का नियामक है ऐसा कहा है।

प्र.-1433 सराग सम्यग्दर्शन के कौन कौन से जीव स्वामी हैं?

उत्तर- चारों गतियों के अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव सराग सम्यग्दर्शन के, मनुष्य और तिर्यंचगति के अणुव्रती तथा आर्य मलेच्छखंडोत्पन्न उत्तम जाति कुल आचारविचार वाले महाव्रती मुनिजन स्वामी हैं।

प्र.-1434 सराग सम्यग्दर्शन के स्वामी मलेच्छ मनुष्यों को क्यों नहीं कहा?

उत्तर- हाँ, मलेच्छ खंडोत्पन्न मलेच्छखंड के निवासी मनुष्य मनुष्यनियों को सराग सम्यग्दर्शन का स्वामी नहीं कहा है किंतु जिन्होंने सकलचक्री, अर्धचक्री आदि महापुरुषों के साथ दिग्विजय के समय यहाँ आकर यहाँ के अनुसार अपना आचारविचार बना लिया है वे कदाचित् सरागसम्यग्दर्शन के स्वामी हो सकते हैं तथा वहाँ की कन्याओं से यहाँ के महापुरुषों के नियोग से उत्पन्न संतानों को मातृपक्ष की अपेक्षा मलेच्छ कहकर इनको भी सरागसम्यग्दर्शन का स्वामी आचार्यों ने कहा है।

प्र.-1435 चक्रवर्तियों से मलेच्छ राजकन्याओं का विवाह होता है या प्रजाकन्याओं से?

उत्तर- दिग्विजय के समय जो कन्यायें मलेच्छ राजाओं के द्वारा भेंट में दी जाती हैं उन्हीं के साथ में विवाह संबंध होता है, प्रजा की कन्याओं के साथ में नहीं। वे केवल दासी रूप में रहतीं हैं।

नोटः- यहाँ तक 1435 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 47वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 48वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

उपशमभाव की महिमा

पुव्वट्ठियं खवइ कम्मं पविसुदु णो देइ अहिणवं कम्मं।

इहपरलोयमहप्पं देइ तहा उवसमो भावो।।48।।

पूर्वस्थितं क्षपयति कर्मं प्रवेष्टं न ददाति अभिनवं कर्मं।

इहपरलोकमाहात्म्यं ददाति तथा उपशमो भावः।।

उवसमोभावो उपशमभाव **पुव्वट्ठियं** पूर्वस्थित **कम्मं** कर्मों को **खवइ** क्षय करता है **अहिणवं** नवीन **कम्मं** कर्मों का **पविसुदु** आश्रव **णो** नहीं होने **देइ** देता अर्थात् नवीनकर्मों का संवर करता है **तहा** तथा **इहपरलोय महप्पं** उभयलोक में माहात्म्य **देइ** देता है।

प्र.-1436 उपशमभाव किसे कहते हैं?

उत्तर- उदय, उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात के बिना केवल सत्ता में रहने को या उत्कृष्ट पुरुषार्थ के द्वारा उदयावलि में प्रवेश न करने को उपशमभाव कहते हैं।

प्र.-1437 उपशमभाव क्या समीचीन ही होता है?

उत्तर- हाँ, यह उपशमभाव केवल मोक्षमार्गियों में होने के कारण समीचीन ही होता है, मिथ्या नहीं।

प्र.-1438 उपशमभाव को मंदकषाय रूप मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- सर्वप्रथम मंदकषाय रूप परिणामों को मोक्षमार्ग मानने में आश्रवबंध किससे होगा? क्योंकि उपशमभाव सम्यक् पुरुषार्थ से उभयमोहकर्म के उदयाभाव में होता है और यह मोक्षमार्ग ही है, अकषायभाव ही है, कषायभाव नहीं है अतः इसे मंदकषाय रूप औदयिकभाव नहीं मान सकते हैं।

प्र.-1439 यह अवस्था कैसे प्राप्त होती है?

उत्तर- यह अवस्था करणलब्धि के अंतिम अनिवृत्तिकरण परिणामों से प्राप्त होती है।

प्र.-1440 इस अवस्था को कौन सा जीव प्राप्त करता है?

उत्तर- इस अवस्था को अनादि मिथ्यादृष्टि, सादिमिथ्यादृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त करता है।

प्र.-1441 उपशमभाव को मिथ्यादृष्टि जीव क्या मिथ्यात्वावस्था में प्राप्त करता है?

उत्तर- उपशमभाव को मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वावस्था में प्राप्त न कर मिथ्यात्व के अभाव में प्राप्त करता है। कार्योत्पत्ति में सद्भावकारण और अभावकारण ये दो माने हैं। यहाँ उपशमसम्यग्दर्शन को प्राप्त करने में दर्शनमोहनीयकर्म और उपशमचारित्र को प्राप्त करने में कषायकर्म को अभाव रूप कारण माना है। सद्भाव कारण- देशघाति प्रकृतियों के सद्भाव में भी मोक्षमार्ग चालू रहता है किंतु दर्शनमोह की सर्वघाति प्रकृतियों के उदय में मोक्षमार्ग प्रायःकर मृततुल्य हो जाता है।

प्र.-1442 यह अवस्था किन किन कर्मों की होती है?

उत्तर- यह उपशमकरण रूपी अवस्था केवल मोहनीयकर्म की होती है, शेष सात कर्मों की नहीं।

प्र.-1443 इस उपशमभाव तथा उपशम सम्यक्त्व के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- उपशमभाव के दो भेद हैं। नाम- उपशम सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र। उपशम सम्यक्त्व के दो भेद- प्रथमोपशम सम्यक्त्व और द्वितीयोपशम सम्यक्त्व।

प्र.-1444 ये दोनों भाव किस गुणस्थान में उत्पन्न होकर कहाँ तक रहते हैं?

उत्तर- प्रथमोपशम सम्यक्त्व 4थे से 7 गुणस्थान तक, द्वितीयोपशम सम्यक्त्व 7वें से 11वें गुणस्थान

तक होता है और औपशमिक चारित्र एकमात्र 11वें गुणस्थान में ही उत्पन्न होकर रहता है इसके आगे पीछे नहीं।

प्र.-1445 इस उपशमभाव का गाथानुसार प्रथम फल क्या है?

उत्तर- उपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले बांधे गये पाप कर्मों का क्षय करना प्रथम फल है यहाँ क्षय का मतलब असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा करना है क्योंकि कर्मों का समूल क्षय कृतकृत्यवेदक दर्शनमोहनीय कर्म का और क्षपकश्रेणी वाले मुनिजन ही क्रमशः समस्त कर्मों का समूल क्षय करते हैं।

प्र.-1446 क्या उपशमभाव से कर्मों का क्षय होता है?

उत्तर- नहीं, उपशमभाव से कर्मों का समूल क्षय नहीं होता है किंतु एकमात्र मोहनीयकर्म शक्तिहीन होकर उदयावलि में प्रवेश करने के योग्य हो जाता है या उदयाभाव को प्राप्त हो जाता है।

प्र.-1447 तो उपशम भाव कर्मों को क्षय करता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- उपशम भाव के समय पूर्वबद्ध कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की सकाम और अविपाक निर्जरा होती है सो आचार्यश्रीजी ने इस निर्जरा को ही एकदेश कर्मों का क्षय नाम से कहा है।

प्र.-1448 सकामनिर्जरा और अविपाकनिर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस निर्जरा से मोक्ष की प्राप्ति हो, नवीन कर्मबंध न हो वह सकामनिर्जरा और निश्चल धर्मध्यान और शुक्लध्यान से जो कर्म बिना फल दिये समय के पूर्व निर्जीर्ण हो वह अविपाकनिर्जरा हैं।

प्र.-1449 यह सकामनिर्जरा किसके समान होती है?

उत्तर- यह निर्जरा नपुंसकों के समान होती है जैसे नपुंसक पैदा हो जाता है किंतु नामर्द होने से संतान पैदा नहीं करता ऐसे ही यह निर्जरा नवीन बंध किये बिना सम्यग्दृष्टियों के होती है।

प्र.-1450 अकामनिर्जरा और सविपाकनिर्जरा में क्या अंतर है?

उत्तर- जो कर्मों की निर्जरा नवीन बंध पूर्वक मोक्षफल प्राप्त कराने वाली न हो वह अकामनिर्जरा और जो कर्म समय पर अपना फल देकर झड़ते हैं वह सविपाकनिर्जरा है, यही इनमें अंतर है।

प्र.-1451 यह अकामनिर्जरा किसके समान होती है?

उत्तर- यह निर्जरा भोगभूमियों के समान होती है जैसे भोगभूमिज आर्य आर्या संतान को जन्म देकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं इससे उनकी संतान परंपरा का विच्छेद नहीं होता है ऐसे ही इस अकाम निर्जरा या सविपाक निर्जरा से संसार परंपरा चलती रहती है।

प्र.-1452 सकाम, अकाम या अविपाक, सविपाकनिर्जरा के स्वामी कौन कौन जीव हैं?

उत्तर- इन दोनों निर्जराओं के स्वामी अयोगकेवली पर्यंत महामुनि हैं क्योंकि उभयकेवलियों के कुछ कर्मप्रकृतियों की असंख्यात गुणश्रेणी रूप से और कुछ की सामान्य एक एक निषेक रूप से निर्जरा होती है।

प्र.-1453 क्षय किसे कहते हैं और कितने प्रकार का होता है?

उत्तर- उदय के अभाव को या सत्ता के अभाव को अथवा हमेशा के लिये आत्मा से कर्मों का, विकारों का पृथक् होने को क्षय कहते हैं। क्षय दो प्रकार का होता है। नामः- उदयाभावी क्षय और सत्ता का अभाव अथवा उत्तर प्रकृतियों का क्षय होना एकदेश क्षय है और मूल प्रकृतियों का क्षय होना सर्वदेश क्षय है।

प्र.-1454 इस उपशमभाव का गाथानुसार दूसरा फल क्या है?

उत्तर- गुणस्थानानुसार नवीन पाप का और पुण्य का भी संवर होना उपशमभाव का दूसरा फल है।

प्र.-1455 उपशमभाव से पाप और पुण्य कर्मों के संवररूप फल में अंतर क्यों?

उत्तर- प्रारंभ या अभ्यास दशा के उपशमभाव में इतनी तीक्ष्णता न होने से तथा आगे आगे गुणस्थानानुसार भावों में निर्मलता तीक्ष्णता आने से फल में अंतर हो जाता है। जैसे पहला उपशमभाव असंयम सहित है, दूसरा उपशमभाव देशसंयम सहित और तीसरा उपशमभाव प्रमाद पूर्वक सकलसंयम सहित है और आगे के उपशमभाव कषाय सहित, रहित उपशमश्रेणीगत है तब फल में अंतर होगा ही सो इसमें कोई संदेह नहीं है।

प्र.-1456 संवर किसे कहते हैं?

उत्तर- वर्तमान में निज के उत्कृष्ट पुरुषार्थ पूर्वक नवीन कर्मों को आने से रोकने को संवर कहते हैं।

प्र.-1457 रुकने का नाम संवर है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं, यदि रुकने का नाम संवर होता तो समस्त एकेंद्रियादिप्राणी संवरतत्त्व के अधिकारी हो जाते क्योंकि सभी जीवों के सातिशय उत्कृष्ट पुण्य और पाप प्रकृतियों का आश्रव बंध नहीं होता है। संवर तत्त्व के लिये रत्नत्रयधर्म आदि गुप्तियां चाहिये अतः रुकने का नाम संवर नहीं है किंतु रोकने का नाम संवर है।

प्र.-1458 संवर कहाँ पूर्ण होता है तथा किसके बिना किसकी प्राप्ति नहीं होती है?

उत्तर- निकटभव्यों के प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि से प्रारंभ होकर अयोगकेवली के प्रथम समय में ही संवर पूर्ण हो जाता है। सर्वप्रथम पाप का संवर फिर आगे आगे पाप का, पुण्य का संवर होता है। आत्मा में जब तक पापाश्रव हो रहा है तब तक यथाख्यातचारित्र नहीं होता है, पापोदय में केवलज्ञान की प्राप्ति और जबतक पापपुण्य की सत्ता है तबतक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। सयोगीप्रभु के जो कुछ पापप्रकृतियों का उदय है वो नगण्य है इनसे ध्यान और केवलज्ञान में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है यथाख्यातचारित्र के बिना केवलज्ञान की एवं केवलज्ञान के बिना योगों का अभाव तथा योगों के अभाव के बिना संवर और पूर्ण संवर के बिना पूर्ण निर्जरा व पूर्ण निर्जरा हुए बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

प्र.-1459 तो फिर मोक्ष की प्राप्ति किस क्रम से होती है?

उत्तर- कर्मभूमिज, आर्यखंडोत्पन्न, उत्तमआचारविचार, उत्तमवर्ण वाला, वज्रवृषभनाराचसंहनन वाला, चरमशरीरी, मनुष्य मनुष्यनी दिगंबर निर्ग्रंथ जिनकल्पीमुनि अवस्था, क्षपकश्रेणी, मोहनीयकर्म का क्षय, 3 घातियाकर्मों का क्षय, अनंतचतुष्टय की प्राप्ति, आश्रवबंध का अभाव, पूर्णसंवर, व्युपरत क्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान, क्रमशः पूर्ण निर्जरा पूर्वक अघातियाकर्मों के क्षय से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.-1460 उपशमभाव से इसलोक संबंधी माहात्म्य कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर- उपशमभाव पूर्वक योगों की निर्मलता से सातिशय पुण्य की प्राप्ति, सातिशय पुण्योदय से उच्च श्रेणीपद, राज्यपद, नाना वैभव, शलाका पुरुषों की पदवी, नाना सुखसंपदायें और तीर्थंकर पदवी प्राप्त होती है। नाना मनुष्य देवी देवतागण सेवक तथा आज्ञा पालक हो जाते हैं, अंत में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.-1461 उपशमभाव से परलोक संबंधी माहात्म्य कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर- उपशमभाव से पंचकल्याणक वाली तीर्थंकरप्रकृति का आश्रवबंध होता है जिससे परभव में अनेक देव और मनुष्यों के द्वारा आदरसम्मान पूजाप्रतिष्ठा प्राप्त कर बाद में मोक्ष प्राप्त होता है।

प्र.-1462 उपशमभाव से ये सब लौकिक और लोकोत्तर फल कैसे प्राप्त होते हैं?

उत्तर- जैसे एक ही दीपक से अंधकार नष्ट होकर प्रकाश, प्रताप मिलता है, सेंकना, तापना, भोजन पकाना, जलाना, सुखाना तथा धुँआदि अनेक कार्य होते हैं ऐसे ही एक ही उपशमभाव से लौकिक और लोकोत्तर आश्चर्यकारी पद आदि फलों के साथ[2] संवर, निर्जरा एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.-1463 उपशमभाव से मोक्ष के पहले सांसारिक फल क्यों प्राप्त होता है?

उत्तर- जैसे बीज से ईंधन, भूसा, लकड़ी पत्ते और फल की प्राप्ति होती है ऐसे ही उपशमभाव से सांसारिक सुख सामग्री की प्राप्ति के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.-1464 मोक्ष किन जीवों को प्राप्त होता है?

उत्तर- सामान्य व्यक्तियों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है किंतु बड़े[2] राजा, महाराजा, सेठ, साहूकारों को, उच्च निर्दोष तीन वर्णवालों को मोक्ष की प्राप्ति होती है। कहा भी है **''भुक्ति, मुक्ति दातार चौबीसों जिनराज वर''** जिनेंद्र की या नवदेवताओं की और रत्नत्रयधर्म की निःस्वार्थ, निष्कपट भावों से आराधना, ध्यान, साधना करने से संसार के उत्तम भोग भोगने के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है तभी तो जैनी धन संपन्न होते हैं, गरीब नहीं। इसीलिये शास्त्रों में मोक्ष में जाने वाले गरीब, दीन, दरिद्री जीवों का एक भी उदाहरण नहीं मिलता यदि जैनी गरीब होते तो एकाद उदाहरण मिलना चाहिये था पर नहीं मिलता है।

प्र.-1465 आजकल तो बहुत जैनी गरीब देखे जा रहे हैं तो क्या यह झूंठ है?

उत्तर- नहीं, झूंठ नहीं है समझफेर है। कहा है **''जो जैनी है वह दुःखी नहीं है और जो दुःखी है वह जैनी नहीं है''** इसका कारण यह है कि जैनी विपाकविचय धर्मध्यानी होता है अतः पापोदय में घबराता नहीं है क्योंकि यह हमारे ही पूर्वकृत अपराध का फल है यह तो हमारी आत्मसाधना में कमी होने से अपना फल देगा इसमें किसी दूसरे का दोष नहीं है अब हमको इस कर्मोदय की अवस्था में भयभीत नहीं होना चाहिये। रोने से, घबराने से पुनः कर्मबंध होता है। पांडवों की तरह उपसर्ग परीषहों को जीतना चाहिये जिससे पुनः नवीन कर्मों का बंध नहीं हो इसीलिये जैनी आपत्ति, विपत्तियों के आने पर दुःखी नहीं होता है और जो दुःखी हो जाता है वह पुण्य, पाप का श्रद्धानी नहीं है, विपाकविचय धर्मध्यानी नहीं है, कदाचित् सम्यग्दृष्टि नारकियों की तरह दुःखी हो भी गया तो उसका वह दुःख परिणाम चिरस्थायी नहीं होता है जैसे सिगड़ी से उबलते हुए दूध को अलग करते ही उबलना बंद हो जाता है, ठंडा होने लगता है ऐसे ही कदाचित् संहनन हीन होने पर उपसर्ग परीषहों से थोड़ी देर के लिये दुःखी होता है पर कारण के हटते ही प्रसन्न हो जाता है।

प्र.-1466 वर्तमान में अनेक जैनी दुःखी हैं तो क्या वे वास्तव में जैनी नहीं हैं?

उत्तर- जो पूर्वकृत अपराध के कारण तथा वर्तमान में जानते हुए, त्यागने में समर्थ होते हुए भी अपराध के कारण दुःखी हो रहे हैं वे वास्तव में जैनी नहीं हैं किंतु जैनकुल में पैदा हुए हैं सो बाह्य लक्षण से जैन हैं अतः जैनियों को यथार्थ में सम्यक् श्रद्धानी सम्यग्ज्ञानी और सम्यक् आचार विचारवान् होना चाहिये।

प्र.-1467 जैनधर्म, जैनजाति, जैनकुल में क्या अंतर है और काल मर्यादा क्या है?

उत्तर- जिनेंद्र प्रणीत मार्ग को, आचरण को जैनधर्म कहते हैं। तीर्थंकरों की, अरिहंतों की, गुरुओं की आज्ञा पालने वाले को जैनी कहते हैं और जिनेंद्र की आज्ञा पालक संतान परंपरा वालों को जैनजाति, जैनकुल कहते हैं। धर्म का संबंध आत्मा से है तो जाति, कुल का संबंध शरीर से है ये सभी अनादि से हैं और अनंतकाल तक रहेंगे। जैनधर्म के पालक सभी हो सकते हैं किंतु बेटीव्यवहार अपनी ही जातिकुल में किया जाता है तथा रोटी व्यवहार तीन उच्च वर्णवाले सदाचारी, सद्विचारियों के साथ में किया जाता है।

प्र.-1468 जैनजाति किसे कहते हैं?

उत्तर- जैनधर्म के पालक माता और मातृपक्ष वालों को जैनजाति कहते हैं।

प्र.-1469 जैनकुल किसे कहते हैं और इसका क्या फल है?

उत्तर- जैनधर्म के पालक पिता और पितृपक्ष वालों को जैनकुल कहते हैं अतः जैनधर्म आत्म प्राप्ति का अनन्य साधन है किंतु जातिकुल शरीर के धर्म हैं यद्यपि सज्जाति की प्राप्ति से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है फिर भी यदि कोई सज्जातिवान अहंकार, ममकारपने को प्राप्त हो जाये तो अधःपतन का साधन बन जाता है अतः आचार्यों ने जातिकुल का मद हानिकारक कहा है किंतु विवेक को हानिकारक नहीं कहा है।

प्र.-1470 जब सभी द्रव्य स्वतंत्र हैं तब उपशम भाव देता लेता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि कोई किसी को देता लेता नहीं है तो दाता, पात्र की व्यवस्था कैसे बनेगी? **विधिद्रव्यदातृपात्र विशेषात्तद्विशेषः** देशनालब्धि, धर्मदेशना और लेनदेन का व्यवहार भी व्यर्थ हो जायेगा अतः जब दाता, पात्र नहीं है तो दानांतराय और लाभांतराय कर्म भी न होंगे तथा इनका सद्भाव न होने से इनका आश्रवबंध नहीं तो संवरनिर्जरा भी नहीं फिर मोक्ष कैसे? कारण संसार के बिना मोक्ष नहीं अतः दाता, पात्र होने से ही पुण्यपाप की, स्वर्गनरक की व्यवस्थायें बन सकतीं हैं। केवली असत्यवादी होते हैं क्या?

प्र.-1471 जब सभी द्रव्य स्वतंत्र हैं तो फिर यह संसार कैसे हुआ?

उत्तर- सभी द्रव्य स्वभाव या उपादान उपादेय या स्वचतुष्टयापेक्षा स्वतंत्र हैं किंतु निमित्तनैमित्तिक संबंध या परचतुष्टय की अपेक्षा परस्पर में दंपतिवत् परतंत्र हैं। मिश्र या अशुद्धद्रव्यावस्था का नाम ही संसार है तभी तो स.सा. गा. 20, 220 और मो.पा. गा. 17 में सचित्ताचित्त और मिश्रद्रव्य कहा है।

नोटः- यहाँ तक 1471 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 48वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 49वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

वर्तमान के मनुष्य

अज्जवसप्पिणि भरहे पउरारुद्दट्टज्झाणयादिट्ठा।
णट्ठा दुट्ठा कट्ठा पापिट्ठा किह्न णील काऊदा।।49।।

अद्यावसर्पिणीभरते प्रचुरा रौद्रार्तध्याना द्रष्टाः।
नष्टाः दुष्टाः कष्टाः पापिष्ठाः कृष्णनीलकापोताः।।

अज्जवसप्पिणि आज अवसर्पिणी काल **भरहे** भरतक्षेत्र में **पउरा** अधिकतर **रुद्दट्टज्झाणया** रौद्रध्यानी आर्तध्यानी **णट्ठा** नष्ट **दुट्ठा** दुष्ट **कट्ठा** कष्टमय **पापिट्ठा** पापी **किह्नणील काऊदा** अशुभलेश्या वाले **दिट्ठा** देखे जा रहे हैं।

प्र.-1472 इस गाथा में ग्रंथकारजी ने 'अज्ज' पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- यह उपदेश विदेहक्षेत्रस्थ, ऐरावतक्षेत्रस्थ, धातकीखंड, पुष्करार्धवासी और भोगभूमियों या चौथेकाल वालों के लिये किया है इस अर्थ के निराकरणार्थ गाथा में **''अज्ज''** पद का प्रयोग किया है किंतु इस हुंडावसर्पिणीकाल के पंचमकाल में जन्मे प्राणियों के लिये संबोधन किया है या आचार्य श्री के सामने गाथोक्त प्राणी थे सो उस समय देश में हाहाकार मच रहा था तो आज अधिक मात्रा में हाहाकार मच रहा है तब क्या आश्चर्य है सो ऐसी ही दिनचर्याओं से पापवृद्धि के कारण ही छठवाँकाल आयेगा।

प्र.-1473 गाथा में ''अवसर्पिणी'' पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- जैसे सर्पिणी मुँह से पूँछ तक मोटी से पतली पतली होती जाती है ऐसे ही दिन प्रतिदिन

आयु, शरीर की अवगाहना, अध्यात्म ज्ञान, शारीरिक बल, धार्मिक सदाचार, सद्विचार की हानि को बताने के लिये ''अवसर्पिणी'' पद के प्रयोग से यह उपदेश इसकाल वालों के लिए है, दूसरे काल वालों के लिए नहीं।

प्र.-1474 ग्रंथांतरों में अवसर्पिणी के साथ में ''हुंड'' पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- नामकर्म के अवांतर भेदों में संस्थान नामकर्म का अंतिम भेद हुंडकसंस्थान है। इसके उदय से शरीर के अंगों में जहाँ कहीं भी मांसपिंड इकट्ठा होने से गुंबा जैसा बन जाता है ऐसे ही इस काल में उपसर्ग परीषह, वैरविरोध महापुरुषों में भी होने लगते हैं अनेक अनहोनी घटनायें और नाना उत्पात होते हैं आदि बेढंग के कार्यों को बताने के लिये ''हुंड'' पद का प्रयोग किया है जो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं।

प्र.-1475 गाथा में ''भरहे'' पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- जंबूद्वीप संबंधी भरतक्षेत्र के आर्यखंड में ऐसी व्यवस्था है यहाँ के निवासियों के लिये ही उपदेश है, शेष कर्मभूमि और भोगभूमियों के लिये नहीं क्योंकि जो जहाँ है वहीं के लिये आदेश निर्देश करेगा, दूसरों के लिये आदेश निर्देश करना अंधों को दीपक दिखाने के या मृतक को औषधि खिलाने के समान है।

प्र.-1476 'पउरा' प्रचुर मात्रा में इस पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- भरतक्षेत्र के आर्यखंड में गाथोक्त प्राणी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, शेष क्षेत्रों में नहीं क्योंकि यहाँ पर नेता, प्रजा अत्यंत धन, ख्याति पूजा लाभ के लोभी होने से अधिक पापी जीव पाये जाते हैं।

प्र.-1477 रौद्रध्यान के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- विषयभोगों का, हिंसादि पापों का, जुआ आदि व्यसनों का सेवन करते हुए सफलता मिलने पर प्रसन्न होने वाले रौद्रध्यान के चार भेद हैं। **नामः-** हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी और परिग्रहानंदी।

प्र.-1478 हिंसानंदी रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- हिंसापाप में सफलता मिलने पर जीवहिंसा में योगों से आनंद मानने को हिंसानंदी रौद्रध्यान कहते हैं।

प्र.-1479 मृषानंदी रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- झूंठ पाप में सफलता मिलने पर मनवचनकाय पूर्वक आनंद मानने को मृषानंदी रौद्रध्यान कहते हैं।

प्र.-1480 चौर्यानंदी रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- चोरी पाप में सफलता मिलने पर मनवचनकाय पूर्वक आनंद मानने को चौर्यानंदी रौद्रध्यान कहते हैं।

प्र.-1481 परिग्रहानंदी रौद्रध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- परिग्रह पाप में सफलता मिलने पर योगों से आनंद मानने को परिग्रहानंदी रौद्रध्यान कहते हैं।

प्र.-1482 जब पाप पाँच और रौद्रध्यान चार हैं तो मैथुनपाप कौन सा रौद्रध्यान है?

उत्तर- इस मैथुन पाप में सभी रौद्रध्यान और सभी पाप आ जाते हैं केवल चिंतन करने की आवश्यकता है।

प्र.-1483 मैथुन पाप में सभी रौद्रध्यान और सभी पाप कैसे आ जाते हैं?

उत्तर- मैथुन सेवन करते समय रोम रोम से हर्ष उत्पन्न होता है इसलिये हिंसानंदी रौद्रध्यान हुआ

जैसे बिना मैथुन सेवन के 9 लाख संमूर्छन मनुष्य नपुंसकवेदी एक मुहूर्त में 8 बार जन्म मरण करते हैं किंतु बल प्रयोग से ज्यादा भी जन्म मरण कर लेते हैं। लिंग के प्रत्येक आघात से, चोट से असंख्यात करोड़ त्रस जीव मारे जाते हैं इतने जीवों की हिंसा होने पर भी आनंद मान रहा है, सुखानुभव कर रहा है इसलिये हिंसा पाप और हिंसानंदी रौद्रध्यान हुआ। मैथुन सेवन करने वाला कोई सच बोल नहीं सकता बहाना बनाकर एक दूसरे के ऊपर बात डाल देता है अपनी इस कला पर प्रसन्न होता है सो झूंठपाप और मृषानंदी रौद्रध्यान हुआ। मैथुन सेवन छिपके करता है कोई देख न ले, सुन न ले अतः चोरीपाप और चौर्यानंदी रौद्रध्यान है। मैथुन सेवन में आनंद मानने से मैथुनपाप और मैथुनानंद रौद्रध्यान हो जाता है। मैथुनपाप प्रमाद और धन दौलत के बिना कर नहीं सकता है इसलिये यह परिग्रहपाप और परिग्रहानंदी रौद्रध्यान है।

प्र.-1484 मैथुनानंद नाम का स्वतंत्र रौद्रध्यान है तो 4 रौद्रध्यान की प्रतिज्ञा क्यों?

उत्तर- संग्रहनय से रौद्रध्यान एक ही प्रकार का है किंतु व्यवहारनय से 4 प्रकार का तथा निमित्तनैमित्तिक संबंध की अपेक्षा असंख्यात और अनंत प्रकार का है जो केवली गम्य तथा कुछ अंशों में स्वसंवेदन गम्य भी है क्योंकि लक्षण से लक्ष्य की पहंचान होती है। इस न्यायानुसार रौद्रध्यानों की परिभाषा को समझकर अपने परिणामों को पकड़ना चाहिये अतः 4 रौद्रध्यानों की प्रतिज्ञा दूषित नहीं है।

प्र.-1485 संग्रहनय और व्यवहारनय में क्या अंतर है?

उत्तर- यद्यपि ये दोनों नय द्रव्यार्थिकनय हैं फिर भी संग्रहनय जीवादिद्रव्यों का संग्रह कर एकवचन रूप में ग्रहण करता है तो व्यवहारनय संग्रहनय के द्वारा गृहीत विषयों में द्रव्यों का विभाग करता है यही अंतर है।

प्र.-1486 व्यवहारनय को द्रव्यार्थिकनय क्यों कहा?

उत्तर- अध्यात्म और आगम की अपेक्षा व्यवहारनय दो प्रकार का है। अध्यात्म का व्यवहारनय एक ही द्रव्य में द्रव्यगुणपर्यायों का अवस्था भेद से विभाग करता है किंतु आगम का व्यवहारनय द्रव्यों में भेद करता है सो यहाँ द्रव्यों का विभाग करने वाला होने से इसको द्रव्यार्थिकनय कहा है।

प्र.-1487 रौद्रध्यान पर्याय रूप होने से द्रव्यार्थिकनय का विषय क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि वास्तव में रौद्रध्यान चारित्रगुण का विकार होने से पर्याय स्वरूप ही है फिर भी गुणगुणी या पर्याय पर्यायी में अभेदविवक्षा कर रौद्रध्यान को द्रव्यार्थिकनय (व्यवहारनय) का विषय कहा है।

प्र.-1488 मैथुन कर्म इंद्रिय सुख है फिर उसे पाप क्यों कहा?

उत्तर- सुखदुःख की, संसारमोक्ष की, आश्रवबंध की, पुण्यपाप की, शुभाशुभ की परिभाषायें स्वेच्छा से नहीं की हैं किंतु जैसी परिभाषायें तीर्थंकरों ने, गणधरों ने तथा आरातीय आचार्यों ने बताई हैं वैसे ही अवधारण करना चाहिये इसीलिये इसमें किंचित् इंद्रियसुख की अपेक्षा अनंतगुणा कष्ट होता है, जीवों की हिंसा होती है सो पाप ही है और जो यह इंद्रियसुख है वह वास्तव में दुक्खमेव तहा। प्र.सा. 76। दुःख ही है।

प्र.-1489 आर्तध्यान किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- परिणामों में नाना प्रकार की आकुलता व्याकुलता, घबराहट, विषयभोगों की चाहना को, इष्टानिष्ट विचारों को आर्तध्यान कहते हैं। चार भेद हैं। नाम- 1. इष्टवियोगज आर्तध्यान 2. अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान 3. वेदनोद्भव आर्तध्यान या पीड़ाचिंतनोद्भव आर्तध्यान 4. निदान आर्तध्यान।

प्र.-1490 इष्टवियोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- विषय भोगों में, सांसारिक इष्ट कार्यों में सहायक व्यक्तियों का, वस्तुओं का वियोग होने पर, बिछुड़ जाने पर पुनः मिलने के विचारों को या कभी भी इनका वियोग न हो उसे इष्टवियोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्र.-1491 अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयभोगों में, सांसारिक कार्यों में बाधा उत्पन्न करने वाले साधनों के मिलन होने पर उनके दूर करने को अथवा अनिष्टकारी संयोगों के मिलन न होने के विचारों को अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान कहते हैं।

प्र.-1492 वेदना आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- असाता वेदनीयकर्मोदय से उत्पन्न परेशानियों से कष्ट की अनुभूति को वेदना आर्तध्यान कहते हैं।

प्र.-1493 निदान आर्तध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- इस धर्म का, कर्त्तव्य का फल मुझे प्राप्त हो आदि विचारों को निदान आर्तध्यान कहते हैं।

प्र.-1494 निदान आर्तध्यान किस कारण से उत्पन्न होता है?

उत्तर- अपने पास में इंद्रियसुख सामग्री की कमी या अतृप्ति होने पर तथा दूसरों से बदला चुकाने आदि रागद्वेष युक्त कारणों से निदान आर्तध्यान उत्पन्न होता है।

प्र.-1495 इन आर्तध्यानों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- ये चारों आर्तध्यान पंचम गुणस्थान तक तथा निदान आर्तध्यान को छोड़कर शेष तीन आर्तध्यान प्रमत्तसंयत छठवें गुणस्थानवर्ती सभी संहननधारी मुनियों के भी होते हैं।

प्र.-1496 नष्ट बुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- धर्म भावना, धर्मचर्या के बिना भ्रष्ट बुद्धि को, अशिष्ट आचार विचारों को नष्ट बुद्धि कहते हैं।

प्र.-1497 दुष्ट बुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- तीव्र क्रोध को दुष्ट बुद्धि कहते हैं अथवा पापिओं के भावों को दुष्ट बुद्धि कहते हैं।

प्र.-1498 कष्टी किसे कहते हैं?

उत्तर- अनेक शारीरिक, मानसिक, वाचनिक, आगंतुक, परिवार के, धनाभावादि तथा असाता वेदनीय कर्म के उदय से दुःखी परिणामों को कष्ट कहते हैं और कष्ट से सहित जीव को कष्टी कहते हैं।

प्र.-1499 पापिष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर- हिंसादि पाँच पापों में मन, वचन, काय से लिप्त, आसक्त विचारों को पाप कहते हैं और इन पापों से सहित जीव को पापिष्ट कहते हैं।

प्र.-1500 कृष्ण लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर- तीव्र क्रोध को, वैर विरोध को, जीवदयाहीन भाव को, दुष्ट स्वभाव को, देव, शास्त्र, गुरु के, माता पिता और सज्जनों के आधीन न होने को कृष्ण लेश्या और इनके स्वामी को कृष्ण लेश्या वाला कहते हैं।

प्र.-1501 नील लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर- मंदबुद्धि को, स्वच्छंद, वर्तमान में ज्ञानहीन को, कला चातुर्य से रहित को, विषयलंपट को, मान को, माया को, आलस को, भीरु स्वभाव को, बहुत निद्रा को, ठगविद्या को, धन धान्यादि के संग्रह में आसक्त आदि परिणामों को नील लेश्या और उसके स्वामी को नील लेश्या वाला कहते हैं।

प्र.-1502 कापोत लेश्या किसे कहते हैं?

उत्तर- निष्कारण दूसरों पर क्रोध करना, दूसरों की निंदा करना, दोषों की, शोक की, भय की बहुलता होना, ईर्ष्यालु होना, दूसरों का अपमान करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरों पर विश्वास न करना, अपने समान दूसरों को छलीकपटी मानना, अपनी प्रशंसा होने पर संतुष्ट होकर खूब धन देना, अपनी लाभ हानि को नहीं समझना, रणक्षेत्र में, लडाई झगड़े में मरने का इच्छुक होना, कर्तव्याकर्तव्य को न समझना आदि भावों को कपोत लेश्या तथा कापोत लेश्या वाला कहते हैं। जी. कां. गा.509-514 ।

प्र.-1503 गाथोक्त व्यक्ति अभी पाये जा रहे हैं या ग्रंथकारजी के भी सामने थे?

उत्तर- गाथोक्त परिणामों वाले व्यक्ति ग्रंथकारजी के सामने थे और आज भी हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि उस समय आज जैसा अत्याचार नहीं था किंतु कुछ कम मात्रा में था फिर भी उस समयानुसार अधिक मात्रा में माना जाता था, अभी आगे[2] अत्याचार अनाचार बढ़ता जा रहा है अतः कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि ऐसे परावर्तन अनंतबार हो चुके हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। ये सुखदुःख दोनों पर्यायें परिवर्तनशील हैं, शाश्वत रहने वाली नहीं हैं। कहा भी है **सुख सदा रहता नहीं तो दुःख का भी अंत है यह सोचकर व्याकुल न होता संत है** अतः हमेशा अपने परिणाम सरल स्वच्छ रखने में ही सज्जनता है, शेष में नहीं।

नोटः- यहाँ तक 1503 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 49वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 50वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुलभ और दुर्लभ कौन?

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा।

सम्मत्त पुव्व सायार णयारा दुल्लहा होंति।।50।

अद्यावसर्पिणीभरते पंचमकाले मिथ्यात्वपूर्वकाः सुलभाः।

सम्यक्त्वपूर्वकाः सागारानगारा दुर्लभा भवंति।।

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमयाले आज अवसर्पिणी काल पंचमकाल भरतक्षेत्र के आर्यखंड में **मिच्छपुव्वया** मिथ्यादृष्टिजीव **सुलहा** सुलभ हैं और **सम्मत्तपुव्व** सम्यग्दृष्टि **सायारणयारा** गृहस्थ और मुनि **दुल्लहा** दुर्लभ **होंति** हैं।

प्र.-1504 सम्यग्दृष्टि मुनि, अणुव्रती श्रावक और अव्रती गृहस्थ दुर्लभ क्यों हैं?

उत्तर- क्योंकि उत्तम वस्तुओं की, रत्नों की प्राप्ति सर्वत्र नहीं होती है जैसे सभी पर्वतों पर चंदन या खदानों में हीरा, जलाशयों में हंसपक्षी नहीं होते हैं ऐसे ही मोक्षमार्गी उत्तम मध्यम जघन्य पात्र सर्वत्र उपलब्ध नहीं होते हैं किंतु कहीं कहीं अत्यल्प संख्या में क्वचित् कदाचित् प्राप्त होते हैं।

प्र.-1505 इस गाथा में ग्रंथकार ने ''पंचमयाले'' इस पद का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर- इस ग्रंथ का निर्माण अवसर्पिणीकाल के पंचमकाल भरतक्षेत्र के आर्यखंड में जन्मे श्रावकश्राविकाओं के लिए ही हुआ है क्योंकि संबोधन और उपदेश सामनेवालों को तथा लेखनकार्य वर्तमानकाल और भविष्य में आनेवाले भव्यों के लिए किया जाता है।

प्र.-1506 संबोधन और उपदेश में क्या अंतर है?

उत्तर- संबोधन वाक्य उत्तम और मध्यम पुरुष वालों के लिए होता है किंतु उपदेश उत्तम मध्यम तथा अन्य या तृतीय पुरुषों के लिए किया जाता है अथवा जो मौजूद हैं उन्हें संबोधन वाक्यों के द्वारा और जो मौजूद हैं या नहीं हैं उन्हें उपदेश स्वरूप वाक्यों के द्वारा मार्गदर्शन किया जाता है।

प्र.-1507 आदेश और उपदेश में क्या अंतर है?

उत्तर- शिष्यों, भक्तों या श्रोताओं के द्वारा जो आज्ञा नियमतः पालन की जाय वह आदेश वचन तथा जिस वचन में पालन करने का नियम न हो वह उपदेश वचन है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-1508 भूतकाल वालों को उपदेश क्यों नहीं दिया जाता है?

उत्तर- जैसे मुर्दे को औषधि नहीं खिलाई जाती, कदाचित् खिलाई भी तो लाभ न होकर हानि ही होती है ऐसे ही जो श्रोता मृत्यु या समाधिमरण कर चुके हैं उन्हें उपदेश देने से क्या लाभ है?

प्र.-1509 इस काल में कौन से प्राणी सुलभ हैं?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि जीव सर्वत्र घर घर में, गली गली में मिल जाते हैं इसलिए सुलभ हैं क्योंकि सस्ती और खराब सामग्री बिना कीमत के, बिना परिश्रम के मिल जाती है कारण कर्म सिद्धांत में मिथ्यादृष्टि जीवों की संख्या अक्षयअनंत बतलाई है जो कभी भी अनंतानंत कालों के द्वारा, क्षेत्रों के द्वारा समाप्त नहीं हो सकती है जैसे घंटे में ध्वनि कहाँ पर है, किस अंश में है, कितनी संख्या में है, कितनी निकल चुकी है कबतक निकलती रहेगी यह अकथनीय है ऐसे ही मिथ्यादृष्टि जीवों को समझना चाहिये।

प्र.-1510 इस काल में यहाँ पर कौन से मिथ्यादृष्टी जीव सुलभ हैं?

उत्तर- संसार में यहाँ भव्य अभव्य अनादि सादि मिथ्यादृष्टी मनुष्य अधिक मात्रा में होने से सुलभ हैं।

प्र.-1511 श्री समयसारजी में ऐसा न कहकर भिन्न प्रकार से क्यों कहा है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोग बंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।4।

कामभोग की कथा इस जीव ने अनेकों बार सुनी है, परिचय लिया है और अनुभव किया है अतः सुलभ है किंतु शुद्धात्मा की कथा दुर्लभ है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- ग्रंथकारजी ने केवल शब्द रचना में अंतर कर कथन किया, भाव में कोई अंतर नहीं क्योंकि जैसे जड़ के बिना वृक्ष हरा भरा नहीं रहता है वैसे ही बिना मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के विषयभोगों में रमणता, आसक्तता, अन्याय अभक्ष्य के सेवन में प्रवृत्ति नहीं हो सकती है।

प्र.-1512 अव्रती अणुव्रती विषयसेवते हैं फिर मिथ्यादृष्टियों के होती है ऐसा क्यों?

उत्तर- उत्तम मध्यम जघन्य पात्रों की इंद्रियविषयों में प्रवृत्ति अवश्य ही होती है तभी तो इनके आर्तध्यान रौद्रध्यान पाया जाता है फिर भी अनंत संसार के कारणभूत मूल प्रत्ययों का अभाव होने से नरक तिर्यंचगति के दुःखों की प्राप्ति में कारण नहीं बनता फिर भी यह आश्रव बंध संचित होते[2] महा शक्तिशाली होकर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक संसार में भटका देता है जैसे घास शक्तिहीन होने से किसी को बांधने में समर्थ नहीं हैं फिर भी शक्तिहीन घास की रस्सी बना देने से महान समर्थ हो जाती है जो सभी व्यवहारीजन जानते हैं अतः असमर्थ सांपरायिक आश्रवबंध को कमजोर न समझकर सावधान रहना चाहिये अन्यथा यह आश्रवबंध अनंतानुबंधी आदि का आश्रय पाकर आत्मा को दीर्घ संसारी बना देगा।

प्र.-1513 इस जीव ने अनादिकाल से कामभोग और बंध की कथा सुनी है, परिचय लिया है अनुभव की है ऐसा कहना क्या न्यायसंगत है?

उत्तर- जो अनादि नित्यनिगोदिया साधारण वनस्पतिकायिक भव्य, दूरानुदूरभव्य और अभव्यजीव हैं इन्होंने अभी तक न त्रस पर्याय पाई है, न पंचपरावर्तन किया है तब उनके लिए यह नियम कैसे लागू हो सकता है? अतः यह कथन कर्मसिद्धांत की दृष्टि से कथंचित् एकदेश उचित है सर्वदेश नहीं। पंचपरावर्तन करने वाले जीव के बिना निर्ग्रंथपद के, बिना द्वादशांगपाठी बने क्षेत्रपरिवर्तन

नहीं हो सकता है। जिस जीव ने 11 अंग 9 पूर्व का या द्वादशांग का ज्ञान प्राप्त किया है उस जीव ने क्या भली प्रकार से दृढ़ता पूर्वक आत्मा का परिचय नहीं लिया है, धर्मकथा नहीं सुनी तथा आत्मानुभव नहीं किया? यदि नहीं किया तो दर्शनचेतना कैसे होगी? दर्शनचेतना के अभाव में ज्ञानचेतना कर्मचेतना और कर्मफलचेतना भी नहीं बन सकती क्योंकि आत्मभूत लक्षण अपने आपका अनुभव नहीं करे तो वह अर्थक्रिया के बिना लक्षण कैसा? आ. श्री ने स.सा. में अनादि पद का प्रयोग नहीं किया है। आजकल जो वक्ता कह रहे हैं कि अनादिकाल से इस जीव ने अपनी आत्मा का अनुभव नहीं किया है तो सर्व प्रथम वक्ता ही आत्मानुभव न करने से अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाया। क्या इस वक्ता के पास इस प्रकार जानने के लिए केवलज्ञान है कि इस जीव ने अनादिकाल से आत्मा को नहीं पहंचाना आदि, यह विषय अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान का भी नहीं है तब मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय कैसे हो जायेगा?

सम्मत्तं देसजमं अणसंजोयण विहीं च उक्कस्सं।
पल्लासंखेज्जदिमं बारं पडिवज्जिदो जीवो।।618।।
चत्तारिवारमुवसम सेढिं समरूहदि खविद कम्मंसो।
बत्तीसंवाराइं संजममुवलहिय णिव्वादि।।619।। गो.क.

अर्थः- उपशमसम्यक्त्व, वेदकसम्यक्त्व, देशसंयम, अनंतानुबंधीकषाय की विसंयोजना को पल्य के असंख्यातवेंभाग बार, उपशम श्रेणी अधिकाधिक चारबार, सकलसंयम 32 बार धारणकर छोड़ता है बाद में नियम से मोक्ष प्राप्त करता है तो क्या इन जीवों ने भी शुद्धात्मानुभव नहीं किया? अर्थात् अवश्य ही किया है। घरों में बहुबेटी, बालबच्चे बहुत अच्छे काम करें और कोई एकाद बिगाड़ दे तो कहते हैं कि यह सब काम बिगाड़ देती है/देता है आदि ऐसे ही आ. श्री ने यहाँ संबोधन रूप में कहा है ऐसा समझना चाहिये।

प्र.-1514 कामभोग की कथा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन वचनों से जीव पाँचों इंद्रियविषयों में प्रीति को, विकार को या द्वेष को, अप्रीति को प्राप्त हो जाये उसे कामभोग की कथा कहते हैं। ये ही कथायें धर्मविहीन होने से विकथायें कहलातीं हैं।

प्र.-1515 कामेंद्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर- स्पर्शनेंद्रिय और रसनेंद्रिय से कामवासना शीघ्र उत्पन्न होती है सो इनको कामेंद्रिय कहते हैं।

प्र.-1516 भोगेंद्रिय किसे कहते हैं?

उत्तर- घ्राणेंद्रिय, चक्षुइंद्रिय और कर्णेंद्रिय को भोगेंद्रिय कहते हैं। इन इंद्रियों से भोग भोगने की भावना उत्पन्न होती है तथा कामवासना भी जाग्रत हो जाती है।

प्र.-1517 रसनेंद्रिय एवं स्पर्शनेंद्रिय को कामेंद्रिय क्यों कहा?

उत्तर- जैसे खादपानी से पेड़ पौधे हरे भरे रहते हैं और बिना खादपानी के मुरझा जाते हैं ऐसे ही रसनेंद्रिय के द्वारा तामसी, राजसी भोजनपान करने से स्पर्शनेंद्रिय में कामवेदना जागृत हो जाती है इसलिए रसनेंद्रिय को कामेंद्रिय कहा है। कहा भी है- कंकड़ पत्थर खात हैं तिन्हें सतावे काम। षट्रस भोजन जे करें तिनकी जाने राम।। कंकड़ पत्थर भोजी मंदकषायी कबूतर भी कामवासना से पीड़ित हो कामचेष्टा करता है तब अनेक रसों से युक्त स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करने वाले रागी वैरागियों की क्या कथा है?

प्र.-1518 तो क्या केवल भोजनपान से ही कामवेदना जागृत हो जाती है?

उत्तर- नहीं, भोजनपान केवल बाह्य साधन है, अंतरंग साधन वेदकर्मोदय या उदीरणा और तदनुसार परिणति ही प्रबल कारण है, सतत मांसभोजी सिंहादि को सदा कामी होना चाहिये किंतु नहीं होते हैं।

प्र.-1519 भोग और उपभोग किसे कहते हैं?

उत्तर- रसनेंद्रिय के विषय को भोग और शेष 4 इंद्रियों के विषय को उपभोग या इंद्रियों के द्वारा जो विषय एकबार सेवन कर छोड़ दिया जाये उसे भोग और पुनः पुनः वही भोगने में आये उसे उपभोग कहते हैं।

प्र.-1520 इन दोनों इंद्रियों के वशीभूत होकर जीव ने क्या किया है?

उत्तर- इन दोनों इंद्रियाधीन जीवों ने विषयभोगों की कथा सुनी, परिचय में ली और अनुभव किया है।

प्र.-1521 क्या सभी जीवों ने कामभोग की कथा सुनी, परिचय और अनुभव की है?

उत्तर- हाँ, पंचपरावर्तन करने वाले सभी त्रस स्थावरों ने किसी न किसी पर्याय में कामभोग की कथाओं को सुना, परिचय में लिया और अनुभव किया है, अनादि नित्यनिगोदिया जीवों ने नहीं किंतु सभी त्रसजीवों ने भी इन कामभोगों की कथाओं को न सुना है, न परिचय लिया है, न अनुभव किया है। जैसे भरत के श्रीवर्धनकुमार आदि 923 पुत्र क्योंकि इनकी मनुष्य पर्याय प्रथम ही थी।

प्र.-1522 'सुनी है' इस पद से किस जीव को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- ''सुनी है'' इस पद से पंचेंद्रिय जीवों को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-1523 पंचेंद्रियों में भी सैनी जीवों को ग्रहण करना चाहिये या असैनी जीवों को?

उत्तर- दोनों को ग्रहण किया है क्योंकि ये दोनों शब्दों को सुनकर रागद्वेष को प्राप्त होते हैं।

प्र.-1524 पंचेंद्रिय सैनी और असैनी जीव किस गति में होते हैं?

उत्तर- ये दोनों सैनी असैनी पंचेंद्रिय जीवसमास एकमात्र तिर्यंचगति में ही होते हैं।

प्र.-1525 संमूर्च्छन मनुष्य असैनी क्यों नहीं होते हैं?

उत्तर- नहीं, असैनी जीवसमास एकमात्र कर्मभूमिज तिर्यंचगति में ही होता है, शेष तीन गतियों में नहीं इसलिए संमूर्च्छन मनुष्य असैनी नहीं होते। संमूर्च्छन जन्म तिर्यंच और मनुष्यगति में होता है।

प्र.-1526 'परिचय प्राप्त किया है' इस पद से किस जीव को ग्रहण किया है?

उत्तर- परिचय लिया है इस पद से सैनी पंचेंद्रिय को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि बिना मन के परिचय लेना बन नहीं सकता। मन से ही शुभाशुभ अच्छेबुरे कार्यों का विचार किया जा सकता है।

प्र.-1527 'अनुभव किया है' इस पद से किन जीवों को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- सामान्यतया एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय पर्यंत समस्त जीव अपनी अपनी पर्यायानुसार सुखदुःख का अनुभव करते हैं क्योंकि समस्त जीवों के ज्ञानदर्शन चेतना पाई जाती है फिर भी यहाँ पर सैनी पंचेंद्रिय जीवों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि उत्थान पतन के योग्य नाना प्रकार के सुख दुःख का, पुण्य पाप का अनुभव करते हैं अथवा मोक्षमार्गी जीवों को संबोधन करने के लिए और असावधानी को छुड़ाने के लिए इन तीनों विशेषणों का प्रयोग किया है। हे जीव! अनेक भवों में तूंने काम, भोग और बंध की कथाओं को सुना है, परिचय लिया है और अनुभव कर चारों गतियों में भ्रमण किया है। अब तुम असावधनी वर्तोगे तो पुनः संसार में भ्रमण करना पड़ेगा अतः सावधान रहो इस प्रकार संबोधन किया है।

प्र.-1528 बंध किसे कहते हैं और बंधकथा किसे कहते हैं?

उत्तर- जीव और कर्मों के प्रदेशों का परस्पर में दूधपानी या दूध शक्कर जैसे एकरूप हो जाने को बंध और प्रमाद पूर्वक वचनात्मक या संकेतात्मक प्रयोग को बंधकथा कहते हैं।

प्र.-1529 बंध के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- बंध के दो, तीन, चार, संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं। **नामः- दो भेद** 1. द्रव्यबंध

2. भाव बंध। **तीन भेद:-** 1. जीवबंध 2. अजीवबंध 3. उभयबंध। **चार भेद:-** 1. प्रकृतिबंध 2. स्थितिबंध 3. अनुभाग बंध 4. प्रदेशबंध। मतिज्ञान श्रुतज्ञान के विषय की अपेक्षा संख्यात भेद, अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान के विषय की अपेक्षा असंख्यात भेद और केवलज्ञान के विषय की अपेक्षा अनंत भेद हैं।

प्र.-1530 क्या ये ज्ञान केवल संख्यात, असंख्यात और अनंत को ही विषय करते हैं?

उत्तर- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान केवल संख्यात को ही विषय करते हैं, शेष को नहीं, अवधि और मनःपर्ययज्ञान केवल संख्यात असंख्यात को ही विषय करते हैं किंतु केवलज्ञान तीनों को ही विषय करता है।

प्र.-1531 श्रुत, परिचित और अनुभूत इन तीनों पदों का क्या अर्थ है, मिथ्या कैसे?

उत्तर- **'श्रुत'-** सुनी है, **'परिचित'-** विषय को अच्छी तरह से समझा है, **'अनुभूत'-** तद्रूप से परिणमन कर अनुभव किया है सो यह अनुभव मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी के साथ में होने से मिथ्या है।

प्र.-1532 क्या श्रुत, परिचित और अनुभव ये तीनों सम्यक् भी हो सकते हैं?

उत्तर- हाँ, यदि रत्नत्रयधर्म साथ में है तो तत्त्ववेत्ता समीचीन रूप में परिणमन करा लेता है।

प्र.-1533 काम, भोग और बंध की कथा करने वाले सुलभ हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इस परिवर्तनशील संसार में अनेकों बार इन कार्यों में तीव्र आसक्ति पूर्वक रमण किया है और अभी भी आसक्ति बनी हुई है इसलिए सुलभ हैं जो सर्वत्र बिना परिश्रम के ही प्राप्त हो जाते हैं।

प्र.-1534 एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा की प्राप्ति दुर्लभ है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- वज्रवृषभनाराच संहननवाले, कर्मभूमिज, आर्यखंडोत्पन्न, उच्चगोत्री, चरमशरीरी मनुष्यों में भी मुनियों के ही क्षपकश्रेणी के परिणामों से ज्ञानावरणकर्म के क्षय होते ही केवलज्ञान पूर्वक तत्क्षण एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है आदि कारणों से एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा की प्राप्ति अत्यंत कठिन है ऐसा कहा है क्योंकि ये परिणाम सरलता से सभीको प्राप्त नहीं होते हैं।

प्र.-1535 एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा की प्राप्ति आंशिक रूप में हो सकती है क्या?

उत्तर- एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा की प्राप्ति आंशिक परोक्ष में होती है, प्रत्यक्ष नहीं क्योंकि उत्तम संहननधारी, आर्यखंडोत्पन्न, चरमशरीरी या अचरमशरीरी उपशमश्रेणी आरोहण कर 11वें गुणस्थान वाले उपशांतमोही छद्मस्थावस्था में, यथाख्यातचारित्री, अवस्थित परिणामी मुनियों को होती है पर यह प्रतिपाती है। अपूर्ण शुद्धात्मा की प्राप्ति को अनेक बार ग्रहण कर छोड़ता है अतः सरल है।

प्र.-1536 पूर्ण एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा की प्राप्ति किसको होती है?

उत्तर- पूर्ण एकत्त्वविभक्त शुद्धात्मा की प्राप्ति अंतिम समयवर्ती अयोगकेवलियों को होती है और सिद्धों में अनंतानंत काल तक अवस्थित रहती है तथा सयोगकेवली और द्वीचरमसमय पर्यंत अयोगकेवली के घातिकर्म के क्षय की अपेक्षा शुद्धपना तथा अघातिकर्मोदय की अपेक्षा अशुद्ध अवस्था होती है।

प्र.-1537 तो क्या इस अवस्था के पहले पूर्ण शुद्धात्मावस्था नहीं होती है?

उत्तर- नहीं होती है क्योंकि गुणस्थान मार्गणा और जीवसमास अशुद्ध संसारी जीवों में होते हैं, शुद्ध जीवों में नहीं इसलिए भ्रमणशील विकार युक्त संसारी जीवों के पूर्ण एकत्त्वविभक्त शुद्ध आत्म प्राप्ति असंभव है। जैसे पूर्णिमा और अमावश्या एकसाथ एकसमय में नहीं रहती हैं वैसे ही एकसाथ एकसमय में पूर्ण शुद्धावस्था और पूर्ण अशुद्धावस्था नहीं रह सकती है किंतु मिश्रावस्था रूप में रह सकती है। कहा भी है-

मग्गणगुणठाणेहिंय चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ।।13।। द्र.सं.

अर्थ- अशुद्धनय से 14 मार्गणा, 14 गुणस्थान और 14 जीवसमास वाले संसारी होते हैं तथा शुद्ध-नय से सभी जीव शुद्ध हैं ऐसा जानना चाहिये। इस गाथानुसार संसारी जीव पूर्ण शुद्ध नहीं होते हैं।

प्र.-1538 सम्यग्दृष्टि गृहस्थ और मुनियों की प्राप्ति दुर्लभ है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे उत्तम रत्नों की प्राप्ति सर्वत्र न होने से कठिन है ऐसे ही उत्तम सम्यक्त्व परिणामों की प्राप्ति सर्वत्र न होने से अतिकठिन है अतः मोक्षमार्गी कहीं कहीं पाये जाते हैं सो दुर्लभ कहा है।

प्र.-1539 सम्यग्दृष्टि साधु और श्रावक क्या सर्वत्र प्राप्त नहीं होते हैं?

उत्तर- इस काल, इस क्षेत्र में सर्वत्र नहीं होते हैं जैसे सभी हाथियों में मोती, सभी जंगलों में मलयागिरि चंदनवृक्ष नहीं होते ऐसे ही मोक्षमार्गी सर्वत्र नहीं पाये जाते किंतु सर्वथा अभाव नहीं है।

प्र.-1540 वर्तमान में दिगंबर जैन साधु बहुत होने पर भी इन्हें दुर्लभ क्यों कहा?

उत्तर- इस 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में दिगंबर जैनसंतों की जितनी संख्या थी आज उससे कई गुणी अधिक संख्या में मौजूद हैं, चोलाधारी बहुत हैं पर यथार्थ में निष्पक्ष, निस्वार्थी, मोक्षमार्गी साधक मिलना अत्यंत कम और कठिन हैं क्योंकि अधिकतर दिगंबर गृहत्यागी, साधुवर्ग पंथवाद, पक्षपात से घिरा हुआ है, कोई आश्रम चलाने, बनाने, बनवाने में मस्त हैं, कोई निजी भक्त संगठन बनाने में, कोई ख्याति पूजा लाभ के चक्कर में मस्त हैं आदि नाना मानसिक विकारों से युक्त होने के कारण मोक्षमार्ग से पतित हैं कोई भक्तों के आधीन होकर भक्ष्याभक्ष्य का, शुद्धाशुद्ध का विचार किये बिना सर्वत्र आहार ले रहे हैं। आहार दानदाताओं के पास न सदाचार, सद्विचार हैं क्योंकि ये रात्रिभोजी हैं, अनछना पानी पीते हैं, होटल बाजार में भोजनपान करने वाले हैं, मद्य मांस का, कंदमूलों का, अचारमुरब्बा चमड़ा, रक्त, चर्बी आदि से दूषित सामग्री सेवन करने वाले हैं अतः आज वर्तमान में बाह्य दिगंबर जैन मुनिमुद्रा धारी अधिक संख्या में होने पर भी चरणानुयोगानुसार चर्या करने वाले और तदनुकूल विश्वास करने वाले अतिकठिन हैं।

प्र.-1541 साधुवर्ग शुद्धाशुद्ध का विचार किये बिना आहार लेते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- आज कितने गृहत्यागी, साधुवर्ग आगम विरुद्ध आहारपानी, दूध घी अमर्यादित ले रहे हैं, शाकसब्जी तथा धान्यों के संशोधन की जानकारी या प्रक्रिया सही न होने से अशुद्ध ग्रहण करते हैं क्योंकि शाकसब्जी आदि में बाहर के पानी की लगार लगी रहने से अशुद्ध ही है अतः गृहस्थगण भी ऐसे ही अशुद्ध आहार बनाकर दे देते हैं जो पूंछने पर सही पता चलता है सो ऐसा कहा है।

प्र.-1542 आहार दानदाता सदाचार और सद्विचार विहीन हैं यह कैसे मालुम पड़ा?

उत्तर- जब कोई श्रावक श्राविकायें आकर हमसे कहते हैं कि हम आपको आहार देना चाहते हैं तब हम उनसे पूंछते हैं कि आपके तीन मकारों का त्याग है? तब वे महाशय मांस मधु के त्याग के लिए तैयार हो जाते हैं किंतु शराब के लिए नहीं तब पुनः पूंछते हैं कि आपने पहले किन किन साधकों को आहार दिया है तो बड़े बड़े दिग्गज साधकों को आहार दिया है और अनेकों के नाम भी गिना देते हैं। अरे भाई! ठीक है झूंठ बोल के आहार क्यों देते हो? तब वे बोले कि उन्होंने न कुछ त्याग कराया, न कोई नियम दिया जब न त्याग कराया, न पूंछा तब झूंठ कैसा? इससे मालुम हुआ कि आज चारित्रहीन दाता आहार देने लगे हैं और प्रतिष्ठित त्यागीवर्ग ऐसा आहार लेने लगे हैं सो दाताओं के समान साधुओं में भी अनार्यपना आ रहा है।

प्र.-1543 आज जिनमुद्राधारी अनेक होने पर भी दुर्लभ हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- रत्नत्रय पूर्वक मुद्रा दुर्लभ है केवल बाह्य मुद्रा नहीं अतः अल्प मात्रा में सद्भाव है, अभाव नहीं।

नोटः- यहाँ तक 1543 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 50वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 51वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निष्प्रमाद धर्मध्यान

अज्जवसप्पिणि भरहे धम्मज्झाणं पमादरहिदोत्ति।
होदि त्ति जिणुवद्दिट्ठं ण हु मण्णइ सो हु कुदिट्ठी ।।51।

अद्यावसर्पिणीभरते धर्मध्यानं प्रमादरहितमिति।
भवेदिति जिनुद्दिष्टं न हि मन्यते सः हि कुदृष्टिः।।

अज्जवसप्पिणि भरहे आज अवसर्पिणी काल के भरतक्षेत्र में **पमादरहिदोत्ति** अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती प्रमाद रहित **धम्मज्झाणं** धर्मध्यान **होदि त्ति** होता है ऐसा **ण हु** नहीं **मण्णइ** मानने वाला **सो** वह **कुदिट्ठी** मिथ्यादृष्टि है ऐसा **जिणुवद्दिट्ठं** जिनेंद्र ने कहा है।

प्र.-1544 इस गाथा में किसका वर्णन है और मुनियों के कौनसा ध्यान होता है?

उत्तर- इसमें अप्रमत्त मुनियों के अस्तित्व का वर्णन है और मुनियों के प्रमाद रहित धर्मध्यान होता है।

प्र.-1545 क्या प्रमाद सहित भी धर्मध्यान होता है?

उत्तर- हाँ, अव्रती, अणुव्रती एवं प्रमत्तमुनियों के 4थे से 6वें गुण. तक प्रमाद सहित धर्मध्यान होता है।

प्र.-1546 धर्मध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- सम्यक् रत्नत्रयधारी के क्षमादि धर्मों का, मूलोत्तरगुणों, अनुप्रेक्षाओं का, मैत्री आदि भावनाओं का, दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारण भावनाओं का चिंतन कर स्थिर होने को धर्मध्यान कहते हैं।

प्र.-1547 मुनियों के आज इस क्षेत्र और इस काल में कैसा धर्मध्यान होता है?

उत्तर- इस क्षेत्र, इस काल में 7वें गुणस्थान वाले अप्रमत्त मुनियों के प्रमाद रहित धर्मध्यान होता है।

प्र.-1548 क्या सभी दिगंबर जैन मुनियों के अप्रमत्त धर्मध्यान होता है?

उत्तर- नहीं, केवल बाह्य भेषधारी दिगंबर जैन मुनियों के प्रमाद रहित धर्मध्यान नहीं होता है किंतु बाह्य में दिगंबर जैन मुनिमुद्रा सहित तथा अंतरंग में आदि की तीन चौकड़ी कषायों को तथा संज्वलन कषाय के तीव्रोदय के जीतने वालों को इसी क्षेत्र और इसी काल में प्रमाद रहित धर्मध्यान होता है ऐसा कहा है।

प्र.-1549 धर्मध्यान के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- धर्मध्यान के 4, 10, संख्यात असंख्यात और अनंत भेद हैं। 4 नामः- 1. आज्ञाविचय 2. अपायविचय 3. विपाकविचय 4. संस्थानविचय धर्मध्यान। या 1. पदस्थ 2. पिंडस्थ 3 रूपस्थ 4. रूपातीत धर्मध्यान। 10 नाम :- 1. अपायविचय 2. उपायविचय 3. जीवविचय 4. अजीवविचय 5. विपाकविचय 6. विरागविचय 7. भवविचय 8. संस्थानविचय 9. आज्ञाविचय 10. कारणविचय धर्मध्यान। आत्मा में अनंतधर्म और अनंत परिणाम होने से धर्मध्यान के अनंत भेद हैं। अपने क्षायोपशमिक श्रुतज्ञान ने आत्मा के जिस धर्म को विषय बनाया है उसका चिंतन कर उसमें स्थिर होना धर्मध्यान है।

प्र.-1550 अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में क्या धर्मध्यान नहीं होता है?

उत्तर- इन दोनों ज्ञानों में साक्षात् कोई भी ध्यान नहीं होता है क्योंकि ये रूपी पदार्थों को जानते हैं ज्ञान और चारित्र अलग[2] गुणों की पर्यायें हैं, दोनों के कार्य तथा फल भी भिन्न[2] हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि इनके सद्भाव में निदान बिना शेष तीन आर्तध्यान, पूरा धर्मध्यान और आदि के दो शुक्लध्यान हो सकते हैं।

प्र.-1551 धर्मध्यान किसके होता है?

उत्तर- रत्नत्रयधारी अव्रती सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती, 6वें से 10वें गुणस्थान तक महाव्रती मुनिजनों के धर्मध्यान होता है।

प्र.-1552 अव्रती सम्यग्दृष्टियों के क्या सतत धर्मध्यान होता है?

उत्तर- जब अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव मोक्षमार्गस्थ धर्मसाधनों में परिणमन करते हैं तब व्यक्त रूप में धर्मध्यान तथा सांसारिक कार्यों में परिणमन करने से अव्यक्त रूप में धर्मध्यान और व्यक्त रूप में दुर्ध्यान होते हैं।

प्र.-1553 अव्यक्त रूप में धर्मध्यान होने पर भी इसका क्या फल है?

उत्तर- अव्रती सम्यग्दृष्टि के अव्यक्त रूप में धर्मध्यान होने के कारण मिथ्यादृष्टियों के समान आश्रवबंध नहीं होता किंतु इस गुणस्थान के अनुसार सामान्य निर्जरा होने पर भी 43 प्रकृतियों का संवर होता है।

प्र.-1554 वीतरागता पद से यहाँ क्या अर्थ लेना चाहिये?

उत्तर- कषायों की तीव्रता का अभाव या धर्मध्यान में स्थिर होने पर कषायोदयानुसार परिणमन न होना ही यहाँ वीतरागता का अर्थ है। संपूर्ण कषायों का उदयाभाव या क्षय अर्थ नहीं लेना है क्योंकि कषायों के संपूर्ण उदयाभाव या क्षय होने पर शुक्लध्यान, यथाख्यात संयम, यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होती है।

प्र.-1555 मुनियों के धर्मध्यान होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- आ. श्रीजी के सामने अनेक गृहस्थ स्वयं को परीक्षाप्रधानी मानकर मुनियों को मानकर भी केवल आर्त रौद्रध्यानी या द्रव्यलिंगी ही मानते थे जैसा कि कांजीपंथी और टोडरमल स्मारक वाले आजकल मुनियों का अस्तित्त्व ही नहीं मानते हैं तो कोई अस्तित्त्व मानकर भी मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मानते हैं तब इनको संबोधन करने के लिए मुनियों के धर्मध्यान होता है ऐसा कहा है।

प्र.-1556 मुनि धर्मध्यानी द्रव्यलिंगी होने से इनमें यथार्थ मुनिपना कैसे?

उत्तर- शंकाकार की शंका के निवारणार्थ **'पमाद रहिदो त्ति'** प्रमाद रहित धर्मध्यान 7वें गुणस्थान वाले अप्रमत्तसंयत मुनियों के होता है ऐसा कंठोक्त कहा है अर्थात् पंचमकाल के 3 वर्ष 8 महिना और 15 दिन शेष रहने तक 7वें गुणस्थान वाले मुनिजन विद्यमान रहेंगे। इस प्रकार सभी मोक्षमार्गी सम्यग्दृष्टियों को विश्वास करना चाहिये किंतु पंथवादी, पक्षपाती मिथ्यादृष्टि ऐसा विश्वास नहीं करेंगे।

प्र.-1557 पंचमकाल के अंत तक रहने वाले मुनिसंघ का क्या क्या नाम है?

उत्तर- मोक्षमार्गस्थ आराधनाओं से सहित चतुर्विध मुनिसंघ अंत तक रहेगा। **नामः-** वीरांगज मुनि, सर्वश्री आर्यिका, अग्निदत्त क्षुल्लक, पंगुश्री क्षुल्लिका। ये चारों अयोध्या के निवासी होंगे और कार्तिक वदी अमावश्या भ. महावीर निर्वाण के दिन समाधिमरण कर सौधर्म स्वर्ग में देव होंगे। ति.प. गा.1521

प्र.-1558 अंत तक मुनि आर्यिका क्षुल्लक क्षुल्लिका की आहारचर्या कौन करायेगा?

उत्तर- इनके अलावा और भी अनेक गुणवान मोक्षमार्गी अव्रती, अणुव्रती श्रावक श्राविकायें भी रहेंगे जो समयानुसार मोक्षमार्ग की आराधना करते हुए जिनधर्म की भरपूर प्रभावना भी करते रहेंगे।

प्र.-1559 वर्तमान में मुनियों के केवल विकल्पात्मक धर्मध्यान ही होता है क्या?

उत्तर- नहीं, वर्तमान में 6वें, 7वें गुणस्थान वाले मुनियों के सविकल्प और निर्विकल्प धर्मध्यान होता है क्योंकि जब ग्रंथकारजी ने अप्रमत्तसंयत गुणस्थान वाले मुनिजन आत्म स्वभाव में स्थिर होते हैं ऐसा कहा है तब निर्विकल्प धर्मध्यान भी होता है इसमें संदेह नहीं करना चाहिये। आ.कुंदकुंद

अज्ज वि सप्पिणि भरहे धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्प सहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।76।। मो.पा.

अर्थः- आज धर्मध्यानी अप्रमत्तमुनि आत्म स्वभाव में स्थिर होते हैं ऐसा न मानने वाले निश्चय से अज्ञानी हैं।

प्र.-1560 इस काल में मुनिजन कुमरण कर दुर्गति के पात्र होते हैं क्या?

उत्तर- **सेवट्टेण य गम्मइ आदीदो चदुसु कप्पजुगलोत्ति।**
तत्तो दुजुगलजुगले खीलियणारायणद्धोत्ति।।29।। क.कां

नहीं, इस काल में भी उत्कृष्ट समाधि पूर्वक मरण कर मुनिजन असंप्राप्तसृपाटिका संहनन वाले आठवें स्वर्ग तक, कीलक संहनन वाले बारहवें स्वर्ग तक और अर्धनाराच संहनन वाले सोलवें स्वर्ग तक जा सकते हैं ऐसे ही सम्यग्दृष्टि श्रावक श्राविकायें समाधि पूर्वक मरण कर फल प्राप्त करते हैं ऐसा कहा है।

अज्ज वि तिरयण सुद्धा अप्पाझायेइ लहइ इंदत्तं।
लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति।।77।। मो. पा.

अर्थः- आज भी रत्नत्रय से शुद्ध मुनि शुद्धात्मध्यानी समाधि मरण कर एकभवावतारी इंद्रपदवी, लौकांतिकदेव पद प्राप्तकर दिव्यभोग भोगकर धर्मध्यान पूर्वक समय व्यतीतकर मरणकर कर्मभूमि आर्यखंड में चरमशरीरी मनुष्य होकर मुनिदीक्षा ग्रहण कर तप से कर्मों को क्षय कर मोक्ष पाते हैं।

प्र.-1561 इंद्र और प्रतींद्र किसे कहते हैं?

उत्तर- चतुर्निकाय देव देवांगनाओं के स्वामी को इंद्र और इंद्र के निकटवर्ती को प्रतींद्र कहते हैं।

प्र.-1562 लौकांतिक देव किसे कहते हैं?

उत्तर- पाँचवें स्वर्ग ब्रह्मलोक की दिशाविदिशाओं के अंत में निवास करने वाले, संसार भ्रमण का अंत करने वाले, एक भवावतारी अप्रवीचार के पालक ब्रह्मर्षियों को लौकांतिक देव कहते हैं।

प्र.-1563 ये लौकांतिक देव कितने होते हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- आठ भेद हैं। नाम- सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट।

प्र.-1564 क्या पाँचवें स्वर्गवासी सभी देव लौकांतिक देव कहलाते हैं?

उत्तर- पाँचवें ब्रह्म स्वर्गवासी सभी देव लौकांतिक देव नहीं कहलाते हैं किंतु दिशा विदिशाओं के अंत में निवास करने वाले अनेक गुणों से विभूषित एकभवावतारी लौकांतिक देव होते हैं तथा इनके अलावा शेष ब्रह्मस्वर्गवासी देव देवांगनायें इंद्र इंद्राणियां भव्य अभव्य सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि भी हो सकते हैं।

प्र.-1565 इन पदवियों को कौन कब प्राप्त करता है और किसने कहाँ कहा है?

उत्तर- इन पदवियों को दिगंबर जैन पंचमहाव्रतधारी मुनि निर्दोष समाधि मरण कर आज भरतक्षेत्र आर्यखंडोत्पन्न पंचमकाल वाले प्राप्त करते हैं, गृहस्थ नहीं ऐसा मो.पा. गा. 76, 77 में कहा है।

प्र.-1566 इन पदवियों को कौन से संहनन वाले प्राप्त करते हैं?

उत्तर- इस काल में यहाँ आर्यखंडोत्पन्न कुलीन त्रिवेदी मनुष्य समाधिमरण कर 16वें स्वर्ग तक जा सकते हैं।

प्र.-1567 आगमाज्ञा न मानने वाले को आ. श्री ने क्या कहा है?

उत्तर- आज्ञाप्रधानी, आज्ञासम्यक्त्व, आज्ञाविचय धर्मध्यान न होने से आगमाज्ञा न मानने वाले

अनाज्ञाकारी को कुपुत्रवत् आ. श्री ने अज्ञानी मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-1568 कुपुत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- माँबाप की, सज्जातिकुल परंपरा को कलंकित करने वाले पुत्र को ही कुपुत्र कहते हैं ऐसे ही अनाज्ञाकारी शिष्य को ही कुशिष्य, अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्र.-1569 इन पदवियों को कौन से मुनि प्राप्त करते हैं?

उत्तर- आज उच्च आचारवान कुलीन मनुष्य अंतिम तीन हीन संहनन वाले उत्कृष्ट परिणामी मुनि बनकर रत्नत्रय से शुद्ध आत्मध्यान कर भक्तप्रत्याख्यान रूपी समाधिमरण कर इन पदवियों को प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.-1570 मोक्षपाहुड की इन गाथाओं का चूलिका रूप में उपसंहार क्या है?

उत्तर- मो.पा. की इन गाथाओं में मुनियों का अस्तित्त्व, कर्तव्य बताना, प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थान बताना, आत्मसाधना आत्मसाधना का फल, मोक्ष प्राप्ति आदि का चूलिका रूप में वर्णन किया है।

नोटः- यहाँ तक 1570 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 51वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 52वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

स्वेच्छानुसार चर्या

असुहादो णिरयाऊ सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ।

दुहसुहभावं जाणइ जं ते रुच्चेइ तं कुज्जा।।52।

अशुभतो नरकायुष्य शुभभावतस्तु स्वर्गसुखमाः।

अशुभशुभभावं जानीहि यत्तुभ्यं रोचते तत्कुरु।।

असुहादो अशुभभावों से **णिरयाऊ** नरकायु **दु** और **सुहभावादो** शुभभावों से **सग्गसुहमाओ** स्वर्गसुख मिलता है अतः **दुहसुहभावं** दोनों भावों को **जाणइ** जानकर **जं** जो **ते** तुम्हें **रुच्चेइ** रुचे **तं** वह **कुज्जा** करो, बहुत कहने से क्या, हम कहाँ तक कहें?

प्र.-1571 अशुभभाव और शुभभाव किसे कहते हैं?

उत्तर- जो पाप, अपमान तिरस्कार, कष्ट प्राप्त कराये और मलिनता लाये उसे अशुभभाव तथा जो पवित्रता लाये, पुण्य, आदर सम्मान प्राप्त कराये तथा नाना सुख प्राप्त कराये उसे शुभभाव कहते हैं।

प्र.-1572 अशुभ भावों का फल क्या है?

उत्तर- अशुभभावों से नरकायु, तिर्यंचायु, आचारविचार हीन मनुष्यों संबंधी पापकर्मों का आश्रव होना, पापोदय से इन स्थानों में जन्म लेकर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावजन्य कष्ट प्राप्त होना ही फल है।

प्र.-1573 शुभ भावों का क्या फल है?

उत्तर- शुभ भावों से देवायु का, उच्च आचारविचार वाले मनुष्यों का भोगभूमियों के योग्य पुण्यकर्मों का आश्रव बंध होना और जिसके उदय से उत्कृष्ट सुख प्राप्त होना ही फल है।

प्र.-1574 अशुभ भावों को जानकर जिसमें रुचि हो वह करो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- गाथा के उत्तरार्ध अंश के दो अर्थ हैं। 1. उपादान उपादेय की अपेक्षा परद्रव्य के अकर्तृत्त्व को, उपेक्षाभाव को बताया है। जिसका फल अनेक आकुलताओं को विराम देना है। 2. जब शिष्यादि को बारबार समझाने पर भी नहीं मानते, उद्दंडता नहीं छोड़ते हैं तब पड़ोसीवत् माध्यस्थभाव धारण कर या मौन लेकर उपेक्षाभावों से अरे भाई! जो तुम्हारी इच्छा हो वह करो। जैसे घर में किसी को बार बार समझाने पर भी अपनी कुचाल नहीं छोड़ता है तो कह देते हैं कि जो तुम्हारी इच्छा हो वह

करो। हम कहाँ तक समझायें, कहते कहते हम थक गये, मुँह दुःखने लगा है हम क्या करें आदि।

प्र.-1575 अशुभ भावों से तिर्यंचगति के दुःख मिलते हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- जब पाप रूप नरकायूदय से नरक में जन्म लेता है तो तिर्यंचायूदय से तिर्यंचों में जन्म लेता है क्योंकि कर्मसिद्धांत में नरकगति और तिर्यंचगति को पापप्रकृति ही कहा है तभी तो समस्त प्राणी नरक और तिर्यंचगति से भयभीत हैं, कोई वहाँ जाना नहीं चाहता अतः अलग से नहीं कहा है।

प्र.-1576 कर्मप्रकृतियों का अशुभ और शुभपना विभाग कैसे किया गया है?

उत्तर- कर्मप्रकृतियों का विभाग स्थितिबंध और अनुभागबंध की अपेक्षा से किया गया है। स्थितिबंध की अपेक्षा मनुष्यायु, तिर्यंचायु और देवायु को छोड़कर शेष समस्त कर्मप्रकृतियां अशुभ कही हैं।

सव्वाओ दु ठिदीओ सुहासुहाणंपि होंति असुहाओ।
माणुस तिरिक्ख देआउगं च मोत्तूण सेसाणं।।154।। क. कां.

अर्थः- अनुभागबंध में उदयापेक्षया 84 प्रकृतियां, बंधापेक्षया इनमें से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति कम करने पर 82 प्रकृतियां अप्रशस्त, भेद विवक्षा में वर्णादि की 16 और सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति के मिलाने से सौ प्रकृतियां अप्रशस्त कही गईं हैं। क.कां. 43, 44।

प्र.-1577 स्थितिबंध किसे कहते हैं?

उत्तर- कर्मों का तथा विकारी भावों का आत्मा के साथ संबंध स्थिर रहने को स्थितिबंध कहते हैं।

प्र.-1578 अनुभाग बंध किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्वबद्ध कर्मों की फलदानशक्ति को, अनुभव कराने की शक्ति को अनुभागबंध कहते हैं।

प्र.-1579 शुभभावों से देवायु के साथ मनुष्यों के सुख का वर्णन क्यों नहीं किया?

उत्तर- उत्कृष्ट शुभभावों से जब देवगति के सुख का अनुभव करता है तो कुछ मध्यम पुण्य से भोगभूमिज मनुष्यों के सुखों का, कर्मभूमिज राजामहाराजाओं के सुखों का अनुभव करता है, सुख भोगता है क्योंकि उत्कृष्ट सुखों के साथ अनुत्कृष्ट का तथा जघन्य के साथ अजघन्य का वर्णन आ ही जाता है अतः सामान्य जाति की अपेक्षा सुख में समानता होने से देवों के साथ मनुष्यों के सुख का कथन हो ही जाता है।

प्र.-1580 अशुभ भावों से कहाँ कहाँ के दुःख प्राप्त होते हैं?

उत्तर- अशुभभावों से नरकगति के समान तिर्यंचगति के दुःख भी प्राप्त होते हैं क्योंकि नरकायु नरकगति आदि का आश्रवबंध क्रोध से होता है तो तिर्यंचायु और तिर्यंचगति का मायाचार से ।

प्र.-1581 अशुभ और शुभ भावों को जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- यदि तुमको नरकगति और तिर्यंचगति के दुःखों को भोगना है तो पाप करो तथा उत्तम मनुष्यों और देवों के सुखों को भोगना है तो शुभ भावों को करो तथा ये सभी अवस्थायें नहीं चाहिये तो माध्यस्थभाव धारण कर आत्म स्वभाव में स्थिर होकर कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करो यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है।

प्र.-1582 रुचि का क्या अर्थ है और किस विश्वास का क्या फल है?

उत्तर- रुचि का अर्थ विश्वास है और यह विश्वास मिथ्यात्वोदय से मिथ्यादर्शन तथा सर्वघाती दर्शनमोह के अभाव में सम्यग्दर्शन कहलाता है। असत् विश्वास संसार में तो समीचीन विश्वास ऊर्ध्वगति में ले जाता है।

नोटः- यहाँ तक 1582 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 52वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 53-54वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अशुभ भाव

हिंसाइसु कोहाइसु मिच्छाणाणेसु पक्खवाएसु।
मच्छरिएसु मएसु दुरिहिणिवेसेसु असुहलेसेसु ।।53।।
विकहाइसु रुद्दट्टज्झाणेसु असूयगेसु दंडेसु।
सल्लेसु गारवेसु खाईसु जो वट्टए असुहभावो।।54।।

हिंसादिषु क्रोधादिषु मिथ्याज्ञानेषु पक्षपातेषु।
मत्सरितेषु मदेषु दुरभिनिवेशेषु अशुभलेश्यासु।।
विकथादिषु रौद्रार्त्तध्यानेषु असूयकेषु दंडेषु।
शल्येषु गारवेषु ख्यातिषु यो वर्तते अशुभभावः।।

जो हिंसाइसु जो हिंसादि पापों में **कोहाइसु** क्रोधादिकषायों में **मिच्छाणाणेसु** मिथ्याज्ञान में **पक्खवाएसु** पक्षपातों में **मच्छरिएसु** अहंकार में **मएसु** मदों में **दुरिहिणिवेसेसु** दुरभिप्रायों में **असुहलेसेसु** अशुभलेश्याओं में **विकहाइसु** विकथाओं में **रुद्दट्टज्झाणेसु** रौद्रध्यान आर्तध्यानों में **असूयगेसु** ईर्ष्या में **दंडेसु** त्रिदंडों में **सल्लेसु** शल्यों में **गारवेसु** गारवों में **खाईसु** ख्यातिपूजालाभ में **वट्टए** चर्या करना **असुहभावो** अशुभभाव है।

प्र.-1583 पाप का क्या कार्य हैं, विशेष भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- आत्मा को मोक्षमार्ग से बचाना, मोक्षमार्गी न होने देना, उत्तम फलदायक विचार न होने देना पाप का कार्य है। **भेदः-** 5, 7 भेद हैं। **5 नामः-** हिंसादि। **7 नामः-** जुआ खेलना, चोरी करना, मांस भक्षण करना, शराब पीना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन और वेश्यासेवन।

प्र.-1584 द्रव्यपाप और भावपाप किसे कहते हैं?

उत्तर- **द्रव्यपापः-** वचन और काय के द्वारा मर्मच्छेदी क्रिया करने को द्रव्यपाप कहते हैं। **भावपापः-** विषयकषायों, सर्व अनिष्टकारी मन के विचारों को तथा प्रमादभावों को भावपाप कहते हैं।

प्र.-1585 जीवों के प्राणों की विराधना को पाप/अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- जब कोई व्यक्ति हमारा, परिवार का, साथियों का तथा अपनत्व वालों का बिगाड़ करता है तब उस समय मन में कितना कष्ट होता है, हाय हाय होती है तब दूसरों के साथ में ऐसा व्यवहार करते हैं तब उनके मन में कितनी ठेस पहुँचती है, दुःख होता है सो यही हिंसापाप है इसलिए जीवहिंसा को पाप कहा है।

प्र.-1586 झूंठ वचन को पाप क्यों कहा?

उत्तर- विश्वासघात के कारणभूत वचनों के द्वारा धोखेबाजी करने को, आकुलता व्याकुलता पैदा करने को, स्वपर और उभय के प्राणों के घातक वचनों को झूंठ पाप कहा है।

प्र.-1587 चोरी को पाप क्यों कहा?

उत्तर- जब कोई अपनी चेतनाचेतन मिश्र सामग्री का अपहरण करता है तो मन में कितना दुःख होता है सो ऐसे ही जब अपन दूसरों की चेतनाचेतन और मिश्र सामग्री का अपहरण करते हैं तो उसे कितना दुःख होगा अतः यह परद्रव्य चोरी कार्य स्व पर और उभय के प्राणों का घातक होने से इसे पाप कहा है।

प्र.-1588 कामसुख को पाप क्यों कहा और कैसे उत्पन्न होता है तथा क्या फल है?

उत्तर- कामसुख राग का, रौद्रध्यान का, संख्यात, असंख्यात, अनंतजीवों की हिंसा का, घृणा का, लज्जा का, भय का, पापाश्रवबंध का कारण होने से, अध्यात्मसुख का विनाशक और आकुलताजनक वृद्धिकारक होने से अशुभ कहा है। वेद, माया एवं लोभ कषायोदय से होने के कारण कार्यकारण रूप पाप कहा है।

प्र.-1589 कामसेवन करने में कितने जीवों की हिंसा होती है?

उत्तर- **लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।**
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा।।24।। सू.पा.

अर्थ- द्रव्यस्त्रीवेदियों के योनिछिद्र में, नाभि में, काँख में और दोनों स्तनों के मध्य में सूक्ष्म जीव होने से इनको दिगंबर मुनिवत् जिनकल्पी नग्न दीक्षा कैसे हो सकती है?

मैथुनाचरणे मूढः म्रियन्ते जन्तुकोटयः।
योनिरंध्रसमुत्पन्ना लिंगसंगप्रपीडिताः।।21।। ज्ञाना.अ.13

अर्थ- हे मूढ! मैथुनसेवन करने पर इन 4 स्थानों में उत्पन्न नपुंसकवेदी लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि नीचगोत्री जीव 9लाख संमूर्च्छनमनुष्य तथा लिंग के प्रत्येक आघात से असंख्यात[2] करोड़ प्राणी मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

योनिस्तन प्रदेशेषु हृदि कुक्षान्ततेष्वपि।
अति सूक्ष्माः मनुष्याश्चजायन्ते योषितां सदा।।
नवलक्षांगिनोऽत्रैव म्रियन्ते मैथुनेन भो।
इत्येवं जिननाथेन प्रोक्तं केवल लोचनात्।।

अर्थ- हे कामीजनों! स्त्रियों की योनि में, स्तनों में, काँख में, नाभि में अतिसूक्ष्म संमूर्च्छन नपुंसक वेदी 9लाख मनुष्य यहीं पर मैथुन सेवन करने से मृत्यु को प्राप्त होते हैं ऐसा केवलियों ने कहा है।

प्र.-1590 भाव स्त्रीवेदियों के शरीर में इन जीवों का अस्तित्व मानने में क्या दोष है?

उत्तर- भावस्त्रीवेदियों के शरीर में इन जीवों का अस्तित्व मानने में इन अंगों का, मासिकधर्म का भी अस्तित्व मानना पड़ेगा फिर द्रव्यपुरुषवेद का अस्तित्व किसमें और कहाँ रहेगा? अतः भावस्त्रीवेदियों के शरीर में इन जीवों का अस्तित्व नहीं माना है क्योंकि उक्त गाथाओं में द्रव्यशरीरांगों का कथन है।

प्र.-1591 तो क्या इन अंगों के अलावा शरीर में जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है?

उत्तर- हाँ, द्रव्य स्त्रीपुरुषवेदियों के शरीर में, मल और मलिन स्थानों में, मल क्षेपण के स्थानों में इन संमूर्च्छन मनुष्यों का अस्तित्व अवश्य बताया है। भ.आ. 448 पृ. 344 सं.टीका **चक्रि स्कंधावार प्रस्त्रवोच्चार भूमयः शुक्रसिंहाणकश्लेष्मकणदिंतमलानिचांगुला-संख्यातभागमात्र शरीराणांसम्मूर्च्छिमानां मनुजाजन्मस्थानानि।**

प्र.-1592 मैथुन सेवन में ये जीव किस प्रकार से मृत्यु को प्राप्त होते हैं?

उत्तर- **हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।**
बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत्।। पु.उ. 108

अर्थ- जैसे तिलों की नली में तप्त लोहे के डालने से तिल नष्ट होते हैं वैसे मैथुन के समय योनि में उत्पन्न हुए बहुत से जीव मरते हैं।

प्र.-1593 धर्मपत्नि के साथ मैथुनसेवन करने में इन जीवों की क्या हिंसा होती है?

उत्तर- वेश्या, परस्त्री और भोगपत्नि के समान ही धर्मपत्नि के शरीर की रचना है, इनके साथ में मैथुनसेवन करने से द्रव्यहिंसा बराबर होती है। केवल कामेच्छा में, भय, लज्जा, मानमर्यादा, धन

विनाशादि में अंतर है।

प्र.-1594 तो क्या ये जीव केवल स्त्रियों के शरीर में ही होते हैं?

उत्तर- ये जीव स्त्री पुरुषों और नपुंसकों के शरीर में उत्पन्न हुई धातु उपधातुओं में पाये जाते हैं। यदि विश्वास नहीं हो तो इनके शरीर की किसी भी घातु उपधातु को प्रयोगशाला में ले जाकर देख सकते हैं।

प्र.-1595 तो क्या ये जीव बाल्य, यौवन और वृद्धादि सभी अवस्थाओं में पाये जाते हैं?

उत्तर- हाँ, बाल्यावस्था आदि सभी अवस्थाओं में ये सम्मूर्च्छन तिर्यंच और मनुष्य पाये जाते हैं।

प्र.-1596 बालक बालिकाओं का अपहरण करना चोरी पाप है या कुशील पाप?

उत्तर- स्वयं में रागादिक विकार उत्पन्न होने से एवं सामने वाले के द्रव्य भाव प्राणों का व्याघात होने से हिंसा पाप, बदलकर बोलने से झूंठ पाप, माँ बाप और बालक बालिकाओं की इच्छा के बिना उठा लेने से चोरी पाप, कामवासना युक्त आलिंगन, चुंबन, सेवन की भावना होने से कुशील पाप, कषाय भाव होने से परिग्रह पाप आदि माला के दानों की तरह एक पाप के आने पर सभी पाप बिना किये स्वतः आ जाते हैं।

प्र.-1597 समस्त पापों के संग्रह या त्याग के लिए माला का दृष्टांत क्यों दिया?

उत्तर- जैसे माला में कितने भी मोती हों पर यदि धागा टूट जाये या एकाद मोती निकल जाये तो समस्त मोती निकल जाते हैं या अपना अपना स्थान छोड़ देते हैं अथवा धागा के अखंड रहने पर सभी मोती स्थिर रहते हैं ऐसे ही एक पाप के रहने पर सभी पाप स्थिर रहते हैं और एक के त्यागने पर सभी निकल जाते हैं।

प्र.-1598 परिग्रह को पाप क्यों कहा?

उत्तर- **परि-** आत्मा के समस्त प्रदेशों के या समस्त योनियों के द्वारा, **ग्रह-** चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री ग्रहण करना। समस्त कषायों का कार्य मूर्च्छा होने से, दयादि धर्मों का विनाशक, नरक निगोद का, असंयम, प्रमाद, विषयवासनाओं का साधन होने से परिग्रह को पाप कहा है।

प्र.-1599 सचित्त अचित्त और मिश्र सामग्री किसे कहते हैं?

उत्तर- जीव सहित शरीर को सचित्त, जीव रहित शरीर को या वस्त्राभूषण आदि सामग्री को अचित्त और वस्त्राभूषण आदि सहित जीव को मिश्र सामग्री कहते हैं।

प्र.-1600 इन हिंसा आदि सभी कार्यों को पाप क्यों कहा?

उत्तर- इन हिंसादि कार्यों के परिणामों से, वचन और काय के कार्यों से रत्नत्रय की, चारित्र की विराधना आदि दोषोत्पत्ति से, आत्मपतन का, नरकादि दुःखों का साधन होने से अशुभ और पापरूप कहा है।

प्र.-1601 इन पापों का क्या फल है?

उत्तर- इन कार्यों में लिप्त व्यक्ति की कोई भी सज्जन यहाँ न संगति करते हैं, न वार्तालाप करते हैं। घर के, परिवार आदि सभी भयभीत, बचकर छिपकर रहते हैं, लज्जित होते हैं। जैसे विभीषण ने पापी रावण को छोड़कर श्रीराम को अपना साथी बनाया ऐसे ही पापी जीव मरणकर नरकनिगोद में जाकर हजारों, पल्यों, सागरों पर्यंत नाना दुःखों को भोगते हैं आदि यही पापों का फल है।

प्र.-1602 कषाय किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जो आत्मा के सद्गुणों का घात करे, नाना दुःखों को प्राप्त कराये, लज्जा मर्यादा आदि समाप्त हो जाये उसे कषाय कहते हैं। **भेदः-** 2, 4, 25 आदि अनंत हैं। **दो नामः-** द्रव्यकषाय और भावकषाय।

चार नामः- क्रोध, मान, माया, लोभ। **25 नामः-** कषायवेदनीय के 16 + अकषायवेदनीय के 9 = 25।

प्र.-1603 द्रव्यकषाय और भावकषाय किसे कहते हैं?

उत्तर- मोहनीयकर्म के पुद्गलकर्मपिंड को द्रव्यकषाय और इन्हीं कर्मोदय से उत्पन्न चारित्र गुण के विकार को भावकषाय अथवा उत्तम क्षमादि भावों के घातक परिणामों को भाव कषाय कहते हैं।

प्र.-1604 ये कषायें किसके समान हैं और क्या फल देतीं हैं?

उत्तर- ये कषायें किसान के समान और आत्मा भूमिवत् है। जैसे किसान भूमि को जोत कर अधिक मात्रा में फसल पैदा करता है वैसे ही ये कषायें आत्मा में अनेक प्रकार के सुखदुःख पैदा करतीं हैं।

प्र.-1605 मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ उत्पन्न संशय विपर्यय अनध्यवसाय रूपी ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं अथवा अनंत धर्मात्मक वस्तुओं को स्वेच्छानुसार जानने को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

प्र.-1606 क्या वास्तव में ज्ञान मिथ्या होता है?

उत्तर- नहीं, जैसे दूध स्वभाव से स्वादिष्ट पौष्टिक होने पर भी जहर के माध्यम से मारक हो जाता है ऐसे ही मिथ्यात्व के साहचर्य से ज्ञान मिथ्या कहा जाता है, स्वभाव से नहीं।

प्र.-1607 यह मिथ्याज्ञान कौन सा भाव है तथा स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- मिथ्याज्ञान क्षायोपशमिक भाव है। **स्वामीः-** पहले दूसरे गुणस्थानवर्ती जीव हैं।

प्र.-1608 औदयिक भाव रूप अज्ञान को मिथ्याज्ञान क्यों नहीं कहा?

उत्तर- क्योंकि इसमें किंचित् मात्र भी सदसत् जानकारी न होने से औदयिकभाव रूप अज्ञान को अभावात्मक कहा है। यदि कुछ जानकारी होती तो सम्यक् मिथ्या विशेषण लगाया जाता किंतु वंध्यापुत्रवत् होने से विशेषण या नामकरण कैसे किया जाये?

प्र.-1609 अभावात्मक अज्ञान में सम्यक् मिथ्या विशेषण क्यों नहीं लगाया?

उत्तर- वंध्यापुत्रवत् अभावात्मक अज्ञान में सम्यक् और मिथ्या विशेषण नहीं लगाये जाते, यदि औदयिकभाव रूप अज्ञान के विषय का अस्तित्व होता तो ये विशेषण लगाये जाते किंतु ये विशेषण सद्भावात्मक ज्ञान में ही लगते हैं। औदयिकभाव रूप अज्ञान की उत्पत्ति सर्वघाती ज्ञानावरणीय कर्मोदय से एवं क्षायोपशमिक मिथ्याज्ञान की उत्पत्ति मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी के साथ मतिश्रुतावधिज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से होती है। ज्ञानावरणीयकर्म की 5 ही प्रकृतियां गिनायी हैं, 8 नहीं। यदि 8 प्रकृतियां होती तो उनके नाम कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञानावरण कर्म आदि होते पर ऐसे नाम नहीं गिनाये हैं।

प्र.-1610 औदयिकभाव रूप अज्ञान को मिथ्या या सम्यग्ज्ञान मानने में क्या दोष है?

उत्तर- औदयिकभाव रूप अज्ञान को मिथ्याज्ञान मानने से 12वें गुणस्थान तक मिथ्याज्ञान मानने का प्रसंग आता है और सम्यग्ज्ञान मानने से आदि के तीन गुणस्थानों में भी सम्यग्ज्ञान मानना पड़ेगा सो इससे समस्त भव्य अभव्य मिथ्यादृष्टि भी मोक्षमार्गी होने से संसारमार्गी कौन होगा आदि दोष हैं।

प्र.-1611 पक्षपाती किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- किसी भी सही या गलत व्यक्ति के प्रति सहायक होने वाले को, अनुमोदना करने वाले को, समर्पित होने वाले को पक्षपाती कहते हैं। भेद दो हैं। शुभ पक्षपाती और अशुभ पक्षपाती।

प्र.-1612 शुभ पक्षपाती किसे कहते हैं?

उत्तर- धर्म, धर्मायतनों, आत्मा और मोक्षमार्ग के प्रति समर्पित होने वाले को शुभ पक्षपाती कहते हैं।

प्र.-1613 अशुभ पक्षपाती किसे कहते हैं?

उत्तर- अत्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार करने वाले व्यक्तियों की सहायता, सराहना करने वाले को, साथ में लगने वाले को, उनके प्रति समर्पित होने वाले को अशुभ पक्षपाती कहते हैं।

प्र.-1614 पक्षपात को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- क्योंकि पक्ष के साथ में **'पात'** पद जोड़ा गया है। पात का अर्थ गिरना और गिरना नीचे को तथा उठना ऊपर को कहते हैं। संसारवर्धक गलत कार्यों के प्रति लगाव झुकाव को अशुभ पक्षपात कहते हैं क्योंकि गलत कार्य स्वयं अशुभ होने से इनका सहारा लेना और देना भी अशुभ है। बिना कषाय के गलत का पक्ष नहीं लिया जाता अतः गलत कार्यकर्ताओं के प्रति गिर जाने को अशुभ पक्षपात कहा है।

प्र.-1615 पक्षपात अशुभ होने से पाक्षिक श्रावकपना अशुभ क्यों नहीं है?

उत्तर- नहीं, सभी पक्षपात अशुभ नहीं हैं किंतु कुछ पक्षपात कल्याणकारी, मंगलकारी भी हैं। जो पक्ष कलंक स्वरूप है उसके प्रति गिरना अशुभ पक्षपात है तथा सदाचार सद्विचार और सज्जनों के प्रति समर्पित होना, सहायक होना, आज्ञाकारी होना, अनुकूल शिष्यत्व प्राप्त करना शुभपक्षपात है अतः पवित्रता से ओतप्रोत होने से शुभ का पक्ष होने से पाक्षिक श्रावकपना शुभ है, अशुभ नहीं।

प्र.-1616 इन शुभाशुभ पक्षपातों का क्या फल है?

उत्तर- स्वभाव से पवित्र होने के कारण शुभपक्षपात का फल ऊर्ध्वगति, मोक्षगति है और कार्य कारण, कारण कार्य मलिन होने से अशुभ पक्षपात का फल अधोगति, चतुर्गति भ्रमण है।

प्र.-1617 मनुष्य और तिर्यंचगति किस पक्षपात के फल हैं?

उत्तर- रत्नत्रयधर्म के अयोग्य नीच योनिज मनुष्य और तिर्यंच पर्याय अशुभ पक्षपात के फल हैं। रत्नत्रयधर्म के योग्य भोगभूमिज या कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यंच पर्याय शुभ पक्षपात के फल हैं।

प्र.-1618 मात्सर्य किसे कहते हैं और इसे अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- मान कषायोदय से उत्पन्न अहंकार को मात्सर्य कहते हैं। मंगल कार्यों का, सदाचार, सद्विचारों का तिरस्कार अपमान करने के कारण इसे अशुभ कहा है।

प्र.-1619 मद कैसे उत्पन्न होता है और इसे अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- घमंड/ अहंकार आदि करने को मद कहते हैं। यह अनंतानुबंधी आदि मान कषाय के उदय से उत्पन्न होता है अथवा मान कषायोदय के साथ बाह्य वस्तुओं के अवलंबन से उत्पन्न हुए भेद रूप अहंकार को मद कहते हैं। रत्नत्रयधर्म को नष्ट करने वाला होने से अहंकार को अशुभ, पाप रूप कहा है।

प्र.-1620 मात्सर्य और मद में क्या अंतर है?

उत्तर- इन दोनों में अंतरंग की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है किंतु बाह्य अवलंबन की अपेक्षा या सामान्य विशेष की अपेक्षा अंतर है तभी तो ग्रंथकारजी ने दोनों नामों को गाथा में ग्रहण किया है।

प्र.-1621 दुरभिप्राय किसे कहते हैं और इसे अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- मोक्षमार्ग के विरुद्ध संसारभ्रमणानुकूल आश्रवबंध के भावों को, विषयभोगों के, वैरविरोध के भावों को दुरभिप्राय कहते हैं। कष्ट का, निंदा का, बदनामी का, पतन का कारण होने से इसे अशुभ कहा है।

प्र.-1622 लेश्या किसे कहते हैं और कितने भेद हैं?

उत्तर- कषायानुरंजित योग प्रवृत्ति को अथवा जो आत्मा को पुण्य पाप से लिप्त करे या केवल योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। दो भेद हैं। नामः- शुभलेश्या और अशुभलेश्या। इन दोनों के 3-3 भेद हैं।

प्र.-1623 केवल योग की प्रवृत्ति को लेश्या क्यों कहा?

उत्तर- **लिंपतीति लेश्या** इस व्युत्पत्ति अनुसार केवल योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहा है क्योंकि 11वें, 12वें, 13वें गुणस्थानों में परम शुक्ललेश्या के द्वारा सातावेदनीय का आश्रवबंध होता रहता है।

प्र.-1624 अशुभ लेश्या किसे कहते हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जो आत्मा को पाप कर्मों से लिप्त करे उसे अशुभ लेश्या कहते हैं। **नामः-** कृष्ण, नील, कापोत।

प्र.-1625 विकथा किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग के, धर्म के, सुखशांति के विरुद्ध वचनों को विकथा कहते हैं। 2, 4 और 25 भेद हैं। **दो भेदः-** वचनात्मक और भावात्मक विकथा। **चार नामः-** स्त्रीकथा, राजकथा, भोजनकथा और चोरकथा।

पच्चीस नामः-

1. **स्त्रीकथाः-** विषयवासना पूर्वक राग में फंसानेवाली स्त्रियों के सौंदर्य एवं कला आदि का वर्णन करना अथवा कामवासना पूर्वक पुरुषों की, नपुंसकों की कथा करना, **पुरुषकथा, नपुंसककथा**।
2. **अर्थकथाः-** विषय भोगों संबंधी चेतनाचेतन और मिश्र, चलाचल संपत्ति के गुणदोषों की प्रशंसा करना।
3. **भोजनकथाः-** भोजन की लालसा सहित खाद्य स्वाद्य लेह्य और पेय आहार के गुणदोषों का वर्णन करना या अभक्ष्यभोज्य पदार्थों के भोजन की आकांक्षा उत्पन्न करने कराने को गुणदोषों का वर्णन करना।
4. **राजकथाः-** लौकिक नेताओं के प्रति आकर्षणार्थ विकार पूर्वक गुणदोषों का कथन करना।
5. **चोरकथाः-** सकषाय अपहरणकर्ताओं की कलाओं का चोरी में लगाने के लिए कथन करना।
6. **वैरकथाः-** रागद्वेष पूर्वक परस्पर में पुरानी या नवीन फूट मजबूत करने की कथा करना।
7. **परपाखंड कथाः-** मिथ्यात्व वर्धक मिथ्यासाधुओं के तपादि का मोह पूर्वक गुणदोषों का कथन करना।
8. **देशकथाः-** धर्मभाव, धर्मक्षेत्र के बिना सिर्फ आकर्षण के लिए कर्मक्षेत्रों के गुणदोषों का वर्णन करना।
9. **भाषाकथाः-** धर्मबुद्धि के बिना लौकिक भाषाओं की निंदा प्रशंसा करना या अपना रहस्य मालुम न हो जाये या आश्चर्य में डालने के लिए अनेक भाषाओं का कथन, उच्चारण करना।
10. **गुणबंधकथाः-** विषयकषायों के उद्रेक सह प्राणियों के पतनार्थ लौकिक गुणदोषों का कथन करना।
11. **देवीकथाः-** चार प्रकार की देवांगनाओं के रूप अलंकार आदि का मोह पैदा करने के लिए कला आदि गुणों का वर्णन करना अथवा महान राजरानी स्त्रीवेदियों का राग पूर्वक शारीरिक सौंदर्य का कथन करना।
12. **निष्ठुरकथाः-** विषयकषाय पूर्वक हृदय विदारक नीरस कठोर वचन उच्चारण करना।
13. **परपैशुन्यकथाः-** दूसरों को नीचा दिखाने या बदनामी के लिए चुगलखोरी करना।

14. कंदर्प कथाः- कामवासना उत्पन्न करने को मैथुन संबंधी कथन करना, कोकशास्त्र लिखना।

15. देशकालानुचितकथाः- अज्ञानता पूर्वक धर्मदेश और धर्मकाल के विरुद्ध मनोनुकूल कथन करना।

16. भंडकथाः- परस्पर में झगड़ा पैदा करने को कषायपूर्वक दोषवादन करना, अशिष्टवचन बोलना।

17. मूर्खकथाः- स्वयं की अजानकारी व्यक्त करने के लिए अविवेकता पूर्वक कथन करना।

18. आत्मप्रशंसाकथाः- ख्याति पूजा लाभ की भावना सहित अपना असत् गुणानुवाद करना।

19. परपरिवादकथाः- आलस्य पूर्वक दूसरों को अपमानित करने के लिए दोषवादन करना।

20. परजुगुप्साकथाः- कषाय सहित दूसरों में घृणा पैदा करने वाली कथा करना।

21. परपीड़ाकथाः- विषयकषाय पूर्वक परार्थ मर्मच्छेदी शब्द बोलना।

22. कलहकथाः- परस्पर में तत्काल वैरविरोध, झगड़ा पैदा करने वाली कथा करना।

23. परिग्रहकथाः- सांसारिक विषयभोगों की सामग्री में मोह मूर्च्छा पैदा करने वाली कथा करना।

24. कृष्यादिआरंभकथाः- धर्मभाव के बिना खेती, कूटनापीसनाादि आरंभ पैदा करने वाली कथा करना।

25. संगीतवाद्यकथाः- राग विकार पैदा करने के लिए गाने, बजाने, नाचने वाली कथा करना।

प्र.-1626 वचनात्मक विकथा किसे कहते हैं?

उत्तर- गद्य पद्य रूप में, स्वर व्यंजनों को गलत या अशिष्ट अभिप्राय पूर्वक मुख से उच्चारण करने को, लेखनकार्य करने को, शरीर से तदनुरूप संकेत करने को वचनात्मक विकथा कहते हैं।

प्र.-1627 भावात्मक विकथा किसे कहते हैं?

उत्तर- वचनोच्चारणार्थ अंतरंग में उत्पन्न हुए कषाय नोकषायरूप भावों को भावात्मक विकथा कहते हैं।

प्र.-1628 इन विकथाओं को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- ये प्रमाद, वैरविरोध और विषयकषाय आदि की उत्पादक होने से इन्हें अशुभ कहा है।

प्र.-1629 रौद्रध्यान को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- पापकर्मों का आश्रवबंध और अशुभगति का साधन होने से रौद्रध्यान को अशुभ कहा है।

प्र.-1630 अशुभगति कौन सी है?

उत्तर- कर्मसिद्धांत में नरक, तिर्यंचगति को अशुभ कहा है किंतु रौद्रध्यान के साथ चारों ही गतियां अशुभ हैं क्योंकि देवदेवांगनायें आर्त रौद्रध्यान से मरण कर एकेंद्रिय पंचेंद्रिय तिर्यंचों में पैदा हो जातीं हैं।

प्र.-1631 आर्तध्यान को अशुभ क्यों कहा है?

उत्तर- पीड़ा रूप विचारों को आर्तध्यान कहते हैं। इन पीड़ा रूप विचारों में स्थिर होने से पुनः पापकर्मों का, संक्लेशकारक कर्मों के बंध का साधन होने से आर्तध्यान को अशुभ कहा है।

प्र.-1632 पीड़ा के साधन कौन कौन हैं?

उत्तर- अंतरंग साधन असाता वेदनीयकर्मोदय है। बहिरंग साधन चेतनाचेतन और मिश्र सामग्री है।

प्र.-1633 चेतनादि सामग्री धर्म में सहायक होने से आर्तध्यान की है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- आत्मसाधना का हेतु होने से चेतन अचेतन और मिश्र सामग्री धर्मध्यान और शुक्लध्यान

में सहायक होती है तथा संसार का हेतु होने से विषयकषायों में सहायक उक्त सामग्री को आर्त रौद्रध्यान में सहायक समझना चाहिये, सभी सामग्री नहीं क्योंकि बाह्यसामग्री केवल साधन मात्र है।

प्र.-1634 चेतनाचेतन, मिश्र सामग्री आर्तध्यान में सहायक नहीं है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- **चेतन सामग्री-** पंचपरमेष्ठी, षडायतन। **अचेतन सामग्री-** इनके प्रतिबिंब, वचनात्मक दिव्योपदेश, मंगलद्रव्य, प्रातिहार्य, सभी धर्मक्षेत्र, पीछी कमंडलु, पूजन सामग्री, बर्तनादि। **मिश्र सामग्री-** शरीर सहित, पीछी कमंडलु चिह्न सहित मुनि ये सभी धर्मध्यान और शुक्लध्यान में सहायक होने से शुभ हैं, मंगलकारी हैं अथवा समस्त लोकालोक मोक्षमार्गी ध्याताओं के लिए धर्मध्यान और शुक्लध्यान के साधन हैं। इसीतरह अत्यंत निकृष्ट ध्याताओं के लिए यही सामग्री दुर्ध्यान में सहायक है या यही सामग्री उपभोक्ताओं के उपयोगानुसार शुभ अशुभ और शुद्ध ध्यानों में सहायक हो जाती है।

प्र.-1635 यह तीन प्रकार की सामग्री इष्ट है या अनिष्ट?

उत्तर- इस संबंध में अनेकांत है। उपादानउपादेय की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु अनंतधर्मात्मक होने से स्वयं ही इष्टानिष्ट रूप परिणमन करती है किसीके कहने से नहीं, तभी तो केवली ने ऐसा उपदेश दिया है कारण जिसमें जो योग्यता नहीं है और स्वयं उस रूप में अपरिणामी है तो वह दूसरों को उस रूप में परिणमन नहीं करा सकती है, न इष्टानिष्ट रूप परिणमन कराने में सहायक बन सकती है।

प्र.-1636 ये तीनों प्रकार की सामग्रियां जैसी हैं वैसी ही रहती हैं किंतु अपनी आत्मा ही स्वयं इष्टानिष्ट रूप परिणमन करती है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- निमित्त नैमित्तिक संबंध के कारण जीव और पुद्गल ये दोनों ही द्रव्य परस्पर में इष्टानिष्ट रूप में परिणमन करते चले आ रहे हैं सो श्री समयसारजी के सर्वविशुद्धि अधिकार में कहा है-

असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणइ सुणसु मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं सोयविसयमागयं सद्दं।।375।।
असुहं सुहं च रूवं ण तं भणइ पिच्छ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं चक्खुविसयमागयं रूवं।।376।।
असुहो सुहो व गंधो ण तं भणइ जिग्घ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं घाणविसयमागयं गंधं।।377।।
असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं।।378।।
असुहो सुहो व फासो ण तं भणइ फुससु मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं।।379।।
असुहो सुहो व गुणो ण तं भणइ बुज्झ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं तु गुणं।।380।।
असुहं सुहं व दव्वं ण तं भणइ बुज्झ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धिविसयमागयं दव्वं।।381।। स.सा.

अर्थः- अशुभ या शुभ शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, गुण और द्रव्य ये सभी इंद्रिय और मन के विषय बनकर आकर आत्मा से नहीं कहते हैं कि तुम मेरे को ग्रहण करो और न आत्मा ही इन विषयों के पास जाता है फिर भी अज्ञानी जीव विकार को प्राप्त होता है अतः जीव और पुद्गल स्वयं ही इस प्रकार परिणमन करते हैं। इन तीनों प्रकार की सामग्रियों में यदि अपनी आत्म वस्तु का अंतर्भाव हो जाता है तो जब अपनी आत्मा स्वयं इष्टानिष्ट भावों से परिणमन करती है तो सभी आत्माओं को इसी प्रकार मान लो और जब इष्टानिष्ट रूप परिणमन समस्त आत्माओं में होता है तब वस्तु जैसी है वैसी ही है ऐसा कहना व्यर्थ है और विकार रूप परिणमन को निर्निमित्तिक

मानने से पारिणामिक भाव बन जायेगा तथा इष्टानिष्ट रूप परिणमन पारिणामिक भाव होने से सिद्ध भगवंतों को भी इसी रूप में परिणमन करना पड़ेगा अथवा किसी भी जीव की मुक्ति नहीं हो सकती अतः जीव और पुद्गलों का निमित्त नैमित्तिक रूप से परस्पर में इष्टानिष्ट परिणमन होने के कारण ही संसार और मोक्ष की सिद्धि हो सकती है अन्यथा नहीं ऐसा नहीं मानना ही दोष है इसलिए निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा जीव और पुद्गलों का इष्टानिष्ट रूप में परिणमन अनादिकाल से चला आ रहा है और जबतक संसार है तबतक ऐसा परिणमन चलता रहेगा। स.सा. गा. 80, पु. सि. गा.12।

प्र.-1637 आर्तध्यान की उत्पत्ति का बहिरंग कारण क्या है?

उत्तर- व्यापार, परिवार, वस्त्राभूषण, दुकान, मकानादि, विषयसामग्री की कमी होना या नहीं होना, रोगादि होना, अनिष्ट सामग्री का संयोग होना आदि आर्तध्यान के बहिरंग कारण हैं।

प्र.-1638 आर्तध्यान की उत्पत्ति का अंतरंग कारण क्या है?

उत्तर- विषयवासना का परिणाम होना, कषाय रूप प्रवृत्ति होना, असाता वेदनीय कर्म का उदय होना ख्याति पूजा लाभ की भावना आदि आर्तध्यान की उत्पत्ति के अंतरंग साधन हैं।

प्र.-1639 रौद्रध्यान की उत्पत्ति के अंतरंग और बहिरंग कारण कौन कौन हैं?

उत्तर- रौद्रध्यान की उत्पत्ति का अंतरंग कारण असंयम और प्रमाद है तथा बहिरंग कारण विषयकषायों की, हिंसादि पापों की बाह्य सामग्री है। इन उभय कारणों से रौद्रध्यान होता है। पीछे प्र. 1227 देखो।

प्र.-1640 तो क्या सभी प्रकार का प्रमाद रौद्रध्यान का कारण है?

उत्तर- नहीं, अनंतानुबंधी आदि 12 कषायोदय से उत्पन्न प्रमाद ही रौद्रध्यान का कारण है, सभी नहीं। यदि सभी प्रकार के प्रमाद को रौद्रध्यान का कारण माना जाये तो 6वें में प्रमाद होने से रौद्रध्यान मानने का प्रसंग आयेगा जबकि 5वें तक ही रौद्रध्यान का अस्तित्व माना है, इसके आगे नहीं।

प्र.-1641 प्रमाद किसके उदय से होता है?

उत्तर- आदि की 12 कषायों के तीव्र या मंदोदय और संज्वलन कषाय के तीव्रोदय से प्रमाद होता है।

प्र.-1642 तो क्या सभी प्रमाद कषायोदय से होते हैं?

उत्तर- नहीं, सभी प्रकार के प्रमाद कषायोदय से नहीं होते हैं क्योंकि निद्राप्रमाद निद्रादर्शनावरणीय कर्मोदय से होता है शेष प्रमाद गुणस्थानानुसार कषायोदय से होते हैं, कषायोदय के बिना नहीं।

प्र.-1643 'असूया' किसे कहते हैं?

उत्तर- सद्‌गुणों में, निर्दोष व्यक्तिओं में दोष देखने, प्रतिपादन करने को जलन भाव, असूया कहते हैं।

प्र.-1644 इस असूया को अशुभ भाव क्यों कहा?

उत्तर- मन में जलनभाव, मायाकषाय रूप परिणाम, दूसरों को धोखे में डालने के कारण या विश्वासघात के कारण इसे अशुभ कहा है क्योंकि यह असूया आत्मसुखसाधन की, सदाचार, सद्विचार की घातक है।

प्र.-1645 दंड किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मानकषायोदय से उत्पन्न अकड़बाजी को दंड कहते हैं। 3भेद हैं। **नामः-** मनदंड, वचनदंड, कायदंड।

प्र.-1646 मनदंड किसे कहते हैं?

उत्तर- अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा मानकर उनके अपमान तिरस्कार के भाव को मनदंड

कहते हैं।

प्र.-1647 वचनदंड किसे कहते हैं?

उत्तर- अहंकार पूर्वक दूसरों को नीचा दिखाने के लिए, अपमान तिरस्कार, लज्जित कराने के लिए वचन उच्चारण को या वचनों के माध्यम से किसीके सामने न झुकने को वचनदंड कहते हैं।

प्र.-1648 कायदंड किसे कहते हैं?

उत्तर- शरीर को अकड़ाकर, सीना फुलाकर, दूसरों को डराते हुए, शस्त्र दिखाते हुए चलना, मुट्ठी बांधकर भयभीत कराने को आदि शारीरिक अहं प्रदर्शित करने को कायदंड कहते हैं।

प्र.-1649 मनदंड, वचनदंड और कायदंड से क्या हानि है?

उत्तर- इन दंडों से अपना आत्मकार्य, आत्मधर्म, आत्मसुख का मार्ग, मोक्षमार्ग मलिन हो जाता है। प्रायःकर स्वयं की सुखशांति नष्ट हो जाती है यही हानि है जैसे दूसरों को जलाने के लिए अपने हाथ में अग्नि का अंगारा लिया तो सर्व प्रथम अपना हाथ जलता ही है बाद में सामने वाले का कुछ अनिष्ट हो या नहीं हो यह उसके भाग्य की बात है ऐसे ही उद्दंडी रावण की तरह अपना अस्तित्व नष्ट कर लेता है।

प्र.-1650 इन दंडों को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- मानकषाय का कार्यकारण होने से इन को अशुभ कहा, इनसे अपना सर्व विनाश होता है।

प्र.-1651 ये तीनों दंड मानकषाय के कार्य कारण कैसे?

उत्तर- ये तीनों मानोदय की अपेक्षा कार्य रूप हैं तथा मान को ही बांधते हैं सो कारण रूप भी हैं।

प्र.-1652 ये दंड किन किन कषायों के उदय से होते हैं?

उत्तर- ये अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन मानकषायोदय से होते हैं।

प्र.-1653 इन दंडों से क्या आध्यात्मिक हानि होती है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही होती है। अनंतानुबंधी मान से मोक्षमार्ग नहीं, अप्रत्याख्यानावरण मान से देशचारित्र नहीं, प्रत्याख्यानावरण मान से सकलचारित्र नहीं, संज्वलन मान से सूक्ष्मसांपराय चारित्र और यथाख्यातचारित्र नहीं होता है तथा पुरुषार्थ के द्वारा सम्यक् गुण प्राप्त होने पर भी पुनः ये कषायें उदय में आकर अपने अपने गुणों को नष्टकर अधःपतन की ओर पहले गुणस्थान तक ले आतीं हैं यही हानि है।

प्र.-1654 यहाँ किन दंडों से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ अनंतानुबंधी मानकषाय के उदय से उत्पन्न दंडों से प्रयोजन है।

प्र.-1655 शल्य किसे कहते हैं और ये किसके समान हैं?

उत्तर- आत्मा में चुभन रूप परिणामों को शल्य कहते हैं। जैसे शरीर में फाँस लगने पर कितना दर्द होता है यह सभी जानते हैं ऐसे ही ये शल्य मन में उत्पन्न होते ही चुभने लगते हैं, आत्म सुखानुभव नहीं होने देते।

प्र.-1656 शल्य के कितने भेद हैं, नाम तथा क्या हानि है?

उत्तर- शल्य के 3 या 8 भेद हैं। **3 नामः-** माया, मिथ्यात्व और निदानशल्य। **8 नामः-** क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, निदान, प्रेम और पिपासाशल्य। शल्यवान सदा दुःखी रहता है यही हानि है।

प्र.-1657 शल्यों को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- शल्यों से पीड़ित प्राणी सर्वत्र धर्मकार्यों को करता हुआ भी धर्म का, लौकिक कार्यों को

करता हुआ भी आनंद, मनोनुकूल सुखानुभव नहीं ले पाता है इस कारण इन्हें अशुभ कहा है।

प्र.-1658 गारव किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मान और लोभ कषायोदय से भोगोपभोग सामग्री को प्राप्त कर स्वयंमें बड़प्पन का अनुभव कर दूसरों को नीचा दिखाने को गारव कहते हैं। 3 भेद हैं। **नामः-** रसगारव, रिद्धिगारव और सातगारव।

प्र.-1659 रस गारव किसे कहते हैं?

उत्तर- स्वादिष्ट, पौष्टिक आहार, अनेक प्रकार के रस, मेवादि के सेवन से उत्पन्न अहंकार को अथवा शब्द संबंधी, गद्य पद्य काव्य संबंधी रसों के वर्णन से उत्पन्न हुए मान को भी रसगारव कहते हैं।

प्र.-1660 ऋद्धि गारव किसे कहते हैं?

उत्तर- विद्याधन, पशुधन, रुपया, शारीरिक सौंदर्य के आश्रय से उत्पन्न अहं को ऋद्धि गारव कहते हैं।

प्र.-1661 सातगारव किसे कहते हैं?

उत्तर- सातावेदनीयादि भोग निमित्तक पुण्यकर्मोदय से इंद्रियसुखसामग्री पाकर सुखानुभव कर मानी बनने को सातगारव कहते हैं।

प्र.-1662 इन गारवों को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- गारववानव्यक्ति स्वयं को ऊंटवत् बड़ा मान दूसरों का तिरस्कार करता है सो अशुभ कहा है।

प्र.-1663 ख्याति पूजा लाभ किसे कहते हैं?

उत्तर- **ख्यातिः-** सर्वत्र मेरा प्रचार हो, गुणकीर्तन हो, प्रशंसा हो। **पूजाः-** मेरे को सर्वत्र आदर सम्मान प्राप्त हो, आरती उतारी जाये, वस्त्राभूषण, जल चंदनादि अर्पण किया जाये आदि। **लाभः-** माला मुकुट मंच की प्राप्ति को, धन दौलत, शिष्यमंडली और विशेष आहारादि की प्राप्ति को लाभ कहते हैं।

प्र.-1664 इन ख्याति पूजा लाभ की भावना को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- अनंत संसार के कारणभूत मिथ्याचारित्र रूप परिणाम होने से इन्हें अशुभ कहा है।

प्र.-1665 क्या इतने ही अशुभ भाव होते हैं या और भी हो सकते हैं?

उत्तर- इनके अलावा और भी अशुभभाव हैं जैसे सप्तव्यसनसेवन करना, सप्तभय, सम्यग्दर्शन के शंकादि 25 मलदोष, शंकादि 5अतिचार, 12व्रतों के और संल्लेखना के 65अतिचार, पापकर्माश्रवबंध के परिणाम अशुभभाव हैं जो कर्मसिद्धांत से जाने जा सकते हैं।

प्र.-1666 मान को मद, मात्सर्य, गारव, दंड आदि अनेक नामों से क्यों कहा है?

उत्तर- जैसे लोक में किसी व्यक्ति को लौकिक, लोकोत्तर, सामाजिक, राजसंबंधी, व्यापार संबंधी अच्छेबुरे काम करने के कारण अनेक नामों से पुकारते हैं ऐसे ही एक ही कषाय बाह्य वस्तुओं के माध्यम से अनेक प्रकार से परिणमन करती है सो इसके आधार भेद से अनेक नाम हो जाते हैं।

नोटः- यहाँ 1666 प्रश्नोत्तरों तक 53-54वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 55-56वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

शुभभाव

दव्वत्थिकाय छप्पणतच्चपयत्थेसु सत्तणवएसु।
बंधणमोक्खे तक्कारणरूवे बारसणुवेक्खे।।55।।
रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मे दयाइसद्धम्मे।
इच्चेवमाइगो जो वट्टइ सो होइ सुहभावो।।56।।
द्रव्यास्तिकाय षट् पंच तत्त्व पदार्थेषु सप्त नवकेषु।

बंधन मोक्षे तत्कारण रूपे द्वादशानुप्रेक्षासु।।
रत्नत्रय स्वरूपे आर्य कर्मणि दयादि सद्धर्मे।
इत्येवमादिके यो वर्तते स भवति शुभभावः।।

जो जो जीव **दव्वत्थिकाय छप्पण** 6 द्रव्य, 5 अस्तिकाय **तच्चपयत्थेसु सत्तणवएसु** 7 तत्त्व, 9 पदार्थों में **बंधण मोक्खे** बंध मोक्ष में **तक्कारणरूवे** बंध का कारण आश्रव और मोक्ष के कारण संवर निर्जरा में, **बारसणुवेक्खे** द्वादशानुप्रेक्षाओं में, **रयणत्तयस्सरूवे** रत्नत्रय में **अज्जाकम्मे** आर्य श्रेष्ठ कर्मों में **दयाइसद्धम्मे** दया आदि सद्धर्म **इच्चेवमाइगो** इत्यादिक में **वट्टइ** प्रवृत्ति करना **सो** वह **सुहभावो** शुभभाव **होइ** होता है।

प्र.-1667 द्रव्य किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- सल्लक्षण वाले को, उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले को, गुण पर्याय वाले को द्रव्य कहते हैं। 2, 6 भेद हैं। **दो नामः-** जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य। **6 नामः-** जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य।

प्र.-1668 इन द्रव्यों को शुभ भाव क्यों कहा?

उत्तर- इन द्रव्यों को शुभभाव नहीं कहा है किंतु इन शुद्धद्रव्य और इनकी अवस्थाओं में मिलावट न कर जैसा का तैसा चिंतन कर परिणमन करने को कार्यकारण में अभेद कर इन्हें शुभभाव कहा है।

प्र.-1669 इन द्रव्यों में मन के लगाने को शुभ कहा है या शुभ होने से इन्हें शुभ कहा?

उत्तर- इन द्रव्यों की स्वाभाविक शुद्धावस्था होने के कारण, विकार रूप में न होने से इनमें अपना मन लगाने को शुभ कहा है। ये स्वयं में सुंदर हैं, निर्दोष हैं, एक ही रूप में अनादिकाल से हैं और अनंतकाल तक रहेंगे अतः कल्पना से न कहकर स्वभाव से ही शुद्ध होने से इन द्रव्यों को उपचार से शुभ कहा है।

प्र.-1670 जीव द्रव्य किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- चेतना या ज्ञाता दृष्टा लक्षण वाले, सुखदुःख के अनुभवी को या सुनने, देखने, सूंघने, चखने, स्पर्श करने की सामर्थ्य को जीवद्रव्य कहते हैं। दो और अनेक भेद हैं। **नामः-** शुद्ध जीव द्रव्य और अशुद्ध जीवद्रव्य या संसारीजीव और मुक्तजीव। संसारी और मुक्तजीवों के अनेक भेद प्रभेद हैं।

प्र.-1671 शुद्ध जीवद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- परद्रव्य गुण पर्याय से निरपेक्ष, परमपारिणामिक भाव स्वरूप चेतना को, अखंड अभेद स्वभाव वाले को शुद्ध जीवद्रव्य कहते हैं। जैसे शुद्ध घी में किंचित् मात्र भी दूध दही, मक्खन आदि के अंश न होने से शुद्ध कहते हैं ऐसे ही आत्मा में परद्रव्य का अंश मात्र भी संबंध न होने से शुद्ध कहा है।

प्र.-1672 शुद्ध सिद्धजीवों के भेद होते हैं क्या?

उत्तर- अवश्य ही सिद्धों के 13 भेद होते हैं। **नामः- क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्ध बोधित ज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः।।9।।** क्षेत्र, काल, गति, लिङ्ग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधित बुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अंतर, संख्या और अल्पबहुत्व। इन्हीं के अवांतर भेदों की अपेक्षा अनेक भेद हैं।

प्र.-1673 शुद्ध सिद्धजीवों के ये भेद वास्तविक हैं या अवास्तविक?

उत्तर- शुद्ध सिद्धत्व की अपेक्षा भी ये भेद उभयरूप हैं किंतु भूतपूर्व नैगमनय की या संसार की या जीव की अशुद्ध अवस्थाओं की अपेक्षा वास्तविक हैं क्योंकि आत्मा भेदाभेदात्मक या अनंत धर्मात्मक है।

प्र.-1674 शुद्ध सिद्धजीवों के भेद इतने ही हो सकते है या और भी?

उत्तर- हाँ, गुणस्थान, मार्गणा और जीवसमास की या भूतपूर्व नैगमनय की अपेक्षा सूत्रगत नामों के अलावा और भी भेद हो सकते हैं।

प्र.-1675 शुद्ध सिद्धजीवों के सूत्रगत नामों के क्या और भी भेद हैं?

उत्तर- हाँ, सूत्रगत इन नामों के भी अवांतर अनेक भेद हो सकते हैं। जैसे **क्षेत्र की अपेक्षा** जंबूद्वीप, धातकी खंड, पुष्कराधे से संबंधित, कोई भरतक्षेत्र के आर्यखंड से, कोई ऐरावतक्षेत्र के आर्यखंड से, कोई विदेहक्षेत्र के आर्यखंड से, कोई जल से, कोई थल से, कोई नभ से, कोई सम्मेदशिखरजी आदि सिद्धक्षेत्रों से सिद्धों में भेद समझना चाहिये ऐसे ही शेष अनुयोगद्वारों के उपभेदों को जानकर अर्थ करना चाहिये।

प्र.-1676 अशुद्ध जीवद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- त्रीकर्मों से संयुक्त जीवद्रव्य को, भेद और खंड स्वभाव वाले को अशुद्ध जीवद्रव्य कहते हैं।

प्र.-1677 संसारी जीवद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- **द्रव्यकर्मः-** ज्ञानावरणादिक पुद्गलपिंड, **भावकर्मः-** द्रव्यकर्मों के निमित्त से उत्पन्न हुए परिणाम, **नोकर्मः-** शरीरादि इंद्रियगोचर सामग्री सहित गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास वालों को संसारीजीव कहते हैं।

प्र.-1678 मुक्तजीव किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य, भाव, नोकर्म, गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमासादि भावविनष्ट जीवों को मुक्तजीव कहते हैं।

प्र.-1679 पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- पूरणगलन स्वभावी, रूप रस गंध स्पर्शवान, इंद्रियविषयों, अणुस्कंध को पुद्गलद्रव्य कहते हैं।

प्र.-1680 धर्मद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- गमनशील जीव और पुद्गलों को गमन करने में उदासीनता से सहकारी को अमूर्त धर्मद्रव्य कहते हैं।

प्र.-1681 अधर्मद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- ठहरने वाले जीव और पुद्गलों को ठहरने में उदासीनता से सहकारी को अमूर्त अधर्मद्रव्य कहते हैं।

प्र.-1682 आकाशद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- सभी द्रव्यों को आवास देने में उदासीनभाव से सहकारी को अमूर्त आकाशद्रव्य कहते हैं।

प्र.-1683 गमन और स्थिति क्या जीव और पुद्गलों की ही होती है?

उत्तर- हाँ, केवल जीव और पुद्गल में गमनागमन और स्थिति रूप क्षेत्रांतर क्रिया होती है, शेष द्रव्यों में नहीं।

प्र.-1684 ये तीनों द्रव्य किस प्रकार के हैं?

उत्तर- ये तीनों द्रव्य द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अखंड, अभेद, निष्क्रिय, अमूर्तिक, एक एक, शुद्ध स्वतंत्रादि अनंत अनंत धर्मवाले हैं किंतु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा खंड खंड रूप में, भेद रूप में, परिणति रूप अर्थ क्रियावान और अनंत अनंत पर्यायवाले हैं।

प्र.-1685 काल द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवादि सभी द्रव्यों को परिणमन करने कराने में उदासीनता से सामर्थ्यवान को कालद्रव्य कहते हैं।

प्र.-1686 कालद्रव्य के कितने भेद हैं और स्वभाव कैसा है?

उत्तर- काल द्रव्य के निश्चय और व्यवहार ये दो भेद हैं। अमूर्तिक है, एक प्रदेशी है, निष्क्रिय है, लोकाकाश के बराबर कालाणु असंख्यात हैं, क्षेत्रांतर क्रिया रहित निष्क्रिय, अनंत धर्मात्मक है।

प्र.-1687 इन चारों द्रव्यों को अखंड अभेद निष्क्रिय क्यों कहा?

उत्तर- धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों के पुद्गल के समान टुकड़े टुकड़े न होने से अखंड हैं, छेदन भेदन न होने से अभेद हैं, क्षेत्रांतर क्रिया न होने से निष्क्रिय हैं, रूप रस गंध स्पर्श न होने से अमूर्तिक हैं।

प्र.-1688 इन द्रव्यों में किसके कितने प्रदेश हैं?

उत्तर- धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, लोकाकाश और एक जीव के असंख्यात असंख्यात प्रदेश होते हैं, आकाश द्रव्य के अनंत प्रदेश होते हैं। पुद्गल द्रव्य का परमाणु एक प्रदेशी होता है, कालाणु एक प्रदेशी होता है।

प्र.-1689 कालाणु और पुद्गल परमाणु एक एक प्रदेशी हैं तो इनमें क्या अंतर है?

उत्तर- कालाणु शक्ति और व्यक्ति की अपेक्षा एक प्रदेशी है जबकि पुद्गल परमाणु व्यक्ति की अपेक्षा एक प्रदेशी और शक्ति की अपेक्षा संख्यात असंख्यात और अनंत प्रदेशी है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-1690 क्या परमाणु परमाणु रूप ही रहता है या कुछ परिवर्तन भी होता है?

उत्तर- परमाणु से स्कंध, स्कंध से परमाणु ऐसा कार्यकारण तथा कारणकार्य रूप परिणमन होता है।

प्र.-1691 कार्यपरमाणु और कारणपरमाणु किसे कहते हैं?

उत्तर- स्कंध के अंतिम अंश को कार्यपरमाणु, पुनः स्कंध के उत्पादक को कारणपरमाणु कहते हैं।

प्र.-1692 ये धर्मादिक तीन द्रव्य क्या सर्वथा एक एक ही रहते हैं?

उत्तर- नहीं, ये प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यात असंख्यात और अलग अलग न होने से एक एक ही होते हैं।

प्र.-1693 इन द्रव्यों में उपयोग लगाने को शुभ क्यों कहा है?

उत्तर- ये सभी द्रव्य अपनी[2] सत्ता से पूर्ण स्वतंत्र, शुद्ध होने से इनमें उपयोग लगाने को शुभ कहा है।

प्र.-1694 ये परद्रव्य होने से इनमें उपयोग लगाने को अशुभ क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं, केवल परद्रव्यों में उपयोग लगाने को अशुभ नहीं कहा है किंतु रागद्वेषमोह पूर्वक उपयोग लगाने को अशुभ कहा अन्यथा केवलियों के भी ज्ञेयज्ञायक संबंध होने से और आदि के दो शुक्लध्यानों में भी इनका अवलंबन होने से इनको भी अशुभपने का प्रसंग आयेगा।

प्र.-1695 केवलियों के शुभ अशुभ और शुद्ध रूप परिणमन मानने में क्या दोष है?

उत्तर- कोई दोष नहीं हैं। जैसे स्वच्छ दर्पण में सामने आये हुए पदार्थों का जो प्रतिबिंब पड़ता है वह परिणमन दर्पण का ही है, पदार्थों का नहीं। यदि दर्पण का ऐसा परिणमन नहीं हो तो दर्पण में प्रतिबिंब नहीं पड़ सकता ऐसे ही ज्ञेय ज्ञायक संबंध की अपेक्षा केवलियों का उत्पाद व्यय रूप में परिणमन होता ही है तभी तो केवली भगवंतों ने शुभ, अशुभ और शुद्ध रूप में द्रव्यों का प्रतिपादन किया है।

प्र.-1696 क्या द्रव्यों में अशुद्धपना केवल परद्रव्यों के माध्यम से ही आता है?

उत्तर- सर्वथा ऐसा नियम नहीं है किंतु एक ही द्रव्य में द्रव्य गुण पर्यायों के भेद से भी अशुद्ध पना आता है।

प्र.-1697 इन्हीं द्रव्यों में मन लगाने को अशुभ क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं, ये सभी द्रव्य द्रव्यदृष्टि से शुद्ध हैं इनमें उपयोग लगाने वाला किन विचारों से परिणमन कर रहा है उसीके अनुसार ही शुभ और अशुभपना आता है। यदि मन स्वच्छ है तो शुभ और विषयकषायों से सहित है तो अशुभ कहा जाता है। जैसे आँखों में रंगीन या स्वच्छ चश्मा है तो वैसा ही पदार्थ दिखता है। आत्मा स्वयं ही शुभाशुभ और शुद्ध रूप में परिणमन करती है ऐसा इन द्रव्यों में निमित्त नैमित्तिक संबंध है।

प्र.-1698 यदि द्रव्य 6 ही हैं तो इस संसार में विविधता कैसे?

उत्तर- द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा द्रव्य 6 ही हैं। इसकी अपेक्षा न संसार है, न मोक्ष है किंतु निमित्त नैमित्तिक संबंधापेक्षया जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में विकार रूप में परिणमन होने के कारण संतानवत् संसार है। जिसे आ. श्री ने स.सा. 20, 220 और मो.पा. 17 में **सचित्ताचित्त मिस्सं वा** सातवाँ मिश्रद्रव्य कहा है।

प्र.-1699 अस्तिकाय किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- बहुप्रदेशी शुद्धाशुद्ध वस्तुओं को अस्तिकाय कहते हैं। **अस्तिः-** मौजूद हैं। **कायः-** शरीरवत् बहुप्रदेशी। भेद 5 हैं। **नामः-** जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय।

प्र.-1700 इन अस्तिकायों में मन लगाने को शुभ या अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- इन अस्तिकायों में विषयकषायों के, विकारों के त्याग पूर्वक मन लगाने को शुभ और विषयकषाय पूर्वक इन्हीं में मन लगाने को या परिणमन करने को अशुभ कहा है।

प्र.-1701 ये अस्तिकाय शुद्ध हैं या अशुद्ध तथा सर्वथा शुद्ध हैं तो संसार क्यों?

उत्तर- ये अस्तिकाय न सर्वथा शुद्ध हैं और न सर्वथा अशुद्ध किंतु शुद्धाशुद्ध होने से ही संसार है।

प्र.-1702 काल द्रव्य को अस्तिकाय क्यों नहीं कहा?

उत्तर- कालद्रव्य का अस्तित्व तो है पर बहुप्रदेशी नहीं है सो एकप्रदेशी काल अस्तिकाय नहीं है।

प्र.-1703 तत्त्व के सामान्यतः भेद कितने हैं?

उत्तर- **जीवोऽन्य पुद्गलश्चाऽन्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।**
यदन्यदुच्यते किंचित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।। 50।। इ.दे.

अर्थः- जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है इस प्रकार यह संक्षेप में तत्त्व का संग्रह है, इनसे भिन्न जो कुछ भी कहा गया है वह इन्हीं का विस्तार है। भेद दो हैं। **नामः-** जीवतत्त्व और पुद्गलतत्त्व।

प्र.-1704 तत्त्वार्थ किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जीव पुद्गलादि 6 द्रव्यों को अथवा द्रव्य गुण पर्याय को ही वस्तु, तत्त्वार्थ कहते हैं। कहा भी है

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुण पज्जएहिं संजुत्ता।। 9।। नि.सा.

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।2।। तत्त्व और अर्थ के संयोग से तत्त्वार्थ पद निष्पन्न हुआ है इसलिए केवल तत्त्व का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं है यदि तत्त्व के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन माना जाये

तो सत्ता द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व आदि पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जायेगा सो भी ठीक नहीं है इसी तरह केवल अर्थ पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ऐसा माना जाय तो धन प्रयोजन आदि सभी अर्थों पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जायेगा जो सर्वत्र दूषित है अतः दोनों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्त्व पद पर्याय का वाचक है और अर्थ पद द्रव्य तथा गुणों का वाचक है इसलिए एक का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन नहीं है।

प्र.-1705 जीवतत्त्वार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर- चेतना लक्षण वाले, उपयोग लक्षण वाले को, ज्ञातादृष्टा को, सुखदुःख का अनुभव करने वाले को और इंद्रिय तथा मन के माध्यम से इष्टानिष्ट विषय ग्रहण करने वाले को जीवतत्त्वार्थ कहते हैं।

प्र.-1706 अजीवतत्त्वार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसमें उपरोक्त जीवतत्त्व का लक्षण नहीं पाया जाये उसे अजीवतत्त्वार्थ कहते हैं।

प्र.-1707 इन दोनों तत्त्वर्थों के कितने कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **जीवतत्त्वार्थ के 7 भेद :-** जीव, अजीव, जीवाश्रव, जीवबंध, जीवसंवर जीवनिर्जरा, जीवमोक्ष। **अजीवतत्त्वार्थ के 6 भेद :-** अजीव तत्त्व, अजीवाश्रव, अजीवबंध, अजीवसंवर अजीवनिर्जरा, अजीवमोक्ष।

प्र.-1708 जीव में अजीव तत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर- **प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।**
ज्ञानदर्शनतः तस्मात् चेतनाचेतनात्मकः॥3॥ स्व.सं. आ. भट्टाऽकलंक

जीव में चेतना गुण के बिना शेष अनंत गुणों को जीव में अजीव तत्त्व कहते हैं क्योंकि आत्मा में ज्ञानदर्शन गुण चेतन हैं शेष प्रमेयत्वादि अनंत गुण अचेतन होने से आत्मा चेतनाचेतनात्मक है तब उनका परिणमन भी चेतनाचेतनात्मक होगा क्योंकि सभी धर्मों का तदनुरूप परिणमन करना ही अर्थक्रिया है।

प्र.-1709 जीवभावाश्रव किसे कहते हैं?

उत्तर- जीव में रागद्वेष, मोह, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग, अज्ञान, अदर्शन आहारादि संज्ञायें, 7 व्यसन, हिंसादि 5 पाप, पुण्य रूप भावात्मक नवीन संस्कारों के आने को जीवभावाश्रव कहते हैं।

प्र.-1710 जीवभावबंध किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवभावाश्रव के संस्कारों के, भावों के आत्मा में स्थिर हो जाने को, कुछ समय तक के लिए आत्मा में विषयकषायों के रुक जाने को, ठहर जाने को जीवभाव बंध कहते हैं।

प्र.-1711 जीवभाव संवर किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मा में आने वाले भावाश्रव के परिणामों के रोक देने को जीवभाव संवर कहते हैं।

प्र.-1712 जीवभाव संवर किन परिणामों से होता है?

उत्तर- रत्नत्रय, 13 चारित्र, क्षमादिधर्म, अनुप्रेक्षाओं से उपसर्गादि को जीतने से जीवभाव संवर होता है।

प्र.-1713 जीवभाव निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मा में स्थित भूतकालीन भावसंस्कारों के निकाल देने को जीवभाव निर्जरा कहते हैं।

प्र.-1714 जीवभाव निर्जरा किन परिणामों से होती है?

उत्तर- भावसंवर के परिणामों से पूर्वबद्ध भावसंस्कारों के नष्ट करने से निर्जरा होती है।

प्र.-1715 जीवभाव मोक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर- परमोत्कृष्ट रत्नत्रय से शुक्लध्यान से भावविकारों के समूल क्षय कर देने को जीवभाव मोक्ष कहते हैं।

प्र.-1716 अजीवतत्त्व के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अजीव तत्त्व के 5 भेद हैं। नामः- अजीवाश्रव, अजीवबंध, अजीवसंवर, अजीवनिर्जरा और अजीवमोक्ष।

प्र.-1717 अजीवाश्रव किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादिक 148, संख्यातासंख्यात अनंत पुद्गल कर्मपिंड के आने को अजीवाश्रव कहते हैं।

प्र.-1718 अजीवबंध किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादिक समस्त कर्म संबंधी पुद्गलपिंड के एकमेक होकर ठहरने को अजीवबंध कहते हैं।

प्र.-1719 अजीवसंवर किसे कहते हैं?

उत्तर- आते हुए ज्ञानावरणादिक पुद्गल कर्मपिंड के रोक देने को अजीवसंवर कहते हैं।

प्र.-1720 अजीवनिर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्वबद्ध ज्ञानावरणादिक पुद्गल कर्मपिंड के झड़ा देने को अजीव निर्जरा कहते हैं।

प्र.-1721 अजीवमोक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मा से समस्त पुद्गल कर्मपिंड के अलग हो जाने को, क्षय हो जाने को अजीवमोक्ष कहते हैं।

प्र.-1722 इन तत्त्वों का जीव और अजीव के भेद से ऐसा विभाग क्यों किया?

उत्तर- जैसे अपन और अपने फोटू में जीव अजीवपने के विभागवत् तत्त्वों में जीवाजीवपने का विभाग है। सादृश सामान्य की अपेक्षा अपन और अपने फोटू में एकरूपता है किंतु अपन चेतन तथा फोटू अचेतन है क्योंकि अपने को जैसा सर्दी गर्मी का, भूंख प्यास मान अपमान आदि का वेदन होता है, अनुभव होता है ऐसा फोटू को वेदन नहीं होता है अतः फोटू अचेतन है। इसी तरह तत्त्व रूप से आत्मा का परिणाम चेतन है और पुद्गल का परिणमन अचेतन है अतः विवक्षानुसार तत्त्वों में चेतन अचेतनपने का विभाग किया है।

प्र.-1723 यदि अपनी आत्मा शुद्ध है तो शुद्ध की प्राप्ति के लिए क्यों ध्यान करना?

उत्तर- **यद्यात्मा सर्वथा शुद्धो ध्यानाभ्यासेन किं तदा।**
शुद्धे प्रवर्तते कोऽपि शोधनाय न काञ्चने।।54।। ध.प. अ.17

जैसे कन्या विवाह के योग्य है, पुरुषार्थ किया जाये तो विवाह हो सकता है अन्यथा बिना पुरुषार्थ के जैसी की तैसी रही आयेगी इसीतरह शुद्ध रूप में परिणमन करने की आत्मा में योग्यता है यदि पुरुषार्थ करे तो शुद्ध हो सकती है अन्यथा अभव्य जीवों की तरह भवांतरों से जैसी चली आ रही है वैसी ही चलती चली जायेगी अतः शुद्ध रूप में परिणमन कराने के लिए शुद्धात्मा का ध्यान करने को कहा है।

प्र.-1724 जैसे ईंधन के जल जाने पर अग्नि स्वयं समाप्त हो जाती है ऐसे ही समस्त कर्मों के क्षय हो जाने पर क्या ध्यान भी समाप्त हो जाता है?

उत्तर- ईंधन के समाप्त होने पर भी वहीं पर अव्यक्त रूप से अग्नि मौजूद रहती है यदि विश्वास नहीं है तो वहीं ईंधन को परस्पर में घर्षण कर देख लो अग्नि पैदा न हो तब कहना। इसी तरह

कर्मेंधन जल जाने के बाद में शुद्धात्म ध्यान मौजूद है क्योंकि चारित्रगुण की ध्यान पर्याय का समूल विनाश नहीं होता है।

प्र.-1725 ध्यान पर्याय का समूल विनाश होता है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, ध्यान पर्याय का समूल विनाश मानने पर चारित्र गुण रूपी पर्यायी के विनाश का भी प्रसंग आता है यही आपत्ति है क्योंकि स्वभाव के बिना स्वभाववान् नहीं रहता है ऐसा सर्वमान्य नियम है कारण सभी द्रव्य और गुणों का अर्थक्रिया रूप में परिणमन करना आत्मभूत लक्षण है। आत्मभूत स्वभाव का विनाश होने पर स्वभाववान् आत्मा का विनाश होना अवश्यंभावी है।

प्र.-1726 यह ध्यान किस गुण की पर्याय है और कौन सा भाव है?

उत्तर- ध्यान चारित्रगुण की पर्याय है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान औदयिक भाव और धर्मध्यान क्षायोपशमिकभाव है। शुक्लध्यान औपशमिकभाव और क्षायिकभाव रूप है। निर्निमित्तिक चारित्रगुण पारिणामिक भाव है।

प्र.-1727 शुक्लध्यान दो भाव रूप में कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- 10वें के अंत में चारित्रमोह के पूर्ण उपशम से 11वें गुणस्थान में औपशमिकभाव तथा मोहनीय कर्म के पूर्ण क्षय से 12वें आदि तीन गुणस्थानों में क्षायिकभाव रूप शुक्लध्यान उत्पन्न होता है।

प्र.-1728 मोह का क्षय 10वें के अंत में तो क्षायिकभाव 12वें के प्रथम समय में क्यों?

उत्तर- व्ययधर्मापिक्षया 10वें गुणस्थान के अंत में मोह के समूल क्षय से और उत्पादधर्म की अपेक्षा 12वें गुणस्थान के प्रथम समय में क्षायिकभाव रूप शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। प्रागभाव होने से आगामी अंतिमक्षण की पर्याय वर्तमान में नहीं हो सकती। अंतिम समयवर्ती कार्यों को छोड़कर शेष कार्य उदीरणा के द्वारा पहले भी हो सकते हैं, अंतिम समयवर्ती कार्य उदय और उदीरणा के अंतिम समय में ही होता है।

प्र.-1729 उत्पाद और व्यय क्या एक ही समय में होते हैं?

उत्तर- हाँ, उत्पाद और व्यय ये दोनों एक ही समय में होते हैं भिन्न भिन्न समय में नहीं।

प्र.-1730 कारण के अनुरूप ही कार्य के होने का सर्वथा नियम है क्या?

उत्तर- नहीं, अंतिम समयवर्ती कार्य को छोड़कर शेष समयवर्ती कार्य उपादान कारणानुसार ही होते हैं किंतु अंतिम समयवर्ती कार्य कथंचित् कारणानुरूप और भिन्न रूप भी हुआ करते हैं यदि ऐसा न माना जाय तो परस्थान संक्रमण नहीं बन सकता है और न संसार से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि सर्वथा कारणानुसार ही कार्य का नियम होने से संसार से संसार ही प्राप्त होगा, मोक्ष नहीं।

प्र.-1731 कौन सा शुक्लध्यान किस भाव रूप है?

उत्तर- आदि के दो शुक्लध्यान 11वें में औपशमिकभाव तथा 12वें गुणस्थान में क्षायिकभाव रूप हैं।

प्र.-1732 शुक्लध्यान को दो भाव रूप में क्यों कहा?

उत्तर- उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी में मोह की दो अवस्थायें होने के कारण औपशमिक और क्षायिकभाव उत्पन्न होते हैं अतः पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क शुक्लध्यान को दो भाव रूप में कहा है।

प्र.-1733 आदि के 3 ध्यानों को औदयिक, मिश्रभाव कहने से क्या तीनों समान हैं?

उत्तर- इन तीनों ध्यानों में से आदि के दो ध्यान विषयकषाय सहित होने से अशुभ हैं। मोक्षमार्ग में सहायक और मोक्षमार्गियों के ही होने से धर्मध्यान विषयकषायों के त्याग रूप में शुभ, शुभतर

एवं शुभतम है।

प्र.-1734 आदि के दो आर्त रौद्रध्यान सामान्यतया किन जीवों के होते हैं?

उत्तर- आदि के दो आर्त रौद्रध्यान संसारमार्गी और प्रमादी मोक्षमार्गी जीवों के भी होते हैं।

प्र.-1735 करणलब्धि के परिणाम क्या धर्मध्यान रूप होते हैं?

उत्तर- करणलब्धि के परिणामों को धर्मध्यान मानने पर मिथ्यादृष्टि आदि 3 गुणस्थान वाले के भी धर्मध्यान के मानने का प्रसंग आयेगा जबकि धर्मध्यान एकमात्र मोक्षमार्गियों के ही होता है अतः करणलब्धि के परिणाम अत्यंत मंद कषायों के साथ में होने से अत्यंत मंद रूप में आर्तध्यान और रौद्रध्यान रूप में माने हैं क्योंकि करणलब्धि मिथ्यादृष्टियों के ही होती है।

प्र.-1736 शुक्लध्यान को पारिणामिकभाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- पारिणामिकभाव द्रव्य और गुणरूप में होने से पर्याय रहित है क्योंकि पारिणामिकभाव अपरिणामी है और शुक्लध्यान पर्याय रूप है, उत्पाद व्यय लक्षणवाला है अतः पारिणामिक भाव नहीं कहा।

प्र.-1737 शुक्लध्यान को औदयिकभाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- शुक्लध्यान को औदयिकभाव मानने से कर्मों का क्षय नहीं हो सकता तथा मोहनीय कर्म का उदय 10वें गुणस्थान तक ही है और शुक्लध्यान 11वें गुणस्थान से प्रारंभ होता है अथवा किस कर्म प्रकृति के उदय से शुक्लध्यान होता है यह आप ही बतायें? यदि घातिकर्मोदय से शुक्लध्यान माना जाय तो 12वें गुणस्थान तक ही बन सकता है आगे नहीं क्योंकि घातियाकर्मों का उदय 12वें गुणस्थान तक ही माना है और अघातिकर्मोदय से माना जाये तो सिद्धों में शुक्लध्यान न होने से ध्यान का अभाव मानने पर चारित्रगुण का भी अभाव मानना पड़ेगा अतः शुक्लध्यान औदयिक भाव नहीं है ऐसा कहा है।

प्र.-1738 इन तत्त्वों में मन लगाने को शुभभाव क्यों कहा?

उत्तर- प्राणियों की बुद्धि जहाँ होती है वहीं पर श्रद्धा होती है और जहाँ श्रद्धा होती है वहीं पर मन स्थिर हो जाता है इस नियम के अनुसार इन तत्त्वों में विश्वास, ज्ञान होने से इनमें ही मन स्थिर हो जाता है अतः ये तत्त्व हितकारक होने से मन भी हितकारी होता है सो इन तत्त्वों में मन स्थिर होने को शुभभाव कहा है।

प्र.-1739 पदार्थ किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- पद- द्रव्य गुण। अर्थ- पर्याय। द्रव्य गुण पर्याय को, उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले को, गुण पर्याय वाले को पदार्थ कहते हैं। भेद- 9 हैं। **नामः-** जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप।

प्र.-1740 पुण्य से किसकी प्राप्ति होती है?

उत्तर- आत्मा पवित्र होती है, मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में सहायक होता है, सुख में सहायभूत भोगोपभोग सामग्री की, स्वर्ग की, भोगभूमि की प्राप्ति होती हैं।

प्र.-1741 मोक्ष के या कर्मक्षय के निमित्त पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर- जिससे मोक्ष प्राप्ति में सहायभूत अनन्य सामग्री की प्राप्ति हो उसे मोक्ष के निमित्त पुण्य कहते हैं। जैसे उत्तम द्रव्य- वज्रवृषभनाराच संहनन। क्षेत्रः- कर्मभूमि, आर्यखंड। काल- चौथे काल की प्राप्ति होना। भाव- परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना केवलज्ञान और परमोत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति होना।

प्र.-1742 भोग के निमित्त पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर- इंद्रिय भोगों के निमित्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति को भोग के निमित्त पुण्य कहते हैं अतः इंद्रिय सुख का साधन होने से केवल इसे लोकदृष्टि से पुण्य कहा है, यथार्थ में नहीं।

प्र.-1743 लौकिक व लोकोत्तर पुण्य कार्य कौन कौन हैं?

उत्तर- व्यक्ताव्यक्त ख्यातिपूजालाभ की भावना पूर्वक परोपकार व गरीबों के विवाहादि कराना, इनके जीवनयापन की व्यवस्था, अभयदान, भोजनपानादि की व्यवस्था करना लौकिक पुण्य तथा सम्यक्त्वाचरण चारित्र, संयमाचरण के कार्य, मूलगुण, उत्तरगुण, षडावश्यकों को पालना लोकोत्तर पुण्य के कार्य हैं।

प्र.-1744 पाप के परिणाम और इनका फल क्या है?

उत्तर- हिंसादि कार्य करना, जुआ खेलनादि व्यसनों का सेवन, आहारादि संज्ञाओं का, मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य का सेवन करना आदि पाप के परिणाम हैं। मोक्षमार्ग में, सुखसामग्री की प्राप्ति में बाधक होना, सुखी नहीं होने देना, नरकादि दुर्गतियों में ले जाना, स्व पर उभय पीड़ाकारक कष्ट मिलना आदि फल हैं।

प्र.-1745 पापोदय से क्या क्या फल नहीं मिलता है?

उत्तर- मोहनीय कर्मरूपी पापोदय से यथाख्यात चारित्र, तीन घातियाकर्म रूपी पापोदय से अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतदानादि 5 तथा अघातिया कर्मरूपी पुण्य पापोदय से मोक्ष नहीं मिलता है।

प्र.-1746 पापोदय से क्या क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- पापोदय से चतुर्गति के मानसिक, शारीरिक, वाचनिक, कालजन्य, आगंतुकादि दुःख होते हैं।

प्र.-1747 दूध, दही, घी के सेवन करने को पाप क्यों कहा?

उत्तर- जैसे विधिवत् छाने हुए पानी में अंतर्मुहूर्त के बाद पुनः त्रसजीव पैदा हो जाते हैं वैसे ही गाय भैंसादि से दोहने के अंतर्मुहूर्त बाद दूध में संख्यातासंख्यात त्रस जीव पैदा हो जाते हैं सो ऐसे दूध को उबालकर पीने से वे जीव मर जाते हैं अतः इतने जीवों की हिंसा व हिंसा का साधन होने से इनके सेवन को पाप कहा है ऐसे ही इन अमर्यादित दूधादि से बनाई सामग्री के सेवन से जीवहिंसा पाप भी समझना चाहिये।

प्र.-1748 तो क्या सभी दूध, दही, घी के सेवन करने को पाप कहा है?

उत्तर- नहीं, दूध दही, घी, मट्ठादि मर्यादा के बाहर होने से इनके सेवन को पाप कहा किंतु जो मर्यादित हैं उनके सेवन करने और कराने में दोष नहीं क्योंकि इनका सेवन पुण्यात्मा ही करते हैं।

प्र.-1749 ऐलोपैथिक, होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक दवाइयों के सेवन को पाप क्यों कहा?

उत्तर- क्योंकि इन दवाइयों में मद्य मांस मधु अल्कोहॉल, तिर्यंचों की आठ जाति का मूत्र, दूध, मक्खन आदि का प्रयोग होने से इनके सेवन करने पर इन जीवों की विराधना होने के कारण इन्हें पाप कहा है।

प्र.-1750 इन औषधियों में किन किनका दूध और मूत्र मिलाया जाता है?

उत्तर- गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ी, गधी, उंटनी, हथनी आदि का दूध और मूत्र मिलाया जाता है।

प्र.-1751 इन जीवादि 9 पदार्थों में मन लगाने को शुभ क्यों कहा?

उत्तर- इन जीवादि 9 पदार्थों में यथावत् लक्षणानुसार हेय को हेय, ज्ञेय को ज्ञेय और उपादेय को उपादेय रूप में मन लगाकर उपयोग में लाने से मंगलकारी मोक्ष की प्राप्ति होती है इस कारण इन्हें शुभ कहा है।

प्र.-1752 तो क्या पाप पदार्थ में भी मन लगाने को शुभ कहा है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही कहा है। पाप और पाप के फल को हेय जानकर त्याग करने के लिए मन लगाने को शुभ कहा है क्योंकि इस प्रकार का चिंतन किये बिना उपयोग में निर्मलता नहीं आ सकती इसलिए पाप पदार्थ में मन लगाने को शुभ कहा है और यही चिंतन मोह क्षय के बाद शुद्ध, शुक्लध्यान कहा जाता है।

प्र.-1753 आश्रव बंध संसार के कारण हैं फिर इन्हें शुभ क्यों कहा?

उत्तर- सभी आश्रवबंध को शुभ नहीं कहा है किंतु जो आश्रवबंध मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में सहायक है उस आश्रवबंध को शुभ कहा है क्योंकि शास्त्रों में शुभाश्रवबंध, अशुभाश्रवबंध का भी कथन किया है।

प्र.-1754 अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- संसार शरीर भोगों के स्वभाव का पुनः² यथानुरूप चिंतन को अनुप्रेक्षा कहते हैं। 12 भेद हैं। **नामः-** अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, बोधिदुर्लभ, लोक और धर्मभावना।

प्र.-1755 अनित्यभावना किसे कहते हैं और इसके चिंतन से क्या उत्पन्न नहीं होता है?

उत्तर- परिवार, धन संपत्ति, शरीर, भोगोपभोग सामग्री, सगेसंबंधी आदि नाशवान हैं। हाथी के कान के, बिजली की चमक के, अंजुली के पानी के समान क्षणभर रहकर नष्ट हो जाते हैं ऐसा सतत चिंतन करने से संसार शरीर भोगों के प्रति मन में रागद्वेषादि विकार उत्पन्न नहीं होता है, यही अनित्य भावना है।

प्र.-1756 संसार में दृश्य पदार्थों को हाथी के कान की उपमा क्यों दी?

उत्तर- जैसे हाथी का कान स्थिर न रहकर कंपायमान, चलायमान होता रहता है ऐसे ही संसार में भोगोपभोग पदार्थ सतत चलायमान होते रहते हैं, स्थिर नहीं रहते सो हाथी के कान की उपमा दी।

प्र.-1757 संसार में इन दृश्य पदार्थों को बिजली की चमक के समान क्यों कहा?

उत्तर- जैसे बारिश के समय आकाश में मेघों के परस्पर में टकराने से उत्पन्न होती हुई बिजली क्षणभर में नष्ट हो जाती है वैसे ही यह दृश्य सामग्री भी पुण्य पर्यंत स्थिर रहकर नष्ट हो जाती है। पुण्य के रहते सुख में सहायक होती है तो पापोदय होने पर या पुण्य के क्षीण होने पर यही सुखकर सामग्री दुःख रूप में परिणत हो जाती है, दुःखदायी बन जाती है इसलिए दृश्य पदार्थों को बिजली की चमक के समान कहा है।

प्र.-1758 भरयौवन को अंजुली के पानी के समान क्यों कहा है?

उत्तर- जैसे अंजुली में भरा हुआ पानी बूँद बूँद कर धीरे धीरे नष्ट हो जाता है ऐसे ही उल्टी, दस्त या बीमारी से हृष्टपुष्ट शरीर भी देखते² क्षीण हो जाता है, देखने, आलिंगन करने योग्य नहीं रह जाता इसलिए अंजुली के पानी के समान यौवन को कहा है। यद्यपि आयु की अपेक्षा भरपूर यौवन है पर कमजोरी की अपेक्षा अधमरे वृद्ध पुरुष के समान हो जाता है इसलिए इस जवानी को अंजुली के पानी के समान उपमा दी है।

प्र.-1759 अनित्य भावना के चिंतन का क्या फल है?

उत्तर- तीर्थंकर बनने वाले महापुरुषों ने मोहविकार को नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम संसार के दृश्य पदार्थों का अनित्य रूप में चिंतन किया। जो वस्तु शाश्वत रहने वाली नहीं है ऐसी वस्तुओं को शाश्वत या स्थायी मानकर प्यार करना दुःख का ही उत्पादक है अतः कष्ट से बचना अनित्य भावना के चिंतन का फल है।

प्र.-1760 अशरण भावना किसे कहते हैं और इसके चिंतन का क्या फल है?

उत्तर- संसार में कोई किसीका शरण नहीं है, न हम किसीके शरण हैं और न कोई हमारा शरण है। संसार में सभी प्राणिवर्ग अपने आपमें कमजोर बन दूसरों को समर्थ समझकर उससे सहायता, सुरक्षा चाहते हैं क्योंकि मृत्यु के सन्मुख व्यक्ति मृत्यु से दूसरों को नहीं बचा सकता। जन्म लेने वाला अवश्य ही मरता है। इस प्रकार चिंतन करने से स्वयं में वैराग्य या वीररस उत्पन्न होता है तथा धर्म धर्मायतन एवं आत्मा ही शरण है इसप्रकार उत्कृष्ट भावना उपन्न होने से पराश्रितपना समाप्त हो जाता है।

प्र.-1761 यदि सभी अशरण हैं तो 'चत्तारिसरणंपव्वज्जामि' ऐसा क्यों पढ़ते हैं?

उत्तर- यहाँ धर्मायतनों को शरण कहा है सो ये भी मृत्यु से नहीं बचा सकते हैं किंतु मृत्यु के समय होने वाले कष्टों से बचने का, कर्मठ बनने का उपाय बताते हैं, संबोधन करते हैं जिससे उपयोग तत्त्वचिंतन में स्थिर होने से कष्टों का ज्ञान, अनुभव ही नहीं होता है तथा उस समय वे प्रबल कर्म बिना फल दिये संक्रमण आदि के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। उदीरणा क्षय से होने वाली मृत्यु से बचने का उपाय बताते हैं जिससे अशुभ दुर्मरण नहीं हो पाता। इस प्रकार मोक्षमार्ग में आत्मसाधना में उपकारी मानकर ऐसा पाठ पढ़ते हैं।

प्र.-1762 संक्रमण किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर-

उव्वेलण विज्झादो अधापवत्तो गुणो य सव्वो य।
संकमदि जेहिं कम्मं परिणाम वसेण जीवाणं।।409। क.कां.

अर्थः- संसारियों के जिन परिणामों से शुभाशुभकर्म अपनी सजातीय अन्य प्रकृतियों में परिणमन करें उन्हें संक्रमण कहते हैं। नामः- उद्वेलना, विध्यातसंक्रमण, अधःप्रवृत्त, गुणसंक्रमण और सर्वसंक्रमण ये 5 भेद हैं।

प्र.-1763 उद्वेलना संक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर- करण परिणामों के बिना रस्सी को उकेलने के समान कर्मप्रदेशों का परप्रकृति रूप में बदल जाने को उद्वेलना संक्रमण कहते हैं।

प्र.-1764 विध्यात संक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर- मंदविशुद्धि वाले की स्थितिअनुभागबंध के घटाने रूप भूतकालीन स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात तथा गुणश्रेणीनिर्जरादि परिणामों में प्रवृत्ति होने को विध्यातसंक्रमण कहते हैं।

प्र.-1765 अधःप्रवृत्त संक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर- बंध प्रकृतियों का अपने बंध के संभव विषय में प्रदेशों के बदलने को अधःप्रवृत्त संक्रमण कहते हैं।

प्र.-1766 गुणसंक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रत्येक समय में असंख्यात गुणश्रेणी रूप से कर्मप्रदेशों के बदलने को गुणसंक्रमण कहते हैं।

प्र.-1767 सर्वसंक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर- सभी प्रदेशों के अपनी सजातीय प्रकृतियों में बदल जाने को सर्वसंक्रमण कहते हैं।

प्र.-1768 क्या ये संक्रमण सभी प्रकृतियों में होते हैं?

उत्तर- ये सभी संक्रमण मूल प्रकृतियों में नहीं होते हैं किंतु उत्तर प्रकृतियों में होते हैं।

प्र.-1769 तो क्या सभी उत्तर प्रकृतियों में संक्रमण होते हैं?

उत्तर- नहीं, सभी उत्तरप्रकृतियों में संक्रमण नहीं होते किंतु जिनमें संभव है उनमें ही होते हैं। जैसे दर्शनमोह और चारित्रमोह का तथा चारों आयुओं का भी परस्पर में संक्रमण नहीं होता है।

प्र.-1770 जब पंचपरमेष्ठी कर्मों को बदल नहीं सकते हैं तो इनकी शरण में क्यों जाना?

उत्तर- ये परमेष्ठी हमारे कर्मों को बदल नहीं सकते हैं पर कर्मों को बदलने का उपाय बताकर सहायक होते हैं। यदि बरगदादि विशाल वृक्षों से छाया नहीं मिल सकती है तो क्या खजूर के पेड़ों से छाया मिलेगी? नहीं, ऐसे ही यदि धर्मायतन रक्षा नहीं कर सकते हैं तो क्या पापायतन स्वरूप बैंक, राजनेतागण, पुलिस, संगठन, धनवान आदि रक्षा कर सकते हैं? कष्ट आने पर, जरूरत पड़ने पर इनकी सहायता क्यों लेते हो, शरण में क्यों जाते हो? यदि त्रिलोकीनाथ रक्षा नहीं कर सकते हैं तो गाय के खुर के समान ये मानव क्या रक्षा कर सकते हैं? धर्म और धर्मायतन को शरण न मानकर लौकिक वस्तुओं को, व्यक्तिओं को शरण मानकर शरण में जाना, आकांक्षा करना क्या आत्मवंचना नहीं है? मोक्ष प्राप्ति के लिए अभ्यास दशा में, प्रारंभ दशा में धर्मायतनों को शरण मानना ही चाहिए। लोकयात्रा में इंद्रियजन्य सुखदुःख में लौकिक प्राणी शरण हो जाते हैं किंतु आध्यात्मिक सुखदुःख में सहायक न होने से इनको अशरण कहा है।

प्र.-1771 तो फिर अशरण भावना का चिंतन करना व्यर्थ क्यों नहीं है?

उत्तर- इस अशरण भावना का चिंतन करना व्यर्थ नहीं है, सार्थक ही है। सामान्य संसारी भोगी असंयमी स्वार्थी प्राणी किसीके भी शरण नहीं है क्योंकि ये विषयकषायों के आधीन, दुर्ध्यानों के वशीभूत होने के कारण इनके शरण का निषेध किया है। क्या जन्मांध व्यक्ति रास्ता बतला सकता है? नहीं।

प्र.-1772 संसार भावना किसे कहते हैं और इसका चिंतन क्यों करना चाहिये?

उत्तर- चतुर्गति रूप संसार में हम और सभी अनंतानंत जीव पंचपरावर्तन करते हुए अनेक दुःख भोग रहे हैं। इसमें किंचित् मात्र भी सुख नहीं है और जो सुख अनुभव में आ रहा है वह वास्तव में सुखाभास है तथा सर्व प्रकार से असार है ऐसा चिंतन करने को संसार भावना कहते हैं अतः कष्टों से बचने के लिए और वैराग्य की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि तथा फल प्राप्ति के लिए संसार भावना का चिंतन करना चाहिये।

प्र.-1773 संसार कबसे है, कबतक रहेगा और कैसा है?

उत्तर- संसार अनादि से है और अनंतकाल तक रहेगा तथा मिश्र द्रव्य स्वरूप है।

प्र.-1774 एकत्व भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- इस परिवर्तनशील संसार में अकेला ही जीव अपने शुभाशुभ कर्मों का फल भोगता है। अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों के फल को देश, समाज, परिवार, सगेसंबंधी, रिश्तेदार, नातेदार, सैनिक, राजा प्रजा कोई भी बांट नहीं सकते हैं। जैसे राजा आदिनाथ ने प्रजा के मोह से मूक प्राणियों को भोजन न करने देने से इतना प्रबल भोजनांतरायकर्म का बंध हुआ कि मुनिदीक्षा लेते समय स्वेच्छा से 6 महिने का उपवास का नियम लिया तदनंतर 7 महिने 8 दिन तक सर्वत्र आहारार्थ भ्रमण करते रहे, आहार पानी देने वाला कोई नहीं मिला क्योंकि मूक प्राणियों को भोजन न करने देने से स्वयं को प्राप्त नहीं हुआ।

प्र.-1775 एकत्व भावना का चिंतन क्यों करना और इसका फल क्या है?

उत्तर- मोक्ष और मोक्षमार्ग के निमित्त स्वयं में दृढ़ता लाने के लिए, कायरता परावलंबनता को दूर करने के लिए एकत्वभावना का चिंतन करना चाहिए। विकार नहीं होना, कर्मबंधन से छूटना ही इसका फल है।

प्र.-1776 अंतराय कर्म का आश्रवबंध कैसे होता है?

उत्तर- दूसरे प्राणियों के दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य में बाधा, रुकावट डालने से अंतराय कर्म का आश्रव बंध होता है। इससे अनेक प्रयत्न करने पर भी स्वयं को ये वस्तुयें प्राप्त नहीं हो पाती हैं।

प्र.-1777 अन्यत्व भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- संसार में सभी प्राणी एवं वस्तुयें अपनी[2] निज सत्तापेक्षया पृथक्[2] हैं। जैसे दूधपानी और दूध शक्कर यद्यपि एकक्षेत्रावगाही संबंध की अपेक्षा एक हैं तो भी लक्षण भेद से भिन्न[2] हैं ऐसे ही शरीर और आत्मा एक होने पर भी लक्षणों के द्वारा पृथक्[2] हैं ऐसे चिंतन को अन्यत्व भावना/ पृथक्त्व भावना कहते हैं।

प्र.-1778 अन्यत्व भावना का चिंतन क्यों करना और फल क्या है?

उत्तर- शरीरादि भिन्न पदार्थों में रागद्वेषमोह के निराकरणार्थ इसका चिंतन करना चाहिये जैसे पड़ोसी के कुछ घटनाओं के घटने पर अपनत्व न होने से विकार नहीं होता वैसे ही शरीरादि में शुभाशुभ घटनाओं के घटने पर भी मन में विकार पैदा नहीं होता है यही अन्यत्व भावना के चिंतन का फल है।

प्र.-1779 अशुचि भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- यह शरीर सप्तमल धातुउपधातुओं से उत्पन्न हुआ है, भरा हुआ है, पुष्ट हुआ है, इन्हीं को निकालता है अतः सर्वतः अपवित्र है और लोकप्रसिद्ध पवित्र पदार्थ भी इसके संसर्ग से अपवित्र हो जाते हैं जो देखने, सूंघने, छूने, सुनने और भोजनपान के योग्य नहीं रह पाते आदि विचारों को अशुचि भावना कहते हैं।

प्र.-1780 अशुचि भावना का चिंतन क्यों करना और इसका फल क्या है?

उत्तर- जिस प्रकार स्वयं के मलमूत्र में या शरीर से बाहर निकले हुए पसीना, खून, पीव आदि में ग्लानि हो जाती है ऐसे ही शरीर संबंधी अशुचिता का विचार करने पर प्रीति नष्ट हो जाती है अतः इस भावना का चिंतन करना चाहिये। शरीर के प्रति ममत्व न होकर, वैराग्य होना ही अशुचिभावना के चिंतन का फल है।

प्र.-1781 मनुष्यों का शरीर इतना अपवित्र क्यों है?

उत्तर- मनुष्यों के शरीर का बीज रजोवीर्य है जो स्वभाव से मलिन है, मलिनता के कारण बाहर आता है, निकलते समय मन मलिन हो जाता है, रजोवीर्य अनेक जीवों का पिंड है, इनमें प्रतिसमय संख्यातासंख्यात जीवों का जनममरण होने से हिंसापाप होता है तभी तो त्यागी व्रतियों की अशुद्धि के बाद शुद्धि होने पर प्रायश्चित्त लिया दिया जाता है क्योंकि शारीरिक अशुद्धावस्था में गुरु के पास कैसे जायेंगे? अन्यथा पाप, घृणा, हिंसा न होने से प्रायश्चित क्यों दिया जाता इसका कारण यह है कि शरीर प्रारंभ से अंत तक कार्यकारण, कारणकार्य भाव से ही घृणा का स्थान होने से शरीर अपवित्र है।

प्र.-1782 तो क्या सभी मनुष्यों का शरीर अपवित्र है?

उत्तर- नहीं, कर्मभूमिज सामान्य मनुष्यों के समान तीर्थंकरप्रकृति वालों का, शलाकापुरुषों का, पुण्यपुरुषों का भोगभूमियों का शरीर अपवित्र नहीं है फिर भी तज्जाति की अपेक्षा अपवित्र ही है तभी तो इन महापुरुषों ने वैराग्य होने पर अशुचिभावना का चिंतन किया। यदि इनका शरीर सर्वथा सर्वदा पवित्र होता तो ये अशुचिभावना का चिंतन न कर केवल 11 भावनाओं का चिंतन करते, पर नहीं किया अतः संहनन और स्थिर अस्थिर नामकर्मोदय से युक्त मनुष्यों का औदारिकशरीर अपवित्र ही है।

प्र.-1783 तो क्या सभी तिर्यंचों का औदारिकशरीर अपवित्र है?

उत्तर- नहीं, सभी तिर्यंचों का औदारिकशरीर अपवित्र नहीं है यद्यपि एकेंद्रिय जीवों का औदारिक शरीर है तो भी इनके शरीर में सप्तमल धातुएं न पाईं जातीं हैं, ना ही इन धातु उपधातुओं से इनके शरीर की रचना होती है तो ये अपवित्र कैसे हो सकते हैं? यदि अपवित्र होते तो धर्मात्मागण इनका उपभोग कैसे करते?

प्र.-1784 तो क्या मोक्षमार्गी धर्मात्मा अपवित्र शरीर का उपभोग कर सकते हैं?

उत्तर- हाँ, मोक्षमार्गी भी दांपत्य जीवन में अपवित्र शरीर का आलिंगन, चुंबन आदि रूप में उपभोग तो कर ही लेते हैं क्योंकि उपभोग पाँचों इंद्रियों का विषय कहलाता है किंतु अपवित्र शरीरपिंड का भोजन नहीं कर सकते हैं कारण अपवित्र शरीरपिंड का भोजन करने वाले मलेच्छ कहलाते हैं, आर्य नहीं।

प्र.-1785 देव, नारकी और तिर्यंचों का शरीर अपवित्र नहीं है क्या?

उत्तर- तिर्यंचों का शरीर तो मनुष्यों के शरीर के समान ही घृणित है किंतु देव और नारकियों का शरीर स्वभाव से पवित्र होने पर भी विक्रिया से दूसरों में घृणा पैदा करने के लिए ऐसा रूप बना लेते हैं। जैसे राजा उद्दायन की परीक्षा करने के लिए देव ने मुनि रूप धारण कर घृणित शरीर के रूप में विक्रिया की थी।

प्र.-1786 आश्रव किसे कहते हैं?

उत्तर- मन वचन काय से आत्मप्रदेशों में कंपन होने को योग कहते हैं और योग ही आश्रव है।

प्र.-1787 आश्रव के भेद और नाम कौन कौन हैं तथा फल क्या है?

उत्तर- 2 भेद हैं। 1. योगों से ईर्यापथाश्रव 2. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायों से सांपरायिकाश्रव होता है। ईर्यापथाश्रव का फल संसार में रोकना है तो सांपरायिकाश्रव का फल भवभ्रमण कराना है।

प्र.-1788 आश्रवभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- शुभभावना से पुण्यकर्म और अशुभ से पापकर्मों का आश्रव होता है। पुण्य से सुख और पाप से दुःख होता है। जैसे मकान में झरोखों से अनुकूल प्रतिकूल धूल, हवापानी आदि आते हैं ऐसे ही योगों से आत्मा में पुण्य पापकर्म आते हैं। नाव में भरे हुए पानी के समान सांपरायिकाश्रव से युक्त आत्मा संसार में डूबने वाली है, महान दुःखदायी है आदि विचारों को आश्रवभावना कहते हैं।

प्र.-1789 आश्रव किन परिणामों से और कैसे होता है तथा स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- मिथ्यात्वादि परिणामों से आश्रव होता है। जब आत्मा निज शुद्ध पुरुषार्थ से विमुख हो विकार रूप या कर्मोदयानुसार परिणमन करता है तब आश्रव होता है। **स्वामीः-** सयोगकेवली पर्यंत हैं।

प्र.-1790 संवर और संवरभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- आते हुए कर्मों को बलात् रोक देने को योगनिरोध रूप संवर कहते हैं। पापक्रियाओं को रोकने से पाप का संवर और पुण्यक्रियाओं को रोकने से पुण्य का संवर होता है। जैसे मकान में दरवाजे आदि बंद होने से धूल, हवादि अंदर नहीं आते ऐसे ही मिथ्यात्वादि का त्याग करने से तत्संबंधी कर्मों का संवर होता है इस प्रकार के विचारों को संवर भावना कहते हैं अर्थात् संवर कार्य है और संवर भावना कारण है।

प्र.-1791 संवर किन परिणामों से और कैसे होता है तथा स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- जब आत्मा आश्रव के विरोधी परिणामों से विकारों को छोड़कर स्वकर्तव्यों से परिणमन करता है तब संवर होता है। **स्वामीः-** चौथे गुणस्थान से लेकर सयोगकेवली पर्यंत मोक्षमार्गी हैं।

प्र.-1792 कर्मों का संवर किस क्रम से होता है?

उत्तर- सर्व प्रथम धर्मोपदेश सुनकर, आज्ञाकारी हो हित का मार्ग यही है ऐसा दृढ़ निश्चय कर जिनेंद्राज्ञा को आत्मसात् कर, तद्रूप में परिणमन कर बाद में करणलब्धि के परिणामों से पापाश्रव को घटाते हुए, रोकते हुए पुण्य को बढ़ाते हुए विशुद्धि और गुणस्थानानुसार क्रमशः आगे जाकर पहले पाप का बाद में पुण्य का संवर होता है। कर्मसिद्धांतानुसार कहाँ किसका संवर होता है इसे भली प्रकार समझ सकते हैं।

प्र.-1793 पाप का संवर किन परिणामों से होता है?

उत्तर- पाप का संवर पुण्य परिणामों से होता है क्योंकि पापाश्रव के समय में शुद्धपरिणाम नहीं होते हैं। यदि कहो कि शुद्ध परिणामों से पुण्यपाप कर्मों का भी आश्रव होता है सो भी बात नहीं है या शुद्धोपयोग से पुण्यपाप कर्मों का संवर होता है ऐसा माना जाय सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानने से केवल अयोगकेवली के ही शुद्धोपयोग केवलज्ञान बनेगा इसके पहले नहीं कारण सयोगकेवली के सातावेदनीय रूप सातिशय पुण्यकर्म का आश्रव बंध होता है अतः शुद्धोपयोग भी साश्रव और निराश्रव होता है एक समय में एक ही गुण की विरुद्धाविरुद्ध जातीय दो पर्यायें व्यक्त नहीं हो सकती हैं कारण एक गुण की दो पर्यायें एक ही समय में व्यक्त हो जायें तो फिर एक गुण की अनंत पर्यायें एक ही समय में व्यक्त मानने में आपको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये तब प्रध्वंसाभाव न होने से कार्यद्रव्य अनंत हो जायेंगे फिर इससे सिद्धावस्था और द्रव्य का लक्षण उत्पाद व्यय भी नहीं बन सकता है। आ. श्री कुंदकुंदजी ने कहा है-

सुहजोगस्स पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुवजोगेण संभवदि।।63।। बा.पे.

शुभ उपयोग से अशुभोपयोग का और शुद्धोपयोग से शुभोपयोग का संवर होता है ऐसा नियम है।

प्र.-1794 पुण्य का संवर किन परिणामों से होता है?

उत्तर- पुण्य का संवर शुद्ध परिणामों से होता है। संपूर्ण घातियाकर्म पाप रूप ही हैं। पुण्यपाप का भेद अघातिया कर्मों में है। दसवें गुणस्थान तक पाप पुण्यकर्मों का आश्रव बंध और संवर भी होता है। दसवें से तेरहवें गुणस्थान तक एकमात्र साता वेदनीय रूप सातिशय पुण्यकर्म का आश्रव बंध तथा शेष कर्मों का संवर होता है। आश्रवबंध के पूर्णतः अभाव होने पर चौदहवें गुणस्थान में पुण्यपाप का पूर्ण संवर होता है।

प्र.-1795 विशेषतः संवर किन परिणामों से होता है?

उत्तर- मिथ्यात्व का सम्यक्त्व से, अविरति का व्रत से, प्रमाद का अप्रमत्त से, कषाय का अकषाय से, योग का संवर अयोग से या मूलोत्तरगुणों से, महाव्रत, समिति, गुप्तियों से, परीषहों को, उपसर्गों को जीतने से, उत्तमक्षमादि से, अनुप्रेक्षाओं से, सोलहकारण भावनाओं से, मैत्री आदि भावनाओं से संवर होता है।

प्र.-1796 संवरतत्त्व और संवरभावना की प्राप्ति की भूमिका कहाँ से प्रारंभ होती है?

उत्तर- संवरतत्त्व और संवर भावना की भूमिका मिथ्यात्व गुणस्थान में क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि के परिणामों से प्रारंभ होती है।

प्र.-1797 क्षयोपशमलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- दर्शनमोहनीय के मंदोदय तथा ज्ञानावरणीयकर्म के विशेष क्षयोपशम होने पर आत्मतत्त्व को खोज करने की, प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा को, लगाव झुकाव को क्षयोपशमलब्धि कहते हैं।

प्र.-1798 विशुद्धिलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- क्षयोपशमलब्धि से उत्पन्न हुई आत्मा में विशेष निर्मलता की प्राप्ति को विशुद्धि लब्धि कहते हैं।

प्र.-1799 देशनालब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- भावों में निर्मलता के समय आचार्योपाध्यायसाधु के द्वारा प्राप्त तत्त्वोपदेश को देशनालब्धि कहते हैं।

प्र.-1800 प्रायोग्यलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- प्राप्त उपदेश को आत्मसात् कर तद्रूप में परिणमन, परिचर्या करने को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं।

प्र.-1801 करणलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- गुरुओं की आज्ञा मानकर तद्रूप में परिणमनकर स्थिरता प्राप्त करने को करणलब्धि कहते हैं।

प्र.-1802 इस करणलब्धि का क्या फल है?

उत्तर- इस करणलब्धि के अनिवृत्तिकरण शुभ परिणामों से मिथ्यात्व कर्म के टुकड़े[2] कर, अनंत संसार को छेदकर सम्यक्त्व को प्राप्त कराना, मोक्षमार्ग प्राप्त कराना ही करणलब्धि के परिणामों का फल है।

प्र.-1803 निर्जराभावना किसे कहते हैं, भावना और ध्यान में क्या अंतर है?

उत्तर- पूर्वबद्ध कर्मों का फल देकर या बिना फल दिये आत्मा से एकदेश पृथक् होने को/ झड़ जाने को निर्जरा और इस प्रकार निरंतर परिवर्तन सहित विचार करने को निर्जरा भावना कहते हैं। परिवर्तन सहित विचारों को भावना और विचारों में स्थिर होने को ध्यान कहते हैं यही अंतर है।

प्र.-1804 निर्जरा किन परिणामों से और कैसे होती है तथा स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- जिन परिणामों से संवर होता है उन्हीं परिणामों से निर्जरा होती है। जब यह जीव आत्मकर्तव्य में स्थिर होता है तब मोक्ष के निमित्त बिना फल दिये कर्मों की निर्जरा होती है। **स्वामीः-** सामान्य और विशेषतया निर्जरा के स्वामी मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर अयोगकेवली पर्यंत समस्त संसारी हैं।

प्र.-1805 निर्जरा किस प्रकार से होती है, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जैसे भोजन करने के बाद भोजन का निष्कासन दो प्रकार से होता है। 1. भोजन पच कर बाहर निकलना 2. औषधि के प्रयोग से या अन्य प्रयोग से अपच भोजन उल्टी के द्वारा या अधोमार्ग से बाहर निकाल देना ऐसे ही कर्म अपने समय पर फल देकर स्वयं झड़ जाते हैं या विशेष शुभाशुभ पुरुषार्थ के द्वारा समय के पहले, बदलकर कम मात्रा में फल देकर झड़ जाते हैं या झड़ा दिये जाते हैं। दो भेद हैं। नामः- सविपाकनिर्जरा और अविपाकनिर्जरा या अकामनिर्जरा और सकामनिर्जरा।

प्र.-1806 सविपाक निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावानुसार फल देकर कर्मों के झड़ने को सविपाक निर्जरा कहते हैं।

प्र.-1807 अविपाक निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन कर्मों का अभी झड़ने का समय नहीं आया है उन्हें शुभाशुभ पुरुषार्थ के द्वारा अपकर्षण के, उदीरणा आदि के द्वारा कर्मों के निकाल देने को अविपाक निर्जरा कहते हैं।

प्र.-1808 अकाम निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर- बंध पूर्वक निर्जरा से आत्मा का हित और आत्मसाधना नहीं होती है उसे अकाम निर्जरा कहते हैं।

प्र.-1809 सकाम निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस निर्जरा से आत्मसिद्धि, मोक्ष प्राप्ति में सहायक होती है उसे सकाम निर्जरा कहते हैं।

प्र.-1810 निर्जरा का क्या फल है?

उत्तर- कर्म निर्जरा का साक्षात् उत्कृष्टफल मोक्ष है और सांसारिक उत्तमपद वैभव प्राप्त होना भी है।

प्र.-1811 समयप्रबद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर- योगों के द्वारा एक समय में बंधने वाले पुद्गल कर्मपिंड को समयप्रबद्ध कहते हैं।

प्र.-1812 लोक किसे कहते हैं और यह लोक कैसा है तथा यह किनका विषय है?

उत्तर- जितने क्षेत्र में जीवादि पदार्थ देखे जाते हैं उसे लोक कहते हैं। यह लोक स्वाभाविक, अकृत्रिम, अनादि अनिधन है, इसको न किसीने बनाया है, न कोई रक्षक है, न भक्षक है, न कोई विनाशक है, अमूर्तिक है और सर्वज्ञ केवली का ही प्रत्यक्ष विषय है, छद्मस्थ जीव आगमोपदेश से, अनुमान से जानते हैं।

प्र.-1813 अनादि अनिधन किसे कहते हैं?

उत्तर- बीजांकुर या पितापुत्र न्यायानुसार जिसका प्रारंभ नहीं हुआ है जो हमेशा से चला आ रहा है उसे अनादि तथा जिसका कभी भी अंत नहीं होगा, समाप्ति नहीं होगी उसे अनिधन कहते हैं।

प्र.-1814 अनादि अनिधन भंग क्या द्रव्य रूप है या पर्याय रूप?

उत्तर- अनादि अनिधन यह भंग कथंचित् द्रव्य रूप और कथंचित् पर्याय रूप भी है क्योंकि द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा द्रव्य अपरिणामी अविनाशी स्वभाव वाला होने से अनादिअनिधन स्वभावी चिरकाल स्थायी है तथा यद्यपि पर्याय परिणामी विनाशी, उत्पादव्यय स्वभावी और क्षणवर्ती है तो भी सादृश सामान्य जाति की अपेक्षा एक रूप होने से अभेद विवक्षा में अर्थव्यंजन पर्याय भी अनादि अनिधन भंग वाली है।

प्र.-1815 अनादि अनिधन भंग द्रव्य या पर्याय रूप है यह कैसे जाना?

उत्तर- अभव्य जीव अनादि अनिधन भंग वाला है और अभव्य जीव की मिथ्यात्व पर्याय अनादि अनिधन भंग वाली है इन दोनों की कालमर्यादा से जाना जाता है कि अनादि अनिधन भंग द्रव्य पर्याय स्वरूप है।

प्र.-1816 अनादि को समझाने के लिए बीजांकुर का उदाहरण क्यों दिया?

उत्तर- जैसे बीजांकुर का संबंध हमेशा से है इसमें कोई पूंछे कि पहले बीज है या अंकुर तब कहना होगा कि न पहले बीज है और न पहले अंकुर है किंतु दोनों एकसाथ ही होते हैं ऐसा नहीं है कि किसीने पहले बीज बनाया हो बाद में अंकुर या पहले अंकुर और बाद में बीज अतः इस संबंध को अनादि कहते हैं।

प्र.-1817 तो क्या केवल लोक ही अनादि है या समस्त पदार्थ भी?

उत्तर- लोक और समस्त पदार्थ द्रव्य और गुणों की अपेक्षा अनादिअनिधन हैं। वर्तमान पर्यायों की अपेक्षा या उत्पाद व्यय धर्म की अपेक्षा लोक और समस्त पदार्थ सादिसांत हैं, नवीन नवीन हैं।

प्र.-1818 ऐसे लोक में जीव क्या करता है और क्या फल पाता है?

उत्तर- ऐसे लोक में जीव बिना रत्नत्रय धर्म के कर्मों से ताड़ित होकर जन्म मरण करता हुआ अनेक दुःखों को भोगता है जैसे हवा के झकोरों से वृक्ष से टूटा हुआ सूखा पत्ता बिना आधार के भ्रमण करता है।

प्र.-1819 लोक का प्रमाण कितना है तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- लोक का प्रमाण चौदह राजू है। भेद तीन हैं। नामः- अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक।

प्र.-1820 इन लोकों में कौन कौन जीव निवास करते हैं?

उत्तर- अधोलोक में नीचे प्रथम राजू में पाँचों सूक्ष्म बादर स्थावर और निगोदिया जीव रहते हैं। पाँचों राजुओं के छह नरकों में एकेंद्रिय और नारकी जीव रहते हैं। सातवें राजू में नारकी जीव, भवनवासी, व्यंतर देव रहते हैं। मध्यलोक में आठवें राजू के कुछ क्षेत्र में मध्यलोक है जिसमें समस्त मनुष्य, समस्त विकलत्रय और पंचेंद्रिय तिर्यंच, ज्योतिषी देव निवास करते हैं। मध्यलोक से ऊपर आठवें राजू से चौदहवें राजू तक वैमानिक देव, ग्रैवेयिकवासी, अनुदिशवासी, अनुत्तरवासी और सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं। सभी सूक्ष्म तथा निगोदिया जीव समस्त लोक में ठसाठस भरे हुए हैं। ये सभी स्व स्वकर्मानुसार जनम मरण करते हुए भ्रमण कर रहे हैं।

प्र.-1821 इस लोक में जीव परप्रेरणा से भ्रमण करता है या स्वयं की प्रेरणा से?

उत्तर- इस लोक में जीव स्वयं ही निमित्त नैमित्तिक संबंध के कारण भ्रमण कर रहा है, परप्रेरणा से नहीं। जैसे जो अपराध करता है वही जज के, समाज और प्रजा के द्वारा दंड भोगता है, कदाचित् प्रबल पापकर्मोदय से स्वयं ही अंधा लूला लंगड़ा आदि हो जाता है, परिवार, धनसंपत्ति, मकान आदि से विहीन दीनदरिद्री, असाध्य रोगी होकर नाना प्रकार के शारीरिक, मानसिक, वाचनिक आदि दुःखों को भोगता है।

प्र.-1822 यहाँ पर परप्रेरणा का क्या अर्थ है?

उत्तर- यहाँ पर परप्रेरणा का अर्थ ईश्वर, ब्रह्मा, सृष्टिकर्ता समझना चाहिये। संसार में प्राणी इनकी प्रेरणा से न भ्रमण करता है और न सुखदुःख को भोगता है किंतु जब परप्रेरणा का अर्थ विकार रूप भावकर्म तथा द्रव्यकर्म ग्रहण करेंगे तब संसार में दीनहीन प्राणी द्रव्यकर्म और भावकर्म से प्रेरित होकर भ्रमण करता है।

प्र.-1823 जीव संसार में परप्रेरणा से भ्रमण करता है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, ऐसा मानने पर मोक्ष भी परप्रेरणा से प्राप्त होगा तथा इससे स्वयं अकर्मण्य या पुरुषार्थहीन होने से सर्वथा मुक्तात्मा भी पराधीन बना रहेगा तब स्वतंत्रता कहाँ प्राप्त होगी? यही दोष है।

प्र.-1824 अपराधफल प्रदाता ऊपरवाले को माना जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, यदि ऊपरवाले को अपराध का फलदायक माना जाय तो राजाप्रजा का, समाज का न्याय क्यों मानना? जब ऊपरवाले की प्रार्थना करने से, पूजाराधना करने से, जपतप करने से अपराध माफ हो जाता है तो फिर राजा प्रजागण अपराधी को पकड़कर बंधक बनाकर क्यों मारते हैं? हाथ पैर क्यों तोड़ देते हैं? शिष्यों को, साधुओं को, भक्तों को, धर्माचार्य प्रायश्चित्त क्यों देते हैं? अतः लोकन्याय के सामने ऊपरवाले को बीच में क्यों लाना? इस कारण ऊपरवाले की आड़ में स्व अपराध छिपाना आत्मवंचना है।

प्र.-1825 सुप्रीमकोर्ट और राष्ट्रपतिवत् ऊपर वाले का न्याय क्या अकाट्य है?

उत्तर- जब अपराधी ने मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारादि में जाकर प्रार्थना की और प्रार्थना करने पर ऊपरवाले ने माफ कर दिया तो फिर राष्ट्रपति आदि को ऊपरवाले के न्याय को समीचीन मानकर आज्ञा मान लेनी चाहिये। यदि जज आदि दंड देते हैं तो क्या ये ऊपरवाले पर विश्वास नहीं करते हैं? क्या ये सभी नास्तिक हैं? जब यहाँ पर राष्ट्रपति के न्याय को कोई टाल नहीं सकता है तो ऐसे ही ऊपरवाले के न्याय को कोई टाल नहीं सकता तथा अविश्वासी नास्तिक न्याय को न मानकर मनमानी करता है, स्वच्छंदी होता है।

प्र.-1826 यहाँ पर ''ऊपर वाले'' इस पद से क्या अर्थ ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यहाँ "ऊपरवाले" पद से सृष्टि कर्ता ईश्वर, ब्रह्मा, अल्लाह, गॉडफादर को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-1827 क्या जैनगण सृष्टिकर्ता ईश्वर आदि को मानते हैं?

उत्तर- अनेकांतवादी जैनी भक्तिकार्य में, निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा सर्वज्ञ तीर्थंकरों को अपने मंगलकार्यों का कर्ताधर्ता मानकर पूजापाठ, स्तुति, गुणगान करते हैं पर उपादान उपादेय की अपेक्षा नहीं।

प्र.-1828 संसार तथा संसारभावना और लोक तथा लोकभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- अशुद्ध द्रव्यों के समूह को, चतुर्गति में, चौरासीलाख योनियों में, द्रव्य क्षेत्र काल भव और भावों में परिभ्रमण करने को संसार कहते हैं तथा इनका बार बार चिंतन करने को संसारभावना कहते हैं। सभी शुद्ध द्रव्यों के समूह को लोक कहते हैं और उसके स्वरूप का चिंतन करने को लोकभावना कहते हैं।

प्र.-1829 छह द्रव्यों का सामूहिक चिंतन संसारभावना और लोकभावना है क्या?

उत्तर- ऐसा मानने में 12भावना न रहकर 11भावनायें ही रह जायेगी। संसारभावना रहेगी या लोकभावना रहेगी क्योंकि दोनों भावनाओं का जब लक्षण एक ही है तो आपको संसारभावना या लोकभावना में से कोई एक भावना कम करना पड़ेगी। यदि आपने 12भावनायें मानी हैं तो दोनों भावनाओं का लक्षण अलग अलग होना चाहिये अन्यथा 12भावनायें नहीं बन सकती हैं यही दोष है या शुद्धद्रव्यों के समूह का नाम लोक और विकल्पात्मक समूह का चिंतन लोकभावना तथा विकारयुक्त मिश्रद्रव्यों को संसार और इनका विकार रूप में चिंतन को संसारभावना कहते हैं। जैसे दंपति अलग अलग रहें तो संतान की उत्पत्ति नहीं होती है किंतु दोनों विकार रूप में परिणमन कर चेष्टा करें तो संतान की उत्पत्ति होती है ऐसे ही जीव और पुद्गल कर्मपिंड अलग अलग रहें तो संसार नहीं बन सकता है किंतु दोनों विकारी होकर एकसाथ परिणमन करें तो संसारोत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं और यह व्यवस्था अनादि से है अनंतकाल तक रहेगी।

प्र.-1830 बोधिदुर्लभ किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति होना अति कठिन है, ऐसे कठिन रत्नत्रयधर्म को साधुजन आसानी से प्राप्त कर लेते हैं सो इसे ही बोधिदुर्लभ कहते हैं क्योंकि संगठन साधना से अतिकठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं।

प्र.-1831 जीव ने रत्नत्रय के बिना कहाँ तक भ्रमते हुए क्या प्राप्त नहीं किया?

उत्तर- इस अनदि मिथ्यादृष्टि जीव ने रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति के बिना अनंतोंबार नौवें ग्रैवेयिक पर्यंत अहमिंद्र पद पाया पर आत्मज्ञान के बिना आत्मसुख प्राप्त नहीं किया।

प्र.-1832 नौवें ग्रैवेयिक पर्यंत अनंतों बार जन्म धारण करने वाला कौनसा जीव है?

उत्तर- अनादि भव्य मिथ्यादृष्टि जीव, दूरानुदूर भव्यजीव और अभव्यजीव इन तीन जीवों ने अनंतों बार नौवें ग्रैवेयिक पर्यंत जन्म मरण करते हुए अनंत भव परिवर्तन पूरे किये हैं।

प्र.-1833 सादि मिथ्यादृष्टि जीव नौवें ग्रैवेयिक तक कितनी बार जा सकता है?

उत्तर- अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल भी अनंत होने से सादि मिथ्यादृष्टि ग्रैवेयिक तक अनेकों बार जा सकता है।

प्र.-1834 सादि मिथ्यादृष्टि जीव नौवें ग्रैवेयिक तक अनंतों बार क्यों नहीं जाता?

उत्तर- इस सादि मिथ्यादृष्टि ने पहले रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करने के प्रथम समय में ही अनंत संसार को छेदकर सीमित अंत सहित कर दिया है इसलिए नौवें ग्रैवेयिक तक अनंतोंबार नहीं जाता है।

प्र.-1835 यह जीव नौवें ग्रैवेयिक तक अनंतोंबार चला जाय तो क्या दोष है?

उत्तर- असंख्यात समयों का एक जनम मरण रूपी भव होता है फिर अहमिंद्रों का भव तो सागरों तक होता है तब सादि मिथ्यादृष्टि जीव अनंतों बार नौवें ग्रैवेयिक में कैसे जा सकता है? अर्थात् नहीं जा सकता है।

प्र.-1836 रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति करना क्या सभी के लिए कठिन है?

उत्तर- पुरुषार्थ हीन प्रमादी जीवों को रत्नत्रय धर्म प्राप्त करना कठिन कहा है किंतु आत्मसाधना के द्वारा साधुजन रत्नत्रयधर्म की प्राप्ति कर लेते हैं क्योंकि जब इंसान पुरुषार्थ करके नर से नारायण बन सकता है तो आत्मसाधना करके मोक्ष प्राप्त क्यों नहीं कर सकता है? अतः रत्नत्रयधर्म सबके लिए कठिन नहीं है।

प्र.-1837 यहाँ बोधि पद का क्या अर्थ है?

उत्तर- यहाँ बोधि शब्द से केवलज्ञान को या रत्नत्रय धर्म के पूर्ण अंशों को ग्रहण करना चाहिए।

प्र.-1838 बोधिदुर्लभ भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- जैसे धनार्थी रात्रिदिन परिश्रम करके धन कमा लेता है ऐसे ही मोक्षार्थी पुरुषार्थ करके रत्नत्रय को धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है ऐसा चिंतन करने को बोधिदुर्लभ भावना कहते हैं।

प्र.-1839 धर्मभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मा को संसार के बंधनों से, मलिनता से छुड़ाकर मोक्षसुख में, स्वाधीन, स्वतंत्रता में, निर्मलता में स्थापित करा दे ऐसे कार्यकलापों के भावात्मक चिंतन करने को धर्मभावना कहते हैं।

प्र.-1840 इन बारह प्रकार की भावनाओं को शुभ क्यों कहा?

उत्तर- इन 12भावनाओं का पुनः पुनः चिंतन करने से विरक्ति उत्पन्न होती है, संसार शरीर भोगों में प्रेमभाव, द्वेषभाव समाप्त हो माध्यस्थ भाव जागृत होता है। माध्यस्थ भाव होने से विषयकषायों आदि का दमन होता है इससे पाप की हानि और पुण्य की वृद्धि होती है अतः ये विचार निर्मलता के उत्पादक होने से इनको शुभ कहा है सो अभेद विवक्षा में भावना और भाववान को शुभ कहा है।

प्र.-1841 तीर्थंकर प्रकृति शुभ है या अशुभ?

उत्तर- तीर्थंकर प्रकृति अनुभाग बंध की अपेक्षा शुभ और स्थितिबंध की अपेक्षा अशुभ कही है।

प्र.-1842 तीर्थंकर प्रकृति को स्थितिबंध की अपेक्षा अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- यदि ये मोक्षमार्गी तीर्थंकरप्रकृति का बंध नहीं करते तो पहले ही कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त कर लेते किंतु तीर्थंकर प्रकृति का स्थितिबंध करने के कारण सागरों पर्यंत संसार में रहना ही पड़ेगा सो अशुभ कहा। जैसे कोई जीव जेल में रहना नहीं चाहता किंतु अपराध के कारण पराधीन होकर कारागृह में रहना पड़ता है अतः स्थितिबंध की अपेक्षा तीर्थंकरप्रकृति को अशुभ कहा।

प्र.-1843 तीर्थंकर प्रकृति के बंध के परिणाम क्या शुभ हैं या अशुभ और कितने हैं?

उत्तर- तीर्थंकर प्रकृति के प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध और अनुभागबंध की अपेक्षा परिणाम मंगल स्वरूप हैं, शुभ हैं। ये परिणाम सोलह हैं। इन्हीं को सोलहकारण भावना कहते हैं।

प्र.-1844 तीर्थंकर प्रकृति शुभ है तो इसे समझने के लिए क्या दृष्टांत है?

उत्तर- जैसे रसगुल्ला की प्रकृति मधुर है, मुलायम है, प्रदेश गणना में असंख्यात प्रदेशी है और अनुभाग में मनमोहक है, स्वादिष्ट है, पौष्टिक है, हर तरह से सुखकारक है किंतु पाचनशक्ति कमजोर होने से रसगुल्ले खा लेने पर पेट फूल जाता है, मलमूत्र के विसर्जन में परेशानी होती है अतः अशुभ है सो अपेक्षानुसार रसगुल्ला शुभाशुभ है ऐसे ही तीर्थंकर प्रकृति भी अपेक्षानुसार शुभाशुभ है ऐसा

क.कां. गा. 154 से जाना जाता है।

प्र.-1845 सम्यग्दर्शन और दर्शनविशुद्धि भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम से उपशम सम्यग्दर्शन, क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन, दर्शनमोहनीय कर्म की सर्वघाती प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय, इन्हीं के आगामी काल में उदय में आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम और देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है या देव शास्त्र गुरु में, जीवादि 27 तत्त्वों में, प्रशम संवेग आदि भावों की उत्पत्ति होने पर उत्पन्न विश्वास को सम्यग्दर्शन कहते हैं तथा सम्यग्दर्शन के साथ जगतकल्याणी भावना को, निर्मलता को, विशुद्धि को दर्शनविशुद्धि भावना कहते हैं सो यह भावना तीनों सम्यग्दर्शनों में संभव है।

प्र.-1846 यह दर्शनविशुद्धि भावना तीनों सम्यग्दर्शनों में कैसे संभव है?

उत्तर- इन तीनों सम्यग्दर्शनों में तीर्थंकरप्रकृति का आश्रवबंध होता है इस कार्य रूप वाक्य से जाना जाता है कि तीनों सम्यग्दर्शनों में कारण रूप दर्शनविशुद्धिभावना संभव है या उपशम वेदक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के मिथ्यात्व गुणस्थान में ही दर्शनविशुद्धयादि भावना का चिंतन करके निर्दोष सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया इसलिए भी इन सम्यग्दर्शनों में यह दर्शनविशुद्धयादि भावना संभव है।

प्र.-1847 दर्शनविशुद्धयादि भावनायें तीनों सम्यग्दर्शनों में संभव हैं यह कैसे जाना?

उत्तर- **पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।**
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते।।92।।

अर्थः- प्रथमोपशम या द्वितीयोपशमसम्यक्त्व में तथा क्षायोपशमिक या क्षायिकसम्यक्त्व में 4थे से 7वें गुणस्थान पर्यंत मनुष्य ही तीर्थंकरप्रकृति के बंध का प्रारंभ केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में करते हैं। इस गाथा सूत्र से जाना जाता है कि तीनों सम्यग्दर्शनों में दर्शनविशुद्धि आदि 16 भावनायें संभव हैं।

प्र.-1848 पच्चीस मलदोषों के त्याग को दर्शनविशुद्धि भावना क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं, सर्वथा ऐसा मानने पर उपशम और क्षायिक सम्यग्दर्शन में दर्शनमोह कर्म के उदय का, सत्ता का अभाव होने से सदा तीर्थंकर प्रकृति के आश्रवबंध का प्रसंग आयेगा अतः केवल 25 मलदोषों के त्याग के साथ[2] जगतकल्याणी भावना का होना ही दर्शनविशुद्धि भावना है।

प्र.-1849 विनय और विनयसंपन्नता भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- गुणस्थानानुसार मानकषायाभाव में उत्पन्न हुई नम्रता को विनय कहते हैं और मोक्षमार्ग में, मोक्षमार्ग के साधनों में अहंकार के त्याग पूर्वक नम्रवृत्ति सहित विचारधारा को विनयसंपन्नता भावना कहते हैं।

प्र.-1850 शीलव्रतेष्वनतिचार और शीलव्रतेष्वनतिचार भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- गृहस्थों की अपेक्षा सप्तशीलों का और मुनियों की अपेक्षा मूलगुण उत्तरगुणों का निरतिचार पालन करने को शीलव्रतेष्वनतिचार और निर्दोषता के लिए पुनः[2] चिंतन को शीलव्रतेष्वनतिचार भावना कहते हैं।

प्र.-1851 निरतिचार व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- श्रावकों के व्रत 70 दोषों के बिना निर्दोष होते हैं तो मुनियों को एकमात्र सावधानी पूर्वक दिनचर्या करने को, विषयकषायों का, प्रमाद का त्याग करने को निरतिचार व्रत कहते हैं।

प्र.-1852 श्रावकों के 70 दोष कौन कौन से हैं?

उत्तर- अणुव्रतों के 25, गुणव्रतों के 15, शिक्षाव्रतों के 20, सल्लेखना एवं सम्यग्दर्शन के 10 ये 70 दोष हैं।

प्र.-1853 क्या इस काल में व्रती श्रावकगण ये 70 दोष टाल सकते हैं?

उत्तर- हाँ, यदि वास्तव में आत्मकल्याण की, धर्मसाधना की उत्कृष्ट भावना है तो सभी कार्यों में सावधानी वर्तने पर तथा ध्यानाध्ययन, पूजापाठ आदि धर्मकार्यों के समय में ये दोष अवश्य ही टाले जा सकते हैं।

प्र.-1854 सप्तशील किसे कहते हैं?

उत्तर- श्रावकों की अपेक्षा तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों को सप्तशील कहते हैं।

प्र.-1855 तो फिर मुनियों के ये सप्तशील होते हैं या नहीं?

उत्तर- मुनियों के ये सप्तशील अवश्य ही अत्यंत सूक्ष्मता के साथ में होते हैं क्योंकि श्रावकधर्म के नीति नियम मुनियों के अवश्य होते हैं किंतु मुनियों के नीतिनियम श्रावकों के नहीं होते हैं। मुनि श्रावकों के कौन से नीतिनियम को छोड़ेगा? अतः श्रावकों के व्रतों का मुनि अति सूक्ष्मता से पालते हैं कहा भी है:-

स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः॥136॥ र.श्रा.

अर्थः- पहले के गुणों के साथ वर्तमानकालीन गुण क्रम से बढ़ते रहते हैं। इस नियमानुसार श्रावकों के व्रत मुनि अवस्था में और सूक्ष्मता से निर्दोष पाले जाते हैं, छोड़े नहीं जाते। यदि मुनि अवस्था धारण करने पर श्रावक के व्रत छोड़ दिये जाते हैं तो क्या मुनि बनकर रात्रि में खायेगा? दो बार खायेगा? बैठकर खायेगा, अनछना पानी पियेगा? मकारों का या उदुम्बर फलों का, कंदमूलों का सेवन करेगा? अतः श्रावक अवस्था में यम रूप से धारण किये गये व्रत मुनि अवस्था में अवश्य पाले जाते हैं किंतु नियम रूप से धारण किये गये व्रत मुनि अवस्था में कदाचित् पाले जाते हैं या छोड़ दिये जाते हैं।

प्र.-1856 गृहस्थधर्म की यह गाथा मुनिधर्म के प्रसंग में क्यों ग्रहण की?

उत्तर- यह गाथा गृहस्थधर्म की अवश्य है कि गृहस्थों को पूर्वगुणों के साथ नवीनगुणों को बढ़ाना चाहिये, पालन करना चाहिये फिर भी उद्दिष्टत्याग, अनुमतित्याग, परिग्रहत्याग जैसे व्रतों को मुनि छोड़ देगा क्या? नहीं किंतु अवश्य ही पालन करेगा अतः इस गाथा को मुनिधर्म के प्रसंग में ग्रहण किया है क्योंकि कुछ नियम किसी अवस्था विशेष में सीमित रहते हैं तो कुछ नियम सर्वव्यापी हैं।

प्र.-1857 मुनियों के व्रतों को हाथी के पैर की उपमा क्यों दी?

उत्तर- जैसे लोक में समस्त पशुपक्षी और मनुष्यों के पैर हाथी के पैर के बराबर नहीं होते हैं। हाथी के पैर सबसे बड़े होते हैं ऐसे ही मुनियों के व्रत सबसे बड़े होने से मुनियों के व्रतों में सभी व्रत अंतर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं इसलिए मुनियों के व्रतों को हाथी के पैर की उपमा दी है।

प्र.-1858 अभीक्षण ज्ञानोपयोग और अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- निरंतर जिनवाणी का चिंतन करने को, अपना उपयोग जिनवाणी में लगाये रखने को अभीक्षण ज्ञानोपयोग कहते हैं और इसी प्रकार सतत विचारशील होने को अभीक्षण ज्ञानोपयोग भावना कहते हैं।

प्र.-1859 संवेग और संवेग भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- संसार शरीर और भोगों के प्रति उदासीन, माध्यस्थभाव को संवेग कहते हैं और ऐसे ही

विचारों को सतत उपयोग में लाने को संवेग भावना कहते हैं।

प्र.-1860 शक्तितस्त्याग और शक्तितस्त्यागभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- तन मन धन की शक्ति के अनुसार आत्मशुद्धि के लिए चेतन अचेतन मिश्रवस्तुओं का, ममत्व का त्याग करने को शक्तितस्त्याग कहते हैं तथा ऐसा चिंतन करते रहने को शक्तितस्त्याग भावना कहते हैं।

प्र.-1861 शक्तितस्तप और शक्तितस्तपभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- ख्याति पूजा लाभ की, लौकिक स्वार्थ की भावना को छोड़कर, तन मन की शक्ति के अनुसार अनशनादि करने को तप कहते हैं और ऐसा निरंतर चिंतन करने को शक्तितस्तप भावना कहते हैं।

प्र.-1862 यहाँ शक्ति के अनुसार त्याग और तप करने को क्यों कहा?

उत्तर- शक्ति से कम या ज्यादा त्याग, तप किया तो परिणामों में संक्लेश पैदा होता है। कम किया तो लोभकषाय है और ज्यादा किया तो मानकषाय है तथा साथ में ख्याति पूजा लाभ की भावना होने से मिथ्याचारित्र भी है सो दुर्ध्यान एवं विषयकषायों की उत्पत्ति वृद्धि होने से यह कल्याण का मार्ग नहीं है अतः शक्ति से कम ज्यादा न कर शक्ति के अनुसार त्याग और तप करने को कहा है।

प्र.-1863 यहाँ शक्ति से कौन सी शक्ति को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- मतिज्ञानावरणकर्म, वीर्यांतरायकर्म, लाभांतराय पापकर्मों के क्षयोपशम से एवं सातावेदनीय आदि पुण्यकर्मोदय से जो तन, मन, धन, वचन की सामर्थ्य प्राप्त हुई है उसके अनुसार ही त्याग तप करना चाहिये तभी मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है अन्यथा संक्लेश होने से संसारमार्ग है।

प्र.-1864 तनबल और धनबल की प्राप्ति किस कर्म के निमित्त से होती है?

उत्तर- शारीरिकबल की प्राप्ति संहनननामकर्मोदय से होती है तथा सातावेदनीय आदि पुण्यकर्मोदय से धन बल की या पुरुषार्थ से भी इन बलों की प्राप्ति होती है।

प्र.-1865 साधुसमाधि तथा साधुसमाधि भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रयधारी साधुओं के आत्मसाधना में स्वच्छ मन से सहायक होने को तथा विघ्नबाधायें दूर करने को साधुसमाधि तथा ऐसा सतत विचार पूर्वक संलग्न रहने को साधुसमाधि भावना कहते हैं।

प्र.-1866 वैय्यावृत्य और वैय्यावृत्यभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्व कर्मोदय से उत्पन्न साधुओं के रोग शमनार्थ आगमानुकूल पथ्यापथ्यानुसार आहारादि देने को, हाथ पैर आदि दबाने को, तेल मालिश, सिकाई लेपादि लगाने को वैय्यावृत्त्य तथा साधुओं में उत्पन्न बाधाओं के विनाशार्थ सतत प्रयत्नशील चिंतनशील रहने को वैय्यावृत्यभावना कहते हैं।

प्र.-1867 वैय्यावृत्ति कब और कैसे करना चाहिये?

उत्तर- **''निशदिन वैय्यावृत्य करैया सो निश्चय भवनीर तिरैया''** वैय्यावृत्ति हमेशा करना चाहिये क्योंकि न मालुम कब कैसी आकुलता व्याकुलता होने से अशुभायु का बंध कर ले और अशुभायुबंध के बाद सेवा करना मुर्दे को औषधि खिलाने जैसा है। गुणस्थानों से गिरने पर संबोधन करना व्यर्थ है अतः परिणाम बिगड़ने नहीं पायें ऐसे सावधानी पूर्वक प्रमाद और घृणा को छोड़कर सदा वैय्यावृत्ति करना चाहिये।

प्र.-1868 तो क्या शुभायु का बंध होने के बाद संबोधन करना व्यर्थ है या सार्थक?

उत्तर- शुभायु का बंध करने के बाद भी बाह्याभ्यंतर कारणानुसार परिणाम अत्यंत कलुषित हो गये तो घातायुष्क सम्यग्दृष्टि होकर क्षुद्र देवों में उत्पन्न हो सकता है अतः संबोधन करना सार्थक है, व्यर्थ नहीं है।

प्र.-1869 घातायुष्क सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय पूर्वक उत्कृष्टायु का बंध कर बाद में अन्य कारणों से रत्नत्रय की विराधना कर नीचे गुणस्थानों में आकर उत्कृष्टायु छेदकर हीनायु करने वाले को घातायुष्क सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

प्र.-1870 इस घातायुष्क जीव को सम्यग्दृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- भूतपूर्व नैगमनय की अपेक्षा इस जीव को सम्यग्दृष्टि कहा है क्योंकि यह पहले सम्यग्दृष्टि था।

प्र.-1871 संबोधन करने से किसको फल प्राप्त होता है?

उत्तर- संबोधन करनेवाले को नियम से उत्कृष्ट फल मिलता है क्योंकि संबोधन करनेवाला सावधान है। क्षपक यदि संबोधन को पाकर सावधान हो गया तो सही फल प्राप्त कर लेता है, अन्यथा नहीं।

प्र.-1872 संबोधन किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अपने कर्तव्य, पद से गिरते हुए या गिरे हुए पात्र को पुनः स्वकर्तव्य और पद में स्थिर करने को स्थितिकरण या संबोधन कहते हैं। दो भेद हैं। **नामः- लौकिक संबोधन-** संसार शरीर भोगों में और इनके मार्ग में स्थिर करना। **लोकोत्तर संबोधन-** मोक्षमार्ग में एवं सत्कर्तव्यों में स्थिर करना।

प्र.-1873 वैय्यावृत्ति क्यों करना चाहिये?

उत्तर- सेव्य सेवक भाव हमेशा से चला आ रहा है और भविष्य में चलता रहे सो वैय्यावृत्ति करना चाहिये। जब अपन किन्हीं दूसरों को संबोधन, उनकी सेवा आदि करेंगे तब उनकी आत्मसाधना और भी अच्छी होगी इसलिए अपनी आत्मसाधना में अन्य श्रावकसाधुजन सहायक हो, वैय्यावृत्ति करें आदि हेतुओं से वैय्यावृत्ति करना चाहिये। यह आर्तध्यान नहीं है और कोई इसे आर्तध्यान समझकर उपेक्षा भी न करें।

प्र.1874 यदि त्यागीव्रतियों की सेवा निष्कपट भाव से नहीं की तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- सेव्य सेवक की भावना और क्रिया न होने से, धार्मिक संस्कार न होने से, परस्पर में सहायक न होने से सभी का हाय हाय करते अस्पतालों में या जहाँ कहीं भी असमाधिमरण होगा क्योंकि आज वर्तमान में धार्मिक संस्कार हीन नामधारी जैनों में सेव्य सेवक भाव, सदाचार न होने से इन लौकिक जैनों को हाय हाय करते हुए अस्पतालों में दुर्मरण करना पड़ा अतः सेव्य सेवक भाव को केवल मन में न रखकर आचरण में, प्रयोग में लाकर सभी को अपना जीवन सफल बनाना चाहिये अन्यथा दोष ही दोष है।

प्र.-1875 अर्हद्, अर्हद्भक्ति और अर्हद्भक्तिभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- घातिकर्म चतुष्टय को क्षयकर अनंत ज्ञानादि चतुष्टय को प्राप्त कर लोक में पूजा आदर सम्मान प्राप्त करने वाले को अर्हद् कहते हैं क्योंकि "अर्ह" धातु पूजा अर्थ में आती है। तीर्थंकर अरिहंत सर्वज्ञकेवली के गुणों में परम प्रीति करने को, स्वयं समर्पित हो जाने को, गुणकीर्तन करने को अर्हद्भक्ति कहते हैं और इस प्रकार सतत चिंतन परिणमन करने को अर्हद्भक्ति भावना कहते हैं।

प्र.-1876 अरहंत, अरिहंत और अरुहंत किसे कहते हैं?

उत्तर- अरहंत- अ= मोहकर्म, र= रज (ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म), र= रहस्य (अंतरायकर्म) हन्त-ः घातियाकर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले को अरहंत/ अरिहंत कहते हैं। अरुहंत- अनंत चतुष्टयधारी लोक में पूज्यों के द्वारा पूजे जाते हैं अतः अरुहंत कहते हैं। **अरुहंताणमित्यपि पाठांतरम्।** ध.पु.1 पृ.46 **अर्हत्युच्च -** त्रिविक्रम व्या. अ.1 पाद.4 सू.105 अर्हत् शब्द में संयुक्त व्यंजन के पूर्व उ, अ और इ आते हैं उदा. अरुहो अरहो अरिहो। अरुहंतो अरहंतो अरिहंतो। **उच्चार्हति-** सू.111 अ.1 पाद 2 हेमचंद्र प्रा. व्या.।

प्र.-1877 तीर्थंकर भक्ति न कहकर अर्हद्भक्ति क्यों कही?

उत्तर- तीर्थंकर और अर्हंत इन दोनों में अनंतचतुष्टय समान होने से दोनों को ही ग्रहण कर लिया है क्योंकि बिना अनंतचतुष्टय के तीर्थंकर और अर्हंत नहीं होते हैं अथवा जो तीर्थंकर हैं वे नियमतः अर्हंत होंगे किंतु जो अर्हंत हैं वे तीर्थंकर हो भी सकते हैं और नहीं भी या भरत, ऐरावत तथा विदेहक्षेत्र में तीर्थंकरों की संख्या नियत है तो अर्हंतों की संख्या अनियत है या तीर्थंकर प्रकृति का आश्रव बंध तीर्थंकरों के और अरहंतों के पादमूल में समान रूप से होता है किंतु अर्हंतपना कर्मों के क्षय से प्राप्त होता है। तीर्थंकरपना औदयिकभाव है तो अर्हंतपना क्षायिकभाव है इसलिए अर्हद्भक्ति कही है, तीर्थंकर भक्ति नहीं।

प्र.-1878 यह अर्हद्भक्ति कब और क्यों करना चाहिये तथा क्या फल है?

उत्तर- यह अर्हद्भक्ति सदा करना चाहिये क्योंकि जब आत्मा में सदा पापकर्मों का आश्रवबंध होता है तो सदा ही पापों को नष्ट करने को और मोक्ष प्राप्ति के लिए अर्हद्भक्ति करना चाहिये। अर्हद्भक्ति करने वाला जीव अर्हद्भक्ति के समय में विषयकषायों में रमण न करता हुआ धर्मभाव से परिणत हो सातिशय पुण्यकर्म को बांधता हुआ असंख्यातगुणी निर्जरा कर देता है सो इसका यही फल है।

प्र.-1879 आचार्यभक्ति और आचार्यभक्तिभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- साधकों को शिक्षादीक्षा प्रायश्चित्तदायक को, पंचाचारों का पालन करने और कराने वालों का, विषयकषायों को, ख्याति पूजा लाभ की भावना को त्याग कर गुणगान करने को आचार्यभक्ति और इसी प्रकार सतत तद्रूप में भावात्मक परिणमन करने को आचार्यभक्तिभावना कहते हैं।

प्र.-1880 आचार्यभक्ति क्यों करना चाहिये?

उत्तर- आत्मसाधना में साधनभूत आचार्य के गुणों की प्राप्ति के लिए आचार्यभक्ति करना चाहिये।

प्र.-1881 बहुश्रुत भक्ति और बहुश्रुतभक्ति भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- आचार्य भगवंत प्रदत्त शिष्य शिष्याओं को मोक्षमार्गोपयोगी ज्ञानप्रदाताओं का गुणकीर्तन करने को बहुश्रुतभक्ति और उपाध्याय के प्रति भावात्मक विचारों को बहुश्रुतभक्ति भावना कहते हैं।

प्र.-1882 प्रवचन, प्रवचनभक्ति और प्रवचनभक्ति भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनेंद्रोक्त वचनों को प्रवचन, जिनागम कहते हैं। इनकी सर्वत्र निर्दोषता ख्यापित करने को, जिनागम के प्रति समर्पित होने को, नमस्कार पूजा आरती आदि करने को प्रवचनभक्ति कहते हैं तथा बार बार भक्ति सहित गुणकीर्तन करने की विचारधारा को प्रवचनभक्ति भावना कहते हैं।

प्र.-1883 आवश्यक, आवश्यकापरिहाणि, आवश्यकापरिहाणिभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मस्वतंत्रता के लिए अवश्य करने योग्य कार्यों को आवश्यक कहते हैं। **श्रावकों के:-** देवपूजा, गुरुपूजा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान। **मुनियों के:-** समता, स्तुति, वंदना, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय/प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग। इनका यथासमय पालने को, विराधना न करने को आवश्यकापरिहाणि कहते हैं। इसमें सतत रत रहते हुए चिंतनानुसार परिणमन करने को आवश्यकापरिहाणि भावना कहते हैं।

प्र.-1884 यदि ये षडावश्यक समय पर न कर आगेपीछे किये जायें तो क्या दोष है?

उत्तर- इन आवश्यकों को आगेपीछे पालने से आवश्यकापरिहाणिभावना नहीं कहलायेगी यही दोष है। जैसे समय पर औषधि का प्रयोग न करने से बीमारी दूर नहीं होती, खेती में समय पर खादपानी न देने से फसल नष्ट या शक्तिहीन हो जाती है अर्थात् परिश्रम करने पर भी सफलता नहीं मिलती ऐसे ही बिना समय के आवश्यकों का पालन करने पर भी सफलता नहीं मिलती है।

प्र.-1885 आज श्रावक और साधुओं की दैनिक जीवन में विसंगतियां कैसी हैं?

उत्तर- पूर्व काल में श्रावक और साधुगण लौकिक कार्यकलापों को छोड़कर अपनी[2] प्रतिज्ञा को समय पर ही पालते थे किंतु अभी साधकगण श्रीमानों, नेताओं, कार्यकर्ताओं के समयानुसार अपनी पूजापाठ सामायिकादि का समय बदलकर पहले या बाद में करते हैं या छोड़ ही देते हैं किंतु गृहस्थों के समय को नहीं टालते अर्थात् अधिकतर आज जैन अपने लौकिक कार्य समय पर ही करते हैं तथा अपने समयानुसार ही साधुओं से मिलने का समय निर्धारित करते हैं, साधुओं के समयानुसार नहीं अतः ऐसी विसंगतियां हैं।

प्र.-1886 मार्ग और मार्ग प्रभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय को मार्ग कहते हैं और इसके बाह्य साधन देव शास्त्र गुरु हैं इन मार्ग और मार्ग साधन का लोक में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा आदि के द्वारा प्रकाशन करने को मार्ग प्रभावना कहते हैं।

प्र.-1887 प्रभावना कितने प्रकार की होती है और कैसे करना चाहिये?

उत्तर- निजप्रभावना और धर्मप्रभावना ये दो भेद हैं। रत्नत्रयधर्म से निजात्मा की और दान, तप, जिनेंद्रपूजा, रथयात्रा, तीर्थयात्रा तथा ज्ञानातिशय आदि से जिनधर्म की प्रभावना करना चाहिये।

प्र.-1888 जिनधर्म प्रभावना तथा आत्म प्रभावना यथार्थ में किसे कहते हैं?

उत्तर- शिष्यों, भक्तों का मन अत्यंत निर्विकार हो, नाना अंधकार नष्ट होकर जिनधर्म प्रवेश कर जाये उसे जिनधर्म प्रभावना और रत्नत्रय से कर्मों को क्षयकर शुद्धात्म होने को आत्मप्रभावना कहते हैं।

प्र.-1889 प्रवचनवत्सलत्व भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- देव शास्त्र गुरु, रत्नत्रयधर्म, निजात्मा के प्रति तीव्र प्रेम को प्रवचन वत्सलत्व भावना कहते हैं।

प्र.-1890 प्रवचन पद से देव शास्त्र गुरु को कैसे ग्रहण किया है?

उत्तर- प्र- उत्कृष्ट निर्दोष। वचन- शब्द रचना। उत्कृष्ट निर्दोष शब्द रचना को प्रवचन कहते हैं। वाच्य वाचक और वचन में अभेद विवक्षा कर तीर्थंकर अर्हंत देव को ही प्रवचन कहते हैं क्योंकि निर्दोष वक्ता ही पूर्ण निर्दोष वक्तव्य दे सकता है, सदोष वक्ता नहीं अतः निर्दोष तीर्थंकर अर्हंतदेव का वचन ही प्रवचन है। आज्ञा और आज्ञापालक में अभेद विवक्षा कर निर्दोष जिनेंद्राज्ञा का पालक, जिनमुद्राधारी गुरु ही प्रवचन है।

प्र.-1891 प्रवचन पद से रत्नत्रयधर्म और आत्मा को कैसे ग्रहण किया है?

उत्तर- शब्द और शब्दार्थ में अभेद विवक्षा कर प्रवचन पद से रत्नत्रयधर्म और आत्मा को ग्रहण किया है।

प्र.-1892 मैत्री भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- समस्त एकेंद्रिय जीवों से लेकर पंचेंद्रिय तक के प्राणियों में परम प्रीति पूर्वक निष्कपट निःस्वार्थ भाव से अपनी आत्मा के समान मानकर प्रेम करने को मैत्री भावना कहते हैं।

प्र.-1893 प्रमोदभावना किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय से युक्त, ध्यानाध्ययन आदि अनेक गुणों के निधान गुणवानों को देखकर हर्षित होने को, रोम रोम से रोमांच होने को धर्मप्रमोद भावना और इसे ही धर्मप्रेम भावना कहते हैं।

प्र.-1894 कारुण्य भावना किसे कहते हैं और कारुण्यभावना वाला कैसा होता है?

उत्तर- दीनदुःखी प्राणियों पर कृपाबुद्धि से मन द्रवित होकर दुःखों को दूर करने में संलग्न होने को कारुण्य भावना कहते हैं। इस भावना वाला व्यक्ति कौवे के समान होता है। जैसे कौवे को

भोजन प्राप्त होते ही कांव[2] कहाँ हो कहाँ हो ऐसा करके अपने सभी साथियों को बुला बुलाकर खिलाता हुआ खाता है ऐसे ही कारुण्य भावना वाला दूसरों को सुखी करता हुआ सुखी होता है इसे ही अपायविचयधर्मध्यान कहते हैं।

प्र.-1895 माध्यस्थ भावना किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग, जिनधर्म के विरोधी आर्य अनार्यों में रागद्वेष न करने को माध्यस्थ भावना कहते हैं।

प्र.-1896 ये भावनायें सम्यग्दृष्टियों के होतीं हैं या मिथ्यादृष्टियों के भी?

उत्तर- ये भावनायें एकमात्र मोक्षमार्गी सम्यग्दृष्टियों के ही होतीं हैं, मिथ्यादृष्टियों के नहीं। यदि ये भावनायें मिथ्यादृष्टियों की पाई जायें तो वह सम्यग्दृष्टि ही हो जायेगा क्योंकि इन भावनाओं के होने पर कर्मों का आश्रवबंध रोक दिया जाता है किंतु मिथ्यादृष्टियों के केवल मृगमरीचिकावत् ये भावनायें मालुम होतीं हैं।

प्र.-1897 ये भावनायें इस क्रम से क्यों बतलाई?

उत्तर- इन भावनाओं का क्रम स्वाभाविक है। मैत्रीभावना का विषय अत्यंत विस्तृत है, इससे प्रमोदभावना का विषय सूक्ष्म है, प्रमोदभावना से कारुण्यभावना का विषय सूक्ष्मतर है, कारुण्यभावना से माध्यस्थभावना का विषय सूक्ष्मतम है। मैत्रीभावना में समस्त संख्यातासंख्यात अनंत प्राणियों के प्रति आत्मीयता का भाव होता है कि ये सभी प्राणी दुःख से छूटकर सुखी हो। अब सभी जीवों में मोक्षमार्गानुरूप गुण व्यक्त नहीं होते हैं किंतु कुछ ही प्राणियों में गुण पाये जाने से इनके प्रति प्रमोदभावना होती है। अब इन गुणवानों में भी सभी दीनदुःखी नहीं होते हैं तब इनके प्रति कारुण्यभावना कैसे बनेगी? अतः इन गुणवानों में भी बहुत कम ही बीमार, दीनदुःखी पाये जाते हैं तब इनके दुःखों को दूर करने के लिए कारुण्यभावना होती है इसे ही अपायविचय धर्मध्यान, जीवदया, अभयदान भी कहते हैं। जिनधर्म के विरोधी संख्यात प्राणी ही पाये जाते हैं क्योंकि देव, नारकी, तिर्यंच हमारी किसी भी प्रकार से विराधना विरोध नहीं करते हैं कारण नारकी यहाँ नहीं हैं, देव आते नहीं हैं और पशुपक्षी हमारी सुखसुविधाओं में बाधा उत्पन्न करते नहीं हैं जिससे उनके प्रति माध्यस्थभाव रखना पड़े इस कारण संख्यात मनुष्य ही बाधायें उत्पन्न करते हैं सो उनके प्रति माध्यस्थभाव, रागद्वेष न करने को कहा है। इन्हीं भावनाओं में जीवों की संख्या आगे[2] कम[2] होती गई है किंतु परिणामों की विशुद्धि आगे[2] अनंतगुणी[2] वृद्धि होती गई है जिससे उत्कृष्ट फल की प्राप्ति भी अधिक[2] होती है तथा आगे[2] परिणामों को सम्हालने में अधिक[2] पुरुषार्थ करना पड़ता है।

प्र.-1898 तिर्यंच और देव भी उपसर्ग करते हैं फिर यहाँ मनुष्य करते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि क्वचित् कदाचित् कोई तिर्यंच और देवगण उपसर्ग करते हैं पर ये ना के बराबर हैं किंतु अभक्त, भक्त मनुष्यों के द्वारा प्रायः कर हमेशा उपसर्ग हो रहे हैं और ये उपसर्ग वचन तथा काय के द्वारा आहार, वैय्यावृत्ति या प्रायश्चित्तादि के प्रसंग पर भी होते रहते हैं सो ठीक ही कहा है।

प्र.-1899 अभक्त और भक्त मनुष्यों के द्वारा उपसर्ग हो रहे हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अभक्त, भक्त और माध्यस्थ ऐसे ये तीन प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। माध्यस्थ मनुष्य हमारे किन्हीं भी शुभाशुभ कार्यों में साधक और बाधक नहीं बनते हैं क्योंकि ये उपेक्षा भाव को धारण किये हुए हैं। अभक्त द्वेष बुद्धि या शत्रुता के कारण कभी कभी किंचित् उपसर्ग करते हैं किंतु ये हमेशा सावधान रखते हैं कि अपने आप में सतर्क रहो अन्यथा भंडाफोड़ करने के लिए हम तैयार हैं। भक्त भक्ति कर प्रमादी आलसी बना देता है कि हम आपके कार्यों में पूर्ण सहायता करेंगे ऐसी भक्तों से सांत्वना भरी बातों को सुनकर स्वकर्तव्य छोड़कर पापकार्यों में लिप्त हो जाने से, निर्भय हो जाने से कि हमारा सहायक रक्षक मौजूद है ऐसा सोचने से जीवन अंधकारमय हो जाता है अतः भक्तों के द्वारा ज्यादा उपसर्ग हो रहे हैं।

प्र.-1900 भक्त श्रावकश्राविकायें शिष्यशिष्यायें उपसर्ग करते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- ये दातागण भक्त शिष्यगण आहार के समय कभी कभी जोश में आकर, आँख, भय, लोभ दिखाकर या **दबो वानिया दे उधार** के अनुसार दबाव डालकर आहार देते हैं उस समय बिना मन के भी सहन करते हुए आहार लेना पड़ता है। वैय्यावृत्ति के समय कोई कैसी सेवा करता है, मालिश करता है, सहन करने की ताकत है या नहीं फिर भी लोकलाजवश सहन करना ही पड़ता है क्योंकि सेवकगण **ठीक करने की इच्छा से आते हैं किंतु ठोककर चले जाते हैं** अतः भक्त शिष्यों के द्वारा ये उपसर्ग अधिक किये जाते हैं।

प्र.-1901 क्या वैय्यावृत्ति करना, आहारादि देना उपसर्ग है?

उत्तर- नहीं, ये मोक्षमार्ग, आत्मसाधना में सहायक होने से उपसर्ग नहीं हैं क्योंकि विवेक से सावधानी पूर्वक प्रमाणानुसार किये जाते हैं, ऐसा करने से स्वकर्तव्य का पालन होकर कर्मों की निर्जरा ही होती है किंतु यदि वे ही कार्य भक्ति के अतिरेक से विवेकहीनता, असावधानी से करने पर अवश्य ही मीठे उपसर्ग कहे जाते हैं **अति सर्वत्र वर्जयेत्**- अति सर्वत्र हानिकारक होने से त्याज्य है।

प्र.-1902 चारों प्रकार के उपसर्ग कर्ताओं के प्रति माध्यस्थ भाव क्यों रखना?

उत्तर- उपसर्गकर्ताओं के प्रति माध्यस्थ भाव रखना ही चाहिये। जरा सोचो तो सही क्या ये सभी उपसर्गकर्ता हमेशा उपसर्ग करते हैं? नहीं, कभी[2] कुछ ही करते हैं तभी रागद्वेष का त्याग कर माध्यस्थ भाव अपनाना ही चाहिये, शेष समयों में अपने धर्मध्यान में ही लगे रहना चाहिये।

प्र.-1903 उपसर्ग क्या राग से किये जाते हैं या द्वेष से भी?

उत्तर- मनुष्य, देव और तिर्यंचों के द्वारा राग और द्वेष से भी किये जाते हैं किंतु अचेतन कृत उपसर्ग में राग और द्वेष दोनों ही नहीं होते हैं क्योंकि इसमें चेतनता नहीं पायी जाती यदि अचेतन पदार्थों में रागद्वेष होता तो उन अचेतन पदार्थों को रागद्वेष दूर करने के लिए जीवों जैसा पुरुषार्थ करना पड़ता अतः अचेतन पदार्थों में चारित्र गुण का अभाव होने से उनमें रागद्वेष कैसे होगा?

प्र.-1904 रत्नत्रय धर्म में मन लगाने को शुभ क्यों कहा?

उत्तर- रत्नत्रय धर्म स्वभाव से शुद्ध होने पर भी चारित्रमोहोदय के साथ होने से शुभ और कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने के कारण शुद्ध है अतः कषायी जीवों के रत्नत्रय में मन लगाने को शुभ कहा है।

प्र.-1905 आर्यकर्म किसे कहते हैं और वे आर्यकर्म कौन कौन हैं?

उत्तर- आर्यखंडोत्पन्न सज्जन मनुष्यों के कर्तव्य को, मोक्षमार्गियों के कार्यों को, जिन कर्तव्यों को पालन कर सज्जनों ने अपने लक्ष्य उत्तम मोक्षफल को प्राप्त किया है सो ऐसे मोक्ष के साधनों को आर्यकर्म कहते हैं। शाश्वत सुखशांति प्राप्त कराने वाले मूलगुण, षट् कर्तव्य, प्रतिमाओं का पालन करना आदि आर्यकर्म हैं।

प्र.-1906 क्या आर्यखंड में सभी सज्जन ही पैदा होते हैं?

उत्तर- नहीं, सज्जन और दुर्जन दोनों ही पैदा होते हैं अन्यथा मोक्षमार्ग और संसारमार्ग नहीं बन सकता, न चतुर्गति भ्रमण हो सकता है, ना ही सुख दुःख की तथा राज्यव्यवस्था बन सकती है।

प्र.-1907 तो क्या मलेच्छखंड में केवल दुर्जन ही पैदा होते हैं?

उत्तर- अवश्य ही मलेच्छखंडों में मोक्षमार्ग और मोक्षमार्गानुकूल गुण न होने से केवल दुर्जन ही होते हैं किंतु राज्यनीति समाजनीति लोकमर्यादानुसार दिनचर्या वाले होने से सज्जन भी पैदा होते हैं।

प्र.-1908 दूसरों के साथ में कैसा व्यवहार करना चाहिये और कैसा नहीं?

उत्तर- **आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्** जो आचारविचार, दिनचर्या अपने को कष्टदायी

है वह दूसरों के साथ स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए फिर जागृतावस्था की बात ही क्या तथा जो व्यवहार अपने लिए कुशल मंगल है वही व्यवहार सभी के साथ में करना चाहिए। यह नीति सर्वत्र मोक्षमार्ग और संसारमार्ग में लागू होती है। जब अपन अपना पतन नहीं चाहते हैं तो दूसरे भी अपना पतन नहीं चाहते हैं।

प्र.-1909 तीन मकार और 5 उदुम्बर फलों का त्याग ये मूलगुण जैनों में कब से आये?

उत्तर- ये मूलगुण परंपरागत जैनों में नहीं थे और न हैं किंतु इनका सेवन करने वाले आदिवासियों और अजैनों को जैन बनाने के लिए इनका त्याग कराना इष्ट था। परंपरागत जैनों में इनका प्रयोग ही नहीं होता था तब उनको इनका त्याग कराना व्यर्थ है क्योंकि इनका संयोग वियोग न होने से रागद्वेष ही पैदा नहीं होते हैं अतः जिन भोज्य वस्तुओं में इनके जैसी रूप रस गंध आदि थी उनका त्याग कराया था तभी तो अति प्राचीन ग्रंथों में इनके त्याग के नाम नहीं आते।

प्र.-1910 धर्म/पुण्य किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अपने जो आचारविचार संसार बंधनों से, पराधीनता से, दुःखों से छुड़ाकर उत्तमसुख, मोक्षसुख में पहुंचा दे, धारण करा दे उसे धर्म कहते हैं। भेद 3, 10 हैं। **नाम-** रत्नत्रय, उत्तम दया/क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और शील ये दश धर्म हैं।

प्र.-1911 आ. श्री ने दयादि धर्म कहे हैं तो आपने क्षमादि धर्म क्यों कहे?

उत्तर- क्षमा का पर्यायवाची ही दया होने से इससे उत्तम क्षमादि दश धर्मों को आ. श्री ने ही कहा है।

प्र.-1912 उत्तम क्षमा धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- चरमशरीरी तद्भव मोक्षगामी महामुनियों के अनंतानुबंधी आदि चारों क्रोधों के समूल क्षय होने पर उत्पन्न क्षायिकभाव रूप अप्रतिपाती क्षमाभाव को ही पृथ्वी के समान उत्तम क्षमाधर्म कहते हैं।

प्र.-1913 क्षमाधर्म को पृथ्वी के समान क्यों बतलाया?

उत्तर- जैसे प्राणियों के द्वारा पृथ्वी पर अनेक उत्पात करने पर भी वह न प्रतिकार करती है, न मना करती है ऐसे ही क्षमाशील व्यक्ति अनाड़िओं के प्रति क्रोध नहीं लाते इसलिए क्षमा धर्म को पृथ्वीवत् कहा है। पृथ्वी एकेंद्रिय औदयिकभाव होने से क्षमाधर्म भी एकेंद्रिय या औदयिकभाव है ऐसा मत समझना। क्षायिक क्षमाधर्म अप्रतिपाती, सादि अनंत है शेष दो क्षायोपशमिक और औपशमिकभाव प्रतिपाती, सादिसांत हैं।

प्र.-1914 क्षमाधर्म में उत्तम, क्षायिक और अप्रतिपाति ये विशेषण क्यों लगाये?

उत्तर- क्षमाधर्म के साथ में उत्तम विशेषण लगाने का मतलब यह है कि क्षमा धर्म के जितने अंश व्यक्त होना चाहिये उतने अंश पूर्ण रूप से व्यक्त हो गये हैं अर्थात् अनंतवां भाग व्यक्त हुआ है शेष अनंत बहुभाग अव्यक्त हैं। यदि संपूर्ण अंश व्यक्त हो चुके हैं ऐसा माना जाये तो ये पर्याय धर्म होने से दूसरे क्षण में संपूर्ण व्ययपने को प्राप्त हो जायेंगे फिर अनंत काल तक क्षमा धर्म के कौन से अंश व्यक्त होंगे या होते रहेंगे? अतः अनंतवां भाग ही व्यक्त हुआ है शेष अनंत बहुभाग अव्यक्त ही हैं। तद्रूप में परिणमन करने की शक्ति विद्यमान है तभी तो अनंतानंत काल तक परिणमन करते हुए भी उत्तम क्षमा धर्म का विनाश नहीं होगा किंतु सदवस्था रूप में विद्यमान रहेगा क्योंकि यह शुद्ध भाव है, क्रोध कषाय के क्षय से उत्पन्न होने से क्षायिकभाव है और भविष्य में कभी भी नहीं छूटेगा, न पृथक् होगा इसलिए अप्रतिपाती है। उत्पन्न होने की अपेक्षा सादि और अंत रहित होने से अनंत है शेष दो क्षमाधर्म अंत सहित होने से सांत हैं।

प्र.-1915 आ. ने क्षमाधर्म को शुभ कहा है और आपने शुद्धभाव सो यह अंतर क्यों?

उत्तर- अशाश्वत, प्रतिपाती और सादिसांत होने से आ. श्री ने औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भाव

क्षमाधर्म को शुभ कहा है तथा हमने क्षायिकभाव स्वरूप उत्तम क्षमाधर्म को शुद्ध कहा है अतः अपेक्षा भेद होने से इस कथन में कोई अंतर नहीं है, सर्वत्र निर्दोष है।

प्र.-1916 यह क्षायिक उत्तम क्षमाधर्म कैसे और कहाँ उत्पन्न होता है?

उत्तर- क्षपकश्रेणीवाले के नौवें गुणस्थान के सप्तमभाग में क्रोधकषाय के क्षय से उत्पन्न होता है।

प्र.-1917 यह औपशमिक भाव क्षमाधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- उपशमश्रेणी में 9वें गुणस्थान के 7वेंभाग में क्रोधोपशम से औपशमिकभाव क्षमाधर्म होता है।

प्र.-1918 क्षायोपशमिक भाव कैसे उत्पन्न होता है और कहाँ से कहाँ तक रहता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि तीन क्रोध के उपशम से तथा संज्वलन क्रोध का तीव्रोदय, मंदोदय, मंदतरोदय, मंदतमोदय से यह भाव 7वें में उत्पन्न होकर 6वें गुण. से 9वें के छठवें भाग तक रहता है।

प्र.-1919 औपशमिक क्षमाधर्म और क्षायिक क्षमाधर्म कहाँ तक रहता है?

उत्तर- औपशमिक क्षमाधर्म नौवें गुणस्थान के 7वें भाग से 11वें गुणस्थान के अंतिम समय तक और क्षायिक उत्तम क्षमाधर्म नौवें गुणस्थान के 7वें भाग से लेकर सिद्धों तक रहता है।

प्र.-1920 क्षायोपशमिक क्षमाधर्म चौथे गुणस्थान में कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- क्षायोपशमिक क्षमाधर्म चौथे गुणस्थान में अनंतानुबंधी क्रोध के उदयाभाव में उत्पन्न होता है।

प्र.-1921 क्षायोपशमिकभाव क्षमाधर्म पाँचवें गुणस्थान में कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोधाभाव में क्षायोपशमिकभाव क्षमाधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-1922 क्षायोपशमिक क्षमाधर्म अव्रतियों के होता है तो शास्त्रों में क्यों नहीं कहा?

उत्तर- चौथे गुण. में संयमाचरण का अभाव होने से आचार्यों ने इसका कथन नहीं किया और हमने यहाँ सम्यक्चारित्र की अपेक्षा क्षायोपशमिकभाव क्षमाधर्म का कथन किया अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.-1923 यदि चौथे गुणस्थान में चारित्र है तो उसे अविरत सम्यग्दृष्टि नाम क्यों दिया?

उत्तर- चौथे गुणस्थान में चारित्र की वृद्धि के अंश रूप देशचारित्र सकलचारित्र का निषेध किया है, सम्यक्चारित्र का नहीं। यदि सम्यक्चारित्र का निषेध करते तो क्या सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के साथ मिथ्याचारित्र रह सकता है? यदि चौथे गुणस्थान में मिथ्याचारित्र है तो अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में क्या उत्पन्न हुआ? अनंतानुबंधी कषाय को सम्यक्त्व और चारित्र का घातक क्यों कहा? चारित्रमोह की प्रकृति क्यों कही? अतः चौथे गुणस्थान में देशचारित्र और सकल चारित्र का निषेध किया है सम्यक्चारित्र का नहीं किया।

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः॥3॥ र.श्रा आ. श्री समंतभद्रजी

अर्थः- धर्म के स्वामी ईश्वर जिनेंद्र रत्नत्रय को धर्म और इनके विपरीत मिथ्यात्रय को संसार का मार्ग कहते हैं। जब यहाँ पर मिथ्यात्रय को संसार का मार्ग कहा है तो जहाँ इनका पूर्णतः अभाव हो गया है वहाँ मोक्षमार्ग ही है और जब मोक्षमार्ग है तो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों होना ही चाहिये।

पात्रं त्रिभेदमुक्तं संयोगो मोक्षकारणगुणानाम्।
अविरतसम्यग्दृष्टिः विरताविरतश्च सकलविरतश्च॥71॥ पु.सि.उ.

अर्थः- मोक्ष के कारण रत्नत्रय का संयोग जिनमें है वे पात्र अविरतसम्यग्दृष्टि, देशव्रती और सकलव्रती मुनिजन हैं। यहाँ भी आ. श्री अमृतचंद्रजी ने चौथे गुणस्थान में चारित्र का सद्भाव बतलाया है।

प्र-1924 यह कैसे जाना कि चौथे गुण. में देश. और सकल. का निषेध किया है, सम्यक्चारित्र का नहीं?

उत्तर- आ. श्री समंतभद्रजी के वचन से जाना जाता है कि चौथे गुणस्थान में सम्यक्चारित्र की वृद्धि के अंश स्वरूप देशचारित्र सकलचारित्र का निषेध किया है, सम्यक्चारित्र का नहीं। कहा भी है:-

गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्ति वृद्धि रक्षांगम्।
चरणानुयोग समयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति।।45।।

अर्थः-सम्यग्ज्ञान गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारण स्वरूप चरणानुयोग शास्त्र को जानता है। इससे जाना जाता है कि देशचारित्र और सकल चारित्र ये दो चारित्र के भेद न होकर चारित्र की वृद्धि के भेद हैं अतः चौथे गुणस्थान में सम्यक्चारित्र होता है यदि सम्यक् चारित्र नहीं माना जाय तो क्या सम्यक्चारित्र के बिना दो का नाम मोक्षमार्ग है? यदि है तो **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः**।। त.सू.। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता पूर्वक अपूर्णता का नाम मोक्षमार्ग है ऐसा सूत्र में क्यों कहा? अतः दो का नाम मोक्षमार्ग नहीं है तभी तो चौथे गुणस्थान में 41 प्रकृतियों की बंधविच्छुत्ति और आहारकद्विक ये अबंध प्रकृतियां इन 43 प्रकृतियों का संवर होता है। इस सम्यक्चारित्र को ही आ. श्री कुंदकुंद ने चा.पा. में सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा है तो वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र क्या है?

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए।
मग्गणगुणसंसणाए उवगूहण रक्खणाए य।11।
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्तंअमोहेण।12।। चा.पा.

अर्थः-मोह का अभाव होने से जिनोपदिष्ट सम्यक्त्व का आराधक सम्यग्दृष्टि वात्सल्य, विनय, दान देने में दक्ष, दया, मोक्षमार्ग के प्रसंशक, उपगूहन, संरक्षण, स्थितिकरण और आर्जवभाव आदि लक्षणों से जाना जाता है कि यह सम्यक्त्वाचरण चारित्र ही है। अब इसका फल बताते हैं।

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ताणं।
सम्मत्तमणुचरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा।।20।। चा.पा.

अर्थः-इस सम्यक्त्वाचरणचारित्र का फल संख्यातगुणी और असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होना कहा है जब वह अविरतसम्यग्दृष्टि सामान्य धर्म कार्यों में परिणमन करता है तब संख्यातगुणी निर्जरा और जब विशेष रूप से धर्मकार्यों में परिणमन करता है तब असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा करता है। यदि कोई चौथे गुणस्थान में मोक्षमार्ग मानकर भी सम्यक्चारित्र का निषेध करे तो उसे नरक व स्वर्गों में हजारों, लाखों, पल्यों, सागरों तक तथा भोगभूमियों में पल्यों तक कर्मभूमि में संख्यातवर्ष तक चारित्रगुण को अपरिणामी मानकर अर्थक्रिया का अभाव मानना पड़ेगा किंतु द्रव्य और गुणों के परिणमन स्वभाव का अभाव नहीं होता है क्योंकि अर्थक्रिया होना प्रत्येक द्रव्य और गुणों का आत्मभूत स्वभाव है, लक्षण है अतः अर्थक्रियाभाव होने से द्रव्य और गुण का अभाव हो जाता है या नित्य कूटस्थपने का सर्वथा अपरिणामी होने से सांख्यमत का प्रसंग आता है यह दोष है या एकगुण अपरिणामी और शेष अनंतगुण परिणामी होने से अव्याप्ति दोष आता है या पर्याय के बिना पर्यायी, स्वभाव के बिना स्वभाववान कैसा?

प्र.-1925 तो क्या सांख्यमत या अन्यमतों का प्रसंग न आये इस भय से स्वीकार करना चाहिये या अन्य कोई दूसरा हेतु है या वस्तु व्यवस्था ही ऐसी है?

उत्तर- नहीं, सांख्यमत या अन्य मतों का प्रसंग न आये इस भय से स्वीकार करना यह कोई मोक्षमार्ग,

कल्याण का मार्ग नहीं है किंतु वस्तु व्यवस्था ही ऐसी है, इसे दृढ़ता से ही स्वीकार करना चाहिये।

प्र.-1926 तीनों प्रकार के क्षमाधर्मों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- क्षायिक उत्तम क्षमाधर्म के क्षपकश्रेणी वाले सरागी मुनि, क्षीणमोही, केवली और सिद्ध तथा औपशमिक क्षमाधर्म के उपशमश्रेणी वाले सरागी मुनि, वीतरागी उपशांतमोही मुनि एवं क्षायोपशमिक क्षमाधर्म के चौथे से 9वें गुणस्थान के 6वें भाग तक अव्रती, अणुव्रती और सरागी मुनि स्वामी हैं।

प्र.-1927 सरागी मुनि किसे कहते हैं और कहाँ से कहाँ तक होते हैं?

उत्तर- संज्वलन कषाय संबंधी लोभ कषायोदय सहित 6वें से 10वें गुणस्थान तक मुनियों को सरागी मुनि कहते हैं किंतु वर्तमान में 6वें- 7वें गुणस्थान वाले मुनि होते हैं, इसके आगे के नहीं।

प्र.-1928 मार्दवधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- नम्रवृत्ति को, अनंतानुबंधी आदि चारों मान के क्षय से उत्पन्न भाव को मार्दवधर्म कहते हैं।

प्र.-1929 मार्दवधर्म क्षायिकभाव कहाँ उत्पन्न होता है और कहाँ तक रहता है?

उत्तर- क्षपकश्रेणीवाले चरमशरीरीमुनियों के 9वें गुण. के 8वेंभाग में उत्पन्न होकर सिद्धों तक रहता है।

प्र.-1930 मार्दवधर्म कैसा है और कौन सा भाव है?

उत्तर- मार्दवधर्म शुद्ध है, अप्रतिपाती है, सादिअनंत और वीतराग है। शुभ है, सादिसांत है, सराग है क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और औपशमिकभाव है।

प्र.-1931 मार्दवधर्म में उत्तम, क्षायिक, वीतराग, अप्रतिपाती विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- इसके समान दूसरा धर्म श्रेष्ठ न होने से उत्तम विशेषण तथा मान के पूर्ण क्षय से क्षायिक, वीतराग विशेषण लगाया है। प्राप्ति के बाद कभी छूटेगा नहीं इसलिए अप्रतिपाती विशेषण लगाया है।

प्र.-1932 मार्दवधर्म शुभ, शुद्ध, साद्यनंत, सादिसांत, सराग कहाँ से कहाँ तक होते हैं?

उत्तर- चौथे से 9वें गुणस्थान के सातवें भाग तक शुभ तथा सराग मार्दव धर्म, इसके आगे शुद्ध मार्दव धर्म, 9वें गुणस्थान के 8वें भाग में उत्पाद होने से सादि और व्यय न होने से सिद्धों तक अनंत, उत्पाद और विनाश सहित होने से सादि सांत युगलधर्म होते हैं।

प्र.-1933 कौन सा मार्दवधर्म सादि सांत है?

उत्तर- क्षायोपशमिक और औपशमिक मार्दवधर्म उत्पाद व्यय स्वभाव वाले होने से सादि सांत हैं।

प्र.-1934 मार्दवधर्म को अप्रतिपाती क्यों कहा?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि सभी मान के क्षय से उत्पन्न उत्तम मार्दवधर्म अप्रतिपाती है, मान कषाय के क्षय से पुनः भाव मान कषाय उत्पन्न नहीं होती है अतः उत्तम मार्दवधर्म को अप्रतिपाती कहा है।

प्र.-1935 मार्दवधर्म को क्षायोपशमिक भाव क्यों कहा?

उत्तर- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण मानकषाय के स्पर्धकों का पूर्णतः उदयाभावी क्षय इन्हीं के आगामीकाल में उदय में आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम तथा संज्वलनमान कषाय के तीव्रोदय, मंदोदय, मंदतरोदय, मंदतमोदय से उत्पन्न मार्दवधर्म को क्षायोपशमिक भाव कहा है।

प्र.-1936 इस मार्दवधर्म को औपशमिक भाव क्यों कहा?

उत्तर- उपशम श्रेणी के नौंवे गुणस्थान के आठवें भाग में संज्वलन मान के पूर्ण उपशम से उत्पन्न भाव को औपशमिक मार्दवधर्म कहा है। बेहोश व्यक्तिवत् इस अवस्था में मानकषाय उदय के अयोग्य होती है ।

प्र.-1937 इन तीन प्रकार के मार्दवधर्म में से कौनसा मार्दवधर्म शुभ है या शुद्ध?

उत्तर- क्षायोपशमिकभावधर्म और औपशमिकभावधर्म शुभ हैं तथा क्षायिक मार्दवभाव शुद्ध है।

प्र.-1938 यह मार्दवधर्म कैसा है और कब तक रहेगा?

उत्तर- क्षायिक उत्तममार्दवधर्म सादिअनंत है जो सिद्ध भगवंतों में अनंतकाल तक रहेगा।

प्र.-1939 मार्दवभाव धर्म कहाँ उत्पन्न होता है और कहाँ तक तथा स्वामी कौन[2] हैं?

उत्तर- क्षायिक मार्दवभाव धर्म नौंवे गुणस्थान के आठवें भाग में उत्पन्न होकर सिद्धों तक रहता है। **स्वामी-:** सरागी मुनि, वीतरागी मुनि, निर्ग्रंथ मुनि, स्नातक मुनि और सिद्ध परमेष्ठी हैं। औपशमिक मार्दवभाव धर्म नौंवे गुणस्थान के आठवें भाग में उत्पन्न होकर उपशांतमोही ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है। **स्वामी:-** सरागी मुनि और उपशांतमोही वीतरागी मुनि हैं। **स्वामी:-**क्षायोपशमिक मार्दवभाव धर्मचौथे गुणस्थान से लेकर नौंवे गुणस्थान के सातवें भाग तक रहता है।

प्र.-1940 क्षायोपशमिकभाव मार्दवधर्म चौथे गुणस्थान में कैसे होता है?

उत्तर- क्षायोपशमिक मार्दवभाव धर्म चौथे गुणस्थान में अनंतानुबंधी मान के अभाव में होता है।

प्र.-1941 क्षायोपशमिकभाव मार्दवधर्म पाँचवें गुणस्थान में कैसे होता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी व अप्रत्याख्यानावरणीयमान के अभाव में क्षायोपशमिक मार्दवधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-1942 क्षायोपशमिक मार्दवधर्म 4थे, 5वें गुण. में है तो शास्त्रों में क्यों नहीं कहा?

उत्तर- आचार्यों ने चौथे पाँचवें गुणस्थान में देशचारित्र, सकलचारित्र न होने से कथन नहीं किया है और हमने यहाँ सम्यक् चारित्र की अपेक्षा क्षायोपशमिक मार्दवधर्म का कथन किया है अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.-1943 आर्जवधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- छलकपट, मायाचार के त्याग या अभाव करने को, योगों की सरलता को आर्जवधर्म कहते हैं।

प्र.-1944 केवल योगों की सरलता को आर्जवधर्म कहते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, यदि केवल योगों की सरलता का नाम आर्जवधर्म है तो कामीकामिनी, व्यापारियों के आर्जवधर्म बन जायेगा अतः सिर्फ योगों की सरलता को आर्जवधर्म नहीं कहते किंतु क्षमा और मार्दवधर्म पूर्वक मायाचार, छलकपट के त्याग को आर्जवधर्म कहते हैं।

प्र.-1945 योगों की सरलता किसे कहते हैं?

उत्तर- क्षमा और मार्दवधर्म पूर्वक मन में मंदिर जाने का विचार है वैसे ही वचन से बोला कि मुझे मंदिर जाना है ऐसे ही शरीर से मंदिर की तरफ गमन करना इसे ही त्रियोग की सरलता कहते हैं।

प्र.-1946 मायाचार कैसे और किसके लिए करता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि विषयकषायाधीन होकर दूसरों को धोखे में/ कष्ट में डालने के लिए विश्वासघात कर मन वचन काय की वक्रता या सरलता पूर्वक भी मायाचार करता है।

प्र.-1947 अभव्य जीवों के और मंदकषायी जीवों के क्या आर्जवधर्म होता है?

उत्तर- मोक्षमार्गस्थ धर्मों की उत्पत्ति बिना रत्नत्रयधर्म के नहीं होती है। इस कारण अभव्य और मंदकषायी जीवों के रत्नत्रयधर्म न होने से इनके केवल शुभ लेश्यायें तथा सरल परिणाम होते हैं किंतु धर्म नहीं होता।

प्र.-1948 योगों की सरलता को बतलाने के लिए ये दो दृष्टांत क्यों दिये?

उत्तर- कामी और कामिनी के मन वचन काय में सरलता, एकता ऐसे होती है जैसे दोनों के मन में कामवासना की भावना जागृत हुई है सो इसी भावनानुसार दोनों परस्पर में तदनुकूल प्रेम वार्तालाप करते हैं और तत्संबंधी काय का हलनचलन, आलिंगन, उठना बैठनादि करते हैं। ऐसे ही व्यापारी के मन में धन कमाने की इच्छा है, वचन से बोलता भी है कि पेट के लिए दो रोटी कमाना है ऐसे ही कायक्रिया करता है अतः केवल योगों की सरलता का नाम आर्जवधर्म मोक्षमार्ग नहीं कहा ऐसा इन दृष्टांतों से ऐसा समझना।

प्र.-1949 आर्जवधर्म कैसे उत्पन्न होता है और कौनसा भाव है?

उत्तर- आर्जवधर्म संपूर्ण मायाकषाय के क्षय से होता है। क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिकभाव है।

प्र.-1950 क्षायिकभाव आर्जवधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- चरमशरीरी मुनि क्षपकश्रेणी आरोहण करने वाले के नौंवे गुणस्थान के नौंवे भाग में अनंतानुबंधी आदि चारों माया कषाय के समूल क्षय से क्षायिक उत्तम आर्जवधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-1951 यह क्षायिकभाव उत्तम आर्जवधर्म किस प्रकार है?

उत्तर- उत्तम है, अप्रतिपाती है, सादि अनंत है, अक्षय है, शुद्ध है इत्यादि अनंत विशेषणों से युक्त है।

प्र.-1952 यह आर्जवधर्म उत्तम कैसे है?

उत्तर- आर्जवधर्म के जितने अंश व्यक्त होना चाहिये उतने हो चुके हैं और इसके समान कोई दूसरा नहीं है अतः आर्जवधर्म उत्तम है।

प्र.-1953 यह उत्तम आर्जवधर्म अप्रतिपाती कैसे है?

उत्तर- समस्त माया कषाय का समूल क्षय होने से उत्तम आर्जवधर्म अप्रतिपाती है क्योंकि प्रतिपात के कारण विषयकषायें हैं अतः कारण के अभाव में कार्य नहीं होता है सो इसे अप्रतिपाती कहा है।

प्र.-1954 यह उत्तम आर्जवधर्म सादि अनंत कैसे है?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि चार प्रकार की माया कषाय के समूल क्षय की अपेक्षा सादि और भविष्य में कभी भी व्यय न होने से अनंत है इस कारण उत्तम आर्जवधर्म को सादि अनंत कहा है।

प्र.-1955 यह उत्तम आर्जवधर्म अक्षय कैसे है?

उत्तर- यह उत्तम आर्जवधर्म भविष्य में कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं होगा इसलिए इसे अक्षय कहा है।

प्र.-1956 यह उत्तम आर्जवधर्म शुद्ध कैसे है?

उत्तर- इस उत्तम आर्जवधर्म में अब किंचित् भी माया कषाय रूपी मैल का संबंध या मिलावट न होने से शुद्ध कहा है क्योंकि अशुद्धता अभेद में भेद करने से या परद्रव्य के संबंध से आती है।

प्र.-1957 यह क्षायोपशमिक आर्जवधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि तीन मायाकषाय के अभाव में और देशघाति संज्वलन माया कषाय के तीव्रोदय, मंदोदय, मंदतरोदय, मंदतमोदय से आर्जवधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-1958 संज्वलन कषाय की तीव्रोदयादि अवस्थायें किस किस गुणस्थान में होतीं हैं?

उत्तर- संज्वलन कषाय का तीव्रोदय छठवें गुणस्थान में, मंदोदय सातवें गुणस्थान में, मंदतरोदय आठवें गुणस्थान में और मंदतमोदय नौवें गुणस्थान में होता है।

प्र.-1959 क्षायोपशमिकभाव आर्जवधर्म चौथे गुणस्थान में कैसे होता है?

उत्तर- क्षायोपशमिक आर्जवभाव धर्म चौथे गुण. में अनंतानुबंधी माया के पूर्णतः अभाव में होता है।

प्र.-1960 क्षायोपशमिकभाव आर्जवधर्म पाँचवें गुणस्थान में कैसे होता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय माया के अभाव में क्षायोपशमिकभाव आर्जवधर्म होता है।

प्र.-1961 आर्जवधर्म चौथे पाँचवें गुणस्थान में होता है तो शास्त्रों में क्यों नहीं कहा?

उत्तर- आचार्यों ने चौथे गुण. में देशचारित्र सकलचारित्र का अभाव होने से नहीं कहा और यहाँ सम्यक्चारित्र की अपेक्षा क्षायोपशमिक आर्जवधर्म का कथन किया है अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.-1962 यह औपशमिकभाव आर्जवधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- उपशम श्रेणी वाले चरम अचरम शरीरी मुनियों के नौंवे गुणस्थान के नौंवे भाग में समस्त प्रकार की माया का उपशम होने से औपशमिक भाव आर्जवधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-1963 यह औपशमिकभाव आर्जवधर्म कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर- औपशमिकभाव आर्जवधर्म नौंवे गुण. के नैंवे भाग में उत्पन्न होकर 11वें गुण. तक रहता है।

प्र.-1964 ये दोनों आर्जवभाव क्या प्रतिपाती तथा शुभ हैं और कबतक रहेंगे?

उत्तर- ये दोनों भाव प्रतिपाती, शुभ, सादिसांत हैं, क्षायोपशमिकभाव जघन्यतः अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक जीवन पर्यंत रह सकता है। औपशमिकभाव का जघन्योत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त ही है।

प्र.-1965 इस आर्जवधर्म के स्वामी कौन हैं और कौन नहीं हैं?

उत्तर- इसके स्वामी मोक्षमार्गी हैं, संसारमार्गी नहीं ऐसे ही सभी धर्मों को समझना चाहिये।

प्र.-1966 शौचधर्म किसे कहते हैं, कैसे उत्पन्न होता है, भेद और नाम कौन[2] हैं?

उत्तर- स्वच्छ दर्पणवत् चारित्रगुण के परिणामों को उत्तम शौचधर्म कहते हैं। लोभ के समूल क्षय से होता है। भेद 3 हैं। नामः- क्षायिकशौचधर्म, क्षायोपशमिकभावशौचधर्म, औपशमिकभाव शौचधर्म।

प्र.-1967 संज्वलन लोभ का क्षय किस क्रम से होता है?

उत्तर- संज्वलन बादर लोभ नौवें गुणस्थान में बादरकृष्टि से सूक्ष्मकृष्टि में परिणमन कर दसवें गुणस्थान के अंत में स्वमुख से सूक्ष्मलोभ का समूल क्षय होता है।

प्र.-1968 शौचधर्म कौन सा भाव है?

उत्तर- शुद्धभाव और शुभभाव या उत्तम क्षायिकभाव, क्षायोपशमिक भाव और औपशमिक भाव है।

प्र.-1969 क्षायिक शौचधर्म कैसे उत्पन्न होता है, कौनसा भाव है, अप्रतिपाती है क्या?

उत्तर- लोभ के क्षय से शौचधर्म उत्पन्न होता है, शुद्धभाव है, अप्रतिपाती है। सादिअनंत भंग वाला है।

प्र.-1970 क्षायिकभाव उत्तम शौचधर्म कहाँ उत्पन्न होता है?

उत्तर- क्षायिकभाव उत्तम शौचधर्म दसवें गुणस्थान के अंत में लोभ के पूर्ण क्षय से उत्पन्न होता है।

प्र.-1971 क्षायोपशमिकभाव शौचधर्म कैसे उत्पन्न होता है और कौनसा भाव है?

उत्तर- क्षायोपशमिक शौचधर्म अनंतानुबंधी आदि 3 लोभ के उदयाभाव और संज्वलन लोभ के तीव्रोदय, मंदोदय, मंदतरोदय, मंदतमोदय और सूक्ष्म लोभोदय से होता है, शुभ भाव है, प्रतिपाती है।

प्र.-1972 क्षायोपशमिकभाव शौचधर्म के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- क्षायोपशमिक भाव शौचधर्म के स्वामी चौथे से लेकर दसवें गुणस्थान तक के जीव हैं।

प्र.-1973 तीव्रोदय, मंदोदय, मंदतरोदय, मंदतमोदय, सूक्ष्मलोभोदय कहाँ पर होता है?

उत्तर- 6वें गुणस्थान में संज्वलन लोभ का तीव्रोदय, 7वें गुणस्थान में मंदोदय, 8वें गुणस्थान में

मंदतरोदय, 9वें गुणस्थान में मंदतमोदय और 10वें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभोदय होता है।

प्र.-1974 क्षायोपशमिकभाव शौचधर्म चौथे गुणस्थान में कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- क्षायोपशमिकभाव शौचधर्म चौथे गुणस्थान में अनंतानुबंधी लोभ के अभाव में होता है।

प्र.-1975 क्षायोपशमिकभाव शौचधर्म पाँचवें गुणस्थान में कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय लोभ के अभाव में क्षायोपशमिक शौचधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-1976 क्षायोपशमिकभाव शौचधर्म अव्रतियों के है तो शास्त्रों में क्यों नहीं कहा?

उत्तर- आचार्यों ने चौथे गुणस्थान में देशचारित्र सकलचारित्र न होने से कथन नहीं किया है और हमने यहाँ सम्यक्चारित्र की अपेक्षा क्षायोपशमिक शौचधर्म का कथन किया अतः कोई दोष नहीं है।

प्र.-1977 अव्रतियों के क्षमादिधर्मों का कथन आपने आचार्यों के विरुद्ध क्यों किया?

उत्तर- जब यहाँ सभी मोक्षमार्गी भावि नैगमनय से राजा श्रेणिक के जीव नारकी को भावी तीर्थंकर मानकर पूजा आराधना करते हैं तो चौथे गुणस्थान में इन धर्मों का सद्भाव मानने में आपत्ति क्यों है? अथवा चौथे गुणस्थान वाला अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र स्वरूप देव शास्त्र गुरु का भक्त जघन्य धर्मायतन होने से इन चारों धर्मों को जघन्य अंश रूप में अस्तित्व मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये क्योंकि आयतनों में धर्म विशेषण लगाया है अतः बिना धर्म के धर्मायतन कौन कहेगा?

प्र.-1978 क्षायिक भाव शौचधर्म का कितना काल है?

उत्तर- क्षायिकभाव शौचधर्म का संसारापेक्षया जघन्य काल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम एकपूर्व कोटीकाल है तथा मध्यमकाल अपनी आयु में आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम जीवनकाल प्रमाण है और सिद्ध भगवंतों की अपेक्षा अनंतानंत काल है।

प्र.-1979 क्षायिकभाव उत्तम क्षमादि तीनों धर्मों का जघन्योत्कृष्ट काल कितना है?

उत्तर- क्षायिकभाव उत्तम क्षमाधर्म, उत्तम मार्दवधर्म, उत्तम आर्जवधर्म का संसारापेक्षया जघन्य काल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल 8 वर्ष अंतर्मुहूर्त कम एकपूर्व कोटीकाल है तथा मध्यमकाल अपनी आयु में 8 वर्ष अंतर्मुहूर्त कम जीवनकाल प्रमाण है व सिद्ध भगवंतों की अपेक्षा अनंतानंत काल है।

प्र.-1980 औपशमिकभाव क्षमादि चारों धर्मों का जघन्योत्कृष्ट काल कितना है?

उत्तर- औपशमिकभाव क्षमादि चारों धर्मों का जघन्योत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त ही है। उत्पाद विनाश सहित है।

प्र.-1981 क्षायोपशमिकभाव क्षमादि चारों धर्मों का जघन्योत्कृष्ट काल कितना है?

उत्तर- क्षायोपशमिकभाव क्षमादि चारों धर्मों का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल आठवर्ष अंतर्मुहूर्त कम जीवनकाल प्रमाण है। उत्पाद विनाश सहित है क्योंकि ये दोनों भाव प्रतिपाती हैं।

प्र.-1982 जब ये क्षमादि चारों धर्म अर्थपर्याय हैं तो इनका इतना काल क्यों कहा?

उत्तर- अर्थ पर्याय का अस्तित्व काल एक समय का है यह सत्य है फिर भी यहाँ सादृश्य सामान्य की अपेक्षा अनंतकाल तक तद्रूप में परिणमन करते रहेंगे अतः इतना काल कहा है।

प्र.-1983 सत्यधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- वस्तु का सप्रतिपक्ष शुद्धाशुद्ध, सादिअनादि, ध्रुव अध्रुव स्वभाव विभाव आदि अनंतधर्म युगलों को केवलज्ञान के द्वारा जानकर यथावत् परिणमन और प्रतिपादन करने को सत्यधर्म कहते हैं।

प्र.-1984 सत्यधर्म कैसे उत्पन्न होता है, किसके होता है और कब तक रहेगा?

उत्तर- ज्ञानावरण कर्म के समूल क्षय से तेरहवें गुणस्थान में सत्यधर्म उत्पन्न सयोगी अयोगी और

सिद्धों के होता है। जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल आठवर्ष अंतर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटी काल या जिसका जितना जीवनकाल है उसमें 8 वर्ष अंतर्मुहूर्त कम उतना है, सिद्धों की अपेक्षा अनंतानंत काल तक रहेगा।

प्र.-1985 सत्यधर्म वचनात्मक होने से अयोगियों और सिद्धों के कैसे हो सकता है?

उत्तर- जितने भी चेतनाचेतनात्मक धर्म हैं वे वचनात्मक नहीं होते हैं किंतु दूसरे जीवों को समझाने के लिए वचन सहायक होते हैं। वचन स्वयं जड़ स्वरूप भाषा वर्गणा की पर्याय है, अचेतन है और सत्यधर्म आत्मा का स्वभाव होने से सिद्धों में भी सद्भाव रहता है।

प्र.-1986 उत्तम सत्यधर्म कौनसा भाव है, अप्रतिपाती और शुद्ध है क्या?

उत्तर- उत्तम सत्यधर्म ज्ञानावरण कर्म के क्षय की अपेक्षा क्षायिकभाव है, अप्रतिपाती और शुद्ध है।

प्र.-1987 उत्तम सत्यधर्म अप्रतिपाती और शुद्ध क्यों है?

उत्तर- यह सत्यधर्म क्षायिकभाव होने से अप्रतिपाती है क्योंकि क्षायिकभाव प्राप्त होने के बाद छूटता नहीं है। ज्ञानावरणीय कर्म का सद्भाव न होने से, मिलावट न होने से शुद्ध है।

प्र.-1988 उत्तम सत्यधर्म औपशमिकभाव और क्षायोपशमिकभाव है या नहीं?

उत्तर- नहीं, उत्तम सत्यधर्म दोनों भाव रूप नहीं है क्योंकि ये दोनों भाव प्रतिपाती हैं, सरागियों और उपशांतमोही वीतरागियों के पाये जाते हैं जबकि उत्तम सत्यधर्म सर्वज्ञ केवलियों के पाया जाता है।

प्र.-1989 सत्यधर्म औपशमिकभाव और क्षायोपशमिकभाव क्यों नहीं है?

उत्तर- ज्ञानावरणीयकर्म में उपशमकरण न होने से औपशमिकभाव नहीं होता किंतु क्षयोपशम करण होने की अपेक्षा सत्यधर्म क्षायोपशमिकभाव रूप बन जाता है। संयम पूर्वक 6-12 तक होता है।

प्र.-1990 तो फिर ग्रंथकारजी ने यहाँ सत्यधर्म को शुभभाव क्यों कहा?

उत्तर- कर्मसिद्धांत की अपेक्षा सत्यधर्म को ग्रंथकारजी ने शुभ नहीं कहा है किंतु चरणानुयोग की अपेक्षा धर्म के, व्रत के संस्कारों की अपेक्षा, प्रतिज्ञा की अपेक्षा से शुभ कहा है।

प्र.-1991 सत्यधर्म में उत्तम विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- आत्मा में अनंत धर्म हैं ये सभी धर्म अपने आपमें पूर्ण सत्य हैं। परमपारिणामिकभाव स्वरूप हैं फिर भी मोक्षमार्ग में जो नैमित्तिकभाव सहायक हैं वे धर्म सत्य होने पर भी आवरणकर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले ज्ञान के साथ वचन प्रयोग में सत्य विशेषण लगाया या लोक में नाना प्रकार के जो सत्यवचन माने गये हैं उन सभी के निराकरण करने के लिए उत्तम विशेषण लगाया है।

प्र.-1992 सत्यधर्म का विरोधी कौन है, फल क्या है और झूंठपाप का क्या फल है?

उत्तर- सत्यधर्म का विरोधी झूंठवचन है। सत्यधर्म से लोक में उच्चता, श्रेष्ठता, प्रतिष्ठा, विश्वास प्राप्त होना ही फल है। झूंठपाप से अपमान तिरस्कार, अविश्वास प्राप्त होता है, लोक में सभी भयभीत होते हैं कि यह आ गया है, न मालुम कब कहाँ क्या बोल देवे, कहाँ फंसा देवे आदि विचारकर डर जाते हैं। कोई भी सज्जन इसका साथ नहीं देते, इज्जत बिगड़ जाने से सर्वत्र बदनाम हो जाता है।

प्र.-1993 सत्यधर्म चौथे पाँचवें गुणस्थान में होता है या नहीं?

उत्तर- 4थे 5वें गुणस्थान में सत्यधर्म योगों की अपेक्षा, अणुव्रतों की अपेक्षा, जनपद आदि सत्यवचनों की अपेक्षा तथा स्वयं में सत्यधर्म के प्रति आस्था ज्ञान और चर्या होने से सत्यधर्म का अस्तित्व बन जाता है।

प्र.-1994 ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिक भाव सत्यधर्म क्यों नहीं कहा?

उत्तर- ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिकभाव चारित्र की अपेक्षा कहा गया है, ज्ञान की अपेक्षा से नहीं क्योंकि ज्ञान को औपशमिक भाव में नहीं गिनाया है।

प्र.-1995 संयम और संयमधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- **वद समिदि कसायाणं दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं।**

धारण पालण णिग्गह चाग जओ संजमो भणिओ।।465।। जी.कां.

अर्थः- व्रतों का धारण, समितियों का पालन, कषायों का निग्रह, दंडों का त्याग करना तथा इंद्रिय और मन को जीतना संयम है। समीचीन यम को, आत्मरक्षा को, स्वाधीनता को संयमधर्म कहते हैं।

प्र.-1996 संयमधर्म कहाँ कैसे उत्पन्न होता है, किसके होता है और कबतक रहेगा?

उत्तर- उत्तमसंयमधर्म 14वें गुणस्थान के अंतिमसमय में अघातिया के समूलक्षय से परम यथाख्यात संयम उत्पन्न होता है, मनुष्यपर्याय की अपेक्षा जघन्योत्कृष्टकाल एकसमय और सिद्धों की अपेक्षा अनंतानंतकाल तक रहेगा।

प्र.-1997 संयमधर्म कौनसा भाव है अप्रतिपाती है या प्रतिपाती, शुद्ध है या अशुद्ध?

उत्तर- परमयथाख्यात संयमधर्म वास्तव में क्षायिकभाव है, अप्रतिपाती है और परमशुद्ध है।

प्र.-1998 संयमधर्म औपशमिक भाव और क्षायोपशमिक भाव है या नहीं?

उत्तर- संयमधर्म औपशमिकभाव और क्षायोपशमिकभाव दोनों प्रकार का कहा है।

प्र.-1999 इस संयम धर्म को औपशमिक भाव क्यों कहा?

उत्तर- चरमशरीरी या अचरम शरीरी उपशम श्रेणी आरोहण करने वाले उपशांतमोही मुनियों के द्रव्यभाव रूप मोहनीय कर्म का पूर्ण रूप से उपशम होने के कारण औपशमिक भाव रूप यथाख्यात संयम कहा है।

प्र.-2000 संयम और चारित्र में क्या अंतर है?

उत्तर- संयम विधि निषेध रूप परिणाम है तो चारित्र स्थिर रूप परिणाम है। संयम कारण है तो चारित्र कार्य है इनमें यही अंतर है अथवा प्रसंगानुसार एक ही परिणाम के दो नाम हैं।

प्र.-2001 संयमधर्म को क्षायोपशमिक धर्म क्यों कहा?

उत्तर- संयमघाती कर्मप्रकृतियों का उदयाभावी क्षय, इन्हीं के आगामी काल में उदय में आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम तथा देशघाति स्पर्धकों का उदय होने से संयमधर्म को क्षायोपशमिक कहा है।

प्र.-2002 क्षायोपशमिक संयमधर्म के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- चार भेद हैं। **नामः-** सामायिकसंयम, छेदोपस्थापनासंयम, परिहारविशुद्धिसंयम और सूक्ष्मसांपरायसंयम।

प्र.-2003 चौथे पाँचवें गुणस्थान में संयमधर्म है या नहीं?

उत्तर- अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय और प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से असंयम तीन प्रकार का है। अनंतानुबंधी कषायोदय के अभाव में तत्संबंधी असंयम का भी चौथे गुणस्थान में अभाव हो जाता है तभी तो चौथे गुणस्थान में 41 प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति या संवर होता है और चरणानुयोग की अपेक्षा मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का, मद्य मांस मधु का त्याग और अनेक प्रकार की लौकिक क्रियाओं का अंतरंग बहिरंग से त्यागी होता है ऐसा नहीं है कि व्यावहारिक क्रियायें भी उत्साह पूर्वक करता हो अतः कर्मसिद्धांत और चरणानुयोगानुसार उसके अंतरंग बहिरंग

संयम है। पाँचवें गुणस्थान में अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय संबंधी असंयम के अभाव में देशसंयम कहा ही है। जिससे 53 प्रकृतियों का संवर होता है अतः कारण के अभाव में कार्य का भी अभाव हो जाता है यह सर्वमान्य नियम है।

प्र.-2004 यदि अव्रती के संयम है तो उसे संयमासंयमी कहने में क्या दोष है?

उत्तर- यद्यपि चौथे गुण. में संयम है फिर भी अप्रत्याख्यानावरणीय संबंधी असंयम की प्रधानता के कारण इसको असंयमी कहा है इसको सर्वथा असंयमी मानने पर ही स्वसिद्धांत से विरोध आता है।

प्र.-2005 आपने अनेक जगहों पर अनेक विशेषणों से युक्त कर्मोदय से क्षमादि धर्मों का विकास होना कहा है तो क्या ये क्षमादि धर्म औदयिक भाव हैं?

उत्तर- नहीं, ये धर्म औदयिकभाव नहीं हैं किंतु अनेक विशेषणों से युक्त जो कर्मोदय से कार्य कहा है सो वहाँ जितने कर्मांशों का अभाव हुआ है उतने ही अंशों से आत्मविकास, गुणों का विकास होता है जैसे जैसा हीनाधिक बादल होगा वैसा ही सूर्यप्रकाश दिखाई देगा ऐसे ही कर्मांशां अभाव में आत्मगुणों का विकास और कर्मांशों के उदय में आत्मगुणों का विनाश होता है। स.सा. 157-159।

प्र.-2006 ये दोनों संयमधर्म शुभ और प्रतिपाती क्यों हैं तथा कब तक रहेंगे?

उत्तर- सादिसांत होने से ये दोनों औपशमिक और क्षायोपशमिक संयमधर्म शुद्ध, शुभ, प्रतिपाती हैं, औपशमिकभाव का जघन्योत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त, क्षायोपशमिकभाव जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः जीवन पर्यंत रह सकता है। ये संयम अननुगामी और अनुगामी हैं इसलिए इन्हें शुभ कहा है।

प्र.-2007 संयममार्गणानुसार संयम धर्म के कितने भेद हैं और नाम कौन[2] हैं?

उत्तर- संयममार्गणानुसार संयम के सात भेद हैं। **नामः-** असंयम, देशसंयम, सामायिकसंयम, छेदोपस्थापनासंयम, परिहारविशुद्धिसंयम, सूक्ष्मसांपरायिकसंयम और यथाख्यातसंयम।

प्र.-2008 चरणानुयोग की अपेक्षा संयमधर्म के कितने भेद हैं और नाम कौन[2] हैं?

उत्तर- चरणानुयोग में संयम के दो भेद हैं। नामः- इंद्रियसंयम, प्राणीसंयम या अपहृतसंयम, उपेक्षासंयम।

प्र.-2009 इंद्रियसंयम किसे कहते हैं तथा बिना इंद्रियसंयम के क्या हानि है?

उत्तर- पाँचों इंद्रियों और मन को अपने[2] पापवर्धक अशुभ विषयवासनाओं से रोककर मोक्षमार्गस्थ साधनों में लगाने को इंद्रियसंयम कहते हैं। जैसे स्वच्छंदी घोड़ा सवार को जहाँ कहीं भी पटक देता है वैसे ही बिना संयम के ये इंद्रियां और मन आत्मा को दुर्गतियों में पटक देते हैं अतः इनमें अंकुश लगाना जरूरी है।

प्र.-2010 प्राणीसंयम किसे कहते हैं तथा भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- पाँच स्थावर और त्रसजीवों की सावधानी पूर्वक रक्षा करने को तथा विषयकषायों का त्याग कर अपने ही प्राणों की रक्षा करने को प्राणीसंयम कहते हैं। दो भेद हैं। **1. परप्राणसंयमः-** अपने से भिन्न दूसरे जीवों के प्राणों की रक्षा करने को और 2. **स्व प्राणसंयमः-** अपने ही प्राणों की रक्षा करने को कहते हैं।

प्र.-2011 अपहृतसंयम किसे कहते हैं?

उत्तर- सप्रमाद सदोष संयम या आहारविहारनिहार की चर्या सहित संयम को अपहृतसंयम कहते हैं।

प्र.-2012 उपेक्षासंयम किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद के, आहारादि के त्याग पूर्वक निर्दोष संयम को अथवा ध्यानावस्था में स्थित समस्त प्रकार से बाह्यचर्या के त्याग सहित निश्चलध्यान में स्थिर होने को उपेक्षा संयम कहते हैं।

प्र.-2013 इन अपहृत और उपेक्षा संयमधर्मों का कौन पालन करते हैं?

उत्तर- इन दोनों संयमधर्मों का सकलव्रती, निर्ग्रंथ, जिनमुद्रा धारी यथाजात मुनिजन पालन करते हैं।

प्र.-2014 इन युगल संयमधर्मों का यथाजात मुनि क्यों पालन करते हैं?

उत्तर- इन युगल संयमधर्मों का वज्रवृषभनाराच संहननधारी चरमशरीरी, अचरमशरीरी छहों संहनन वाले यथाजात मुनिजन परम उत्साह पूर्वक मोक्ष के, कर्मबंधन के क्षय के निमित्त पालन करते हैं।

प्र.-2015 तपधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन आत्म परिणामों से, आत्मसाधना से अनादिकालीन कर्मों का क्षय हो, निर्जरा हो, नवीन कर्मों का संवर हो, सांसारिक विषयभोगों संबंधी स्वार्थ का त्याग हो उसे तपधर्म कहते हैं। **तप्यते इति तपः।**

प्र.-2016 यह तपधर्म किसके समान है और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- यह तपधर्म अग्नि के समान है। आदि की तीन चौकड़ी कषायोदयाभाव में मुनियों के होता है।

प्र.-2017 यह उत्तम तपधर्म कहाँ कैसे किसके होता है और कबतक रहेगा?

उत्तर- यह उत्तम तपधर्म अयोगकेवलियों के चरम समय में अघातियाकर्म क्षय होने के सन्मुख अंतिम समय में परमोत्कृष्ट व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान उत्पन्न होता है क्योंकि अंतरंगतप का अंतिम भेद ध्यान है। मनुष्य पर्याय की अपेक्षा एकसमय और सिद्धों की अपेक्षा अनंत काल है।

प्र.-2018 तपधर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर- बाह्यतप और अभ्यंतरतप के भेद से तपधर्म के दो भेद हैं।

प्र.-2019 बाह्यतप के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- छह भेद हैं। **नामः-** अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेशतप।

प्र.-2020 इन अनशनादि को बाह्यतप क्यों कहा?

उत्तर- इन अनशनादि तपों में बाह्यत्याग की मुख्यता है अथवा बाहर में सभी व्यक्तियों की जानकारी में आ जाते हैं और सभी संसारमार्गी, मोक्षमार्गी भी पालते हैं सो अनशनादि को बाह्यतप कहा है।

प्र.-2021 अभ्यंतर तप किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अंतरंग में विषयकषायों के त्याग पूर्वक कर्मों के संवर और निर्जरा के परिणामों को अभ्यंतर तप कहते हैं। छह भेद हैं। नामः- प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

प्र.-2022 इन प्रायश्चित्तादि तपों को अभ्यंतर तप क्यों कहा?

उत्तर- प्रायश्चित्तादि तपों को करने में केवल आंतरिक परिणामों की मुख्यता होती है। इन परिणामों को हर व्यक्ति न प्राप्त कर पाते हैं, न समझ पाते हैं इसलिए प्रायश्चित्तादि को अभ्यंतरतप कहा है।

प्र.-2023 इन तपों को कौन से जीव करते हैं और कौन से नहीं?

उत्तर- इन तपों को निकट भव्य सम्यग्दृष्टि मुनिजन ही करते हैं किंतु जिनका अनंत संसार है ऐसे भव्यजीव, दूरानुदूर भव्य मिथ्यादृष्टिजीव, अनादि मिथ्यादृष्टि जीव, अभव्यजीव नहीं करते हैं।

प्र.-2024 इन तपों को किस प्रकार से करना चाहिए?

उत्तर- इन तपों को मनोबल और तनबल के अनुसार करना चाहिये, न शक्ति से कम और न ज्यादा।

प्र.-2025 निकटभव्य/आसन्नभव्य जीव किसे कहते हैं तथा कितनी बार प्राप्त किया है?

उत्तर- जिनका संसार काल जघन्यतः अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल शेष बचा है या सम्यक्रत्नत्रय रूपी पुरुषार्थ के द्वारा अनंत संसार को छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र काल शेष कर लिया है ऐसे जीवों को निकटभव्य कहते हैं। यह अयत्नसाध्य/ सहजसाध्य निकटभव्यता अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल अनंतबार प्राप्त किया फिर भी मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ किंतु यदि एकबार भी यत्नसाध्य/ पुरुषार्थसाध्य निकटभव्यता प्राप्त कर ली तो अनंतभव संसार नहीं रह पाता।

प्र.-2026 वास्तव में उत्तम तपधर्म कौन सा भाव है और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- अयोगकेवलियों के अघातियाकर्मों के क्षय होने के सम्मुखावस्था में उत्तमतपधर्म उत्पन्न होता है, क्षायिकभाव है, पूर्ण शुद्ध है।

प्र.-2027 अभ्यंतर तप के अनेक भेदों में से यहाँ कौन सा तप ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- अभ्यंतरतप के अनेक भेदों में अंतिम तप ध्यान के अंतिम भेद व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि इसी ध्यान रूपी अंतिम तप से अघातियाकर्मों का क्षय होता है।

प्र.-2028 अभ्यंतर सभी तपों से कर्मों का क्षय क्यों नहीं होता है?

उत्तर- स्वभावतः अभ्यंतर सभी तपों से कर्म क्षय न होकर केवल बंध, संवर और निर्जरा होती है।

प्र.-2029 अभ्यंतर सभी ध्यान रूपी तप के द्वारा क्या कर्मों का क्षय होता है?

उत्तर- नहीं, अभ्यंतर सभी ध्यानों से एकमात्र कर्मों का क्षय न होकर बंध संवर निर्जरा भी होती है।

प्र.-2030 बंध कराने वाले अभ्यंतर ध्यान रूपी तप कौन कौन हैं?

उत्तर- आर्तध्यान और रौद्रध्यान कर्मबंधक हैं अतः इन्हें कुतप, बालतप, अशुभध्यान कहा है।

प्र.-2031 अभ्यंतर तप रूपी ध्यान शुभ और शुद्ध कौन कौन हैं तथा स्वामी कौन हैं?

उत्तर- अभ्यंतर धर्मध्यान शुभ है, पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान शुद्ध है, एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान शुद्धतर है, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान शुद्धतम है और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान परम शुद्ध है। आदि के दो शुक्लध्यानों के स्वामी अचरमशरीरी, चरमशरीरी तथा शेष दो के चरमशरीरी मुनि हैं।

प्र.-2032 अभ्यंतर सभी शुक्लध्यानों से क्या कर्मों का क्षय होता है?

उत्तर- नहीं, अभ्यंतर सभी शुक्लध्यानों से कर्मों का क्षय नहीं होता किंतु एकत्ववितर्क शुक्लध्यान से तीन घातियाकर्मों का 12वें गुणस्थान के अंतिम समय में, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के द्वारा अयोगकेवली गुणस्थान के अंतिम समय में चार अघातिया कर्मों का क्षय होता है।

प्र.-2033 निकट भव्यता कितने प्रकार से और कितनी बार प्राप्त होती है?

उत्तर- दो प्रकार की होती है। 1. **सहजसाध्य-** काललब्धि के अनुसार अपने आप अनंतबार प्राप्त होती है। 2. **यत्नसाध्य-** पुरुषार्थ के द्वारा निकटभव्यता संख्यात असंख्यातबार प्राप्त होती है।

प्र.-2034 तो फिर आ. कुंदकुंदजी ने तपधर्म को शुभभाव क्यों कहा?

उत्तर- सादिसांत, प्रतिपाती छद्मस्थ सरागी प्रमत्तजीव स्वामी होने से औपशमिकभाव तपधर्म तथा क्षायोपशमिकभाव तपधर्म को शुभभाव कहा है।

प्र.-2035 औपशमिकभाव तपधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- उत्तम संहननधारी, उपशम श्रेणीआरोहण करने वाले चरमशरीरी, अचरमशरीरी महामुनि निर्ग्रंथों के 11वें गुणस्थान में औपशमिकभाव तपधर्म उत्पन्न होता है क्योंकि तप चारित्रगुण की पर्याय है।

प्र.-2036 क्षायोपशमिक तपधर्म कैसे उत्पन्न होता है और कहाँ तक रहता है?

उत्तर- आदि की 12 कषायों के उदयाभाव से 7वें में उत्पन्न होकर 6वें से 10वें तक यह तपधर्म रहता है।

प्र.-2037 संज्वलन कषाय के उदय का क्या फल है?

उत्तर- संज्वलन कषाय के तीव्रोदय, मंदोदय, मंदतरोदय, मंदतमोदय और सूक्ष्मोदय से क्षायोपशमिक भाव तपधर्म में दोष उत्पन्न होते हैं इससे मलिनता ही आती है यही फल है।

प्र.-2038 आदि की तीन चौकड़ी कषायोदय का क्या फल है?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय से मोक्षमार्ग ही उत्पन्न नहीं होता। अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से सम्यक्चारित्र में अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोष तथा प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से देशचारित्र में अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचार दोष उत्पन्न होते हैं। महाव्रतों के लिए सर्वघाती है।

प्र.-2039 ये दोनों तपभाव शुभ या शुद्ध, प्रतिपाती या अप्रतिपाती हैं, स्वामी कौन[2] हैं?

उत्तर- औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव शुभ हैं, प्रतिपाती हैं, चरम अचरमशरीरी मुनिजन स्वामी हैं।

प्र.-2040 अव्रती अणुव्रती तप करते हैं फिर इन्हें स्वामी क्यों नहीं कहा?

उत्तर- **सम्मादिट्ठिस्स वि अविरदस्स ण तवो महागुणो होदि।**
होदि हु हत्थिण्हाणं चुंदच्चुदकम्म तं तस्स।।7।। भ.आ./ मू.चा. अ.10 गा. 942

अर्थः- अविरतसम्यग्दृष्टि का तप महान उपकारी न होकर गजस्नानवत्, मथानी की रस्सीवत् व चर्मपालिकावत् है। आ. श्री ने अव्रतियों के तप को स्वीकार करते हुए भी असंयम की बहुलता होने से महान उपकारी नहीं है ऐसा कहा है। यद्यपि पाँचवें गुणस्थानवाले श्रावक श्राविकायें तप करते हैं, तप का फल संवर और निर्जरा भी प्राप्त करते हैं फिर भी सकलसंयम न होने से आचार्यों ने विधान नहीं किया है।

प्र.-2041 इसके अलावा क्या 4थे, 5वें गुण. में गुरुओं ने तप का विधान किया है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही किया है और वह अंतरंग तप बतलाया है, बहिरंग नहीं। अंतरंग तप के 6 भेदों में से अंतिम तप ध्यान है। इन ध्यानों के चार भेदों में से तीसरे नं. के ध्यान का नाम धर्मध्यान है। धर्मध्यान के चार भेदों में से प्रथम नं. का धर्मध्यान आज्ञाविचय है और यह अंतरंग तप है। कर्मसिद्धांत में चौथे गुणस्थान में आज्ञाविचय धर्मध्यान कहा है इसलिए चौथे गुणस्थान में अंतरंगतप को मानने में कोई दोष नहीं है। इसीसे चतुर्गति वाला अविरत सम्यग्दृष्टि जीव कर्मों की संख्यात असंख्यातगुणी निर्जरा करता है।

प्र.-2042 अंतरंग तप को प्र. 2036 में 6वें गुणस्थान में उत्पन्न होना कहा है और यहाँ 4थे गुणस्थान में 2040 में अंतरंगतप का विधान किया है सो यह पूर्वापर विरोध क्यों?

उत्तर- यहाँ पूर्वापर विरोध नहीं है क्योंकि प्र. 2036 में सकलसंयम सहित तप की उत्पत्ति का और यहाँ असंयम सहित तप की अपेक्षा कथन किया है तब पूर्वापर विरोध कैसा? अतः निर्दोष है।

प्र.-2043 तप का फल क्या है?

उत्तर- अंतरंग तप के अंतिम भेद में अंतिम परिणाम का साक्षात् फल मोक्ष तथा शेष समस्त अंतरंग बहिरंग तपों का परंपरा फल सांसारिक उत्तम पद और वैभव सहित संवर निर्जरा एवं मोक्षफल है।

प्र.-2044 त्यागधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- गृहस्थों की अपेक्षा आहारादि चार प्रकार के दान देने को या जिन वस्तुओं को, विकारों को बुद्धि पूर्वक, संकल्प पूर्वक ग्रहण किया है तब उनको संकल्प पूर्वक छोड़ने को और साधुओं की अपेक्षा ख्याति पूजा लाभ की भावना को, विषयकषायों को, प्रमाद छोड़कर ध्यान में स्थिर होने

को त्यागधर्म कहते हैं।

प्र.-2045 उत्तमत्यागधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- सभी घातिअघातिकर्मों का सदा के लिए क्षय करने को उत्तम त्यागधर्म कहते हैं क्योंकि यहीं पर ही द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म आत्मा से पृथक् होते हैं और पृथक् करने का नाम ही त्याग है।

प्र.-2046 उत्तम त्यागधर्म किसके उत्पन्न होता है, अप्रतिपाती और शुद्ध है क्या?

उत्तर- व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान से अघातियाकर्मों का क्षय करके उत्तमत्यागधर्म 14वें गुणस्थान के अंतिम समय में उत्पन्न होकर सिद्धों में अनंतानंत काल तक रहेगा। विकारों का समूल विनाश होने से अप्रतिपाती है, कर्मों का लेप न रहने से शुद्ध है।

प्र.-2047 उत्तम त्यागधर्म को शुभ और प्रतिपाती क्यों नहीं कहा है?

उत्तर- उत्तम त्यागधर्म नैमित्तिक होने पर भी चिरस्थायी होने के कारण शुभ और प्रतिपाती नहीं कहा है। यदि उत्तम त्यागधर्म को शुभ और प्रतिपाती मान भी लिया जाये तो उत्तम त्यागधर्म को क्षणवर्ती मानने का प्रसंग आयेगा फिर इसे उत्तम त्याग धर्म कौन कहेगा और उत्तम विशेषण लगाना व्यर्थ होगा।

प्र.-2048 उत्तम त्यागधर्म कौन सा भाव है?

उत्तर- द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों के क्षय से उत्पन्न होने से उत्तम त्यागधर्म क्षायिकभाव है।

प्र.-2049 औपशमिकभाव त्यागधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- उपशमश्रेणी आरोहण करने वालों के 11वें में संपूर्ण चारित्रमोह के उदयाभाव में औपशमिक त्यागधर्म उत्पन्न होता है क्योंकि औपशमिकभाव एकमात्र 11वें गुण. में ही होता है, आगेपीछे नहीं।

प्र.-2050 क्षायोपशमिक त्यागधर्म कैसे उत्पन्न होता है और कहाँ तक रहता है?

उत्तर- आदि की 12 कषायों के उदयाभाव में 7वें में उत्पन्न होकर 6वें से 10वें गुणस्थान तक रहता है।

प्र.-2051 चौथे पाँचवें गुणस्थान में त्यागधर्म कैसे होता है?

उत्तर- अनंतानुबंधीकषाय के बंध, उदय के बिना, सत्त्व के सद्भाव अभाव से चौथे गुणस्थान में तथा अप्रत्याख्यानावरणीयकषाय के उदयाभाव से पाँचवें गुणस्थान में त्यागधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-2052 ये दोनों त्यागभाव शुभ-शुद्ध, प्रतिपाती या अप्रतिपाती हैं, कितना काल है?

उत्तर- ये दोनों भाव शुभ, प्रतिपाती हैं। औपशमिकभाव त्यागधर्म का एकमात्र अंतर्मुहूर्तकाल है। क्षायोपशमिक त्यागधर्म का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल जीवन पर्यंत भी हो सकता है।

प्र.-2053 आकिंचन्यधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- ये परपदार्थ और इनके निमित्त से उत्पन्न होने वाले विकार किंचित् मात्र भी मेरे नहीं हैं और मैं इनका नहीं हूँ इस प्रकार स्थिरता पूर्वक ऐसी परिणति होने को आकिंचन्यधर्म कहते हैं।

प्र.-2054 भावकर्म चैतन्य विकार होने से क्या ये परपदार्थ है?

उत्तर- निमित्त नैमित्तिक और उपादान उपादेय संबंध की अपेक्षा भावकर्म स्वयं का ही परिणाम है, स्वयं में ही अस्तित्व है इसलिए परपदार्थ नहीं है किंतु ये चैतन्यविकार भव्य आत्माओं में अध्रुवबंधी होने से या त्रिकाली सत्त्व न होने से विनाशशील स्वभाव वाले होने के कारण परपदार्थ हैं।

प्र.-2055 उत्तम आकिंचन्य धर्म कब, कहाँ, कैसे और किसके उत्पन्न होता है?

उत्तर- अयोगकेवली गुण. के अंत समय में 3 कर्मों के क्षय से उत्तम आकिंचन्यधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-2056 उत्तम आकिंचन्यधर्म और आकिंचन्यधर्म कौन सा भाव है?

उत्तर- उत्तम आकिंचन्यधर्म क्षायिक है और आकिंचन्यधर्म औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भाव है।

प्र.-2057 द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म (3 कर्म) किसे कहते हैं?

उत्तर- अयोगकेवलियों के 4 अघातिकर्मों के पुद्गलपिंड को द्रव्यकर्म, इनसे उत्पन्न भावों को भाव कर्म एवं अयोगकेवलियों के परमौदारिक शरीर को नोकर्म कहते हैं।

प्र.-2058 द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मों का समूलक्षय कहाँ पर होता है?

उत्तर- अयोगकेवली नामक 14वें गुणस्थान के चरम समय में इन तीनों कर्मों का समूलक्षय होता है।

प्र.-2059 उत्तम आकिंचन्यधर्म शुद्ध और अप्रतिपाती कैसे है तथा कब तक रहेगा?

उत्तर- उत्तम आकिंचन्यधर्म क्षायिक शुद्धभाव है। अप्रतिपाती है। मनुष्य पर्याय की अपेक्षा एक समय और सिद्धों की अपेक्षा अनंतानंत काल तक रहेगा।

प्र.-2060 आ. ने आकिंचन्यधर्म को शुभभाव और आपने शुद्धभाव क्यों कहा?

उत्तर- आ. श्री ने औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव स्वरूप आकिंचन्य धर्म को शुभभाव कहा है और आकिंचन्यधर्म में उत्तम विषेशण होने से उत्तम आकिंचन्यधर्म को हमने शुद्धभाव कहा है।

प्र.-2061 औपशमिकभाव आकिंचन्यधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- दृढ़धर्मी उपशमश्रेणी वाले चरम, अचरमशरीरी महामुनिजन उत्तमसंहननधारी के 10वें के अंत में मोहनीयकर्म के पूर्ण उपशम से 11वें गुणस्थान में औपशमिक आकिंचन्यधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-2062 क्षायोपशमिकभाव आकिंचन्यधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- आदि की 12 कषायों के उदयाभाव में अप्रमत्तसंयत के क्षायोपशमिक आकिंचन्यधर्म होकर तारतम्यता से कषाय की हीनता सहित संज्वलनलोभ के उदयाभाव में 6वें से 10वें तक होता है।

प्र.-2063 आकिंचन्यधर्म चौथे पाँचवें गुणस्थान में होता है या नहीं?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषाय के बंध, उदय के बिना तथा सत्त्व के सद्भाव अभाव से चौथे गुणस्थान में तथा अप्रत्याख्यानावरणीय के उदयाभाव से पाँचवें गुणस्थान में आकिंचन्यधर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-2064 ब्रह्मचर्यधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद के त्याग पूर्वक निज आत्म स्वभाव में स्थिर होने को ब्रह्मचर्यधर्म कहते हैं।

प्र.-2065 उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मप्रदेशों में उत्पन्न हुए परिस्पंदन के अभाव को उत्तम ब्रह्मचर्य कहते हैं।

प्र.-2066 उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- कषायों के क्षय और योगों के अभाव में उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-2067 पूर्ण निर्दोष उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म के स्वामी कौन हैं?

उत्तर- 18000 दोषों के त्यागी पूर्ण निर्दोष उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म के स्वामी अयोगी और सिद्ध भगवंत हैं।

प्र.-2068 सदोष ब्रह्मचर्य धर्म किसे कहते हैं और कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर- बुद्धि और अबुद्धि पूर्वक मोह और योग सहित ब्रह्मचर्य सदोष है। पहले से दसवें तक योग एवं कषायों से तथा 11वें से सयोगकेवली पर्यंत केवल योगों से ब्रह्मचर्यधर्म सदोष होता है।

प्र.-2069 ब्रह्मचर्यधर्म कौनसा भाव है और कहाँ से कहाँ तक रहेगा?

उत्तर- ब्रह्मचर्य धर्म क्षायिक, औपशमिक तथा क्षायोपशमिक भाव है और अयोगकेवली के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल तक तथा सिद्धों के अनंतानंत काल तक रहेगा।

प्र.-2070 उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म कौन सा भाव है और कैसा है?

उत्तर- उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म क्षायिक, शुद्ध, अविनाशी, अप्रतिपाती आदि अनंत विशेषणों से युक्त है।

प्र.-2071 औपशमिकभाव ब्रह्मचर्य धर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- चरमशरीरी, अचरमशरीरी उपशम श्रेणी वाले मुनि के नौंवे गुणस्थान के छठवें भाग में वेद कषाय के पूर्णतः उपशम होने पर औपशमिकभाव ब्रह्मचर्य धर्म उत्पन्न होता है।

प्र.-2072 क्षायोपशमिकभाव ब्रह्मचर्यधर्म कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- क्षायोपशमिकभाव ब्रह्मचर्यधर्म आदि की 12 कषायाभाव में और तीनों वेदों के सर्वघाती अंशों के उदयाभावी क्षय और उदय में आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम से उत्पन्न होता है।

प्र.-2073 ग्रंथकारजी ने ब्रह्मचर्यधर्म को शुभभाव क्यों कहा?

उत्तर- ये दोनों औपशमिक और क्षायोपशमिक भाव ब्रह्मचर्यधर्म क्षणवर्ती हैं या जीवन पर्यंत रहकर विनाश स्वभावी हैं, प्रतिपाती हैं, मोक्षमार्ग में सहायक और सदोष होने से शुभ कहा है।

प्र.-2074 यह ब्रह्मचर्यधर्म सदोष है या निर्दोष?

उत्तर- मिथ्यात्व से सयोगकेवली पर्यंत जितने अंशों में प्रमाद का, कषायों का तथा आत्मप्रदेशों में कंपन का अभाव हो चुका है उतने अंशों में ब्रह्मचर्यधर्म निर्दोष होता है और जितने अंशों में इनकी प्रवृत्ति, आत्मा के प्रदेशों में कंपन हो रहा है उतने अंशों में ब्रह्मचर्य सदोष है, मलिन है।

प्र.-2075 ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कहाँ से प्रारंभ होकर कहाँ पूर्ण होता है?

उत्तर- मिथ्यात्वगुण. से ही अभ्यास रूप में पालना प्रारंभ हो जाता है और क्रमशः गुणस्थानानुसार कषायों तथा योगों का क्षय होते[2] अयोगकेवली गुण. के प्रथम समय में ही पूर्ण होता है।

प्र.-2076 मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में ब्रह्मचर्य धर्म का पालन किस प्रकार से होता है?

उत्तर- पहले गुणस्थान में वेश्यासेवन, परस्त्रीसेवन या व्यभिचारी पुरुष, परस्त्रीगामी पुरुष के त्याग पूर्वक स्वदारसंतोष या स्वपत्निसंतोष व्रत से या पूर्णतः अविवाहित कुमारव्रत सहित ब्रह्मचर्यधर्म का पालन होता है। अव्रती सम्यग्दृष्टि इसी धर्म को पालता हुआ विशेष निर्मलता को प्राप्त होता है। अप्रत्याख्यानावरणीय कषायाभाव होने से इसी धर्म के कारण अणुव्रती नाम पाता है। 11भेद वाले देशव्रतियों के आगे आगे अनंतगुणी[2] विशुद्धि होने से ब्रह्मचर्याणुव्रती ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी तथा मुनियों के ऐसे ही महाव्रत होता है।

प्र.-2077 यहाँ उत्तम क्षमादिधर्मों का पालन या उत्कृष्ट अंशों की प्राप्ति मुनियों के, केवलियों के कही है तो क्या अव्रतियों के, अणुव्रतियों के ये धर्म होते ही नहीं हैं?

उत्तर- वास्तव में महाव्रतियों के उत्तमधर्मों की उत्पत्ति विषयकषायों और योगों के अभाव में होती है किंतु अव्रती, अणुव्रती ब्रह्मचर्यधर्म की आराधना करते हैं, ध्यानसाधना भी करते हैं या गृहस्थों के ब्रह्मचर्यधर्म का पालन स्थूल रूप से होता है अतः कोई दोष नहीं है। यदि इनके ये धर्म नहीं हो तो ये धर्मात्मा कैसे?

प्र.-2078 क्या मोह की देशघाती प्रकृतियों के उदय से आत्मविकाश संभव है?

उत्तर- हाँ, इन देशघाति पापकर्मोदय से भी आत्मा और आत्मगुणों का पूर्णतः विकाश संभव नहीं है किंतु किंचित् विकाश संभव है फिर भी ये देशघाति कर्म प्रकृतियां उदय में आकर आत्मविकाश में, आत्मसाधना में अतिक्रम आदि 3 दोष तथा सर्वघाती प्रकृतियों के साथ तीव्रोदय में आकर

अनाचार दोष पैदा करती हैं।

प्र.-2079 इनके अलावा और भी शुभ भाव होते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही होते हैं जो निम्न प्रकार हैं:- सभी साधकों के षडावश्यकों का, मूलोत्तर गुणों का, अणुव्रत महाव्रतों का, समितियों आदि का पालन करना शुभभाव है।

प्र.-2080 मोह के पूर्ण उपशम होने पर कौन कौन से धर्म उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- उपशमश्रेणी की अवस्था में क्षमा, मार्दव, आर्जव ये नौवें गुण. के 7वें, 8वें, 9वें भाग में तथा शौचधर्म 10वें के अंत में, संयम तप त्याग आकिंचन्य मोहकर्म के पूर्ण उपशम से 11वें गुण. में होते हैं तथा ब्रह्मचर्यधर्म वेद कर्म के पूर्ण उपशम से 9वें गुणस्थान के छठवें भाग में उत्पन्न होता है।

प्र.-2081 मोह के क्षय से कौन[2] धर्म एवं शेष धर्म किस कर्म क्षय से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- क्षपकश्रेणी में नौवें गुणस्थान के 7वें, 8वें, 9वें भाग में उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव तथा शौचधर्म 10वें के अंत में मोह के पूर्णतः क्षय से उत्पन्न होते हैं तथा ब्रह्मचर्यधर्म वेदकर्म के पूर्ण क्षय से 9वें गुणस्थान के छठवें भाग में उत्पन्न होता है। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से सयोगकेवली के प्रथम समय में उत्तमसत्य धर्म एवं योगों के अभाव में अयोगकेवली के प्रथम समय में उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म तथा चरम समय में अघातिया कर्मों के क्षय से अंतसमय में उत्तमसंयम, उत्तमतप, उत्तमत्याग, उत्तमआकिंचन्य धर्म उत्पन्न होते हैं।

प्र.-2082 आत्मा और कर्मों को सर्वथा पृथक् पृथक् मानने में क्या दोष है?

उत्तर- आत्मा और कर्मों को सर्वथा पृथक् पृथक् मानने में रत्नत्रयधर्म का, क्षमादिधर्मों का, जीवादि तत्त्वों का, पदार्थों का, संसार और मोक्ष का अस्तित्व बन ही नहीं सकता। गुणदोषों की, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि कार्यों की व्यवस्था भी नहीं बन सकती है या एकांतमिथ्यामतों का प्रसंग आना ही दोष है।

प्र.-2083 क्षमादि धर्मों का यही क्रम है या अन्य भी क्रम है?

उत्तर- **खंतीमद्दव अज्जव लाघव तव संजमो अकिंचणदा।**
तह होइ बंभचेरं सच्चं चाओ य दसधम्मा।।754।। मू.चा. द्वा.प्रे.

अर्थः- क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, तप, संयम, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य, सत्य, त्याग ऐसा भी क्रम है।

प्र.-2084 क्षायोपशमिक सभी भावधर्म किन मुनियों के होते हैं?

उत्तर- क्षायोपशमिक क्षमादिधर्म प्रमत्तसंयत से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानपर्यंत सामायिक छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसांपराय संयम वाले पुलाक, बकुश, कुशील मुनियों के ये धर्म होते हैं।

प्र.-2085 गाथा 55-56 में कहे हुए शुभ भावों में कौन कौन से जीव प्रवृत्ति करते हैं?

उत्तर- चारों गतियों के अविरत सम्यग्दृष्टि असंयमी जीव, मनुष्य और तिर्यंच देशसंयमी, सकलसंयम पूर्वक मुनिजन प्रवृत्ति करते हैं। उभयश्रेणियों में आर्यखंडोत्पन्न त्रिवर्णवाले मनुष्य ही मुनि बनकर प्रवृत्ति करते हैं।

प्र.-2086 मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के शुभभाव होते हैं या नहीं?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि आदि तीन गुणस्थान वालों के शुभयोग, शुभ लेश्यायें होती हैं और इन्हीं को शुभभाव कह सकते हैं किंतु शुभोपयोग नहीं क्योंकि शुभोपयोग सम्यग्दृष्टियों के ही होता है।

प्र.-2087 यदि मिथ्यादृष्टियों के शुभभाव नहीं हैं तो ये सातिशय पुण्य कैसे बांधते हैं?

उत्तर- ये जीव शुभयोगों से तथा कषायों के तीव्रोदयाभाव में सातिशय और निरतिशय पुण्य को

बांधते हैं।

प्र.-2088 शुभोपयोग किन जीवों के होता है?

उत्तर- शुभोपयोग सिर्फ रत्नत्रय सहित छद्मस्थ सरागी अव्रती, अणुव्रती और महाव्रतियों के ही होता है।

प्र.-2089 मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त करता है?

उत्तर- **'तदेव सम्यक्त्वं शुभपरिणामनिरुद्धस्वरसं यदौदासीन्येनावस्थितमात्मनः श्रद्धानं न निरुणद्धि तद्वेदयमानः पुरुषः सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते।'** स.सि. अ.8 वही मिथ्यात्व जब शुभ परिणामों से अपने विपाक को रोक देता है और उदासीन रूप से ठहरकर आत्मा के श्रद्धान को नहीं रोकता है तब मोहनीय की देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति का वेदन करने वाला पुरुष वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि कहा जाता है अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव शुभयोग से मिथ्यात्व का खंडन कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है।

प्र.-2090 क्या मिथ्यादृष्टि मनुष्य आत्मा और मोक्ष को नहीं जानता है?

उत्तर- आगम और गुरु उपदेश से मिथ्यादृष्टि जीव इनको अवश्य जानता है किंतु अनुभव से नहीं। यदि सर्वथा नहीं जानता है तो अनादि सादि मिथ्यादृष्टि 1ले-7वें गुण. तक को कैसे प्राप्त करता है?

प्र.-2091 त्रिवर्णवाले मनुष्य उभयश्रेणी आरोहण करते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे शुद्धबीज को शुद्धभूमि में शुद्ध खादपानी डालने से शुद्धफल मिलता है वैसे ही शुद्धध्यान और शुद्ध परिणामों की प्राप्ति शुद्ध रजोवीर्यवालों को ही होती है और इसकी शुद्धि आचारविचार, रोटीबेटी व्यवहार से शुद्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में भी सज्जाति वालों को ही प्राप्ति होती है।

प्र.-2092 शूद्रों को मुनिदीक्षा और उभयश्रेणियों की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर- स्पर्श या अस्पर्श अथवा कारु या अकारु या सत्शूद्रों के रोटी बेटी, आचारविचार, रजोवीर्य की शुद्धि न होने से इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट परिणाम नहीं होते, न स्थिरता प्राप्त होती है यदि होती तो आचार्यगण कहीं पर किन्हीं ग्रंथों में कोई एकाद नाम लिख देते कि इस शूद्र ने उभयश्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान पाकर मोक्ष प्राप्त किया है पर नहीं लिखा, न कहा, क्यों नहीं लिखा? मोक्ष में जाने वालों के जितने नाम आये हैं उनमें सबसे अधिक क्षत्रियों के फिर ब्राह्मणों के और सबसे कम वैश्यों के नाम आये हैं अतः चरणानुयोग शास्त्रों में आचार विचार और सत्संस्कारों की पात्रता न होने से शूद्रों को मुनिदीक्षा लेने देने का अधिकार ही नहीं दिया है जब शूद्रों को मुनिदीक्षा ही नहीं तब उन्हें उभयश्रेणी कहाँ से प्राप्त होगी?

प्र.-2093 तो फिर मलेच्छखंडोत्पन्नों को मुनिदीक्षा का अधिकार क्यों दिया गया?

उत्तर- ये राजागण मलेच्छखंड क्षेत्र की अपेक्षा मलेच्छ हैं, आचारविचार, रोटी बेटी व्यवहार, राज्यनीति के अनुसार क्षत्रिय हैं सो इन्हें ही मुनिदीक्षा लेने देने का अधिकार दिया गया है। कदाचित् व्यापार खेतीवाड़ी की अपेक्षा वैश्य व्यापारी भी हैं। जिनके शरीर की रचना पुष्ट, मजबूत अशुद्ध रजोवीर्य से, मांस शराब या वेश्या कर्म से हुई है उनको दिगंबर जैन मुनिदीक्षा का पात्र ही नहीं बताया फिर कैसे दें और ले सकते हैं?

प्र.-2094 तो फिर क्या आर्यखंडोत्पन्न सभी मनुष्यों को मुनिदीक्षा का अधिकार है?

उत्तर-जिनके शरीर की रचना वर्णसंकर वीर्यसंकर और जातिसंकर दोषयुक्त अशुद्ध रजोवीर्य से हुई है, वेश्या की संतान है, अतिबालक है, विवेकहीन है, द्रव्यभाव से नपुंसक और स्त्री है ऐसे आर्यखंडोत्पन्न सभी मनुष्यों को दिगंबर जैन मुनिदीक्षा लेने देने का अधिकार नहीं है सिर्फ जो आचारविचार, जातिकुल से, शरीर से भी निष्कलंक हैं सामान्यतया इन्हें ही दीक्षा का अधिकार है। विशेषतः उच्चकुलीन होने पर भी आचारविचार से हीन राजद्रोही, समाजद्रोही व्यक्ति भी प्रायश्चित्त आदि के द्वारा शुद्ध होकर दिगंबर जैन मुनिदीक्षा लेने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

जैसे अंजनचोर, गजकुमार, चिलातपुत्र आदि।

प्र.-2095 यहाँ पर इन उभयवेदियों को मुनिदीक्षा का अधिकार क्यों नहीं दिया गया?

उत्तर- द्रव्य से पुरुषवेदी और भाव से नपुंसक तथा स्त्रीवेदी दिगंबर जैन मुनिदीक्षा लेकर क्षपकश्रेणी आरोहण कर कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं इसमें कोई दोष नहीं है किंतु यहाँ पर द्रव्य और भाव सहित नपुंसक स्त्रीवेदियों को दिगंबर जैन मुनिदीक्षा का अधिकार नहीं है ऐसा कहा है।

प्र.-2096 भावनपुंसक और भावस्त्रीवेदियों को दीक्षा देने से अप्रभावना क्यों न होगी?

उत्तर- द्रव्य से पुरुषवेदी होने पर भी भावों में नपुंसकवेद और स्त्रीवेद की लौकिक तीव्रता है तो ऐसा व्यक्ति मुनिदीक्षा लेकर अनंगक्रीड़ादि कुचेष्टायें कर अपने जीवन को, समाज, धर्म को बदनाम करेगा, अप्रभावना करेगा अतः ऐल्लक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, आर्यिका, मुनि दीक्षा के अधिकारी नहीं है।

प्र.-2097 तो क्या भावपुरुषवेदी को दिगंबरमुनिदीक्षा दे सकते हैं?

प्र. 2013-2025

उत्तर- यदि भाव पुरुषवेदी की लौकिक [illegible] गों में प्रीति या दिनचर्या है तो वह दीक्षा का पात्र नहीं है किंतु इसी कर्मठता को, वैराग्य से ओतप्रोत होकर मोक्षमार्ग में स्थिर हो दृढ़ पुरुषार्थी हो तो इसे दिगंबर मुनिदीक्षा दे सकते हैं और ये ले सकते हैं।

प्र.-2098 तो फिर दिगंबर मुनिदीक्षा का अधिकार किसको दिया गया है?

उत्तर- **वण्णेसु तीसु एक्को कल्लाणंगो तवोसहो वयसा।**
सुमुहो कुच्छा रहिदो लिंगग्गहण हवदि जोग्गो।।224-10।। प्र.सा. चा.चू.

अर्थः- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णवाला, निरोगी शरीर, तपस्या को सहन करने वाला, सुंदर मुखवाला, अपवाद रहित पुरुष जिनलिंग धारण करने योग्य होता है। भाव यह है कि यदि कोई दुराचारी, चोर, निर्दयी, उच्छिष्टभक्षी, स्वच्छंदी, असत् व्यापारी, निंदनीय आजीविकावाला, चोर, ऋणी, हत्यारा, जातिच्युत, वर्णशंकर, उन्मत्त, अतिक्रोधी, मानी, मायावी, राजा, देश, जातिकुल के अपराधी को दीक्षा न देवे। संयम.प्र. पू. भा. 2 पृ.674 लिंगशुद्धि अधि.आ. सूर्यसागरजी कृत। **चर्म रहितत्वं अति दीर्घत्वं स्थूलत्वं असकृदुत्थान शीलतेत्येवमादिदोष सहितं यदि भवेत्। पुंस्त्वलिंगता इह गृहीतेति बीजयोरपि लिंग शब्देन ग्रहणं।** भ.आ. अर्थः- लिंग का चर्म रहित होना, अतिदीर्घ होना, स्थूल होना, कामवासना की पूर्ति के लिए एकबार या बार-बार उत्तेजित होना आदि दोष है। यहाँ लिंग शब्द से पुरुष चिह्न का ग्रहण किया है तथा उससे अंडकोष का भी ग्रहण होता है। इन दोष वालों को मुनिदीक्षा नहीं देते हैं।

प्र.-2099 तो क्या लौकिक दिनचर्या में प्रीतिवान त्रिवेदी दिगंबरमुनिदीक्षा ले सकते हैं?

उत्तर- विषयभोगों से वैराग्य उत्पन्न न होने वाले रागी विषयभोगी चतुर्विध मुनिसंघ की दीक्षा ले मोक्षमार्ग को प्रशस्त न बनाकर भोगों में फंसकर संसार को बढ़ाते हैं अतः ये दीक्षा के अपात्र हैं।

प्र.-2100 लौकिक दिनचर्या में प्रीतिवान त्रिवेदी संयमी मोक्षमार्गी कब बनेंगे?

उत्तर- ऐसे व्यक्ति पूर्व संस्कारवश या गुरूपदेश से संसार शरीरभोगों से विरक्त हो दुर्भावना को त्यागकर संयमरूप परिणमन कर पात्रता बना लेते हैं तब गुरुओं के माध्यम से मोक्षमार्गी हो जाते हैं।

नोटः- यहाँ तक 2100 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 55-56वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 57वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बहिरात्मा की चर्या

धरियउ बाहिरलिंगं परिहरियउ बाहिरक्खसोक्खं हि।
करियउ किरियाकम्मं मरियउ जंमियउ बहिरप्पजिऊ ।।57।।

धृत्वा बाह्यं लिंगं परिहृत्य बाह्याक्षसौख्यं हि।

कृत्वा क्रियाकर्मं म्रियते जायते बहिरात्माजीवः।।

बहिरप्पजिऊ बहिरात्माजीव **बाहिरलिंगं** बाह्य लिंग **धरियउ** धारणकर **बाहिरक्खसोक्खं** इंद्रियसुख को **परिहरियउ** छोड़कर **किरियाकम्मं** क्रियाकांड **करियउ** करता हुआ **जंमियउ मरियउ** जनम मरण करता है।

प्र.-2101 बहिरात्मा जीव बाह्य भेष मुनिलिंग को क्यों धारण करता है?

उत्तर- बहिरात्मा जीव मोक्ष के निमित्त ही मुनिदीक्षा ग्रहण करता है, संसारभ्रमण के लिये नहीं।

प्र.-2102 तो फिर वह बहिरात्मा जीव मोक्ष क्यों नहीं पाता?

उत्तर- बहिरात्मा मोक्ष के स्वरूप को सही न समझकर साधु बनकर घोर तपश्चरण करके भी मोक्ष को नहीं पाता जैसे किसी मलिन वस्त्र में गांठ लगाकर फिर साबुन सोड़े से या धोबी भट्ठी में डालकर कितना ही धोवे, पीटे, कूटे तो भी मैल साफ नहीं होता ऐसे ही संसार और मोक्ष की संधि को सोचे समझे बिना परिश्रम करे, तपश्चरण करे तो भी संसारबंधन तोड़कर मोक्ष प्राप्त नहीं कर पाता।

प्र.-2103 मोक्ष के निमित्त बहिरात्मा जीव क्या क्या छोड़ता है और क्यों छोड़ता है?

उत्तर- स्वर्ग में अधिक सुख, वैभव प्राप्त होगा, देवांगनायें प्राप्त होंगी आदि हेतुओं से बहिरात्मा जीव इंद्रिय सुख को, परिवार को, धन वैभव को छोड़ता है। जैसे किसान अधिक फल की इच्छा से घर का बीज खेत में डाल देता है ऐसे ही बहिरात्मा जीव अधिक मनोजसुख की लालसा से इंद्रिय सुख को छोड़ता है।

प्र.-2104 निदान पूर्वक इंद्रियसुख का त्याग करके भी सफलता क्यों नहीं मिलती?

उत्तर- मिथ्यात्व सहित निदान पूर्वक त्याग करने से सम्यक्सफलता नहीं मिलती किंतु चिंतायें अधिक मात्रा में बढ़ जाती हैं। निदान (निर्णय) सहित विपाकविचय धर्मध्यान से पापों का, विषयभोगों का त्याग करने से अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी क्योंकि सर्वत्र हेतु के अनुसार ही क्रियायें अपना फल देती हैं।

प्र.-2105 बहिरात्मा जीव विषयसुख को छोड़कर तप करके क्या फल प्राप्त करता है?

उत्तर- बहिरात्मा विषयसुख को छोड़कर अनेक बाह्य क्रियाकर्म, अनशनादि तप, आतापनादि योग, पंचाग्निादि तप के द्वारा अकामनिर्जरा करके भवनत्रिकादि में जनममरण करता हुआ भ्रमण करता है।

प्र.-2106 बहिरात्मा जीव बाह्य भेष धारण कर जन्म मरण करता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ समयानुसार जनम मरण की बातें नहीं कहीं हैं किंतु जो बाह्यतप, बालतप, बालव्रत करके अकामनिर्जरा करते हुए अकालमरण करते हैं उनके लिए ये बातें कहीं हैं क्योंकि अकालमरण के भोजनपान छोड़ना, अग्निपात, गिरिपात, भूमिप्रवेश, जलप्रवेश शस्त्रघात आदि अनेक कारण हैं।

प्र.-2107 पहले जन्म देते समय कष्ट क्यों नहीं होता था?

उत्तर- उससमय भरपूर शारीरिक परिश्रम, शुद्ध भोजनपान और समयानुसार दिनचर्या होने से प्रसूति के समय कोई वेदना नहीं होती थी और वर्तमान में अनेक कृषकस्त्रियों की प्रसूति आसानी से हो जाती है क्योंकि पुण्यात्माओं की प्रसूति में जच्चाबच्चा को गर्भजन्मकाल में कोई कष्ट नहीं होता है।

प्र.-2108 आजकल प्रसूति करते समय कष्ट या ऑपरेशन से जन्म क्यों होते हैं?

उत्तर- आजकल धर्मानुकूल शारीरिक परिश्रम, भोजनपान, शुद्धऔषधि, दिनचर्या योग्य समयानुसार न होने से, धर्म में, पुण्यकार्यों में समय न लगाने से, सतत विषयभोगों, शृंगारालंकार में समय गुजारने से पाप वृद्धि के कारण कष्ट होते हैं तथा ऑपरेशन से प्रसूति कराई जाती है इसमें संदेह नहीं है।

प्र.-2109 जच्चा और बच्चा किसे कहते हैं?

उत्तर- जन्म देने वाली माता को जच्चा और जन्म लेने वाली संतान को बच्चा कहते हैं।

प्र.-2110 इसमें संदेह नहीं है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ कोई ऐसा सोच सकता है कि यह सही है या गलत ऐसा संदेह मत करो किंतु निर्णयार्थ कहा है कि ऐसा करोगे तो ऐसा ही फल प्राप्त होगा अतः अज्ञानता पूर्वक बाह्य भेष से भयभीत हो। यदि संसार शरीर भोगों से उदासीनता नहीं आई, वैराग्य नहीं हुआ तो अवश्य ही नाना प्रकार से कष्ट भोगने ही पड़ेंगे और वैरागी हो संयम पूर्वक तपश्चरण किया तो किंचित् मात्र भी कर्मफल नहीं भोगना पड़ेगा किंतु संक्रमण कर, बिना फल दिये कर्म क्षय हो जायेंगे। देखो अंजनचोर ने अपने जीवनकाल में सभी पापों को कर सभी कर्मों का बंध किया पर मुनिदीक्षा लेकर घोर तपश्चरण से कर्मों को क्षय कर कैलासपर्वत से मोक्ष प्राप्त किया अतः चोर ने कर्म का फल कहाँ भोगा? अथवा किसान ने खेत में बीज बो दिया है, खादपानी भी बराबर दिया है, बोये हुए उस बीज का क्रमशः अंकुर आकर धीरे धीरे वृद्धि को प्राप्त होकर फल आकर परिपक्व हो गया है, फसल को काटकर खलिहान में रख दिया है, दांयकर भूसा और बीज भी अलग[2] कर दिया है अब यदि वह किसान फलों को घर में नहीं लाना चाहता है तो वहीं पर आग लगा दे तो कहाँ फल भोग पायेगा ऐसे ही घोर कर्म का बंध कर लिया है और वह कर्म सारी अवस्थाओं को पार कर उदयावली में प्रवेश कर गया है किंचित् समय में फल देने वाला है फिर भी उत्कृष्ट पुरुषार्थ के द्वारा स्तिवुक संक्रमण के द्वारा कर्म नष्ट हो जाता है तब कर्म का फल कहाँ भोगा? अतः धर्म धारण करो।

प्र.-2111 क्या सभी कर्मों की ऐसी अवस्था होती है?

उत्तर- हाँ, उत्तरप्रकृतियों में पुण्यपाप प्रकृतियों की ऐसी अवस्थायें होती हैं जो शुभाशुभ परिणामों से पुण्य पाप कर्मप्रकृतियां 10 करण रूप में बदलकर बिना फल दिये या अन्यथा फल देकर कदाचित् तद्रूप में फल देकर झड़ जाते हैं, निर्जरा को प्राप्त हो जाते हैं।

प्र.-2112 तो क्या कर्मों का फल बंध की मात्रानुसार ही भोगना पड़ता है?

उत्तर- ऐसा सर्वथा कोई नियम नहीं है कि बंध की मात्रानुसार ही कर्म का फल भोगना पड़ेगा किंतु अधिकतर पुण्य और पापकर्म अपना फल देने के योग्य अनंतवें भाग ही उदय में आकर फल देते हैं, शेष अनंत बहुभाग बिना फल दिये निकल जाते हैं। जैसे आम के वृक्ष में जितने फूल आते हैं उनमें भी बहुत कम फूलों में फल लग पाते हैं, जितने फल लगे हैं उनमें से बहुत कम फल वृद्धि को प्राप्त होते हैं शेष क्षुद्र अवस्था में ही नष्ट हो जाते हैं। जो फल वृद्धि को प्राप्त हुए हैं उनमें से बहुत कम परिपक्व होकर खट्टीमीठी अवस्था को प्राप्त कर भोगने के काम आते हैं शेष बहुत फल सड़कर सूखकर यों ही नष्ट हो जाते हैं ऐसे ही कर्मों की अवस्थाओं को समझना चाहिये।

नोटः- यहाँ तक 2112 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 57वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 58वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मोक्षसुख कैसे?

मोक्खणिमित्तं दुक्खं वहेइ परलोयदिट्ठि तणुदंडी।

मिच्छाभावं ण छिज्जइ किं पावइ मोक्खसोक्खं हि।।58।।

मोक्षनिमित्तं दुःखं वहति परलोकदृष्टिः तनुदंडी।

मिथ्यात्वभावं न छिनत्ति किं प्राप्नोति मोक्षसौख्यं हि।।

परलोयदिट्ठि परलोक का लोलुपी **तणुदंडी** काय को कृष करने वाला बहिरात्मा **मोक्खणिमित्तं** मोक्ष के निमित्त **दुक्खं** दुःख **वहेइ** उठाता हुआ **मिच्छाभावं** मिथ्याभाव को **ण** नहीं **छिज्जइ** छोड़ता है **किं** तो क्या **हि** निश्चय से **मोक्खसोक्खं** मोक्षसुख को **पावइ** प्राप्त कर सकता है? अर्थात् नहीं।

प्र.-2113 निदानबंधक साधु मोक्ष के निमित्त दुःख के बोझे को क्यों ढोता है?

उत्तर- निदानबंधक साधु मिथ्याभावों को नहीं छोड़ता हैं तब सर्वकर्म बंधन मुक्त रूप मोक्ष को कैसे प्राप्त कर सकता है? जैसे कुछ शराबी शराब के नशे में मस्त हो नदी के किनारे पहुंचे उनको नदी के उस पार जाना था पर नाविक नहीं था, शराबियों ने देखा कि नाविक नहीं है पर नाव रखी है, चलो नाव पर बैठकर अपन सभी उसपार चलते हैं, रात्रि हो चुकी थी वे नाव में सवार होकर रातभर खेते रहे प्रातःकाल होते ही सोचने लगे कि अपन अब किनारे पर आ पहुंचे हैं पर देखते हैं कि नाव तो जहाँ की तहाँ है, क्या कारण है कि इतना परिश्रम किया पर किनारा प्राप्त नहीं हुआ तब वे नाव के चारों तरफ देखते हैं कि नाव तो सांकल से बंधी हुई है, बंधन खोले बिना परिश्रम करने से किनारा प्राप्त नहीं हुआ ऐसे ही यह मोही मिथ्यादृष्टि साधु बनकर मिथ्याभाव को न छोड़ने के कारण घोर तप करता हुआ भी मोक्ष को नहीं पाता।

प्र.-2114 मिथ्याभाव किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्वोदय से उत्पन्न हुए परिणामों को या लौकिक देवीदेवताओं में, तत्संबंधी शास्त्र और साधुओं में तथा इनके सभी भक्तों में कल्याणार्थ विश्वास करने को या सम्यक् आप्तागमतपोभृतों में मोक्षार्थ विश्वास न करने को मिथ्याभाव कहते हैं। यह मिथ्याभाव किन्हीं जीवों के व्यक्त और किन्हीं के अव्यक्त होता है।

प्र.-2115 मोक्षसुख किसे कहते हैं और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- परपदार्थ निरपेक्ष, इंद्रिय मननिरपेक्ष, कर्मनिरपेक्ष, आत्मोत्थ, आत्मानंद को मोक्षसुख कहते हैं। संपूर्ण मोहनीय के क्षय से उत्पन्न होता है और केवलज्ञानियों के द्वारा अनुभव किया जाता है।

प्र.-2116 दुःख कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर- परसापेक्ष होने पर, इंद्रिय और मन के विषयों में आधीन पर, परपदार्थों के आधीन होने पर तथा असाता वेदनीय कर्मोदयानुसार परिणति होने पर दुःख उत्पन्न होता है।

प्र.-2117 परलोक दृष्टि मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर- दृष्टि- विश्वास। परलोक- आगामीभवों में। जिसकी दृष्टि विश्वास परपदार्थों में, परलोक में टिकी हुई है, इंद्रियसुख के निमित्त चेतन अचेतन पदार्थों को चाहता है उसे परलोक दृष्टि वाला मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्र.-2118 इहलोक दृष्टि मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर- इस वर्तमान मौजूद भव में जिसकी दृष्टि विवेकहीन होकर बाह्य पदार्थों में विषयभोगों में और विषय भोगों के निमित्त चेतन अचेतन मिश्र पदार्थों में स्थिर है उसे इहलोक मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्र.-2119 'तणुदंडी' किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मदृष्टि न होने से केवल बहिर्दृष्टि वाले विषयकषायी कायक्लेशी साधुओं को अथवा केवल बाह्य तप करने वालों को 'तणुदंडी' केवल शरीर को दंडित करने वाला कहते हैं।

प्र.-2120 गाथा में ग्रंथकारजी ने "हि" शब्द का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- गाथा में "हि" का प्रयोग निश्चयार्थ किया है कि ऐसा जीव त्रिकाल में मोक्ष नहीं पायेगा।

नोटः- यहाँ तक 2120 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 58वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 59वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

क्या बाह्यचर्या से आत्मलाभ?

ण हु दंडइ कोहाइं देहं दंडेइ कहं खवइ कम्मं।

सप्पो किं मुवइ तहा वम्मीए मारिए लोए।।59।।

न हि दंडयति क्रोधादीन् देहं दंडयति कथं क्षपेत् कर्म।

सर्पः किं म्रियते तथा वल्मीके मारिते लोके।।

यह साधु **कोहाइं** क्रोधादि कषायों को **दंडइ** दंडित **ण** न कर **देहं** शरीर को **हु** ही **दंडेइ** दंड देता है तो इससे **कम्मं** कर्मों का **खवइ** क्षय **कहं** कैसे कर सकता है **तहा** जैसे **लोए** लोक में **वम्मीए** सर्पबिल को **मारिए** मारने से **किं** क्या **सप्पो** साँप **मुवइ** मर सकता है? नहीं।

प्र.-2121 शरीर को दंड दिये बिना क्या क्रोधादि कषायों को दंडित करना संभव है?

उत्तर- त्रिकाल में भी असंभव है जैसे धान का बाह्य छिलका निकाले बिना अंदर का छिलका निकलता नहीं और इसके निकाले बिना सफेद चावल प्राप्त नहीं होता ऐसे ही शरीरादि से वैराग्य हुए बिना विषय कषायों का त्याग होना असंभव है और इनके जीते बिना आत्मा की यथानुरूप प्राप्ति नहीं हो सकती है।

प्र.-2122 सर्व प्रथम शरीर को दंडित करना चाहिये या क्रोधादि कषायों को?

उत्तर- प्रथम शरीर को बाद में क्रोधादि कषायों को दंडित करना चाहिये। अतः शरीर को दंडित करना परमावश्यक है क्योंकि तीर्थंकरादि महापुरुषार्थियों ने शरीर को दंडित करके ही मोक्ष पाया है।

प्र.-2123 यदि कोई सर्व प्रथम क्रोधादि को दंडित करना चाहे तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- हमें कोई आपत्ति नहीं है किंतु जरा सोचो यदि बाह्य त्याग के बिना क्रोधादि विकारों का सर्व प्रथम दमन हो जाये तो मुनि बनने, तप करने की क्या जरूरत है? अतः सर्व प्रथम बाह्य परिग्रह का त्याग फिर अंतरंग परिग्रहों का त्याग करने के बाद में शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है। कहा भी है-

सव्वेवि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।

किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं।। 82।। प्र.सा.

अर्थः- जिस विधि से पूर्व तीर्थंकर, अरिहंतों ने कर्मक्षय कर मोक्ष प्राप्त किया है उसी विधि का उन्होंने उपदेश दिया है, अन्य प्रकार से नहीं। अतः उन सभी अरिहंतों को नमस्कार हो।

प्र.-2124 तो कोई केवल शरीर को दंडित कर मोक्ष चाहे तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- सर्वत्र आपत्ति ही आपत्ति है। जैसे वामी को पीटने से सर्प का कुछ भी नहीं बिगड़ता क्योंकि सर्प वामी में सुरक्षित है ऐसे ही क्रोधादि रूपी सर्प शरीर रूपी बामी में रह रहा है, शरीर रूपी वामी को दंडित करने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि अंतरंग में कषायों के जीवित रहने पर मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है अतः पद्धति के अनुसार ही प्रयोग करने पर सफलता मिलती है अन्यथा नहीं।

प्र.-2125 आ. श्री कुंदकुंदजी ने ऐसा क्रम क्यों बताया या यह गाथा क्यों रची?

उत्तर- आ. श्री के सामने जब वस्त्रधारी साधुवर्ग केवल अंतरंग त्याग के बिना बाह्य त्याग तप से ही मोक्ष प्राप्ति का विधान करने लगे तब गृहस्थ स्त्री पुरुष बाह्य चोला बदलकर मोक्ष प्राप्त करने का ढोंग कर भोली समाज को ठगने लगे अतः इस गाथा में आ. श्री ने कहा कि बाह्य भेष से क्या? थोड़ा अंदर झांक के देखो। जैसे कांचली के निकल जाने से क्या सर्प निर्विष हो जाता है? नहीं।

प्र.-2126 केवल अंतरंग या बहिरंग त्याग से मुक्ति क्यों नहीं मिलती है?

उत्तर- चावल की प्राप्ति के उदाहरणानुसार ही मोक्ष की प्राप्ति होती है यही अनादि परंपरा है, अन्यथा उत्सर्ग लिंग का कोई महत्त्व नहीं रह जाता क्योंकि आत्मसिद्धि के लिए उभयत्याग की अत्यंतावश्यकता है।

प्र.-2127 जो केवल अंतरंग त्याग से ही आत्मसिद्धि चाहते हैं तो क्या वे ठीक हैं?

उत्तर- नहीं, ये कोरे अध्यात्मवादी केवल अंतरंग की रटन लगाते लगाते आत्मसाधना से वंचित हैं जो आज प्रत्यक्ष दिख रहा है क्योंकि एक पहिये से रथ नहीं चलता है, न एक हाथ से ताली बजती है। यदि केवल अंतरंग त्याग से सिद्धि हो जाती तो कोई भी प्राणी संसारी नहीं रहता, सभी जीव मोक्ष में चले जाते।

प्र.-2128 क्रोधादि और शरीर को दंडित करने से क्या मोक्ष प्राप्ति संभव है?

उत्तर- क्रोधादि कषायों का क्षय क्रमशः 10वें के अंत में एवं सूक्ष्मकाय योग का क्षय 13वें के अंत में ही हो जाता है किंतु अघातिया कर्मों का क्षय न होने से मोक्ष प्राप्त नहीं होता। वास्तव में व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान से 14वें गुणस्थान के द्विचरम समय में 72 प्रकृतियों का और चरम समय में 13, 12, 11, 10 प्रकृतियों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। मोक्ष प्राप्ति का यही साधकतम उपाय है, अन्य दूसरा नहीं।

प्र.-2129 तो फिर ग्रंथकारजी ने ऐसा क्रम क्यों कहा?

उत्तर- मंडूकन्याय से ऐसा कहा है। क्रोधादि के क्षय के बिना तीन घातिया कर्मों का और काययोग के क्षय के बिना अघातिया कर्मों का क्षय नहीं होता है अथवा कषायों के क्षय से घातियाकर्मों का और काययोग के क्षय के बाद में अघातियाकर्मों के क्षय से मोक्ष प्राप्त होता है सो यह क्रम ठीक ही कहा है।

प्र.-2130 आ. श्री ने जब मोक्ष प्राप्ति का वर्णन नहीं किया है तो आपने क्यों किया?

उत्तर- आ. श्री ने ही निषेध विधि से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया है अन्यथा **'कहं खवई कम्मं'** यह वाक्य नहीं कहते अतः हमने अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा है क्योंकि कर्मों के क्षय से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

नोटः- यहाँतक 2130 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 59वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 60वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

संयत और असंयत कब?

उवसमतवभावजुदो णाणी सो भावसंजदो होई।

णाणी कसायवसगो असंजदो होइ सो ताव ।।60।।

उपशमतपभावयुतो ज्ञानी स भावसंयतो भवति।

ज्ञानी कषायवशगोऽसंयतो भवति स तावत्।।

जबतक **सो** वह **णाणी** ज्ञानी **उवसमतवभावजुदो** उपशम तपभाव सहित है **ताव** तब तक **भावसंजदो** भाव संयत **होई** होता है और **कसायवसगो** कषाय के आधीन हुआ ज्ञानी **असंजदो** असंयत **होइ** होता है।

प्र.-2131 यहाँ ''ज्ञानी'' पद से कौन से ज्ञानी को लेना चाहिये?

उत्तर- यहाँ ''ज्ञानी'' पद से सम्यग्ज्ञानी को भी ले सकते हैं और शास्त्रज्ञानी को भी।

प्र.-2132 संयत और असंयत पद से किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- संयत से भावसंयत और असंयत से भावअव्रती और भावदेशव्रती को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2133 द्रव्य संयत और द्रव्य असंयत को क्यों ग्रहण नहीं करना?

उत्तर- द्रव्यसंयत को पुनः संयत पद ग्रहण नहीं करना है क्योंकि मोक्षमार्ग में द्रव्यसंयत अप्रधान और भावसंयत प्रधान है। यदि मुनिपद पहले से नहीं हो तो एक समय में भावमुनि पद कैसे हो जायेगा यद्यपि यह शारीरिक लिंग या बाह्य सदाचार की अपेक्षा मुनिपद है कदाचित् गृहत्यागी भी

है तो भी वह ज्ञानीमुनि जब अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण कषायों के आधीन होता है तब भाव से असंयत होता है।

प्र.-2134 यह शास्त्रज्ञानी या सम्यग्ज्ञानी भावसंयत कब कहलाता है?

उत्तर- जब यह ज्ञानी जीव सम्यग्दर्शन और सम्यक्तप से सहित होता है तब भाव संयत कहलाता है। जैसे उपसर्ग होने के पहले और उपसर्ग होने तक द्वीपायन मुनि यथार्थ में भावसंयत थे।

प्र.-2135 यह कैसे मालुम कि द्वीपायन मुनि भावसंयत मुनि थे, द्रव्यलिंगी नहीं?

उत्तर- द्वीपायनमुनि ने अशुभ तैजससमुद्घात करके देव रचित द्वारिका को जलाया था। यह तैजसऋद्धि प्रमत्तमुनियों को ही तप के प्रभाव से होती है। त.सू. अ.2 **''तैजसमपि''** किंतु यह तैजसऋद्धि विषयकषायों से मलिन होने से अशुभ होती है और करुणाबुद्धि, धर्मबुद्धि के कारण शुभ हो जाती है अतः द्वीपायन ने तैजसऋद्धि प्राप्त की थी अतः वे भावसंयतमुनि थे, द्रव्यलिंगी नहीं।

प्र.-2136 जब द्वीपायन मुनि भावलिंगी, भावसंयत मुनि थे तो नरक क्यों गये?

उत्तर- नहीं, नरक में नहीं गये उस परम पवित्र तैजसऋद्धि को प्राप्त कर तीव्र हिंसानंदी रौद्रध्यान से परिणत हो तैजसऋद्धि के दुरुपयोग के कारण अग्निकुमार जाति के भवनवासियों में जाना पड़ा सो यह ऋद्धि का दोष नहीं किंतु हिंसानंदी रौद्रध्यान का दोष है। हरि.पु. अ.61,गा.69 पृ.759

प्र.-2137 द्वीपायन मुनि को हिंसानंदी रौद्रध्यान क्यों हुआ?

उत्तर- तीव्र उपसर्ग को सहन न कर सकने के कारण अनंतानुबंधी कषाय से परिणत हो संख्यात और असंख्यात प्राणियों को जलाने के कारण प्रसन्न हुए इसलिए हिंसानंदी रौद्रध्यान हुआ।

प्र.-2138 यह सम्यग्ज्ञानी भावअसंयत कब होता है?

उत्तर- यह सम्यग्ज्ञानी विषयकषायाधीन होते ही भावअसंयत होता है। जैसे शराब के नशे में चूर यदुवंशीकुमारों के द्वारा किये गये तीव्र उपसर्ग को न जीतने के कारण तीव्र कषाय से परिणत हो अशुभ तैजस समुद्घात के होते ही संयम से गिरकर मिथ्यात्व में आकर द्वीपायन मुनि ने समस्त द्वारिका नगरी को जलाया अथवा परिणामों से गिरकर अकाम निर्जरा करके अग्निकुमार जाति के देवों में जन्म लेकर पूर्व वैर के कारण द्वारिका को जलाया अतः तीव्र आर्तरौद्रध्यान होने से यह सम्यग्ज्ञानी भावअसंयत हो जाता है।

प्र.-2139 यह जीव द्रव्यअसंयत कब होता है?

उत्तर- भावअसंयम पूर्वक शरीर के द्वारा गृहस्थचर्या के रूप में परिणत होने से द्रव्य असंयत होता है।

प्र.-2140 उपशमभाव और तप से किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- उपशमभाव से तीनों सम्यग्दर्शनों को एवं तप से उभयतप, चारित्र को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2141 तप के साथ में चारित्र को क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर- जहाँ तप होगा वहाँ नियमतः चारित्र होगा क्योंकि चार आराधनाओं में चारित्राराधना तीसरे नंबर की है तो तपाराधना चौथे नंबर की है अतः तपाराधना के साथ चारित्राराधना अवश्यंभावी है किंतु चारित्र आराधना के बाद तपाराधना हो और नहीं भी। जैसे सहस्रपति शतपति होता ही है किंतु शतपति सहस्रपति हो भी सकता है और नहीं भी। इस कारण यहाँ पर तप के साथ में चारित्र को ग्रहण किया है।

प्र.-2142 सम्यग्दर्शन, चारित्र, तप ये तीनों असंयम के साथ में रह सकते हैं क्या?

उत्तर- असंयम में तीनों सम्यग्दर्शन और सामान्य सम्यक्चारित्र होता ही है, विशेष चारित्र कुछ अंशों में रह सकता है किंतु सामायिकादि चारित्र और उत्कृष्ट तप असंयम के साथ नहीं होते हैं।

प्र.-2143 असंयम के साथ कौन कौन से सम्यग्दर्शन हो सकते हैं, स्वामी कौन हैं?

उत्तर- असंयम के साथ में उपशमादि तीनों सम्यग्दर्शन हो सकते हैं। चारों गतियों के जीव स्वामी हैं।

प्र.-2144 असंयम के साथ चारित्र कैसे रह सकता है?

उत्तर- हाँ, रह सकता है क्योंकि चारित्र की प्रतिबंधक सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियों का उदयाभाव होने से असंयम के साथ सामान्य सम्यक्चारित्र रहता ही है। जैसे मकान में किसी भी खिड़की या दरवाजे के बंद कर देने से तत्संबंधी धूल, हवा आदि नहीं आते या खिड़की खोल देने से प्रकाश आदि प्राप्त होते हैं ऐसे ही प्रतिकूल कारणों के अभाव में अनुकूल कार्य होना ही चाहिये अतः सामान्य सम्यक्चारित्र रहता ही है।

प्र.-2145 असंयम के साथ विशेष चारित्र क्यों नहीं रहता है?

उत्तर- विशेष सकलचारित्र की घातक प्रत्याख्यानावरणीय कषाय है या असंयम के उत्पादक आदि की 12 कषायों का हीनता पूर्वक उदय है तब सकलचारित्र कैसे उत्पन्न हो सकता है?

प्र.-2146 तो क्या संज्वलन कषाय के उदय से सकलचारित्र होता है?

उत्तर- नहीं, सकलसंयम की उत्पत्ति आदि की 12 कषायों के उदयाभाव में हुई है और संज्वलन कषाय के तीव्रोदय की अवस्था में प्रमाद तथा अनेक दोष संयम में उत्पन्न होते हैं।

प्र.-2147 देशचारित्र की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर- आदि की दो चौकड़ी कषायों के उदयाभाव में देशचारित्र की उत्पत्ति होती है।

प्र.-2148 तो फिर प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से क्या होता है?

उत्तर- प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से देशचारित्र में अतिक्रमादि चारों दोष उत्पन्न होते हैं।

प्र.-2149 देशचारित्र और सकलचारित्रोत्पत्ति कषायोदय से मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- कषायोदय से देश सकलचारित्रोत्पत्ति मानने पर चारित्र को औदयिकभाव मानना पड़ेगा यही आपत्ति है और औदयिकभाव से मोक्ष, मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति क्षायिकभाव से तथा मोक्षमार्ग की प्राप्ति औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव से होती है।

प्र.-2150 क्षायिकभाव से मोक्षमार्ग की और मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर- क्षायिकभाव की जघन्यलब्धि से मोक्षमार्ग की और उत्कृष्ट लब्धि से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.-2151 असंयम के साथ में क्या तप हो सकता है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही हो सकता है तभी तो मू.चा. अ. 10 गा. 1029 और भ.आ. में कहा है -

सम्मादिट्ठिस्स वि अविरदस्स ण तवो महागुणो होदि।

होदि हु हत्थिण्हाणं चुंदच्चुदकम्म तं तस्स॥7॥ भ. आ.

अर्थः- अविरतसम्यग्दृष्टि जीव का तप महान उपकारी नहीं होता है उसका वह तप हाथी के स्नान के समान, मंथन- मथानी की रस्सीवत् और चर्मपालिकावत् होता है। आ. महाराज अव्रतियों के तप स्वीकार करते हुए भी असंयम की बहुलता होने से महान उपकारी नहीं होता है ऐसा कहा है।

प्र.-2152 जब अविरतसम्यग्दृष्टि का तप महान उपकारी नहीं है तो क्यों करता है?

उत्तर- यहाँ अविरतसम्यग्दृष्टि का तप महान उपकारी नहीं है तो क्या हुआ? महान उपकार का निषेध किया है, सर्वथा उपकारी नहीं है ऐसा तो कहा नहीं है अतः उपकारी तो है तभी तो मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि का तप संख्यातगुणी असंख्यात गुणी निर्जरा कराता है अतः उपकारी ही है।

प्र.-2153 असंयम के साथ में विशेष तप हो सकता है क्या?

उत्तर- नहीं, विशेषतप असंयम के साथ में नहीं रह सकता है क्योंकि विशेष तप की घातक आदि की तीन चौकड़ी कषायें हैं तब असंयम के साथ में विशेष तप कैसे हो सकता है?

प्र.-2154 कषाय 10वें गुणस्थान तक होने से क्या 10वें तक असंयम होता है?

उत्तर- संज्वलनकषाय का उदय और तद्रूप में परिणमन 10वें गुण. तक अवश्य होता है पर यह यथाख्यात चारित्र की और शुक्लध्यान रूप अंतरंग तप की घातक मानी गई है। प्रायश्चित्तादि 5 अंतरंगतप और धर्मध्यान अंतरंगतप की घातक नहीं मानी है अतः असंयम नहीं होता है।

प्र.-2155 ज्ञानी कषाय के वशीभूत हुआ किस प्रकार के असंयम वाला होता है?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय से पहले दूसरे गुणस्थान वाला असंयम, अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से तीसरे, चौथे गुणस्थान वाला असंयम, प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से 5वें गुणस्थान वाला असंयम होता है।

प्र.-2156 कषायों के वशीभूत हुए असंयत जीव को ज्ञानी क्यों कहा?

उत्तर- सम्यग्ज्ञान की अपेक्षा ज्ञानी कहा है अथवा पोथीपंडित कहा है, वास्तव में ज्ञानानुसार दिनचर्या का पालन न करने से वह ज्ञानी कैसा? वह तो कुपुत्रवत् अज्ञानी है।

नोटः- यहाँतक 2156 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 60वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 61वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

ज्ञानमद वाला अज्ञानी

णाणी खवेइ कम्मं णाणबलेणेदि बोल्लए अण्णाणी।
वेज्जो भेसज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाही।।61।।

ज्ञानी क्षपयति कर्म ज्ञानबलेनेति वदति अज्ञानी।
वैद्यो भैषज्यमहं जानामीति नश्यते व्याधिः।।

णाणी ज्ञानी **णाणबलेण** ज्ञानबल से **कम्मं** कर्मों का **खवेइ** क्षय करता है **इदि** ऐसा **बोल्लए** वक्ता **अण्णाणी** अज्ञानी है जैसे **अहं भेसज्जं** मैं औषधि का और रोग का **जाणे** ज्ञाता हूँ **वेज्जो** वैद्य हूँ इतने मात्र से क्या **वाही** व्याधि **णस्सदे** नष्ट हो सकती है?

प्र.-2157 क्या सिर्फ ज्ञानमात्र से कर्मों का क्षय हो सकता है?

उत्तर- नहीं, सिर्फ ज्ञान मात्र से कर्मों का क्षय नहीं होता है क्योंकि ज्ञान का कार्य जानना मात्र है। क्या भोजन को जानने देखने मात्र से भूखप्यास दूर हो सकती है? स्वाद आ सकता है? तुष्टिपुष्टि हो सकती है तो खानेपीने, चबाने, गुटकने का परिश्रम क्यों करना पड़े? अतः भोजन करने से ही तृप्ति होती है ऐसे ही ज्ञान के द्वारा हेयोपादेय को जानने मात्र से कर्मों का क्षय नहीं होता है।

प्र.-2158 तो फिर कर्मों का क्षय किससे होता है?

उत्तर-समूल कर्मों का क्षय अंतर्बाह्य चारित्र से, ध्यान से होता है। यदि ज्ञान मात्र से कर्मों का क्षय होने लगे तो केवलियों के केवलज्ञान से कर्मों का क्षय क्यों नहीं हुआ?

प्र.-2159 ज्ञान से कर्मों का क्षय होता है ऐसा बोलने वाले को अज्ञानी क्यों कहा?

उत्तर- सांख्यों की या अन्यमतियों की तरह बोलने वाले जैनियों को ही अज्ञानी कहा है अथवा ज्ञानमद से बोलने वाले को अज्ञानी कहा है क्योंकि अहंकार को सर्वत्र हानिकारक ही कहा है।

प्र.-2160 इस विषयको समझने के लिए आचार्यश्री ने क्या उदाहरण दिया है?

उत्तर- जैसे मैं वैद्य हूँ, यह औषधि है और यह रोगी है, यह रोग है ऐसा जानने मात्र से रोग दूर नहीं होता है किंतु उचित पथ्यापथ्य और औषधि के सेवन से रोग दूर होता है ऐसे ही लोकोत्तर कार्यों की सफलता के लिए सम्यक्विश्वास, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों ही चाहिये।

प्र.-2161 लौकिक कार्यों की सिद्धि किससे होती है?

उत्तर- लौकिक कार्यों की सिद्धि भी सिर्फ ज्ञान से न होकर विश्वास, ज्ञान और चारित्र से होती है। यदि लौकिक कार्यों में भी विश्वास, ज्ञान और आचरण सही नहीं है तो सिद्धि नहीं होती है। अतः परिवार चलाने में, व्यापार, व्यवहार करने में, राज्य देश पर शासन करने में भी विश्वास, ज्ञान और चारित्र की आवश्यकता है अन्यथा कहीं पर भी योग्य सफलता नहीं मिल सकती है।

प्र.-2162 कर्मों के क्षय में और निर्जरा में क्या अंतर है?

उत्तर- जिन मूल या उत्तरप्रकृतियों को ध्यान के बल से समूल नष्ट कर दिया है तो उनका कालांतर में कभी भी बंध नहीं होता है किंतु सकामनिर्जरा या अविपाकनिर्जरा के द्वारा असंख्यात गुणश्रेणी रूप से कर्मों की निर्जरा कर दी है तब पुनः परिणामों के बिगड़ जाने से, विषयकषायों से परिणत होकर उन कर्मों का बंध कर लेता है यही इनमें अंतर है।

प्र.-2163 यदि यहाँ ज्ञानी पद से भेदविज्ञानी अर्थ लिया जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि यहाँ ज्ञानी पद से सम्यक्भेदविज्ञानी अर्थ ग्रहण करते हैं तो ग्रंथकार अज्ञानी नहीं कहते अतः आ. श्री ने अज्ञानी पद का प्रयोग किया है इसलिए अज्ञानी पद से मिथ्याज्ञानी अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2164 यदि बलात् भेदविज्ञानी अर्थ लिया जाय तो क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, सम्यक्भेदविज्ञानी जीव ज्ञानमद या किसी भी प्रकार का मद नहीं करता है क्योंकि मद/अहंकार सम्यग्दर्शन को और मोक्षमार्ग को मलिन कर समूल विनाश कर देता है। अतः भेदविज्ञानी संसार शरीर भोगों से विरक्त होने के कारण अहंकार नहीं करता इस कारण सम्यग्भेदविज्ञानी अर्थ लेना ही दोष है।

प्र.-2165 क्या यहाँ बोलने वाले को, विश्वास या आचरण वाले को अज्ञानी कहा है?

उत्तर- नहीं? जैसे विवाह में वरवधू के अनुसार घराती बराती, राजा के अनुसार प्रजागण, गुरु के अनुसार शिष्यगण कार्य करते हैं ऐसे ही रत्नत्रय में वक्ता किसे प्रधान करे और किसे गौण करे यह विषय वक्ता का है न कि श्रोताओं का, वक्ता प्रतिपक्षी धर्म को गौण करता है, अभाव नहीं। यदि अभाव कर दे तो वह समीचीन वक्ता नहीं है, सर्वत्र अज्ञानी ही है। जैसे ज्ञानमद वाले को अज्ञानी कहा है ऐसे ही विश्वासघाती को या अविश्वासी को मिथ्यादृष्टि कहा है, मलिन चारित्रवाले को अचारित्री, कुचारित्री, मिथ्याचारित्री कहा है।

नोटः- यहाँतक 2165 प्रश्नोत्तरों तक 61वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 62वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

औषधि क्या है

पुव्वं सेवइ मिच्छामल सोहणहेउ सम्मभेसज्जं।

पच्छा सेवइ कम्मामय णासण चरिय सम्मभेसज्जं ॥62॥

पूर्वं सेवय मिथ्यात्वमलशोधनहेतुः सम्यक्त्वभैषजं।

पश्चात् सेवय कर्मामयनाशनं चारित्रं सम्यग्भैषजम्॥

पुव्वं सर्व प्रथम **मिच्छामल** मिथ्यामल के **सोहणहेउ** शोधनार्थ **सम्म** सम्यक्त्व रूपी **भेसज्जं** औषधि का **सेवइ** सेवन करो **पच्छा** पश्चात् **कम्मामय** कर्म रूपी व्याधि के **णासण** नाश के लिये **सम्मचरिय**

सम्यक्चारित्र रूपी **भेसज्जं** औषधि का **सेवइ** सेवन करो।

प्र.-2166 दर्शनमोह के 3 भेदों में से मिथ्यामल धोने को क्यों कहा?

उत्तर- वास्तव में देखा जाये तो मिथ्यात्व कर्म एक ही है, तीन नहीं पर प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के प्रथम समय में ही सम्यक्त्व रूपी शुभ परिणामों से उस मिथ्यात्वकर्म के तीन टुकड़े हो जाते हैं या वेदक सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले मिथ्यात्व को सम्यङ्मिथ्यात्व में परिणमन कराने से इसे ही मिथ्यात्वकर्म कहते हैं और इस मिथ्यात्व को सम्यक्त्वप्रकृति में परिणमन करा देने को ही मिथ्यात्व कहा है इसलिए मिथ्यात्व कर्म के क्षय से सम्यग्दर्शन होता है ऐसा कहा गया है। यथार्थ में देखा जाय तो मिथ्यात्व कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है किंतु देशघाति सम्यक्प्रकृति के क्षय से होती है अन्यथा मिथ्यात्व कर्म को मिश्र प्रकृति में संक्रमण करा देने से ही क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती सो अभी नहीं हुई इससे सिद्ध होता है कि मिथ्यात्व कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता है और जहाँ आचार्यों ने कहा है सो वह कथन व्यवहारनय से समझना चाहिये।

प्र.-2167 मिथ्यात्वकर्म को, अविश्वास को मल की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- जैसे स्वच्छ भूमि को मलमूत्र, निर्मल वस्त्र को मैल गंदा कर देता है वैसे ही सम्यक्त्व को मिथ्यात्व मलिन कर देता है सो इस कारण मिथ्यात्व को मल की उपमा दी है अथवा मलमूत्र के समान विश्वासघाती से सभी घृणा करते हैं, बचकर रहते हैं अतः विश्वासघात को सभी जैनाजैन विनाशकारी ही समझते हैं।

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वं।।157।। स.सा. आ. श्री कुंदकुंद

अर्थः- जैसे मल के संसर्ग से वस्त्र का श्वेतपना नष्ट हो जाता है वैसे ही मिथ्यादर्शन रूपी मल से आच्छादित हो सम्यग्दर्शन नष्ट हो जाता है यह निश्चय से जानना चाहिये।

प्र.-2168 सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र को औषधि की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- वस्त्र के, शरीर के मैल को साबुन सोड़ा के प्रयोग से दूर करते हैं ऐसे ही अविश्वास को विश्वास से और अचारित्र को सम्यक्त्वचारित्र रूपी औषधि से दूर करते हैं अतः दोनों को औषधि की उपमा दी है।

प्र.-2169 औषधि का प्रयोग रोग होने के पहले करते हैं या रोग होने के बाद में?

उत्तर- रोग शमनार्थ औषधि का प्रयोग करते हैं। यदि रोग न हो तो औषधि की तलाश नहीं होती, न जरूरत पड़ती तभी तो जिनेंद्र भगवान ने आयुर्वेद का उपदेश दिया है। यदि बीमारी नहीं है तो औषधि का उपदेश और औषधिदान का प्रयोग सूरदासों के सामने नृत्य करने के समान हो जाता है।

प्र.-2170 यदि रोग होने के पहले ही औषधि का सेवन करें तो क्या दोष है?

उत्तर- रोग होने के पहले औषधि का प्रयोग करना ही रोग को, मृत्यु को निमंत्रण देना है। जैसे भूंख के बिना भोजन करना स्वास्थ्य को बिगाड़ना ही है ऐसे ही कर्मरोगी को धर्मोपदेश है, कर्मनिरोगी को नहीं।

प्र.-2171 आयुर्वेद या औषधिदान का उपदेश क्यों दिया?

उत्तर- स्वास्थ्य अच्छा न होने से व्यापार, व्यवहार, प्यारादि न किसी से ले सकते हैं, न दे सकते हैं, न इंद्रिय सुखानुभव होता है, न ध्यानाध्ययन तपश्चरण में मन लगता है, न आत्मसाधना होती है आदि लौकिक और लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि के लिए, निरोगता के लिए जिनेंद्र ने औषधि और औषधिदान का उपदेश दिया है या केवली जानते हैं तभी तो उन्होंने उपदेश दिया है यदि

नहीं जानते तो उपदेश कैसे देते? अतः यह औषधि और औषधिदान का उपदेश शरीर और आत्मा की निरोगता की मुख्यता से दिया गया है।

प्र.-2172 रुग्णावस्था में क्या आत्मसाधना संभव है?

उत्तर- हाँ, सनतकुमार मुनिवत् रुग्णावस्था में आत्मसाधना और मोक्ष प्राप्ति भी संभव है, असंभव नहीं है किंतु कदाचित् लौकिक कार्यों में बाधा उत्पन्न हो सकती है, आत्मसाधना में नहीं।

प्र.-2173 जब रत्नत्रय की उत्पत्ति एक ही समय में होती है तो ऐसा क्रम क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ उत्पत्ति की अपेक्षा से कथन नहीं किया है किंतु किसके माध्यम से किसमें समीचीनता आती है यह बतलाने के लिए ऐसा इस क्रम से कहा है। जैसे एक के बिना शून्यों की कोई कीमत नहीं होती और एक के होने पर आगे के सभी शून्यों की कीमत दसगुणी[2] बढ़ती जाती है ऐसे ही सम्यग्दर्शन के सद्भाव में ज्ञान चारित्र की श्रेष्ठता बढ़ती जाती है अतः क्रम बताना भी जरूरी है।

प्र.-2174 हेतु किसे कहते हैं और गाथा में हेतु का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर- जिन साधनों के सद्भाव और असद्भाव में कार्य के होने न होने का नियम हो उसे हेतु कहते हैं। संसार या मोक्ष रूपी कार्य बिना हेतु के नहीं होता है क्योंकि कार्य कारण संबंध है। सभी कार्यों की सिद्धि अंतरंग बहिरंग या निमित्त उपादान कारणों से होती है, एक से नहीं।

प्र.-2175 क्या हेतु केवल शुभ कार्यों में ही होते हैं या अशुभ कार्यों में भी?

उत्तर- हाँ, हेतु शुभ और अशुभ दोनों कार्यों में होते हैं। जैसे सूर्योदय में प्रकाश तो अस्त में अंधकार होता है ऐसे ही सम्यग्दर्शन के सद्भाव में आत्मा का विकाश/ प्रकाश तो सम्यग्दर्शन के अभाव में आत्मा का पतन होता है, आत्मा मोहांधकार में डूबने से न मालुम किस योनि में जायेगी पुनः सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का अवसर कब आयेगा? अतः अशुभ हेतुओं से बचकर शुभ हेतुओं को जुटाकर उनमें लगना चाहिये।

प्र.-2176 आ. ने कर्म को रोग की उपमा क्यों दी है, रोग के भेद और नाम कौन[2] हैं?

उत्तर- कर्माश्रव के समान रोग भी स्वपरोभय के निमित्त से होते हैं। रोगों का अंतरंग कारण कर्मोदय है अतः कारण कार्य में अभेद कर कर्मों को ही रोग कहा है। दो भेद हैं। **नामः-** शारीरिक एवं मानसिक रोग।

प्र.-2177 स्व पर और उभय के निमित्त से रोग कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- **स्वनिमित्तक रोगः-** स्वयं की असावधानी से, दिनचर्या गलत होने से उत्पन्न रोगों को स्वनिमित्तक रोग **परनिमित्तक रोगः-** दाता की असावधानी से, विवेकहीनता से उत्पन्न रोगों को परनिमित्तक **उभयनिमित्तक रोगः-** स्व और पर दोनों के मेल से उत्पन्न हुए रोगों को उभयनिमित्तक रोग कहते हैं।

प्र.-2178 शारीरिक रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- शरीर संबंधी स्थिर धातुयें अस्थिर हो जायें और अस्थिरधातुयें स्थिर हो जायें तथा वात, पित्त, कफ में विकार से उत्पन्न होने वाले स्वतंत्रज, द्वंदज और त्रिदोषज रोगों को शारीरिक रोग कहते हैं।

प्र.-2179 मानसिक रोग किसे कहते हैं?

उत्तर- चारित्र मोहोदय एवं असातोदय से मन में उत्पन्न खिचावतनाव को मानसिक रोग कहते हैं।

प्र.-2180 इन दोनों प्रकार के रोगों का प्रधान कारण क्या है?

उत्तर- इन दोनों प्रकार के रोगों का दुष्कर्म ही मुख्य कारण है क्योंकि नामकर्मोदय से शरीर की और मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मानसिक विचारों की प्राप्ति होती है जिसे नोकर्म और

भावकर्म भी कहते हैं यही प्रधान कारण है तथा दिनचर्या बाह्य कारण है।

प्र.-2181 द्रव्यकर्म को रोग नाम क्यों दिया?

उत्तर- कार्य कारण और कारण कार्य में अभेद करके द्रव्यकर्म को रोग कहा है। जैसे शारीरिक और मानसिक बीमारियां आत्मा को नाना प्रकार से दुःखी करतीं हैं और आत्मा दुःखी होता है क्योंकि भोक्ता गुण आत्मा में ही है शरीर में नहीं। जो कर्ता है वही भोक्ता है इस नियमानुसार सुख दुःखानुभव करने वाला आत्मा ही है या द्रव्यकर्मों के उदय से भावकर्म और प्राप्त नोकर्म होते हैं जो रोग स्वरूप ही हैं ऐसा कहा है।

प्र.-2182 द्रव्यकर्म के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- द्रव्यकर्म के चार भेद हैं। 1. जीवविपाकी 2. पुद्गलविपाकी 3. क्षेत्रविपाकी 4. भवविपाकी।

प्र.-2183 द्रव्यकर्मोदय से भावकर्म और नोकर्म कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- सभी द्रव्यकर्मोदय रूपी निमित्त से उत्पन्न हुए नैमित्तिक फलदान शक्ति रूपी भावकर्मों की और शरीर नामकर्मोदय से शरीरनोकर्म उत्पन्न होते हैं।

प्र.-2184 रोगोत्पादक कर्म का बंध कब होता है और जीव रोगी कब होता है?

उत्तर- कषायाविष्टजीव रोगीनिरोगी को देखकर, व्यंगकर, नकल उतारकर रागद्वेष से कर्म बांधकर फिर पूर्वबद्ध कर्मोदय से वैसी ही अवस्था प्राप्त करता है। जैसे कोटीभट श्रीपाल ने 700 सुभटों के साथ पूर्व भव में मुनि को देखकर विषयकषायानुसार दुर्वचनोच्चारण कर तथा सभी ने पाप की अनुमोदना करके एक ही समान सामूहिक कर्म बांधा और सामूहिक रूप से श्रीपाल जैसी अवस्था सभी को प्राप्त हुई क्योंकि ये सभी 108 कोटियां आश्रवबंध के और इनके त्याग से संवर निर्जरा के संबंध में एक ही समान होतीं हैं।

प्र.-2185 जब द्रव्यकर्म 8 प्रकार के होते हैं तो ये रोग किस कर्मोदय से होते हैं?

उत्तर- शारीरिक रोग औदारिकशरीर, स्थिरास्थिर कर्मोदय की विषमता से तथा मानसिक रोग मोहोदय व मतिज्ञान से होते हैं। शारीरिक रोगों का वेदन मोहोदयानुसार प्रवृत्ति से होता है, अन्यथा नहीं।

प्र.-2186 असाता कर्मोदय से दुःख होता है तब मोहोदय से होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अनेक शारीरिकरोग और उपसर्गपरीषह होने पर भी यदि मोहोदय सहित असाताकर्म का उदय चल रहा है तो दुःख होता है अन्यथा कषायों में कुछ का उदयाभाव, कुछ का मंदोदय होने से पांडव, सुकुमाल, सुकौशलादि महामुनियों को न कष्टानुभव हुआ, न आर्तध्यान हुआ, न औषधि की, न सहायक की सोची। यद्यपि कष्ट का अनुभव साक्षात् असातावेदनीय कर्मोदय से होता है फिर भी मोहोदय के बिना अपना कार्य करने में असमर्थ है, मोहोदय केवल दुःखानुभव में सहायक होता है, साधकतम नहीं। यदि मोहोदय दुःख के लिए साधकतम कारण है तो संसारी कोई भी प्राणी सुखी नहीं हो सकता है।

प्र.-2187 कर्म रोग को दूर करने के लिए कौन सी औषधि का प्रयोग करना चाहिये?

उत्तर- कर्मरोग को नष्ट करने के लिए सम्यक्चारित्र रूपी औषधि का सेवन करना चाहिये।

प्र.-2188 उत्तर प्रकृतियों का और मूल प्रकृतियों का क्षय कौन करते हैं?

उत्तर- कदाचित् उत्तर प्रकृतियों का क्षय गृहस्थ भी कर सकते हैं किंतु शेष मूलोत्तर प्रकृतियों का क्षय क्रमशः क्षपकश्रेणी आरोहण करने वाले एवं अयोगी महामुनिजन ही गुणस्थानानुसार करते हैं।

प्र.-2189 गृहस्थ कौन सी उत्तर प्रकृतियों का क्षय कर सकते हैं?

उत्तर- गृहस्थगण दर्शनमोहनीयकर्म की 7 प्रकृतियों का कदाचित् क्षय कर सकते हैं, शेष का नहीं।

प्र.-2190 असंयमी या देशसंयमी जीव शेष कर्मों का क्षय क्यों नहीं करते?

उत्तर- शेष मूलोत्तर कर्मप्रकृतियों का क्षय करने के लिए सर्वोत्कृष्ट धर्मध्यान और शुक्लध्यान चाहिये। ये दोनों ध्यान वस्त्रधारियों के नहीं होते हैं तब गृहस्थ शेष मूलोत्तर प्रकृतियों का क्षय कैसे कर सकते हैं?

प्र.-2191 तो फिर मूलोत्तर शेष कर्मों का क्षय कौन करते हैं?

उत्तर- शेष मूलोत्तरकर्मों का क्षय 7,9,10,12 और 14वें गुण. वाले चरमशरीरी महामुनिजन ही करते हैं।

प्र.-2192 किस चारित्र से मूलोत्तर कर्मों का समूल क्षय होता है?

उत्तर- सामायिकचारित्र और सूक्ष्मसांपरायचारित्र से मोहकर्म का, सामान्य यथाख्यातचारित्र से 3 घातियाकर्मों का और विशेष यथाख्यातचारित्र से 4 अघातियाकर्मों का क्षय या सरागचारित्र से मोहनीयकर्म का और वीतरागचारित्र से 7 कर्मों का क्षय होता है।

प्र.-2193 क्या वीतराग चारित्र से एकसाथ कर्मों का क्षय होता है या क्रम से?

उत्तर- समस्त कर्मों का क्षय क्रम से होता है। **सो कैसे?** एकदेश वीतराग चारित्र से तीन घातियाकर्मों का और उत्कृष्ट वीतराग चारित्र से चार अघातिया कर्मों का समूल क्षय होता है।

प्र.-2194 संसार में क्या सभी चारित्रों से कर्मों का क्षय हो सकता है?

उत्तर- **चरियसम्मभेसज्जं** सम्यक्चारित्र रूपी औषधि से कर्मों का क्षय होता है अन्य चारित्र से नहीं।

प्र.-2195 सम्यक्चारित्र से ही कर्मों का क्षय होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सम्यक्चारित्र के विरुद्ध मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद और कषायों से कर्मों का अश्रव बंध होता है तो सम्यक्चारित्र से कर्मों का क्षय होता है कारण स्वभाव और विभाव परस्पर में ये दोनों विरुद्ध स्वभावी हैं।

नोटः- यहाँतक 2195 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 62वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 63वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अज्ञानी और ज्ञानी के फल में अंतर

अण्णाणी विसय विरत्तादो जो होइ सयसहस्सगुणो।

णाणी कसाय विरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं ।।63।।

अज्ञानी विषयविरक्तात् यो भवति शतसहस्रगुणः।

ज्ञानी कषायविरतो विषयासक्तः जिनोद्दिष्टम्।

विसयविरत्तादो विषयों से विरक्त **कसायासत्तो** कषायासक्त **अण्णाणी** अज्ञानी जो फल पाता है उससे **कसायविरदो** कषायों से विरक्त तथा **विसयासत्तो** विषयासक्त **णाणी** ज्ञानी **सयसहस्सगुणो** लाख गुणा फल प्राप्त करता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्र भगवान ने कहा है।

प्र.-2196 यहाँ अज्ञानी पद से किस अज्ञानी जीव को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यहाँ अज्ञानीपद से पहले दूसरे गुणस्थान वालों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि ये संसारमार्गी हैं, मिथ्याज्ञानी हैं।

प्र.-2197 यह व्यक्ताव्यक्त अज्ञानी विषयों से विरक्त कैसे हो जाता है?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव गृहस्थ जीवन से या कदाचित् राजविषयभोगों से विरक्त होकर साधु पद अंगीकार कर अकाम निर्जरा के द्वारा देवायु को बांधकर मरणकर भवनत्रिकों में और पहले दूसरे आदि स्वर्गों में जन्म ले लेता है इस हेतु मिथ्यादृष्टि जीव कषायासक्त होकर विषयों से

विरक्त हो जाता है।

प्र.-2198 यह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव विषयों से विरक्त हो साधु क्यों बन जाता है?

उत्तर- अधिक मात्रा में भोगों की, पुण्य की वृद्धि के लिए वर्तमान के भोगों को छोड़कर साधु बन जाता है। जैसे व्याज से आजीविका चलाने वाला व्यक्ति अधिक मात्रा में धन की प्राप्ति के लिए मूलधन की चिंता नहीं करता किंतु वर्ष प्रतिवर्ष चक्रवर्ती व्याज लगाकर अधिक धनराशि बढ़ा लेता है या किसान अधिक मात्रा में फल की प्राप्ति के लिए घर में रखा हुआ सुरक्षित बीज मिट्टी में मिला देता है। ऐसे ही यह मोही अज्ञानी प्राणी भविष्य में अधिक भोगोपभोग की सामग्री मिलेगी, अधिक भोग भोगेंगे इस भावना से वर्तमान के भोगों को छोड़ देता है जैसे वर्तमान में अनेक बालक बालिकायें अविवाहित अवस्था में निदान सहित साधुपद धारण कर इच्छानुसार सामग्री संग्रह कर फिर बाद में गृहस्थ जीवन स्वीकार कर लेते हैं।

प्र.-2199 यह साधु विषयों से विरक्त है और कषायासक्त है यह कैसे जाना जाये?

उत्तर- गृहस्थावस्था में न इतना बड़ा मकान था, न धनदौलत थी, न नौकरचाकर थे किंतु साधुपद धारण कर थोड़े ही समय में इतना बड़ा मठ, आश्रम, नाना भोगोपभोग के साधन भौतिकयंत्र तंत्रादि सब एकत्रित कर लिए और अनेकों से शारीरिक संबंध बना लिए, रौद्रों की तरह विवाह कर विषयभोगों में आसक्त हुए। बिना तीव्र कषाय के विषयों में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती भले ही बाहर से बगुला की तरह ज्ञानी ध्यानी बना रहे। जैसे नदियों में ऊपर से जल सूख जाता है पर अंदर ही अंदर धारा बहती रहती है ऐसे ही आज वर्तमान में बाह्य वैरागियों की दशा समझना चाहिये कि ये बाह्य में वैरागी और अंतरंग में रागी हैं।।

किं दीक्षा ग्रहणेन ते यदि धनाऽऽकांक्षा भवेत् चेतसि।
किं गार्हस्थ्य मनेन वेष धरणे नासुंदरं मन्यसे।
द्रव्योपार्जन चित्तमेवकथयति अभ्यंतरस्थांगना।
नो चेदर्थ परिग्रह गृहमतिर्भिक्षो न संपद्यते।।5।। स.चि.व. मल्लिषेण

अर्थः- हे मुने! यदि तेरे मन में धनाकांक्षा है तो इस दिगंबरदीक्षा जिनमुद्रा धारण करने से क्या मतलब? क्या तूं इस वेष को बनाने से गृहस्थपने को बुरा समझता है? तेरा धन कमाने वाला चित्त ही कहता है कि तेरे मन में कोई स्त्री अवश्य ही निवास कर रही है यदि नहीं है तो परिग्रह को ग्रहण करने की बुद्धि ही न उत्पन्न होती। जिसके स्त्री होती है वही धन का संचय करता है अन्यथा यह धन कमाकर किसे देगा? कौन संभालेगा? यदि तेरे को आजीविका की चिंता है तो साधु क्यों बना? अतः गृहस्थपना ही अच्छा था।

प्र.-2200 यहाँ ज्ञानी पद से कौन सा ज्ञानी लेना चाहिये?

उत्तर- यहाँ ज्ञानी पद से अव्रती, अणुव्रती मोक्षमार्गी ज्ञानियों को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-2201 ज्ञानी पद से इन दो गुणस्थान वालों को क्यों ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- क्योंकि इन असंयमी के अनंतानुबंधी का और देशसंयमी जीवों के अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभाव होता है तथा गृहस्थ अनेक आरंभ परिग्रह में, पँचों इंद्रियों के विषयभोगों में, संतानों के पालनपोषण में लगे रहते हैं अतः गाथानुसार इन दोनों को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2202 यहाँ ज्ञानी पद से मुनियों को क्यों ग्रहण नहीं किया?

उत्तर- मुनिजन प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान वाले होने से भावात्मक इंद्रियविषयों में प्रवृत्ति हो सकती है, द्रव्य रूप से नहीं अतः मुनियों को ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि गाथा में **''विसयासत्तो''**

विषयों में आसक्त ऐसा कहा है। यदि मुनि विषयों में आसक्त हो जाये तो अप्रमत्तगुणस्थान नहीं बन सकता है अथवा इंद्रियविषय का अर्थ उपसर्ग परीषह लिया जाये तो सो भी बात नहीं बनती क्योंकि उपसर्ग परीषहों में आसक्ति न होकर विरक्ति होती है आदि हेतुओं से मुनि को ग्रहण न कर गृहस्थों को ही ग्रहण किया है।

प्र.-2203 अज्ञानी की अपेक्षा ज्ञानी जीव लाखगुणा फल क्यों पाता है?

उत्तर- कषायाभाव में गुणस्थानों की वृद्धि होने से गुणस्थानानुसार प्रत्येक समय में संख्यात असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती है अतः अज्ञानी की अपेक्षा ज्ञानी जीव कषायों के अभाव में विषेश फल प्राप्त करता है। जैसे लोक में आजीविका चलाने वाले अज्ञानी मजदूर जितना परिश्रम करते हैं उतना ही रुपया कम मिलता है ऐसे ही कर्मचारी गण छोटे से बड़े तक शारीरिक परिश्रम कम[2] करते हैं किंतु आगे[2] ज्ञान की वृद्धि अनुभव आदि विशेष[2] होने से लाभ विशेष होता है अतः जब लोक में भौतिकज्ञानी विशेष फल को पाते हैं तो सम्यग्ज्ञानी अधिक मात्रा में आत्मफल क्यों न प्राप्त करेंगे? अवश्य ही करेंगे।

नोटः- यहाँतक 2203 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 63वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 64वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

समर्पण की निरर्थकता

विणओ भत्तिविहीणो महिलाणं रोयणं विणा णेहं।
चागो वेरग्गविणा एदेदो बारिया भणिया।।64।।

विनयो भक्तिविहीनः महिलानां रोदनं विना स्नेहं।
त्यागो वैराग्यं विना एते वारिताः भणिताः।।

भत्तिविहीणो भक्ति के विना **विणओ** विनय **णेहं** स्नेह के **विणा** बिना **महिलाणं** स्त्रियों का **रोयणं** रुदन और **वेरग्ग** वैराग्य के **विणा** बिना **चागो** त्याग आदि **एदेदो** ये सभी **बारिया** सम्यक् विशेष फल न देने वाले निष्फल **भणिया** कहे गए हैं।

प्र.-2204 भक्ति किसे कहते हैं और किस प्रकार से की जाती है?

उत्तर- गुणों और गुणवानों को देखकर, सुनकर, पढ़कर मन में प्रसन्न होने को, रोमांच होने को, आह्लादित होने को, प्रत्यक्ष और परोक्ष में भी गुणगान करने को, उनके प्रति समर्पित होने को, नम्रवृत्ति होने को भक्ति कहते हैं। यह भक्ति निष्कपट निस्स्वार्थ पूर्वक मन से, वचन से और काय से की जाती है।

प्र.-2205 विनय किसे कहते हैं, विनय के भेद, नाम और परिभाषा क्या है?

उत्तर- त्रियोगों से धर्मायतनों के प्रति झुकने को, उद्दंडता, मान के त्याग सहित नम्रीभूत होने को विनय कहते हैं। दो भेद हैं। **नामः-** लोकविनय और लोकोत्तरविनय। **लोकविनयः-** लौकिक प्राणियों की लोकाचार के लिए नम्र होना लौकिकविनय है। **लोकोत्तरविनयः-** आत्मसिद्धि, मोक्ष प्राप्ति के लिए रत्नत्रय की और रत्नत्रयधारियों का आदर करने को लोकोत्तरविनय है। भेद पाँच हैं। **नामः-** दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपविनय और उपचारविनय। विनय से उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

प्र.-2206 भक्ति के बिना विनय करना व्यर्थ है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे नाटकमंच पर व्यक्ति पात्र बनकर दासी का, दास का, सेवक आदि का अभिनय करते हैं और मालिक की, गुरु की पैर के तलवे से लेकर शिर तक खूब सेवा मालिश आदि करते हैं पर ये समर्पित भाव से न कर धन की इच्छा से या ख्याति, पूजा, लाभ की भावना से करते हैं सो यह विनय आदि धर्म के निमित्त न होकर आजीविका के हेतु होने से इसे अर्थ विनय/ लोकविनय

कहते हैं परंतु यह विनय भक्ति आत्मकल्याण के लिए नहीं है अतः आत्महित के लिए भक्ति पूर्वक ही विनय कार्यकारी है।

प्र.-2207 अविनयी जीव और विनयवान किस किस फल को पाते हैं?

उत्तर- जो बड़े[2] पेड़ पौधे अकड़े रहते हैं वे तूफान बाढ़ आदि के आने पर जड़ से नष्ट होकर अपना अस्तित्व ही खो बैठते हैं किंतु जो तूफान बाढ़ादि आने पर झुक जाते हैं वे अपना अस्तित्व स्थिर रखते हुए हरेभरे रहते हैं ऐसे ही रावणवत् मनुष्य अपना ही अस्तित्व खोकर अपना आदरसम्मान भी नष्ट कर देते हैं और विनयवान अपना अस्तित्व हमेशा बनाये रखते हैं, आदर सम्मान पाते हैं।

प्र.-2208 स्नेह किसे कहते हैं?

उत्तर- आंतरिक प्रेम को स्नेह कहते हैं। जैसे दूध में दूध, पानी में पानी मिलता है ऐसे ही आंतरिक प्यारवान् मानव परस्पर में एकमेक हो जाते हैं अथवा परमार्थतः चिकनेपन को स्नेह कहते हैं। जैसे घी तैल आदि चिकने द्रव्य पानी को ग्रहण नहीं करते किंतु दूर से ही छोड़ देते हैं ऐसे ही स्नेहवान व्यक्ति अपने को अपने में मिलाते हैं, दूसरों को नहीं, दूसरों में नहीं, न्यायानुसार वे संकरव्यतिकर दोष को प्राप्त नहीं होते।

प्र.-2209 परस्पर में प्यार, वात्सल्य न करने वाला व्यक्ति सम्यग्दृष्टि हो सकता है क्या?

उत्तर- सम्यग्दर्शन के 8 अंगों में से एक वात्सल्य अंग है और वात्सल्यअंग का पालन नहीं करने वाला व्यक्ति सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता है। जैसे अक्षरहीनमंत्र मंत्र नहीं कहा जा सकता है ऐसे ही प्रमत्त गुणस्थान पर्यंत परस्पर में अनन्यभाव से वात्सल्य प्रीति होना ही चाहिये, अन्यथा वह धर्मात्मा कैसा? महान पापी है।

प्र.-2210 उपरोक्त प्र. 2208 में परस्पर में मिलने को कहा और 2209 में नहीं मिलने वालों को महान पापी कहा सो यह विरोधाभास क्यों?

उत्तर- प्र. 2208 में विधि पूर्वक वात्सल्यअंग पालन करने वालों को बतलाया है और प्र. 2209 में निषेध पूर्वक वात्सल्य अंग पालन नहीं करने वालों को दोषी बतलाकर वात्सल्य अंग को पालने की प्रेरणा दी है अतः दोनों प्रश्नोत्तरों में कोई विरोध नहीं है केवल विवक्षा का अंतर है।

प्र.-2211 महिला किसे कहते हैं?

उत्तर- **''विरहेण विकल हृदया निर्जल मीनायते इति महिला।''** संस्कृत हिंदी शब्दकोश पृ. 788। जिस प्रकार मछली पानी के बिना तड़फती है वैसे ही पति के वियोग में जो तड़फती है, दुःखी होती है उसे महिला कहते हैं अथवा **महि + ला** = पति या प्रेमी को जो खेंच के लाकर मिट्टी में मिला दे उसे महिला कहते हैं या **मह्यते पूज्यते इति महिला** नाममाला 32। महि - पृथ्वि, ला- अपने सद्गुणों को ग्रहण करके पृथ्वी पर इंद्र इंद्राणी आदिकों के द्वारा जो पूजी जाती है उसे महिला कहते हैं जैसे तीर्थंकर की माता मरुदेवी से त्रिशलामाता पर्यंत ऐसे ही महापुरुषों को जन्म देने वाली और भी अनेक मातायें हुईं हैं।

प्र.-2212 बिना स्नेह के महिलाओं का रोना व्यर्थ है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे मृत्यु के समय या अन्य दुर्घटनाओं के समय आसपास की महिलायें आकर दुःख प्रगट करतीं हैं, रोतीं हैं सो उनका यह रोना आंतरिक न होकर देखादेखी है इसलिए बिना प्यार के रोना व्यर्थ कहा है।

प्र.-2213 तो क्या पुरुषों का बिना प्यार के रोना सार्थक है?

उत्तर- नहीं, दोष तो दोष ही है, वह चाहे महिलाओं का हो या पुरुषों का। बिना आंतरिक प्यार के पुरुषों का महिलाओं के प्रति, परिवार आदि के प्रति दुःख प्रगट करना, रोना आदि भांडों के

समान है अतः किसी के भी प्रति दिखावटी दुःख शोक आदि बतलाना, प्रदर्शित करना निरर्थक है, मायाचार है।

प्र.-2214 तो फिर क्या प्यार पूर्वक रोना सार्थक है ऐसा कहना चाहिये?

उत्तर- नहीं, मूर्खता ही है क्योंकि रोने से सिर्फ असातावेदनीय का आश्रवबंध होता है जो दुःख की पर्याय होने से दुःख ही है, अमंगल है, चाहे कोई प्यार से रोवे या बिना प्यार के या प्यार के लिए।

प्र.-2215 त्याग किसे कहते हैं?

उत्तर- इष्टानिष्ट, पुण्यपापवर्धक जिस चेतनाचेतन, मिश्र सामग्री को सविकार ग्रहण किया है सो उसे संकल्प पूर्वक ही छोड़ने को अथवा जिसके छोड़ने से विषयकषायों की निवृत्ति हो, आश्रवबंध का विच्छेद हो उसे मोक्ष के निमित्त त्याग कहते हैं और सद्हेतु बिना त्याग त्याग नहीं है।

प्र.-2216 वैराग्य किसे कहते हैं?

उत्तर- सम्यक्विचार पूर्वक यथार्थ रूप में संसार शरीर और भोगों के स्वरूप को समझकर संसार शरीर और भोगों के प्रति उदासीनभाव को, माध्यस्थ भाव को वैराग्य कहते हैं।

प्र.-2217 भूंख हड़ताल करने को धर्म कह सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, ऐसा आंदोलन तन मन धन और धर्म का घातक होने से आत्मघातक है, वैरविरोध बढ़ता है सर्वथा हानिकारक है इससे धर्म, समाज, देश आदि बदनाम होते हैं। इस भूंख हड़ताल में केवल भोजन न कर शेष सब अंडेशराब, धूम्रपानादि खाते पीते रहते हैं सो ऐसी हड़तालों से कोई मामला तो सुलझता नहीं, समाप्त होता नहीं किंतु मारपीट जेल आदि और हो जाती है, इज्जत बिगड़ती है, कदाचित् अधिकारियों ने इच्छापूर्ति कर भी दी पर विश्वास प्रेम टूट जाता है, फेक्टरी चलाना है, काम करवाना है इसलिए पगार बढ़ा देते हैं पर कार्यकर्ताओं के प्रति सहानुभूति का भाव नहीं आ पाता ऐसी हड़ताल विषयकषाय पूर्वक होने से आत्मघातक है ऐसा त्याग आत्मकल्याण, आत्मसाधना के लिए न होने से व्यर्थ कहा है।

प्र.-2218 बिना वैराग्य के त्याग को व्यर्थ क्यों कहा?

उत्तर- बीमारी के, चोर गुंडों के, सरकार के भय से या अन्य कारणों से विवाहादिक कार्यों में धन दौलत का, वस्त्राभूषणों का, भोजनपान का त्याग कर देते हैं पर यह त्याग भोग निदान पूर्वक होने से आत्महित में साधक नहीं है अतः वैराग्य पूर्वक त्याग होने से मोक्षमार्ग है अन्यथा संसारमार्ग होने से व्यर्थ कहा है।

प्र.-2219 तो फिर वैराग्य पूर्वक त्याग करना सार्थक है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- कह सकते हैं पर यहाँ नहीं कहा है क्योंकि जैसे जड़ के बिना स्कंधादि की स्थिति वृद्धि नहीं होती है ऐसे ही बिना वैराग्य के समीचीन फलवान न होने से व्यर्थ है। जैसे किसान बिना विवेक के खेती करे तो उसकी मूर्खता ही है परिश्रम में यथार्थ सफलता नहीं मिलेगी, परिश्रम तथा बीज निष्फल चला जायेगा। अतः वैराग्य पूर्वक ही त्याग समीचीन फल को देने वाला है, सार्थक है।

नोटः- यहाँ तक 2219 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 64वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 65वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

फलहीन साधु

सुहडो सूरत्त विणा महिला सोहग्गरहिय परिसोहा।
वेरग्गणाण संजमहीणा खवणा ण किंवि लब्भंते।।65।।

सुभटः शूरत्वं विना महिला सौभाग्यरहिता परिशोभा।
वैराग्यज्ञानसंयमहीना क्षपणा न किमपि लभंते।।

सूरत्त शूरता के **विणा** बिना **सुहड** सुभट **सोहग्ग** सौभाग्य **रहिय** बिना **महिला** स्त्री की **परिसोहा** शोभा और **वेरग्गणाण** वैराग्य ज्ञान **संजम** संयम के **हीणा** बिना **खवणा** क्षपक **किंवि** कुछ भी उत्कृष्ट निर्दोष उत्तम फल **ण** नहीं **लब्भंते** पाते।

प्र.-2220 सुभट किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसके सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा शारीरिक और मनोबल विशेष हो उसे सुभट कहते हैं।

प्र.-2221 स्फूर्ति के बिना क्या सुभट हो सकता है?

उत्तर- नहीं, स्फूर्ति के बिना सुभट नहीं हो सकता। जैसे हाथी में स्फूर्ति न होने के कारण सिंह के बच्चों से मारा जाता है ऐसे ही यदि सुभट में स्फूर्ति नहीं है तो वह भी स्फूर्तिवान के द्वारा मारा जाता है। जैसे नारायण कृष्ण ने हाथी के समान कंस को, जरासंध को मारा। अभिमन्यु ने सोलह हजार कौरव सैनिकों को मार गिराया ऐसे ही यदि सुभट है तो उसमें स्फूर्ति होना ही चाहिये अन्यथा वह सुभट न होकर कायर है।

प्र.-2222 शूरता किसे कहते हैं और सुभट कैसा होना चाहिये?

उत्तर- हृष्टपुष्ट निष्प्रमादी, निरालसी, वीरता को शूरता कहते हैं। सुभट वास्तव में काले नाग, कोबरा, सिंह जैसा स्फूर्तिवान होना चाहिये।

प्र.-2223 सुभट स्फूर्ति के बिना शोभा क्यों नहीं पाता?

उत्तर- अनेक योद्धाओं के बल को धारण करने वाला सुभट मटिया सर्प, भैंसा, अजगरादि की तरह प्रमादी आलसी है तो ऐसा सुभट किस काम का? अतः सुभट में कौवे, कुत्ते, सिंह के समान स्फूर्ति होना चाहिये तभी सुभट विजयपताका लहरा सकता है अन्यथा हार जायेगा, मारा जायेगा अथवा सुभट है पर चेहरे में सौंदर्य, तेज नहीं है तो वह सुभट शोभा नहीं पाता ऐसा देखा जा रहा है।

प्र.-2224 सौभाग्यवती और दुर्भाग्यवती किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस महिला का रक्षक पति मौजूद है, चूड़ियां, सिंदूर और बिंदी सहित है उसे सौभाग्यवती/ सधवा और इन चिह्नों से रहित महिला को दुर्भाग्यवती कहते हैं।

प्र.-2225 पति किसे कहते हैं?

उत्तर- जो पतन से, पाप से बचाये, रक्षा करे और नाना कष्टों से बचाकर धर्ममार्ग में लगाये, आत्मसाधना में स्थिर कर मोक्ष प्राप्त कराये उसे अथवा जो अखंड ब्रह्मचर्य को खंडित कर गर्भाधानादिक कष्टों को प्राप्त कराये उसे पति कहते हैं।

प्र.-2226 जिसके साथ सात फेरे डाले हैं वह क्या ऐसा रक्षक पति हो सकता है?

उत्तर- नहीं, जिसके साथ में सात फेरे डाले हैं वह लोकदृष्टि में पति है, आत्मधर्म दृष्टि से पति नहीं हैं क्योंकि जो अखंड ब्रह्मचर्यधर्म को नष्ट कर दे, गर्भधारण कराकर अनेक प्रकार के कष्ट प्राप्त कराये वह कैसा पति? अतः वास्तव में रत्नत्रय धर्म, मार्गदर्शक ऐसे देव शास्त्र गुरु ही पति हैं, रक्षक हैं क्योंकि इनके सहारे से ही आत्मा की वास्तविक रक्षा हो सकती है। समाधिभक्ति में पढते हैं-

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।

अर्थः- तीनों लोकों और त्रिकाल में वीतरागदेव के बिना कोई दूसरा रक्षक न हुआ, न है और न होगा।

प्र.-2227 त्यक्ता और संबंधविच्छेद की हुई स्त्री को सौभाग्यवती कह सकते हैं क्या?

उत्तर- पवन की तरह जिस पति ने पत्नी का त्याग किया है या हमेशा के लिए दांपत्य संबंध का

विच्छेद हो गया है तो भी उसे सौभाग्यवती कहते हैं। इसे ही गुजरात में अखंड सौभाग्यवती या सधवा कहते हैं।

प्र.-2228 त्यक्ता स्त्री और संबंधविच्छेद स्त्री में क्या अंतर हैं?

उत्तर- त्यक्ता स्त्री का संबंध पवनकुमार और अंजना की तरह पुनः मिलन हो सकता है किंतु संबंध विच्छेद होने पर दूध और खटाई की तरह पुनः मिलन को प्राप्त नहीं होते।

प्र.-2229 धर्मदृष्टि से सधवा स्त्री किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय युक्त ब्रह्मचर्यधर्म, शीलधर्म पालने वाली को सधवास्त्री कहते हैं क्योंकि रत्नत्रयधर्म सर्वत्र सदा रक्षक होने से वास्तव में पति है किंतु लौकिक पति कदाचित् रक्षक और भक्षक भी हो सकता है।

प्र.-2230 विधवा किसे कहते हैं, पहंचान के चिह्न कौन कौन हैं?

उत्तर- लोकदृष्टि में जिसका पति अंतिम विदा को प्राप्त हो गया है उसे विधवा कहते हैं। जिसके हाथ की चूड़ियां फोड़ दी हैं, मांग का सिंदूर मिटा दिया है या जो अपनी मांग नहीं भरती हैं, माथे की बिंदी निकाल दी है, बिछुए उतार दिये हैं आदि लोकमत चिह्नों से पहंचान की जाती है।

प्र.-2231 धर्मदृष्टि से विधवा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसके अंतरंग से मोक्षमार्ग और सद्धर्म का संस्कार नष्ट हो गया है, मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य की सेवी है, विषयकषायों से भरपूर है, सदाचार सद्विचारों से रहित है उसे दुर्भाग्यवती या विधवा कहते हैं।

प्र.-2232 लौकिक विधवा को समाज में हीनदृष्टि से क्यों देखा जा रहा है?

उत्तर- लौकिक विधवा को हीनदृष्टि से देखनेवालों का दुर्भाग्य है, होनहार खोटा है, इनको हीनदृष्टि से देखनेवालों को नीचगोत्र का आश्रवबंध होता है क्योंकि अपने आप में स्व, पर और उभय के प्रति बिना मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के हीनदृष्टि हो नहीं सकती।

प्र.-2233 हीनदृष्टि से देखने वालों को इस विषय में कैसा विचार करना चाहिये?

उत्तर- हीनदृष्टि से देखने वालों को इन विधवाओं के विषय में आत्मीयता के साथ में उच्चविचार करना चाहिये। यदि अपनी माँ, बहन, बेटी विधवा हो जायें तो क्या दूसरों के समान हीन दृष्टि से देखेंगे? धनवानों के यहाँ ऐसी घटनाऐं घटती है तो क्या उनको हीनदृष्टि से देखते हैं या बोलते हैं? नहीं, अतः यदि दूसरों से अपनी माँ, बहन, बेटी को हीनदृष्टि से नहीं दिखाना दिखवाना चाहते हैं तो अपन दूसरों को ऐसा नहीं देखें।

प्र.-2234 सप्तपदी क्यों लगाई जाती है तथा सप्त परमस्थान कौन कौन से हैं?

उत्तर- सप्तपरम स्थानों की प्राप्त्यर्थ सप्तपदी लगाई जाती है किंतु कोर्टमेरेज, प्रेमविवाह बलात् विवाह में सप्तपदी न होने से सप्तपरम स्थानों की प्राप्ति नहीं होती है, उनका जीवन अधिकतर थोड़े ही समय में बिगड़ जाता है। वर्तमान में कुछ समाजसुधारक या विवाह के लोलुपी उड़ीसा, बंगाल आदि की दलालों के माध्यम से जाति कुल से हीन अंतरजातीय लड़कियों को लाकर विवाह रचाते रचवाते हैं सो ऐसे विवाह वालों की संतति परंपरा नहीं चलती है। **नामः-** 1. सज्जाति पद 2. सद्गृहस्थ पद 3. पारिव्राज्य पद 4. सुरेंद्रता पद 5. साम्राज्य पद 6. आर्हन्त्य पद 7. निर्वाण पद। महापुराण अ. 39 गा. 80-207 तक आ. जिनसेन।

प्र.-2235 अभव्यजीवों को क्या ये सप्तपरम स्थान प्राप्त हो सकते हैं?

उत्तर- अभव्य जीवों को केवल सज्जाति पद, कदाचित् सद्गृहस्थ पद और बाह्य में पारिव्राज्य पद प्राप्त हो सकता है, भाव पारिव्राज्य पद आदि शेष पदों की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि इन

पदों को एकमात्र भव्य मोक्षमार्गी अव्रती सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती, महाव्रती जीव ही प्राप्त करते हैं।

प्र.-2236 वर्तमान में त्यक्ता, तलाकविवाह, विधवाविवाह धर्मापेक्षया क्या निर्दोष हैं?

उत्तर- मनचलित और धार्मिक संस्कारविहीन व्यक्ति भले ही ऐसे विवाह निर्दोष मानने लगे हों तो भी धर्म तथा सामाजिक परंपरानुसार सदोष ही हैं। अपनी धर्म परंपराओं पर कुठाराघात करना है। सत्शूद्रों में भी कन्याओं का एक ही बार पाणिग्रहण संस्कार होता है इनमें कन्याओं का पुनर्विवाह नहीं होता है और जो कन्याओं का पुनर्विवाह करा रहे हैं वे कन्याओं को महाशूद्र बना रहे हैं जिनधर्म में परस्त्रीसेवन और वेश्यासेवन ये दो व्यसन भी त्याज्य हैं, समाज में उक्त विवाहों का प्रचारप्रसार करना कराना मान्यता देना जिनेंद्राज्ञा का उल्लंघन करना है सो ऐसे व्यक्तियों में आज्ञासम्यक्त्व, आज्ञाविचय धर्मध्यान न होने से ये कैसे धर्मात्मा? कैसे जैन? कैसे मोक्षमार्गी? कैसे सन्मार्गदर्शक? धर्मपरंपरा का उल्लंघन करने वालों को प्रथमानुयोग शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये कि धर्मद्रोहियों को क्या फल प्राप्त होता है?

प्र.-2237 सज्जाति पद किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय की सहज प्राप्ति के कारणभूत मनुष्य जन्म, उसमें भी पिता का उत्तम कुल और माता की उत्तम जाति में उत्पन्न हुआ कोई भव्य जिस समय यज्ञोपवीत आदि संस्कारों को पाकर परम ब्रह्म को प्राप्त होता है तब अयोनिज दिव्यज्ञान रूपी गर्भ से उत्पन्न होने के कारण उसे सज्जाति कहते हैं।

प्र.-2238 सद्गृहस्थ पद किसे कहते हैं?

उत्तर- गृहस्थ के योग्य असि आदि और देवपूजादि षट् षट्कर्मों का पालन करता हुआ, प्रशंसनीय देव ब्राह्मणपने को प्राप्त होता है, अर्हंत उसके पिता हैं, रत्नत्रय रूप संस्कार उसकी उत्पत्ति की अगर्भज योनि है इसलिए वह देव ब्राह्मण है। उत्तम चारित्र को धारण करने के कारण वर्णोत्तम है ऐसा सच्चा जैन ही ब्राह्मणोत्तम है आदि क्रियाओं से युक्त व्यक्ति को सद्गृहस्थ कहते हैं।

प्र.-2239 सद्गृहस्थ क्रियाओं के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- दो भेद हैं। नामः- 1. आजीविका संबंधी 2. मोक्षमार्ग संबंधी। इन दोनों में प्रत्येक के 6-6 भेद हैं। **आजीविका संबंधी 6 नामः- असि-** देशसैनिक, पहरेदार बनकर, **मसि-** लेखन कार्यकर, **कृषि-** खेतीवाड़ी से, **सेवा-** नौकरी चाकरी से, **शिल्पकला-** कारीगरी चित्रकला आदि से, **वाणिज्य-** नाना व्यापारों से आजीविका चलाना। **मोक्षमार्ग संबंधी 6 नामः-** देवपूजा, गुरुपूजा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान।

प्र.-2240 आजीविका संबंधित षडावश्यक क्रियायें किसे कहते हैं?

उत्तर- न्यायनीति से धर्म की, षट्कायजीवों की रक्षा करते हुए जिन कार्यकलापों से आजीविका चलाई जायें, उदर पूर्ति की जाये, पाप पुण्य का उपार्जन किया जाये उसे आजीविका संबंधी षडावश्यक कहते हैं।

प्र.-2241 मोक्षमार्ग संबंधित षडावश्यक क्रियायें किसे कहते हैं?

उत्तर- आजीविका संबंधी कार्यकलापों के द्वारा उपार्जन किये गये पाप और निरतिशय पुण्य को घटाने या नष्ट करने के लिए जिनेंद्रप्रणीत आज्ञा पालने को मोक्षमार्ग संबंधी षडावश्यक कहते हैं।

प्र.-2242 पारिव्राज्य क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर- गृहस्थ धर्म का पालन कर संसार शरीर भोगों से विरक्त होते हुए तथा समस्त प्रकार के लौकिक ममत्व को छोड़कर दिगंबर जैन मुनिदीक्षा धारण करने को पारिव्राज्य क्रिया कहते हैं।

प्र.-2243 सुरेंद्रता क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर- दिगंबर दीक्षा धारण करके समाधि मरण कर इंद्रपदवी प्राप्त करने को सुरेंद्रता क्रिया कहते हैं।

प्र.-2244 साम्राज्य क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर- इंद्रपदवी को समाप्त कर चक्रवर्ती आदि उत्तम राजपद प्राप्त करने को साम्राज्य क्रिया कहते हैं।

प्र.-2245 आर्हन्त्य क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर- दिगंबर दीक्षा धारण कर घातिया कर्मों के क्षय से प्राप्त अवस्था को आर्हन्त्य क्रिया कहते हैं।

प्र.-2246 क्या अर्हंत प्रभु घातियाकर्मों का क्षय करते हैं?

उत्तर- नहीं, सयोगकेवली अर्हंत प्रभु किसी भी घातिया अघातिया कर्मों का क्षय नहीं करते हैं किंतु सरागी छद्मस्थ मुनिजन घातियाकर्मों का क्षय कर अर्हंत होते हैं क्योंकि अर्हंत पद क्षायिकभाव है।

प्र.-2247 निर्वाण क्रिया किसे कहते हैं?

उत्तर- समस्त कर्मों को क्षय कर मोक्षपद प्राप्त करने को निर्वाण क्रिया कहते हैं।

प्र.-2248 आजकल सप्तपरम स्थान क्यों प्राप्त नहीं होते हैं?

उत्तर- आजकल देव शास्त्र गुरुओं की आज्ञा का उल्लंघन, सदाचार और सद्विचारों में हीनता या अभाव, नाना अत्याचार अनाचार रूप में दिनचर्या होने से सप्त परमस्थान तो क्या एक भी स्थान प्राप्त नहीं हो रहा है क्योंकि धर्मसंस्कारानुकूल बीजारोपण हो, तदनुकूल गर्भस्थ संतान का पालनपोषण हो, तदनुकूल धर्मानुसार शिक्षा संगति और संस्कार हो तो अवश्य ही इन स्थानों की प्राप्ति के लिए दिनचर्या बनाई जाये किंतु **मूल में भूल होने से ही** इन स्थानों की प्राप्ति नहीं होती।

प्र.-2249 लोकव्यवहार में अविवाहित को सधवा कहते हैं या विधवा?

उत्तर- लोक व्यवहार में अविवाहित को सधवा या विधवा न कह कर कुंवारिका कहते हैं।

प्र.-2250 लोक में यदि कुंवारी को स्त्री कहा जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, कुंवारी को स्त्री नहीं कहते हैं किंतु कुंवारी या कन्या ही कहते हैं यदि कुंवारी को स्त्री कहा जाये तो उसका पति बताना पड़ेगा और जब उसका पति है तब वह कुंवारी कैसे? अतः कुंवारी स्त्री नहीं है। यदि कोई बलात् कुंवारिका को स्त्री कहता है तो वह लक्षणशास्त्र से अनभिज्ञ है।

प्र.-2251 धर्मदृष्टि से कुंवारिका को सधवा या विधवा कह सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ धर्म की अपेक्षा अवश्य ही कह सकते हैं। यदि वह कुंवारिका रत्नत्रय से सहित है, मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य की त्यागी, सदाचार सद्विचारों वाली है तो उसे सधवा और सद्गुणों से रहित है तो उसे विधवा कह सकते हैं किंतु लौकिक दृष्टि में वह तो कुंवारिका ही है।

प्र.-2252 उस कुंवारिका को ब्रह्मचारिणी न कहकर सधवा विधवा क्यों कहा?

उत्तर- जब उसने देवशास्त्रगुरु की साक्षी अखंड ब्रह्मचर्यव्रत को धारण पालन करने का संकल्प नहीं किया है तो ब्रह्मचारिणी कैसे कहा जाये? यदि बिना संकल्प के ब्रह्मचारिणी माना जाये तो संसार में सभी अविवाहित ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी हो जायेंगे फिर नारदों को नरक में क्यों जाना पड़ा? रत्नत्रय के सद्भाव और अभाव के कारण सधवा विधवा कहा है। यहाँ लौकिक अर्थ से प्रयोजन नहीं है।

प्र.-2253 कुंवारिका को ब्रह्मचारिणी कैसे कहा जाये?

उत्तर- जिस कुंवारिका ने देव शास्त्र गुरु, धर्म, देवीदेवताओं की, अपने से बड़ों की और अपने आप की साक्षी ब्रह्मचर्यधर्म पालन करने का दृढ संकल्प किया है उसे ही ब्रह्मचारिणी कहा जायेगा, शेष नहीं।

प्र.-2254 अखंड ब्रह्मचर्यव्रत पालन करना कठिन क्यों नहीं है?

उत्तर- इंसान के लिए धर्म पालन करना कठिन नहीं है किंतु पाप करना कठिन है क्योंकि पाप करने के लिए नाना प्रकार की योजनायें, सहायक सामग्री और अनुकूल वातावरण चाहिये तभी पाप कर सकता है। जैसे कोई वस्त्र सिलाना है तो सर्व प्रथम वस्त्र सिलवाने की योजना बनाना बाद में किस कंपनी का कैसा सिलवाना है, रुपयों की व्यवस्था करना, किस बाजार में, किस दुकान में मिलेगा, किस टेलर से सिलाना है, सिलने के बाद संभालने की चिंता, धोने धुलाने की चिंता आदि क्रियायें होती है किंतु वस्त्रों के त्याग में एक ही क्रिया है और धारण करने की अनेक क्रियायें हैं तब कठिन एवं सरल कौन है यह निष्पक्ष विचारें? ऐसे ही शादी करने के लिए कई योजनायें बनानी पड़ती है और त्याग करने में मैं व्रत ग्रहण करता हूँ इतनी ही क्रिया है इसलिए ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना अत्यंत सरल है किंतु शर्त है कि सत्शिक्षा सत्संगति और सत्संस्कार सहित रहना होगा, चपल मन वाले व्यक्तियों की शिक्षा संगति और संस्कारों से बचना होगा।

प्र.-2255 दिनचर्या बिगड़ने से व्रत पालना कठिन ही है ऐसा कह सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, दिनचर्या बिगड़ने से व्रत पालना कठिन ही है ऐसा कहने में कोई दोष नहीं। कदाचित् दिनचर्या बिगड़ने पर भी छत्रछाया सही होने से सुधरने में कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि सभी सबके शरीर को जानते हैं कि किसका कैसा शरीर है? कितना ही सौंदर्य और हृष्टपुष्ट शरीर हो पर ये पूज्य हैं, भोगने योग्य नहीं हैं ऐसी भावना होने से पूरा परिवार एक ही मकान में एक ही कमरे में रहकर क्रियाकलाप करता है पर दुर्भावना न होने से कुचेष्टायें नहीं होती अन्यथा डॉक्टरों, नर्सों को महापापी कहना पड़ेगा क्योंकि ये मरीज को पैर से शिर तक हाथ लगाकर जांच करते हैं और इनमें परिवार वाले भी संदेह नहीं करते तथा धर्म एवं व्यवहार में इनको अपराधी नहीं माना है अतः मन सही होने से व्रत पालना कठिन नहीं, सरल है।

प्र.-2256 जो कन्या मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य सेवी है उसे विधवा कहें या सधवा?

उत्तर- जो कन्या विषयकषायों से, श्रृंगारालंकारों से, आरंभ परिग्रह से पीड़ित है, धर्म से विहीन है तथा गृहीत या अगृहीत मिथ्यात्व सहित है तो वह धर्म की अपेक्षा विधवा ही है, सधवा नहीं।

प्र.-2257 पति के बिना महिलाओं की शोभा हो सकती है क्या?

उत्तर- लौकिक तथा लोकोत्तर पति के बिना महिलाओं की इह, पर व उभयलोक में शोभा नहीं है।

प्र.-2258 धर्म के बिना क्या पुरुषों की शोभा हो सकती है?

उत्तर- नहीं, धर्म के बिना किसी की भी इह पर व उभयलोक में शोभा नहीं होती है वह तो पशु है, पशु के समान है केवल शरीर की रचना में अंतर है, आचार विचार में कोई अंतर न होने से पुरुष की शोभा कैसे हो सकती है? **''धर्मेण हीना पशुभिः समाना।''** **'धर्म पंथ साधे बिना नर तिर्यंच समान।'**

प्र.-2259 क्षपक की, साधु की शोभा किसमें नहीं है?

उत्तर- वैराग्य ज्ञान और संयम के बिना क्षपक की, साधु की शोभा नहीं है। सज्जनचित्तवल्लभ आ.मल्लिषेण

रात्रिश्चंद्रमसाविनाब्जनिवहै र्नो भाति पद्माकरो।
यद्वा पंडित लोक वर्जित सभा दंतीव दंतंविना।।
पुष्पं गंध विवर्जितं मृतपतिः स्त्रीचेह तद्वद् मुनिः।
चारित्रेणविना न भाति सततं यद्यप्यसौ शास्त्रवान्।।२।।

अर्थः- हे मुने! रात्रि के बिना चंद्रमा, कमल के बिना तालाब, सभा के बिना पंड़ित की, दांत के

बिना हाथी की, गंध बिना पुष्प की, पति के बिना स्त्री की शोभा नहीं होती है ऐसे ही शास्त्रवान् मुनियों की शोभा नहीं होती अतः मुनियों को चारित्रवान् होना चाहिये।

प्र.-2260 आ. श्री मल्लिषेणजी ने ये उदाहरण क्यों दिये?

उत्तर- जो साधु बनकर धर्म की प्रतिज्ञा को जीवन में उतारता नहीं है किंतु बाह्य में अव्यक्त और अंतरंग में व्यक्त रूप में विषयकषायों से, कामवासना से भरपूर है, लिप्त है इनका स्थूल रूप में परिणमन कर अनुभव कर रहा है, घोड़े की लीद के समान है अतः उसको संबोधनार्थ ये दृष्टांत दिये हैं कि हे साधु! देख जैसे लोक में इनकी सुंदरता नहीं है ऐसे ही सद्गुणों के बिना तेरी शोभा नहीं है, यह तेरी अवस्था अशोभनीय है।

प्र.-2261 ऐसा साधु किस गति को पायेगा?

उत्तर- कामासक्त, प्रतिज्ञा भंग से ऐसा साधु नरक, तिर्यंचगति और हीन मनुष्यों में जन्म लेगा।

प्र.-2262 यदि ऐसा है तो नरकतिर्यंचनरायु बंधक के मुनि होने के भाव क्यों नहीं होते?

उत्तर- **चत्तारि वि खेत्ताइं आयुबंधेण होइ सम्मत्तं।**

अणुवद महव्वदाइं ण लहइ देवायुगं मोत्तुं।।334।। क.कां. आ.नेमिचंद्र

अर्थः- चारों आयुओं का बंधक जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है किंतु देवायु बिना शेषायु का बंधक अणुव्रती और महाव्रती नहीं बनता किंतु बाह्य भेष धारण कर ले तो कोई दोष नहीं है क्योंकि वह शरीर से नग्न है और अंतरंग से विकारी है। भिलावे को बाहर से धोने पर या शक्कर से पागने पर क्या निर्विष होकर जीवनदाता बन जाता है? नहीं ऐसे ही केवल बाह्य भेष से क्या यथार्थ में साधुता आ जाती है?

दव्वेण सयलणग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया।

परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तणं पत्ता।।67।। भा.पा.

अर्थः- अरे! शरीर से समस्त नारकी, पशुवर्ग, भोगी मानव नग्न होते हैं पर परिणामों में मलिनता होने के कारण भाव श्रमणपने को प्राप्त नहीं होते। ऐसा आ. श्री कुंदकुंदजी ने कहा है।

प्र.-2263 वैराग्य, संयम और ज्ञान ये किस किस गुण के कार्य हैं?

उत्तर- वैराग्य और संयम चारित्र गुण के कार्य हैं तथा ज्ञान ज्ञानगुण का कार्य है। वैराग्य और संयम से चारित्र गुण की शुद्धि होती है, शुद्ध चारित्र से उभयलोक में सुखशांति की प्राप्ति होती है। ज्ञान से सही गलत की जानकारी होती है। हेय को छोड़ने की और उपादेय को ग्रहण करने की भावना जागृत होती है।

प्र.-2264 वैराग्य, संयम और ज्ञान के बिना क्षपक क्या प्राप्त नहीं करता?

उत्तर- वैराग्य, संयम और ज्ञान के बिना क्षपक 63 शलाका पुरुष, 169 पुण्यपुरुष, इंद्रइंद्राणी पद, लौकांतिकदेव पद, अनुदिश, अनुत्तरवासी पद और मोक्ष पद को प्राप्त नहीं करता।

प्र.-2265 तो फिर वह क्षपक साधु किन किन पदों को प्राप्त करता है?

उत्तर- उक्त पदों के बिना शेष पदों को अपनी दिनचर्यानुसार प्राप्त कर सकता है पर एक साथ अनेक पदों को प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि ये स्थान सादिसांत भंग वाले हैं और व्यंजन पर्याय स्वरूप हैं।

प्र.-2266 तो फिर नारायण प्रतिनारायण, नारद रौद्रादि पद क्यों प्राप्त करते हैं?

उत्तर- यद्यपि ये पद तात्कालिक निदान आर्तध्यान के फल हैं फिर भी इन पदों के योग्य पुण्य की प्राप्ति उत्तम संहनन सहित निर्दोष रत्नत्रय और साधना पूर्वक मुनि बनकर ही होती है।

प्र.-2267 तो क्या ये पद पुण्य के फल हैं या पाप के?

उत्तर- भूतपूर्व नैगमनय की अपेक्षा रत्नत्रय के और वर्तमाननय से पापानुबंधी पुण्य के फल हैं।

प्र.-2268 कर्म बंधक जीवों की अवस्थायें कितने प्रकार की होती है?

उत्तर- कर्मबंधक जीवों की अवस्थायें चार प्रकार की होती हैं। नामः- **पुण्यानुबंधी पुण्यः-** पुण्य के उदय में पुण्य को बांधना, **पुण्यानुबंधी पापः-** पुण्य के उदय में पाप को बांधना, **पापानुबंधी पापः-** पाप के उदय में पाप को बांधना और **पापानुबंधी पुण्य**ः- पाप के उदय में पुण्य को बांधना।

प्र.-2269 गाथा में क्षपक पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- क्षपकपद से सामान्य मुनिपद को ग्रहण करना। क्षपकश्रेणी आरोहण करने वालों को नहीं।

प्र.-2270 क्षपक कुछ भी प्राप्त नहीं करता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- कायक्लेश तप करता हुआ भी क्षपक वैराग्यादि के बिना उत्तम फल नहीं पाता ऐसा कहा है।

प्र.-2271 तो क्या क्रियायें निष्फल होती हैं?

उत्तर- नहीं, क्रियायें निष्फल नहीं होतीं हैं किंतु मोक्ष के योग्य उत्कृष्ट समर्थ कारण न होने से चतुर्गति के निकृष्ट फल को देती ही हैं क्योंकि कषाय सहित जीवों की सांपरायिक क्रियायें आश्रवबंध कराती हैं। यदि सांपरायिक क्रियायें आश्रवबंध नहीं करायें तो क्या मोक्षफल देंगी? अतः शुभाशुभ और शुद्ध क्रियायें अवश्य ही शुभाशुभ और शुद्ध फल देतीं ही हैं किंतु निष्फल नहीं होतीं हैं।

नोटः- यहाँतक 2271 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 65वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 66वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कुफल का स्वामी

वत्थु समग्गो मूढो लोही लब्भइ फलं जहा पच्छा।

अण्णाणी जो विसयासत्तो लहइ तहा चेव।।66।।

वस्तुसमग्रो मूढो लोभी लभते फलं यथा पश्चात्।

अज्ञानी यो विषयासक्तो लभते तथा चैव।।

जहा जैसे **मूढो** मूर्ख **लोही** लोभी **समग्गो** संपूर्ण **वत्थु** वस्तुओं को **लब्भइ** प्राप्त कर **फलं** फल चाहता है **तहा चेव** वैसे ही **पच्छा** पश्चात् **अण्णाणी** अज्ञानी **विसयासत्तो** विषयासक्त **फलं लहइ** फल प्राप्त करता है।

अर्थ- जैसे नपुंसक सर्वांग सुंदर पत्नी को प्राप्त करके भी कामसुख का अनुभव नहीं कर पाता तथा मूर्ख लोभी प्राणी सामग्री प्राप्त करके भी सुख का अनुभव नहीं कर पाता वैसे ही अज्ञानी अजानकार होने से वस्तु को प्राप्त करके भी उसका आनंद नहीं ले पाता।

प्र.-2272 वस्तु किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- द्रव्य, गुण पर्याय वाले को वस्तु कहते हैं। 2**भेदः-** जीव अजीव या चेतन अचेतन या मूर्तिक अमूर्तिक या रूपी अरूपी। 6 **भेदः-** जीववस्तु, पुद्गलवस्तु, धर्मवस्तु, अधर्मवस्तु, आकाशवस्तु और कालवस्तु।

प्र.-2273 मूर्तिक या रूपी तथा अमूर्तिक या अरूपी किसे कहते हैं?

उत्तर- पुद्गलद्रव्य को मूर्तिक या रूपी, शेष 5 द्रव्यों को अमूर्तिक अरूपी कहते हैं। जिसमें रूप रस गंध स्पर्श पाया जाये उसे मूर्तिक या रूपी और जिनमें ये नहीं पाये जायें उन्हें अमूर्तिक/ अरूपी

कहते हैं।

प्र.-2274 संसारी जीवों को मूर्तिक या रूपी कह सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, कर्मबंध की अपेक्षा संसारीयों को मूर्तिक या रूपी कहते हैं। **रूबी जीवाः**। 592 जी.का.

प्र.-2275 यहाँ वस्तु नाम से क्या जीवादि सभी वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- यहाँ इंद्रियविषयों का प्रकरण होने से अनादिनिधन इन जीवादि वस्तुओं को ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि जीवादिक शुद्ध वस्तुयें केवलज्ञान से ग्रहण की जाती हैं, शेष ज्ञानों से नहीं।

प्र.-2276 तो फिर यहाँ किस वस्तु को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- 1. अणुवर्गणा 2. संख्याताणुवर्गणा 3. असंख्याताणुवर्गणा 4. अनंताणुवर्गणा 5. आहार वर्गणा 6. अग्राह्यवर्गणा 7. तैजस वर्गणा 8. अग्राह्यवर्गणा 9. भाषावर्गणा 10. अग्राह्यवर्गणा 11. मनो वर्गणा 12. अग्राह्यवर्गणा 13. कार्मणवर्गणा 14. ध्रुववर्गणा 15. सांतरनिरंतरवर्गणा 16. शून्यवर्गणा 17. प्रत्येकशरीरवर्गणा 18. ध्रुवशून्यवर्गणा 19. बादरनिगोदवर्गणा 20. शून्य वर्गणा 21. सूक्ष्मनिगोदवर्गणा 22. शून्यवर्गणा 23. महास्कंधवर्गणा। इनमें से भोगने योग्य 5, 7, 9, 11 और 13 नं की वर्गणायें हैं। जी. गा. 596।

प्र.-2277 इन पाँच प्रकार की वर्गणाओं से किस किस की रचना होती है?

उत्तर- आहारवर्गणा से औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर और श्वासोच्छ्वास की, तैजस वर्गणा से तैजसशरीर की, भाषावर्गणा से चार प्रकार के वचनों की या क्षेत्रानुसार नाना प्रकार के वचनों की, मनोवर्गणा से द्रव्यमन की, कार्माणवर्गणा से ज्ञानावरणादिक 8 कर्मों की रचना होती है।

प्र.-2278 इन वर्गणाओं को कौन कौन जीव ग्रहण करते हैं?

उत्तर- इन वर्गणाओं को अयोगी व सिद्धों के बिना शेष 1 से 13वें गुणस्थान वाले ग्रहण करते हैं।

प्र.-2279 मूर्ख लोभी जीव किन किन वस्तुओं को ग्रहण करके उपयोग में लेते हैं?

उत्तर- पाँचों इंद्रियों के विषयों में, कामभोग में आने वाली सामग्री को अर्जन, ग्रहण, संग्रह, संवर्धन, संरक्षण करके भी उपयोग में लेते हैं क्योंकि इसके भोगांतराय उपभोगांतराय कर्म का प्रबल क्षयोपशम है।

प्र.-2280 मूर्ख लोभी इन सामग्रियों को प्राप्त करके भी उपयोग में क्यों नहीं ले पाता?

उत्तर- भोगने का ज्ञान और सामर्थ्य न होने से नपुंसकवत् सामग्री प्राप्त करके भी उपयोग में नहीं ले पाता तथा लोभकषाय वश सामग्री पास में होने पर भी यह समाप्त हो जायेगी इस भय से उपयोग में नहीं लेता।

प्र.-2281 मूर्ख और लोभी किसे कहते हैं और इन दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर- नासमझ को, घमंडी को, हृदय विदारक कठोर वाचक को, क्रोधी, हठवादी और अनाज्ञाकारी को मूर्ख एवं कामभोग की सामग्री, उपयोगी अनुपयोगी, इष्टानिष्ट, दूषित या निर्दोष आदि सभी के संग्राहक को लोभी कहते हैं। मूर्ख व्यक्ति सामग्री प्राप्त करके भी उपयोग करना नहीं जानता है किंतु लोभी व्यक्ति जान करके भी उपयोग में नहीं लेता है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-2282 यहाँ फल से क्या मतलब है?

उत्तर- जिस इंद्रिय की विषय सामग्री प्राप्त की है उसका उसी रूप में सेवन करना, ग्रहण करना, आलिंगन करना, भोगोपभोग में लाना ही यहाँ फल का अर्थ है, अन्यथा उपयोग करना दुरुपयोग है।

प्र.-2283 अन्यथा उपयोग करना दुरुपयोग है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जिस किसी भी वस्तु का यथावसर, यथास्थान, यथाप्रमाण प्रयोग में लाने को सदुपयोग कहते हैं और इससे विपरीत को दुरुपयोग कहते हैं। जैसे बिना प्रयोजन के लाईट को, पंखों को,

नल आदि को यों ही चालू छोड़ देना इससे त्रस स्थावर जीवों की निष्प्रयोजन हिंसा होती है, धन का अपव्यय होता है इसे ही शास्त्रकारों ने अनर्थदंड, दुरुपयोग है तथा ज्ञान के द्वारा दूसरों का अपमान करना, गलत को सही और सही को गलत करना ज्ञान का दुरुपयोग है ऐसा कहा है।

प्र.-2284 अज्ञानी जीव विषयों में आसक्त होकर किस फल को प्राप्त करता है?

उत्तर- कुत्ते के समान कामी अज्ञानी जीव विषयासक्त अपनी आत्मा को मलिन कर कर्मों को बांध कर चारों गतियों में जनम मरणके दुःख भोगता हुआ भ्रमण करता है, यही फल पाता है।

प्र.-2285 अज्ञानी जीव को समझाने के लिए कुत्ते का उदाहरण क्यों दिया?

उत्तर- जैसे कुत्ता हड्डी को चबा चबाके खाता है और चबाते हुए जब जबड़े कट जाते हैं तब जबड़े से निकलते हुए अपने ही रक्त को पीकर हड्डी से रक्त निकलता हुआ मानता है और ज्यों ज्यों जोर जोर से चबाता है त्यों त्यों रक्त अधिक निकलता है जिसे पीकर सुखी होता है ऐसे ही अज्ञानी जीव अपने सद्गुणों को नष्ट कर विषयभोगों में सुख की कल्पना कर सुख मानता है अथवा अज्ञानी जीव का जीवन और दिनचर्या नपुंसक के समान होती है। जैसे नपुंसक सर्वांग सुंदर पत्नि को प्राप्त करके भी कामसुख का अनुभव न कर केवल देख करके प्रसन्न होता है ऐसे ही अज्ञानी जीव विषयभोगों की सामग्री को प्राप्त करके प्रसन्न होता हुआ भी विषयसुख का अनुभव नहीं कर पाता।

नोटः- यहाँ तक 2285 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 66वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 67वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुफल का स्वामी?

वत्थु समग्गो णाणी सुपत्तदाणी फलं जहा लहइ ।
णाणसमग्गो विसयपरिचत्तो लहइ तहा चेव।।67।।

वस्तुसमग्रो ज्ञानी सुपात्रदानी फलं यथा लभते ।
ज्ञानसमग्रो विषयपरित्यक्तो लभते तथा चैव।।

जहा जैसे **सुपत्तदाणी** सुपात्रदानी **णाणी** ज्ञानी **समग्गो वत्थु** संपूर्ण वस्तु रूपी **फलं** फल को **लहइ** प्राप्त करता है **तहा** वैसे **चेव** ही **विसयपरिचत्तो** विषयों का त्यागी **णाणी** ज्ञानी **समग्गो** संपूर्ण लोकोत्तर फल को पाता है।

प्र.-2286 ज्ञानी जीव धन संपत्ति आदि को पाकर क्या करता है?

उत्तर- सम्यग्ज्ञानी जीव धन संपत्ति को प्राप्त करके सुपात्र दान में, जिनेंद्रोपदिष्ट सप्तक्षेत्रों में अपनी शक्ति के अनुसार दान देकर संपत्ति का सदुपयोग करता हुआ अपने जीवन को सफल बनाता है।

प्र.-2287 सम्यग्ज्ञानी चेतनाचेतन धन संपत्ति को सुपात्रदान में क्यों खर्च करता है?

उत्तर- सम्यग्ज्ञानी जीव न्यायनीति से धर्माचरण को पालता हुआ चेतनाचेतन सामग्री को प्राप्त करता है, कमाता है अतः धर्म कार्य में प्रसन्नता से खर्च करता है क्योंकि इस संपत्ति को, परिग्रह को यहीं प्राप्त किया है और यहीं छोड़के जाना है यह स्वाभाविक नियम है। कोई मरके छोड़ता है तो कोई छोड़के मरता है। अतः सम्यग्ज्ञानी चेतनाचेतन संपत्ति को सुपात्रदान में देकर सदुपयोग करता है। यही सज्जनों की नीति है।

प्र.-2288 सम्यग्ज्ञानी सुपात्रदान में कौन कौन चेतन सामग्री देता है?

उत्तर- जैसे प्रजा देश रक्षार्थ अपनी बलिष्ट संतान को राजा के लिए सौंपती है ऐसे ही जिनधर्म की प्रभावना, वृद्धि और स्थिति के लिए बुद्धिमान, निर्भीक, बलिष्ट संतान को ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बनाकर गुरुओं को सौंपता है तथा अभिषेक, आहारदान आदि में उपयोगी दूध, दही, घी आदि के लिए गाय भैंस आदि दान में देता है क्योंकि इनके बिना कदाचित् त्यागियों की दिनचर्या का पालन नहीं हो सकता है।

प्र.-2289 जब छोड़ना ही है तो ग्रहण क्यों करना?

उत्तर- यदि ग्रहण नहीं किया है तो किसे छोड़ना पर ध्यान रक्खो ऐसा करने से त्याग और तपधर्म को कैसे अपनाओगे और संयमधर्म का कैसे पालन करोगे? अतः जब छोड़ना ही है तो मरके क्या छोड़ना? यह तो अनादि संसार की परंपरा है इसमें कोई विशेषता नहीं है, न मोक्षमार्ग है, न सुख का मार्ग है किंतु छोड़के, त्याग करके मरण करना मोक्षमार्ग, सुख का मार्ग है, इसीमें आत्महित है। अतः छोड़के मरना है मरके नहीं छोड़ना है इस नियम को अपनाने के लिए सावधान रहना चाहिये।

प्र.-2290 सम्यग्ज्ञानी जीव पापकर्म से धन क्यों नहीं कमाता है?

उत्तर- सम्यग्ज्ञानी पाप से भयभीत है, वैरागी है इसलिए दुष्कर्मों से धन नहीं कमाता है। कहा भी है:-

सम्यग्दृष्टे र्भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्तिः।।136।। अमृतकलश आ. अमृतचंद्र

अर्थः- सम्यग्दृष्टियों के नियमतः ज्ञान और वैराग्यशक्ति होती है अतः वह स्वयं न दुःखी होना चाहता है और न दूसरों को करता है। पापोपार्जित धन धर्मकार्य में लगाना पैर में कीचड़ लगाकर धोने के समान है।

प्र.-2291 सम्यग्ज्ञानी जीव सुपात्रदान के बिना धन अन्यत्र क्यों खर्च नहीं करता?

उत्तर- **जे दंसणेसु भट्टा पाए पाडंति दंसणधराणं।**
ते होंति लुल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं।।12।। द.पा.

अर्थः- सम्यग्दृष्टियों को जो मिथ्यादृष्टि स्वपैरों में झुकाते हैं वे एकेंद्रिय होते हैं, उन्हें बोधि अति दुर्लभ है।

जेवि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जा गारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोहि पावं अणुमोयमाणाणं।।13।। द.पा.

अर्थः- जो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मिथ्यादृष्टियों को जानते हुए भी लज्जा गारव और भय से उनको नमन करते हैं वे पापानुमोदक होने से रत्नत्रय से वंचित रहते हैं अतः सम्यग्ज्ञानी जीव 108 कोटियों से मिथ्या अनायतनों का त्यागी होता है और जानता हुआ भी यदि लज्जा, भय, गारव से मिथ्यात्व की सेवा करता है तो वह पापानुमोदक मरण कर गमनागमन और वचनशक्ति के बिना एकेंद्रियों में जन्म लेता है। प्रायोग्य लब्धि में एकेंद्रियजाति का बंधापसरण (18 लब्धिसार) हो जाता है जिससे सम्यग्ज्ञानी जीव के अशुभ पर्यायों में जन्म लेने योग्य परिणाम ही नहीं होते हैं अतः सुपात्रदान के अलावा अन्यत्र दान नहीं देता है।

प्र.-2292 यदि सम्यग्ज्ञानी जीव अन्यत्र धन खर्च करने लगे तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि सम्यग्ज्ञानी धर्म समझकर अन्यत्र दान देने लगे तो अनायतन सेवा दोष के कारण मोक्षमार्ग और सद्गुण स्वयमेव नष्ट हो जायेंगे यही आपत्ति है जो वर्तमान में भी देखा जा रहा है।

प्र.-2293 सुपात्रदान के क्या फल हैं?

उत्तर- आत्म शुद्धि होना, संवर निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति होना, आत्मसाधना में सहायक ऐसा सातिशय उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन होना, परंपरा से मोक्ष प्राप्त होना आदि लोकोत्तर फल हैं तथा भोगभूमि की, स्वर्ग की प्राप्ति होना, कर्मभूमिज अनेक वैभव प्राप्त होना आदि यह लौकिक फल हैं।

प्र.-2294 आजकल ये फल तो प्राप्त नहीं हो रहे हैं फिर कैसे सही माना जाय?

उत्तर- कहावत है **सांप के पैर सांप को ही दिखते हैं** या **जो खायेगा वो ही तुष्टि पुष्टि को प्राप्त होगा** ऐसे ही जो दान देता है उसे ही अनुभव होता है कि हमें क्या प्राप्त हो रहा है, बाहर से देखने सुनने वालों को कुछ भी मालुम नहीं पड़ता। वर्तमान में दाता और पात्र की आत्मनिर्मलता और

साधनानुसार ही तत्काल फल प्राप्त होता है। जैसे दाता की प्रशंसा, सम्मान, धन प्राप्त होना आदि।

प्र.-2295 सुपात्र किसे कहते हैं, भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जैसे मिश्री सर्वांग, सर्वत्र सदाकाल मधुर, सुगंधित, मनोहर, कर्णप्रिय, चिकनी, शीतल होती है ऐसे ही जिनेंद्रोपदिष्ट आज्ञापालक, रत्नत्रयधारी, लौकिक और लोकोत्तर कार्यों में सहायक साधक को सुपात्र कहते हैं। 3 भेद हैं। नामः- उत्तम- महाव्रती मुनिजन, मध्यम- अणुव्रती श्रावक, जघन्य- अव्रती श्रावक गृहस्थ।

प्र.-2296 लौकिक कार्यों में सहायक साधक को सुपात्र क्यों कहा?

उत्तर- साधनों के बिना लौकिक और लोकोत्तर कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती है जैसे विवाह, व्यापार और नाना प्रकार के लौकिकव्यवहारों के बिना धर्म की संतति चल नहीं सकती इसलिए मोक्षमार्गी सुपात्र साधक भी क्वचित् कदाचित् लौकिक कार्य करते और कराते देखे जाते हैं।

प्र.-2297 उत्तम पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनमुद्रा युक्त, यथाजात रूपधारी आचार्योपाध्याय साधु और आर्यिका को उत्तम पात्र कहते हैं।

प्र.-2298 मध्यम पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर- दर्शनप्रतिमा से उद्दिष्टत्यागप्रतिमा तक 11 प्रकार के श्रावकश्राविकाओं को मध्यमपात्र कहते हैं।

प्र.-2299 जघन्य पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य के त्यागी, 8 मूलगुणों के, षडावश्यकों के धारक, पालक, न्यायनीति से आजीविका चलाने वाले देव शास्त्र गुरु भक्त, शंकितादि 25 मलदोषों के त्यागी, निःशंकितादि 8 अंगों के, निर्वेदादि 8 गुणों के पालक अव्रती श्रावक श्राविकाओं को जघन्यपात्र कहते हैं।

प्र.-2300 विषयों के परित्यागी ज्ञानी किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमत्ताप्रमत्त मुनियों को विषयों के परित्यागी ज्ञानी कहते हैं क्योंकि मुनिजन ही कुछ इंद्रियविजय कर चुके हैं, कुछ करने वाले हैं, तत्संबंधी संवर सहित हैं क्योंकि 28, 25, 36 मूलगुणों में पाँचों इंद्रियों को वश में करने को कहा है और ऐसी प्रतिज्ञा कर पालन भी कर रहे हैं, कदाचित् पूर्व संस्कारवश प्रतिज्ञा भंग भी कर लेते हैं फिर भी पूर्णतः प्रतिज्ञा का अनाचारात्मक भंग नहीं करते हैं अतः इन्हें ज्ञानी कहते हैं।

प्र.-2301 यदि मुनिजन रागद्वेष के त्यागी होते हैं तो प्रमत्तगुणस्थानवर्ती क्यों कहा?

उत्तर- जब वह वैरागी श्रावक दिगंबर दीक्षा लेता है तो उस समय मुनिदीक्षा लेते ही पूर्ण रागद्वेष के त्याग की प्रतिज्ञा करता है पर एकदम से त्याग नहीं हो पाता है अथवा प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थान में आदि की तीन चौकड़ी कषायों का अभाव होने से तत्संबंधी रागद्वेष का त्यागी समझना चाहिये किंतु संज्वलन कषाय संबंधी रागद्वेष के त्यागी नहीं हैं अतः इसके अनुसार प्रमादी कषायवान् हैं। इस कारण प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानों की अपेक्षा मुनिजन सरागी और वीतरागी होते हैं ऐसा कहा है।

प्र.-2302 ये ज्ञानी मुनिजन किस फल को प्राप्त करते हैं?

उत्तर- तीनों सुपात्रों को दान देकर अव्रती अणुव्रती गृहस्थ जो फल प्राप्त करते हैं उससे अनंतगुणे फल को मुनिजन ज्ञान, ध्यान, अध्ययन के द्वारा प्राप्त कर लेते हैं यहाँ तक की अहमिंद्र पद, लौकांतिक देव, इंद्र पदवी आदि एक भवावतारी पद को प्राप्त कर अंत में मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

प्र.-2303 एक भवावतारी पद कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर- किन्हीं जीवों को विशेष धर्म के, तप के प्रभाव से तो किन्हीं जीवों को अपने आप

कर्मोदयानुसार हीनता सहित परिणमन करने से एक भवावतारी पद प्राप्त होता हैं। जैसे भरतचक्री के श्रीवर्धनादि 923 पुत्र तद्भव मोक्षगामी हुए अतः चतुर्गति के जीव एक भवावतारी पद प्राप्त कर लेते हैं और कर भी सकते हैं।

नोटः- यहाँ तक 2303 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 67वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 68वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निर्लोभपने का उपाय

भू महिला कणयाई लोहाहि विसहरो कहं पि हवे।

सम्मत्तणाणवेरग्गोसहमंतेण सह जिणुद्दिट्ठं।।68।।

भूमहिलाकनकादि लोभाहिविषधरो कथमपि भवेत्।

सम्यक्त्वज्ञानवैराग्यौषधिमंत्रेण सह जिनोद्दिष्टम्।।

भू भूमि, **महिला** स्त्री **कणयाई** स्वर्ण आदि का **लोहाहि विसहर** लोभ रूपी विषधर सर्प **कहं पि** कैसे नष्ट होता **हवे** है? सुनो **सम्मत्त णाण** सम्यक्त्व, ज्ञान **वेरग्गोसह** वैराग्य रूपी औषधि और **मंतेण** मंत्र के **सह** द्वारा नष्ट होता है **जिणुद्दिट्ठं** ऐसा जिनेंद्र ने कहा है।

प्र.-2304 भूमि, महिला और स्वर्ण किसे कहते हैं और इनसे क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- भूमि- जमीन अचल संपत्ति। महिला- जोरू, परिवार, पशुपक्षी आदि चेतन चलसामग्री। स्वर्ण- जर अचेतन चलाचल संपत्ति कहते हैं। इनमें अपनत्व पूर्वक रमण करने से वैर विरोध और विकार प्राप्त होता है।

प्र.-2305 सर्प किसे कहते हैं, कैसा है तथा कैसा फल प्राप्त होता है?

उत्तर- तिर्यंचगति में सर्प नामकर्मोदय से प्राप्त पर्याय को सर्प कहते हैं। इनकी अनेक जातियां हैं, कुछ अत्यंत विषैले होते हैं जिनके डसने से, श्वास के निरोध से नाना कष्ट और मृत्यु भी हो जाती है।

प्र.-2306 यहाँ ग्रंथकारजी ने विषधर सर्प किसे कहा और इसका क्या फल है?

उत्तर- यहाँ ग्रंथकारजी ने जर जोरू जमीन के प्रति आकर्षण को विषैला सर्प कहा है। लोक में सर्प के डसने से एक ही भव नष्ट होता है तो इनके प्रति आकर्षण, रागद्वेष से अनेक भव नष्ट होते हैं।

प्र.-2307 ये विषयकषाय भूतकालीन भवों को कैसे नष्ट करते हैं?

उत्तर- यह उत्तम मनुष्य पर्याय, उत्तम धर्म क्षेत्र, देव शास्त्र गुरु का समागम, सर्वांग सुंदरता, सभी प्रकार का वैभव प्राप्त होना आदि यह सब पूर्वकृत महान तप का फल है, वर्तमान में विषयकषायों में रमण कर पापोपार्जन करने से नरकनिगोद का पात्र बन जहाँ से आया वहीं चला गया। पूर्व में किया गया सारा परिश्रम व्यर्थ में चला गया, निष्फल हो गया पुनः प्राप्त करने के लिए जैसा का तैसा पूरा परिश्रम करना पड़ेगा इसलिए कहा है कि ये विषयकषायें अनेक भूतकालीन भवों को वर्तमान भव के साथ नष्ट कर देतीं हैं।

प्र.-2308 ये विषयकषायें वर्तमान भव को कैसे नष्ट कर देती हैं?

उत्तर- वर्तमान पर्याय में जो धर्माचरण, आत्मसाधना, ध्यानाध्ययन, तपश्चरण करना था वह सब विषयकषायों में लगने से नष्ट हो गया, उत्थान के बदले पतन हुआ, प्रशंसा के बदले निंदा हुई और हाय हाय करते हुए मरण कर दुर्गति का पात्र बना और वर्तमान भव को भी नष्ट कर दिया।

प्र.-2309 ये विषयकषायें भावी भवों को कैसे नष्ट करतीं हैं?

उत्तर- वर्तमान में उत्तम साधन प्राप्त करके उत्तमकार्य न कर अनिष्टकार्य किये जिससे ऊर्ध्वगति में जाने के बदले गिर कर नीचे आ गया जिसने जितना ऊपर जाने का परिश्रम किया था वह सब

नष्ट हो गया अतः इन विषयकषायों ने भावी भवों को नष्ट किया है।

प्र.-2310 गाथा में भूमि पद से किस किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- भूमि पद से मकान दुकान खेतीवाड़ी जमीन अचल संपत्ति को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2311 गाथा में महिला पद से किस किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- महिला पद से समस्त परिवार और पशुपक्षिओं को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि जैसे पति को पत्नि से या पत्नि को पति से रागद्वेष मोह उत्पन्न होते हैं वैसे ही पशुपक्षियों के माध्यम से होते हैं।

प्र.-2312 कनक आदि पद से किस किस को ग्रहण करना चाहिये और क्यों?

उत्तर- अचेतन स्वरूप चल संपत्ति सोना चांदी, हीरा मोती आदि खनिज धातुयें, वस्त्राभूषण, भोजन सामग्री और अनेक प्रकार के विषयभोगों की सामग्री को ग्रहण कर लेना चाहिये। **''भूमहिलाकणयाइ''** इन तीन नामों को उपलक्षण मानकर तथा आदि पद से तत्तत्संबंधी संपूर्ण सामग्री को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-2313 इन तीन प्रकार की सामग्री से लोभादि विकार कैसे शांत होते हैं?

उत्तर- जैसे शारीरिक रोग औषधि के द्वारा शांत होते हैं ऐसे ही आत्मविकार सम्यक्पुरुषार्थ से, रत्नत्रय से विशेष संयम पूर्वक ध्यानाध्ययन तपश्चरण से शमन होते हैं।

प्र.-2314 यहाँ ग्रंथकारजी ने रत्नत्रयधर्म को किसके समान बताया है?

उत्तर- यहाँ रत्नत्रय धर्म को औषधि और मंत्र के समान कहा है जैसे लोक में व्याधियां औषधि और मंत्रों से दूर होते हैं वैसे ही इन विषयकषाय रूपी विकारों का निग्रह रत्नत्रय रूपी औषधि से, मंत्र से होता है।

प्र.-2315 रत्नत्रय धर्म से शारीरिक रोग कैसे दूर हो सकते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय धर्म की साधना आराधना से आंतरिक विकार के दूर होते ही द्रव्यकर्म उदीरणा, संक्रमणादि को प्राप्त होते हैं। इससे शारीरिक बीमारियां स्वतः नष्ट हो जाती हैं। जैसे निमित्त के अभाव में नैमित्तिक कार्यों का अभाव हो जाता है वैसे ही एकसाथ एक ही समय में उभय विकार दूर हो जाते हैं।

प्र.-2316 रोग नाशक औषधि और मंत्र में क्या अंतर है?

उत्तर- औषधि से शारीरिक रोग एवं मंत्रों से शारीरिक और मानसिक रोग दूर होते हैं। औषधि पुद्गलपिंड है, रूप रस गंध स्पर्श वाली है, स्थावर जीवों के शरीर रूप होती है तो मंत्र आत्म सद्भावनात्मक है, आत्मगत होने से अरूपी है, भावबीजाक्षर रूप होते हैं यही अंतर है। ये दोनों रक्षक एवं भक्षक भी होते हैं।

प्र.-2317 ये औषधि और मंत्र दोनों रक्षक तथा भक्षक कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- डॉक्टर वैद्य यदि सद्भावनात्मक और विवेकवान है, निर्लोभी है तो इसके द्वारा प्रयोग में लाई गई औषधि मरीज की रक्षक होती है अन्यथा भक्षक होती है ऐसे ही मंत्रवादी यदि धर्मात्मा हितचिंतक है तो उसके द्वारा मंत्र रक्षक हो जाते हैं अन्यथा मंत्र घातक और भक्षक हो जाते हैं।

प्र.-2318 रक्षक तथा भक्षक किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवन को कष्ट से, अशुभ से, भय से बचाने वाले को रक्षक और जीवन को कष्ट में डालने वाले को, शोषण करने वाले को, भोजन के समान खाने वाले को भक्षक कहते हैं।

नोटः- यहाँतक 2318 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 68वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 69वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बाह्य मुंडन के भेद और फल

पुव्वं जो पंचेंदिय तणु मणुवचि हत्थ पाय मुंडाउ।
पच्छा सिरमुंडाउ सिवगइ पहणायगो होइ।।69।।

पूर्वं यः पंचेंद्रिय तनु मनो वचो हस्त पाद मुंडः।

पश्चात् शिरोमुंडः शिवगति पथनायको भवति।।

जो जो दीक्षार्थी **पुव्वं** पहले **पंचेंदिय** पाँचों इंद्रियों को **तणु मणु वचि** शरीर, मन, वचन, **हत्थपाय** हाथ पांव का **मुंडाउ** मुंडन करने के **पच्छा** बाद में **सिरमुंडाउ** दाढ़ी मूंछ और सिर का लुंचन करने वाला **सिवगइ** मोक्षमार्ग का **पहणायगो** नेता **होइ** होता है।

प्र.-2319 पाँचों इंद्रियों का मुंडन किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- पाँचों इंद्रियों को वश में करने के लिए इंद्रियों को न बांधना है, न किसी विषय को रोकना है कि तूं मेरे पास, मेरे सामने मत आ किंतु विषयों के सन्निधान होने पर रागद्वेष को प्राप्त न होकर उदासीनपने को प्राप्त होना और विषय ग्रहण करने की लालसा नहीं होना ही इंद्रियमुंडन है।

प्र.-2320 इंद्रिय मुंडन से मतलब यहाँ द्रव्य इंद्रियों से है या भावेंद्रियों से?

उत्तर- यहाँ भावेंद्रियों के मुंडन से मतलब है द्रव्येंद्रिय मुंडन से नहीं क्योंकि ये द्रव्येंद्रियां खिड़कियों जैसी हैं। ये किसी भी इष्टानिष्ट विषयों को ग्रहण नहीं करती हैं। यदि ग्रहण करने लगें तो चित्र में बनी हुईं इंद्रियां और मुर्दा भी विषयों को ग्रहण करने लगेगा कारण कि इनमें सभी इंद्रियां विद्यमान हैं अतः द्रव्येंद्रियों के माध्यम से भावेंद्रियां विषयों को ग्रहण करती व छोड़ती हैं। रागद्वेष रूपी विकारों की उत्पत्ति प्रमादानुसार भावेंद्रियों में ही होती है अतः भावेंद्रियों को वश करने से द्रव्येंद्रियों का मुंडन हो जाता है।

प्र.-2321 इंद्रिय मुंडन के साथ में संख्यावाची 5 क्यों लगाया?

उत्तर- यदि इंद्रियमुंडन के साथ में संख्यावाची पाँच विशेषण का प्रयोग नहीं करते तो किस इंद्रिय को वश में करना है और किसको नहीं अथवा किसी एक को वश में करने से काम चल जायेगा ऐसा कोई साधक न समझ ले इसलिए आ. श्रीजी ने संख्यावाची पाँच का प्रयोग करने से पाँचों इंद्रियों को वश में करना चाहिये अतः संख्यावाची पाँच का प्रयोग करना सार्थक है। यहाँ ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2322 यदि संख्यावाची पाँच का अंक नहीं लगाते तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि पाँच संख्यावाची नहीं लगाते हैं तो एकेंद्रिय से चौइंद्रिय तक के जीव भी इंद्रिय मुंडन कर लेते हैं या जिस जीव के आगे की इंद्रियां नहीं हैं तो उनके उसका मुंडन हो गया है कोई ऐसा भी अर्थ ग्रहण कर सकते हैं अतः ऐसे अनिष्ट अर्थ के निवारणार्थ संख्यावाची पाँच को ग्रहण किया है। इस कारण इंद्रिय मुंडन करने वाला पर्याप्तक कर्मभूमिज उच्चगोत्रीय मनुष्य द्रव्य से पुरुषवेदी और भाव से त्रिवेदी होना चाहिये।

प्र.-2323 इस पाँच को संख्येयवाची मान लें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, संख्येयवाची मानने पर केवल कर्णेंद्रिय को वश में करने का प्रसंग आने से स्वसिद्ध ांत विरोध है और आदि की 4 इंद्रियों का मुंडन न करने से दश मुंडन नहीं बन सकते हैं, न पाँच इंद्रिय निरोध के पाँच मूलगुण बन सकते हैं अतः यहाँ 5 को संख्येयवाची न मानकर संख्यावाची ही अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2324 इंद्रिय के साथ मुंडन पद का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर- जैसे हम किसी से कहीं अलग हुए हैं तो इस वाक्य से यह अर्थ स्पष्ट है कि वहाँ तक साथ में थे जिस वस्तु का जिस समय त्याग किया है तो उस समय तक उसका साथ था इसी तरह यहाँ जब इंद्रिय मुंडन किया तब उत्तम पुरुषार्थी हुए तो इंद्रिय मुंडन के पहले हीन पुरुषार्थी थे तभी तो इंद्रियाधीन थे यदि उत्कृष्ट पुरुषार्थी थे तो इंद्रियों के दास क्यों बने रहे? मालिक होकर भी नौकर बने रहे इसलिए उत्कृष्ट पुरुषार्थीपने को बताने के लिए मुंडन पद का प्रयोग किया है यही तो जिनधर्म है।

प्र.-2325 स्पर्शन इंद्रिय का मुंडन किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- स्पर्शनेंद्रिय के मनोज्ञ अमनोज्ञ आठों विषयों को ग्रहण करते समय ये अच्छे हैं और ये बुरे इन भावों का त्याग करना स्पर्शनेंद्रिय मुंडन है। मनोज्ञ- मन को अच्छे लगने वाले। अमनोज्ञ- मन को बुरे लगने वाले।

प्र.-2326 रसना इंद्रिय का मुंडन किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- जिह्वा इंद्रिय के मनोज्ञ अमनोज्ञ पाँचों विषयों को ग्रहण करते समय ये अच्छे हैं और ये बुरे इन भावों का त्याग करना रसनेंद्रिय मुंडन है।

प्र.-2327 घ्राण इंद्रिय का मुंडन किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- घ्राण इंद्रिय के मनोज्ञामनोज्ञ विषयों को ग्रहण करते समय ये अच्छे हैं और ये बुरे इन भावों का त्याग करना घ्राणेंद्रिय मुंडन है।

प्र.-2328 चक्षु इंद्रिय का मुंडन किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- चक्षु इंद्रिय के मनोज्ञ अमनोज्ञ पाँचों विषयों को ग्रहण करते समय ये अच्छे हैं और ये बुरे इन भावों का त्याग करना चक्षु इंद्रिय मुंडन है।

प्र.-2329 कर्ण इंद्रिय का मुंडन किस प्रकार से करना चाहिये?

उत्तर- कर्णेंद्रिय के मनोज्ञ अमनोज्ञ सातों स्वर रूपी विषयों को ग्रहण करते समय ये अच्छे हैं और ये बुरे इन भावों का त्याग करना कर्णेंद्रिय मुंडन है। इन पाँचों इंद्रियों के ये 20 विषय उपलक्षण मात्र हैं। इन सभी के असंख्यात लोक प्रमाण, असंख्यात लोक प्रमाण अवांतर भेद हैं।

प्र.-2330 यहाँ 5 कर्मेंद्रिय और 5 ज्ञानेंद्रिय ऐसे 10 भेद क्यों नहीं किये?

उत्तर- पाँच द्रव्येंद्रिय और पाँच भावेंद्रिय ऐसे 10 भेद किये ही हैं केवल नाम में अंतर है जो स्पष्ट है।

प्र.-2331 पाँचों इंद्रियों का मुंडन करने के बाद में शरीर मुंडन करने को क्यों कहा?

उत्तर- भावेंद्रियों का क्षयोपशम सर्वांग में होने से स्थान अनियत है तो द्रव्येंद्रियों का स्थान नियत है। यदि द्रव्येंद्रियां चलायमान हो जातीं तो नाक की जगह कान, आँखादि आ जातीं या कान की जगह जिह्वा आदि परिवर्तन कर जातीं, आँख मस्तिक के पीछे हो जाती अतः द्रव्येंद्रियां सदाकाल स्थिर हैं। जैसे मकान की दीवारें चारों तरफ विस्तार रूप में लंबी चौड़ी और परस्पर में जुड़ीं होतीं हैं किंतु बीच बीच में रोशनी, हवा तथा बाहर देखने के लिए खिड़कियां होतीं हैं ऐसे ही शरीर दीवार है तो इंद्रियां खिड़कियों के, झरोखों के समान है, आत्मा अपने स्पर्श विषय को सर्वांग से ग्रहण करता है, शेष चार इंद्रियां अपने अपने नियत स्थान में स्थिर होती हुईं विषयों को ग्रहण करतीं हैं। यदि भावेंद्रियों को वश में कर लिया है तो अब शरीर को भी वश में करो, कदाचित् शरीर वश में नहीं है तो शरीर संबंधी विषयों के प्राप्त होने पर या स्मरण आदि से मन बैचेन होकर कुचेष्टायें भी कर सकता है। जिससे सर्वत्र निंदा होगी, बदनामी होगी तथा माँ बहने भी परहेज करेंगी अतः शरीर का मुंडन करने को कहा। अनेक जन स्वाध्याय, सामायिक, ध्यान करते समय शराबियों की तरह झूमते हैं यदि शरीर वश में है तो स्थिर बैठेंगे जिससे उपसर्ग परीषहों का जीतना हो जाता है।

प्र.-2332 शरीर मुंडन के बाद मन का मुंडन करने को क्यों कहा?

उत्तर- मन का मुंडन न करने से पाप कर्मों का संवर नहीं होगा अतः पापनिरोध के लिए, दुर्ध्यानों से बचने के लिए पाँचों इंद्रियों को तथा शरीर को वश में करने के बाद मन मुंडन करने को कहा है।

प्र.-2333 दुर्ध्यान किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- खोटे, अशुभ या पापवर्धक कष्टदायी ध्यानों को दुर्ध्यान कहते हैं। दो भेद हैं, प्रत्येक के 4-4 भेद हैं। **नामः-** आर्तध्यान और रौद्रध्यान। **आर्तध्यान के चार भेदः-** इष्टवियोगज, अनिष्ट संयोगज, वेदना और निदान आर्तध्यान। **रौद्रध्यान के चार भेदः-** हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी और परिग्रहानंदी रौद्रध्यान।

प्र.-2334 इन दोनों ध्यानों को दुर्ध्यान अशुभध्यान क्यों कहा?

उत्तर- ये दोनों विषयकषायों से उत्पन्न होते हैं, इसी रूप में परिणमन और इनके संस्कारों को उत्पन्न करते हैं और भाविकाल में इन्हीं अवस्थाओं को प्राप्त कराने से इन ध्यानों को अशुभ ध्यान कहा है।

प्र.-2335 मन का मुंडन करने वाले कितने जीव हैं?

उत्तर- **''मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक। जो मन पर असवार हैं वो लाखों में एक।।'' ''मन मनवा माने नहीं जब लग खता न खाय। जैसे विधवा स्त्री गर्भ रहे पछताय।।''** इस संसार में लाखों मनुष्यों में से कोई एकाद ही मन को जीतने वाले हैं, शेष नहीं। यह मन इतना चंचल है कि जबतक अत्यंत गहरी चोट खा नहीं लेता तब तक वश में नहीं होता जैसे शीलवती, कुलीन कामातुर विधवा होने के बाद गर्भधारण कर ले तब लज्जाशील होने से कितनी पश्चात्ताप करती है उसके लिए एकमात्र उपाय मरने के बिना दूसरा नहीं है ऐसे ही जब मन अच्छी गहरी चोट खा लेता है तभी मन अपने ठिकाने आ जाता है।

प्र.-2336 आजकल गर्भवती विधवायें, तलाक की हुई और कुंवारिकायें निश्चिंत हो गर्भपात करा देतीं हैं तब यह कहावत गलत सिद्ध क्यों नहीं होगी?

उत्तर- आज वर्तमान में पाप की, पापों में सहायक सामग्री की और पापिओं की प्रचुरता होने से तीव्र कषायों का उदय और तदनुरूप परिणाम होने से भले ही इस विधवा या कुंवारिकाओं को गर्भपात कराने में संकोच न हो, पश्चात्ताप न हो किंतु इन कुकर्मों से बांधा गया पापकर्म जब उदय में आकर फल देगा तब आँखों से गिरते हुए आंसुओं को या रक्त के आंसुओं को पोंछने वाला कोई नहीं होगा, न सांत्वना देने वाला मिलेगा तब याद आयेगी कि मैंने पूर्व में कोई ऐसा कुकर्म किया होगा जिसका फल वर्तमान में भोगना पड़ रहा है अतः कहावत शत प्रतिशत सत्य है, गलत नहीं इसलिए दुष्कर्मों के फलों को जानने समझने के लिए आसपास के निवासियों के तथा अपने स्वयं के जीवन में देख लो कि दुष्कर्म का यह फल है।

प्र.-2337 मन मुंडन किसे कहते हैं?

उत्तर- पापाश्रव, पापबंधक परिणामों के रोकने को या बल पूर्वक मंगल कार्यों में मन के लगाने को अथवा अशुभ विकार रूप में या कदाचित् शुभ रूप में परिणमन न करने को मन मुंडन कहते हैं।

प्र.-2338 मन मुंडन के बाद में वचन मुंडन करने को क्यों कहा?

उत्तर- मन को वश में करने वाला किसानों की, भिखारियों की, नन्हें मुन्ने बच्चों की तरह हास्यास्पद, अनिष्टकारी, लज्जाकारक, निंदाकारक, धर्म विरुद्ध, पद विरुद्ध वचनों का त्यागी सज्जनों की तरह शास्त्रीय, उच्च निर्दोष वचन बोलेगा अतः मनमुंडन के बाद वचनमुंडन करने को कहा है।

प्र.-2339 यदि पद विरुद्ध, धर्म विरुद्ध वचन बोले तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- पद विरुद्ध, धर्म विरुद्ध, उत्तम, निर्दोष, जातिकुल विरुद्ध, बोलने से सर्वत्र हंसी का, निंदा का

पात्र, इज्जत की, मानसम्मान की हानि होती है, सर्वत्र अविश्वास का पात्र बन जाता है, असत्प्रलापी से सभी भयभीत रहते हैं कि यह आ गया है अब क्या कैसा बोल देगा? अतः ऐसे वचनालाप से सावधान रहो। ऐसे वचन बोलने वालों के ऊपर हमेशा उपसर्ग परीषहों की संभावना बनी रहती है यही आपत्ति है।

प्र.-2340 असत्प्रलापियों के ऊपर सतत उपसर्ग परीषह कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- उपसर्ग परीषह अनेक प्रकार के होने से असत्प्रलापिओं के ऊपर अविश्वास, मान सम्मान की हानि तथा सामने वाला आज्ञा पालक न होने से सर्वत्र ही उपसर्ग परीषह हो सकते हैं, जो सर्वत्र देख जा रहा है।

प्र.-2341 वचन मुंडन के बाद हाथ का मुंडन करने को क्यों कहा?

उत्तर- कदाचित् वचनोच्चारण सही है, अनेक कलायें मौजूद हैं, अधिकतर मौन धारण करता है पर हाथों का मुंडन नहीं किया तो प्रसंग आने पर हाथों से या शस्त्रों को ग्रहण कर मार देता है या जान से भी मार देता है, अनेकजन मंदिरों में, धर्मसभा में या गुरुओं के पास बैठे बैठे चटाइयों को, कागज को तोड़ते फाड़ते रहते हैं, यहाँ तक कि आँखों से सामने, इधरउधर देखते हुए और नीचे हाथों से कीड़े मकोड़े आदि को उठाकर मार देते हैं, तोड़ देते हैं अतः हाथों का मुंडन करने को कहा है, जो सर्वथा युक्त ही है।

प्र.-2342 गमनागमन और स्थिर रहते हुए हाथों को मटकाने से क्या हानि है?

उत्तर- गमनागमन करते हुए या स्थिर रहते हुए हाथों को मटकाने से किसीको धक्का लग जाता है, लग भी सकता है, आँख, नाक, कान, पेट, सीना आदि में हाथ लगने से चोट भी आ सकती है, झगड़ा भी हो जाता है, क्षुद्र प्राणी भी मर जाते हैं तथा असावधानी पूर्वक अनाज्ञाकारीपना, मूर्खपना, मानी, मायावीपना आदि दोषों के कारण हानि ही हानि होती है अतः हाथों को स्थिर कर गमनागमनादि कार्य करना चाहिये।

प्र.-2343 हाथों का मुंडन न करने से क्या हानि है?

उत्तर- हाथों का मुंडन न करने से अपराधी या निरपराधी के सामने आने पर मारने या प्यार के लिए हाथ उठ जाता है या हाथों में लकड़ी पत्थरादि जो भी मिला उसीसे मार दोगे उसे लगे या न लगे यह उसके भाग्य की बात है किंतु हाथ वश में न होने से तुमने तो पाप का बंध कर ही लिया यही तो हानि है।

प्र.-2344 पैरों का मुंडन करने को क्यों कहा तथा नहीं किया तो क्या हानि है?

उत्तर- अनेक गृहस्थ और साधुवर्ग बैठे बैठे पैरों को हिलाते रहते हैं जिससे शरीर में उत्पन्न हुए अनेक त्रसजीव असमय में अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं अतः प्रमाद और हिंसादि पापों को रोकने के लिए पैरों का मुंडन करने को कहा है। पैरों के हिलाने से जीव विराधना होती है, लोकनिंदा भी होती है, कदाचित् कामवेदना से दिन या रात्रि में वीर्यपात तथा स्वप्न दोष भी हो जाता है, हाथ पैरों को हिलाने की आदत होने से, कायगुप्ति का अभ्यास न होने से स्वाध्याय, ध्यानाध्ययन में कैसे स्थिर होगा? आदि हानि है।

प्र.-2345 वीर्यपात, वीर्य निकालना, वीर्य निकलना और स्वप्न दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- जागृतावस्था में बीमारी या गर्मी के कारण वीर्य निकलने को वीर्यपात कहते हैं। कामक्रीड़ा, अनंगक्रीड़ादि से शारीरिकबल नष्ट करने को वीर्य निकालना एवं अधिक परिश्रम करने से शरीरगत धातु बाहर आने को वीर्य निकलना कहते हैं। कामसेवन संबंधी स्वप्नों से वीर्य गिर जाने को स्वप्नदोष कहते हैं।

प्र.-2346 कामसेवन संबंधी स्वप्न क्यों आते हैं?

उत्तर- कामसेवन संबंधी अधिकतर वार्तालाप करने से, तत्संबंधी अंगों को देखने से, कथायें करने से, कामसेवन की व्यक्ताव्यक्त भावना पूर्वक आलिंगन, चुंबन आदि करने से ऐसे स्वप्न आते हैं।

प्र.-2347 शिर मुंडन करने को क्यों कहा?

उत्तर- शरीर, शृंगारालंकार से विमुक्त है या युक्त आदि पहंचानने को, शरीर से ममत्व घटाने के लिए, दीनता को छोड़ने के लिए, अहिंसाधर्म और अयाचक वृत्ति के लिए शिर मुंडन करने को कहा है।

प्र.-2348 अनेक मुंडनों के बाद में शिर मुंडन करने को क्यों कहा?

उत्तर- अनेक मुंडनों को किये बिना केवल शिर मुंडन करने से न साधुता आती है, न आत्मसाधना होती है, न ही आत्मकल्याण होता है यदि केवल शिर मुंडन से आत्मकल्याण हो जाये तो सुअर के, अपराधी के, ब्युटीपार्लर में महिलायें, बच्चियां शौकशृंगार के लिए बाल उखड़वाती हैं तो उनका भी केशलुंचन मूलगुण हो जायेगा फिर अंदर के विकारों को जीतने की बात ही व्यर्थ हो जायेगी अथवा अन्यमति साधुगण भी मन को, वचन को, इंद्रियों को वश में किये बिना छुरा उस्तरा से शिर मुंडन करा लेते हैं तभी तो उनमें नाना प्रकार के धूम्रपान, गलत चेष्टायें आदि देखी जा रही हैं। ऐसे ही अनेक नामधारी जैन साधु गण भी अनर्गल कार्यकलाप करते हुए देखे सुने जा रहे हैं अतः केवल शिर मुंडन करना कराना व्यर्थ है।

प्र.-2349 केवल शिर मुंडन करने कराने से क्या लाभ है?

उत्तर- **''मूड़ मुड़ाये तीन गुण शिर की मिट जाये खाज, खाने को लड्डू मिलें लोग कहें महाराज।'' ''केसन कहा बिगाड़िया, जो मूड़ो सौ बार। मन को क्यों नहीं मूड़ते, जा में औगुन भरे हजार''** लोकदृष्टि में केवल शिर मुंडाने से निम्न लाभ होते हैं। शिर में जुंये न पड़ने से खुजली नहीं होती है, पसीना नहीं आने से या सूख जाने से मैल नहीं जमता है, भोजनपान में पक्वान्न मिष्ठान्न प्राप्त होते हैं और सामान्य प्रजा महाराज कहकर पुकारती है, पूजा आदर सम्मान आदि की प्राप्ति होती है यह लौकिक लाभ है, लोकोत्तर नहीं।

प्र.-2350 संन्यासी किसे कहते हैं और कैसे बनते हैं?

उत्तर- संपूर्ण बाह्याभ्यंतर आडंबर और आंतरिक विकारों के त्यागी को संन्यासी कहते हैं तथा अंतरंग में हेतु भिन्न होने से जब साधु संन्यासी बनने लगे तो लोक में कवियों ने व्यंग किया है- **''नार मरी और संपत्ति नाशी मूड़ मुड़ाये भये संन्यासी।''** पत्नि की मृत्यु हो गई, संपत्ति नष्ट हो गई तब शिर मुड़ा कर या बाल रखाकर संन्यासी बन गये आदि हेतुओं से संन्यासी बनते हैं पर यह आत्मकल्याण का मार्ग नहीं है।

प्र.-2351 संपत्ति कैसे नष्ट होती है और जीवन कैसे बिगड़ता है?

उत्तर- अनेक पापकर्मों का प्रबल उदय होने पर चेतनाचेतन और मिश्र संपत्ति व्यापार, आग, अधिक बरसात या बाढ़, तूफान के द्वारा, चोर, डाकुओं, सरकार के द्वारा, कुसंगति से संपत्ति नष्ट हो जाती है और अशिष्ट शिक्षा, संगति और संस्कारों से जीवन बिगड़ता है।

प्र.-2352 दिगंबर जैन साधु केशलोंच क्यों करते हैं?

उत्तर- जीवरक्षा, अयाचकवृत्ति स्वाधीनता, निर्ममत्वपने को प्राप्त करने के लिए, स्वाभिमान की रक्षा के लिए, ब्रह्मचर्य के पालन के लिए, उपसर्ग परीषहों को जीतने के लिए, समीचीन वैराग्य की पहंचान के लिए आदि अनेक कारणों से दिगंबर जैन साधुवर्ग दो महिने के अंदर उत्तम, तीन महिने के अंदर मध्यम और चार महिने के अंदर या पूर्ण होते ही 120 दिन में जघन्य केशलुंचन कर लेते हैं।

प्र.-2353 दि. जैन साधु सभी मुंडनों के बाद में शिर मुंडन करते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही सभी दिगंबर जैन साधुगण दस मुंडन करने के बाद में शिर मुंडन केशलोंच करते हैं। जिन गृहस्थों ने पूर्व के मुंडन किये बिना साधु बनकर शिर का मुंडन कर लिया है तो वे सही ढंग से मुनि पद को न निभाकर पदभ्रष्ट होकर मुनिपद छोड़ देते हैं या नारद रौद्रों की तरह हीन चेष्टायें करते हुए जीवन व्यतीत करके अधोगति के पात्र बनकर मरकर अधोगति में चले जाते हैं।

प्र.-2354 इन सभी मुंडनों को करने वाला जीव किस फल को पाता है?

उत्तर- इन मुंडनों को करने वाला श्रावक साधु बन क्रमशः गुणवृद्धि कर हितोपदेशी हो जाता है।

प्र.-2355 हितोपदेशी किसे कहते हैं?

उत्तर- सभी संसारियों को हित का मार्ग बताने वाले को हितोपदेशी, मोक्षमार्गदर्शक नेता कहते हैं।

प्र.-2356 नेता पद कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर- जिन चरमशरीरी महामुनियों ने क्षपकश्रेणी के द्वारा उत्कृष्ट धर्मध्यान से या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान से 10वें गुण. के चरमसमय में मोहकर्म का समूल क्षय करके 12वें गुण. के प्रथम समय में वीतरागता प्राप्त कर अंतर्मुहूर्त काल तक विश्राम कर 12वें के अंत में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के द्वारा तीन घातियाकर्मों को क्षय कर क्षायिक सात भावों को प्राप्त कर ऐसे सर्वज्ञ बारह सभाओं के मध्य में सिंहासन के ऊपर अधर विराजमान हो भव्यों को मार्गदर्शन देना ही हितोपदेशीपना है।

प्र.-2357 ये क्षायिक सातभाव कौन कौन हैं और किनके क्षय से प्राप्त होते हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणीय के क्षय से अनंतज्ञान, दर्शनावरणीयके क्षय से अनंतदर्शन, अंतराय के क्षय से अनंतदान, लाभ, भोग, उपभोग और अनंतवीर्य ये सातों भाव तीन घातिया कर्मों के क्षय से होते हैं।

प्र.-2358 मोहनीय कर्म के क्षय से कितने भाव प्राप्त होते हैं?

उत्तर- दर्शनमोह के क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन और चारित्रमोह के क्षय से क्षायिकचारित्र होता है इसे ही अनंतसुख कहते हैं। उपरोक्त 7 भावों के साथ में इन्हीं को क्षायिक नौ लब्धि भी कहते हैं।

प्र.-2359 पथनायक किसे कहते हैं?

उत्तर- मार्गदर्शन देने वाले को या मोक्षमार्ग के पूर्ण स्वामी को पथनायक या नेता कहते हैं।

प्र.-2360 आप्तपना कब प्राप्त होता है?

उत्तर- सभी मुंडन करने के बाद उत्कृष्टध्यान के द्वारा घातियाकर्मों के क्षय से आप्तपना प्राप्त होता है।

नोटः- यहाँतक 2360 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 69वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 70वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कुमार्गगामी कौन?

पतिभत्तिविहीण सदी भिच्चो य जिणभत्तिहीण जइणो।

गुरुभत्तिहीण सिस्सो दुग्गइ मग्गाणुलग्गओ णियमा।।70।।

पतिभक्तिविहीना सती भृत्यश्च जिनभक्तिहीनो जैनः।

गुरुभक्तिहीनः शिष्यो दुर्गतिमार्गानुलग्नो नियमात्।।

पतिभत्ति पतिभक्ति से, **विहीण** विहीन **सदी** सती **भिच्चो** और नौकर **जिणभत्ति** जिनेंद्र भक्ति से **हीण** हीन **जइणो** जैन **य** और **गुरुभत्तिहीण** गुरुभक्ति से हीन **सिस्सो** ये शिष्य **णियमा** नियम से **दुग्गइ** दुर्गति के **मग्गाणुलग्गओ** मार्ग में लगे हुये हैं।

प्र.-2361 सती नारी कैसी होनी चाहिये और कैसी नहीं?

उत्तर- सती पतिव्रता होनी चाहिये। यदि पतिभक्ता नहीं है तो उसे व्यभिचारिणी समझना चाहिये।

प्र.-2362 पति कैसा होना चाहिये और कैसा नहीं?

उत्तर- पत्नि को आज्ञाकारी बनाने को पति भी स्वयं आज्ञापालक होना चाहिये अन्यथा पति दूषित होने से पत्नि भी दूषित हो जायेगी।

प्र.-2363 यदि नौकर अपने मालिक का भक्त नहीं है तो वह कैसा है?

उत्तर- यदि नौकर अपने स्वामी का भक्त नहीं है तो विश्वासघाती होने से नियमतः अधोगामी है।

प्र.-2364 यदि जैन जिनेंद्र की भक्ति नहीं करे तो उसे क्या समझना चाहिये?

उत्तर- जैनकुल में, जैनधर्म में जन्म लेकर भी जिनेंद्र की भक्ति, अभिषेक पूजा, आरती आदि नहीं करता है तो उसे मिथ्यादृष्टि अजैन समझना चाहिये तब वह नामनिक्षेप से भी जैन न होने के कारण स्थापना निक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेप से जैन कैसे हो सकता है? वह नियमतः अभक्ति के कारण दुर्गति का पात्र है।

प्र.-2365 जैन और जिनेंद्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन्होंने विषयकषाय रूपी विकारों को, कर्मशत्रुओं को आंशिक रूप में जीत लिया है विजय प्राप्त कर ली है तथा जिनेंद्र भक्त को भी जैन कहते हैं। समस्त घातियाकर्म रूपी विकारों के क्षय से उत्पन्न अनंतचतुष्टय प्राप्त करने वाले को जिनेंद्र कहते हैं। यहाँ भाव निक्षेप वाले जिनेंद्र को ग्रहण करना चाहिये, शेष को नहीं क्योंकि नामनिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप वाला जिनेंद्र विषयभोगी असंयमी गृहस्थ भी हो सकता है और स्थापना निक्षेप वाली जिनेंद्र की मूर्ति अचेतन होती है अथवा मुनियों में जिनेंद्र का संकल्पकर जिनेंद्रवत् मानने को स्थापना निक्षेप से मुनियों को जिनेंद्र कहते हैं।

प्र.-2366 वास्तव में पूर्ण रूप से जैन किसे कहते हैं?

उत्तर- इस जैन पद को पदच्छेद करके अर्थ करने पर जै+न = इस संसार में जिसे जीतने के लिए कुछ भी शेष नहीं बचा अर्थात् जिसने सबको जीत लिया है उसे अथवा संसार में जिसको जीतने के लिए कोई न पैदा हुआ था, न है और न भविष्य में होगा उसे ही वास्तव में जैन कहते हैं।

प्र.-2367 आजकल वास्तव में पूर्ण रूप से जैन हैं या नहीं?

उत्तर- इस कलिकाल में वास्तव में द्रव्य और भाव से अव्रती जैन मिलना अत्यंत कठिन है क्योंकि अव्रती गृहस्थ किसी न किसी रूप में मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य पदार्थों का भरपूर सेवन कर रहे हैं किंतु द्रव्य से अणुव्रती और महाव्रती तथा भाव से अव्रती जैन मिलना कठिन नहीं है, सरल है।

प्र.-2368 भक्ति कौन और क्यों करता है?

उत्तर- गुणों का, गुणवानों का निष्कपट, निःस्वार्थ से कीर्तन, चिंतनमनन कर, भली प्रकार से समर्पण भाव पूर्वक मुमुक्षु कर्म बंधन से छूटने के लिए, संवर और निर्जरा की प्राप्ति के लिए भक्ति करता है।

प्र.-2369 निष्कपट, निःस्वार्थ भाव किसे कहते हैं?

उत्तर- स्व, पर और उभय को धोके में, कष्ट में डालने के लिए मन में कुछ अन्य विचार चल रहा है, वचन से कुछ और बोल रहा है, शरीर से कुछ अन्य ही चेष्टा कर रहा है सो इसे कपट/मायाचार और इसके त्याग को निष्कपट कहते हैं। धर्माचरण का फल सांसारिक विषयभोगों की सामग्री प्राप्त हो ऐसी आकांक्षा को स्वार्थ तथा ऐसे स्वार्थ के त्याग की भावना को निःस्वार्थ भाव कहते हैं।

प्र.-2370 सुगुरु किसे कहते हैं और सुशिष्य किसे कहते हैं?

उत्तर- शासन करने वाले छद्मस्थ सन्मार्गदर्शक को या जिनमुद्रा धारक यथाजात रूप धारी को सुगुरु कहते हैं और इनके आज्ञापालक अनुयायी धर्मभावना से समर्पित होने वाले को सुशिष्य कहते हैं।

प्र.-2371 विकार और निर्विकार किसे कहते हैं?

उत्तर- मोहोदय से उत्पन्न रागद्वेषादि भावों को, ये मेरे हैं ये तेरे हैं ये उसके हैं आदि संसारवर्धक विभावों को विकार तथा इनके त्याग को निर्विकार कहते हैं। यहाँ केवल कामवासना को विकार नहीं समझना चाहिए।

प्र.-2372 कुगुरु और कुशिष्य किसे कहते हैं?

उत्तर- अनेक प्रकार के विकृत भेषधारियों को, विकार युक्त आचारविचार वालों को कुगुरु कहते हैं। इनके अनुसार दिनचर्या करने वालों को, आज्ञाकारी भक्तों को कुशिष्य कहते हैं।

प्र.-2373 गुरुभक्ति विहीन शिष्य को क्या कहते हैं?

उत्तर- गुरु भक्ति के बिना शिष्य को कुपुत्रवत् कुशिष्य कहते हैं क्योंकि यह गुरु के उपकार को भूल गया है, उपकार न मानने वाले को कृतघ्नी कहते हैं। आजकल कुछ शिष्यगण ऐसे हैं कि जिन्होंने हाथी जैसे अपने दोषों को देखने के लिए तो आँखें बंद कर ली हैं और गुरु के चींटी जैसे दोषों को देखने के लिए आँखें खोल रक्खी हैं सो इसी अपराध के कारण इन्होंने अपने शिक्षादीक्षादायक गुरु को छोड़कर दूसरों को अपना गुरु बना लिया है, उपकारी गुरु को बदलना यह पति बदलने के बराबर है। जैसे कोई स्त्री अपने निज पति को छोड़कर दूसरों को अपना पति बना ले तो उसे क्या कहेंगे?

प्र.-2374 गुरु का नाम छिपाने से या नाम बदलने से किस कर्म का आश्रव होता है?

उत्तर- अपनी प्रशंसाबड़प्पन के प्रचारप्रसार के लिए शिक्षादीक्षादायक गुरु का नाम छिपाने या गुरु बदलने से तीव्र ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और मिथ्यात्व कर्म का आश्रव होता है क्योंकि बिना मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी के गुरु के दोषों का वादन प्रतिवादन और दोषारोपण/ अवर्णवाद बन नहीं सकता।

प्र.-2375 अपने से बड़ों को न मानने वाले को क्या कहते हैं?

उत्तर- ये शिष्यगण अनाज्ञाकारी, मानी होने से कुमार्गगामी हैं, दुर्गतिगामी हैं क्योंकि ये अपनी मूर्खता के कारण बड़ों के उपकार को उपकार न मानकर कृतघ्नी हो गये, इनकी यहाँ भी इज्जत नहीं, न कोई सज्जन विश्वास करते हैं, इनको उन्मार्गगामी घोड़े के समान कुशिक्षित, कुपुत्रवत् कुशिष्य समझना चाहिये।

प्र.-2376 क्या केवल बड़े ही उपकार करते हैं, छोटे नहीं?

उत्तर- हाँ, उमर से, शरीर से छोटे होने पर भी उपकार करने वाले अवश्य ही सदा बड़े होते हैं।

प्र.-2377 अशुभगति और अशुभायु किसे कहते हैं?

उत्तर- पापी से महान पापी हो तो भी वह नरकगति और तिर्यंचगति में जाना नहीं चाहता क्योंकि इस व्यक्ति ने दोनों गतियों की जीवनगाथा को शास्त्रों में पढ़ा है और गुरुमुख से सुना है कि इन गतियों में इतने कष्ट भोगने पड़ते हैं, सुन कर मन में कष्टों से भय उत्पन्न होने के कारण नहीं जाना चाहता है इसलिए इन दोनों गतियों को अशुभगति कहा है। नारकी जीव कष्टों से घबड़ाकर, भयभीत होकर मरना चाहता है पर असमय में मर नहीं पाता अतः नरकायु को अशुभायु कहा है। यद्यपि कर्मसिद्धांत में तिर्यंचायु को शुभ कहा है फिर भी पाप रूप तिर्यंचगति के साहचर्य से तिर्यंचायु को भी अशुभायु समझना चाहिये।

प्र.-2378 अपने से बड़ों को, अधिकारियों को न मानने से दुर्गति हो सकती है क्या?

उत्तर- विषयकषायों में लंपटता होने से बड़ों को नहीं मानता है, न भक्ति करता है इस कारण वह अहंकारी नियम से दुर्गति के मार्ग में लगा है। अहंकारी की दुर्गति ही होती है यहाँ गाथा में

आ. श्री ने अवधारणार्थ "**णियमा**" पद का प्रयोग किया है। जा सकता है या नहीं ऐसा संदेह नहीं करना चाहिए।

प्र.-2379 यह कैसे समझा जाये की बड़ों को न मानने से दुर्गति होती है?

उत्तर- लोकव्यवहार में घर, समाज, गाँव, देश के नेता को नहीं मानने से तथा उल्टा चलने से कितनी परेशानी होती है यह जानते ही हैं तो धर्म के नेता को नहीं मानने, प्रतिकूल चलने से नियम से ही दुर्गति होती है यह सब आगम और अनुमान से सिद्ध है।

नोटः- यहाँतक 2379 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 70वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 71वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

भक्ति बिना सब शून्य

गुरुभत्तिविहीणाणं सिस्साणं सव्वसंगविरदाणं।

ऊसर खेत्ते ववियं सुबीयसमं जाण सव्वणुट्ठाणं।।71।।

गुरुभक्तिविहीनानां शिष्याणां सर्वसंगविरतानां।

ऊषरक्षेत्रोप्तसुबीजसमं जानीहि सर्वानुष्ठानम्।।

गुरुभत्ति गुरुभक्ति **विहीणाणं** विहीन **सव्वसंग** सर्व परिग्रह **विरदाणं** त्यागी **सिस्साणं** शिष्यों के **सव्वणुट्ठाणं** सभी अनुष्ठान **ऊसर खेत्ते** ऊसर खेत में **ववियं** बोये हुये **सुबीयसमं** उत्तम बीज के समान **जाण** जानो।

प्र.-2380 आचार्यभक्ति के बिना मुनियों के आचरणों को व्यर्थ क्यों कहा?

उत्तर- समस्त परिग्रहों का त्यागी मुनि भी अपने शिक्षादीक्षा गुरु पर विश्वास नहीं करता है तो अविश्वास के कारण मिथ्यादृष्टि है। जैसे दूध के घड़े में जहर की कणिका डालने से सारा दूध जहरीला हो जाता है या थोड़ी सी खटाई सारे दूध को फाड़ देती है या छोटी सी अग्नि की कणिका सारे ईंधन को जला देती है ऐसे ही यह मुनिपद अनादिकालीन समस्तकर्मों को जलाने में समर्थ है पर दुर्भावना अभक्ति के कारण उच्च सफलता नहीं मिलती अतः गुरुभक्ति बिना मोक्षमार्ग हाथ में न आने से सारा आचरण व्यर्थ कहा है।

प्र.-2381 गुरुभक्ति के बिना मुनियों के आचरणों को ऊसर भूमि के समान क्यों कहा?

उत्तर- जैसे ऊसरभूमि में बोया गया सर्वांग सुंदर बीज फलहीन होता है ऐसे ही गुरुभक्ति के बिना शिष्यों, भक्तों के सभी उच्चाचरण भी ऊर्ध्वगति के फल को न देने से ऊसरभूमि के समान कहा है।

प्र.-2382 गुरुभक्ति के बिना मुनियों के सभी आचरण नामर्दों के समान क्यों हैं?

उत्तर- जैसे नामर्द सर्वांग सुंदर प्राणप्रिया को पाकर भी संतान को पैदा नहीं कर सकता ऐसे ही गुरु अभक्त शिष्यों के सभी सम्यगाचरण मोक्ष और मोक्षमार्ग को पैदा नहीं करा पाते हैं अतः नामर्द के समान हैं।

प्र.-2383 गुरु पद से किस किसको ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- मोक्षमार्ग में निर्ग्रंथ दिगंबर पदधारी आचार्य को, उपाध्याय परमेष्ठी को, आत्मसाधक निर्ग्रंथ साधुओं को, गृहस्थों की और लोकव्यवहार की अपेक्षा मातापिता को, अपने से बड़ों को, राजनेतागणों को, असंयमी देशसंयमी पंडितों को और लौकिक शिक्षा दीक्षा देने वाले को गुरुपद से ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2384 ऊसर भूमि किसे कहते हैं?

उत्तर- सोड़ा या नमक वाली भूमि को ऊसर भूमि कहते हैं। ऐसी भूमि में कितना ही उत्तम खादपानी

और बीज डालो फिर भी उसमें फलदान शक्ति न होने से व्यर्थ जाता है या सर्वांग सुंदर हृष्टपुष्ट बांझ के संतानोत्पत्ति की शक्ति न होने से जपतप मंत्रतंत्र व्यर्थ हो जाते हैं अतः इसे बांझवत् पतुभूमि भी कहते हैं।

प्र.-2385 ऊसर भूमि में मकान दुकान बना कर आजीविका तो चला सकते हैं?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही चला सकते हैं इसमें कोई दोष नहीं है किंतु ऊसर भूमि में मकानादि बनाने पर भी अधिक समय तक स्थिर नहीं रह पाते क्योंकि इसमें नमक सोड़ा आदि होने से दीवारें जल्दी गल जाती हैं जो देखा जा रहा है अतः आ. श्री ने ऊसरभूमि का उदाहरण दिया है अब कोई मूर्ख समझे या न समझे।

प्र.-2386 यदि ऊसर भूमि से आजीविका चला सकते हैं तो इसे व्यर्थ क्यों कहा?

उत्तर- भूमि से केवल आजीविका चलाना ही उद्देश्य नहीं होता है किंतु सभी प्रकार के लौकिक और लोकोत्तर कार्य कर आत्म साधना करना भी एक उद्देश्य है, आजीविका तो सभी पशुपक्षी भी चला लेते हैं अतः उत्कृष्ट फल की प्राप्ति के बिना ऊसरभूमि निरर्थक ही है, फल देने वाली उपजाऊ भूमि नहीं है।

प्र.-2387 उपजाऊ भूमि किसे कहते हैं?

उत्तर- पुत्रवती स्त्रीवत् पेड़पौधे सब्जीफल, धान्यादि पैदा करने वाली को उपजाऊ भूमि कहते हैं ऐसी भूमि आजीविका के साथ साथ ध्यानाध्ययन तपश्चरण और समाधि के लिए भी उत्तम मानी है।

प्र.-2388 अनुष्ठान से मतलब पूजापाठ से है या किसी और से?

उत्तर- यद्यपि अनुष्ठान का अर्थ पूजापाठ भी होता है फिर भी यहाँ यह अर्थ अभीष्ट नहीं है क्योंकि पूजा पाठ करना गृहस्थों का धर्म है। यहाँ अनुष्ठान से मतलब मुनियों के मूलगुण उत्तरगुणों से है। जैसे गृहस्थों का भावों के बिना पूजापाठ करना व्यर्थ है ऐसे ही मुनियों का आचरणधर्म भावों के बिना व्यर्थ है।

प्र.-2389 यहाँ भाव का अर्थ औपशमिक आदि किस भाव से है?

उत्तर- यहाँ औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भावों से मतलब है, शेष दो से नहीं क्योंकि मोक्षमार्ग तीन भावों से प्राप्त होता है, शेष दो औदयिक तथा पारिणामिक भाव से नहीं होता है।

प्र.-2390 गाथा में मुनि नाम नहीं लिया है फिर आपने मुनि अर्थ कहाँ से लिया?

उत्तर- यद्यपि गाथा में मुनि नाम नहीं लिया है तो भी ''**सव्व संग विरदाणं सिस्साणं**'' ऐसा कहा है। संपूर्ण अपरिग्रही दिगंबर जैनमुनि ही हो सकता है, दिगंबरेतर मतवाला नहीं। यदि अन्यमति साधु संपूर्ण परिग्रहत्यागी है तो वह आश्रम, खेतीवाड़ी वस्त्र, रुपयादि की योजना, अर्जन, संग्रह, संवर्धन, संरक्षण क्यों करता है और पूर्ण अपरिग्रही नियम से अहिंसादि 5 महाव्रतधारी मुनि ही होता है।

प्र.-2391 अन्यसंघी साधुओं की दिनचर्या कैसी भी हो इसमें हमें दुःखी क्यों होना?

उत्तर- नहीं, ऐसा नहीं है। दूसरे संघ का साधु हमारी भक्ति करे या न करे उस मुनि ने तो अपना ही भक्तिगुण नष्ट कर दिया पर ग्रंथकारजी ने ''सिस्साणं'' पद का प्रयोग किया है जिससे गुरु शिष्य का संबंध फलित होता है। कोई भी साधु या गृहस्थ अपने गुणों को नष्ट कर निज कर्तव्य का पालन नहीं करेगा तो उसकी दिनचर्या उच्च फल को, ऊर्ध्वगति को देने वाली न होने से व्यर्थ कहा है तब हमारा शिष्य हो या दूसरे का हो ऐसे विचारों से क्या मतलब? अर्थात् धर्मात्माओं को स्थितिकरण अंग का पालन करना चाहिए। यदि वह अपनी असाधुतापने का त्याग नहीं कर रहा है तो अपन अपनी साधुता का त्याग क्यों करें।

प्र.-2392 ऐसा ही हमारे लिए भी कोई सोच सकता है तब क्या होगा?

उत्तर- स्व, पर शिष्यों को जब अनेक बार संबोधन किया, प्रेम से समझाया, कदाचित् कुम्हार की

तरह बाहर से कुछ कटु शब्दों का भी प्रयोग किया फिर भी उस शिष्य ने अपनी कुचाल नहीं छोड़ी, आदत नहीं बदली तब ऐसा सोचना पड़ा अतः इसी प्रकार यदि कोई हमारे संबंध में सोचे तब दुःखी क्यों होना? कहा है **दूज का बदला तीज को या आज नहीं तो कल अथवा देर है अंधेर नहीं।** दूसरों के संबंध में जब हम दुर्भावना से, विषयवासना से ऐसा न सोचकर अपायविचय धर्मध्यान के द्वारा मलिनता को, अविवेकता को दूर करने, कराने का विचार करते हैं तब सातिशय पुण्य का आश्रवबंध होकर उदय में आने पर कोई उपसर्ग या परीषह अपना प्रभाव नहीं डाल पायेगा, न ध्यान से, लक्ष्य से विचलित कर पायेगा।

प्र.-2393 प्राणियों की कुछ क्रियायें सार्थक और कुछ निरर्थक भी होती है क्या?

उत्तर- **ऐसोत्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता।**
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो।। 24।। प्र. सा. अ. 2

संसार में प्राणियों की सभी क्रियायें फलवान् ही होतीं हैं, निष्फल नहीं। यदि निष्फल होने लगें तो संसारमार्ग और मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। अशुभ से पापकर्म की, शुभ से पुण्यकर्म की, शुद्ध से शुद्ध फल की, मोक्षफल की प्राप्ति होती है क्योंकि आश्रव और बंध में उभयतः अविनाभावी संबंध है। जैसे मथनी में दोनों रस्सियों का परस्पर में घनिष्ट संबंध है ऐसे ही क्रिया और क्रिया फल में घनिष्ट संबंध है। क्रिया नाम योग का है और जहाँ जिस समय जिस रूप में योग होता है वहाँ उसीसमय उसीरूप में ज्ञानावरणादि कर्मों का आश्रव बंध होता है। सकषाययोग की क्रिया से स्थितिबंध, अनुभागबंध तथा **समयट्ठिदिगोबंधो।**274 क.का. केवल योग से प्रकृति प्रदेश और एक समय की स्थितिवाला स्थितिबंध होता है।

प्र.-2394 कर्मोदय होने मात्र से आश्रवबंध हो सकता है क्या?

उत्तर- नहीं, यदि कर्मोदय होने मात्र से आश्रवबंध होने लगे तो जीव को कभी भी संसार से छुटकारा या मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जैसे 10वें गुणस्थान में सूक्ष्मलोभ का उदय और वेदन है पर मोहकर्म का आश्रवबंध नहीं होता है। "न जघन्य गुणानाम्।।" अ. 5 सू. 34 जघन्य गुणवालों का बंध नहीं होगा।

प्र.-2395 यह कैसे जाना कि 10वें और 14वें गुणस्थान में सूक्ष्म परिणाम है?

उत्तर- 9वें गुणस्थान में लोभ की बादरकृष्टि से सूक्ष्मकृष्टि होते ही 10वें गुणस्थान में प्रवेश होता है सो इसका नाम ही सूक्ष्मसांपराय है। ऐसे ही 14वें गुणस्थान में अघातियाकर्मों का उदय और औदयिक भाव होने पर भी आश्रवबंध नहीं होता है क्योंकि 13वें गुणस्थान के अंतिम अंतर्मुहूर्त में सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्लध्यान के द्वारा 13वें गुणस्थान को व्यतीत कर 14वें में प्रवेश करते हैं। यहाँ सूक्ष्म औदयिकभाव होने पर भी आश्रवबंध नहीं होता है। इससे जाना कि 10वें और 14वें गुणस्थान में सूक्ष्म परिणाम होते हैं।

प्र.-2396 यदि क्रिया फलवती ही होती है तो बंध का उदय होता है क्या?

उत्तर- जो कर्म बांधा गया है वह अवश्य ही उदय में आयेगा किंतु तद्रूप में फल देने के लिए अनुकूल द्रव्य क्षेत्र काल भाव होना चाहिये। यदि ये द्रव्यादि चारों अनुकूल नहीं हैं, प्रतिकूल है तो बदल कर निष्फल हो निकल जायेगा क्योंकि आबाधाकाल समाप्त होते ही कर्मों की निषेक रचना अवश्य होती है और वह निषेक रचना उदयावली में प्रवेश कर "**ततश्चनिर्जरा**" कर्म फल देकर या बिना फल दिये निकल जाते हैं अतः बांधा गया कर्म नियम से निर्जरा को प्राप्त होता है, स्थायी नहीं रहता है।

प्र.-2397 अपने ही शिष्य को संबोधन करना चाहिये दूसरे को नहीं ऐसा पक्ष क्यों?

उत्तर- नहीं, यह पक्षपात नहीं है किंतु व्यवहार व्यवस्था ही ऐसी है। जैसे जहाँ पर आग लगी है वहाँ

ही उसे बुझाने का प्रयास करें किंतु यदि एकसाथ अपने और पड़ोस के घर में आग लगे तो प्रथम अपने घर की आग बुझायेंगे बाद में दूसरों के घर की। ऐसे ही यदि अपना शिष्य बिगड़ा है तो उसे सर्व प्रथम संबोधन करेंगे, सुधारने की कोशिश करेंगे अनंतर दूसरों को संबोधन करेंगे। संबोधन करने के दो तरीके हैं। 1. मधुर शब्दों में संबोधन करना 2. कठोर शब्दों में या सकारात्मक और नकारात्मक। **सकारात्मक-** तुम ऐसा करो, आप ऐसा करें तो सब कुछ अच्छा होगा। **नकारात्मक-** ऐसा मत करो, इसका त्याग करो अन्यथा तुम्हारी निंदा बदनामी होगी आदि जैसे पथ्य के सेवन और अपथ्य के त्याग से निरोगता प्राप्त होती है ऐसे ही सकारात्मक और नकारात्मक संबोधन से शिष्य का जीवन सुरक्षित तथा श्रेष्ठ रहता है। इससे समाज और धर्म की प्रभावना भी अच्छी होती है।

प्र.-2398 संबोधन किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं, लक्षण क्या[2] हैं?

उत्तर- अपने पद के विरुद्ध घटनाओं से मन में घबराहट एवं स्वकर्तव्य से चलायमान हो रहा है तो उसे उसी पद में स्थिर, मजबूत रहने के लिए निर्दोष यथावसर 9 रसों के वर्णन से सतर्क, सचेत करने को संबोधन कहते हैं। दो भेद हैं। **शुभ संबोधनः-** मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में या सत्कर्तव्यों के पालन करने में सावधान करने को शुभ संबोधन **अशुभ संबोधनः-** पाप कार्यों में, सांसारिक कार्यों में स्थिर करने को, लगाने को अशुभ संबोधन। शुभ संबोधन ऊर्ध्वगति और अशुभ संबोधन अधोगति के लिए होता है।

प्र.-2399 अधोगति, तिर्यग्गति और ऊर्ध्वगति किसे कहते हैं?

उत्तर- अधोलोक को अधोगति, मध्यलोक को तिर्यग्गति और ऊर्ध्वलोक को ऊर्ध्वगति कहते हैं।

प्र.-2400 कौन किसमें निवास करते हुए क्या क्या फल भोगते हैं?

उत्तर- अधोलोक में नारकी, भवनवासी और व्यंतरदेव निवास करते हुए दुःख, इंद्रियजन्य सुख भोगते हैं। मध्यलोक में मनुष्य, तिर्यंच, कुछ व्यंतरदेव और ज्योतिषीदेव निवास करते हुए सुख दुःख भोगते हैं। सर्वज्ञ अनंतसुख भोगते हैं। ऊर्ध्वलोक में वैमानिकदेव इंद्रियसुख और सिद्ध भगवंत अनंतसुख भोगते हैं।

प्र.-2401 क्या पूर्ण मध्यलोक में मनुष्य और तिर्यंच निवास करते हैं?

उत्तर- नहीं, ढाईद्वीप में मनुष्य, ढाईद्वीप और दो समुद्रों में विकलत्रय तिर्यंच, सभी पंचेंद्रिय तिर्यंच तथा अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र में सभी पंचेंद्रिय तिर्यंच तथा मध्य के असंख्यात द्वीपों में नभचर और थलचर तिर्यंच निवास करते हैं। ढाईद्वीप और दो समुद्र तथा अंतिम द्वीप और समुद्र में कर्मभूमि है तथा शेष असंख्यात द्वीपों में जघन्य भोगभूमि है।

प्र.-2402 कहाँ किसके कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर- नारकियों में, देवों में, भोगभूमिज और कुभोगभूमिज मनुष्य तिर्यंचों के आदि के चार गुणस्थान होते हैं। कर्मभूमिज तिर्यंचों में आदि के पाँच गुणस्थान और मनुष्यों में चौदह गुणस्थान होते हैं।

नोटः- यहाँतक 2402 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 71वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 72वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

गुरुभक्ति बिना चर्या?

रज्जं पहाणहीणं पति हीणं देसगामरट्ठबलं।
गुरुभत्तिहीण सिस्साणुट्ठाणं णस्सदे सव्वं।।72।।

राज्यं प्रधानहीनं पतिहीनं देशग्रामराष्ट्रबलं।
गुरुभक्तिहीनशिष्यानुष्ठानं नश्यति सर्वम्।।

पहाणहीणं राजा के बिना **रज्जं** राज्य **पतिहीणं** सेनापति के बिना **देसगामरट्ठबलं** देश, ग्राम, राष्ट्र, सेना और **गुरुभत्ति** गुरुभक्ति के **हीण** बिना **सिस्साणुट्ठाणं** शिष्यों के अनुष्ठान **सव्वं** सभी **णस्सदे** नष्ट हो जाते हैं।

प्र.-2403 राजा के बिना राज्य कैसे नष्ट हो जाता है?

उत्तर- बाड़ के बिना खेती पशुपक्षियों एवं चोरों के द्वारा नष्ट हो जाती है ऐसे ही मत्स्य न्यायवत् राजा के बिना स्वच्छंद एवं उद्दंड व्यक्तियों के द्वारा कमजोर राज्य, प्रजा विनष्ट हो जाती है।

प्र.-2404 ग्राम किसे कहते हैं?

उत्तर- जो कंटीली बाड़ी से, झाड़ी से, कंटीले तार से वेष्टित होता है उसे ग्राम कहते हैं।

प्र.-2405 खेट किसे कहते हैं?

उत्तर- जो स्थान नदी पर्वतों से युक्त हो उसे खेट कहते हैं।

प्र.-2406 कर्वट किसे कहते हैं?

उत्तर- जो स्थान पर्वतों से वेष्टित हो उसे कर्वट कहते हैं।

प्र.-2407 घोष किसे कहते हैं?

उत्तर- अहीरों की, ग्वालों की बस्ती को घोष कहते है।

प्र.-2408 आकर किसे कहते हैं?

उत्तर- सोना, चांदी, रत्न आदि की खदानों से युक्त स्थान को आकर कहते हैं।

प्र.-2409 पुर किसे कहते हैं?

उत्तर- चार गोपुरों से शोभा को प्राप्त तथा कोट से वेष्टित हो उसे पुर कहते हैं।

प्र.-2410 द्रोण किसे कहते हैं?

उत्तर- दो पर्वतों के बीच बसे हुए नगर को द्रोण कहते हैं।

प्र.-2411 पत्तन किसे कहते हैं?

उत्तर- समुद्र के किनारे बसे हुए नगर को पत्तन कहते हैं।

प्र.-2412 संवाहन किसे कहते हैं?

उत्तर- पर्वत पर बसे हुए नगर को संवाहन कहते हैं।

प्र.-2413 मटंब किसे कहते हैं?

उत्तर- जो पांचसौ ग्रामों से संबद्ध हो उसे मटंब कहते हैं।

प्र.-2414 देश किसे कहते हैं?

उत्तर- पूरे राज्य को देश कहते हैं। जैसे भारत देश।

प्र.-2415 राष्ट्र किसे कहते हैं?

उत्तर- देश के अंदर अनेक भागों में विभक्त प्रांत को राष्ट्र कहते हैं। जैसे बिहार, राजस्थान राष्ट्र आदि।

प्र.-2416 यदि राज्य के अनेक राजा हो जायें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- राज्य के अनेक राजा होने से कौन प्रजा किस राजा की आज्ञा मानेगी और किसकी नहीं? जिसकी आज्ञा मानेगी उसकी मित्र और जिसकी नहीं मानेगी उसकी शत्रु हो जायेगी तथा उन अधिकारियों में भी परस्पर में विरोध पैदा हो जायेगा जिससे प्रजा भी विरोध के चक्कर में फंस

जायेगीं। इसी तरह घरों में और संघों में यदि अनेक स्वामी हो जायें तो वे घर और संघ भी नष्ट हो जाते हैं यही आपत्ति है।

प्र.-2417 सेनापति के बिना देश, ग्राम, राष्ट्र, सेना आदि कैसे नष्ट होते हैं?

उत्तर- जिस राज्य आदि में क्षेत्रपाल, द्वारपाल और अंगरक्षक नहीं है तो किसी अन्यायी अनाड़ी राजा के द्वारा आक्रमण किये जाने पर उस राज्य, देश, ग्राम, राष्ट्र, सेना की रक्षा न होकर शीघ्र ही नष्ट कर दी जायेगी क्योंकि शत्रु का प्रतिरोध करने वाला कोई नहीं है। बिना रोकटोक के मनमाना नष्ट कर चेतन अचेतन सामग्री को लूट कर ले जायेगा। यदि आदेश कर्ता रक्षक स्वामी मौजूद है तो आक्रमण कर्ता को थोड़ा सोचना पड़ेगा। जैसे मालिक के साथ में होने से कुत्ते को बल मिलता है और बिना मालिक के बलवान कुत्ता भी कमजोर हो जाता है ऐसे ही सेनापति के होने पर तथा सेनापति की आज्ञा मिलने पर सेना में आक्रमण करने की ताकत आ जाती है और सेनापति के बिना बलवान सेना भी कमजोर हो जाती है।

प्र.-2418 यहाँ आ. श्री ने शिष्यों को समझाने के लिए अनेक उदाहरण क्यों दिये?

उत्तर- मिट्टी का कोरा घड़ा पानी की दो चार बूंदों से गीला न होकर अनेकों बार पानी डालने से गीला हो जाता है ऐसे ही उद्दंड शिष्यों को नाना दृष्टांतों के द्वारा अनेक बार समझाने पर यदि शिष्यों का होनहार अच्छा है तो सुधर जायेंगे अन्यथा और भी अधिक बिगड़ जायेंगे फिर भी गुरु का संबोधन व्यर्थ नहीं जायेगा, इस भव में नहीं सुधरा तो अगले भव में उपदेश से या बिना उपदेश के पूर्व संस्कार वश भक्ति करने लग जायेगा श्रद्धान प्राप्त कर लेगा। जैसे नरकों में निसर्गज सम्यग्दर्शन होता है अतः अनेक दृष्टांत दिये।

प्र.-2419 नरकों में निसर्गज सम्यग्दर्शन कैसे होता है?

उत्तर- परोपदेश के बिना पूर्व संस्कार वश नारकियों को वेदनानुभव से निसर्गज सम्यग्दर्शन होता है।

प्र.-2420 तो क्या सभी वेदनायें सभी को सम्यग्दर्शन प्राप्त करा देतीं हैं?

उत्तर- नहीं, सभी वेदनायें सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं करातीं हैं किंतु जो नारकी वेदना के कारणों पर ध्यान देता है कि यह वेदना मेरे को अनाज्ञाकारीपने के कारण प्राप्त हो रही है, यदि मैं गुरुआज्ञा मान लेता तो यहाँ नरक में आकर कष्ट नहीं भोगना पड़ता यह महान गलती की है, भविष्य में ऐसी गलती नहीं करूँगा इस प्रकार दृढ संकल्प के कारण वह सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेता है अतः सभी वेदनायें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में कारण न होकर जो भूल को याद करा दें, छुड़ा दें वे ही वेदनायें श्रेयस्कर हैं, शेष नहीं।

प्र.-2421 यदि गुरुभक्ति का इतना महत्त्व है तो देवशास्त्रभक्ति का कितना होगा?

उत्तर- जब गुरुभक्ति के बिना सभी गुण नष्ट हो जाते हैं तो ऐसे ही जिनेंद्र और जिनवाणीभक्ति के बिना सबकुछ नष्ट हो जाता है और इनकी भक्ति से सबकुछ प्राप्त होता है अतः भक्ति अभक्ति का यही महत्त्व है।

प्र.-2422 सद्भक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- सद्गुणों में और सद्गुण वालों में परम प्रीति करने को, समर्पित होने को, इनके गुणों का समाज में और प्रजा में बखान करने को, कीर्तन करने को सद्भक्ति कहते हैं।

प्र.-2423 यह मिथ्यादृष्टि जीव गुरुभक्ति क्यों नहीं करता है?

उत्तर- जैसे जन्मांध व्यक्ति रूप को और उल्लू सूर्योदय होने पर भी सूर्य को, सूर्य के प्रकाश को देख नहीं पाता ऐसे ही तीव्र मिथ्यादृष्टि जीव, दूरानुदूर भव्य मिथ्यादृष्टि जीव या अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव गुरु के रूप को यथार्थ में जब नहीं देख पाते हैं तब गुरुभक्ति एवं तद्रूप में परिणमन कैसे

करेंगे? गुणगान कैसे करेंगे?

प्र.-2424 क्या मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थंकर प्रभु को साक्षात् देख सकता है?

उत्तर- भव्यकूट को देखकर भावमिथ्यादृष्टि जीव अंधे हो जाते हैं कारण बारह सभाओं में एकमात्र सम्यग्दृष्टि ही जाते हैं अतः द्रव्यभावमिथ्यादृष्टि जीव साक्षात् तीर्थंकर जिनेंद्र को नहीं देख सकता है।

प्र.-2425 रक्षक के बिना रक्ष्य की क्या अवस्था होती है?

उत्तर- रक्षक के बिना प्रायःकर रक्ष्य नष्ट हो जाता है। जैसे छतरी प्रयोग के बिना पथिक धूप, पानी, हवा आदि से सुरक्षित नहीं रहता और छतरी के उपयोग से सुरक्षित रहता है वैसे ही राजा और सेनापति के बिना प्रजा और सेना की रक्षा नहीं होती है किंतु आक्रमणकारियों के द्वारा आक्रमण होने पर धन, जन, परिवार, व्यापार आदि नष्ट हो जाते हैं और राजा तथा सेनापति के होने पर प्रजा तथा सेना की रक्षा हो जाती है, जीवन दिनचर्या आदि सुरक्षित रहती है अतः लौकिक और लोकोत्तर रक्षक होना आवश्यक है।

नोटः- यहाँतक 2425 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 72वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 73वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कैसी चर्या व्यर्थ है?

सम्मत्तविणा रुई भत्तिविणा दाणं दयाविणा धम्मो ।

गुरुभत्तिहीणतवगुणचारित्तं णिप्फलं जाण ।।73।।

सम्यक्त्वं विना रुचिं भक्तिं विना दानं दयां विना धर्मं।

गुरुभक्तिहीनतपगुणचारित्रं निष्फलं जानीहि।।

सम्मत्तविणा सम्यक्त्व बिना **रुई** रुचि **भत्तिविणा** भक्ति बिना **दाणं** दान **दयाविणा** दया बिना **धम्मो** धर्म और **गुरुभत्ति** गुरुभक्ति से **हीण** हीन शिष्यों के **तवगुणचारित्तं** तपगुणचारित्र **णिप्फलं** निष्फल **जाण** जानो।

प्र.-2426 सम्यग्दर्शन के बिना रुचि को निष्फल क्यों कहा?

उत्तर- सर्वघाति दर्शनमोह के उदय रूप सद्भाव में या सम्यग्दर्शन के बिना रुचि, प्रीति, विश्वास मिथ्या होने से आत्मसाधना व्यर्थ है अतः जपतप, अणुव्रत, महाव्रतों का पालन करना व्यर्थ कहा है।

प्र.-2427 सम्यग्दर्शन के बिना जपतप आदि को व्यर्थ क्यों कहा, क्या सर्वथा व्यर्थ हैं?

उत्तर- ये जप तपादि उत्तममोक्ष फल को देने वाले हैं किंतु मिथ्यात्वोदय के कारण संसार फल को देते हैं इसलिए मोक्ष फल की प्राप्ति के बिना इन्हें व्यर्थ कहा है किंतु निदानपूर्वक अवस्थानुसार संसार में इंद्रियसुख प्राप्त कराने वाले होने से सार्थक हैं, व्यर्थ नहीं हैं।

प्र.-2428 सम्यग्दर्शन के बिना रुचि को मिथ्या क्यों कहा?

उत्तर- जैसे पित्तज्वर वाले का मुंह कड़वा होने से मधुर रस भी कड़वा लगता है वैसे ही सर्वघाति मिथ्यात्वकर्म और अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ से मिली हुई रुचि को मिथ्या कहा है।

प्र.-2429 मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में रुचि कैसी होती है?

उत्तर- मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषायाभाव में रुचि, प्रीति समीचीन कहलाती है।

प्र.-2430 भक्ति के बिना दान को व्यर्थ निष्फल क्यों कहा?

उत्तर- मोक्षमार्गस्थ उत्तम मध्यम जघन्य पात्रों को नवधाभक्ति पूर्वक परम प्रीति से जो ध्यान साधना के योग्य तथा प्रतिज्ञा पालन में सहायक सामग्री प्रदान करने को दान कहते हैं किंतु भक्ति और

परम प्रीति के बिना भिखारियों की तरह सामग्री प्रदान करने को व्यर्थ कहा है क्योंकि ऐसी दुर्भावना से दाता और पात्र में पवित्रता नहीं आती है, न पापकर्मों का संवर और निर्जरा होती है फिर भी लौकिक दृष्टि में यह दान लौकिक फल, आदर सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त कराने वाला होने से सार्थक है, निष्फल नहीं है।

प्र.-2431 उत्तम मध्यम जघन्य पात्रों की नवधाभक्ति करने को कहाँ कहा है?

उत्तर- **तिविहे पत्तम्हि सया सद्धाइ गुणेहि संजुदो णाणी।**

दाणं जो देदि सयं णव दाण विहीहि संजुत्तो।।360।। का.प्रे. में धर्मानुप्रेक्षा?

अर्थः- श्रद्धा आदि गुणों से युक्त जो ज्ञानी श्रावक सदा तीन प्रकार के पात्रों को नवधा भक्ति के साथ स्वयं दान देता है उसके तीसरा शिक्षाव्रत होता है। हिंदी अनुवादक पं. कैलाशचंद्र शास्त्री

प्र.-2432 यहाँ पात्र किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय से युक्त मोक्षमार्ग के उत्तम मध्यम जघन्य साधकों को समीचीन पात्र कहते हैं।

प्र.-2433 दया किसे कहते हैं, यह कौनसा भाव है?

उत्तर- असमर्थ भयभीत कमजोर जीवों की रक्षा करने को, अभयदान देने को दया कहते हैं। यह भाव छद्मस्थों के क्षायोपशमिकभाव, औपशमिकभाव और केवलियों के तथा सिद्धों के क्षायिकभाव है।

प्र.-2434 दयाभाव को क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिकभाव क्यों कहा?

उत्तर- दयाभाव क्षमाधर्म का पर्यायवाची नाम है और क्रोध के अभाव होने पर यह धर्म उत्पन्न होता है अतः दयाधर्म को क्षायोपशमिक औपशमिक और क्षायिकभाव कहा है।

प्र.-2435 दयाभाव को औदयिकभाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- दयाभाव क्षमाभाव किसी भी घाति अघाति कर्मोदय से नहीं होता है इसलिए औदयिक नहीं कहा। यदि आप दयाभाव को औदयिक भाव मानते हैं तो बताओ किस कर्म के उदय से होता है?

प्र.-2436 अभयदान आदि सभी दान कौन से भाव हैं?

उत्तर- सभी दान दानांतरायकर्म के क्षयोपशम से क्षायोपशमिकभाव तथा क्षय से क्षायिकभाव है।

प्र.-2437 दान को औदयिक, औपशमिक और पारिणामिकभाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- दान की भावना, दानकर्तव्य किसी भी कर्म के उदय से न होने के कारण औदयिक भाव नहीं कहा तथा अंतराय कर्म में उपशम करण न होने से दान को औपशमिक भाव नहीं कहा है एवं सूत्रकार ने क्षायिक तथा क्षायोपशमिकभाव में दान को गिनाया है नैमित्तिक है इसलिए पारिणामिक भाव नहीं कहा।

प्र.-2438 किस प्रकार का दान देना चाहिये और किसको देना चाहिये?

उत्तर- जिस वस्तु के दान से मोक्षमार्गियों में संयमसाधना, आत्माराधना की उत्पत्ति, वृद्धि और फल की प्राप्ति हो या जो जैसी सामग्री अपने को चाहिये वह दान देना चाहिये। जैसे किसान खेत में जैसा बीज बोता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। मोक्षमार्गस्थ सभी पात्रों को यथायोग्य सामग्री भक्ति पूर्वक देना चाहिए।

प्र.-2439 इंद्रियसुख और भोगोपभोगसामग्री किस कर्म के उदय से प्राप्त होती हैं?

उत्तर- इंद्रियसुख और इंद्रिय भोगोपभोगसामग्री की प्राप्ति, स्वीकृति पुण्योदय व लोभोदय से होती है किंतु अनुभव साताकर्मोदय से। आ. श्री वीरसेनस्वामी ने वेदनीय को उभयविपाकी भी कहा है।

प्र.-2440 जीवविपाकी प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन कर्मप्रकृतियों का फल एकमात्र जीव में ही हो उसे जीवविपाकीकर्म प्रकृति कहते हैं।

प्र.-2441 पुद्गलविपाकी प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन कर्मप्रकृतियों का फल एकमात्र शरीर में ही हो उसे पुद्गलविपाकीकर्म प्रकृति कहते हैं।

प्र.-2442 क्षेत्रविपाकी प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन कर्मप्रकृतियों का फल एकमात्र विग्रहगति में प्राप्त हो उसे क्षेत्रविपाकी प्रकृति कहते हैं।

प्र.-2443 भवविपाकी प्रकृति किसे कहते हैं?

उत्तर- जो कर्मप्रकृति जीव को किसी एक पर्याय में रोककर रखे उसे भवविपाकी प्रकृति कहते हैं।

प्र.-2444 जीवविपाकी कितनी प्रकृतियां हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जीव विपाकी 78 प्रकृतियां हैं। वेदनीय कर्म की 2, गोत्र की 2, घातियाकर्मों की 47, नामकर्म की 27:- तीर्थंकर प्रकृति, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, त्रस, स्थावर, प्रशस्त, अप्रशस्त विहायोगति, सुभग, दुर्भग, 4 गति, एकेंद्रिय आदि 5 जातियां।

प्र.-2445 पुद्गलविपाकी कितनी प्रकृतियां हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- पुद्गलविपाकी 62 प्रकृतियां हैं। नामः- 5 शरीर, 5 बंधन, 5 संघात, 6 संस्थान, 3 अंगोपांग, 6 संहनन, 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श, निर्माण, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण शरीर, अगुरुलघु, उपघात, परघात।

प्र.-2446 क्षेत्रविपाकी कितनी प्रकृतियां हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- क्षेत्रविपाकी 4 प्रकृतियां हैं। नामः- नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी।

प्र.-2447 भवविपाकी कितनी प्रकृतियां हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- भवविपाकी 4 प्रकृतियां हैं। नामः- नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, मनुष्यायु।

प्र.-2448 जब तीर्थंकर केवली के पास में कुछ भी नहीं है तो ये क्या दान देते हैं?

उत्तर- सयोगकेवली दिव्यध्वनि के द्वारा, अयोगकेवली मौन से और सिद्ध धर्म आदि चार द्रव्यों के समान मोक्ष और मोक्षमार्ग का उपदेश देकर, ज्ञानदान देकर भव्यजीवों का परम उपकार करते हैं।

प्र.-2449 यदि ऐसा है तो सिद्धों का उपकार दिखाई क्यों नहीं देता है?

उत्तर- जैसे अरूपी, अमूर्तिक धर्मादि चार द्रव्यों का उपकार इंद्रियगम्य न होकर आगम और अनुमानगम्य है ऐसे ही सिद्ध और इनके उपकार इंद्रियगम्य नहीं हैं किंतु आगम और अनुमानगम्य है।

प्र.-2450 दया के बिना धर्म हो सकता है क्या?

उत्तर- नहीं, जीवदया और जीवरक्षा के बिना अहिंसाधर्म नहीं हो सकता है किंतु हिंसा पाप ही होता है। जीवों की बलि चढ़ाना यदि धर्म हो जाये तो जीव रक्षा को पाप कहना होगा अतः दया के बिना धर्म नहीं होता। जो दया के बिना धर्म मानते हैं, कहते हैं वे हिंसापाप को ही धर्म कहते हैं।

प्र.-2451 गुरुभक्ति के बिना क्या क्या व्यर्थ है?

उत्तर- गुरुभक्ति के बिना अंतरंग बहिरंग तप, मूलगुण उत्तरगुण, देशचारित्र सकलचारित्र आदि सब व्यर्थ हैं।

प्र.-2452 क्या गुरु भक्ति के बिना तप गुण और चारित्र होते हैं?

उत्तर- जैसे चालाक ग्राहक व्यापारी से बनावटी प्यार ईमानदारी बतलाकर कुछ समय तक पूरा का पूरा चुकारा करता रहा, विश्वासपात्र बन जाने के बाद अधिकमात्रा में कर्ज हो जाने से व्यापारी के द्वारा तकादा करने पर ग्राहक चुकारा न देकर व्यापारी को ही उल्टा बदनाम कर देता है, फंसा देता है ऐसे ही दीक्षार्थी ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी बहनें गुरु के अनुकूल आज्ञाकारी बनकर दीक्षा लेने के बाद अनाज्ञाकारी होकर गुरुओं को ही बदनाम कर डालते हैं, भक्ति को छोड़कर अभक्ति करने लग जाते हैं। गुरुओं के द्वारा तप, गुण और चारित्र प्राप्त करने के बाद में विषयकषायों में फंस जाते हैं तब व्यर्थ कहा है। यदि दीक्षा के पहले ही अभक्ति, अभक्तपना हो तो गुरु के पास न जाने से तप, गुण, चारित्र कैसे प्राप्त हो सकते हैं?

प्र.-2453 अभक्त को और धर्म निंदक को क्या धर्मदीक्षा दी जा सकती है?

उत्तर- नहीं, लौकिक और लोकोत्तर धर्मों में अभक्तों को, धर्म निंदकों को दीक्षा नहीं दी जाती, ना ही शिष्यत्व प्राप्त कराया जाता है क्योंकि कृतघ्नी को, अपात्र को वस्तु देना, दीक्षा, तप, गुण, चारित्रादि देना कीचड़ में दूध डालने के बराबर है। जैसे हमारे देश की, देश के नीति नियमों की निंदा करने वाले परदेशी निंदक को नागरिकता नहीं दी जाती है वैसे ही यदि कोई गृहस्थ या गृहत्यागी गुरु के निकट रहकर गुरु की ही निंदा करे तो गुरु उसे कैसे दीक्षा देंगे? अतः अभक्त और निंदक को दीक्षा नहीं दी जाती यही न्याय है।

प्र.-2454 प्रसंशक अच्छा होता है या निंदक?

उत्तर- लोकदृष्टि में अनुकूल होने से प्रशंसक अच्छा और प्रतिकूल होने से निंदक बुरा कहा जाता है पर धर्मदृष्टि से प्रसंशक बुरा और निंदक अच्छा माना गया है क्योंकि धर्मदृष्टि में अपनी प्रसंशा अपना गुणकीर्तन सुनकर प्रसन्न होना रौद्रध्यान है जो नीचगोत्र और नरकायु का आश्रवबंध कराने वाला है उसे अच्छा कैसे कहा जाये? अतः धर्मदृष्टि से प्रसंशक अनुकूल होने के कारण बुरे कार्यों में, अधोगति प्राप्त कराने में सहायक होने से बुरा ही है, पापानुमोदक ही है और निंदक सामने होने पर बाहर बोल देगा ऐसे निंदक के भय से गलत काम कोई नहीं करता अतः गलत कार्य को करने से रोकने वाला, सावधान करने वाला धर्मध्यान में लगाता है, कर्तव्यों का पालन कराने वाला होने से निंदक अच्छा है।

प्र.-2455 गुरु भक्ति के बिना तप मूलोत्तरगुण और चारित्र को निष्फल क्यों कहा?

उत्तर- कोई मुनि कदाचित् गुरुभक्ति नहीं करे तो कोई आपत्ति नहीं है किंतु बाहर निंदा नहीं करे, बदनामी नहीं करे, दोष नहीं दिखाये तो भी मोक्षमार्गी नहीं है। यदि बाहर में निंदा, बदनामी करें तो नियम से रत्नत्रय से भ्रष्ट हो, नीचगोत्र का आश्रवबंध कर, अपने सद्‌गुणों को नष्ट कर अधोगति में जाकर सागरों पर्यंत अनेक कष्टों को भोगता है अतः अभक्त के ये सद्‌गुण व्यर्थ हैं।

प्र.-2456 मुनि कदाचित् गुरु भक्ति नहीं करे तो कोई आपत्ति नहीं है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि दीक्षाशिक्षादायक गुरु पूर्व कर्मोदयवशात् या कुसंगति के कारण आ. माघनंदी की तरह चारित्र हीनता या भ्रष्टता को प्राप्त हुआ हो तो भी मुनि स्थितिकरण, उपगूहन अंग का पालन करता हुआ बाहर में दोषवादन नहीं करें सो कर्तव्य परायण होने से कोई आपत्ति नहीं है किंतु गुण ही है।

नोटः- यहाँतक 2456 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 73वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 74वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मूर्ख चर्या

हीणादाण वियार विहीणादो बाहिरक्खसोक्खं हि।

किं तजियं किं भजियं किं मोक्खं दिट्ठं जिणुद्दिट्ठं।।74।।

हीनादानविचारविहीनात् बाह्याक्षसुखं हि।

किं त्यक्तं किं भक्तं किं मोक्षो दृष्टो जिनोद्दिष्टः।

हीणादाण वियार हेयोपादेय विचार से **विहीणादो** शून्य **बाहिरक्खसोक्खं** बाह्येंद्रिय सुखभोगी **हि** निश्चय से **किं तजियं** क्या त्याज्य है **किं भजियं** क्या ग्राह्य है **किं मोक्खं** क्या मोक्ष है **दिट्ठं** ऐसा किसने देखा है इस प्रकार संदेह युक्त मूर्खजीव विचार करता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्र देव ने कहा है।

प्र.-2457 भेदविज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- सभी द्रव्य गुण पर्यायों को स्व स्व लक्षणों के द्वारा अलग[2] यथावत् जानने को भेदविज्ञान कहते हैं।

प्र.-2458 भेदविज्ञान क्यों करना चाहिये?

उत्तर- अनादि सादि राग द्वेष मोह आदि विकारों को क्षय कर निजात्मा को शुद्ध बनाने के लिए भेदविज्ञान करना चाहिये क्योंकि भेदविज्ञान के बिना निजात्मा का यथावत् अनुभव नहीं होता है।

प्र.-2459 भेदविज्ञान समीचीन व असमीचीन कब होता है?

उत्तर- मोही मिथ्यादृष्टि आत्मा अनेक भवों के विकार पूर्वक भोगोपभोग चेतनाचेतन सामग्री को आत्म स्वरूप ही मानता हुआ चला आ रहा है इस अभेदज्ञान को छुड़ाकर भेदविज्ञानी बनने के लिए भेदविज्ञान करने को कहा है क्योंकि संसार में सर्वथा नियम मानने वाले कोई भेदविज्ञानी हैं तो कोई अभेदविज्ञानी हैं। अतः आचार्यों ने प्रतिपक्षी धर्म में विश्वास कराने के लिए उपदेश दिया है। सम्यग्दर्शन सहित भेदविज्ञान और अभेदविज्ञान समीचीन हैं तथा मिथ्यादर्शन सहित भेदविज्ञान और अभेदविज्ञान असमीचीन हैं।

प्र.-2460 समस्त ज्ञेय पदार्थों में त्याग और ग्रहण का विचार करना चाहिये क्या?

उत्तर- नहीं, समस्त ज्ञेय पदार्थों में त्याग और ग्रहण का विचार नहीं करना चाहिये किंतु जो पदार्थ अपने हित में साधक या बाधक हैं, सहायक हैं। उनका हित में उपादेय और अहित में हेय का विचार करना चाहिये अथवा आश्रव बंध के परिणामों और कार्यों में हेयपने का/त्यागने का तथा संवर निर्जरा और मोक्ष के हेतुभूत परिणामों में, कार्यों में उपादेय का/ग्रहण करने का विचार कर परिणमन करना चाहिये।

प्र.-2461 किन पदार्थों का त्याग करना चाहिये?

उत्तर- जिन पदार्थों के माध्यम से विषयकषायों की, विकारों की, आश्रवबंध की उत्पत्ति होती हो, संसार में भ्रमण हो, नाना प्रकार के कष्टों की प्राप्ति हो सो उन विचारों का/पदार्थों का त्याग करना चाहिये।

प्र.-2462 किन पदार्थों को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- जिन पदार्थों के माध्यम से आत्मोत्थान हो, निर्विकारता में सहायक विचारों को, सामग्री को, सद्गुणों की, आत्मसुख की, संवर निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति हो उसे ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2463 हेयोपादेय का विचार क्यों करना चाहिये?

उत्तर- **पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्ख परिमोक्खं।1।** प्र. सा. चा.चू.। यदि दुःख से, संसारबंधन से छूटने की इच्छा है एवं शाश्वत सुख चाहते हो तो हेयोपादेय का विचार कर श्रमणपद अंगीकार करो।

प्र.-2464 हेयोपादेय का विचार नहीं किया जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- हेयोपादेय का विचार नहीं किया तो संसार भ्रमण से छुटकारा या शाश्वत सुख की प्राप्ति

कैसे होगी? यानि कभी भी प्राप्ति नहीं हो सकती है। कोल्हू के बैल की तरह संसार में भ्रमण करते रहो यही आपत्ति है।

प्र.-2465 क्या त्याग और ग्रहण के विचार से शाश्वतसुख की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर- नहीं, केवल विचार मात्र से शाश्वत सुख की प्राप्ति या दुःख से छुटकारा नहीं मिलता है किंतु तद्रूप में परिणमन करने से प्राप्त होगा। जैसे रणक्षेत्र में केवल सैनिकों को यथावत् तैनात करने से विजयश्री नहीं होती किंतु शत्रुओं को रणक्षेत्र से भगा देने से, परास्त कर देने से विजय श्री प्राप्त होती है अन्यथा नहीं।

प्र.-2466 इंद्रियसुख में कौन सा जीव आसक्त होता है और कौन सा नहीं?

उत्तर- इंद्रियसुख में मोही प्रमादी विषयकषायी पापी सरागी जीव आसक्त होता है, वीतरागी नहीं।

प्र.-2467 प्रमादी जीव इंद्रिय सुख में क्यों आसक्त होता है?

उत्तर- आदि की 12 कषायोदयानुसार परिणति से प्रमादियों की विषयों में प्रवृत्ति व आसक्ति होती है।

प्र.-2468 अप्रमत्त वीतरागीजीव इंद्रियसुख में क्यों आसक्त नहीं होता है?

उत्तर- संयमघाति कर्मोदय का अभाव होने से तथा आत्मध्यान में स्थिरता होने से इंद्रिय विषयसुख में न रमण करता है, न आकांक्षा होती है, न प्रवृत्ति होती है क्योंकि उपयोग की या चारित्र की धारा एक ही तरफ होती है। जैसे पथिक एक समय में एक ही दिशा में गमन कर सकता है, दोनों तरफ नहीं यह शाश्वत नियम है। अप्रमादी वीतरागी आत्मसुख में, आत्मध्यान में स्थिर होता है, बाह्य विषयों में, इंद्रियसुख में नहीं।

प्र.-2469 प्रमादी सरागी जीव विषयसुख में क्यों रमण करता है?

उत्तर- प्रमादी सरागी जीवों में विषयसुख सेवन का अनादिकाल या भवभवांतरों का संस्कार पड़ा हुआ है सो उस संस्कार की धारा समाप्त न होने से सामग्री के संन्निधान होने पर विषयसेवन का संस्कार जागृत हो जाता है जिससे पुनः इंद्रियविषय सेवन में कबूतरों की तरह आसक्त हो जाता है इसमें संदेह नहीं है।

प्र.-2470 कौन सा प्रमादी जीव इंद्रिय विषयसुख में आसक्त होता है?

उत्तर- सभी प्रमादी जीव अपने[2] गुणस्थानानुसार इंद्रियसुख में आसक्त होते हैं। इन जीवों के सामान्यतः इंद्रिय विषय सेवन में अंतर नहीं है किंतु विशेषतया काल और भाव की मात्रा में अंतर है, आगे आगे के गुणस्थानों में कषायों की मात्रा कम[2] होने से विषयसेवन में प्रेम और गृद्धता में चूहा और बिल्ली के समान कमी होती जाती है। जैसे जिसमें जितनी तीव्रता हो उतने अंशों में वह मिथ्यादृष्टि जीव रमण करता है इससे अनंतगुणी हीन मात्रा में अव्रती सम्यग्दृष्टि जीव रमण करता है। इसकी अपेक्षा अणुव्रती और अणुव्रती की अपेक्षा महाव्रती मुनिजन रमण करते हैं तभी तो छठवें गुणस्थान तक चारों संज्ञायें कार्य रूप में बतलाई हैं।

प्र.-2471 गृहस्थों के समान मुनियों में क्या चारों संज्ञायें कार्य रूप में होती हैं?

उत्तर- मुनियों में आहार आदि चारों संज्ञायें कार्य रूप में अवश्य होती है किंतु मुनियों के संयमघाती कषायों का अभाव होने से गृहस्थों जैसी प्रवृत्ति नहीं होती है।।139।। जी.कां. संज्ञा अधि.

प्र.-2472 इस गाथा में किस जीव को ग्रहण किया है?

उत्तर- **जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।**
पूर्वविभ्रम संस्कारात् भ्रांति भूयोऽपि गच्छति।।45।। स.तं.

अर्थः- इस गाथा में मिथ्यादृष्टियों को तथा कदाचित् रामचंद्र आदि महापुरुषों को ग्रहण किया है

क्योंकि ये शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व को जानते हुए, भावना करते हुए, ध्यान करते हुए भी पूर्वभव की भ्रांतिवश संस्कार के कारण भ्रांति को प्राप्त हुए भ्रमण करते हैं।

प्र.-2473 प्रमादीमुनि इंद्रियविषयों में क्यों रमण करता है?

उत्तर- प्रमादी मुनि संज्वलनकषाय के तीव्रोदय से इंद्रियविषयों में रमण करता हुआ भी पूर्व की कषायों को प्राप्त नहीं होता है। आदि की 12 कषायों के जीतने से तत्संबंधी विषयवासनाओं की उत्पत्ति ही नहीं होती है किंतु संज्वलनकषायाधीन होने के कारण छठवें गुणस्थान को प्रमत्तसंयत कहा है। यदि प्रमत्तमुनि के विषयकषायें सर्वथा नहीं होती हैं तो 6वाँ गुणस्थान न होने से 7वाँ गुणस्थान भी नहीं हो सकता है।

प्र.-2474 मुनि इंद्रियविषयों में काय, वचन से रमण करता है या मन से?

उत्तर- **युञ्जीतमनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।**

मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम्।।48।। स.तं. आ. पूज्यपाद

मन के साथ अपनी आत्मा को जोड़ देवे और वचन काय से आत्मा को अलग कर दें तथा वचन काय के द्वारा किये गये व्यवहार को मन से त्याग कर दे। क्वचित् कदाचित् मुनि वचन काय से विषयों में रमण करता है किंतु प्रमाद का तीव्रोदय होने से मन से ज्यादा रमण करता है क्योंकि प्रमाद भावात्मक है, कारण जितना काल 7वें गुणस्थान का है उससे दुगना काल 6वें गुणस्थान का है सो इसका यही कारण है कि जो महामुनि चरमशरीरी या अचरमशरीरी आहार विहार निहार का त्यागकर मौन व्रत धारणकर एक आसन से ध्यान मुद्रा में स्थिर होकर केवल मन पूर्वक ही मुनियों की कभी[2] विषयकषायों में प्रवृत्ति हो जाती है।

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।

कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः।।50।। स.तं. आ. पूज्यपाद

अर्थः- आत्मज्ञान से भिन्न कार्यों को अपने मन में बहुत समय तक धारण नहीं करे। कदाचित् किसी कार्यवशात् कुछ बाह्य काम करना भी पड़े तो उसे मन से न कर वचन काय से करे।

प्र.-2475 ''किं तजियं, किं भजियं, किं मोक्खं'' ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे अत्यंत मंद बुद्धिवाला व्यक्ति लोकदृष्टि में स्वेच्छा से कुछ भी अपना कार्य नहीं कर पाता, कोई दूसरा कराये तो कर लेता है ऐसे ही तीव्र मिथ्यादृष्टि जीव तीव्र मिथ्यात्व के कारण अत्यंत विश्वास और विवेकहीन होकर क्या करना, क्या नहीं करना आदि सोच ही नहीं पाता सो आ. श्री ने ऐसा कहा है।

प्र.-2476 अभी अनेक जैनों को ऐसा मालुम नहीं है तो उन्हें क्या कहना चाहिये?

उत्तर- जैन कुल में पैदा होकर भी यदि ये मुख्य बातें नीतिनियम मालुम नहीं है तो वह कैसा जैन? वह तो केवल नाम मात्र का जैन है, जैनधर्म संबंधी उसकी न कोई दिनचर्या है, न कोई लक्षण है वह तो जिनधर्म को, जाति कुल की परंपरा को कलंकित करने वाला है। जैसे व्यापारी को अपने सामान संबंधी क्रयविक्रय का मूल्य मालुम नहीं है तो व्यापार में सफलता नहीं मिलती ऐसे ही इन जैनों को अपनी दिनचर्या संबंधी हेयोपादेय का भेद मालुम न होने से उत्थान के बदले पतन ही कर लेगा जो देखा जा रहा है।

नोटः- यहाँतक 2476 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 74वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 75वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कर्मक्षय का कारण

कायकिलेसुववासं दुद्धरतवयरण कारणं जाण।

तं णियसुद्ध सरूवं परिपुण्णं चेदि कम्मणिम्मूलं।।75।।

कायक्लेशोपवासं दुर्धरतपश्चरणकारणं जानीहि।

तन्निजशुद्धस्वरूपं परिपूर्णं चेति कर्मनिर्मूलम्।।

कायकिलेसुववासं कायक्लेश और उपवास **दुद्धर** कठोर **च** और **परिपुण्णं** परिपूर्ण **तवयरण** तपश्चरण का **तं णिय** निज **सुद्धसरूवं** शुद्ध स्वरूप **चेदि** ऐसा **कम्मणिम्मूलं** कर्म क्षय का **कारणं** कारण **जाण** जानो।

प्र.-2477 यहाँ र.सा. में पहले कायक्लेश फिर उपवास को तथा त.सू. में पहले उपवास फिर कायक्लेश को कहा है सो इनमें विरोध क्यों?

उत्तर- कोई विरोध नहीं है, केवल कथन पद्धति में अंतर है। त.सू. में पूर्वानुपूर्वी क्रम से या उत्कृष्ट से जघन्य की ओर कथन किया है किंतु र.सा. में पश्चादानुपूर्वी क्रम से या तप की सामर्थ्य बढ़ाने के लिए जघन्य से उत्कृष्ट की ओर कथन किया है अतः अपेक्षा अलग अलग होने से विरोध कैसा?

प्र.-2478 कायक्लेश तप किसे कहते हैं?

उत्तर- शरीर के माध्यम से उपसर्ग परीषहों को जीतने की सामर्थ्य बढ़ाने को कायक्लेशतप कहते हैं।

प्र.-2479 विविक्तशैय्यासन तप किसे कहते हैं?

उत्तर- सुखिया स्वभाव में सहायक ऐसे शैय्या आसनों को छोड़कर एक करवट से, धनुषाकार, मुर्दा के समान निश्चल सोने, पद्मासन, खड़गासन, सुखासन आदि से ध्यान करने को विविक्तशैय्यासन तप कहते हैं।

प्र.-2480 इस प्रकार शैय्या आसन लगाने को क्यों कहा?

उत्तर- उपसर्ग परीषहों के जीतने को, शरीर से निर्ममत्वपने को तथा ध्यानाध्ययन की सामर्थ्य बढ़ाने के लिए इन शैय्या और आसनों को लगाने के लिए कहा है क्योंकि ये आसनें निरोगता के साथ साथ आत्मसाधना में सहायक हैं अन्यथा सुखिया स्वभाव होने से आत्मसाधना हो नहीं सकती।

प्र.-2481 रसपरित्याग तप किसे कहते हैं?

उत्तर- अनेक स्वादिष्ट पौष्टिक ऐसे धान्यरस, फलरस, गोरसादि के त्याग को रसपरित्यागतप कहते हैं।

प्र.-2482 यह तप करने को क्यों कहा?

उत्तर- रसनेंद्रिय को तथा शेष इंद्रियों को वश में करने के लिए रसपरित्याग तप करने को कहा है।

प्र.-2483 वृत्तिपरिसंख्यानतप किसे कहते हैं?

उत्तर- भोजन संबंधी मनोवृत्तिओं पर संकल्प पूर्वक अंकुश लगाने को वृत्तिपरिसंख्यानतप कहते हैं।

प्र.-2484 वृत्तिपरिसंख्यानतप करने को क्यों कहा?

उत्तर- नाना प्रकार के स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन में रसनेंद्रिय और मन लालायित हो रहा है तो उन पर विजय पाने के लिए यह तप कहा है। जैसे अग्नि को बुझाने के लिए ईंधन नहीं डाला जाये तो बिना परिश्रम के अग्नि बुझ जाती है ऐसे ही विषयों का त्याग करने से इंद्रियां और मन बिना परिश्रम के वश में हो जाते हैं।

प्र.-2485 वृत्तिपरिसंख्यान तप के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- दो भेद हैं। **नामः-** अभ्यंतरवृत्ति परिसंख्यानतप, बाह्यवृत्तिपरिसंख्यानतप।

प्र.-2486 अभ्यंतर वृत्तिपरिसंख्यान तप किसे कहते हैं?

उत्तर- मन की वृत्ति को, आकांक्षा के रोकने को अथवा चौके के अंदर भोजनसामग्री का, दाताओं का, बर्तनों का मन में प्रमाण करने का कि मैं इतनों से या इतना लूंगा या यही लूंगा या यहीं लूंगा इसके अलावा शेष का त्याग करने को अभ्यंतरवृत्ति परिसंख्यान तप कहते हैं।

प्र.-2487 बाह्य वृत्तिपरिसंख्यान तप के भेद एवं नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- बाहर में पड़गाहन के समय देखने सुनने का नियम, पड़गाहने वालों की संख्या का नियम, किसी वस्तु, धान्य, फल, दूधादि रस का नियम लेकर निकलने को बाह्य वृत्तिपरिसंख्यानतप कहते हैं।

प्र.-2488 यह तो इंद्रिय और मन के साथ बलात्कार क्यों न कहा जाये?

उत्तर- पुनः विषयकषायों की वृद्धि के लिए ऐसा किया है तो अवश्य ही पापवर्धक बलात्कार है किंतु आत्मसाधना के लिए, आत्मा को पवित्र बनाने के लिए यह बलात्कार पापवर्धक, संसारवर्धक न होकर आत्मसाधक है। जैसे हाथी को वश में करने के लिए गड्ढे में डालकर भोजनपान न देने से वश में हो जाता है ऐसे ही इंद्रिय और मन को वश में किया जाता है अतः यह बलात्कार दोषदायक नहीं है।

प्र.-2489 बलात्कार किसे कहते हैं और यह अपराध है या निरपराध?

उत्तर- अच्छे और बुरे या पुण्य और पाप कार्यों को बल पूर्वक करने को बलात्कार कहते हैं। इसमें स्वयं की सामर्थ्य बलवान होती है जो स्व पर निमित्त से व्यक्त होती हुई देखी जाती है। विषयकषाय रूपी दुर्भावना पूर्वक स्वपर निमित्तक बलात्कार अपराध है तथा सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक स्वपर हितार्थ बलात्कार संसारवर्धक न होकर संसार विच्छेदक होने से निरपराध निर्दोष है।

प्र.-2490 अवमौदर्य तप किसे कहते हैं?

उत्तर- सामने आये हुए भोजन में से भूंख से कुछ कम भोजनपान करने को अवमौदर्य तप कहते हैं।

प्र.-2491 यह अवमौदर्य तप क्यों किया जाता है?

उत्तर- असाता वेदनीय कर्म, आहार संज्ञा, निद्रा और शारीरिक उत्तेजना पर विजय पाने के लिए तथा इंद्रिय और मन को जीतने के लिए यह तप किया जाता है।

प्र.-2492 उपवास तप किसे कहते हैं?

उत्तर- संकल्प सहित विषयकषायों के त्याग पूर्वक आरंभ परिग्रह को, श्रृंगारालंकार को, आहार पानी को त्याग कर आत्मा के या निज कर्तव्य के निकट निवास करने को उपवास तप कहते हैं।

प्र.-2493 उपवास तप किसलिए किया जाता है?

उत्तर- पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा के लिए, कर्मक्षयार्थ सामर्थ्य के लिए, नवीन पापकर्म के संवरार्थ, सातिशय पुण्य की वृद्धि और आत्मशुद्धि के लिए उपवास तप किया जाता है।

प्र.-2494 अनशन और उपवास में क्या अंतर है?

उत्तर- भोजन न करने को, भोजन की आकांक्षा न होने को, रोकने को अनशन और आत्मा के निकट निवास करने को उपवास कहते हैं यही अंतर है अथवा निषेध और विधि का भी अंतर है। अनशन में भोजनपान के त्याग की भावना होती है और उपवास में आत्मा के निकट में रहने की भावना होती है।

प्र.-2495 ये छह बहिरंग तप किस प्रकार के हैं?

उत्तर- ये छह बहिरंग तप सामान्य मनुष्यों के लिए बड़ी कठिनता से धारण किये जाते हैं। कदाचित् अभ्यास न होने से धारण कर लिए तो बहुत कष्टानुभव होता है। इसलिए आ. श्री ने **दुद्धर तवयरण** ये तप बड़ी कठिनता से धारण किये जाते हैं ऐसा कहा है।

प्र.-2496 इन तपों को बहिरंग तप क्यों कहा?

उत्तर- इन तपों को करने में वचनकाय की मुख्यता रहती है, बाहर में सभी को मालुम पड़ जाता है और सभी जैनाजैन, भव्याभव्य, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि भी करते हैं सो इनके आचरण को बहिरंगतप कहा है।

प्र.-2497 क्या इन तपों को करते समय मन का संबंध रहता है या नहीं?

उत्तर- मन तो रहता ही है, बिना मन के अनेक गुण संपन्न भोजनपान कौन छोड़ेगा? अतः मन तो साथ में रहता ही है किंतु सम्यक्रत्नत्रय धर्म भजनीय है।

प्र.-2498 ये अनशन आदि तप ही रहते हैं या कभी कुतप भी हो जाते हैं?

उत्तर- निर्मल मन और रत्नत्रय सहित सुतप तथा रत्नत्रय के बिना मलिन मन पूर्वक कुतप कहलाते हैं।

प्र.-2499 कुतप किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व सहित लौकिक कामना पूर्वक भूंखहड़ताल को, अनशनादि को, आर्तरौद्रध्यानों को कुतप कहते हैं।

प्र.-2500 सामान्य प्राणी इन तपों से भयभीत क्यों होते हैं?

उत्तर- **मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।**
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः।।29।। स.तं.

अर्थः- अज्ञानी बहिरात्मा जिन शरीर पुत्रमित्रादि बाह्य पदार्थों में ये मेरे हैं, मैं इनका हूँ ऐसा विश्वास करता है उन शरीर स्त्री पुत्रादि बाह्य पदार्थों के समान और कोई दूसरा भय का स्थान नहीं है और जहाँ भयभीत हो रहा है उसके सिवाय आत्मा के लिए कोई दूसरा निर्भयता का स्थान नहीं है। इसी तरह यह मोही प्राणी शरीर का, विषय भोगों का लंपटी जीव भोजनपान करने में निर्भय है और तप करने में भयभीत है तथा जो संसार शरीर भोगों से विरक्त है वह भोजनपान से भी विरक्त है वह उपवास करने में निर्भय है। अतः सामान्य प्राणियों का तप का अभ्यास न होने से ये तप से भयभीत होते हैं।

प्र.-2501 महापुरुष तपों से क्यों भयभीत नहीं होते हैं?

उत्तर- यदि उत्कृष्ट धर्मपुरुषार्थी कर्मठ रत्नत्रयधारी महापुरुष भी तप से, धर्म से डर जायें तो वे महापुरुष कैसे? वे तो कायर हैं या लोगों को दिखाने के लिए उन्हेंने महापुरुषों का चोला पहन लिया है।

प्र.-2502 ये छह बहिरंग दुर्धर तप किसके कारण हैं?

उत्तर- ये 6 बहिरंगतप बड़ी कठिनता से धारण किये जाते हैं फिर भी ये अंतरंगतप के कारण हैं क्योंकि बहिरंगतप के बिना अंतरंगतप की उत्पत्ति हो नहीं सकती। जैसे निर्ग्रंथपद के बिना भावलिंग प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान उत्पन्न हो ही नहीं सकता यदि वस्त्रधारियों के प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान आ जाय तो इसी अवस्था में मोक्ष की प्राप्ति होने से इसी रूप में मूर्ति बनाना चाहिये जो कि असंभव है।

प्र.-2503 इस गाथा में तप के साथ दुर्धर विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- यहाँ दुर्धर विशेषण उभय तपों के लिए ग्रहण किया है क्योंकि बाह्यतप में शरीर की प्रधानता और अंतरंग तप में मन की प्रधानता होने से बड़ी कठिनता से प्राप्त किये जाते हैं, ।

प्र.-2504 इन दोनों प्रकार के तपों में कौनसा संबंध है और किस प्रकार से है?

उत्तर- इन उभय तपों में कारण कार्य संबंध है। बहिरंग तप कारण और अंतरंग तप कार्य है। अंतरंग तप की उत्पत्ति बहिरंग तपों के माध्यम से होती है इसलिए अंतरंग तप कार्य है और

बहिरंग तप कारण है।

प्र.-2505 अंतरंग तप किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसमें केवल मन का ही संबंध हो, जो इंद्रियगोचर न हो, न ही छद्मस्थों का विषय हो, न अन्यमति पालन कर सकें उसे अंतरंग तप कहते हैं।

प्र.-2506 अंतरंग तप के कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अंतरंग तप के छह भेद हैं। **नामः- प्रायश्चित्तः-** व्रत, संयम ग्रहण करते समय जैसे निर्मल परिणाम हुए थे उसमें दुर्भाग्यवशात् मलिनता प्राप्त हुई तो उस मलिनता को दूर कर पुनः पूर्ववत् मन निर्मल होने को प्रायश्चित्त, **विनयः-** मान के अभाव में उत्पन्न हुए मार्दव भाव को विनय, **वैय्यावृत्तः-** अंतरंग में रत्नत्रय धर्म की पूर्ण निर्दोषवृत्ति को वैय्यावृत्त, **स्वाध्यायः-** रत्नत्रय सहित विषयकषायों के त्याग पूर्वक आत्मचिंतन, मनन को या किसी भी द्रव्य गुण पर्यायों का बिना मिलावट के चिंतन मनन को स्वाध्याय, **व्युत्सर्गः-** भावात्मक अहंकार ममकार के त्याग को व्युत्सर्ग और **ध्यानः-** मोक्ष के साधनभूत द्रव्य गुण पर्यायों में संकर व्यतिकर दोषों को टालकर यथावत् स्थिर होने को ध्यान कहते हैं।

प्र.-2507 यहाँ कार्य कारण और कारण कार्य संबंध क्यों बतलाया?

उत्तर- यदि कार्य कारण और कारण कार्य संबंध नहीं बतलाया जाये तो संदेह हो जायेगा कि कौन किसके माध्यम से उत्पन्न होता है और कौन किसका कारण है। अतः कार्य कारण तथा कारण कार्य संबंध बतलाना अत्यंत आवश्यक है, यह व्यवस्था कुछ ग्रंथों में स्पष्टतः प्रतिपादित न होने से भोगी आध्यात्मवादी कहने लगे हैं कि पहले अंतरंग में त्याग होगा फिर बाह्य में त्याग होगा सो जिसका अर्थ है कि जन्म पहले और गर्भ बाद में क्या ऐसा हो सकता है?

प्र.-2508 अंतरंग तप का फल क्या है?

उत्तर- संवर निर्जरा के साथ साथ संपूर्ण कर्मों का जड़मूल से क्षय होना अंतरंग तप का फल है।

प्र.-2509 अंतरंग तप के छह भेदों में से कर्मों का क्षय होना किस तप का फल है?

उत्तर- समस्त कर्मों का क्षय होना अंतरंग तपों में से अंतिम अंतरंग तप ध्यान का फल है।

प्र.-2510 तो फिर अंतरंगतप में अंतिम तप के अनेक भेदों में से किस तप का फल है?

उत्तर- अंतरंगतप के अंतिम अंतरंग ध्यानतप के 16 भेदों में से उत्कृष्ट धर्मध्यान या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान, एकत्ववितर्क शुक्लध्यान और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान का फल कर्मों का क्षय होना है।

प्र.-2511 संपूर्ण घाति अघातिकर्मों के क्षय का क्या फल है?

उत्तर- पूर्ण रूप से निज शुद्धात्मा की प्राप्ति होना या मोक्ष प्राप्त होना संपूर्ण कर्मों के क्षय का फल है।

प्र.-2512 शेष पाँच अंतरंग तपों का क्या फल है?

उत्तर- शेष पाँच आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान और सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति अंतरंग तपों का फल असंख्यात गुणश्रेणी पापकर्मों की निर्जरा होना, पापकर्मों का संवर होना, कदाचित् गुणस्थानानुसार पुण्यकर्मों का संवर होना फल कहा है किंतु इन तपों से किसी भी मूल या उत्तर प्रकृति का समूल क्षय नहीं होता है।

प्र.-2513 निज शुद्धात्मा कर्मों के समूल क्षय का कारण है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- यदि निज आत्मा परिपूर्ण शुद्ध है तो आत्मा में कर्मों का अस्तित्व कैसे? कर्मों का निजात्मा में अस्तित्व है तो आत्मा पूर्ण शुद्ध कैसे? अतः समस्त कर्मों के क्षय से शुद्धात्मा की प्राप्ति होती

है ऐसा अर्थ ग्रहण करना ही सर्वत्र निर्दोष है। निज शुद्धात्मा कर्मों के क्षय करने में कारण है ऐसा अर्थ करना सदोष है क्योंकि अशुद्ध के क्षय और शुद्ध के उत्पाद का एक ही समय है।

प्र.-2514 शुद्ध घी या शुद्ध सोना तथा शुद्धात्मा कब कहा जाता है?

उत्तर- दूधादि के कण पूर्णतः अलग करने से घी शुद्ध कहलाता है। यदि घी में किंचित् भी दूधादि के कण हैं तो वह घी अशुद्ध है। ऐसे ही सोने में किंचित् मात्र भी बट्टा है तो वह अशुद्ध कहा जाता है, शुद्ध नहीं। इसी तरह आत्मा में परद्रव्यों का संबंध होने से अशुद्ध कहलाती है अन्यथा सभी आत्मायें शुद्ध बुद्ध सिद्ध होने से पूज्य पूजक, गुरु शिष्य आदि व्यवहार न बनने से परमार्थ अवस्था की सिद्धी भी नहीं हो सकती है।

प्र.-2515 शुद्ध सिद्ध आत्मा का परद्रव्यों के साथ क्या बिलकुल संबंध नहीं है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही शुद्ध सिद्धात्मा का परद्रव्यों के साथ एकक्षेत्रावगाही व संयोगसंबंध है। यदि धर्म अधर्मादि द्रव्यों का सिद्धों के साथ ये दो संबंध नहीं माने जायें तो छहों द्रव्य तिल में तेल की तरह सर्व व्यापी हो नहीं सकते क्योंकि लोकाकाश का एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है कि जहाँ पर पाँच द्रव्यों का अवस्थान नहीं हो अतः सिद्धात्मा के दो प्रकार के संबंध मानना अत्यंतावश्यक है।

प्र.-2516 सर्वज्ञ शुद्ध सिद्ध आत्मा को सर्वव्यापी कैसे माना जाये?

उत्तर- सर्वज्ञ शुद्ध सिद्ध आत्मा संसारी सयोगी सर्वज्ञ प्रभु लोकपूरण समुद्घात की अवस्था में लोकाकाश के समस्त प्रदेशों में फैलने के कारण सर्वव्यापी हैं और ज्ञेयज्ञायक संबंध की अपेक्षा अरहंतसिद्ध लोकाकाश अलोकाकाश में व्याप्त हैं अन्यथा अलोकाकाश के अस्तित्व की जानकारी नहीं हो सकती।

प्र.-2517 अरिहंत सिद्ध सर्वव्यापी हैं तो दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर- लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा केवल अरिहंत लोकाकाश में सर्वव्यापी हैं तो ज्ञेयज्ञायक संबंध की अपेक्षा संपूर्ण लोकाकाश अलोकाकाश में अरिहंत सिद्ध सर्वव्यापी हैं यही इनमें अंतर है।

प्र.-2518 कर्मों का क्षय और शुद्धात्मा की प्राप्ति इन दोनों में कारण कार्य संबंध कैसे?

उत्तर- कर्मों का क्षय होना कारण और शुद्धात्मा की प्राप्ति कार्य है ऐसा इन में कारण कार्य संबंध है।

प्र.-2519 संपूर्ण कर्मों का क्षय किस कारण से होता है?

उत्तर- परमयथाख्यातचारित्र, परमयथाख्यातसंयम, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान से संपूर्ण अघातियाकर्मों का क्षय होता है अतः यहाँ ध्यान कारण है और कर्मों का क्षय कार्य है ऐसा संबंध जानना चाहिये।

प्र.-2520 बाह्यपरिग्रह का त्याग मुनि करते हैं या इनका त्याग करके मुनि बनते हैं?

उत्तर- **ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्ध मिदं वचः॥23॥** इ.उ.। जिसके पास जो होता है वह वही देता है ऐसा यह प्रसिद्ध वचन है अतः इन वस्तुओं का त्याग यदि मुनियों ने किया है तो ये सामग्रियां मुनियों के पास में होने से त्याग किया? यदि पास में नहीं है तो कैसे त्याग किया? मुनियों के ये होने से परिग्रही मुनि कहलाये तब अपरिग्रह महाव्रत किसके होगा? यदि परिग्रही गुरु होते हैं तो निर्ग्रंथमुनि किसे कहोगे? अतः निष्कर्ष यह है कि वैरागी गृहस्थ ही इनका त्याग करके मुनि बनते हैं क्योंकि बाह्य सामग्री का संबंध तोड़े बिना निर्ग्रंथ त्यागीपना बन नहीं सकता तो जैसे परिग्रह का त्याग किये बिना वास्तविक मुनिपना ही नहीं ठीक वैसे ही संपूर्ण कर्मों का क्षय किये बिना शुद्धात्मा की प्राप्ति संभव नहीं। यदि पूर्ण शुद्धात्मा कर्मों का क्षय करता है तो पूर्ण शुद्धात्मा में कुछ कर्मों का अस्तित्व रहना चाहिये तभी तो कर्मों को क्षय किया और कर्मों का सत्त्व होने से उदय भी है तभी तो औदयिक भाव है तब फिर पूर्ण शुद्ध स्वरूप कैसा? अतः जिस प्रकार गृहस्थ

श्रावक संपूर्ण परिग्रह का त्याग कर मुनिपद अंगीकार करता है ऐसे ही अयोगकेवली भगवंत समस्त अघातिया कर्मों का क्षय कर पूर्ण शुद्ध सिद्ध पद प्राप्त करते हैं।

नोटः- यहाँतक 2520 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 75वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 76वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बाह्य भेष से क्या?

कम्मु ण खवेइ जो हु परबम्हु ण जाणेइ सम्मउम्मुक्को।
अत्थु ण तत्थु ण जीवो लिंगं घेत्तूण किं करई।।76।।

कर्म न क्षपयति यो हि परब्रह्मं न जानाति सम्यक्त्वोन्मुक्तः।
अत्र न तत्र न जीवो लिंगं गृहीत्वा किं करोति?।।

जो जो **सम्मउम्मुक्को जीवो** मिथ्यादृष्टिजीव **हु परबम्हु** परमब्रह्म को **ण** नहीं **जाणेइ** जानता है वह **कम्मु** कर्मों का **खवेइ** क्षय **ण** नहीं कर सकता है **अत्थु ण** मिथ्यादृष्टि जीव न इसलोक में धर्मात्मा है और **तत्थु ण** न परलोक में भी धर्मात्मा होगा तो **लिंगं** इस मुनिलिंग को **घेत्तूण** ग्रहण कर **किं** क्या **करई** कर सकता है?

प्र.-2521 मिथ्यादृष्टि जीव कर्मों का क्षय करता है या नहीं?

उत्तर- सादि या अनादिमिथ्यादृष्टि भव्यजीव दर्शनमोहनीयकर्म का उपशम या क्षयोपशम करके उपशम और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन को अवश्य प्राप्त करता है किंतु मूलोत्तरप्रकृतियों का क्षय नहीं करता है फिर भी ये दोनों सम्यग्दृष्टि अनंतानुबंधी कषाय को अप्रत्याख्यानावरण कषाय रूप में परिणमाकर/ विसंयोजन कर सत्त्व से ही क्षय कर देते हैं। इस अवस्था में इसका सत्त्व उदय बंध नहीं होता है।

प्र.-2522 तो फिर क्षायिक सम्यग्दर्शन को कौन प्राप्त करता है?

उत्तर- क्षायिक सम्यग्दर्शन को कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव ही करणलब्धि के परिणामों से क्रमशः अनंतानुबंधी कषाय तथा दर्शनमोह को क्षय करके प्राप्त करता है।

प्र.-2523 उपशम सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिकसम्यग्दर्शन को क्यों प्राप्त नहीं करता?

उत्तर- उपशम सम्यग्दृष्टि के परिणाम अत्यंत निर्मल और अवस्थित होने से क्षायिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिए भाव ही नहीं होते हैं अथवा एक करण के परिणामों में दूसरे करण के परिणाम नहीं हो सकते हैं क्योंकि पर्याय में पर्याय उत्पन्न नहीं होती हैं ऐसा नियम है अन्यथा उभयश्रेणी के परिणाम एकसाथ एक समय में एक ही जीव में हो जायेंगे पर ऐसा होता नहीं है।

प्र.-2524 ''सम्मउम्मुक्को'' इस पद से किस सम्यग्दृष्टि जीव को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- ''सम्मउम्मुक्को'' पद का अर्थ सम्यग्दर्शन से रहित होता है किंतु यहाँ कहा है कि जो कर्मों को क्षय नहीं करता है वह परं ब्रह्म को नहीं जानता है। इन पदों से यहाँ पर वीतराग क्षीणमोही सम्यग्दृष्टि को ग्रहण करना चाहिये, सामान्य सम्यग्दृष्टि को नहीं क्योंकि सामान्य सम्यग्दृष्टि जीव कर्मों का समूल क्षय नहीं करता है तो वह आत्मा को प्रदेश प्रत्यक्ष कैसे जानेगा? केवलदर्शन के बिना शेष दर्शनोपयोगों से और केवलज्ञान के बिना शेष ज्ञानोपयोगों से परोक्ष ही अनुभव करता है, जानता है। इस परोक्ष दर्शन या ज्ञान को न्याय शास्त्रों में आगम प्रत्यक्ष, अनुभव प्रत्यक्ष या मानसप्रत्यक्ष कहा जाता है।

प्र.-2525 कौन सा सम्यग्दृष्टिजीव आत्मा का प्रदेश प्रत्यक्ष अनुभव करता है?

उत्तर- आत्मा में सभी कर्मों का सत्त्व और उदय है तो छद्मस्थ प्रदेश प्रत्यक्ष आत्मा का अनुभव

कैसे कर सकता है क्योंकि आत्मा के प्रदेश प्रत्यक्ष अनुभव में बाधक दर्शनावरणीय कर्म है, मोहकर्म नहीं अतः दर्शनावरणीय कर्म का समूल क्षयकर परमावगाढ़ सम्यग्दृष्टि जीव प्रदेश प्रत्यक्ष आत्मानुभव करता है।

प्र.-2526 मिथ्यादृष्टि जीव जिनदीक्षा लेकर क्या कर सकता है?

उत्तर- मिथ्यात्वावस्था का त्याग किये बिना यदि जिनदीक्षा धारण कर भी ली तो वह बाह्य परिश्रम करके भी अनंतकाल तक के लिए चिर शांति प्राप्त नहीं कर सकता है सो वह न गृहस्थ है और न साधु, मिथ्यादृष्टि संसारमार्गी ही है अथवा मिथ्यादृष्टि जीव न यहाँ अध्यात्म सुखी है और न परभव में सुखी है।

प्र.-2527 मिथ्यादृष्टि जीव ''अत्थु ण, तत्थु ण'' ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यादृष्टिजीव मिथ्यात्व के कारण यहाँ भी मोक्षमार्गी नहीं और परभव में भी मोक्षमार्गी नहीं बनेगा केवल उसने बाह्य में जिनमुद्रा धारण कर यहाँ का सुख छोड़ा और परभव में भी अध्यात्मसुख प्राप्त नहीं करेगा यानि **''धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।''** अर्थात् उभयतः भ्रष्ट है।

प्र.-2528 तो फिर क्या करना चाहिये कि जिससे उभयलोक में सुख की प्राप्ति हो?

उत्तर- उभयलोक में सुख शांति की प्राप्ति के लिए भली प्रकार से मिथ्यामार्ग का त्याग कर मोक्षमार्गी बनना चाहिये अन्यथा कोयला कहीं भी चला जाये सर्वत्र काला ही रहेगा। अगर कोई कोयले को सफेद करना चाहे तो सारे विश्व की संपत्ति खर्च करके भी दुनिया के यंत्रों से भी सफेद नहीं किया जा सकता है क्योंकि वह सर्वांग से काला ही काला है किंतु युक्ति से कोयले को बिना खर्च किये अग्नि की छोटी सी चिनगारी के द्वारा थोड़े समय में ही सफेद कर लेते हैं ऐसे ही मिथ्यादृष्टि कहीं भी चला जाये वह अध्यात्म शांति के बिना इंद्रियसुख प्राप्त कर सकता है। आध्यात्मिकशांति के लिए मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्वी हो क्रमशः शुद्धध्यान से कर्मों को क्षय कर अनंत सुख की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं।

प्र.-2529 यहाँ लिंग शब्द से जिनलिंग अर्थ क्यों किया, अन्यलिंग क्यों नहीं किया?

उत्तर- क्योंकि ग्रंथकर्ता जिनलिंग धारी हैं, निर्विकार यथाजात रूप के पूर्ण समर्थक हैं, संदेह रहित हैं, निर्विकार पद के उपासक हैं। जब अन्यलिंगधारी अंतरंग बहिरंग से विकारी हैं तब आ. महोदय विकृत लिंगों के समर्थक कैसे हो सकते हैं? अनेक गाथाओं में और मंगलाचरण में मुनिधर्म को कहने की प्रतिज्ञा की है इस कारण यहाँ लिंग शब्द से जिनलिंग को ग्रहण किया है, वस्त्रधारी अन्यलिंग को नहीं।

प्र.-2530 ब्रह्म के साथ में ''पर'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- सामान्य आत्मा को तो सभी भव्य अभव्य, सैनी असैनी, जैन अजैन, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, गृहस्थ और साधुवर्ग जानते हैं, अनुभव करते हैं परंतु ''पर'' विशेषण लगा देने से उत्कृष्ट आत्मा सकल निकल परमात्मा को छद्मस्थ प्राणी नहीं जान पाते किंतु वीतरागी क्षीणमोही सम्यग्दृष्टि तीन घातियाकर्मों को क्षय कर केवल दर्शनोपयोग से परिणत हो अपनी शुद्धात्मा का अनुभव करते हैं और केवलज्ञान के द्वारा जानते हैं क्योंकि केवलज्ञानी ही साक्षात् परमात्मा को और केवलदर्शनी अपनी उत्कृष्ट आत्मा को जानता है।

प्र.-2531 यहाँ लिंग शब्द से गृहस्थलिंग को ग्रहण करना चाहिये या मुनिलिंग को?

उत्तर- यहाँ दोनों लिंगों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सागार और अनगार लिंगों का कथन शास्त्रों में पाया जाता है तथा ग्रंथकारजी ने इन दोनों लिंगों को कहने की प्रतिज्ञा भी की है।

प्र.-2532 जिनलिंगधारी कितने परमेष्ठी हैं तथा इनमें क्या अंतर है?

उत्तर- अरिहंत, आचार्य उपाध्याय और साधु ये चार परमेष्ठी जिनलिंगधारी हैं। इनकी बाह्य मुद्रा में कोई अंतर नहीं है किंतु अंतरंग में गुणों के विकाश और अविकाश की अपेक्षा अंतर अवश्य है। जिस प्रकार गृहस्थ श्रावक संपूर्ण परिग्रह का त्याग कर मुनिपद अंगीकार करता है ऐसे ही अयोगकेवली भगवंत समस्त अघातिया कर्मों का क्षय कर पूर्ण शुद्ध सिद्ध पद प्राप्त करते हैं।

नोटः- यहाँतक 2532 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 76वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 77वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

साधुपद से क्या?

अप्पाणं पि ण पिच्छइ ण मुणइ ण वि सद्दहइ ण भावेई।

बहुदुक्ख भार मूलं लिंगं घेत्तूण किं करई।।77।।

आत्मानमपि न पश्यति न जानाति नापि श्रद्धाति न भावयति।

बहुदुःखभारमूलं लिंगं गृहीत्वा किं करोति?।

जो **अप्पाणं** आत्मा को, **पि** भी, **ण** न **पिच्छइ** देखता **ण** न **मुणइ** जानता **ण वि** न ही **सद्दहइ** श्रद्धान करता है और **ण** न **भावेई** भावना करता है तो **बहुदुक्खभार मूलं** अनेक दुःखों के कारण भूत **लिंगं** वेष को **घेत्तूण** धारण कर **किं** क्या **करई** कर सकता है?

प्र.-2533 कौन सा जीव आत्मा को चारों आराधना रूप से परिणमन नहीं कराता?

उत्तर- सादि अनादि, भव्य अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव विषयवासना, विषयकषायासक्ति के कारण निजात्मा को न देखता है, न जानता है, न श्रद्धान करता है, न अनुभव और भावना करता है।

प्र.-2534 यह मिथ्यादृष्टि जीव आत्मा के संबंध में ऐसा क्यों नहीं सोचता है?

उत्तर- ऐसा सोचने से वैराग्य हो जायेगा तब इस रंगमंच को त्यागना पड़ेगा अतः ऐसा नहीं सोचता है।

प्र.-2535 कदाचित् आगमज्ञानी गुरु हो तो आत्मा के लिए ऐसा क्यों न सोचेगा?

उत्तर- आगमज्ञानी है, गुरुपद पर स्थित है तो भी श्रोताओं, भक्तों को, शिष्यों को आत्मपरिचय पठन कराता हुआ और उपदेश करता हुआ भी मिथ्यात्व परिणति होने से ज्ञाता दृष्टा होता हुआ भी यथार्थ में न देखता है, न जानता है, न श्रद्धान करता है, न भावना करता है। जैसे गुटका, मसालाभक्षक, चाय आदि पीने वाले व्यक्ति की स्वाद शक्ति के नष्ट होने पर व्यंजनों को, रसों को खातेपीते हुए भी स्वादानुभव कर पाते, न ज्ञान कर पाते अथवा मन व्याकुलित होने के कारण परिश्रम करते हुए भी आनंद नहीं ले पाते।

ब्रुवन्नपि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्म तद्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति।।41।। इ.दे.

अर्थः- शुद्धात्म ध्यानी, सर्वज्ञ, केवलज्ञानी बोलता हुआ भी नहीं बोलता है, चलता हुआ भी नहीं चलता है, देखता हुआ भी नहीं देखता है ऐसे ही रागी जीव आत्मसंबंधी कार्यों को करता हुआ भी नहीं करता है।

प्र.-2536 इस गाथोक्त चार क्रियाओं का आधार कौन कौन सा गुण है?

उत्तर- देखने का आधार दर्शनगुण, जानने का ज्ञानगुण, श्रद्धान का आधार सम्यक्त्व गुण और भावना का आधार मतिज्ञान या मन को जानना चाहिये क्योंकि प्रत्येक क्रियाओं का आधार अलग[2] स्वतंत्र गुण होना चाहिये। अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय आधेय हैं तो गुण और द्रव्य आधार हैं।

प्र.-2537 क्या यह आधार आधेय संबंध समीचीन है या असमीचीन?

उत्तर- यह आधार आधेय संबंध अनादिकाल से है और अनंतकाल तक चलता रहेगा। पर यह संबंध मोक्षमार्गियों का समीचीन और संसारमार्गियों का असमीचीन माना गया है।

प्र.-2538 तो क्या उपादान उपादेय संबंध समीचीन है या असमीचीन?

उत्तर- यह संबंध अनादि से अनंतकाल तक शुद्ध अशुद्ध द्रव्यों में था, है और रहेगा। शुद्धद्रव्यों में शुद्ध और अशुद्ध द्रव्यों में अशुद्ध होता है फिर भी प्राणियों की जैसी दृष्टि होती है वैसा ही उन्हें प्रतिभासित होता है। यदि दृष्टि सही है तो संबंध समीचीन और गलत है तो असमीचीन प्रतिभासित होता है। रंगीन चश्मे से रंगीन और स्वच्छ चश्मे से स्वच्छ जैसा का तैसा प्रतिभासित होता है। इससे समस्त संबंध स्वाभाविक और वैभाविक होने से समीचीन है क्योंकि सात तत्त्व समीचीन होने से विश्वास भी समीचीन कहा जाता है।

प्र.-2539 यहाँ ग्रंथकारजी ने श्रावक और मुनि को कैसा कहा है?

उत्तर- बिना वैराग्य के श्रावक और मुनि को अनेक दुःखों का मूल कहा है।

प्र.-2540 उत्कृष्ट श्रावक और उत्कृष्ट मुनि लिंग दुःखों के मूल हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि सूर्योदय होने पर भी अंधकार प्राप्त होता है या प्रताप प्रकाश नहीं तो सूर्यास्त होने पर क्या प्राप्त होगा? यदि धर्म और धर्मायतनों से दुःख प्राप्त होता है तो सुख किससे प्राप्त होगा? सूर्योदय होने से ही प्रताप प्रकाश प्राप्त होगा, अन्य साधनों से नहीं ऐसे ही धर्म और धर्मायतनों से ही सुख प्राप्त होगा, अन्य कारणों से नहीं। जो श्रावक और मुनियों को दुःख प्राप्त हो रहा है वह विकार का या अनभ्यास का फल है, न कि साधकपद का। जैसे व्यापार में क्रय विक्रय का अज्ञान होने से घाटा ही होता है, लाभ नहीं वैसे ही श्रावक और मुनि पद के योग्य आचार विचार के पालन का अभ्यास न होने से कष्ट ही होता है, सुख नहीं इसलिए ग्रंथकारजी ने दुःख का मूल कहा है, सभी के लिए नहीं।

प्र.-2541 साक्षात् दुःखानुभव असाता कर्मोदय से होता है या रागद्वेष मोह से?

उत्तर- साक्षात् दुःखानुभव असाता कर्मोदय से होता है रागद्वेष मोह से नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि रागद्वेष मोह साथ में होना चाहिये अन्यथा केवलियों को भी असाताकर्मोदय से दुःखानुभव होगा।

नोटः- यहाँतक 2541 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 77वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 78वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आत्मभावना क्यों?

जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो ताव।
तेण अणंत सुहाणं अप्पाणं भावए जोई ।।78।।

यावन्न जानाति आत्मा आत्मानं दुःखमात्मनस्तावत्।
तेन अनंतसुखमात्मानं भावयेद् योगी।

जाव जब तक **अप्पा** जीव **अप्पाणं** अपने को **ण** नहीं **जाणइ** जानता है **ताव** तब तक **दुक्ख मप्पणो** दुःख का अनुभव होता है **तेण** अतः **जोई** हे योगी **अणंतसुहाणं** अनंतसुखी **अप्पाणं** आत्मा का **भावए** चिंतन करे।

प्र.-2542 बिना आत्मा के पहंचाने क्या कोई दिगंबर जैनसाधु बन सकता है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही आत्मा को जाने बिना दिगंबर जैन साधु बन सकते हैं। देखो बिना वैराग्य के केवल स्वामीभक्ति से 4000 राजा, मित्र की प्रेरणा से पुष्पडाल, भाई के प्रेम से भावदेव मुनि बने।

प्र.-2543 चारहजार मुनि और दो मुनि पदभ्रष्ट क्यों हुए?

उत्तर- श्री आदिनाथ मुनिराज मौन पूर्वक आत्मसाधना करते रहे तथा श्री आदिनाथजी ने उन

मुनियों को संबोधन नहीं किया इस से द्रव्यभाव से पदभ्रष्ट हुए। बिना वैराग्य के मुनिपद धारण करने के से पुष्पडाल और भावदेव मुनि भावों से पतित हुए, द्रव्य से नहीं।

प्र.-2544 श्री आदिनाथजी ने भ्रष्ट होते हुए मुनियों को संबोधन क्यों नहीं किया?

उत्तर- दिगंबर जैन शासन में तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाले श्रावक मुनिदीक्षा के साथ छद्मस्थावस्था पर्यंत मौनव्रत धारण कर लेते हैं इसलिए वे किसीको भी वचनों के द्वारा उपदेश और संबोधन न कर अपनी दिनचर्या से, आत्मसाधना से निकट भव्यों को उपदेश और संबोधन करते हैं किंतु वे 4000 मुनिजन आदिनाथजी के उद्देश्य को, संकेत को नहीं समझ पाये तभी भ्रष्ट हुए यदि समझ लेते तो भ्रष्ट क्यों होते?

प्र.-2545 आत्मज्ञान बिना मुनिदीक्षा लेना उत्सर्गमार्ग है या अपवाद मार्ग?

उत्तर- आत्मा को पहंचाने बिना दिगंबर जैन मुनिदीक्षा लेना अपवाद मार्ग है, उत्सर्ग मार्ग नहीं। आत्मा को जाने पहंचाने बिना किसी किसी ने मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका दीक्षा धारण कर ली अन्यथा अधिकतर आत्मा परमात्मा को जानकर भेदविज्ञानी होकर दिगंबर जैन मुनिदीक्षा धारण करते हैं तभी तो निकट भव्यों को वचनों के द्वारा, अपनी सम्यक् दिनचर्या के द्वारा मौन पूर्वक आत्मा, परमात्मा का दिग्दर्शन कराते हैं। यदि स्वयं को जानकारी नहीं है तो वे भव्यों को मोक्षमार्ग कैसे बतला सकते हैं?

प्र.-2546 आजकल साधुवर्ग अपनी आत्मा को कैसे पहंचानते हैं?

उत्तर- गुरु के उपदेश से, आगम के अभ्यास से, पूर्वभवों के संस्कारों से, स्वयं की साधना और स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा आत्मा को जानते हैं। यदि सर्वथा आत्मा को नहीं जानते हैं तो विषयकषायों को जीत नहीं सकते, न केशलुंचन कर सकते हैं, न नग्न रह सकते हैं, न सर्वत्र सर्वदा विहार कर सकते हैं। यदि दिगंबर जैनसाधु आत्मा को नहीं जानते हैं तो क्या ये भोगी मानव गादी, पलंग, कुर्सी आदि पर बैठकर चाय नास्ता करते कराते हुए, अभक्ष्य भक्षण करते कराते हुए क्या आत्मा को जान सकते हैं?

प्र.-2547 आजकल साधुवर्ग अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं या परोक्ष?

उत्तर- अपनी आत्मा का दर्शनोपयोग से साधुवर्ग परोक्ष रूप में अनुभव करते हैं, प्रदेशप्रत्यक्ष नहीं।

प्र.-2548 आत्मा को नहीं जाननेवालों को दुःखी क्यों कहा?

उत्तर- जैसे रस्सी को सर्प जानने से दुःखी और रस्सी को रस्सी जानने से सुखी होता है ऐसे ही शरीर आदि को आत्मा मानने की भ्रांति से दुःखी होता है और भ्रांति निकल जाने से सुखी होता है।

प्र.-2549 भ्रांति किस कारण से होती है और किन जीवों को होती है?

उत्तर- कषाय मिश्रित ज्ञान से भ्रांति होती है। जैसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि तद्भव मोक्षगामी रामसीता लक्ष्मण के लिए इतने दुःखी हुए कि उन्होंने पागलों जैसी अनेक चेष्टायें की जिससे अव्रती आत्मज्ञ ध्याता भी पूर्व भ्रांतिवश अपने भाई के शव को लेकर भटकते रहे ऐसी ही भ्रांति कभी कभी प्रमादी मुनियों को भी हो जाती है तभी तो अनार्यों, पागलों की तरह अनर्गल चेष्टायें करने लगते हैं।

प्र.-2550 यह भ्रांति क्यों होती है?

उत्तर- अनादि और सादिकालीन दुःसंस्कारों के कारण भ्रांति हो जाती है। जैसे आजकल गुटका मसाला, शराब, चाय आदि की हानि को जानते हुए, विश्वास करते हुए भी आदत के कारण खातेपीते हैं और नशे में चूर होकर अपना सर्वस्व नष्ट कर देते हैं ऐसे ही दुःसंस्कारों वश सबकुछ जानते हुए भी नासमझ हो जाते हैं अतः जैसे मोक्षमार्ग में रत्नत्रय का महत्त्व है तो संसार में भटकने के लिए भ्रांति का महत्त्व है।

प्र.-2551 यहाँ श्री ग्रंथकारजी ने आत्मा का स्वभाव कैसा कहा है?

उत्तर- आ.श्री ने आत्मा का स्वभाव आकाशवत् सीमातीत अव्याबाध अनंतसुख रूप कहा है।

प्र.-2552 क्या छद्मस्थ प्राणी अनंतसुख का अनुभव कर सकते हैं?

उत्तर- अनंतसुखानुभव के लिए अनंतदर्शन अनंतज्ञान चाहिये और ये दोनों केवलियों के, सिद्धों के होते हैं, छद्मस्थों के न होने से अनंतसुख का अनुभव नहीं कर पाते।

प्र.-2553 अनंतसुख स्वरूपी आत्मा की भावना कौन करता है?

उत्तर- अनंतसुख स्वरूपी आत्मा की भावना साधु योगी करता है।

प्र.-2554 अनंतसुख स्वरूपी आत्मा की भावना कौनसा योगी करता है और क्यों?

उत्तर- प्रमत्ताप्रमत्त योगी शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिए अनंतसुख स्वरूपी आत्मा की भावना करते हैं।

प्र.-2555 अनंतसुख की भावना क्या गृहस्थ कर सकता है?

उत्तर- अनंतसुख की भावना कदाचित् अव्रती और अणुव्रती गृहस्थ भी कर सकता है। भावना करने में क्या परेशानी है, क्या कष्ट है? हाँ, तदनुरूप परिणमन करने में पुरुषार्थ होना चाहिये।

प्र.-2556 भावना और ज्ञान में क्या अंतर है?

उत्तर- भावना विकल्पात्मक, परिवर्तनशील होती है किंतु ज्ञान जानन रूप होता है, सिर्फ जानने रूप क्रिया में राग द्वेष मोह नहीं होता है यही अंतर है। किसी ज्ञेय पदार्थ को जानते समय अनेक शुभाशुभ विकल्प न होना ज्ञप्तिक्रिया है और जानते वक्त अंतरंग में उत्पन्न हुई तरंगे भावना है।

प्र.-2557 ज्ञान और अनुभव में क्या अंतर है?

उत्तर- सभी वस्तुओं के स्वरूप को यथावत् जानना ज्ञान है और तदनुरूप में परिणमन करना अनुभव है यही इन दोनों में अंतर है। जैसे नर्स प्रसूति की वेदना को जानती है किंतु अनुभव नहीं करती और प्रसूति करने वाली माता प्रसूति की वेदना को जानती हुई अनुभव भी करती है। आत्मा का अनुभव दर्शनोपयोग से और ज्ञेय पदार्थों का ज्ञान ज्ञानोपयोग से होता है।

प्र.-2558 क्रिया का स्वरूप अंतर तथा आधार क्या है?

उत्तर- परिणमन करने को क्रिया कहते हैं। भेद दो हैं। नामः- अर्थक्रिया और व्यंजनक्रिया। इन दोनों क्रियाओं में और क्रियाओं के आधार में अंतर है। ज्ञप्तिक्रिया ज्ञानगुण में होती है तथा इसका आधार भी ज्ञानगुण है। परिणतिक्रिया चारित्र गुण में होती है और इसका आधार भी चारित्रगुण है ऐसे ही अनंतगुणों में क्रिया और क्रिया के आधार में अंतर समझना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 2558 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 78वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 79वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निर्वाण की प्राप्ति क्यों नहीं?

णियतच्चुवलद्धिविणा सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण।

सम्मत्तुवलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि णियमेण ।।79।।

निजतत्त्वोपलब्धिं विना सम्यक्त्वोपलब्धिर्नास्ति नियमेन।

सम्यक्त्वोपलब्धिं विना निर्वाणं नास्ति नियमेन।।

णिय तच्चुवलद्धि निजात्मप्राप्ति **विणा** बिना **णियमेण** नियमतः **सम्मत्तुवलद्धि** सम्यक्त्वोपलब्धि **णत्थि** नहीं होती और **सम्मत्तुवलद्धि विणा** इसके विना **णियमेण** नियमतः **णिव्वाणं** निर्वाण

णत्थि नहीं होता है।

प्र.-2559 निज तत्त्व की उपलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर- निज शुद्धात्म तत्त्व की सम्यक् प्राप्ति को निज तत्त्व की उपलब्धि कहते हैं।

प्र.-2560 निज तत्त्व की उपलब्धि किससे होती है?

उत्तर- एकदेश निज तत्त्व की उपलब्धि, प्राप्ति सामान्य यथाख्यात चारित्र से होती है।

प्र.-2561 सामान्य और विशेष यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति किससे होती है?

उत्तर- सामान्य यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति मोह कर्म के क्षय से 12वें गुणस्थान में और विशेष यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति योग के अभाव में अयोगकेवली के चरम समय में व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान से होती है।

प्र.-2562 अयोगकेवली को और क्या क्या प्राप्त होता है?

उत्तर- अयोगकेवली को पूर्ण संवर, पूर्ण निर्जरा तथा मोक्ष प्राप्त होता है।

प्र.-2563 मोक्ष में क्या अनंत गुण पूर्ण रूप से व्यक्त हो जाते हैं?

उत्तर- नहीं, मोक्ष में सभी गुण अनंतवें भाग ही व्यक्त होते हैं, शेष अनंत बहुभाग अव्यक्त रहते हैं।

प्र.-2564 यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं और यह कौन सा भाव है?

उत्तर- चारित्रगुण का जैसा स्वभाव कहा है वैसा ही स्वभाव में स्थिर होने को, परिणमन करने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह यथाख्यातचारित्र औपशमिकभाव और क्षायिकभाव है।

प्र.-2565 ये दोनों भाव कहाँ और कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- ये दोनों भाव 11वें, 12वें गुणस्थान में क्रमशः मोह के पूर्ण उपशम और क्षय से उत्पन्न होते हैं।

प्र.-2566 यथाख्यात चारित्र को पारिणामिक भाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- सामान्य यथाख्यातचारित्र तारतम्यता से कषायाभावानुसार उत्पन्न नैमित्तिकभाव होने के कारण पारिणामिकभाव नहीं कहा किंतु अपरिणामी, ध्रौव्य स्वभाव वाले चारित्रगुण को पारिणामिकभाव कहा है।

प्र.-2567 यथाख्यात चारित्र को शेष भाव वाला भी कहा है क्या?

उत्तर- विशेष, परिणामी, उत्पाद व्यय स्वभावी को औपशमिक और क्षायिकभाव वाला भी कहा है।

प्र.-2568 अभव्य जीवों के कौन सा चारित्रभाव होता है और कौनसा नहीं?

उत्तर- अभव्य, दूरानुदूरभव्य, अनादिसादिमिथ्यादृष्टियों के औदयिकभावरूपी मिथ्याचारित्र एवं ध्रौव्यस्वभावी चारित्रगुण पारिणामिक भाव होते हैं, शेष तीन भाव नहीं।

प्र.-2569 क्या सम्यग्दर्शन के बिना आत्मतत्त्व की उपलब्धि हो सकती है?

उत्तर- नहीं, क्षीणमोही पद के बिना केवलज्ञान की प्राप्ति और केवलज्ञान के बिना परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नियम से नहीं होती है। सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यादृष्टियों को देशनालब्धि या सत्स्वाध्याय के द्वारा आत्मा की जानकारी हो जाती है किंतु आत्मा की उपलब्धि नहीं होती है।

प्र.-2570 निज तत्त्व की प्राप्ति के बिना सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा सामान्य अर्थ लिया जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- इस गाथा का सामान्य अर्थ ग्रहण करने पर अनादि सादि मिथ्यादृष्टि भव्य को भी निजतत्त्व की प्राप्ति के बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त होगा ऐसा प्रसंग आयेगा। यदि मिथ्यादृष्टि जीव निज तत्त्व

को प्राप्त कर लेता है तो फिर मुनिपद प्राप्त करने के लिए क्यों पुरुषार्थ करना? यही आपत्ति है।

प्र.-2571 परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कब होती है?

उत्तर- सामान्य यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के बाद एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यान से तीन घातियाकर्मों को क्षय कर अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतदानादि 5 और परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति युगपत् होती है।

प्र.-2572 यहाँ यथाख्यातचारित्र से केवलज्ञान आदि की प्राप्ति होती है और त.सू. में मिथ्याचारित्र से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है ऐसा कहा है सो यह अंतर क्यों?

उत्तर- त.सू. में मोक्षमार्ग की उत्पत्ति की अपेक्षा और यहाँ पूर्ण अंश की प्राप्ति कब कहाँ और कैसे किस क्रम से होती है यह कहा है अतः दृष्टिभेद होने से निर्दोष है। क्षायोपशमिक आदि पाँचों लब्धियां अत्यंत मंद परिणाम स्वरूप मिथ्याचारित्र हैं तथा आर्त रौद्रध्यान स्वरूप ही हैं।

प्र.-2573 तो क्या यहाँ इन गुणधर्मों के पूर्ण अंश व्यक्त हो जाते हैं?

उत्तर- यहाँ कर्मक्षयानुसार पूर्ण अंश व्यक्त होते हैं, शक्ति की अपेक्षा नहीं। शक्ति की अपेक्षा सभी गुणधर्मों का अनंतवाँ भाग ही व्यक्त होता है शेष अनंत बहुभाग अव्यक्त रूप में रहता है। जो अनंतानंत काल तक एक एक समय की अर्थपर्याय रूपी उत्पाद व्यय रूप से परिणमन करता रहेगा।

प्र.-2574 सम्यग्दर्शन के बिना मोक्ष प्राप्ति नियमतः नहीं होती है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन के बिना परमयथाख्यात चारित्र की, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान की और इनके बिना नियम से निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा कहा है।

प्र.-2575 गाथा में ''णियमेण'' ऐसा कहने से एकांत मिथ्यात्व क्यों नहीं है?

उत्तर- यहाँ **नियम से** ऐसा कहने पर अनेकांत गर्भित सम्यगेकांत नय की अपेक्षा होने से एकांतमिथ्यात्व का प्रसंग नहीं आता है किंतु नयनिरपेक्ष कथन करते तो नियमतः एकांतमिथ्यात्व का प्रसंग आ जाता है।

प्र.-2576 मिथ्यात्व कर्म का बंध उदय और सत्त्व कहाँ तक रहता है?

उत्तर- मिथ्यात्वकर्म का बंध और उदय पहले गुण. तक और सत्त्व 11वें गुणस्थान तक रह सकता है।

प्र.-2577 ये सात और नौ लब्धियां कौन कौन हैं?

उत्तर- क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य ये 7 लब्धियां और परमावगाढ़ रूप क्षायिकसम्यग्दर्शन, यथाख्यात क्षायिकचारित्र, क्षायिकज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य ये 9 लब्धियां होती हैं।

प्र.-2578 परमावगाढ़सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद निर्वाण की प्राप्ति कब होती है?

उत्तर- परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन प्राप्ति के बाद जघन्यतः अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः आठवर्ष अंतर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटी काल के अंतिम अंतर्मुहूर्त में क्रमशः बढ़ते हुए अयोगकेवली होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्र.-2579 यहाँ निषेध पूर्वक कथन क्यों किया?

उत्तर- जैसे ग्वालन दही को मथनी से मथकर घी निकालती है ऐसे ही विधि या निषेध पूर्वक कथन करके श्रोताओं को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराये यह विषय वक्ता का है और श्रोता को समझना है।

नोटः- यहाँतक 2579 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 79वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 80वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

किसके बिना किसकी शोभा नहीं?

साल विहीणो राओ दाणदयाधम्मरहिय गिहि सोहा ।

णाणविहीणतवोवि य जीवविणा देहसोहा णो।।80।।

सालविहीनो राजा दानदयाधर्मरहितगृहिशोभा।

ज्ञानविहीनतपोऽपि च जीवं विना देहशोभेव।।

सालविहीणो दुर्ग के बिना **राओ** राजा की **दाणदयाधम्मरहिय** दान दयाधर्म के बिना **गिहि** गृहस्थ की **जीवविणा** जीव के बिना **देहसोहा** देह की शोभा, **णो** नहीं होती है **य** और वैसे ही **णाणविहीण** ज्ञान विहीन **तवो** तप की **वि** भी **सोहा** शोभा नहीं होती।

प्र.-2580 बिना परकोटे के राजा की सुंदरता क्यों नहीं होती है?

उत्तर- जैसे कोई धनवान गंदे वस्त्र पहने हो, टूटी फूटी झोपड़ी में रहता हो तो उसे दीनदरिद्री ही कहेंगे ऐसे ही राजा अपने नगर की, प्रजा की, सपरिवार की रक्षा करने के लिए, सुखी संपन्न बनाने के लिए किले के चारों तरफ परकोटा बनवाते हैं जिससे शत्रु को अंदर आने के लिए बहुत कुछ सोचना पड़ेगा तब कहीं अंदर आ सकता है अन्यथा बाहर से देखकर भाग जायेगा अतः नगर के चारों तरफ बहुत ऊंचा परकोटा होने से सभी का समय अच्छी तरह से निराकुलतामय व्यतीत होता है एवं परकोटा न होने से सभी का जीवन अव्यवस्थित रहने के कारण सुखी संपन्न नहीं हो पाता जिससे राजा की शोभा सुंदरता नहीं होती है।

प्र.-2581 किला, परकोटा और खाई किसे कहते हैं, इनकी रचना क्यों कराते थे?

उत्तर- **किलाः-** राजा महाराजाओं के निवास स्थान को किला कहते हैं। **परकोटाः-** उस किले की रक्षा के लिए, किले के चारों तरफ बहुत ऊंची मजबूत दीवार को परकोटा कहते हैं। जो सामान्य प्राणियों के अगम्य होती है। **खाईः-** परकोटा के चारों तरफ गहरा चौड़ा गड्ढा होता है उसमें भरपूर पानी भरा होता है जिससे शत्रुदल आसानी से नहीं आ पाते। स्वयं और प्रजा की रक्षा के लिए, धर्म और सुखशांति से समय व्यतीत करने के लिए राजागण इनकी रचना करवाते थे।

प्र.-2582 जब परकोटा और खाई सहित किला है तो आवागमन कैसे हो सकता है?

उत्तर- नहीं, नगर में चारों दिशाओं के दरवाजों से राजा प्रजा का अंदर बाहर गमनागमन होता रहता है और इन्हीं गोपुरों में अत्यंत शक्तिशाली द्वारपाल रक्षा के लिए सशस्त्र खड़े रहते हैं। इनके माध्यम से नगर में अजान व्यक्ति एकदम से प्रवेश नहीं कर पाता। अभी वर्तमान में नगर आदिकों में ऐंसी व्यवस्था न होने के कारण आतंकी आकर आतंक मचाके चले जाते हैं, जिससे सभी चिंतित और असुरक्षित हैं।

प्र.-2583 वर्तमान में अब खाई परकोटा क्यों नहीं बनवाते हैं?

उत्तर- अभी वर्तमान में राजनीति, धर्मनीति नहीं रही, नेताओं का प्रजा के प्रति आत्मीयता, पारिवार जैसा संबंध नहीं रहा और धर्मयुद्ध भी नहीं रहे, अब तो कूटनीति चोरों की तरह हवाई हमले कर या छिप करके बममारी कर प्रजा को, तनधन को नुकसान कर चले जाते हैं और नेतागण मीटिंग कर प्रस्ताव पास करते रहते हैं कि हम ऐसा करेंगे वैसा करेंगे किंतु अंतरंग में प्रजागणों के साथ में प्यार न होने के कारण प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर पाते हैं इसलिए सभी दुःखी हैं। यदि ये नेतागण अंतरंग से देश और प्रजा को अपना समझते होते तो पूर्व राजाओं की नीति को अपनाते जिससे सभी प्रसन्न होकर सुखी संपन्न होते रहते।

प्र.-2584 गृहस्थ किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- कामवासना से, आजीविका से, आहार आदि संज्ञाओं से, शृंगारालंकार आदि की तीव्र भावना से प्रताड़ित मनवालों को, दिनचर्या करने वालों को अथवा आरंभ परिग्रह से, ख्याति पूजा लाभ की भावना से, विषयकषायों से उत्पन्न भाववालों को गृहस्थ कहते हैं। तीन भेद हैं। **नामः-** अनंतानुबंधी कषायोदय सहित मिथ्यादृष्टि गृहस्थ, अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय सहित अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ, प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से उत्पन्न भाव वाले अणुव्रती ये तीन गृहस्थों के नाम हैं।

प्र.-2585 ये गृहस्थ किस मार्ग के अनुगामी हैं?

उत्तर- प्रथम मिथ्यादृष्टि गृहस्थ संसारमार्गी है यह कदाचित् अधोगामी और ऊर्ध्वगामी भी हो सकता है दूसरा अव्रतीसम्यग्दृष्टि बद्धायुष्कगृहस्थ चतुर्गतिगामी भी हो सकता है किंतु अबद्धायुष्क गृहस्थ और तीसरा अणुव्रती बद्धायुष्क अबद्धायुष्क गृहस्थ एकमात्र ऊर्ध्वगामी ही होते हैं।

प्र.-2586 ये तीनों गृहस्थ किस किस गुणस्थान वाले होते हैं?

उत्तर- प्रथम गृहस्थ के आदि के तीन गुणस्थान होते हैं। इनमें से आदि के दो गुणस्थान वाले एकमात्र संसारमार्गी पापी गृहस्थ कहलाते हैं। तीसरे गुणस्थान वाले गृहस्थ पुण्यपाप से मिले हुए मिश्र परिणाम वाले कहलाते हैं। अव्रती चौथे और अणुव्रती पाँचवें गुणस्थान वाले गृहस्थ मोक्षमार्गी पुण्यात्मा कहलाते हैं।

प्र.-2587 ये तीनों गृहस्थ चरमशरीरी होते हैं या अचरमशरीरी और अभी कैसे हैं?

उत्तर- ये तीनों प्रकार के गृहस्थ चरम और अचरमशरीरी भी होते हैं। इस काल और क्षेत्र में एकमात्र अचरमशरीरी, हीन संहननधारी, हीन परिणामी, सदोषी, प्रमादी, हीनाचारी सदाचारी गृहस्थ होते हैं।

प्र.-2588 चरमशरीर, अचरमशरीर किसे कहते हैं, ऐसे शरीरधारी को क्या कहते हैं?

उत्तर- जिस शरीर से उसी भव में मोक्ष की प्राप्ति हो ऐसे अंतिम शरीर को चरमशरीर और ऐसे शरीरधारी को चरमशरीरी कहते हैं। जिस शरीर से तद्भव मोक्ष न हो उसे अचरमशरीर तथा ऐसे को अचरमशरीरी कहते हैं।

प्र.-2589 ये दोनों शरीर वाले मनुष्य मनुष्यों की क्या सभी पर्यायों में पाये जाते हैं?

उत्तर- चरमशरीरी मनुष्य एकमात्र कर्मभूमिज, आर्य, उच्चवर्णी, उच्चगोत्री मनुष्यगति में ही और भावों से त्रिवेदी तथा द्रव्य से पुरुषवेदी ही होते हैं ऐसे मनुष्य सम्मूर्च्छन मनुष्यों में, भोगभूमियों में, मलेच्छखंडों में नहीं होते हैं किंतु अचरमशरीरीमनुष्य मनुष्यों की समस्त योनियों में उच्चनीच गोत्री पाये जाते हैं।

प्र.-2590 ये दोनों शरीर वाले जीव क्या चारों गतियों में पाये जाते हैं?

उत्तर- चरमशरीरी जीव एकमात्र मनुष्यगति में ही और अचरमशरीरी जीव चारों गतियों में पाये जाते हैं।

प्र.-2591 सभी मनुष्यों में, सभी कालों और क्षेत्रों में चरमशरीरी पाये जाते हैं क्या?

उत्तर- चरमशरीरी मनुष्य सभी मनुष्यों में सर्वदा और सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं किंतु कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में ही होते हैं क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति केवल चौथे काल में जन्मे मनुष्यों को ही होती है। इस अवसर्पिणी काल के दोष से तीसरे काल में जन्मे और मोक्ष को प्राप्त हुए तथा चौथे काल में जन्मे मनुष्य पंचमकाल में भी मोक्ष को प्राप्त हुए जैसे जंबूस्वामी, श्रीधरकेवली आदि।

प्र.-2592 चरमशरीरी, अचरमशरीरी गृहस्थों की शोभा किसमें है और किसमें नहीं?

उत्तर- इन चरम अचरमशरीरी गृहस्थों की शोभा जिनेंद्राज्ञा के पालन से होती है किंतु जो गृहस्थ जिनोक्त कर्तव्यों का पालन नहीं करते हैं उनकी उभयलोक में सुंदरता नहीं होती है जैसे मंदिर की शोभा शिखर से और शिखर की कलश, ध्वजा से होती है इनके बिना मंदिर की शोभा नहीं

होती है ऐसे ही जिनेंद्रभक्त गृहस्थों की दान दया आदि धर्मों की प्रतिज्ञा को धारणकर पालन करने से होती है, अन्यथा नहीं।

प्र.-2593 गृहस्थ धर्म पालन किये बिना गृहस्थों की शोभा क्यों नहीं होती है?

उत्तर- जैसे आवारा बैल सर्वत्र दुतकारा जाता है, पीटा जाता है, आदर न पाकर अपमान को प्राप्त होता है ऐसे ही कर्तव्य विहीन, प्रतिज्ञा विहीन गृहस्थों की शोभा नहीं होती है।

प्र.-2594 आ. श्री ने दान दया आदि को पुण्य न कहकर धर्म क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ आ. श्री ने पुण्य और धर्म को एकार्थवाची मानकर विधान किया है क्योंकि जैसे धर्म आत्मा को उत्तम सुख में पहुंचाता है, पवित्र कराता है वैसे ही **पुनाति आत्मानं पूयतेऽनेन इति वा पुण्यम् तत्सद्वेद्यादि** जो आत्मा को पवित्र करता है या जिसके द्वारा आत्मा पवित्र होती है वह पुण्य है जैसे सातावेदनीय आदि तभी तो आ. श्री ने "**धम्मो दयाविसुद्धो**" 24 बो.पा., "**चारित्तं खलु धम्मो**" 7 प्र.सा. "**जीवाणं रक्खणं धम्मं**" 478 का. अनु. आदि वाक्यों से कहा है। कहीं कहीं लौकिक परिभाषायें या व्यवहारिक परिभाषायें और शास्त्रीय परिभाषायें समान होतीं हैं और कहीं कहीं असमान होतीं हैं।

प्र.-2595 ज्ञान के बिना तप की शोभा नहीं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अज्ञान पूर्वक तप करने से कर्मों की विशेष निर्जरा न होकर एकमात्र कर्मों का आश्रव बंध ही होता है जो संसार भ्रमण का ही कारण है अतः ज्ञान के बिना तप की शोभा नहीं होती है ऐसा कहा है।

प्र.-2596 क्या अज्ञान पूर्वक तप करने से सामान्य निर्जरा होती है?

उत्तर- हाँ, अज्ञानपूर्वक तप करने से असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा न होकर सामान्य निर्जरा समयप्रबद्ध मात्र होती ही है क्योंकि "**ततश्च निर्जरा**" इस सूत्रानुसार फल देने के बाद में कर्मों की निर्जरा हो जाती है यही सामान्य निर्जरा है। क.का. में आश्रव बंध संवर तथा सामान्य निर्जरा का द्रव्य समयप्रबद्ध मात्र कहा है और मोक्षमार्गियों के निर्जरा द्रव्य प्रतिसमय[2] असंख्यात गुणा[2] बढ़ता जाता है।

प्र.-2597 तप के बिना क्या ज्ञान की शोभा होती है?

उत्तर- नहीं, जैसे ज्ञान के बिना तप की शोभा नहीं होती है वैसे ही तप के बिना ज्ञान की शोभा नहीं होती है। तप के बिना ज्ञान जिह्वा में उत्पन्न हुई खाज खुजलाने के समान है, तप के बिना ज्ञान लंगड़ा है तो ज्ञान के बिना तप अंधा है। दोनों ही पृथक्[2] हित के साधक नहीं हैं और दोनों ही युगपत् हित के साधक हैं।

प्र.-2598 ज्ञान और तप का कार्य क्या क्या है?

उत्तर- ज्ञान का कार्य गुणदोष, सदोष निर्दोष, शुभाशुभ, पुण्यपाप आदि को यथावत् जानना? तथा जानकारी होने के बाद में दोषों को, कर्मों को, जलाना, दूर करना, शोधन करना तप का कार्य है।

प्र.-2599 यह कार्य जब दोनों का है तो फिर संसार में इतना आतंक क्यों?

उत्तर- जैसे दूध गुणकारी होने पर भी जहर के संसर्ग से मारक कष्टदायक बन जाता है वैसे ही ज्ञान और तप अनेक गुणों से संपन्न होने पर भी मिथ्यात्व के संसर्ग से संसार के, पाप के, आतंक के साधन बन जाते हैं।

प्र.-2600 यदि सज्जनों को ऊपरवाले ने बनाया है तो दुर्जनों को किसने बनाया?

उत्तर- ये सभी अपने अपने भाग्य और पुरुषार्थ के अनुसार बने हुए हैं ईश्वर ने, अल्लाह ने नहीं बनाये हैं। यदि ये सभी ईश्वर ने, अल्लाह ने बनाये हैं तो क्या सरकार नेतागण, कोर्ट कचहरी वाले

ईश्वर अल्लाह को नहीं मानते हैं? इन पर विश्वास नहीं करते हैं? फिर आतंकवादियों को, दुर्जनों को, अपराधी क्यों कहा जाये? यदि इन्होंने दुर्जन आतंकवादी नहीं बनाये हैं तो वह सबका कर्ताधर्ता है ऐसा क्यों कहा जाये? यदि पशुपक्षियों को मारना काटना अपराध नहीं है तो मनुष्यों को मारनाकाटना अपराध क्यों? यदि निरपराधी मनुष्यों को मारना, काटना, बंधक बनाना, ताड़ना देना अपराध है तो निरपराधी पशुपक्षियों को क्यों मारा जाये? क्या यह अपराध नहीं हैं? आजकल जब अपने सदस्य मारे जाते हैं, परिवार, रिश्तेदार, नातेदार मारे जाते हैं तब लगता है कि यह पाप है सो ऐसे निरपराधी मछली, मुर्गे, बकरे आदि नर मादा, पशुपक्षी मारेकाटे जा रहे हैं तो यह हिंसा पाप क्यों नहीं? बिचारे इन घास पत्ते खाने वालों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? अतः आपसे अपनी रक्षा की भीख मांगते हैं और कुछ नहीं, बिना मकान, दुकान व्यापार के घासपत्तियां खा कर, पानी पी कर अपना गुजारा कर रहे हैं इनकी रक्षा करो क्योंकि ये मनुष्यों का निष्कपट निस्वार्थ भाव से उपकार करते हैं, किंचित् मात्र भी अपकार नहीं करते हैं। यदि निरपराधी मनुष्यों की रक्षा करना, सहायता करना धर्म है तो असहाय निरपराधी पशुपक्षियों की रक्षा करना धर्म क्यों नहीं? अतः अपनी रक्षा चाहते हो तो सभी की रक्षा करो। जब सूर्यास्त होता है तो अंधकार छा जाता है और सूर्योदय होने पर प्रकाश होता है इसी तरह जब मिथ्यात्व और विषयकषायोदय से युक्त प्रवृत्ति होती है तब सर्वत्र अंधकार छा जाता है तथा जब ज्ञान सूर्य का उदय होता है तो सर्वत्र शांति का वातावरण रामराज्य छा जाता है।

प्र.-2601 संसारी जीव और मुक्त जीव किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादि कर्मों से सहित जनम मरण करने वाले को संसारी जीव कहते हैं और जिन्होंने ध्यान के द्वारा इन कर्मों को नष्ट कर परम शुद्धावस्था प्राप्त कर ली है उन्हें मुक्त जीव कहते हैं।

प्र.-2602 शरीर किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्मोदय से प्राप्त पुद्गलपिंड को शरीर कहते हैं। भेद पाँच हैं। नामः- औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर।

प्र.-2603 औदारिक शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर- औदारिक नामकर्म, बादरनामकर्म, सूक्ष्मनामकर्मोदय से प्राप्त शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं या जो जीर्णशीर्ण अवस्था के प्राप्त हो, जो प्रतिघात को प्राप्त हो, दूसरों को रोके और दूसरों से रुके या प्रतिघात को प्राप्त न हो, दूसरों से न रुके, न दूसरों को रोके उसे औदारिक शरीर कहते हैं।

प्र.-2604 ईश्वर के समान क्या सभी सूक्ष्मजीव सर्वव्यापी हैं?

उत्तर- जैनों ने ईश्वर को केवल लोकपूरण समुद्घात और ज्ञेय ज्ञायक संबंध की अपेक्षा सर्वव्यापी माना है किंतु सर्वकाल और सब तरह से सर्वव्यापी नहीं माना है यदि सर्वत्र सर्वकाल सर्वव्यापी माना जाये तो जिस प्रकार मंदिर, देवस्थान, चर्च, मस्जिद आदि को पवित्र मानकर मलमूत्र क्षेपण तथा गृहस्थों की लौकिक क्रियायें नहीं करते हैं ऐसे ही ईश्वर को सर्वत्र सदाकाल सर्वव्यापी मानने पर संपूर्ण क्षेत्र ही मंदिर, देवस्थान आदि कहलाये अतः धर्मक्षेत्रों में मलमूत्र क्षेपण और गृहस्थगण लौकिक क्रियायें कैसे कर सकते हैं किंतु सभी सूक्ष्मजीव एकमात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थान वाले पापी होने से सर्वत्र सर्वकाल सर्वव्यापी हैं।

प्र.-2605 जीव के बिना किस शरीर की शोभा नहीं होती है?

उत्तर- यहाँ मनुष्यों संबंधी औदारिकशरीर को ग्रहण करना चाहिये। मनुष्य जन, धन, पद से कितना ही विशाल हो पर आत्मा के निकल जाने पर उस शरीर को कोई नहीं पूजता, न सम्मान करता है सिर्फ दफन करने, जलाने के काम आता है क्योंकि सर्वत्र गुण और गुणवानों की पूजा होती है, गुणहीन नहीं पूजा जाता है इसलिए सदाचार सद्विचार विहीन पापियों के, व्यसनियों के शरीर

की शोभा नहीं होती है।

प्र.-2606 किस जीव के बिना कैसे शरीर की शोभा नहीं होती है और होती है क्या?

उत्तर- मोक्षमार्ग से बाह्य जीवों के शरीर की शोभा नहीं होती है किंतु मोक्षमार्गी तथा इनके शरीर की सर्वत्र शोभा होती है, पूजा होती है जैसे **जिंदा हाथी लाख का मरा सवालाख का।**

प्र.-2607 जीव के बिना शरीर की शोभा क्यों नहीं होती है?

उत्तर- जैसे सुगंध के बिना पुष्प, रस के बिना गन्ना की शोभा नहीं वैसे ही जीव के बिना मनुष्यों का शरीर किसी भी लौकिक लोकोत्तर कार्यों में शोभा नहीं पाता। पशुपक्षियों के शरीर से, मलमूत्र से मनुष्य अपना काम निकाल लेता है किंतु मनुष्य का शरीर किसी भी काम में नहीं आता है तब शोभा कैसे हो सकती है?

प्र.-2608 तो क्या जीव के बिना सभी औदारिक शरीरों की शोभा होती है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही होती है। मोक्षमार्गस्थ साधुओं की आत्मा से सहित या रहित शरीर की सर्वत्र पूजाराधना होती है, शोभा होती है किंतु संसारमार्गस्थ जीवों का शरीर सर्वत्र अपूज्य है, निंदित है।

नोटः- यहाँतक 2608 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 80वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 81वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अज्ञानी के विचार

मक्खि सिलिम्मि पडियो मुवइ जहा तह परिग्गहे पडियो।

लोही मूढो खवणो कायकिलेसेसु अण्णाणी।।81।।

मक्षिका श्लेष्मणि पतिता म्रियते यथा तथा परिग्रहे पतितः।

लोभी मूढः क्षपणः कायक्लेशेषु अज्ञानी।।

जहा जैसे **सिलिम्म** कफ में **पडियो** पड़ी **मक्खी** मक्खी **मुवइ** मरती है **तह** वैसे ही **परिग्गहे** परिग्रहासक्त **लोहीमूढोअण्णाणी- खवणो** लोभी मूर्ख अज्ञानी साधु **कायकिलेसेसु पडियो** कायक्लेश में पड़कर मरता है।

प्र.-2609 मक्खी किसे कहते हैं, कैसी होती है, इसके खाने से क्या हानि है?

उत्तर- चौइंद्रिय तिर्यंच मक्खी विषैलाजीव है। यदि मनुष्य के पेट में किसी भी प्रकार से चली जाये तो शीघ्र ही उल्टी हो जाती है, पेट में जाने से अनेक बीमारियां हो जातीं हैं यही हानि है।

प्र.-2610 मक्खी कष्ट क्यों पाती है और दुःखी होने का क्या कारण है?

उत्तर- जिह्वालंपटी होने के कारण मक्खी कष्ट पाती है। **''मक्खी गुड़ में गड़ रहे पंख रहे लिपटाय। हाथ मले और शिर धुने लालच बुरी बलाय।''** जैसे चिकने गीले, सड़ेगले गुड़, शक्कर, कफ, मलमूत्रादि में लोभ सहित बैठने पर मक्खी के पंख चिपकने से हाथों को मलती हुई, शिर धुनती हुई कष्ट पाती है अधिक समय तक चिपकी रहने से मृत्यु भी हो जाती है ऐसे ही परिग्रहासक्त साधु दुःखी होकर मरता है।

प्र.-2611 तो क्या केवल कफ, गीले गुड़ आदि में चिपक कर ऐसा कष्ट पाती है?

उत्तर- हाँ, गीले मलादि शुद्धाशुद्ध चिकनी सामग्रियों में भोजनाकांक्षा से चिपक कर कष्ट पाती है।

प्र.-2612 परिग्रह कैसे होता है?

उत्तर- समस्त योनियों से या समस्त आत्मप्रदेशों से विकारों, कर्मों के ग्रहण करने से, औदयिकभावों को, दुर्भावना और बाह्य चेतन अचेतन मिश्र सामग्री के ग्रहण करने से परिग्रह होता हैं।

प्र.-2613 लोभ और लोभी की उत्पत्ति कैसे होती है और इनमें क्या संबंध है?

उत्तर- पूर्वबद्ध लोभोदयानुसार तद्रूप परिणति से लोभ और लोभी की उत्पत्ति होती है। कार्यकारण व कारणकार्य का संबंध है।

प्र.-2614 मूढ़ किसे कहते हैं?

उत्तर- विषयकषायी को, दुरभिमानी, अहंकारी को, अजानकार को मूढ़/मूर्ख कहते हैं। वास्तव में यथार्थ ज्ञान विहीन व्यक्ति को मूढ़ कहते हैं और शेष मूढ़ अपेक्षा कृत होते हैं, सर्वथा नहीं। यदि ऐसा न माना जाय तो समस्त प्राणी मूर्ख कहलायेंगे। जैसे भौतिकज्ञानी आध्यात्मवेत्ता न होने से मूढ़ है तो अध्यात्मवेत्ता भौतिकज्ञानी न होने से मूढ़ है इसी तरह व्यापारीवर्ग समस्त व्यापारों को नहीं जानते, जो जैसा व्यापार करता है वह उसका जानकार है, अन्य का नहीं सो उस अपेक्षा वह मूढ़ है अतः जहाँ जैसा प्रसंग हो वहाँ वैसा ही अर्थ लेकर मूढ़ और ज्ञानी की व्याख्या समझना चाहिये।

प्र.-2615 क्षपक किसे कहते हैं?

उत्तर- अनादि और सादिकालीन विकारों, कर्मों को क्षय करने के लिए जिस मुद्रा को धारण किया था या जिस बाह्य भेष को धारण कर कर्मों का क्षय किया है उस मुद्रा वाले को क्षपक कहते हैं।

प्र.-2616 अन्यमति साधुओं को क्षपक कह सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, नोगुण नामनिक्षेप से अजैन साधुओं को भी क्षपक कह सकते हैं। भावनिक्षेप से नहीं।

प्र.-2617 इन अन्यमति साधुओं को भावनिक्षेप से क्षपक क्यों नहीं कहा?

उत्तर- अन्यमतियों की मान्यता प्रतिपक्ष का निषेधकर सर्वथा ऐसा ही है, नीतिनियम की, प्रतिपक्षी धर्मों की तथा अनेकांत स्वरूप सापेक्ष स्वीकारता न होने से इनको भावनिक्षेप से क्षपक नहीं कहा।

प्र.-2618 जब क्षपक का ऐसा स्वरूप है तो इसे अज्ञानी क्यों कहा?

उत्तर- क्षपक का स्वरूप, लक्षण ऐसा ही है किंतु विषयकषायाधीन होने से लोभी अज्ञानी कहा है क्योंकि भवभवांतरों से चला आया विषयकषायों का संस्कार एकाएक कैसे मिट जायेगा?

प्र.-2619 सर्वश्रेष्ठ मुनि को संबोधन के लिए कफ में पड़ी मक्खी का दृष्टांत क्यों दिया?

उत्तर- जब वैरागी गृहस्थ ने दिगंबर यथाजातरूप जिनमुद्रा धारण की थी तब लक्ष्य सही था, सावधानी भी सही थी किंतु बाद में कुसंगति, निदानबंध या ख्याति पूजा लाभ के कारण, दुर्भावना में लिप्त होने से अपने समीचीनलक्ष्य को खोकर, कुत्सित लक्ष्य में फंस जाने से इसको ऐसे लक्ष्य से निकालने के लिए मक्खी का दृष्टांत दिया है कि हे साधो! जैसे मक्खी लोभासक्त हो कफ में चिपक कर कष्ट पाती है ऐसे ही विषयासक्त हो विषयसेवन से तूं भी कष्ट प्राप्त करेगा व कर रहा है अतः संबोधनार्थ यह दृष्टांत दिया है।

प्र.-2620 कायक्लेशतप के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- केवल शरीर के माध्यम से मन पूर्वक उपसर्ग परीषह जीतने को कायक्लेशतप कहते हैं। दो भेद हैं। यदि ध्येय सम्यक् है तो कायक्लेश सम्यक्तप और ध्येय मिथ्या है तो मिथ्या है।

प्र.-2621 अज्ञानी किसे कहते हैं, कितने गुणस्थान और कितने अज्ञान होते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से युक्त जीवों को अज्ञानी कहते हैं। अज्ञानी जीव आदि के दो गुणस्थानों में होते हैं। इन दोनों में जघन्यतः दो तथा उत्कृष्ट तीन अज्ञान होते हैं।

नोटः- यहाँतक 2621 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 81वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 82वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मोक्ष क्यों नहीं?

णाणब्भासविहीणो सपरं तच्चं ण जाणए किं वि।
झाणं तस्स ण होइ हु जाव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खं।।82।।

ज्ञानाभ्यासविहीनः स्वपरं तत्त्वं न जानाति किमपि।

ध्यानं तस्य न भवति हि तावन्न कर्म क्षपयति न हि मोक्षः।।

णाणब्भासविहीणो ज्ञानाभ्यास के विना जीव **सपरं** स्व पर **तच्चं** तत्त्व को, **किं वि** कुछ भी **ण** नहीं **जाणए** जानने से **तस्स** उसके **झाणं** शुक्लध्यान **हु** ही **ण** नहीं **होइ** होता है और **जाव** जब तक शुक्लध्यान न होने से **कम्मं** कर्म का **खवेइ** क्षय **ण** नहीं होता है और तभी तक **हु** नियम से **मोक्खं** मोक्ष **ण** नहीं होता है।

प्र.-2622 ज्ञानाभ्यास किसे कहते हैं और इसका क्या फल है?

उत्तर- निरंतर जिनेंद्रोपदेश का अध्ययन करने को ज्ञानाभ्यास कहते हैं और इसका फल भेदविज्ञान है।

प्र.-2623 ज्ञानाभ्यास का फल भेदविज्ञान है तो क्या सभी को भेदविज्ञान हो जायेगा?

उत्तर- भेदविज्ञान के लिए ज्ञानाभ्यास सामान्य साधन है, साधकतम नहीं अतः सभीको भेदविज्ञान नहीं होगा किंतु किसी किसी को हो सकता है अथवा ज्ञानाभ्यास पूर्वक ही भेदविज्ञान होता है।

प्र.-2624 सम्यक् भेदविज्ञान की प्राप्ति का साधकतम साधन क्या है?

उत्तर- सम्यक् भेदविज्ञान की प्राप्ति का साधकतम साधन मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का उदयाभाव है अथवा सत्त्व का क्षय है इस अंतरंग कारण के होने पर नियम से भेदविज्ञान होता है।

प्र.-2625 ज्ञानाभ्यास क्या सभी गतियों में और सभी जीवों के होता है?

उत्तर- केवल सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्तक चारों गति वालों के ज्ञानाभ्यास होता है किंतु असैनियों के नहीं।

प्र.-2626 नरक और तिर्यंचों में ज्ञानाभ्यास कैसे हो सकता है?

उत्तर- नरक और तिर्यंचों में अनुप्रेक्षा नाम का ज्ञानाभ्यास होता है, शेष वाचना, पृच्छना, आम्नाय ये तीन तो होते ही नहीं कदाचित् नारकियों को देवों के द्वारा धर्मोपदेश सुनने को मिल जाता है पर नारकी स्वयं नारकियों को धर्मोपदेश नहीं दे सकता है अथवा जब नारकी क्रुद्ध होकर अपशब्द उच्चारण करता है तब उस मिथ्यादृष्टि नारकी के अपशब्दों को सुनकर सम्यग्दृष्टि नारकी मोक्षमार्गानुकूल अर्थ निकालकर संबोधन को प्राप्त हो जाता है जैसे यहाँ पर कोई अशिष्ट मानव **नालायक** शब्द रूप में गाली देता है तब सज्जन पुरुष उस अपशब्द को सुनकर **ना लायक** तूं इस कार्य के योग्य नहीं है, ऐसा कार्य मत कर ऐसा अर्थ निकालकर धैर्य धारण कर आक्रोश परीषह को जीत लेता है ऐसे ही सम्यग्दृष्टि नारकी नरक में अपशब्दों को आक्रोश परीषह मानकर धैर्य धारण कर परीषह जीत लेता है तभी असंख्यातगुणी निर्जरा करता है इसलिए धर्मोपदेश रूपी स्वाध्याय अंतरंगतप भी हो जाता है क्योंकि तप को ही कर्मनिर्जरा का साधकतम कारण कहा है फिर भी वहाँ बहुलता की अपेक्षा उपकार्य उपकारक भाव नहीं पाया जाता है ऐसे ही तिर्यंचों में धर्मोपदेश तीर्थंकरों से, मुनियों से, अणुव्रतियों से, अव्रती देव और मनुष्यों से प्राप्त होता है। कदाचित् तिर्यंच तिर्यंचों को अपने अपने अभिप्रायानुसार परस्पर में धर्मोपदेश देते हैं।

प्र.-2627 तिर्यंच तिर्यंचों को धर्मोपदेश कैसे देते हैं?

उत्तर- जब कोई तिर्यंच दुःखी होता है तो उसीकी जाती का तिर्यंच अपने संकेतों के द्वारा सांत्वना देता है, भोजन देता है, आपत्तियों से बचाता है, अपने स्थान में सुरक्षित ठहरा लेता है, असमर्थों को बीच में या पीछे कर आक्रमण कर्ताओं के साथ आक्रमण करने लग जाता है जो कि बंदरों

में, कुत्तों गाय भेंस, चिड़िया कौवा आदि सभी पशुपक्षियों में चारों प्रकार के दान की प्रक्रिया और धर्मोपदेश देखा जा रहा है।

प्र.-2628 भेदविज्ञान कैसे होता है और इसका क्या फल है?

उत्तर- सभी द्रव्यों के अनंतधर्म युगलों को स्व स्व लक्षणों से पृथक् पृथक् जानने से भेदविज्ञान होता है। भेदविज्ञानियों के नाना प्रकार के मोहांधकार नहीं होते हैं या हुए तो नष्ट हो जाते हैं। जैसे दीपक के जलाने पर अंधकार दूर हो जाता है ऐसे ही सम्यक्भेदविज्ञान के होने पर सभी अंधकार प्रायः कर नष्ट हो जाते हैं।

प्र.-2629 ज्ञानाभ्यास कहाँ करना चाहिये और इसका क्या फल है?

उत्तर- **''ज्ञानाभ्यास करे मन मांहि ताके मोह महातम नाहि।''** ज्ञानाभ्यास नित्य ही मन में करना चाहिये और इसका फल मोहांधकार का अभाव करना कहा है। द्वैतवादी- भेदविज्ञानी। अद्वैतवादी- अभेदविज्ञानी।

प्र.-2630 यहाँ भेदविज्ञान करने को क्यों कहा है?

उत्तर- मिथ्यादृष्टियों की अभेदबुद्धि को छुड़ाकर भेदविज्ञान कराने को भेदविज्ञान करने को कहा है।

प्र.-2631 अभेदज्ञान प्राप्त करने के लिए क्यों नहीं कहा गया है?

उत्तर- भेदविज्ञान का प्रतिपक्षी अभेदज्ञान कहा ही है। यदि सर्वथा भेदविज्ञान की ही बात कही जाये तो जैसा अभेदज्ञान मिथ्या है वैसा ही भेदज्ञान भी मिथ्या हो जायेगा अतः वस्तुतत्त्व की आत्मसिद्धि के लिए प्रतिपक्ष धर्म सहित सापेक्ष कथन करना ही चाहिए क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान के असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम बताये हैं इस कारण कोई मिथ्यादृष्टि जीव अभेदज्ञानी होते हैं तो कोई भेदज्ञानी।

प्र.-2632 सर्वथा भेदज्ञान या सर्वथा अभेदज्ञान का कथन करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- जैसे अजैनों में कोई सर्वथा अद्वैतवादी, द्वैतवादी, क्षणिकवादी, नित्यवादी आदि हैं वैसे ही यदि जैनों में भी सर्वथा किसी एक धर्म का कथन करने से अजैनपने का प्रसंग आता है यही आपत्ति है।

प्र.-2633 स्वतत्त्व और परतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर- अनंतधर्म युगलों से युक्त स्वयं की आत्मा को, स्व द्रव्य गुण पर्यायों को स्वतत्त्व कहते हैं। निज सत्ता से भिन्न चेतनाचेतन द्रव्य गुण पर्यायों को परतत्त्व कहते हैं। यद्यपि संसारावस्था में आत्मा कर्मों से लिप्त है, एकरूपता को प्राप्त हो रहे हैं फिर भी सभी का लक्षण अलग² होने से भिन्न² हैं, अपना² स्वचतुष्टय स्वयं में अस्तित्व लिये हुए हैं अतः प्रत्येक का अपना² स्वचतुष्टय स्वतंत्र होने से स्व परतत्त्व कहे जाते हैं।

प्र.-2634 ज्ञानाभ्यास के बिना क्या स्वपर तत्त्व को जान सकता है या नहीं?

उत्तर- पूर्व संस्कारवश स्व पर तत्त्व को चतुर्गति के जीव जानते हैं। जिसे शास्त्रकारों ने निसर्गज सम्यग्ज्ञान स्वयंबुद्ध कहा है किंतु भाव ज्ञानाभ्यास के बिना स्व परतत्त्व का ज्ञान नहीं हो पाता। यदि भावश्रुतज्ञान का संस्कार साथ में नहीं जाये तो जातिस्मरण किसका होगा? जैसे मिट्टी में बीज नहीं डालो तो अंकुर कैसे पैदा होगा? फिर आगे की अवस्थायें कैसे प्राप्त होंगी? अतः भावश्रुतज्ञानाभ्यास का होना परमावश्यक है।

प्र.-2635 ज्ञानाभ्यास के बिना और कौन सा फल प्राप्त नहीं होता है?

उत्तर- भावश्रुतज्ञानाभ्यास के बिना ध्यान नहीं होता अतः धर्मध्यानार्थ श्रुतज्ञानाभ्यास आवश्यक है।

प्र.-2636 क्या सभी ध्यानों की सिद्धि के लिए ज्ञानाभ्यास जरूरी है?

उत्तर- नहीं, अवश्य ही सभी ध्यानों की सिद्धि के लिए ज्ञानाभ्यास जरूरी नहीं है कारण मन के बिना एकेंद्रियों से असैनी पंचेंद्रिय तक ज्ञानाभ्यास नहीं पाया जाता है फिर भी इनके दुर्ध्यान है।

प्र.-2637 ध्यान के लिए ज्ञानाभ्यास जरूरी नहीं है तो आ. श्री ने विधान क्यों किया?

उत्तर- लौकिक सामान्यध्यानों की सिद्धि के लिए ज्ञानाभ्यास जरूरी नहीं है फिर भी लौकिक विशेषध्यानों की सिद्धि के लिए ज्ञानाभ्यास चाहिये ही क्योंकि जिसकी स्वयं को जानकारी नहीं है तो गधे के सींग की तरह उस का कैसे चिंतन कर सकते हैं? अतः आ. श्री ने विधान किया है।

प्र.-2638 वे कौन से ध्यान हैं कि जिसके लिए ज्ञानाभ्यास जरूरी है?

उत्तर- धर्मध्यान और शुक्लध्यान के लिए ज्ञानाभ्यास जरूरी है क्योंकि बिना ज्ञान के इन ध्यानों की सिद्धि नहीं हो सकती है। कहा भी है **"शुक्ले चाद्ये पूर्व विदः।"** त.सू.37 अ.9 आदि के दो शुक्लध्यान पूर्व श्रुतज्ञान धारियों के होते हैं। इन ध्यानों की सिद्धि के लिए द्रव्य और भावश्रुतज्ञान परमावश्यक है। बिना द्रव्यश्रुतज्ञान के भावश्रुतज्ञान नहीं होता और भावश्रुतज्ञान के बिना द्रव्यश्रुतज्ञान की कोई कीमत नहीं है।

प्र.-2639 श्रुतज्ञान से धर्मध्यान और शुक्लध्यान की सिद्धि कैसे हो सकती है?

उत्तर- जैसा जिसका ध्यान करना है वैसा ही ज्ञान होना जरूरी है। बिना ज्ञान के ध्यान कैसे करोगे?

प्र.-2640 धर्मध्यान और शुक्लध्यान किसे कहते हैं तथा इनके स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- रत्नत्रयी सरागी जीवों के द्वारा अनंतधर्मात्मक चेतनाचेतन मूर्तिक अमूर्तिक वस्तुओं के चिंतन करने को धर्मध्यान और मोहनीय के समूल क्षय या उपशम से उत्पन्न हुए ध्यान को शुक्लध्यान कहते हैं। चौथे से दसवें गुणस्थान तक धर्मध्यान के और ग्यारहवें गुणस्थान से सिद्धों तक शुक्लध्यान के स्वामी हैं।

प्र.-2641 धर्मध्यान और शुक्लध्यान के बिना क्या नहीं होता है?

उत्तर- धर्मध्यान और शुक्लध्यान के बिना कर्मों का पूर्ण रूप से संवर, निर्जरा, उपशम तथा क्षय नहीं हो सकता है अतः कर्मों को समूल क्षय करने के लिए इन दोनों ध्यानों की अत्यंत आवश्यकता है।

प्र.-2642 कर्मों की निर्जरा और क्षय में क्या अंतर है?

उत्तर- क्षायिकसम्यग्दृष्टि और क्षपकश्रेणी के बिना की हुई सामान्य निर्जरा, संख्यातगुणी, असंख्यात गुणी निर्जरा भी पतन कर मिथ्यात्व में आकर पुनः जैसा का तैसा कर्मबंध कर अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल तक संसार में भ्रमण कर सकता है किंतु विशेष ध्यानों के द्वारा कर्मों का समूल क्षय कर देने से कालांतर में कभी भी पुनः कर्म का बंध नहीं हो सकता है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-2643 निर्जरा और मोक्ष में क्या अंतर है?

उत्तर- पूर्वबद्ध कर्मों का आत्मा से थोड़ा थोड़ा एकदेश अलग हो जाना निर्जरा है और हमेशा के लिए आत्मा से कर्मों का पूर्णतः सर्वदेश अलग होना ही मोक्ष है यही इनमें अंतर है।

प्र.-2644 कर्मों के क्षय के बिना किस फल की प्राप्ति नहीं होती है?

उत्तर- अनादि सादिकालीन द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मों का क्षय किये बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

प्र.-2645 गाथा का विधि रूप में किस क्रम से अर्थ ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- भावश्रुतज्ञान और द्रव्यश्रुतज्ञान से भेदविज्ञान होता है। इससे धर्मध्यान, धर्मध्यान से शुक्लध्यान, शुक्लध्यान से कर्मों का क्षय और कर्मों के क्षय से मोक्ष की प्राप्ति होती है ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

प्र.-2646 किस ध्यान से किस किस कर्म का क्षय होता है?

उत्तर- संस्थानविचयधर्मध्यान या पृथक्त्ववितर्कशुक्लध्यान से मोहनीय का, एकत्ववितर्क शुक्ल -ध्यान से तीन घातिया का, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान से चारों अघातिया का क्षय होता है।

प्र.-2647 शेष धर्मध्यान और शुक्लध्यानों से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- शेष धर्मध्यान और शुक्लध्यानों से मूलोत्तर कर्म प्रकृतियों का समूल क्षय न होकर केवल निर्जरा ही होती है। जिससे क्रमशः अनंतगुणी[2] विशुद्धि बढ़ते[2] कर्मों को क्षय करने की भूमिका प्राप्त हो जाती है।

प्र.-2648 यहाँ पश्चादानुपूर्वी क्रम से किस प्रकार का अर्थ ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- इस गाथा में पश्चादानुपूर्वी क्रमानुसार मोक्ष की प्राप्ति कर्मों के क्षय से, कर्मों का क्षय शुक्लध्यान से, शुक्लध्यान की प्राप्ति धर्मध्यान से, धर्मध्यान की प्राप्ति भेदविज्ञान से, भेदविज्ञान की प्राप्ति ज्ञानाभ्यास से, ज्ञानाभ्यास की प्राप्ति शास्त्राभ्यास से, शास्त्राभ्यास की प्राप्ति देशनालब्धि से और देशनालब्धि की प्राप्ति आचार्य उपाध्याय और साधुओं से होती है। इस प्रकार यहाँ गाथा का अर्थ ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-2649 तीर्थंकर अरिहंतों से देशनालब्धि की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर- सम्यग्दृष्टियों को धर्मदेशना की प्राप्ति होती है, देशनालब्धि की नहीं क्योंकि तीर्थंकरों की धर्मसभा के 12 कोठों में एकमात्र सम्यग्दृष्टि जीव ही जाते हैं, मिथ्यादृष्टि नहीं तब इन्हें देशना कैसे प्राप्त होगी?

प्र.-2650 धर्मदेशना और देशनालब्धि में क्या अंतर है?

उत्तर- मोक्षमार्गियों को आत्मसाधना में दृढ़ता के लिए धर्मदेशना और मिथ्यादृष्टियों को मोक्षमार्गी बनाने के लिए देशनालब्धि होती है। तीर्थंकरों की धर्मदेशना और छद्मस्थों की धर्मदेशना तथा देशनालब्धि दोनों होती है क्योंकि धर्मदेशना और देशनालब्धि यह भेद वक्ता की अपेक्षा न होकर श्रोताओं की अपेक्षा से है।

प्र.-2651 धर्मदेशना किसे कहते हैं और कौन देता है?

उत्तर- 27 तत्त्वों के स्वभावों का लक्षण और अवस्थाओं के बताने को धर्मदेशना कहते हैं। यह तीर्थंकर प्रभु और सामान्य सर्वज्ञकेवली देते हैं।

प्र.-2652 देशनालब्धि किसे कहते हैं और कौन देता है?

उत्तर- 27 तत्त्वों के स्वभाव के प्रतिपादन करने को देशना और देशनालब्धि कहते हैं। आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठि देते हैं क्योंकि भोगी मोही मिथ्यादृष्टियों ने मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं किया है अब इन्हें प्राप्त करना है, प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा लगी हुई है कि यह आत्मतत्त्व तद्रूप में कैसे प्राप्त हो इसलिए ये उपदेश को सुनकर तदनुकूल आज्ञा को पालने में, खोजने में लगे हुए हैं अतः प्रमत्तसाधकों के दिव्य उपदेश को सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा धर्मदेशना और मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा देशनालब्धि कहा है।

प्र.-2653 आचार्य उपाध्याय साधु क्या धर्मदेशना दे सकते हैं?

उत्तर- नहीं, ये तीनों परमेष्ठी छद्मस्थ, अल्पज्ञ, प्रमादी होने से धर्मदेशना देने के अधिकारी नहीं है किंतु तीर्थंकर सर्वज्ञ अर्हंतों ने जो जैसी देशना दी है उसका वैसा ही पोस्टमेनवत् श्रोताओं को जिनोपदेश वितरण कर देते हैं अतः ये तीनों परमेष्ठि अपनी तरफ से कुछ भी प्रतिपादन नहीं करते हैं।

प्र.-2654 इन साधुओं के संबंध में धर्मदेशना के लिए पोस्टमेन का दृष्टांत क्यों दिया?

उत्तर- जैसे पोस्टमेन को जैसा पत्र प्राप्त हुआ वैसा ही पते के अनुसार पहुंचा देता है जिसके नाम

पत्र आया है वह पत्र को पढ़कर चाहे प्रसन्न हो या दुःखी हो इसमें पत्रवाहक का कोई दोष नहीं है ऐसे ही साधुवर्ग जिनेंद्रोपदेश को जैसा का तैसा श्रोताओं के पास पहुंचा देते हैं उसको सुनकर, पढ़कर श्रोतागण प्रसन्न हों या दुःखी हों इसमें इन साधुओं का कोई दोष नहीं है अतः यह दृष्टांत सटीक दिया है।

प्र.-2655 देशनालब्धि का क्या फल है?

उत्तर- धर्मगुरु से धर्मोपदेश को सुनकर आज्ञानुवर्ती बनकर आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील होना ही देशनालब्धि का फल है जैसे किसी वस्तु की जरूरत है तो उस वस्तु का नाम, कार्य, कालमर्यादा, कहाँ, कैसे, कब प्राप्त होगी? आदि विचारों से बाजार में जाकर वस्तु लेकर आ जाता है ऐसे ही गुरु के उपदेश से आत्मतत्त्व को जानकर तदनुकूल आज्ञा का पालन कर रत्नत्रय धर्म को प्राप्त करता है। लब्धि का अर्थ है प्राप्त होना। आज्ञाकारी बनकर जीवन में उतारना प्रायोग्यलब्धि प्राप्त होना है क्योंकि देशनालब्धि का नंबर तीसरा है तो प्रायोग्यलब्धि का नंबर चौथा है।

प्र.-2656 गृहस्थों के द्वारा देशनालब्धि की प्राप्ति हो सकती है क्या?

उत्तर- राजमार्ग में तो दिगंबर जैनाचार्यों के द्वारा ही देशनालब्धि की प्राप्ति होती है किंतु अपवादमार्ग में क्वचित् कदाचित् असंयमी मूलगुणधारी, देशसंयमी गृहस्थों के द्वारा भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है जैसे चारुदत्त सेठ ने बकरे को, जीवंधर ने कुत्ते को सन्मार्ग में लगाया, जंबूकुमार और इनकी पत्नियों की धर्म वार्ता को सुनकर वैरागी होकर विद्युतचोर आदि 500 चोरों ने दिगंबर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली और इंद्र देव आदि के द्वारा दूसरे देवगण, मनुष्य, पशुपक्षी तथा नारकी जीव भी रत्नत्रय को प्राप्त कर लेते हैं।

नोटः- यहाँतक 2656 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 82वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 83वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

प्रवचनसार का अभ्यास क्यों?

अज्झयणमेवझाणं पंचेंदिय णिग्गहं कसायं पि।

तत्तो पंचमयाले पवयणसारब्भासमेव कुज्जाओ।।83।।

अध्ययनमेवध्यानं पंचेंद्रियनिग्रहो कषायस्यापि।

ततः पंचमकाले प्रवचनसाराभ्यासमेव कुर्यात्।।

पंचमयाले पंचमकाल में **अज्झयणमेव** अध्ययन ही **झाणं** ध्यान है क्योंकि इससे **पंचेंदियणिग्गहं** पाँचों इंद्रियों और **कसायं** कषायों का **पि** भी निग्रह होता है **तत्तो** इसलिए **पंचमयाले** इस अवसर्पिणी काल के पंचमकाल में **पवयणसारब्भासमेव** प्रवचनसार का अभ्यास ही **कुज्जाओ** करना चाहिये।

प्र.-2657 अध्ययन का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है?

उत्तर- अधि उपसर्ग पूर्वक "इ" धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर अध्ययन शब्द व्युत्पन्न होता है। अपने आप को आधार बनाकर अपने ही प्रति अपनी ही ओर गमन करने को अध्ययन कहते हैं।

प्र.-2658 यहाँ अध्ययन को क्या कहा है और क्या नहीं कहा है?

उत्तर- आ. श्रीजी ने यहाँ अध्ययन को ध्यान कहा है। वह ध्यान धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान स्वरूप है, तथा मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से आर्तध्यान और रौद्रध्यान को ग्रहण नहीं करना चाहिये ऐसा कहा है।

प्र.-2659 अध्ययन को ध्यान क्यों कहा और ध्यान का फल क्या है?

उत्तर- अध्ययन करते समय शब्दों और शब्दों के अर्थों में मन स्थिर हो जाता है तब इंद्रियां भी मुर्दे की तरह चुपचाप रहीं आतीं हैं और कषायों का भी निग्रह हो जाता है। विषयकषायों का निग्रह होने से पापकर्मों का आश्रवबंध रोक देने से आगामी कर्मों का संवर एवं निर्जरा होती है यह ध्यान का उत्तम फल है।

प्र.-2660 क्या सभी प्रकार के ग्रंथों का अध्ययन करने को ध्यान कहा है?

उत्तर- सभी प्रकार के लौकिक शास्त्रों का अध्ययन करने को नहीं कहा है। यदि अपना मन अपने मार्ग में प्रतिज्ञाबद्ध नहीं है और लौकिक शास्त्रों का अध्ययन किया तो भटकना, मार्ग से च्युत होना, सन्मार्ग में, तत्त्वों में संदेह होना तथा कुहेतुओं से, कुसंगति से सन्मार्ग का बिगड़ना, जीवन का पतन होना आदि संभव है जो देखा जा रहा है। हाँ, यदि समंतभद्र, अकलंकादि जैसे न्यायनिपुण हो, निर्लोभीपना हो तो पढ़ने में कोई आपत्ति नहीं है। आज अनेक पंडितवर्ग न्यायसिद्धांत शास्त्री भी धन, पूजा, प्रतिष्ठा आदि के लोभ से एकांती कानजीपंथी बनकर जिनधर्म के ही विनाशक बने तथा अंत में अस्पतालों में जाकर इलाज कराते कराते वहीं दुर्मरण के पात्र हुए। यदि सही ज्ञानी होते तो धर्मरक्षा, धर्म का पालन करते और साधुओं के पास जाकर पापों का त्याग कर समाधि पूर्वक मरण कर सद्गति के पात्र बनते पर ऐसा क्यों नहीं किया।

प्र.-2661 अध्ययन करते समय मन और पाँचों इंद्रियों का निग्रह कैसे हो सकता है?

उत्तर- अध्ययन करते समय मन शास्त्र के शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ में, जिह्वा शब्दोच्चारण में, आँखें स्वर व्यंजनों को देखने में, कान शब्दों को सुनने में लग जाते हैं कि शब्दों का उच्चारण किस प्रकार से हो रहा है, नाक बिचारी मध्य में होने से अकेली कहाँ जायेगी? शरीर आसन में, हाथ शास्त्रजी को पकड़ने में, पृष्ठों को बदलने में लगे रहते हैं आदि हेतुओं से मन और इंद्रियां अपने अपने समीचीन कार्यों में स्थिर होने के कारण अशुभ विषयों से निग्रहपने को प्राप्त हो जातीं हैं।

प्र.-2662 अध्ययन करते समय कषायों का निग्रह कैसे हो सकता है?

उत्तर- अध्ययन के समय इंद्रियां और मन वश में होने से कषायें उत्पन्न नहीं होती हैं क्योंकि ये विषय कषायें ही अहितकारी हैं। मन ध्यान में एकाग्र होने पर उपसर्ग परीषहों का संवेदन नहीं होता है सो उस समय कषायों का निग्रह अपने आप ही हो जाता है।

प्र.-2663 विषय और कषाय क्या चेतन हैं या अचेतन?

उत्तर- इन दोनों में आत्मा का परिणमन चेतन और पुद्गल का परिणमन अचेतन है।

प्र.-2664 पाँचों इंद्रिय और मन की 28 प्रकार की सामग्री कौन कौन सी है?

उत्तर- **स्पर्शनेंद्रिय के 8 विषयः-** हल्का भारी, कोमल कठोर, ठंडा गरम, रूखा चिकना। **रसनेंद्रिय के 5 विषयः-** खट्टा, मीठा, कडुआ, कषायला, चरपरा। **घ्राणेंद्रिय के 2 विषयः-** सुगंध, दुर्गंध। **चक्षुरिंद्रिय के 5 विषयः-** काला, पीला, नीला, लाल, सफेद। **कर्णेंद्रिय के 7 विषयः-** षडज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद। **मन का विषयः-** श्रुतज्ञान। इष्टानिष्ट शुभाशुभ मंगल अमंगल विचार आदि ये विषय 28 हैं।

प्र.-2665 अध्ययन कौन सा ध्यान और कौन सा तप है?

उत्तर- अध्ययन अंतरंग तप में चौथे नंबर का है और अंतरंग तप का अंतिम भेद ध्यान है। ध्यान में विषयकषायों का, विकारों का, स्थूल क्रियाओं का अभाव होने के समान स्वाध्याय में भी एकाग्रता होने से इसे ही ग्रंथकारजी ने ध्यान कहा है और यह ध्यान धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान भी हो सकता है।

प्र.-2666 अध्ययन और स्वाध्याय में क्या अंतर है?

उत्तर- अधि उपसर्ग पूर्वक **इण्** धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाने से अध्ययन पद की व्युत्पत्ति होती है और स्वाध्याय अंतरंग तप होने से स्वार्थ ही है फिर भी वचनात्मक पठन पाठन कराने से इसे परार्थ भी कहा है अतः स्वाध्याय स्वार्थ परार्थ दोनों प्रकार का है, इनमें यही अंतर है।

प्र.-2667 पंचमकाल में अध्ययन को ध्यान कहा है तो क्या शेष कालों में नहीं है?

उत्तर- नहीं, ऐसा नहीं है। जब पंचमकाल में आ. श्री ने अध्ययन को विषयकषायों के निग्रह का साधकतम कारण होने से ध्यान कहा है सो यह नियम सभी कालों में, सभी कर्मभूमिज आर्यक्षेत्रों में समझना चाहिये।

प्र.-2668 धर्मक्षेत्रों के बिना शेष क्षेत्रों में बिना शास्त्र के ध्यानाध्ययन कैसे होगा?

उत्तर- यद्यपि इन नरक स्वर्ग और भोग, कुभोगभूमियों में शास्त्रजी नहीं हैं फिर भी अध्ययन तो करते ही है। स्वाध्याय के अनेक भेद होने से सर्वत्र स्वाध्याय तप का, आवश्यक कर्तव्यों में स्वाध्याय का पालन हो जाता है जैसे तीसरे नरक तक देवों के द्वारा धर्मोपदेश नामका स्वाध्याय होता है तथा सभी नरकों में जब निसर्गज सम्यग्दर्शन माना है तो बिना तत्त्व चिंतन के, निर्णय के, बिना आज्ञा माने, भूल सुधारे बिना सम्यग्दर्शन और धर्मध्यान की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि संवर निर्जरा नहीं बन सकती अतः नरकों में लिपी रूप शास्त्र न होने पर भी भाव श्रुतज्ञान और शब्द श्रुतज्ञान है तभी तो कम से कम अंतर्मुहूर्त तथा अधिक से अधिक कुछ कम 33 सागर तक रत्नत्रय से सहित नारकी अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसी तरह स्वर्गों में, भोगभूमियों में, कुभोगभूमियों में स्वाध्याय और धर्मध्यान का अस्तित्व तथा उपयोग रूप में समझना चाहिये। इन्हीं परिणामों से इन क्षेत्रों में अनेक पाप प्रकृतियों का संवर और निर्जरा होती है।

प्र.-2669 क्या सभी गतियों में सदा धर्मध्यान का अस्तित्व रहता है?

उत्तर- नहीं, एक जीव की अपेक्षा जिस समय सम्यग्दृष्टि जीव आर्तरौद्रध्यानों से परिणत होता है उस समय धर्मध्यान का नास्तित्व हो जाता है क्योंकि एक समय में एक ही ध्यान उपयोग रूप में होगा शेष नहीं। नाना जीवों की अपेक्षा चारों गतियों में सर्वकाल धर्मध्यान रहता है क्योंकि रत्नत्रय सर्वकाल मौजूद है।

प्र.-2670 नरक व स्वर्ग में कितने प्रकार का और कैसे स्वाध्याय होता है?

उत्तर- नरकों में नारकियों के द्वारा परस्पर में धर्मोपदेश स्वाध्याय के बिना 4 प्रकार का स्वाध्याय होता है। लिपिबद्ध के बिना द्रव्य गुण पर्यायवाचक शब्दों का उच्चारण करना वाचना स्वाध्याय है, अपने आप में प्रश्नोत्तर करना पृच्छनास्वाध्याय, केवल शब्दके अर्थ का चिंतन करना अनुप्रेक्षा तथा इसी प्रकार उच्चारण करना आम्नाय है क्योंकि नरकों में नारकियों का परस्पर में बहुलता की अपेक्षा उपकार्य उपकारकभाव नहीं पाया जाता है फिर भी सूक्ष्मता की अपेक्षा नरकों में भी उपसर्ग के उत्पन्न होने पर धर्मध्यान से परिणत हो कर्मों की निर्जरा कर डालता है इसलिए इनको अपकार भी उपकार का कार्य कर गया। स्वर्गों में या सभी चतुर्निकायदेवों में पाँचों प्रकार का स्वाध्याय पाया जाता है। यद्यपि देवों में लिपी रूप में शास्त्रजी नहीं पाये जाते हैं फिर भी वचनात्मक धर्मकथा तो पायी जाती है इसीलिए जीवन पर्यंत धर्मकथा करते रहते हैं।

प्र.-2671 आ. श्री ने स्वरचित प्रवचनसार का अध्ययन करने को कहा है क्या?

उत्तर- नहीं, ऐसा अर्थ नहीं लेना है क्योंकि केवल आ. श्री कृत प्र.सा. का अध्ययन माना जाय तो प्र.सा. के अलावा शेष सभी अनुयोग के अध्ययन का अभाव ठहरता है अतः आ. कृत प्र.सा. अग्राह्य है।

प्र.-2672 तो फिर किस प्रवचनसार का अध्ययन करना चाहिये?

उत्तर- संसार में सभी संप्रदायवालों ने अपने[2] अधिष्ठाताओं को आप्त मानकर इनके उपदेश को

प्रवचन माना है और ये वक्ता विकारी होने से परस्पर में विरोधी प्रवचन होने से सम्यक् नहीं है। अतः इनके दूषित प्रवचनों का निराकरण करने के लिए आ. श्री ने प्रवचन के साथ में **"सार"** का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है जो सदोष, मिथ्यामार्ग प्रदर्शक, विषयकषाय पुष्टिकारक, संसारवर्धक का निराकरण कर, त्यागकर निर्दोष प्रवचन का अध्ययन करना चाहिये। जैसे निर्दोष औषधि से ही निरोगता प्राप्त होती है ऐसे ही निर्दोष उपदेश से ही आत्मकल्याण हो सकता है, सदोष से नहीं।

प्र.-2673 सदोष के परिहार के लिए "सार" पद का प्रयोग किया है यह कैसे जाना?

उत्तर- जब कोई निष्प्रयोजन बोलता है तो कह देते हैं कि हे भाई इन बातों में क्या सार है? छोड़ो, कोई सार की बातें करो। जैसे पेड़ का सार मतलब ऊपर का निस्सार छिलका निकालने से ही निर्दोष अंश प्राप्त होता है। दूध, दही में घी सार है शेष निस्सार है आदि प्रसंगों में **"सार"** पद का प्रयोग निर्दोष, ठोस, शुद्ध, वस्तु को ग्रहण करने के लिए किया जाता है सो ऐसे ही नि.सा. में कहा है। **विवरीय परिहरत्थं भणियं खलु सारमिदि वयणं**। अर्थः- सदोष प्रवचनों के निषेध के लिए सार पद लगाया है। इसलिए जिनेंद्र देव कथित द्वादशांगवाणी स्वरूप चारों अनुयोगों का आत्मसंशोधन के लिए अध्ययन करना चाहिये।

प्र.-2674 प्रवचनसार किसे कहते हैं?

उत्तर- लौकिक प्रवचनों के निषेधक **"सार"** निर्दोष जिनेंद्र प्रवचन को ही प्रवचनसार कहते हैं।

प्र.-2675 यहाँ आ. श्री कुंदकुंदजी कृत प्रवचनसार को ग्रहण क्यों नहीं किया?

उत्तर- जिनेंद्र प्रणीत होने से आ. श्री कृत प्रवचनसार को ग्रहण कर ही लिया है जो सर्वत्र निर्दोष है।

प्र.-2676 जिनेंद्र प्रणीत प्रवचन का क्या करना चाहिये?

उत्तर- जिनेंद्रोक्त प्रवचनसार का अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास का अर्थ केवल पढ़ना नहीं किंतु ज्ञेयतत्त्व, हेयतत्त्व, उपादेयतत्त्व को जानकर यथानुरूप जीवन में उतारकर आत्मसात् करना चाहिये।

प्र.-2677 यह शास्त्राभ्यास किस हेतु करना चाहिये?

उत्तर- ख्याति पूजालाभ, मनोरंजनादि के बिना सिर्फ आत्मोत्थान के लिए शास्त्राभ्यास करना चाहिये।

प्र.-2678 न्याय व्याकरणादि भाषाओं का अभ्यास करना चाहिये या नहीं?

उत्तर- यदि स्वयं तथा शिष्यों को, श्रोताओं को तत्त्वनिर्णय और तत्त्व प्रतिपादन करने कराने, समझाने के लिए इन विषयों का, भाषाओं का अध्ययन किया जाये तो हानिकारक नहीं है। जैसे आ. श्री समंतभद्र, अकलंकादि ने तात्कालिक प्राप्त सभी शास्त्रों का अध्ययन किया था यदि नहीं करते तो वे धर्म की रक्षा, धर्म की प्रभावना और अन्यमत वालों को तत्त्वों का निर्णय कराकर जिनदीक्षा नहीं दे पाते तथा पर्याप्त जानकारी न होने से स्वयं ही अन्यमति बन जाते अतः इतना तलस्पर्शी अध्ययन किया था कि इन्होंने स्वयं की रक्षा की तथा आज्ञाविचय, अपायविचय धर्मध्यान के द्वारा अनेकों को कष्ट से बचाकर मोक्षमार्ग में लगाया। जबतक भ. महावीर का तीर्थकाल चलता रहेगा तभी तक इन महान आचार्यों के नाम चमकते रहेंगे। अतः क्षयोपशमानुसार सभी का अध्ययन करना चाहिये।

प्र.-2679 मंत्रशास्त्र, ज्योतिषादि शास्त्रों का क्या अध्ययन करना चाहिये?

उत्तर- सभी केवलियों ने विद्यानुवाद में मोक्ष के निमित्त इन सभी विषयों का उपदेश दिया है अतः आत्म साधना और जिनधर्म की प्रभावना के लिए इनका अवश्य ही अध्ययन करना चाहिये।

प्र.-2680 इन लौकिकविषयों का उपदेश केवलियों ने क्यों दिया?

उत्तर- विषय लौकिक और लोकोत्तर नहीं होता है किंतु वक्ता और श्रोताओं की दृष्टि, विचार लौकिक होने से विषय लौकिक तथा दृष्टि, विचार लोकोत्तर होने से ये विषय लोकोत्तर कहलाते

हैं अतः केवलियों ने समस्त विषयों को केवलज्ञान से जानकर हेय को छोड़कर निर्दोषता की प्राप्ति के लिए उपदेश दिया है।

नोटः- यहाँतक 2680 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 83वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 84वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

जिनेंद्र ने क्या कहा है

पावारंभणिवित्ती पुण्णारंभे पउत्तिकरणं वि।

णाणं धम्मज्झाणं जिणभणियं सव्वजीवाणं।।84।।

पापारंभनिवृत्तिः पुण्यारंभे प्रवृत्तिकरणमपि।

ज्ञानं धर्मध्यानं जिनभणितं सर्वजीवानाम्।।

पावारंभणिवित्ती पाप और आरंभ का त्याग करना **पुण्णारंभे** पुण्यकार्यों में **पउत्तिकरणं** प्रवृत्ति करना **वि** भी **णाणं** ज्ञान और **धम्मज्झाणं** धर्मध्यान **सव्वजीवाणं** सब जीवों के लिये मुक्ति का कारण **जिणभणियं** जिनेंद्र भगवान ने कहा है।

प्र.-2681 पाप का फल एवं अन्य भेद कौन कौन हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग से वंचित रखना, धर्मध्यान नहीं होने देना, संसारमार्ग में, कष्ट के मार्ग में लगाना ही फल है। भेद एक, दो, तीन, संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हैं।

प्र.-2682 एक प्रकार का पाप कौन है?

उत्तर- अभेद रूप में आत्मघातक विकार प्रमाद मात्र एक ही प्रकार का पाप है।

प्र.-2683 दो प्रकार के पाप कौन कौन हैं तथा परिभाषा क्या है?

उत्तर- द्रव्यपाप और भावपाप। पुद्गल कर्मों को और वचन काय के असत् कार्यकलापों को द्रव्यपाप तथा कर्मोदय से उत्पन्न विषयकषायों के परिणामों को और मन के विकारों को भावपाप अथवा ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्मपिंड को द्रव्यपाप और स्थितिबंध अनुभागबंध के योग्य परिणामों को भावपाप या पराधीनता के कारण, मलिनता के कारण कर्मपिंड को द्रव्यपाप और तत्संबंधी परिणामों को भावपाप कहते हैं।

प्र.-2684 तीन प्रकार के पाप कौन कौन से हैं?

उत्तर- चेतन, अचेतन और मिश्र पाप की अथवा मन वचन काय की अपेक्षा पाप तीन प्रकार के हैं।

प्र.-2685 चेतनपाप, अचेतनपाप और मिश्र पाप किसे कहते हैं?

उत्तर- **चेतनपापः-** विषयकषायों के, प्रमाद के परिणामों को चेतन पाप, **अचेतनपापः-** वस्त्र, काष्ट, पाषाण आदि में पापचेष्टाओं के चित्रों को अचेतनपाप, **मिश्रपापः-** इन्हीं चित्रों सहित वस्त्रालंकार धारण करने वाले मनुष्यों को, पशुपक्षियों को मिश्रपाप कहते हैं। **"अधिकरणं जीवाजीवाः।"** जीव और अजीव तथा मिश्र वस्तुओं के आधार से पाप स्वरूपी सांपरायिक पापाश्रव होता है।

प्र.-2686 मन वचन काय कृत पाप किसे कहते हैं?

उत्तर- **मन पापः-** मनोद्भव स्व पर उभय घातक दुर्भावना को मानसिकपाप **वचन पापः-** पाप भावना पूर्वक वचन प्रयोग को वचनपाप, **कायपापः-** मनवचनपाप पूर्वक कायक्रियाओं के करने को कायपाप कहते हैं।

प्र.-2687 चार, पाँच, छह और सात प्रकार के पाप कौन कौन हैं?

उत्तर- क्रोधादि चार कषायें चार प्रकार के पाप, हिंसादि पाँच कार्य पाँच प्रकार के पाप। पाँच इंद्रिय

और मन का अनिष्टकारी विषयों में प्रवृत्त होने को या षट्काय के जीवों की विराधना करना ये छह प्रकार के पाप हैं। जुआ आदि सात प्रकार के व्यसनों में प्रवृत्ति कर ना सात प्रकार के पाप हैं।

प्र.-2688 आठ, नौ, दस प्रकार के पाप कौन कौन हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के आश्रवबंधक व्यापार की अपेक्षा 8 प्रकार के पाप, हास्यादि नोकषाय की अपेक्षा 9 प्रकार के पाप। दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह की अपेक्षा दस प्रकार के पाप अथवा सप्त व्यसनों को कृत से 8 पाप, कारित से 9पाप तथा अनुमोदना से इन्हीं को करने पर 10 पाप हो जाते हैं।

प्र.-2689 पाप के 11, 12, 13, 14, 15 भेद कौन कौन हैं?

उत्तर- दस बहिरंग परिग्रह पापों में हिंसापाप को मिलाने से 11 पाप, 11 पापों में झूंठ पाप को मिलाने से 12 पाप, 12 प्रकार के पापों में चोरी पाप को मिलाने से 13 पाप, 13 प्रकार के पापों में कामसेवन पाप को मिलाने से 14 पाप, 14 प्रकार के पापों में परिग्रहपाप को मिलाने से 15 प्रकार के पाप हैं।

प्र.-2690 पाप के 16, 17, 18, 19 भेद कौन कौन हैं?

उत्तर- पंद्रह पापों में स्त्रीकथा को मिलाने से सोलह पाप, सोलह पापों में भोजनकथा मिलाने से 17 पाप 17 पापों में राज्यकथा को मिलाने से 18 पाप हैं। 18 पापों में राजकथा को मिलाने से 19 पाप हैं। इसी तरह पापों के संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद समझना चाहिये।

प्र.-2691 प्रमाद और कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर- लौकिक और लोकोत्तर व्यवहारिक क्रियाओं में उत्साही अनुत्साही होकर असावधानी करने को तथा आत्म स्वभाव, आत्मध्यान या निर्दोष तत्त्वचिंतन में स्थिर न होने को प्रमाद तथा स्थितिबंध, अनुभागबंध के परिणामों को या लौकिक उत्तेजना को कषाय कहते हैं।

प्र.-2692 प्रमाद और कषाय में क्या अंतर है?

उत्तर- छठवें गुणस्थान तक मुनियों के प्रमाद होता है और दसवें गुणस्थान तक सरागी मुनियों के कषाय होती है। उत्कृष्ट धर्मध्यान में, उपशम तथा क्षपकश्रेणी आरोहण में प्रमाद बाधक है तो शुक्लध्यान यथाख्यातचारित्र, यथाख्यातसंयम की घातक कषाय है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-2693 आरंभ किस हेतु और कैसे किया जाता हैं?

उत्तर- संसारमार्ग या मोक्षमार्ग संबंधी कार्यों को असावधानी और सावधानी पूर्वक आरंभ किया जाता है। दो भेद हैं। **नामः-** पापारंभ और पुण्यारंभ।

प्र.-2694 पापारंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग में बाधक आत्मसुख, आत्मघातक कर्मों के साधनभूत आत्मव्यापार को पापारंभ कहते हैं।

प्र.-2695 यहाँ केवल आरंभ का त्याग कराया है या संरंभ समारंभ का भी?

उत्तर- बिना समरंभ समारंभ के त्याग किये आरंभ का त्याग नहीं हो सकता है क्योंकि जिसने संरंभ का त्याग कर दिया है वह समारंभ और आरंभ से व्यापार कर सकता है। जिसने समारंभ का त्याग किया है वह आरंभ से व्यापार कर सकता है किंतु जिसने आरंभ का त्याग किया है वह किसी भी प्रकार से समरंभ समारंभ आरंभ नहीं कर सकता है। जैसे माँ बहनों ने स्वयं उपवास किया है या अपने लिए कुछ त्याग किया है किंतु वही कार्य अपने परिवार के लिए करना पड़ता है और करते ही हैं सो इसी तरह संरंभ समारंभ और आरंभ के लिए समझना चाहिये। जिसने सातवीं प्रतिमा

के व्रत लिए हैं तो उसे आदि की 6 प्रतिमाओं के नियमों का पालन करना अवश्यंभावी है किंतु सातवीं प्रतिमा के आगे की प्रतिमाओं का पालन कर भी सकता है और नहीं भी।

प्र.-2696 संरंभ किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- किसी भी लौकिक या लोकोत्तर पाप पुण्य या संसारमार्ग मोक्षमार्ग संबंधी कार्यों की योजना बनाने को संरंभ कहते हैं। दो भेद हैं। पाप संरंभ और पुण्य संरंभ।

प्र.-2697 पाप संरंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- आर्तध्यान, रौद्रध्यान, कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्यायें, आहारादि संज्ञायें, हिंसादि पाप, द्यूतादि व्यसन और ऐसे अनेक पापात्मक कार्यों की योजना बनाने को पापसंरंभ कहते हैं। जैसे भोजन बनाना है या उसको मारना है आदि पाप संरंभ हैं।

प्र.-2698 पुण्यसंरंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का त्याग करना, मूलगुणों का, देव पूजादि षडावश्यकों का, प्रतिमाओं के व्रतों का पालना आदि धार्मिक कार्यों के विचारों को पुण्यसंरंभ कहते हैं।

प्र.-2699 समारंभ किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- किसी भी लौकिक या लोकोत्तर, पाप पुण्य, अशुभ शुभ कार्यों की योजना के साथ[2] तत्संबंधी साधनों के जुटाने को समारंभ कहते हैं। दो भेद हैं। पाप समारंभ और पुण्य समारंभ।

प्र.-2700 पाप समारंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग की विराधना करने वाले कष्टदायक कुछ कम चौरासीलाख योनियों में भ्रमण कराने वाले कर्मों के साधनभूत सामग्री के एकत्रित करने को पाप समारंभ कहते हैं। जैसे भोजन बनाने के लिए आटा पानी अग्नि आदि एकत्रित करना या किसी जीव को मारने काटने के लिए अस्त्रशस्त्र एकत्रित करना।

प्र.-2701 पुण्य संरंभ का फल क्या है?

उत्तर- उपरोक्त पुण्य कार्यों की योजना बनाने को पुण्य संरंभ कहते हैं तथा इन परिणामों के उत्पन्न होते ही सातिशय पुण्यकर्मों का आश्रवबंध चालू हो जाता है।

प्र.-2702 पुण्यसमारंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मा को पवित्र कराने वाली मंगल सामग्री के एकत्रित करने को पुण्य समारंभ कहते हैं।

प्र.-2703 केवल संरंभादि का त्याग करने से पापों से छूट सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, इन तीनों के त्याग के साथ साथ मन वचन काय, कृत कारित अनुमोदना, क्रोधादि कषायादि पापार्जक समस्त कार्य कलापों के त्याग से पाप कर्मों के आश्रवबंध से छूट सकते हैं।

प्र.-2704 तो क्या समस्त पापाश्रवों का एकसाथ एक ही समय में त्याग हो जाता है?

उत्तर- नहीं, समस्त पापाश्रवों का द्वार एक साथ एक ही समय में समाप्त नहीं होता है किंतु जैसे जैसे विषयकषायों का त्याग पूर्वक अभाव होता है वैसे वैसे गुणस्थानों की वृद्धि होती है और वृद्धि होने से ही पाप का अभाव होता है। जैसे शुक्लपक्ष में चंद्रमा की चांदनी बढती है तो अंधकार समाप्त होता है ऐसे ही पापाश्रवों का त्याग होने से पाप घटता है और पुण्य बढ़ता है।

प्र.-2705 पाप कैसे बढ़ता है और पुण्य कैसे घटता है?

उत्तर- कृष्णपक्ष में चंद्रमा की चांदनी के घटने से अंधकार बढता है ऐसे ही पापाश्रवों की वृद्धि होने से पाप बढ़ता है और पुण्य घटता है। इस प्रकार संसार में शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की तरह

पुण्यपाप का कालचक्र अनादिकाल से अनंतकाल तक अविरत चलता रहेगा।

प्र.-2706 क्या यह पुण्यपाप का कालचक्र सब जीवों के चलता रहेगा?

उत्तर- नहीं, अभव्यजीवों के, दूरानुदूर भव्यजीवों के यह पुण्यपाप का कालचक्र अनादि से हैं और अनंतकाल तक चलता रहेगा, शेष भव्यजीवों के शीघ्र ही या भवांतरों में समाप्त हो जायेगा।

प्र.-2707 पुण्यारंभ प्रवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मा को पवित्र करने वाले साधनों में प्रवृत्ति करने को पुण्यारंभ प्रवृत्ति कहते हैं।

प्र.-2708 वे कौन से कार्य हैं जो पुण्यारंभ प्रवृत्ति कहलाते हैं?

उत्तर- मूलोत्तर गुणों का, षडावश्यकों का, प्रतिमाओं के नियमों का पालन करना आदि। मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का, कंदमूलों का, रात्रिभोजन का, अनछने पानी आदि का त्याग करना।

प्र.-2709 इन पुण्य समरंभ समारंभ के बिना केवल आरंभ से काम चल जायेगा क्या?

उत्तर- नहीं, आदि के दो कार्य किये बिना आगे का कार्य प्रारंभ हो ही नहीं सकता। जैसे जिसने प्रारंभ की सिड्ढी पर कदम नहीं रक्खा है वह मध्य की और अंतिम सिड्ढी पर कैसे कदम रख सकता है? अतः प्रारंभ के दो कार्यों को करने के बाद ही पुण्यारंभकार्य हो सकता है अन्यथा नहीं।

प्र.-2710 पुण्यारंभ प्रवृत्ति में विधि और निषेध रूप ये दो कार्य क्यों बताये?

उत्तर- जैसे शरीर में कोई बीमारी हुई है तो तदनुकूल पथ्य के प्रयोग को विधि और अपथ्य के त्याग को निषेध कहते हैं ऐसे ही पुण्यार्जनार्थ बाधक सामग्री के त्याग को निषेध तथा अनुकूल साधनों के जुटाने को विधि इन दोनों से सातिशय पुण्यार्जन होता है इसलिए ये दोनों विधि और निषेध कार्य बताये हैं।

प्र.-2711 क्या विधि और निषेध में प्रवृत्ति क्रम से होती है या अक्रम से?

उत्तर- इन दोनों में प्रवृत्ति अक्रम से एक ही साथ होती है, क्रम से नहीं किंतु वक्ता अपने वक्तव्य में शब्दों का प्रयोग क्रम से ही करेगा। अतः वह प्रधान किसे करे और किसे नहीं यह वक्ता की इच्छा पर निर्भर है।

प्र.-2712 पुण्यारंभ प्रवृत्ति के कितने भेद हैं?

उत्तर- पापारंभ प्रवृत्ति के भेद प्रभेदोंवत् ही पुण्यारंभ प्रवृत्ति के संख्यातासंख्यात, अनंत भेद बताये हैं।

प्र.-2713 क्या ये सभी पुण्यारंभ प्रवृत्ति के कार्य एकसाथ प्राप्त हो जाते हैं?

उत्तर- नहीं, सूक्ष्म रूप से विधि निषेध पूर्वक एक साथ पालन करने की प्रतिज्ञा करके तदनुकूल पालता है, किंतु गुणस्थानानुसार ही ये पुण्यवृद्धि के कार्य प्रारंभ होते हुए वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।

प्र.-2714 केवल पुण्यार्जक संरंभ समारंभ आरंभ से पुण्यकार्य संपन्न हो जायेंगे क्या?

उत्तर- इनके साथ[2] 9 कोटी की विधि रूप में प्रवृत्ति करने से, क्रोधादि के त्याग रूप में प्रवृत्ति करने से पुण्यार्जन में, पुण्यवृद्धि में सहायता सफलता मिलती है जिससे मोक्षमार्ग प्रशस्त एवं सफल होता है।

प्र.-2715 पुण्य का आश्रव किन परिणामों और किन क्रियाओं से होता है?

उत्तर- कषायों के मंदोदय होने पर या गुणस्थानानुसार कषायाभाव से योगों की क्रियानुसार पुण्याश्रव होता है। मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि जीव इन्हीं परिणामों और दिनचर्याओं से महान उत्कृष्ट पुण्य का संचय कर लेते हैं।

प्र.-2716 ये तीन जीव किस प्रकार से उत्कृष्ट पुण्य का संचय कर लेते हैं?

उत्तर- ये अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि जीव, दूरानुदूर भव्य और अभव्य जीव कषायों के अत्यंत मंदोदय से उत्कृष्ट शुभ लेश्याओं पूर्वक मुनि चर्या से परिणत हो उत्कृष्ट पुण्य का संचय कर लेते हैं।

प्र.-2717 इस उत्कृष्ट पुण्य का फल क्या है?

उत्तर- इस उत्कृष्ट पुण्य का फल अंतिम ग्रैवेयिक का अहमिंद्र पद प्राप्त कर 31 सागर पर्यंत असंयम पूर्वक निराकुलमय होने से इंद्रियजन्य सुखानुभव करते हैं यही इसका उत्कृष्ट फल है।

प्र.-2718 वास्तव में पुण्य वृद्धि किन कारणों से होती है?

उत्तर- वास्तव में मोक्ष के निमित्त सातिशय उत्कृष्ट पुण्य की वृद्धि रत्नत्रय पूर्वक विषयकषायों के, आर्त रौद्रध्यानों के, अशुभ लेश्याओं के, प्रमाद के, आहारादिक संज्ञाओं के त्याग से होती है।

प्र.-2719 इसके बाद में जिनेंद्र भगवान ने किनको और क्या कहा है?

उत्तर- सुख चाहनेवालों को, वैरागी आत्माओं को हित के लिए ज्ञान व धर्मध्यान करने को कहा है।

प्र.-2720 जिनेंद्रोपदेश सबके लिए होता है या किन्हीं विशेष जीवों के लिए?

उत्तर- एकेंद्रियों से असैनी पंचेंद्रिय जीवों तक तो उपदेश ग्रहण नहीं करते हैं अतः इनके लिए नहीं होता है। तीर्थंकर प्रभु नारकियों को, भोगभूमिज मनुष्य तिर्यंचों को, मलेच्छों को, शूद्रों को, सभी मिथ्यादृष्टियों को, सभी अहमिंद्रों को उपदेश नहीं देते हैं क्योंकि ये जीव समवशरण में नहीं आते हैं तब इन्हें तीर्थंकर प्रभु का साक्षात् धर्मोपदेश कैसे मिलेगा? अतः बारह सभाओं में जो जाते हैं उन्हें ही धर्मोपदेश देते हैं। धर्मोपदेश संख्यात मनुष्य तिर्यंचों को, असंख्यात चतुर्निकाय देव देवांगनाओं को, इंद्र इंद्राणियों को देते हैं।

प्र.-2721 तो फिर आचार्य श्री ने ''सव्व जीवाणं'' पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- जैसे शरीर के किसी एक अंग में दर्द होने पर सर्वांग में दर्द हो रहा है। गांव में, शहरों में कुछ व्यक्ति सदाचार, दुराचार युक्त होने से सारा गांव, शहर सदाचारी दुराचारी है ऐसा वचन व्यवहार देखा जाता है। भगवान समस्त वैरागी मोक्षमार्गियों को ज्ञानध्यान तपश्चरण का उपदेश देते हैं क्योंकि एकदेश में भी सर्वदेश का प्रयोग होता है। ऐसा इस ''**सव्व जीवाणं**'' पद का अर्थ ग्रहण करना चाहिये। हाँ, इतना अवश्य है कि 12 सभाओं के बाहर जो अनेक स्तूप और चैत्यवृक्ष हैं इनके नीचे अनेक केवली तथा ऋद्धिसंपन्न मुनिजन विराजमान हैं सो इनके उपदेश को भावमिथ्यादृष्टि जीव कदाचित् सुन सकते हैं।

प्र.-2722 तो कौन से जीवों को उपदेश देते हैं?

उत्तर- जिनेंद्र की सभा में जो श्रोतागण जाते हैं उनको ही धर्मोपदेश देते हैं। 12 सभाओं के बाहर ही बाहर जो मिथ्यादृष्टि घूमते रहते हैं उन्हें कैसे उपदेश देंगे? क्या औंधे घड़े में पानी प्रवेश करता है?

नोटः- यहाँतक 2722 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 84वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 85वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

ज्ञानाभ्यास के बिना जीव की दशा

सुदणाणब्भासं जो ण कुणइ सम्मं ण होइ तवयरणं।

कुव्वंतो मूढमई संसारसुहाणुरत्तो सो।।85।।

श्रुतज्ञानाभ्यासं यः न करोति सम्यक् न भवति तपश्चरणं।

कुर्वन् यदि मूढमतिः संसारसुखानुरक्तः सः।।

जो जो **सुदणाणब्भासं** श्रुतज्ञानाभ्यास **ण** नहीं **कुणइ** करता है उसके **सम्मं** सम्यक् **तवयरणं** तप **ण** नहीं **होइ** होता है **सो** वह **मूढमई** मूर्ख **कुव्वंतो** तप करता हुआ भी **संसार**

सुहाणुरत्तो संसारसुख में अनुरक्त है।

प्र.-2723 इस 85 नं. की गाथा में किसका वर्णन है तथा ये कितनी और कौन[2] हैं?

उत्तर- इस गाथा में निषेध रूप से आराधनाओं का कथन किया है। सामान्य से दो तथा विस्तार से चार आराधनायें हैं। **दो नामः-** सम्यक्त्वाराधना और चारित्राराधना। **चार नामः-** सम्यक्त्वाराधना, सम्यग्ज्ञान आराधना, सम्यक्चारित्राराधना, तपाराधना।

प्र.-2724 यह जीव श्रुतज्ञानाराधना क्यों नहीं करता है?

उत्तर- इस जीव के सम्यग्दर्शन न होने से श्रुतज्ञानाराधना नहीं करता है। यदि सम्यग्दर्शन होता तो अवश्य ही ज्ञानाराधना होती। कदाचित् किसी कारणवश शास्त्राभ्यास कर भी लेवे तो भी सम्यग्दर्शन न होने से वह समीचीन श्रुताराधना नहीं कहलाती।

प्र.-2725 इस जीव के सम्यक्तपश्चरण क्यों नहीं होता है?

उत्तर- सम्यक्चारित्राराधना हो तो सम्यक्तपश्चरण आराधना हो सकती है, अन्यथा कैसे हो सकती है?

प्र.-2726 सम्यगाराधना के बिना इस जीव का जीवन कैसा होता है?

उत्तर- सम्यगाराधना के बिना इसका जीवन सांसारिकसुख में आसक्त रहता है। जैसे जोंक सड़े खून में, कौवा सड़े मांस में आसक्त होता है ऐसे ही मिथ्यादृष्टि संसार सुख में अनुरागी होता है।

प्र.-2727 सम्यग्दृष्टि जीव विषयसुख में आसक्त नहीं होते हैं तो रौद्रध्यान कैसे?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि जीव गुणस्थानानुसार कषायोदय से परिणत हुए, विषयसुख में आसक्ति पूर्वक आनंदित होते हैं तभी उनके रौद्रध्यान होता है अन्यथा बिना परिणत हुए रौद्रध्यान का अस्तित्व बन नहीं सकता।

प्र.-2728 संसारसुख किसे कहते हैं और कैसा है?

उत्तर- मोही, विकारी, रागीद्वेषी, विषयांध व्यक्तियों का इंद्रिय सुख में रमणता को ही संसारसुख कहते हैं। यह सुख कर्माधीन है, बाधा सहित है, विनाश युक्त है, दुःख का, आकुलता का उत्पादक है, आश्रव बंध का कारण है, अंत सहित है, घृणायुक्त है, पाप का बीज है आदि प्रकार का संसारसुख है।

प्र.-2729 यदि इस गाथा का अर्थ विधि रूप में किया जाये तो कैसा होगा?

उत्तर- विधि पूर्वक अर्थ करने पर जिसके सम्यक्त्वाराधना है उसीके शेष सभी आराधनायें होतीं हैं।

प्र.-2730 ग्रंथकारजी ने यहाँ ज्ञानाराधना न कहकर श्रुतज्ञानाराधना क्यों कही?

उत्तर- क्योंकि श्रुतज्ञान के बिना शेष ज्ञानों में विचारविमर्श नहीं होता है ध्यानावस्था में एकमात्र श्रुतज्ञान ही उपयोग रूप में होता है शेष ज्ञान शक्ति और लब्धि रूप में होते हैं **''शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।''** आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविदों के होते हैं ऐसा कहा है अतः यहाँ श्रुतज्ञान का नाम लिया है, शेष ज्ञानों का नहीं।

प्र.-2731 श्रुतज्ञान के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- ''वितर्कः श्रुतम्।'' मतिज्ञान के द्वारा जाने गये विषय में विशेष तर्क वितर्क को अथवा श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न श्रुतज्ञान के अंगबाह्य एवं अंगप्रविष्ट ये दो भेद हैं।

प्र.-2732 सांसारिक इंद्रियसुख में कौन सा जीव आसक्त होता है?

उत्तर- सांसारिक इंद्रियसुख में मूढ़मति, सादि अनादि मिथ्यादृष्टि, भव्य अभव्य, सैनी असैनी आदि जीव चारित्रमोहनीय के प्रबल उदय से परिणत हो इंद्रिय सुख में आसक्त होते हैं।

प्र.-2733 यदि सम्यग्दृष्टि भोगासक्त नहीं है तो इसके दुर्ध्यान और अशुभ लेश्यायें कैसे?

उत्तर- मोक्षमार्गी भी अपने अपने गुणस्थानानुसार कर्मोदय से भोगासक्त अवश्य होते हैं तभी तो अणुव्रतियों के आर्तध्यान रौद्रध्यान होते हैं। यदि ये इंद्रियसुख में आसक्त नहीं होते हैं तो इनके प्रमत्तदशा, आहारादि संज्ञायें, आर्तरौद्रध्यान, अशुभ लेश्यायें, विकथायें आदि कार्य रूप में बन नहीं सकती हैं और जब ये भोगासक्त नहीं हैं तो कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिअनुभागबंध कैसे हो सकता है? फिर भी मिथ्यादृष्टियों जैसे मोक्षमार्गी दुःखी नहीं होते हैं। सामान्यतया भोगासक्तपने में कोई अंतर नहीं है किंतु मात्रा की अपेक्षा अंतर अवश्य है तभी तो कर्मों के स्थितिअनुभागबंध, संवरनिर्जरा की कालमर्यादा में अंतर पड़ जाता है।

प्र.-2734 आराधना किसे कहते हैं?

उत्तर- आराध्य आरधने योग्य पंचपरमेष्ठियों के प्रति समर्पित होकर गुणकीर्तन भक्ति, पूजा आदि करने को, तथा अपनी शुद्धात्मा का गुणकीर्तन, चिंतन, मनन, स्मरण करने को आराधना कहते हैं।

प्र.-2735 सम्यग्दर्शनाराधना किसे कहते हैं?

उत्तर- 25 मल दोषों, शंकादि अतिचारों, चलादि दोषों को टालकर सम्यग्दर्शन के 8 अंगों को पालते हुए तीनों सम्यग्दर्शनों में उत्साह पूर्वक तदनुरूप परिणमन करने को सम्यग्दर्शनाराधना कहते हैं।

प्र.-2736 सम्यग्ज्ञानाराधना किसे कहते हैं?

उत्तर- संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय के बिना तत्त्वों के यथार्थ जानने को सम्यग्ज्ञानाराधना कहते हैं।

प्र.-2737 चारित्राराधना किसे कहते हैं?

उत्तर- अपने[2] गुणस्थानानुसार प्रतिज्ञा के निरतिचार पालने को सम्यक्चारित्राराधना कहते हैं।

प्र.-2738 तपाराधना किसे कहते हैं?

उत्तर- अपने बलवीर्य को न छिपाकर, निर्दोष, यथानुरूप तपश्चरण करने को तपाराधना कहते हैं।

प्र.-2739 आराधना करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव किस फल को प्राप्त करते हैं?

उत्तर- चरम शरीरी मोक्ष को, अचरम शरीरी सम्यग्दृष्टि महामुनि उत्तम संहननधारी उत्तम वैभव, अहमिंद्र पदवी को तथा संसार में महाकष्टदायी दुःख न भोगते हुए कालांतर में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्र.-2740 मिथ्यादृष्टि आराधक जीव किस फल को प्राप्त करते हैं?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि आराधक अपने अंतरंग बहिरंग बलवीर्य को न छिपाकर आराधना करते हुए साधनानुसार अंतिम ग्रैवेयिक पर्यंत अहमिंद्र पदवी प्राप्त कर लेते हैं किंतु इंद्र इंद्राणी पद, लौकांतिक देव, दक्षिणेंद्र लोकपालादि देवों की पदवी नहीं पाते हैं क्योंकि इनको कर्मभूमिज सम्यग्दृष्टि मुनि मनुष्य ही पाते हैं।

प्र.-2741 मिथ्यादृष्टि जीव क्या वास्तव में आराधक होते हैं?

उत्तर- नहीं, मिथ्यादृष्टि जीवों के वास्तव में आराधना न होने से वे आराधक नहीं होते हैं। यदि ये वास्तव में मोक्षमार्ग के आराधक हैं तो ये मिथ्यादृष्टि अविश्वासी अश्रद्धानी नहीं हो सकते हैं।

प्र.-2742 यदि ऐसा है तो क्या इंद्राणी पद को सम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त कर सकता है?

उत्तर- नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीवेदियों में पैदा नहीं होता है किंतु मरण के समय सम्यग्दर्शन की विराधना कर सासादन सम्यग्दृष्टि होकर पूर्व साधनानुसार इंद्राणी पदवी को, तीर्थंकरादि की जन्मदात्री माताओं में जन्म धारणकर क्षेत्रानुसार जन्म लेने के बाद नियम से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेता है।

प्र.-2743 तो क्या स्त्रियों में एकमात्र मिथ्यादृष्टि जीव ही पैदा होते हैं?

उत्तर- नहीं, तिर्यंचनी, मनुष्यनी, भवनत्रिक देवांगनाओं और सौधर्मैशान की देवांगनाओं में दूसरे गुणस्थान वाले सासादन सम्यग्दृष्टि भी पैदा हो सकते हैं केवल मिथ्यादृष्टि नहीं। ध.पु.6, चू. 9 सू. 61, 65।

प्र.-2744 तो क्या ये मिथ्यादृष्टि आराधक नीचे की पदवी को प्राप्त नहीं कर पाते?

उत्तर- कदाचित् राजा महाराजा, अर्धचक्री, सकलचक्री आदि पदवी को तथा सामान्य प्रजा को आश्चर्यकारी अनेक अवस्थाओं को भी प्राप्त कर लेते हैं सो यह सब सम्यगाराधना पूर्वक निदान का ही फल है।

प्र.-2745 आराधनाओं की साधना और विराधना का क्या फल है?

उत्तर- आराधनाओं की साधना का उत्कृष्ट फल मोक्ष तथा अनुत्कृष्ट फल इंद्र, अहमिंद्रादि पदों की प्राप्ति के बाद मोक्ष प्राप्त करना है और विराधना का फल नरक निगोद आदि दुःखदायी अवस्थाओं की प्राप्ति है तथा कालांतर भवांतरों में मोक्ष प्राप्त करेगा ही इस प्रकार आराधनाओं का फल समझना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 2745 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 85वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 86वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मुनिराज ऐसे

तच्च वियारण सीलो मोक्खपहाराहण सहावजुदो।

अणवरयं धम्मकहा पसंगओ होइ मुणिराओ।।86।।

तत्त्वविचारणशीलो मोक्षपथाराधनास्वभावयुतः।

अनवरतं धर्मकथाप्रसंगतो भवति मुनिराजः।।

तच्चवियारणसीलो तत्त्वों के चिंतक **मोक्खपहाराहणसहावजुदो** मोक्षपथाराधना स्वभाव से युक्त तथा **अणवरयं** अनवरत **धम्मकहापसंगओ** धर्मकथा सहित **मुणिराओ** मुनिराज **होइ** होते हैं।

प्र.-2746 मुनि किस भाव से क्या करते हैं?

उत्तर- मौन पूर्वक उपशम वेदक क्षायिक भाव पूर्वक ध्यानाध्ययन तपश्चरण करते हैं।

प्र.-2747 मुनिराज तत्त्वों का चिंतन क्यों करते हैं?

उत्तर- वैरागी गृहस्थ साधक ने मुनिदीक्षा लेते समय अनादिकालीन कर्मों को क्षय करने की और जीवन को सफल बनाने की प्रतिज्ञा की थी तथा जाति, कुल और धर्म को सार्थक बनाकर धर्मप्रभावना करना है आदि हेतुओं से मुनिराज तत्त्वों का चिंतन करते हैं, इसीमें ही मुनिधर्म की, जिनधर्म की शोभा सुंदरता है।

प्र.-2748 अतत्त्व का चिंतन मुनि क्यों नहीं करते हैं?

उत्तर- विवक्षा प्रतिकूल होने से जीवादितत्त्वों को ही अतत्त्व कहते हैं एवं ये मुनि अतत्त्व चिंतन मोक्ष के हेतु नहीं करते किंतु अजैनों को तत्त्वनिर्णय कराने के लिए कदाचित् कर लेते हैं। यदि कोई कहे कि मुनियों को अतत्त्वचिंतन कभी भी नहीं करना चाहिये ऐसा उनका सोचना ठीक नहीं है क्योंकि बिना विचारे धारणा बन नहीं सकती और इसके बिना धर्मचर्चा, शास्त्रार्थ, सम्यक्मिथ्या का निर्णय नहीं किया जा सकता है अतः सापेक्ष तत्त्वचिंतन से उत्थान होता है कारण उत्थान की प्रतिज्ञा की है, पतन की नहीं।

प्र.-2749 अतत्त्व का स्वतंत्र अस्तित्त्व कैसे?

उत्तर- अतत्त्व का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं फिर भी प्रक्रिया बदल जाने से तत्त्व ही अतत्त्व

कहलाता है। जैसे कोई पुरुष किसी की बहन बेटी को पूज्य भाव से माँ, बहन, बेटी आदि की निगाह से देखता है तो उसे माँ बहन बेटी ही नजर आती है, दूसरी नहीं और जब उन्हीं को पत्नी के भाव से, कामभोग के भाव से देखता है तब कामिनी रूप में ही नजर आती है, कामवासना उत्पन्न हो जाती है ऐसे ही अनंत धर्मात्मक तत्त्व को जैसी दृष्टि से देखता है वैसा ही दृष्टिगोचर होता है।

प्र.-2750 शील किसे कहते हैं और किसका क्या स्वभाव है?

उत्तर- प्रकृति, शील, स्वभाव, आदत, दिनचर्या, ब्रह्मचर्यादि सभी को शील कहते हैं। तत्त्वचिंतन करना, ज्ञान ध्यान तप करना मुनियों का स्वभाव है। श्रावक की अपेक्षा 3 गुणव्रत एवं 4 शिक्षाव्रतों को शील कहते हैं और यही अणुव्रतियों का स्वभाव है, कर्तव्य है।

प्र.-2751 मोक्षपथ/मोक्षमार्ग किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्ष प्राप्ति के उपाय को, रत्नत्रय के अपूर्ण अंशों को मोक्षपथ/मोक्षमार्ग कहते हैं।

प्र.-2752 मोक्षपथाराधना किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग की आराधना चिंतन मनन, अर्चन पूजन, मन वचन काय से समर्पित होने को या अष्टद्रव्य सामग्री अर्पण करने को, आरती उतारने को, जप तप करने को मोक्षपथाराधना कहते हैं।

प्र.-2753 द्रव्याराधना और भावाराधना कौन और कैसे करते हैं?

उत्तर- मुख्यतया गृहस्थ द्रव्यसामग्री अर्पणकर द्रव्य और भावाराधना करते हैं तथा मुनिजन मुख्यतया भावाराधना करते हुए क्वचित् कदाचित् द्रव्य सामग्री अर्पण कर भाव और द्रव्याराधना कर लेते हैं।

प्र.-2754 गाथा के पूर्वार्ध में किसका कथन किया है?

उत्तर- आ. श्री ने गाथा के पूर्वार्ध के दोनों चरणों में भावात्मक चिंतन और मन वचन काय से आराधना करने का कथन किया है जो मुनियों का ही धर्म है, स्वभाव है।

प्र.-2755 गाथा के उत्तरार्ध में किसका कथन किया है?

उत्तर- गाथा के उत्तरार्ध में धर्मकथायें करने का कथन किया है, अनेक प्रकार के पापवर्धक, विकारात्मक वचन प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि ये सत्यधर्म, सत्यमहाव्रत और भाषासमिति के पालक हैं, मोक्षमार्गी हैं।

प्र.-2756 मुनियों का मन वचनकृत कार्य तो बताया किंतु कायकृत क्यों नहीं बताया?

उत्तर- वचनोच्चारण में अधिकतर शारीरिक कंपन, अंग संचालनादि तदनुकूल ही होता है किंतु मुनिजन विषयकषायों के, छलकपट के त्यागी होने से आर्जवधर्म के पालक मन वचन काय की क्रियायें आगमानुसार ही करते हैं इसलिए गाथा में आ. श्री ने काय के व्यापार का अलग से कथन नहीं किया है।

प्र.-2757 मुनि के साथ राज पद क्यों जोड़ा गया है?

उत्तर- मुनि श्रृंगारालंकार के त्यागी अपने आचारविचारों से, शरीर की मुद्रा से सुंदर होते हैं, शोभायमान होते हैं इस अर्थ को बताने के लिए मुनि के साथ में राज पद जोड़ा है।

नोटः- यहाँतक 2757 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 86वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 87वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निषेध और विधि में मुनि का स्वरूप

विकहाइविप्पमुक्को आहाकम्माइ विरहियो णाणी।
धम्मुद्देसण कुसलो अणुपेहा भावणाजुदो जोई।।87।।

विकथादिविप्रमुक्तः अधःकर्मादि विरहितो ज्ञानी।

धर्मदेशनाकुशलोऽनुप्रेक्षा भावनायुतो योगी।।

विकहाइ विकथाओं के **विप्पमुक्को** त्यागी **आहाकम्माइ** अधःकर्म के **विरहियो** त्यागी **धम्मुद्देसण** धर्मोपदेश में **कुसल** कुशल तथा **अणुपेहा भावणा** द्वादशानुप्रेक्षाओं से **जुदो** युक्त **णाणी** ज्ञानी **जोई** मुनि होते हैं।

प्र.-2758 विकथाओं की उत्पत्ति कैसे और फल क्या है?

उत्तर- आत्मसाधना के, मोक्षमार्ग के विरुद्ध प्रमाद पूर्वक विकथाओं की उत्पत्ति होती है। इन विकथाओं से एकमात्र पाप का ही आश्रवबंध होता है, लोकमें निंदा बदनामी होती है। विकथाओं के द्वारा भक्तों, शिष्यों, श्रोताओं के विश्वास, भक्ति, विनयादि गुण नष्ट हो जाते हैं। **भक्तः-** भक्ति, गुणकीर्तन, पूजा आराधना करनेवाले को भक्त कहते हैं। **शिष्यः-** शिक्षा, दीक्षा, व्रतनियम लेनेवाले को शिष्य कहते हैं। **श्रोताः-** धर्मोपदेश, वार्ता, तत्त्वचर्चा आदि सुननेवाले को श्रोता कहते हैं।

प्र.-2759 मुनिजन यदि विकथाओं के त्यागी होते हैं तो प्रमत्त गुणस्थान कैसे?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही विकथाओं के त्यागी सातवें अप्रमत्त गुणस्थानवालों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि गृहस्थों या लौकिक प्राणियों जैसी विकथाओं के त्यागी होने से छठवें गुणस्थान वालों को भी मुनिपना बन जाता है कारण छठवें गुणस्थानवर्ती प्रमत्त मुनि पूर्णतः निष्प्रमादी न होने से कदाचित् गृहस्थों की संगति या पूर्व संस्कारवश भावात्मक वचनात्मक विकथायें कर लेते हैं फिर भी भावात्मक प्रमाद ज्यादा एवं वचनात्मक प्रमाद कम होता है। प्रमत्त मुनि वचनात्मक विकथाओं के त्यागी और रागी होते हैं। जैसे बाहुबली और समस्त तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मुनिजन वचनात्मक विकथाओं के त्यागी मौनव्रती और भावात्मक विकथाओं का, प्रमाद का सद्भाव होने से रागी प्रमत्त मुनि कहलाते हैं।

प्र.-2760 यदि मुनियों को विकथाओं का सर्वथा त्यागी माना जाय तो क्या दोष है?

उत्तर- यदि समस्त भावलिंगीमुनियों को भी विकथाओं का पूर्णतः त्यागी माना जाय तो छठवां गुणस्थान नहीं बन सकता है और प्रमत्तसंयतपना न होने से अप्रमत्तपना, अप्रमत्तपना न होने से श्रेणी आरोहण, इसके बिना केवली, केवली के बिना मोक्ष नहीं, मोक्ष नहीं तो संसार नहीं, सर्वापहार क्विप् प्रत्ययवत् लोप होने से पुण्य पाप भी नहीं बन सकते हैं अतः यह सब निर्दोष आगम और अनुमान से सिद्ध होता हुआ इंद्रियगोचर भी है। इसलिए विकथायें भावात्मक और वचनात्मक दोनों होती हैं ऐसा मानना ही निर्दोष है।

प्र.-2761 तीर्थंकरप्रकृति की सत्तावाले मौनीमुनि के विकथा रूप प्रमाद कैसे होता है?

उत्तर- तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मुनि के वचनात्मक विकथायें नहीं होतीं हैं यह सत्य है फिर भी क्या बिना वचन प्रयोग के वचनयोग बन सकता है? नहीं, मौन अवस्था में भी वचनयोग होता है क्योंकि जिह्वा आदि के संचालन से अस्पष्ट वचनयोग उत्पन्न होता है किंतु प्रमत्तपना होने से भावात्मक विकथायें मानने में कोई विरोध नहीं है। यदि मुनिआदिनाथजी आहार के बिना भूंख से व्याकुल नहीं हुए तो आहार के लिए सात महिना आठ दिन तक क्यों भ्रमण करते रहे? इसलिए छठवें गुणस्थान तक मुनियों के आहारादि चारों संज्ञायें कार्य रूप में बताईं हैं जो योग्य ही है।

प्र.-2762 मुनि आदिनाथजी आहारपरंपरा चलाने के लिए क्या आहारार्थ उठते रहे?

उत्तर- यदि ऐसा ही सर्वथा माना जाय तो आहार परंपरा प्रारंभ होने के बाद 23 तीर्थंकरों को आहार के लिए नहीं उठना चाहिये था क्योंकि आहार की परंपरा सभी समझ चुके थे किंतु ऐसा है नहीं, वे स्वयं ही आहारसंज्ञा से पीड़ित होकर आर्तध्यान को प्राप्त हुए तथा इसके शमनार्थ आहारचर्या करते रहे। छठवें गुणस्थान तक छहों संहनन वाले मुनियों के चारों संज्ञायें कार्य रूप में होतीं हैं। गो.सा. जी.कां. गा. 139

प्र.-2763 तो फिर शास्त्रकारों ने ऐसा क्यों नहीं लिखा और आपने क्यों लिखा?

उत्तर- इतिहासकर्ता उत्तमपात्रों को प्रत्येक कार्य में उत्तम बताने के लिए उत्तमवचनों का ही प्रयोग करते हैं, उनको न नीचा दिखाते हैं, न गिराते हैं क्योंकि गुणस्तवन करना है अतः ऐसा नहीं लिखा है किंतु हमने गुणस्थानानुसार कहाँ तक आहारादि संज्ञायें कार्यरूप में होतीं हैं यह बताने के लिए कथन किया है।

प्र.-2764 विकथाओं के साथ में संग्रहवाचक आदि शब्द का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर- मुनिपद के, मोक्षमार्ग के अयोग्य विकथावत् क्रोधादि कषायें, आहारादि संज्ञायें, इंद्रियविषयवासनायें आदि कलंककारक कार्यकलापों के, विचारों के संग्रहार्थ गाथा में आदि पद को ग्रहण किया है।

प्र.-2765 अधःकर्म किसे कहते हैं, भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मन वचन काय की जिन क्रियाओं से निरपराधी चराचर त्रसस्थावर जीवों की विराधना हो उसे अधःकर्म कहते हैं। अनेक भेद हैं। नामः- कूटनापीसना, झाडू लगाना, आग जलाना, पानी भरना, पेड़ पौधे काटना कटवाना, खदान लगाना लगवाना, पत्थर फोड़ना, अनेक फेक्टरी खोलना, खेती व्यापार करना, मद्य मांस, पशुपक्षी का व्यापार करना आदि अनेक अधःकर्म के नाम हैं।

प्र.-2766 दानपूजा आदि मंगलकार्यों को क्या अधःकर्म कह सकते हैं?

उत्तर- इन मंगलकार्यों को अधःकर्म नहीं कहते हैं किंतु दानपूजा के पूर्व सामग्री जुटाने में, तैयारी करने में आरंभ होने से कदाचित् षट्कायिक जीवों की विराधना होने को अधःकर्म कह सकते हैं, सर्वथा नहीं।

छज्जीवणिकायाणं विराहणोद्दावणादिणिप्पण्णं।
आधाकम्मं णेयं सयपरकदमादसंपण्णं।424।। मू. चा. पिंडशुद्धि.

अर्थः- षट्कायिक जीवों की विराधना, मारण आदि से बनाया हुआ अपने निमित्त स्व या पर से किया गया आहार अधःकर्म से दूषित है। विराधना- जीवों को दुःखी करना, उद्दावन- मारना।

प्र.-2767 ज्ञानी अधःकर्म से विरहित हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- ज्ञानी सम्यग्ज्ञानी सभी जीव अधःकर्म के त्यागी नहीं होते हैं किंतु 9वीं, 10वीं प्रतिमावाले, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, आर्यिका और साधुजन ही अधःकर्म के त्यागी होते हैं, शेष सम्यग्ज्ञानी नहीं।

प्र.-2768 मुनिजन अधःकर्म का त्याग कितने प्रकार से करते हैं?

उत्तर- आहारादि के संबंध में अधःकर्म का त्याग मुनिजन नौ कोटियों से करते हैं।

प्र.-2769 वे नौ कोटियां किस प्रकार से हैं?

उत्तर- वे नौ कोटियां मन से कृत कारित अनुमोदना, वचन से कृत कारित अनुमोदना, काय से कृत कारित अनुमोदना के भेद से ये भेद जानना चाहिये।

प्र.-2770 अधःकर्मदोष केवल आहार में लगता है या अन्य कार्यों में भी?

उत्तर- अधःकर्मदोष आहार में वसतिका, उपकरण, औषधि, विहार निहार में, शास्त्रों में, शयन आसन में, पीछी बनाने में, कमंडलु सुधारने आदि में लगता है।

प्र.-2771 इन सभी क्रियाओं को करने में अधःकर्म दोष कैसे लगता है?

उत्तर- इन क्रियाओं में जहाँ कहीं किंचित् मात्र भी मन वचन काय कृत कारितानुमोदना से संबंध जोड़ा तब अधःकर्म का दोष लगेगा ही लगेगा क्योंकि इन क्रियाओं को प्रमाद पूर्वक करने से

षट्काय के जीवों की विराधना नियम से होती है चाहे अपनी जानकारी में आये या न आये।

प्र.-2772 गृहस्थों को अधःकर्म का दोष लगता है या नहीं?

उत्तर- गृहस्थों को यह दोष नियमतः लगता है और जिन गृहत्यागियों ने इन कार्यों में संबंध जोड़ा है उन्हें भी यह दोष लगता ही है अतः गृहत्यागी गृहस्थों को कदाचित् यह दोष लगता है और नहीं भी किंतु मुनियों के स्थूल और सूक्ष्म रूप से ये दोष नहीं लगते हैं।

प्र.-2773 मुनियों को ये दोष क्यों लगते हैं?

उत्तर- जिनमुनियों ने गृहस्थों के कार्यों में अपना उपयोग लगाया है उन्हें अवश्य ही ये दोष लगते हैं तभी तो यम सल्लेखना के समय उत्तमार्थिक प्रतिक्रमण किया जाता है। जब प्रतिक्रमण करते हैं तो प्रायश्चित्त भी लेते हैं तथा बिना दोष लगे प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त क्यों करेंगे?

प्र.-2774 जब मुनियों को सूक्ष्म दोष लगते ही हैं तो दीक्षा लेने से क्या लाभ?

उत्तर- मुनियों के ध्यानाध्ययनादि में एकाग्रता होने से ये दोष नहीं लगते हैं अतः 5%दोष और 95%गुण होने से दीक्षा लेना ही श्रेष्ठ है, गुणकारी है, इसीसे समाधि होती है, जीवन सफल होता है आदि परम लाभ हैं।

प्र.-2775 अधःकर्म के साथ में आदि शब्द का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- महाव्रतियों को 46 दोष और 32 अंतरायों को टालकर आहार लेना चाहिये ऐसा कहा है। अतः आदि पद से सभी दोषों को ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि अधःकर्म दोष को इन दोषों से अलग कहा है।

प्र.-2776 अधःकर्म का त्यागी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे रोगी व्यक्ति अपथ्य छोड़कर, पथ्य सेवन पूर्वक औषधि सेवन से शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करता है, अन्यथा बीमार रहता है ऐसे ही सदोष आहारादि का त्याग कर निर्दोष चर्या का पालन कर यथेष्ट प्रतिक्रमणादि करने वाला शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है अन्यथा चतुर्गतियों में भ्रमण करता रहता है।

प्र.-2777 संसार में रहता है ऐसा न कहकर संसारी बना रहता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- नाव पानी में रहे तो कोई आपत्ति नहीं है किंतु पानी नाव में आ जाये तो नाव डूब जायेगी, यात्री भी कष्ट में पड़ जायेंगे, यहाँ तक की मृत्यु या मृत्यु के समान अवस्था बन जाती है यही महान आपत्ति है ऐसे ही आत्मा संसार में रहे तो कोई आपत्ति नहीं है पर विषयकषायों से लिप्त सदोष आहारादि चर्यावाला महाप्रमादी ज्ञानी जीव के अंदर संसार आने से संसार में डूब जाता है, संसारी बना रहता है।

प्र.-2778 गाथा के पूर्वार्ध में क्या मोक्षमार्ग का कथन किया है या कुछ और भी?

उत्तर- आ. श्री ने गाथा के पूर्वार्ध में निषेध रूप से मोक्षमार्ग का ही कथन किया है कि ज्ञानी साधु विकथाओं आदि का त्यागी होता है। यदि धर्मगुरु अन्यथा कथन करने लगें तो सही मार्ग कौन बतायेगा?

प्र.-2779 ग्रंथकारजी गाथा के उत्तरार्ध में क्या कह रहे हैं?

उत्तर- ग्रंथकारजी उत्तरार्ध में साधु का विधि रूप में करने योग्य कार्यों को बता रहे हैं।

प्र.-2780 साधुओं को क्या करना चाहिये?

उत्तर- साधुओं को हमेश कुशलता पूर्वक मोक्षमार्ग का, अनुप्रेक्षाओं का, मैत्री आदि भावनाओं का ध्यान एवं धर्मोपदेश करना चाहिये।

प्र.-2781 गुरुवर्य क्या देते हैं?

उत्तर- साधुओं को ध्यानाध्ययन आदि से यदि कुछ समय बचा है तब उस समय भक्त, सेवक, शिष्य और श्रोतागण आकर प्रार्थना करें कि गुरुवर्य हम सभी को मार्गदर्शन दो तब धर्मोपदेश करना चाहिये।

प्र.-2782 भक्तगण आदिकों की प्रार्थना के बिना मार्गदर्शन क्यों नहीं देते हैं?

उत्तर- बिना इच्छा के भक्तों को मार्गदर्शन देना "**मान न मान मैं तेरा मेहमान**" कहावत को चरितार्थ करना है अतः वचन गुप्ति का, मौनव्रत का पालन करने के लिए बिना प्रार्थना के मार्गदर्शन नहीं देते हैं।

प्र.-2783 गुरुवर्य किस प्रकार का धर्मोपदेश देते हैं?

उत्तर- गुरुवर्य श्रोताओं, भक्तों, शिष्यों की सामर्थ्यानुसार संसार बंधन, पराधीनता छेदनार्थ, स्वतंत्र श्रावक बनने की भूमिका का, श्रावकधर्म का, रत्नत्रय धर्म का, मुनिधर्म का वर्णन करते हैं, उपदेश देते हैं।

प्र.-2784 धर्मोपदेश के लिए तीन अवस्थाओं का वर्णन क्यों किया?

उत्तर- गुरुवर्य आचार्य के समक्ष यदि मलेच्छाचरणवाले अन्यायी अभक्ष्य सेवी बैठे हुए हैं तो उनको मार्ग में लाने के लिए अनिष्ट आचारविचार का, संसार की असारता का, नाना प्रकार के कष्टों का ज्ञान कराकर, अनुभव कराकर पापों के, व्यसनों के त्याग का, मूलगुणों के धारण पालन तथा फल को बताकर श्रावक धर्म के योग्य भूमिका बनाकर बताते हैं कदाचित् अत्यंत सरल परिणामी हैं तो चरणानुयोगानुसार श्रावक बना देते हैं। यदि सदाचारी सद्विचारी, देव शास्त्र गुरु के उपासक, उपासिकायें हैं तो इन्हें गृहस्थ जीवन के त्यागने का, महाव्रती बनने का उपदेश देते हैं। यदि इनका मनोबल और साधना कमजोर है या अभ्यास पर्याप्त नहीं है तो अणुव्रती बनने का, गृहत्यागी व्रती बनने का उपदेश देते हैं। यदि एकमात्र अणुव्रती या गृहत्यागी श्रावक श्राविकायें हैं तो उन्हें मुनिआर्यिका, क्षुल्लकक्षुल्लिका बनने का उपदेश देकर उच्च बनाते हैं। यदि शक्तिहीन हैं तो जो जिस व्रत में हैं उन्हें उसीमें दृढ रहकर निर्दोष व्रत पालने का, कर्मठ बने रहने का तथा आगे बढ़ने का मार्गदर्शन देते हैं। यदि महाव्रती विराजमान हैं तो उन्हें आहार विहार बाह्यचर्या को निष्फल बतलाकर बाह्य चर्या के त्याग का, बाह्य संपर्क संगति के त्याग का उपदेश देकर निश्चलध्यान करने का उपाय बताते हैं क्योंकि आप सभी ने घर परिवार, शृंगारालंकार त्याग किया है और ऐसा ही दृढ़ संकल्प किया है अतः दीक्षा के समय जो परिणाम हुए थे उस पर ध्यान दो। अब बाह्य वैभव, विषयभोगों के चक्कर में पड़कर अपनी प्रतिज्ञा को भूल रहे हो नारायण प्रतिनारायण, नारद रौद्रों की तरह निदान आर्तरौद्रध्यान कर संस्थाओं के, लोकेषणा के चक्कर में पड़कर अपना अमूल्य जीवन, अमूल्य समय, अमूल्य प्रतिज्ञा को क्यों छोड़ रहे हो आदि प्रकार से गृहत्यागियों को स्वभाव में स्थिर होने के लिए उपदेश देते हैं।

प्र.-2785 धर्मोपदेश किसे देना चाहिये और किसे नहीं?

उत्तर- गाय के, हंस के समान श्रोतागणों को ही सन्मार्गदर्शन देना चाहिये, अन्यथा फूटे घड़े या ओंधे घड़े के समान नासमझ श्रोताओं के सामने उपदेश करना ऊसरभूमि में बोये हुए बीज के समान व्यर्थ है।

प्र.-2786 धर्मोपदेश देने का यह क्रम है ऐसा कैसे समझा जाये?

उत्तर- ग्रंथकारजी ने उपदेष्टा के लिए **कुशल** यह विशेषण लगाया है। जैसे लोक में कुशल डॉक्टर, मरीज का निस्वार्थ निष्कपट भाव से इलाज कर कष्ट से बचाकर स्वास्थ्य लाभ करा देता है, सुखी संपन्न करा देता है ऐसे ही कुशल वक्ता श्रोताओं को निष्कपट निस्वार्थ भावों से यथार्थ रूप में

मार्गदर्शन देकर संसारमार्ग में भटकने से बचाकर आत्मदर्शी आत्मज्ञानी बना देता है यह अर्थ कुशल विशेषण के देने से समझना चाहिये।

प्र.-2787 धर्मोपदेष्टा कुशल होना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अकुशल वक्ता जिनेंद्रभक्त श्रोताओं को कुपथगामी, अहंकारी मतवाला बना देगा। पूर्वकाल में जो कुछ साधना की है वह मृतप्रायः हो जायेगी जो आजकल अधिकतर वक्ता जिनोपदेश न देकर जिनधर्म के नाम पर लौकिक पंथवादों के, लोकप्रसिद्ध अजैन वक्ताओं के कथनों को धर्मसभा में धर्मोपदेश के रूप में सुनाते हैं। यदि ये कुशल वक्ता होते तो क्या दिगंबराचार्यों ने अपने शास्त्रों में सम्यक् और मिथ्या का निर्णय कराने में कुछ कमी की है? जितना परीक्षित वचन यहाँ पर कहा गया है वह अन्यत्र नहीं मिलेगा तभी तो त.सू. में अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टिस्तव ये दो क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के दोष बताये हैं इन पर भी थोड़ा विचार करना चाहिये अतः धर्मोपदेष्टा को तात्कालिक आर्ष प्रणीत शास्त्रों का तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये तभी कुशल वक्ता हो सकता है, अन्यथा नहीं।

प्र.-2788 धर्मोपदेष्टा कुशल योगी को और क्या करना चाहिये?

उत्तर- धर्मोपदेष्टा कुशल योगी को अनुप्रेक्षाओं का निरंतर चिंतन करते रहना चाहिये क्योंकि संसार शरीर भोगों का पुनः पुनः चिंतन करने से वैराग्य उत्पन्न होगा और है तो मजबूत होगा, वृद्धि होगी जिससे मन पापकार्यों में, विकारों में नहीं फंस पायेगा जैसे परस्पर में तेल पानी एकरूप न होकर पृथक् पृथक् ही रहते हैं ऐसे ही वैरागी संसार शरीर भोगों के मध्य में रहता हुआ भी इनसे पृथक् ही रहता है।

प्र.-2789 क्या योगियों को अनुप्रेक्षाओं के अलावा और भी चिंतन करना चाहिये?

उत्तर- हाँ, मैत्री आदि 4 भावनाओं का, सभी व्रतों की 25 भावनाओं का, सोलहकारणभावनाओं का, सांपरायिकआश्रव संबंधी 25 क्रियायें एवं और भी भावनाओं का विधिनिषेध रूप में चिंतन करना चाहिये।

प्र.-2790 इन भावनाओं का चिंतन करने से योगियों को क्या लाभ होता है?

उत्तर- इनका चिंतन करने से वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य के कारण संसारमार्ग से बचता रहता है। जैसे राजागण अपराधियों को कड़ी सजा प्राणदंड, अंग छेदनभेदनादि प्रायश्चित्त देते थे तो अपराधी ऐसे कठोर प्रायश्चित्त को देखकर, सुनकर डरते थे। डर से अपराध भी छोड़ देते थे, राजा प्रजागण सभी शांति से अपना जीवन व्यतीत करते थे ऐसे ही चतुर्गति के दुःखों से भयभीत होकर अपराध नहीं करते यही लाभ है।

नोटः- यहाँतक 2790 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 87वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 88वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मुनिराज कैसे

णिंदावंचणदूरो परीसह उवसग्ग दुक्ख सहमाणो।
सुह झाणज्झयणरदो गयसंगो होइ मुणिराओ।।88।।

निंदावंचनदूरः परीषहोपसर्गदुःखसहमान।
शुभध्यानाध्ययनरतो गतसंगो भवति मुनिराजः।।

जो **णिंदा** निंदा **वंचण** वंचना से **दूरो** दूर हैं **परीसह** परीषह **उवसग्ग** उपसर्ग के **दुक्ख** दुःख **सहमाणो** सहते हैं ऐसे **गयसंगो** अपरिग्रही **मुणिराओ** मुनि **सुह** शुभ **झाणज्झयण** ध्यान अध्ययन में **रद** रत **होइ** होते हैं।

प्र.-2791 निंदा किसे कहते हैं, स्वामी कौन हैं तथा किस योनि में फल देती है?

उत्तर- अपनी प्रशंसा हो, अपना प्रभाव फैले, दूसरों का अपमान तिरस्कार हो, बदनामी हो इस आकांक्षा से अपना असत्गुणगान करना, दूसरों की बुराई बताना, अपने दुर्गुणों को छिपाना, दूसरों के गुणों को छिपाकर दोष लगाने को निंदा कहते हैं। आदि के दो गुणस्थान वाले जीव इसके बंधक हैं। इसका फल नरक तिर्यंच गति में, नीच मनुष्यों में प्राप्त होता है और निंदा करने से एकमात्र नीचगोत्र का ही आश्रवबंध होता है।

प्र.-2792 आजकल कुत्तों की सेवा ज्यादा होती है फिर उसे नीचगोत्री कैसे कहा जाये?

उत्तर- तिर्यंचगति की प्राप्ति मायाचार से होती है, तिर्यंचों में एकमात्र नीचगोत्र का ही उदय होता है किंतु ध.पु.15 पृ.152 पर देशसंयमी तिर्यंचों के भी उच्चगोत्र का उदय कहा है। किसी मनुष्य या देव ने परोपकार कर उत्कृष्ट पुण्य संचय करने के बाद में मायाचार से तिर्यंचायु को बांधकर मरण कर तिर्यंचों में जन्म लिया पूर्व पुण्योदय से उसके घर में कुत्ता होकर अपनी सेवा करा रहा है और वह गृहस्थ भी माँ बाप की सेवा नहीं करता, न स्नान कराता है, न घुमाने ले जाता है, न ऊंचे आसन में बैठाता है, न गाड़ियों में घुमाता है किंतु ये सब काम कुत्ते के साथ में करता है सो यह सब पूर्वकृत पुण्य का फल समझना चाहिये क्योंकि नीचगोत्री मनुष्य और तिर्यंच भी सोलहवें स्वर्ग तक के लिए उत्कृष्ट पुण्य का संचय कर लेते हैं।

प्र.-2793 मलेच्छों में, नीच मनुष्यों में जन्म लेकर पूज्यता को क्यों प्राप्त होते हैं?

उत्तर- किन्हीं उच्च मनुष्य और देवों ने उत्कृष्ट सातिशय पुण्योपार्जन किया बाद में मनुष्यायु को बांध कर अब अशिष्ट भोजनपानादि कार्यों में लगा रहा फिर मरण कर मलेच्छों में, मलेच्छाचरण वालों में पैदा हो गया बाद में स्व पर निमित्त पाकर जब पुण्योदय आया तो लोकमान्य नेता बनकर अनेक श्रीमानों धीमानों से आदरसम्मान प्राप्त किया। निंदा के फल से नीचयोनियों में पैदा हुआ किंतु पूर्व में जो निरतिशय पुण्योपार्जन किया था उसके उदय से धन वैभव पदवी, आदर सम्मान पाया, अनेकों स्थलों पर कीर्तिस्तंभ बनाये गये, नाम अंकित किये गये आदि यह सब वर्तमान में देखा जा रहा है।

प्र.-2794 केवल दोषवादन करने को निंदा कहते हैं क्या?

उत्तर- केवल दोषवादन का नाम निंदा नहीं है किंतु वह बदनाम हो जाये, साथी साथ छोड़ दें, बाजार में, समाज में इज्जत बिगड़ जाये, ईमानदारी समाप्त होने से आदर सम्मान न होवे आदि हेतुओं से दोषवादन करने को निंदा कहते हैं। धर्ममार्ग की शुद्धि के, कुसंगति को छुड़ाने के, शुद्ध निर्दोष जाति कुल और धर्म की परंपरा को सुरक्षित रखने के, नवीन पीढ़ी को स्थिर रखने के लिए, दूसरों के दोषों को वैद्य के समान कहना निंदा नहीं है किंतु धर्मोपदेश ही है, संबोधन है, स्थितिकरण है क्योंकि हेतु के आधार पर ही गुणदोषों की प्राप्ति होती है। यदि हेतु सम्यक् है तो सद्गुणों की और हेतु मिथ्या है तो दुर्गुणों की प्राप्ति होती है।

प्र.-2795 मुनिजन दूसरों की निंदा से दूर होते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मुनिजन परमेष्ठि कहलाते हैं, त्रिलोक पूज्य हैं आदि नाना गुणों से संपन्न होते हुए भी यदि नीचों की तरह परनिंदा आदि कार्य करने लगें तो दोनों में क्या अंतर रहा? दोनों समान हुए। प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिजन उच्चगोत्री ही होते हैं तो नीचगोत्र के बंधक पहले दूसरे गुणस्थानवर्ती होते हैं। नीचगोत्र का उदय पाँचवें गुणस्थान तक तो उच्चगोत्र का उदय चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय तक होता है। नीचगोत्र उच्चगोत्र में संक्रमण नहीं कर सकता किंतु उच्चगोत्र नीचगोत्र में संक्रमण कर जाता है क्योंकि नीच गोत्रकर्म में अधःप्रवृत्तसंक्रम दूसरे गुणस्थान तक, विध्यातसंक्रम 1-7 गुणस्थान तक, गुणसंक्रम 1-10वें गुणस्थान के अंतिम समय पर्यंत होता हैं। उच्चगोत्र में

उद्वेलना संक्रमण, विध्यात संक्रम, अधःप्रवृत्तसंक्रम, गुणसंक्रम और सर्वसंक्रम ये पाँचों संक्रमण होते हैं अतः मुनिजन परनिंदा आदि जघन्य कार्य नहीं करते।

प्र.-2796 वंचना, ठगना, धोका देना किसे कहते हैं?

उत्तर- दूसरे व्यक्तियों को लौकिक या लोकोत्तर कार्य संबंधी विश्वास देकर, दिलाकर समय आने पर बदल जाने को, विश्वासघात करने को वंचना, ठगना, धोका देना कहते हैं।

प्र.-2797 विश्वासघात करने का क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- विश्वासघात से इज्जत, मान सम्मान समाप्त हो जाता है, सर्वत्र विश्वासघाती के नाम पर निंदा होती है, तिर्यंचगति, नरकगति, कदाचित् हीन जाति के मनुष्य और देवों में पैदा हो जाता है यही फल प्राप्त होता है।

प्र.-2798 निंदा और वंचना में क्या अंतर है?

उत्तर- निंदा में बुराई बताना है तो वंचना में धोका देना, विश्वासघात करना है यही दोनों में अंतर है।

प्र.-2799 ठगविद्या के स्वामी कौन[2] हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधीमाया के उदयवाली ठगविद्या के स्वामी आदि के दो गुणस्थानवाले, अप्रत्याख्यानावरण मायाकषायोदयवाली ठगविद्या के स्वामी तीसरे चौथे गुणस्थानवाले, प्रत्याख्यानावरण मायाकषायोदयवाली ठगविद्या के स्वामी अणुव्रती और संज्वलन मायाकषायोदयवाली ठगविद्या के स्वामी प्रमत्तमुनिजन हैं।

प्र.-2800 मुनियों के ठगविद्या कैसे हो सकती है?

उत्तर- प्रमत्तसंयत मुनियों के संज्वलनमाया व आहारादि चारों संज्ञायें कार्य रूप में होती हैं अतः मायाकषाय के तीव्रोदय में ठगने के भाव हो जाते हैं तभी तो प्रतिक्रमण में ''**मायाविना**'' ऐसा पाठ पढ़ते हैं।

प्र.-2801 इस ठगविद्या का क्या फल है?

उत्तर- यह ठगविद्या सामान्य से एक होने पर भी अनंतानुबंधी आदि कषायों की वासना में अंतर होने से फल में अंतर हो जाता है या यह ठगविद्या निर्विकल्पध्यान की विरोधी अवश्य है यही इसका फल है।

प्र.-2802 ठगविद्या क्या किसीका साथ देती है?

उत्तर- ''**दगा किसी का सगा नहीं, ना मानो तो कर देखो। जिन लोगों ने दगा किया है उनके घर जाकर देखो।।**'' इसके अनुसार इस ठगविद्या ने किसीका साथ न दिया है, न दिया था और न देगी यदि ऐसा विश्वास नहीं है तो जिन्होंने दगा किया है उनके भीतर झांककर देख लो कि इस ठगविद्या का क्या फल है यह मालुम हो जायेगा। यदि अपने लिए विश्वासघात नहीं चाहते हो तो दूसरों के साथ विश्वासघात मत करो।

प्र.-2803 यह वंचना किसको फल देती है?

उत्तर- वास्तव में यह वंचना जीवविपाकी प्रकृति होने से अपने को ही फल देती है किंतु भोले प्राणी इसके मायाचार को न समझने के कारण चक्कर में आकर फंस जाते हैं। जैसे मकड़ी अपने ही थूंक से बुने जाल में फंस कर दुःखी होती हुई दूसरों को फंसा कर दुःखी कर देती है ऐसे ही मायावी व्यक्ति स्वयं दुःखी होता हुआ दूसरों को दुःखी करता ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि सामने वाला प्रबल पुण्यात्मा होने के कारण दूसरों के मायाचार से भी सुखी हो जाता है। जैसे राजा कालसंवर के 500 पुत्र प्रद्युम्नकुमार को 16 जगहों पर मारने को ले जाते हैं किंतु पुण्यात्मा प्रद्युम्नकुमार कष्टप्रद स्थानों में जाता हुआ भी अनेक लाभ लेकर आता है अतः यह मायाचार

जीवविपाकी होने पर भी निमित्तवशात् स्व, पर और उभय को कष्ट देता ही है।

प्र.-2804 योगियों को इस मायाचार से दूर रहना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- राहगीर वृक्ष के पास या समर्थ राजाओं के पास अपनी सुरक्षार्थ जाते हैं किंतु सुख के बदले दुःख प्राप्त हो तो किसकी शरण में जाये? ऐसे ही संसार शरीर भोगों के कष्टों से भयभीत मानव आत्मरक्षा के लिए गुरुओं के पास आये और यहीं पर धोका प्राप्त हुआ, कष्ट मिला तो फिर सुख कहाँ मिलेगा? सुरक्षा, आत्मशांति कहाँ मिलेगी? आदि कारणों से गुरुओं को मायाचार से दूर रहना चाहिये तभी तो ये मुनिजन सही मोक्षमार्ग, सुख का मार्ग बता सकते हैं, अन्यथा नहीं क्योंकि ये मायावी पत्थर की नाव के समान हैं।

प्र.-2805 योगी उपसर्ग और परीषहों को जीतने वाले होते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- स्व, पर, उभय कृत अपराध का फल स्व, पर और उभय निमित्तक प्राप्त होता है कदाचित् पूर्व में योग और कषायों से स्व, पर, उभय निमित्तवशात् नवीनकर्म बंध कर लेते हैं। जैसे ऊसरभूमि को प्रयोग से उपजाऊ बना लेते हैं ऐसे ही अनादि नित्यनिगोदिया जीवों में किसीके साथ में, किसीका, किसी भी प्रकार से वैरविरोध का, कामवासना का, धर्मव्यवहार का संबंध नहीं है पर वहाँ से निकलकर त्रस पर्याय में, मनुष्यों में आकर जिन उत्तर प्रकृतियों का बंध उदय सत्त्व ही नहीं है फिर भी उनका कर्मबंध कर संसारचक्र में भ्रमण करता रहता है इसलिए जिन साधकों को संसारभ्रमण इष्ट नहीं है वे उपसर्ग परीषहों को जीतें तभी नवीन कर्म बंधते नहीं हैं क्योंकि दुःख पूर्वक ही सुख की प्राप्ति होती है ऐसा नियम है। जब सांसारिक सुख बिना कष्ट के प्राप्त नहीं होता है तो शाश्वत सुख बिना कष्ट के, त्याग के कैसे प्राप्त हो सकता है?

प्र.-2806 परीषह और उपसर्ग में क्या अंतर है?

उत्तर- इन दोनों में अंतरंग कारण असाताकर्म का उदय समान ही है। कुछ परीषह स्वकृत तथा कुछ परकृत भी होते हैं तथा उपसर्ग परकृत ही होते हैं यही परीषह और उपसर्ग में अंतर है।

प्र.-2807 इन कष्टों को सहन करना या जीतना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इन उपसर्ग और परीषहों को सहन करने में हीन पुरुषार्थ होता है क्योंकि कष्ट दाता समर्थ है तो सहनकर्ता कमजोर है। सहन करने वाला सोचता है कि मैं यहाँ कुछ प्रतिकार करूंगा तो ज्यादा संकट आयेगा अतः सहन कर लो किंतु जीतने में उपद्रव करने वाला कमजोर और भयभीत होता है तथा जीतने वाला समर्थ होता है क्योंकि वह कर्मों पर विजय पाने के लिए कटिबद्ध है अपने मन को किसी एक ज्ञेय, हेय या उपादेय तत्त्व में केंद्रित करते हुए चिंतन करते हैं उस समय उपसर्ग परीषह का वेदन न होने से जीतना कहा है। विजेता दृढधर्मी, पुरुषार्थी और समर्थ होता है तो सहन करने वाला कायर और पुरुषार्थ हीन होता है अतः मोक्षमार्ग में कष्टों को जीतना चाहिये, न कि सहन करना चाहिये।

प्र.-2808 तो फिर ग्रंथकारजी ने ''सहमाणो'' सहन करने वाला हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- हो सकता है ग्रंथकर्ता के समय **सहमाणो** पद जीतने अर्थ में प्रचलित हो पर अब सहन अर्थ में रूढ़ है जबकि जीतने और सहन के अर्थ में स्पष्ट अंतर है। जैसे **जाणमुणौ ज्ञ** 2-4-130 त्रिविक्रमानुसार ''**ज्ञ**'' धातु के ज्ञान अर्थ में **जाण** और **मुण** ये दो आदेश होते हैं किंतु हिंदी में ''**जानना**'' ज्ञान अर्थ में और ''**मानना**'' विश्वास अर्थ में प्रचलित है ऐसे ही **सहमाणो**'' जीतने अर्थ में लेना चाहिये, सहन अर्थ में नहीं।

प्र.-2809 शुभ ध्यानाध्ययन किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मोक्ष के उपायभूत पापरोधक कारणों का चिंतन करने को शुभध्यान कहते हैं। दो भेद हैं धर्मध्यान और शुक्लध्यान। जिनेंद्रवाणी के पठन को शुभ अध्ययन स्वाध्याय कहते हैं। इसके

5 भेद हैं।

प्र.-2810 अशुभ ध्यानाध्ययन किसे कहते हैं?

उत्तर- आर्तरौद्र ध्यानों को अशुभध्यान तथा तत् संबंधी और लौकिकविषय संबंधी शास्त्रों के पठनपाठन लेखन, संपादन, विज्ञापन आदि को अशुभ अध्ययन कहते हैं।

प्र.-2811 यहाँ चिंतन को अध्ययन क्यों कहा?

उत्तर- अध्ययन के अनेक भेद होने के कारण अनुप्रेक्षा नामके स्वाध्याय को ही चिंतन कहा है।

प्र.-2812 चिंतन को ध्यान और स्वाध्याय कहा है सो इनमें अंतर क्या है?

उत्तर- किसी एक विषय में स्थिर होना ध्यान और परिवर्तन सहित विकल्पात्मक चिंतन स्वाध्याय है अतः इन दोनों के लक्षण अलग अलग होने से इनमें अंतर स्पष्ट है।

प्र.-2813 योगीजन शुभ ध्यानाध्ययन में रत होते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जो जैसा लक्ष्य बनाता है वह वैसा ही प्रयत्न कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है सो शुभ और शुद्ध फल प्राप्त करने का लक्ष्य होने से योगीजन शुभ और शुद्ध ध्यानाध्ययन में रत होते हैं।

प्र.-2814 योगीजन शुभ फल का लक्ष्य कैसे बना सकते हैं?

उत्तर- योगीजन शुभध्यानाध्ययन के फल स्वरूप इंद्रपद, अहमिंद्रपद और अनेक राज्यपदों को नहीं चाहते हैं, न इनकी प्राप्ति के लिए अलग से साधना करते हैं किंतु कदाचित् अर्हंत तीर्थंकर आदि पद के योग्य लक्ष्य बनाकर सोलहकारण भावनाओं का चिंतन कर लेते हैं अतः शुभ का भी लक्ष्य बना लेते हैं।

प्र.-2815 योगियों के आर्तध्यान कैसे, फल तथा अजैनों का अध्ययन क्यों करते हैं?

उत्तर- मुनियों के, शिष्य शिष्याओं के तथा भक्तों के माध्यम से योगियों के इष्टवियोग अनिष्टसंयोग से आर्तध्यान, शारीरिक मानसिक बीमारियों के कारण वेदना आर्तध्यान, श्रीमानों के, राजामहाराजाओं आदि के चेतन अचेतन और मिश्र विषयभोगों की सामग्री को देखकर सुनकर इस तप का यह फल मेरे को मिले ऐसा निदान आर्तध्यान उत्पन्न होता है सो योगियों के निदानध्यान के होते ही संयम छूट जाता है, केवल बाह्य नग्नमुद्रा रहती है। जैसा कि नारायण प्रतिनारायण बननेवाले मुनिजन पूर्वभव में निदानआर्तध्यान, निदानशल्य और आकांक्षा दोष के कारण मिथ्यात्व में आ जाते हैं किंतु कर्मठ योगीजन पूर्व दुर्भाग्यवशात् तीव्र संज्वलनकषायोदय से इन दुर्ध्यानों के होने पर भी गृहस्थों जैसी विषयों में आसक्ति नहीं होती है। सदोष निर्दोषपने का निर्णय कराकर जैन बनाने के लिए अजैनों के धर्मग्रंथों का अध्ययन कर लेते हैं।

प्र.-2816 शास्त्रों में मुनियों के रौद्रध्यान नहीं कहा है फिर यहाँ क्यों कहा?

उत्तर- राजमार्ग यही है कि मुनियों के सर्वत्र सर्वकाल रौद्रध्यान नहीं होता है क्योंकि रौद्रध्यान का अंतरंग कारण अनंतानुबंधी आदि 12 कषाय रूप परिणति है और बहिरंग कारण पापारंभ, परिग्रह, विषयभोगों की सामग्री परिवारादि है किंतु मुनियों के इनका सर्वथा सर्वत्र त्याग होने से रौद्रध्यान नहीं बन पाता है फिर भी अपवादमार्ग में अशुभतैजससमुद्घात के होते ही मुनि अंतर्मुहूर्त में संयतगुणस्थान से गिर जाता है क्योंकि अशुभ तैजससमुद्घात प्रमत्तमुनियों के ही होता है अतः विशेष अवस्था में रौद्रध्यान बन जाने से मुनियों के रौद्रध्यान मानने में कोई दोष नहीं है किंतु सर्वकाल सर्वत्र नहीं होता है ऐसा विश्वास करना चाहिये।

प्र.-2817 तैजसऋद्धि से यदि रौद्रध्यान होता है तो धर्मध्यान किससे होता है?

उत्तर- तैजसऋद्धि से रौद्रध्यान नहीं होता किंतु तैजसऋद्धिधारी मुनि के घोर उपसर्ग होने से क्रोधकषाय के तीव्र उद्रेक से शुभ तैजसऋद्धि अशुभ तैजसऋद्धि में बदल जाती है इसके प्रयोग

से संख्यातासंख्यात पुण्यात्मा पापात्माओं की हिंसा में हर्षित होने से हिंसानंदी रौद्रध्यान हो जाता है तभी तो द्वीपायन मुनि को अशुभ तैजसऋद्धि के प्रयोग से सातवें नरक में जाना पड़ा क्योंकि नरक के लिए रौद्रध्यान ही चाहिये।

प्र.-2818 तैजसऋद्धि की प्राप्ति किन परिणामों से होती है, भेद और नाम कौन[2] हैं?

उत्तर- **तैजसमपि** सूत्रानुसार तैजस ऋद्धि की प्राप्ति एकमात्र उत्तम संहनन वाले सकलसंयमी महान तपस्वी मुनियों के ही उत्तम परिणामों से होती है। दो भेद हैं। **नामः-** शुभतैजसऋद्धि और अशुभतैजसऋद्धि।

प्र.-2819 क्या शुभ और अशुभ ये तैजसऋद्धि के भेद हैं या इसके प्रयोग के?

उत्तर- तैजसऋद्धि के वास्तव में ये भेद नहीं हैं किंतु इस ऋद्धि के प्रयोग करते समय यदि शुभ परिणाम हैं तो शुभ तैजसऋद्धि और अशुभ परिणाम हैं तो अशुभ तैजस ऋद्धि ये भेद हो जाते हैं।

प्र.-2820 शुभ तैजसऋद्धि का प्रयोग कब करते हैं?

उत्तर- शुभ तैजसऋद्धि का प्रयोग करुणा भाव से होता है। जब किसी क्षेत्र में भयंकर बीमारी आदि के कारण प्रजा अत्यंत दुःखी और मृत्यु को प्राप्त हो रही हो तब उस क्षेत्र में विराजमान तैजसऋद्धि वाले मुनिराज के दायें कंधे से एक हाथ का पुतला निकलकर बारह योजन प्रमाण क्षेत्र के प्राणियों को निरोगी बनाकर सुखी संपन्न कर देते हैं यह शुभ परिणामों से उत्पन्न होती है।

प्र.-2821 अशुभ तैजसऋद्धि का प्रयोग कब करते हैं?

उत्तर- तैजसऋद्धि वाले मुनिराज के ऊपर भयंकर उपसर्ग के कारण असहनशीलता होने से बायें कंधे से बिलाव के आकार एक हाथ का पुतला निकलकर बारह योजन लंबे चौड़े क्षेत्र में स्थित प्राणियों को भस्मकर स्वयं भस्मीभूत हो जाते हैं यह अशुभ तैजसऋद्धि अशुभ परिणामों से उत्पन्न होती है।

प्र.-2822 इन दोनों ऋद्धियों का फल क्या है और इनके स्वामी कौन हैं?

उत्तर- शुभतैजसऋद्धि का फल ऊर्ध्वगति और मोक्ष की प्राप्ति है तो अशुभतैजसऋद्धि का अधोगति की प्राप्ति होना है। **स्वामीः-** प्रमत्तसंयत मुनि ही हैं, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और द्रव्यलिंगी मुनिजन स्वामी नहीं है।

प्र.-2823 समुद्घात किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्मा के, औदारिक, तैजस, कार्माणशरीर के प्रदेश बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं। 7 भेद हैं। **नामः-** 1. वेदनासमुद्घात 2. कषायसमुद्घात 3. वैक्रियिक समुद्घात 4. मारणांतिकसमुद्घात 5. तैजससमुद्घात 6. आहारकसमुद्घात 7. केवली समुद्घात।

प्र.-2824 वेदना समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर- तीव्र वेदना से मूल शरीर को न छोड़ते हुए तैजस कार्माण शरीर के साथ आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर औषधि पर्यंत जाकर, स्पर्श कर वापिस आकर शरीर में प्रवेश करने को वेदनासमुद्घात कहते हैं।

प्र.-2825 कषाय समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर- मूल शरीर को न छोड़ते हुए तैजस कार्माण शरीर के साथ कषाय के तीव्रोदय से दूसरे के घात के लिए आत्मा के प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलने को कषाय समुद्घात कहते हैं।

प्र.-2826 वैक्रियिक समुद्घात किसे कहते हैं, भेद, नाम, परिभाषा क्या है?

उत्तर- मूल शरीर को न छोड़ते हुए मनोरंजन के लिए देवों का, चक्रवर्ती आदि और भोगभूमिजों

का विक्रिया सहित तैजस कार्माण शरीर के साथ आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलने को वैक्रियिक समुद्घात कहते हैं। जैसे 700 मुनियों को बचाने के लिए विष्णुकुमार मुनि ने विक्रिया की थी। दो भेद हैं। पृथक्विक्रियाः- अपने शरीर से भिन्न नाना शरीर, सेना आदि बना लेना। अपृथक्विक्रियाः- अपने ही शरीर के छोटेबड़े, लंबेचौड़े, मोटेपतले, प्रियअप्रिय पशुपक्षी आदि रूप में आकार बना लेना।

प्र.-2827 मारणांतिक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर- मृत्यु के समय में मूल शरीर को न छोड़ते हुए जहाँ की आयु बांधी है उस प्रदेश को छूने के लिए तैजस कार्माण शरीर के साथ आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलने को मारणांतिक समुद्घात कहते हैं।

प्र.-2828 अशुभ तैजस समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर- अनिष्टकारी उपसर्गादि कारणों को देखकर क्रोधित संयमीमहामुनि के बांयेकंधे से सिंदूर जैसी कांति वाला 12 योजन लंबा, सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण मूल विस्तार, 9 योजन अग्र विस्तार वाला बिलाव के आकार पुतला निकलकर बांयी प्रदक्षिणा देकर द्वीपायन मुनि के समान जिस पर क्रोधी हो उसको भस्म करके पुनः स्वयं भस्म हो जाने को अशुभ तैजस समुद्घात कहते हैं।

प्र.-2829 शुभ तैजस समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर- प्राणियों को रोगादि से दुःखी देखकर दयालु महाऋषि के मूल शरीर को न छोड़ते हुए तैजस कार्माण शरीर के साथ पूर्व शरीर प्रमाण, सौम्य आकृति का धारक पुतला दायें कंधे से निकलकर दक्षिण प्रदक्षिणा करके सभी को सुखीसंपन्न कर वापिस आकर स्वशरीर में प्रवेश करने को शुभ तैजस समुद्घात कहते हैं।

प्र.-2830 आहारक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर- किसी ज्ञेय में शंका होने पर ऋद्धि संपन्न महाऋषि के मूल शरीर को छोड़े बिना तैजसकार्माण शरीर के साथ मस्तक से एकहाथ प्रमाण शुद्धस्फटिक जैसी आकृति वाले पुतले का निकलकर जहाँ केवली हैं वहाँ जाकर शंका निवारण कर लौटकर मूल शरीर में प्रवेश कर जाने को आहारक समुद्घात कहते हैं।

प्र.-2831 केवली समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर- मूल शरीर को न छोड़ते हुए तैजस कार्माण शरीर के साथ दंड, कपाट प्रतर और लोकपूरण रूप में आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलने को केवली समुद्घात कहते हैं।

प्र.-2832 कौन से समुद्घात किस दिशा में होते हैं?

उत्तर- आहारकसमुद्घात शंका समाधान, दर्शनार्थ जिस दिशा में केवली विराजमान हैं उसी दिशा में एवं मारणांतिकसमुद्घात जहाँ जन्म लेना है उसी दिशा में होता है शेष पाँच समुद्घात दशों दिशाओं में होते हैं।

प्र.-2833 द्रव्यलिंगी मुनि किसे कहते हैं और ये कहाँ तक जा सकते हैं?

उत्तर- **द्रव्यनिर्ग्रंथा नरा भावेनासंयता देशसंयताः मिथ्यादृष्टयो वा उपरिमग्रैवेयिकपर्यंतं गच्छंति।।545।।** त्रि.सा. अ. वैमानिकलोका. पृ. 469। शरीर से निर्ग्रंथ और भावों से चौथे गुणस्थानवर्ती अव्रती, देशव्रती और मिथ्यादृष्टियों को द्रव्यलिंगी मुनि कहते हैं। ये उत्कृष्टतः अंतिम ग्रैवेयिक पर्यंत जन्म ले सकते हैं।

प्र.-2834 निषेध रूप में मुनिराज कैसे होते हैं?

उत्तर- जैसे आदि और अंत में दीपक होने से सर्वत्र प्रकाश होता है ऐसे ही गय संगो परिग्रह त्यागी मुनि होते हैं। जब परिग्रह के त्यागी हैं तो आरंभ के भी त्यागी हैं। आरंभ परिग्रह के त्यागी होने

से हिंसापाप और परिग्रहपाप के त्यागी हैं। हिंसा के त्याग से अहिंसा महाव्रत और परिग्रह के त्याग से अपरिग्रह महाव्रत होता है। जब आदि अंत के व्रत हैं तो मध्य के व्रत स्वतः आ जाते हैं।

प्र.-2835 परिग्रहधारी को मुनि क्यों नहीं कहा?

उत्तर- यदि समस्त प्रकार के आरंभ परिग्रह के धारी, नाना प्रकार के पापकार्यों में लिप्त चोलाधारी को मुनि गुरु कहा जाये तो गृहस्थ किसे कहेंगे? सभी परिग्रहधारी मुनि संन्यास आश्रम वाले होने से गृहस्थाश्रम तथा वानप्रस्थाश्रम में कौन रहेगा? फिर कुकर्म करने वाले भी संन्यास आश्रमधारी हो जायेंगे यदि ऐसे कुकर्मी मोक्षगामी हुए तो संसारमार्गी कौन होगा? अतः आरंभी परिग्रही निर्ग्रंथ दिगंबर जैनमुनि नहीं हो सकता है।

नोटः- यहाँतक 2835 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 88वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 89वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मुनिराज कैसे?

अवियप्पो णिद्दंदो णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
णिम्मल सहावजुत्तो जोई सो होइ मुणिराओ।।89।।

अविकल्पो निर्द्वंदो निर्मोहो निष्कलंको नियतः।
निर्मल स्वभावयुक्तो योगी स भवति मुनिराजः।।

जो **अवियप्पो** निर्विकल्प, **णिद्दंदो** निर्द्वन्द्व **णिम्मोहो** निर्मोही **णिक्कलंकओ** निष्कलंक **णियदो** नियत **णिम्मलसहाव** निर्मल स्वभाव से **जुत्तो** युक्त हैं **सो** वे **जोई** योगी **मुणिराओ** मुनिराज **होइ** होते हैं।

प्र.-2836 इस गाथा में किन मुनियों का वर्णन किया गया है?

उत्तर- आ. श्री ने यहाँ कुछ विशेषणों से पूर्णतः घातिकर्म धोने वाले स्नातकों का वर्णन किया है क्योंकि साध्य की प्राप्ति साधक को होती है, दूसरों को नहीं। सिद्ध पद के साक्षात् साधक अयोगकेवली ही हैं।

प्र.-2837 चरम द्वीचरम समयवर्ती अयोगकेवली को मोक्षमार्गी क्यों कहा?

उत्तर- चारित्र के पूर्ण अंश प्राप्त किये बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है और चारित्र के पूर्ण अंशों की प्राप्ति 14वें गुणस्थान के चरम समय में होती है। जब गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणास्थान वाले संसारी अशुद्ध जीव हैं, संसारीजीव मार्ग हैं तो सिद्धजीव मार्ग के फल हैं अतः चरम समयवर्ती अयोगी को व्ययधर्म की अपेक्षा निश्चय मोक्षमार्ग और उत्पाद धर्म की अपेक्षा सिद्धों को मार्ग का फल कहा है।

मग्गो मग्ग फलं द्विय जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवायो तस्स फलं होई णिव्वाणं।।2।। नि.सा.।

अर्थ-: जिनशासन में मार्ग और मार्ग का फल कहा है, मोक्ष प्राप्ति का उपाय रत्नत्रय व फल मोक्ष है।

प्र.-2838 स्नातक मुनियों के लिए ''अवियप्पो'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- **अवियप्पो** यह विशेषण पारिणामिक भाव को बतलाता है क्योंकि इस विशेषण के द्वारा आत्मद्रव्य में अनादिकाल से अबतक और अब से अनंतकाल तक विकल्प रहा ही नहीं है।

प्र.-2839 स्नातक मुनियों के लिए ''णिद्दंदो'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- यह **णिद्दंदो** विशेषण क्षायिकभाव है क्योंकि द्वंदपने का कारण समस्त कर्मोदय है। इन कर्मों के क्षय से निर्द्वंदपना प्राप्त होता है। इस जीव ने परमोत्कृष्ट पुरुषार्थ कर इस विशेषण की प्राप्ति की है। यह अत्यल्प तपश्चरण का फल न होकर महान तप का फल है अतः निर्द्वंद विशेषण लगाया है।

प्र.-2840 स्नातक मुनियों के लिए ''णिम्मोहो'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- **णिम्मोहो** यह क्षायिकभाव है क्योंकि चारित्र मोहनीय के समूल क्षय से प्राप्त होता है और मोहकर्म का क्षय क्षपकश्रेणी वाले महामुनि के उत्कृष्ट धर्मध्यान से या पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान के अंतिम चरमोत्कृष्ट परिणामों से दसवें गुणस्थान के अंतिम समय में होता है अतः निर्मोही पद लगाया है।

प्र.-2841 स्नातक मुनियों के लिए ''णिक्कलंकओ'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- **णिक्कलंकओ** यह विशेषण क्षायिकभाव है। अपने[2] गुणस्थानानुसार शुभ और शुद्धध्यानों से उत्तर तथा मूलप्रकृतियों को क्रमशः समूल क्षय करके निष्कलंक पद प्राप्त करते हैं सो ऐसा विशेषण लगाया है।

प्र.-2842 स्नातक मुनियों के लिए ''णियदो'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- ''**णियदो**'' विशेषण क्षायिक और पारिणामिक दोनों भाव स्वरूप है सो यहाँ दोनों भावों को ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि सिद्धों में और स्नातक मुनियों के दोनों भाव पाये जाते हैं। **पहला अर्थ** अपने द्रव्य गुणों में नियत स्वभावी हैं, अपरिणामी हैं, अनाद्यनंत परम पारिणामिक भाव में नियत हैं। **दूसरा अर्थ** क्षायिक नैमित्तिकभाव हैं अर्थात् **नि-** निकल गया है **यत-** यत्न जिनका सिद्धपद प्राप्त करने का पुरुषार्थ अब कुछ शेष नहीं बचा है, कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त हो गये हैं उन्हें नियत कहते हैं।

प्र.-2843 स्नातक मुनियों के लिए ''णिम्मल'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- ''**णिम्मल**'' यह क्षायिकभाव है। व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के द्वारा द्रव्य, भाव और नोकर्ममलों को क्षय कर देने से निर्मलभाव उत्पन्न होता है। घातियाकर्मों के क्षय से सयोगियों के एकदेश निर्मल क्षायिकभाव और समस्त कर्मों के क्षय से सिद्धों के पूर्ण निर्मलभाव होता है सो निर्मल विशेषण लगाया है।

प्र.-2844 स्नातक मुनियों के लिए ''स्वतंत्र'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- ''**स्वतंत्र**'' विशेषण क्षायिकभाव है। घातियाकर्मों के क्षय से स्नातक मुनि एकदेश स्वतंत्र होते हैं। कर्माधीन अवस्था में ही आहार विहार और निहार होता है और संसारावस्था का नाम ही परतंत्रता है।

प्र.-2845 स्नातक मुनियों के लिए ''निश्चल'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- ''निश्चल'' विशेषण भी क्षायिकभाव है क्योंकि आत्मप्रदेशों में चंचलता का कारण योग है, विकार है, कर्म है और इनके पूर्ण क्षय से निश्चलपना प्राप्त होता है। यद्यपि 14वें गुणस्थान के प्रथम समय में या 13वें गुणस्थान के अंत में योगों का अभाव करके अशुद्ध निश्चलपना प्राप्त हो जाता है क्योंकि अभी अघातियाकर्मों का उदय एवं सत्त्व मौजूद है इसलिए अशुद्ध निश्चलपना कहा है किंतु पूर्ण शुद्ध निश्चलपना सिद्धों में ही प्राप्त होता है अतः निश्चल विशेषण लगाया है।

प्र.-2846 स्नातक मुनियों के लिए ''निष्काम'' विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- यह ''**निष्काम**'' विशेषण क्षायिकभाव है, कृतकृत्य हैं। जिस ध्येय से दिगंबर निर्ग्रंथदीक्षा धारण की थी वह ध्येय प्राप्त होने के निकट है तथा प्राप्त होते ही तत्क्षण मोक्ष में जा विराजमान होते हैं।

प्र.-2847 स्नातक मुनि किसे कहते हैं और ये विशेषण कहाँ प्राप्त होते हैं?

उत्तर- घातियाकर्मों के क्षय से उत्पन्न क्षायिकभाववान को स्नातक मुनि कहते हैं किंतु ये विशेषण अयोगी स्नातक मुनियों के अंतिम समय में प्राप्त होकर सिद्धों तक रहते हैं। ये सभी विशेषण सादि एवं अनंत हैं।

प्र.-2848 स्नातक मुनि के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- स्नातक मुनि के दो भेद हैं। नामः- सयोगकेवली स्नातक और अयोगकेवली स्नातक।

प्र.-2849 क्या सिद्धों में इतने ही विशेषण होते हैं या और भी?

उत्तर- गाथा में केवल छह विशेषण दिये हैं ऐसे ही अनंत गाथा सूत्र बना सकते थे पर इतना आ. श्री के पास न क्षयोपशम था, न समय था, न जीवन था और न श्रोताओं में धारण करने के लिए बीजबुद्धि ऋद्धि है, न इतना धारणा मतिज्ञान है कि वे इतना लंबा विषय धारण कर सकें अतः आ. श्री कुंदकुंदजी कथित विशेषणों का शिष्यगण अपने ज्ञानानुसार चिंतन मनन कर विस्तार करें।

पण्णवणिज्जाभावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो।।334।। जी.कां.

अर्थ-: केवली जितना जानते हैं उसके अनंतवें भाग ही कथन कर पाते हैं और जितना प्रतिपादन करते हैं उसके अनंतवें भाग ही गणधर धारण कर उससे अनंतवें भाग ही प्रतिपादन कर पाते हैं, इसके अनंतवें भाग ही शास्त्रों में निबद्ध हुआ है ऐसा आगे आगे चला आ रहा है ऐसे ही अपन जितना जानते हैं उतना बोल नहीं पाते हैं और जितना बोल देते हैं उतना श्रोता गण न समझ पाते हैं, न धारण कर पाते हैं।

प्र.-2850 ये विशेषण प्रमत्ताप्रमत्त मुनियों के माने जायें तो क्या दोष है?

उत्तर- हाँ, भावी नैगमनय से प्रमत्ताप्रमत्त मुनियों के ये विशेषण मानने में कोई दोष नहीं है किंतु वर्तमान नय से वर्तमान में मुनियों के ये विशेषण माने जायें तो गृहस्थों के भी मानने पड़ेगे जिससे गृहस्थों में सभी कर्मो का और सभी विकारों का सद्भाव बन नहीं सकता आदि कारणों से ये विशेषण प्रमत्ताप्रमत्त मुनियों के नहीं होते हैं, कदाचित् कहीं किन्हीं ने कहे हैं तो उसे उपचार से, भावी नैगमनय से मानना चाहिये।

प्र.-2851 भावी नैगमनय से प्राप्त होते हैं इसका क्या मतलब है?

उत्तर- इस प्रमत्ताप्रमत्त पद को छोड़कर स्नातकमुनि बनकर इन विशेषणों को प्राप्त करेंगे यह मतलब है।

प्र.-2852 यह नयसमूह कैसा है, इसमें क्यों भटक जाता है और किसके समान है?

उत्तर- **निश्चयमबुध्यमानो यो निश्चयतस्तमेव संश्रयते।**
नाशयति करणचरणं स बहिः करुणालसो बालः।।50।। पु.सि.

अर्थः- जो जीव निश्चय के स्वरूप को यथार्थ में न जानकर निश्चय का ही आश्रय लेता है वह मूर्ख बाह्य क्रियाओं में आलसी होकर षडावश्यक रूपी करण को और आचरण रूप मूलगुण को नष्ट करता है।

इति विविधभङ्गगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्।
गुरवो भवंति शरणं प्रबुद्धनयचक्रसञ्चाराः।।58।। पु.सि.

अर्थः- इस प्रकार अत्यंत कठिनता से पार किये जाने वाला नाना भंगों से गहनवन में मार्ग भूले हुए पुरुषों को अनेक नय समूह के ज्ञाता श्रीगुरु ही शरण होते हैं।

अत्यंत निशित धारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रं।
खंडयति धार्यमाणं मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानाम्।।59।। पु.सि.

अर्थः- जिनेंद्र का यह नयचक्र अत्यंत कठिन व पैनी तलवार की धार के समान है। जो विरोधियों के नाना दुर्नयों को शीघ्र ही खंड[2] कर देता है। इस नय पद्धति को समझना हरएक के दिमाग की बात नहीं है।

व्यवहार निश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः॥8॥ पु.सि.

अर्थः- जो जीव व्यवहारनय और निश्चयनय को यथार्थतः जानकर मध्यस्थ होता है वही शिष्य देशना के संपूर्ण फल स्वरूप केवलज्ञान को प्राप्त करता है। इसलिए नयों का पक्षपाती नहीं होना चाहिये क्योंकि ये नय वस्तुस्वरूप को समझने के साधकतम उपाय हैं, उलझने के लिए नहीं, हठवाद के लिए नहीं।

प्र.-2853 तो क्या उभयश्रेणियों में ये विशेषण माने जा सकते हैं?

उत्तर- वर्तमान नय से उभयश्रेणियों में भी ये विशेषण नहीं माने जा सकते हैं क्योंकि विशेषण विशेषता को बतलाते हैं और विशेषता के बिना विशेषण कैसे? फिर भी भाविनय से उभयश्रेणियों में इन विशेषणों का प्रयोग करने में कोई दोष नहीं है कारण कि अनेकांतवादियों के यहाँ यह नय पद्धति अभेद्य किला है।

प्र.-2854 तो क्या सभी विकारों के लिए कर्मोदय जरूरी है?

उत्तर- विकारों के लिए कर्मोदय होना सर्वथा जरूरी नहीं है क्योंकि नित्य निगोदिया जीवों के कुछ कर्मों का अनादिकाल से अस्तित्व ही नहीं है फिर उनका बंध कैसे होगा? नवीन बंधनार्थ तदनुकूल परिणाम अवश्य होना चाहिये किंतु वर्तमान में परिणामों के लिए कर्मोदय होना जरूरी नहीं है।

प्र.-2855 नवीन बंध के लिए नवीन परिणाम चाहिये तो वे कौन सी प्रकृतियां हैं?

उत्तर- किसी भी गति के एक जीव के शेष तीन गति संबंधी आयु का सत्त्व उदय न होने से नवीन बंध के लिए नवीन परिणाम होते हैं। आहारक शरीर, उच्चगोत्र, सातावेदनीय, तीर्थंकर प्रकृति आदि अनेक सातिशय पुण्य या पाप प्रकृतियों का अस्तित्व ही नहीं है तब वहीं पर कर्मों के कुछ मंदोदय से मंदभाव होने से, अशुभ लेश्याओं के अंशों में कुछ हीनता होने से मनुष्यायु, वज्रवृषभनाराचसंहनन, त्रसनामकर्म, पंचेंद्रियनामकर्म, समचतुरस्त्रसंस्थान आदि का बंध करने के बाद में मरकर मनुष्य में आकर अपने भावानुसार शेष तीन गति संबंधी कर्मों को बांधकर चतुर्गतियों में जनम मरण करता हुआ भ्रमण करता रहता है।

प्र.-2856 अनेकजन कहते हैं कि हमारा ऐसा ही कर्मोदय है तो हम क्या करें?

उत्तर- जो ऐसा कहते हैं वे वस्तुव्यवस्था के अजानकार होने से अनात्मज्ञ हैं, आत्मवंचक हैं, स्व, पर, उभय के घातक हैं ये कर्म को दोष देते हैं, अपनी करनी को नहीं। यदि कर्म ही दोषी हैं तो प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त, आलोचनादि कर्मों को ही करना चाहिये, आत्मा को नहीं, निरपराधी आत्मा संसार में क्यों भ्रमण करें? कर्मों को ही भ्रमण करना चाहिये। कर्म ही सुखी दुःखी होवें, आत्मा क्यों? इन मोहियों की यह विचित्र दशा है कि जब स्वयं से कुछ अच्छा काम हुआ तो हमने किया ऐसा दंभ भरता है और बिगड़ गया तो भाग्य को दोष देता है कदाचित् स्वगलती को मंजूर करता हुआ भी दृढ़ संकल्पी नहीं हो पाता, प्रसंग आने पर घबड़ा जाता है अतः निरपराधी बनने का पूर्ण अभ्यास करो और गलती को हानिकारक जानकर त्याग करो।

प्र.-2857 भाग्य और पुरुषार्थ में कौन समर्थ है या कौन असमर्थ?

उत्तर- ये दोनों ही अपने अपने स्थान पर पूर्ण समर्थ हैं किंतु अधिकतर भाग्य से पुरुषार्थ और पुरुषार्थ से भाग्य काट दिया जाता है फिर भी मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति पुरुषार्थ से ही होती है, भाग्य से नहीं।

प्र.-2858 आत्मा शुद्धबुद्ध है और विकार ही संसार है ऐसा कहने में क्या दोष है?

उत्तर- मोहियों का ऐसा कहना ही दोष है, जिनशासन ऐसा नहीं है किंतु सांख्यमत है क्योंकि

संसारी आत्मा विकारी होने पर भी शुद्धबुद्ध ज्ञाताद्दष्टा मान लेने से त्याग तपधर्म की, वैरागी साधु बनकर ध्यान साधना करने की क्या जरूरत है? अतः ज्ञाताद्दष्टा आत्मा का लक्षण है और लक्षण लक्ष्य की प्राप्ति के लिए होता है क्योंकि लक्ष्य प्राप्ति के बाद लक्षण का विचार एवं ध्यान नहीं किया जाता है। यदि मोक्ष प्राप्ति के बाद भी लक्षण का ध्यान किया जाय तो सिद्धों को पुनः लक्षण स्वरूप ज्ञाता द्दष्टा शुद्धबुद्ध का ध्यान करना होगा क्योंकि जब सिद्ध ध्यान करने वाले हैं तो ध्यान, ध्याता और ध्येय का फल भी होना चाहिये और ऐसा होने से सिद्धावस्था नहीं बन सकती है यही महान दोष है।

प्र.-2859 ज्ञाता, द्दष्टा, शुद्ध, बुद्ध यह कौन सा भाव है?

उत्तर- गुणों की अपेक्षा ज्ञाता, द्दष्टा, शुद्ध, बुद्ध ये पारिणामिक भाव हैं और नैमित्तिक भावों की अपेक्षा क्षायिकभाव हैं क्योंकि दोनों आवरणकर्मों के क्षय से सर्वज्ञता आत्मद्दष्टा, संपूर्ण कर्मों के क्षय से शुद्धभाव तथा केवलज्ञानी होने से बुद्ध क्षायिकभाव कहा है।

प्र.-2860 क्या शुद्धपना सर्वथा क्षायिकभाव ही है?

उत्तर- शुद्धपना सर्वथा क्षायिकभाव नहीं है किंतु पारिणामिक भी है जो धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन 4 द्रव्यों में भी पाया जाता है क्योंकि अशुद्धपना परद्रव्यों के संयोग या भेद से प्राप्त होता है।

प्र.-2861 यदि ऐसा है तो शुद्धभाव क्षायिक ही है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ मोक्ष प्राप्ति के निमित्त संसारी जीवों का वर्णन है इसलिए इसे क्षायिकभाव ही कहा है।

प्र.-2862 ध्यान का फल क्या है और किसकी प्राप्ति के लिए ध्यान किया जाता है?

उत्तर- ध्यान का फल संवर निर्जरा और मोक्ष है तथा इन्हीं की प्राप्ति के लिए ही किया जाता है।

प्र.-2863 ज्ञाता द्दष्टा आत्मा का स्वभाव है या लक्षण?

उत्तर- सामान्य ज्ञाता द्दष्टापना आत्मा का स्वभाव, लक्षण है किंतु विशेष ज्ञानदर्शन स्वभाव है, लक्षण नहीं क्योंकि केवलज्ञान केवलदर्शन को लक्षण मानने पर समस्त आत्माओं को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी मानने का तथा अव्याप्ति दोष का भी प्रसंग आयेगा फिर छद्मस्थ, अल्पज्ञ, अल्पज्ञानी कौन रहेगा?

प्र.-2864 विशेष ज्ञान दर्शन स्वभाव हो सकते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- उपादान उपादेय की अपेक्षा पूर्ण केवलज्ञान केवलदर्शन को स्वभाव कहा है क्योंकि ये अप्रतिपाती हैं किंतु आदि के 4 ज्ञान, 3 दर्शन प्रतिपाती होने से विभावरूप है। नि.सा. गा. 11 और 13।

प्र.-2865 निमित्त नैमित्तिक संबंध किसमें होता है?

उत्तर- वे द्रव्य चेतन अचेतन हों, मूर्त अमूर्त हों या चेतन चेतन हों, मूर्त मूर्त हों, अमूर्त अमूर्त हों इन भिन्न भिन्न सभी द्रव्यों का परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध होता है।

प्र.-2866 उपादान उपादेय संबंध किसमें होता है?

उत्तर- उपादान उपादेय संबंध एक ही द्रव्य गुण और पर्यायों में होता है। शुद्ध द्रव्य गुण पर्यायों में शुद्ध उपादान उपादेय संबंध तथा अशुद्धद्रव्य गुण पर्यायों में अशुद्ध उपादान उपादेय संबंध होता है।

प्र.-2867 निमित्त और नैमित्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर- बाह्य चेतन अचेतन सामग्री को या सचित्त अचित्त मिश्र सामग्री को निमित्त कहते हैं। इनके माध्यम से आत्मा में उत्पन्न हुए तरंगों को, विचारों को, परिणामों को नैमित्तिक कहते हैं।

प्र.-2868 उपादान उपादेय किसे कहते हैं?

उत्तर- शुद्ध या अशुद्धद्रव्य और गुणों को उपादान तथा शुद्ध या अशुद्ध पर्यायों को उपादेय कहते हैं।

प्र.-2869 आत्मा को सर्वथा निर्दोष और कर्मों को ही सदोष मानने में क्या दोष है?

उत्तर- यदि आत्मा को सर्वथा निरपराधी माना जाय तो अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा मोक्ष और पुण्य पाप की व्यवस्था नहीं बन सकती है, निमित्तनैमित्तिक संबंध, चतुर्गति भ्रमण, 84 लाख योनियों में जनममरण नहीं बन सकता है अतः अपेक्षानुसार जीव और कर्मों को कथंचित् अपराधी और निरपराधी मानना चाहिये तभी सबकुछ सिद्ध हो सकता है। जैसे हल्दी और चूना अलग[2] होवे तो लाल रंग की उत्पत्ति नहीं हो सकती है किंतु जब दोनों अत्यंत निकटता के साथ एकरूपता को प्राप्त होते हैं तभी लाल रंग की उत्पत्ति होती है ऐसे ही संसार मोक्ष की, गुणस्थान जीवसमास मार्गणा की सिद्धि हो सकती है। इसलिए संसारी आत्मा को अपराधी मानकर अपराध संशोधनार्थ ही रत्नत्रय प्राप्त करना, पालन करना, धर्मध्यान संयम, व्रत नियमों का धारण पालन करना सार्थक होगा, अन्यथा निरर्थक है। धर्म.प. अ. 17 गा. 54

प्र.-2870 आत्मसाधक साधुवर्ग मंगल हैं या अमंगल और ये मंगल कितने हैं?

उत्तर- सचित्त अचित्त और मिश्र के भेद से मंगल तीन प्रकार का माना है। आत्मसाधक साधुओं का शरीर या साधुपद अचित्तमंगल, रत्नत्रय युक्त आत्मसाधना आराधना सचित्त मंगल है। पीछी कमंडलु युक्त साधुता मिश्र मंगल माना है अथवा पंचपरमेष्ठियों की आत्मा सचित्त मंगल, इनकी प्रतिमायें और शरीर अचित्त मंगल और दोनों एकसाथ होना मिश्र मंगल है अथवा चतुर्विध मुनिसंघ सचित्त मंगल, कृत्रिमाकृत्रिम चैत्य चैत्यालय अचित्त मंगल और चैत्य चैत्यालय सहित या पीछी कमंडलु शास्त्र सहित संघ मिश्र मंगल हैं।

प्र.-2871 यहाँ बिना प्रसंग के मंगल का कथन क्यों किया है?

उत्तर- जब ऊपर नयानुसार आत्मा को अपराधी कहा है तो अपराध को धोने का साधन भी होना चाहिये। उस साधन के अंतरंग और बहिरंग ये दो भेद हैं। अंतरंग साधन रत्नत्रय धर्म से परिणत स्वयं की आत्मा है और बहिरंग साधन देव शास्त्र गुरु हैं क्योंकि जो मल का शोधन करें या उपाय बतलाये उसे मंगल कहा है अतः यहाँ गुरु को मंगल कहा है कारण कि अपन सभी चत्तारिदंडक में साहूमंगलं ऐसा पाठ बोलते ही हैं।

नोटः- यहाँतक 2871 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 89वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 90वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निर्वाणसुख किसको नहीं

तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो मिच्छभावसंजुत्तो।
सव्वण्हूवएसो सो णिव्वाणसुहं ण गच्छेई।।90।।

तीव्रं कायक्लेशं कुर्वन् मिथ्यात्वभावसंयुक्तः।
सर्वज्ञोपदेशो स निर्वाणसुखं न गच्छति।।

मिच्छाभाव संजुत्तो मिथ्यादृष्टि जीव **तिव्वं** तीव्र **कायकिलेसं** कायक्लेशतप **कुव्वंतो** करता हुआ भी **सो** वह **णिव्वाणसुहं** निर्वाण सुख को **ण** नहीं **गच्छेइ** प्राप्त करता है ऐसा **सव्वण्हूवएसो** सर्वज्ञ का उपदेश है।

प्र.-2872 क्या जिनेंद्रोपदेश से मिथ्यादृष्टि जीव निर्वाण सुख को नहीं प्राप्त करता है?

उत्तर- जिनेंद्र के कहने से मिथ्यादृष्टि जीव मोक्ष में नहीं जाता है ऐसा नहीं है किंतु मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व सहित तप करता हुआ भी मोक्ष को नहीं पाता है जैसे गांठ वाले मलिन वस्त्र को कितना ही साबुन सोड़ा से धोओ, भट्ठी में डालकर उबालो, पीटो तो भी गांठ के कारण मैल नहीं

धुलता है ऐसा जिनेंद्र ने कहा है।

प्र.-2873 तीव्र कायक्लेश तप किसे कहते हैं?

उत्तर- संहननानुसार अंतरंग बहिरंग बलवीर्य को न छिपाकर तप करने को तीव्र कायक्लेश तप कहते हैं।

प्र.-2874 गर्मी के दिनों में पर्वत पर स्थित होकर तप करने को क्यों कहा?

उत्तर- उष्ण परीषह को जीतने के लिए गर्मी के दिनों में योग धारण करने को कहा है क्योंकि गर्मी के मौसम में वृक्षों की, बेलों की पतझड़ होने से वृक्ष छायाविहीन हो जाते हैं, सूर्योदय की तीक्ष्ण किरणों से पर्वत की मिट्टी, धूल, पत्थर अत्यंत गर्म हो जाते हैं, तीव्र आंधी तूफान, लू चलती है, बाह्य में शरीर गर्म होने से शरीर का पानी भी सूख जाता है और अंतरंग में विषयकषायों का, दुर्भावनाओं का निग्रह होने से कर्म सूखकर प्रतिसमय प्रतिसमय असंख्यातगुणी[2] पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होने लगती है।

प्र.-2875 वर्षाकाल में वृक्षों के नीचे तपश्चरण करने को क्यों कहा?

उत्तर- अनेकों उपसर्ग परीषहों को जीतकर आत्मबल बढ़ाने के लिए वर्षाकाल में योगधारण करने के लिए कहा है क्योंकि खुली जगह में वर्षा समाप्त होने पर शरीर का पानी सूख जाता है किंतु वृक्ष के नीचे ध्यान करते समय वर्षा समाप्त होने पर भी वृक्ष के पत्तों में रुका हुआ जल लंबे समय तक टपकता रहता है जिससे आसपास की भूमि, पत्ते सड़ जाने से दुर्गंध आने लगती है, पैदा होकर डांस, मच्छर, बिच्छू, दीमकादि जहरीले कीड़े भी शारीरिक अंगों में आकर अपना घर बना लेते हैं, डंक मारते हैं, छील डालते हैं, जंगली जानवर भी आकर दहाड़ते हैं ऐसे विकट समय में वे साधु निर्भय हो आत्मसाधना करते हैं।

प्र.-2876 सर्दियों में चौराहों पर या जलाशयों के किनारे पर रहने को क्यों कहा?

उत्तर- शीत परीषह और उपसर्गों को जीतने के लिए ठंडे स्थानों में रहने को कहा है क्योंकि सर्दी के मौसम में चंद्रकिरणों से सर्वत्र ठंडा वातावरण होने से बर्फ जैसी लहरें हो जाती है, शरीर कांपने लगता है, दांत किटकिटाने लगते हैं, अकड़ जाता है ऐसे समय में ही ध्यान से कर्म नष्ट होने लगते हैं।

प्र.-2877 इन तीनों योगों को धारण करने के लिए क्यों कहा है?

उत्तर- अपनी सामर्थ्य जानने, शरीर से मोह तोड़ने, उपसर्ग परीषह जीतने, सुखिया स्वभाव छोड़ने, आश्रव बंध रोकने, संवर निर्जरा और मोक्ष प्राप्ति के लिए योग धारण किये जाते हैं क्योंकि मोहादि के द्वारा जितना अधिक आत्मप्रदेशों में कंपन होगा उतनी अधिकमात्रा में कर्मों का आश्रवबंध होगा और योग धारण के द्वारा आत्मप्रदेशों में कंपन कम होने से आश्रवबंध कम मात्रा में होगा जिससे आत्मा आत्मशुद्धि की ओर बढ़ती हुई मोक्ष के निकट पहुंचती जायेगी अतः योग धारण करने को कहा है।

प्र.-2878 ये योग समीचीन हैं या मिथ्या और ये कौन से तप हैं?

उत्तर- ये तीनों योग सम्यक्रत्नत्रय सहित होने से समीचीन कायक्लेश सुतप हैं और सम्यक्रत्नत्रय के बिना मिथ्या कायक्लेश कुतप हैं तथा ये तीनों योग बहिरंग तप कहलाते हैं और अंतरंग तप के साधन हैं।

प्र.-2879 सम्यक्रत्नत्रय सहित आर्तरौद्रध्यान क्या हैं?

उत्तर- ये सम्यक्रत्नत्रय सहित आर्तरौद्रध्यान, ख्याति, पूजा लाभ की भावना ये सभी चारित्रगुण के विकार हैं और मिथ्यात्रय सहित ये मिथ्यातप, मिथ्याव्रत, अज्ञानतप, अज्ञानव्रत, बालतप, बालव्रत,

मिथ्याचरण हैं।

प्र.-2880 इन योगों को धारण करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- सम्यक्कायक्लेश तप से मोक्ष होता है और मिथ्या कायक्लेश तप से चतुर्गति में भ्रमण होता है।

प्र.-2881 ये तीनों योग वास्तव में किसका अनुसरण करते हैं?

उत्तर- जैसे सेना सेनापति का अनुसरण करती है वैसे ही ये योग अभिप्राय व विवेक का अनुसरण करते हैं।

प्र.-2882 ये तीनों योग कायक्लेश होने से कुतप है या सुतप?

उत्तर- ये योग ख्यातिपूजालाभ, रागद्वेष मोह सहित कुतप तथा इनके बिना सम्यक्तप कहलाते हैं।

प्र.-2883 योग निरोध रूपी गुप्तियां और अंतरंग तप ध्यान में क्या अंतर है?

उत्तर- योगनिरोध रूपी गुप्तियों से आत्मप्रदेशों का कंपन रोक दिया जाता है जिससे पूर्णतः आश्रवबंध का निरोध होकर पूर्ण संवर होता है किंतु इससे कर्मों की पूर्ण निर्जरा नहीं होती क्योंकि निर्जरा का कारण तप है। **''तपसा निर्जरा च''** योग निरोध तप नहीं है किंतु गुप्ति है। अंतरंगतप का अंतिम भेद ध्यान है, ध्यानों का अंतिम भेद व्युपरतक्रियानिवृत्तिशुक्लध्यान है। इससे ही अघातियाकर्मों का क्षय होता है। गुप्तियां होने के अंतर्मुहूर्त बाद इस अंतरंग तप का उत्कृष्ट अंश रूप ध्यान होता है यही इनमें अंतर है।

प्र.-2884 गुप्तियों से अघातिया कर्मों का क्षय माना जाय तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि गुप्तियों से ही अघातिया कर्मों का समूल क्षय माना जाय तो 14वें गुणस्थान के प्रथम समय में ही अघातिकर्मों का क्षय हो जाना चाहिये था पर होता नहीं किंतु अंतर्मुहूर्त के बाद में या पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण करने में जितना समय लगता है उसके अंतिम समय में तथा उपांत्य समय में अघातिकर्मों का क्षय होता है इससे सिद्ध होता है कि गुप्तियों से कर्मों का क्षय न होकर व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान से या परमयथाख्यातचारित्र से क्षय होता है अथवा गुप्तियों से अघातियाकर्मों का क्षय मानने पर चौदहवें गुणस्थान का अस्तित्व ही नहीं बन सकता है अतः गुप्तियों से कर्मों का क्षय मानना ही आपत्ति है।

प्र.-2885 यदि गुप्तियों से कर्मों का समूल क्षय नहीं होता है तो आ. श्री कुंदकुंदजी ने प्र.सा. चा.चू. गा. 38, मो.पा. गा. 53 में क्यों कथन किया है?

उत्तर- कर्मसिद्धांतानुसार अयोगकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय में 72, अंतिम समय में 13, 12, 11, 10 कर्म प्रकृतियों का समूल क्षय होता है। जबकि असंख्यात समयों की आवली, संख्यात आवलिओं का उच्छ्वास होता है और अंतर्मुहूर्त में अनंत समय होते हैं। अतः आचार्य श्री कुंदकुंदजी ने उपचारनय से या भावी नय से कथन किया है तथा कर्मसिद्धांत में, क्षपणविधि में वर्तमाननय से वर्तमान में तत्काल क्या कार्य हो रहा है यह बताया है। इसलिए **''अर्पितानर्पित सिद्धेः''** सूत्रानुसार सभी कथन निर्दोष हैं।

प्र.-2886 यहाँ योग का अर्थ मन वचन काय की क्रिया की जाये तो क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, यहाँ यदि आश्रवबंध का प्ररूपण होता, आत्मा के प्रदेश में कंपन का प्रयोजन होता तो योग का अर्थ मन वचन काय की क्रिया लिया जा सकता था किंतु ध्यान का प्रकरण होने से क्रिया अर्थ न लेकर मोक्ष के निमित्त योग का अर्थ ध्यान संबंधी वर्षा, शीत, ग्रीष्म इन तीनों योगों को ग्रहण किया है।

नोटः- यहाँतक 2886 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 90वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 91वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मलिनता में शुद्धात्मदर्शन नहीं

रायाइमलजुदाणं णिय अप्पारूवं ण दिस्सए किं वि।
समलादरिसे रूवं ण दिस्सए जह तहा णेयं।।91।।

रागादिमलयुक्तानां निजात्मरूपं न दृश्यते किमपि।
समलादर्शे रूपं न दृश्यते यथा तथा ज्ञेयम्।।

जह जैसे **स मलादरिसे** मलिन दर्पण में **रूवं** रूप **ण** नहीं **दिस्सए** दिखाई देता **तहा** वैसे ही **रायाइ** रागादिक मल से **मलजुदाणं** मलिन मनवालों के द्वारा **णिय** अपना **अप्पारूवं** शुद्धात्म स्वरूप **किं वि** कुछ भी नहीं **णेयं** जाना जाता।

प्र.-2887 अपनी आत्मा का निर्मल स्वभाव क्यों दिखाई नहीं देता है?

उत्तर- विषयविकारों से, दुर्भावनाओं से मलिन मन में शुद्धात्मानुभव नहीं होता है, न जानने में आता है।

प्र.-2888 शुद्धात्मानुभव में बाधक हेतु क्या है?

उत्तर- जैसे मलिन दर्पण में, गंदे पानी में, दूषित स्टील के पात्र में, मलिन काले पत्थर में अपना चेहरा स्पष्ट साफ स्वच्छ दिखाई नहीं देता है ऐसे ही मलिन चश्मा में बाहर का दृश्य पदार्थ साफ स्वच्छ दिखाई नहीं देता है ऐसे ही मलिन उपयोग में आत्मदर्शन नहीं हो पाता है।

प्र.-2889 राग आदि पद से किन किन को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- राग आदि से समस्त मोहकर्म या समस्त घातिया अघातिया कर्मों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि जबतक आत्मा में मोहकर्म का बंध उदय और सत्त्व मौजूद है तबतक शाश्वत वीतरागता प्राप्त नहीं होती है। मोह के समूल क्षय से पूर्ण वीतराग होने पर भी शेष तीन घातियाकर्मों का उदय सत्त्व होने से केवलज्ञान न होने से शुद्धात्मा का प्रदेश प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो पाता है और अघातिया कर्मों के सद्भाव में सिद्धावस्था प्राप्त नहीं होती है अतः सिद्धावस्था प्राप्त करने के लिए अघतिया कर्म रूपी मलों का क्षय करना जरूरी है तभी परम शुद्ध, उत्कृष्ट शुद्ध मोक्ष पद की प्राप्ति होती है अथवा यहाँ राग पद से 4 माया, 4 लोभ तथा हास्य, रति, तीनों वेद ये पाँच कषायें तथा द्वेष से 4 क्रोध, 4 मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन बारह और इन्हीं में दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों को मिलाने से 13+12+3= 28 प्रकृतियों को मल समझना चाहिये।

प्र.-2890 गृहस्थों को क्या शुद्धात्मा का अनुभव होता है?

उत्तर- इस प्रकार बोलने वालों को आ. श्री कुंदकुंद कृत रयणसार की इस गाथा को पढ़ना समझना चाहिये क्योंकि जब गृहस्थों की आत्मा में समस्त कर्म मल मौजूद है तो वे शुद्धात्मा का अनुभव कैसे करेंगे? फिर भी यदि कोई बलात् शुद्धात्मानुभव की बात करें तो यह गाथा गलत है या बोलने वाला गलत है। प्रमादियों के आत्मानुभव को अनुभवप्रत्यक्ष, मानसप्रत्यक्ष कहा है। जो **आद्ये परोक्षम्** मतिज्ञान श्रुतज्ञान के द्वारा अनुभव किया जाता है, ये दोनों ज्ञान परोक्ष हैं। यद्यपि अवधिज्ञान इनके होता है तो भी यह रूपी पदार्थों को ही विषय करता है अरूपी को नहीं अतः गृहस्थों के आत्मानुभव प्रदेशप्रत्यक्ष नहीं होता है।

नोटः- यहाँतक 2890 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 91वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 92वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

ऐसी आत्मा दीर्घसंसारी?

दंडत्तय सल्लत्तय मंडियमाणो असूयगो साहू।

भंडणजायणसीलो हिंडइ सो दीहसंसारे ॥92॥

दंडत्रय शल्यत्रय शोभायमानोऽसूयकः साधुः।

भंडन याचनशीलो हिंडते सः दीर्घसंसारे॥

जो **साहु** साधु **दंडत्तय** तीन दंडों से **सल्लत्तय** तीन शल्यों से **मंडियमाणो** शोभायमान **असूयगो** ईर्ष्यावान **भंडण** कलहवान और **जायणसीलो** याचनाशील है **सो** वह **दीह** दीर्घ, **संसारे** संसार में **हिंडइ** भ्रमण करता है।

प्र.-2891 दंड कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधीमान आदि कषायोदय से दंड उत्पन्न होते हैं।

प्र.-2892 मनदंड कैसे उत्पन्न होता है और क्या हानि है?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि मानकषाय पूर्वक ज्ञानपूजादि आठों के माध्यम से मनदंड उत्पन्न होता है। अनंतानुबंधी मनदंड से रत्नत्रयधर्म, अप्रत्याख्यानावरण मनदंड से अणुव्रत, प्रत्याख्यानावरण मनदंड से महाव्रत उत्पन्न ही नहीं हो पाते हैं। संज्वलन मनदंड से मार्दवधर्म नष्ट होकर सूक्ष्मसांपरायचारित्र व यथाख्यातचारित्र के लिए सर्वघाती है किंतु महाव्रतों में अतिक्रमादि दोष उत्पन्न होते हैं यही महान हानि है।

प्र.-2893 ये अतिक्रम आदि 4 दोष किस कर्मोदय से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से असंयम पूर्वक मोक्षमार्ग में, प्रत्याख्यानावरणकषायोदय से अणुव्रतों में तीन दोष लग सकते हैं और संज्वलनकषायोदय से महाव्रतों में तीन दोष होते हैं।

प्र.-2894 वचनदंड किसे कहते हैं, कैसे उत्पन्न होता है और क्या हानि है?

उत्तर- मानकषाय पूर्वक अहंकारात्मक, तिरस्कारात्मक वचन बोलने को वचनदंड कहते हैं। यह वचनदंड मनदंडानुसार ज्ञानपूजादि आठ भावों का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है। मन दंड से केवल अपनी ही हानि होती हैं तो वचनदंड से स्व, पर और उभय की हानि होती है। अपना ही रत्नत्रय धर्म, मुनिधर्म दूषित या नष्ट हो जाता है, पापवर्धक वचनोच्चारण से स्वयं की, परिवार आदि की बदनामी होती है, मान मर्यादा नष्ट हो जाती है। जीवनभर का किया गया उपकार, विश्वास गलत वचनोच्चारण से क्षणमात्र में बालु की दीवार की तरह नष्ट हो जाता है, सभीजन भयभीत होकर परहेज करने लगते हैं आदि वचनदंड से हानि होती है।

प्र.-2895 कायदंड कैसे उत्पन्न होता है और क्या हानि है?

उत्तर- मानकषाय सहित शारीरिक अकड़न को कायदंड कहते हैं। मनदंड, वचनदंड के आश्रय से कायदंड उत्पन्न होता है। इस कायदंड से रावण की तरह स्व, पर और उभय के धर्म का विनाश होता है। कदाचित् काय की उद्दंडता से दूसरों का पतन नहीं हुआ पर अपना पतन तो होता ही है। इस काय की उद्दंडता से मोक्षमार्ग मलिन या विनष्ट हो जाता है जो दिख जाता है। जब यह शरीर से नहीं झुकता तो मन वचन से क्यों झुकेगा? आदि विचार कर संपर्क में आने वाले व्यक्ति सावधान हो जाते हैं, कंपित, भयभीत हो जाते हैं, आजकल देव शास्त्र गुरु के सामने शरीर से न झुकने के कारण कमर घुटने आदि शारीरिक रोग पैदा हो रहे हैं जो इलाज करने पर भी ठीक नहीं हो पाते हैं आदि नाना प्रकार की हानियां प्राप्त होती हैं।

प्र.-2896 इस व्यक्ति में मनदंड है यह कैसे जाना जाये?

उत्तर- "**वक्त्रं वक्ति हि मानसम्।**" इस नीति के अनुसार मनुष्यों का चेहरा आँखादि ही मन की भावना को बता देते हैं कि इसके मन में यह है और यह नहीं है। जैसे घड़े में दूध, पानी ठंडा है तो बाहर से भी ठंडा लगेगा और अंदर गर्म है तो बाहर से गर्म लगेगा किंतु ठंडे गर्म की पहंचान

के लिए हाथ नहीं डालते हैं। ऐसे ही अधिकतर मनुष्यों के चेहरे से भावों की जानकारी हो जाती है, पर सर्वथा नहीं ऐसे जाना जाता है।

प्र.-2897 सर्वथा जानकारी हो जाती है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- नहीं, यदि सर्वथा जानकारी हो जाये तो मायाचार का लक्षण नहीं बन सकता है अतः अधिकतर जानकारी हो जाती है, सर्वथा नहीं ऐसा कहा है क्योंकि मायावी के गूढ़ रहस्यों को अवधिज्ञानी देवगण और ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी भी नहीं जान पाते फिर सामान्य मनुष्यों की तो बात ही क्या है?

प्र.-2898 गूढ़ रहस्य को विशेष ज्ञानी भी नहीं जान सकते हैं क्या?

उत्तर- परमावधि सर्वावधिज्ञानी और विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी मुनिजन अवश्य ही जान लेते हैं क्योंकि इन विशेषज्ञानियों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिणाम विषय बन जाता है किंतु परोक्षज्ञानी नहीं जान पाते।

प्र.-2899 इस मायाचार रूपी गूढ़ रहस्य का क्या फल है?

उत्तर- इस मायाचार रूपी गूढ़ रहस्य का फल तिर्यंचायु का, स्त्रीवेद आदि का आश्रव होना फल कहा है।

प्र.-2900 इसमें वचन दंड है यह कैसे जाना जाये?

उत्तर- जाति, कुल, धर्म और पद के विरुद्ध वचनों के प्रयोग से, दूसरों के अपमान तिरस्कारात्मक वचनों से, किसानों मजदूरों जैसे असभ्य वचनोच्चारण से वचन दंड की पहंचान होती है।

प्र.-2901 इसमें काय की उद्दंडता है यह कैसे जाना जाये?

उत्तर- मानकषाय पूर्वक वृक्षों की तरह अकड़कर चलना, बैठना, खड़ा होना, सीना फुलाकर चलना, मटकते हुए चलना, बांह, कॉलर चढ़ाके चलना आदि लक्षणों से कायदंड की जानकारी हो जाती है।

प्र.-2902 इन दंडों से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर- जैसे बड़े बड़े वृक्ष या पर्वत अकड़कर खड़े हैं तो आंधी तूफान, बाढ़, भूकंप आदि के आने से जड़ से उखड़ जाते हैं, अपना अस्तित्व ही खो देते हैं ऐसे ही जो व्यक्ति किसी भी प्रकार से अकड़ कर रहते हैं वे भरत बाहुबली की तरह सर्वत्र निंदा को या रावण की तरह अधोगति को प्राप्त होते हैं यही हानि है।

प्र.-2903 शल्यों की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर- मिथ्यात्व और कषायों के उदय से या वर्तमान में पुरुषार्थ से शल्य की उत्पत्ति होती है।

प्र.-2904 मायाशल्य वालों की अवस्था कैसी होती है?

उत्तर- छलकपट के परिणामों से स्वपरउभय में चुभन होती है, चिंतित मन हो, लौकिक और लोकोत्तर सत्कार्यों में, धर्मकार्यों में मन स्थिर नहीं होता आदि मायाशल्य वालों की अवस्था होती है।

प्र.-2905 मिथ्यात्व शल्य किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- आप्तआगमतपोभृत, जीवादि 27 तत्त्वों में, निजात्मा में यथार्थ सापेक्ष प्रमाण और नयानुसार विश्वास न कर चुभन परिणामों को मिथ्यात्व शल्य कहते हैं। यह शल्य मिथ्यात्व कर्म के उदय से होती है।

प्र.-2906 निदान शल्य किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- मोक्षमार्ग के, जिनधर्म अथवा लौकिक और लोकोत्तर अच्छे कार्यकलापों को करके इनके

फल स्वरूप इष्टानिष्ट बदला चुकाने की इच्छा से सामग्री, सामर्थ्य प्राप्ति की आकांक्षा को, चिंता को निदान शल्य कहते हैं। इसकी उत्पत्ति क्रोधादि चारों कषाय के उदय से होती है।

प्र.-2907 क्रोध शल्य किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- असहनशीलता के परिणामों को क्रोधशल्य कहते हैं। अनंतानुबंधी आदि चारों क्रोध कषाय के उदय, उदीरणा से यह शल्य उत्पन्न होती है।

प्र.-2908 मानशल्य किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- अपने को बड़ा मानकर, दूसरों को नीचा दिखाने के लिए चिंतित भावों को मान शल्य कहते हैं। अनंतानुबंधी आदि चारों मान कषाय के उदय, उदीरणा से यह शल्य उत्पन्न होती है।

प्र.-2909 मायाशल्य किसे कहते हैं, कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- वैरविरोध या भोगाकांक्षा पूर्वक छलकपट के परिणामों को मायाशल्य कहते हैं। अनंतानुबंधी आदि चारों माया कषाय के उदय, उदीरणा से यह शल्य उत्पन्न होती है।

प्र.-2910 लोभ शल्य किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- विषयभोगों के प्रति आकर्षण पूर्वक चुभन परिणामों को लोभशल्य कहते हैं। अनंतानुबंधी आदि चारों लोभ कषाय के उदय, उदीरणा से यह शल्य उत्पन्न होती है।

प्र.-2911 प्रेम शल्य किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- विषयवासना, कामवासना पूर्वक विषयभोगों में और इनकी सहायक सामग्री में प्रीति के कारण चुभन परिणामों को प्रेम शल्य कहते हैं। हास्य, रति और तीनों वेद कषायोदय से उत्पन्न होती है।

प्र.-2912 पिपासा शल्य किसे कहते हैं, यह कैसे उत्पन्न होती है?

उत्तर- विषयभोगों को भोगने के बाद में पुनः पुनः भोगने की आकांक्षा को पिपासा शल्य कहते हैं। यह राग कर्म और असातावेदनीय कर्म के उदय से प्यास के समान पिपासा शल्य उत्पन्न होती है।

प्र.-2913 इन शल्यों की उत्पत्ति किन कारणों से होती है?

उत्तर- इन शल्यों की उत्पत्ति कषायों के कारण सांसारिक इंद्रियसुख की कमी होने से, सामग्री की पूर्ति न होने से, भोगने की सामर्थ्य न होने से, किसी भी प्रकार की रुकावट या व्यवधान होने से, प्रतिबंधक कारण होने से, द्रव्य क्षेत्र काल भाव अनुकूल न होने से या पुनः नवीन भोगों की प्राप्ति के लिए, बाधक कारणों को हटाने के लिए शल्यों की उत्पत्ति होती है अन्यथा **निःशल्यो व्रती** और प्रतिक्रमण के साथ विरोध आयेगा।

प्र.-2914 शल्यों का अस्तित्व किस गुणस्थान से कहाँ तक होता है?

उत्तर- सूत्रानुसार मिथ्यात्व गुणस्थान से 4थे 5वें गुणस्थान तक तथा प्रतिक्रमण के अनुसार मुनियों के शल्यों का अस्तित्व होता है। कहा है-: **कोह सल्लाए, माणसल्लाए, मायासल्लाए, लोह सल्लाए, पेम्मसल्लाए, पिवाससल्लाए, णियाणसल्लाए, मिच्छादंसण सल्लाए** ऐसा पाठ मुनि आर्यिकादि प्रतिक्रमण में पढ़ते हैं।

प्र.-2915 सूत्र में व्रती पद से किस व्रती को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- सूत्रानुसार व्रती पद से अणुव्रती और महाव्रती को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-2916 क्या ये शल्यें समस्त संसारी प्राणियों के होतीं हैं?

उत्तर- बाह्य मुद्रानुसार सभी प्रमादी गृहस्थ और मुनियों तक के होतीं हैं किंतु धर्मध्यान में नहीं होतीं हैं।

प्र.-2917 यदि मुनियों के शल्यें नहीं होतीं हैं तो वे मिथ्यात्व में क्यों आ जाते हैं?

उत्तर- मुनियों के निदान आर्तध्यान निदानशल्य के होते ही नारायणपद आदि के योग्य कर्मों को बांधकर, भावों से गिरकर, मरणकर स्वर्ग में जाकर मरणकर नारायणादि पद प्राप्त कर लेते हैं अतः मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का उत्पाद और सकलसंयम का व्यय इनका एक ही समय होने से कर्मसिद्धांतानुसार मुनियों में शल्यों का और निदान आर्तध्यान का सत्त्व बन जाता है।

प्र.-2918 कषाय और शल्य में क्या अंतर है?

उत्तर- क्रोधादि कषाय और क्रोधादि शल्यों में सामान्य और विशेष का ही अंतर है। कषाय सामान्य है और शल्य विशेष है। जहाँ कषाय है वहाँ शल्य होवे और नहीं भी किंतु शल्य के सद्भाव में कषाय नियम से होगी ही, कषाय दसवें तक और शल्य चौथे या छठवें गुणस्थान तक है यही इन दोनों में अंतर हैं।

प्र.-2919 असूया किस कर्मोदय से होती है?

उत्तर- हमने ज्यादा काम किया है, हम ज्यादा कमाते हैं, उसने या इसने कम किया है, वे या ये कम कमाते हैं, इसके पास में है, हमारे पास नहीं है अतः मैं इनसे आगे कैसे हो जाऊं आदि विचार कर अंदर ही अंदर तमतमाने को, असहनशीलता को असूया ईर्ष्या कहते हैं। भूमिका की अपेक्षा सभी कषायोदय से होती है।

प्र.-2920 कौन किसके साथ ईर्ष्या करता है?

उत्तर- कभी[2] छोटे बड़ों के साथ और बड़े छोटों के साथ, सौत सौत के साथ, सास बहु के साथ, कवि कवि के साथ, व्यापारी व्यापारी के साथ, पंडित पंडित के साथ, कदाचित् साधु साधु के साथ ईर्ष्या करते हैं।

प्र.-2921 ईर्ष्या कौन से प्राणी करते हैं?

उत्तर- चारों गतियों के समस्त प्राणी एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय प्रमादी तक ईर्ष्या करते हैं। तिर्यंच और मनुष्यों की ईर्ष्या प्रत्यक्ष दिखाई देती है किंतु देव नारकी जीवों की ईर्ष्या शास्त्रों से जानी जाती है। एकेंद्रिय आदि जीवों में अनंतानुबंधी आदि चारों कषाय कार्य रूप में मौजूद होने से ईर्ष्या अपने आप आ जाती है।

प्र.-2922 ''भंडण'' किस कारण से होता है तथा फल क्या है?

उत्तर- ''भंडण''/ झगड़ा कदाचित् वर्तमान में निष्कारण और सकारण भी होता है। अपराधी के साथ विवाद सकारण और निरपराधी के साथ झगड़ा निष्कारण होता है। अपराधी के साथ झगड़ा करने पर मोक्षमार्ग की विराधना कदाचित् हो सकती है और नहीं भी। जैसे राम ने रावण के साथ युद्ध किया और युद्ध करने वालों का साथ दिया पर राम का मोक्षमार्ग नष्ट नहीं हुआ किंतु रावण ने सीता का हरण कर राम के और राम के साथियों के साथ में युद्ध किया तो मरणकर नरक में जाना पड़ा परंतु रावण का साथ देने वाले अनेक योद्धागण दीक्षा लेकर तप करके कर्मों को क्षय कर मोक्ष में पधारे शेष नरक या स्वर्ग गये।

प्र.-2923 यहाँ किस प्रकार के झगड़े से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ निरपराधी जीवों के साथ, धर्मात्माओं के साथ झगड़ा करने का प्रयोजन है क्योंकि झगड़ा करने वाला दीर्घ संसारी होता है ऐसा कहा है। यदि केवल झगड़ा करने से दीर्घ संसारी होता है तो राम को, कुंभकरण, मेघनाद, इंद्रजीत को मोक्ष में न जाकर रावणवत् नरक में जाना चाहिये था पर ऐसा नहीं हुआ।

प्र.-2924 अपराधी से झगड़ा करने वालों को क्यों ग्रहण नहीं किया है?

उत्तर- अपराधी से युद्ध करने वाला दीर्घ संसारी नहीं होता किंतु न्यायनीतिवान धर्मात्मा होता है,

परोपकारी होता है, कदाचित् करुणावान् भी होता है अतः अपराधी को ग्रहण नहीं किया।

प्र.-2925 अपराधी और निरपराधी में अंतर क्या है?

उत्तर- गलतीकर्ता, प्रमादी, कषायवान, मिथ्यात्रयी अपराधी है और ऐसा न करने वाला, रत्नत्रय सहित सावधानी वर्तने वाला, अकषायवान निरपराधी है यही अंतर है।

प्र.-2926 याचक किसे कहते हैं, भेद, नाम, परिभाषा क्या क्या है?

उत्तर- मांगने वाले को याचक कहते हैं। दो भेद हैं। **नामः-** लौकिक और लोकोत्तर। भोगोपभोग की सामग्री मांगने वाले को लौकिक याचक और आत्मसाधना में सहायक, मोक्षमार्ग में उपयोगी वस्तु की, रत्नत्रय धर्म की, अणुव्रत महाव्रत की, कर्मों का, दुःखों का क्षय हो ऐसी याचनाकर्ता को लोकोत्तर याचक कहते हैं।

प्र.-2927 यहाँ किस याचक से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ लौकिक याचक से प्रयोजन है क्योंकि लौकिक याचक ही दीर्घ संसारी होता है।

प्र.-2928 लोकोत्तर याचक को क्यों ग्रहण नहीं किया है?

उत्तर- यहाँ लोकोत्तर याचक भोगवस्तु नहीं चाहता, न दीर्घ संसारी होता है किंतु आत्मसाधक मोक्षमार्गी होता है अतः लोकोत्तर याचक को ग्रहण नहीं किया क्योंकि यहाँ दीर्घसंसारी का कथन है।

प्र.-2929 यह प्राणी याचना क्यों करता है?

उत्तर- अपने भाग्य और पुरुषार्थ पर, कला गुण पर, भुजबल पर विश्वास न होने से याचना करता है। अपने पास में सामग्री की कमी होने या न होने से, भोगाभिलासा तीव्र होने, अतृप्ति होने से, कमजोर होने से अपने मान, अपमान, सम्मान की परवाह न कर दीन वचन बोलकर याचना करता है।

प्र.-2930 तब ऐसे ही लोकोत्तर याचक को समझ लो तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, लोकोत्तर याचक हीन परिणामी, हीन पुरुषार्थी नहीं होता है, न ही दीन वचन बोलता है, न अपने भाग्य और पुरुषार्थ का अविश्वासी है किंतु रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मोक्ष में गमन हो, समाधिमरण हो, अनंत चतुष्टय की प्राप्ति हो आदि लोकोत्तर याचक के ये वचन असत्यमृषा या अनुभय वचन हैं। इन वचनों से याचक की मोक्षमार्ग की विराधना न होकर साधना होती है अतः विरुद्ध याचना करे तो आपत्ति है।

प्र.-2931 दोनों प्रकार के याचकों के फल प्राप्ति में भिन्नता क्यों बतायी है?

उत्तर- याचना सामान्यतः एक होने पर भी उद्देश्य में, सामग्री में, साधना में, दिनचर्या में अंतर होने से फल में महान अंतर होता है। जैसे सर्वांग शरीर के वस्त्रालंकार समान होने पर भी धारण करने के स्थान, परिणामों में, नामों में भिन्नता और कीमत में अंतर है, जैसे पैरों का, गर्दन का, शिर का, हाथों का, कमर का वस्त्रालंकार अलग अलग है ऐसे ही लौकिक याचना संसार में भ्रमण कराती है तो लोकोत्तर याचना अनंत संसार, आश्रवबंध को छेदकर संवर निर्जरा को प्राप्त कराकर विशेष मोक्षमार्ग और मोक्ष फल को देती है।

प्र.-2932 पाप रूप दंड और शल्यवान साधु को ''मंडियमाणो'' ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे बालक धूल से धूसरित शोभायमान होता है, सुंदर लगता है। यद्यपि धूल मलिनता लाती है, काजल आँखों में सुंदरता लाता है किंतु हाथ पैरों में, गालों में, माथे में वस्त्रों में मलिनता उत्पन्न करता है तो भी हास्यविनोद में सुंदर कहते हैं, मलिन नहीं ऐसे ही दंड और शल्यवान साधु को व्यंग रूप में आचार्य श्री ने **मंडियमाणो** सुंदर कहा है। यदि पापी साधु को यथार्थ में सुंदर कहा है तो धर्मात्मा साधु को क्या कहेंगे? अतः पापी कभी भी सुंदर नहीं हो सकता है। हाँ,

पापी पापियों के बीच में भले ही सुंदर कहा जाये, प्रसंशा को प्राप्त हो जाये पर यह सम्यक् नीति नहीं है। यदि बालक धूल से धूसरित सुंदर है तो जवान को भी धूल मिट्टी लगने से सुंदर कहना चाहिये। यदि धूल वाला व्यक्ति सुंदर है तो उसे स्नान क्यों कराना? तैल आदि सुगंधित द्रव्य क्यों लगाना? वस्त्रालंकार क्यों धारण कराना? धर्मात्माओं के बीच में धर्मात्मा शोभायमान होते हैं तो पापियों के बीच में पापी जीव शोभायमान होते हैं सो यह अनादिकालीन स्वाभाविक नीति है।

प्र.-2933 दंड और शल्य वाला साधु सुंदर है तो इसे दीर्घ संसारी क्यों कहा?

उत्तर- जो सुंदर शोभायमान व्यक्ति होता है वह नरक निगोद का पात्र नहीं बनता, न तत्संबंधी कर्मों का आश्रव बंध करता है किंतु उच्चगति को, उच्चगोत्र को प्राप्त करता है, धर्मात्मा कभी भी दीर्घ संसारी नहीं होता है अतः वास्तव में देखा जाय तो दंड और शल्यों वाला व्यक्ति न समीचीन श्रावक है और न साधु किंतु महान पापी ही है क्योंकि पाप करने वालों को पापी कहते हैं अतः इसे दीर्घसंसारी ही कहा है।

प्र.-2934 शरीर में सुंदरता, ग्राह्यता किस कर्मोदय से होती है?

उत्तर- शरीर में सुंदरता ग्राह्यता शुभ, सुभग और आदेय नाम कर्मोदय से प्राप्त होती है तथा दिनचर्या में मंगलपना, सुंदरता, सर्वांगप्रियता मोहकर्म के मंदोदय में या क्षय, उपशम, क्षयोपशम से होती है।

प्र.-2935 दीर्घ संसारी और अल्प संसारी कौन जीव होता है?

उत्तर- अनादिमिथ्यादृष्टि भव्यजीव, दूरानुदूर भव्यजीव, अभव्यजीव, नित्यनिगोदिया जीव दीर्घसंसारी होते हैं। जिसने एक भी बार रत्नत्रयधर्म प्राप्त कर लिया है वह जीव संसार में जघन्यतः अंतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्टतः अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक रह सकता है। इससे एक समय ज्यादा नहीं रह सकता है। इस कारण अनादि मिथ्यादृष्टि जीव दीर्घ संसारी और सादि मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्दृष्टि जीव अल्प संसारी होते हैं।

प्र.-2936 अनादिमिथ्यादृष्टि और नित्यनिगोदियों को अल्पसंसारी क्यों नहीं कहा?

उत्तर- अनादि मिथ्यादृष्टि भव्यजीव और नित्यनिगोदियाजीवों को अल्प संसारी कह सकते हैं क्योंकि ये भी श्रीवर्धनकुमार आदि के समान उसी भव में या अल्पभव लेकर मोक्ष में जा सकते हैं अतः इनको अल्प संसारी कह सकते हैं किंतु जागृति सावधानी न होने से इन्हें भी दीर्घ संसारी कहा है।

प्र.-2937 अर्धपुद्गल परिवर्तन काल भी अनंत है फिर इसे अल्पकाल क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि यह अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल केवलज्ञान का विषय होने से या छद्मस्थ ज्ञान का विषय न होने से अनंत है फिर भी समाप्त होने वाला होने से अंत सहित है जो अक्षयअनंत के सामने अर्धपुद्गल परिवर्तन काल अनंत होते हुए भी अंत सहित है इस कारण इसे अल्पकाल कहा है क्योंकि केवलज्ञान के द्वारा यह काल अंत सहित जाना गया है तभी तो सादिमिथ्यादृष्टि जीव का संसारकाल कम से कम अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक अर्धपुद्गल परिवर्तन काल कहा है।

नोटः- यहाँतक 2937 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 92वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 93वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्यादृष्टि साधु

देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसायसंजुत्ता।
अप्पसहावे सुत्ता ते साहू सम्मपरिचत्ता।।93।।

देहादिषु अनुरक्ता विषयासक्ताः कषायसंयुक्ताः।
आत्मस्वभावे सुप्ता ते साधवः सम्यक्त्वपरित्यक्ताः।।

जो **देहादिसु** शरीरादि में **अणुरत्ता** अनुरक्त **विसयासत्ता** विषयासक्त **कसाय संजुता** कषायसहित

अप्पसहावे सुत्ता आत्म स्वभाव में प्रमादी आलसी **ते** वे **साहू** साधु **सम्म** सम्यक्त्व के **परिचत्ता** त्यागी हैं, मिथ्यादृष्टि हैं।

प्र.-2938 यथाजात रूपधारी साधु किसे कहते हैं?

उत्तर- संयमी मोक्षमार्गीधर्मी को, शुद्ध स्वभाव साधक को, नित्य शुद्धात्मध्याता को साधु कहते हैं।

प्र.-2939 शरीर में अनुराग क्यों होता है?

उत्तर- सफर करते समय किसी से किंचित् आदानप्रदान होने पर कितना प्रेम हो जाता है तब अनादिकालीन संबंधी शरीर के प्रति अनुराग क्यों नहीं होगा? अर्थात् अवश्य ही होगा।

प्र.-2940 यह शरीर कौन सी प्रकृति है और इसका फल किसको प्राप्त होता है?

उत्तर- शरीर नामकर्म की प्रकृति है, आदि के तीन शरीर पुद्गलविपाकी होने से इनका फल एकमात्र शरीर में ही होता है, आत्मा को नहीं। तैजसशरीर पुद्गलविपाकी और तैजसऋद्धि जीवविपाकी है, कार्मण शरीर जीवविपाकी, पुद्गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी और भवविपाकी के भेद से चार प्रकार का है।

प्र.-2941 शरीरासक्त साधु को क्या कहा है?

उत्तर- शरीरासक्त साधु को सम्यग्दर्शन का त्यागी कहा है क्योंकि दीक्षा के समय शारीरिक ममत्व का त्याग किया था पर बाद में पुनः शरीरानुरागी बना, मोही होने के कारण उल्टी कर चांटने के समान है। जैसे कुत्ता या नासमझ छोटे बच्चे उल्टी कर या मलमूत्र निकालकर पुनः खाने पीने लगते हैं ऐसे ही इस साधु ने त्याग कर पुनः शरीर संबंधी कार्यों को अंगीकार कर लिया।

प्र.-2942 देह के साथ में संग्रहवाचक आदि पद क्यों लगाया?

उत्तर- यहाँ **आदि** से शरीरादि संबंधी वस्त्राभूषण, मकानदुकान, खेतीवाड़ी, पशुपक्षी, मातापिता, पतिपत्नी, बेटाबेटी, दासीदासादि को ग्रहण कर लेना चाहिये क्योंकि जितना अहंकार, ममकार शरीर में होता है कहीं कहीं उससे भी अधिक भोगोपभोग पदार्थों में भी होता है तभी तो सू.में **अधिकरणं जीवाजीवाः** इसके द्वारा सांपरायिकाश्रव जीव और अजीव पदार्थों के माध्यम से होता है ऐसा कहा है अतः साधु बनकरके भी शरीरादि में अनुरागी है तो साधु और गृहस्थों में, योगी और भोगी में, संयमी असंयमी में क्या अंतर रहा?

प्र.-2943 विषय किससे ग्रहण किये जाते हैं?

उत्तर- स्पर्शन आदि इंद्रियों से ग्रहण करने योग्य चेतन अचेतन और मिश्र विषय ग्रहण किये जाते हैं।

प्र.-2944 किस विषय का क्या फल है?

उत्तर- इंद्रियविषय सेवन का फल राग द्वेष मोह सहित आश्रव बंध कराकर संसार भ्रमण कराना है और ज्ञान का विषय विकार सहित संसार का कारण है तो निर्विकार होने से मोक्ष का कारण है।

प्र.-2945 इन विषयों के कितने भेद हैं?

उत्तर- चेतन, अचेतन और मिश्र ये विषयों के तीन भेद अथवा स्पर्शनेंद्रिय के 8, रसनेंद्रिय के 5, घ्राणेंद्रिय के 2, चक्षु इंद्रिय के 5, कर्णेंद्रिय के 7 और मन का 1 विषय ये सब 28 भेद विषयों के हो जाते हैं।

प्र.-2946 चेतन, अचेतन, मिश्र ये विषय कौन कैसे हैं?

उत्तर- विषयों के ग्राहक परिणाम चेतन या व्यक्तियों को, पशुपक्षियों को चेतन विषय कहते हैं। भोग वस्तुओं, वस्त्राभूषण आदि को अचेतन विषय कहते हैं। दोनों मिले हुए को मिश्र विषय कहते हैं।

प्र.-2947 विषयों को ग्रहण करने में और आसक्त होने में क्या अंतर है?

उत्तर- विषयों को सामान्यभावों से, उपेक्षाभावों से या औषधि समझकर आलिंगन करने को विषय ग्रहण करना है तथा गीध, बिल्ली, जोंक की तरह अत्यंत गृद्धता पूर्वक विषयों में लीन हो जाना आसक्ति है यह अंतर है जैसे आसक्ति के कारण बिल्ली चूहे को पकड़ ले तो दंडा भी मारो फिर भी चूहे को नहीं छोड़ती है या जोंक खून चूसने के लिए स्तन पर लगा दी जाये तो निकालते समय टूट जायेगी, पर निकलेगी नहीं या चींटाचींटी शरीर में चिपक जायें, मुँह फंसा ले तो शरीर से इनको निकालना कठिन है, मर जायेंगे पर निकलेंगे नहीं।

प्र.-2948 विषयासक्त साधु को आचार्य श्री जी ने क्या कहा है?

उत्तर- विषयासक्त साधु को सम्यक्त्व का त्यागी कहा है क्योंकि वैरागी गृहस्थ ने दीक्षा लेते ही विषयकषायों का त्याग किया था और बाद में नारद रौद्रों की तरह पुनः विषयों में असक्त हो गया सो यह कार्य लंगोटी छोड़कर धोती पहरने के समान है सो ऐसे साधु ने विषयों का त्याग कर विषयासक्ति का त्याग नहीं किया है जैसे आ. श्री शांतिसागरजी महाराज के सामने एक सज्जन बोले कि आ. श्री आज से मैं अपनी पत्नी का त्याग करता हूँ यह सुनकर आ. श्री बड़े प्रसन्न हुए कि यह महान वैरागी आत्मा है जो जवानी में अपनी पत्नी का त्याग कर रहा है तब पास में बैठे सज्जन बोले कि आ. श्री इसका पत्नी से झगड़ा चल रहा है इसलिए त्याग कर रहा है इसे सर्व प्रथम वेश्या और परस्त्री सेवन का त्याग कराओ तो आ. श्री बड़े आश्चर्यचकित हुए क्योंकि विषयों का त्याग करना आसान है किंतु विषयासक्ति का त्याग करना अत्यंत कठिन है। तभी तो आजकल बनावटी वैरागी निज संपत्ति के त्यागी बहुत हैं एवं आश्रम के, संस्था के नाम पर दूसरों की संपत्ति का संग्रह करने वाले बहुत हैं, अपनी संपत्ति से कोठी बंगला, आरामदायक भोगविलास की सामग्री एकत्रित नहीं कर पाते किंतु धर्म के नाम पर चंद दिनों में कितनी संपत्ति इकट्ठी कर ली है इसका हिसाब लगाना जरा कठिन है इस कारण आ. श्री ने विषयासक्त साधु को मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-2949 पत्नि किसे कहते हैं?

उत्तर- जो अपने पति को पतन के मार्ग से बचाकर ऊर्ध्वगति, मोक्ष के लिए ले जाये उसे पत्नि कहते हैं। जैसे आर्यिका नागश्री (पत्नि) ने मुनि भावदेव (पति) को तथा चेलना ने राजा श्रेणिक को पतन के मार्ग से बचाकर मोक्षमार्ग में लगाया आदि अनेक उदाहरण हैं किंतु लोक में ऐसी प्रसिद्धि है कि जो पति को उत्थान के मार्ग से गिराकर अधोगति में ले जाये उसे पत्नी कहते हैं।

प्र.-2950 कषायों का क्या फल है?

उत्तर- जैसे किसान अधिक फलाकांक्षा से भूमि को जोतता है ऐसे ही जो आत्मा को नाना प्रकार से कष्ट देवे, दुःख देवे या विषयभोगों के सेवन में शक्ति प्रदान करे उसे कषाय कहते हैं।

प्र.-2951 ये कषायें आत्मा को आकर्षित कर कैसे दुःख देतीं हैं?

उत्तर- जैसे कुत्ते को या कबूतरों को रोटी के टुकड़ों का, दाने का लोभ देकर कहीं भी ले जाओ ये भोगाकांक्षा के कारण पीछे पीछे चले जाते हैं ऐसे ही ये कषायें किंचित् मात्रा में आत्मा को इष्ट विषयसुख का आनंद दिलाकर संसार में सर्वत्र भ्रमण करातीं हैं और आत्मा पीछे पीछे चला जाता है।

प्र.-2952 कषायासक्त को आ. श्री ने क्या कहा है?

उत्तर- कषायासक्त साधु को मोक्षमार्ग का त्यागी असंयमी मिथ्यादृष्टि हीनावस्था को प्राप्त गृहस्थ कहा है।

प्र.-2953 किस कषाय के उदय से साधु असंयमी मिथ्यादृष्टि होता है?

उत्तर- मिथ्यात्व एवं अनंतानुबंधी कषायोदय से मोक्षमार्ग का समूल विनाश होता है क्योंकि अनंतानुबंधी कषाय दो स्वभाव वाली कही है इसलिए व्यक्ताव्यक्त अश्रद्धानी साधु को मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-2954 मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से उत्पन्न अश्रद्धान में क्या अंतर है?

उत्तर- दोनों के अश्रद्धान में केवल व्यक्त और अव्यक्त का ही अंतर है। मिथ्यात्व के उदय से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है और सम्यग्दर्शन है तो मिथ्यात्वोदय से उभय सम्यग्दर्शनों को विनाश कर मिथ्यात्व में ले आता है किंतु अनंतानुबंधी कषाय के उदय से उपशम सम्यग्दर्शन की विराधना करके सासादन को प्राप्त कर बाद में मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होता है। दोनों कर्मों के घातकार्य में अंतर नहीं है फिर भी सासादन गुणस्थान को प्राप्त कराने में मिथ्यात्व कर्म का अधिकार नहीं है किंतु ये दोनों कर्म प्रकृतियां मोक्षमार्ग को घातने में समर्थ हैं। मिथ्यात्व का कार्य केवल सम्यग्दर्शन को घातना है तो अनंतानुबंधी का कार्य सम्यक्त्व और सम्यक्चारित्र का विनाश करना है यही इन दोनों के अश्रद्धान में अंतर है।

प्र.-2955 मिथ्यात्व के उदय से अश्रद्धान अव्यक्त कैसे हो सकता है?

उत्तर- अनादि, सादि मिथ्यादृष्टिभव्य, दूरानुदूरभव्य, अभव्य के मिथ्यात्व और अनंतानुबंधीकषाय के अत्यंत मंदोदय में परिणाम परम शुभलेश्या या परम शुक्ललेश्या को प्राप्त कर दिगंबर जैन मुनिदीक्षा लेकर अपने मिथ्याविश्वास को नहीं पकड़ पाते। अन्यमत दीक्षा का अविश्वास तो बाह्य लिंग और तप को देखकर निर्णय कर लेते हैं कि यह जिनेंद्रमत से बाह्य मिथ्यादृष्टि है किंतु जैनमुनि या जैन त्यागियों का अविश्वास इतना सूक्ष्म हो जाता है कि वह छद्मस्थ प्रत्यक्ष ज्ञानियों का भी विषय नहीं बन पाता तब स्वयं का विषय तो बन ही नहीं सकता है अतः उस अवस्था में मिथ्याश्रद्धान अव्यक्त रहता है।

प्र.-2956 अव्यक्त मिथ्यादृष्टि गुरु संसार समुद्र से पार कैसे कर सकता है?

उत्तर- यह जिनमुद्रा, जिनमुद्रा की चर्या में पूर्ण निर्दोषपना है किंतु भावों में सूक्ष्मातिसूक्ष्म मिथ्यात्व है पर वह मिथ्यात्व किस अंश में है, किस तत्त्व में है यह छद्मस्थ प्रत्यक्षज्ञानियों के द्वारा भी प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है अन्यथा सर्वावधि परमावधि विपुलमति मनःपर्ययज्ञानियों का विषय होता तो कोई प्रतिपादन कर देते पर इनका विषय न होने से प्रतिपादन नहीं किया है भले ही आज के पोथीपंडित अन्याय, अभक्ष्य का सेवन करने वाले अव्रती, अनर्गल कथन करने लगें त्यागी व्रती मुनियों का, आर्यिकाओं का उपहास करने लगें सो ठीक ही है, व्यक्त मिथ्यात्व की महिमा ऐसी ही है अतः जिनमुद्रा और मुनिमुद्रा एकरूप में होने से, इनकी दिनचर्या जिनकल्पी मुनियों के समान होने से भव्यों के तारक पारक हो जाते हैं भले ही वे स्वयं संसार में भ्रमण करते रहें पर भव्यों को तो मोक्ष में पहुंचा देते ही हैं। जैसे जलयान यात्रिओं को एक किनारे से दूसरे किनारे पर पहुंचा देता है पर स्वयं जलाशय का उल्लंघन नहीं करता ऐसे ही अव्यक्त मिथ्यादृष्टि दिगंबर जैन गुरु भी अपने भक्तों को मोक्ष में पहुंचा देता है पर स्वयं संसार का उल्लंघन नहीं करता।

प्र.-2957 अव्यक्त मिथ्यागुरु जलयान के समान है तो सम्यक् गुरु किसके समान है?

उत्तर- सम्यक् गुरु वायुयान के समान है। जैसे वायुयान गंतव्य स्थान में पहुंचता हुआ यात्रियों को भी पहुंचाता है ऐसे ही ये सम्यग्दृष्टि संयमी मुनि संसार समुद्र से पार होते हुए भव्यों को भी पार करते ही हैं अतः ये वायुयान के समान हैं ऐसा कहा है।

प्र.-2958 कषायें किस गुणस्थान तक होतीं हैं?

उत्तर- कषायों का बंध 9वें तक उदय दसवें तक और सत्त्व 11वें गुणस्थान तक होता है।

प्र.-2959 क्या 10वें गुणस्थान में केवल लोभ का उदय है या परिणाम भी हैं?

उत्तर- दसवें गुणस्थान में केवल लोभ के उदयानुसार परिणाम भी हैं तभी तो यहाँ तीन घातियाकर्म तथा तीन अघातिया कर्मों का चारों प्रकार का बंध होता है। यदि लोभ कषाय के सूक्ष्मपरिणाम नहीं हों तो 10वें गुणस्थान का नाम सूक्ष्म सांपराय तथा स्थितिअनुभागबंध हो नहीं सकता।

प्र.-2960 दसवें गुणस्थान में 3 घातियाकर्मों का स्थितिअनुभागबंध कितना होता है?

उत्तर- 10वें गुणस्थान में तीन घातियाकर्मों का अंतर्मुहूर्तकाल प्रमाण स्थितिअनुभाग बंध होता है।

प्र.-2961 उभयश्रेणियों में क्या कषायों की जानकारी स्वयं को हो जाती है या नहीं?

उत्तर- उपशम और क्षपक श्रेणी में कषायों का परिणाम अबुद्धि पूर्वक होता है यद्यपि परिणति स्वयं की है फिर भी स्वयं ही अपने कषाय या अकषाय परिणामों को नहीं पकड़ पाते और न दूसरे अल्पज्ञ साधु, श्रावक जान पाते हैं। जैसे अपने बहुत सारे विचार चलते रहते हैं और वार्तालाप करते रहते हैं, बोलते समय बोल जाते हैं किंतु बाद में समझ में आने पर गलती की क्षमा मांग लेते हैं। जब चंचल मन वाले व्यक्ति भी अपनी चंचलता के कारण अपने स्थूल परिणामों को नहीं पकड़ पाते तो निश्चल शुद्ध ध्यानस्थ साधुवर्ग अपने परिणामों को कैसे पकड़ पायेंगे, जान पायेंगे? अतः वे नहीं जान पाते।

प्र.-2962 उभयश्रेणीगत परिणामों को विकल प्रत्यक्षज्ञानी जान सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, विकल प्रत्यक्षज्ञानी का यह विषय नहीं है क्योंकि **''रूपिष्ववधेः''**, **''तदनंतभागे मनःपर्ययस्य''** सूत्रानुसार ये अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी रूपी पदार्थों को जानते हैं, अरूपी को नहीं ऐसा कहा है।

प्र.-2963 तो क्या विकल प्रत्यक्षज्ञानी आत्मा को प्रत्यक्ष जान सकते हैं या नहीं?

उत्तर- ये अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी आत्मा को प्रत्यक्ष नहीं जानते हैं किंतु रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं तो अरूपी पदार्थों को परोक्ष जानते हैं ऐसा पारिशेषन्याय से स्वतः सिद्ध हो जाता है। यदि आत्मा को सीधा जान लेते तो ये **रूपिष्ववधेः, तदनंतभागे मनःपर्ययस्य** सूत्र व्यर्थ हो जाते अन्यथा सकलप्रत्यक्ष और विकलप्रत्यक्ष ज्ञानी में क्या अंतर रहा? अतः ये दोनों ज्ञान रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष तो अरूपी पदार्थों को परोक्ष जानते हैं यदि आत्मा में इन कर्मों का सत्त्व है, उदय है तो शुद्ध पर्याय और शुद्धि का अभाव है तथा कर्मों का सत्त्व उदय नहीं है तो आत्मा में शुद्ध पर्याय का अस्तित्व है ऐसा जानते हैं।

प्र.-2964 आत्मस्वभाव में कौन साधक सोता है?

उत्तर- जो साधु शरीरादि बाह्य पदार्थों में आसक्त है, रतिअरति कषायों से परिणत है, इंद्रियविषयासक्त है, कदाचित् विषयभोगों की सामग्री की प्राप्ति नहीं होने पर चित्त विकल हो जाता है। बाह्यकार्यों में योगों से तन्मय रहने वाला भोगी साधक आत्मकार्य में सोता है।

प्र.-2965 एकसाथ एकसमय में आत्मा उभय कार्यों में जागृत हो सकता है क्या?

उत्तर- अंतरंग बहिरंग कार्य ये दोनों एकसाथ एक समय में नहीं हो सकते हैं कारण छद्मस्थों का उपयोग एकसाथ एक समय में एक ही विषय में स्थिर हो सकता है, दो विषयों में नहीं क्योंकि जिसका चिंतन करेगा उसी में स्थिर होगा, अन्यत्र नहीं। इसलिए एक ही समय में उभय कार्यों में जागृत नहीं हो सकता।

प्र.-2966 बाह्य कार्यों में जागने वाला आत्मकार्य में सोता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर-

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।3।। मो. पा.
व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे।।78।। स.तं.

अर्थ- जो बाह्य कार्यों में सोता है वह आत्मकार्य में जागता है और जो व्यवहारिक कार्यों में जागता है वह आत्मकार्यों में सोता है। छद्मस्थ प्राणियों के उभय उपयोग एकसाथ एक समय में कार्य रूप

में परिणत नहीं होते हैं। जिस समय ज्ञानोपयोग है उस समय दर्शनोपयोग नहीं और जिस समय दर्शनोपयोग है उस समय ज्ञानोपयोग नहीं ऐसे ही ज्ञानोपयोग जिस समय जिस ज्ञेय को जानता है उस समय अन्य ज्ञेयों को नहीं। अतः आ. श्री ने जो विषयकषायों और व्यवहारिक कार्यों में लग रहा है तो वह उस समय आत्म स्वभाव में सो रहा है, आत्म स्वभाव से बाहर है ऐसा कहा है।

प्र.-2967 ये दोनों कार्य एकसाथ एकसमय में छद्मस्थों के क्यों नहीं हो सकते हैं?

उत्तर- ध्रुवकार्य, स्वतंत्र कार्य सर्वकाल सभी अवस्थाओं में निर्विघ्न होते रहते हैं और सप्रतिपक्षी कार्य परतंत्र, पराधीन, रुकावट सहित होने से सदा नहीं होते हैं अतः दोनों कार्य सप्रतिपक्षी होने से एक साथ एक समय में नहीं होते हैं आदि हेतुओं से गृहस्थ का मन सर्वकाल संयमघाती कर्मों का उदय या असंयम के अविनाभावी विषयकषाय, आरंभ परिग्रह, शृंगारालंकार आदि में लगा रहने से आत्मकार्य में, आत्मस्वभाव में कैसे और कब जाग सकता है? केवल भावना कर सकता है। वर्तमान में पंडितों ने, गृहस्थभोगियों ने भावना को, विकल्पों को ही आत्मकार्य मान लिया है सो इसी भ्रमवश विषयकषायों के, अन्याय, अभक्ष्य पदार्थों के ये भोगी न त्यागी हैं, न संयमी हैं। यदि ओसबिंदुओं से प्यास बुझ जाय तो पानी क्यों पीना पड़े? अतः पथिक या सुई के समान आत्मकार्य एवं व्यवहारिककार्य एकसाथ एकसमय में घटित नहीं होते हैं।

प्र.-2968 इन उभय कार्यों को बताने के लिए पथिक और सुई का दृष्टांत क्यों दिया?

उत्तर- जैसे पथिक और सुई एकसमय में दोनों तरफ गमन नहीं कर सकता, वस्त्र को सिल नहीं सकती वैसे ही एकसमय में अंतरंग बहिरंग या निश्चय व्यवहार कार्य नहीं होते हैं अतः ये दृष्टांत सही ही दिये हैं।

प्र.-2969 साधु आत्मकार्य ज्यादा और गृहस्थ कम करते हैं ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- सर्व प्रथम तो आज्ञाभंग, अनाज्ञाकारीपने का प्रसंग आता है। यदि गृहस्थ निर्विकल्प, अप्रमत्तभाव से आत्मकार्य कर सकते हैं तो दोनों ग्रंथकारों को गाथा में "**योगी**" पद देने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्र.-2970 प्रमाद का अस्तित्व कार्यरूप में कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर- पहले गुणस्थान से छठवें गुणस्थान तक प्रमाद कार्य रूप में होता है। कर्मसिद्धांतानुसार एक समय के लिए भी आंतरिक प्रमाद का विच्छेद नहीं होता है। यदि इन गुणस्थानों में प्रमाद का अभाव हो जाता तो यहाँ **प्रमत्त** विशेषण तीर्थंकर, गणधरादि आचार्य नहीं देते क्योंकि **प्रमत्त** विशेषण यहाँ अंतदीपक कहा है। यदि इन स्थानों में एक समय के लिए भी आंतरिक प्रमाद हट जाये तो इसे अंत दीपक नहीं कहते। इस कारण वस्त्रधारी गृहस्थ और महाव्रती मुनिजन प्रमाद सहित कषाय मिश्रित आत्मकार्य करते हैं।

प्र.-2971 अप्रमत्तपना किस गुणस्थान से कहाँ तक है?

उत्तर- अप्रमत्तसंयत आदि सभी गुणस्थानों में अप्रमत्तपना होता है। ये महामुनिजन आत्मकार्य में सतत संलग्न रहते हैं क्योंकि सातवें गुणस्थान में अप्रमत्तपना आदि दीपक है ऐसा सर्वज्ञों ने प्रतिपादन किया है।

प्र.-2972 सातवें गुणस्थान के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- सातवें गुणस्थान के दो भेद हैं। **नामः-** स्वस्थान या निरतिशय अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त।

प्र.-2973 सातवाँ सातिशयअप्रमत्त गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर- जो चरमशरीरी मुनि क्षपकश्रेणी या उपशमश्रेणी, अचरमशरीरी उपशमश्रेणी आरोहण करने के पूर्व समय में उत्पन्न होने वाले परिणामों को सातिशयअप्रमत्त गुणस्थान कहते हैं। यह अवस्था

समस्त संसारकाल में कम से कम एकबार और अधिक से अधिक पाँचबार ही प्राप्त होती है। प्रतिपाती होने से चार बार छूट सकती है किंतु पाँचवीं बार नियमतः क्षपकश्रेणी ही प्राप्त होती है यह क्षपकश्रेणी भी नियमतः छूटती है पर यह छूटना ऊपर के लिए है, उन्नति के लिए है अवनति को नहीं।

प्र.-2974 इस स्थान को सातिशय अप्रमत्त क्यों कहा?

उत्तर- क्योंकि यहाँ से निर्विकल्पध्यान प्राप्त होनवाला है अतः इस स्थान को सातिशय अप्रमत्त कहा है।

प्र.-2975 सातवाँ स्वस्थान अप्रमत्त या निरतिशय अप्रमत्त गुणस्थान किसे कहते हैं?

उत्तर- व्यक्ताव्यक्त प्रमादों के नाशक, पूर्ण निर्दोष व्रत, गुण, शील से शोभायमान उभयश्रेणी आरोहण के पूर्व ध्यान में स्थित अवस्था को या आदि की 12 कषायों के पूर्णतः अभाव में तथा संज्वलन कषाय की तीव्रता के अभाव में उत्पन्न परिणामों को स्वस्थान अप्रमत्त या निरतिशय अप्रमत्त गुणस्थान कहते हैं।

प्र.-2976 सातवाँ स्वस्थान निरतिशय अप्रमत्त गुणस्थान कितनी बार प्राप्त होता है?

उत्तर- जीवनकाल में यह स्वस्थान अप्रमत्त निरतिशय अप्रमत्त गुणस्थान असंख्यातबार प्राप्त होता है।

प्र.-2977 इस स्थान को निरतिशय क्यों कहा?

उत्तर- क्योंकि यहाँ पर उभयश्रेणी और निर्विकल्पध्यान प्राप्त न होने से इस स्थान को निरतिशय कहा है।

प्र.-2978 प्रतिपात और छूटने में क्या अंतर है?

उत्तर- छूटकर या छोड़कर नीचे गिरने को प्रतिपात और उन्नति के लिए छोड़ने को ऊपर चढ़ना या आरोहण करना कहते हैं। जैसे छत पर जाने के लिए सिढ़ियों को छोड़ें नहीं, पकड़कर बैठ जायें तो छत कैसे प्राप्त होगा? अतः प्रतिपात केवल नीचे के लिए होता है किंतु छोड़ना ऊपर जाने के लिए भी होता है।

प्र.-2979 उपशमश्रेणी प्रतिपात स्वभावी है तो मुनिजन ऐसा ध्यान क्यों लगाते हैं?

उत्तर- ये दोनों श्रेणियां अबुद्धि पूर्वक होतीं हैं। हाँ, भूमिका बुद्धि पूर्वक होती है पर भूमिका में इस प्रकार का विभाग नहीं होता है और न ध्याता ऐसा विचार करता है कि मैं उपशम श्रेणी आरोहण करूँ या क्षपक श्रेणी आरोहण करूँ यदि मालुम हो जाये तो कोई भी महामुनिजन उपशम श्रेणी आरोहण न करेंगे क्योंकि गिरने के लिए कोई ध्यान नहीं करता है। यदि व्यापारी को मालुम हो जाये कि इस व्यापार में घाटा होने वाला है तो वह व्यापार नहीं करता है कारण कि व्यापार मुनाफे के लिए, धन वृद्धि के लिए किया जाता है ऐसे ही उत्कृष्ट ध्यान, साधना उत्थान के लिए की जाती है, न कि पतन के लिए।

प्र.-2980 पतन किस कारण से होता है और मोक्ष किस कारण से?

उत्तर- दुर्भाग्य से, पुरुषार्थ की हीनता, कमी से पतन होता है किंतु मोक्ष की प्राप्ति पूर्ण पुरुषार्थ से होती है, अपूर्ण पुरुषार्थ से नहीं। परमयथाख्यातचारित्र और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान ही समर्थ महाबलवान पुरुषार्थ हैं इन्हीं के द्वारा दुर्भाग्य और सौभाग्य का समूल क्षय करके मोक्ष प्राप्त होता है।

प्र.-2981 दुर्भाग्य पाप, सौभाग्य पुण्य और पुरुषार्थ कौन सा भाव है?

उत्तर- दुर्भाग्य और सौभाग्य औदयिकभाव एवं पुरुषार्थ पारिणामिक भाव के बिना शेष 4 भाव

स्वरूप है।

प्र.-2982 इन पुरुषार्थों से क्या प्राप्त होता है?

उत्तर- इन्हीं पुरुषार्थों के द्वारा ही संसारमार्ग और मोक्षमार्ग चलता है, प्राप्त होता है, जो ज्ञानगम्य है।

प्र.-2983 औदयिक भाव पुरुषार्थ का क्या फल है?

उत्तर- औदयिकभाव रूप पुरुषार्थ से संसार में भ्रमण होता है तथा कदाचित् कुछ पुण्य प्रकृतियों के उदय से मोक्षमार्ग में सहायक सामग्री की भी प्राप्ति होती है या दुःख सुख का उत्पादक है।

प्र.-2984 वर्तमान में दुःख और सुख किन कर्मोदय से प्राप्त होते हैं?

उत्तर- वर्तमान में मोहोदय के साथ में तन्मयता पूर्वक परिणत हुए जीव के असाता कर्म के उदय से दुःख का और साताकर्म के उदय से सुख का अनुभव होता है।

प्र.-2985 केवल मोह के उदय से दुःख सुख होता है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- हाँ, आपत्ति है। मोहोदय के साथ में असाता और साताकर्मोदय से दुःखसुख का अनुभव होता है ऐसा न मानकर यदि मोहोदय से दुःख सुख होता है ऐसा माना जाये तो असाता साता वेदनीय कर्म निष्फल हो जायेगा। यदि मोहोदय से दुःखसुख माना जाये तो मोहकर्म को पाप पुण्य रूप में मानने का प्रसंग आयेगा फिर **अतोन्यत् पापम्** अ. 8 सू.26 में संपूर्ण घातियाकर्मों को पाप रूप ही कहा है **पापाद्दुःखं धर्मात् सुखमिति सर्वजन प्रसिद्धमिदं वचः**।।8।। आ.सा.। सभी प्राणी ऐसा मानते हैं कि पाप से दुःख और धर्म से, पुण्य से सुख होता है अतः अघातिया कर्म के ही पाप पुण्य भेद हैं। इसलिए मोहोदय के साथ वेदनीय कर्मोदय से दुःखसुख होता है अन्यथा मोह के अभाव में केवलियों के असाता और साताजन्य दुःख सुख के अनुभवपने का प्रसंग आयेगा फिर गृहस्थ और केवलियों में कोई अंतर नहीं रहेगा।

प्र.-2986 क्षायिक और उपशमभाव रूपी पुरुषार्थ से किस फल की प्राप्ति होती है?

उत्तर- क्षायिकभाव पूर्ण समर्थ होने से अप्रतिपाती है, पूर्णतः निराश्रव निर्बंध स्वरूप है। हाँ, इसके सद्भाव में जो पाप पुण्याश्रव बंध हो रहा है सो यह घाति अघातिकर्म का अपराध है, क्षायिकभाव का नहीं। ऐसे ही औपशमिक भाव पुरुषार्थ को भी समझना चाहिये। इनमें केवल अंतर इतना ही है कि औपशमिकभाव रूपी पुरुषार्थ का समूल क्षय हो जाता है क्योंकि कर्म भी अनंत शक्ति वाले हैं तभी तो अनंतशक्ति संपन्न आत्मा को संसार में भ्रमण कराते हैं। देखो! तराजु के पलड़े में एक तरफ सामान और दूसरी तरफ बांट होते हैं तब जिसका वजन ज्यादा होगा कांटा भी उसी तरफ झुका रहेगा और दोनों का वजन समान है तो कांटा सीधा रहेगा ऐसे ही पाप की प्रबलता से आत्मा नरक तिर्यंच में और प्रबल पुण्योदय से आत्मा स्वर्गों में, भोग भूमियों में, उत्तम उच्चगोत्री मनुष्यों में तथा समस्त कर्मों के क्षय से मोक्ष में रहेगी यह फल प्राप्त होता है।

प्र.-2987 क्षायोपशमिकभाव पुरुषार्थ से कौन सा फल प्राप्त होता है?

उत्तर- इस पुरुषार्थ का फल मोक्षमार्ग की प्राप्ति होना, गमन करना, स्थिर होना, पतन नहीं होने देना, परिणामों की विशुद्धि होना, संवर निर्जरा होना, इसके सद्भाव में मोक्षमार्गानुकूल पुण्यकर्म का आश्रवबंध होना, लौकिक उत्कृष्ट लोकपूज्य पदवियां प्राप्त होना आदि क्षायोपशमिक भाव पुरुषार्थ का फल है।

प्र.-2988 क्षायोपशमिकभाव पुरुषार्थ के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- क्षायोपशमिकभाव पुरुषार्थ के दो भेद हैं। **नामः-** मिथ्या क्षायोपशमिकभाव पुरुषार्थ और सम्यक् क्षायोपशमिक भाव पुरुषार्थ। यह भाव भी आश्रवबंध का अकारण है क्योंकि ग्रंथकारों ने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग और लेश्यायें आश्रवबंध के प्रत्यय माने हैं। क्षायोपशमिक ज्ञान को आश्रवबंध में नहीं गिनाया है या मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ ज्ञान

मिथ्या और सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान कहलाता है। कदाचित् कहीं पर आचार्यों ने कुमति कुश्रुतज्ञानों को आश्रवबंध का कर्ता उपचार से कहा है यथार्थतः मिथ्याज्ञान भी साक्षात् अबंधक है ऐसा समझना चाहिये।

प्र.-2989 तो क्या बंध का कारक केवल औदयिकभाव है?

उत्तर- नहीं, सभी औदयिकभाव सर्वथा आश्रव बंध के कर्ता या अकर्ता नहीं है किंतु मोह संबंधी भाव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुकूल होने पर ही आश्रव बंध के कर्ता हैं, शेष नहीं। इसी तरह मोहोदय से प्राप्त सूक्ष्म परिणाम भी स्वयं के लिए आश्रवबंध के अकर्ता है। जैसे कुछ व्यक्ति पक्ष में, कुछ विपक्ष में तो कुछ मध्यस्थ रहते हैं, इनको किसी के सुखदुःख, शत्रुतामित्रता से कोई मतलब नहीं है तभी तो ये मध्यस्थ कहलाते हैं ऐसे ही ये औदयिकभाव आश्रवबंध और संवरनिर्जरा में सहायक होते हैं।

प्र.-2990 योग भी बंध के कारक हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- जिस आश्रव बंध से चौरासीलाख योनियों में, चारों गतियों में भ्रमण होता है ऐसा आश्रव बंध योग नहीं कराते किंतु केवल ईर्यापथाश्रवबंध कराते हैं। इसका फल आत्मा को केवल संसार में रोककर रखना है, भ्रमण कराना नहीं है या ये योग आत्मा को मलिन तो करते हैं किंतु महामलिनता नहीं लाते।

प्र.-2991 तब आत्मा में महामलिनता कौन लाता है?

उत्तर- सांपरायिकाश्रवबंध आत्मा में महामलिनता लाता है। इसीसे संसार में भ्रमण होता है।

प्र.-2992 भाग्य और पुरुषार्थ में कौन छोटा और कौन बड़ा है?

उत्तर- पहलवानों के समान जिसका दाव लग गया वह बलवान और दूसरा कमजोर ऐसे ही भाग्य और पुरुषार्थ दोनों समान बलवान होने पर भी जो व्यक्ति वर्तमान में युक्ति पूर्वक सावधान रहा तो पुरुषार्थ बलशाली हो गया तथा असावधान रहा तो भाग्य बलशाली बन गया किंतु मोक्ष प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ ही शक्तिशाली है क्योंकि भाग्य के क्षय से ही मोक्ष प्राप्त होता है। पूर्ण शुद्धात्मा में स्थिर रहना केवल परम पुरुषार्थ ही कारण है अन्यथा संसार में पुनः वापिस आ जायेंगे अतः पुरुषार्थ ही आत्मा को मोक्ष में रोके है।

प्र.-2993 सिद्धों में क्या परम पुरुषार्थ है?

उत्तर- सिद्धों में परमयथाख्यातचारित्र, परमयथाख्यातसंयम, व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान आदि ही परम पुरुषार्थ है। इसी रूप में अनंतकाल तक परिणमन करते रहेंगे। यदि सिद्धों में ये अवस्थायें नहीं मानी जायें तो अधःपतन हो जायेगा जैसे यहाँ ध्याता ध्यान समाप्त होते ही पतन कर विकल्पों में, विकारों में परिणमन करने लगता है, यहाँ भी यदि सावधान नहीं हुआ तो अधःपतन करता हुआ दीर्घ संसारी हो जाता है ऐसे ही यदि सिद्ध ध्यान से बाहर हो जायें तो पुनः संसार में आना अवश्यंभावी है पर वे सिद्ध ध्यान से न बाहर होते हैं, न पतन करते हैं। यही सिद्धों का परम पुरुषार्थ है जो सिद्धों को स्वभाव से गिरने नहीं देता है।

प्र.-2994 आत्मस्वभाव में सोनेवाले साधु को मिथ्यादृष्टि कहा है तो गृहस्थ कौन है?

उत्तर- यदि कोई साधु शरीरादि परपदार्थों में, विषयकषायों में आसक्त है तो वह आत्मस्वभाव में सो रहा है, यथार्थ में आत्मस्वभाव का ध्याता नहीं है तो फिर गृहस्थों की वार्ता ही क्या? वे इन कार्यों में आकंठ डूबे हुए हैं अतः ये अन्याय, अभक्ष्य सेवी महामिथ्यादृष्टि हैं। वास्तव में ये मोक्षमार्गी न होकर संसारमार्गी ही हैं।

प्र.-2995 अन्याय अभक्ष्य सेवियों को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- जैसे घरों में बहुबेटियां पुत्रादि जब अनाज्ञाकारी होकर जाति कुल और धर्म को कलंकित करने वाली अनेक चेष्टायें करते हैं, बारबार समझाने पर भी अपनी कुचाल नहीं छोड़ते हैं तो माँबाप कह देते हैं कि यह मेरी संतान नहीं हैं या कुपुत्र कुपुत्री हैं। जिसके अंतरंग में निरपराधी त्रस स्थावर जीवों पर करुणाभाव नहीं है तो वह जैन कैसा? अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने वाला व्यक्ति संकल्पी हिंसा करने वाला कहा है और संकल्पी हिंसा मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषाय के उदय से होती है अतः अनाज्ञाकारी होने से, दयाधर्म का अभाव होने से अश्रद्धानी मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-2996 अव्रतीसम्यग्दृष्टि को संकल्पीहिंसा अन्यायअभक्ष्य का त्यागी कैसे कहा जाये?

उत्तर- जी.कां.29 में **अपि शब्देन संवेगादि सम्यक्त्वगुणाः सूच्यन्ते**। जी.प्र.। **अपि शब्देनानुकंपादिगुण सद्भावान्निरपराधहिंसां न करोतीति सूच्यन्ते**। मं.प्र.। उस अव्रती सम्यग्दृष्टि के संवेगादि सम्यग्दर्शन के आठ गुण सूचित होते हैं। अपि शब्द से अनुकंपादि गुणों का धारी निरपराध हिंसा नहीं करता है ऐसा सूचित किया है। अब इन्हीं वाक्यों से अव्रतीसम्यग्दृष्टि संकल्पीहिंसा, अन्यायअभक्ष्य का त्यागी होता है। यदि वह इनका त्यागी नहीं है तो उसके अनुकंपादि गुणों का सद्भाव कैसे हो सकता है? यदि अव्रती गृहस्थ इन गुणों का धारक पालक नहीं है तो 41 प्रकृतियों का संवर कैसे हो सकता है? मूलगुणों का, षडावश्यकों का पालन कैसे कर सकता है? अतः अव्रती गृहस्थ मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य का त्यागी ही होता है।

प्र.-2997 अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ अभक्ष्य का त्यागी कैसे हो सकता है?

उत्तर- यदि अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थ अभक्ष्य का त्यागी नहीं है तो वह जिनेंद्राज्ञा पालक निरपराधी जीवों का रक्षक कैसे हो सकता है? वह तो महान हिंसक पापी ही है।

नोटः- यहाँतक 2997 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 93वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 94-95वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

जिनधर्म विराधक साधु

आरंभे धणधण्णे उवयरणे कंखिया तहासूया।
वयगुणसीलविहीणा कसायकलहप्पिया मुहरा। ।94।।
संघविरोहकुसीला सच्छंदा रहिय गुरुकुला मूढा।
रायाइसेवया ते जिणधम्म विराहिया साहू।।95।

आरंभे धनधान्ये उपकरणे कांक्षितास्तथाऽसूया।
व्रतगुणशीलविहीनाः कषायकलहप्रियाः मुखराः।।
संघविरोधकुशीलाः स्वच्छंदा रहितगुरुकुला मूढाः।
राजादिसेवकाः ते जिनधर्मविराधकाः साधवः।।

आरंभे आरंभ में **धणधण्णे** धन धान्य में **उवयरणे** उपकरण के **कंखिया** इच्छुकों में **तहासूया** तथा ईर्ष्यालु **वयगुणसील** व्रत, गुण, शील से **विहीणा** विहीन **कसायकलहप्पिया** कषाय, कलहप्रिय **मुहरा** मुखर **संघविरोहकुसीला** चतुसंघ विरोध स्वभावी **सच्छंदा** स्वच्छंद **गुरुकुलारहिय** गुरुकुल रहित **मूढा** अज्ञानी **रायाइसेवया** राजादि की सेवा करने वाले **ते** वे **साहु** साधु **जिणधम्म विराहिया** जिनधर्म के विराधक हैं।

प्र.-2998 आरंभ किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- धन वृद्धि और उदरपूर्ति के कारणभूत षट्कायिक जीवों के विराधक कार्यों को आरंभ कहते हैं। धन वृद्धि के कारणभूत, खेती, व्यापार, नौकरी आदि आरंभ। उदरपूर्ति के कारणभूत

कूटना पीसना, झाड़ू लगाना, पानी भरना, आग जलाना आदि आरंभ। दो भेद हैं:- 1. अशुभ आरंभ 2. शुभ आरंभ।

प्र.-2999 अशुभारंभ/ महान पापारंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- सांपरायिक पापाश्रव के कारणभूत कार्यों को अशुभारंभ कहते हैं। प्राणघातक, कीटनाशक दवाइयां, गर्भपात, गर्भनिरोधक औषधियां बनाना और मद्य, मांस, मधु का क्रयविक्रय करना कराना, इनका तैयार करना कराना, शारीरिक धातुउपधातुओं का क्रय विक्रय, वेश्याकर्म, परिवारनियोजन करना कराना, अंडे, किडनी, नेत्र, रक्तादि का लेनदेन करना कराना। भोगविलास के लिए बालकबालिकाओं का अपहरण करके व्यापार करना, लौकिक कार्यों की दलाली करना, स्थान देना, रुपया देना, सलाह देना, खरकर्म, निष्ठुरकर्म जैसे प्लान्ट लगाना इनसे धनवृद्धि और जीव हत्या खूब होती है। अनंतजीवों के पिंड स्वरूप कंदमूलों का व्यापार करना भी अशुभारंभ है। ये कार्य 108 प्रकार से किये जाते हैं।

प्र.-3000 शुभारंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- पुण्याश्रव के कारणभूत दान पूजा, यात्रा, प्रतिष्ठा, चतुर्विध संघ की वैय्यावृत्ति आदि सातिशय पुण्य वर्धक कार्यों को शुभारंभ कहते हैं क्योंकि दानपूजादि कार्यों के लिए भोजन बनाना, आग जलाना, पानी भरना, छानना, गरम करना, हवा करना, कूटना, पीसना, सब्जीफल सुधारने के लिए चाकू आदि चलाने को तथा तत्संबंधी तैयारी करने से स्थावरजीवों की तथा किंचित् असावधानी होने से त्रसहिंसा भी हो जाती है।

प्र.-3001 उपरोक्त कार्यों में जीवों की विराधना होने पर भी इसे पुण्यवर्धक क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि उपरोक्त कार्यों में कदाचित् असावधानी होने से त्रस स्थावर जीवों की विराधना हो जाती है परंतु अभिप्राय हिंसा का न होकर रक्षा का होने से जीवों की विराधना होने पर भी शुभारंभ मंगलकारक ही है जैसे किसी धर्मात्मा, त्यागी व्रती, साधुओं के शरीर में व्याधियों के होने पर व्याधियों को दूर करने के लिए दातागण जब औषधि देते हैं तब शरीर में उत्पन्न हुए त्रसजीवों की विराधना अवश्य ही होती है फिर भी आचार्यों ने औषधिदान कहा है, पाप का विच्छेदक कहा है ऐसे ही उपरोक्त विषय को समझना चाहिये।

प्र.-3002 सब्जी फल सुधारने में त्रस स्थावर जीवों की हिंसा कैसे हो सकती है?

उत्तर- पेड़पौधों और बेलों से तोड़कर तुड़वाकर व्यापारी से सब्जी फल खरीदकर लाकर सुधारने में स्थावर जीवों की विराधना अवश्य ही होती है क्योंकि ये सब्जी फल अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के होने से निराधार होने पर अचित्त ही हो जाते हैं किंतु इनके बीजों में योनिभूत जीवोत्पत्ति का साधन होने से भावीनय से सचित्त हैं। सड़गल जायें तो त्रसजीव भी हो सकते हैं अतः इनके सुधारने में त्रसस्थावर जीवों की हिंसा हो भी सकती है और नहीं भी।

प्र.-3003 हमारा हेतु भी धर्म का होने से पशुबलि को संकल्पीहिंसा पाप क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ दानपूजादि कार्यों में सावधानी वर्तने पर भी जो त्रस स्थावर जीवों की विराधना होती है वह दृष्टि अगोचर जीवों की होती है। यदि इन कार्यों में त्रस जीव दृष्टिगोचर होने लगें तो कोई भी अहिंसावादी मोक्षमार्ग साधक जैन इन कार्यों को नहीं कर सकता है और ऐसा करने वालों को अहिंसावादी साधक श्रावक नहीं कहा है किंतु पशुबलि में तो प्रत्यक्ष ही निरपराधी, दीनहीन, दया के पात्र और शाकाहारी पंचेंद्रिय पशु और मनुष्य मारे काटे जाते हैं अतः पशुबलि, नरबलि संकल्पी हिंसापाप स्पष्ट ही है।

प्र.-3004 पशुबलि नरबलि क्यों की जाती है और कौन करता है?

उत्तर- लौकिक मनोरथों की प्राप्ति और पूर्ति के लिए की जाती है और जिसका अपने भाग्य पर,

न्यायनीति पर विश्वास नहीं है, नास्तिक है, मिथ्यादृष्टि है ऐसा व्यक्ति ही बलि करता है। यदि दुर्भाग्य प्रबल है तो लाख पशुबलि नरबलि चढ़ाने पर भी मनोरथों की प्राप्ति पूर्ति नहीं हो पाती है। अतः पापकार्यों से बचना चाहिये।

प्र.-3005 इन दोनों प्रकार के आरंभों को कौन करते हैं और क्या फल है?

उत्तर- पहले आरंभ को तो एकमात्र मलेच्छव्यक्ति, मलेच्छाचरण वाले व्यक्ति ही करते हैं, आर्य उच्चवर्ण वाले नहीं और जो जन्मतः उच्च वर्णी इन कार्यों को करने लगे हैं तो वे केवल जन्म से उच्च वर्णी हैं, कर्मों से नहीं। आचारविचार से, दिनचर्या से मलेच्छ ही हैं। दूसरे आरंभ को आर्य, मलेच्छ दोनों करते हैं। पहले के आरंभ से जो पापोपार्जन किया है उसकी उदीरणा, संक्रमणादि कराने के लिए शुभ आरंभ किया जाता है। यद्यपि मंगल कार्यों को करने से पुण्योपार्जन होता है सो आत्मा में तत्काल अनंतगुणी विशुद्धि होने से संवर निर्जरा रूपी लाभ अधिक है और यह लाभ आत्मसाधना में साधक ही बनता है आदि इसका फल है।

प्र.-3006 धनवृद्धि के कारणभूत आरंभों से पुण्याश्रव होता है या पापाश्रव?

उत्तर- इन कार्यों को करते समय यदि धर्मदृष्टि है, जीवदया का भाव है, सावधानी है, योगों की निर्मलता है, स्वपर कल्याण की भावना है तो पापाश्रव कम और पुण्याश्रव अधिक होता है। खेती में धान्य, सब्जी फल, कपास, सन, जूट, पुष्पादि शृंगार के, औषधि के लिए पैदा करना, कपडे का, सोनेचांदी, किराने का, शुद्ध जड़ीबूटियों का व्यापार, अहिंसा धर्मानुकूल शृंगार की वस्तुओं का, जमीनजायदाद, दूसरों के सुखवृद्धि का ध्यान रखते हुए व्याजादि से धन कमाना किंतु मादक, मारक, हिंसार्थक व्यापार जैनों को नहीं करना चाहिये, धर्म की, परिवार वालों की सेवा करते हुए नौकरी करना चाहिये इन कार्यों से पुण्याश्रव होता है।

प्र.-3007 उदरपूर्ति के कारणभूत आरंभों से क्या पुण्याश्रव होता है या पापाश्रव?

उत्तर- कूटना पीसना, झाडू लगानादि कार्यों से स्थावर जीवों की विराधना होती ही है किंतु असावधानी से त्रसहिंसा भी हो जाती है जिससे एकमात्र पापाश्रव ही होता है अतः करुणा सहित सावधानी पूर्वक कार्य करने से पुण्याश्रव ही होता है। यदि इन्हीं कार्यों को धर्म का, मोक्ष का हेतु बनाया तो कषायानुसार पापाश्रव कम तथा पुण्याश्रव अधिक होगा, संवर निर्जरा होने से मोक्ष की निकटता प्राप्त होती जायेगी और केवल उदरपूर्ति करने के लिए किये गये ये कार्य एकमात्र पाप का ही आश्रव कराते हैं।

प्र.-3008 मद्य, मांस के व्यापार, चोरी आदि कार्यों से उदरपूर्ति कर सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, क्योंकि इन व्यापारों के द्वारा त्रसजीवों की हिंसा, तीव्र कषाय, निंद्यकार्य, स्व पर घातक, सदाचार और सद्विचारों के विनाशक होने से उदरपूर्ति नहीं कर सकते हैं।

प्र.-3009 सप्त व्यसनों का सेवन कर कराके आजीविका चला सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, धर्म और सरकार के कानून विरुद्ध होने के कारण तन मन धन और धर्म के नाशक, संतान परंपरा को कलंकित करने वाले होने से इनके द्वारा आजीविका नहीं चला सकते हैं।

प्र.-3010 स्त्री पुरुषों की संख्या में वृद्धि के भय से गर्भपातादि कराना योग्य है क्या?

उत्तर- नहीं, जैसे पशुओं की, पक्षियों की वृद्धि के भय से मांसाहारियों ने मारमारकर खाना प्रारंभ कर दिया तो पशुपक्षियों को मारने काटने से इनकी अनेक जातियां प्रजातियां प्रायः समाप्त हो गईं हैं और जो कुछ बचीं हैं वे भी समाप्त होने वालीं हैं ऐसे ही यदि ये गर्भपातादि कार्य चलते रहे तो क्या कालांतर में मनुष्यों की संख्या समाप्त नहीं हो जायेगी? क्योंकि अपने ही सामने गर्भपातादि के कारण स्त्रीवेदियों की संख्या कितनी कम हो गई है यह सभी जानते हैं। जब वर्तमान में इतनी

संख्या कम हुई है तो भविष्य में पूरी समाप्त हो जाये तो क्या आश्चर्य है? जब स्त्रिवेदियों की संख्या समाप्त हो जायेगी तो पुरुषवेदी भी कहाँ से पैदा होंगे? क्या मनुष्यों की उत्पत्ति पेड़पौधों से होती है? बिना मादा के नर की स्थिति भी नहीं रह सकती है। देखो मुसलमान गर्भपात, परिवारनियोजन कराते, करवाते नहीं हैं क्योंकि ये अल्लाह का वरदान मानकर रक्षा करते हैं जिससे उनकी संख्या में वृद्धि हो रही है पर क्या उनको ठहरने को, रहने को जगह, खाने पीने को भोजन नहीं मिल रहा है? उनका भी तो कुछ भाग्य है। इसी तरह संतान की प्राप्ति ईश्वर की, गुरु की कृपा से या भाग्य से हुई है तो उसे क्यों ठुकराना? गर्भपातादि क्यों कराना? यदि अपने माँबाप गर्भपातादि करा देते तो क्या अपने को यह ऐशआराम मिलता? ऐसा भोगविलास, विषयानंद कौन भोगता? कामवासना, कामसेवन का त्याग न करने से नपुंसक वेद का आश्रव हुआ और भवांतर में नपुंसकपना प्राप्त हुआ, यहाँ देश में जबतक गर्भपातादि चालू नहीं हुआ था तबतक कोई भी संतानविहीन नहीं होता था, बांझ स्त्री, नपुंसक पुरुष नहीं मिलते थे, क्वचित् कदाचित् कोई लाखों में एकाध अपवाद रूप में मिल जाये तो बड़ा दुर्भाग्य था। आज गर्भपातादि पापों की वृद्धि होने से लाखों की संख्या में परिवार संतानविहीन हो रहे हैं। परिवारनियोजन कराने वाला इसी भव में बांझ और नपुंसक हो गया तो भविष्य में क्यों नहीं होगा? यदि इन भाग्य हीनों को संतान नहीं चाहिये तो ऋतुधर्म प्रारंभ होने के पहले तथा बाद में 18दिन तक ब्रह्मचर्यधर्म का पालन करें, **न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी** के अनुसार न गर्भ रहेगा, न गर्भपात कराना पड़ेगा, न पाप की वृद्धि होगी, गर्भपात कराना ही बालहत्या है, भ्रूणहत्या है जो धर्म के, सरकार के कानून विरुद्ध है, जब अपन ही अपने कानून को, धर्म को, धर्म के फल को नष्ट करेंगे तो रक्षा कौन करेगा? जब परिवार नियोजन आदि करने कराने वाले अपने ही रक्त की रक्षा नहीं कर सकते हैं तो ये दूसरों की क्या रक्षा करेंगे और इन हिंसकों के द्वारा देश की, धर्म की, समाज की क्या रक्षा और प्रभावना हो सकती है?

प्र.-3011 गर्भपात आदि क्यों कराया जाता है और इसका क्या फल है?

उत्तर- जिनको अपने और संतान के भाग्य पर विश्वास नहीं है, अकर्मण्य हैं, नामर्द हैं, पालन पोषण करने की सामर्थ्य नहीं है वे ही गर्भपात आदि कराते हैं, थोडा सोचो यदि सभी ने लड़के ही पैदा किये तो धर्म विवाह किससे होगा? धर्मसंतति कैसे चलेगी? पतिव्रत, पत्नीव्रत स्थिर कैसे रहेगा? सभी वेश्या और व्यभिचारीपने को प्राप्त हो जायेंगे तभी धर्ममार्ग संयममार्ग समाप्त हो जायेगा क्योंकि दूषित रजोवीर्य से संस्कारहीन संतानें पैदा होती हैं तभी तो शीघ्र ही छठवाँ काल आयेगा यही इसका कुफल है।

प्र.-3012 गर्भपात आदि को पाप क्यों कहा?

उत्तर- गर्भधारण करने कराने की भूमिका, विचार, चर्या पापरूप ही है तब गर्भपातादि को पाप ही कहा है।

प्र.-3013 गर्भपातादि में हिंसादि पाँचों पाप कैसे आ जाते हैं?

उत्तर- मैथुनसेवन करते समय कामक्रीड़ा के प्रत्येक आघात में असंख्यात करोड़ जीव मारे जाते हैं सो यह हिंसा पाप है। कोई भी व्यक्ति इस क्रिया को मुंह से स्पष्ट नहीं बोलता है कि मैं ऐसा करता हूँ अतः झूंठपाप है। इस क्रिया को कोई भी सज्जन लज्जा मर्यादा वाले स्त्री पुरुष पशुपक्षियों की तरह खुलेआम न कर छिपके करते हैं अतः चोरीपाप है। मैथुनसेवन करना स्वयं में ही कुशीलपाप है। वेदकषाय पूर्वक मैथुनसंज्ञा होने से परिग्रह पाप है। इस कारण गर्भपात आदि में सभी पाप आ जाते हैं। गर्भ का पालन पोषण भी प्रमाद कषाय रूपी पाप से होता है क्योंकि यह कामपुरुषार्थ का फल है।

प्र.-3014 परिवार नियोजन, गर्भ निरोध, भ्रूणहत्या, गर्भपात किसे कहते हैं?

उत्तर- **परिवार नियोजनः-** गर्भधारण करने की नली के बंद कर देने को परिवारनियोजन कहते हैं। **गर्भ निरोधः-** औषधि, निरोध, कॉपरटी आदि के प्रयोग से गर्भधारण न होने देने को गर्भनिरोध कहते हैं। **भ्रूणहत्याः-** गर्भाशय में ही शस्त्र या तीक्ष्ण क्षारादि पदार्थों के द्वारा शिशु को मार देने को **गर्भपातः-** कसाई की तरह बड़ी निर्दयता पूर्वक गर्भस्थ जीव को नष्ट करा देने को गर्भपात कहते हैं।

प्र.-3015 इन कार्यों को करने से किस कर्म का आश्रव होता है और फल क्या है?

उत्तर- इन कार्यों को करने से एकमात्र बांझ और नपुंसकवेद का आश्रवबंध होता है क्योंकि इन कार्यों के करने पर गर्भ ठहरने का भय तो रहा ही नहीं किंतु ब्रह्मचर्य का पालन न कर मैथुनसेवन खूब किया जिससे मरण कर नपुंसक बन जाता है यही इसका फल है। **निकामं काम कामात्मा तृतीया प्रकृतिर्भवेत्।।412।।** उपास.अ. 31 **अर्थ-** जो अत्यंत कामी होते हैं वे इसी भव में या परभव में नपुंसक हो जाते हैं। **बांझ-** जिस स्त्री के रज में गर्भधारण करने की सामर्थ्य नहीं होती है उसे बांझ/ नपुंसक कहते हैं। **पुरुष नपुंसक-** जिस पुरुष के वीर्य में गर्भधारण कराने की सामर्थ्य नहीं होती है उसे कहते हैं।

प्र.-3016 मद्य मांस मधु के व्यापार को अशुभ क्यों कहा?

उत्तर- इनके सेवन और व्यापार से त्रसजीवों की, निरपराधी प्राणियों की हिंसा होने से अशुभ कहा है।

प्र.-3017 मांस पौष्टिक आहार होने से उसका निषेध क्यों किया?

उत्तर- आप जिस पशुपक्षी का मांस खाते हैं उनमें पौष्टिकपना, ताकत कहाँ से आई? क्या ये पशुपक्षी मांस खाते हैं? नहीं, ये मांस न खाकर घासपत्ती खाते हैं इन घासपत्ती खाने वाले पशुपक्षियों में मनुष्यों से कई गुणी ताकत है जो सभी प्रत्यक्ष देख रहे हैं। अतः इसके सेवन को पाप कहा है।

प्र.-3018 पशुपक्षी मारकर नहीं खाये जायें तो क्या इनकी संख्या बढ़ नहीं जायेगी?

उत्तर- देखो घोड़े, गधे, कुत्ते, बिल्ली, कौवे, गीध, चील आदि पशुपक्षी नहीं खाये जाते हैं तो इनकी संख्या कितनी बढ़ गई? ऐसा नियम है कि संसार में जनम मरण करने वालों की संख्या बराबर रहती है जैसे नदी में जितना पानी आता है उतना ही बह जाता है ऐसे ही प्राणियों की जनगण ाना समझना चाहिये। जिन देशों में, जातियों में मांसाहारियों की संख्या बढ़ रही है वे उतनी ही तीव्र गति से वैर विरोध और बंबमारी के कारण मर भी रहे हैं अतः पशुपक्षियों की संख्या में वृद्धि होगी इसकी चिंता मत करो। जब से निरपराधी पशुपक्षी मारे जाने लगे हैं तभी से देशों में भूकंप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि हो रही है कारण प्राणियों की हाय बुरी होती है। **तुलसी हाय गरीब की हरि से सही न जाय। मरी चाम की श्वांस से लोह भस्म हो जाय।**

प्र.-3019 होम्योपैथिक, एलोपैथिक, आयुर्वेदिक औषधियां अशुद्ध क्यों हैं?

उत्तर- ये सभी औषधियां जैनागमानुसार अमर्यादित होने से, मद्य, मांस, मधु, मल मूत्र आदि का संमिश्रण होने से अभक्ष्य हैं। जो देव शास्त्र गुरु के भक्त मोक्षमार्गी हैं उनको इनका सेवन नहीं करना चाहिये। हाँ, दुर्भाग्यवशात् औषधियों का सेवन करना ही पड़े तो जड़ीबूटियों को मंगाकर शोधन कर धो सुखाकर, कूटपीस कर, तैयार कर काम में लेना चाहिये अन्यथा मोक्षमार्ग की विराधना होना अवश्यंभावी है।

प्र.-3020 किस आरंभ से किस कर्म का आश्रवबंध होता है?

उत्तर- भोग के, ख्याति पूजा लाभ की भावना के, मिथ्याविश्वास या विश्वासघात के निमित्त आरंभ से पापाश्रवबंध होता है। धर्म के, संसार बंधन से छूटने के, आत्म कल्याण, आत्मसाधना, आत्मध्यान और मोक्ष के निमित्त आरंभ से सातिशय पुण्याश्रव बंध, पाप का संवर, विशेष कर्मों

की निर्जरा, पराधीनता से, कर्मबंधन से छुटकारा प्राप्त होकर आत्मशुद्धि होती है जैसे माँ बहन बेटी के और पत्नि के कंधे पर एकसाथ एकसमय में एक ही प्रकार से हाथ रखने से पर बाह्य में अंतर होने पर भी अंतरंग के परिणामों में भोग्य व पूज्यपने का विचार होने से महान अंतर है ऐसे ही बाह्य दृष्टि से देखने पर आरंभ एकसा होने पर भी अंतरंग में हेतु भिन्न भिन्न होने से आश्रव बंध रूप फल में अंतर हो जाता है।

प्र.-3021 बालक बालिकाओं के अपहरण करने से क्या पापाश्रव होता है?

उत्तर- केवल अपहरण करना पाप का हेतु नहीं है किंतु भोगविलास के लिए, धन कमाने के लिए, दूसरों को दुःखी करने के लिए और अपनी प्रसंशा के लिए अपहरण करने से पापाश्रव बंध होता है।

प्र.-3022 तो क्या बालकबालिकादि का अपहरण करने से पुण्याश्रव भी होता है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही धर्म का, धर्म की प्रभावना का और इनके उद्धार का हेतु होने से विशेषतया पापाश्रव न होकर पुण्य का ही आश्रवबंध होता है जैसे वारिषेण कुमार ने अपने मित्र पुष्पडाल का, भवदेव ने अपने भाई भावदेव का, यशोधर मुनिराज ने अपने भानजे सुकमाल का अपहरण किया था। अतः बालक बालिकाओं का अपहरण करने का मंगलकारी हेतु होने से पुण्याश्रव ही होता है, पापाश्रव नहीं।

प्र.-3023 उपरोक्त उदाहरणों को अपहरण नाम क्यों दिया?

उत्तर- परिवार की बिना इच्छा के तथा परिवार को रोते बिलखते छोड़कर उन श्रावकों को आचार्यों ने दीक्षा दी इसलिए आचार्यों ने इन श्रावकों का अपहरण किया ऐसा कहा है।

प्र.-3024 अपहरण किसे कहते हैं?

उत्तर- समर्थ या असमर्थ किसी व्यक्ति या गिरी, पड़ी, रखी और भूली हुई वस्तु को मालिक की स्वेच्छा के बिना बलात् ले लेने को या ग्रहणकर दूसरों को दे देने को अपहरण या चोरी कहते हैं।

प्र.-3025 प्रमत्तमुनियों के केवल पुण्यबंध ही होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि गुणस्थानानुसार बुद्धि अबुद्धि पूर्वक पुण्यपाप सभी कर्मों का आश्रवबंध होता रहता है किंतु यहाँ पर मंगलकारी हेतु होने से पुण्य की प्रधानता के कारण पुण्याश्रव होता है ऐसा कहा है।

प्र.-3026 जब कर्म एक ही प्रकार का है तो पुण्यपाप रूप कैसे हो जाता है?

उत्तर- जैसे एक ही प्रकार का भोजन ग्रहण करने पर उदराग्नि के द्वारा सभी प्रकार की धातु और उपधातु रूप से परिणमन कर जाता है ऐसे ही कषाय और योग से कर्मों के ग्रहण करने पर द्रव्य कर्मों का गुणस्थानानुसार आठ प्रकार का, सात प्रकार का, छह प्रकार का और एक प्रकार का आश्रवबंध होता है।

प्र.-3027 धन धान्य किसे कहते हैं?

उत्तर- हाथी, घोड़ा, ऊंट, भेड़ बकरे, गाय भैंस आदि पशु, तोता, मोर, कबूतर आदि पक्षियों को, परिवार के सदस्यों को, सगेसंबंधियों को, नातेदार रिश्तेदारों को तथा रुपया, सोनाचांदी, हीरामोती आदि को भी धन कहते हैं। खाने पीने योग्य दाल चावल, गेहूँ चना, सब्जी फल आदि को धान्य कहते हैं।

प्र.-3028 धन धान्य क्यों ग्रहण किये जाते हैं तथा इनका फल क्या है?

उत्तर- धन धान्य आदि बाह्य भोगोपभोग सामग्री कामभोग के लिए ग्रहण की जाती है और विषयकषाय तथा दुर्ध्यान पूर्वक इनका सेवन करने से चतुर्गतियों में भ्रमण होता है यह इसका फल है।

प्र.-3029 उपकरण किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जो आत्मा का शुभाशुभ रूप में, सुखदुःख रूप में, साधना विराधना रूप में, मोक्षमार्ग, संसारमार्ग में सहायक हो उसे उपकरण कहते हैं। दो भेद हैं। नामः- शुभ उपकरण और अशुभ उपकरण।

प्र.-3030 शुभ और अशुभ उपकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- मंगलकारी साधनों को शुभ उपकरण और अमंगलकारी साधनों को अशुभ उपकरण कहते हैं।

प्र.-3031 इन उपकरणों का प्रयोग कौन किन कार्यों में और किस हेतु करते हैं?

उत्तर- इन उपकरणों का प्रयोग मुख्यतया महाव्रती आर्यिकायें और साधु करते हैं और उद्दिष्ट त्यागी आरंभ परिग्रह के त्यागी ऐसे ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकायें भी प्रयोग करते हैं। शारीरिक शुद्धि के लिए कमंडलु का, षटकाय जीवों की रक्षा के लिए पीछी का तथा ज्ञानवृद्धि के लिए शास्त्रजी का प्रयोग करते हैं। अनादिकालीन कर्मों के क्षय के लिए, आत्मशुद्धि के लिए तथा मोक्ष पद की प्राप्ति हेतु करते हैं।

प्र.-3032 गृहरागी अणुव्रती और अव्रती गृहस्थों के क्या कोई उपकरण नहीं होते हैं?

उत्तर- इन गृहस्थों के पास गृहस्थधर्म के योग्य कर्म काटने के निमित्त दानपूजा के उपकरण होते हैं।

प्र.-3033 क्या इन उपकरणों का प्रयोग विरुद्ध फल के लिए भी कर लेते हैं?

उत्तर- हाँ, यदि होनहार खोटा है, संसारभ्रमण ज्यादा है तो अवश्य ही विषयकषाय और मिथ्यात्रय पूर्वक हेतु गलत होने से भव्याभव्य, सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, त्यागीजन इन उपकरणों का गलत प्रयोग कर लेते हैं।

प्र.-3034 कमंडलु का प्रयोग किस प्रकार की शुद्धि में करते हैं?

उत्तर- शारीरिक मलमूत्र आदि की अशुद्धि को, सूतकपातक वालों से, शराबी, मांसाहारी, अत्याचारी, अनाचारी आर्यों के, मलेच्छों के, शूद्रों के द्वारा स्पर्श किये जाने पर उत्पन्न अशुद्धि को अशुद्धि के अनुसार इस कमंडलु के जल से हाथ पैर धोकर या शिर से तीन धारा देकर शुद्धि कर लेते हैं।

प्र.-3035 पीछी का प्रयोग किन किन कार्यों में करते हैं?

उत्तर- किसी स्थान पर उठना, बैठना, लेटना आदि क्रियाओं में, मलमूत्र क्षेपण करने में, धूप से छाया में और छाया से धूप में गमनागमन करने पर, आगमानुसार गुरुप्रदत्त वस्तु के क्षेपण करने, उठाने में, मंदिर आदि में प्रवेश और निर्गमन गमन करते समय प्रतिज्ञा पालन एवं जीवरक्षा के लिए पीछी का प्रयोग करते हैं।

प्र.-3036 किस प्रकार से पीछी का प्रयोग करते हैं?

उत्तर- किसी वस्तु को रखना या उठाना है तो भूमि का और वस्तु की पैंदी का प्रतिलेखन करते हैं और गमनागमन करते समय शरीर का प्रतिलेखन करते हैं प्रतिलेखन का मतलब है जीवरक्षा करना अर्थात् जिस स्थान का जीव है वह वहीं सुरक्षित रहता है अन्यत्र नहीं रह सकता है जैसे धूप का जीव धूप में और छाया का जीव छाया में ही या जिस जलाशय का जीव है वह उसी जलाशय में जीवित रहता है तभी तो जीवाणी को यथास्थान पहुंचाने को कहा है अन्यत्र जाने पर मृत्यु को या मृत्युवत् कष्टों को पाता है।

प्र.-3037 शास्त्रों का प्रयोग क्यों और किस प्रकार से करते हैं?

उत्तर- शास्त्रों का प्रयोग तत्त्वों की जानकारी के लिए, आत्म संशोधन के लिए, प्रतिज्ञा को निभाने के लिए गुणदोषों की पहंचान के लिए, परिणामों को स्थिर करने के लिए, धर्म प्रभावना के लिए, अन्यमतियों को तत्त्व निर्णय कराने के लिए, स्वपर समय के प्रतिपादक शास्त्रों का सावधानी पूर्वक अध्ययन करते हैं। उद्दिष्टत्यागी गृहत्यागी अणुव्रती महाव्रतियों के ये तीन ही उपकरण होते

हैं, शेष नहीं क्योंकि दीक्षा के समय दीक्षाचार्यगुरु के द्वारा ये ही उपकरण दिये जाते हैं किंतु बाद में परिणामदोष, हीनसंहनन व कालदोष के कारण चटाई, घास, जूट, कागज की कतरन, पाटा, गुंफा, तंबू, हाथपैर पोंछने के वस्त्र आदि ग्रहण कर लेते है जो इन पदों के कलंक स्वरूप हैं।

प्र.-3038 उपकारक होने से आहार को उपकरण क्यों नहीं कहा?

उत्तर- आपका कहना परम सत्य है कि आहार नहीं मिले तो पेड़पौधे भी मुरझा जाते हैं, पशुपक्षी शक्तिहीन हो जाते हैं ऐसे ही मनुष्य भी मलिन मन वाला हो जाता है। बिना आहार के संयम का, समिति का पालन, ध्यानाध्ययन नहीं बन सकता है आदि सबकुछ ठीक है पर अंतसमय में आहारपानी का त्याग तो कराया किंतु पीछी का नहीं। यद्यपि पीछी मोरपंख की है, परद्रव्य है, अचेतन है, जड़ है फिर भी मोक्षपद के लिए साधकतम साधन स्वरूप मुनिपद का चिह्न है यदि पीछी के बिना भी मुनिपद का पालन हो सकता है तो निपिच्छिक माथुर संघ को जैनाभास क्यों कहा? जो मुमुक्षु मंडलवाले असंयमी गृहस्थ पंडित को परमपूज्य सद्‌गुरुदेव कहकर पूजते हैं उनको स्थिर मन से यह विषय सोचना चाहिये। बिना आहार के केवलज्ञान की, मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है पर बिना पीछी के किसी को भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई अतः मोक्ष के प्रति साधकतम साधन न होने से आहार को उपकरण नहीं कहा है, न ग्रहण किया है यद्यपि आहार औषधि, ज्ञान, संयम, तप और ध्यान साधना स्वरूप है। ऐसा होने पर भी कहा है कि-

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादि कीटके।
एतच्चित्रं अद्याऽपि जिनरूप धरा नरा।।339।। अ. 8 यश.च. आ.सोमदेव

अर्थ- इस कलिकाल में मनुष्यों का मन चलायमान है, शरीर अन्न का कीड़ा है फिर भी आश्चर्य है कि जिनरूप जिनमुद्रा को धारण करने वाले मनुष्य आज भी हैं जिस साधु का मनोबल कमजोर है वह आहार ग्रहण करके धर्म की, संयम की साधना कर सकता है किंतु भरत बाहुबली, गजकुमार, सुकुमाल आदि दृढ़धर्मी साधकों ने दिगंबर मुनिदीक्षा लेकर आहार पानी ग्रहण किये बिना मोक्ष, अहमिंद्र पद पाया तब इनके लिए यह आहार साधक बाधक नहीं कहलाया। आज भी बहुत भव्य श्रावक श्राविकायें जीवन के अंतिम कुछ क्षणों के पहले मुनि आर्यिका आदि दीक्षा लेकर समाधि मरण करते हैं। ध्यान के, सामायिक के, आहार के समय पीछी आदि का त्याग किया जाता है क्योंकि इस समय ऐषणा समिति के बिना शेष समितियों की क्या जरूरत है? किंतु ध्यानादि के समाप्त होने के बाद में दिनचर्या का पालन करना है तब उपकरणों की आवश्यकता होगी। इस हेतु जहाँ स्थिर होकर ध्यान, सामायिक, आहार करते हैं वहीं आसपास में सुरक्षित उच्च स्थान में रखकर सीमित समय तक के लिए त्याग कर देते हैं पर सदा के लिए नहीं। यम सल्लेखना के समय आहार विहार निहार का त्याग कर देते हैं किंतु पीछी का नहीं क्योंकि पीछी का त्याग करने पर संयम का, धर्म का संस्कार स्थिर कैसे रहेगा? क्या बिना लक्षण के लक्ष्य रह सकता है? यदि क्षपक ने मुनिपद के चिह्न का त्याग कर दिया तो वह क्षपक कैसे कहलायेगा? अतः आहारादि का संस्कार साथ में नहीं जाये सो इनका त्याग कराया किंतु पीछी आदि धर्म का संस्कार साथ में जाये अतः इनका त्याग नहीं कराया और न करते हैं। इसीसे समाधिमरण वालों का अग्निसंस्कार के समय पीछी कमंडलु निकट में सुरक्षित जगह पर रख देते हैं ताकि संयम तप त्याग धर्म का संस्कार बना रहे कदाचित् समाधिमरण बिगड़ जाने से भवनत्रिकों में पैदा हो गया हो तब अग्नि संस्कार के समय वह देव आकर अग्निसंस्कार को और अपनी पीछी कमंडलु को देखकर जातिस्मरण, मिथ्यावधिज्ञान के द्वारा पुनः रत्नत्रय को प्राप्त कर सकते हैं इसलिए पीछी कमंडलु का अंत समय में भी त्याग नहीं कराते हैं।

प्र.-3039 श्रावकादि को मोक्षमार्ग में सहायक उपकरण मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- नहीं, यद्यपि ये श्रावक श्राविकायें मोक्षमार्ग में सहायक हैं फिर भी आवश्यक अंग नहीं

हैं, इनके बिना उपसर्ग परीषहों को जीतकर आत्मसाधना कर मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। यदि ये श्रावक श्राविकायें मोक्षमार्ग में आवश्यक अंग बन जाते तो त्याग, तप, संयम धर्म की जरूरत नहीं रह जाती यही आपत्ति है।

प्र.-3040 साधुओं को साधुओं के प्रति उपकरण मान लें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- साधुवर्ग कर्मभूमिज गृहस्थों के लिए सहायक रूप में उपकरण अवश्य हैं क्योंकि गृहस्थधर्म का निर्वाह साधुओं के बिना हो नहीं सकता, धर्मदेशना किससे मिलेगी? गुरुपूजा, वैय्यावृत्ति दान किसकी करेगा और किसे देगा? अतः साधुवर्ग गृहस्थों के लिए उपकरण हैं पर साधु साधु के लिए नहीं। शिक्षा, दीक्षादि के लिए आचार्य भगवंत, अध्ययन के लिए उपाध्याय भगवंत उपकरण है किंतु स्वयंबुद्धों के लिए स्वयं ही अपने आपमें उपकरण हैं तथा बाह्य में पीछी कमंडलु उपकरण हैं। अतः मुनियों के उपकारक अंतरंग साधकतम साधन रत्नत्रय तथा बाह्य साधन पीछी कमंडलु शास्त्र उपकरण हैं, दूसरे नहीं।

प्र.-3041 शास्त्रजी के बिना मुनियों के उपकरण दो ही कहने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- ऐसा नहीं है। जब देव और गुरु हैं तो मध्यदीपक के समान शास्त्र क्यों नहीं होंगे? यदि चौथे काल में या विदेहक्षेत्रों में शास्त्रजी नहीं थे तो शास्त्र के भक्त भी नहीं होंगे तब मोक्षमार्ग में चार ही आयतन होंगे, छह नहीं अतः उस समय वचनात्मक और भावात्मक दोनों शास्त्र थे अन्यथा धर्मदेशना, शास्त्रपूजा नहीं बन सकती, न वाचना स्वाध्याय बन सकता है, हाँ, इतना अवश्य है कि जैसे यहाँ आजकल लिपी रूप में शास्त्रजी हैं वैसे तब नहीं थे क्योंकि उस समय सभीका अपने अपने व्यवहारानुसार क्षायोपशमिक ज्ञान था तथा लिपीरूप में शब्द संकेत भी था तभी तो विजयार्ध पर्वत पर पत्थर की शिला में काकिणि रत्न से चक्रवर्ती अपनी प्रशस्ति अंकित करता है। अतः मोक्षमार्गानुसार रत्नत्रय के बाह्य साधन नरक, भोगभूमि, कुभोगभूमि आदि सभी स्थानों में और सभी कालों में देव शास्त्र गुरु द्रव्यभाव रूप से विद्यमान रहते हैं।

प्र.-3042 नरकों में, भोगभूमि में, कुभोगभूमि में देवशास्त्रगुरु कैसे विद्यमान हैं?

उत्तर- नरकों में, भोगभूमि में, कुभोगभूमि आदि स्थानों में जो सम्यग्दृष्टि हैं या सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने वाले हैं उनके अंतरंग में विश्वास, विवेक तथा आज्ञा रूप में या मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी कषायोदय के त्यागानुसार विद्यमान हैं तभी तो इन जीवों के मोक्षमार्ग बन सकता है, अन्यथा नहीं। यहाँ इन जीवों के जातिस्मरण, वेदनानुभव और धर्मोपदेश है सो इसीके अनुसार देव शास्त्र गुरु विद्यमान हैं क्योंकि अंतरंग बहिरंग साधनों से कार्योत्पत्ति होती है ऐसा नियम है।

प्र.-3043 जब उपकरण धर्म के, मुनिपद के चिह्न हैं तो इनके इच्छुक साधु जिनधर्म के विराधक हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- उपकरण चाहना हानिकारक नहीं है किंतु जरूरत से ज्यादा चाहना, रखना हानिकारक है, जो उपकरण प्रतिसमय प्रतिदिन काम में आ रहा है उससे संयम की, धर्म की विराधना नहीं होती है किंतु व्यापारी की तरह उपकरण जमा कर लिए, इनकी देखभाल न होने से जीव पैदा हो जायेंगे, लोभ भी बढ़ेगा, धन कमाने की, भक्त बनाने की भावना होगी, धन आया तो छिपाने की भावना होगी और व्यापारी के ग्राहक की तरह यह दूसरे का भक्त न बन जाये यह चिंता सताती रहेगी आदि कारणों से अधिक उपकरणों का इच्छुक साधु जिनधर्म का विराधक है ऐसा कहा है। जैसे रसगुल्ले मनोरंजक, स्वादिष्ट, पौष्टिक होने पर भी अधिक खाने पर हानिकारक हो जाते हैं, प्रमाण अनुसार खाने में कोई हानि नहीं है ऐसे ही उपकरण जरूरत से अधिक रखने में हानि होती है। जिस दाता ने आज दिया है वह कल भी देगा। यह मत सोचो कि यह दाता कल जीवित रहेगा या नहीं। थोड़ा अपने भाग्य और पुरुषार्थ पर विश्वास तो करो। जब ऐसा उपदेश देते हो तो स्वयं ही अपने आचार विचारों में, दिनचर्याओं में लाओ तभी तो सार्थक है। यदि अपनी साधुता स्थिर है

तो आज भी श्रावक श्राविकाओं से कोई कष्ट नहीं है और साधुता बिगड़ गई तब सर्वत्र कष्ट ही होगा। कहावत है **जबान का सच्चा और लंगोटी का पक्का कहीं भी जाये वह सर्वत्र पूज्य है।**

प्र.-3044 ज्यादा उपकरण साधु नहीं रक्खें सो ठीक है पर आचार्य तो रख सकते हैं?

उत्तर- कदाचित् आ. भी नहीं रखें किंतु गृहस्थ दाताओं के पास रख सकते हैं अन्यथा कोई एकाएक वैरागी दीक्षार्थी सामने आ उपस्थित हुए तो बिना उपकरण के दीक्षा कैसे होगी? अतः समयानुसार रखाना ठीक है, अनुचित नहीं किंतु उपकरणों की देखभाल करता रहे। जीवजंतुओं से बचाता रहे यदि आचार्य भगवंत सर्वथा अधिक उपकरण न रखायें तो किसी मोक्षमार्गी को आज वैराग्य हुआ और दीक्षा महिनों बाद मिलेगी तो क्या तबतक वैराग्य बना रहेगा? अतः दीक्षा के परिणाम होते ही कार्य रूप में परिणत हो गये तो ठीक अन्यथा टली तो टलती ही जायेगी।

प्र.-3045 वैरागियों को अधिक सोचने समझने के बाद दीक्षा क्यों दी जाती है?

उत्तर- आजकल दीक्षार्थियों को अधिक सोचने समझने का मौका दिया, वैराग्य, वैरागी की, दृढ़ता या कमजोरी की जानकारी के लिए लंबे समय तक इधर उधर घुमाया फिराया जाता है। अतः वैराग्य स्थिरार्थ अनुकूल शिक्षा, संगति, संस्कार जुटाने से वैराग्य मजबूत बना रहेगा अन्यथा बाह्य वैभव और चर्याओं को देखकर सुनकर वैरागियों का वैराग्य स्थिर नहीं रह पाता किंतु दीक्षा के पहले या बाद में नष्ट हो जाता है।

प्र.-3046 असूया का क्या फल है?

उत्तर- दूसरों के धनवैभव, तपश्चरण, कीर्ति प्रसंशा, भक्त, भक्ति आदि को देखकर सुनकर मन में उत्पन्न हुई जलन को कि इनके ऐसा क्यों हो रहा है, इतने भक्त क्यों हो गये आदि भावों को असूया कहते हैं। देखो! सभी दीपक मिलकर स्वयं प्रकाशित होते हुए दूसरों को प्रकाशित करते हैं, स्वयं प्रकाशित होने के लिए दूसरे दीपकों का विरोध नहीं करते हैं ऐसे ही सज्जनों को धर्म प्रभावनार्थ दूसरों को न गिराकर, न बदनामी कर उठाते हुए उठना चाहिये किंतु ईर्ष्या से धर्मसाधना नष्ट होकर दुर्गति की प्राप्ति होती है यही फल है।

प्र.-3047 ईर्ष्यालु साधु धर्म का विराधक कैसे होता है?

उत्तर- ईर्ष्यालु साधु विषयकषायों, दुर्भावनाओं के द्वारा अपने ही आत्मगुणों का विराधक होता है। ईर्ष्यालु जैनसाधु ऐसे ही होते हैं, जैनधर्म ऐसा ही है, ये निंदक साधु हमारी भी निंदा कर सकते हैं ऐसा सोचकर उनसे सज्जन भी भयभीत होकर दूर हो जाते हैं और धर्म भी छोड़ देते हैं आदि कारण ों से ये ईर्ष्यालु जैनसाधु आत्मगुणों की विराधना के साथ[2] जिनधर्म के विराधक हैं ऐसा कहा है।

प्र.-3048 व्रत, गुण, शील विहीन साधु होते हैं क्या?

उत्तर- व्रत, गुण, शीलवान ही साधु होते हैं। यदि इनके बिना साधु होते हैं तो गृहस्थ किसे कहोगे या ऐसे साधु और गृहस्थों में क्या अंतर रहा? अथवा दीक्षा ग्रहण करते समय व्रत, गुण, शील को धारण किया था किंतु दुर्भावना और कुसंगति से इनको नष्ट कर भी साधु हो सकते हैं।

प्र.-3049 व्रतों की उत्पत्ति कैसे और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- कषायाभाव में व्रतोत्पत्ति होती है। अणुव्रतों के गृहस्थ तथा महाव्रतों के स्वामी मुनि होते हैं।

प्र.-3050 मुनियों की अपेक्षा गुण किसे कहते हैं, दृष्टांत सहित स्वामी कौन हैं?

उत्तर- मुनियों के जीवन को श्रेष्ठ बनाने के उपाय को, महापापों के त्याग से प्राप्त विशेषता को, मुख्य नियमों को गुण कहते हैं। जैसे मकान बनाने के लिए नींव, वृक्ष को स्थिर करने के लिए जड़ें मुख्य हैं ऐसे ही मानवता को स्थिर करने के लिए गुण मुख्य हैं। इनके स्वामी मोक्षमर्गी मुनिजन हैं।

प्र.-3051 पाप के दो भेद, नाम और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- पाप के भेद दो हैं। **नामः-** पाप और महापाप। हिंसादि कार्य पाप हैं तो मद्य मांस मधु का सेवन, सप्तव्यसनों का सेवन महापाप है। **स्वामीः-** पापों के स्वामी संसारमार्गी और मोक्षमार्गी हैं तो महापापों के स्वामी संसारमार्गी मिथ्यादृष्टि ही हैं।

प्र.-3052 पाप और महापाप में क्या अंतर है?

उत्तर- जीवन में पापों की प्रवृत्ति होने पर भी मोक्षमार्ग बन सकता है, कर्मों का संवर और निर्जरा हो सकती है किंतु जीवन में महापापों की प्रवृत्ति होने पर मोक्षमार्ग तथा संवरनिर्जरा की प्राप्ति अंश मात्र भी नहीं हो सकती है, न भूमिका बनती है, न जैनत्वपना ही प्रारंभ होता है आदि अंतर है और विशेष अंतर गूढ़ रहस्य चिंतामणी पृ.123 प्र. 881 में सारणी से समझना चाहिये।

प्र.-3053 पापों और महापापों की उत्पत्ति किन किन कारणों से होती है?

उत्तर- पापों की उत्पत्ति आदि की 12 कषायोदय से और महापापों की उत्पत्ति अनंतानुबंधी कषायोदय से होती है तभी तो सभी प्रमादी अणुव्रती तक हिंसादि पापों को करते हैं परंतु व्यसन सेवन कर्मभूमिज कुछ ही आर्य मलेच्छ मनुष्य करते हैं, शेष प्राणी नहीं।

प्र.-3054 यह पाप है या महापाप ऐसा कैसे जाना जाये?

उत्तर- पापी व्यक्ति भीरु स्वभावी होता है, छिपके करता है। जैसे छिपके खाने वाला चूहा थोड़ी सी आवाज सुनकर डरके भाग जाता है किंतु व्यसनी निर्भीक होता है, व्यसन सेवन खुलेआम करता है। जैसे बिल्ली मार सहती हुई दूध पी लेती है पर छोड़ती नहीं ऐसे ही व्यसनसेवी मार खा लेता है, निंदा सह लेता है पर व्यसन सेवन आसानी से छोड़ता नहीं है ऐसे ही और भी दृष्टांत दे सकते हैं।

प्र.-3055 शील के बिना साधु हो सकते हैं क्या?

उत्तर- शील के बिना साधु और श्रावक नहीं होते हैं किंतु व्यभिचारी, गलतमार्गी होते हैं कदाचित् सज्जन व्यक्ति साधु बनकर कुसंगति आदि के कारण पदभ्रष्टवाले कुशील साधु जिनधर्म के विराधक होते हैं।

प्र.-3056 शील की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर- गुणस्थानानुसार कषाय, वेदकर्म और योग के अभाव में यथाक्रमशः शील की उत्पत्ति होती है।

प्र.-3057 व्रत, गुण, शील के बिना साधु जिनधर्म का विराधक है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- बिना लक्षण के लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है ऐसे ही व्रत गुण शील के बिना केवल नाम मात्र का साधु है अतः उल्टा कार्य और दिनचर्या करने वाले साधु जैनधर्म के विराधक हैं ऐसा कहा है।

प्र.-3058 यहाँ लक्ष्य और लक्षण क्या है?

उत्तर- यहाँ जिनमुद्रा धारक साधु लक्ष्य है और व्रत, गुण, शील, साधुता लक्षण है।

प्र.-3059 कषाय और कलह में क्या अंतर है?

उत्तर- कषायें आत्मगत और कलह पर के साथ होती हैं। कषायों से स्वयं का जीवन, धर्म नष्ट होता है तो कलह से स्व पर और उभय की हानि तथा कष्ट होता है आदि यही अंतर है।

प्र.-3060 मुखर या वाचाल किसे कहते हैं क्या यह वाचालपना अनिष्टकारी है?

उत्तर- पद और समिति के प्रतिकूल निष्प्रयोजन वचनोच्चारण करने वाले को वाचाल कहते हैं। ऐसी वाचालता से श्रोतागण धर्मसभा से उठकर जाने लगें यद्यपि धर्म के वचन बोले जा रहे हैं फिर भी समय का उल्लंघन होने के कारण वे ही वचन कष्टदायक एवं अनिष्टकारी होने लगते हैं। जैसे गर्मी के मौसम में फलरस अत्यंत प्रिय होने पर भी सर्दी में जहर के समान मारक प्रतीत होने लगते हैं।

प्र.-3061 इस वाचालपने से क्या हानि है और जैनधर्म की विराधना कैसे होती है?

उत्तर- इस वाचालपने के कारण जैनधर्म में ऐसे ही साधु होते हैं, इतनी मूर्खता होती है, इनके पास बोलने का कोई तरीका ही नहीं है, इनके गुरु और देव भी ऐसे ही होंगे इस प्रकार सभासद और अन्यमति भी ऐसा सोचने लगते हैं तथा वक्ता में मूर्खता, अविवेकता, असंबद्धता, अहंकार आदि दोष उत्पन्न होते हैं, स्वयं का पतन होता है, धर्म की, समाज की बदनामी होती है आदि से जिनधर्म की हानि और विराधना होती है।

प्र.-3062 संघविरोधी साधु जिनधर्म के विराधक कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- ख्याति पूजा लाभ रूपी मिथ्याचारित्र के कारण, तेरापंथी, बीसपंथी, कांजीपंथी की हठवादिता के कारण परस्पर में अपने ही साधर्मीभाइयों का अपमान तिरस्कार करते हैं, आज वर्तमान में इसीके कारण दिगंबर जैन साधुवर्ग, श्रावक श्राविकायें परस्पर में एकदूसरों के दोषों को प्रतिपादन करने में ही अपनी महानता समझते हैं किंतु ऐसे कार्यों से किंचित् प्रसंशा हो सकती है परंतु निंदा अधिक होती है, इन परिणामों के स्वामी वास्तव में संसारमार्गी अन्यमत वाले ही है, परस्पर में विरोध करने से तत्काल ही मन में संक्लेश पैदा हो जाता है जिससे क्रोधादि कषायों की पुष्टि होती है। इन्हीं कारणों से चतुर्विध मुनिसंघ विरोधी स्वभाव वाले साधुओं के द्वारा जिनधर्म की विराधना होती है।

प्र.-3063 संघविरोधी साधुओं के चारों कषायों की पुष्टि कैसे होती है?

उत्तर- जब किसीके व्यक्ताव्यक्त दोषों को सामान्य प्रजा के या दूसरे साधुओं के सामने यह या वह साधु चोर है, झूंठा है, व्यभिचारी है, परिग्रही है सो इसका मतलब यह है कि मैं निर्दोष हूँ, मेरे में कोई पाप नहीं है, मेरी प्रसंशा हो, अच्छा समझा जाउं, मेरे भक्त बने तथा उसके भक्त छूट जायें, मेरे हो जायें, निंदा हो, उसको नीचा देखना पड़े, उसका सर्वत्र अपमान हो आदि से मान कषाय की पुष्टि होती है। अपनी कथनी का प्रतिवाद होने पर, अपना पक्ष कमजोर होने पर, मानकषाय परस्थान संक्रमण कर क्रोध रूप में बदलकर उदय में आई तब क्रोध कषाय का उद्रेक होने से झगड़े चालू हो गये, अपशब्द बोले गये, लिखे गये, आँखें लाल हुई, शरीर में कंपन हुआ आदि कारणों से क्रोध कषाय की पुष्टि हुई। अपनी गल्ती को छिपाने के लिए क्रोधकषाय माया कषाय रूप में संक्रमण कर मायाचार का सहारा लिया तो कि हमारा ऐसा अभिप्राय नहीं था हमने तो इस अभिप्राय से कहा था आदि मन में कुछ और है तथा वचन से कुछ और ही कहा, शरीर से कुछ और ही किया आदि हेतुओं से माया कषाय की पुष्टि हुई तथा अब मेरी विजय होगी, प्रसंशा होगी, जयकारा लगेगा, आदर सम्मान प्राप्त होगा, माला मंच मुकुट प्राप्त होगा गुणकीर्तन होगी आदि भावना ही लोभ है इस प्रकार संघ विरोधी साधुओं के चारों कषायों की पुष्टि हो जाती है।

प्र.-3064 संघ विरोधी साधु जिनमुद्रा धारी हो सकता है क्या और क्या हानि है?

उत्तर- संघविरोधी साधु जिनमुद्राधारी ही है। **घर का भेदी लंका ढहावे** के अनुसार विरोधी अपना ही होता है, पराया नहीं। गाथोक्त दोनों विरोधी लक्षण जैनसाधु में ही पाये जाते हैं, अन्य में नहीं। आजकल समाज या संघों में परस्पर के विरोध से ही धर्मायतनों, धर्मात्माओं की हानि हो रही है।

प्र.-3065 संघ विरोध का और क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- जैसे मानस्तंभ में चारों तरफ चार मूर्तियां पींठ से पींठ मिलाकर विराजमान हैं, परस्पर में एक-दूसरे को नहीं देखती हैं ऐसे ही ये पंथवादी तीव्र कषायी साधकवर्ग प्रतिपक्षी को दुश्मन से ज्यादा दुश्मन मानकर न देखते हैं कदाचित् सामना हो जाये तो श्वानवृत्ति पूर्वक मिलते हैं। परस्पर में विरोधी साधु और श्रावक शत्रुता के कारण एक नहीं होना चाहते हैं ऐसे धर्मात्माओं से जिनधर्म की कितनी बदनामी हो रही है ये तीव्र कषायी क्या जाने? हाँ जो माध्यस्थ हैं वे समझ लेते हैं जब देश, गांव, समाज का, घर का बटवारा होता है तब देशादि कितने संकट में पड़ जाते

हैं इसको भुक्तभोगी ही जानते हैं ऐसे ही इन बनावटी धर्मात्माओं से जिनधर्म को संकट से कौन बचाये? दिगंबर जैनों में दिगंबर जैनियों से ही संकट है यही शत्रुता का फल है जो परस्पर में एक अखंड संगठित न होकर अल्प संख्यकपने की भीख मांग रहे हैं। क्या सूर्यचंद्र ने प्रकाश करने के लिए किसी से कहा कि हम अकेले हैं, आओ साथ में मिलकर प्रकाश करेंगे या जंगल में सिंह ने किसी से सहायता मांगी? नहीं किंतु वह अकेला ही अपने पुरुषार्थ से जंगल में शासन करता है अतः इन जैनों को संख्या की चिंता न कर संगठन बनाने की चिंता करना चाहिये। संगठन न होने से परस्पर में आत्मीयता का व्यवहार न होने से ही बेटियां कहीं से कहीं आ जा रही हैं अतः परस्पर में धन के माध्यम से छोटेबड़े का भेद न कर कंधे से कंधा मिलाकर परंपरानुसार एक होकर धर्मकार्य और लौकिक कार्य करना चाहिये, अन्यथा शीघ्र ही छठवाँ काल आयेगा।

प्र.-3066 कुशीली मुनियों के द्वारा जिनधर्म की विराधना कैसे हो रही है?

उत्तर- कामीभोगी विषयलंपटी साधु अपने जीवन को बिगाड़ने के साथ[2] अनेकों का भी जीवन बिगाड़ता है, कदाचित् गर्भ रहने से निर्दयता पूर्वक गर्भपात कराता है, छिपा छिपा फिरता है, अपने जीवन को, माँबाप की कुल परंपरा को, जिनधर्म को, मुनिपद को कलंकित करता है, इसकी दिनचर्या को देखकर सुनकर अनेक अविश्वासी होकर जिनधर्म को भी छोड़ देते हैं सो इसीका नाम ही है जिनधर्म की विराधना।

प्र.-3067 कुशीली मुनियों के भेद, नाम, लक्षण और फल क्या है?

उत्तर- कुशीली मुनियों के दो भेद हैं। **नामः- 1. व्यभिचारी कुशीलीमुनिः-** जिनमुद्राधारी मुनिपद से भ्रष्ट गृहस्थों जैसा कामी भोगी संसारमार्गी मिथ्यादृष्टि होता है। **फलः-** चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण करता है। **2. सदाचारी कुशीलीमुनिः-** दो भेद हैं। **नामः- प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील।** प्रमत्तगुणस्थानवर्ती परम निर्विकारी आत्मसाधक साधु कभी[2] उपकरणों की सजावट में रमने वाला **प्रतिसेवना कुशील** और अप्रमत्त मुनि मूलगुणों का निर्दोष पालक निर्विकल्प ध्यान में स्थित उभय श्रेणी वाला केवल संज्वलनकषाय के उदय का अनुभवी **कषायकुशील मुनि** होता है। **फलः-** मोक्षफल को परंपरा से प्राप्त करने वाला है।

प्र.-3068 ''संघविरोधीकुशीलाः'' इसको अखंड पद मानने में क्या दोष है?

उत्तर- **संघविरोधीकुशीलाः** को अखंडपद मानने से मुनिसंघ के विरोधी कुत्सित स्वभाव वाले तथा पदच्छेद करने से जो साधु मुनिसंघ के विरोधी, कुचारित्री, व्यभिचारी या पाप करने का जिनका कुत्सित स्वभाव है क्योंकि संस्कृत में **कु-** कुत्सित अर्थ में भी आता है अतः दोनों अर्थ निर्दोष हैं।

प्र.-3069 क्या ''कु'' विशेषण सदा सर्वथा कुत्सित अर्थ में ही आता है?

उत्तर- नहीं, **कु** कुत्सित अर्थ में ही सर्वथा प्रयोग माना जाये तब कुंवर शब्द का कहीं कहीं अनुस्वार सहित और अनुस्वार रहित प्रयोग होने से कुवर का अर्थ खोटा कुत्सित पुत्र, कुत्सित जमाई हो जायेगा क्योंकि कुंवर के पुत्र और जमाई दोनों अर्थ होते हैं। **कु** पृथ्वि का पर्यायवाची भी है।

प्र.-3070 क्या ''सु'' विशेषण भी सदा सर्वथा शुभ सुंदर अर्थ में आता है?

उत्तर- नहीं, सदा सर्वथा **सु** विशेषण सुंदर अर्थ में नहीं आता है। जैसे सुअर में **सु** का प्रयोग किया है अतः यहाँ भी सुंदर अर्थ लेना पड़ेगा जबकि तिर्यंचपर्याय पापकर्मोदय से प्राप्त होती है। मल मांस खाना ही इसका भोजन है यदि इसे मल नहीं मिला तो दूसरी वस्तुयें खाता है या किसी व्यक्ति को सुअर कहने से झगड़ा हो जाता है। यदि सुअर नाम सुंदर अर्थ में होता तो झगड़ा क्यों होता? अतः किसी भी शब्द का सदा एक ही अर्थ नहीं होता है किंतु निमित्तवशात् अर्थ बदलता रहता है जो लोकव्यवहार से जाना जाता है।

प्र.-3071 स्वच्छंद और स्वच्छंदी किसे कहते हैं तथा इसका क्या फल है?

उत्तर- मानमर्यादा लज्जा और अपने पद के प्रतिकूल मन वचन काय की क्रिया को स्वच्छंद कहते हैं एवं ऐसी क्रियायें करने वाले को स्वच्छंदी कहते हैं। जैसे आवारा बैल सर्वत्र मार खाता है, दुतकारा जाता है ऐसे ही स्वच्छंदी साधु सर्वत्र अपमानित हो बेमौत मरकर दुर्गतियों में जाकर कष्ट भोगता है यही इसका फल है।

प्र.-3072 स्वच्छंदी मुनियों से जिनधर्म की विराधना कैसे होती है और फल क्या है?

उत्तर- स्वच्छंदी मुनि को देखकर अनेक मुनि स्वच्छंदी हो जाने से जिनधर्म का समूल विनाश होगा और अजैनोंवत् सर्वत्र स्वच्छंदाचार फैल जाने से सर्वत्र पापाचार अत्याचार वाला छठवाँ काल आयेगा अब जो उस काल में पैदा होना चाहते हैं वे स्वच्छंदाचरण करें और जो पैदा होना नहीं चाहते हैं तो वे जिनेंद्राज्ञा का पालन करें तब उस काल के कष्टों से बच जायेंगे अतः स्वच्छंदाचरण से जिनधर्म का समूल विनाश हो जायेगा ऐसा कहा है। जैसे श्वेतांबरों के यहाँ जिनकल्प का समूल विनाश हो गया है। जिनकल्प का अभाव होने से ये श्वेतांबर जैन जिनकल्प का प्रतिपादन, धारण, पालन करने की ही नहीं सोचते हैं यही फल है।

प्र.-3073 गुरुकुल के बिना साधु जिनधर्म का विराधक होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- गुरु के बिना इस साधु ने दिनचर्या के द्वारा जो पापोपार्जन किया उस पाप का निराकरण कैसे हो? प्रायश्चित्त कौन देगा? स्वेच्छा से दोष का संशोधन कैसे होगा? क्योंकि स्वेच्छा से प्रायश्चित्त लेना प्रायश्चित्त नहीं हैं। जैसे कोई बीमार वैद्य अपने इलाज के लिए दूसरे वैद्यों का सहारा लेता है स्वेच्छानुसार औषधि लेने से बीमारी दूर नहीं होती है क्योंकि औषधि रोगानुसार होती है रोगी की इच्छानुसार नहीं ऐसे ही सदोषी साधु की दुर्गति ही होगी, सुगति नहीं अतः स्वच्छंदी साधु जिनधर्म के विराधक हैं ऐसा कहा है।

प्र.-3074 स्वच्छंदी मुनि गुरु के पास में क्यों नहीं रहता तथा फल क्या है?

उत्तर- क्योंकि गुरु के पास में रहने से मनमानी करने को नहीं मिलेगी, इच्छानुसार आहार विहार निहार, दिनचर्या नहीं कर सकता इसलिए स्वच्छंदी साधु गुरुकुल छोड़कर अकेला रहता है। जैसे कि आजकल अनेक साधु एकलविहारी होकर मनमानी कर संघ, धर्म बदनाम कर रहे हैं। जगह[2] अपने नाम पर संघ की स्थापना कर समाज में फूट और झगड़ा करा देते हैं सो यह सब स्वच्छंदाचरण का, मनमानी का फल है।

प्र.-3075 यदि गुरु भी ऐसा ही हो तो क्या किया जाये?

उत्तर- यदि गुरु भी ऐसा ही है तो **"लोभी गुरु लालची चेला, दोनों नरक में ठेलमठेला। यथाराजा तथा प्रजा"** जैसी कहावतों को सार्थक करना है तब ऐसे प्रसंगों पर समाज को अपना विवेक खोये बिना आगम परंपरानुसार संघ का स्थितिकरण करना चाहिये अन्यथा अनायतन सेवा से दीर्घ संसारी बनना होगा।

प्र.-3076 इस काल में लोकानुकूल चर्या वाले साधु आदरसम्मान क्यों पाते हैं?

उत्तर- जैसे ग्राहक और व्यापारी की परस्पर में अनुकूलता होने से व्यापार अच्छा चलता है, अन्यथा समाप्त हो जाता है ऐसे ही साधु और श्रावक में एकरूपता होने से सही या गलत व्यवस्था बन जाती है अन्यथा नहीं अतः आगमानुकूल होने से मोक्षमार्ग तथा मनोनुकूल होने से संसारमार्ग में इसी कारण आदर पाते हैं।

प्र.-3077 मूर्ख साधुओं के द्वारा जिनधर्म की विराधना कैसे होती है?

उत्तर- मूर्खतावश अनेक अनर्गल चेष्टायें करेगा जिससे जैनसाधु ऐसे ही मूर्ख होते हैं जैसे राजा दंडक ने दूसरों के द्वारा भड़काने पर अभिनंदन आदि पाँचसों मुनियों को गलत मानकर घानी में पिलवा दिया था ऐसे ही प्रजा के सामने मूर्खता करने से सभी मूर्ख कहलाने लगते हैं इसीसे

जिनधर्म की विराधना होती है।

प्र.-3078 यह मूर्ख है यह कैसे पहंचाना जाये?

उत्तर- घमंडी होने, दुर्वचन बोलने, क्रोधी होने, हठवादी होने, सज्जन पुरुषों के वचनों का अनादर करने, विषयलंपटी होने, मायावी होने आदि आदतों से मूर्खों की पहंचान होती है।

प्र.-3079 क्या ये सभी लक्षण मूर्खों में पाये जाते हैं या कोई कोई?

उत्तर- मूर्खों में ये सभी लक्षण एकसाथ भी पाये जाते हैं और अलग अलग एक दो भी पाये जाते हैं।

प्र.-3080 इन लक्षणों का अर्थ क्या है?

उत्तर- **घमंडी होना-** अहंकारी होना। **दुर्वचन बोलना-** मर्मच्छेदी, धर्मविरोधी, जातिकुल के, पद विरुद्ध बोलना। **क्रोधी होना-** दूसरों के धन वैभव, ज्ञान, तप, पदवी आदि की प्रसंशा को सहन न करना। **हठवादी होना-** जो अनर्थकारी वचन बोल दिया है इसको गलत समझकर भी सही करने के लिए अड़ जाना कि मैंने सही कहा है। **सज्जनों के वचनों का अनादर करना-** उच्च, महान पुरुषों का अनाज्ञाकारी होकर उल्टा विवाद करना। **विषयलंपटी होना-** अनिष्टकारी इंद्रियविषयों में आसक्त होना। **मायावी होना-** जानते हुए भी दूसरों को कष्ट में डालने के लिए छलकपट करना।

प्र.-3081 इन लक्षणों के अलावा आदि पद से किन किन को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- इन मूर्खों के लक्षणों में आदि पद के द्वारा सभी प्रमाद भावों को, अविश्वास को, संशय, विपर्यय, अनध्यवसायों को, ख्याति पूजा लाभ की भावना और चर्या को, आरंभ परिग्रह, शृंगारालंकार की भावना और चर्या को मूर्खों को पहंचानने के लिए ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-3082 मूर्खों का ऐसा लक्षण करने पर क्या सभी साधक मूर्ख नहीं हो जायेंगे?

उत्तर- आपका प्रश्न सही है पर हम क्या करें, यदि कोई व्यक्ति गड्ढे को गड्ढा जानकर गड्ढे में गिरे, जहर को जहर जानकर भी जहर खा पी लेवे तो उसे आप क्या कहेंगे? ऐसे ही ज्ञानी गलत को गलत जानकर भी गलत चर्या का पालन करे तो उसे मूर्ख महामूर्ख ही कहेंगे, बुद्धिमान पंडित नहीं।

प्र.-3083 राजादि का सेवक साधु जिनधर्म का विराधक कैसे होता है?

उत्तर-

आशायाः ये दासा ते दासा सर्व लोकस्य।
आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः।।
जब तक जोगी जगतगुरु, जब तक नहि मन में आश।
जब से मन में आशा जगी, तब से जोगी जग के दास।।

अर्थ- जो तृष्णाओं के दास हैं वे समस्त लोक के दास हैं और जिनकी आकांक्षायें दासी हैं उनका सारा संसार दास है। साधु के लोकेषणा नहीं होती है, जब जगत्पूज्य साधु पुनः लोभासक्त आशाओं का दास बन राजाओं का आज्ञाकारी सेवक बनकर उन्हीं के अनुसार बोलता है तब ऐसा साधु अपने पद की गरिमा को छोड़कर सेवक का ही सेवक हो गया अतः आ. श्री ने ऐसे साधु को जिनधर्म का विराधक कहा है।

प्र.-3084 अब राजा तो रहे नहीं फिर यह दोष कैसे बनेगा?

उत्तर- यह बात सत्य है कि आज राजा नहीं है फिर भी समाज के, देश के अध्यक्ष, मंत्री धनवान, ट्रस्टीगण आदि ही राजा के समान है। भक्तगण, शिष्यगण भी आजकल साधकों को सलाह देकर इच्छानुसार उपदेश कराते हैं, आहारादि भी जहाँ कहीं कराते हैं और अनेक साधुगण इनकी इच्छानुसार चर्या करने लगे हैं तभी तो जिनधर्म कलंकित हो रहा है। जिनके न मूलगुण हैं, न दाता के चिह्न हैं, अजैनों की, शूद्रों की तरह पूर्णतः दिनचर्या है, उनके हाथों से आहार ले रहे हैं।

यदि ये साधुवर्ग, त्यागीवर्ग देव शास्त्र गुरु के श्रद्धानी हैं, सम्यग्ज्ञानी हैं तो ऐसी दिनचर्या क्यों करते हैं? केवल इनको अपने भक्त बनाना है, संगठन बनाना है जो मौके पर काम आये अपनी प्रसिद्धि में साथ निभाये अतः इनकी सेवा से जिनधर्म की विराधना ही होती है।

प्र.-3085 धनी का, ट्रस्टिओं का सेवक साधु जिनधर्म का विराधक है यह कैसे जाना?

उत्तर- **''रायाइसेवया''** इस पद से जाना जाता है क्योंकि गाथा में संग्रहवाचक आदि शब्द है। जो गृहस्थ या शिष्यगण, श्रावक श्राविकायें संघ चला रहे हैं या गृहस्थों को संघपति संघसंचालिका की उपाधि दी गई है सो उस संघ के आचार्य को, गणिनी आर्यिका आदि को उनकी आज्ञा में रहना पड़ता है यदि नहीं रहें, उनकी आज्ञा का पालन नहीं करें तो वे चौका नहीं लगायेंगे, आहार नहीं देंगे, आहारादि की व्यवस्था नहीं करेंगे, छोड़कर चले जायेंगे, चलीं जायेंगी आदि भय से संघ को उनकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है। इस बात की सही परीक्षा विहार के समय में भी हो जाती है।

प्र.-3086 साधुओं के आहार की व्यवस्था नौकरों से कराना क्या निर्दोष है?

उत्तर- ऐसा कार्य सदोष ही है। नौकरों से अशुद्धि होने पर उनको मना करने से या थोड़ा जोर से बोलने पर या कुछ ज्यादा काम पड़ गया तो हमारा हिसाब कर दो, हम जा रहे हैं, बीमार हैं आदि अनेक बहाना बनाकर चले जाते हैं या काम से जी चुराते हैं या इनके भोजनपान की व्यवस्था में कुछ कमी हो जाये तो जाने की धमकी दे देते हैं तब व्यवस्थापक, सेठ सेठानी आदि ये नौकर चले जायेंगे तो चौका कौन लगायेगा? काम कौन करेगा, पानी कौन भरेगा आदि कारणों से घबड़ाकर हाथ जोड़कर मना लेते हैं, इनकी इच्छाओं की पूर्ति कर देते हैं अर्थात् **नौकर मालिक हो गया और मालिक नौकर हो गये**। यह कलिकाल की ही महिमा है। **''मैं सेठ तूं सेठानी कौन भरेगा पानी''** कहावत को चरितार्थ करना है।

प्र.-3087 कलिकाल किसे कहते हैं?

उत्तर- कलिकाल- बुराकाल, कष्टदायी समय। जब अधिकतर कार्यकलाप मशीनों से होने लगें, व्यक्ति अकर्मण्य, सामर्थ्य विहीन, परावलंबी हो जायें अथवा प्रायःकर मनुष्यों की दिनचर्या हीनता की, अधोगति की ओर वृद्धिगत होने लगे, दुःख पर दुःख प्राप्त होने लगें तो उसे कलिकाल कहते हैं।

प्र.-3088 प्रमादी गृहस्थों के द्वारा जिनधर्म की विराधना कैसे हो रही है?

उत्तर- जब गाथोक्त कारणों से सहित दिनचर्या वाले साधुओं से जिनधर्म का विघात होता है तो उक्त चर्या सहित गृहस्थों से भी विनाश हो रहा है तभी तो अव्रतीगृहस्थ यथार्थ मोक्षमार्गी नहीं रहे।

प्र.-3089 गाथाओं में कथित साधु पद के साथ आपने गृहस्थों को क्यों ग्रहण किया?

उत्तर- जैसे रथ दो पहियों से चलता है ऐसे ही जिनधर्म रूपी रथ साधु और श्रावक इन दो पहियों से चलता है। यदि दोनों में से कोई एक बिगड़ जाये तो दूसरा भी बिगड़ जायेगा तब जिनधर्म कैसे चलेगा? अतः दोनों को अपना अपना कर्तव्य समझकर सही नीति से पालन करना चाहिये अन्यथा **छुरी खरबूजे पर गिराओ या खरबूजा छुरी पर गिराओ पर खरबूजा ही कटता है** ऐसे ही गलत कार्य साधु करे या गृहस्थ बदनाम तो जिनधर्म ही होगा। जैसे भगवान पुष्पदंत से लेकर शांतिनाथ तक जिनधर्म का बीच बीच में असंख्यातों[2] वर्ष तक विच्छेद रहा अतः इस कारण गृहस्थों को भी ग्रहण किया है इसलिए दोनों को सुधरना जरुरी है।

प्र.-3090 तो फिर साधुओं को किसकी सेवा करना चाहिये?

उत्तर- लौकिक आकांक्षा के बिना अपना कर्तव्य समझकर साधुओं को अपनी आत्मा की, पंचपरमेष्ठियों की, रत्नत्रय की और प्रसंगानुसार मोक्षमार्गियों की सेवा करना चाहिये।

प्र.-3091 साधुओं को साधुओं की सेवा क्यों करनी चाहिये?

उत्तर- साधुओं को अपनी साधुता स्थिर रखने के लिए संयम, तप, ध्यानाध्ययन साधना की वृद्धि के लिए आत्मसाधक साधुओं की सेवा करना चाहिये ताकि परंपरागत वैय्यावृत्ति का संस्कार बना रहे।

प्र.-3092 सेवा किसे कहते हैं और सेवा का क्या फल है?

उत्तर- मोक्षमार्गियों में आयी हुई आपत्तियों के, आकुलता व्याकुलता के दूर करने को सेवा कहते हैं। यह सोलहकारण भावनाओं में से एक भावना है, अंतरंग तपों में एक तप है, आवश्यकों में एक आवश्यक है, एक शिक्षाव्रत है अतः आत्मसिद्धि के लिए, संवर निर्जरा के लिए सेवा करनी चाहिये सेवा का यही फल है।

प्र.-3093 संयमी मोक्षमार्गियों की सेवा करने को क्या कहते हैं और क्या फल है?

उत्तर- साधुसेवा करने को वैय्यावृत्ति, साधुसमाधि, साधुभक्ति, गुरुपूजा कहते हैं। सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया होने से तीर्थंकरप्रकृति और सातिशयपुण्य का आश्रवबंध होता है, स्वयं में समाधि की भावना होती है, भय और कमजोरी निकल जाने से साधना में कर्मठता आती है आदि फल है।

प्र.-3094 साधुओं की वैय्यावृत्ति कब करना चाहिये?

उत्तर- जैसे सद्योजात बालक की सेवा माँ करती है वैसे **निशदिन वैय्यावृत्य करैया सो निहचे भव नीर तिरैया** जो मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं की सतत निरंतर वैय्यावृत्ति करते हैं वे निश्चय से बिना संदेह के संसार समुद्र से पार हो जाते हैं अतः जो शाश्वत आत्मसुख चाहते हैं वे निष्प्रमादी हो मोक्षमार्गियों की सेवा बिना पूंछे और बिना किसीके कहे करना चाहिये।

प्र.-3095 साधुओं की वैय्यावृत्ति हमेशा क्यों करना चाहिये?

उत्तर- जैसे प्रतिदिन प्रतिसमय पापोपार्जन करने वाले संसार शरीर भोगों संबंधी कार्य करते हैं वैसे ही आत्मा को निर्मल बनाने, कर्मभार कम और समूल क्षय करने के लिए हमेशा करनी चाहिये अन्यथा कर्मों का बोझा बढ़ने से दीर्घ संसारी होना पड़ेगा अतः वैय्यावृत्ति सतत करना चाहिये।

प्र.-3096 साधुसमाधि किसे कहते हैं और समाधि क्यों कराना चाहिये?

उत्तर- जो साधु **आधि-** मानसिक पीड़ा **व्याधि-** शारीरिक पीड़ा, बाह्य परेशानियां **उपाधि-** नाना लौकिक पदवियां, भूतपिशाचादि की परेशानियां आदि इन सभी में माध्यस्थभाव या उपेक्षाभाव धारण कर आत्मसाधना, आत्मध्यान करने को साधुसमाधि कहते हैं। स्वभाव में स्थिरता, आत्मसाधना के लिए स्वयं का अंतिम समय परम शांतिमय व्यतीत हो, शुद्धात्म समाधि की सिद्धि हेतु साधुसमाधि कराना चाहिये। यदि हम किसीके सत्कार्यों में सहायक होंगे तो वे हमारे लिए सहायक होंगे।

प्र.-3097 साधुभक्ति किसे कहते हैं और कर्मफल क्या अवश्य ही भोगना पड़ता है?

उत्तर- मोक्षमार्गस्थ साधकों के गुणगान, नमस्कार, मन प्रसन्न, सेवासुश्रूषा, आरती, पूजा, समर्पित करने को साधुभक्ति कहते हैं क्योंकि भक्ति से भक्ति प्राप्त होती है। कारण सज्जनों और दुर्जनों के साथ में जैसा व्यवहार करते हैं वैसा ही अच्छाबुरा व्यवहार उन्हीं के द्वारा, उन्हीं के संबंधियों के द्वारा, दूसरों के द्वारा घटित होता है। कर्मोदय और करनी एकरूप में चलती रही तो कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है, कोई टाल नहीं सकता, रोक नहीं सकता, न कोई बदल सकता है, न कम ज्यादा कर सकता है, इनकी इन कर्मों की अवस्थाओं को परिवर्तित करना उसी जीव के आधीन है, वह चाहे तो सबकुछ कर सकता है।

प्र.-3098 यह संसारी जीव अपनी इच्छानुसार सबकुछ कैसे कर सकता है?

उत्तर- कैसेट में वक्ता या गायक ने गद्य पद्य संगीत के साथ या बिना संगीत के जैसा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अल्पप्राण, महाप्राण, स्वर व्यंजन, सुस्वर दुस्वरादि वचनोच्चारण किये हैं वैसे ही बिना

परिवर्तन किये यथावत् कैसेट सुना देता है पर सुनने वाला वही चाहे तो ध्वनि को कम ज्यादा, रिवर्स फॉरवर्ड या कुछ नया रिकार्ड या पूरा भी मिटा सकता है ऐसे ही यह कर्मबंधकजीव स्वयं के कर्मों को 10 रूपों में बदलकर अंजनचोर की तरह बिना फल दिये भी नष्ट कर सकता हैं और ये अवस्थायें केवली ने प्रतिपादित की हैं।

प्र.-3099 कर्मों की दस अवस्थायें कौन कौन सी हैं और संक्षिप्त लक्षण क्या है?

उत्तर- **बंध-** आत्मा और कर्मों का दूध पानी, दूध शक्कर की तरह एकरूप हो जाना। **उदय-** द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावानुसार अपने नियत समय पर फल देना। **उदीरणा-** वर्तमान में अपने शुभाशुभ भाव रूप पुरुषार्थ के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों को समय के पहले उदयावली में प्रवेश कराकर फल प्राप्त करना। **सत्त्व-** बंध के बाद फलदान तक कर्मों का रुकना। **उत्कर्षण-** पुरुषार्थ के द्वारा स्थिति और अनुभाग में वृद्धि होना। **अपकर्षण-** स्थिति और अनुभाग घट जाना। **संक्रमण-** अन्य सजातीय प्रकृति में बदल जाना। **उपशम-** विशेष पुरुषार्थ के द्वारा उदय उदीरणा को प्राप्त न कर स्थिर रहना। **निधत्ति-** जो कर्म परमाणु उदय और संक्रमण के अयोग्य हैं। **निकाचित-** जो कर्म परमाणु उदीरणा, संक्रमण, उत्कर्षण, अपकर्षण के अयोग्य हैं।

प्र.-3100 जब ये कर्म सदा एक से नहीं रहते हैं तो वे किसके समान हैं?

उत्तर- जैसे वेश्या, वकील और धन किसी एक के पास में नहीं रहते, न सदा एक से परिणाम रहते हैं वैसे ही ये कर्म न सदा एकजीव के साथ में, न एक ही रूप में रहते हैं किंतु बदलते रहते हैं।

प्र.-3101 वेश्या की तरह क्या ये कर्म कर्म रूप में ही दूसरे के पास में चले जाते हैं?

उत्तर- नहीं, कर्मरूप में न जाकर निर्जरा को प्राप्त हो जाते हैं। निर्जरा के बाद इनकी दो अवस्थायें होतीं हैं। प्रथम भेद होते[2] परमाणु अवस्था को प्राप्त हो जाता है फिर यही परमाणु स्कंध रूप में होकर पुनः भोगने में आ जाता है और दूसरी अवस्था कदाचित् स्कंध रूप में ही प्राणियों के द्वारा योगों के निमित्त से भोगोपभोग रूप में ग्रहण कर ली जाती है, इसे ही गृहीत, मिश्र वर्गणाओं को पुनः ग्रहण किया ऐसा कहा जाता है।

प्र.-3102 अठारह प्रकार की वर्गणायें निरुपभोग होने से क्या निष्प्रयोजनीय हैं?

उत्तर- हाँ, ये 18 प्रकार की वर्गणायें इसी अवस्था में निरुपभोग होने से निष्प्रयोजनीय हैं फिर भी कालांतर में **भेदादणु** सूत्रानुसार अणु बनकर या स्कंध से स्कंध बनकर पुनः भोगने योग्य स्कंध अवस्था को प्राप्त कर भोगने में आ जाते हैं जैसे अपना मलमूत्र स्वयं के लिए भोग्य नहीं है किंतु खेत में खादपानी रूप में परिणमन कर धान्य फल सब्जी रूप होकर पुनः भोगने में खानेपीने के काम में आ जाता है ऐसे ही माँ बहन बेटी या पिता पुत्र भाई इस रूप में कामक्रीड़ा रूप में भोगने योग्य नहीं है फिर भी भवांतर में पतिपत्नि रूप में बनकर भोगने योग्य हो जाते हैं अथवा इंद्रिय भोग अनेक प्रकार के होने से इसी अवस्था में ही भोगने में आ जाते हैं जैसे इनके द्वारा सेवा किया जाना, शब्द सुनना, रूप देखना आदि।

प्र.-3103 स्वस्थान संक्रमण और परस्थान संक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर- क्रोध का क्रोध में, मान का मान में, साता का साता में, असाता का असाता में बदलने को स्वस्थान संक्रमण और क्रोध का मानादि कषायों में, लोभ का क्रोधादि कषायों में बदलना साता का असाता में और असाता का साता में बदलने को परस्थान संक्रमण कहते हैं।

प्र.-3104 वर्तमान में कार्य की सिद्धि भाग्य से होती है या पुरुषार्थ से?

उत्तर- वर्तमान में कार्य की सिद्धि निमित्त उपादान, अंतरंग बहिरंग कारण, भाग्य और पुरुषार्थ से होती है। हाँ, प्रधानता कहीं निमित्त, बहिरंग या पुरुषार्थ की और कहीं उपादान, अंतरंग की और

भाग्य की होती है पर सर्वत्र सभी कार्यों की सिद्धि उभय साधनों से ही होती है ऐसा सर्वत्र न्याय है।

प्र.-3105 भाग्य और पुरुषार्थ क्या एक ही है?

उत्तर- नहीं, पूर्वबद्ध शुभाशुभ कर्म के उदय में आने को शुभाशुभ भाग्य तथा वर्तमान में बुद्धि या अबुद्धि पूर्वक मन वचन काय की शुभाशुभ क्रियाओं को शुभाशुभ पुरुषार्थ कहते हैं अतः दोनों भिन्न भिन्न हैं किंतु भाग्य केवल संसारीजीवों में ही पाया जाता है और पुरुषार्थ सभी में क्योंकि अस्ति पुरुषचिदात्मा- चैतन्य आत्मा ही पुरुष है व अर्थ, प्रयोजन अभिप्राय कार्य है यानि आत्मपरिणमन ही पुरुषार्थ है।

प्र.-3106 यह कार्य भाग्य से हुआ है या पुरुषार्थ से यह कैसे जाना जाये?

उत्तर- मनवचनकाय की चेष्टा के बिना स्वयमेव शुभाशुभ जो घटनायें घटती हैं उन्हें भाग्य से और वर्तमान में बुद्धि पूर्वक मनवचनकाय से घटी हुई घटनाओं को पुरुषार्थ से हुई हैं ऐसा समझना चाहिये या अच्छा व्यापार करते हुए भी अशुभ फल प्राप्त हो रहा है तो समझो कि दुर्भाग्य का उदय है ऐसे ही गलत कार्य करते हुए भी जन धन वैभव से, कीर्ति प्रशंसा आदि से फलीभूत हो रहा है तो समझो कि सौभाग्य का उदय है ऐसे ही हीन शक्ति के साथ पूर्वबद्ध शुभ या अशुभ कर्म का उदय है किंतु वर्तमान में शुभ या अशुभ प्रबल पुरुषार्थ से भाग्य को बदलकर शुभ या अशुभ फल प्राप्त कर लेता है। जैसे अच्छे कार्यों में बाधायें आ रही हैं किंतु वर्तमान में हमारे पास प्रबल जन, धन, अस्त्र, शस्त्र की शक्ति है तो उस बाधा को टाल कर, समाप्त कर इष्ट कार्य सिद्ध कर लेते हैं। ऐसे ही वर्तमान में तीव्र पापोदय है तब अच्छा होने के लिए गुरुजन, आसपास के खूब समझा रहे हैं, पर अपनी कुचेष्टाओं के द्वारा इन सबको निष्फल कर देते हैं। इसी तरह सौभाग्य के प्रबल उदय से वर्तमान के अत्यंत पापाचार रूप पापपुरुषार्थ को काटकर अपना कार्य सफल हो रहा है अर्थात् संसार दशा में भाग्य से पुरुषार्थ और पुरुषार्थ से भाग्य बदल जाता है किंतु मोक्ष प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट धर्म पुरुषार्थ से समस्त सौभाग्य दुर्भाग्य नष्ट किया जाता है।

प्र.-3107 लौकिक और लोकोत्तर सेवा का क्या फल है?

उत्तर- लौकिक राजादि की सेवा से उदरपूर्ति के साथ साथ पाप का उपार्जन होता है जिससे कष्ट की प्राप्ति होती है और लोकोत्तर धर्मायतनों की सेवा से सातिशय पुण्योपार्जन के साथ[2] आत्मा में अत्यंत निर्मलता प्राप्त होती है जिससे विशेष इंद्रियसुख प्राप्त होकर आत्मसुख भी प्राप्त होता है यही उभय सेवा का फल है।

नोटः- यहाँतक 3107 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 95वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 96वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सदोषी साधु

जोइसवेज्जामंतोवजीवणं वायवस्स ववहारं।

धणधण्णपडिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ।।96।।

ज्योतिषर्विद्यामंत्रोपजीवनं वातकस्य व्यवहारं।

धनधान्यप्रतिग्रहणं श्रमणानां दूषणं भवति।।

जोइसवेज्जा ज्योतिषविद्या **मंतोवजीवणं** मंत्रविद्या से आजीविका चलाना **वायवस्स** भूत प्रेत का **ववहारं** व्यवहार कर **धणधण्ण** धनधान्य **पडिग्गहणं** लेना **समणाणं** श्रमणों का **दूसणं** दोष **होइ** है।

प्र.-3108 ज्योतिष विद्या किसे कहते हैं?

उत्तर- जन्म के समय या किसी भी लौकिक लोकोत्तर कार्यों के प्रारंभ के समय तिथी, नक्षत्र, वार, योग, करण, चौघडिया, दिशाशूल के अनुसार शुभाशुभ फलादेश करने को ज्योतिष विद्या कहते हैं।

प्र.-3109 जन्म का समय कैसे निर्धारित किया जाय?

उत्तर- गर्भद्वार खुलने से पीला पानी आने पर, गर्भयोनि से संतान के बाहर आने पर और बाहर आने के बाद रोने पर तथा आजकल ऑपरेशन से पेट फाड़कर निकालकर जन्म का समय निर्धारित किया जाता है।

प्र.-3110 मंत्र कौन सा समीचीन होता है?

उत्तर- जिन उपायों से, साधनों से दुःखित मन संतोषपने को प्राप्त हो, सुखी अवस्था प्राप्त हो या सुख शांति की रक्षा हो या कालांतर में भी सुख शांति नष्ट न हो वह समीचीन मंत्र होता है।

प्र.-3111 ज्योतिषविद्या, मंत्रविद्या का प्रयोग सदोष है या निर्दोष?

उत्तर- ये विद्यायें गलत नहीं हैं किंतु इनके माध्यम से धन कमाना, ख्याति पूजा, लाभ की दुर्भावना होना ही गलत है। यदि ये गलत होते तो तीर्थंकर प्रभु, केवली भगवान, गणधर, आचार्यादि द्वादशांगवाणी के दशवें पूर्व विद्यानुवाद में इसका उपदेश, अपायविचय धर्मध्यान, धर्मोपदेश स्वरूप अंतरंग तप स्वाध्याय नाम से प्रतिपादन क्यों करते? अतः यह ज्योतिष विद्या सर्वत्र सर्वदा सही है, सम्यग्ज्ञान है, आत्मसाधना आत्मरक्षा, धर्मप्रभावना का, धर्मरक्षा का अंग है। अनाड़ियों को सही मार्गदर्शन के लिए, उपद्रवियों को शांत करने के लिए, धर्मात्मा बनाने के लिए एक अनन्य साधन है, अमोघ अस्त्र शस्त्र है। हाँ, दुरुपयोग करना हानिकारक और सदुपयोग करना मंगलकारी है। देखो सूर्य, चंद्र, मेघ, पेड़ पौधे आदि बिना प्रत्युपकार की भावना के उपकार करते हैं तो साधुओं को ज्योतिष, मंत्रतंत्रादि विद्या का किसी भी प्रकार की याचना आकांक्षा के बिना दीनदुःखी प्राणियों के कष्ट निवारणार्थ उपयोग करना चाहिये अतः हे! साधो लौकिक भावनापूर्वक प्रयोग करना दूषण और धर्मप्रभावना के लिए प्रयोग करना आभूषण है।

प्र.-3112 भूतकविद्या के द्वारा आजीविका चलाना हानिकारक है या लाभदायक?

उत्तर- व्यक्ति के भूत, पिशाच, राक्षस, दृष्टि दोष आदि बीमारी को दूर कर रुपया लेना, धन कमाना आदि साधुओं का दोष कहा है। लोक में इनका प्रयोग करने वाले बीमार व्यक्ति के यहाँ का एक बूंद पानी, कण भी न पीते हैं, न खाते हैं, रुपया पैसा लेना तो बहुत दूर रहा तभी उनको निर्लोभता के कारण सफलता मिलती है। यदि साधु किसी बीमार को देखकर डॉक्टर वैद्यों की तरह फीस लेकर इलाज करने लगे तो यह साधु का व्यापार है। यदि साधु व्यापार करने लगें तो वह भेष से साधु है और दिनचर्या से बिना वस्त्र के नग्न गृहस्थ है, सांपरायिकाश्रव वाली स्वहस्त क्रिया है। यदि साधु जिनधर्म प्रभावना के लिए प्रयोग करें तो गृहस्थों से या किसीसे भी इस संबंध में किंचित्मात्र भी दान में न लेवें, न याचना करें, न आकांक्षा करें।

प्र.-3113 आश्रमादि के निमित्त साधु, गृहत्यागी धन संचय करें तो क्या दोष है?

उत्तर- गृहस्थों के निवासस्थान को घर, मकान, कोठी, बंगला, महल कहते हैं तो साधुओं के रहने के स्थान को मंदिर, आश्रम, धर्मशाला कहते हैं, इनके नामों में अंतर है किंतु आसक्ति और कार्यकलापों में अंतर नहीं है। आश्रमादि चलाना गृहस्थों का कार्य है, जब दातागण साधुओं के, गृहत्यागियों के आहार विहार निहार की पूरी व्यवस्था करते हैं तब धन संचय क्यों करना? धन संचय से ही रागद्वेष की, आर्त रौद्रध्यानों की प्रवृत्ति होती है। रत्नत्रयधर्म ध्यानाध्ययन सामायिकादि का विनाश हो जाता है अतः धनादि संचय से अपने अंतर्बाह्य चारित्र को नष्ट करना है सो आरंभ परिग्रह त्यागी साधुओं को धन संचय करना दोष कहा है।

प्र.-3114 इनका प्रयोग करने वाला साधु यदि दूषित है तो उपदेशक दूषित क्यों नहीं?

उत्तर- इनका उपदेश देना, प्रयोग करना गलत नहीं है, परोपकार है, जनहित और आत्महित है। केवली का धर्मोपदेश है, प्रमत्त मुनियों का अपायविचय धर्मध्यान, वात्सल्य प्रभावना अंग

है। औषधिदान अभयदान है, अनुकंपादि भावनाओं से किया जाये तो निर्दोष मोक्षमार्ग है किंतु दुर्भावना, लोकेषणा पूर्वक किया जाये तो संसारमार्ग है, दूषण है, साधुपद का कलंक है अतः हेतुओं के अनुसार गुणदोष प्राप्त होते हैं।

नोटः- यहाँतक 3114 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 96वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 97वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्यादृष्टि साधु

जे पावारंभरया कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।

लोयववहारपउरा ते साहू सम्मउम्मुक्का।।97।।

ये पापारंभरताः कषाययुक्ताः परिग्रहासक्ताः।

लोकव्यवहारप्रचुराः ते साधवः सम्यक्त्वोन्मुक्ताः।।

जे जो **साहू** साधु **पावारंभरया** पापारंभ में रत **कसायजुत्ता** कषाय से युक्त **परिग्गहासत्ता** परिग्रह में आसक्त और **लोयववहारपउरा** लोकव्यवहार/ लोकाचार में चतुर हैं सो **ते** वे **सम्म** सम्यक्त्व के **उम्मुक्का** त्यागी मिथ्यादृष्टि हैं।

प्र.-3115 पापारंभ किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन मन वचन काय की क्रियाओं से एकमात्र आत्मकल्याण, मोक्षमार्ग छूट जाये या आत्मा में एकमात्र कष्टदायक संस्कारों का, कर्मों का आगमन हो सो उन क्रियाओं को पापारंभ कहते हैं।

प्र.-3116 क्या पापारंभ से कष्ट होता है?

उत्तर- एकमात्र पापारंभ से कष्ट नहीं होता है किंतु पापारंभ में विषयकषाय पूर्वक, प्रमाद पूर्वक रत होने से कष्ट होता है क्योंकि आ. श्री ने पापारंभ के साथ में रत शब्द का प्रयोग किया है।

प्र.-3117 इन पापारंभों की प्रवृत्ति कहाँ से कहाँ तक होती है?

उत्तर- पहले दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से, तीसरे चौथे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से, पाँचवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से, छठवें गुणस्थान में संज्वलन कषाय के तीव्रोदय से प्रवृत्ति होती है।

प्र.-3118 पापों के त्यागी महाव्रतियों की पापारंभ में प्रवृत्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर- यद्यपि पाँचों पापों का नौकोटि से त्याग कर महाव्रती हुए हैं फिर भी संज्वलन के तीव्रोदय से क्वचित् कदाचित् प्रमाद सहित पापारंभों में बुद्धि अबुद्धि पूर्वक प्रवृत्ति हो जाती है।

प्र.-3119 कषाय सहित साधु सम्यक्त्व से च्युत है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय से सहित साधु को सम्यक्त्व से च्युत है ऐसा कहा है।

प्र.-3120 क्या साधु भी मिथ्यादृष्टि होते हैं?

उत्तर- जैसे अपनी अंगुलियां एकसमान न होकर छोटी बड़ी, पतली मोटी होती हैं ऐसे ही साधु भी भावों में, साधना विराधना में तथा बाह्य दिनचर्या में असमान होने से अंतर स्पष्ट दिखाई दे जाता है अतः अंतर होने से ही कर्मभूमि संबंधी सभी क्षेत्रों और कालों में कोई कोई साधु मिथ्यादृष्टि भी होते हैं इसमें संदेह नहीं है।

प्र.-3121 परिग्रह में आसक्त साधु होते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अनादिसादिकालीन जीवों का परिग्रह आदि में आसक्ति का, रमणता का संस्कार होने से कदाचित् साधुओं की भी परिग्रहों में प्रवृत्ति, आसक्ति हो जाती है। यदि साधुओं की परिग्रहों में

आसक्ति नहीं हो तो परिग्रहानंदी रौद्रध्यान करके अशुभ तैजससमुद्घाती मुनि नरक में नहीं जा सकते अतः ठीक ही कहा है।

प्र.-3122 अनादिकालीन संस्कार होने से क्या साधु अनादिमिथ्यादृष्टि होते हैं?

उत्तर- कर्मभूमिज आर्यखंडों में अनादिसादिमिथ्यादृष्टि मनुष्य दीक्षित होने पर मुनि भी अनादिसादि मिथ्यादृष्टि हो सकते हैं सर्वथा एक ही प्रकार के नहीं होते अतः इनकी परिग्रहासक्ति हो सकती है।

प्र.-3123 क्या बहिरंग या अंतरंग परिग्रह में साधु आसक्त हो सकते हैं?

उत्तर- पूर्ण बाह्यपरिग्रह का त्याग करके ही साधु बने हैं किंतु रौद्रों की तरह पदभ्रष्ट होकर पुनः गृहस्थ बन जाते हैं इस अपेक्षा साधु उभयपरिग्रह में आसक्त हो सकते हैं। जैसे मठाधीश, आश्रमवासी।

प्र.-3124 लोकव्यवहार किसे कहते हैं और कितने भेद हैं?

उत्तर- लौकिक प्रमादी गृहस्थ और मुनियों की दिनचर्या को लोकव्यवहार कहते हैं। दो भेद हैं। नयसापेक्ष व्यवहारी जनों के मन वचन काय की चर्या को सम्यक्भेद लोकव्यवहार कहते हैं और नयनिरपेक्ष व्यवहारीजनों के भेदव्यवहार को लोकव्यवहाराभास, मिथ्यालोकव्यवहार कहते हैं।

प्र.-3125 लौकिक प्राणी व सर्वप्रकार से भ्रष्ट किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग से, देव शास्त्र गुरु की भक्ति से, प्रशम, संवेग आदि गुणों से, सदाचार सद्विचारों से बाह्य आचार विचार वालों को अथवा चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण कराने वाले कार्यकर्ताओं को, समाज को, धर्म को कलंकित करने वाले व्यक्तिओं को लौकिक प्राणी कहते हैं। कहा भी है-

णिच्छिद सुत्तत्थपदो समिदकसायो तवोधिगो चावि ।
लोगिगजणसंसग्गं ण जहदि जदि संजदो ण हवदि।।68।।
णिग्गंथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहि।
सो लोगिगोदि भणिदो संजम तव संपजुत्तोवि।।69।। प्र.सा. चा.चू.

अर्थ- आगमविहित अर्थ पदों का निश्चय करनेवाला, शांतकषायों वाला मुनि यदि लौकिक साधुओं की संगति को नहीं छोड़ता है तो वह संयमी नहीं है। यदि कोई निर्ग्रंथ मुनि इस लोक संबंधी कार्यकलापों से आजीविका के लिए प्रवृत्ति करता है तो वह संयम तप से सहित होता हुआ भी लौकिक कहा गया है।

जे वि पडंति व तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोहि पावं अणुमोयमाणाणं।।13।। द.पा.

अर्थ- जो सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यादृष्टियों को जानते हुए भी लज्जा, गारव और भय से नमस्कार करते हैं वे पाप के अनुमोदक होने से रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य।
एदे भट्टविभट्टा सेसं पि जणं विणासंति।।8।। द.पा.

अर्थ- जो मनुष्य दर्शन, ज्ञान और चारित्र से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टों में भ्रष्ट हैं तथा अन्यजनों को भी भ्रष्ट करते हैं।

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियम जोय गुणधारी।
तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति।।9।। द.पा.

अर्थ- जो कोई धर्मात्मा संयम तप नियम और योगादि गुणों के धारण करने वालों के दोषों को कहने वाले मनुष्य स्वयं भ्रष्ट हैं तथा दूसरों को भी भ्रष्टता प्रदान करते हैं।

जह मूलम्मि विणट्ठे दुम्मस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्जंति।।10।। द.पा.

अर्थ- जैसे जड़ के नष्ट होने पर वृक्ष के परिवार की वृद्धि नहीं होती है ऐसे ही जो पुरुष जिनदर्शन से भ्रष्ट है वे मूल से विनष्ट होने के कारण मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाते।

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजम पडिवण्णो मिच्छाद्दिट्ठी हवई ऐसो ।।24।। द.पा.

अर्थ- जो मानी नग्न मुनि को देखने योग्य नहीं मानता है वह संयमी होने पर भी मिथ्यादृष्टि ही है।

प्र.-3126 लोकव्यवहार में चतुर साधु सम्यक्त्व से उन्मुक्त है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- क्योंकि यह निर्ग्रंथ साधु अनेकांतात्मक अध्यात्ममार्ग को स्याद्वाद रूप से नहीं जानता है इसलिए आत्म कार्य में शून्य लोकव्यवहार में चतुर साधु को मिथ्यादृष्टि कहा है क्योंकि अध्यात्ममार्ग वचनात्मक न होकर भावात्मक रूप होकर प्रयोगात्मक स्थिरता रूप, ध्यान स्वरूप है या यह वीररस का वर्णन है।

प्र.-3127 अध्यात्म मार्ग को केवल वचनात्मक मानने में क्या दोष है?

उत्तर- यह अध्यात्म मार्ग **यथा नाम तथा गुण** के अनुसार अपना अर्थ स्वयं बता रहा है कि मैं वचनात्मक नहीं हूँ, यदि मैं ऐसा होता तो मेरे को अध्यात्म मार्ग कौन कहता? अतः अध्यात्ममार्ग को वचनात्मक कथन कर अध्यात्मवादी मानना अपने को ठगना है सो अध्यात्म को केवल वचनात्मक मानना ही आपत्ति है।

प्र.-3128 इस अध्यात्ममार्ग का स्वामी कौन है?

उत्तर- विधि रूप में उत्कृष्ट संयमी साधक परम वैरागी महाव्रती साधु स्वामी हैं। निषेध रूप में आरंभ परिग्रह, शृंगारालंकार, विषयकषायों का, ख्यातिपूजालाभ का, मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य का, गृहस्थ जीवन का त्यागी निर्मोही निर्ग्रंथ स्वामी हैं, असंयमी वस्त्रधारी भोगी स्वामी नहीं हैं।

प्र.-3129 आजकल असंयमी गृहस्थ अध्यात्ममार्गी बन रहे हैं सो क्या संभव है?

उत्तर- मिथ्यात्व के अविनाभावी अन्याय अभक्ष्य के सेवी, जिनमें जघन्य पात्र श्रावक श्राविका संबंधी मूलगुण नहीं हैं, षडावश्यकों का पालन नहीं करते हैं, अनछना पानी, अमर्यादित दूध दही घी, अचार मुरब्बा दवाइयां खाने वाले, देव शास्त्र गुरु के अभक्त, अविनयी, असंयमी गृहस्थ यदि यथार्थ में आध्यात्म मार्गी हो सकते हैं तो सांख्यमतियों ने, ब्रह्मवादियों ने, योगाचार आदि अनेकों ने क्या बिगाड़ा है, ये अध्यात्ममार्गी क्यों नहीं और तुम क्यों इसमें क्या नियामक सिद्धांत है? अतः अध्यात्ममार्गी होने के लिए इसकी भूमिका स्वरूप व्यवहारमार्ग, बाह्य दिनचर्या, आचारविचार भी तदनुकूल होना चाहिये अन्यथा अंतरंग और बहिरंग में सत्संधि न होने से मायाचार है, छलकपट है इसकारण गृहस्थों का अध्यात्ममार्गी होना असंभव है।

प्र.-3130 अध्यात्ममार्ग अकर्तावादी है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- यदि अध्यात्ममार्ग सर्वथा अकर्तावादी है तो ईश्वरवादी, मुसलमान आदि अध्यात्मवादी क्यों नहीं हैं? अध्यात्ममार्ग अकर्तावादी है तो स्थितिअनुभागबंध क्यों? क्या ये बिना कर्ता के हो सकते हैं? यदि बिना कर्ता के ये क्रियायें हो सकती हैं तो सिद्धों में भी होना चाहिये अतः वास्तव में सिद्धभगवंत ही साक्षात् सर्वकाल पर के अकर्ता हैं और अयोगकेवली समस्त आश्रव बंध के अकर्ता हैं। सांपरायिक आश्रव बंध न होने से सयोगी प्रभु अनाश्रवक और अबंधक हैं तथा प्रकृति प्रदेशबंध की अपेक्षा बंधक हैं तथा शेष समस्त प्राणीवर्ग आश्रवबंध के कर्ताधर्ता हैं। अध्यात्ममार्ग कथंचित् कर्तावादी और अकर्तावादी है।

प्र.-3131 तो अध्यात्ममार्ग को कर्तावादी मानने में क्या दोष है?

उत्तर- कोई दोष नहीं है। परम शुद्धात्मावस्था शुद्ध निश्चयनय से अकर्ता रूप है किंतु संसारावस्था में अध्यात्म रूप अवस्था उपादान उपादेय की अपेक्षा पर के साथ कर्ता कर्म संबंध न होने से अकर्तापना है किंतु निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा सिद्धों में भी पर के साथ में कर्ता कर्म संबंध है तो चारों परमेष्ठियों के साथ में कर्ता कर्म संबंध क्यों नहीं होगा? अतः जैन सिद्धांत में प्रमाण नय निक्षेप के बिना कुछ भी नहीं कहा है किंतु शास्त्रों में और लोकव्यवहार में वचनालाप करते समय इनका बारबार नाम नहीं लेते हैं पर वक्ता और श्रोतागण प्रसंगानुसार स्वतः ही अर्थ समझ लेते हैं कि यहाँ किस अभिप्राय से कहा गया है किंतु अभिप्राय न समझने के कारण विवाद खडा हो जाता है, वैरविरोध बन जाता है।

प्र.-3132 यदि ऐसा है तो लोकव्यवहार में चतुर साधु को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- जैन शासन में प्रमाण नय निक्षेप के बिना कुछ भी प्रतिपादन नहीं किया है यह 100% सत्य है परंतु जो साधु बनकर अपने आत्म संबंधी, पदसंबंधी धर्मकर्म को छोड़कर केवल लोकाचार में लग रहा है, मानमर्यादा का उल्लंघन कर अनर्गल दिनचर्या निभा रहा है सो ऐसे साधु को लक्ष्य कर आ. श्री ने मिथ्यादृष्टि कहा है, सभी साधुओं को नहीं, यदि सभी को कहते तो मूलाचार आदि चरणानुयोग की रचना क्यों की?

प्र.-3133 तो लोकव्यवहार सर्वथा गलत है क्या?

उत्तर- **संजममविराधंतो करेउ ववहार सोधणं भिक्खू।**
ववहार दुगुंछाविय परिहरउ वदे अभंजंतो।।940।। मू.चा.स.सा. अ.10

अर्थ- संयम की विराधना न करता हुआ व्यवहार शुद्धि करे और व्रतों को भंग न करता हुआ लोकनिंदा का भी परिहार करे अतः लोकव्यवहार सर्वथा गलत नहीं है किंतु दृष्टि गलत है तो सर्वत्र गलत है और दृष्टि सही है तो सर्वत्र सही है। जो लोकव्यवहार मोक्षमार्ग में सहायक है, गुणों को बढ़ाने वाला है वह सही है, शेष गलत है। इस न्यायानुसार मिथ्यात्व गुणस्थान में भी सत्य मन, सत्य वचन का विधान किया है। जब ये दोनों सत्य है तो काय की क्रिया भी सत्य ही होगी वह गलत कैसे हो सकती है? फिर लौकिक क्रियायें सभी सर्वथा मिथ्या हैं ऐसा तीर्थंकर, आचार्यादि प्रतिपादन कैसे कर सकते हैं? अर्थात् नहीं कर सकते हैं।

प्र.-3134 ऐसा होने पर लोकव्यवहार तो सही कहलायेगा?

उत्तर- **सर्व एव जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।**
यत्र सम्यक्त्व हानि र्न न च व्रत दूषणम् ।।22।। य.च. अष्टम अ.

अर्थ- मोक्षमार्गियों के लिए जिन लौकिक क्रियाओं से मोक्षमार्ग में दोष उत्पन्न न हो तो सभी प्रमाण हैं, आदरणीय हैं। यदि लोकव्यवहार, लोकाचार सर्वथा सर्वत्र गलत माना जाये तो धर्म संबंधी, परिवार संबंधी व्यवहार नहीं बन सकता अतः लोकव्यवहार दोनों प्रकार का है आ. श्री सोमदेवजी ने ऐसा कहा है।

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केई तं च सद्दहणं ।
केवलि जिणेहि भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं।।22।। द.पा.

अर्थ- जितना चारित्र धारण करना शक्य है उतना धारण पालन करना चाहिये और जो धारण करना अशक्य है उसका श्रद्धान करना चाहिये क्योंकि केवली ने श्रद्धान करनेवालों को सम्यग्दर्शन कहा है।

प्र.-3135 यदि लोकव्यवहार सही है तो त्याज्य क्यों बतलाया?

उत्तर- लोकव्यवहार लोकयात्रा लौकिक जीवन जीने के लिए सही है तथा शुद्धात्मध्यान में सभी व्यवहार त्याज्य कहे हैं फिर भी अध्यात्मध्यान में प्रवेश के साधन का साधन है। यदि लोक में अपना जीवन बदनाम हो गया तो आत्मसाधना भी स्थिर नहीं रह सकती। यद्यपि आत्मसाधना

स्वयं के आधीन है पर आहारचर्या कराना श्रावक श्राविकाओं के आधीन है क्योंकि दिगंबर जैनसाधु नवकोटियों से आरंभ परिग्रह के, उद्दिष्ट दोष के त्यागी स्वयं आहार न बना सकते हैं, न बोल सकते हैं, यदि साधुओं ने आहारादि कार्यों में योग उपयोग लगाया तो सर्वत्र निंदा, अपमान का पात्र बनेगा, धर्मक्षेत्रों में कौन आहार करायेगा? जो करायेगा वही संकट में पड़ जायेगा अतः जैनधर्म किसी का भी अपमान, तिरस्कार करना नहीं सिखाता है और जो साधक किसीका भी अपमान तिरस्कार करता है तो वह वास्तव में तीर्थंकरादि का अनाज्ञाकारी साधु, श्रावक श्राविका है। इतना होने पर भी जो साधक आत्मलक्ष्य छोड़कर केवल लोकाचार में आसक्त है तो उसकी साधुता स्थिर रखने के लिए, आत्मकर्तव्य पालने के लिए लोकव्यवहार त्याज्य बताया है।

प्र.-3136 इस विषय को पुनः कैसे समझे?

उत्तर- जैसे कफ के रोगी को कफवर्धक अनिष्टकारी अभक्ष्य होने से दूध घी का त्याग कराते हैं पर पित्त रोगी को दूध घी आदि का खूब सेवन कराते हैं ऐसे ही साधु किस कारण से पतन की ओर जा रहा है तो उसे पतन से बचाने के लिए वैसा उपाय बताते हैं ऐसे ही साधु केवल बाह्यचर्या में फंसा हुआ है तो बाह्य चर्या छुड़ाने के लिए बहिर्दृष्टि कहा है कि तूं बाह्यचर्या छोड़कर अंतर्दृष्टि हो अन्यथा मिथ्यादृष्टि बहिर्दृष्टि कहलायेगा क्योंकि धर्मोपदेश मार्ग में लाने के लिए वृद्धि के लिए स्थिरता के लिए किया जाता है।

नोटः- यहाँतक 3136 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 97वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 98वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कषायवान साधु

ण सहंति इयरदप्पं थुवंति अप्पाणमप्प माहप्पं।

जिब्भणिमित्तं कुणंति ते साहू सम्मउम्मुक्का।।98।।

न सहंते इतरदर्पं स्तुवन्ति आत्मानमात्ममाहात्म्यं।

जिह्वानिमित्तं कुर्वन्ति ते साधवः सम्यक्त्वोन्मुक्ताः।।

जो **इयरदप्पं** परवैभव को, **सहंति ण** सहन न कर **अप्पाणं** अपना और **अप्पमाहप्पं थुवंति** अपनी महिमा गाते हैं, गुणगान करते हैं **जिब्भणिमित्तं** स्वादार्थ **कुणंति** श्रम करते हैं **ते** वे **साहु** साधु **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्का** उन्मुक्त हैं।

प्र.-3137 कौन से साधु दूसरों के वैभव को सहन नहीं कर पाते?

उत्तर-अनंतानुबंधी आदि चारों क्रोध से परिणत साधु दूसरों की महिमा को सहन नहीं कर पाते।

प्र.-3138 कौन से साधु अपनी प्रसंशा करते हैं, क्यों करते हैं और कौन हैं?

उत्तर- जो अनंतानुबंधी आदि चारों मान से परिणत हो अपना मानसम्मान चाहते हैं वे ही साधु अपना गुणगान करते हैं, प्रसंशा करते हैं क्योंकि इनके मन में तीव्र लोकेषणा, ख्याति पूजा और लाभ की भावना कूटकूट के भरी है, संसारमार्गी हैं, मोक्षमार्गी नहीं और नीचगोत्र के बंधक हैं।

प्र.-3139 जिह्वा के निमित्त कौन से साधु परिश्रम करते हैं?

उत्तर- भोजन के लोलुपी साधु भोजन के लिए मन वचन काय से परिश्रम करते हैं, याचना करते हैं, भोजन बनाते हैं, नहीं मिलने पर विवाद करते हैं और भोजन के निमित्त आर्त रौद्रध्यान करते हैं।

प्र.-3140 आहार के निमित्त साधु ऐसा परिश्रम क्यों करते हैं?

उत्तर- आहार संज्ञा के आधीन होकर असाता वेदनीय कर्मोदय से भूंख प्यास की वेदना को जीतने में असमर्थ होने के कारण कदाचित् कमजोरी के भय से भी आहार के निमित्त परिश्रम करते हैं।

प्र.-3141 आहारसंज्ञा की उत्पत्ति किन कारणों से होती है, नाम और लक्षण क्या है?

उत्तर- आहारसंज्ञा की उत्पत्ति दो कारणों से होती है। **नामः-** अंतरंगकारण और बहिरंगकारण। **अंतरंग कारण-** असातावेदनीय कर्म की उदीरणा होने से। **बहिरंग कारण-** आहार देखने से, आहार में उपयोग लगाने से, उदर के खाली होने से, आहार की अभिलाषा होने से आहारसंज्ञा की उत्पत्ति होती है।

प्र.-3142 आहार संज्ञा का अंतर्भाव किन किन कषायों में होता है?

उत्तर- **माया लोहे रदि पुव्वाहारं** रति पूर्वक होने से आहारसंज्ञा का अंतर्भाव माया, लोभ में होता है।

प्र.-3143 हास्यादि पाँच राग कषायों में आहार संज्ञा का अंतर्भाव कैसे होता है?

उत्तर- 4 माया, 4 लोभ, हास्य रति, 3 वेद ये 13 प्रकृतियां राग रूप हैं अतः राग पूर्वक होने से कार्य कारण में अभेद कर हास्यादि में आहारसंज्ञा का अंतर्भाव हो जाता है।

प्र.-3144 गाथा में किस अंश से किस कषाय को ग्रहण किया है?

उत्तर- **ण सहंति इयरदप्पं** से क्रोध कषाय को, **अप्पाणमप्प माहप्पं** से मानकषाय को तथा **जिब्भ णिमित्तं कुणंति** से माया और लोभ को ग्रहण किया है। **माया लोहे रदि पुव्वाहारं** जी.कां. गा.6

प्र.-3145 संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसके सेवन से जीव इसभव में और परभव में या वर्तमान एवं भविष्यकाल में दारुण दुःख भोगता है उसे संज्ञा कहते हैं।

प्र.-3146 आहार के कितने भेद हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- आहार मार्गणा की अपेक्षा आहार के 6भेद एवं कवलाहार की अपेक्षा 4भेद हैं फिर प्रत्येक आहार के परस्पर में आहार सामग्री के संमिश्रण से नाम, मात्रा, स्पर्श, रस, गंध, रूपादि की अपेक्षा अनेक भेद हो जाते हैं। **नामः-** कवलाहार, ओजाहार, अमृताहार, कर्माहार, नोकर्माहार, लेपाहार।

प्र.-3147 भयसंज्ञा के कारण और कितने भेद हैं?

उत्तर- कमजोर होने पर कषायों के और बाह्य भयकारक हिंसक मनुष्य, पशुपक्षी तथा शत्रु आदि के भेद से भयसंज्ञा के अनेक भेद हो जाते हैं।

प्र.-3148 मैथुनसंज्ञा के कितने भेद हैं?

उत्तर- चेतन अचेतन सामग्री के माध्यम से अंगक्रीड़ा और अनंगक्रीड़ा के कारण इंद्रियविषय तथा वेदकर्म के परिणामानुसार मैथुनसंज्ञा के अनेक भेद हैं।

प्र.-3149 परिग्रह संज्ञा के कितने भेद हैं?

उत्तर- पाँचों इंद्रियों के चेतन अचेतन, इष्टानिष्ट, भोग उपभोग सामग्री के भेद से मूर्च्छा परिणामों के भेद के कारण परिग्रह संज्ञा के भी अनेक भेद हो जाते हैं।

प्र.-3150 जब चारों कषायें छठवें गुणस्थान तक कार्य रूप से परिणमन करतीं हैं तो फिर इनसे परिणत साधु को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि छठवें गुणस्थान में संज्वलन कषायोदय से कदाचित् बुद्धि पूर्वक परिणत है और कदाचित् अबुद्धि पूर्वक भी तथा तत्संबंधी प्रमाद भी है और सातवें से दसवें गुणस्थान तक अबुद्धि पूर्वक परिणत है फिर भी यह संयमघाती प्रकृति न होने से इसे मिथ्यादृष्टि नहीं कहा है किंतु अनंतानुबंधीकषायवान् साधु को मिथ्यादृष्टि कहा है शेष कषायवान् को नहीं। जब सामान्य कथन होता है तो विशेष की जानकारी के लिए ग्रंथांतरों का सहारा लेना पड़ता है तभी वास्तविक अर्थ समझ में आता है, अन्यथा नहीं।

प्र.-3151 कषाय भी अग्नि है और ध्यान भी अग्नि है तो कौन किसे जलायेगा?

उत्तर- कषायाग्नि व्यवहारधर्म सदाचार, सद्विचार, आत्मधर्म रूपी ईंधन को तो ध्यानाग्नि द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म रूपी ईंधन को जलाती है।

प्र.-3152 इन अग्नियों का क्या फल है?

उत्तर- कषायाग्नि से संसार में भ्रमण होता है तो ध्यानाग्नि से मोक्षफल की प्राप्ति होती है।

प्र.-3153 अपने आपकी प्रसंशा करने से व्यक्ति महान क्यों नहीं होता है?

उत्तर- जैसे बकरे के गले में होने वाला स्तन किसी काम का नहीं होता है, केवल स्तन जैसा आकार देखने के लिए होता है ऐसे ही आत्मप्रसंशक साधु अंदर में खोखला, धर्म विहीन होता है, देखने में सुंदर लगता है पर अंतरंग में साधुता नहीं है। यदि साधुता होती तो वह अपनी स्वयं की प्रसंशा क्यों करता? **''थोता चना बाजे घना।'' ''अधजल गघरी छलकत जाय''** को चरितार्थ करना है इसकारण मोक्षमार्गी साधुओं को अपनी प्रसंशा नहीं करना चाहिये क्योंकि आत्मप्रसंशक व्यक्ति हीन होता है, महान नहीं।

प्र.-3154 आत्मप्रशंसक साधु को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- दूसरों की बुराई बतानेवाला ही आत्मप्रसंशा कर सकता है सो ऐसा साधु नीचगोत्र का बंधक मिथ्यादृष्टि होता है आत्मशुद्धि का लक्ष्य न होने से बहिर्दृष्टि होने के कारण मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-3155 स्वादासक्त साधु मिथ्यादृष्टि है तो शेष विषयासक्त मिथ्यादृष्टि क्यों नहीं?

उत्तर- अनंतानुबंधीकषाय सहित जिह्वासक्त साधु मिथ्यादृष्टि है तो शेष चार इंद्रियविषयों में आसक्त मिथ्यादृष्टि अधम ही है क्योंकि पाप तो पाप ही है वह धर्म कैसे हो सकता है? कहा भी है:-

अलि मातंग मृग शल मीन, विषय एक एक में मरते हैं।
नतीजा क्या न पावेंगे विषय पाँचों जो करते हैं।।

अर्थ- जब ये पाँचों तिर्यंच प्राणी केवल एक एक इंद्रिय के विषयों में आसक्त होकर मरते हैं तो यह मनुष्य पाँचों इंद्रियों के विषयों में आसक्त होकर क्या क्या फल नहीं पायेगा आत्मा के अहितकारी विषयकषाय हैं। विषयों के बिना कषाय और कषायों के बिना विषय नहीं हो सकते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि छठवें गुणस्थान तक विषय और कषाय प्रवृत्ति रूप में तथा दसवें गुणस्थान तक केवल कषायें प्रवृत्ति रूप में होती हैं। पहले विषय समाप्त होते हैं और बाद में कषायें ऐसा विशेष समझना चाहिए।

प्र.-3156 विषयकषायासक्त साधु क्या केवल मिथ्यादृष्टि होता है या नहीं?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषाय के बिना शेष कषायों से परिणत साधक मिथ्यादृष्टि नहीं होता है किंतु आत्म साधना की विराधना करने वाला अवश्य होता है।

प्र.-3157 विषय और कषाय में क्या अंतर है?

उत्तर- पाँचों इंद्रियों से ग्रहण किये जाने वाले कार्यों को विषय और विषयों को ग्रहण करने में प्रीति अप्रीति या शक्ति को कषाय कहते हैं। कार्य कारण या कारण कार्य की अपेक्षा इनमें अंतर है।

प्र.-3158 इन दोनों में किस प्रकार का अंतर है?

उत्तर- पूर्व कर्मोदय कारण है तो वर्तमान के विषयकषाय कार्य हैं तथा वर्तमान के विषयकषाय कारण है तो नवीन कर्मबंध कार्य है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-3159 यह व्यवस्था कब से चली आ रही है?

उत्तर- यह व्यवस्था अनादि और सादि से बीजांकुर, पितापुत्र के न्यायानुसार चली आ रही है।

प्र.-3160 यह विषयकषायों की व्यवस्था अनादि से तो ठीक है पर सादि कैसे?

उत्तर- विषयकषायों की व्यवस्था अनादिकालीन होने पर भी उत्तम संहननवाला मनुष्य मुनिदीक्षा लेकर उपशमश्रेणी आरोहण कर पूर्ण रूप से विषयकषायों का उदयाभाव कर 11वें गुण. में जाकर वापिस लौटकर पुनः कषाय और विषयों में परिणमन करने लगता है अतः इसको सादि कहा है।

नोटः- यहाँतक 3160 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 98वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 99वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आहार ग्रहण का हेतु

भुंजेइ जहा लाहं लहेइ जइ णाण संजम णिमित्तं।
झाणज्झयण णिमित्तं अणयारो मोक्ख मग्गरओ।।99।।

भुंक्ते यथालाभं लभते यतिः ज्ञानसंयमनिमित्तं।
ध्यानाध्ययननिमित्तं अनगारो मोक्षमार्गरतः।।

मोक्खमग्ग मोक्षमार्ग में **रओ** रत **अणयारो** साधु **जइ** यति **णाणसंजम** ज्ञान, संयम के **णिमित्त** निमित्त **झाणज्झयण** ध्यानाध्ययन के **णिमित्तं** निमित्त **जहा लाहं** चरणानुयोगानुसार कथित पद्धति से **भुंजेइ** भोजन **लहेइ** ग्रहण करता है।

प्र.-3161 अनगार, साधु और यति किसे कहते हैं?

उत्तर- अगार घर आदि परिग्रहों को नवकोटियों से त्याग करनेवाले को **अनगार** और शुद्धात्मसाधना करने वालों को **साधु** कहते हैं। मोक्ष पुरुषार्थ साधक प्रयत्न करने वाले को **यति** कहते हैं।

प्र.-3162 गृहस्थों के भेष से भिन्न भेषधारियों को साधु कहने में क्या दोष है?

उत्तर- नहीं, गृहस्थों के भेष से भिन्न, नाना प्रकार के विषय भोगों में मस्त, आरंभ परिग्रह में आकंठ डूबे हुए भेषधारियों को साधु न कहकर स्वादु, छद्मभेषधारी कहते हैं अर्थात् गलत को सही मानना ही दोष है।

प्र.-3163 साधु मोक्षमार्ग में रत होते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सांसारिक इंद्रियसुख तथा तत्संबंधी सामग्री का त्याग कर साधु बना है और पुनः स्वर्गों के वैभव प्राप्त करने के लिए साधना करे तो वह साधु कैसा? यह तो उसका अत्याचार है, वमन कर पुनः खाने के बराबर है। इस कारण संसार शरीर भोगों से विरक्त साधु मोक्षमार्ग में रत होता है। यहाँ रत का अर्थ है गाढ़ प्रीति। जैसे आज भोगी मानव नाना आपत्ति विपत्तियों के, कष्टों के, बीमारियों के, नेताओं के, चोर गुंडों के संकट होने पर भी अपने भोगमार्ग से चलायमान नहीं होता, न घबड़ाता है, न छोड़कर भागता है तो ऐसे ही साधु भी नाना प्रकार के उपसर्ग परीषहों के होने पर अपनी आत्म साधना से, आत्मध्यान से चलायमान नहीं होता है सो इसे ही कहते हैं कि साधु मोक्षमार्ग में रत है, गाढ़ प्रीतिवान है।

प्र.-3164 साधुओं को अपने संकल्प से किस प्रकार चलायमान नहीं होना चाहिये?

उत्तर- जैसे भोगी गृहस्थ पापकार्यों को न छोड़ने के लिए या नियम न लेने के लिए दृढ़ संकल्पित है कि मैं किसी भी प्रकार का नियम नहीं लूंगा तब उसे साधुवर्ग कितना ही समझायें पर वह न पापों को छोड़ता है न विधि निषेध रूप में संयम, यम, नियम ग्रहण करता है भले ही त्यागीवर्ग भूंखे प्यासे चले जायें उसे चिंता नहीं सो ऐसे ही साधुओं को अपने मोक्षमार्गस्थ दृढ़ संकल्प से चलायमान नहीं होना चाहिये।

प्र.-3165 तब साधुओं को किसके हाथ से आहार नहीं लेना चाहिये?

उत्तर- **अभक्तानां कदर्याणामव्रतानां च सद्मसु।**
न भुंजीत तथा साधुर्दैन्यकारुण्यकारिणाम्।।328।। य.ति.च.

अर्थः- जो साधुओं के भक्त नहीं हैं, अत्यंत कृपण हैं, व्रत रहित अव्रती हैं, अपनी दीनता और करुणा उत्पन्न करने वाले हैं ऐसे उनके घरों में साधुओं को आहार नहीं लेना चाहिये।

प्र.-3166 'भुंजेइ जहा लाहं' दिगंबरसाधुओं की गोचरी श्वेतांबरसाधुओं जैसी है क्या?

उत्तर- आ. श्री कुंदकुंद ने अपने ग्रंथों में स्थानकवासी जैनी साधुओं जैसी चर्या नहीं कही है किंतु गाथादि की रचना में ग्रंथकार शब्द, स्वर व्यंजन, अक्षर मात्राओं में कंठ लय से बंध जाता है उसमें छंदों के अनुसार ही लिखना बोलना पड़ता है अतः सीमित शब्दों में कहकर आगमानुसार ही 46 दोषों को टालकर आहारचर्या करना चाहिये ऐसा कहा है। नहीं तो आ. श्री मूलाचार में ऐसा विधान क्यों करते-

जो जत्थ जहा लद्धं गेण्हदि आहारमुवधिमादीयं।
समणगुणमुक्कजोगी संसारपवड्ढओ होइ।।933।। स.सा. अ.10

अर्थः- जो जहाँ जैसा भी आहार, उपकरणादि मिला वहाँ वैसा ही ग्रहण कर लेता है तो वह मुनि के गुणों से मुक्त हुआ संसारवर्धक है अतः यहाँ दिगंबरेतरों की चर्या विधि रूप नहीं कही है।

प्र.-3167 आहार किसे कहते हैं और यहाँ किस आहार से प्रयोजन है?

उत्तर- औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन 3 शरीर और 6 पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलपिंड के लेने को आहार कहते हैं। यहाँ मुनिचर्या का प्रकरण होने से कवलाहार से प्रयोजन है, शेष आहारों से नहीं।

प्र.-3168 पर्याप्ति किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- आहार वर्गणाओं को ग्रहणकर तद्रूप में परिणमाने की सामर्थ्य की प्राप्ति को पर्याप्ति कहते हैं। भेद 6 हैं। **नामः-** आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इंद्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति और मनपर्याप्ति।

प्र.-3169 कवलाहार किसे कहते हैं, भेद, नाम और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- कवल ग्रास को कहते हैं। इसके 4 भेद हैं। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय। यह आहार द्वीद्रिय जीवों से लेकर सैनी पंचेंद्रिय पर्यंत तथा पहले से छठवें गुणस्थान तक होता है। यह ग्रास हाथ से, पैरों से, सूंढ से, जिह्वा से या किसी अन्य प्रकार से भी ग्रहण किया जाता है। **स्वामीः-** तिर्यंच और मनुष्य हैं।

प्र.-3170 गृहस्थों ने आहार जैसा बनाया है वैसा ही ग्रहण करने में क्या दोष है?

उत्तर- गृहस्थों ने जैसा बनाया और दिया है वैसा ही ले लेना यदि ऐसा है तो फिर अंतराय क्यों करना? 46 दोष और 32 अंतरायों को टालकर आहार लेना ऐसा क्यों कहा? अतः अनाज्ञाकारीपना होना ही दोष है।

प्र.-3171 तो मूलाचार गा. 487 में ''सुद्धं गवेसमाणो'' ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ मूलाचार में शुद्ध आहार की खोज करने वाला साधु क्या सामने आहार की प्रक्रिया को अशुद्ध जानता देखता हुआ भी शुद्ध मानकर ग्रहण कर लेगा? जैसे किसी व्यक्ति को दूध के नाम पर कोई शराब देने लगे तो क्या वह दूध की जगह शराब ग्रहण करेगा? नहीं, या किसी भोजनसामग्री में मक्खी पड़ी हो और उसे कोई कालीमिर्च, इलायची का बीज कहकर खिलाने लगे तो क्या कोई उसे मक्खी जानता हुआ भी खा लेगा क्या? नहीं, ऐसे ही अशुद्ध आहार पानी को दाता शुद्ध कहकर देने लगे तो क्या साधु अशुद्ध आहार को शुद्ध मानकर ग्रहण कर लेगा? अतः गृहस्थों को आगमानुसार मर्यादा सहित शुद्ध आहार बनाकर शुद्धि बोलकर पात्रों को देना

चाहिये, अन्यथा नहीं।

प्र.-3172 मुनिजन किसके निमित्त आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर- संयम, ध्यानाध्ययन, वैय्यावृत्ति तीर्थयात्रा, धर्मप्रभावना और तपश्चरण के हेतु आहार करते हैं।

प्र.-3173 ज्ञान, सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- जानने मात्र को ज्ञान कहते हैं। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में वस्तुधर्मों को न्यूनता, अधिकता, संशय विपर्यय अनध्यवसाय रहित, यथावस्थित सापेक्ष जानने को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से युक्त दूषित ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

प्र.-3174 संयम किसे कहते हैं?

उत्तर- षट्कायिक जीवों की रक्षा करने को, इंद्रिय और मन को अपने आधीन करने को संयम कहते हैं।

प्र.-3175 मोहनीय कर्म के क्षय या उपशम से उत्पन्न संयम को क्या कहते हैं?

उत्तर- मोह कर्म के पूर्ण क्षय या पूर्ण उपशम से उत्पन्न संयम को यथाख्यात संयम कहते हैं।

प्र.-3176 ध्यान कैसे करना चाहिये, भेद और नाम तथा यहाँ किससे प्रयोजन है?

उत्तर- स्थिरता पूर्वक किसी एक विषय में मन स्थिरकर चिंतन/ध्यान करना चाहिये। ध्यान के 4 और 16 भेद हैं। **नामः-** 4 आर्तध्यान, 4 रौद्रध्यान, 4 धर्मध्यान और 4 शुक्लध्यान। यहाँ वर्तमानकाल और हीनसंहनन की अपेक्षा मोक्षमार्गानुरूप धर्मध्यान से प्रयोजन है।

प्र.-3177 अध्ययन के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- स्वहितार्थ, कल्याणार्थ, मोक्षार्थ, स्वाधीनता के लिए जिनेंद्रोपदेश का मनन पठन करने को अध्ययन कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं। **नामः-** 1. वांचनाः- स्वयं पढ़ना। 2. पृच्छना- प्रश्न पूंछना। 3. अनुप्रेक्षा- पुनः पुनः विचार करना। 4. आम्नायः- शुद्ध पाठ बोलना। 5. धर्मोपदेश- प्रार्थना करने पर सत्संबोधन करना।

प्र.-3178 इस काल में किस स्वाध्याय से प्रयोजन है और स्वामी कौन हैं?

उत्तर- इस काल में यथावसर सभी स्वाध्यायों से प्रयोजन है। गृहस्थ और मुनिजन स्वामी हैं।

प्र.-3179 इस काल में शुक्लध्यान होता है या नहीं?

उत्तर- इस 5वें, 6वेंकाल में शुक्लध्यान नहीं होगा किंतु भावना तो कर सकते हैं इसमें क्या कष्ट है?

प्र.-3180 पंचमकाल में शुक्लध्यान नहीं है तो जंबुस्वामी आदि मोक्ष क्यों गये?

उत्तर- पंचमकाल में शुक्लध्यान का सर्वथा निषेध नहीं किया गया है यदि सर्वथा निषेध करते तो भगवान महावीर के मोक्ष में जाने के बाद 4400 (ति. प. अ.4 गा. 1240) मुनि मोक्ष नहीं जा सकते थे। चौथेकाल के जन्मे वज्रवृषभनाराच संहननवाले चरमशरीरी गृहस्थ मुनिदीक्षा लेकर पंचमकाल में शुक्लध्यान कर मोक्ष में गये हैं किंतु पंचमकाल में जन्मे मनुष्यों के उत्तम संहनन न होने से न शुक्लध्यान होता है, न मोक्ष।

प्र.-3181 यहाँ कितने समय तक शुक्लध्यान का अभाव रहेगा?

उत्तर- यहाँ कर्मभूमि की अवस्था में कुछ कम 84000 वर्षों तक शुक्लध्यान का अभाव रहेगा अथवा अंतिम अननुबद्ध सर्वज्ञकेवली श्रीधर भट्टारक के मोक्ष में जाने के बाद में शुक्लध्यान समाप्त हो गया तथा उत्सर्पिणी काल के पाँचवें काल के अंत में अंतिम कुलकर के पुत्र चौथे काल के प्रारंभ में महापद्म नाम के प्रथम तीर्थंकर वीतराग सर्वज्ञ पद प्राप्त करने के अंतर्मुहूर्त पहले तक शुक्लध्यान का अभाव रहेगा।

प्र.-3182 तो फिर इन कालों में कौन कौन से ध्यान होते हैं और अल्पबहुत्व क्या है?

उत्तर- कुछ कम 84000 वर्षों तक 4 आर्तध्यान, 4 रौद्रध्यान और यथानुकूल 4 धर्मध्यान हैं और होते रहेंगे। इनमें धर्मध्यानियों की संख्या अत्यल्प है, भूमिका बनाने वाले इससे ज्यादा हैं और भावना करने वाले इनसे भी ज्यादा हैं किंतु आर्तरौद्रध्यानी जीव संख्यातासंख्यात और अनंत हैं। इन कालों में संसार के हेतुभूत आर्तध्यान रौद्रध्यान तथा मोक्ष के हेतुभूत सभी धर्मध्यान हो सकते हैं।

प्र.-3183 इन कालों में धर्मध्यान कैसे हो सकता है?

उत्तर- इन काल, इस क्षेत्र में खुलेआम या गुप्त रूप में मोक्षमार्ग रहेगा तो धर्मध्यान भी अवश्य रहेगा।

प्र.-3184 इन कालों में सभी मलेच्छाचरण वाले होने से मोक्षमार्ग कैसे रहेगा?

उत्तर- इन कालों और इस क्षेत्र में बहुलता की अपेक्षा सभी मलेच्छाचरण वाले होंगे ऐसा कहा है, सर्वथा नहीं। सूक्ष्मता से विचारने पर सदाचारी, सद्विचारी मोक्षमार्गियों का अभाव होने से कुलकर और तीर्थंकर प्रकृतिवालों का जन्म कैसे होगा? क्या दूषित हीनाचारी कुलों में कुलकर पैदा हो सकते हैं? मिथ्यादृष्टि जनकजननी के गर्भ में तीर्थंकरप्रकृति वाले आ सकते हैं क्या? एकभवावतारी इंद्र इंद्राणी मिथ्यादृष्टियों की पूजा आराधना कर सकते हैं क्या? यदि कर सकते हैं तो अन्यदृष्टि प्रसंशा और अन्यदृष्टि स्तव ये दो अतिचार क्या नहीं लगेंगे? अतः ये दोष केवल क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के ही कदाचित् लग सकते हैं, शेष सम्यग्दर्शनों में नहीं अतः निष्कर्ष रूप में इन कालों में भी मोक्षमार्गियों का सर्वथा अभाव नहीं रहेगा।

प्र.-3185 इन ध्यानों को करने के लिए उपदेशक होते हैं या नहीं?

उत्तर- केवल धर्मध्यान करने के लिए प्रारंभ दशा में उपदेशक, मार्गदर्शक की आवश्यकता है किंतु आर्त, रौद्रध्यानों के लिए उपदेशक की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ये दोनों ध्यान पूर्वभवों के संस्कारों से चले आ रहे हैं अतः इनके लिए उपदेशक मिलें तो भी ठीक और ना मिले तो भी ठीक।

प्र.-3186 जिन मुनियों के ज्ञानादि हैं तो वे किनके निमित्त आहारादि ग्रहण करते हैं?

उत्तर- चरम अचरमशरीरी मुनियों के विशेष ज्ञान, संयम, ध्यान और अध्ययन नहीं हैं तो वे इनकी उत्पत्ति के लिए और जिनके हैं तो वे इनकी स्थिति, वृद्धि और फल की प्राप्ति के लिए आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.-3187 यदि ये मुनिगण आहार ग्रहण नहीं करें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- जब मोहोदय सहित असातावेदनीय का तीव्र उदय उदीरणा चल रही है तो आहारसंज्ञा की उत्पत्ति होने पर आहार के लिए निकलना ही पड़ेगा अन्यथा दुर्ध्यानी बन जायेंगे, यही आपत्ति है।

प्र.-3188 स्वाध्याय किन किन ग्रंथों का करना चाहिये?

उत्तर- आ. श्री समंतभद्रानुसार जो आप्त कथित हो, पूर्वापर विरोध रहित हो, प्रत्यक्ष अनुमानादि के द्वारा विरोध न आवे, सापेक्ष तत्त्वों का कथन हो, सभी का हितकारक, मिथ्यामार्ग का खंडन करने वाला हो यह द्रव्यआगम है। **''आप्त वचनादि निबंधनमर्थ ज्ञानमागमः।।94।।''** परि.। आप्तोपदेश के संबंध से उत्पन्न अर्थज्ञान यह भावागम है इन द्रव्य और भावागम का अध्ययन करना चाहिये।

प्र.-3189 न्यायव्याकरण, नाट्यशास्त्रादि का पठन कर सकते हैं क्या?

उत्तर- न्याय, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, वैद्यकशास्त्र तथा मिथ्याशास्त्र जिनेंद्रोक्त होने से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए, निर्मलता लाने के लिए, जिनधर्म की प्रभावना के लिए, परोपकार के लिए, ज्ञानदान के लिए, ख्याति पूजा लाभ की भावना के बिना इनका अध्ययन कर सकते हैं।

प्र.-3190 मिथ्याशास्त्रों को जिनेंद्र प्रणीत क्यों कहा?

उत्तर- **वक्तव्यताः** स्वसमय, परसमय और तदुभय के भेद से तीन प्रकार की कही है अतः अन्यमत वालों का उपदेश भी जिनेंद्र ने ही दिया है, अन्यथा परसमय वक्तव्यता और तदुभय वक्तव्यता जिनेंद्र प्रणीत बन नहीं सकती अथवा यह नीतिनियम, उपदेश मिथ्या है ऐसा जिनेंद्र, गणधर आदि न कहते तो अपने को कैसे मालुम पडता की यह मिथ्या है अतः मिथ्या को मिथ्या जानकर, अहितकारी समझकर छोड़ना चाहिये ऐसा जिनेंद्र ने ही कहा है क्योंकि जिनेंद्रोपदेश हेय उपादेय और उपेक्षा रूप में है।

प्र.-3191 धर्मोपदेश करना चाहिये या नहीं?

उत्तर- अपने सत्कर्तव्यों का यथासमय पालन करने के बाद में समय शेष बचा हो तो वचनात्मक धर्मोपदेश करना चाहिये, अन्यथा जिनेंद्राज्ञानुसार दिनचर्या के द्वारा मौनोपदेश करना चाहिये।

प्र.-3192 वचनात्मक और मौनोपदेश में कौनसा श्रेष्ठ है?

उत्तर- ये दोनों ही उपदेश प्रसंगानुसार मोक्षमार्ग के साधक होने से दोनों ही श्रेष्ठ, समान बलशाली हैं।

प्र.-3193 पृच्छना, अनुप्रेक्षा और आम्नाय स्वाध्याय कर सकते हैं क्या?

उत्तर- अपना ज्ञान निर्मल बनाने, विषयकषायों का निग्रह करने, ज्ञान की वृद्धि करने के लिए, तत्त्वनिर्णय तथा धारणा बनाने के लिए विशेष ज्ञानियों से पृच्छना स्वाध्याय करना चाहिये। पुनः पुनः नवीन नवीन अर्थ के साथ चिंतन मनन स्वरूप अनुप्रेक्षा स्वाध्याय करना चाहिये। वचन की शुद्धि, भय संकोच और लज्जा आदि दोषों को दूर करने के लिए आम्नाय स्वाध्याय करना चाहिये।

प्र.-3194 अध्ययन और आहार क्यों करना चाहिये?

उत्तर- उपसर्ग परीषहों को जीतने की सामर्थ बढ़ाने, तप, ध्यान, संवर और निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति के लिए अध्ययन करना चाहिये तथा इन्हीं हेतुओं से आहार लेना चाहिये, अन्य हेतुओं से नहीं।

नोटः- यहाँतक 3194 प्रश्नोत्तरों पर्यंत 99वीं गाथा का अर्थ समाप्त हुआ अब 100वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मुनियों की आहारचर्या

उयरग्गिसमण मक्ख मक्खण गोयरि सब्भपूरण भमरं।
णाऊण तप्पयारे णिच्चेवं भुंजए भिक्खू।।100।।

उदराग्निशमनं अक्षम्रक्षणं गोचारं श्वभ्रपूरणं भ्रमरं।
ज्ञात्वा तत्प्रकारान् नित्यमेवं भुंक्ते भिक्षुः।।

भिक्खू मुनि **उयरग्गिसमणं** उदराग्निशमन **अक्खमक्खण** इंद्रिय स्निग्धता **गोयरि** गोचरी **सब्भूरण** श्वभ्रपूरण और **भमरं** भ्रामरी **तप्पयारे** आहारचर्या के भेदों को **णाऊण** जानकर **णिच्चेवं** जब लेते हैं तब ही **भुंजए** आहार ग्रहण करते हैं।

प्र.-3195 उदराग्नि प्रशमन किसे कहते हैं?

उत्तर- जितने आहार से उदराग्नि शांत हो उतने को उदराग्नि प्रशमन कहते हैं, कम या ज्यादा नहीं।

प्र.-3196 कम या ज्यादा आहार करने से क्या हानि है ?

उत्तर- यदि भूंख से अधिक कम आहार किया तो उदराग्नि ज्यादा होने से शीघ्र ही भोजन पचने के कारण भूंख प्यास लगी ही रहेगी जिससे कमजोरी आयेगी, पेट में जलन पैदा होगी तथा अल्सर भी हो सकता है। हमेशा गर्मी रहेगी, चक्कर आयेंगे, आँखें लाल रहेंगी अतः भूंख से थोड़ा कम खाना चाहिए। ऐसे ही अधिक खाने से भी उदराग्नि समाप्त हो जाती है। जैसे अग्नि में ईंधन अधिक डालने से शीघ्र ही बुझ जाती है ऐसे ही अधिक भोजन करने से उदराग्नि समाप्त होने पर

अपच होने से कमजोरी आती है, पेट फूलने पर गैस भर जाती है और नाना बीमारियां घेर लेती हैं अतः उदराग्नि प्रशमनानुसार ही भोजनपान करना चाहिये।

प्र.-3197 मोक्षमार्गी साधु तामसी और राजसी आहार कर सकते हैं क्या?

उत्तर- मोक्षमार्गी आत्मसाधक साधुओं को तामसी और राजसी भोजनपान नहीं करना चाहिये। सामायिक आदि में बाधा उत्पन्न न हो, जो आसानी से पच जाये ऐसा सात्त्विक भोजनपान ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-3198 तामसी भोजन किसे कहते हैं और इससे क्या हानि है?

उत्तर- मादक पदार्थ जैसे शराब, गांजा, तंबाकू, गुटखा, पानमसाला आदि कामवासना के, विषयकषायों के उत्पादक भोजन को तामसी आहार कहते हैं ऐसे भोजन से धर्मध्यान, अध्ययन सदाचार, सद्विचार एवं सज्जनों के लक्षण उत्पन्न नहीं हो सकते हैं, न ठहर सकते हैं आदि हानियाँ हैं।

प्र.-3199 राजसी भोजन किसे कहते हैं और इससे क्या हानि है?

उत्तर- राजाओं के, श्रीमंतों के भोजन जो अत्यंत भारी, गरिष्ठ भोजन आसानी से नहीं पचाया जा सके तथा अधिक मात्रा में रजोवीर्य, नाना धातु उपधातुओं की उत्पत्ति वृद्धिकारक आहार को राजसी भोजन कहते हैं ऐसे भोजन से ध्यानाध्ययन नहीं हो सकता, सहनशीलता नहीं रहेगी, वैरविरोध होगा, झगड़ा होगा, खूनखराबा होना, मारपीट होगी, हाथ पैर टूटेंगे, बदनामी होगी, धन का अपव्यय होगा, समय बर्बाद होगा, मन मलिन होगा आदि हानियां होती है अतः राजसी भोजन से सामान्य साधुजन पुनः गृहस्थ बन रहे हैं।

प्र.-3200 सात्त्विक आहार किसे कहते हैं और इससे क्या लाभ है?

उत्तर- जो आहार आसानी से पच जाये, पचाने के लिये औषधि न लेना पड़े, देखने में, सूंघने में, चखने में, सुंदर हो, स्वादिष्ट हो, शुद्ध हो संयम आदि के पालन करने में सहायक हो उसे सात्त्विक आहार कहते हैं, ऐसे आहार से संयम आदि की साधना में, आत्मध्यान में बाधा उत्पन्न नहीं होती है आदि यही लाभ है।

प्र.-3201 मोक्षमार्गी साधुजन क्या सभी प्रकार का आहार ग्रहण कर सकते हैं?

उत्तर- नहीं, मोक्षमार्गी साधुगण सभी प्रकार का आहार ग्रहण न कर संयम, धर्म, प्रतिज्ञा पालन करने के योग्य सात्त्विक आहार करते हैं, तामसी और राजसी आहार नहीं लेते हैं। इन दोनों प्रकार के आहारों को भोगी, असंयमी, अव्रती गृहस्थ ही ग्रहण करते हैं किंतु तीर्थंकर प्रकृतिवाले मुनि राजसी ही आहार लेते हैं।

प्र.-3202 क्या सभी प्रकार का सात्त्विक आहार मोक्षमार्गी साधुजन ग्रहण करते हैं?

उत्तर- संख्यात, असंख्यात त्रसजीव और अनंत स्थावरजीवों के पिंड स्वरूप ऐसा सात्त्विक आहार मांसवत् होने से मोक्षमार्गी साधुजन ग्रहण नहीं करते हैं क्योंकि ऐसे आहार से मोक्षमार्ग की विराधना होती है।

प्र.-3203 उदराग्नि प्रशमनवृत्ति का पालन कौन करते हैं?

उत्तर- संसार शरीर भोगों से विरक्त मोक्षमार्गी साधु और श्रावकगण धर्म पालन और स्वास्थ्य लाभ के इच्छुक, विवेकवान, सदाचारी, सद्विचारी उदराग्नि प्रशमन वृत्ति का पालन करते हैं।

प्र.-3204 अक्षमृक्षण वृत्ति किसे कहते हैं और क्यों लेते हैं?

उत्तर- घी, तेल आदि चिकने पदार्थों को या इनके समान भोज्य पदार्थों के ग्रहण करने को अक्षमृक्षण वृत्ति कहते हैं। जैसे-गाड़ी को आसानी से चलाने के लिए धुरा में, चक्कों में ग्रीस आदि लगाते हैं अन्यथा सूखी होने से असमय में ही टूट जायेगी, गंतव्य स्थान पर नहीं पहुंच सकती है

ऐसे ही शरीररूपी गाड़ी को चलाने के लिये, मोक्षमहल में पहुंचने के लिये घी, तेलादि आहार में दातागण देते हैं और पात्र लेते हैं।

प्र.-3205 यदि इस वृत्ति का पालन न किया जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- इस वृत्ति का पालन न करने से शरीर असमय में अस्वस्थ या नष्ट हो जायेगा अतः उचित आहार लेना चाहिए अन्यथा मन विकृत होने से आत्मसाधना और समाधि बिगड़ जायेगी यही आपत्ति है।

प्र.-3206 डॉक्टर वैद्य की सलाह से क्या सभी प्रकार का आहार ले सकते हैं?

उत्तर- डॉक्टर वैद्य, दातागण लाख सलाह दें फिर भी विवेकानुसार ही शुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिए अन्यथा अभक्ष पदार्थों के सेवन से सभी कलंकित होंगे अतः योग्य सलाह मानना चाहिये, अयोग्य नहीं।

प्र.-3207 गोचरी किसे कहते हैं?

उत्तर- किसी के रूप, लावण्य, वस्त्राभूषणादि को न देखकर चारा चरने को गोचरी कहते हैं। यहाँ गो शब्द केवल उपलक्षण है। गो के समान सभी पशुपक्षियों को ग्रहण कर लेना चाहिए।

प्र.-3208 गोचरीवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- गाय बैल के समान साधुओं की, मोक्षमार्गस्थ पात्रों की आहारचर्या को गोचरीवृत्ति कहते हैं।

प्र.-3209 गो के समान ही साधुओं को केवल आहार देखना चाहिये, ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- शायद शंकाकार ने गाय को भोजन दिया नहीं है और न इस विषय को समझा है, यदि शंकाकार ने इस विषय को समझ लिया होता तो ऐसा नहीं बोलता क्योंकि गाय जब अपने खूंटे से बंधी है तब भोजन लेकर आने वाले की तरफ शीघ्र देखने लगती है, भोजन डालने पर भोजन को देखती है, सूंघती है, परीक्षण के बाद यदि योग्य है तो ग्रहण करती है अन्यथा छोड़ देती है। भोजन देकर जाने वाले को देखती रहती है। यदि खराब भूमि पर डाला है तो वह भोजन नहीं करती अर्थात् गाय भोजन को, भूमि को, आने जाने वाले को देखकर ग्रहण करती है ऐसे ही साधुओं को नीचे रखे पात्र को, आने जाने वाले दाता को तथा भोजन देखकर ग्रहण करते हैं किंतु भोजन के बहाने किसी के रूप लावण्य न देखें क्योंकि मन में विकार होने से तन में विकार आयेगा तब एक क्षणमात्र भी नग्नावस्था में खड़ा होना, बैठना, विहार करना, आहार आदि लेना मुश्किल हो जायेगा अतः योग्य अयोग्य देखकर, सोच समझकर आहार करना चाहिए।

प्र.-3210 आहार दानदाता को आते हुये क्यों देखना?

उत्तर- वह दानदाता विवेक या अविवेक पूर्वक आ रहा है, अशुद्ध वस्तुओं को, अशुद्ध दिनचर्या वालों को छूकर, जूते चप्पल पहने हुए, कहाँ से, किस गली से, किस स्थान से आ रहा है, उसके वस्त्र कोरे या धूले हुये हैं या पेटी आदि से निकालकर पहनकर आ रहा है, यदि शुद्धि और विवेकपूर्वक आ रहा है तो उसके हाथ से आहार लेना चाहिये अन्यथा उसका और उसके हाथ का भी आहार छोड़ देना चाहिये। असावधानी पूर्वक आते हुये को देखकर भी शुद्धि बुलवाकर आहार लेना सदोष आहार लेना और झूंठ बोलना सिखाना है। ऐसी दिनचर्या से दाता और पात्र का सुधार नहीं हो सकता है, न सद्धर्म की प्रभावना हो सकती है क्योंकि पापों को, असावधानी को त्यागने से सुधार होता है अन्यथा पतन होता है।

प्र.-3211 जब दाता ने शुद्धि बोल दी है तो आहार शोधकर क्यों लेना?

उत्तर- दाता ने अपने ढ़ंग से शुद्धि बोली है वह चरणानुयोग शास्त्रों का जानकार नहीं है, समिति न होने से प्रमादी है अतः अपने विवेक से, आँखों से स्वयं शोधकर, देखकर, भक्ष्याभक्ष्य का

विचार कर आहार ग्रहण करना चाहिए। क्या बिल्ली ने कभी दूध की रक्षा की है? नहीं। ऐसे ही अपनी प्रतिज्ञा को गृहस्थों के लिये सौंपना बेकार है अतः अपनी प्रतिज्ञा का स्वयं ध्यान रखना चाहिये। **पक्का आम कौन रखे अपने आप रखे न माई बाप रखे**। अपने व्रतों की रक्षा का ध्यान और कर्तव्य का पालन अपने आप करें दूसरों से नहीं कहें कि तुम मेरी प्रतिज्ञा का पालन कराना। **जाके पैर ना फटी बिवाई वह क्या जाने पीर पराई**। इस कारण जब गृहस्थों में नीतिनियम व्रत संयम नहीं हैं तो वे मोक्षमार्ग की रक्षा कैसे करकरा सकते हैं?

प्र.-3212 आहार देकर जाने वालों की तरफ क्यों देखना?

उत्तर- आहार देने के बाद में वह दानदाता छुआछूत करता हुआ अन्य साधूओं को भी अशुद्ध आहार देगा और वे भी आपका नाम सुनकर विश्वासपूर्वक आहार ले लेंगे तथा मालुम पड़ने पर कहेंगे कि जब आपको मालुम था कि यह दाता अशुद्धिपूर्वक आहार दे रहा है तो आपको मना करना चाहिये था पर आपने मना किया नहीं तो आप ही सदोषी हैं। ऐसे ही बाहर से छुआछूत करता हुआ असावधानी पूर्वक हमारे पास आकर, झूंठ बोलकर आहार देगा अतः दोनों को अशुद्ध आहार न करना पड़े सो जाते हुये को भी देखना चाहिये अन्यथा सदोष आहार करने कराने और अनुमोदना करने से अपनी आत्मा मलिन होगी।

प्र.-3213 मुनिजन आहार के लिए कैसे भ्रमण करते हैं और कैसा आहार लेते हैं?

उत्तर- **अण्णादमणुण्णादं भिक्खं णिच्चुच्चमज्झिमकुलेसु।**
घरपंतीहिं हिंडंति य मोणेण मुणी समादिंति।815।। मू.चा. अनगारभावना

अर्थः- सूर्य चंद्रमा के समान मुनिजन गरीब, धनी या मध्यमवर्ग के कुलों में गृहपंक्ति से मौन पूर्वक भ्रमण करते हैं और वे मुनि अज्ञात तथा अनुज्ञात भिक्षा ग्रहण करते हैं।

उज्जु तिहिं सत्तहिं वा घरेहिं जदि आगदं दु आचिण्णं।
परदो वा तेहिं भवे तव्विवरीदं अणाचिण्णं।।439।। मू.चा. पिंडशुद्धि अ.

अर्थः- सरल पंक्तिबद्ध तीन या सात घरों से आयी हुई वस्तु आचिन्न है। अपंक्तिबद्ध घरों से आयी हुई वस्तु अनाचिन्न है। ग्रहण करने योग्य निर्दोष आहार आचिन्न और इससे विपरीत अनाचिन्न है।

प्र.-3214 पंक्तिबद्ध घरों के बिना आया आहार क्या मुनिजन ग्रहण कर सकते हैं?

उत्तर- ऐसा आहार नाना प्रकार के दोषों से युक्त आगमविरुद्ध अनाचिन्न आहार नहीं ले सकते हैं।

प्र.-3215 श्वभ्रपूरण किसे कहते हैं, गड्ढों के भेद और उन गड्ढों को कैसे भरते हैं?

उत्तर- गड्ढों के भरने को श्वभ्रपूरण कहते हैं। गड्ढों के अनेक भेद हैं जैसे मंदिर, मकान बनाने के निमित्त नींव भरने के लिये, कुएं, खेती के, बाजार के, गाँव के बाहर के, रोड के किनारे के गड्ढे आदि। धर्मस्थान के, अपने निवास स्थान के, कुएं के गड्ढे शुद्ध और शुभ मिट्टी से, शेष गड्ढे सड़ी गली, शुद्ध अशुद्ध मिट्टी से भर देते हैं ऐसे ही मोक्षमार्गी साधकगण शुद्ध भोजनपान से तथा शेष लौकिक साधु, गृहस्थगण, राहगीर, गरीब, अमीर, भिखारी आदि जहाँ जैसा सड़ा गला भक्ष्याभक्ष्य, भोजनपान प्राप्त हुआ वैसा ही बिना सोचे समझे उदररूपी गड्ढे को भर लेते हैं। यदि मोक्षमार्गी साधकगण बिना विवेक के यथा प्राप्त आहार ग्रहण कर लेते हैं तो योगी और भोगियों में कोई भी अंतर न रहा अतः मोक्षमार्गी साधुगण आगमानुसार शुद्धिपूर्वक 46 दोष और 32 अंतरायों को टालकर शुद्ध भोजनपान ही ग्रहण करते हैं, अशुद्ध नहीं। यही श्वभ्रपूरणवृत्ति है।

प्र.-3216 श्वेतांबर साधुओं जैसे दि. जैन साधु भी आहार लें तो क्या दोष है?

उत्तर- तीर्थंकर आदि की आज्ञानुसार दिगंबर जैन मुनिवर्ग मिथ्यात्व अन्याय और अभक्ष्य के त्यागी, मूलगुणधारी, षडावश्यकों के पालक श्रावक श्राविकाओं से पंचसूना पाप रहित, सातगुण

और नवधाभक्ति सहित 46 दोषों को और 32 अंतरायों को टालकर आहार लेते हैं। जहाँ जैसा आहार प्राप्त हो वैसा ही आहार ले लेना चाहिये यह कहना कैसे ठीक हो सकता है? आजकल अधिकतर जैनी ही पानी छानना, जीवाणी पहुँचाना नहीं जानते हैं तब अजैन क्या जानें? होटल, बाजार वाले क्या जाने? मलमूत्र की शुद्धि, पसीने की शुद्धि, सूतक पातक की शुद्धि, रात्रि दिन के सहवास की शुद्धि, स्वयं के दिनचर्या की शुद्धि को वो क्या जानें? अनछने पानी की एक बूँद में जैनाचार्यों ने असंख्यातासंख्यात स्थावर तथा असंख्यात त्रसजीव और वैज्ञानिकों ने 36450 जीव बताये हैं। सो अनछने पानी को पीने वाला, अनछने पानी से बने भोजन को, चाय को, शर्बत आदि को खाने पीने वाला मांसाहार का, रक्तपान का त्यागी अहिंसावादी तीर्थंकर महावीर का शिष्य कैसे हो सकता है? इसलिये दिगंबर मुनियों को सर्वत्र सबके हाथ से आहार न लेकर सत्श्रावक श्राविकाओं से शुद्धाहार लेना चाहिये किंतु श्वेतांबर साधुओं जैसा आहार नहीं लेना चाहिये तथा जिसने गृहस्थावस्था में अपनी रोटीबेटी बिगाड़ ली है, जो आचारविचार से भ्रष्ट है वह साधु बनकर चर्या का क्या पालन करेगा यह सभी जानते हैं। आजकल अधिकतर समाज के सदस्यगण शिथिलाचार को दूर करने की बातें तो कर लेते हैं पर रोटीबेटी, आचारविचार न सुधारने के कारण शिथिलाचार 3 काल में भी दूर नहीं हो सकता है क्योंकि मुनिधर्म के लिए गृहस्थधर्म गृहस्थजीवन योनिभूत है अतः चारित्रधर्म और अध्यात्म मार्ग को सुधारने के लिए अपनी दिनचर्या सुधारना परम आवश्यक है तभी शिथिलाचार दूर हो सकता है।

प्र.-3217 गृहस्थों को बिना कष्ट दिये आहार ले लेना चाहिये ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- ऐसा नहीं कहना। आपके कथनानुसार यदि डॉक्टर, वैद्य ऐसा ही सोचें कि मरीज की इच्छानुसार मरीज का ऑपरेशन, इलाज बिना कष्ट दिये करूंगा तो क्या मरीज का इलाज और स्वास्थ्य सही हो सकता है? नहीं। तब **''न रहेगा मर्ज न रहेगा मरीज''** जैसी कहावत चरितार्थ होगी। ठीक ऐसे ही पुलिस सोचे कि अपराधी को बिना कष्ट दिये अपराध समाप्त हो जाये तो क्या यह संभव है? नहीं, असंभव है, ऐसे ही आचार्य भगवंत सोचें कि शिष्यों को कष्ट न हो तो अपराधी साधकों को कैसे प्रायश्चित्त देंगे। ऐसे ही दाताओं की इच्छानुसार आहार लेने से कभी भी दाताओं का सुधार नहीं हो सकता है। समाज के धरातल में जाने पर साधु कौन बनेगा? अतः प्रश्नानुसार आहारचर्या करना सर्वत्र हानिकारक है।

प्र.-3218 भ्रामरीवृत्ति किस प्रकार से होती है?

उत्तर- भ्रमरवत् साधुजन दाता के यहाँ अनेक पात्रों में रखे हुए दाता के हाथ से थोड़ी थोड़ी आहार सामग्री लेकर उदरपूर्ति कर लेते हैं किंतु बर्तन पूरा खाली कर साफ नहीं करते यह भ्रामरीवृत्ति की पद्धति है।

प्र.-3219 अनेक घरों से लाकर एकस्थान में आहार ग्रहण कर लें तो क्या दोष है?

उत्तर- भ्रमर के समान अनेक घरों से लाकर एक स्थान पर बैठकर आहार ग्रहण कर लेंगे, यह आपका कहना ठीक है, पर जरा सोचो! दिगंबर जैन साधु घरों से आहार मांगकर कैसे और किसमें लायेंगे? क्योंकि बर्तनों का त्याग है। मौनवृत्ति होने से कैसे बोलेंगे? बर्तनों में लायेंगे तो बर्तन त्याग की प्रतिज्ञा भंग होगी, मांजने पड़ेंगे या यों ही जूंठे बर्तन रखे रहेंगे तो सम्मूर्च्छन जीवराशि जनम मरण करेगी तब अहिंसा महाव्रत का पालन न होगा और धोयेंगे, मांजेंगे तो ज्यादा पानी, राख मिट्टी चाहिये या हिंसक निरमादि पावडर से बर्तन साफ करने पड़ेंगे तो आरंभ के कारण हिंसा होगी। रास्ते की अशुद्धियाँ होने से कायशुद्धि और आहारशुद्धि नहीं बन सकती है। दिगंबर मुनियों का एकभुक्त मूलगुण तथा एकस्थान उत्तरगुण होने से चलते फिरते आहार कैसे लेंगे? सचिताचित्त सामग्री के मिश्रण से संमिश्र नाम का दोष और सचित्त को अचित्त करने का भी दोष आयेगा। सो यह कार्य गृहस्थों का होने से साधु के स्वहस्त क्रिया करने का या गृहस्थपने का भी

प्रसंग आयेगा। दिगंबर जैन साधु करपात्र भोजी होने से एक ही दिन में घर घर जाकर भिक्षा नहीं ले सकते और गृहस्थों के घर से आहार लाकर एक स्थान पर आहार नहीं कर सकते हैं क्योंकि **दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ति एसणासमिदी॥63॥** नि.सा. दाता के हाथ से ही आहार लेने की प्रतिज्ञा होने से दाता के हाथ से ग्रहण करते हैं कारण अपने हाथ से लेकर खाने में जिह्वा वश में नहीं हो सकती है। अपने हाथ से इच्छानुसार ग्रास बनाकर, मिर्चमसाला मिलाकर खाया जायेगा या दूसरा देगा तो वह अपनी इच्छा से कम ज्यादा मिलायेगा या नहीं मिलायेगा, वह बनायेगा कुछ, निकालेगा कुछ, देगा कुछ जिससे इंद्रिय और मन वश में होगा, मौनव्रत न होने से बोलकर या ईशारा कर, मांगकर खाने में मनोनुकूल सामग्री की याचना की जायेगी। मिलने पर राग तथा न मिलने पर द्वेष होगा। ऐसी चर्या से गृहस्थपने का प्रसंग आयेगा, मांगकर खाने से महानता नष्ट होती है तथा अभिघट और अनाचिन्न दोष भी है अतः सदोष आहार भक्तों के आधीन होने से या भोजन की लोलुपता होने से लिया जाता है।

प्र.-3220 अभिघट दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- पंक्तिबद्ध सात घरों के बिना जहाँ कहीं से, किसी घर से, किसी गली से, किसी मौहल्ले से, किसी गाँव से, किसी शहर से लाया हुआ आहार लेना अभिघट दोष है।

प्र.-3221 आगमानुसार नित्य आहार करना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- आगमानुसार आहारचर्या से मुनियों को स्वास्थ्य लाभ और धर्मध्यान प्राप्त होता है। धर्म प्रभावना अच्छी होती है। यहाँ नित्य का अर्थ प्रतिदिन करना न होकर आगम पद्धति से आहार करना ऐसा है। नित्य का अर्थ प्रतिदिन करने पर साधु कभी भी उपवास नहीं कर सकता और उपवास करेगा तो नियम की विराधना होने से मुनिपद का कलंक माना जायेगा अतः नित्य का अर्थ जब भी आहार करना हो तब इन्हीं पाँचों वृत्तिओं से करना चाहिये अन्यथा वह साधु कुपुत्रवत् होने से मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं, अजैन ही है।

नोटः- यहाँ तक 3221 प्रश्नोत्तरों में 100वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 101-102वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

शरीर का पोषण कैसे?

रसरुहिरमंसमेदट्ठि सुकिलमलमुत्तपूयकिमिबहुलं।
दुग्गंधमसुइचम्ममयमणिच्च मचेयणं पडणं ॥101॥
बहुदुक्खभायणं कम्मकारणं भिण्णमप्पणोदेहो।
तं देहं धम्माणुट्ठाणकारणंचेदि पोसए भिक्खू॥102॥

रस रुधिर मांस मेदाऽस्थि शुक्र मल मूत्र पूय कृमि बहुलम्।
दुर्गंधमशुचिचर्ममयमनित्यमचेतनं पतनं॥101॥
बहुदुःखभाजनं कर्मकारणं भिन्नमात्मनोदेहः।
तं देहं धर्मानुष्ठानकारणं चेति पोषयेत् भिक्षुः॥102॥

देहो शरीर **रसरुहिरमंस** रस रक्त मांस **मेदट्ठिसुकिल** मेदा अस्थि शुक्र **मलमुत्तपूय** मलमूत्र पीब **किमिबहुलं** कृमियों से युक्त **दुग्गंधमसुइ** दुर्गंध अशुचि **चम्ममय** चर्ममय **अणिच्चमचेयणं** अनित्य अचेतन **पडणं** पतन शील **बहुदुक्खभायणं** अनेक दुःखों का पात्र **कम्मकारणं** कर्मों का कारण **अप्पणो भिण्णं** आत्मभिन्न **तं देहं** उस शरीर को **भिक्खू** मुनि **धम्माणुट्ठाणकारणं** धर्म का कारण **चेदि** जानकर **पोसए** पोषण करें।

प्र.-3222 धातु और उपधातु किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- शरीर में पुष्टिकारक एवं स्थिर रखने वाली रसादि को धातु व वातादि को उपधातु कहते हैं। **7 नाम:-** रस, रक्त, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र। **7 नाम:-** वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम, जठराग्नि।

प्र.-3223 शरीर कैसा है, किससे पुष्ट हुआ है और इसमें क्या क्या भरा है?

उत्तर- कर्मभूमिज मनुष्यों का औदारिकशरीर धातु, उपधातुओं का पिंड है, इन्हीं से पुष्ट हुआ है तथा संसार में इंद्रिय गोचर समस्त अपवित्र सड़े, गले, दुर्गंधित मलमूत्र आदि पदार्थ इसमें भरे हुये हैं।

प्र.-3224 इन धातुओं और उपधातुओं की उत्पत्ति किस क्रम से होती है?

उत्तर- **रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते।**
मेदोस्थि ततो मज्जं मज्जाच्छुक्रं ततः प्रजा॥1॥
वातः पित्तं तथा श्लेष्मा सिरा स्नायुश्च चर्म च।
जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः॥2॥ क.कां. पृ.28

अर्थ - रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से शुक्र और शुक्र से संतान की उत्पत्ति होती है। ये सात धातुएं क्रम से एक दूसरे में परिणमन करतीं हैं। इनके बनने में 30 दिन लगते है अतः प्रत्येक धातु को बनने में चार दिन और दो दिन के सातवें भाग प्रमाणकाल लगता है । वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चर्म और जठराग्नि ये सात उपधातुएं हैं। टीकाकर्त्री आ. आदिमतीजी। ध.पु. 6 पृ.63

प्र.-3225 कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों के औदारिक शरीर का स्वभाव कैसा है?

उत्तर- औदारिकशरीर दुर्गंध सहित, दुर्गंध स्वभावी, अपवित्र, नशाजालों से बंधा हुआ चर्म से ढका, जड़ स्वभावी, उत्पाद, व्यय धर्मवाला है, दुःखों का पिटारा है, संसार का कारण है, आत्मा से भिन्न है।

प्र.-3226 कर्मभूमिज मनुष्यों का औदारिक शरीर दुर्गंधमय है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मनुष्यगति, मनुष्यायु औदारिकशरीर नामकर्मोदय से सप्तमल धातु उपधातुओं वाला शरीर प्राप्त होता है। दुर्गंध नामकर्मोदय युक्त शरीर देखने में सुंदर, छूने में हर्षोत्पादक होने पर भी सूंघने में वेदना, उल्टी और घृणा होने लगती है, पसीना से, पेट खराब होने से सड़े मांस, मलमूत्रवत् दुर्गंध आने लगती है ऐसा कहा है।

प्र.-3227 कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य का शरीर अपवित्र अशुचि है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य शरीर घृणित रजोवीर्य से उत्पन्न होता है, मलमूत्र से पुष्ट होता है, इन्हीं को निकालता है संसार में जो भोज्य पदार्थ शुद्ध माने जाते हैं, इंद्रिय और मन से ग्रहण करने में अच्छे सुंदर मालुम पड़ते हैं किंतु वे शरीर के संसर्ग से अपवित्र घृणित हो जाते हैं जो सज्जनों के इंद्रियग्राह्य नहीं रह पाते हैं। यह शरीर अपने संसर्ग से पवित्र वस्तुओं को अपवित्र बना देता हैं, महान कृतघ्नी है।

प्र.-3228 यह शरीर चर्ममय है, चर्म से ढका हुआ है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यह शरीर ईंट पत्थर, गारे से बने मकान के समान है, बिना छाप के मकान मनोज्ञ नहीं लगता, छिद्र सहित होने से जीवजंतु भी निवासस्थान बना लेते हैं, चोर डाकू भी चढ़ सकते हैं, पानी अंदर आ जाता है, शीघ्र नष्ट हो जाता है और छाप सहित मकान सुंदर दिखता है, मनमोहक हो जाता है ऐसे ही शरीर में चमड़ा न होने से देखते देखते ही कौवे, मक्खियां, चीलादि खा जायेंगे। इनसे बचाना कठिन होगा, देखने में भय, घृणा, लज्जादि पैदा करेगा और दूसरे जन उपेक्षाभाव को भी प्राप्त हो जायेंगे अतः चमड़े से शरीर के अनेक दुर्गुण छिप जाते हैं, गर्मी सर्दी से, जीवजंतुओं

से रक्षा होती है फिर भी घृणा का स्थान है, पाप का साधन होने से कृतघ्नी है, इसकी कितनी भी सेवा करो तो भी प्रसंग आने पर धोखा ही देता है, साथ नहीं देता।

प्र.-3229 यह शरीर अनित्य है, अशाश्वत है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यह शरीर अनंतानंत पुद्गल परमाणुओं का पिंड है ये पुद्गल संयोग वियोग को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म के आधीन है, आयु के क्षय से नष्ट हो जाता है, परिवर्तनशील है, भोजनपान से धातुएं उपधातुएं यथायोग्य स्थिर अस्थिर होने से शरीर टिका रहता है और नहीं मिला या धातु उपधातुओं के ज्यादा निकलने पर या ठहरने पर बीमार पड़ जाता है, बिगड़ जाता है सो इसे अनित्य, अशाश्वत कहा है।

प्र.-3230 यह शरीर जड़ स्वभावी है, अचेतन है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि शरीर का स्वभाव ज्ञाताद्दष्टा होता तो शरीर भी जानने देखने लगता, सुख दुःखानुभव करता तब शरीर को ही संसार और मोक्ष की प्राप्ति होगी अतः शरीर में ये अवस्थाएं न होने से इसे जड़ कहा है।

प्र.-3231 शरीर नाना दुःखों का पिटारा है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जीर्ण शीर्ण, पूरण गलन स्वभावी होने से शरीर कहलाता है, जो बीमारियों का घर है, बिना रोग के शरीर तो रह सकता है किंतु बिना शरीर के रोग नहीं रह सकते अतः शरीर को दुःखों का पिटारा कहा है।

प्र.-3232 सर्वांग शरीर में कितने रोग होते हैं?

उत्तर- **पंचेव य कोडीओ तह चेव अडसट्ठि लक्खाणि ।**
णवणउदि च सहस्सा पंचसया होंति चुलसीदी।। भा.पा. 37 की टीका में

अर्थः- संपूर्ण शरीर में पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी रोग होते हैं।

प्र.-3233 सर्वांग शरीर के 1-1अंगुल में कितने कितने रोग होते हैं?

उत्तर- **एक्केक्कंगुलिवाही छण्णवदी होंति जाणमणुयाणं।37।** भा.पा. पूर्वार्द्ध

अर्थः- मनुष्य शरीर के एक-एक अंगुल प्रदेश में 96-96 रोग होते हैं।

प्र.-3234 शरीर कर्मों का कारण है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- वास्तव में आश्रवबंध के कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग हैं और योग का सद्भाव केवल शरीर में है या इन पाँचों प्रत्ययों के जीव अजीव ऐसे दो दो भेद हैं। ये भावप्रत्यय जीव स्वरूप और द्रव्य प्रत्यय अजीव रूप हैं। ये अजीव प्रत्यय शरीर में अंतर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं अतः आ. श्रीजी ने अभेद विवक्षा में शरीर रूपी काययोग को कर्मों का कारण कहा है।

प्र.-3235 शरीर के बिना आत्मा क्या कर्मों को ग्रहण कर सकती है?

उत्तर- नहीं, बिना शरीर के सिद्ध शुद्धात्मा कर्मों को ग्रहण नहीं करती है? अतः संसार और मोक्ष तत्त्व की सिद्धि के लिए शरीर का होना परम आवश्यक है।

प्र.-3236 संसार और मोक्ष की सिद्धि के लिए शरीर होना जरूरी है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- बिना शरीर के संसार नहीं होता है यह तो सभी जानते हैं किंतु आत्मा के साथ में शरीर है तभी तो मोक्ष प्राप्ति के लिए ध्यान के द्वारा शरीर का त्याग किया जाता है। यदि आत्मा के साथ में शरीर नहीं होता तो मुनिपद ध्यान, तप आदि की क्या जरूरत? अतः शरीर से ही संसार और मोक्ष की सिद्धि होती है।

प्र.-3237 बिना आत्मा के शरीर की रचना हो सकती है क्या?

उत्तर- नहीं, आत्मा के बिना शरीर की रचना नहीं हो सकती क्योंकि शरीर और आत्मा का निमित्तनैमित्तिक संबंध है कारण आत्मविकार के बिना पुद्गलों में शरीररूप से परिणमन नहीं हो सकता है।

प्र.-3238 बिना शरीर के क्या आत्मा रह सकती है?

उत्तर- हाँ, परम शुद्ध सिद्ध मुक्तात्मा बिना शरीर के रहती ही है।

प्र.-3239 तो क्या बिना आत्मा के औदारिक शरीर रह सकता है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही आत्मा के बिना शरीर भी रह सकता है क्योंकि जब अयोगकेवली भगवंत मोक्ष प्राप्त करते हैं तो उस समय बिना आत्मा के शरीर रहता ही है और समस्त प्राणियों का शरीर भी शरीर से आत्मा के निकल जाने पर कुछ समय के लिए शरीर स्थिर रहता ही है।

प्र.-3240 औदारिकशरीर के बिना संसारी आत्मा रह सकती है क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही संसारी आत्मा औदारिक शरीर के बिना सागरों पर्यंत देव नारकी अवस्था में रहती है किंतु सामान्य शरीर के बिना एकक्षण मात्र भी संसारी आत्मा नहीं रह सकती है क्योंकि **अनादि संबंधे च** सूत्र के द्वारा कहा गया है कि तैजस और कार्माण शरीरों का संबंध अनादि और सादि काल से है।

प्र.-3241 संसार में आत्मा और शरीर का कौन सा संबंध है?

उत्तर- संसार में शरीर और आत्मा का परस्पर में निमित्त नैमित्तिक एवं एकक्षेत्रावगाही संबंध है क्योंकि शरीर के निमित्त से आत्मा में नैमित्तिक भाव तथा वर्तमान में विकारों के निमित्त से शारीरिक वर्गणायें शरीर रूप से परिणमन कर जाती हैं यही इनका निमित्त नैमित्तिक संबंध है।

प्र.-3242 जीव कितने तत्त्व रूप में परिणमन करता है?

उत्तर- जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन 7 तत्त्वरूप में संसारी जीव परिणमन करता है।

प्र.-3243 अजीव पुद्गल कितने तत्त्व रूप से परिणमन करता है?

उत्तर- अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन छः तत्त्व रूप से अजीव/पुद्गल परिणमन करता है।

प्र.-3244 शरीर आत्मा से भिन्न स्वभाव वाला है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- आत्मा चेतन, अमूर्तिक, अरूपी तथा शरीर जड़, मूर्तिक, रूपी है अतः दोनों भिन्न[2] लक्षण वाले हैं।

प्र.-3245 जब शरीर का ऐसा स्वभाव है तो साधुजन इसका पोषण क्यों करते हैं?

उत्तर- भिन्न स्वभावी होने पर भी मोक्ष में जाने के लिये सहायक तथा धर्मानुष्ठान का आधार होने से तथा नौकरवत् मानकर मुनिजन शरीर का पोषण करते हैं। यद्यपि किराये के मकान का मालिक दूसरा है फिर भी अपने को उसमें निवास करना है सो उसकी मरम्मत कराते हैं, देखभाल भी करते हैं, सजाने में पैसे भी खर्च करते हैं ऐसे ही वास्तव में शरीर का मालिक पुद्गल है फिर भी प्रमत्तदशा पर्यंत मुनिजन आहारादि से इसकी मरम्मत भी करते कराते हैं, सुरक्षा भी करते हैं, अन्यथा आत्मसाधना कैसे करेंगे?

प्र.-3246 शरीर धर्मानुष्ठान का साधन कैसे या पाप का साधन क्यों नहीं?

उत्तर- व्यक्ति आत्मसुख और स्वाधीनता का इच्छुक है, संसार शरीर भोगों से विरक्त है तो धर्म पालन का, धर्मानुष्ठान का तथा यदि आत्मा रागी, विकारी, विषयभोगों का लंपटी है तो शरीर पाप का भी साधन बन जाता है अतः यह शरीर सुख और दुःख का साधन है सो जो जैसा चाहे वैसा साधन बना सकता है।

प्र.-3247 शरीर को धर्म का साधन क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि सभी द्रव्यगुणपर्यायों का परस्पर में गुण गुणी, धर्म धर्मी संबंध है और यह संबंध अनाद्यनंत है तथापि मोक्ष और मोक्षमार्ग की प्राप्ति जीव को ही होती है, प्राप्ति का मतलब है अप्राप्ति की प्राप्ति होना। मोक्षसाधक धर्म यद्यपि आत्मा में ही है तो भी इसकी प्राप्ति का बाह्य साधन शरीर ही है।

प्र.-3248 शरीर धर्म का अंतरंग साधन क्यों नहीं है?

उत्तर- सभी शुभाशुभ कार्यों का अंतरंग साधन स्वद्रव्य तथा बहिरंग साधन परद्रव्य ही होता है। कहा है-

न जातु रागादि निमित्त भावमात्मात्मनो याति यथार्ककांतः।

तस्मिन्निमित्तं पर संग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत्॥175॥ स.सा. कलश

अर्थ- आत्मा में रागादि उत्पन्न होने का निमित्तकारण परद्रव्य का संबंध ही है जो वस्तु का ही ऐसा स्वभाव है। जैसे सूर्यकांतमणि स्वयं सूर्य के निमित्त से ज्वाला रूप में परिणत होता है बिना सूर्योदय के नहीं।

नोटः- यहाँतक 3248 प्रश्नोत्तरों में 101-102वीं का गाथा का अर्थ हुआ अब 103वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सद्धेतु बिना आहार निष्फल

संजमतव झाणज्झयणविणाणए गेह्लये पडिग्गहणं।

वंचइ गिह्लइ भिक्खु ण सक्कदे वज्जिदुं दुक्खं॥103॥

संयमतपोध्यानाध्ययनविज्ञानाय गृह्लीयात् प्रतिग्रहणं।

वर्जयति गृह्लाति भिक्षुर्न शक्नोति वर्जितुं दुःखम्॥

भिक्खु मुनि **संजमतवझाणज्झयणविणाणए** संयम, तप, ध्यानाध्ययन, विज्ञान के हेतु **पडिग्गहणं** आहार को **गेह्लये** ग्रहण करें किंतु **वंचइ** इन हेतुओं के बिना यदि **गिह्लइ** आहार ग्रहण करता है तो वह **दुक्ख** सांसारिक जनम मरण आदि के दुःखों को **वज्जिदुं** छोड़ने में **सक्कदे** समर्थ **ण** नहीं होता है।

प्र.-3249 मुनिजन किस हेतु आहार ग्रहण करते हैं?

उत्तर- मुनिजन संयम, तप, ध्यानाध्ययन और विशेष ज्ञान की प्राप्ति, वैय्यावृत्ति के लिए या वेदना शमन हेतु, प्राणों की और धर्मचिंता के निमित्त आहार ग्रहण करते हैं। मू.चा. पिं.शु. 479

प्र.-3250 मुनिजन किन किन कारणों से आहार छोड़ते हैं?

उत्तर- **आदंके उवसग्गे तिरक्खणे बंभचेरगुत्तिओ।**

पाणिदयातवहेऊ सरीर परिहार वोच्छेदो॥480॥ मू.चा.

अर्थः- असाध्य रोग (आतंक) होने से, उपसर्ग होने पर, ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु, जीवदया के हेतु, तप के लिए और समाधिमरण के लिए आहारपानी का त्याग करते हैं।

प्र.-3251 मुनिजन इन हेतुओं के बिना आहार ग्रहण करें या छोड़ें तो क्या दोष है?

उत्तर- यदि मुनिजन उक्त हेतुओं के बिना आहार लेते या असत् निदान पूर्वक छोड़ते हैं तो वे मुनिपद से च्युत होकर अपना आदर, सम्मान, इज्जत आदि सद्गुणों को भी नष्ट कर देते हैं आदि अनेक दोष हैं।

प्र.-3252 सद्धेतु पूर्वक आहार ग्रहण करने से कौन कौन से फल प्राप्त होते हैं?

उत्तर- सद्धेतु पूर्वक आहार ग्रहण करने से मुनिजन परमयथाख्यात संयम को, चारित्र को, उत्तम तप को, केवलज्ञान को, व्युपरत क्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान को तथा मोक्ष को प्राप्त करते हैं यही उत्तम फल है।

प्र.-3253 इन सद्धेतुओं के बिना आहार ग्रहण करने से कौन से फल प्राप्त होते हैं?

उत्तर- इन सद्धेतुओं के बिना आहार करने वाले मुनिजन संसार भ्रमण को, दुःखों को छोड़ने में असमर्थ होकर पाप में लगे रहते हैं। पापों को पाप जानते हुए भी, कष्ट को कष्ट रूप में अनुभव करते हुए भी दुःखों से नहीं बच पाते हैं किंतु लिप्त रहते हैं आदि फल प्राप्त करते हैं।

प्र.-3254 उपरोक्त फल क्या आहार से प्राप्त होते हैं या अन्य कारणों से?

उत्तर लौकिक हेतु पूर्वक आहार करने से उपरोक्त फल प्राप्त होते हैं जो सर्वत्र निर्दोष है।

प्र.-3255 तो फिर ग्रंथकारजी ने इसे आहार का फल क्यों कहा?

उत्तर- अंतरंग और बहिरंग हेतु में अभेद विवक्षाकर कर ऐसा कथन किया है अतः कोई दोष नहीं है।

नोटः- यहाँतक 3255 प्रश्नोत्तरों में 103वीं का गाथार्थ पूर्ण हुआ अब 104वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कषायवान व्यंतर साधु?

कोहेण य कलहेण य जायणसीलेण संकिलेसेण।

रुद्देण य रोसेण य भुंजइ किं विंतरो भिक्खू।।104।।

क्रोधेन च कलहेन च याचनाशीलेन संक्लेशेन।

रुद्रेण च रोषेण च भुंक्ते किं व्यंतरो भिक्षुः।।

भिक्खू जो मुनि **कोहेण य** क्रोध से **कलहेण य** कलह से **जायण सीलेण** याचना से **संकिलेसेण** संक्लेश से **रुद्देण** रौद्रता से **रोसेण** रोष से **भुंजइ** भोजन करता है, अन्य भी दिनचर्या करता है तो भी वह **किं** क्या **य** साधु है या **विंतरो** व्यंतर?

प्र.-3256 इन क्रोधादि शब्दों का सामान्य अर्थ क्या है?

उत्तर- क्रोध- असहनशीलता। कलह- वैरविरोध, लड़ाईझगड़ा। याचनाभाव- मांगने का स्वभाव, या मांगने की आदत। संक्लेश- मिथ्यादर्शनादि, आर्तरौद्रध्यान। रौद्रता- क्रूरता, दुष्टता। रोष- विशेष क्रोध का नाम।

प्र.-3257 आहार के समय क्रोध करने वाले साधु को व्यंतर क्यों कहा?

उत्तर- व्यंतर बाधा वाला मानव, व्यंतर तथा उसका परिवार कितना दुःखी होता है और मंत्रतंत्रवादियों के द्वारा ताड़ित किया जाता है ऐसे ही आहार के समय क्रोधी साधु दानदाताओं को दुःखी करता हुआ स्वयं दुःखी होता है अतः क्रोध व्यंतर के समान होने से क्रोधी साधु को व्यंतर कहा है।

प्र.-3258 आहार के समय कलह करने वाले साधु को व्यंतर क्यों कहा?

उत्तर- आहार करते समय लड़ाई झगड़ा करने वाले साधु को व्यंतर कहा है क्योंकि व्यंतर बाधायुक्त व्यक्ति परिवार के, अड़ौस पड़ौस के साथ में झगड़ लेता है जिससे प्रेम, भक्ति, वात्सल्य, प्रभावनादि सद्गुण नष्ट हो जाते हैं ऐसे ही आहार के समय कलही साधु दानदाताओं की, दर्शकों की भक्ति, आदि भावनाओं को नष्ट कर देता है अतः कलही साधु को व्यंतर कहा है।

प्र.-3259 याचनाशील मांगकर खाने वाले साधु को व्यंतर क्यों कहा है?

उत्तर- व्यंतर बाधा वाला व्यक्ति पूर्व संस्कारानुसार दाताओं से भोगसामग्री मांगता है तब दाता समर्थ हो या असमर्थ फिर भी दे देता है, ठीक ऐसे ही आहार के समय याचक साधु को दाता दे ही देता है पर विश्वास टूट जाता है। इस प्रकार दाता और पात्र दोनों दुःखी होने से याचक साधु को व्यंतर कहा है ।

प्र.-3260 याचना करने से क्या हानि प्राप्त होती है?

उत्तर- **देहीति वचनं श्रुत्वा देहस्थाः पंचदेवताः।**
मुखान्निर्गत्य गच्छन्ति श्री ह्री धी धृति कीर्तयः॥151॥ आ.शा.॥ टीका

अर्थ- मुझे दो इस वचन को सुनकर देह में स्थित श्री (शोभा) लज्जा, बुद्धि, धैर्य और कीर्ति ये पाँच देवता मुख से निकल जाते हैं, याचना करने से साधुओं या हर किसी को ऐसी ही हानि प्राप्त होती है।

प्र.-3261 जो हानि नहीं चाहते हैं वो क्या करें?

उत्तर- जो सज्जन, महापुरुष आत्म सुखार्थी उपर्युक्त पंचदेवताओं को अपने अंतरंग में स्थान देना चाहते हैं तो वे लौकिक भोगविलास वाली सामग्री की याचना नहीं करें अन्यथा हानि ही हानि होगी।

प्र.-3262 आहार के समय संक्लेश करने वाले साधु को व्यंतर क्यों कहा?

उत्तर- आहार के समय संक्लेशवान साधु स्वयं परेशान होता है और दाताओं को, दर्शकों को भी परेशान करता है क्योंकि संक्लेशभाव स्व, पर, उभयघातक है अतः संक्लेशवान साधु को व्यंतर कहा है।

प्र.-3263 रौद्रध्यान से परिणत साधु को व्यंतर क्यों कहा?

उत्तर- रौद्रध्यान 5वें गुणस्थान तक होता है और मुनियों का 6वाँ, 7वाँ गुणस्थान होता है। रौद्रध्यान होते ही मुनि स्वपरोभय घातक हो जाते हैं। **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** की जगह **परस्परोपद्रवो जीवानाम्** या **परस्परापग्रहो जीवानाम्** ऐसा पढ़ने से परस्पर में उपद्रव या अपकार होने से इसे व्यंतर कहा है।

प्र.-3264 आहार के समय रोष से परिणत साधु को व्यंतर क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि रोष क्रोध कषाय का पयार्यवाची है फिर भी क्रियापद भिन्न भिन्न होने से, असहनशीलता की मात्रा में अंतर होने से अलग[2] नाम दिये हैं इसलिये रोष परिणाम वाले साधु को व्यंतर कहा है।

प्र.-3265 क्या यहाँ सभी व्यंतरों को ग्रहण करना चाहिये या किसी किसी को?

उत्तर- शास्त्रों में और लोक व्यवहार में सभी व्यंतरों के उत्पात देखे सुने नहीं जाते हैं किंतु यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच इन चारों के उपद्रव देखे सुने जाते हैं। धर्मक्षेत्रों में, धर्मात्माओं, धर्म पर आये हुये संकटों को दूर करने के लिये, अनाड़ियों को भगाने के लिये तथा धर्म प्रभावना के निमित्त यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये चारों उपकार करते हुए आहार, धन, जन से संपन्न कर देते हैं और अनार्यों को मारपीट कर जन धन भी नष्ट कर देते हैं अतः गाथानुसार सभी व्यंतरों को ग्रहण न कर शेष चार व्यंतरों को ही ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-3266 क्या सभी यक्ष सम्यग्दृष्टि होते हैं?

उत्तर- नहीं, जो यक्ष जिनेंद्र भगवान की बारह सभाओं में धर्मोपदेश सुनने के लिये जाते हैं और धर्मोपकरण ग्रहण करते हैं वे सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं शेष भजनीय है। सम्यग्दृष्टि भी हो सकते हैं और नहीं भी।

प्र.-3267 आहार के बिना शेष समयों में कषायवान साधु को क्या कहना चाहिये?

उत्तर- कोई भी समय हो कषायवान् साधु को सदाकाल छद्मवेशी, स्व पर वंचक ही कहना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 3267 प्रश्नोत्तरों में 104वीं गाथा का अर्थ हुआ अब आगे 105वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

साधुओं की आहारचर्या

दिव्वुत्तरण सरिच्छं जाणिच्चाहो धरेइ जइ सुद्धो।
तत्तायसपिंडसमं भिक्खू तह पाणिगयपिंडं।।105।।

दिव्योत्तरणसदृशं ज्ञात्वा अहो धारयति यदि शुद्धो ।
तप्तायस्पिंडसमं भिक्षु तथा पाणिगतपिंडम् ।।

जइ यदि **पाणिगय** हस्तगत **पिंडं** ग्रास को **तत्तायसपिंडसमं** तप्त लोहपिंडवत् तथा **दिव्वुत्तरण सरिच्छं** दिव्य नौकावत् **सुद्धो** शुद्ध **जाणिच्चाहो** जानकर **भिक्खू** मुनि **धरेइ** ग्रहण करता है **अहो** आश्चर्य है।

प्र.-3268 भिक्षु किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- गृहत्यागी वैरागी संसार से निरपेक्ष भावना वाले निर्दोष धर्मध्यानी भिक्षावृत्ति पूर्वक आहार करने वाले दिगंबर जैन निर्ग्रंथ मुनियों को या **भिक्षुकौ द्वौ तु निर्दिष्टौ** 10वीं, 11वीं प्रतिमावालों को भिक्षु कहते हैं। उ.ध्य. 856। 5 भेद हैं। **नामः-** पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रंथ और स्नातकमुनि।

प्र.-3269 दिगंबर जैन निर्ग्रंथ मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- दिशारूपी वस्त्रों को धारण करने वाले जितेंद्रिय, जितकषायी, अंतरंग बहिरंग परिग्रह के त्यागी, मौन पूर्वक आत्मसाधना करने वाले को दिगंबर जैन निर्ग्रंथ मुनि कहते हैं।

प्र.-3270 दिगंबर जैन श्रावक किसे कहते हैं?

उत्तर- दिगंबरजैन धर्मस्थ आचार्योपाध्यायसाधुओं के अनुयायी भक्तों को दिगंबरजैन श्रावक कहते हैं।

प्र.-3271 पुलाक मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- **पञ्चानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद् बलादन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति। स.सि. अ.9 का. 914।** 28, 25 और 36 मूलगुण पालने की प्रतिज्ञा करके हीन या उत्तम संहनन होने पर परिणाम हीन होने से पाँच महाव्रत तथा छठवाँ रात्रिभोजनत्याग नामक अणुव्रत की भी विराधना कदाचित् द्रव्यक्षेत्रकालभाव के निमित्त से करने वाले को पुवालवत् (प्यांरवत्) पुलाकमुनि कहते हैं।

प्र.-3272 बकुश मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- चरणानुयोगानुसार 28, 25, 36 मूलगुणों का निर्दोष पालने वालों को बकुश मुनि कहते हैं।

प्र.-3273 कुशील मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- संज्वलन क्रोधादि कषायों के आधीन तथा शरीर, पीछी कमंडलु आदि उपकरणों की सुंदरता में लालायित साधुओं को कुशील मुनि कहते हैं।

प्र.-3274 निर्ग्रंथ मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्यानुयोगानुसार 28, 25, 36 मूलगुणधारी मोहनीयकर्म के समूल उपशमक, उपशांतमोही, क्षपक, क्षीणमोही ऐसे ग्यारहवें बारहवें गुणस्थान वाले मुनियों को निर्ग्रंथ मुनि कहते हैं।

प्र.-3275 स्नातक मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन 28, 25, 36 मूलगुणधारी मुनियों ने घातियाकर्मों को क्षय कर अनंत चतुष्टय प्राप्त कर

लिया है ऐसे सयोगकेवली अयोगकेवली को स्नातक मुनि कहते हैं।

प्र.-3276 इन मुनियों के कौन कौन से संहनन होते हैं?

उत्तर- पुलाक, बकुश, कुशील मुनि छहों संहनन वाले होते हैं। उपशांतमोही निर्ग्रंथ मुनि तीन उत्तम संहनन धारी तथा क्षीणमोही निर्ग्रंथ मुनि और स्नातक सयोगी अयोगी केवली वज्रवृषभनाराच संहनन वाले होते हैं।

प्र.-3277 ये पाँचों मुनि किन किन क्षेत्रों और कालों में होते हैं?

उत्तर- विदेहक्षेत्रों में ये पाँचों मुनि होते हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों के चौथे तथा पंचमकाल के प्रारंभ में ये सभी मुनि होते हैं किंतु पंचमकाल के मध्य में और अंत पर्यंत एकमात्र पुलाक मुनि ही होते हैं।

प्र.-3278 पंचमकाल के प्रारंभ में ये पाँचों मुनि कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- चौथेकाल के अंत में जन्मे मनुष्य छहों संहनन वाले होते हैं। इन्होंने चौथे के अंत में या पंचमकाल के प्रारंभ में मुनिदीक्षा लेने के बाद परिणामों के उत्कृष्ट या हीन होने के कारण पाँचों प्रकार के मुनि अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं, एक जीवनकाल में एक ही द्रव्यसंहनन का उदय होता है किंतु वीर्यांतराय कर्म के क्षयोपशम के अनुसार भावसंहनन में हीनाधिकपना होता रहता है।

प्र.-3279 तीर्थंकर प्रकृति वाले जीव पुलाक मुनि हो सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य हो सकते हैं क्योंकि चरणानुयोगानुसार शुद्धाहार ग्रहण करना यद्यपि ऐषणा समिति है तो भी माया और लोभ कषाय पूर्वक आहारसंज्ञा प्रमाद रूप होने से अंतरंग परिग्रह भी है तथा आहार करने से परिग्रह त्याग महाव्रत की विराधना होती है तभी तो उत्तमार्थिक प्रतिक्रमण के समय सभी प्रकार के आहारादि का त्याग करते कराते हैं। यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मुनियों के महाव्रतों की विराधना नहीं होती है तो अंतरंग तपों में प्रथम नंबर के प्रायश्चित्त तप कैसे करेंगे? और प्रथम तप न होने से अंतिम अंतरंग सम्यक्तप को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? सो महाव्रतों के विराधक होने से ये पुलाकमुनि ही है।

प्र.-3280 महाव्रतों की उत्पत्ति और विराधना कैसे होती है?

उत्तर- आदि की तीन चौकड़ी कषायों के अभाव में महाव्रतों की उत्पत्ति होती है तथा संज्वलन कषाय के तीव्रोदय से प्रमाद रूप में परिणत होने से महाव्रतों की विराधना होती है।

प्र.-3281 इन पाँचों मुनियों में कौन सदोष और कौन निर्दोष हैं?

उत्तर- अपने अपने गुणस्थानानुसार कषायों के, विकारों के अभाव में निर्दोष हैं और योगों एवं कषायों के उदयानुसार प्रवृत्ति होने से सदोष हैं। आश्रवबंध का अभाव होने से अयोगकेवली पूर्ण निर्दोष हैं किंतु ये भी अघातिया कर्मोदय एवं सत्त्व की अपेक्षा सदोष हैं, अशुद्ध हैं।

प्र.-3282 आश्रव बंध होना सदोषता का चिह्न है या निर्दोषता का?

उत्तर- आश्रव बंध होना सदोषता का ही सूचक है क्योंकि बिना योग और कषायों के, भावविकारों के आश्रव बंध हो नहीं सकता है। यदि बिना भाव विकारों के आश्रव बंध होने लगे तो सिद्धों के तथा अजीवादि पाँच द्रव्यों के भी आश्रवबंध के अस्तित्व मानने का प्रसंग आयेगा।

प्र.-3283 जिनकल्पी दीक्षा किन किन संहननवालों के होती है?

उत्तर- **जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।।53।।** बो.पा.

अर्थः- जिनमार्ग में जिनदीक्षा छहों संहननवालों के कही है।

प्र.-3284 मुनिजन आहार किसके समान समझकर ग्रहण करते हैं?

उत्तर- खदान से खोदकर निकाले गये पत्थर, कंकड, मिट्टी के कणों को तपातपाकर, कूट कूट कर अलग करने से लोहा पूर्ण शुद्ध हो जाता है। शुद्ध लोहे से देश, समाज, धर्म, धर्मायतनों की रक्षा के लिये अस्त्र, शस्त्र, खेतीकिसानी, घरगृहस्थी के योग्य पात्र बर्तन आदि तैयार कर लेते हैं ऐसे ही पूर्ण शुद्धि पूर्वक तैयार किये गये आहार को 32 अंतरायों और 46 दोषों को टालकर तप्त लोहपिंडवत् जानकर ग्रहण करते हैं।

प्र.-3285 शुद्ध आहार क्यों ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर - खेती या गमले आदि में शुद्ध बीज खादपानी देने से फल अच्छा प्राप्त होता है और गलत खादपानी देने से पौधे फलहीन होकर असमय में नष्ट हो जाते हैं ऐसे ही शुद्ध आहार के सेवन से साधु के विशेष मोक्षमार्ग की सिद्धि अच्छी होती है जिससे सांसारिक उत्तम सुख भोगकर बाद में इसको तृणवत् समझकर त्यागकर, साधु होकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं अतः इसी प्रयोजन से शुद्ध आहारपानी लेना चाहिये।

प्र.-3286 अशुद्ध आहार किसे कहते हैं?

उत्तर- गृह त्यागियों ने, साधकों ने, मुनियों ने, स्वादिष्ट पौष्टिक आहार सामग्री में, आहार बनाने की क्रिया में अपना योग उपयोग लगाया तथा त्रसस्थावर जीवों का, इनके मृतक शरीरों का समावेश हो गया है तो यह आहार अशुद्ध है अर्थात् अशुद्ध भाव तथा वस्तुओं के संसर्ग से आहार अशुद्ध कहलाता है।

प्र.-3287 दूषित आहार पानी ग्रहण करने से क्या हानि है?

उत्तर- देखो! आजकल खेतों में अशुद्ध खादपानी और कीटनाशक दवाइयां डालने से लाखों एकड़ भूमी बंजर हो गयी। जब खेती अशुद्ध खादपानी औषधि आदि के प्रयोग से फलहीन हो गई तो जो व्यक्ति अशुद्ध सड़ा गला, होटलों का, बाजारों का, मद्य, मांस मधु का, कंदमूलों का, अनछने पानी का बना भोजन, रात्रिभोजन कर रहे हैं सो इसीसे जहर जैसे वचन मुंह से निकलते हैं। धार्मिक व्रत नियमों को पालने में नानी याद आ जाती है। गाय, भैंस से शीघ्र दूध निकालने के लिये इंजेक्शन लगाने से उनकी क्या हालत होती है? भय से, वेदना से बेचैनी को प्राप्त होती हुई दूध छोड़ देती है ऐसे दूधादि के सेवन से न्यायनीति की, धर्म की, परिवार की बातें सही रूप में न समझ कर साधु और गृहस्थ भैंस के समान आचरण करने लगे हैं। जैसे **भैंस के आगे बीन बाजे भैंस पड़ी पगराय** के अनुसार अपने दुश्चरित्र के द्वारा धर्म को, समाज को दूषित करते हैं। गुरुओं के कहने पर भी वे शीघ्र मना कर देते हैं कि हम नहीं चाहते किंतु पराधीनता से करना पड़ रहा है, हम क्या करें? इसीसे अपना जीवन, परिवार, समाज बदनाम हो रहा है। अतः पशुओं के खाने योग्य औषधि, भोजनपानादि से पशुओं के गुण, लक्षण मनुष्यों में आ रहे हैं जो सभी के प्रत्यक्ष है। जैसे शरीर से नग्नपना प्रदर्शित करना, खड़े[2] पेशाब करना, जहाँ कहीं चलते फिरते भोजनपान करना, दुर्भावना से हर किसीको देखना, वार्तालाप करना, हाथ मिलाना, चुंबन लेना, आलिंगन करनादि पाश्चात्य संस्कृतिवत् दिनचर्या होने लगी है। कालेजों में रेगिंग हो रही है, स्कूलों में, कालेजों में, कामक्रीड़ा को समझाने के लिये पढाई के विचार चल रहे हैं सो इन विचारों से, चेष्टाओं से तिर्यंचयोनि का संस्कार पड़ेगा। गर्भपात, भ्रूणहत्या आदि अपराध अधिक मात्रा में होने लगेंगे। धर्मविवाह की परंपरा समाप्त होने से वर्णसंकर, वीर्यसंकर, जातिसंकर दोषों से युक्त संतानें पैदा होगीं आदि कारणों से इस आर्यखंड का नाम धर्मक्षेत्र की जगह कुकर्म क्षेत्र, पापक्षेत्र हो जायेगा। इनका जीवन भोगशाला जैसा होने से इनकी संतानें लूलीलंगड़ी, अंधीबेहरी, अनेक रोगों से युक्त पैदा हो रहीं हैं यही दुष्फल प्राप्त हो रहा है।

प्र.-3288 अशुद्ध औषधि ग्रहण करने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- अमर्यादित औषधियों के सेवन से तन मन धन और धर्म ये चारों ही नष्ट होना फल है।

प्र.-3289 इनका जीवन भोगशाला जैसा हो जायेगा ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जिस प्रकार भोगशाला में केवल इंद्रियभोग भोगे जाते हैं या मनोरंजन किया जाता है ऐसे ही इस कुकर्मभूमि में प्राणियों की दिनचर्या भोगविलास रूप पापमय होने से भोगशाला कहा है।

प्र.-3290 शुद्ध आहार को दिव्य नौका की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- जैसे नौका पथिक को जलाशय से पार करा देती है वैसे ही यह निर्दोषाहार भवसमुद्र से पार कराकर मोक्षनगर में पहुंचा देता है अतः शुद्धाहार को निर्दोष नौका की उपमा दी है।

प्र.-3291 अनंत परमाणुओं से उत्पन्न स्कंध ही अशुद्ध है तो आहार शुद्ध कैसे?

उत्तर- कर्मसिद्धांत की अपेक्षा यद्यपि यह अशुद्ध पुद्गलपिंड है फिर भी चरणानुयोग की अपेक्षा त्रसजीवों का पिंड न होने से, मलमूत्र मांस रक्त आदि धातु उपधातुओं का मिश्रण न होने से इसे शुद्ध कहा है।

प्र.-3292 एकेंद्रियजीवों से भुक्तपिंड को पुनः भोगने को क्यों कहा?

उत्तर- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीवों के द्वारा ग्रहण कर छोड़े गये औदारिक शरीर रूप अशुद्ध पुद्गल पिंड होने पर भी त्रसजीवों का क्लेवर न होने से वमन नहीं है, उल्टी नहीं है क्योंकि स्थावर एकेन्द्रियजीवों के मुंह न होने से वमन नहीं माना है तथा इनके गुदाद्वार, मूत्र द्वार न होने से मलमूत्र नहीं माना है अतः मल और वमन न होने से शुद्ध एवं भोगने योग्य कहा है क्योंकि इनके बिना प्राणियों का जीवन बच नहीं सकता। परमाणु एकमात्र शुद्ध है और स्कंध शुद्धाशुद्ध दोनों प्रकार का माना है।

प्र.-3293 पानी में त्रसजीवों का जन्म मरण और मलमूत्र का क्षेपण होने से शुद्ध कैसे?

उत्तर- यह बात सत्य है कि जल में जलकायिक जीवों के साथ साथ जलचर त्रसजीवों का जन्म मरण और मलमूत्र का क्षेपण होने से अशुद्ध है, अपेय है तभी तो यमसल्लेखना के समय संपूर्ण आहारपानी का त्याग किया कराया जाता है फिर भी पानी स्वयं छन्ना है इसमें कैसी भी अशुद्ध वस्तु डाली जाये, पड़ जाये तो वह पानी थोड़ी देर में, थोड़ी दूर में स्वयं ही अशुद्धि को दूर कर स्वच्छ हो जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि पानी अधिक होना चाहिये। यदि पानी थोड़ा और अशुद्ध वस्तु अधिक है तो कैसे साफ होगा? जैसे आँख में कुछ गिर जाये तो आँख उस कचरे को दूर कर चैन से रहती है यह बात सबके अनुभव में आ रही है।

प्र.-3294 हवा भी अशुद्ध वस्तुओं को स्पर्श करके आती है तब वह शुद्ध कैसे?

उत्तर- यद्यपि हवा भी सभी प्रकार के अशुद्ध मलमूत्र चर्म, हड्डी, मांस, शराब, बूचड़खाना, धूमपान आदि को स्पर्श कर आ रही है फिर भी अपवित्र स्थान से आती हुई हवा कुछ दूर जाकर वृक्षादि के संसर्ग से पुनः शुद्ध हो जाती है। जैसे पानी जगह[2] जाकर रूप रस गंधादि को बदलता हुआ गंदेपन को नीचे दबाता हुआ शुद्ध हो जाता है ऐसे ही हवा शुद्ध सुगंधित पौधों को पाकर शुद्ध और अशुद्ध सामग्री को पाकर अशुद्ध हो जाती है अन्यथा हवा को सर्वथा अशुद्ध मानने से गृहस्थों और साधुओं को मद्य, मांस, मलमूत्र के सेवन करने से कोई भी धर्मात्मा नहीं बन सकता अतः पानी के समान हवा भी छन्ने के समान है।

प्र.-3295 त्रसजीवों से निर्मित खाद जड़ों में डालने से मांसादि खाने का दोष क्यों नहीं?

उत्तर- सब्जी, धान्यादि के पौधों की जड़ों में अनेक त्रसजीव जिंदा और मुर्दे रहते हैं। उनका मलमूत्र एवं शरीर भी खाद बनकर वनस्पति के रूप में परिणमन कर जाता है। जिस खेत में मनुष्यों का, पशु पक्षियों का मलमूत्र पड़ा होगा वहाँ ज्यादा धान, सब्जी, फलों का उत्पादन होता है पर पौधों के नीचे जो मलमूत्र त्रसजीवों का कलेवर पड़ा हुआ है वह सीधा पौधों में, वृक्षों में, बेलों में न

जाकर किंतु मिट्टी बनकर रस, शाखा प्रतिशाखा, पत्ते, फल और फूल रूप में परिणमन करता है। यदि ऐसा न माना जाये तो जैसा मलमूत्र मांस, रक्तादि का रूप रस गंध स्पर्श है वैसा ही सब्जी, फल, धान्य, औषधियों में होना चाहिये। जैसे मनुष्य जैसा खाता पीता है तो उनके मुंह से, नाक से, मलमूत्र से वैसी ही गंध वाली हवा निकलती है। अतः वनस्पतियों में यह दोष नहीं आता क्योंकि सभी जीवों का अपना अपना स्वच्छ होना स्वतंत्र स्वभाव है जो परसंयोग से अशुद्ध होकर भी कुछ समय में पुनः साफ शुद्ध हो जाता है।

प्र.-3296 जलादि के समान पृथ्वी के सेवन में ये दोष क्यों न माने जायें?

उत्तर- शंकाकार ने जो दोष दिये हैं वे दोष नहीं आते क्योंकि इस परिवर्तनशील संसार में दोषों से गुण और गुणों से दोष रूप में परिणमन अनादिकाल से है और अनंत काल तक होता रहेगा। सीधे उसी रूप में ग्रहण किये जायें या व्यक्ति बदलकर दे तो दोष अवश्य आयेगा किंतु वस्तु परिणामी होने से, विरुद्ध, अशुद्ध वस्तुओं को ग्रहण करने का स्वभाव न होने से, परप्रयोग के बिना अपने आप परिणमन कर रहा है तो क्या दोष है? ऐसे ही खनिज पदार्थों को, सेंधा नमकादि को समझना चाहिये अथवा मनुष्यों और समस्त प्राणियों का जीवन निर्वाह भी स्थावर जीवों के शरीर से हो रहा है। यह अनादि सादि परंपरा है। इनका त्याग करना अशक्य है अथवा अध्यात्मदृष्टि से सभी पुद्गलों का ग्रहण करना सदोष ही है। प्रतिज्ञा करने के बाद में भी इनका प्रयोग करने से प्रतिज्ञा भंग होती है क्योंकि महाव्रतों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार दोष उत्पन्न होते हैं इसलिये इन समस्त दोषों को दूर करने के लिये यमसल्लेखना धारण की जाती है।

प्र.-3297 सोना चांदी हीरा आदि धातुओं के सेवन करने में दोष क्यों नहीं है?

उत्तर- उपरोक्त धातुयें जहरीली होने से उसी रूप में खाने योग्य नहीं होतीं हैं किंतु पिष्टी, भस्म बनाने के बाद में सेवने योग्य हो जातीं हैं। मलधातुओं का, मांस, रक्तादि का संमिश्रण न होने से तथा पृथ्वीकायिक जीवों के बिना पृथ्विशरीर होने से शुद्ध है अतः चरणानुयोगानुसार इनके सेवन करने में दोष नहीं है।

प्र.-3298 अग्नि सेवन में कैसे आती है?

उत्तर- शरीर में अग्नि न हो तो जीवन थोड़ी ही देर में समाप्त हो जायेगा अतः अग्नि का भी सेवन करते हैं जैसे भोजन पकाने में शुद्ध अग्नि होनी चाहिये, अशुद्ध नहीं। कोई भी सदाचारी सद्विचारी मनुष्य मनुष्यों के, कौवे कुत्ते के मलमूत्र से, चमड़े, मुर्दे आदि की अग्नि से भोजन नहीं पकाते हैं। इनकी अग्नि से भोजन पकाया जाये तो भोजन का स्वाद, रूप, गंध आदि भी बिगड़ जायेंगे कारण धर्मात्मा पुरुष अशुद्ध सामग्रियों का सेवन करने लगें तो सज्जन दुर्जन, सदाचारी दुराचारी मनुष्यों में कोई भेद नहीं रहेगा।

प्र.-3299 तो क्या मोक्षमार्गी सभी वनस्पतियों को भोजन में ले सकते हैं?

उत्तर- नहीं, मोक्षमार्गी उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्र साधारण वनस्पति और सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति को छोड़कर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतियों से तैयार की गई भोजन सामग्री ही ग्रहण कर सकते हैं, सभी नहीं।

प्र.-3300 आदि की दो वनस्पतियों को भोजनार्थ प्रयोग करने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि मोक्षमार्गी ने आदि की दो वनस्पतियों को भोजन में ग्रहण किया तो मोक्षमार्ग की विराधना, अनाज्ञाकारीपना, अनभिज्ञता के साथ साथ लोकनिंदा व अधःपतन होगा यही आपत्ति है।

प्र.-3301 साधारण वनस्पति किसे कहते हैं और पहंचान के चिह्न कौन कौन हैं?

उत्तर- जिस वनस्पति के अनेक जीव स्वामी हों, अनंत जीवों का पिंड हो, एकसाथ एक ही समय में जनम मरण, श्वासोच्छ्वास, भोजनपान ग्रहण करने वालों को साधारण वनस्पति कहते हैं।

पहंचानः- जिनकी स्नायु, रेखाबंध, और गांठ अप्रकट हों, जिनका भंग करने पर समान भंग हो, दोनों भंगों में परस्पर तंतु न लगा रहे तथा छिन्न करने पर भी जो उग जावे उसे साधारण वनस्पति जानना चाहिये।

प्र.-3302 सप्रतिष्ठित प्रत्येकवनस्पति किसे कहते हैं और पहंचान के चिह्न कौन[2] हैं?

उत्तर- जिस वनस्पति का एक ही जीव स्वामी हो किंतु बाहर से आकर या उसी वनस्पति में अन्य जीव पैदा हो गये हैं, निवास करने लगे हैं तथा जिनका संशोधन कर अलग करना असंभव है, अशक्यानुष्ठान है उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। **पहंचानः-** जिन वनस्पतियों के मूल, कंद, त्वचा, नवीन कोंपल, क्षुद्र शाखा, पत्र, फूल, फल तथा बीज इनको तोड़ने से समान भंग हो जाये, बिना तंतु के भंग हो जायें, जिस तना की छाल मोटी हो वह अनंत जीवों से सप्रतिष्ठित है।

प्र.-3303 अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं और पहंचान के चिह्न कौन[2] हैं?

उत्तर- जिस वनस्पति का एक ही जीव स्वामी हो, कदाचित् बाहर से आकर कोई जीव निवास करने लगा हो, शोधकर अलग करना संभव है तो उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। अगूढ़सिरा, अगूढ़संधि, अगूढ़पर्व, असमभंग, छिन्नअरुह। जैसे नारियल, आम्र, इमली आदि।

प्र.-3304 गूढ़सिर किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन प्रत्येकशरीर वनस्पतियों की बाह्य स्नायु अदृश्य हों अप्रकट हों उसे गूढ़सिर/ अप्रकट वनस्पति कहते हैं। जैसे ककड़ी आदि में बाह्य लंबी लकीरें स्पष्ट नजर आती हैं पर कच्ची में नहीं।

प्र.-3305 गूढ़संधि किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन वनस्पतिओं में फलों में संधि के बीच में फाँके अप्रकट हो जैसे नारंगी, दाड़म आदि में पतला पीला छेहा दो भागों के बीच में होता है किंतु ज्यादा कच्ची अवस्था में वह छेहा अप्रकट होता है या जिनमें फाँके नहीं पड़ी हों जैसे कच्चे संतरा, नारंगी आदि।

प्र.-3306 गूढ़पर्व किसे कहते हैं?

उत्तर- पर्व गांठ को कहते हैं। जैसे गन्ना, बांसादि की दो पोरियों के बीच में गांठ होती है पर इसके अप्रकट होने को गूढ़पर्व कहते हैं। ये तीनों कच्ची अवस्था में अप्रकट होने से साधारण वनस्पति हैं।

प्र.-3307 समभंग किसे कहते हैं?

उत्तर- तोड़ने पर समान भंग हो और परस्पर में तंतु न लगा रहे तो ये समभंग सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति हैं।

प्र.-3308 छिन्नरुह किसे कहते हैं?

उत्तर- काटने पर, तोड़ने पर पुनः उग जायें वे छिन्नरुह प्रत्येक वनस्पति हैं। जैसे आलू आदि

प्र.-3309 जब प्राणों की विराधना करना हिंसा है तो हिंसा के त्याग में अंतर क्यों?

उत्तर- जीवहिंसा की अपेक्षा समानता अवश्य है तो भी गृहस्थों के त्रसहिंसा का त्याग होता है, स्थावर हिंसा का नहीं। त्रसहिंसा तथा निष्प्रयोजन स्थावर हिंसा के बिना गृहस्थजीवन का निर्वाह हो सकता है। प्रयोजन होने पर भी गृहस्थ ने स्थावर हिंसा का त्याग कर दिया तो कदम कदम पर कष्ट सामने आयेंगे अतः स्थावर जीवों के शरीर का जीवन निर्वाह में यथायोग्य प्रमाणानुसार उपयोग में लेना दोष नहीं है क्योंकि गृहस्थ हो या साधु इनके उपयोग के बिना समय गुजारना अशक्यानुष्ठान है इनके उपयोग में भी दोष है पर महादोष नहीं है फिर भी दोषों से बचना चाहिये अतः गृहस्थों को संकल्पी हिंसा का सर्वथा सर्वत्र त्याग कर शेष आरंभी हिंसा, उद्योगीहिंसा और विरोधीहिंसा का भी यथावसर समय सीमा पर्यंत त्याग करना चाहिये। कहावत है **आम के आम गुठलियों के दाम।** गृहस्थों में भी इनका प्रतिसमय प्रयोग तो होता नहीं है जब प्रयोग करना पड़े

तब करें बाद में पुनः त्याग कर दें अतः पात्रों के भेद से हिंसा के त्याग में भी भेद हैं।

प्र.-3310 कौन सी हिंसा कब और कहाँ पर होती है?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय से परिणत जीव के सर्वत्र सर्वकाल संकल्पी हिंसा, आरंभी हिंसा गृहकार्यों में, उद्योगीहिंसा आजीविका संबंधी खेती, व्यापार, नौकरी आदि कार्यों में, जब धर्म में, परिवार में, समाज में, देश में या अपने जीवन में बलात् शत्रुओं द्वारा संकट उत्पन्न किया जाये, उपद्रव कर शांति भंग कर दें तब शांति बनाये रखने के लिये शत्रुओं का निग्रह करने और मित्रों का संग्रह करने में विरोधीहिंसा होती है।

प्र.-3311 किस समय हिंसा का त्याग करना चाहिये?

उत्तर- जैसे जिससमय आरंभ का कार्य कूटना, पीसना, बुहारना, पानी भरना, आग जलाना कर रहे हो तब निष्प्रयोजनीय उद्योगी और विरोधीहिंसा का, जब उद्योग में, खेतीबाड़ी में लगे हो तब आरंभी, विरोधीहिंसा का तथा जब युद्ध हो रहा है तब आरंभी, उद्योगीहिंसा का त्याग करना चाहिये क्योंकि प्राणियों का उपयोग एक साथ एक समय में अनेक कार्यों में न लगकर एक ही जगह में लगेगा तब बुद्धि पूर्वक शेष का त्याग कर देने से तत्संबंधी पाप कर्मों का आश्रवबंध नहीं होगा और आत्मा में निर्मलता भी आयेगी।

प्र.-3312 आरंभ अनेक प्रकार का होता है तब क्या करें?

उत्तर- अनेक आरंभों में से जिस समय किसी एक आरंभ में योग उपयोग लग रहा हो तब उसके बिना शेष सभी आरंभों का त्याग करना चाहिये क्योंकि संकल्प पूर्वक त्याग किये बिना कर्मों का आश्रव बंध चालू रहता है और संकल्प पूर्वक त्याग होने से तत्संबंधी आश्रवबंध रोक दिया जाता है सो यही मोक्षमार्ग है।

प्र.-3313 आजीविका संबंधी कार्य अनेक होने से कर्मों से कैसे बच सकते हैं?

उत्तर- **असि-** शस्त्र धारण करके देशसैनिक, पहरेदारी के द्वारा आजीविका चलाना। **मषि-** लेखन कार्य करके, मुनीमगिरी करके आजीविका चलाना। **कृषि-** धान्य, सब्जी, फलों की, तिलहन, कपास, लकडी आदि का उत्पादन कर आजीविका चलाना। **सेवा-** पढ़ाई लिखाई कराके, नौकरी करके सेवा कर मालिक की आज्ञा का पालन कर आजीविका चलाना। **शिल्प-** कारीगरी व चित्रकला आदि के द्वारा आजीविका चलाना। **व्यापार-** सोना चांदी, कपड़ा, किराना आदि के द्वारा आजीविका चलाना। ये सभी कार्य एक व्यक्ति नहीं करता है तो जो जिस कार्य को कर रहा है उसको छोड़कर शेष सभी का त्याग कर देना चाहिये क्योंकि त्याग से मन निश्चिंत होता है। संवर तत्त्व की और विशेष पुण्य की प्राप्ति होती है। लौकिक और लोकोत्तर कार्य अच्छी तरह से चलते रहते हैं आदि उपायों के द्वारा कर्मों से बच सकते हैं।

प्र.-3314 कर्मों से बचने के उपाय कौन कौन हैं?

उत्तर- असि मषि आदि षट्कर्मों से जो पापकर्मों का उपार्जन किया है वह पूजादान आदि षडावश्यकों के द्वारा नष्ट कर दिया जाता है, इन उपायों से गृहस्थ पापकर्मबंधन से विशेषतः बच जाते हैं।

प्र.-3315 शत्रुओं के समान विरोधी हिंसा भी अनेक प्रकार की है तब क्या करें?

उत्तर- जिसके द्वारा अपनी शांति भंग हो, आत्म साधना में, मोक्षमार्ग में बाधा उत्पन्न हो सो उस माध्यम को, व्यक्ति को शत्रु कहते हैं और धर्म की, समाज, देश की शांति की रक्षा के लिये साम दाम दंड भेद नीति के द्वारा शत्रु के पृथक् करने को, दूर करने को विरोधी हिंसा कहते हैं। जब विरोध का प्रसंग प्राप्त होता है तब शेष आरंभ और उद्योग नजर में नहीं आते हैं क्योंकि उस समय योग और उपयोग की धारा उसी रूप में परिणमन करती रहती है। ऐसे समय में त्याग का संकल्प न होने से आरंभी हिंसा, उद्योगी हिंसा संबंधी कर्मों का आश्रवबंध होता रहता है और त्याग का

संकल्प होने से कर्मों का संवर हो जाता है यह करना चाहिये।

प्र.-3316 जब हम हिंसा नहीं कर रहे हैं तब कर्मों का आश्रवबंध कैसे होगा?

उत्तर- **हिंसाया अविरमणं हिंसा परिणमनमपि भवति हिंसा।**

तस्मात् प्रमत्तयोगे प्राणव्यपरोपणं नित्यम् ।।48।। पुरु.सि. आ.अमृतचंद्रजी।

अर्थः- हिंसापाप करो या न करो तो भी हिंसा ही है। अतः प्रमाद के योग में सतत जीवहिंसा होती ही है।

व्युत्थानावस्थायां रागादीनां वशप्रवृत्तायाम्।

म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा ।। ४६।। पुरु.सि. आ.अमृतचंद्रजी।

अर्थः- रागादिक भावों के आधीन अवस्था में जीव मरो या न मरो किंतु हिंसा निश्चयकर आगे ही दौड़ती है। पापत्याग का संकल्प न होने से पाप का आश्रवबंध चालू रहता है क्योंकि अभिप्राय ऐसा रहता है कि प्रसंग आने पर खानापीना पड़ेगा, लगाना, पहनना पड़ेगा आदि रागादिभाव होने से, त्याग का संकल्प न होने से प्रमाद और कषाय के सद्भाव में आश्रव बंध कैसे रुकेगा या रोका जायेगा? अतः आत्मशुद्धि सिद्धि के लिये दृढ़ता सहित ही पापों के त्याग का संकल्प अवश्य करना चाहिये।।

प्र.-3317 झूंठ आदि पापों को नहीं करने से क्या कर्मों का संवर हो जाता है?

उत्तर- पापों को न करने से या केवल पापों का त्याग करने से कर्मों का संवर नहीं होता है किंतु त्याग के साथ साथ नियम का कर्मठता पूर्वक पालन करने से संवर निर्जरा तत्त्व की प्राप्ति होती है।

प्र.-3318 सैनिकों से देश की, समाज की क्या रक्षा नहीं होती है?

उत्तर- केवल सैनिकों से देश, समाज, प्रजा, धर्म की रक्षा होती है क्या? केवल औषधि के रखने से बीमारी दूर होती है क्या? नहीं किंतु शत्रुओं के द्वारा उपद्रव किये जाने पर यथायोग्य शत्रु पक्ष का प्रतिकार करने से, सामना करने से, युद्ध करने से देशादि की रक्षा होती है अन्यथा नहीं ऐसे ही औषधि को आवश्यकतानुसार मात्रानुसार प्रयोग में लाने से ही बीमारी दूर होती है।

प्र.-3319 इन दृष्टांतों का क्या मतलब है?

उत्तर- जिस प्रकार सैनिकों के या औषधि के यथायोग्य प्रयोग में लाने से ही देश आदि की, स्वास्थ्य आदि की रक्षा हो सकती है ऐसे ही व्रत नियमों को धारण करने के बाद में निष्कपट, निःस्वार्थ तथा सावधानी पूर्वक पालन करने से ही कर्मों का बंधन दूर होकर मोक्ष प्राप्त होता है इन दृष्टांतों का यही मतलब है।

नोटः- यहाँतक 3319 प्रश्नोत्तरों में 105वीं का गाथा का अर्थ हुआ अब 106वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

पात्रों के भेद

अविरद देस महव्वय आगम रुइणं वियारतच्चणहं।
पत्तंतरं सहस्सं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।106।।

अविरतदेशमहाव्रत आगमरुचीनां विचारतत्त्वानां।
पात्रांतरं सहस्त्रं निर्दिष्टं जिनवरेन्द्रैः।।

जिणवरिंदेहिं जिनेंद्रदेवों के द्वारा **अविरददेसमहव्वय** अविरत, देशविरत, महाव्रत, **आगमरुइणं** आगमरुचिक **वियारतच्चणहं** तत्त्व विचारक आदि **सहस्सं** हजारों **पत्तंतरं** पात्रों के भेद **णिद्दिट्ठं** कहे गये हैं।

प्र.-3320 पात्र और दाता किसे कहते हैं?

उत्तर- लोटा, ग्लास, थाली, कटोरी आदि वस्तुओं को, भोजनपान की सामग्री रखने के साधनों को, रत्नत्रय पूर्वक मोक्षमार्ग की साधना करने वालों को या मोक्षमार्ग में सहायभूत निर्दोष साधनसामग्री के ग्रहण करने वाले को पात्र कहते हैं अथवा लेने वाले, ग्रहण करने वाले को पात्र और देने वाले को दाता कहते हैं।

प्र.-3321 पात्र और दाता के कितने कितने भेद हैं?

उत्तर- उत्तम मध्यम और जघन्य के भेद से पात्रों के तथा दाताओं के तीन तीन भेद हैं।

प्र.-3322 पात्रों और दाताओं के ये भेद क्यों हो गये हैं?

उत्तर- चारोंगतियों में गुणस्थानानुसार परिणामों में भेद होने से पात्र और दाता के भी भेद हो गये हैं।

प्र.-3323 जघन्य पात्रों के कितने भेद हैं?

उत्तर- जघन्य पात्रों के असंख्यात भेद हैं क्योंकि चौथा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है।

प्र.-3324 नारकी जघन्य पात्र कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- यद्यपि यह बात सत्य है कि नारकी सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र आहार औषधि ग्रहण नहीं करते हैं फिर भी ज्ञानदान, आवासदान अभयदान तो ग्रहण करते ही हैं।

प्र.-3325 नारकी तीनों दान कैसे ग्रहण करते हैं और कौन देता है?

उत्तर- तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले जघन्यपात्र सम्यग्दृष्टि नारकी प्रथम नरक के प्रथम पाथड़े से लेकर तीसरे नरक के प्रथम पाथड़े पर्यंत रहते हैं वहाँ छह महीने आयु के शेष रहने पर देवगण उस नारकी को क्षेत्रजन्य, कालजन्य, आगंतुक तथा नारकियों द्वारा मारकाट के संकट को प्राप्त नहीं होते, न कोई उपसर्ग कर पाता है अर्थात् अभयदान, आवासदान एवं ज्ञानदान ये तीनों असुरकुमार देवों तथा वैमानिक देवों के द्वारा प्राप्त करते हैं। गणना की अपेक्षा असंख्यात हैं क्योंकि शास्त्रों में तीसरे नरक तक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में धर्मदेशना लब्धि धर्मोपदेश रूपी ज्ञानदान को भी एक कारण माना है।

प्र.-3326 तीसरे नरक से सातवें नरक तक क्या नारकी दान लेते हैं?

उत्तर- तीसरे नरक से आगे सातवें नरक तक देवों का गमनागमन न होने से दान नहीं ले पाते हैं।

प्र.-3327 यदि वहाँ दाता नहीं हैं तो क्या पात्र भी नहीं हैं?

उत्तर- वहाँ पर दाता नहीं हैं फिर भी रत्नत्रय होने से जघन्य पात्रपना मौजूद हैं क्योंकि दान न लेने पर भी पात्रपने का अभाव नहीं होता है। जैसे यहाँ मुनिजन एकस्थान पर स्थिर होकर उपवास सहित मौन पूर्वक ध्यान करते हैं तो उस समय पाँचों समितियों का प्रयोग न होने से अभाव नहीं माना है ऐसे ही उन नरकों में दाता न होने से पात्रपने का अभाव नहीं माना जाता है अथवा वहाँ उन नरकों में भी दाता का अस्तित्व बन जाता है। जैसे यहाँ पर मारपीट करने वालों के भी साथी होते हैं और वे भी अपने साथियों को साथ देते हैं ऐसे ही नरकों में मारने वालों के और पिटने वालों के भी साथी सहानुभूति देने से दाता हो जाते हैं।

प्र.-3328 चौथे से सातवें नरक तक नारकी किन कारणों से रत्नत्रय प्राप्त करते हैं?

उत्तर- चौथे से सातवें नरक तक नारकी कोई जातिस्मरण से और कोई वेदनानुभव से रत्नत्रय प्राप्त करते हैं।

प्र.-3329 नरकों में नारकी रत्नत्रय का पालन कैसे करते हैं?

उत्तर- **किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जा। कुदो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसम्माइट्ठीसु चेव किरियाकम्मुवलंभादो। णिरयगदीए णेरइएसु किरियाकम्माणं दव्वट्ठदा असंखेज्जा। एवं पढमाए पुढवीए वत्तव्वं। बिदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव।** सातों नरक के नारकी सम्यग्दृष्टियों में ही पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र क्रियाकर्म पाया जाता है। सातों नरकों में क्रियाकर्म की द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता असंख्यात हैं। इस प्रकार प्रथम पृथ्वि में और इसी प्रकार दूसरी से सातवीं पृथ्वि तक कथन करना चाहिये। ध.पु. 13 पृ. 94 सूत्र 31 अतः क्रियाकर्म के द्वारा रत्नत्रय का पालन करते हैं।

प्र.-3330 जघन्यपात्र सम्यग्दृष्टि नारकी मरण कर किस गति को प्राप्त होते हैं?

उत्तर- जघन्य पात्र सम्यग्दृष्टि नारकी बालमरण कर एकमात्र कर्मभूमि आर्यखंड में शूद्रवर्ण के बिना शेष तीन उच्चवर्ण वाली मनुष्यगति को ही प्राप्त होते हैं, शेष गतियों को, शेष स्थानों को नहीं।

प्र.-3331 नारकी मध्यम उत्तमपात्र क्यों नहीं होते हैं?

उत्तर- नारकियों में देशसकलसंयमघाति अप्रत्याख्यानावरणीयादि कर्मोदय होने से व्रती बनने के परिणाम ही नहीं होते या संयमानुकूल द्रव्यक्षेत्रकालभाव न होने से अणुव्रती महाव्रती नहीं बन पाते हैं।

प्र.-3332 सभी देवगण कौन से पात्र हैं तथा कितनी संख्या में हैं?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि इंद्रइंद्राणियां देवदेवांगनायें ये सभी जघन्य पात्र हैं, मोक्षमार्गी हैं। तीसरे गुणस्थान वाले पात्रापात्र रूप में मिश्रपात्र हैं पहले दूसरे गुणस्थान वाले अपात्र हैं, गणना की अपेक्षा ये सभी असंख्यात हैं।

प्र.-3333 सभी देव देवांगनायें अणुव्रती और महाव्रती क्यों नहीं हो सकते हैं?

उत्तर- भोगभूमि होने के कारण तथा अप्रत्याख्यानावरणादि कषायोदय होने से अणुव्रती महाव्रती नहीं बन पाते तथा ये सभी सदाचारी सद्विचारी होते हुए भी अन्याय अभक्ष्य का, व्यसनों का सेवन नहीं करते हैं।

प्र.-3334 ये देवगण जघन्य पात्र होने से कौन सा दान ग्रहण करते हैं?

उत्तर- ये देवगण तीर्थंकरों, मुनियों, अणुव्रतियों और देवों से अभयदान, ज्ञानदान ग्रहण करते हैं।

प्र.-3335 ये देवगण और नारकी जघन्य पात्र क्यों हैं?

उत्तर- इनके मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का उदयाभाव या सत्ताभाव होने से ये जघन्य पात्र हैं।

प्र.-3336 ये देवगण धर्मदेशना को प्राप्त होते हैं या देशनालब्धि को?

उत्तर- मिथ्यादृष्टि देवगण देशनालब्धि को तथा सम्यग्दृष्टि देवगण धर्मदेशना प्राप्त करते हैं।

प्र.-3337 क्या सभी देव तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले होते हैं?

उत्तर- भवनत्रिकों में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले नहीं होते हैं किंतु वैमानिक देवों में कोई कोई होते हैं।

प्र.-3338 वैमानिक देवों में मारकाट और उपसर्ग न होने से अभयदान कैसे?

उत्तर- नारकियों जैसी वैमानिकदेवों में मारकाट और उपसर्ग नहीं होते पर मृत्युसूचक माला मुरझाने पर दूसरे सम्यग्दृष्टि देवगण संबोधन करते हैं तथा तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वालों की माला नहीं मुरझाती है किंतु भय संज्ञा के उत्पन्न होने पर किसी के माध्यम से उपदेश को प्राप्त कर अभयदान

को प्राप्त होते हैं केवल मारकाट उपसर्ग होना ही भय का कारण नहीं है किंतु भय संज्ञा के लिए अन्य कारण भी हो सकते हैं।

प्र.-3339 सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र सभी देवगण मरण कर किस गति में आते हैं?

उत्तर- सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र सभी देवगण बालमरण कर एकमात्र कर्मभूमि आर्यखंड में उच्चवर्ण वाले उच्च कुलीन मनुष्यों में भी पुरुषवेदियों में ही आते हैं, शेष में नहीं।

प्र.-3340 तिर्यंचगति में कौन कौन से पात्र होते हैं?

उत्तर- कर्मभूमिज तिर्यंचगति में अणुव्रती पंचम गुणस्थानवर्ती मध्यमपात्र और अव्रती जघन्यपात्र होते हैं।

प्र.-3341 क्या सभी तिर्यंचों में मध्यमपात्र और जघन्यपात्र होते हैं?

उत्तर- कर्मभूमिज सैनी पंचेंद्रिय तिर्यंच तीनों वेद वाले, संमूर्च्छन जन्म वाले मेंढक, मछली, मगरमच्छ आदि अणुव्रती मध्यमपात्र, तथा अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र और भोगभूमिज तिर्यंच जघन्य पात्र होते हैं। एकेंद्रिय जीवों से लेकर असैनी पंचेंद्रिय जीवों तक एकमात्र मिथ्यात्व गुणस्थान वाले होने से अपात्र ही हैं।

प्र.-3342 कर्मभूमिज तिर्यंच क्या सभी प्रकार का दान ग्रहण करते हैं?

उत्तर- हाँ, कर्मभूमिज तिर्यंच सभी प्रकार का दान ग्रहण करते हैं और मोक्षमार्गी तिर्यंचों को मनुष्य तथा तिर्यंच परस्पर में चारों प्रकार का दान देते हैं अतः ये दाता और पात्र दोनों हैं।

प्र.-3343 मध्यमपात्र और जघन्यपात्र तिर्यंच मरणकर किस गति में जाते हैं?

उत्तर- कर्मभूमिज तिर्यंच मध्यमपात्र बालपंडित मरण कर एकमात्र देवगति में ही, बद्धायुष्क तिर्यंच जघन्य पात्र बालमरण कर चारों गतियों में, अबद्धायुष्क तिर्यंच जघन्यपात्र बालमरण कर एकमात्र देवगति में ही जाते हैं क्योंकि आदि की तीन आयु, गतियों का प्रायोग्यलब्धि में ही बंधापसरण हो जाता है।

प्र.-3344 भोगभूमिज तिर्यंच जघन्य पात्र मरणकर किस गति में जाते हैं?

उत्तर- भोगभूमिज तिर्यंचतिर्यंचनी सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र मरकर एकमात्र वैमानिकदेवों में ही जाते हैं।

प्र.-3345 मनुष्यों में कितने पात्र होते हैं?

उत्तर- मनुष्यों में उत्तमपात्र मध्यमपात्र और जघन्यपात्र ये तीनों अपने सभी अवांतर भेदों सहित होते हैं।

प्र.-3346 क्या सभी मनुष्यों में सभी पात्र होते हैं?

उत्तर- सभी मलेच्छखंडों में, मलेच्छाचरणवालों में, उच्चवर्णियों में भी नीचाचरणवालों में, संमूर्च्छन मनुष्यों में एकमात्र मिथ्यादृष्टि होने से अपात्र ही हैं। भोगभूमिज, कुभोगभूमिज आर्यआर्या जघन्यपात्र और कर्मभूमिज आर्यखंडोत्पन्न उच्चकुलों में सभी पात्र हो सकते हैं।

प्र.-3347 आर्यखंडोत्पन्न सभी वर्णों में सभी पात्र होते हैं क्या?

उत्तर- आर्य खंडोत्पन्न सभी वर्णों में सभी पात्र नहीं होते हैं किंतु जो जन्म से या आचरण से नीचगोत्री हैं, जिन्होंने अपनी रोटी बेटी बिगाड़ली है, जिनकी सुधरने की इच्छा नहीं है ऐसे मनुष्य अपात्र हैं ये पात्रों से और पात्रों की भूमिका से बहुत दूर हैं। जिनकी रोटी बेटी, आचार विचार सही है वे ही सत्संगति के कारण भूमिका बनाकर अपने बलवीर्य को न छिपाकर उत्तम, मध्यम, जघन्यपात्र बन जाते हैं या बन सकते हैं।

प्र.-3348 उच्च वर्णों में क्या सभी पात्र होते हैं?

उत्तर- उच्च कुलीन मनुष्यों में कोई अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र, कोई 11 प्रतिमाधारी तक मध्यमपात्र और कोई पूर्ण उत्कृष्ट वैरागी हो मुनिपद धारण कर उत्तमपात्र बन जाते हैं।

प्र.-3349 यह पात्रपना क्यों स्वीकार करता है?

उत्तर- जैसे धनार्थी व्यापारादि करता है वैसे ही आत्मसुखार्थी पात्रपना स्वीकार करता है।

प्र.-3350 ये उत्तम मध्यम और जघन्यपात्र मरण कर किस गति में जाते हैं और क्या नवीन आयु का बंध किये बिना मरण हो सकता है?

उत्तर- चरमशरीरी उत्तमपात्र एकमात्र मोक्ष जाते हैं। अबद्धायुष्क अचरमशरीरी उत्तम, मध्यम, जघन्यपात्र एकमात्र वैमानिकदेव होते हैं। बद्धायुष्क जघन्यपात्र चारों गति में जाते हैं। हाँ, अवश्य ही नवीन आयुबंध किये बिना एकमात्र मोक्ष में ही जाते हैं किंतु अचरमशरीरी नवीन आयु बांधकर ही मरण करते हैं।

प्र.-3351 कौन सा अपसरण किस नंबर का है?

उत्तर- नरकगतिद्विक पाँचवें नं. का, तिर्यंचगतिद्विक और उद्योत प्रकृति 23वें नं. का और मनुष्यगति-द्विक, औदारिकशरीर, औदारिक शरीरांगोपांग और वज्रवृषभनाराचसंहनन 33वें नं. का बंधापसरण है।

प्र.-3352 बंधापसरण किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रायोग्यलब्धि के भावों में इतनी निर्मलता स्वच्छता और सरलता आ जाती है कि पापकर्म प्रकृतियां अपने आप विच्छेदपने को प्राप्त होने लगती है जैसे रणक्षेत्र में अत्यंत देदीप्यमान तेजस्वी स्फूर्ति वाले सुभट के प्रवेश करते ही छोटे छोटे सुभट कोई डरकर भाग जाते हैं, कोई शस्त्र छोड़ देते हैं, कोई समर्पित हो जाते हैं कोई शत्रुता ही छोड़कर मित्र बन जाते हैं।

प्र.-3353 पात्रता की प्राप्ति किन परिणामों से होती है?

उत्तर- यह समीचीन पात्रता करणलब्धि के अंतिम अनिवृत्तिकरण परिणामों से प्राप्त होती है।

प्र.-3354 सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से पात्रता किस प्रकार की प्राप्त होती है?

उत्तर-असंयम पूर्वक रत्नत्रय से जघन्य पात्रता, सम्यक् देशचारित्र से मध्यम पात्रता तथा सकलचारित्र रूप सम्यक्चारित्र से उत्तम पात्रता प्राप्त होती है।

प्र.-3355 उत्तमपात्रपना और मध्यमपात्रपना कैसे प्राप्त होता है?

उत्तर- आदि की 12 कषायाभाव में उत्तमपात्रता तथा आदि की 8 कषायाभाव में मध्यमपात्रता आती है।

प्र.-3356 यह पात्रता किन जीवों को प्राप्त होती है?

उत्तर- उच्च वर्ण वाले उच्च गोत्री द्रव्य से पुरुष वेदी और भाव से तीनों वेद वालों को उत्तमपात्र मुनिपद प्राप्त होता है। चारों वर्ण वालों को, उच्चगोत्री नीचगोत्री द्रव्य और भाव से तीनों वेद वालों को मध्यमपात्रपना प्राप्त होता है। इनको अणुव्रती ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका बनने, बनाने में आगम से कोई विरोध नहीं है।

प्र.-3357 द्रव्य से नपुंसकवेदियों को क्षुल्लक क्षुल्लिका दीक्षा कैसे दी जा सकती है?

उत्तर- द्रव्य नपुंसकों को आवरण सहित, लंगोटी धारी दीक्षा देने में कोई आपत्ति नहीं है।

प्र.-3358 द्रव्य से नपुंसकवेदी या बांझ को दीक्षा देने में स्वच्छंदता क्यों न आयेगी?

उत्तर- जिन्होंने नसबंदी, परिवार नियोजन करा लिया है, गर्भधारण करने कराने की शक्ति को नष्ट कर दिया है पुरुषत्व शक्ति या स्त्रीत्वशक्ति को समाप्त कर दिया है तो वे आगम दृष्टि से इन

दीक्षाओं के पात्र नहीं है, यहाँ तक कि दान देने की पात्रता भी नहीं रही क्योंकि इनके कुकर्म करने में स्वच्छंदता आ चुकी है किंतु नासमझ होने के कारण वर्तमान में अपात्रों को दीक्षा दी जाने से जिनधर्म में कलंक पैदा होता जा रहा है।

प्र.-3359 द्रव्य स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदियों को नग्न मुनिदीक्षा क्यों नहीं दी जाती?

उत्तर- द्रव्य से स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदियों के भावों में प्रत्याख्यानावरणादि कषायों का अभाव न होने से या अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण कषायों का उदय होने से दिगंबर मुनिदीक्षा लेने के भाव ही नहीं होते हैं और न इनको जिनदीक्षा दी जाती है, केवल शरीर से नग्न होना मुनिदीक्षा नहीं है किंतु अंतरंग बहिरंग से नग्न होना ही मुनिदीक्षा है। इन दोनों के शरीरों की रचना इस प्रकार की हुई है कि ये मुनिपद के योग्य नहीं है या इन दोनों वेदियों को भारतीय सभी संप्रदायों में उत्कृष्टपद के योग्य संस्कार और अवस्था नहीं दी जाती है क्योंकि उत्कृष्ट साधना और शरीर की बलिष्ठता में घनिष्ट निमित्त नैमित्तिक संबंध है।

प्र.-3360 आगम रुचिक किसे कहते हैं?

उत्तर- आप्तोपदेश रूपी आगम में, अर्थज्ञान में विश्वास करने वाले को आगम रुचिक कहते हैं।

प्र.-3361 केवल आगम रुचि को सम्यग्दर्शन कह सकते हैं क्या?

उत्तर- केवल आगमरुचि को सम्यग्दर्शन नहीं कहा है किंतु यहाँ आगमरुचि मध्य दीपक है जैसे कमरे के बीच में रखा हुआ दीपक पूरे कमरे को प्रकाशित करता है ऐसे ही जिनागम में विश्वास करना सम्यग्दर्शन कहा है अतः उपदेशक पर विश्वास करने से ही तद्वचनों में विश्वास समीचीन कहलायेगा। इसी तरह जिनाज्ञा पालक साधुओं पर विश्वास करना भी आगमरुचि है क्योंकि मध्य दीपकवत् आदि अंत को ग्रहण कर लेना चाहिये। आदि- आप्त, मध्य-आगम, अंत-तपोभृत गुरुसाधु।

प्र.-3362 ''विचारतच्चण्हं'' विचारतत्त्वज्ञ किसे कहते हैं?

उत्तर- तत्त्वों के जानकार को तत्त्वज्ञ कहते हैं और तत्त्व चिंतन में स्थिर होने को ध्यान कहते हैं। यदि जानने के बाद में भी चंचलता बनी रही, स्थिरता नहीं आयी तो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान न होकर मिथ्याज्ञान ही कहलायेगा। अतः आगम रुचि के बाद विचारतत्त्वज्ञ का ही नाम आया है जैसे - सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान।

प्र.-3363 ''पत्तंत्तरं'' पात्रांतर किसे कहते हैं?

उत्तर- पात्रों में पात्रों के भेदों को पात्रांतर कहते हैं। जैसे जघन्यपात्र चारों गतियों में होने से असंख्यात भेद हैं। मध्यमपात्र मनुष्य 13 कोडी और तिर्यंच असंख्यात पाये जाते हैं तथा प्रमत्त महाव्रती 59398206 और अप्रमत्त महाव्रती 29699103 होते हैं। अतः आ. श्री जी ने पात्रों के हजारों भेदों का संग्रह कर लिया है।

प्र.-3364 पात्रों के ये भेद किसने कहे हैं?

उत्तर- पात्रों के ये भेद किन्हीं छद्मस्थों ने या गृहस्थों ने नहीं कहे हैं किंतु जिनेंद्र भगवान ने कहे हैं।

प्र.-3365 इन पात्रों के माध्यम से क्या क्या प्राप्त होता है?

उत्तर- इन पात्रों के माध्यम से सांसारिक उत्तमसुख प्राप्ति के साथ[2] आत्मसुख अनंतसुख प्राप्त होता है।

प्र.-3366 इस 106 नं. की गाथा में समुच्चय रूप से क्या कहा है?

उत्तर- देवशास्त्रगुरु को और इनके माध्यम से षडावश्यक कर्तव्यों के पालन करने को कहा है तथा पात्रांतर कहकर कर्तव्य पालन करने की आज्ञा दी गयी है।

नोटः- यहाँतक 3366 प्रश्नोत्तरों में 106वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 107वीं गाथा का अर्थ प्रारंभ करते हैं।

उत्तम पात्र

उवसमणिरीहझाणज्झयणाइ महागुणा जहादिट्ठा।

जेसिं ते मुणिणाहा उत्तमपत्ता तहा भणिया।।107।।

उपशमनिरीहध्यानाध्ययनादि महागुणा यथा दृष्टाः।

येषां ते मुनिनाथा उत्तमपात्राणि तथा भणिताः।।

जहा यथा **जेसिं** जिनमें **उवसम** उपशम भाव **णिरीह** अनिच्छा **तहा** तथा **झाणज्झयणाइ** ध्यानाध्ययनादि ऐसे और भी **महागुणा** महान गुण **दिट्ठा** देखे गये हैं **ते** वे **मुणिणाहा** मुनिनाथ **उत्तमपत्ता** उत्तम पात्र **भणिया** कहे हैं।

प्र.-3367 उपशम किसे कहते हैं?

उत्तर- विशिष्ट पुरुषार्थ के द्वारा कषायों के समूल उदयाभाव कर देने को या गुणस्थानानुसार अपनी अपनी कषायों का फलदान शक्तिहीन कर देने को उपशम कहते हैं।

प्र.-3368 कषायों के मंदोदय को उपशम भाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- कषायों के मंदोदय होने पर उत्पन्न हुए परिणामों से मोक्षमार्ग नहीं बनता है, न संवर निर्जरा प्राप्त होती है किंतु उपशमभाव से मोक्षमार्ग और संवर निर्जरातत्त्व की प्राप्ति होती है इस कारण कषायों के मंदोदय से उत्पन्न भावों को औदयिकभाव कहते हैं उपशमभाव नहीं।

प्र.-3369 कषायों के मंदोदय और उपशम में क्या अंतर है तथा स्वामी कौन हैं?

उत्तर- कषायों के मंदोदय में इसका अनुभव भी कदाचित् वह जीव कर सकता है किंतु उपशम में कषायों का किंचित् मात्र भी अनुभव नहीं होता यही अंतर है। **स्वामीः-** कषायों के मंदोदय से उत्पन्न भावों के सभी जीव स्वामी हैं किंतु उपशमभाव के एकमात्र मोक्षमार्गी ही स्वामी हैं।

प्र.-3370 निरीहवृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- समस्त प्रकार से नाना प्रकार की लौकिक इच्छाओं के त्याग को निरीहवृत्ति कहते हैं।

प्र.-3371 समस्त प्रकार की इच्छाओं का त्याग यह अर्थ क्यों ग्रहण नहीं किया?

उत्तर- संयमघाती कर्मोदय से उत्पन्न होने वाली इच्छाओं के त्याग रूप अर्थ को ग्रहण किया है क्योंकि मोक्षमार्गी मुनिजन इन इच्छाओं के त्यागी होते हैं। क्योंकि मुनिजन प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान में आत्मसाधना की, संयम पालन करने की, उत्कृष्ट ध्यान की, मोक्ष प्राप्त करने की इच्छाओं के त्यागी नहीं होते हैं।

प्र.-3372 यदि सभी इच्छाओं के त्यागी नहीं हैं तो मोक्ष की प्राप्ति कैसे होगी?

उत्तर- प्रमत्तदशा पर्यंत लौकिक इच्छाओं का त्यागी होना ही चाहिये अन्यथा बिना ध्येय के, लक्ष्य के पतन होना अवश्यंभावी है। हाँ, बुद्धि पूर्वक इच्छाओं का त्याग किये बिना श्रेणीआरोहण, घातियाकर्मों का क्षय, अनंतचतुष्टय की प्राप्ति, अघातियाकर्मों का क्षय और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है अतः बुद्धि पूर्वक इच्छाओं का त्याग पुरुषार्थ से व अबुद्धि पूर्वक इच्छाओं का त्याग कषाय और योगाभाव से होता है।

प्र.-3373 तो क्या मोक्ष की इच्छा से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर- **मोक्षेऽपि यस्य नाकांक्षा स मोक्षमधिगच्छति।**

इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी कांक्षा न क्वापियोजयेत्।।21।। स्व. सं. आ. अकलंक नहीं, जिस महामुनि की मोक्ष प्राप्ति की इच्छा नहीं है वही मोक्ष प्राप्त करता है अतः हितान्वेषी कहीं पर

भी इच्छाओं की योजना नहीं करें क्योंकि निष्कांक्ष व्यक्ति ही मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्र.-3374 मुनिनाथ किसे कहते हैं?

उत्तर- उपशम, निरीहवृत्ति, ध्यानाध्ययनादि नाना गुणवालों को मुनियों के नाथ, आचार्य कहते हैं।

प्र.-3375 मुनिनाथों को क्या कहते हैं?

उत्तर- इन मुनिनाथों को, आचार्यों को, सभी निर्ग्रंथों को उत्तमपात्र कहते हैं।

प्र.-3376 क्या केवल आचार्य ही उत्तमपात्र हैं, शेष नहीं हैं?

उत्तर- महाव्रती साधुजन उत्तमपात्र हैं। उत्तमपात्रों के भी तीन भेद हैं। नाम- आचार्य भगवंत उत्तम में उत्तमपात्र, उपाध्याय भगवंत उत्तम में मध्यमपात्र, साधु भगवंत उत्तम में जघन्यपात्र।

प्र.-3377 महानगुण किसे कहते हैं?

उत्तर- जो महान फल मोक्ष प्राप्त कराये, महान पुरुषार्थी महापुरुषों ने जिसकी आराधना की, साधना की या स्वयं में महान हो उनको महानगुण कहते हैं। ये 28, 25, 36 आदि मूलगुण ही महानगुण हैं।

प्र.-3378 आचार्य उपाध्याय और साधु किसे कहते हैं?

उत्तर- चतुर्विध मुनिसंघ के नायक, स्वामी, अधिकारी, शासक को आचार्य कहते हैं। शासन में कैसे रहा जाये, कैसे नीतिनियम पालन किया जाये कि शासक के मन में किंचित् मात्र भी संक्लेश पैदा न हो इस उपाय के प्रतिपादन करने वालों को उपाध्याय कहते हैं। आचार्य उपाध्याय की आज्ञा के पालन करने वाले निर्ग्रंथ साधकों को, साधना करने वालों को साधु परमष्ठी कहते हैं।

प्र.-3379 ये गुरुवर्य किसके समान हैं?

उत्तर- वायुयान के समान ये गुरुवर्य स्वयं पार होते हुए भक्तों को, शिष्यों को भी पार करते हैं।

प्र.-3380 इन गुरुओं को पानी के जहाज की उपमा क्यों नहीं दी?

उत्तर- नहीं दी, जैसे पानी का जहाज यात्रियों को इस पार से उस पार तक पहुंचा देता है किंतु स्वयं जलाशय में ही रहता है सो ऐसे ही क्या ये गुरुवर्य अपने शिष्यों को, भक्तों को संसारसमुद्र से पार उतार दें और स्वयं संसार में रहें क्या ऐसा अर्थ सही होगा? नहीं, अतः शिष्य समूह को पार करते हुए गुरु स्वयं भी पार होते हैं। इसलिए धर्मगुरुओं को पानी के जहाज की उपमा न देकर वायुयान की उपमा दी है।

नोटः- यहाँतक 3380 प्रश्नोत्तरों में 107वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 108वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

दीर्घ संसारी कौन?

ण वि जाणइ जिण सिद्ध सरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं।

जो तिव्वं कुणइ तवं सो हिंडइ दीहसंसारे।।108।।

नापि जानाति जिनसिद्धस्वरूपं त्रिविधेन तथा निजात्मानं।

यस्तीव्रं करोति तपं सः हिंडते दीर्घसंसारे।।

जो जो **तिव्वं** तीव्र **तवं** तपस्वी साधु **जिण** जिनेंद्र **सिद्धसरूवं** सिद्ध **तह** तथा **णियप्पाणं** निजात्मा को **तिविहेण** त्रिविध से **ण वि** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** तो वह **दीहसंसारे** दीर्घसंसार में **हिंडइ** भ्रमता है।

प्र.-3381 ''जिण'' पद से किस किस को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- **''जिन''** पद से अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन 4 परमेष्ठियों को ग्रहण करना

चाहिये।

प्र.-3382 ''सिद्ध'' पद से किन किन सिद्धों को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- ''सिद्ध'' पद से जिन्होंने समस्त विकारों को, कर्मों को जीतकर मोक्षपद, कृतकृत्य अवस्था को प्राप्त किया है ऐसे लोकोत्तर सिद्धों को ग्रहण करना चाहिये, लौकिक सिद्धों को नहीं।

प्र.-3383 पंचपरमेष्ठियों को नहीं जानने वाला क्या स्वयं को जान सकता है?

उत्तर- जो पंचपरमेष्ठियों को नहीं जानता है वह अपनी आत्मा को भी नहीं जानता है। कहा भी है- **आप जाना सर्व जाना, आप न जाना कुछ न जाना**। जिसने पंचपरमेष्ठियों को और अपने आपको जान लिया है उसने समस्त वस्तुओं को जान लिया है क्योंकि हिंदी में **आप** पद स्वार्थ और परार्थ दोनों का वाचक है।

प्र.-3384 पंचपरमेष्ठियों को किस प्रकार से जानना चाहिये?

उत्तर- पंचपरमेष्ठियों को मन वचन काय से अथवा द्रव्य गुण पर्यायों के द्वारा जानना चाहिये।

प्र.-3385 पंचपरमेष्ठियों को जानने से क्या लाभ है?

उत्तर- **जो जाणदि अरहंतं दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं**
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्सलयं ।। 80।। प्र.सा.प्र.

अर्थ- जो अरिहंतों को द्रव्य गुण और पर्यायों के द्वारा जानता है वह द्रव्य गुण पर्यायों के द्वारा अपनी आत्मा को जानता है क्योंकि निश्चय से उसका दर्शनमोहनीय मिथ्यात्व कर्म क्षय को प्राप्त होता है।

प्र.-3386 अरिहंतों की द्रव्य गुण और पर्याय किस प्रकार की है?

उत्तर- अरिहंतों के ये तीनों द्रव्य गुण और पर्याय शुद्धाशुद्ध रूप हैं क्योंकि जितना विकार नष्ट हुआ है उतना ही शुद्धपना तथा शेष विकार द्रव्य गुण पर्याय रूप में परिणमन सहित होने से अशुद्धपना है।

प्र.-3387 अरिहंतों को जानने से क्या प्रयोजन सिद्ध हो रहा है?

उत्तर- अरिहंतों के द्रव्य गुण और पर्यायों के समान ही अपना द्रव्य गुण पर्याय है केवल मात्रा में अंतर है अरिहंतों के क्षायिकभाव, वीतरागता, सर्वज्ञता है तो हमारे क्षायोपशमिकभाव, अल्पज्ञता, सरागता है आदि कारणों से अरहंतों को जानने से मोक्षमार्ग रूपी प्रयोजन सिद्ध हो रहा है।

प्र.-3388 अपना प्रयोजन सिद्ध न होने से अरिहंतों को जानने से क्या मतलब?

उत्तर- दीपक जलाया और प्रकाश नहीं हुआ तो उसे दीपक कौन कहेगा? अतः दीपक जलाया है तो प्रकाश होना ही चाहिये ऐसे ही अरिहंत को जाना पहंचाना तो अपनी आत्मा को जाना पहंचाना ही है क्योंकि अरिहंत को जानना कारण है तो अपनी आत्मा को जानना कार्य है।

प्र.-3389 आत्मा को जानने वाला परमात्मा को जानता है ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- क्योंकि कारण पहले होता है और कार्य बाद में ऐसा सभी न्यायाचार्यों का मत है। जैसे भूलाभटका कोई राहगीर किसी व्यक्ति से रास्ता पूंछता है तब उसने बताया कि इधर से जाओ तो तुम स्थान पर पहुंच जाओगे। तब वह राहगीर उसके बताये अनुसार गमन कर गंतव्य स्थान पर पहुंच जाता है ऐसे ही सर्व प्रथम देशना देने वाले पर विश्वास किया जाता है तभी बाद में आत्मविश्वास उत्पन्न होता है। यदि वक्ता पर विश्वास नहीं है तो उसके वक्तव्य पर विश्वास कैसे होगा? वक्ता और वक्तव्य पर विश्वास न होने से आत्मा की खोज कर नहीं सकता अतः परमात्मा को जानने वाला आत्मा को जानता है ऐसा कहा है, अन्य प्रकार से नहीं।

प्र.-3390 यहाँ ''जिण और सिद्ध'' इन पदों में विशेषण विशेष्य संबंध है क्या?

उत्तर- **''जिण''** विशेष्य पद का विशेषण सिद्ध मानकर अर्थ करना चाहिये। नाम निक्षेपवाले जिनेंद्र को ग्रहण न कर साधना करके भाव सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुये हैं, जिन्होंने घातियाकर्मों को क्षयकर अनंत चतुष्टय को प्राप्त किया है उन्हें भावसिद्ध, अर्धसिद्ध कहते हैं क्योंकि सशरीरी परमात्मा से ही वचनात्मक उपदेश की, मार्गदर्शन की प्राप्ति होती है, समस्त कर्मों से, शरीर से रहित भाव और भवसिद्धों से नहीं।

प्र.-3391 सिद्धों से धर्मदेशना नहीं मिलती है तो वे मोक्ष के लिए निमित्त कैसे?

उत्तर- सिद्धों से वचनात्मक धर्मदेशना की प्राप्ति नहीं होती है यह सत्य है फिर भी सिद्धों से मौनोपदेश जैसा उपदेश अवश्य ही प्राप्त होता है क्योंकि आचार्यों ने उपदेश वचनात्मक और भावात्मक के भेद से दो प्रकार का कहा है अतः धर्मद्रव्य के समान सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष के लिए गमन में निमित्त हैं।

प्र.-3392 सिद्ध परमेष्ठी मोक्ष के लिए सहायक कैसे हैं?

उत्तर- जैसे अमूर्तिक शुद्ध धर्मद्रव्य जीवों को गमन करने में उदासीनता से सहायक होता है ऐसे ही सिद्ध प्रभु संसारी चरमाचरम शरीरी मुनियों को मोक्ष के लिए सहायक होते हैं क्योंकि रूपातीत धर्मध्यान में सिद्धों का ध्यान किया जाता है और **परे मोक्षहेतू** सूत्र में धर्मध्यान, शुक्ल ध्यान को मोक्ष का हेतु कहा है।

प्र.-3393 क्या केवल चरमशरीरी मुनि ही श्रेणीआरोहण करते हैं?

उत्तर- अचरमशरीरी उत्तम संहननवाले महामुनिजन भी उपशमश्रेणी आरोहण करते हैं, क्षपकश्रेणी नहीं।

प्र.-3394 अरिहंत आदि चार परमेष्ठी और सिद्ध भगवंत किसके समान हैं?

उत्तर- सशरीरी अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधु ये चार परमेष्ठी एक बाजू रंगीन दर्पण के समान हैं यदि दर्पण पूर्ण निर्मल है तो अपना चेहरा दिखाई नहीं देगा क्योंकि दर्पण पारदर्शी है अतः अपना प्रतिबिंब देखने के लिए दर्पण एक बाजू रंगीन हो और दूसरी बाजू पूर्ण स्वच्छ हो तभी चेहरा साफ दिखाई देता है, दोनों तरफ रंग है या पारदर्शी है तो प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता ऐसे ही दोनों तरफ मलिन दर्पण के समान गृहस्थ और पारदर्शी दर्पण के समान सिद्ध भगवंत हैं अतः इनके माध्यम से अपनी आत्मा दिखाई नहीं देती है किंतु शरीरी चार परमेष्ठियों के माध्यम से अपनी आत्मा का दर्शन तथा मोक्षमार्ग प्राप्त होता है।

प्र.-3395 पारदर्शी दर्पण के समान सिद्धों का ध्यान जप आदि क्यों करना?

उत्तर- सिद्धप्रभु पारदर्शी दर्पण के समान हैं फिर भी अमूर्तिक, अरूपी निष्क्रिय धर्मादि द्रव्योंवत् उपकारी हैं यदि हमारे जैसा बनना चाहते हो तो हमारे जैसा ही कार्य करो तो अवश्य ही हमारे जैसे बन जाओगे।

प्र.-3396 उपकार किसे कहते हैं?

उत्तर- उत्थान, उच्च दिनचर्या और मोक्ष प्राप्त कराने, दुःख से बचाने रूप सहायता को उपकार कहते हैं।

प्र.-3397 अपकार किसे कहते हैं?

उत्तर- जो पतन में, हीन दिनचर्या में, अत्याचार, अनाचार में, अधोगति प्राप्त कराने में, आकुलता, व्याकुलता रोगादि बीमारियों को बढ़ाने में की गई सहायता को अपकार कहते हैं।

प्र.-3398 सिद्ध प्रभु या चारों परमेष्ठी हमारे उपकारक है या अपकारक?

उत्तर- इन पाँचों परमेष्ठियों की आज्ञा का पालन किया तो उपकारक हैं तथा अनाज्ञाकारी बनकर परिणमन किया तो अपकारक हैं जैसे पानी से कीचड़ उत्पन्न होता है तो पानी से ही धुलता है।

प्र.-3399 इनके उपकार और अपकार क्या दृष्टिगोचर हो जाते हैं?

उत्तर- इनके कुछ उपकार और अपकार तो दृष्टिगोचर हो जाते हैं तथा कुछ अनुमान से जाने जाते हैं।

प्र.-3400 इन पाँचों परमेष्ठियों से उपकार और अपकार कैसे होता है?

उत्तर- **केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य** इनके आज्ञाकारी होने से मिथ्यात्व का अभाव और मोक्षमार्ग की प्राप्ति होना उपकार और इन्हीं में दोषारोपण से अपकार रूप मिथ्यात्व का आश्रव होता है।

प्र.-3401 क्या पूर्ण दर्शनमोहनीय कर्म का आश्रव होता है?

उत्तर- प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन से मिथ्यात्वकर्म के तीन टुकड़े हो जाते हैं इनमें से सम्यग्मिथ्यात्व कर्म और सम्यक्त्व मोहनीय सत्त्व और उदय रूप होते हैं अतः केवल मिथ्यात्व का ही आश्रव होता है शेष का नहीं।

प्र.-3402 प्र.सा. गा. 80 के और यहाँ गा. 108 के विषय में ऐसा अंतर क्यों?

उत्तर- प्र. सा. में विधिपूर्वक जो इनको मानता है उसका मोहकर्म क्षय हो जाता है और र.सा. में निषेध रूप में जो इनको नहीं जानता है वह तीव्र तपस्वी दीर्घसंसारी होता है। जैसे सूर्योदय से प्रकाश व सूर्यास्त से अंधकार होता है ऐसे ही इन परमेष्ठियों में विश्वास करने से मोक्षमार्ग और अविश्वास से संसारमार्ग होता है।

प्र.-3403 तीव्र तप किसे कहते हैं और तप का फल क्या है?

उत्तर- अपनी सामर्थ्यानुसार तप करने को तीव्र तप कहते हैं और तप का उत्कृष्ट फल मोक्ष है।

प्र.-3404 तप का उत्कृष्टफल मोक्ष है तो यहाँ संसार में भ्रमण करना क्यों कहा?

उत्तर- सम्यक्रत्नत्रय पूर्वक तप का उत्कृष्ट फल मोक्ष और मिथ्यात्व पूर्वक तप का फल दीर्घसंसार है।

प्र.-3405 यहाँ दीर्घ पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- यहाँ दीर्घ पद कालवाची और सीमावाची भी है अतः मुनि रत्नत्रय से भ्रष्ट हो अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक भ्रमण कर सकता है, अभव्यजीव और दूरानुदूर भव्य अनंतानंतकाल तक संसार में भ्रमण करता है।

प्र.-3406 तीव्र तपस्वी साधु जिनेंद्र रूपी सिद्धों को क्या नहीं जानता है?

उत्तर- अपने क्षायोपशमिक ज्ञानानुसार आगम के माध्यम से, न्याय से, तर्क से पाँचों परमेष्ठियों को और अपनी आत्मा के स्वरूप को जानता है तभी तो शिष्यों को, अन्यमतियों को शास्त्रार्थादि में अपने प्रबल तर्कों के द्वारा भली प्रकार से आत्मा परमात्मा की सिद्धि कर जिनमत में दीक्षित करता है किंतु दर्शनमोह के उपशम क्षयोपशम तथा क्षय न होने से इतना सब कुछ करता हुआ भी ताड़ना रूप में संबोधन किया है कि तूँ दीर्घ संसारी है जैसे कोई बहुत अधिक पढ़ता है पर परीक्षा में फैल हो जाये तो कह देते हैं कि क्या पढ़ा केवल पुस्तक लेकर बैठा रहा किंतु धारणा पूर्वक अध्ययन नहीं किया, यदि मन स्थिर कर पठन करता तो अवश्य ही पास होता अब पूरा वर्ष बिगड़ा पुनः फिर से वर्ष भर प्रयत्न करना होगा, परिश्रम करना पड़ेगा आदि कथन उसे उत्तेजित करने के लिये करते हैं न कि गिराने के लिए ऐसा समझना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 3406 प्रश्नोत्तरों में 108वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 109वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

रत्नत्रय से अनभिज्ञ?

णिच्छय ववहारसरूवं जो रयणत्तयं ण जाणइ सो।
जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं।।109।।

निश्चयव्यवहारस्वरूपं यो रत्नत्रयं न जानाति सः।
यत्करोति तन्मिथ्यारूपं सर्वजिनोद्दिष्टम्।।

जो जो **णिच्छयववहार** निश्चय व्यवहार **सरूवं** स्वरूप **रयणत्तयं** रत्नत्रय को **ण** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** वह **जं** जो कुछ भी दिनचर्या का पालन **कीरइ** करता है **तं** वह **सव्वं** सब **मिच्छारूवं** मिथ्या रूप है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनदेव ने कहा है।

प्र.-3407 रत्नत्रय से अनभिज्ञ जीव के सभी आचरण मिथ्या हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- **णाणं णरस्स सारो सारो वि होइ सम्मत्तं।**
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।।31।। द.पा.

अर्थः- मनुष्य जीवन का सार ज्ञान में है, ज्ञान का सार सम्यक्त्व है, सम्यक्त्व से सम्यक्चारित्र और सम्यक्चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है। सम्यग्ज्ञान के बिना सभी आचरण मिथ्या होते हैं। इस सम्यग्ज्ञान से विश्वास और आचरण में समीचीनता आती है अन्यथा दोनों मिथ्या होते हैं।

प्र.-3408 निश्चय रत्नत्रय किसे कहते हैं?

उत्तर- अयोगी भगवंतों के चरम समयवर्ती अभेद, पूर्ण व अखंड रत्नत्रय को निश्चय रत्नत्रय कहते हैं।

प्र.-3409 व्यवहार रत्नत्रय किसे कहते हैं?

उत्तर- अयोगीकेवली के द्वीचरम समय तक भेद, अपूर्ण व खंड रत्नत्रय को व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं।

प्र.-3410 जो उभयरत्नत्रय को नहीं जानता है उसे क्या कहते हैं?

उत्तर- उभयरत्नत्रय को नहीं जाननेवाले को मिथ्याज्ञानी कहते हैं। यह लौकिक जानकारी पर्याप्त रखता है किंतु मोक्षमार्ग जानने के लिये पुरुषार्थ नहीं करता है अतः त्रिकाली मिथ्याज्ञानी कहा है।

प्र.-3411 यदि यह साधु अज्ञानी है तो आगम का प्रतिपादन कैसे करता है?

उत्तर- जिनाज्ञानुसार अनुभव न होने से, तद्रूप परिणमन, विषयकषायों का निग्रह तथा अंतरंगचर्या न होने से अज्ञानी है और आगमवेत्ता होने से शिष्यों, श्रोताओं को अध्यापन कराता है सो ज्ञानी है।

प्र.-3412 आगमाज्ञा पालक साधु को मिथ्याचारित्री क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्याव और अनंतानुबंधी कषाय से परिणत जिनेंद्र मतानुसार दिनचर्या पालक साधु मिथ्याचारित्री ही कहा है क्योंकि इनमें समीचीनता एक से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में आती है ऐसा नियम है।

प्र.-3413 भगवान के कहने से इस साधु के मिथ्यात्रय है या स्वभाव से?

उत्तर- जैसे फूल सुगंधित होने से उसे सुगंधित कहते हैं किसीके कहने से सुगंधित नहीं है ऐसे ही वस्तु स्वभाव से भिन्न मान्यताएं मिथ्या है ऐसा भगवान ने कहा है किंतु जिनेंद्र के कहने से मिथ्या नहीं है।

नोटः- यहाँतक 3413 प्रश्नोत्तरों में 109वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 110वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

ये भव के बीज हैं

किं जाणिऊण सयलं तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।

सम्मविसोहिविहीणं णाणतवं जाण भवबीयं।।110।।

किं ज्ञात्वा सकलं तत्त्वं कृत्वा तपश्च किं बहुलं।

सम्यक्त्वविशुद्धिविहीनं ज्ञानतपं जानीहि भवबीजम्।।

सयलं संपूर्ण **तच्चं** तत्त्वों को **जाणिऊण** जानने से **च** और **बहुलं** अधिक **तवं** तप **किच्चा** करने से **किं** क्या? **सम्मविसोहि** शुद्ध सम्यक्त्व **विहीणं** बिना **णाण** ज्ञान **तवं** तप को **भवबीयं** भव का बीज **जाण** जानो।

प्र.-3414 जीवादि तत्त्व, द्रव्य, अस्तिकाय और पदार्थों को जानने से क्या मतलब है?

उत्तर- सम्यग्दर्शन के बिना द्रव्यागमरूप द्वादशांग वाणी के द्वारा 27 तत्त्वों को जानकर भी भव्यसेन मुनि का नाम बदल कर अभव्यसेन रक्खा अतः ऐसा ज्ञान आत्मसुख का साधन न होकर दुःख का ही साधन बना रहा ऐसे ही अनेक जैनाजैन विद्वान गण पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने वाले, नाना ग्रंथों के अनुवादक, नवीन ग्रंथ लिखने वाले, अध्यापन कराने वाले, कदाचित् अन्यमतियों से शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त करने वाले भी मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष का त्याग नहीं कर पाये किंतु मरण समय तक इनका सेवन करते रहे क्योंकि इनमें समीचीन विश्वास का अभाव था अतः सत्श्रद्धान के बिना ज्ञान तप से क्या मतलब?

प्र.-3415 भव्यसेन (अभव्यसेन) मुनि कितना तपश्चरण करते थे?

उत्तर- उत्तम संहननधारी भव्यसेन मुनि उत्कृष्ट वर्षायोग धारण करते थे। पारंचिक प्रायश्चित्त ग्रहण करने वाले उत्तम संहननधारी मुनि तपस्वी दृढ़धर्मी होते हैं। पार्श्वस्थादि मुनिवत् वशिष्ट मुनि, द्वीपायन मुनि आदि के नाम भी शास्त्रों में पढ़े जाते हैं अतः इनका उत्कृष्ट तप भी मान कषायादि के कारण नरकगति के पात्र का कारण बना। इस कारण मिथ्यात्व सहित उत्कृष्ट तपश्चरण भी शाश्वत सुख देने वाला नहीं है।

प्र.-3416 मलिन सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान और तप भव के बीज हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- बिना जड़ के वृक्ष की स्थिति वृद्धि और फल की प्राप्ति नहीं होती है ऐसे ही बिना निर्मल सम्यग्दर्शन के ज्ञान तप समीचीन नहीं होते तब क्या असमीचीन ज्ञान तप से समीचीन मोक्षफल की प्राप्ति हो सकती है इसलिए कहा है कि जब समीचीन फल न मिला तो संसार का बीज, दुःख का बीज ही है।

प्र.-3417 मलिन सम्यग्दर्शन से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- मलिन सम्यग्दर्शन से दूषित फल ही प्राप्त होता है क्योंकि जैसा बीज होगा वैसा ही अंकुर निकलेगा।

प्र.-3418 मलिन सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्वादि 6 सर्वघाति प्रकृतियों के उदयाभाव में देवशास्त्र गुरु के, जीवादि तत्त्वों के, अपनी आत्मा के संबंध में उत्पन्न हुये विश्वास में देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चल मलिन अगाढ़ दोष, शंका कांक्षादि 5 अतिचार दोष और 25 मल दोषों के उत्पन्न होने को मलिन सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3419 इन दोषों से सम्यग्दर्शन का कितना घात होता है?

उत्तर- अतिक्रम, व्यतिक्रम और अतिचारदोषों से वेदकसम्यक्त्व का एकदेश तथा अनाचारदोष से सम्यग्दर्शन का पूर्ण घात हो जाता है।

प्र.-3420 ये 33 दोष किन किन कर्मोदय से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से 8 दोष, मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से 25 दोष होते हैं।

नोटः- यहाँतक 3420 प्रश्नोत्तरों में 110वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 111वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

संसार का बीज

वयगुणसीलपरीषहजयं च चरियं तवं छडावसयं।
झाणज्झयणं सव्वं सम्मविणा जाण भवबीयं।।111।।

व्रतगुणशीलपरीषहजयं च चारित्रं तपः षडावश्यकानि।
ध्यानाध्ययनं सर्वं सम्यक्त्वं विना जानीहि भवबीजं।।

वय व्रत **गुण** गुण **सील** शील **परीसहजयं** परीषहजय **चरियं** चारित्र **तवं** तप **छडावसयं** षडावश्यक **च** और **झाणज्यणं** ध्यानाध्ययनादि **सव्वं** इन सभी को **सम्म** सम्यक्त्व के **विणा** बिना **भवबीयं** भवबीज **जाण** जानो।

प्र.-3421 गाथोक्त परिणाम संसार के बीज हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- गाथोक्त सभी परिणाम सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यात्वोदय सहित संसार के बीज हैं ऐसा कहा है।

प्र.-3422 गाथोक्त परिणामों को ग्रंथकार बार बार क्यों कहते हैं?

उत्तर- जैसे रसायन में विशेष सामर्थ्य शक्तिपुष्टि की उत्पत्ति, वृद्धि के लिए उसीकी उसीमें बार बार भावना देते हैं वैसे ही इन परिणामों का बार² विधि और निषेध रूप में कथन करने से साधक लक्ष्य से न भटक सकता है न भूल सकता है अथवा साधक को सचेत तथा उत्तेजित करने के लिये वीर रस का वर्णन किया है क्योंकि वीररस के कथन से कमजोर योद्धा भी उत्तेजित होकर युद्ध करने लगता है ऐसे ही यहाँ वीर रस के कथन से कमजोर वैरागी भी उत्कृष्ट वैरागी बनकर उत्तेजित हो उत्कृष्ट तप ध्यान करने लगता है।

प्र.-3423 व्रत कैसे ग्रहण किये जाते हैं?

उत्तर- अरिहंत, सिद्ध, शास्त्र, गुरु की, स्वसाक्षी, परसाक्षी, देवीदेवताओं की साक्षी व्रत ग्रहण किये जाते हैं।

प्र.-3424 गुण के भेद, स्वामी और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- दो भेद हैं। मूलगुण और उत्तरगुण। श्रावकों की अपेक्षा 8 मूलगुण और 12 उत्तरगुण तथा मुनियों की अपेक्षा 28, 25, 36, 46 मूलगुण तथा 84लाख उत्तरगुण हैं।

प्र.-3425 शीलधर्म के कितने भेद हैं और कहाँ पर पूर्ण होते हैं?

उत्तर- शील के 18000 भेद हैं। मिथ्यात्व से प्रारंभ होकर अयोगकेवली के प्रथम समय में ही पूर्ण होते हैं।

प्र.-3426 परीषह और परीषहजय किसे कहते हैं कितने भेद हैं?

उत्तर- आगंतुक या कर्मोदयजन्य आपत्तियों के आने को परीषह तथा तद्रूप में परिणमन और अनुभव न करने को परीषहजय कहते हैं। मुनियों की अपेक्षा 22 और गृहस्थों की अपेक्षा असंख्यात भेद होते हैं।

प्र.-3427 चारित्र के कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- चारित्र के दो भेद हैं। निश्चय चारित्र और व्यवहार चारित्र या एकदेश चारित्र और सकलदेश चारित्र। प्रतिमाओं की अपेक्षा 11 भेद तथा मुनियों की अपेक्षा सामायिक छेदोपस्थापनाादि 5 भेद हैं।

प्र.-3428 तप के कितने भेद हैं?

उत्तर- तप के दो भेद हैं। अंतरंग तप के प्रायश्चित्तादि 6 भेद तथा बहिरंग तप के अनशनादि 6 भेद।

प्र.-3429 आवश्यकों के कितने भेद हैं?

उत्तर- आवश्यकों के दो भेद हैं। श्रावकों के देवपूजादि 6 तथा मुनियों के सामायिकादि 6 भेद।

प्र.-3430 ध्यान संसार के बीज हैं या मोक्ष के?

उत्तर- सम्यग्दर्शन रहित ध्यान संसार के बीज हैं एवं सम्यग्दर्शन सहित ध्यान मोक्ष के बीज हैं।

प्र.-3431 अध्ययन के दो भेदों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **अध्ययन के दो नामः-** द्रव्यात्मक (वचनात्मक) अध्ययन और भावात्मक अध्ययन।

प्र.-3432 गाथोक्त सभी परिणाम क्या धर्म के अंग हैं या पाप के?

उत्तर- जैसे दूध स्वभाव से स्वादिष्ट और पौष्टिक होने पर भी जहर के साथ मारक तथा शक्कर औषधि आदि के साहचर्य से अत्यधिक गुणकारी हो जाता है ऐसे ही ये ज्ञान चारित्र के साथ उत्कृष्ट परिणाम मिथ्यात्व विषयकषायों के साहचर्य से संसार के साधन बन जाते हैं और सम्यग्दर्शन सहित ये परिणाम अभ्युदय सुख और मोक्षसुख के साधकतम साधन बन जाते हैं अतः ये धर्म के ही अंग हैं, पाप के नहीं, संसार के नहीं।

प्र.-3433 ये परिणाम मोक्ष के ही हेतु हैं तो यहाँ भव के बीज हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे नेताओं ने सामर्थ्यवान व्यक्तियों को धर्म की, समाज की, देश की रक्षा के लिये शस्त्रादि दिया है किंतु कालांतर में कषायवश प्रतिज्ञा को भूलकर निरपराधियों पर या स्वयं पर शस्त्र का प्रयोग कर ले तो इसमें नेताओं का क्या दोष है? शस्त्र रक्षा के लिये दिया था, न कि विनाश के लिये ऐसे ही तीर्थंकरादि ने ये गाथोक्त कार्य आत्मसुख शांति के लिये बताये थे किंतु सैनिकों के समान साधुओं ने विषयकषायों में, दुर्भावों में फंसकर पाप का साधन बना लिया तब ये भव के बीज हैं ऐसा कहा है।

नोटः- यहाँतक 3433 प्रश्नोत्तरों में 111वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 112वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मिथ्याचारित्र से क्या?

खाई पूयालाहंसक्काराइ किमिच्छसे जोई।

इच्छसि जइ परलोयं तेहिं किं तुज्झ परलोयं।।112।।

ख्याति पूजां लाभं सत्कारादि किमिच्छसे योगिन्।

इच्छसि यदि परलोकं तैः किं तव परलोकम्।।

जोई हे योगी! **जइ** यदि **परलोयं** परलोक/ मोक्षपद **इच्छसि** चाहते हो तो **खाई** ख्याति **पूया** पूजा **लाहं** लाभ **सक्काराइ** सत्कारादि की **किमिच्छसे** इच्छा क्यों **किं** क्या **तेहिं** उनसे **तुज्झ** तेरा **परलोयं** परलोक सुधरेगा? नहीं।

प्र.-3434 ख्याति, पूजा, लाभ और सत्कार पुरस्कार का अर्थ क्या है?

उत्तर- **ख्याति-** सर्वत्र मेरा नाम फैल जाये, सभी मेरी प्रशंसा करें। **पूजा-** सर्वत्र मेरा गुण कीर्तन हो, भक्तगण मेरे प्रति समर्पित हों, आज्ञाकारी हों, कुछ कीमती सामग्री अर्पण करें, नमस्कार करें। **लाभ-** चेतन अचेतन सामग्री, वस्त्राभूषण, धनदौलत, भोगोपभोग की वस्तुएं प्राप्त हों। **सत्कार-** आज्ञाकारी बनकर विनय करना उच्चासन पर विराजमान कर आदरसम्मान करना। **पुरस्कार-** लौकिक या लोकोत्तर कार्य के लिये प्रारंभ में आज्ञाकारी बनकर उनको आगे कर कुछ भेंट देकर उनकी साक्षी कार्य प्रारंभ करना आदि।

प्र.-3435 साधु इनको क्यों चाहता है और इनका क्या फल है?

उत्तर- घर में इच्छानुसार भोगोपभोग सामग्री न मिली, कदाचित् मिली तो भोगते हुये तृप्ति न हुई, बाधक कारणों से भोग नहीं पाया तो पुनः भोगार्थ धर्म धारण कर धर्म से तुच्छ फल चाहने लगा इसलिये हीन फल के साधन होने से ख्याति पूजा लाभ की भावना और चर्या को मिथ्याचारित्र कहा है इन भावों के होने पर मोक्षमार्ग प्राप्त नहीं होता तथा मोक्षमार्गी के ये परिणाम आते ही मोक्षमार्ग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

प्र.-3436 क्या ये दोनों मार्ग एकसाथ एक समय में रह सकते हैं?

उत्तर- सकलसंयमी मुनियों के ये दोनों मार्ग एकसाथ नहीं रह सकते। ये ख्याति पूजा लाभ के परिणाम अनंतानुबंधी कषायोदय से मोक्षमार्ग के, अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से देशचारित्र के, प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से सकलचारित्र के समूल घातक हैं। संज्वलन कषायोदय से उत्पन्न परिणाम सकलचारित्र के समूल घातक न होकर प्रमादकारक दोषास्पद तथा उभयश्रेणी और यथाख्यातचारित्र के समूल घातक हैं।

प्र.-3437 हे साधु तूँ ख्याति, पूजा, लाभ, सत्कारादि की इच्छा क्यों करता है?

उत्तर- जैसे लोक में सौतें एकसाथ, एकसमय में स्वाभाविक ईर्ष्या होने से पति के साथ में नहीं रहती तो ऐसे ही एकसाथ, एकसमय में आत्मरूपी पति के साथ में योगलक्ष्मी भोगलक्ष्मी, संसारमार्ग मोक्षमार्ग, शुभध्यान अशुभध्यान, साधना विराधना, मोक्षलक्ष्मी संसारलक्ष्मी नहीं रह सकतीं क्योंकि इन युगलों की परस्पर में सौतों के सामन एकसाथ एकसमय में निवास करने में ईर्ष्या है।

प्र.-3438 ''परलोये'' इस पद में ''पर'' का क्या अर्थ है?

उत्तर- यहाँ ''**पर**'' इस पद के अनेक अर्थ होते हैं **पर-** दूसरा, उत्कृष्ट, एक कदम, आगे का अगला भव, भिन्न वस्तु। जैसे पर का मकान, पर का शरीर यानि दूसरे का मकान दूसरे का शरीर। **पराधीन-** दूसरों के आधीन। **परंज्योति-** उत्कृष्ट ज्योति केवलज्ञान मोक्ष। **कोई न पर मारे-** कोई एक कदम भी साथ में नहीं जाता है। **परलोक-** उत्कृष्ट लोक मोक्ष। **परभव-** आगे का भव। **पर-** पंख देखो इसके पर कितने अच्छे हैं, **परवस्तु-** भिन्न पृथक् वस्तु। यहाँ साधुओं का कथन होने से **परलोये** का अर्थ है मोक्ष।

प्र.-3439 ख्याति पूजा लाभ की भावना मिथ्याचारित्र है तो साधु इसे क्यों चाहता है?

उत्तर- अंधकार में अंधकार या दूध में दूध क्या कर सकता है? ऐसे ही मिथ्याचारित्री साधु ख्याति पूजा लाभ से अपनी क्या हानि कर सकता है? जो धरती में लेटा है वह कहाँ गिरेगा जो बैठा है, खड़ा है, गमनागमन कर रहा है वही गिरेगा ऐसे ही मोक्षमार्गी साधु उत्कृष्ट परिणामों में स्थिर है वही गिरेगा, भ्रष्ट होगा अतः यदि हे साधु तूं मोक्ष चाहता है तो ख्याति पूजा लाभ से क्या मतलब है?

प्र.-3440 हे साधु! यदि तूँ मोक्ष चाहता है तो स्वर्गादि की इच्छा क्यों करता है?

उत्तर- हे साधु! यदि तुम्हारी मोक्ष प्राप्ति की इच्छा है तो स्वर्गादि को क्यों चाहते हो? आत्मसुख मोक्षसुख बीज है तो स्वर्गादि सुखवैभव भूषा है जैसे किसान खेत में गेहूं धान्यादि बोता है तो गेहूं चना की प्राप्ति के साथ साथ भूषा स्वतः प्राप्त होता है भूषा की प्राप्ति के लिये अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता है यदि कोई भूषा के लिये परिश्रम करे तो फल प्राप्ति के पहले ही फसल को काट लेगा तो भूषा मिल जायेगा किंतु गेहूं चना की प्राप्ति नहीं होगी ऐसे ही मोक्षार्थी को स्वर्ग तो मिल जायेगा किंतु स्वर्ग चाहने वाले को मोक्ष प्राप्त नहीं होगा? क्योंकि उसका लक्ष्य ही स्वर्ग का है इसके आगे का नहीं।

नोटः- यहाँतक 3440 प्रश्नोत्तरों में 112वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 113वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

शुद्धात्म रुचि का फल

कम्माद विहाव सहावगुणं जो भाविऊण भावेण।

णिय सुद्धप्पा रुच्चइ तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं।।113।।

कर्मात्मविभावस्वभावगुणं यो भावयित्वा भावेन।

निजशुद्धात्मा रोचते तस्य च नियमेन भवति निर्वाणम्।।

जो जो **कम्म विहाव य** कर्म विभाव और **आदसहावगुणं** आत्मस्वभाव को **भावेण** भाव से **भाविऊण** भाकर **णिय** निज **सुद्धप्पा** शुद्धात्मा में **रुच्चइ तस्स** रुचि करता है उसको **णियमेण** नियमतः **णिव्वाणं** मोक्ष **होइ** होता है।

प्र.-3441 कर्म किसे कहते हैं कितने भेद हैं तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादि कर्म के तथा आत्मा के परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध को इच्छा अनिच्छा पूर्वक परिणमन करने को कर्म कहते हैं। दो भेद हैं- द्रव्यकर्म और भावकर्म या घातियाकर्म और अघातियाकर्म।

प्र.-3442 द्रव्यकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादि पुद्गलपिंड या आत्मा में विकारोत्पादक या सहायक कर्मों को द्रव्यकर्म कहते हैं।

प्र.-3443 द्रव्यकर्म चेतन हैं या अचेतन?

उत्तर- द्रव्यकर्म अचेतन हैं किंतु **असद्भूत व्यवहारेण कर्मनोकर्मणोरपिचेतनस्वभावः।** आ.प.160 असद्भूत व्यवहार नयानुसार कर्म और नोकर्म पुद्गलपिंड चेतन भी हैं फिर भी कार्मण वर्गणा से ज्ञानावरणादि 8 कर्मों की उत्पत्ति होती है इसलिए कार्यकारणभाव की अपेक्षा कर्मों को अचेतन कहा है।

प्र.-3444 भाव कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- द्रव्यकर्मों में फलदान शक्ति को भावकर्म या आत्मा के रागादि विकारी भावों को भावकर्म कहते हैं।

प्र.-3445 ये द्रव्यकर्म और भावकर्म क्या स्वभाव है या विभाव विकार?

उत्तर- ये दोनों कर्म आत्मस्वभाव रूप न होकर विकार रूप होने से विभाव ही हैं, अशाश्वत हैं, परिवर्तनशील हैं, आश्रवबंध स्वरूप हैं, मलिन हैं, दुःखदायी हैं, समस्त संसारी जीवों में पाये जाते हैं।

प्र.-3446 नोकर्म किसे कहते हैं तथा यहाँ नोकर्मों का वर्णन क्यों नहीं किया?

उत्तर- जबतक शरीरनामकर्मप्रकृति बंध और सत्त्वावस्था में है तबतक वह द्रव्यकर्म और वही द्रव्यकर्म उदय में आकर स्वनामानुसार शरीर प्राप्त कराता है तब वह नोकर्म नाम कहलाता है। यहाँ द्रव्यकर्म में नोकर्म का अंतर्भाव करके अलग से विधान नहीं किया है।

प्र.-3447 आत्मा शुद्ध है या अशुद्ध?

उत्तर- **मग्गणगुणठाणेहिं य चउदसहिं हवंति तह अशुद्धणया।**
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।।13।। द्र.सं.

अर्थ- अशुद्धनय से मार्गणास्थान, गुणस्थान और जीवसमास सहित आत्मा संसारी और अशुद्ध है तथा शुद्धनय से परमपारिणामिक भाव की अपेक्षा सभी शुद्ध हैं अतः आत्मा की शुद्धावस्था दो प्रकार की है। परमपारिणामिकभाव की अपेक्षा अनादिकाल से अनंतकाल तक रहेगी। नैमित्तिकभाव रूपी क्षायिकभाव की अपेक्षा शुद्धात्मा आदिकाल से नवीन होकर अनंतानंतकाल तक रहेगी।

प्र.-3448 यहाँ आदिकाल और नवीन का क्या अर्थ है?

उत्तर- कर्मों के क्षय से प्राप्त हुआ है अतः आदि और अशुद्धि दूर होने से शुद्ध हुआ अतः नवीन है।

प्र.-3449 कर्मविभाव और आत्मस्वभाव को जानकर चिंतन करो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- आगम ज्ञान से, गुरु उपदेश से, अनुमानादि से आत्मा को भली प्रकार जानकर स्थिर चित्त होकर यदि भावों से चिंतन नहीं किया तो कर्मों का क्षय नहीं होने से शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं होती है ऐसा कहा है।

प्र.-3450 हमारा चिंतन भावात्मक है या वचनात्मक यह कैसे समझा जाये?

उत्तर- जब ध्याता ध्यान में स्थिर होकर किसी श्लोक का, गाथा का, पद्य का या गद्य का अवलंबन लेकर चिंतन करता है तथा बीजाक्षरों को, मंत्रों को छोड़कर कुछ और ही विषय मन में सोच रहा है तब यह चिंतन भावात्मक है। वचनों से गाथा या श्लोक आदि का विचार कर रहा है तब वह ध्यान वचनात्मक है अतः जिसकी मुख्यता हो उसको प्रधान समझना चाहिये।

प्र.-3451 मन से चिंतन हो रहा है यह कैसे समझा जाये?

उत्तर - पाँचों इंद्रियों के विषय मौजूद होने पर भी ध्यान करते समय वे कोई भी विषय इंद्रियों और मन से न ग्रहण किये जायें, न अनुभव में आयें तो समझना चाहिये कि यह ध्यान/चिंतन मन पूर्वक है।

प्र.-3452 वचन से चिंतन हो रहा है यह कैसे समझा जाये?

उत्तर - नाना प्रकार के वचनों का अवलंबन लेकर वचन में ही मन को लगाना वचनात्मक ध्यान है।

प्र.-3453 मन अतिसूक्ष्म होने से मन की गति को पकड़ नहीं सकते तब क्या करें?

उत्तर- मन की गति अत्यंत सूक्ष्म होने पर भी स्थूल विषय ग्रहण करते समय लौकिक या लोकोत्तर मानव मन की गति को पकड़ लेता है तभी तो इंद्रियविषय ग्रहण करते समय शीघ्र ही सॉरी सॉरी बोलकर क्षमा याचना कर लेता है। यदि मन की गति नहीं समझी तो क्षमा क्यों मांगी या समझाने पर समझ लेता है अतः मन की अत्यंत सूक्ष्मगति भी अनुभवगम्य है तभी तो मोक्षमार्गी प्रतिक्रमण आदि करता है।

प्र.-3454 गाथा में भेदविज्ञान के बाद में विश्वास करने को क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ सामान्यज्ञान की प्राप्ति आगम से, धर्मोपदेश से, अनुमान से और पूर्व संस्कार से भी हो जाती है किंतु सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति सम्यग्दर्शन के साथ ही होती है इसके पूर्व नहीं ऐसा कहा है।

प्र.-3455 अथवा इन 4 चरणों का दूसरा अर्थ भी किस प्रकार होना चाहिये?

उत्तर- जैसा ज्ञान है वैसा ही श्रद्धान होगा क्योंकि छद्मस्थों के द्वारा ज्ञेय पदार्थ पूर्ण रूप में नहीं जाने जाते जिस ज्ञेय पदार्थ को हमने किसी प्रकार से अनुभव नहीं किया है उसमें विश्वास कैसे उत्पन्न होगा? अतः परमावगाढ़ सम्यक्त्व की उत्पत्ति आवरण कर्म के क्षय से होती है क्योंकि केवलज्ञान से समस्त चराचर पदार्थों के जान लेने पर ही पूर्ण विश्वास होता है सो इसे ही सम्यग्दर्शन की उत्कृष्ट लब्धि कहते हैं।

प्र.-3456 किस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति किस ज्ञान से होती है?

उत्तर- प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मिथ्याज्ञान पूर्वक ही, द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सम्यग्ज्ञान पूर्वक ही होती है। क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मिथ्यात्व गुणस्थान से मिथ्याज्ञान पूर्वक, मिश्रगुणस्थान से मिश्रज्ञान पूर्वक होती है और उपशम सम्यग्दर्शन से सम्यग्ज्ञान पूर्वक

होती है। क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सम्यग्ज्ञान पूर्वक और परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति केवलज्ञान पूर्वक ही होती है।

प्र.-3457 क्या सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सम्यग्दर्शन पूर्वक ही होती है?

उत्तर- हाँ, द्वितीयोपशमसम्यग्दर्शन, क्षायिकसम्यग्दर्शन की प्राप्ति क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन से ही होती है।

प्र.-3458 ऊपर अधिकतर निर्धारणार्थ ''ही'' पद का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर- विवक्षा, अपेक्षा स्पष्ट होने पर निर्धारणार्थ सम्यगेकांत निश्चयात्मक ''ही, खलु'' आदि अव्ययों का प्रयोग किया जाता है और विवक्षा अव्यक्त होने पर ''भी अपि'' आदि अव्ययों का प्रयोग किया जाता है।

प्र.-3459 निज शुद्धात्मा में रुचिवाले को निर्वाण की प्राप्ति होती है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- निज शुद्धात्मा में रुचि रखने वाले सभी सम्यग्दृष्टि होते हैं किंतु यहाँ सभी सम्यग्दृष्टियों को ग्रहण न कर संयमी सम्यग्दृष्टियों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि ऊपर की गाथा में **''योगी''** का पद ग्रहण किया है कारण कि निर्वाण पद की प्राप्ति साक्षात् निर्ग्रंथ दिगंबर मुनि को ही होती है, वस्त्रधारियों को नहीं।

प्र.-3460 निर्वाण किसे कहते हैं?

उत्तर- जैसे बाण से तीर निकलकर सीधा जाता है वैसे ही कर्मबंधन से मुक्त हुआ आत्मा सीधा बिना मोड़े के एक समय में तनुवातवलय पर्यंत चला जाता है सो इसे ही निर्वाण कहते हैं।

प्र.-3461 गाथा में ''णियमेण'' ऐसा पद क्यों कहा?

उत्तर- निज शुद्धात्मा में रुचि रखने वाले चरम शरीरी, तद्भव मोक्षगामी, क्षपकश्रेणी आरोहण करने वाले मुनि को नियम से, निश्चय से निर्वाण की प्राप्ति होती है अतः **''णियमेण''** पद को ग्रहण किया है।

प्र.-3462 निज शुद्धात्मा में रुचिवाले मुनियों को निर्वाण की प्राप्ति होती ही है क्या?

उत्तर- नहीं, क्योंकि शुद्धात्मा में रुचि वाले सभी मुनियों को निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है कारण गाथा में **''णियमेण''** पद के द्वारा चरमशरीरी मुनियों के अलावा शेष सभी का निराकरण किया है।

नोटः- यहाँतक 3462 प्रश्नोत्तरों में 113वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 114वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बहुत जानने से क्या?

मूलुत्तरुत्तरोत्तर दव्वादो भावकम्मदो मुक्को।

आसवबंधणसंवरणिज्जर जाणेइ किं बहुणा।।114।।

मूलोत्तरोत्तरोत्तरद्रव्यतो भावकर्मतो मुक्तः।

आस्रवबंधनसंवरनिर्जराः जानीहि किं बहुना।।

मूलुत्तरुत्तरोत्तरदव्वादो कर्मों के मूल उत्तर, उत्तरोत्तर द्रव्यकर्म **भावकम्मदो** भावकर्म **मुक्को** मुक्तजीव/मोक्षतत्त्व **आसव** आश्रव **बंधण** बंध **संवर** संवर **णिज्जर** निर्जरा तत्त्व को **जाणे** जानो **किं बहुणा** अधिक कहने से क्या?

प्र.-3463 मूल प्रकृति किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म प्रकृतियों को मूल द्रव्यकर्म कहते हैं। आठ भेद हैं। **नामः-** ज्ञानावरण,

दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय।

प्र.-3464 उत्तर प्रकृति किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मूलप्रकृति के भेदों को उत्तरप्रकृति कहते हैं। जैसे ज्ञानावरणकर्म के पाँच भेद हैं। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ऐसे ही सभी कर्मों में जानना।

प्र.-3465 उत्तरोत्तर प्रकृति किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मतिज्ञान को आवरण करने वाली प्रकृति को मतिज्ञानावरण कर्म कहते हैं। 336 भेद हैं। अवग्रहावरणीय, ईहावरणीय, आवायावरणीय, धारणावरणीय ऐसे ही सभी उत्तरोत्तर कर्म प्रकृतियों के भेद जानना चाहिये।

प्र.-3466 ये प्रकृतियां चेतन हैं या अचेतन?

उत्तर- ये प्रकृतियां पुद्गल द्रव्य रूप होने से अचेतन हैं और इनका बंधक, फल भोक्ता जीव चेतन है, इन प्रकृतियों के उदय से उत्पन्न होने वाले आत्मपरिणाम चेतन हैं। जैसे अपन और अपना फोटू।

प्र.-3467 मुक्त जीव किसे कहते हैं?

उत्तर- शुद्धात्मध्यान के द्वारा समस्त प्रकार के द्रव्यकर्म और भावकर्म को हमेशा के लिये नष्ट कर, पृथक् कर स्वाधीनता प्राप्त करने वाले जीवों को मुक्त जीव/ सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।

प्र.-3468 जीव को अनादि से मुक्त माना जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- परम पारिणामिक भाव या नानाजीवों की अपेक्षा जीव अनादि से मुक्त हैं किंतु एक जीव की अपेक्षा जीव आदिमुक्त है क्योंकि मुक्त नाम ही बता रहा है कि पहले कर्मबंधन था बाद में ध्यान साधना के द्वारा कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त किया है। जब संसार अनादि है तो संसार को बताने वाला और रहने वाला भी अनादि है अतः मुक्त जीव भी अनादि है क्योंकि अनादि को अनादि रूप में ही जानते हैं सब से पहले कौन सिद्ध हुआ यह बात केवली केवलज्ञान से न जानते हैं, न प्रतिपादन करते हैं और वो भी हाथ में लेकर आत्मा को न दिखाते हैं कि यह सर्व प्रथम मुक्त हुआ है। सभी जीवों को अनादिमुक्त मानने पर संसार की सिद्धि नहीं हो सकती है और संसार के बिना मोक्ष की भी सिद्धि न होने से सर्वापहारलोपपने का प्रसंग आता है जो प्रत्यक्ष, आगम, अनुमान आदि से भी नाना आपत्तियाँ आती हैं, कोई टाल नहीं सकता है।

प्र.-3469 अमूर्तिक वस्तुओं को हाथ में लेकर केवली प्रतिपादन क्यों नहीं करते हैं?

उत्तर- नहीं करते हैं क्योंकि जब कामसुख को, इंद्रिय सुख या दुःखों को हाथ में लेकर कोई भी नहीं दिखला सकते हैं केवल वचनों से कह सकते हैं ऐसे ही केवली भी केवल शब्दों के द्वारा बतला सकते हैं, हाथ में लेकर नहीं बतला सकते हैं कारण सभी द्रव्य गुण पर्यायों का स्वभाव ही ऐसा है।

प्र.-3470 यदि द्रव्य गुण पर्यायें सर्वथा अवाच्य हैं तो धर्मोपदेश या आदानप्रदान कैसे?

उत्तर- यदि वस्तुस्वभाव सर्वथा अवाच्य होता तो अवाच्य भी नहीं कह सकते क्योंकि अवाच्य शब्द भी वाच्यपने को सिद्ध कर देता है और द्रव्य गुण तथा सूक्ष्म पर्यायें वचन के अगोचर होने पर भी स्थूलपर्यायें वचनों से व्यवहार में लाई जातीं हैं अन्यथा लोक में सदाचार असदाचार का व्यवहार नहीं बन सकता अतः स्थूल द्रव्यगुणपर्यायें कथंचित् धर्मोपदेश से प्रतिपादन की जाती है सर्वथा नहीं।

प्र.-3471 गाथा में सात तत्त्व किस प्रकार से कहे गये हैं?

उत्तर- मूल प्रकृत्ति, उत्तर प्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृतियां अजीव तत्त्व है। **भावकम्मदो-** भावकर्म से संसारी जीव तत्त्व को, **मुक्को-** मुक्त जीव को, शेष चार तत्त्व गाथोक्त होने से ये 7 तत्त्व गाथा

में कहे हैं।

प्र.-3472 तत्त्व सात ही होते हैं या कम ज्यादा?

उत्तर- विवक्षानुसार अधिकतम तत्त्व 27 तक हो सकते हैं। जीवादि सात तत्त्व, जीवादि 6 द्रव्य जीवास्तिकायादि 5 अस्तिकाय और जीवादि 7 तत्त्वों में पुण्यपाप को मिलाने से 9 पदार्थ हो जाते हैं।

प्र.-3473 मध्यम रुचिवाले शिष्यों की अपेक्षा तत्त्व कितने हैं और कैसे होते हैं?

उत्तर- मध्यम रुचिवाले शिष्यों की अपेक्षा तत्त्व 7 होते हैं जीव और अजीव जब परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध से परिणमन करते हैं तब अजीवतत्त्व के 6 भेद तथा जीव तत्त्व के 7भेद हो जाते हैं।

प्र.-3474 अजीव तत्त्व के 6 भेद कैसे होते हैं?

उत्तर- आत्मा के साथ में पुद्गल द्रव्य का परिणमन करना अजीव तत्त्व, नवीन कर्मों का आना अजीवाश्रव, इनका ठहर जाना अजीवबंध, पुद्गल कर्मों को आते हुए रोक देना अजीवसंवर, पूर्व बद्धकर्मों का झड़ जाना अजीवनिर्जरा और संपूर्ण द्रव्यकर्म तथा नोकर्मों का आत्मा से पृथक् होना अजीवमोक्ष है।

प्र.-3475 जीव तत्त्व के 7 भेद कैसे हो जाते हैं?

उत्तर- चेतन स्वरूप होने से आत्मा ही जीव तत्त्व है। आत्मा में ज्ञान दर्शन चेतनगुण के अलावा शेष अनंत गुणधर्म अचेतन होने से अजीवतत्त्व। नवीन विकारी चैतन्य संस्कारों का आना जीवाश्रव, इनका आत्मा में ठहर जाना जीवबंध, आते हुए संस्कारों को रोक देना जीवसंवर, पुराने संस्कारों का आत्मा से थोड़ा निकाल देना जीवनिर्जरा, संपूर्ण विकारों का झड़ जाना जीवमोक्ष, इस प्रकार ये जीवतत्त्व के 7 भेद हैं।

प्र.-3476 अति संक्षेप से तत्त्व कितने हैं?

उत्तर- अति संक्षेप रूप से जीव और अजीव ये दो ही तत्त्व हैं। **जीवोऽन्य पुद्गलश्चान्य इत्यऽसौ.. .50 इ.दे।**

प्र.-3477 जीवादि तत्त्वों के बिना बहुत जानने से क्या मतलब ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इन जीवादि 27 भेदप्रभेद सहित तत्त्वों के बिना जानने के लिये अब कौनसा तत्त्व बचा है। हाँ छद्मस्थों के लिये केवलज्ञान गम्य सूक्ष्म अवस्थाएं अगम्य हैं। जैसा क्षायोपशमिकज्ञान प्राप्त हुआ है वैसा ही उतनी मात्रा में तत्त्वों को जान लो ज्यादा सूक्ष्मता से जानने के लिये आकुलव्याकुल क्यों होना? दुःखी क्यों होना? अतः संतोष धारण करो। बहुत कहने से क्या या बहुत जानने से क्या?

प्र.-3478 ''किं बहुणा'' बहुत कहने से बहुत जानने से क्या ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- नाना प्रकार के उदरपूर्ति, आजीविका संबंधी ज्ञान, मनोरंजनज्ञान, प्रभाव जमाने का ज्ञान, वक्तव्यकला का ज्ञान, नाचगान, वाद्य का ज्ञानादि को जानने से क्या आत्मसिद्धि हो सकती है? यह केवल भौतिकज्ञान लौकिकज्ञान है अतः इन बहुत ज्ञानों से क्या मतलब ऐसा कहा है?

नोटः- यहाँतक 3478 प्रश्नोत्तरों में 114वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 115वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

वैराग्य और राग की महिमा

विसयविरत्तो मुंचइ विसयासत्तो ण मुंचए जोई।

बहिरंतरपरमप्पाभेयं जाणेह किं बहुणा।।115।।

विषयविरक्तो मुच्यते विषयासक्तो न मुच्यते योगी।

बहिरंतः परमात्मभेदं जानीहि किं बहुना।।

विसयविरत्तो विषयविरक्त **जोई** योगी कर्मों को **मुंचइ** छोड़ता है **विसयासत्तो** विषयासक्त **ण** नहीं **मुंचइ** छोड़ता है इसलिये **बहिरंतर** बहिरात्मा अंतरात्मा और **परमप्पा** परमात्मा के **भेयं** भेदों को **जाणेह** जानो **बहुणा किं** अधिक कहने से क्या?

प्र.-3479 विषय किसके माध्यम से ग्रहण किये जाते हैं?

उत्तर- इंद्रियावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर पाँचों इंद्रियों से इष्टानिष्ट विषय ग्रहण किये जाते हैं।

प्र.-3480 मन का विषय क्या है?

उत्तर- द्रव्य और भाव से मन नपुंसक से कारण केवल विचारना, अनुभव करना ही मन का विषय है।

प्र.-3481 विषयविरक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- इन इंद्रियविषयों के प्रति आसक्ति, प्रेम, विश्वास आदि नष्ट होने को अथवा विषयों के त्याग को विषयविरक्ति कहते हैं क्योंकि "वि" उपसर्ग विगत, विनष्ट अर्थ में तथा विशेष अर्थ में भी आता है अर्थात् विषय विरक्त का अर्थ वीतराग और विशेष राग दोनों होते हैं फिर भी यहाँ वीतराग अर्थ ही इष्ट है।

प्र.-3482 विषयों में किस प्रकार का विश्वास करना चाहिये?

उत्तर- ये विषय अशाश्वत हैं, विनाशशील स्वभाव वाले हैं, मलिनता लाते हैं, आश्रवबंध स्वरूप हैं, संसार में भ्रमण कराकर नाना प्रकार के दुःख देने वाले हैं ऐसा विधि रूप में विश्वास करना चाहिये किंतु ये इंद्रियविषय शाश्वत हैं, शुद्ध हैं, आत्मस्वरूप हैं आदि ऐसा निषेध रूप में विश्वास नहीं करना चाहिये।

प्र.-3483 ऐसा विश्वास कौन करेगा?

उत्तर- जो जीव आत्मसुख, मोक्षसुख का इच्छुक है वह ऐसा विश्वास करेगा, दूसरा नहीं।

प्र.-3484 विषय विरक्त साधु किसको छोड़ता है?

उत्तर- विषयविरक्त साधु कर्म बंधन को छोड़ता है क्योंकि भाविकाल के लिए वर्तमान के ये विषय कारण है तो कषाय कार्य है और पूर्वबद्ध कर्मोदय की अपेक्षा कषाय कारण है तो विषय कार्य है। कारण के अभाव में कार्य नहीं होता है ऐसा न्याय है अतः समीचीन वैरागी साधु के विषयकषाय न होने से नवीन कर्मों का आश्रव बंध न होकर केवल संवर निर्जरा ही होती है।

प्र.-3485 क्या वर्तमान में कर्मोदयानुसार साधु परिणमन न करे यह संभव है?

उत्तर- वर्तमान में कोई उपसर्ग परीषह उत्पन्न हुआ या किन्हीं गृहस्थ दानदाताओं ने सामग्री लाकर दी तब उस समय आत्म साधक मोक्षमार्गी साधु ने बिना दुःखी हुए, बिना घबराये पद के, धर्म के विरुद्ध तथा धर्म साधन में बाधक मानकर उस सामग्री को ग्रहण न कर मना कर दिया अतः कुछ पुण्योदय से तथा लाभांतराय पाप कर्म के क्षमोपशम से प्राप्त हुई सामग्री को अनुपयोगी समझकर कर्मोदयानुसार परिणमन नहीं किया। यदि लोभ कषायानुसार परिणमन कर उस सामग्री को स्वीकार कर लेता तथा उपसर्ग परीषहों के अनुसार हाय हाय कर डर जाता, रोता, चिल्लाता, याचना करता और गृहस्थों जैसा सभी को परेशान करता पर ऐसा नहीं किया। यदि कर्मोदयानुसार कर्मों के प्रति उपेक्षा बुद्धि नहीं हुई, विरक्ति भावना नहीं बनी तो क्या मोक्षमार्ग समाप्त हो गया है? अतः कर्मोदयानुसार परिणमन नहीं करना संभव है।

प्र.-3486 विषय कषायों से विरक्त कौन होता है और विषयासक्त कौन होता है?

उत्तर- विषयकषायों से विरक्त साधु तथा विषयकषायों में आसक्त स्वादु गृहस्थ होता है।

प्र.-3487 साधु और स्वादु क्रमशः किस प्रकार के होते हैं?

उत्तर- शुद्धात्मा की साधना, आराधना, ध्याता साधु संसार को, संसार के कारणों को और विषय विकारों को छोड़ता है तथा स्वादु संसार और संसार के कारणों को नहीं छोड़ता है, न मोक्षमार्ग को, न मोक्ष के कारण संवर निर्जरा को प्राप्त होता है ऐसा नियम है कि प्रतिपक्ष सहित युगल धर्मों में से कोई एक धर्म को ग्रहण करता है तो प्रतिपक्षी दूसरे धर्म को छोड़ता है, विकार छोड़ता है, निर्विकार ग्रहण करता है आदि।

प्र.-3488 बहिरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- परमार्थ दृष्टि से, शुद्धात्म दृष्टि से, मोक्षमार्ग से बाह्य दृष्टिवालों को बहिरात्मा कहते हैं।

प्र.-3489 अंतरात्मा सामान्यतः किसे कहते हैं?

उत्तर- 8 या 4 कर्मों के भीतर रहनेवाले को, सयोगीअयोगी तक अंतरात्मा हैं। जी.का. गा. 366।

प्र.-3490 परमात्मा कैसे हैं?

उत्तर- परमात्मा परमार्थ में, शुद्धात्मा में, अनंतचतुष्टय में और पूर्ण शुद्धात्मावस्था में रहने वाले हैं।

प्र.-3491 ये तीनों प्रकार की आत्मायें कौन किस मार्ग का अनुसरण करती हैं?

उत्तर- बहिरात्मा संसारमार्ग का, अंतरात्मा और सकलपरमात्मा मोक्षमार्ग का अनुसरण करतीं हैं।

प्र.-3492 इन तीनों प्रकार की आत्माओं को पढ़कर सुनकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- इन तीनों आत्माओं को भिन्न भिन्न लक्षणों के द्वारा पृथक्[2] जानकर मोक्षमार्गी बनना चाहिये।

प्र.-3493 केवल जानने का नाम कल्याण का मार्ग है या संसारमार्ग?

उत्तर- छद्मस्थों के सिर्फ जानने का नाम कल्याण मार्ग नहीं है किंतु जानने के साथ साथ हेय को छोड़ना, उपादेय को ग्रहण करना और जिन पदार्थों से अपना कुछ भी हिताहित नहीं होता है ऐसे पदार्थों के प्रति माध्यस्थभाव धारण करना कल्याणमार्ग है, मोक्षमार्ग है अन्यथा संसारमार्ग है।

प्र.-3494 हेय, उपादेय और ज्ञेय का कार्य कौन से जीव करते हैं?

उत्तर- प्रमादीजीव बाह्यवस्तुओं को छोड़ते और ग्रहण करते हैं, अध्यात्मवेत्ता निष्प्रमादी हानिकारक परिग्रह का त्याग करते हैं, लाभदायक संवरनिर्जरा के साधनभूत परिणामों को ग्रहण करते हैं, जो आत्मनिष्ठ, निर्विकल्पध्यान में स्थित हैं वे कुछ भी न ग्रहण करते हैं, न छोड़ते हैं किंतु इनके लिये समस्त पदार्थ ज्ञेय रूप ही रह गये, हेय और उपादेय नहीं रहे यही तो शुद्धध्यान की महिमा है।

प्र.-3495 सात तत्त्वों के और त्रिधात्मा को जानने में क्या अंतर है?

उत्तर- सात तत्त्वों को जानना विस्तार से कहा है तथा यहाँ केवल आत्मा को जानने के लिये सामान्य से कहा है अतः एक जीव को जानना और 7 तत्त्वों को जानना यही सामान्य विशेष का अंतर है या आश्रवबंध रूप परिणमन करना बहिरात्मावस्था है, संवरनिर्जरा रूप परिणमन करना अंतरात्मावस्था है और मोक्ष रूप में, परमशुद्ध रूप में परिणमन करना परमात्मावस्था है ऐसा समझना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 3495 प्रश्नोत्तरों में 115वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 116वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बहिरात्मा जीव

णिय अप्पणाण झाणज्झयण सुहामिय रसायणप्पाणं।

मोत्तूणक्खाणसुहं जो भुंजइ सो हु बहिरप्पा।।116।।

निज आत्मज्ञान ध्यानाध्ययन सुखामृत रसायनपानं।

मुक्त्वा अक्षाणां सुखं यो भुंक्तो स हि बहिरात्मा।।

णिय निज **अप्पणाण** आत्मज्ञान **झाणज्झयण** ध्यानाध्ययनरूपी **सुहामिय** सुखामृत **रसायणप्पाणं** रसायनपान को **मोत्तूण** छोड़कर **जो** जो **अक्खाणसुहं** इंद्रियसुख **भुंजइ** भोगनेवाला **हु** निश्चयतः **बहिरप्पा** बहिरात्मा है।

प्र.-3496 निजात्म ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- परद्रव्य, विकार, परसंबंध से विरहित केवल निजात्म के जानने को अथवा सभी को अपने[2] लक्षणों से पहंचानने को निजात्म ज्ञान कहते हैं। यही वास्तव में सम्यग्ज्ञान है, भेद विज्ञान है, वीतराग विज्ञान है।

प्र.-3497 निजात्म ध्यान किसे कहते हैं?

उत्तर- परद्रव्य के अवलंबन बिना केवल आत्मा का चिंतन मनन करने को निजात्म ध्यान कहते हैं।

प्र.-3498 निजात्मध्यान को धर्मध्यान और शुक्लध्यान कैसे कहा?

उत्तर- रत्नत्रय और वैराग्य सहित संयम पूर्वक प्रमाद और कषायोदय के साथ आत्मा के चिंतन करने को धर्मध्यान तथा प्रमाद और कषायों का उदयाभाव या क्षय कर निजात्मध्यान को शुक्लध्यान कहा है।

प्र.-3499 निजात्म अध्ययन किसे कहते हैं?

उत्तर- अध्ययन, स्वाध्याय पठन ये एकार्थवाची हैं। वचनों के द्वारा आत्मद्रव्य, आत्मगुण, आत्मपर्यायों का परिवर्तन सहित वचनात्मक विचारों को निजात्मस्वाध्याय या अध्ययन कहते हैं।

प्र.-3500 निजात्म अध्ययन कितने प्रकार का कैसे होता है?

उत्तर- निजात्म अध्ययन पाँच प्रकार का होता है। **वाचना-** आत्मतत्त्व का वचनों से स्वयं के लिए उच्चारण करना वाचना अध्ययन, **पृच्छना-** अपने आप में वचनों के द्वारा प्रश्नोत्तर करना, **अनुप्रेक्षा-** मौन पूर्वक वचनों के द्वारा आत्मतत्त्व का चिंतन करना, **आम्नाय-** आत्मतत्त्व का वचनों के द्वारा शुद्ध उच्चारण करना, **धर्मोपदेश-** मोक्षमार्ग से संबंधित वचनों के द्वारा अपने आप को संबोधन करना।

प्र.-3501 ध्यान और स्वाध्याय में क्या अंतर है?

उत्तर- ध्यान स्थिरात्मक है तो स्वाध्याय परिवर्तन सहित विकल्पात्मक है। ध्यानावस्था में आत्म द्रव्य गुण पर्यायों में श्रुतज्ञान से चिंतन कर स्थिर होता है, इसी चिंतन में जो विकल्प है, परिवर्तन है वह आत्मा का ही स्वाध्याय है या गाथा में ज्ञान व चरित्र का वर्णन किया है क्योंकि स्वाध्याय, ध्यान अंतरंगतप के भेद हैं तथा तप, ध्यान चारित्रगुण का कार्य है तो जानना ज्ञानगुण का कार्य है। ज्ञान और चारित्र सम्यक् होने से श्रद्धान भी सम्यक् होगा अतः स्थिर अस्थिर या निर्विकल्प सविकल्प की अपेक्षा इनमें अंतर है।

प्र.-3502 स्वाध्याय और ध्यान ये किस प्रकार के और किस नंबर के तप हैं?

उत्तर- स्वाध्याय और ध्यान ये दोनों अंतरंग तप हैं। स्वाध्याय अंतरंग तपों में चौथे नंबर का और ध्यान 6वें नंबर का अंतरंग तप है। ये दोनों ही असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा के तथा संवर के हेतु हैं।

प्र.-3503 निजात्म ज्ञान, ध्यान और स्वाध्याय किसके समान हैं?

उत्तर- निजात्म ज्ञान, ध्यान और स्वाध्याय सुखामृत या शुभामृत के समान हैं।

प्र.-3504 सुखामृत या शुभामृत किसे कहते हैं?

उत्तर- जो मृत्यु को, कष्ट को, वेदना को मिटाकर आत्मानंद का अनुभव कराये या मंगलकारी आत्मसाधना का अनुभव कराये उसे सुखामृत या शुभामृत कहते हैं।

प्र.-3505 सुखामृत या शुभामृत किसके समान है?

उत्तर- यह सुखामृत, शुभामृत परम रसायन के समान है जैसे तीक्ष्ण रसायन साध्यासाध्य भयंकर बीमारी को जड़मूल से नष्ट कर निरोगता प्राप्त कराती है ऐसे ही ये ज्ञान ध्यान स्वाध्याय विकारों को क्षय कर शाश्वतानंद प्रदान कराते हैं इसलिये आ. श्री जी ने गाथा सूत्र में इनको परम रसायन के समान कहा है।

प्र.-3506 मोही साधु परम रसायन सुखामृत को प्राप्त कर क्या करता है?

उत्तर- मोही साधु परमरसायन को छोड़कर इंद्रियसुख में रमण करता हुआ इंद्रियसुख का ही आनंद लेता है।

प्र.-3507 इंद्रियसुख किसे कहते हैं तथा ये किसके समान है?

उत्तर- साता वेदनीय कर्मोदय सहित इंद्रिय और मन के द्वारा आनंद लेने को इंद्रियसुख कहते हैं, यह कर्मोदयजन्य इंद्रियसुख खाज खुजाने तथा कुत्ते के द्वारा हड्डी चबाने के समान है।

प्र.-3508 इंद्रिय सुख खाज खुजलाने के समान है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- शरीर में उत्पन्न हुई दाद खाज छाजनादि रोगों को जितना खुजाओ उतना अच्छा लगता है खुजलाने से जलन पैदा होकर अधिक आकुलता बढ़ जाती है ऐसे ही इंद्रियसुख भोगते समय अच्छा लगता है इससे पाप का ही आश्रव बंध होता है, आत्मशक्ति क्षीण होती है नाना बीमारियां होतीं हैं तन मन धन और धर्म चारों नष्ट होते हैं, विश्वास टूट जाता है आदि हानि होने से इंद्रियसुख को खाज खुजाने की उपमा दी है।

प्र.-3509 इंद्रिय सुख को सुखाभास क्यों कहा?

उत्तर- शाश्वत, सदा एकसा न होने से, कर्माधीन होने से, नाशवान होने से, मलिन होने से इंद्रिय सुख को सुखाभास कहा है। सुख जैसा आभास होता है जैसे रेगिस्तान में हिरण सूर्य की किरणों से बालू की चमक को पानी समझकर दौड़ लगाता है पर निकट में आते ही पानी न होने से आकुलता बढ़ी, थकावट बढ़ी, प्यास अधिक मात्रा में बढ़ने पर गला भी सूख गया और मृत्यु भी हो जाती है इसी तरह मोही मानव विषयसुख की तृष्णा में यहाँ वहाँ भटकता हुआ सुख न पाकर रात दिन तृष्णा को, लोभ को बढ़ाता हुआ मर जाता है इसलिए इंद्रियसुख को सुख न कहकर सुखाभास कहा है।

प्र.-3510 इंद्रिय सुख को कुत्ते की हड्डी की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- कुत्ता हड्डी को पाकर मुंह में दबाकर भागकर, छिपकर बैठकर या लेटकर जोर२ से चबाता है, हड्डी को चबाते समय जबड़े कटने से अपने ही रक्त को पीकर प्रसन्न होता है किंतु चूसने से दर्द होने पर चिल्लाता है, रोता है, दुःखी होता है ऐसे ही मोही प्राणी इंद्रियसुखों को भोगता हुआ पापकर्मों को बांधकर आर्त रौद्र ध्यानों से नरक निगोद में जाकर दुःखों को भोगता है अतः इंद्रियसुख को कुत्ते की हड्डी की उपमा दी है।

प्र.-3511 इंद्रिय सुख कितने प्रकार का होता है?

उत्तर- राग पूर्वक विषयसेवन से इंद्रियसुख इंद्रियों के विषयों की अपेक्षा 27 प्रकार का होता है।

प्र.-3512 मन का क्या विषय है और कितने प्रकार का है?

उत्तर- **''श्रुतमनिन्द्रियस्य''** मन का विषय श्रुतज्ञान है तथा जितने द्वादशांगवाणी रूपी श्रुतज्ञान के भेद हैं उतने ही मन के भेद समझना चाहिये अतः इंद्रियों की अपेक्षा मन का विषय महान

और सूक्ष्म है।

प्र.-3513 तो क्या ये सभी विषय हानिकारक हैं?

उत्तर- नहीं, ये सभी विषय हानिकारक नहीं हैं किंतु जो विषय कषायपूर्वक सेवन करने से वर्तमान में आकुलता व्याकुलता, आर्तरौद्रध्यानादि के उत्पादक कर्म बंधन के कारण हैं वे हानिकारक हैं। यदि दर्पण के समान ज्ञेय ज्ञायक संबंध तथा वैराग्य का हेतु बनाया है तो ये विषय कर्म निर्जरा के साधन बन जाते हैं। जैसे मृतवेश्या को उसके साथी अग्नि संस्कार के लिये श्मशान में ले जाते हैं वहाँ पर कामी पुरुष उस वेश्या के रूप सौंदर्य, हृष्ट पुष्ट शरीर को देखकर कामसेवन का विचार करता है यदि यह जीवित होती तो मैं अपनी इच्छा की पूर्ति करता, वहीं पर गीदड़ सोच रहा है यदि ये लोग चले जाते तो मैं इसे खाकर अपनी भूंख मिटाता। वहीं पर संन्यासी सोचता है कि इसने अपना यह अमूल्य मानव जीवन उच्च पर्याय पाप करते हुये, अनेकों का जीवन बिगाड़ते हुये अपना भी जीवन बिगाड़ा सो ऐसे जीवन को धिक्कार है। इस प्रकार ज्ञेय पदार्थों के माध्यम से ध्याता पुरुष अपना पतन और उत्थान भी कर लेता है।

प्र.-3514 यदि ये विषय हानिकारक नहीं हैं तो "अधिकरणं जीवाजीवाः" क्यों कहा?

उत्तर- 6वें अध्याय में सातवें सूत्र के द्वारा सांपरायिक आश्रव का आधार क्या क्या है यह बतलाना इष्ट है किंतु 9वें अध्याय में संवर निर्जरा तत्त्व का कथन होने के कारण **मार्गाच्यवन निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।।8।।** उपसर्ग परीषहों को जीतना चाहिये क्योंकि ये जीव और अजीवों के द्वारा किये जाते हैं इसलिये ये ज्ञेय पदार्थ विषयकषाय और पतन में सहायक हो जाते हैं और ये जीवाजीव ज्ञेय पदार्थ संवर निर्जरा में सहायक होने से उत्थान में सहायक हो जाते हैं अतः उपभोक्ता के अनुसार ज्ञेय पदार्थ हित और अहित में सहायक बन जाते हैं, जो सर्वत्र देखा जा रहा है।

प्र.-3515 आत्मलक्ष्य भूलकर इंद्रियविषयासक्त प्राणिओं को क्या कहते हैं?

उत्तर- उसे बहिरात्मा, दुर्भावना वाला, दुष्चरित्री संसारमार्गी, विषयलंपटी, मोही, पापी आदि कहते हैं।

नोटः- यहाँतक 3515 प्रश्नोत्तरों में 116वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 117वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

इंद्रिय सुख कैसा है?

किंपायफलं पक्कं विसमिस्सिद मोदमिव चारुसुहं।
जिब्भसुहं दिट्ठिपियं जह तह जाणक्खसोक्खं वि।।117।।

किंपाकफलं पक्कं विषमिश्रितमोदकमिव चारुसुखं।
जिह्वासुखं दृष्टिप्रियं यथा तथा जानीहि अक्षसौख्यमपि।।

जह जैसे **पक्कं** पक्व **किंपायफलं** किंपाकफल **विसमिस्सिद** विषमिश्रित **मोदमिव** मोदकवत् **चारू सुहं** सुंदर सुखकारी **जिब्भसुहं** खाने में स्वादिष्ट **दिट्ठिपियं** देखने में प्रिय है **तह वि** वैसे ही **अक्खसोक्खं** इंद्रिय विषयसुख को **जाण** जानो।

प्र.-3516 किंपाकफल किसे कहते हैं, परिपक्वावस्था में कैसा और फल क्या है?

उत्तर- इंद्रायन फल कच्ची अवस्था में हरा होता है बीच[2] में धारियां होती हैं और पकने पर लाल गुलाबी, स्वाद में मधुर होता है पर इसको खाने वाला मनुष्य मृत्यु को या मृत्युवत् कष्ट को भी प्राप्त होता है।

प्र.-3517 विषमिश्रित लड्डू कैसे और किसके समान होते हैं?

उत्तर- बूंदी आदि के लड्डुओं में जहर मिला देने को विष मिश्रित लड्डू कहते हैं। ये खाने में अच्छे, देखने में सुंदर, सुनने में कर्णप्रिय, सूंघने में सुगंधित किंतु विपाकावस्था में जहर के समान मारक होते हैं।

प्र.-3518 इंद्रियसुख कैसे प्राप्त होता है और कैसा है?

उत्तर- इंद्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से तथा इंद्रियों और मन के द्वारा ग्रहण किये गये विषयों से आत्मा में उत्पन्न हुए आह्लाद को इंद्रियसुख कहते हैं, ये किंपाकफल और विषमिश्रित लड्डू के समान हैं।

प्र.-3519 गाथा में इंद्रियसुख के साथ ''वि/अपि'' का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- कषाय सहित आसक्ति पूर्वक सेवन करने से कर्म बंधक प्राणहर्ता बन जाते हैं कदाचित् औषधि मानकर सेवन किये जायें तो तारक हो जाते हैं। इस अर्थ को बताने के लिये गाथा में वि/अपि का प्रयोग किया है। यदि **अपि** का प्रयोग नहीं करते तो ये सुख केवल मारक या तारक एक ही प्रकार के होते।

नोटः- यहाँतक 3519 प्रश्नोत्तरों में 117वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 118वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बहिरात्मा जीव

देह कलत्त पुत्त मित्ताइं विहाव चेदणा रूवं।
अप्प सरूवं भावइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।118।।

देहं कलत्रं पुत्रं मित्रादि विभावचेतनारूपं।
आत्मस्वरूपं भावयति स हि भवेत् बहिरात्मा।।

जो व्यक्ति **देह** शरीर **कलत्तं** पत्नी **पुत्तं** पुत्र **मित्ताइं** मित्रादि और **विहावचेदणा रूवं** विकारी कर्मचेतना और कर्मफलचेतना को **अप्प सरूवं** आत्मस्वरूप **भावइ** भावना करता है तो **सो चेव** वही जीव **बहिरप्पा** बहिरात्मा **हवेइ** होता है।

प्र.-3520 देह किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- शरीरनाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को देह कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं। नामः- औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्माण शरीर।

प्र.-3521 शरीर और आत्मा को एक मानने वाला बहिरात्मा है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- नयानुसार शरीर और आत्मा को एक मानने में कोई दोष नहीं है किंतु मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ शरीर और आत्मा को सर्वथा भिन्न या अभिन्न माने, जाने, उभय अनुभय रूप में या कथंचित् स्यात् के साथ में सप्तभंगी बनाकर भी विश्वास करे तो बहिरात्मा ही है क्योंकि बहिरात्मावस्था का मूल प्रत्यय मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय का परिणाम है।

प्र.-3522 किस शरीर के साथ एकता मानना मिथ्यात्व है?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ में किसी भी शरीर के प्रति एकरूपता का परिणाम होना मिथ्यात्व है, मूल प्रत्ययों के बिना शरीरों के साथ में आत्मा को एकरूप में मानना मिथ्यात्व नहीं है। यदि इसे भी मिथ्यात्व माना जाये तो तीर्थंकरों के शरीरादि की पूजा मुनिदान, वैय्यावृत्ति को भी मिथ्यात्व मानने का प्रसंग आयेगा और सोलहकारण भावनायें भी मिथ्या कहलायेंगी।

प्र.-3523 शरीर और आत्मा क्या सर्वथा भिन्न है या अभिन्न?

उत्तर- **ववहारणयो भासदि जीवो देहो या हवदि खलु इक्को।**
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एक्कट्ठो ।।27।। स.सा. आ. कुंदकुंद

अर्थः- व्यवहारनय से जीव और शरीर अभिन्न है किंतु निश्चयनय से ये कदापि एक नहीं हो सकते

अर्थात् श्री स.सा. के अनुसार नयसापेक्ष शरीर और आत्मा कथंचित् भिन्न और अभिन्न है सर्वथा नहीं।

प्र.-3524 कलत्र किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मातापिता, भाईबंधुओं, पंचों, देवशास्त्र गुरु, अग्नि की साक्षी जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार हुआ है उसे कलत्र कहते हैं। कलत्र आठ प्रकार की होतीं हैं क्योंकि विवाह आठ प्रकार के माने हैं। नीतिवा. आ० सोमदेवजी कृत विवाह समुद्देश 31 सूत्र 1-13

द्वादशवर्षा स्त्री षोडशवर्षः पुमान् प्राप्तव्यवहारौ भवतः।।1।।

अर्थः- 12वर्ष की कन्या और 16वर्ष का बालक ये दोनों विवाहक्रिया, गृहस्थी के योग्य हो जाते हैं।

सुवर्णाकन्यकायस्तु विवाहयति धर्मतः।
संतानं तस्य शुद्धं स्यान्नाकृत्येषु प्रवर्तते।।

भावार्थ- उत्तम समान वर्ण वाली कन्या से जो बालक धर्मानुसार विवाह करता है उसकी संतान शुद्ध होती है और वह अकृत्यों में प्रवृत्ति नहीं करती है।

प्र.-3525 विवाह किसे कहते हैं तथा कितने भेद हैं?

उत्तर- **युक्तितो वरणविधानमग्निदेवद्विजसाक्षिकं च पाणिग्रहणं विवाहः।।3 ।।**

युक्ति पूर्वक ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अग्नि, देव और द्विजों की साक्षी पाणि ग्रहण संस्कार को विवाह कहते हैं। विवाह के आठ भेद हैं।

ब्राह्मचो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथापरः।
गंधर्वश्चासुरश्चैव पैशाचो राक्षसस्तथा।।1।।

ब्रह्मविवाह, दैवविवाह, आर्षविवाह, प्राजापत्यविवाह, गंधर्वविवाह, असुरविवाह, पैशाचविवाह, राक्षसविवाह विवाहों के ये 8 नाम हैं।

प्र.-3526 ब्रह्मविवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **स ब्राह्मचो विवाहो यत्र वरायालंकृत्य कन्या प्रदीयते।।4।।**

अर्थ- जहाँ माता पिता आदि परिवारजनों के द्वारा कन्या को अलंकृत कर वर के लिये प्रदान की जाती है उसे ब्रह्म विवाह कहते हैं।

प्र.-3527 दैवविवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **स दैवो विवाहो यत्र यज्ञार्थमृत्विजः कन्याप्रदानमेव दक्षिणा।।5।।**
कृत्वा यज्ञविधानं तु यो ददाति च ऋत्विजः।
समाप्तौ दक्षिणां कन्यां दैवं वैवाहिकं हि तत् ।।1।।

अर्थ- जहाँ मंत्र पूर्वक हवन करके अंत में वर के लिये कन्या प्रदान करने को दैव विवाह कहते हैं।

प्र.-3528 आर्ष विवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **गोमिथुनपुरस्सरं कन्यादानादार्षः।।6।।**
कन्यां दत्वा पुनर्दद्याद्यत्र गोमिथुनं परं।
वराय दीयते सोऽत्र विवाहश्चार्षसंज्ञितः।।

अर्थ- वर के लिये कन्या देने के बाद गाय, भूमि आदि प्रदान किये जाते हैं उसे आर्षविवाह कहते हैं।

प्र.-3529 प्राजापत्य विवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **विनियोगेन कन्याप्रदानात्प्राजापत्यः।।7।।**

धनिनो धनिनं यत्र विषये कन्यकामिह ।

संतानाय स विज्ञेयः प्राजापत्यो मनीषिभिः।।

अर्थ- साधर्मियों को संतान परंपरा के लिये कन्या प्रदान करने को मनीषिजन प्राजापत्य विवाह कहते हैं।

एते चत्त्वारो धर्म्या विवाहाः।।8।।

अर्थ- ये चार धर्म विवाह माने गये हैं।

प्र.-3530 गंधर्वविवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **मातुः पितुर्बन्धूनां चाप्रामाण्यात्परस्परानुरागेण मिथः समवायाद्गान्धर्वः।।9।।**

पितरौ समतिक्रम्य यत्कन्या भजते पतिं।

सानुरागा सरंगं च स गांधर्व इति स्मृतः।।

अर्थ- बिना मातपिता की आज्ञा के कन्या स्वयं सानुराग पति ग्रहण करने को गंधर्व विवाह कहते हैं।

प्र.-3531 आसुरविवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **पणबंधेन कन्याप्रदानादासुरः।।10।।**

मूल्यं सारं गृहीत्वा च पिता कन्यां च लोभतः।

सुरूपामथवृद्धाय विवाहश्चासुरो मतः।।

अर्थ- जो पिता धन के लोभ से धन लेकर यथापुरुष के लिये कन्या देता है उसे आसुरविवाह कहते हैं।

प्र.-3532 पैशाच विवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **सुप्तप्रमत्तकन्यादानात्पैशाचः।।11।।**

सुप्तां वाथ प्रमत्तां वा यो मत्वाथ विवाहयेत् ।

कन्यकां सोऽत्र पैशाचो विवाहः परिकीर्तितः।।

अर्थ- जो कन्या सो रही है या प्रमादी है या नशे में है ऐसा मानकर अपहरण कर बलात् विवाह कर लेने को पैशाच विवाह कहते हैं।

प्र.-3533 राक्षस विवाह किसे कहते हैं?

उत्तर- **कन्यायाः प्रसह्यादानाद्राक्षसः।।12।।**

रुदतां च बंधुवर्गाणां हठाद्गुरुजनस्य च।

गृह्णाति यो वरात्कन्यां स विवाहस्तु राक्षसः।।

अर्थ - मातापितादि को रुलाते हुए बलात् कन्या को हरकर विवाह करने को राक्षसविवाह कहते हैं।

एते चत्वारोऽधर्म्याऽपि नाधर्म्या यद्यस्ति वधूवरयोरनपवादं परस्परस्य भाव्यत्वं।। 13।।

अर्थ- ये चार अधर्मविवाह हैं फिर भी कालांतर में वरवधु परस्पर में परमप्रीति को प्राप्त हो जायें तथा अपवाद भी न हो तो ये अधर्म विवाह नहीं हैं। **वर वेश्यायाः परिग्रहो न अविशुद्ध कन्याया परिग्रह।।24।।** वेश्या को अंगीकार कर लेना कदाचित् ठीक है किंतु अविशुद्ध कन्या को ग्रहण करना अच्छा नहीं है। **वरं जन्मनाशः कन्यायाः नाकुलीनेष्ववक्षेपः।।25।।** कन्या का जन्म लेते ही मर जाना श्रेष्ठ है किंतु कुलहीन वर अंगीकार करना श्रेष्ठ नहीं हैं। अर्थात् विवाह के लिए वर

कन्या दोनों ही समान कुल वाले होना चाहिये।

प्र.-3534 कोर्टमेरिज/प्रेमविवाह को धर्मविवाह कह सकते हैं क्या?

उत्तर- प्रेमविवाह में, कोर्टमेरिज में धर्म के संस्कार एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति न होने से इसे पाप विवाह ही कहते हैं तभी तो ऐसा विवाह थोड़े समय के बाद में विवादास्पद बन जाता है और संबंध टूट जाता है। एक दूसरे को नीचा दिखाकर तलाक हो जाता है तथा यह पद्धति विदेशियों की है, भारतियों की नहीं।

प्र.-3535 यहाँ भी यह भारतीय संस्कृति रही है अन्यथा विवाह के आठ भेद क्यों?

उत्तर- जब संसार अनादि है तो संसार के कारण भी अनादि हैं और ऐसे विवाहों को धार्मिक संस्कार नाम न देकर पाप रूप ही कहा है क्योंकि ऐसे संबंधों से कलंकित संतानें पैदा होती हैं कारण भारत में धर्म संस्कृति और भोग पाप संस्कृति प्रचलित थी अतः पापनीति होने के कारण इसे धर्म समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिली किंतु विदेशों में, मलेच्छों में इसे सुख मानकर प्रीति पूर्वक करने के कारण प्रतिष्ठा मिली।

प्र.-3536 पत्नि को आत्म स्वरूप मानने वाला बहिरात्मा है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- पति या पत्नि को आत्मस्वरूप मानना केवल बहिरात्मपना नहीं है किंतु मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से आत्म स्वरूप मानना बहिरात्म अवस्था है। इन मूल प्रत्ययों के अभाव में एक मानना बहिरात्मपना न होकर अंतरात्मपना है। सो कैसे? जैसे रामसीता परस्पर में एकरूप नहीं मानते थे तो राम सीता के प्रति और सीता राम के प्रति इतना हाय विलाप क्यों करते? अंजना पवनंजय के प्रति क्यों रोती? जबकि आगम में इन महापुरुषों को तद्भव मोक्षगामी चरमशरीरी सम्यग्दृष्टि कहा है अतः केवल शरीर और आत्मा को एक मानना मिथ्यात्व नहीं हैं किंतु मूल कारणों के साथ एकत्व मानना मिथ्यात्व है।

प्र.-3537 दंपति परस्पर में एकत्वपना क्यों मानते हैं?

उत्तर- वेदकषाय, रतिकषाय और लोभ कषायों के तीव्रोदय से एकत्वपना मानते हैं क्योंकि लोभ कषाय का लक्षण भोग संबंधी चेतन अचेतन पदार्थों के प्रति आकर्षण एकत्वपना होना ही है।

प्र.-3538 पुत्र को आत्म स्वरूप मानने वाला बहिरात्मा है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय युक्त होने से पुत्र को आत्मा मानने वाला बहिरात्मा कहा है।

प्र.-3539 पुत्र को धर्मसंतान क्यों कहते हैं?

उत्तर- स्वयं के रजोवीर्य से उत्पन्न होने के कारण पुत्र को धर्मसंतान कहते हैं।

प्र.-3540 मित्र किसे कहते हैं?

उत्तर- जो व्यक्ति सगोत्री, भिन्न गोत्री, पड़ोस का, जाति विजाति का, देश परदेश का हो, अपने परिवार का हो या न हो, वृक्ष की छाया और दूध में पानी के समान सुख दुःख में साथ निभाये उसे सन्मित्र कहते हैं।

प्र.-3541 मित्र को आत्म स्वरूप मानने वाला बहिरात्मा है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यात्व एवं अनंतानुबंधी कषायोदय पूर्वक मित्रों में एकात्मक विचार को बहिरात्मा ही कहा है।

प्र.-3542 मित्र को बतलाने के लिये यहाँ ये दो उदाहरण क्यों दिये?

उत्तर- वृक्ष और छाया का परस्पर में घनिष्ठ संबंध है जहाँ वृक्ष है वहीं छाया है वृक्ष को छोड़कर

छाया नहीं रहती है या अग्नि में जलता हुआ पानी दूध की रक्षा करता है दूध को जलने नहीं देता ऐसे ही जब तक मित्र जीवित है तब तक सहायता करता है कष्ट से बचाता है, हमेशा दुःख सुख में साथ निभाता है।

प्र.-3543 मित्र बनकर भी कष्टावस्था में साथ छोड़ दे तो उसे क्या कहते हैं?

उत्तर- **दूता एव कृतांतस्य द्वंदकाले परान्मुखः।।32।।** क्ष.चू. चतुर्थ लंब

अर्थ- जो मित्र बनकर भी आपत्तिकाल में साथ छोड़ दे उसे मृत्यु का ही दूत समझना चाहिये।

प्र.-3544 गाथा में आदि पद का प्रयोग क्यों किया है?

उत्तर- आदि पद से परिवार को, सगे संबंधियों को, मातृपक्ष वालों को, पशुपक्षियों को भी अपनी ही आत्मा मान लेता है तभी तो इनके संयोग वियोग में सुखी दुःखी होता है क्योंकि यह मोहियों की विचित्र दशा है।

प्र.-3545 इन सभी को अपनी आत्मा मानने वाला बहिरात्मा है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायपूर्वक सभी को आत्मस्वरूप मानने वालों को बहिरात्मा कहा है।

प्र.-3546 बहिरात्मा कहाँ और कैसे होते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग से बाह्य मिश्रगुणस्थान तक बहिरात्मा, सकलसंयम के अभाव की अपेक्षा पंचम गुणस्थान तक बहिरात्मा, यथाख्यातसंयम के अभाव की अपेक्षा सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान तक बहिरात्मा, केवलज्ञान के अभाव की अपेक्षा 12 गुणस्थान तक और सिद्ध पद की अपेक्षा समस्त गुणस्थान वाली आत्मायें बहिरात्मा है क्योंकि पूर्ण शुद्ध स्वभाव के बाहर ये आत्मायें विराजमान हैं।

प्र.-3547 विभावचेतना किसे कहते हैं?

उत्तर- कर्मचेतना और कर्मफलचेतना को या आदि के 4 ज्ञान तथा 3 दर्शन को विभावचेतना कहते हैं।

प्र.-3548 कर्मफलचेतना किसे कहते हैं और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- इष्टानिष्ट विकल्पों के बिना केवल कर्मफल भोगने को कर्मफलचेतना कहते हैं। ये कर्मफल भोगते समय न कर्मों का प्रतिकार कर सकते हैं, न भाग सकते हैं, न बोल सकते हैं, न कह सकते हैं आदि **सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया**। पंचा. गा. 39। इसके स्वामी सभी एकेंद्रिय जीव हैं।

प्र.-3549 कर्मचेतना किसे कहते हैं और स्वामी कौन हैं?

उत्तर- इष्टानिष्ट विचार पूर्वक कर्मफल भोगने को, कर्मफल भोगते समय बच, बचा सकते हैं, भाग सकते हैं, छिप सकते हैं आदि कार्यों को कर्मचेतना कहते हैं। **तसा हि कज्जजुदं**। गा. 39 इसके स्वामी त्रसजीव हैं।

प्र.-3550 स्वभाव या ज्ञानचेतना किसे कहते हैं और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- केवलज्ञान को स्वभावज्ञान या ज्ञानचेतना कहते हैं। प्राणपने का व्यवहार समाप्त हो गया है ऐसे सिद्धों को ज्ञानचेतना का स्वामी कहते हैं। कहा भी है- **पाणित्तमदिक्कंता णाणं विदंति ते जीवा**। पंचा. 39

प्र.-3551 सयोगी अयोगी केवलज्ञानियों को ज्ञानचेतना का स्वामी क्यों नहीं कहा?

उत्तर- अनंतचतुष्ट वाले इन दो गुणस्थानों में केवलज्ञान मौजूद है, इनमें 4 प्राण, 3 प्राण, 2 प्राण और एक प्राण कार्य रूप में होने से त्रसनामकर्म तथा तत्संबंधी नाना प्रकृतियों का उदय होने से कर्मचेतना का स्वामी कहा है और प्राणों का पूर्णतः क्षय होने से सिद्धों को ज्ञानचेतना का

स्वामी कहा है।

प्र.-3552 विभाव चेतना को आत्मस्वरूप मानने वाला बहिरात्मा है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- कर्मचेतना, कर्मफलचेतना और 4 ज्ञान, 3 दर्शन को विभाव चेतना कहने का कारण यह है कि यह छद्मस्थों की, प्रमत्तों की अवस्था प्रतिपाती है, क्षायोपशमिक है, विकार रूप है यदि इनको लक्षणानुसार स्वीकार किया जाये तो बहिरात्मपना नहीं है किंतु मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी आदि 12 कषाय का उदयाभाव होने से अंतरात्मपना है फिर भी उभयश्रेणी न होने से बहिरात्मा कहा है।

प्र.-3553 यह अवस्था क्षीणमोहियों की होने से ये बहिरात्मा क्यों?

उत्तर- हाँ, विवक्षानुसार ये अंतरात्मा और बहिरात्मा हैं। मोहकर्म के पूर्ण क्षय से अंतरात्मा तथा परमात्मावस्था के बाहर होने से बहिरात्मा है। कहा भी है- **अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।।150।।** नि.सा.। इस अंतर्जल्प मन के विकल्प, बाह्यजल्प वचन के विकल्प वाला बहिरात्मा है इस नियमानुसार क्षीणमोही निर्ग्रंथमुनि मन और वचन के विकल्पों में, आदि के दो शुक्लध्यानों में श्रुतज्ञान का अवलंबन होने से बहिरात्मपना बन जाता है क्योंकि **वितर्कः श्रुतम्** त.सू. 9 सू.43 श्रुतज्ञान को साकारोपयोग कहा है।

प्र.-3554 कर्मचेतना और कर्मफलचेतना आत्मा ही है ऐसी मान्यता मिथ्या क्यों?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय के साथ कर्मचेतना और कर्मफलचेतना को आत्म स्वभाव मानना मिथ्या है और मूल प्रत्ययों के अभाव होने पर सभी मान्यतायें प्रमाण, नय, निक्षेप से सम्यक् सिद्ध होने के कारण समीचीन हैं, मोक्षमार्ग स्वरूप हैं।

नोटः- यहाँतक 3554 प्रश्नोत्तरों में 118वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 119वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बहिरात्मा

इंदियविसय सुहाइसु मूढमई रमइ ण लहइ तच्चं।
बहुदुक्खमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।119।।

इंद्रियविषयसुखादिषु मूढमतिः रमते न लभते तत्त्वं।
बहुदुःखमिति न चिंतयति स चैव भवति बहिरात्मा।।

इंदियविसय इंद्रियविषय **सुहाइसु** सुख में **रमइ** रमता हुआ **मूढमई** मूर्ख **तच्चं** तत्त्व को **ण** नहीं **लहइ** पाता व **बहुदुक्खमिदि** इंद्रियसुख दुःख **ण** नहीं है ऐसा **चिंतइ** चिंतक **सो चेव** ही **बहिरप्पा** बहिरात्मा **हवेइ** होता है।

प्र.-3555 मूढ़मति किसे कहते हैं, भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- नासमझ व्यक्ति को, अंहकारी आदि को मूढ़मति कहते हैं। दस भेद हैं। 1. **रक्तः-** जिसके नेत्र कषाय से लाल हो रहे हैं ऐसा पुरुष 2. **द्विष्टः-** द्वेष करने वाला पुरुष 3. **मनोमूढ़ः-** विवेकहीन पुरुष 4. **व्युद्ग्राहीः-** गलत का आग्रह करने वाला दुष्टपुरुष 5. **पित्तदूषितः-** विपरीत स्वभाव वाला पुरुष 6. **चूतः-** योग्यायोग्य विचारशून्य व्यक्ति 7. **क्षीरः-** अज्ञानता से दुधारु पशु का परित्याग करने वाला 8. **अगुरुः-** अगुरु चंदन को जलाकर बाद में पश्चात्ताप करने वाला 9. **चंदनः-** लोभ के वश उत्तम चंदन को बेचकर नीम की लकड़ी खरीदने वाला 10. **बालिशः-** विवेकहीन पुरुष। अ. 4 गा. 40 और अ. 10 गा. 1-3 आ. अमितगति धर्म.प.

प्र.-3556 विषयासक्त व्यक्ति आत्म तत्त्व को क्यों प्राप्त नहीं करता है?

उत्तर- **विषयासक्त चित्तानां गुणः को वा न नश्यति।**
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्।।10।। क्ष.चू. प्र.लंब

अर्थः- विषयासक्त मन वाले का कौन सा गुण नष्ट नहीं हो जाता यानि उसके सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। उसमें ज्ञानीपना, मनुष्यपना, सज्जातिपना और वचनों में सत्यता भी नहीं रहती है इसलिए इंद्रिय विषयासक्त अंधा व्यक्ति आत्मतत्त्व को, रत्नत्रय धर्म को, आत्मसुख को प्राप्त नहीं कर पाता है।

प्र.-3557 विषयसुख में रमण करने वाले व्यक्ति को क्या कहते हैं?

उत्तर- विषयसुख में रमण करने वाले व्यक्ति को मूर्ख, विषयलंपटी, कामी भोगी बहिरात्मा कहते हैं।

प्र.-3558 विषयलंपटी किसको नहीं जान पाता?

उत्तर- विषयलंपटी मानवता, सज्जातिपना, उच्चकुलपना, सज्जनता आदि सद्गुणों को नहीं जान पाता।

प्र.-3559 मूर्ख व्यक्ति विषयसुख को किस प्रकार से नहीं विचारता है?

उत्तर- धर्मकर्म से, स्व कर्तव्य से भ्रष्ट मूर्ख प्राणी पापोदय से विषयसुख दुःखरूप है ऐसा नहीं सोचता है।

प्र.-3560 प्राप्त करने में और जानने में क्या अंतर है?

उत्तर- प्राप्त करना चरणक्रिया और जानना ज्ञप्तिक्रिया है अतः इन दोनों में जानने और अनुभव जैसा अंतर है। जैसे सामने होने पर दूध के स्वाद को जानता है कि मधुर है पर कितनी मात्रा में मधुर है इसका यथार्थ अनुभव पीने पर ही होगा अतः प्राप्त करना ही अनुभव करना है एवं जानना समझना एक ही है अतः यहाँ पर ग्रंथकारजी ने विषयलंपटी व्यक्ति आत्मा को प्राप्त नहीं करता है, अनुभव नहीं करता ऐसा कहा है।

प्र.-3561 पुनः इस गाथा में बहिरात्मा का कथन क्यों किया?

उत्तर- आ. श्री. का उद्देश्य है कि यह संसारी मोही प्राणी किसी न किसी प्रकार से सुधर जाये, मोक्षमार्गानुसारी बन जाये इसलिये भव्यों के प्रति अपनत्व भाव धारण कर बार बार समझाते हैं कि कहीं न कहीं इस मोही प्राणी को चोट लगेगी तभी सुधरेगा अन्यथा बहिरात्मा ही बना रहेगा। इसलिए पुनः पुनः कथन किया है।

प्र.-3562 इंद्रिय सुख दुःख रूप ही है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इंद्रियसुख कर्माधीन, कषायों से मिश्रित, अंत सहित, आकुलता के जनक, असंतोष के उत्पादक, बाधा सहित, आश्रव बंध स्वरूप होने से, शत्रुता, मलिनता के साधन होने से दुःख रूप ही हैं ऐसा कहा है।

नोटः- यहाँतक 3562 प्रश्नोत्तरों में 119वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 120वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

जीव की विषयों में रुचि

जेसिं अमेज्झमज्झे उप्पण्णाणं हवेइ तत्थ रुई।

तह बहिरप्पाणं बहिरिंदिय विसएसु होइ मई।।120।।

येषां अमेध्यमध्ये उत्पन्नानां भवति तत्र रुचिः।

तथा बहिरात्मानां बहिरिन्द्रियविषयेषु भवति मतिः।।

जेसिं जैसे **अमेज्झमज्झे** विष्टा में **उप्पण्णाणं** उत्पन्न हुए कीड़े की **तत्थ** उसी विष्टा में **रुई** रुचि **हवेइ** होती है **तह** वैसे ही **बहिरप्पाणं** बहिरात्माओं की **बहिरिंदिय** बाह्येंद्रिय विषयों में **मई** मति **होइ** होती है।

प्र.-3563 विष्टा में जन्मा कीड़ा विष्टा में कैसा प्रेम करता है?

उत्तर- विष्टा में उत्पन्न हुआ कीड़ा विष्टा को ही अपना सर्वस्व मानकर प्रेम करता है, मरना नहीं चाहता।

प्र.-3564 अमेध्य किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- ग्रहण किये हुए भोजन को उदराग्नि के द्वारा पक्व अपक्वरूप में मलद्वारों से बाहर निकालने को मल कहते हैं। अनेक भेद हैं। नामः- मलमूत्र, पसीना, रक्त, थूंक, लार, खेल, सिंहाणय, कीचड, कनेऊ आदि।

प्र.-3565 यहाँ किस अमेध्य से प्रयोजन है?

उत्तर- यहाँ पर गुदा द्वार से निकलने वाले मल से प्रयोजन है, शेष मलों से नहीं हैं।

प्र.-3566 द्रव्यमल और भावमल किसे कहते हैं?

उत्तर- मलमूत्र आदि शारीरिक मलों को द्रव्यमल तथा विषयवासनादि विकारों को भावमल कहते हैं।

प्र.-3567 इन मलों का क्या फल है?

उत्तर- इन मलों से सहित आत्मा मलिन, अपूज्य, अपवित्र, निंदा और बदनामी होना ही इसका फल है।

प्र.-3568 बहिरात्माओं को समझाने के लिए यह उदाहरण क्यों दिया?

उत्तर- महान शक्तिशाली वैभववान एक राजा था जो निरंतर काम भोगों में आसक्त रहता था इसी से उसने तिर्यंचायु को बांध लिया। इस राजा के मृत्यु के निकट आने पर परिणाम भी निकृष्ट होने लगे तभी इसने अवधिज्ञानी मुनिराज से अपने जीवन के संबंध में पूंछा कि महाराज मेरा भविष्य कैसा है? तब महाराजश्री ने कहा कि तुम मरकर अपने ही विष्टाघर में कीड़े होंगे। यह बात राजा को बुरी लगी कि मैं इतना वैभवशाली समर्थ राजा होकर विष्टा में कैसे निवास करूंगा? कैसे रहूंगा? क्या खाऊंगा आदि? तब आकर अपने बेटे से कहा कि मैं मरकर अपने ही विष्टागृह में जन्म लूंगा तो तुम शीघ्र ही मार देना। कुछ समय बाद राजा मरकर अपने ही विष्टागृह में जन्मा। तब राजपुत्र ने जाकर विष्टागृह में बहुरंगी कीड़ा देखा सो उसे मारने के लिये जैसे ही डंडा उठाया कि वह उसी मल में छिप जाता है, मरना नहीं चाहता अतः बहिरात्मा को संबोधन करने के लिए विष्टा के कीड़े का उदाहरण दिया है।

प्र.-3569 बहिरात्माओं की इंद्रियविषयों में मति स्थिर क्यों हो जाती है?

उत्तर- इस जीव ने संसार में अनंतबार अनंत परिवर्तन किये हैं इस कारण विष्टा में उत्पन्न हुए कीड़े के समान बहिरात्मा जीव की मति इंद्रिय विषयों में पूर्व संस्कारवश स्थिर हो जाती है ऐसा समझना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 3569 प्रश्नोत्तरों में 120वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 121वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मध्यम अंतरात्मा

सिविणे वि ण भुंजइ विसयाइं देहाइभिण्णभावमई।
भुंजइ णियप्परूवो सिवसुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो।।121।।

स्वप्नेऽपि न भुंक्ते विषयान् देहादिभिन्नभावमतिः।
भुंक्ते निजात्मरूपं शिवसुखरक्तस्तु मध्यमात्मा सः।।

देहाइभिण्ण देहादि से भिन्न **णियप्परूवो भावमई** निजात्मध्याता **सिविणे** स्वप्न में **वि** भी **विसयाइं** विषयों को **ण** नहीं **भुंजइ** भोगता है इसलिए **दु सो** वह **सिवसुहरत्तो भुंजइ** आत्मसुखभोगी

मज्झिमप्पो मध्यम अंतरात्मा कहलाता है।

प्र.-3570 स्वप्न किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- पाँचों निद्राकर्मोदय से पूर्वभुक्त चिंतित, अचिंतित, अर्धचिंतित सुप्तावस्था में मन और पाँचों इंद्रियों के विषयों के ग्रहण करने को स्वप्न कहते हैं। दो भेद हैं। शुभ स्वप्न और अशुभ स्वप्न।

प्र.-3571 शुभस्वप्न किसे कहते हैं?

उत्तर- निद्रा में मिलने वाले पुण्यवर्धक, मंगलकारी, कर्तव्यपथ वाले संकेतों को शुभस्वप्न कहते हैं।

प्र.-3572 अशुभस्वप्न किसे कहते हैं?

उत्तर- निद्रा में पापवर्धक, कष्टदायक, अमंगलकारी, रागविकार वर्धक, प्रमाद, विषयकषाय वर्धक, शृंगारालंकार वर्धक, व्यापार, वैरविरोध वर्धक मिलने वाले संकेतों को दुःस्वप्न अशुभस्वप्न कहते हैं।

प्र.-3573 फलवान स्वप्न किसे कहते हैं?

उत्तर- जो ब्रह्ममुहूर्त में बिना चिंतन, बिना भोगे हुए स्वप्न आया हो, स्वस्थ्य, निरोगी, वात पित्त कफ के संतुलित रहने पर व्यक्ति के स्वप्न फलवान होते हैं।

प्र.-3574 निष्फल स्वप्न कौन होते हैं?

उत्तर- जो भोगे हुये हों, जो सदा वार्तालाप या प्रयोग में लाया गया हो चिंतित हों, वात पित्त कफ असंतुलित होने से रोगी हो तो ऐसी अवस्था में आये हुये स्वप्न निष्फल होते हैं।

प्र.-3575 ये स्वप्न किस प्रकार के होते हैं?

उत्तर- ये शुभाशुभ स्वप्न केवल अच्छे बुरे फल की सूचना देने वाले होते हैं। यदि स्वप्न के अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति हो जाये तो फल देते हैं अन्यथा फलहीन होते हैं।

प्र.-3576 यदि अशुभ स्वप्न आये तो क्या करना चाहिये?

उत्तर- यह अशुभकर्म अपना फल स्वप्न में देकर निकल गया सो ठीक है यदि ऐसी अशुभ घटना जागृत अवस्था में घटती तो कितना अनर्थ हो जाता अतः अच्छा हुआ कि यह विशालतम पाप कर्म केवल स्वप्न में ही अपना फल देकर झड़ गया ऐसा विचार कर जप तप ध्यान पूजापाठ करते हुए शांत रहना चाहिये।

प्र.-3577 अशुभ स्वप्न से क्या हानि है?

उत्तर- **''सुपने मधि दोष लगायो फिर जाग विषय वन धायो।''** स्वप्नदर्शक व्यक्ति अशुभ स्वप्नों के आने पर जागते ही अशुभ कार्यों में लग जाता है, मन मलिन होता है, चिंतायें बढ़ जाती हैं आदि हानियां हैं।

प्र.-3578 शुभ स्वप्न आये तो क्या करना चाहिये?

उत्तर- शुभ स्वप्न आने पर अधिक प्रसन्न नहीं होना चाहिये किंतु सावधान रहना चाहिये यदि अधिक प्रसन्न हुए तो रक्तचाप बिगड़ जायेगा, यहाँ तक कि हार्टअटैक भी हो सकता है।

प्र.-3579 शुभ स्वप्न से क्या लाभ है?

उत्तर- मंगलकारी शुभ स्वप्नों के द्वारा मन प्रसन्न होता है, धर्मकार्यों में तथा लौकिक कार्यों में, व्यापार परिवार आदि में भी वृद्धि होने लगती है आदि लाभ प्राप्त होते हैं।

प्र.-3580 मध्यम अंतरात्मा दुःस्वप्नों को क्यों नहीं देखता है?

उत्तर- मध्यम अंतरात्माओं के अप्रत्याख्यानावरण तथा प्रत्याख्यानवरण कषाय का अभाव एवं संज्वलन कषाय के तीव्रोदय से आहार विहार निहार होने पर भी पापों की मात्रा अत्यंत हीन

होने से कामभोगादि के दुःस्वप्न नहीं आते हैं और कदाचित् आते भी हैं अतः आ.श्री जी ने **"सिविणे वि ण भुंजइ"** कहा है।

प्र.-3581 प्रमादी मध्यम अंतरात्मा मुनि दुःस्वप्नों को क्या नहीं देखता है?

उत्तर- प्रमादी मध्यम अंतरात्मा यदि सर्वथा दुःस्वप्न नहीं देखता है तो प्रायश्चित्तग्रंथों में मुनियों के दुःस्वप्न आने पर ऐसा प्रायश्चित्त देना चाहिये ऐसा क्यों कहा अतः इसे दुःस्वप्न आते भी है और नहीं भी।

प्र.-3582 क्या अणुव्रती महाव्रती बनने से दुःस्वप्न नहीं आते हैं?

उत्तर- बाह्य और अंतरंग लक्षण सही होने से दुःस्वप्न नहीं आते। अंतरंग लक्षण सही न होने पर दुःस्वप्नों के आने न आने का नियम नहीं है किंतु अंतरंग लक्षण वाले के निष्प्रमादी होने पर दुःस्वप्न नहीं आते। इसी कारण निद्राजयी साधक के निद्रा न आने से कोई भी शुभाशुभ स्वप्न नहीं आते तब इनके जागृतावस्था में भोग भोगने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता अथवा जो निद्रा में दुःस्वप्न पूर्वक इंद्रिय भोग नहीं भोगता है वह जागृतावस्था में कैसे भोग भोग सकता है? जैसे जो चीटी को नहीं मारता है वह क्या हाथी को मार सकता है या अपराधी को सर्वथा सदा के लिए अभयदान देने वाला क्या निरपराधी को मार सकता है? कदापि नहीं। यही तो समर्थ की तथा निर्दोष साधक की विचित्र महिमा है। श्रेणी आरोहण रूपी भेदविज्ञान या जाग्रतावस्था ही अंतरंग लक्षण है।

प्र.-3583 अंतरंग लक्षण या भेद विज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- उत्कृष्ट ध्यान को अंतरंग लक्षण कहते हैं। सभी के लक्षण अलग अलग कर पृथक् कर देने को भेद विज्ञान कहते हैं। मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि कषायाभाव में इस प्रकार जानने को सम्यग्ज्ञान भेद विज्ञान कहते हैं और इन मुख्य प्रत्ययों के सद्भाव में सर्वथा भिन्न अभिन्न जानने को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

प्र.-3584 ऐसा जीव दुःस्वप्न नहीं देखता है तो क्या जागृत में भी नहीं भोगता है?

उत्तर- जागृतावस्था में कषायों की तीव्रता न होने से अधिकतर समय धर्मध्यान में व्यतीत करने से ऐसे विचार ही नहीं आते कदाचित् दुर्भाग्यवशात् जागृतावस्था में भोगता है तो वह विषयवासना को मन में चिरस्थायी स्थिरता को प्राप्त नहीं कराता, नदी में आई बाढ़ के समान कामभोग में रमण कर पुनः कुछ ही क्षण में अपने सम्यक् नीति नियम में मन को लगाकर उस वासना प्रेम को समाप्त कर देता है अतः इसे दुःस्वप्न नहीं आते, कदाचित् मन मलिन रहा तो दुःस्वप्न आ भी सकते हैं और नहीं भी।

प्र.-3585 मध्यम अंतरात्मा किसका भोग करता है?

उत्तर- मध्यम अंतरात्मा इंद्रियभोगवत् निज आत्मा का भोग, ध्यान, चिंतन तथा अनुभव करता है।

प्र.-3586 अंतरात्मा इंद्रियभोगों के समान आत्मभोग करता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- बहिरात्मा जीव विषयकषाय पूर्वक इंद्रिय भोग भोगने से संसार में भ्रमण करता है किंतु मोक्षमार्गी हेय बुद्धि से इंद्रियभोगों को कामरोग के शमनार्थ औषधि मानकर भोगता है किंतु निजात्मध्यान, चिंतन शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिये करता है क्योंकि जिस व्यक्ति की जहाँ बुद्धि नहीं होती है वहाँ से उसकी श्रद्धा हट जाती है और जब विषय भोगों से श्रद्धा हट जाती है तो मन विषय भोगों में कैसे लग सकता है? इस कारण ध्यानी अंतरात्मा विषय भोगों को स्वप्न में भी न भोगकर निजात्मा का निरंतर भोग करता है।

प्र.-3587 निजात्मा का भोग करने वाला मोक्ष सुख में रत कैसे हो सकता है?

उत्तर- निजात्मा का भोग करना ही मोक्ष सुख में रत होना है क्योंकि बंधन मुक्त अवस्था का नाम ही मोक्ष है अतः ऐसे ही मोक्षानंद में रमण करना ही मोक्षसुख में रत होना है।

प्र.-3588 आत्मसुख और मोक्षसुख में क्या अंतर है?

उत्तर- सामान्य सुख जाति की अपेक्षा से आत्मसुख और मोक्षसुख में कोई अंतर नहीं है जैसे श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में विषय की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है केवल परोक्ष और प्रत्यक्ष की अपेक्षा ही अंतर है ऐसे ही छद्मस्थों के और सिद्धों के आत्मसुख में परोक्ष प्रत्यक्ष का ही अंतर है अतः कथंचित् अंतर है और नहीं भी।

प्र.-3589 मध्यम अंतरात्मा मोक्षसुख में रत होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यह विषय श्रद्धान की अपेक्षा समझना चाहिये क्योंकि श्रद्धान लक्ष्य का ही बनाया जाता है फिर क्रमशः पुरुषार्थ करते हुए प्राप्त किया जाता है जैसे कुंवारी कन्या का पूर्ण विश्वास एकमात्र माँ बाप के पास ही स्थिर रहता है किंतु सगाई होते ही अब उसका विश्वास और क्रियायें माँ बाप से हटकर पति के लिए ही होतीं हैं ऐसे ही अंतरात्मा का विश्वास मोक्ष के लिये ही होता है। लड़की माँ बाप के यहाँ निवास करती है पर लक्ष्य ससुराल का है ऐसे ही अंतरात्मा संसार में निवास कर रहा है पर साधना अभ्यास मोक्ष के लिए ही होता है अतः श्रद्धान की अपेक्षा मोक्षसुख में रत होता है ऐसा कहा है।

प्र.-3590 चारित्र की अपेक्षा मोक्षसुख में रत कब होगा?

उत्तर- जब परमोत्कृष्ट व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान के द्वारा समस्त कर्मों को क्षय कर मोक्षपद, सिद्ध पद प्राप्त करेगा तभी मोक्षसुख में रत होगा ऐसा वर्तमान नय से जानना चाहिये।

नोटः- यहाँ तक 3590 प्रश्नोत्तरों में 121वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 122वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

दुर्वासना की महिमा

मलमुत्तघडव्वचिरं वासिय दुव्वासणं ण मुंचेइ।
पक्खालिय सम्मत्तजलो यण्णाणम्मएण पुण्णो वि।।122।।

मलमूत्रघटवत् चिरवासितां दुर्वासनां न मुंचति।
प्रक्षालितसम्यक्त्वजलो यज्ज्ञानामृतेन पूर्णोऽपि।।

चिरं चिरकाल से **मलमुत्त** मलमूत्र से **वासिय** भरे **घडव्व** घड़ेवत् जघन्य, मध्यम अंतरात्मा नारायण बलभद्र की तरह **यण्णाणम्मएण** ज्ञानामृत से **पुण्णो** पूर्ण **सम्मत्तजलो** सम्यक्त्वजल से **पक्खालिय** धोने पर **वि** भी जीव **दुव्वासणं** दुर्गंध को **ण** नहीं **मुंचेइ** छोड़ता।

प्र.-3591 कौन किसको नहीं छोड़ता है?

उत्तर- मोही जीव दुर्वासना को नहीं छोड़ता जैसे नारायण बलभद्र का प्रेम अटूट रहता है। देखो! राम का गृहस्थ जीवन कितना कष्टमय व्यतीत हुआ इनका जीवन दर्शन प.पु. से पढ़कर जानते हैं कि ये महापुरुष अनेक गुणसंपन्न तीव्र प्रत्याख्यानावरण कषायोदय युक्त भ्रमवश रानी सीता के प्रति कितना विलाप करते रहे, नारायण लक्ष्मण के शव को 6 माह तक लिये फिरे यह भवांतरगत दुर्वासना की महिमा है।

प्र.-3592 दुर्वासना का दमन कैसे हो और कार्य में सफलता किससे मिलती है?

उत्तर- यद्यपि जीव सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी है तो भी चिरकालीन दुर्वासना का संयमहीन साधना से दमन नहीं हो सकता अतः दुर्वासना के दमन को दृढ़ चारित्र चाहिये। यदि भाग्य और पुरुषार्थ

दोनों समान हैं तो सुख दुःख में समानता रहती है, अन्यथा असमानता। भाग्य प्रबल है और पुरुषार्थ कमजोर है तो पुरुषार्थ के दब जाने से भाग्यानुसार शुभाशुभ कार्यों में तथा भाग्य कमजोर है और पुरुषार्थ प्रबल है तो भाग्य दब जाने से पुरुषार्थानुसार शुभाशुभ कार्यों में सफलता मिलती है। ऐसा दृढ़ विश्वास करना चाहिये।

प्र.-3593 ग्रंथकारजी ने ज्ञान को अमृत की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- अमृत कोई व्यक्ति, वस्तु, औषधि नहीं है किंतु जो अत्यंत स्वादिष्ट, पौष्टिक, मनमोहक और कष्ट निवारक है उसे ही अमृत कहते हैं ऐसे ही समीचीन ज्ञान वस्तुस्थिति को यथावत् दिखाकर अज्ञानता का, कष्टादि का निवारण करता है इसलिये आ. श्री ने ज्ञान को अमृत की उपमा दी है।

प्र.-3594 इस छद्मस्थ ज्ञान रूपी अमृत को पूर्ण क्यों कहा है?

उत्तर- वास्तव में देखा जाये तो केवलज्ञान ही पूर्ण ज्ञान है शेष सभी अपूर्ण ज्ञान हैं फिर भी जैसे एक आदि के नोट अपने आप में पूर्ण हैं, अपूर्ण नहीं ऐसे ही श्रुतज्ञान अपने योग्य विषय को जानने में सामान्य से पूर्ण समर्थ है जैसे सूर्य का उदय पूर्ण रूप से होता है तो अस्त भी पूर्ण रूप से होता है पर चंद्रमा पूर्ण रूप से उदय अस्त में अपनी कलाओं में क्रमशः वृद्धि हानि को प्राप्त होता है इसलिये ग्रंथकारों ने ज्ञान को सूर्य की उपमा दी है, चंद्रमा की नहीं अतः क्षायिकज्ञान सूर्य के समान है तो क्षायोपशमिकज्ञान चंद्रमा की चांदनीवत् हीनाधिक होता रहता है कष्टों से बचाने के कारण ज्ञान को अमृत कहा है।

प्र.-3595 सम्यग्दर्शन को जल की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- जैसे मैल को पानी से धोते हैं ऐसे ही आत्मगत मिथ्यामलों को सम्यग्दर्शन रूपी जल से धोते हैं सो सम्यग्दर्शन को जल की उपमा दी है।

प्र.-3596 गाथा में ''पक्खालिय'' पद से किस को धोना चाहिये?

उत्तर- अनादिसादिकाल से लगे विषयकषाय, भोगवासना, रागद्वेषमोह रूपी मैल को सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय रूपी जल से धोना चाहिये क्योंकि **णाणम्मयेण पुण्णो वि**। ज्ञानामृत से पूर्ण जभी होता है जब यथाख्यातचारित्र हो इसलिए रत्नत्रय रूपी जल से कर्ममल को धोना चाहिये ऐसा कहा है।

नोटः- यहाँतक 3596 प्रश्नोत्तरों में 122वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 123वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

इंद्रियसुख कैसा?

सम्माइट्ठीणाणी अक्खाणसुहं कहं वि अणुहवइ।

केणा वि ण परिहारइ वाहिविणासणट्ठभेसज्जं।।123।।

सम्यग्दृष्टिः ज्ञानी अक्षाणां सुखं कथमपि अनुभवति।

केनापि न परिहारयति व्याधिविनाशार्थभैषजम्।।

जैसे **वाहि** व्याधि के **विणासणट्ठ** विनाशार्थ **भेसज्जं** औषधि सेवन की जाती है व्याधि के रहते **केणा वि** किसी भी प्रकार से औषधि **परिहारइ** छोड़ी **ण** नहीं जाती है ऐसे ही **सम्माइट्ठी** सम्यग्दृष्टि **णाणी** ज्ञानी कषायों की प्रबलता होने के कारण पुरुषार्थहीन हो **अक्खाणसुहं** इंद्रियसुख का **अणुहवइ** अनुभव करता है किंतु **कहं वि** बीच में कैसे छोड़ सकता है?

प्र.-3597 व्याधि किसे कहते हैं?

उत्तर- वातपित्तकफ के मिश्रण से शरीर में उत्पन्न अनेकों उतार चढ़ाव को शारीरिक व्याधि कहते हैं।

प्र.-3598 क्या सभी बीमारियों की दवाइयां हैं?

उत्तर- हाँ, अवश्य हैं। शारीरिक रोगों के इलाज के लिये सैकड़ों दवाइयां हैं और मानसिक रोगों को दूर करने के लिये मन का संबोधन ही मानसिक औषधि है।

प्र.-3599 औषधि का उपयोग कैसे किया जाता है?

उत्तर- शरीर में दुर्भाग्यवशात्, सावधानी असावधानी से या अकस्मात् उत्पन्न हुई व्याधि के शमनार्थ किये गये पुद्गल स्कंध के प्रयोग को औषधि कहते हैं। कोई औषधि खाई जाती है, कोई लगाई जाती है, कोई सूंघी जाती है, कोई गले, हाथ, कमर आदि में बांधी जाती है आदि तरह से औषधि काम में लाई जाती है।

प्र.-3600 औषधियों के कितने काम हैं?

उत्तर- सभी औषधियों के पृथक् पृथक् अनेक काम हैं। वात, पित्त और कफ में विकार से उत्पन्न हुए कीटाणुओं का विनाश करना, उनकी योनि स्थानों को नष्ट करना, नवीन योनिस्थान न बनने देना, न पैदा नहीं होने देना, धातुओं को संतुलित सुरक्षित रखना आदि कार्य औषधियों के हैं।

प्र.-3601 औषधि से जब इतने जीवों की हिंसा होती है तो इसे औषधिदान क्यों कहा?

उत्तर- शरीर में जहरीले कीटाणुओं के पैदा हुए बिना बीमारी नहीं होती है तभी तो प्रयोगशाला में गांठ, मल मूत्र आदि की जांच कराते हैं कि किस धातु में किस जाति के कितने कीटाणु हैं वे दवाई के सेवन से कितने मर गये, कितने मरने वाले हैं और नवीन पैदा नहीं होंगे ये औषधियां इतनी हिंसक होने पर भी इनसे विकाशशील धर्मात्मा तथा सभी होनहार जीवों की रक्षा एवं धर्मप्रभावना होने से इसे औषधिदान कहा है।

प्र.-3602 औषधियां इतनी हिंसक होने से महामुनियों ने आहार में क्यों ग्रहण की?

उत्तर- यद्यपि औषधि और आहार के द्वारा जीवों की विराधना और उत्पत्ति भी होती है फिर भी आचार्यों ने, तीर्थंकरों ने मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में सहायक होने से पाप न कहकर धर्म नाम से कहा है। सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया कहा है या सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए भूमिका स्वरूप है ऐसा मानकर मोक्षमार्गी साधकों ने हीन संहनन, हीन परिणाम तथा अशक्यानुष्ठान होने से, कमजोर होने के कारण औषधि ग्रहण न करने से परिणाम अधिक बिगड़ने से संयमसाधना में अनाचार दोष पैदा हो सकते हैं अतः अणुव्रतियों, अव्रतीसम्यग्दृष्टियों से प्रदत्त औषधि और आहार को ग्रहण किया है, अन्यथा क्यों ग्रहण करते?

प्र.-3603 औषधियों से जीवों की उत्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर- जब शरीर में या रजोवीर्य में कीटाणुओं की कमी हो जाती है तो बीजारोपण के लिए या स्वास्थ्य लाभ के लिए, पचनक्रिया को सही बनाने के लिए औषधियों के द्वारा जीवों को उत्पन्न करते कराते हैं।

प्र.-3604 आहार से जीवों की उत्पत्ति और विनाश कैसे हो सकता है?

उत्तर- शरीर में मात्रानुसार कीटाणु होने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है और कम ज्यादा या विरुद्ध जाति के कीटाणु होने से बीमारी पैदा हो जाती है, भोजनपान से शरीर में जीवों का जनम और मरण अवश्य होता है क्योंकि कोई आहार सम प्रकृति एवं कोई तीक्ष्ण प्रकृति वाला होता है जैसे नमक, मिर्च, करेला, नीबु आदि के द्वारा जीव मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं ऐसे ही मधुर आहार से जीवों की उत्पत्ति भी हो जाती है। यदि शरीर में कीटाणु नहीं हों तो भूंखप्यास की वेदना भी नहीं हो सकती है। जैसे खेत में जीवराशि न होने से धान्यों की, फलों की उत्पत्ति नहीं हो सकती और बिना जीवों के भूमि उपजाऊ नहीं होती किंतु बंजर होती है अतः आहार से अनुकूल प्रतिकूल कीटाणुओं की उत्पत्ति और विनाश होता रहता है।

प्र.-3605 बिना कीटाणुओं के भूंखप्यास लगती है या नहीं?

उत्तर- बिना कीटाणुओं के भूंखप्यास नहीं लगती क्योंकि बिना कीटाणुओं के भोजन कैसे पचेगा? तभी तो केवलियों, गणधरों के शरीर में बादरजीवराशि न होने से उनको भूंख प्यास नहीं लगती है।

प्र.-3606 आहार और औषधि में क्या अंतर है?

उत्तर- आहार सामान्य है और औषधि विशेष है। रुचि पूर्वक प्रसन्नता सहित आहार हमेशा ग्रहण किया जाता है जबकि औषधि बिना मन के अनुत्साह पूर्वक विशेष बीमारी में ली जाती है। आहार कीटोत्पादक, रक्षक, विध्वंसक होता है तो औषधि भी कीटनाशक एवं कीटोत्पादक होती हैं जैसे संतानोत्पत्ति के लिए रजवीर्य में यदि कीटाणु कम हैं तो उन जीवों को बढ़ाने के लिये औषधि दी जाती है अतः आहार और औषधि में गुणधर्म, उद्देश्य भिन्न भिन्न होने से अंतर है।

प्र.-3607 क्षुधानाशक आहार ही औषधि है तो दवाई से आहार को भिन्न क्यों कहा?

उत्तर- सामान्य भूंख दोष है तो विशेष भूंख रोग है तभी तो गृहस्थ रात्रिदिन में अनेकबार तृप्तिकारक भोजन करता है फिर भी तृप्ति नहीं हो पाती अतः विशेष भूंख रूपी रोग को दूर करने के लिए औषधि अलग है।

प्र.-3608 मिर्च मसाले नमक आदि कीटनाशक कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- अपने शरीर के थोड़े से चमड़े को हटाकर मांस के ऊपर नमक मिर्च नीबू आदि डाल दो तो मालुम हो जायेगा कि इनके प्रयोग से जब अपने को इतना कष्ट होता है तो क्षुद्र प्राणियों को कितना कष्ट होगा और भी देखो नमक को जोंक के ऊपर डाल दो तो वह कुछ ही क्षणों में मर जाती है। कभी कभी नित्य का भोजन भी जहर का काम कर जाता है। संस्कृत में "अप्" शब्द के पानी और जहर ये दोनों अर्थ होते हैं अर्थात् प्रमाणानुसार आहारपानी जीवनदाता एवं प्रमाण विरुद्ध जीवनहर्ता भी है।

प्र.-3609 सम्यग्दृष्टि जीव विषय भोगों को क्यों और किन भावों से भोगता है?

उत्तर- सम्यग्दृष्टिजीव अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के तीव्रोदय से विषयभोगों को औषधि मानकर उपेक्षा भाव से अनुत्साह पूर्वक सेवन करता है क्योंकि मरीज को अपने स्वास्थ्य से प्रेम है, वैद्यों आदि से नहीं। यदि इनसे प्रेम होता तो निरोगी होने पर भी औषधि सेवन और डॉक्टरों से प्रेम करता रहता किंतु नहीं करता।

प्र.-3610 सम्यग्दृष्टि गृहस्थ विषयभोगों को किन हेतुओं से त्याग नहीं करता?

उत्तर- यदि तीव्र कषायों को जीते बिना विषयभोगों को छोड़कर त्यागी, साधु बन गया तो उद्रेक रूप में कषायें जीवित रहने से पदभ्रष्ट हो जायेगा। जैसे आजकल कषायों को जीते बिना गृहत्यागी बन गये फिर कषायोद्रेक से पुनः गृहस्थ हो गये या गृहस्थोंवत् कार्य करने लगे, चोला साधु का और दिनचर्या गृहस्थों की अतः सम्यग्दृष्टि जीव हाथी के समान प्रत्येक कदम को सोच समझकर रखता है। कषायों के तीव्रोद्रेक रहने तक विषयों का त्याग नहीं करता किंतु उपेक्षा बुद्धि से, औषधि के समान समझ कर सेवन करता है और मौका मिलते ही विषयकषायों का त्याग कर उत्कृष्ट जीवन दिनचर्या बना लेता है किंतु सम्यग्दृष्टि जीव पतन के मार्ग से, संसार के दुःखों से भयभीत होकर त्याग से, संयम से, धर्मसाधना से नहीं डरता है।

प्र.-3611 व्याधि के रहते हुये क्या औषधि का त्याग किया जा सकता है?

उत्तर- यदि व्याधि के शेष रहते दवाई त्याग कर दी तो बीमारी असाध्य होकर मरीज और मर्ज दोनों ही समाप्त हो जायेंगे अथवा समाधि अत्यंत निकट होने से बीमारी रहने पर भी औषधि त्याग की जाती है।

प्र.-3612 यदि व्याधि पर्यंत औषधि सेवन करता रहा तो धर्माराधना कब करेगा?

उत्तर- पथ्यापथ्य का पालन करते हुए औषधि सेवन से बीमारी जल्दी दूर होती है। हितेच्छुक वैद्यगण सर्व प्रथम पेट साफ कर बाद में दवाई के प्रयोग से जल्दी बीमारी ठीक कर देते थे पर आजकल पथ्यापथ्य का पालन न करने से स्वास्थ्य कैसे ठीक हो सकता है? अतः धर्मसाधना को दृष्टि में रखकर स्वयं के विवेक से पथ्यापथ्य को पालते हुये अपना स्वास्थ्य सम्हालना चाहिये अथवा स्वतंत्र पशुपक्षियों की दिनचर्या देखकर अपना स्वास्थ्य सम्हालना चाहिये। यदि प्रत्येक दिनचर्या नियत समय पर की जाये तो स्वास्थ्य नहीं बिगड़ेगा कदाचित् बिगड़ गया तो शीघ्र ही किंचित् प्रयोग से ठीक हो जायेगा।

प्र.-3613 व्याधि के रहते औषधि सेवन न करे तो क्या हानि है?

उत्तर- **न रहेगा मर्ज न रहेगा मरीज** के अनुसार व्याधि का इलाज न किया कराया तो हीन संहनन, हीन परिणाम होने से व्याधि के कारण आत्मसाधना, धर्मप्रभावना नहीं हो सकती है यही हानि है।

प्र.-3614 तो क्या उत्तम संहनन वाले चरम शरीरियों को भी हानि होती थी?

उत्तर- सर्वथा एकांततः न हानि होती थी और न लाभ यह विषय उनकी साधना पर ही निर्भर था।

प्र.-3615 आजकल मनुष्य इतने बीमार क्यों रहने लगे?

उत्तर- आजकल मनुष्यों ने अपनी परम्परागत दिनचर्या को छोड़कर पाश्चात्य संस्कृति के अनुसार दिनचर्या बना ली है इसलिये बीमार रहने लगे हैं। यदि घरों में माँ बहने मंत्र का जाप पाठ करते हुए अपने हाथ से नमक कूटती, आटा, चटनी आदि पीसतीं तो सर्वांग का एक्युप्रेशर होने से बीमारी नहीं आती तथा शारीरिक व्यायाम स्वतः हो जाता था जिससे भोजन पचने से पुनः भोजन करने में आनंद आता था, शारीरिक बल था, तन मन धन की रक्षा होती थी तथा मंत्रित भोजन करने से पूरा परिवार माँ बहनों का आज्ञाकारी बना रहता था किंतु आजकल टी.वी. पिक्चर देखते सुनते हुए कलह, विकारवासना पूर्वक भोजन बनाने से भोजन करने वाला सारा परिवार कलह में आकंठ डूबा रहता है या नौकरों के हाथ से भोजन करने वालों की नौकरों, पशुओं जैसी ही दिनचर्या और विवेकबुद्धि हो रही है इसलिए जो मानव निरोगी होना चाहते हैं तो वे पूर्व संस्कृति को, आहार विहार निहार की पद्धति को, वेशभूषा को अपनायें इसीमें भला है अन्यथा अंत पर्यंत बिमारी बनी रहेगी, कोई मंत्र तंत्र यंत्र बचा नहीं सकता है।

प्र.-3616 मोक्षमार्गी जीवनपर्यंत विषय भोगों में रमण करता रहे तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि यहाँ भोगभूमि होती तो अंत पर्यंत विषय भोगों में रमण करते रहते तो कोई दोष नहीं था किंतु यहाँ आर्यखंड में कर्मभूमि होने से संयम, व्रत, नियम के कारण कषाय और वासना तीव्र नहीं हो पाती। **जो अरिहंत भगति उर आने, सो जन विषयकषाय न जाने।** जो अरिहंत या पाँचों परमेष्ठियों की भक्ति करता है वह विषय कषायों को न जानता है, न रमण करता है। अंधकार और प्रकाशवत् एक ही समय में एकसाथ विषयकषाय और भक्ति नहीं रह सकती है। मोक्षमार्गी यदि हमेशा विषयभोगों में रमण करता रहे तो धर्मध्यान कब करेगा? असंख्यात गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा कैसे होगी आदि आपत्तियां हैं।

नोटः- यहाँतक 3616 प्रश्नोत्तरों में 123वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 124वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आत्महित का क्रम

किं बहुणा हो तजि बहिरप्पसरूवाणि सयलभावाणि।
भजि मज्झिमपरमप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि।।124।।

किं बहुना अहो त्यज बहिरात्मस्वरूपान् सकलभावान्।
भज मध्यमपरमात्मानं वस्तुस्वरूपान् भावान्।।

हो अहो! **बहिरप्पसरूवाणि** बहिरात्मा रूपी **सयलभावाणि** सभी भावों को **तजि** छोड़कर **वत्थुसरूवाणि** वस्तुस्वरूप **मज्झिम** मध्यम अंतरात्मा होकर **परमप्पा भावाणि** परमात्मा को **भजि** भजो **बहुणा किं** बहुत कहने से क्या?

प्र.-3617 ''किंबहुणा'' इस पद का प्रयोग अनेक गाथाओं में पुनः पुनः क्यों किया?

उत्तर- जो महापुरुष होते हैं वे कम से कम बोलते हैं फिर भी संबोधन में अधिक बोलना हानिकारक नहीं है। आ. श्री महापुरुष अध्यात्मवेत्ता हैं मातृवत् परम कृपालु हैं जैसे बीमार बालक अपथ्य सेवन के लिए लालायित है तब माँ के बार बार समझाने पर भी बालक नहीं मानता है तो माँ बनावटी गुस्सा कर बहुत सारा भोजन सामने रखकर जोर से चिल्लाती हुई कहती है कि ले सारा खा ले कहाँ तक खायेगा तब बालक डर से अपथ्य सेवन नहीं करता जिससे शीघ्र ही निरोगी हो जाता है ऐसे ही आचार्य श्री अनेक बार कथन करते करते जब परेशान हो गये तब कहा कि **बहुत कहने से क्या**? अब जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो चाहे आत्मसाधना करो या आत्मविराधना इसमे तुम्हारा ही उत्थान पतन है।

प्र.-3618 बहिरात्मपने के संपूर्ण भावों को छोड़कर ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- संपूर्ण बहिरात्मभावों को छोड़के अंतरात्मा हो जो कुछ ध्यानाध्ययन किया जायेगा वह सब परमपद के लिए ही होगा। हाँ, साधना विशेष होने से त्याग कम और फल अधिक प्राप्त होता है। जैसे किसान खेत में एक बीज बोता है तो उससे सैंकड़ों फल प्राप्त होते हैं या उनके फलों को पीढ़ियों तक भोगते रहते हैं।

प्र.-3619 वे कौन से बीज हैं जिनका पीढ़ियों तक फल भोगते रहते हैं?

उत्तर- आम, नारियल, सुपारी, बादामादि बीजों को एकबार भूमि में बोने पर ये अपना फल सैकड़ों वर्षों तक अपने आप ही देते रहते हैं और परिवारगण, राजा, प्रजा अनेक पीढ़ियों तक शुभफल भोगते रहते हैं।

प्र.-3620 इनका फल कौन से जीव प्राप्त करते हैं और कौन नहीं?

उत्तर- जिन जीवों के पाप रूप भोगांतराय उपभोगातंराय कर्म का क्षयोपशम हुआ है वे इनका फल प्राप्त कर लेते हैं और जिन जीवों के इनका उदय है वे जीव किंचित् मात्र भी फल प्राप्त नहीं कर पाते।

प्र.-3621 ऐसा क्यों होता है?

उत्तर- **बहु कर्म किये मनमाने कछु न्याय अन्याय न जाने** 'आलोचनापाठ'। **मनमाने दुःख देउं काहूं सो नाहि डरो जूं-** इस जीव ने विषयकषायों के द्वारा मनमानी कर माँ बाप की, गुरुओं की और सज्जनों की बात न सुनी, न मानी तब जो मनमानी करके कर्मबंध किया अब वह कर्म जब उदय में आया तो कर्म भी कह रहा है कि जब तुमने मनमानी की थी अब फल देने में हम मनमानी करेंगे न किसी की सुनेंगे, न मानेंगे।

प्र.-3622 कर्मफल कौन से जीव भोगते हैं?

उत्तर- बहिरात्मा और प्रमादी अंतरात्मा बुद्धिपूर्वक तथा अबुद्धिपूर्वक कर्मों के फल को भोगते हैं।

प्र.-3623 बहिरात्मावस्था को जानकर क्या करना चाहिये ?

उत्तर- बहिरात्मावस्था को तथा इससे संबंधित विकारों को हानिकारक जानकर छोड़ना चाहिये।

प्र.-3624 बहिरात्मपने को छोड़कर क्या करना चाहिये?

उत्तर- बहिरात्मपने को छोड़कर अंतरात्मा होकर परमात्मा का ध्यान चिंतन भजन करना चाहिये।

प्र.-3625 बहिरात्मपने के भाव कौन कौन हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग, अज्ञान, अदर्शन, विषयवासना, शृंगारालंकार, ख्याति पूजा लाभ की दुर्भावना, मिथ्याचारित्र, वैर विरोध, आहारादि संज्ञायें ये सभी भाव बहिरात्मपने के हैं।

प्र.-3626 क्या ये सभी परिणाम एकमात्र बहिरात्मा जीवों के ही पाये जाते हैं?

उत्तर- ये सभी परिणाम क्रमशः गुणस्थानानुसार बहिरात्मा अंतरात्मा और परमात्मा के भी पाये जाते हैं फिर भी शुद्ध स्वभाव न होने से तथा विकल्पात्मक प्रदेशकंपनात्मक होने से बहिरात्मपने के ही परिणाम हैं।

प्र.-3627 अंतरात्मा किसे कहते हैं?'

उत्तर- आत्म सुखशांति के संमुख परिणाम वालों को या मोक्षमार्गस्थ छद्मस्थों को अंतरात्मा कहते हैं।

प्र.-3628 अंतरात्मा के परिणाम कौन कौन हैं?

उत्तर- रत्नत्रय, मूलगुण, उत्तरगुण, उत्तम क्षमादि धर्म, अणुव्रत महाव्रत, समिति गुप्ति, देवपूजा आदि षडावश्यकों का पालन करना, अप्रमाद अकषायादि शुद्धात्म साधक परिणाम अंतरात्मा के हैं।

प्र.-3629 क्या ये परिणाम सभी अंतरात्माओं के पाये जाते हैं?

उत्तर- ये परिणाम मोक्षमार्गी जघन्य, मध्यम और उत्तम अंतरात्माओं के यथासंभव पाये जाते हैं।

प्र.-3630 परमात्मा कैसे होते हैं?

उत्तर- वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी सयोगी, अयोगी और सिद्ध परमात्मा होते हैं।

प्र.-3631 परमात्मा के प्रकारांतर से भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- परमात्मा के दो भेद हैं। **संसारी परमात्मा और मुक्त परमात्मा। संसारी सशरीरीपरमात्माः-** सयोगी सकलपरमात्मा और अयोगी सकलपरमात्मा। **मुक्त अशरीरीपरमात्माः-** सिद्ध निकल परमात्मा।

प्र.-3632 सयोगी अयोगी परमात्मा के कितने भाव होते हैं?

उत्तर- संसारी परमात्मा के पारिणामिक, क्षायिकभाव औदयिकभाव एवं क्षायोपशमिकभाव होते हैं।

प्र.-3633 निकल परमात्मा के कितने भाव होते हैं?

उत्तर- निकल परमात्मा के पारिणामिक भाव और क्षायिकभाव ये दो अथवा अनंतभाव होते हैं।

प्र.-3634 अंतरात्मा और परमात्मा का भजन करना चाहिये ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अंतरात्मा और परमात्मा के भजन से आत्मा निर्मल होती है। निर्मलभाव होने से पापकर्मों का संवर होता है, पूर्वबद्ध पापकर्मों का स्थितिबंध, अनुभागबंध घट जाता है, संक्रमण, उदीरणा, बहुत सारा कर्मद्रव्य बिना फल दिये झड़ जाता है, पापकर्मों का किंचित्मात्रा में तथा पुण्यकर्मों का विशेष आश्रव बंध होता है। उत्कृष्ट पुण्योदय से उत्कृष्ट द्रव्य क्षेत्र काल भाव वृद्धि को प्राप्त होते हैं। ये ही परिणाम प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि के होने से रत्नत्रयधर्म को प्राप्त कराते हैं, मोक्षमार्ग में स्थिरता आती है। सम्यग्दर्शन सहित होने से इन्हें ही सम्यक्त्ववर्धिनी क्रिया कहा है क्योंकि धर्माचरण सर्वत्र हानिकारक न होकर लाभदायक ही होता है।

प्र.-3635 अंतरात्मा और संसारीपरमात्मा कैसे हैं?

उत्तर- कारण कार्य की अपेक्षा ये युगल आत्मायें मोक्षपद की प्राप्ति के लिये सामान्यतः अनन्य साधन हैं किंतु विशेषतः संसारी सकलपरमात्मा अयोगकेवली की अंतिम अवस्था ही मोक्ष के

लिए साक्षात् साधकतम साधन है शेष सभी अवस्थायें मोक्ष के लिए तारतम्यता पूर्वक परंपरा साधन है जैसे भूमि में पानी न होने से परिश्रम करने पर भी नहीं मिलेगा और पानी है तो खोदने पर सफलता मिलेगी ऐसे ही ये स्वयं सिद्धपद प्राप्त करने वाले हैं तभी तो इनके माध्यम से भक्त को आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है।

प्र.-3636 वस्तु स्वरूप कैसा है?

उत्तर- वस्तु स्वरूप अखंड, शुद्ध है, पर के संबंध से रहित है, अपने आप में पूर्ण है, निश्चल है, निर्लेप है, कार्य कारण या कारण कार्य भाव से रहित है, अपरिणामी है और ध्रौव्य स्वरूप सत्स्वरूप है।

प्र.-3637 वस्तुओं का स्वभाव कैसा है तथा गम्य है या अगम्य?

उत्तर- उत्पाद व्यय रूप है, पर्यायवान् है, शुद्ध है, क्षायिकभाव स्वरूप है, अप्रतिपाती है, परिणामी है, अर्थक्रिया सहित है, कार्यकारण संबंध सहित है, गणना की अपेक्षा अनंत स्वभाव वाला है आधार आधेय या उपादान उपादेय में अभेदापेक्षया एक है, अखंड है, अभेद्य है, भेदापेक्षया अनेक हैं, पूर्णतः केवली गम्य हैं तथा अपन भी कुछ धर्मों को आगम से, गुरु उपदेश से, अभ्यास से और स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा जानने का प्रयत्न करें तो अवश्य ही कुछ जान सकते हैं अन्यथा मोक्ष और मोक्षमार्ग बहुत दूर है, अति दूर है।

नोटः- यहाँतक 3637 प्रश्नोत्तरों में 124वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 125वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

बहिरात्मा

चउगइ संसारगमणकारणभूयाणि दुक्खहेऊणि।
ताणि हवे बहिरप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि।।125।।

चतुर्गति संसारगमन कारणभूताः दुःखहेतवः।
ते भवन्ति बहिरात्मनः वस्तुस्वरूपाः भावाः।।

जो **चउगइ** चतुर्गति रूप **संसार** संसार में **गमणकारण भूयानि** भ्रमण के कारण और **दुक्ख** दुःख के **हेऊणि** हेतु हैं **ताणि** वे **वत्थुसरूवाणि** वस्तुस्वरूप **बहिरप्पा** बहिरात्मा के बहिर्मुखी **भावाणि** भाव होते हैं।

प्र.-3638 बहिर्मुखी परिणाम किसे कहते हैं?

उत्तर- परनिमित्तक विकारी औदयिक तथा मिथ्या क्षायोपशमिकभावों को बहिर्मुखी परिणाम कहते हैं।

प्र.-3639 क्षायिकभाव नैमित्तिक होने से इसे बहिर्मुखीभाव क्यों नहीं कहा?

उत्तर- यद्यपि अनंत चतुष्टय स्वरूप क्षायिकभाव कर्मनिमित्तक हैं, अप्रतिपाती हैं, सादिअनंत हैं, शाश्वत हैं इसलिये इन्हें बहिर्मुखी नहीं कहा है। छद्मस्थावस्था में इन अनंत चतुष्टयों का अस्तित्व नहीं पाया जाता है। यद्यपि चतुर्गति संबंधी अव्रती सम्यग्दृष्टि गृहस्थों के क्षायिक सम्यक्त्व रूप परिणाम पाया जाता है पर इसे अनंत चतुष्टय में न गिना है, न कहा है क्योंकि यह जघन्य लब्धि रूप है अतः यह भाव बहिर्मुखी नहीं है।

प्र.-3640 उपशम सम्यक्त्व नैमित्तिक होने से इसे बहिर्मुखीभाव क्यों कहा?

उत्तर- औपशमिक सम्यक्त्व भी नैमित्तिक है अस्थाई, अशाश्वत, प्रतिपाती, सादिसांत है, मोक्ष का सामान्य कारण होने पर भी साक्षात् साधकतम साधन नहीं है अतः सूक्ष्मतः औपशामिक सम्यक्त्व भी बहिर्मुखी है।

प्र.-3641 कर्मों के निमित्त से कौन कौन से भाव होते हैं?

उत्तर- **कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।**

खइयं खओवसमियं तह्मा भावं खु कम्मकदं।।58।। पं.का.

अर्थ- द्रव्यकर्म के बिना आत्मा के औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकभाव भी नहीं होते हैं अतः जीव के ये चारों भाव द्रव्यकर्म के निमित्त से होते हैं। इसलिए ये चारों भाव नैमित्तिक हैं।

प्र.-3642 वस्तु स्वरूप भावों को संसार भ्रमण का कारण क्यों कहा?

उत्तर- वस्तु स्वरूप भावों के साथ में जो मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायों का उदय है, मिश्र परिणति है वही बहिरात्मावस्था ही संसार का कारण है सो यह उपचार से कहा है।

प्र.-3643 विकारी भावों को वस्तु स्वरूप क्यों कहा?

उत्तर- ये विकारी भाव अनादिकालीन और सादि कालीन होने के कारण उपादान उपादेय की अपेक्षा या द्रव्य का ही, वस्तु का ही परिणमन होने से इसे वस्तु स्वरूप कहा है।

प्र.-3644 औदयिकादि भावों को कर्मकृत क्यों कहा?

उत्तर- निमित्त नैमित्तिक संबंध की अपेक्षा उत्पन्न होने के कारण पर्याय रूप होने से कर्मकृत कहा है।

प्र.-3645 संसारी जीव किसे कहते हैं?

उत्तर- संसार में भ्रमण करते हुये नाना प्रकार के सुख दुःख भोगने वाले को, इष्टानिष्ट नाना प्रकार की अवस्थाओं से गुजरने वाले को संसारी जीव कहते हैं।

प्र.-3646 संसार में जीवों की कितनी अवस्थायें होतीं हैं?

उत्तर- संसार, असंसार, नोसंसार तथा इनके बिना विलक्षणावस्था ये चार अवस्थायें संसारियों की हैं।

प्र.-3647 संसार किसे कहते हैं?

उत्तर- चतुर्गति या चौरासीलाख योनियों को या द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव को संसार कहते हैं।

प्र.-3648 असंसार किसे कहते हैं?

उत्तर- पुनः वापिस संसार में नहीं आने को या मोक्षपद को असंसार कहते हैं।

प्र.-3649 नोसंसार किसे कहते हैं?

उत्तर- सयोगकेवली की अवस्था को नोसंसार (ईषत् संसार) कहते हैं।

प्र.-3650 इन तीनों अवस्थाओं से विलक्षण चौथी अवस्था को क्या कहते हैं?

उत्तर- इन अयोगकेवली भगवंत के संसारभ्रमण का, आत्म प्रदेशों में कंपन का अभाव है अभी मोक्ष नहीं हुआ है अतः इनकी अवस्था उन तीनों संसारिओं से विलक्षण है। रा.वा. अ. 9 सू. 7 का. 3 आ. अकलंक

प्र.-3651 विलक्षण किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनमें उक्त तीन लक्षण नहीं पाये जायें उसे या विशेष लक्षण को विलक्षण कहते हैं क्योंकि संस्कृत में "**वि**" के विशेष और विगत समाप्ति या त्याग, अभाव आदि अनेक अर्थ होते हैं।

प्र.-3652 संसार भ्रमण का कारण क्या है?

उत्तर- आश्रवबंध के परिणाम, विषयकषाय, आरंभपरिग्रह, शृंगारालंकार, ख्याति पूजा लाभ रूपी मिथ्याचारित्र, अविश्वास, अज्ञान, अभक्ष्य भक्षणादि आचार विचार ये सभी संसार भ्रमण के कारण हैं।

प्र.-3653 संसार भ्रमण के कारणभूत परिणाम किसके हेतु हैं?

उत्तर- संसार के कारणभूत परिणाम दुःख के हेतु हैं क्योंकि इनके बिना दुःख नहीं हो सकता है।

प्र.-3654 हेतु और अविनाभाव संबंध किसे कहते हैं?

उत्तर- अविनाभाव संबंध को हेतु कहते हैं। जिन कारणों के सद्भाव में या असद्भाव में कार्य के होने, न होने का नियम हो उसे अविनाभाव संबंध कहते हैं।

प्र.-3655 इन परिणाम वालों को क्या कहते हैं, ये कैसे और क्या भोगते हैं?

उत्तर- इन परिणाम वालों को बहिरात्मा कहते हैं और ये बहिरात्मा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र, आर्त रौद्रध्यानी चतुर्गती वाले संसारमार्गी नाना प्रकार के दुःख भोगने वाले होते हैं।

नोटः- यहाँतक 3655 प्रश्नोत्तरों में 125वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 126वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मोक्षमार्गस्थ आत्माओं के भेद

मोक्खगइगमणकारणभूयाणि पसत्थपुण्णहेऊणि।

ताणि हवे दुविहप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि।।126।।

मोक्षगतिगमनकारणभूताः प्रशस्तपुण्यहेतवः।

ते भवन्ति द्विविधात्मनः वस्तुस्वरूपाः भावाः।।

जो **मोक्खगइ** मोक्षमार्ग में **गमणकारणभूयाणि** गमन के कारणभूत और **पसत्थ पुण्ण** प्रशस्त पुण्य के **हेऊणि** हेतु हैं **ताणि** वे **दुविहप्पा** दो प्रकार की अंतरात्मा और सकलपरमात्मा के **वत्थुसरूवाणि** वस्तुस्वरूप **भावाणि** भाव **हवे** कहे हैं।

प्र.-3656 वस्तु स्वरूप भाव संसार के हेतु हैं और मोक्ष के भी सो यह अंतर क्यों?

उत्तर- वस्तु स्वरूप पारिणामिक भाव संसारमोक्ष का, आश्रवबंध का, संवरनिर्जरा का कारणकार्य या कार्य कारण नहीं है केवल स्वभाव मात्र है। परंपरागत होने से विकार स्वभाव जैसा प्रतिभासित हो रहा है इसलिये आगम में औदयिक या नैमित्तिक भावों को स्वतंत्र कहा है। मिथ्यात्व अनंतानुबंधी कषायादि की अभेद विवक्षा में स्वयं दुःख रूप हैं और भेद विवक्षा में दुःख के हेतु हैं। रत्नत्रयधर्म अभेद विवक्षा में मोक्ष स्वरूप है तथा भेद विवक्षा में मोक्षसुख के हेतु हैं जैसे सेनापति के साथ सेना शत्रु और मित्र बन जाती है ऐसे ही आत्मा विकार, निर्विकार के साहचर्य से स्वयं ही शत्रु मित्र बन जाती है अतः विवक्षावश यह अंतर स्पष्ट है।

प्र.-3657 गति किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- गमन करने को गति कहते हैं। दो भेद हैं। **नामः-** स्वाभाविकगति और वैभाविकगति या मोक्षगति और संसारगति। **स्वाभाविकगति** स्वभाव की ओर गति या स्वभाव में गमन परिणमन। **वैभाविकगति** विकार में गमन परिणमन या विकार के लिये गमन। **मोक्षगति-** मोक्ष के लिये गमन। **संसारगतिः-** संसार के लिए गमन। **अट्ठगदीओ समासेण**।।7।। संक्षेप से गति के 8 भेद होते हैं। **नामः-** नरकगति, तिर्यंचगति, तिर्यंचनीगति, मनुष्यगति, मनुष्यनीगति, देवगति, देवांगनागति, मोक्षगति। **सव्वत्थोवा मणुस्सणीओ।।8।। मणुस्सा असंखेज्जगुणा।।9।। णेरइया असंखेज्ज गुणा।।10।। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीओ असंखेज्जगुणाओ ।।11।। देवा संखेज्जगुणा।।12।। देवीओ संखेज्जगुणाओ।।13।। सिद्धा अणंतगुणा।।14।। तिरिक्खा अणंतगुणा।।15।।** मनुष्यनी सबसे स्तोक हैं।।8।। मनुष्यनियों से मनुष्य असंख्यातगुणे हैं।।9।। मनुष्यों से नारकी असंख्यातगुणे हैं।।10।। नारकियों से पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिमति असंख्यातगुणे हैं।।11।। तिर्यंचनियों से देव संख्यात गुणे हैं।।1।। देवों से देवियां संख्यातगुणी हैं।।13।। देवियों से सिद्ध अनंतगुणे हैं।।14।। सिद्धों से तिर्यंच अनंतगुणे हैं। खुद्दाबंध अल्पबहुत्वानुगम सू. सं 7-15 मूल षट्खंडागम पृ. 451

प्र.-3658 मोक्षगति/ सिद्धगति किसे कहते हैं?

उत्तर- अनादि सादिकालीन सभी कर्मों, विकारों को क्षय करके अयोगिकेवलियों का मोक्ष के लिये गमन करने को या पूर्ण शुद्धावस्था, सिद्धपद के लिये गमन करने को मोक्षगति/ सिद्धगति कहते हैं।

प्र.-3659 अंतरात्मा और परमात्मा प्रशस्त पुण्य के हेतु हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- ये दोनों आत्मायें स्वयं ही परम पवित्र होने से, स्वयं में शुद्ध बुद्ध होने से, सभी प्रमादियों के लिये पवित्रता में सहायक होने से इन्हें प्रशस्त पुण्य में हेतु कहा है। जैसे दर्पण स्वच्छ होने से प्रतिबिंब को स्पष्ट और मलिन होने से मलिन बतलाता है ऐसे ही इन युगल आत्माओं को समझना चाहिये।

प्र.-3660 सभी प्रकार की अंतरात्मायें क्या प्रशस्त पुण्य के हेतु हैं?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही ये सभी मोक्षमार्गस्थ आत्मायें प्रशस्त पुण्य के हेतु हैं। जैसे जघन्य अंतरात्मा बहिरात्माओं के लिए, मध्यम अंतरात्मा आदि की दोनों आत्माओं के लिए, उत्तम अंतरात्मा सभी प्रमत्त जीवों के लिए और परमात्मा सभी छद्मस्थ जीवों के लिए सातिशय प्रशस्त पुण्य के हेतु हैं।

प्र.-3661 सिद्धगति का अर्थ सिद्धों का गमन ऐसा किया जाय तो क्या दोष है?

उत्तर- सिद्धगति का ऐसा अर्थ करने पर सिद्ध कभी भी स्थिर नहीं हो सकते तथा क्षेत्रांतर गमन करने पर लोकालोक का विभाग भी नहीं बन सकता है अतः सिद्ध निश्चल स्वभाव वाले कृतकृत्य होते हैं। जिसे कुछ कार्य करना शेष है वह कृतकृत्य न होकर गमन करता रहता है अतः ऐसा अर्थ करने में दोष है अथवा सिद्धगति का अर्थ क्षेत्रांतर गमन न कर परिणति क्रिया, ज्ञप्तिक्रिया, चरणक्रिया करना निर्दोष है।

प्र.-3662 वस्तु स्वरूप किस प्रकार का है और किस रूप में परिणमन करता है?

उत्तर- वस्तु स्वरूप भावों की अपेक्षा पाँच प्रकार का है, धर्मों की अपेक्षा अनंत प्रकार का है। आत्मा में जो धर्म कर्मोदय से मलिन हो रहे हैं या कर्मक्षय से निर्मल हो रहे हैं वे नैमित्तिक भाव हैं शेष पारिणामिक भाव हैं। संसारी आत्मा विकार और निर्विकार रूप में परिणमन कर रहा है। अतः नैमित्तिक धर्म विभाव और स्वभाव रूप में एवं पारिणामिक भाव निर्निमित्तक होने से एकमात्र शुद्धस्वभाव रूप ही है क्योंकि यह भाव कार्यकारण, उत्पाद व्यय धर्म से रहित है, अपरिणामी स्वभाव वाला है।

प्र.-3663 निमित्त नैमित्तिक संबंध वाले धर्म किस प्रकार से परिणमन करते हैं?

उत्तर- निमित्त नैमित्तिक संबंध वाले धर्म जब विषयकषायों के साथ परिणमन करते हैं तब पाप रूप तथा विषयकषायों के त्याग पूर्वक रत्नत्रयधर्म के साथ परिणमन करते हैं तब शुभ और शुद्ध धर्म कहलाते हैं। संसारावस्था में भी कुछ धर्मों को छोड़कर शेष सभी अनंत धर्म स्वभाव रूप में ही परिणमन करते हैं।

प्र.-3664 निमित्त नैमित्तिक किसे कहते हैं?

उत्तर- ये औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव निमित्त हैं और भविष्य में आश्रव बंध संवर निर्जरा नैमित्तिक है। पूर्वबद्ध कर्मों का उदय उपशम क्षय और क्षयोपशम निमित्त तथा वर्तमान में उत्पन्न हुये परिणाम नैमित्तिक हैं अतः यह संबंध वर्तमान भविष्य का एवं भूत और वर्तमान का होता है।

प्र.-3665 पुण्य के साथ में प्रशस्त विशेषण क्यों लगाया, भेद तथा नाम कौन[2] हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग में, आत्मसाधना में सहायक होने से पुण्य के साथ में प्रशस्त विशेषण लगाया है। दो भेद हैं 1. भोगनिमित्त 2. मोक्षनिमित्त। इंद्रियभोगोपभोग अप्रशस्त होने से पाप रूप है तथा इसका कारण पुण्य भी अप्रशस्त है। मोक्ष के, कर्म क्षय के निमित्त पुण्य स्वयं में शुभ है, मंगल

होने से पुण्य प्रशस्त है।

प्र.-3666 भोग के निमित्त पुण्य का क्या फल है?

उत्तर- भोग के निमित्त पुण्य से दुर्गति की और नाना दुःखों की प्राप्ति होना फल है।

प्र.-3667 मोक्ष के निमित्त पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर- कर्मबंधन से छूटने के निमित्त धर्मसाधना, धर्माराधना करने को मोक्ष के निमित्त पुण्य कहते हैं।

प्र.-3668 भोग निमित्तक पुण्य के साथ प्रशस्त विशेषण क्यों नहीं लगाया?

उत्तर- भोग निमित्तक पुण्य विषयकषायों में अहंकार ममकार आदि कार्यों में आसक्ति पैदा करने वाला होने से इसे अप्रशस्त ही कहा है क्योंकि जो आत्मा को मोक्षमार्ग से गिराकर संकट में डाले वह प्रशस्त कैसा? इस कारण आदि हेतुओं से भोग निमित्तक पुण्य के साथ में प्रशस्त विशेषण नहीं लगाया।

प्र.-3669 विशेष्य विशेषण किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसकी विशेषता बताई जाये उसे विशेष्य और विशेषता बताने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं। जैसे ज्ञानी पुरुष, उत्तम पुरुष। यहाँ ज्ञानी, उत्तम विशेषण है और पुरुष विशेष्य है।

प्र.-3670 ये विशेष्य विशेषण समीचीन होते हैं या असमीचीन?

उत्तर- अभिप्राय, उद्देश्य, लक्ष्य के समीचीन होने पर विशेष्य विशेषण संबंध समीचीन होते हैं एवं अभिप्राय, उद्देश्य, लक्ष्य गलत मिथ्या होने से विशेष्य विशेषण संबंध असमीचीन होते हैं।

प्र.-3671 असत्विश्वास को मिथ्या कहते हैं या सम्यक्?

उत्तर- मिथ्यात्व कर्म और अनंतानुबंधी कषायोदय से उत्पन्न विश्वास को असत्विश्वास कहते हैं। इन मूल प्रत्ययों के अभाव में तथा शेष कषायोदय के साथ असत्विश्वास कदाचित् बारहवें गुणस्थान तक रह सकता है क्योंकि ज्ञेय पदार्थ अनंतानंत हैं और अपना ज्ञान अल्प है जैसा जितना ज्ञान होगा वैसा ही उतना विश्वास होगा कारण जिसको जाना नहीं उस पर विश्वास कैसे बनेगा? अनुमान से या आज्ञा से विश्वास कर आज्ञाप्रधानी हो, मुनि बनकर, श्रेणीआरोहण कर 12वें गुणस्थान तक चला गया और सूक्ष्मतत्त्व में अविश्वास बना रहा पर यह अविश्वास ज्ञेय पदार्थों में है, हेयोपादेय पदार्थों में नहीं क्योंकि हेयोपादेय विषय स्थूल हैं व आध्यात्मिक विषय सूक्ष्म है। पुद्गल के बिना शेष पाँच या छहों शुद्धद्रव्य ज्ञेय पदार्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं अतः सम्यग्दर्शन के साथ असत्विश्वास पूर्णतः आत्मघातक न होकर सहायक ही है। कहा भी है:-

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।27।। जी.कां.

अर्थः- सम्यग्दृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचन का नियम से श्रद्धान करता है तथा स्वयं अजानकार या अजानकार गुरु के नियोग से असद्भूत अर्थ का भी श्रद्धान करता है फिर भी यह आज्ञाप्रधानी सम्यग्दृष्टि ही है।

प्र.-3672 यह असत्विश्वास पूर्ण रूप से आत्मघातक क्यों नहीं है?

उत्तर- सम्यक्त्व प्रकृति के उदय या अभाव से यह असत्विश्वास ज्ञेयपदार्थों के विषय में होने के कारण पूर्ण घातक नहीं है। यह विषयभेद से अविश्वास श्रद्धान के, ज्ञान के और चरित्र के विषय में तीन प्रकार का कहा है। सर्वघाति दर्शनमोहोदय से हेयोपादेय के विषय में असत्विश्वास पूर्ण रूप से आत्मघातक है।

प्र.-3673 कौन सा अविश्वास किसका घातक है और किसका साधक है?

उत्तर- श्रद्धान के विषय में अविश्वास सम्यग्दर्शन का घातक है, ज्ञान के विषय में अविश्वास ज्ञान का कुछ घातक है व चरित्र के विषय में अविश्वास चारित्र का कुछ घातक है या श्रद्धानविषयक विश्वास सम्यग्दर्शन का, ज्ञानविषयक विश्वास सम्यग्ज्ञान का और चारित्र विषयक विश्वास सम्यक्चारित्र का साधक है।

नोटः- यहाँतक 3673 प्रश्नोत्तरों में 126वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 127वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

हितोपदेशी कौन?

दव्वगुणपज्जएहिं जाणइ परसमय ससमयादि विभेयं।

अप्पाणं जाणइ सो सिवगइ पहणायगो होई।।127।।

द्रव्यगुणपर्यायैर्जानाति परसमयस्वसमयादिविभेदं।

आत्मानं जानाति सः शिवगतिपथनायको भवति।।

जो व्यक्ति **परसमय** परसमय **ससमयादि** स्व समयादि **विभेयं** भेदों को **दव्वगुण पज्जएहिं** द्रव्य गुण पर्यायों से **अप्पाणं** आत्मा को **जाणइ** जानता है **सो** वह **सिवगइ** शिवगति का **पहणायगो** पथनायक **होई** होता है।

प्र.-3674 द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर- सल्लक्षण वाले को, उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाले को, गुण पर्याय वाले को, गुणसमूह को और उपयोग लक्षण वाले को द्रव्य कहते हैं।

प्र.-3675 गुण किसे कहते हैं, इन गुणों में और मूलगुण, उत्तरगुणों में क्या अंतर हैं?

उत्तर- **द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।।41।।** अ. 5। द्रव्य के आश्रय रहने वालों को, स्वयं अन्यगुणों के रूप में न परिणमन करें और न अन्यों को अपने रूप में परिणमन करायें उन्हें गुण कहते हैं। ये गुण अनादि अनंत हैं, पारिणामिकभाव हैं, शाश्वत रहने वाले हैं, त्रिकाली शुद्ध हैं, उत्पाद व्यय रहित हैं किंतु मूलगुण उत्तरगुण इनसे विपरीत स्वभावी हैं, ये चारित्रगुण की पर्यायें हैं, औपशमिक, क्षायिक, मिश्रभाव रूप हैं यही अंतर है।

प्र.-3676 पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर- **तद्भावः परिणामः।** शुद्धाशुद्ध द्रव्य व गुणों के स्वपर निमित्तक परिणमन करने को पर्याय कहते हैं।

प्र.-3677 द्रव्य गुण और पर्यायों के द्वारा किसको जानना चाहिये?

उत्तर- द्रव्य गुण पर्यायों के द्वारा अपनी आत्मा को, परसमय और स्वसमय को यथानुरूप जानना चाहिये।

प्र.-3678 परसमय किसे कहते हैं?

उत्तर- अशुद्धात्मा को, द्रव्य गुण और पर्यायों के भेद में परिणमन करने को या बहिरात्मा अंतरात्मा संबंधी मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षीणमोही 12वें गुण. वालों को या मिथ्यामतों को परसमय कहते हैं।

प्र.-3679 सामान्यतया स्वसमय किसे कहते हैं?

उत्तर- अखंड, अभेद, शुद्धात्मा को, जिनेंद्रमत, मोक्षमार्ग को, शुद्धात्मसाधना को स्वसमय कहते हैं।

प्र.-3680 विभेद किसे कहते हैं?

उत्तर- सम्यग्ज्ञान से विभाग करने को, प्रत्येक को स्व² लक्षणों से अलग² करने को विभेद कहते हैं।

प्र.-3681 भेद विज्ञानी जीव किसको और क्यों जानता है?

उत्तर- भेदविज्ञानी जीव को संसार और संसार के कारणभूत आश्रवबंध छोडना ही इष्ट है इसलिए स्व स्व लक्षणों से स्वपर सभी को यथार्थ रूप से ही जानता है।

प्र.-3682 आत्मज्ञ जीव किस पद को प्राप्त करता है?

उत्तर- भूलेभटके, दीनदुःखी प्राणियों को मार्गदर्शन करनेवाले को हितोपदेशी नेता कहते हैं अतः तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला आत्मज्ञ जीव हितोपदेशी पद को प्राप्त करता है।

प्र.-3683 आत्मज्ञ जीव क्या सीधा हितोपदेशी बन जाता है?

उत्तर- वीतरागता सर्वज्ञता प्राप्त होने के बाद में हितोपदेशीपना प्राप्त होता है, सीधा नहीं।

प्र.-3684 हितोपदेशी पद किस क्रम से प्राप्त होता है?

उत्तर- सर्व प्रथम 10वें के अंत में उत्कृष्ट धर्मध्यान या पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान से मोह को क्षय कर 12वें गुणस्थान में प्रवेश करते ही वीतराग पद, बाद में एकत्ववितर्क शुक्लध्यान से तीन घातिकर्मों को क्षय कर सर्वज्ञपद, बाद में समवशरण की बारह सभाओं में मार्गदर्शन देने से हितोपदेशी पद प्राप्त होता है।

प्र.-3685 नेता कितने प्रकार के होते हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- नेता दो प्रकार के होते हैं। **नामः-** लौकिक और लोकोत्तरनेता। **लौकिकनेताः-** राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायणादि राजनेतागण। **लोकोत्तरनेताः-** शरीरधारी चार परमेष्ठी।

प्र.-3686 इन प्रजापालकों को लौकिक नेता क्यों कहा?

उत्तर- ये नेतागण केवल व्यावहारिक जीवन में सहायक होने से, ख्याति पूजा लाभ की भावना से दूषित होने के कारण विषयकषायों से सहित, शृंगारालंकार सहित होने से इन्हें लौकिकनेता कहा है।

प्र.-3687 शांतिनाथादि चक्रवर्तिओं के ख्याति आदि भावना कैसे हो सकती है?

उत्तर- गृहस्थपद, राज्यपद और प्रत्याख्यानावरणीय आदि का उदय होने से ये भावनायें हो जाती हैं।

प्र.-3688 ये भावनायें मिथ्याचारित्र होने से इन महापुरुषों में कैसे संभव हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधी कषायोदय से उत्पन्न ख्याति आदि भावनायें मिथ्याचारित्र कहलाती हैं किंतु इन महापुरुषों के आदि की दो चौकड़ी कषायों का अभाव होने से तत्संबंधी भावनायें किंचित् भी संभव नहीं किंतु आगे की कषायों का उदय होने से संभव हैं तभी तो इनके आर्तरौद्रध्यान होते हैं।

प्र.-3689 लोकोत्तर नेतागण किसे कहते हैं?

उत्तर- संसार शरीर भोगों से विरक्त, आरंभ परिग्रह के, विषयवासना के, ख्याति पूजा लाभ के त्यागी, निर्विकार बालकवत् प्रमत्ताप्रमत्तादि स्नातक साधुओं को लोकोत्तर नेता कहते हैं।

प्र.-3690 ये मार्गदर्शक होने से इनके लौकिक व लोकोत्तर नेता ऐसे भेद क्यों किये?

उत्तर- केवल उदरपूर्ति का, संसारमार्ग का, लौकिक जीवनयापन का मार्ग बताने से ये लौकिक नेता हैं किंतु लोकोत्तर नेतागण लौकिक जीवन की सफलता के साथ साथ आत्मोद्धार का भी मार्ग बतलाते हैं आत्मसाधना भी कराते हैं इसलिये इन्हें लोकोत्तर नेता कहा है अतः मार्गदर्शन भिन्न[2] होने से भेद किये हैं।

प्र.-3691 यहाँ किस नेता से प्रयोजन हैं?

उत्तर- यहाँ लोकोत्तर नेताओं से प्रयोजन है, लौकिक नेताओं से नहीं।

नोटः- यहाँतक 3691 प्रश्नोत्तरों में 127वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 128वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

स्वसमय परसमय

बहिरंतरप्पभेयं परसमयं भण्णए जिणिंदेहिं।
परमप्पा सगसमयं तब्भेयं जाणगुणट्ठाणे।।128।।

बहिरंतरात्मभेदः परसमयो भण्यते जिनेंद्रैः।
परमात्मा स्वकसमयः तद्भेदं जानीहि गुणस्थाने।।

जिणिंदेहिं जिनेंद्र देव ने **बहिरंतरप्पभेयं** बहिरात्मा अंतरात्मा को **परसमयं** परसमय और **परमप्पा** परमात्मा को **सगसमयं** स्वसमय **भण्णए** कहा है तथा **तब्भेयं** उनके इन भेदों को **गुणट्ठाणे** गुणस्थानों में **जाण** जानो।

प्र.-3692 यहाँ जिनेंद्र भगवान ने किसको क्या कहा है?

उत्तर- जिनेंद्र ने यहाँ मोक्षमार्ग और भाव मोक्ष के बाहर बहिरात्मा और अंतरात्मा को या **पोग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं।।2।।** स.सा. पुद्गल कर्मप्रदेशों में स्थित समस्त गुणस्थानी जीवों को परसमय कहा है।

प्र.-3693 क्या परसमय वाला जीव मिथ्यादृष्टि ही होता है?

उत्तर- यदि परसमय को एकमात्र मिथ्यादृष्टि ही माना जाये तो फिर अंतरात्मा को मिथ्यादृष्टिपने का प्रसंग प्राप्त होने से 12वें गुणस्थान तक के मुनियों को मिथ्यादृष्टि कहना पड़ेगा जो स्वसिद्धांत विरोध है अतः परसमयवर्ती जीव सिर्फ मिथ्यादृष्टि ही न होकर मोक्षमार्गी भी होता है।

प्र.-3694 तो क्या बहिरात्मा एकमात्र मिथ्यादृष्टि ही होता है?

उत्तर- गुणस्थानानुसार गाथा 129 में 3रे गुणस्थान तक बहिरात्माजीव कहा है। हाँ इतना अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि नियम से बहिरात्मा और परसमय ही होता है किंतु बहिरात्मा और परसमय मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, संयमी और मोक्षमार्गी भी हो सकते हैं इसमें अनेकांत है।

प्र.-3695 यदि ऐसा है तो यह एकांत मिथ्यात्व क्यों नहीं कहलायेगा?

उत्तर- मिथ्यात्वकर्म के अनंत भेद होने से एकांत मिथ्यात्वोदय से एकांत मिथ्यात्व होता है केवल एकांत का नाम मिथ्यात्व नहीं है क्योंकि एकांत के सम्यगेकांत और मिथ्याएकांत ये दो भेद किये हैं अतः मिथ्यात्वकर्म के उदय से एकांत मिथ्या और सम्यक्त्व के साथ एकांत सम्यक् कहलाता है।

प्र.-3696 इन एकांतों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- सम्यगेकांत के स्वामी मोक्षमार्गी हैं तो मिथ्या एकांत के स्वामी संसारमार्गी मिथ्यादृष्टि हैं।

प्र.-3697 अंतरात्मा किन किन गुणस्थान वाले होते हैं?

उत्तर- 4-12वें गुणस्थान वालों को, छद्मस्थ असंयमी संयमी, सरागी वीतरागी अंतरात्मा होते हैं।

प्र.-3698 वर्तमाननय से स्वसमय किसे कहते हैं?

उत्तर- सयोगी अयोगी परमात्मा जिनेंद्र भगवंतों को स्वसमय कहते हैं।

प्र.-3699 सिद्धों को स्वसमय क्यों नहीं कहा?

उत्तर- किंचित् भी कर्मलेप, कर्मविकार न होने से, पूर्ण रत्नत्रय में स्थित होने से वास्तव में सिद्ध ही स्वसमय है क्योंकि आत्मस्वभाव में, आत्मप्रदेशों में पूर्णतः स्थित हैं, निष्कंप हैं, निश्चल हैं फिर भी यहाँ गुणस्थानों की अपेक्षा कथन होने के कारण सिद्धों को छोड़कर केवल अरिहंतों को ग्रहण किया है। कारण सिद्ध परमेष्ठी संसारातीत, गुणस्थानातीत, जीवसमासातीत और अशुद्ध मार्गणातीत हैं।

प्र.-3700 गुणस्थानों में जानों ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इस गाथा में संसारी जीवों का वर्णन होने से गुणस्थानों में जानना चाहिये ऐसा कहा है। जीव गुणस्थानातीत तो रह सकता है पर बिना जीव के गुणस्थान नहीं होते हैं, न रह सकते हैं।

प्र.-3701 गुणस्थान किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मोह और योग से उत्पन्न आत्मभावों को गुणस्थान कहते हैं। 14 होते हैं। 1. मिथ्यात्व 2. सासादन सम्यग्दृष्टि 3. सम्यक्मिथ्यादृष्टि 4. अविरतसम्यग्दृष्टि 5. देशविरत 6. प्रमत्तसंयत 7. अप्रमत्तसंयत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण 10. सूक्ष्मसांपराय 11. उपशांतमोह 12. क्षीणमोह 13. सयोगकेवली 14. अयोगकेवली।

प्र.-3702 आत्मा और परमात्मा में क्या अंतर है?

उत्तर- कर्मों से, विकारयुक्त अल्पज्ञ, छद्मस्थ संसारी जीवों को आत्मा और द्रव्यभाव कर्ममलों को एकदेश और सर्वदेश क्षय करने वाला परमात्मा कहा जाता है यही इन दोनों में अंतर है।

नोटः- यहाँतक 3702 प्रश्नोत्तरों में 128वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 129वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आत्मा के भेद

मिस्सोत्ति बाहिरप्पा तरतमया तुरिय अंतरप्पजहण्णा।

सत्तोत्तिमज्झिमंतरखीणुत्तरपरमजिणसिद्धा।।129।।

मिश्रः इति बहिरात्मा तरतमया तुर्ये अंतरात्मा जघन्यः।

सप्त इति मध्यमान्तः क्षीणोत्तरः परमाः जिनसिद्धाः।।

मिस्सोत्ति मिश्र गुणस्थान तक **बाहिरप्पा** बहिरात्मा **तुरिय** चौथे गुणस्थान वाले **जहण्णा अंतरप्प** जघन्य अंतरात्मा **सत्तोत्ति** 5-11 गुणस्थान तक **तरतमया** परिणामों की विशुद्धि की वृद्धि होने से **मज्झिमंतर** मध्यम अंतरात्मा और **खीणुत्तर** बारहवें गुणस्थान वाले उत्तम अंतरात्मा तथा **परम जिणसिद्धा-** सयोगी अयोगीजिन और सिद्ध परमात्मा हैं।

प्र.-3703 पहले से तीसरे गुणस्थान तक जीवों को बहिरात्मा क्यों कहा?

उत्तर- मोक्षमार्ग के बाहर होने से आदि के तीन गुणस्थान वालों को बहिरात्मा कहा है।

प्र.-3704 बहिरात्मा के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- 3 भेद हैं। **नामः-** उत्तमबहिरात्मा मिथ्यादृष्टि, मध्यमबहिरात्मा सासादनसम्यग्दृष्टि और जघन्यबहिरात्मा सम्यक्मिथ्यादृष्टि।

प्र.-3705 चौथे गुणस्थान वाले को जघन्य अंतरात्मा क्यों कहा?

उत्तर- यहीं से अंतरंगदृष्टि प्राप्त होने से, मोक्षमार्ग की जघन्यलब्धि होने से जघन्य अंतरात्मा कहा है।

प्र.-3706 मध्यम अंतरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- देशसंयमी अणुव्रतीगृहस्थ और सकलसंयमी सरागी वीतरागीमुनियों को मध्यमअंतरात्मा कहते हैं।

प्र.-3707 गुणस्थानों की अपेक्षा इनके कितने भेद हैं?

उत्तर- मध्यम अंतरात्मा के गुणस्थानानुसार 5-11 तक 7 भेद। मध्यम अंतरात्मा के 3 भेद - जघन्य, मध्यम और उत्तम। जघन्य मध्यम अंतरात्मा 5वें गुणस्थानवर्ती, मध्यम में मध्यम अंतरात्मा 6वें से 10वें गुणस्थान तक ये पाँच, मध्यम अंतरात्मा में उत्तम अंतरात्मा 11वें गुणस्थान वाले जानना चाहिये।

प्र.-3708 उत्तम अंतरात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- 12वें गुणस्थान वाले क्षीणमोही वीतरागी छद्मस्थ मुनि को उत्तम अंतरात्मा कहते हैं।

प्र.-3709 परमात्मा किसके क्षय से होते हैं?

उत्तर- घातिकर्मों के या घातिअघातिकर्मों के क्षय से परमात्मा होते हैं।

प्र.-3710 परमात्मा साकार है या निराकार, भेद और नाम बताइये?

उत्तर- शरीर सहित परमात्मा साकार है एवं शरीर रहित परमात्मा निराकार है। 2 और 3 भेद हैं। **दो नामः-** सकलपरमात्मा और निकलपरमात्मा। **तीन नामः-** सयोग केवली परमात्मा, अयोगकेवली परमात्मा, सिद्ध परमेष्ठी परमात्मा। सकलपरमात्मा के दो भेद हैं।

प्र.-3711 सयोगकेवली परमात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- मन वचन काय की क्रिया को योग और इनसे सहित को सयोग कहते हैं। केवलज्ञान सहित सयोग को सयोगकेवली कहते हैं। परमोत्कृष्ट आत्मा को, घातियाकर्मों के क्षय से उत्पन्न अनंत चतुष्टय के स्वामी भावमोक्ष वाले को, वीतराग सर्वज्ञ और हितोपदेशी को सयोगकेवली परमात्मा कहते हैं।

प्र.-3712 अयोग केवली परमात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- योग रहित को अयोग कहते हैं। केवलज्ञान सहित अयोग को अयोगकेवली परमात्मा कहते हैं। इनके पूर्ण रूप से आश्रव बंध का अभाव हो चुका है, व्युपरतक्रियानिर्वृत्ति शुक्लध्यान को प्राप्त कर चुके हैं, कुछ ही क्षणों में मोक्ष प्राप्त करने वाले हैं, वीतरागता, सर्वज्ञता तथा भावात्मक हितोपदेशीपने का सद्भाव है। पूर्ण संवरतत्त्व एवं अप्रतिपाती तथा सिद्ध पद के संमुख को अयोगकेवली परमात्मा कहते हैं।

प्र.-3713 भावात्मक हितोपदेशीपना या मौनपूर्वक धर्मोपदेश कैसे दिया जाता है?

उत्तर- सयोगकेवली 12 सभा के बीच पद्मासन या खडगासन से निष्कंप निश्चल विराजमान हो वचनों से धर्मोपदेश दे रहे थे अब वह समाप्त हो गया है, भावों में जो जगतहितकारी भावना भाई थी वह अयोगियों के भावात्मक एवं मौनोपदेश हैं। गमनागमन क्रिया समाप्त होकर आत्मस्वभाव में पूर्ण स्थिरता प्राप्त कर चुके हैं। हे भव्यो! यदि सिद्ध पद चाहिये तो हमारे जैसा कार्य करो ऐसा ही भावात्मक उपदेश दिया जाता है।

प्र.-3714 प्रतिमाजी से मौन पूर्वक उपदेश कैसे प्राप्त होता है और स्थिर क्यों है?

उत्तर- जिनेंद्र प्रतिमाएं अपनी शांत सौम्य निश्चल मुद्रा से बिना बोले मोक्षमार्ग को दर्शातीं हैं यही मौनोपदेश है। **ये प्रतिमाजी गमनागमन क्यों नहीं करतीं हैं?** संपूर्ण गम्य क्षेत्र में गमन कर चुके हैं घूमते घूमते थक गये हैं, सर्वत्र जनम मरण किया है अतः यदि तुम स्थिर होना चाहते हो तो हमारे जैसी साधना करो, गुप्तियों को पालो। **ये प्रतिमाजी कुछ सोचतीं क्यों नहीं हैं?** संसार में समस्त परिणामों को भरपूर प्राप्त कर छोड़ दिया है अब कुछ सोचने के लिए शेष नहीं बचा जिसे सोचा जा सके। **आँखों से सामने ऊपर तिरछा नीचे क्यों नहीं देखती हैं?** अनादि काल से इस संसार में चक्षु अचक्षु ज्ञान दर्शन से समस्त ज्ञेय दृश्य पदार्थों को देख जान लिया है इसलिये सौम्य सुंदर दृष्टि से अपने आपको देख रहीं हैं। **हाथ पर हाथ क्यों रखे हैं?** इन हाथों से संसार के समस्त शुभाशुभ कार्य कर लिये हैं, कृतकृत्य हो चुके हैं अतः हाथ पर हाथ रखकर बैठे हैं। यद्यपि श्री जी मुंह से कुछ न बोलकर अपने संस्थान से सब कुछ प्रतिपादन करती हैं। केवल मौनोपदेश को समझने वाला चाहिये। जैसे लोक में चिंतकगण पर्वतों से, पेड़ों से, मेघों से, नदी, समुद्र से वार्तालाप कर लेखन कार्य करते हैं तथा समझाते भी हैं।

प्र.-3715 सिद्ध परमात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- जिनके समस्त कर्म, विकार नष्ट हो चुके हैं उन्हें निकल परमात्मा या सिद्ध परमात्मा कहते हैं।

प्र.-3716 आत्मा के ये तीन भेद क्यों किये हैं?

उत्तर- कर्म और विकारों के संयोग वियोग से तीन भेद किये हैं किंतु स्वभावतः कोई भेद नहीं हैं।

नोटः- यहाँतक 3716 प्रश्नोत्तरों में 129वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 130वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

निषेध रूप में पथनायक

मूढत्तय सल्लत्तय दोसत्तय दंडगारवत्तयेहिं।
परिमुक्को जोई सो सिवगइपहणायगो होइ।।130।।

मूढत्रय शल्यत्रय दोषत्रय दंडगारवत्रयैः।
परिमुक्तो योगी सः शिवगति पथनायको भवति।।

जो **मूढत्तय** 3 मूढ़ता **सल्लत्तय** 3 शल्य **दोसत्तय** 3 दोष **दंड गारवत्तयेहिं** 3 दंड और 3 गारवों से **परिमुक्को** मुक्त **जोई** योगी **सो** ही **सिवगइ** शिवगति का **पहणायगो** पथनायक हितोपदेशी **होइ** होता है।

प्र.-3717 पुनः पथनायक का कथन क्यों किया?

उत्तर- ऊपर की गाथाओं में विधिपूर्वक और इस गाथा में निषेधपूर्वक पथनायक का कथन किया है।

प्र.-3718 विधि और निषेध किसे कहते हैं?

उत्तर- विधिः- ऐसा करो, ऐसे किया, उसने, इसने, तुमने किया था, किया है, करेगा ऐसा कथन करने को विधि। निषेधः- ऐसा मत करो आदि किसी भी तरह से शुभाशुभ कार्यों के मना करने को निषेध कहते हैं।

प्र.-3719 योगी कैसे होते हैं?

उत्तर- मनवचनकाय को स्वाधीन करने वाले, वर्षा, शीत, ग्रीष्मयोग धारण करने वाले होते हैं।

प्र.-3720 निषेध रूप में ये योगी कैसे होते हैं?

उत्तर- 3 मूढ़ताओं के, 3 शल्यों के, 3 दोषों के, 3 दंडों के, 3 गारवों के त्यागी को योगी कहते हैं।

प्र.-3721 तीन दोष किसे कहते हैं और इनके त्यागी को क्या कहते हैं?

उत्तर- राग द्वेष मोह को त्रिदोष कहते हैं और इन तीनों दोषों के त्यागी को त्रिदोष त्यागी कहते हैं।

प्र.-3722 उक्त दोषों को त्याग कर योगी होते हैं या योगी बनकर त्याग करते हैं?

उत्तर- शास्त्रों में दोनों प्रकार के मुनि योगी पढ़े जाते हैं अन्यथा एकसाथ एक ही समय में कोई मिथ्यात्व गुणस्थान से सीधे सातवें गुणस्थान को, कोई चौथे पाँचवें गुणस्थान से सातवें गुणस्थान को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हाँ, सर्व प्रथम मुनिमुद्रा प्राप्त होती है बाद में सातवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है ऐसा नियम है। ऐसा नहीं है कि सातवाँ गुणस्थान प्राप्त होने के बाद में मुनिमुद्रा धारण की जाये और ऐसा मानने से वस्त्रधारियों के जब सातवाँ गुणस्थान हो गया तो इनके त्याग की क्या जरूरत है? अतः मुनिमुद्रा धारण करने के अंतर्मुहूर्त बाद में या जीवन के किसी भी क्षण में सातवाँ गुणस्थान आ सकता है। मूढ़ता आदि दोष भावात्मक होने से कदाचित् इनका त्यागी अव्रती अणुव्रती बाद में मुनिदीक्षा ले रहा है और मिथ्यात्व गुणस्थान से सीधा सातवें गुणस्थान को प्राप्त होता है तो मुनि बनने के बाद में इनका त्याग होता है अथवा सूक्ष्मतः इन दोषों का त्याग और गुणों का ग्रहण एक ही समय में होता है।

प्र.-3723 आजकल अनेक त्यागीगण दोषों से युक्त हैं तो क्या यह ठीक है या नहीं?

उत्तर- वास्तव में मुनियों के, त्यागी व्रतियों के ये दोष होते ही नहीं हैं। यदि मुनियों के, त्यागी व्रतियों के ये दोष देखे जा रहे हैं तो वे यथार्थ में मुनि नहीं हैं किंतु केवल बाह्य वेषधारी हैं। बाह्य में दिगंबर जैनमुनि हैं और अंदर से गृहस्थ हैं, अणुव्रती हैं या अजैन हैं, अन्यमती हैं। क्या कांचली के बिना सर्प निर्विष हो जाता है? नहीं, चर्यानुसार धर्म और धर्मात्मा की पहंचान करना कहना केवल बाह्यव्यवहार है, त्रिकाल सत्य नहीं है। बाह्य चर्या अंतरंग धर्म का नियामक नहीं है किंतु बाह्य भूमिकानुसार ही अंतरंग धर्म की उत्पत्ति होती है, बिना बाह्य चर्या के अंतरंग धर्म की उत्पत्ति त्रिकाल में न हुई थी, न होने वाली है और न होगी।

प्र.-3724 इन सभी दोषों के अलग अलग नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **3 मूढ़ता-** देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता, लोक मूढ़ता। **3 शल्य-** माया, मिथ्यात्व, निदान शल्य। **3 दोष-** राग, द्वेष, मोह। **3 दंड-** मनदंड, वचनदंड, कायदंड। **3 गारव-** रसगारव, ऋद्धिगारव, सातगारव।

प्र.-3725 ये सभी परिणाम किन किन कर्मों के निमित्त से होते हैं?

उत्तर- दर्शनमोह और अनंतानुबंधी कषायोदय से 3 मूढ़तायें होती हैं। मिथ्यात्व कर्मोदय से मिथ्याशल्य, माया कषायोदय से मायाशल्य, लोभ कषायोदय से निदान शल्य होती हैं। दर्शनमोहोदय से मोहदोष, 4 माया, 4 लोभ, हास्य, रति, तीनों वेद इन 13 से राग तथा 4 क्रोध, 4 मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन 12 से द्वेष ये तीन दोष होते हैं। मान कषायोदय से तीन दंड और 3 गारव होते हैं।

प्र.-3726 ये सभी परिणाम कहाँ किस गुणस्थान में किन किनके घातक हैं?

उत्तर- ये सभी परिणाम आदि के दो गुणस्थानों में अनंतानुबंधी कषायोदय से मोक्षमार्ग के घातक है। तीसरे गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण कषायोदय से पूर्ण रूप में मोक्षमार्ग के न साधक हैं, न बाधक। चौथे गुणस्थान में देशचारित्र के, पाँचवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण कषायोदय से सकलचारित्र के और संज्वलन कषायोदय से सकलचारित्र में चारों दोष पैदा होते हैं व यथाख्यातचारित्र का पूर्णतः घात होता है।

प्र.-3727 ये भाव आत्मा के, रत्नत्रय के घातक हैं ऐसा जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- ये परिणाम हानिकारक हैं, रत्नत्रय के घातक हैं आदि ऐसा जानकर इनका त्याग करना चाहिये क्योंकि इनके त्याग से ही आत्मसाधना हो सकती है अन्यथा विराधना होती है।

नोटः- यहाँतक 3727 प्रश्नोत्तरों में 130वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 131वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

विधि रूप में धर्मनेता

रयणत्तय करणत्तय जोगत्तय गुत्तित्तय विसुद्धेहिं।

संजुत्तो जोई सो सिवगइ पहणायगो होइ।।131।।

रत्नत्रय करणत्रय योगत्रय गुप्तित्रय विशुद्धैः।

संयुक्तो योगी सः शिवगति पथनायको भवति।।

रयणत्तय सम्यग्दर्शन आदि 3 रत्न **करणत्तय** 3 करण **जोगत्तय** 3 योग **गुत्तित्तय** 3 गुप्ति और अनेक प्रकार की **विसुद्धेहिं** विशुद्धि **संजुत्तो** सहित **सो** वह **जोई** योगी **सिवगइ** शिवगति का **पहणायगो** पथनायक **होइ** होता है।

प्र.-3728 जिनलिंगधारी योगी रत्नत्रय से युक्त हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सम्यक् रत्नत्रय के बिना अन्यमति साधु भी नग्न होकर घोर तपश्चरण करते हैं तब यदि जैन साधु भी इसी प्रकार हुए तो दोनों में क्या अंतर रहा? अतः जिनलिंगधारी साधु सम्यक्रत्नत्रय सहित ही होना चाहिये।

प्र.-3729 करण किसे कहते हैं, कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- स्वाधीन पराधीन होकर करने योग्य क्रिया को करण कहते हैं। 3 और 13 भेद हैं। **नामः-** मन करण, वचन करण और काय करण। **तेरह भेदः-** षडावश्यक के 6, पंचपरमेष्ठी की भक्ति 5 और निस्सही अस्सही।

प्र.-3730 करण आवश्यकों को पराधीन क्यों कहा?

उत्तर- पंचपरमेष्ठियों के आधीन होने से करणों को पराधीन कहा है किंतु लौकिकों के आधीन नहीं हैं।

प्र.-3731 लौकिक व्यक्तियों के आधीन होने से क्या करण कहे जा सकते हैं?

उत्तर- लौकिक व्यक्तियों के आधीन होने से ये लौकिक करण कहे जा सकते हैं, लोकोत्तर नहीं।

प्र.-3732 शुभ मनकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- मन में मंगलकारी, पुण्यवर्धक विचारों को, अनंतधर्मात्मक भावों को शुभ मनकरण कहते हैं।

प्र.-3733 शुभ वचनकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- शुभ मनकरण सहित रत्नत्रय पूर्वक सातिशय पुण्यवर्धक वचनों को शुभ वचनकरण कहते हैं।

प्र.-3734 शुभ कायकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- शुभ मनवचनकरण पूर्वक मोक्ष साधक क्रियाओं के करने को शुभ कायकरण कहते हैं।

प्र.-3735 क्या ये तीनों करण अशुभ भी होते हैं?

उत्तर- हाँ अवश्य ही शुभ से विपरीत अशुभ मनकरण, अशुभवचनकरण, अशुभ कायकरण होते हैं।

प्र.-3736 अशुभ मनकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- मानसिक विषयकषायात्मक पापवर्धक, आर्तरौद्रध्यानादि विचारों को अशुभमनकरण कहते हैं।

प्र.-3737 अशुभ वचनकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- पापवर्धक, आत्मघातक, मोक्षमार्ग विनाशक निंदाकारकवचनों को अशुभवचन करण कहते हैं।

प्र.-3738 अशुभ कायकरण किसे कहते हैं?

उत्तर- पापवर्धक, अशुभ आश्रवबंधकारक शरीर की क्रियाओं को अशुभ कायकरण कहते हैं।

प्र.-3739 इनके अलावा अस्सहि निस्सहि में से प्रथम किसका प्रयोग करना चाहिये?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही इन तीन करणों के अलावा सर्वप्रथम जिस स्थान में निवास कर रहे हैं उसको छोड़ेंगे तभी तो दूसरे स्थान में प्रवेश करेंगे। यदि पहले निवासस्थान को नहीं छोड़ा तो दूसरे स्थान में कैसे प्रवेश करेंगे अतः सर्वप्रथम अस्सहि का प्रयोग कर बाद में निस्सहि का प्रयोग करना चाहिये।

प्र.-3740 निस्सहि करण किसे कहते हैं?

उत्तर- किसी मंदिर में, गृहस्थ के मकान में, सूने मकान में, जंगल में, नगर में, गुफा में, खोह में, कंदराओं में तथा अन्यत्र मलमूत्र आदि क्षेपण करने के लिये, नित्यक्रियाकर्म के लिये प्रवेश करते समय निस्सही 3 बार उच्चारण कर वहाँ के यक्ष आदि मालिक से आज्ञा लेकर प्रवेश करने को निस्सहि करण कहते हैं।

प्र.-3741 मालिक या पहरेदार के सामने निस्सहि बोलकर प्रवेश कर सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, मालिक या पहरेदार के सामने केवल मौन पूर्वक निस्सहि बोलने से काम नहीं चलेगा, जब व्यक्ति सामने मौजूद है तो उससे स्पष्ट शब्दों में या इशारे से या अन्य भी संकेतों से पूंछकर प्रवेश करना चाहिये। यदि कोई पहरेदार आदि गुप्त है, दृष्टिगोचर नहीं है तो वहाँ निस्सहि[3] बोलकर प्रवेश करना चाहिये।

प्र.-3742 पहरेदार गुप्त है तो वहाँ निस्सहि बोलकर जा सकते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- पहरेदार गुप्त है तो दरवाजा, ताला खोलकर अंदर नहीं जाना चाहिये, हो सकता है कि चौकीदार चोर आदि अपराधियों को पकड़ने के लिए छिपकर बैठा हो उस समय ताला दरवाजा खोलकर प्रवेश करते ही पहरेदार अपराधी मानकर कैद करले तब क्या होगा? अतः ताला आदि खोलकर प्रवेश नहीं करना चाहिये।

प्र.-3743 दरवाजा खोलकर निस्सहि बोलकर प्रवेश कर सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, अपने हाथ से दरवाजा खोलकर निस्सहि बोलकर प्रवेश नहीं करना चाहिये किंतु मालिक से पूंछकर ही प्रवेश करना चाहिये, अन्यथा बिना पूंछे दरवाजा खोलकर निस्सहि बोलके प्रवेश कर लिया तो नाना आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा क्योंकि बिना पूंछे प्रवेश कर जाना आगम विरुद्ध, लोकविरुद्ध, राजकानून विरुद्ध भी है। निस्सहि का प्रयोग मंदिर या सूने मकानादि में प्रवेश करते समय करना चाहिये।

प्र.-3744 अस्सहि किसे कहते हैं?

उत्तर- मंदिर आदि से निकलते समय **अस्सहि** बोलना चाहिये कि अभी तक हमने आपके स्थान में चर्या की है अब अपना स्थान सम्हालो हम जा रहे हैं अतः आपको कष्ट होने से हम क्षमाप्रार्थी हैं। जैसे ऑफिस आदि में लिखा रहता है कि बिना आज्ञा के अंदर आना मना है तो बिना आज्ञा के बाहर जाना भी मना है। बिना बताये चले जाने पर यदि कोई अघट घटना घट गयी तो अपने ऊपर दोष आयेगा वो चले गये उन्होंने ही यह कार्य किया होगा अन्यथा बिना बताये क्यों गये? इसलिए बताकर ही जाना चाहिये।

प्र.-3745 बिना बताये विहार कर जाना क्या आगम संमत है?

उत्तर- नहीं, ठीक नहीं है। आगम की, आ. श्री कुंदकुंदजी की आज्ञा का तथा लोकव्यवहार का भी उल्लंघन करना है, एकबार आज्ञा का उल्लंघन करना क्षम्य अपराध है और पुनः पुनः करना अत्याचार है, अनाचार है, अक्षम्य अपराध है। अनाचार से सम्यक् आचारविचार का, मोक्षमार्ग का, आत्मसुख शांति का समूल भंग हो जाता है, नाश हो जाता है इसलिए अस्सहि[3] बोलकर ही मंदिर आदि से बाहर जाना चाहिये।

प्र.-3746 सामाजिक मंदिरों से केवल अस्सहि[3] बोलकर जा सकते हैं क्या?

उत्तर- मौजूद व्यक्ति से आज्ञा लेकर ही बाहर जाना चाहिये। केवल मौन पूर्वक अस्सहि बोलने से काम नहीं चलता। जैसे पहरेदार को बिना बोले निस्सहि कहकर अंदर चले जाओ तो कितना कष्ट होगा यह मालुम हो जायेगा तो ऐसे ही केवल अस्सहि बोलकर वापिस आ जाने से क्या फल होता है, अनुभव हो जायेगा।

प्र.-3747 आवश्यक कार्य किसे कहते हैं और नाम कौन[2] हैं, सामान्य अर्थ क्या है?

उत्तर- नियमतः करने योग्य कार्यों को आवश्यक कहते हैं। साधुओं के 6 हैं। **सामायिक-** सतत ध्यान करना। **स्तुति-** किसी एक परमेष्ठी का गुणकीर्तन करना। **वंदना-** इन सभी का एकसाथ स्मरण करना। **स्वाध्याय/ प्रत्याख्यान-** निरंतर पठन कर पापों का त्याग करना। **कायोत्सर्ग-**

शरीरादि से ममत्व का त्याग।

प्र.-3748 परमेष्ठी किसे कहते हैं, कितने हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- परम इष्ट, सर्वश्रेष्ठ हो जिनके त्याग वैराग्य ध्यान साधना के समान सारे विश्व में कोई न हो उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। भेद पाँच हैं। जैसे अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु, भेदापेक्षया नवदेवतागण।

प्र.-3749 इनकी वंदना स्तुति पूजा अभिषेकादि क्यों करना?

उत्तर- इन्होंने ध्यान से अनादिसादिकालीन द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों को जीत लिया है, जीतने वाले हैं और जीतेंगे इसलिये इन जैसा बनने के लिये, सुखशांति की प्राप्ति के लिये, कर्म बंधन को क्षय करने के लिये नमस्कारादि करना चाहिये क्योंकि ये आत्मसाधना में साधन होने से सम्यक्त्ववर्धिनी क्रियायें हैं। सम्यक्त्वाचरण चारित्र है अतः शुद्धावस्था की प्राप्ति के लिये स्तुति वंदना अभिषेकादि करना चाहिये।

प्र.-3750 योगी गुप्तियों से सहित हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- गुप्तियों से गुप्त ही वास्तव में साधु होते हैं अतः ये गुप्तियां अयोगिकेवलियों के ही होती हैं।

प्र.-3751 सयोगिकेवलियों के ये गुप्तियां क्या नहीं होती हैं?

उत्तर- हाँ, सयोगिकेवलियों तक व्यवहारगुप्तियां तो अयोगिकेवलियों के ही परमार्थगुप्तियां होती हैं क्योंकि 10वेंगुणस्थान तक पाप पुण्य का आश्रव बंध होता है, अपेक्षाकृत पाप का, पुण्य का और पापपुण्य का संवर भी होता है तथा दोनों की निर्जरा होती है इसमें पापकर्मों की अविपाकनिर्जरा ज्यादा और पुण्यकर्मों की सविपाकनिर्जरा कम होती है। 11वें, 12वें, 13वें गुणस्थान में एकमात्र सातावेदनीय का आश्रवबंध होता है तब यहाँ पूर्ण संवर और पूर्ण निर्जरा न होने से परमार्थगुप्ति कैसे हो सकतीं हैं? क्योंकि योगों का निग्रह करना व्यवहार गुप्ति और अभाव करना परमार्थ गुप्ति है। सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः॥4॥ त.सू. अ. 9

प्र.-3752 सरागी प्रमत्ताप्रमत्त मुनियों के ये गुप्तियां किस प्रकार हुआ करती हैं?

उत्तर- सरागी प्रमत्ताप्रमत्त मुनियों के व्यवहार गुप्तियां होती हैं क्योंकि प्रमत्त मुनियों के बुद्धि पूर्वक अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति होती है और प्रमाद का अभाव होने से अप्रमत्तों के शुभ में स्थिरता होती है।

प्र.-3753 अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति समिति है सो इसे गुप्ति क्यों कहा?

उत्तर- इन क्रियाओं के करते समय जो निवृत्ति रूप त्याग अंश है वह गुप्तियों का है और शेष प्रवृत्ति रूप अंश समितियों का है अतः यहाँ निवृत्ति अंश को गुप्ति नाम से कहा है।

प्र.-3754 गुप्ति किसे कहते हैं कितने भेद हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- आत्म प्रदेशों में कंपन के अभाव को या अशुभ मन वचन काय की क्रियाओं के त्याग को गुप्ति कहते हैं। तीन भेद हैं- मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।

प्र.-3755 मन गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- मन के द्वारा होने वाले आत्म प्रदेशों में कंपन के अभाव को, आर्तरौद्र ध्यानों के, आहारादि संज्ञाओं के, अशुभ लेश्याओं के, पापों के, व्यसनों के, अन्याय अभक्ष्य के, त्याग के विचारों को मन गुप्ति करते हैं।

प्र.-3756 वचन गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर-वचनों के द्वारा उत्पन्न होने वाले आत्म प्रदेशों में कंपन के अभाव को, पापकारक, प्राण

घातक, अयशकारक, विकथाओं के वचनों का त्याग करने को वचन गुप्ति कहते हैं।

प्र.-3757 काय गुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- काय के द्वारा उत्पन्न होने वाले आत्म प्रदेशों में कंपन के अभाव को, शरीर की, इंद्रियों की, कामभोग की, वैरविरोध की, शृंगारालंकार की, आरंभ परिग्रह की चेष्टाओं के त्याग को काय गुप्ति कहते हैं।

प्र.-3758 गुप्तियों का क्या फल है?

उत्तर- निषेध रूप में पूर्ण आश्रवबंध को रोकना और विधि रूप में मोक्ष प्राप्त होना गुप्तियों का फल है।

प्र.-3759 योग किसे कहते हैं? योगों के स्वामी को क्या कहते हैं?

उत्तर- आहार विहार निहार का त्याग कर किसी एक ही स्थान में स्थिर रहने को योग कहते हैं। ये योग तीन हैं। नामः- वर्षायोग शीतयोग और ग्रीष्मयोग। स्वामीः- प्रमत्ताप्रमत्त मुनिजन हैं।

प्र.-3760 योग का अर्थ मन वचन काय क्यों नहीं किया?

उत्तर- मन वचन काय योग आश्रवबंध तत्त्व ही है अतः नहीं किया है क्योंकि यहाँ योग का अर्थ ध्यान है।

प्र.-3761 वर्षायोग किसे कहते हैं तथा कितने दिनों तक और क्यों किया जाता है?

उत्तर- वर्षाकाल में वृक्षादि के नीचे ठहरने को वर्षायोग कहते हैं। श्रावणवदी एकम से कार्तिक सुदी पूर्णिमा तक 120 दिन के काल को उत्कृष्ट वर्षाकाल कहते हैं। वर्षायोग का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त और मध्यम काल दोनों के मध्य का समय है। पापों के त्याग की प्रतिज्ञा भंग के भय से तथा प्रतिज्ञा को, अपनी सामर्थ्य को बढ़ाने के लिये, कर्मों को क्षय करने के लिए वर्षायोग धारण पालन किया जाता है।

प्र.-3762 वर्षाकाल में योगीजन आहार करते हैं या नहीं?

उत्तर- 120 दिन तक आहारादि का त्याग कर या बीच[2] में आहार कर त्याग करते हुए स्थिर रहते हैं।

प्र.-3763 वृक्ष के नीचे वर्षाकाल में योगीजन क्यों योग धारण करते हैं?

उत्तर- खुली जगह में वर्षायोग धारण करने से वर्षा होने पर शरीर पर पानी गिरा कि थोडे ही समय में सूख जाता है और न डांस मच्छर आदि काटेंगे जिससे उपसर्ग परीषह को जीतने की सामर्थ्य व्यक्त नहीं होगी किंतु वृक्ष के नीचे निवास करने पर वर्षा के बाद में भी धीरे[2] पानी टपकने से मिट्टी आदि के सड़ने से जहरीले जंतु पैदा होकर काटने से वेदना अधिक होगी तभी स्वसामर्थ्य का परिचय होगा कि मेरे में उपसर्गों को, परीषहों को जीतने की सामर्थ्य है या नहीं अतः वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे योग धारण करते हैं।

प्र.-3764 वृक्ष के पत्ते घने होने पर जोर से पानी ऊपर नहीं पड़ता है अतः कायरता के कारण वृक्ष के नीचे ठहरते हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

उत्तर- अपनी उपसर्ग परीषहों को जीतने की सामर्थ्य जानने व वृद्धि के लिए वृक्ष के नीचे निवास करते हैं यदि ये महापुरुष कायर होते तो राज्य वैभव, परिवार, भोग सामग्री का त्याग करके दिगंबर जैन मुनि निर्ग्रंथ दीक्षा क्यों धारण करते? वृक्ष के नीचे ठहरने पर ऊपर से पत्ते, शाखायें टूट कर भी ऊपर गिर जाती हैं पक्षी मलमूत्र क्षेपण करते हैं, भयभीत हो आत्मरक्षार्थ काटते हैं, लंबे समय तक पानी टपकता रहता है, जिससे बुखार, सर्दी आदि बीमारियां पैदा हो जाती है, शरीर जकड़ जाता है ध्यानाध्ययन और मौन पूर्वक समय व्यतीत करते हैं। कदाचित् पक्षीगण घोंसला बनाकर, सर्प बिच्छू आदि अपना घर बनाकर रहने लगते हैं इतने कष्टों को जीतते हुये वे कायर कैसे हो

सकते हैं? महान दृढधर्मी हैं।

प्र.-3765 वर्षाकाल में खुली जगह में रह सकते हैं क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही खुली जगह में रह सकते हैं। यह तो उनकी सामर्थ्य और स्थान के ऊपर निर्भर है।

प्र.-3766 शीतयोग किसे कहते हैं यह भी कितने दिनों का होता है?

उत्तर- अपनी सामर्थ्य जानने व वृद्धि के लिए ठंडी के दिनों में खुले मैदान में मगशिर वदी एकम से फाल्गुन सुदी पूर्णिमा पर्यंत 120 दिनों तक उत्तम, एकमुहूर्त तक जघन्य और मध्य के काल तक मध्यम सामर्थ्यानुसार उपवास कर या बीच बीच में आहार कर त्याग करते हुए एक ही स्थान में ठहरकर, मौन पूर्वक एकाग्र हो आत्मचिंतन, वस्तु स्वरूप का चिंतन करते हुये अपना समय व्यतीत करते हैं। ठंडी से शरीर अकड़ जाता है पर ये मुनिजन आत्मधैर्य को न छोड़ते हुये पूर्ण कर्मठ हो ध्यान साधना में संलग्न रहते हैं।

प्र.-3767 खुली जगह में या चौराहे पर शीतयोग क्यों धारण करते हैं?

उत्तर- शीत के कष्टों को जीतने के लिए खुली जगह या चौराहे पर शीतयोग धारण कर तत्त्वचिंतन में मन को केंद्रित कर आत्मानंद का ही अनुभव करते हैं क्योंकि कष्टसहिष्णु से ही आत्मसुखानुभव होता है।

प्र.-3768 दिन में धूप से शरीर सिक गया तब सर्दी के कष्ट का अनुभव क्यों होगा?

उत्तर- सर्दी के दिनों में सूर्य की गर्मी 4, 6 घंटे मिलती है शेष कालों में ठंडी हवा, चंद्रकिरणों से भंयकर ठंडी के कारण दांत किटकिटाने लगते हैं। शरीर कांपने लगता है, कदाचित् पशुपक्षी भी अपने बचाव के लिये पर्वत जैसा समझकर निकट में आकर बैठ जाते हैं। बाहरवालों की दृष्टि में कष्ट होते हुए भी वे अंतरंग में आत्मसुखानुभव करते हैं क्योंकि स्वाधीन स्वतंत्र होकर कार्य करने से उसमें कष्ट का अनुभव न होने से वे कर्मों की निर्जरा और संवर करते हुये मोक्षपुरी को प्राप्त होते हैं स्वतंत्रता का यही फल है।

प्र.-3769 ग्रीष्म योग किसे कहते हैं यह भी कितने दिनों का होता है?

उत्तर- वर्षाशीतयोगवत् गर्मी के दिनों में योगधारण करने को ग्रीष्मयोग कहते हैं।

प्र.-3770 गर्मी के दिनों में पर्वत के ऊपर मुनिजन क्यों ध्यान करते हैं?

उत्तर- गर्मी में जलाशय सूख जाते हैं, पत्ते गिर जाने से छाया, ठंडी हवा नहीं मिलती है क्योंकि वृक्षों, बेलों के ठूंठ ही शेष बचते हैं, मिट्टी, पत्थर सूर्य किरणों से तप जाते हैं, तप्तलोहेवत् शरीर तपने से पानी सूखने पर पित्त भड़क उठता है फिर भी कर्म क्षयार्थ मुनिजन ग्रीष्मयोग धारण करते हैं।

प्र.-3771 गर्मी में पर्वत पर रहने से शुद्ध हवा मिलती है तब कष्ट कैसे हो सकता है?

उत्तर- पर्वत के ऊपर छाया का साधन तो होता नहीं है कदाचित् ठंडी हवा चली भी तो पर्वत, शिलायें गरम होने से वह ठंडी हवा भी लू जैसी गरम हो जाती है जो दाह पैदा करती है, ऊपर पानी न होने से एकमात्र उष्णता ही प्राप्त होती है, कंठ, गला, मुंह सूख जाता है फिर भी रत्नत्रयधर्म होने से गर्मी का अनुभव न कर आत्मसुख का ही अनुभव करते हैं जिससे संसार सागर से दूर एवं मोक्ष के निकट होते जाते हैं।

प्र.-3772 विशुद्धि किसे कहते हैं, इसके स्वामी कौन हैं?

उत्तर- जिन वस्तुतत्त्वचिंतन के परिणामों से आर्तरौद्रध्यानों का, स्थितिबंध, अनुभागबंध का घात हो तथा कर्मदलन कर सातिशयपुण्य की प्राप्ति हो उसे विशुद्धि कहते हैं। **स्वामी** प्रधानतया मुनिजन हैं।

प्र.-3773 इस विशुद्धि को क्या विशुद्धिलब्धि भी कहते हैं और इनका फल क्या है?

उत्तर- विशुद्धिलब्धि का स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव है किंतु विशुद्धि का स्वामी मोक्षमार्गी जीव है। विशुद्धि लब्धि के द्वारा रत्नत्रय की प्राप्ति होती है तथा विशुद्धि मोक्षमार्ग से चलायमान नहीं होने देती और विशुद्धि से उत्तरोत्तर परिणाम आत्मसाधना में, संयम साधना में वृद्धिंगत होते जाते हैं सो इसका यही फल है।

प्र.-3774 योग क्यों धारण किये जाते हैं और ये समीचीन होते हैं या मिथ्या?

उत्तर- आत्मशुद्धि के लिए, कर्म और विकारों को क्षय करने के लिए योग धारण किये जाते हैं। सम्यक् रत्नत्रय पूर्वक होने से समीचीन और रत्नत्रय के बिना मिथ्या कहलाते हैं।

प्र.-3775 योग धारण किये बिना मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्या?

उत्तर- योगधारण करने वालों को और स्थूलतः योगधारण किये बिना अंतकृत केवली को मोक्ष की प्राप्ति होती है। जैसे भरत मुनिराज ने जघन्यकालिक योग धारण कर अनंत चतुष्टय और मोक्ष प्राप्त किया था या सूक्ष्मतः विचार करने पर कम से कम अंतर्मुहूर्त के लिए भी योग धारण कर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र.-3776 इन योगों का अंतर्भाव किसमें होता है?

उत्तर- रत्नत्रय पूर्वक इन वर्षायोग आदि तीनों का बहिरंग कायक्लेश तप में अंतर्भाव हो जाता है और रत्नत्रय के बिना कुतप, बालतप, बालव्रत तथा मिथ्याचारित्र में अंतर्भाव हो जाता है।

नोटः- यहाँतक 3776 प्रश्नोत्तरों में 131वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 132वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आप्तपना कैसे?

बहिरब्भंतरगंथ विमुक्को सुद्धोवजोय संजुत्तो।

मूलुत्तर गुण पुण्णो सिवगइ पहणायगो होइ।।132।।

बहिरभ्यंतर ग्रंथविमुक्तः शुद्धोपयोग संयुक्तः।

मूलोत्तर गुण पूर्णः शिवगति पथनायको भवति।।

बहिरब्भंतर बाह्याभ्यंतर **गंथ विमुक्को** घातियाकर्मोदय से संबंधित परिग्रहत्यागी वीतराग **सुद्धोवजोय संजुत्तो** शुद्धोपयोगी सर्वज्ञ एवं **मूलुत्तरगुणपुण्णो** मूल और उत्तर गुणों से पूर्ण **सिवगइ** मोक्षमार्ग का **पहणायगो** पथनायक हितोपदेशी **होइ** होता है।

प्र.-3777 इस 132वीं गाथा में संक्षेप से किसका वर्णन किया है?

उत्तर- इस गाथा में वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेश से युक्त आप्त का कथन किया है।

प्र.-3778 बाह्य परिग्रह किसे कहते हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- मूर्च्छा में कारणभूत बाह्य इंद्रियगोचर भोगोपभोग सामग्री को परिग्रह कहते हैं। दश भेद हैं नामः- क्षेत्र, वास्तु, सोना, चांदी, धन, धान्य, दासी, दास वस्त्र और बर्तन।

प्र.-3779 धर्म संबंधित सामग्री को परिग्रह कह सकते हैं क्या तथा क्यों?

उत्तर- कर्मक्षय, मोक्ष निमित्तक सामग्री को परिग्रह न कहकर धर्मायतन कहते हैं। यदि धर्मायतन परिग्रह माना जाय तो देव शास्त्र गुरु भी परिग्रह हो जायेंगे फिर पुण्य, धर्म और पाप, अधर्म में कोई भेद नहीं रहेगा।

प्र.-3780 अभ्यंतर परिग्रह किसे कहते हैं और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- बाह्य सामग्री के योजना, अर्जन, संग्रह संवर्धन संरक्षण के परिणामों को अंतरंग परिग्रह कहते हैं। 14 भेद हैं। नामः- मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा एवं तीनों वेद।

प्र.-3781 बाह्याभ्यंतर परिग्रह इतना ही है या और भी है?

उत्तर- समस्त आश्रव बंध के भावों को तथा समस्त भोगोपभोग सामग्री के प्रति मूर्च्छा को और भावात्मक 148 कर्म प्रकृतियों को अभ्यंतर परिग्रह कहा है। यह बाह्याभ्यंतर परिग्रह चौदहवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.-3782 यहाँ किस प्रकार के परिग्रह से मतलब है और किसका त्याग इष्ट है?

उत्तर- यहाँ मोहोदय से उत्पन्न बाह्याभ्यंतर परिग्रह से मतलब है। प्रमत्त मुनियों के बाह्य में दश प्रकार के तथा अभ्यंतर में एक मिथ्यात्व परिग्रह का त्याग इष्ट है शेष 13 प्रकार का परिग्रह मौजूद है।

प्र.-3783 प्रमत्तसंयत मुनि के 24 प्रकार के परिग्रह का त्याग होता है क्या?

उत्तर- ग्यारह प्रकार के परिग्रह का त्याग करके प्रमत्तसंयत मुनि होता है, शेष 13 का नहीं किंतु पूर्णतः इस 13 प्रकार के परिग्रह का त्याग 11वें, 12वें गुणस्थान वाले निर्ग्रंथ मुनियों के होता है, इसके पहले नहीं।

प्र.-3784 बाह्याभ्यंतर परिग्रह के त्याग का फल क्या है?

उत्तर- मोह निमित्तक पूर्ण बाह्याभ्यंतर परिग्रह के त्याग का फल शुद्धोपयोग है। वास्तव में शुद्धोपयोग केवलज्ञान केवलदर्शन है और यह अवस्था वर्तमान नय से सयोग अयोग और सिद्ध केवलियों के होती है।

प्र.-3785 प्रमत्त संयतमुनि को शुद्धोपयोग से संयुक्त क्यों कहा?

उत्तर- परम पारिणामिक शुद्धात्म द्रव्य को प्राप्त करने का लक्ष्य होने से प्रमत्तसंयत मुनि को लक्ष्य और लक्ष्यवान् में अभेद करके शुद्धोपयोगी कहा, पर यथार्थ में शुभोपयोगी ही है, शुद्धोपयोगी नहीं।

प्र.-3786 मूलगुण और उत्तरगुणों से पूर्ण कौन मुनि होते हैं?

उत्तर- 28, 25, 36 मूलगुण और 84लाख उत्तरगुण अयोगकेवलियों के पूर्ण होते हैं। इसके पहले मूलोत्तरगुण पूर्ण नहीं होते सो सदोष हैं या प्रमत्तमुनियों के 28मूलगुण व 34उत्तरगुण होते हैं।

प्र.-3787 प्रमत्तसंयत मुनियों के 34 उत्तरगुण कौन कौन से होते हैं?

उत्तर- प्रमत्तसंयत मुनियों के 22 परीषह और 12 तप इन दोनों को मिलाने से 34 उत्तरगुण होते हैं।

प्र.-3788 प्रमत्तसंयत मुनियों के ये उत्तरगुण कहाँ पर बताये हैं?

उत्तर- **उत्तरगुणमज्जमणे सम्मं अधिआसणं च सड्ढाए।**
आवासयाणमुचिदाण अपरिहाणी अणुस्सेओ।।118।। भ.आ.

अर्थः- ये उत्तरगुण भगवती आराधना में बताये हैं। संयम में उद्यम सम्यक् रीति से भूख प्यास आदि को सहन करना, तप में अनुराग पहले कहे गये छह आवश्यकों की न्यूनता एवं अधिकता न होना।

प्र.-3789 मूलगुणों के निर्दोष पालक मुनियों को मानते हैं ऐसे वक्ता क्या सत्यवादी हैं?

उत्तर- चरणानुयोगानुसार बकुशादि मुनि 28, 25, 36 मूलगुणों का निर्दोष पालन करते हैं किंतु प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान वाले पुलाकमुनि शिष्य आदिकों के दबाववश पाँच महाव्रत और रात्रिभोजन त्याग छठवें मूलगुणों की भी विराधना कर लेते हैं फिर भी इनके भावरूप संयम की मूलतः विराधना नहीं होने पाती है तब ये वक्ता पुलाकमुनि को भावलिंगी न मानने के कारण देव शास्त्र गुरु के अनाज्ञाकारी हैं तथा जैनवक्ता नहीं हैं।

प्र.-3790 सदोष मुनियों को मानने पूजने वाले अंधभक्त क्यों नहीं हैं?

उत्तर- अनाचार दोषों से युक्त मुनियों को मानने पूजने वाले अंधभक्त अवश्य हैं क्योंकि अनाचारी अवस्था में तद्गुण का अभाव हो जाता है। अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार दोष क्षम्य होने से उस गुण का पूर्णतः विनाश नहीं होता है अतः अनाचार दोष वालों को धर्मात्मा मानकर मानना पूजना अंधभक्तपना है और शेष तीन अतिक्रम, व्यतिक्रम तथा अतिचार दोषों से युक्त मुनियों को पूजना मानना अंधभक्तपना नही हैं कारण इनके भावलिंगपने का सद्भाव है अभाव नहीं अतः अंधभक्तपने का प्रसंग नहीं आता है।

प्र.-3791 अंधभक्त किसे कहते हैं तथा ये संसारमार्गी हैं या मोक्षमार्गी?

उत्तर- जिनमें मोक्षमार्ग की गंध भी नहीं है उनको मोक्षमार्गी मानकर समर्पित होने को अंधभक्तपना कहते हैं। जैसे आँख से अंधों को दृश्य पदार्थ दिखाई नहीं देता है ऐसे ही ज्ञानहीन विवेकहीनों को स्वपर के गुण दोष कुछ भी नजर में नहीं आते सो ये संसारमार्गी हैं मोक्षमार्गी नहीं।

प्र.-3792 प्रमत्तसंयत मुनियों के 28 मूलगुणों का पालन निर्दोष होता है क्या?

उत्तर- 6वें गुणस्थानवर्ती मुनियों के मूलगुणों को पूर्णतः निर्दोष पालने की प्रतिज्ञा की है पर प्रमत्तदशा होने से निर्दोष पालन नहीं हो पाता। चरमशरीरी तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले तद्भव मोक्षगामी मुनि भी पूर्णतः पालन नहीं कर पाते यदि ये पूर्ण निर्दोष पालन कर लेते तो प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि अंतरंग तप क्यों करते? अपराधी को ही प्रायश्चित्त बताया है अन्यथा जिनके अंतरंग तप के भेदों में प्रथम भेद प्रायश्चित्त नहीं है वे अंतिम भेद धर्मध्यान शुक्लध्यान को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? अतः मूलगुणों का निर्दोष पालन क्रमशः वर्तमान नय से 12वें गुणस्थान में अहिंसा महाव्रत, सयोगी के सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, अयोगी के प्रारंभ में ब्रह्मचर्य महाव्रत और अंत में अपरिग्रह महाव्रत पूर्ण निर्दोष होता है अतः जो मूलगुणों का निर्दोष पालन करने वालोंको मुनि मानकर पूजने की प्रतिज्ञा करते हैं सो वे सयोगकेवली स्नातकमुनि को भी नहीं मानते हैं। यदि मानते हैं तो उनकी प्रतिज्ञा दूषित हो जाती है, स्ववचन बाधित दोष भी आता है।

प्र.-3793 प्रमत्तों के 34 उत्तरगुणों का पूर्ण निर्दोष पालन होता है क्या?

उत्तर- चरणानुयोगानुसार बकुश और कुशील मुनियों के 34 उत्तरगुणों का पूर्ण निर्दोष पालन होता है किंतु सभी कालों और क्षेत्रों में छहों संहनन वाले पुलाकमुनि के सदोष पालन होता है।

नोटः- यहाँतक 3793 प्रश्नोत्तरों में 132वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 133वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यग्दर्शन का फल

जं जाइ जरा मरणं दुह दुट्ठ विसाहि विस विणासयरं।
सिवसुह लाहं सम्मं संभावइ सुणइ साहए साहू।।133।।

यज्जाति जरा मरण दुःख दुष्ट विषाहि विष विनाशकरं।
शिवसुखलाभं सम्यक्त्वं संभावयति श्रृणोति साधकः साधुः।।

साहू हे साधु! **जं** उस **जाइजरामरणं** जन्मजरामरण **दुहदुट्ठविसाहि** दुःख रूपी दुष्ट सर्प के **विसविणासयरं** विष नाशक **सिवसुहलाहं** मोक्षसुखदायक **सम्मं** भली प्रकार से आप्त को या रत्नत्रय धर्म को **सुणइ** सुनो **संभावइ** भाओ और **साहए** साधो।

प्र.-3794 इस 133वीं गाथा में किसके फल का वर्णन है?

उत्तर- गाथा में निषेध और विधि रूप पद्धति से आप्त में विश्वास रूप सम्यग्दर्शन के फल का वर्णन है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति आप्त पर विश्वास करने से होती है इसलिए यहाँ आप्त का किंचित् कथन किया है।

प्र.-3795 वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशीपना यह लक्षण गाथा में किससे अर्थ निकाला?

उत्तर- "जं सम्मं" उनको भली प्रकार से। इन दो पदों से अर्थ निकाला है कि उस शिवगति के पथनायक हितोपदेशी के लक्षण को सुनो, जानो पहंचानो, साधना करो।

प्र.-3796 शिवगति पथनायक पद से आपने आप्त के लक्षण को कैसे ग्रहण किया?

उत्तर- मोक्षमार्ग का नायक कौन? हितोपदेशी। हितोपदेशी बनने के लिये सर्वज्ञ होना चाहिये क्योंकि जो जानेगा वही मार्गदर्शक बनेगा। सर्वज्ञ बनने के लिये वीतराग होना परमावश्यक है कारण जिसमें विषयविकार है वह दूसरों को क्या मार्गदर्शन देगा? अतः अंतदीपक पथनायक पद से आप्त को ग्रहण किया है।

प्र.-3797 आप्त पदवी को प्राप्त करने का साधन क्या है?

उत्तर- घातियाकर्मों को क्षय करना ही आप्त पदवी को प्राप्त करने का अनन्य साधकतम साधन है।

प्र.-3798 आप्त के लक्षण को कौन प्राप्त करते हैं?

उत्तर- सरागी वीतरागता को, छद्मस्थ सर्वज्ञता को और तीर्थंकर सर्वज्ञप्रभु हितोपदेशता को पाते हैं।

प्र.-3799 जन्म जरा मृत्यु किसे कहते हैं?

उत्तर- प्राणों के संयोग को जन्म, प्राणों के शिथिल होने को जरा और वियोग को मरण कहते हैं।

प्र.-3800 इन तीनों का क्षय करने के लिये क्या करना चाहिये?

उत्तर- इनका क्षय करने के लिये सुतप करना चाहिये। जन्ममरण का अंत तो बाद में होगा किंतु वर्तमान में ही जरा का अंत हो जाता है। जैसे कोई वृद्ध कमजोरी से गमनागमन के लिये लाठी का, ठंडी से बचने को अग्नि और वस्त्रों का सहारा लेता है, अनेकबार भोजनपान ग्रहण करता है, बीमारी के कारण परिवार को परेशान कर डालता है, रोता धोता है, इलाज के लिये अस्पताल की शरण लेता है, रात्रिदिन हाय[2] करता है किंतु वृद्ध साधु साध्वियों के उपरोक्त कोई भी कार्य नहीं पाये जाते हैं। अतः दीक्षा का, तप का प्रत्यक्ष फल वृद्धापन तो नजर में नहीं आता है तो भविष्य में अवश्य ही समीचीन फल प्राप्त होगा जिसने जन्म लिया है उसका मरण अवश्य ही होगा यह शाश्वत नियम है पर मरण के बाद में जन्म लेना जरूरी नहीं है क्योंकि ध्यान से घातिअघातिया कर्मों को क्षय कर मोक्षपद पाने वालों को जन्म नहीं लेना पड़ेगा अतः इन तीनों के विनाश के लिये जप तप ध्यान करना नितांत आवश्यक है।

प्र.-3801 यह जन्म जरा मरण का दुःख किसके समान है?

उत्तर- जन्म जरा मरण का दुःख दुष्ट विषधर सर्प के समान है जैसे विषधर जिंदा प्राणियों को ही डसकर नष्ट कर देता है ऐसे ही ये जन्मादि प्राणियों को जीवितावस्था में ही तीव्र दुःख देते हैं सो इन दुःखों को आसपास में और अपने ही घर में देख सकते हैं। हाथ कंगन को आरसी क्या के अनुसार जो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है उसको समझने के लिये न किसी शास्त्र में देखना है न किसी से पूछना है किंतु स्वयं अनुभव करना है।

प्र.-3802 जब ये जन्म जरा मृत्यु के दुःख इस प्रकार हैं तो क्या करना चाहिये?

उत्तर- मोक्षसुख के साधनभूत आप्त के और रत्नत्रय के लक्षणों को भली प्रकार से सुनो समझो तथा अपने जीवन में उतारो, आत्मसात् करो, दिनचर्या में लाओ तब इन दुःखों से बच सकते हो अन्यथा नहीं।

प्र.-3803 दुःख हरने वाले साधनों को सुनने से, समझने से क्या आत्महित हो जायेगा?

उत्तर- भोजन के सामने देखो, सुनो, सूंघो, उसकी भावना भाओ तो क्या इतने से भूख शांत, तुष्टिपुष्टि हो जायेगी, स्वाद, आ जायेगा? नहीं, अतः भोजन के स्वाद आदि के लिये भोजन ग्रहण

करके पेट में रोककर रखने से, पाचन करने से, तुष्टि पुष्टि प्राप्त होगी, भूख प्यास शांत होगी ऐसे ही आप्त और रत्नत्रय को जानकर, धारण, पालनकर उनमें स्थिर होना चाहिये जिससे दुःख दूर होकर सिद्धपद की प्राप्ति होगी सो गाथा में सम्मं सुणइ संभावइ साहए भली प्रकार से तुम आप्त को सुनो, भावना करो, साधना करो ऐसा कहा है।

प्र.-3804 साध्य, साधक, साधना और साधना फल किसे कहते हैं?

उत्तर- व्यक्ति जिसे सिद्ध करना चाहता है उसे साध्य, सिद्ध करने के उपाय को साधन, साधना करने वाले व्यक्ति को साधक, जिसकी प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ कर रहे थे उसकी प्राप्ति को साधना का फल कहते हैं।

प्र.-3805 यहाँ साधना कहा है और आपने साध्य आदि चार क्यों ग्रहण किये?

उत्तर- आ. श्री ने ही साधना का नाम लेकर शेष तीनों को ग्रहण किया है। सो कैसे? साधना अपने आप स्वयं अपनी साधना कर नहीं सकती अतः साधना करने वाला व्यक्ति ही होना चाहिये तभी साधना की सिद्धि हो सकती है। साधक लक्ष्य के बिना साधना कर नहीं सकता, लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधना की जाती है सो साध्य भी कहा है। जब साधना कर रहा है तो फल प्राप्त होगा ही इसलिये साधना फल कहा है क्योंकि लोक में अत्यंत मंदबुद्धि व्यक्ति भी बिना प्रयोजन के प्रवृत्ति नहीं करता तब बुद्धिमान जीव बिना प्रयोजन के कैसे प्रवृत्ति कर सकता है? अतः जब साधना है तो साधना का फल भी है।

प्र.-3806 साधना करने वाला कौन होता है?

उत्तर- साधना करने वाला महाव्रती मुनि दिगंबर जैन साधु होता है।

प्र.-3807 साधु का मतलब सज्जन गृहस्थ होता है ऐसा अर्थ क्यों नहीं किया?

उत्तर- यद्यपि साधु का अर्थ सज्जन भी होता है और ये संसारमार्गी मोक्षमार्गी, भव्य अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि भी हो सकते हैं फिर भी यहाँ सकल संयमपूर्वक साधना करने वालों का प्रकरण होने से सकल संयमी, मुनि निर्ग्रंथ साधुओं को ग्रहण किया है अतः प्रयोजनवशात् लौकिक अर्थ का त्याग किया है।

नोटः- यहाँतक 3807 प्रश्नोत्तरों में 133वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 134वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यग्दर्शन का प्रभाव

किं बहुणा हो देविंदाहिंद णरिंदगणहरिंदेहिं।

पुज्जापरमप्पा जे तं जाण पहाव सम्मगुणं।।134।।

किं बहुना अहो देवेन्द्राहीन्द्रनरेन्द्रगणधरेन्द्रैः।

पूज्याः परमात्मानो ये तज्जानीहि प्रभावसम्यक्त्वगुणम्।।

हो अहो! **बहुणा** बहुत कहने से **किं** क्या **जे** जो **परमप्पा** वह परमात्मा **देविंदाहिंद** देवेंद्र नागेंद्र तथा मध्य के व्यंतरेंद्र ज्योतिषेंद्र **णरिंदगणहरिंदेहिं** नरेंद्र और गणधरेंद्रों से **पुज्जा** पूज्य है **तं** वह सब **सम्मगुणं पहाव** सम्यक्त्व गुण का प्रभाव **जाण** जानो।

प्र.-3808 यहाँ पर परमात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- यहाँ शरीर सहित, तीर्थंकर अरिहंत सयोगकेवली को परमात्मा कहते हैं।

प्र.-3809 यहाँ पर परमात्मपद से तीर्थंकर अरिहंत केवलि को क्यों ग्रहण किया?

उत्तर- गाथा में शतइंद्रों से पूज्य कहा है अतः तीर्थंकर अरिहंतकेवलि परमात्मा को ग्रहण किया

है। ये इंद्रगण केवल तीर्थंकर अरिहंत की धर्मसभा में और कल्याणकों में एकत्रित होते हैं, शेष केवलियों की धर्मसभा में जब इकट्ठे नहीं होते हैं तब इनको कैसे पूजेंगे?

प्र.-3810 परमात्मपद की प्राप्ति किससे होती है या किसके प्रभाव से होती है?

उत्तर- परमात्मा की प्राप्ति शुक्लध्यान से घातियाकर्मों के क्षय या सम्यक्त्व के प्रभाव से होती है।

प्र.-3811 देवेंद्र एवं अहींद्र किसे कहते हैं और इनके कितने भेद हैं?

उत्तर- देवों के स्वामी को इंद्र कहते हैं और वैमानिकों से लेकर भवनवासी पर्यंत इंद्रों के 98 भेद हैं।

प्र.-3812 नरेंद्र किसे कहते हैं?

उत्तर- कर्मभूमिज आर्य मलेच्छ मनुष्यों के स्वामी को नरेंद्र कहते हैं। यहाँ नरेंद्र पद से देशरक्षक छोटे बड़े सभी राजनेताओं को ग्रहण कर लेना चाहिये।

प्र.-3813 सकलचक्री और अर्धचक्री किस क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- सकलचक्री और अर्धचक्री नारायण प्रतिनारायण आर्यखंड में ही क्षत्रियकुलों में उत्पन्न होते हैं।

प्र.-3814 गणेंद्र किसे कहते हैं?

उत्तर- चतुर्विध मुनिसंघ के स्वामी अनेक ऋद्धियों से संपन्न चरमशरीरी गणधर प्रभु को गणेंद्र कहते हैं।

प्र.-3815 हरींद्र किसे कहते हैं?

उत्तर- तिर्यंचों के राजा शेर को हरींद्र कहते हैं।

प्र.-3816 इंद्र किसे कहते हैं, कितने और कौन कौन हैं तथा किस गति में होते हैं?

उत्तर- स्वामी को, अधिकारी को या किसी शुभाशुभ कार्य करने के लिये आज्ञाप्रदान करने वाले को इंद्र कहते हैं। ये इंद्र संख्या में 100 होते हैं सो ये 3 गतियों में पाये जाते हैं। **इंद सद वंदियाणं** पंचा. मंगलाचरण।

भवणालय चालीसा व्यंतर देवाण होंति बतीसा।
कप्पामर चउवीसा चंदो सूरो णरो तिरियो।।

अर्थः- भवनवासियों के 20 इंद्र, 20 प्रतींद्र = 40। व्यंतरों के 16 इंद्र, 16 प्रतींद्र = 32। वैमानिक देवों के 12 इंद्र, 12 प्रतींद्र = 24। चंद्रमा 1, सूर्य 1, मनुष्यों का राजा 1, तिर्यंचों का राजा सिंह। इस प्रकार 100 इंद्रों के द्वारा परमात्मा तीर्थंकर पूज्य होते हैं। इन तीन गतियों में स्वामीसेवक, राजाप्रजा का व्यवहार देखा जाता है।

प्र.-3817 वैमानिक देवों का अर्थ कहाँ से लिया है, वैमानिकों के कितने इंद्र होते हैं?

उत्तर- देविंद यह वैमानिक देवों के 24 इंद्रों का वाचक हैं। आदि के 4 विमानों में 4 इंद्र और 4 प्रतींद्र अंत के 4 विमानों में 4 इंद्र और 4 प्रतींद्र और मध्य के आठ विमानों में 4 इंद्र और 4 प्रतींद्र।

प्र.-3818 भवनवासी देवों को कहाँ से लिया है तथा इनके कितने इंद्र होते हैं?

उत्तर- **"आहिंद"** धरणेंद्र पद का वाचक है इनके दश भेद होने से 20 इंद्र तथा 20 प्रतींद्र होते हैं।

प्र.-3819 गाथा में व्यंतरों और ज्योतिषियों को क्यों ग्रहण नहीं किया है?

उत्तर- यद्यपि गाथा में आदि और अंत का या नीचे और ऊपर का नाम ग्रहण करने से मध्य के नाम अपने आप ही आ जाते हैं इसलिये मध्य के व्यंतर और ज्योतिषयों के इंद्रों को ग्रहण कर लिया है।

प्र.-3820 मनुष्यों के राजा नरेंद्र से पृथक् गणधरों को अलग से क्यों ग्रहण किया?

उत्तर- प्रजा के राजा सर्वेसर्वा अधिकारी हैं तो मोक्षमार्गी मुनियों के राजा गणधरदेव हैं। राजा प्रजा की और लौकिक दिनचर्याओं की सुरक्षा करते हैं तो गणधर लोकोत्तर जीवन जीने की कला और मोक्षमार्ग को बताते हैं धर्म के स्वामी, रक्षक हैं अतः गाथा में गणधरों को अलग से ग्रहण किया है।

प्र.-3821 ग्रंथकारजी ने तिर्यंचों का वर्णन नहीं किया फिर आप क्यों कर रहे हैं?

उत्तर- पं. का. के मंगलाचरण में **इंद सद वंदियाणं, चंदो सूरो णरो तिरियो** इनमें तिर्यंचों के इंद्र सिंह को लिया है। **हरिंदेहिं-** हरींद्र से सिंह अर्थ किया है। तिर्यंचों के राजा समर्थ पशुपक्षियों को ले लेना चाहिये।

प्र.-3822 इन लौकिक पूज्यों के द्वारा पूजा आदर किसके प्रभाव से प्राप्त होती है?

उत्तर- सब वैभव, परिवार, आदरसम्मान प्राप्त होना सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय का प्रभाव समझना चाहिये।

प्र.-3823 ''किंबहुणा हो'' गाथा में ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे किसी के एक ही पुत्र हो तो वह उसकी प्रशंसा करता हुआ भी तृप्त नहीं हो पाता ऐसे ही ग्रंथ कर्ता इस रत्नत्रय की कहाँ तक प्रशंसा करें इसीसे संसार में सभी उत्तम वस्तुएं प्राप्त होती हैं जैसे जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है तो क्या उससे इंद्रियसुख की, लौकिक उत्तमपदों की प्राप्ति नहीं हो सकती है?

नोटः- यहाँतक 3823 प्रश्नोत्तरों में 134वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 135वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

दुष्कर्मी का भोजन

भुत्तो अयोगुलोसइयो तत्तो अग्गिसिखोवमो यज्जे।
भुंजइ जे दुस्सीला रत्तपिंडं असंजतो।।135।।

भुक्तः अयोगोल सदृशस्तप्तः अग्निशिखोपमः यज्ञे।
भुनक्तिः यः दुश्शीलः रक्तपिंडः असंयतः।।

जो जो **दुस्सीला** कुत्सित स्वभाव वाला मनुष्य **यज्जे** यज्ञ में **अग्गिसिखोवमो** अग्निशिखावत् **तत्तो** तप्त **अयोगुलोसइयो** लोहे के गोले के समान **रत्तपिंडं** रक्तपिंड मांस को **भुंजइ** खाता है वह **असंजतो** असंयमी होता है।

प्र.-3824 दुःशील मनुष्य किसे कहते हैं?

उत्तर- गलत आदत वाले, मिथ्यादृष्टि, अत्याचारी, अनाचारी, दुराचारी मनुष्य को दुःशील मनुष्य कहते हैं।

प्र.-3825 यज्ञ किसे कहते हैं?

उत्तर- लोक में अहिंसावादी ईंट मिट्टी, तांबे, लोहे के बने चोकोर त्रिकोण गोल कुंड में अग्नि जलाकर मंत्रों के द्वारा घी कपूर आदि समिधा को समर्पित करते हैं और मांसाहारी मनुष्य पशुओं के कलेजों को हवनकुंड में डालकर यज्ञ करते हैं सो यहाँ आ. ने मांसाहारियों के द्वारा किये जाने वाले हवन की बात कही है।

प्र.-3826 मांसपिंड किसके समान होता है?

उत्तर- अग्नि में पिघले हुये लोहे के पानी के रंग के समान मांसपिंड होता है।

प्र.-3827 मांसाहारी व्यक्ति किस प्रकार के असंयम वाला होता है?

उत्तर- मांसाहारी रक्तपायी असंयमी मनुष्य अनंतानुंबधी कषायोदय से उत्पन्न असंयमवाला होता है।

प्र.-3828 रक्तपायी मांसाहारी व्यक्ति को असयंमी क्यों कहा?

उत्तर- रक्तपिंड और मांस में संख्यात, असंख्यात त्रसजीव उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। इन क्षुद्रप्राणियों ने अपना न कुछ बिगाड़ा है, न अपराध किया है अतः इन निरपराधियों का मारक महान अपराधी को मांस भक्षी को आचार्य श्री ने इस संसारमार्गी, क्रूर, दुष्टकर्मा, नीचगोत्री एवं आचरण से मलेच्छ असंयमी कहा है।

नोटः- यहाँतक 3828 प्रश्नोत्तरों में 135वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 136वीं गाथा का अर्थ प्रारंभ करते हैं।

कालदोष का फल

उवसमई सम्मत्तं मिच्छत्तबलेण पेल्लए तस्स।
परिवट्टंति कसाया अवसप्पिणि कालदोसेण।।136।।

उपशमकं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वबलेन प्रेरयति तस्य।
प्रवर्तन्ते ही कषायाः अवसर्पिणीकालदोषेण।।

अवसप्पिणि अवसर्पिणी **कालदोसेण** कालदोष के कारण **मिच्छत्तबलेण** मिथ्यात्व के बल से **तस्स** उस **उवसमई** उपशम **सम्मत्तं** सम्यक्त्व को **पेल्लए** नष्टकर **कसाया** अनंतानुबंधी आदि सभी कषायें **परिवट्टंति** प्रवर्तित हो जातीं हैं।

प्र.-3829 अवसर्पिणीकाल किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस काल में कर्मभूमिज आर्य मलेच्छ मनुष्य और तिर्यंचों की आयु, अवगहना, ज्ञान का क्षयोपशम, शारीरिकबल ध्यानाध्ययनादि घटते जायें उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं।

प्र.-3830 उत्सर्पिणीकाल किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस काल में कर्मभूमिज आर्य मलेच्छ मनुष्य और तिर्यंचों की आयु अवगाहना, ज्ञान का क्षयोपशम, शारीरिकबल ध्यानाध्ययनादि बढ़ते जायें उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

प्र.-3831 इन उभय कालों के दोष से या गुण से ये कार्य होते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अपने स्वयं की हानि को दोष और वृद्धि को गुण कहते हैं। इन्हीं दोष और गुणों का बहिरंगकारण काल है अतः कालदोष के कारण संसार में अशुभ और शुभ कार्य होते रहते हैं ऐसा कहा है।

प्र.-3832 ये दोनों काल क्या कालद्रव्य के भेद हैं?

उत्तर- नहीं, ये अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीकाल कालद्रव्य के भेद नहीं हैं किंतु कर्मभूमिज मनुष्य तिर्यंचों की दिनचर्या की हानि वृद्धि के भेद हैं। यदि ये दोनों काल कालद्रव्य के भेद माने जायें तो कालद्रव्य में अशुद्ध परिणमन होने से पुनः कालद्रव्य को शुद्ध होने के लिए ध्यानसाधना, तपश्चरण करना पड़ेगा कि जिससे वह शुद्धावस्था को प्राप्त होवे? अतः ये दोनों काल कालद्रव्य के भेद न होकर जीवक्रिया के भेद हैं।

प्र.-3833 मिथ्यात्व के साथ में ''बलेण'' यह विशेषण क्यों लगाया?

उत्तर- जैसे अखाड़े में कुश्ती लड़ने वाले पहलवानों में से युक्तिबल, स्फूर्तिवाला जीत जाता है और दूसरा हार जाता है। यद्यपि हाथी में ताकत ज्यादा है पर युक्ति और स्फूर्ति न होने से सिंह से मारा जाता है ऐसे ही जब सम्यग्दृष्टि जीव हीन पुरुषार्थी होता है तब मिथ्यात्व बल पूर्वक सम्यग्दर्शन को नष्ट कर देता है।

प्र.-3834 सम्यक्त्व के नाश होने पर किसकी प्रवृत्ति होती है?

उत्तर- जैसे दीपक के बुझते ही स्वतः अंधकार आ जाता है ऐसे ही सम्यक्त्व के नाश होते ही मिथ्यात्व आ जाता है तथा पुनः अनंतानुबंधी क्रोधादि कषायों की प्रवृत्ति होने लग जाती है।

प्र.-3835 गाथा में ''मिच्छत्तबलेण पेल्लए'' ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- मिथ्यात्वोदय से सम्यग्दर्शन तथा अनंतानुबंधी कषायोदय से सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र का घात होता है। यदि इन प्रबल कर्मोदय से रत्नत्रय का नाश नहीं होता है तो ''पेल्लए'' का प्रयोग क्यों करते?

प्र.-3836 मिथ्यात्व किस सम्यग्दर्शन को पेल देता है?

उत्तर- उपशम सम्यग्दर्शन और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन को मिथ्यात्व कर्म पेलकर नष्ट कर देता है।

प्र.-3837 जब मिथ्यात्व की बंध उदय व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होती है तो वह सम्यग्दर्शन का विनाश कैसे कर सकता है?

उत्तर- सामान्यतया सर्वकाल मिथ्यात्व का आश्रवबंध और उदय व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान में हो जाती है यह सत्य है पर जरा सोचो जब मिथ्यात्व सम्यक्त्व का विनाश करता है ऐसा आचार्यों ने कहा है और ये दो सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक होते हैं तब इनका घात कैसे होगा? अतः विशेष परस्थितियों में पहले से सातवें गुणस्थान तक मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय का समय तथा सम्यक्त्व और चारित्र के विनाश का समय एक ही होने से एक पर्याय के उत्पाद होने पर दूसरी पर्याय का विनाश हो जाता है अतः चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक इनका उदय हो सकता है तभी तो सम्यक्त्व और सम्यक्चारित्र की विराधना कर सकता है, अन्यथा नहीं।

प्र.-3838 ये पाँचों सर्वघातीप्रकृतियां क्या क्षायिक सम्यग्दर्शन का घात कर सकती हैं?

उत्तर- क्षायिक सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी का बंध उदय सत्त्व न होने से क्या विनाश करेंगीं?

प्र.-3839 प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन समाप्त होकर क्या मिथ्यात्व को ही प्राप्त होता है?

उत्तर- सर्वप्रथम प्राप्त होने वाला उपशम सम्यग्दर्शन विनाश को अवश्य ही प्राप्त होता है पर मिथ्यात्व को प्राप्त होगा यह नियम नहीं है। उपशम सम्यक्त्व के काल में सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से वेदकसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से तीसरे गुणस्थान वाला, अनंतानुबंधी क्रोधादि चार में से किसी एक का उदय आ जाये तो दूसरे गुणस्थान वाला और मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हो जाता है अतः अनादि मिथ्यदृष्टि श्रीवर्धनकुमार आदि 923 भरतराजपुत्र प्रथम बार ही उपशम सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर, वेदकसम्यग्दृष्टि हो श्री भगवान आदिनाथजी के समवशरण में जाकर दिगंबर जैन मुनिदीक्षा ले क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो श्रेणी आरोहण कर कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया अतः मिथ्यात्व में जाने का सर्वथा नियम नहीं है।

प्र.-3840 अवसर्पिणी कालदोष से उपशम सम्यग्दर्शन नष्ट होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यह अवसर्पिणीकाल चल रहा है अतः इस का नाम लिया है ऐसे ही उत्सर्पिणी काल में भी जीव उपशम और वेदकसम्यक्त्व से मिथ्यात्व को प्राप्त होते हैं ऐसा समझना चाहिये।

प्र.-3841 ''मिच्छत्तबलेण'' मिथ्यात्व के बल से ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- विनाश करने वाला हमेशा समर्थ होता है क्योंकि कमजोर व्यक्ति समर्थ पर हमला नहीं कर सकता है, क्या गीदड़ ने कभी सिंह पर आक्रमण किया है? क्या शिकार खेला है? अतः यहाँ मिथ्यात्व बलवान है और सम्यग्दर्शन कमजोर है तभी मिथ्यात्व सम्यक्त्व को नाश कर देता है, पेल देता है ऐसा कहा है।

नोटः- यहाँतक 3841 प्रश्नोत्तरों में 136वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 137वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

श्रावकों की 53 क्रियायें

गुण वय तव सम पडिमा दाणं जलगालणं अणत्थमियं।

दंसण णाण चरित्तं किरिया तेवण्ण सावया भणिया।।137।।

गुणः व्रतः तपः सम प्रतिमा दानं जलगालनं अनस्तमितं।

दर्शन ज्ञान चारित्रं क्रियास्त्रिपंचाशत् श्रावकीयाः भणिताः।।

गुणवयतवसमपडिमादाणं 8 गुण, 12 व्रत, 12 तप, 1 समभाव, 11 प्रतिमा, 4 दान, **जलगालणं** 1 पानी छानना **अणत्थमियं** 1 रात्रि भोजनत्याग **दंसणणाण चरित्तं** 3 रत्नत्रय ये **सावया** श्रावकों की **तेवण्णकिरिया** 53 क्रियाएं **भणिया** कहीं हैं।

प्र.-3842 श्रावक श्राविकाओं की 53 क्रियायें कौन कौन सी हैं?

उत्तर- 8 मूलगुण, 12 व्रत, 12 तप, 1 समताभाव, 11 प्रतिमायें, 4 दान, 1 पानी छानकर पीना, 1 रात्रिभोजन त्याग, 3 रत्नत्रय ये श्रावक श्राविकाओं की 53 क्रियायें जिनेंद्र भगवान ने उपासकाध्ययनांग में कहीं हैं।

प्र.-3843 गाथा में श्रावकों की क्रियायें कही हैं सो आपने श्राविकाओं की क्यों कहीं?

उत्तर- **ऐसो अज्जाणंपिआ सामाचारो जहक्खिओ पुव्वं।**
सव्वंह्मि अहोरत्ते विभासिदव्वो जहा जोग्गं।।187।। समा. अ 4 मू.चा.
एवंविधाणचरियं चरितं जे साधवो य अज्जाओ।
ते जगपुज्जं कित्तिं सुहं च लद्धूण सिज्झंति।।196।। समा. अ 4 मू.चा.

अर्थः- पूर्व में जैसी विधि मुनियों की कही है वैसी ही यह समाचारविधि आर्यिकाओं को भी अहोरात्रि में यथायोग्य करना चाहिये। उपर्युक्त विधान रूप चर्या का जो साधु और आर्यिकायें आचरण करते हैं वे जगत में पूजा को, यश को और सुख को प्राप्त कर सिद्ध होते हैं। जैसे तीर्थंकरों ने आर्यिकाओं का स्वतंत्र कथन न कर मुनियों के समान कहकर प्रतिपादन किया है और जहाँ पर कुछ अंतर है उसका स्वतंत्र प्रतिपादन किया है, ठीक ऐसे ही श्रावकों के समान ही श्राविकाओं की क्रियाओं का कथन समझना चाहिये यदि ऐसा न माना जाय तो आपको ही बताना चाहिए कि आर्यिकाओं, क्षुल्लिकाओं और गृहस्थ प्रतिमाधारिणी श्राविकाओं की कौन सी क्रियायें होती हैं या इनकी कोई दिनचर्या ही नहीं होती है? **सलिंगं वा समानं लिंगं सलिंगं व्रतादिकं कुलं वा तद्विद्यते यस्याः सा सलिंगनी तां अथवा सह लिंगेन वर्तते इति सलिंगा तां स्वदर्शनेऽन्यदर्शने वा प्रव्रजितां।।182।। अर्थः-** समान लिंग व्रतादि या कुल जिसके है वह सलिंगी है या लिंग सहित स्त्री सलिंगनी है। वे चाहे अपने संप्रदाय की आर्यिका आदि हो या अन्य संप्रदाय की। यह कथन मू.चा. का होने से स्वसमय वक्तव्यता है तथा पाहुड ग्रंथों का कथन दृष्टिवाद अंग का होने से तदुभय वक्तव्य का है। जिसमें मिथ्यामतों का खंडन कर स्वमत का मंडन किया जाता है।

प्र.-3844 परंपरागत जैनों को मद्य मांस मधु का त्याग क्यों कराया?

उत्तर- परंपरा से सर्वत्र जैनों में जब इन 3 मकारों का प्रयोग होता ही नहीं है फिर इनके त्याग का मतलब है कि जिन भोजन सामग्रियों में मद्य मांस मधुवत् रूप रस गंध स्पर्श व्यक्त हो गया या आभास होने लगा है तथा लोक में संदेह, बदनामी होने की संभावना है तो उन भोज्य पदार्थों का त्याग करना चाहिये।

प्र.-3845 तो फिर आचार्यों ने इनके त्याग को मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर- जिन जातियों में, म्लेच्छों में, वनवासियों में और त्रिवर्णों में इनका प्रयोग करते थे उनको जैनधर्म में दीक्षित करने के लिये इनका त्याग कराया है। जब जैन गर्भ जन्म से ही मिथ्यात्व,

अन्याय, अभक्ष्य के, संकल्पी हिंसा के असंस्कारी हैं तब उन्हें क्या त्याग कराना? किंतु इस समय नामधारी जैन घरों में, होटलों में, विवाहादि में, पार्टियों में, मित्रों के साथ में खानेपीने लगे तब इनका त्याग कराना पड़ता है किंतु जब इनका त्याग नहीं करते तब बड़ा दुःख होता है कि इन्हें जैन कहें या अजैन, जंगली कहें या शहरी, आर्य कहें या मलेच्छादि बिचारे इन जैनों ने कुसंगति के कारण अपना जीवन कैसे कितना बिगाड़ लिया है ये अहित का मार्ग कैसे छोड़ेंगे? क्या उपाय है? ये बड़े दुस्साहस से, निर्भीकता से कह देते हैं कि हमसे नहीं पलेगा, न हम इनके त्याग का नियम ले सकते हैं अतः अब इन जैनों को कल्याण का मार्ग कौन बतायेगा?

प्र.-3846 पाँच उदुम्बर फलों के त्याग को मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर- इन पाँच उदुम्बर फलों में त्रसजीव प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। इनको खाना त्रसजीवों को खाना है रस रक्त मांस आदि वात पित्त कफ को खाना है महान हिंसा के कारण होने से इनके त्याग को मूलगुण कहा है।

प्र.-3847 इनका त्याग किनको कराया और क्या ये पाँच ही फल होते हैं?

उत्तर- अजैन, मलेच्छादि जातियां और मलेच्छाचरण वाले मनुष्यों को इनका त्याग कराया है, ये पाँच फल केवल उपलक्षण रूप है, इनके समान जितने भी हरे सूखे फल हैं उन सभी का त्याग करना चाहिये।

प्र.-3848 रात्रि में भोजन करने का त्याग क्यों कराया और इसे मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर- रात्रिभोजन में अनेक जीवों की विराधना होने से, मांस रक्तादि धातु उपधातु, मलमूत्र का खानेपीने में दोष लगने से मायाकषाय, लोभकषाय, आर्त रौद्रध्यान, शरीर के प्रति राग होने से, पापोदय से खाने का परिणाम होने से, पापबंध का कारण होने से, तन मन धन और धर्म की हानि होने से, अनिष्ट का साधनादि कारणों से रात्रिभोजन के त्याग को मूलगुण कहा है क्योंकि मूलगुण मोक्षमार्ग के रक्षक हैं तो रात्रिभोजन भक्षक है। सूर्य की किरणों में प्रकाश और प्रताप होने से इतनी जीवराशियां उत्पन्न नहीं हो पातीं किंतु सूर्यास्त होने पर वे सारी जीव राशियां उत्पन्न हो जातीं हैं और वे दृष्टिगोचर अगोचर त्रसजीव भोजनपान में मिलकर मर जाते हैं तथा रात्रिभोजी जहरीले जंतुओं को खाने से बीमार पड़ जाते हैं, यहाँ तक कि मर भी जाते हैं अतः रात्रि में भोजन करने का त्याग करने को मूलगुण कहा है। इसके बिना जैनी नहीं है।

प्र.-3849 आश्रव बंध के समान रात्रिभोजन और दिन के भोजन में अंतर क्यों?

उत्तर- आपका कहना सत्य है कि आश्रव बंध के लिये रात्रिदिन का भेद नहीं है। आत्म प्रदेशों में कंपन होते ही आश्रव बंध होगा पर जैसा समिति का पालन दिन में होता है, कषायें मंद होती है उससे ज्यादा रात्रि में असावधानी, कषायों की तीव्रता, भोजन के बाद निद्रा का समय निकट होने से पाप की वृद्धि, स्वास्थ्य की हानि होती है, रात्रिभोजन से जीव ज्यादा मरते हैं। यद्यपि सामान्यतया आश्रव बंध में अंतर नहीं होने पर भी क.का. **समयपबद्धं बंधदि जोगवसादो दु विसरित्थं ।।4।।** योगों की चंचलता निश्चलता में अंतर होने से समयप्रबद्ध की मात्रा में अंतर हो जाता है अतः रात्रिभोजन और दिवाभोजन में अंतर स्पष्ट है।

प्र.-3850 रात्रिभोजन करने में कौन से जीवों की हिंसा होती है?

उत्तर- रात्रि के भोजन में जो कीड़े पतंगे आदि जीव आकर गिरकर मरते हैं वे अपने ही सगेसंबंधी परिवार के सदस्यगण हैं ऐसा भोजन करना ही इनका मांसभक्षण करना है। जैनधर्म में हमेशा से रात्रिभोजन करने वालों को मोक्षमार्ग से बाहर कहकर मिथ्यादृष्टि अजैन, अनाज्ञाकारी कहा है इसलिए इसके सेवन से त्रसजीवों की हिंसा, संकल्पी हिंसा होती है। हिंदू साहित्य में भी सूर्यास्त होने पर भोजन करना मांस खाना और पानी पीना रक्त पीना कहा है इसके सभी व्रत, उपवास,

तीर्थयात्रा, जप तप व्यर्थ हो जाते हैं।

प्र.-3851 पंचपरमेष्ठियों की भक्ति करने को मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर- जो जैसा बनना चाहता है वह उसकी भक्ति करें तो कालांतर में वह वैसा ही बन जायेगा इस नियमानुसार मोक्षमार्गी बनने को मोक्षमार्गियों की भक्ति करना चाहिये अतः इसे मूलगुण कहा है।

प्र.-3852 हम भगवान बनने के लिये भगवान की भक्ति करें तो शेष की क्यों करें?

उत्तर- सत्य है कि भगवान बनने के लिये **"तद्गुणलब्धये"** भगवान की ही भक्ति करना चाहिये जिस उपाय से वो भगवान बने हैं यदि वह उपाय नहीं अपनाओगे तो भगवान कैसे बनोगे? अतः बीजभूत गुरुओं की, आर्यिकाओं की और शेष धर्मायतनों की परम प्रीति से भक्ति करना चाहिये कारण साध्य सिद्धि के लिये साधन अपनाना जरूरी है इसलिये भगवान बनने के लिये गुरुओं की भक्ति से भगवान बनने में कदाचित् देर हो सकती है, अंधेर नहीं। **पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुःखपरिमोक्खं**।।201।। प्र.सा. चा.चू. यदि दुःखों से छूटना चाहते हो तो श्रमणपद ग्रहण करो। साधक ही साध्य को प्राप्त करता है।

प्र.-3853 भक्त किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्गस्थ साधकों के गुणगान करने वाले को, आरती पूजा सामग्री अर्पण कर्ता को, उनके गुणों का सर्वत्र प्रकाशक को, नमस्कारकर्ता भक्त कहते हैं।

प्र.-3854 भक्ति के भेद, नाम और लक्षण क्या क्या है?

उत्तर- तीन भेद हैं। **नामः- द्रव्यभक्तिः-** वचन और काय से वचनोच्चारण तथा सामग्री अर्पण करने को द्रव्यभक्ति, **भावभक्तिः-** विषयकषायों के, ख्यातिपूजालाभ के त्याग पूर्वक समर्पित होने को या निर्विकल्प उभयश्रेणी रूप परिणामों को भावभक्ति, **अंधभक्तिः-** विवेकहीन भक्ति को अंधभक्ति कहते हैं।

प्र.-3855 मोक्षमार्ग में कौन सी भक्ति ग्राह्य है और जैन कौन सी भक्ति करते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग में भावभक्ति और भावभक्ति सहित द्रव्यभक्ति ग्राह्य है। ये दोनों ही भक्ति जैन करते हैं।

प्र.-3856 जैन अंधभक्ति क्यों नहीं करते हैं?

उत्तर- मोक्ष के इच्छुक सम्यक्श्रद्धावान, विवेकवान और क्रियावान होने से जैन अंधभक्ति नहीं करते हैं किंतु आजकल पंथवादी यथार्थ जैन न होने से ही पंथ की भक्ति करते हैं, देव शास्त्र गुरु की नहीं।

प्र.-3857 जीवदया नामक मूलगुण किसे कहते हैं?

उत्तर- षट्काय के जीवों की रक्षा को, अनुकंपा को, अभयदान देने को जीवदया मूलगुण कहते हैं।

प्र.-3858 जब सभी प्राणी आयु के क्षय से मरते हैं तो फिर जीवदया क्यों करना?

उत्तर- सभी प्राणी अपनी अपनी आयु कर्म के उदय और उदीरणा क्षय से मृत्यु को प्राप्त होते हैं सो ठीक है पर क्या अपने को मालुम है कि इसकी मृत्यु का समय है या नहीं। अपन तो जीवदया, अनुकंपा करके अपने धर्म का पालन करें क्योंकि आत्मरक्षा चाहने वालों को दूसरों की रक्षा करना ही चाहिये। आयु कर्म के उदय क्षय से मरने वाले को बचाने वाला कोई औषधि मंत्र तंत्र नहीं है फिर भी अभयदान दाता अपने पाप कर्मों को काटकर पुण्य बढ़ा लेता है और आयु कर्म की उदीरणा क्षय से मरने वाले के प्रति अपना पुरुषार्थ, अभयदान सार्थक हो जायेगा क्योंकि विरुद्ध कारण के अभाव में तथा अनुकूल साधनों के सद्भाव में जीव उदीरणा पूर्वक अकाल मृत्यु से बच जाता है इस कारण जीवदया को मूलगुण कहा है।

प्र.-3859 पानी छानकर पीने को मूलगुण क्यों कहा?

उत्तर- पानी छानकर पीने से और छानकर भोजन बनाने से असंख्यात जीवों की रक्षा होती है केवलियों ने अनछने पानी की एक बूंद में असंख्यातजीव तथा वैज्ञानिकों ने 36450 जीव बताये हैं तो जितना पानी खानेपीने के काम में लेते हो वह अवधि मनःपर्ययज्ञान का विषय होने से असंख्यात है अतः पानी छानकर खानेपीने से इतने जीवों की तथा अपने तन मन धन धर्म की भी रक्षा होती है। पानी में रहने वाले जहरीले कीटाणुओं को खानेपीने से स्वास्थ्य बिगड़ने पर कई बीमारियां पैदा हो रहीं हैं उन बीमारियों को दूर करने के लिये दवाई भी काम नहीं करती है इसलिए स्वपर रक्षार्थ पानी छानकर पीना मूलगुण कहा है।

प्र.-3860 छने पानी को पीने में तथा छने पानी से भोजन बनाने में क्या दोष हैं?

उत्तर- विधि पूर्वक छाने गये पानी को एक मुहूर्त के बाद अनछना ही समझना चाहिये तथा छाने गये पानी की जीवाणी यथास्थान जलाशय में नहीं पहुंचायी तो जीव रक्षा न होने से वह पानी अनछना ही है। अनछने पानी को पीने से जिंदा जीवों के पीना है और अनछने पानी से भोजन बनाकर जिंदा जीवों को जलाकर मांस पकाकर खाना है अतः अमर्यादित छनेपानी से बनाया गया भोजनपान करना ही दोष है।

प्र.-3861 पानी छानकर और छने पानी में क्या अंतर है?

उत्तर- आगमानुसार पानी छानकर यथास्थान जीवाणी पहुंचा कर अंतर्मुहूर्त पर्यंत काम में ले लेना पानी छानकर प्रयोग करना है और मर्यादा के बाद भी प्रयोग करना छने पानी का प्रयोग करना है या विधिवत् छाने गये पानी में अंतर्मुहूर्त काल तक त्रसजीव न होने से प्रासुकसचित्त है तथा मर्यादा के बाहर छनेपानी में और अनछने पानी में त्रसजीव होने से अप्रासुकसचित्त है यही अंतर है।

प्र.-3862 छाना गया जल त्रसजीवों के बिना सचित्त कैसे?

उत्तर- छाने गये जल में त्रसजीव न होने की से प्रासुक है और जलकायिक जीव होने से सचित्त है।

प्र.-3863 केवल मद्य मांस मधु का त्याग करना चाहिये या कुछ विशेष अर्थ है?

उत्तर- मद्य मादक होने से पीने पर नशा चढ़ने के कारण कोई भी धर्मकार्य कर नहीं सकता अतः मद्य और मद्यवत् चाय, गांजा, भांग आदि मादक पदार्थों को त्यागना चाहिये। मांसवत् शरीरगत समस्त रक्त, नेत्र, किडनी आदि संख्यात असंख्यात त्रसजीवों का पिंड होने से इनका त्याग कराया है। मधु के समान थूंक, लार, जूंठा भोजन, मुँह से मुँह, जिह्वा से जिह्वा मिलाकर चुंबन करना आदि इन सबका त्याग कराया है जैसे मधु अनेक मक्खियों का वमन है वैसे ही थूंक लार पसीनादि भी मल है, वमन है यही विशेष अर्थ है।

प्र.-3864 उदुम्बर फलों का त्याग करने को क्यों कहा?

उत्तर- उदुम्बर फलों में कुछ त्रसजीव जिंदा रहते हैं, कुछ मरकर उसीमें सूख गये, उन त्रसजीवों के शरीर की सभी धातुउपधातुयें उन्हीं फलों में सूखी पड़ी रहतीं हैं इन्हीं फलों के समान जिन शाक सब्जी, फलों में त्रसजीव पाये जाते हैं उनके खाने से त्रसहिंसा का, मांसादि के भक्षण का, शिकार खेलने का दोष आता है अतः निर्दोष बनने के लिए उदुम्बर फलों का तथा इनके समान फलों का, भोजन का त्याग कराया है।

प्र.-3865 ''वय'' पद से किस को ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर- पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतों को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-3866 ये व्रत किसके समान हैं?

उत्तर- जैसे खेत के चारों तरफ कंटीले तार या घनी झाड़ियां लगा देने से पशुओं और मनुष्यों से

फसल की रक्षा होती है सो ऐसे ही इन व्रतों से मोक्षमार्ग और जीवन की रक्षा होती है। अतः ये व्रत बाड़ के समान हैं।

प्र.-3867 फसल की रक्षा पक्षियों से कैसे होती है?

उत्तर- खेत में चंचापुरुष खड़ा करने और स्वयं घूमने से पक्षियों से नष्ट होती हुई फसल की रक्षा होती है।

प्र.-3868 अणुव्रत किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अप्रत्याख्यानावरण के उदययाभाव में उत्पन्न हुये परिणामों को अणुव्रत कहते हैं। 2 और 5 भेद हैं। **दो भेदः-** द्रव्य और भावअणुव्रत। **पाँच भेदः-** अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्य और परिग्रहप्रमाणव्रत।

प्र.-3869 द्रव्याणुव्रत और भावाणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि सभी कषायोदय के सद्भाव में हिंसादि पापों के थोड़े त्याग को द्रव्य अणुव्रत और आदि की आठ कषायों के उदयाभाव में ग्रहण किये गये व्रतों को भावाणुव्रत कहते हैं।

प्र.-3870 द्रव्याणुव्रतों के बिना क्या भावाणुव्रत हो सकते हैं?

उत्तर- द्रव्याणुव्रत के बिना भावाणुव्रत कभी भी संभव नहीं है किंतु भावव्रत के बिना द्रव्यव्रत संभव हैं।

प्र.-3871 अणुव्रतों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- इन पाँच अणुव्रतों के स्वामी कर्मभूमिज तिर्यंच और मनुष्य श्रावक श्राविकायें हैं अथवा गृहत्यागी ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका और पहली से दशवीं प्रतिमा तक गृहत्यागी एवं गृहरागी ये दोनों स्वामी हैं।

प्र.-3872 हिंसा पाप किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि कषायोदय से उत्पन्न सप्रमाद त्रसस्थावर जीवों की विराधना करने को संकल्पीहिंसापाप और पर्याप्त सावधानी पूर्वक करने से आरंभी उद्योगी विरोधी हिंसापाप कहते हैं।

प्र.-3873 अहिंसाणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- संकल्प पूर्वक मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदना से मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य पदार्थों के त्याग पूर्वक निरपराधी त्रसजीवों की तथा निष्प्रयोजन स्थावर जीवों की रक्षा करने को अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

प्र.-3874 अपराधी जीवों की विराधना कर सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, अपराधी जीव अनेक प्रकार के होते हैं। जहाँ तक बन सके वहाँ तक प्रेम से शांति पर्वूक समाधान कर लेने को तथा अनेक प्रयास करने पर भी जब अनाड़ी नहीं मानता है तब लक्ष्मण रावण, पांडवों कौरववत् जैसे निर्णय हो वैसे ही करना चाहिये क्योंकि गृहस्थ विरोधीहिंसा के त्यागी नहीं होते हैं।

प्र.-3875 झूंठ पाप किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि कषायोदय से उत्पन्न प्रमाद सहित धर्मविध्वंसक, धर्म में, परिवार में, समाज में, देश आदि में संकट पैदा करने वाले प्राणघातक, हृदयविदारक वचनों को झूंठ पाप कहते हैं।

प्र.-3876 सत्याणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- निष्प्रमादी हो धर्मानुकूल स्व, पर और उभय के हितकारक प्राणरक्षक वचनोच्चारण करने को या धर्मविरुद्ध, पदविरुद्ध, प्राणघातक वचनोच्चारण के त्याग को सत्याणुव्रत कहते हैं।

प्र.-3877 सत्याणुव्रती मोक्षमार्गी नारद की तरह हास्यादि वचन बोल सकते हैं क्या?

उत्तर- नहीं बोल सकते हैं। नारद या नारदवत् असद्भाषी नरक में जाते हैं अतः नारदों की तरह वैरागी, आत्म कल्याण के इच्छुक, आश्रव बंध से भयभीत मोक्षमार्गी हास्यादि व्यंगात्मक वचन नहीं बोल सकते हैं। हाँ, जो बनावटी चोला धारणकर नाना कुकर्म करने वाले असत्भाषी नियम से कुमार्गगामी हैं, अधोगामी हैं।

प्र.-3878 चोरी पाप किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि कषायोदय से उत्पन्न सप्रमाद स्वशक्ति के छिपाने को, दूसरों की भोगोपभोग सामग्री के अपहरण करने को, बिना प्रसन्न मन के रोते चिल्लाते और भय दिखाकर मालिक से सामग्री छीन लेने को, छीन कर दूसरों को धर्मार्थ, भोगार्थ दे देने को, धर्मादा हड़पने को चोरीपाप कहते हैं।

प्र.-3879 अचौर्याणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद सहित विषयकषायों के त्याग पूर्वक धर्म, जातिकुल, समाज को कलंकित करने वाली ऐसी मालिक की बिना आज्ञा के रखी, गिरी, भूली वस्तुओं के त्याग को अचौर्याणुव्रत कहते हैं।

प्र.-3880 मालिक की आज्ञा से वस्तु ग्रहण करना भी चोरी पाप है क्या?

उत्तर- हाँ, यदि मालिक पर दबाव डालकर आज्ञा देने के लिए मजबूर किया है तो अवश्य ही चोरीपाप लगेगा। यदि मालिक बिना दबाव के, बिना भय के सहर्ष आज्ञा देता है तब न चोरी है, न चोरीपाप है।

प्र.-3881 अचौर्याणुव्रती मोक्षमार्गी किन्हींकी वस्तुओं को दूसरों को दे सकता है क्या?

उत्तर- नहीं, जब मोक्षमार्गी आत्मसुखार्थी स्वयं दुःखी नहीं होना चाहता है तो वह दूसरों में आकुलता, चिंता, घबराहट क्यों पैदा करेगा? जब कौवा अपनी भूंख मिटाने के लिए दूसरों का भोजन नहीं छीनता है किंतु भोजन मिलने पर अपने साथी कौवों को बुला बुलाकर खिलाता हुआ खाता है, सुखी करता हुआ सुखी होता है ऐसे ही मोक्षमार्गी समस्त प्राणियों को सुखी करता हुआ सुखी होता है अतः अणुव्रती मोक्षमार्गी किसी की वस्तु को न छिपाता है, न दूसरों को देता है, न लेता है, न धर्मादा करता है।

प्र.-3882 गुरु की आज्ञा नहीं मानना कौन सा पाप है?

उत्तर- अनाज्ञाकारी होना ही झूंठ और चोरीपाप है, मान एवं मायाकषाय है जो दीर्घसंसार का हेतु है।

प्र.-3883 कुशीलपाप/ मैथुनपाप किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि कषायोदय से उत्पन्न प्रमादपूर्वक परस्पर में स्त्रीपुरुषों का, स्त्री स्त्रियों का पुरुष पुरुषों का या अकेले का कामवासना के अंतस्ताप को, आचार विचारों को कुशील पाप मैथुन पाप कहते हैं। इस पाप को करने के लिये दो की, अनेकों की आवश्यकता होती है ऐसा नहीं है किंतु अकेला भी कर सकता है क्योंकि यह कर्म कषायों की तीव्रता से अकेला ही अपने हस्तपादादि बाह्य साधनों से अनंगक्रीड़ा भी कर लेता है जो शास्त्रों में पढ़ा जाता है और वर्तमान में देखा भी जा रहा है।

प्र.-3884 कुशीलपाप और मैथुनपाप में क्या अंतर है?

उत्तर- बिना पाणिग्रहण संस्कार वालों के साथ सुरतक्रीड़ा (रतिक्रीड़ा) करना कुशीलपाप है और पाणिग्रहण संस्कार वालों के साथ रमण करना मैथुनपाप है। इन दोनों में यही अंतर है।

प्र.-3885 अकेले की रतिक्रीड़ा को मैथुनपाप क्यों कहते हैं?

उत्तर- अंग और अंगी या योनि और लिंग के अलावा हाथ पैरादि ये दो हो ही गये सो इनके द्वारा कामवासना की पूर्ति दो से ही होती है एक से नहीं अतः कामक्रीड़ा दो से होती है सो यह ठीक ही कहा है।

प्र.-3886 तो क्या मन से कामक्रीड़ा करने के लिए दो की जरूरत होती है?

उत्तर- मानसिक कामक्रीड़ा में दो की आवश्यकता नहीं होती हैं केवल मन ही अपने आप में कामसुख का अनुभव कर लेता है। जैसे देवों में "मनः प्रवीचाराः॥8॥" त.सू. अ.4 मन से प्रवीचार कहा है।

प्र.-3887 ब्रह्मचर्याणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- पदानुसार प्रमाद के त्याग पूर्वक दंपति परस्पर में कामवासना को छोड़कर माँ बहन पुत्री या पिता भाई और पुत्र के समान एवं अविवाहित माता बहिन और छोटी बहिन या पिता भाई और छोटे भाई के समान देखने को, चर्या करने को ब्रह्मचर्याणुव्रत कहते हैं।

प्र.-3888 अविवाहित अपने से छोटों को छोटे भाईबहनवत् देखने को क्यों कहा?

उत्तर- जैसे महामुनिजन किसी राजवैभव को देखकर तप का फल मेरे को यह वैभव मिले ऐसा निदान कर, मरकर, स्वर्ग में जाकर आयु पूर्ण कर, मनुष्य हो, नारायण प्रतिनारायण पदवी को पाकर, भोगों में आसक्त हो, मरण कर, नरक निगोद के पात्र बनते हैं ऐसे ही अपने से छोटों को पुत्रपुत्रीवत् देखने से माँ बाप बनने का निदानआर्तध्यान कर लेने से महान अनर्थ होगा फिर बालब्रह्मचर्य व्रत कैसा? निदान आर्तध्यान न होकर धर्मध्यान बना रहे इस कारण छोटे भाई बहन के समान देखने को कहा है ।

प्र.-3889 परिग्रह के कारण कौन कौन हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से उत्पन्न प्रमाद पूर्वक स्वपरोभय पदार्थों के प्रति ममत्व और इसके कारणभूत सामग्री भी परिग्रह के कारण हैं क्योंकि इनका परस्पर में निमित्त नैमित्तिक संबंध है।

प्र.-3890 परिग्रहप्रमाणाणुव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद के त्याग पूर्वक बाह्याभ्यंतर भोगोपभोग सामग्री के प्रति किंचित् ममत्व के त्याग को तथा प्रयोजनभूत काम में आने वाली सामग्री को रखकर शेष का त्याग करने को परिग्रहप्रमाणाणुव्रत कहते हैं।

प्र.-3891 यह परिग्रहप्रमाणाणुव्रत क्यों धारण करना चाहिये?

उत्तर- आत्मशुद्धि, मननिश्चिंत, निर्भीकता, निर्लोभता, विश्वासपात्र बनने के लिये व्रत धारण करना चाहिये।

प्र.-3892 ये अणुव्रत कब तक के लिये धारण किये जाते हैं?

उत्तर- जबतक गृहस्थावस्था है, अप्रत्याख्यानावरणकषाय का उदयाभाव है तबतक के लिये ये पाँचों अणुव्रत धारण किये जाते हैं क्योंकि ये अणुव्रत गृहस्थों के यम रूप में होते हैं, नियमरूप में नहीं।

प्र.-3893 गृहस्थों के अणुव्रतों को नियमरूप में मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि गृहस्थों के ये व्रत नियमरूप में माने जायें तो मुनिदीक्षा के पहले ही इनके त्याग का प्रसंग आयेगा और गृहस्थावस्था में इनके त्याग से नारद रौद्रों की तरह भ्रष्टपने का भी प्रसंग आयेगा

अतः ये अणुव्रत गृहस्थों के नियमरूप न होकर जीवन पर्यंत यमरूप ही होते हैं।

प्र.-3894 गुणव्रत किसे कहते हैं, कितने भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अणुव्रतों के वृद्धिकर्ता व्रतों को गुणव्रत कहते हैं। 3 भेद हैंः- दिगव्रत, देशव्रत, अनर्थदंडत्याग व्रत।

प्र.-3895 दिगव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- जहाँ तक धर्मायतन हो उसके आगे के दशों दिशाओं के त्यागने को दिगव्रत कहते हैं।

प्र.-3896 देशव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- दिग्व्रत में की गयी मर्यादा में नित्यप्रति या कुछ समय के लिये धर्मपालन के लिये, विषयकषायों पर, मन पर विजय पाने के लिये कुछ देशादिक का त्याग करने को देशव्रत कहते हैं।

प्र.-3897 अनर्थदंड त्याग व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- जिन कार्यों के द्वारा निष्प्रयोजन कर्म का बंधन हो, कर्म का फल भोगना पड़े सो ऐसे कार्यों को अनर्थदंड कहते हैं तथा इनके त्याग को अनर्थदंड त्याग व्रत कहते हैं।

प्र.-3898 इस अनर्थदंड के भेद तथा नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अनर्थदण्ड के पाँच भेद हैं। नामः- पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, प्रमादचर्या और दुःश्रुति।

प्र.-3899 पापोपदेश अनर्थदंड तथा पापोपदेश अनर्थदण्ड त्याग व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद पूर्वक जिन वचनों से प्राणी विषयभोगों में, आरंभपरिग्रह में, पापकार्यों में फंस जाये उसे पापोपदेश अनर्थदंड और पापकारक वचनों के त्याग को पापोपदेश अनर्थदंडत्याग व्रत कहते हैं।

प्र.-3900 हिंसादान अनर्थदंड और हिंसादान अनर्थदंड त्यागव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवहिंसा के साधनों को देकर या लेकर ख्याति पूजा लाभ की भावना को हिंसादान अनर्थदंड और इसके त्याग कर देने को हिंसादान अनर्थदंड त्याग व्रत कहते हैं।

प्र.-3901 अपध्यान अनर्थदंड और अपध्यान अनर्थदंड त्याग व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद पूर्वक स्वपरोभय को कष्ट देने के लिये रागद्वेष के, विषयभोगों के, शृंगारालंकार के, लाभ हानि के अशिष्ट विचारों को अपध्यान अनर्थदंड और इनके त्याग को अपध्यान अनर्थदंड त्याग व्रत कहते हैं।

प्र.-3902 दुःश्रुति अनर्थदंड और दुःश्रुति अनर्थदंडत्याग व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद पूर्वक, दुर्भावना सहित, रागद्वेष मोह के उत्पादक वचनों के सुनने सुनाने, लिखने लिखाने, पढ़ने पढ़ाने को दुःश्रुति अनर्थदंड और इसके त्याग को दुःश्रुति अनर्थदंडत्याग व्रत कहते हैं।

प्र.-3903 प्रमादचर्या अनर्थदंड और प्रमादचर्या अनर्थदंडत्याग व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रमाद और विषयकषाय पूर्वक जीवहिंसाकारक चर्या करने को प्रमादचर्या अनर्थदंड और इसके त्याग को प्रमादचर्या अनर्थदण्ड त्याग व्रत कहते हैं।

प्र.-3904 अनर्थदंड के क्या इतने ही भेद हैं या और भी हैं?

उत्तर- इस अनर्थदंड के ये पाँच भेद केवल उपलक्षण हैं। इनके समान और भी अनेक भेद प्रभेद हैं।

प्र.-3905 ये अनर्थदंड किससे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- अपध्यान मन से, पापोपदेश वचन से या इंद्रियसंकेतों से, हिंसादान भिन्नाभिन्न बाह्य साधनों से, दुःश्रुति कानों के द्वारा अपशब्दों के सुनने सुनाने से, प्रमादचर्या काय से अनर्थदंड उत्पन्न होता है।

प्र.-3906 गुणव्रतों को क्यों धारण पालन किया जाता है?

उत्तर- अणुव्रती बनने के साथ ही गुणव्रतों का धारण पालन करना चाहिये अन्यथा मूलगुणों का, अणुव्रतों का पालन नहीं हो सकता है। कदाचित् पालन किया तो भी निर्दोष नहीं पल पायेंगे तथा सदोष पालन करने से मूलगुण, अणुव्रत भी नष्ट हो जायेंगे इसलिये गुणव्रतों का धारण पालन करना परम आवश्यक है।

प्र.-3907 शिक्षाव्रत किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- अणुव्रत और गुणव्रतों के पालनार्थ जिन नियमों के द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त हो उसे शिक्षाव्रत कहते हैं। चार भेद हैं। नामः- सामायिक शिक्षाव्रत, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगप्रमाण और अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत।

प्र.-3908 सामायिक शिक्षाव्रत किसे कहते हैं तथा क्यों पालना चाहिये?

उत्तर- अनुकूल प्रतिकूल अवस्थाओं के प्राप्त होने पर राग द्वेष न कर समताभाव धारण करने को सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं। इससे आत्मध्यानसाधना की, कष्टों को जीतने की क्षमता प्राप्त होती है।

प्र.-3909 प्रोषघोपवास शिक्षाव्रत किसे कहते हैं और क्यों करना चाहिये?

उत्तर- एकाशन को प्रोषध, चतुर्विध आहारत्याग को उपवास एवं एकाशन धारणा पारणा पूर्वक उपवास करने को प्रोषधोपवास कहते हैं। तपत्यागादि धर्म प्राप्त करने की शिक्षादायक होने से व्रत करना चाहिए।

प्र.-3910 भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत किसे कहते हैं और इसे क्यों पालना चाहिये?

उत्तर- रसनेंद्रिय के विषय को भोग और शेष चार इंद्रियों तथा मन के विषय को उपभोग कहते हैं। समय और क्षेत्रानुसार इन भोगोपभोग पदार्थों का प्रमाण कर शेष का त्याग करना चाहिये। इसको धारण और पालन करने से संयम, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्यादि सभी धर्मों की सिद्धि होती है।

प्र.-3911 किये गये परिग्रह प्रमाणाणुव्रत में पुनः प्रमाण करने को क्यों कहा?

उत्तर- परिग्रह प्रमाणाणुव्रत में परिग्रह का प्रमाण जीवन पर्यंत के लिये किया जाता है और भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावानुसार प्रमाण किया जाता है क्योंकि जिस वस्तु को जीवन पर्यंत के लिये ग्रहण किया है वह प्रतिदिन तो काम में आती नहीं है किंतु घरों में मौजूद है कभी भी काम में आ सकती है अतः जब आ सकती है तब काम में लिया शेष आगे पीछे समय में त्याग कर दिया इसमें अपना क्या बिगड़ गया? अतः यह व्रत योग्य ही है जैसे गर्मी के मौसम में ठंडी के वस्त्रों का, साधनों का और ठंडी के मौसम में गर्मी के वस्त्रों का, साधनों का त्याग कर देना चाहिये अतः स्वशक्ति को बढ़ाने के लिए भोजन करने के बाद में कुछ समय के लिये त्याग कर दिया सो यह भोगोपभोग प्रमाण शिक्षाव्रत है।

प्र.-3912 अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रयधारी अव्रती, अणुव्रती और महाव्रती को अतिथि कहते हैं। इनके मोक्षमार्ग में सहायभूत यथायोग्य सामग्री भक्ति पूर्वक अर्पण करने को अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत कहते हैं।

प्र.-3913 अतिथि को कालवाची मानने में क्या दोष है?

उत्तर- हाँ, दोष है। अतिथि को कालवाची न मानकर मोक्षमार्गस्थ व्यक्तिवाचक मानना चाहिये क्योंकि आजकल त्यागीव्रती साधुओं का आहार विहार का समय सबको मालूम हो जाता है अतः काल का सही निर्णय होने से अतिथि की परिभाषा घटित न होगी अतः अतिथि पद से मोक्षमार्गी व्यक्ति ही लेना चाहिये।

प्र.-3914 अतिथि के लिये किस किस वस्तु का विभाग करना चाहिये?

उत्तर- मुनि के योग्य ध्यानाध्ययन में सहायक चेतन अचेतन और मिश्र वस्तुएं दान में देना चाहिये।

प्र.-3915 यहाँ चेतन अचेतन और मिश्र वस्तुओं को दान में देने के लिये क्यों कहा?

उत्तर- जो अपने को भाग्योदय से तथा सम्यक् पुरुषार्थ या कामपुरुषार्थ से चेतनाचेतन मिश्र वस्तुएं प्राप्त हुईं हैं उनमें चौथा, छठवाँ और दसवाँ हिस्सा धर्म का है इस हिस्से में आपका अधिकार नहीं है। इसका सांसारिक कार्यों में उपयोग करना निर्माल्य खाना है। जैसे आपको लोकव्यवहार चलाने की चिंता है तो गुरुओं को जिनधर्म चलाने की चिंता है अतः अतिथियों को भी चेतनाचेतन मिश्र सामग्री भरपूर मात्रा में देना चाहिये क्योंकि धर्मायतन जीवित हैं, हरे भरे हैं तो सबका जीवन, परिवार, व्यापारादि हरा भरा रहेगा अतः अतिथियों के लिये पदानुसार सामग्री समर्पण करना चाहिये।

प्र.-3916 उत्तम गृहत्यागी श्रावक और महाव्रतियों के लिये चेतन सामग्री क्यों देना?

उत्तर- मोक्षमार्ग क्या केवल अचेतन पदार्थों से चलता है? मोक्षमार्ग चलाने वाले यदि चेतन नहीं रहे तो चतुर्विध मुनिसंघ की व्यवस्था कैसे बनेगी? अतः चतुर्विधमुनिसंघ बनने बनाने के लिये बालक बालिकाओं को, स्वयं को समर्पण करना चाहिये तभी सदा जिनधर्म चलता रहेगा क्योंकि चेतन सामग्री न आकाश से टपकती है, न खदानों में पैदा होती है किंतु गर्भजमनुष्यों की उत्पत्ति माँ बाप से होती है। यहाँ चेतन सामग्री से मतलब पशुओं से, दासी दास, नौकर नौकरानी से नहीं किंतु बाह्य संस्कारों एवं आदतों से रहित धर्म संस्कारों से युक्त धर्मज्ञ बालक बालिकायें उत्तम पात्रों के लिये देना चाहिये।

प्र.-3917 यदि गुरुओं को गाय भैंस पशुपक्षी आदि दिये जायें तो क्या दोष है?

उत्तर- मुनिजन इनका क्या करेंगे? ये सामग्रियां गृहस्थों के योग्य हैं,? क्योंकि दिगंबर जैन संत आरंभपरिग्रह के, विषयभोगों के त्यागी होते हैं कदाचित् लोभ वश इनको ग्रहण कर भी लिया तो मुनिजन इनकी रक्षा, पुनः गर्भधारण कराने के लिये तिर्यंच पुरुषवेदियों की या इंजेक्शन आदि की व्यवस्था करनी करानी होगी तब इससे ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्याग आदि सभी महाव्रतों की विराधना होने से गृहस्थपना भी प्राप्त होगा।

प्र.-3918 गुरुओं को दासी दास आदि दे सकते हैं क्या?

उत्तर- यदि परिग्रहत्यागी महाव्रती दिगंबर जैनमुनियों को दासीदास दिये तो परिग्रह देकर पदभ्रष्ट किया तब आप मोक्षमार्गी साधक दाता कैसे? स्थितिकरण अंग के विराधक होने से स्वयं ही मोक्षमार्ग से पतित हैं और पतन कराया अतः मुनिभक्त पूजक कैसे कहलायेंगे? पदभ्रष्ट करने कराने वाले कहलाये अतः गृहत्यागी उत्तम मध्यम पात्रों को मोक्षमार्गानुकूल ही सामग्री दान में देना चाहिये, पदभ्रष्ट करने वाली नहीं।

प्र.-3919 तो फिर कौन सी चेतन सामग्री गुरुओं को दान में देना चाहिये?

उत्तर- आहार विहार निहार से शुद्ध, संसार शरीर भोगों से विरक्त, निरोगी, विवेकवान, निष्कलंक, सर्वांग सुंदर, धर्मधारण करने में समर्थ, प्रभावना वात्सल्य आदि संस्कारों से युक्त बालक बालिकायें देना चाहिये तथा स्वयं ही निजप्रभावना, जिनधर्मप्रभावना के लिये समर्पित होना चाहिये।

प्र.-3920 गुरुओं को कौन सी अचेतन सामग्री दान में देना चाहिये?

उत्तर- शुद्ध आहारपानी, औषधि, उपकरण, चटाई आदि धर्म और स्वास्थ्यानुकूल सामग्री देना चाहिये।

प्र.-3921 कौन सी मिश्रसामग्री दान में देना चाहिये और कौन सी नहीं?

उत्तर- आत्मसाधना में, धर्म प्रभावना में सहायक बालक बालिकायें मिश्र सामग्री दान में देना चाहिये किंतु रागद्वेष मोह, आर्त रौद्रध्यान, कामविकार आदि पैदा करने वाली नहीं देना चाहिये।

प्र.-3922 तप किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जिन आचारविचारों से नवीन कर्मों का आश्रवबंध रोक दिया जाये, पूर्वबद्ध कर्मों की विशेष निर्जरा हो, सातिशय उत्कृष्ट पुण्य की प्राप्ति हो, आत्मविशुद्धि हो, धर्मध्यानादि की सिद्धि हो सो उसे तप कहते हैं। दो भेद और इन दोनों के 6-6 भेद हैं। अनशनादि 6 बहिरंग तथा प्रायश्चित्तादि 6 अभ्यंतर तप।

प्र.-3923 ''सम'' समता भाव किसे कहते हैं?

उत्तर- **''मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो हि समो''**- दर्शनमोह और चारित्रमोह से विहीन परिणाम को निश्चय ''सम'' समता कहते हैं। यहाँ अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण कषायों के अभाव में उत्पन्न समता भाव को लेना चाहिये क्योंकि यहाँ अणुव्रती श्रावकों की 53 क्रियाओं का वर्णन चल रहा है।

प्र.-3924 सामायिक शिक्षाव्रत और सामायिकचारित्र में क्या अंतर है?

उत्तर- श्रावक इसका पालन प्रातःकाल और सायंकाल करता है कदाचित् समय आगेपीछे भी हो सकता है, अतिचार भी लग सकते हैं किंतु सामायिकचारित्र मुनियों के सर्वकाल होता है यही अंतर है।

प्र.-3925 प्रतिमा(व्रत) किसे कहते हैं, भेद कितने हैं?

उत्तर- रत्नत्रय पूर्वक अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदयाभावी क्षय से उत्पन्न परिणामों को तथा इन्हीं भावानुसार दिनचर्या को प्रतिमा कहते हैं। **''संयम अंश जग्यो जहाँ भोग अरुचि परिणाम। उदय प्रतिज्ञा को भयो प्रतिमा ताको नाम।** जहाँ संयम भाव जागृत हुआ है, संसार शरीर भोगों में अरुचि है, भोग अंश में प्रीति विश्वास नहीं रहा ऐसे संकल्प पूर्वक विधि निषेध रूप में प्रतिज्ञा को प्रतिमा कहते हैं। 11 भेद हैं।

प्र.-3926 दान किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- भाग्य और पुरुषार्थ से प्राप्त चेतनाचेतन मिश्ररूप वैभव को स्वपरोपकार की भावना से मोक्ष के निमित्त सत्पात्रों के लिये नवधाभक्ति पूर्वक देने को दान कहते हैं। धर्मध्यान के योग्य दान के 4 भेद हैं। आहारदान, औषधिदान, अभयदान और ज्ञानदान या उपकरणदान। इनके अलावा शेष दान मोक्ष के, लोकव्यवहार के, कदाचित् जनहिताय और जिनधर्म प्रभावना के निमित्त भी होते हैं।

प्र.-3927 विधि किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- दान देने की पद्धति को विधि कहते हैं। नव भेद हैं। **नामः-** पड़गाहन करना, उच्चस्थान देना, चरणाभिषेक, अष्ट द्रव्य से पूजन, नमस्कार करना, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि और आहार जल शुद्धि।

प्र.-3928 द्रव्य किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- बाह्यचर्या, भावात्मक आत्मसाधना में, मोक्षमार्ग की साधना में तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा में साधनभूत योग्य आहारादि सामग्री को द्रव्य कहते हैं। 3 भेद हैं, **नामः-** चेतनसामग्री, अचेतनसामग्री और मिश्रसामग्री।

प्र.-3929 दाता पात्र के लिए क्या करता हैं?

उत्तर- दाता धर्मसाधन सामग्री पात्र के लिए देता हैं।

प्र.-3930 पात्र दाता से क्या ग्रहण करता हैं?

उत्तर- दाता द्वारा देय वस्तु को पात्र ग्रहण करता हैं।

प्र.-3931 विधि, द्रव्य, दाता और पात्रों में क्या विशेषता होती है?

उत्तर- ये चारों निर्दोष होने से दान के फल में उत्कृष्टता तथा सदोष होने से निकृष्टता प्राप्त होती है।

प्र.-3932 दान क्यों दिया जाता है, दान से किसका क्या उपकार होता है?

उत्तर- स्व और पर के उपकार के लिये दान दिया जाता है। स्वयं का उपकार पुण्य का संचय होना तथा पात्र का उपकार धर्मध्यानादि की सिद्धि होना है।

प्र.-3933 लोकव्यवहार में दान किसे कहते हैं भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- लोक में स्व परोभय शांति के लिये इष्ट सामग्री देने को दान कहते हैं। अनेक भेद हैं। नाम- समदत्तीदान, करुणादान, कन्यादान, भूमिदान, हाथीघोड़ों का दान, राज्यदान, दासीदासों का दान, वस्त्रदान, भौतिकशिक्षा दान, सांत्वनादान, वाहनादि दान, भोजनदान, औषधिदान आदि।

प्र.-3934 रक्तदान, किडनीदान, नेत्रदान आदि ये भी समीचीन दान हैं क्या?

उत्तर- ये न समीचीन दान हैं, न धर्मक्षेत्र के निमित्तदान है किंतु पापवर्धक हैं, हिंसाकारक हैं इन दानों का नाम भारतीय अहिंसाधर्म संस्कृति में नहीं है। जैसे मांसाहारियों ने देवी देवता बलि मांगते हैं, बलि से प्रसन्न होते हैं ऐसा कहकर अंडे, मुर्गे, बकरे, गाय, भैंसादि की बलि चढ़वाकर अपनी जिह्वा लंपटता की पूर्ति की ऐसे ही इन पाश्चात्य संस्कृति वालों ने मांसपिंडों को दान के नाम पर मांगना प्रारंभ किया तो यहाँ की अज्ञानी जनता ने बिना विवेक के स्वीकार कर लिया और इसे दान के नाम पर लेने देने लगे। यदि ये तामसीभोजी कामवासना की पूर्ति के लिए किसी की बहुबेटियों को मांगने लगे तो कौन सा सज्जन पुरुष अपनी बहु बेटियों को वेश्या बनाने के लिये देगा? उन पाश्चात्य देशों में मलेच्छाचरण होने से पतिव्रत या पत्निव्रत तथा पारिवारिक आत्मीयता नहीं है, विश्वास नहीं है और इसी पाप से एड्स आदि असाध्य बीमारियां पैदा हो रही हैं, कष्टों से भयभीत प्रजा पाप छोड़ने के लिये तैयार नहीं है। अहिंसक धर्मों में रक्त मांसादि का त्याग ही कराया है अतः मांस को उपलक्षण मानकर मांस के समान शारीरिक धातुउपधातुओं में संख्यातासंख्यात त्रसजीव होने से त्याज्य ही बताया है। कहा भी है-

दृष्ट्वापरं पुरस्तादशनाय क्षामकुक्षिमायान्तम्।
निजमांसदानरभसादालभनीयो न चात्मापि।।89।। आ.अमृतचंद्र पु.उ.

अर्थः- भोजन के लिए सन्मुख आये हुए अन्य दुर्बल उदर वाले पुरुष को देखकर अपने शरीर का मांस देने की उत्सुकता से अपना भी घात नहीं करना चाहिये।

प्र.-3935 पानी छानकर पीना यह क्रिया अलग से क्यों गिनाई है?

उत्तर- पहले मूलगुणों में और अब पुनः प्रतिमाधारियों के लिये पानी छानने की क्रिया गिनाई है इसका मतलब यह है कि यहाँ इस क्रिया को नवकोटि से पालने को कहा है या नवकोटि से अनछने पानी का प्रयोग न करने को कहा है क्योंकि आगे आगे व्रतों का पालन सूक्ष्मता से किया जाता है।

प्र.-3936 रात्रिभोजन त्याग करने को क्यों कहा है?

उत्तर- रात्रिभोजनत्याग व्रत को भी नवकोटि से पालन करना चाहिये। केवल स्वयं ने रात्रिभोजनत्याग किया किंतु दूसरों को भोजन कराया और अनुमोदना की तब मन वचन काय का प्रयोग होने से रात्रिभोजनत्यागी नहीं है और रात्रिभोजी होने से अणुव्रती श्रावक भी नहीं है केवल बाह्य चोला धारकर अभिनय कर रहा है अतः नवकोटि से रात्रिभोजनत्याग व्रत को पालना चाहिये सो कहा है।

प्र.-3937 सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- जो वस्तु जैसी है जिस रूप में परिणमन कर रही है उसका उसी रूप में विश्वास करना

सम्यग्दर्शन है या दर्शनमोह की 7 के उपशम से औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा सर्वघाति 6 प्रकृतियों के उदयाभाव में उत्पन्न हुए जीवादि 27 तत्त्वों में, आप्त आगम, साधुओं में, निजात्मा में विश्वास को क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसके आज्ञासम्यक्त्वादि दश भेद हैं।

प्र.-3938 देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति के उदय में कौन से भाव उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से शंका कांक्षादि पाँच अतिचार, 25 मलदोष, चल मलिन अगाढ़दोष उत्पन्न होते हैं। ये दोष सम्यग्दर्शन का समूल विनाश नहीं करते हैं सिर्फ मलिनता लाते हैं।

प्र.-3939 सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से क्या सम्यग्दर्शन होता है?

उत्तर- नहीं, इसके उदय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। यदि सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से सम्यग्दर्शन होने लगे तो सम्यग्दर्शन को औदयिकभाव मानने का प्रसंग आयेगा जिससे मोक्षमार्ग ही नहीं बन सकता है।

प्र.-3940 गुणस्थानों की अपेक्षा सम्यग्दर्शन कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर- औपशमिक सम्यग्दर्शन 4थे से 7वें तक, द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन 7वें से 11वें तक, क्षायिक सम्यग्दर्शन चौथे से सिद्धों तक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन 4थे से सातवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.-3941 आज्ञासमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- केवल जिनेंद्राज्ञा से उत्पन्न होने वाले तत्त्व श्रद्धान को आज्ञासमुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3942 मार्गसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- शास्त्रश्रवण के बिना मोक्षमार्ग में उत्पन्न होनेवाले श्रद्धान को मार्गसमुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3943 उपदेशसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- शलाका पुरुषों की जीवनी सुनकर हुए तत्त्वश्रद्धान को उपदेशसमुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3944 सूत्रसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- मुनियों के आचारसूत्र को सुनकर उत्पन्न हुए तत्त्वश्रद्धान को सूत्रसमुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3945 बीजसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवादि पदार्थों में बीजपदों के द्वारा उत्पन्न तत्त्व श्रद्धान को बीजसमुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3946 संक्षेपसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- जीवादि पदार्थों को संक्षेप से जानकर उत्पन्न श्रद्धान को संक्षेपसमुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3947 विस्तारसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- द्वादशांगवाणी के सुनने से उत्पन्न तत्त्वश्रद्धान को विस्तारसमुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3948 अर्थसमुद्भव सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- अंगबाह्य में कथित किसी पदार्थ के निमित्त हुए श्रद्धान को अर्थसमुद्भवसम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3949 अवगाढ़ सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- अंगबाह्य श्रुत का अवगाहन करके उत्पन्न श्रद्धान को अवगाढ़समुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3950 परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- केवलज्ञान के द्वारा जाने पदार्थों में उत्पन्न रुचि को परमावगाढ़समुद्भव सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-3951 सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- सम्यग्दर्शन सहित उत्पन्न होने वाले ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। जैसे इंद्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति आदि 1503 गुरु शिष्यों को सम्यग्दर्शन के होते ही सम्यग्ज्ञान हो गया था। इसके 5 और अनेक भेद हैं।

प्र.-3952 यह सम्यग्ज्ञान कहाँ से कहाँ तक रहता है?

उत्तर- सामान्यतया सम्यग्ज्ञान चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धों तक, विशेषतया क्षायोशमिक सम्यग्ज्ञान चौथे से 12वें गुणस्थान तक और क्षायिक केवलज्ञान 13वें गुणस्थान से लेकर सिद्धों तक रहता है।

प्र.-3953 सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर- आत्मस्वभाव में स्थिर होने को और स्थिर होने के उपायों को सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्र.-3954 सम्यक्चरित्र कहाँ से कहाँ तक रहता है?

उत्तर- 4-10वें तक क्षायोपशमिकचारित्र, 11वें में औपशमिक, 12वें से सिद्धों तक क्षायिकचारित्र है।

प्र.-3955 ये 53 क्रियाएं किन किन श्रावक श्राविकाओं की होतीं हैं?

उत्तर- अव्रतीसम्यग्दृष्टि और अणुव्रती 11वीं प्रतिमा तक के श्रावकश्राविकाओं की 53 क्रियायें हैं।

प्र.-3956 ये क्रियायें केवल अणुव्रतियों की मानी जायें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- ये क्रियायें केवल प्रतिमाधारी श्रावक श्राविकाओं की मानने पर क्या अव्रती गृहस्थों की कोई क्रियायें नहीं होती हैं या ये अक्रियावादी मिथ्यादृष्टियों के समान होते हैं? यदि अक्रियावादी हैं तो वे मोक्षमार्गीसाधक नहीं हो सकते अतः ये 53क्रियायें अव्रती, व्रती श्रावकश्राविकाओं की होतीं हैं।

प्र.-3957 क्या ये क्रियायें मुनि आर्यिकाओं के भी होती हैं?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही ये क्रियाएं मुनि आर्यिकाओं के भी होतीं हैं किंतु गृहस्थों के ये स्थूल और सदोष होतीं हैं तो गृहत्यागियों के सूक्ष्म तथा मुनि आर्यिकाओं के अधिक सूक्ष्मता से निर्दोष होतीं हैं।

नोटः- यहाँतक 3957 प्रश्नोत्तरों में 137वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 138वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

ज्ञानाभ्यास की प्रेरणा

णाणेण झाणसिज्झी झाणादो सव्वकम्म णिज्जरणं।
णिज्जरणफलं मोक्खं णाणब्भासं तदो कुज्जा।।138।।

ज्ञानेन ध्यानसिद्धिर्ध्यानतः सर्वकर्मनिर्जरणं।
निर्जराफलं मोक्षः ज्ञानाभ्यासं ततः कुर्यात्।।

णाणेण ज्ञान से **झाणसिज्झी** ध्यान की सिद्धि **झाणादो** ध्यान से **सव्वकम्म** समस्त कर्मों की **णिज्जरणं** निर्जरा और **णिज्जरण फलं** निर्जरा का फल **मोक्खं** मोक्ष है **तदो** अतः आज्ञार्थक प्रयोग होने से **णाणब्भासं** सतत ज्ञानाभ्यास **कुज्जा** करो।

प्र.-3958 ज्ञान में समीचीनता कैसे आती है?

उत्तर- **जेण तच्चं विबुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदि।**
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।267।।
जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मित्ती पभावेज्ज तं णाणं जिण सासणे।।268।। मू.चा. अ. 5

अर्थः- जिससे तत्त्वज्ञान होता है, पापकार्यों से मन हट जाता है, आत्मा विशुद्ध होती है, जीव

राग से विरक्त होता है, श्रेष्ठ मार्ग में प्रीति होती है, मैत्री भावना प्राप्त होती है उसे जिनशासन में समीचीन ज्ञान कहा है।

प्र.-3959 किस ज्ञान से किस ध्यान की सिद्धि होती है?

उत्तर- मिथ्याज्ञान से आर्तरौद्रध्यान की और सम्यग्ज्ञान से धर्मध्यान शुक्लध्यान की सिद्धि होती है।

प्र.-3960 यदि ऐसा है तो पाँचवें तक रौद्रध्यान और छठवें तक आर्तध्यान क्यों कहे?

उत्तर- मिथ्याज्ञानियों के एकमात्र आर्तरौद्रध्यान ही होते हैं शेष ध्यानों की गंध भी नहीं होती है किंतु ध्याताओं की परिणतियां अनेक प्रकार की होने से सम्यग्ज्ञानियों के भी ये सभी ध्यान हो सकते हैं।

प्र.-3961 ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- ज्ञान से यह ध्यान कैसा है और कैसा नहीं ऐसा जाना जाता है यदि आत्मा में ज्ञान नहीं होता तो जड़ पदार्थों की तरह किसी भी वस्तु का स्वरूप जानने में नहीं आता तब शुभाशुभ का ज्ञान न होने से संसार तथा मोक्षमार्ग की सिद्धि नहीं हो सकती अतः ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है सो यह ठीक ही कहा है।

प्र.-3962 ध्यान चारित्रगुण की पर्याय है तो इसे अशुभ, शुभ और शुद्ध क्यों कहा?

उत्तर- विषयकषायों के, ख्याति पूजा लाभ के, हिंसादि पापों के, जुआदि व्यसनों के साथ चारित्रगुण का परिणमन अशुभ है। विरति, अप्रमाद, अकषाय, संयम के साथ चारित्रगुण का परिणमन शुभ है। मोहनीय के पूर्ण अभाव में चारित्रगुण का परिणमन शुद्ध कहा है अतः साहचर्य से ध्यानों के ये तीन नाम हो जाते हैं।

प्र.-3963 यह चारित्रगुण का परिणाम ऐसा है यह कैसे मालुम पड़ेगा?

उत्तर- यदि अपने को परिभाषा, लक्षण सही मालुम है तो ज्ञान के द्वारा जानकारी हो सकती है या अपने को शिक्षा संगति और संस्कार कैसे मिले हैं तदनुसार ही जानकारी प्राप्त होती है।

प्र.-3964 चारित्रगुण का परिणमन किसके माध्यम से होता है?

उत्तर- चारित्रगुण का परिणमन स्व पर उभय निमित्तक तथा शिक्षा संगति और संस्कार अनुसार ही शुभाशुभ और शुद्ध रूप में परिणमन होता है। क्वचित् कदाचित् कहीं कहीं परिणमन में भिन्नता देखी जाती है तभी तो संसारमार्ग और मोक्षमार्ग की या मायाचार सदाचार की व्यवस्था बन सकती है।

प्र.-3965 ध्यान को ज्ञानगुण की पर्याय मानने में क्या दोष है?

उत्तर- ध्यान को ज्ञानगुण की पर्याय मानने पर केवली के ध्यान अधूरा रहने पर केवलज्ञान को भी अधूरा मानने का प्रसंग आयेगा और जब केवलज्ञान अधूरा है तो सर्वज्ञता भी अधूरी रहेगी या सर्वज्ञता न होने से अल्पज्ञता छद्मस्थपना ही रहेगा जो दोष ही है या केवलज्ञान के पूर्ण होने पर ध्यान पूरा होना चाहिये फिर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान का अस्तित्व नहीं बनेगा तब 13वाँ, 14वाँ गुणस्थान न बनने से 12 गुणस्थान ही रहेंगे अतः ध्यान ज्ञान की पर्याय न होकर चारित्रगुण की पर्याय है।

प्र.-3966 गृहीत अगृहीत ये दोनों सम्यग्ज्ञान के भेद हैं या मिथ्याज्ञान के?

उत्तर- गृहीत और अगृहीत ये दोनों सम्यग्ज्ञान के भेद हैं और मिथ्याज्ञान के भी।

प्र.-3967 सो कैसे यह सिद्ध करके बताओ?

उत्तर- अनादि या सादि मिथ्यादृष्टि मोक्षमार्गियों के संसर्ग से मिथ्याज्ञान को छोड़कर सम्यग्ज्ञान को ग्रहण करने वाला होने से गृहीत सम्यग्ज्ञानी कहलाया। जैसे गौतम स्वामी भ. महावीर के प्रथम

गणधर बने वे मानस्तंभ के देखने के पहले तक अगृहीत मिथ्याज्ञानी थे पर मानस्तंभ को देखकर सम्यग्ज्ञान को ग्रहण करते हैं अथवा पं. विद्यानंदी पात्रकेशरी देवागम स्तोत्र को सुनकर चिंतन मनन कर गृहीत सम्यग्ज्ञानी हुए। तीर्थंकर प्रकृति वाले, इंद्रइंद्राणी, लौकांतिकदेव, सर्वार्थसिद्धि के देव मनुष्य पर्याय में सम्यग्ज्ञान सहित ही आते हैं अतः ये अगृहीत सम्यग्ज्ञानी हैं। कोई जैन अनेकांतवादी स्याद्वादी कमजोर हृदय होने के कारण लोभ से या अन्य कारणों से वैज्ञानिकों के या अन्य वक्ताओं के कथन को सुनकर जिनधर्म को छोड़कर दूषित धर्म को अपना कर उन्हीं का प्रचार प्रसार किया जैसे अनेक बुद्धिमान पंडितवर्ग आगम के द्वारा वस्तु व्यवस्था को, गुणदोष को पहंचानते हुये भी कांजीपंथी गृहीत मिथ्याज्ञानी हुये ऐसे ही जिनमत के बाहर अनेकांत स्याद्वाद के द्वेषी कुलों में जन्म लेकर परंपरा से ही अगृहीत मिथ्याज्ञानी हुए।

प्र.-3968 गृहीत अगृहीत का संक्षिप्त अर्थ क्या है?

उत्तर- गृहीतसम्यग्ज्ञानीः- जिन्होंने परनिमित्त या परोपदेश से सम्यग्ज्ञान को ग्रहण किया है। अगृहीत सम्यग्ज्ञानीः- जन्म से सम्यग्ज्ञान लेकर आया है। गृहीतमिथ्याज्ञानीः- परनिमित्त या परोपदेश से दूषित मिथ्याज्ञान को प्राप्त किया। अगृहीतमिथ्याज्ञानीः- परंपरा से आया, जन्म से साथ में लाया।

प्र.-3969 जब ध्यान के अनेक भेद हैं तो किस ध्यान से कर्मों की निर्जरा होती है?

उत्तर- त.सू. **ततश्च निर्जरा, तपसा निर्जरा च**। कथित सभी ध्यानों से पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

प्र.-3970 किस ध्यान से किस कर्म की निर्जरा होती है?

उत्तर- आदि के 15 ध्यानों से सामान्य निर्जरा, संख्यातगुणी, असख्यंातगुणी और अंतिम व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान से 14वें गुणस्थान में पापपुण्य कर्मों की प्रतिसमय सामान्य निर्जरा होती है।

प्र.-3971 अकाम निर्जरा और सकाम निर्जरा के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- जो कर्म अपना फल देकर झड़ते हैं इस परिभाषानुसार पहले से 14वें गुणस्थान तक पुण्य प्रकृति, तीर्थंकर प्रकृति, मनुष्यायु ये अपने समयानुसार ही उदय में आकर निर्जरा को प्राप्त होते हैं और सकाम निर्जरा चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक होती है। सामान्यतया अकाम निर्जरा और सकामनिर्जरा के स्वामी संसारमार्गी, मोक्षमार्गी, अव्रती, अणुव्रती और महाव्रती मुनिजन स्वामी होते हैं।

प्र.-3972 सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- सविपाक निर्जरा के स्वामी मिथ्यात्व गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक तथा अविपाक निर्जरा के चौथे गुणस्थान से अयोगकेवली पर्यंत जीव स्वामी हैं।

प्र.-3973 मिथ्यादृष्टि जीवों को अविपाक निर्जरा का स्वामी मानने में क्या दोष है?

उत्तर- करणलब्धि के अंतर्गत अपूर्वकरण के प्रथम समय में स्थित सातिशय मिथ्यादृष्टि के गुण श्रेणी निर्जरा प्रारंभ हो जाती है इसकारण इसके अविपाक निर्जरा मानने में कोई दोष नहीं है फिर भी सातिशय पुण्यप्रकृतियां मिथ्यादृष्टियों के उद्वेलनाकरण, उदीरणाकरण, अपकर्षण, संक्रमण आदि के द्वारा बिना फल दिये झड़ जातीं हैं पर मुख्य कारण रत्नत्रय धर्म न होने से वह अविपाक निर्जरा नहीं मानी है, न मोक्ष और मोक्षमार्ग मिलता है क्योंकि बांधा हुआ कर्म किसी भी जीव को पूरा का पूरा फल न देकर अनंतवांभाग ही देता है शेष बहुभाग बिना फल दिये ऐसे ही झड़ जाता है।

प्र.-3974 उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण में और निर्जरा में क्या अंतर है?

उत्तर- उत्कर्षण आदि के द्वारा कर्मों की अवस्थाओं में परिवर्तन होने पर भी कर्मों का अस्तित्व बना रहता है किंतु निर्जरा में कर्म अस्तित्व विहीन अवस्था को प्राप्त हो जाता है यही इनमें अंतर है।

प्र.-3975 ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है तो कौन सा ध्यान लेना चाहिये?

उत्तर- व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान से ही समस्त कर्मों की निर्जरा होने से यही ध्यान ग्राह्य है।

प्र.-3976 कौन सा ध्यान किस भाव रूप है?

उत्तर- आर्तरौद्रध्यान अशुभ औदयिकभाव है, धर्मध्यान शुभ क्षायोपशमिकभाव है, 11वें गुण.का शुक्ल ध्यान शुद्ध औपशमिकभाव तथा शेष गुणस्थानों का शुक्लध्यान शुद्ध क्षायिकभाव है।

प्र.-3977 आर्त रौद्रध्यानों में किन किन कर्मों की निर्जरा होती है?

उत्तर- पहले दूसरे गुणस्थान वाले आर्त रौद्रध्यानों से एकमात्र अकाम और सविपाक निर्जरा होती है। यद्यपि कुछ अंश में पापपुण्य कर्म भी बिना फल दिये सजातीय कर्म प्रकृतियों में संक्रमण कर बदल कर परमुख से निकल जाते हैं। उद्वेलना प्रकृतियां बिना फल दिये जहाँ की तहाँ पहुंच जाती हैं ऐसे ही अभव्यों के, भव्य मिथ्यादृष्टियों के, वैमानिकदेवों के और अन्य पुण्य स्थानों में पंचेंद्रिय जीवों में आकर विकलत्रयादि तथा नरकगति संबंधी पाप प्रकृतियां, देवों में या भोगभूमिज मनुष्य तिर्यंचों में पाप प्रकृतियां परमुख से बिना फल दिये सजाति प्रकृतियों में संक्रमण कर निकल जातीं हैं पर यह सब मोक्षमार्ग नहीं है।

प्र.-3978 संसारमार्ग के और मोक्षमार्ग के मूलप्रत्यय कौन कौन हैं?

उत्तर- संसारमार्ग के मूलप्रत्यय मिथ्यात्रय हैं तो मोक्षमार्ग के मूलप्रत्यय सम्यक् रत्नत्रय हैं।

प्र.-3979 4थे, 5वें गुणस्थानवर्ती आर्तरौद्रध्यानों से किन[2] कर्मों की निर्जरा होती है?

उत्तर- चौथे पाँचवें गुणस्थान वाले आर्तरौद्रध्यानों से अकामसकाम निर्जरा, सविपाकअविपाक निर्जरा होती है क्योंकि यहाँ संसार के कारणभूत मूल प्रत्ययों का अभाव है तथा मोक्षमार्ग होने से यहाँ आर्त रौद्रध्यानों के सद्भाव में भी संख्यातासंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती रहती है।

प्र.-3980 जब आर्त रौद्रध्यानों से निर्जरा होती है तो ये मोक्ष के हेतु क्यों नहीं हैं?

उत्तर- जो प्रमत्त पर्यंत गुणस्थानों में संख्यात गुणी, असंख्यातगुणी निर्जरा हो रही है सो वह इन ध्यानों से न होकर मुख्य प्रत्यय तथा विषयकषायों का त्याग होने से और धर्मध्यान से विशेष निर्जरा हो रही है अतः इन दो ध्यानों को संसार का ही हेतु कहा है। **परे मोक्ष हेतू** तो **अपरे संसार हेतू** त.सू. अ. 9 सू. 29

प्र.-3981 धर्मध्यान और शुक्लध्यान से एकमात्र क्या निर्जरा ही होती है?

उत्तर- इन ध्यानों से गुणस्थानानुसार पापकर्मों का आश्रवबंध संवर और सातिशय पुण्यकर्मों का उत्कृष्ट आश्रव स्थितिबंध अनुभागबंध संवर निर्जरा मोक्ष भी प्राप्त होता है।

प्र.-3982 निर्जरा किसे कहते हैं और निर्जरा का क्या फल है?

उत्तर- शुभ शुद्धध्यान रूपी तप के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों का आत्मा से बिना फल दिये या फल देकर पृथक् हो जाने को निर्जरा कहते हैं और निर्जरा का फल मोक्ष है।

प्र.-3983 मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण और परंपरा कारण क्या है?

उत्तर- मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण परमयथाख्यात चारित्र और परंपरा कारण परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन, केवलज्ञान और यथाख्यात चारित्र है क्योंकि ये भी तद्भव मोक्षगामी के ही होते हैं, दूसरों के नहीं।

प्र.-3984 इनको जानकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- **णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।**
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।।31।। द.पा.

अर्थः- सर्वप्रथम मनुष्य का ज्ञान सार है और ज्ञान से भी अधिक सार सम्यग्दर्शन है क्योंकि

सम्यग्दर्शन से सम्यक्चारित्र होता है और सम्यक्चारित्र से निर्वाण की प्राप्ति होती है अतः ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 3984 प्रश्नोत्तरों में 138वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 139वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

श्रुतज्ञानाभ्यास क्यों?

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेरग्गो।
सुदभावणेण तत्तिय तह्मा सुदभावणं कुणह।।139।।

कुशलस्य तपः निपुणस्य संयमः शमपरस्य वैराग्यं।

श्रुतभावनेन तत्त्रयं तस्माच्छ्रुतभावनां कुर्यात्।

कुसलस्स कुशल पुरुषार्थी के **तवो** तप **णिवुणस्स** निपुण व्यक्ति के **संजमो** संयम और **समपरस्स** समभावी के **वेरग्गो** वैराग्य होता है किंतु **सुदभावणेण** श्रुतभावना से **तत्तिय** तप संयम और वैराग्य ये तीनों होते हैं **तम्हा सुदभावणं** अतः श्रुताभ्यास **कुणह** करना चाहिये। श्रुतज्ञान से ही क्षपकश्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है यही इसकी महिमा है।

प्र.-3985 कुशल व्यक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- **कुशं लाति इति कुशलम्-** जो कुश को, घास को काट कर लाता है वह कुशल है ऐसे कुशल व्यक्ति के समान ही जो कर्मों को काटकर शुद्धात्मा को प्राप्त करता है उसे कुशल व्यक्ति कहते हैं।

प्र.-3986 कुशल व्यक्ति के तप होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे कुशल शब्द का पदच्छेद करने पर घास को काटने वाला और अखंड पद मानकर अर्थ करने पर महान बुद्धिमान होता है अतः बुद्धिमान ज्ञानी जीव ही तप से कर्मों का क्षय करता है, मूर्ख नहीं।

प्र.-3987 निपुण व्यक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- विशेष जानकार को, विवेकवान को, सम्यग्ज्ञानी को निपुण कहते हैं।

प्र.-3988 निपुण व्यक्ति ही संयम का पालन करता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जिसने इंद्रिय, मन और जीवों की योनियों को समझा नहीं है वह इनकी रक्षा कैसे करेगा? वह अभयदान कैसे देगा? इंद्रिय मन को वश में करना तथा समस्त चराचर प्राणियों की रक्षा करना ही संयम है। अतः निपुण व्यक्ति ही इंद्रियसंयम और प्राणीसंयम का पालन कर सकता है ऐसा कहा है।

प्र.-3989 समता किसे कहते हैं?

उत्तर- अनुकूल प्रतिकूल व्यक्तियों के द्वारा किये गये उपसर्ग परीषहों को ना के बराबर मानकर अंतरंग में स्थिर होकर राग द्वेष रूपी विकारों के प्राप्त न होने को समता भाव कहते हैं।

प्र.-3990 सामायिक कर्ता को क्या वैराग्य प्राप्त हो सकता है?

उत्तर- संसार शरीर भोगों से विरक्त समतावाला व्यक्ति ही अनुकूल प्रतिकूल अवस्थाओं के प्राप्त होने पर विकारी न हो वैरागी होता है ऐसा कहा है **सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्तिः।136।।** अमृ.क. सम्यग्दृष्टियों के नियम से ज्ञान वैराग्य शक्ति होती है। नाटक स.सा.:- **ज्ञानशक्ति वैराग्य बल शिव साधै समकाल। ज्यों लोचन न्यारे रहे देखें एकई नाल।** जैसे नेत्र अलग अलग होने पर भी देखने का कार्य एक साथ एक समय में ही करते हैं ऐसे ही ज्ञान और वैराग्य एक साथ

एक ही समय में मोक्षमार्ग को साधते हैं।

प्र.-3991 श्रुताभ्यास से क्या प्राप्त होता है?

उत्तर- **ज्ञानाभ्यास करें मन मांहीं ताके मोहमहातम नाहीं।** मन में ज्ञानाभ्यास करने वाले के मोहांधकार नहीं होता है या श्रुतज्ञान से ही तप संयम वैराग्य उभयश्रेणी और केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

नोटः- यहाँतक 3991 प्रश्नोत्तरों में 139वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 140वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

संसारभ्रमण का कारण

कालमणंतं जीवो मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।

हिंडदि ण लहइ सम्मं संसारब्भमण पारंभो।।140।।

कालमनंतं जीवो मिथ्यात्व स्वरूपेण पंचसंसारे।

हिंडते न लभते सम्यक्त्वं संसारभ्रमण प्रारंभः।।

सम्मं सम्यक्त्व **लहइ** प्राप्त **ण** न होने से **मिच्छत्तसरूवेणजीवो** यह अभव्य मिथ्यादृष्टिजीव **काल मणंतं** अनंतकाल तक **पंचसंसारे** पंचविधसंसार में **संसारब्भमण** संसारभ्रमण **पारंभो** प्रारंभ करता हुआ **हिंडदि** भ्रमण करता रहता है।

प्र.-3992 संसार का आकार कैसा है इसमें कौन सा जीव भ्रमण करता है?

उत्तर- चतुर्गति रूप संसार में वातवलयों का, नरकों का, मध्यलोक का व ऊर्ध्वलोक का आकार भिन्न भिन्न होने से संसार अनेक प्रकार के आकार वाला है। पंचपरावर्तनशील संसार में मिथ्यादृष्टि भ्रमण कर रहा है।

प्र.-3993 जीव संसार में कब से भ्रमण कर रहा है और कब तक करता रहेगा?

उत्तर- अभव्य, दूरानुदूर भव्यजीव अनादि से भ्रमण कर रहा है और अनंतकाल तक भ्रमण करता रहेगा।

प्र.-3994 जीव कहाँ भ्रमण कर रहा है?

उत्तर- लोकाकाश के समस्त प्रदेशों में जन्म मरण करता हुआ अनेक दुःख भोगता हुआ भ्रमण कर रहा है।

प्र.-3995 जीव किसके साथ भ्रमण कर रहा है?

उत्तर- द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मों के साथ में जीव चतुर्गति रूप संसार में भ्रमण कर रहा है।

प्र.-3996 जीव क्यों भ्रमण कर रहा है?

उत्तर- अविश्वास, असंयम, विषयकषाय रूपी परिणामों के कारण जीव भ्रमण कर रहा है।

प्र.-3997 जीव किस रूप में भ्रमण कर रहा है?

उत्तर- 84लाख योनि रूप संसार में व्यंजन पर्याय रूप भव को धारण कर जीव भ्रमण कर रहा है।

प्र.-3998 जीव के भ्रमण का काल कितना है?

उत्तर- भूत की अपेक्षा अनंत, वर्तमान की अपेक्षा एक समय और भविष्य की अपेक्षा अनंतानंत काल है।

प्र.-3999 इस संसार में पंच परावर्तन करने वाले जीव कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर- संसार में ऐसे जीव तीन प्रकार के होते हैं- अभव्यजीव, दूरानुदूरभव्यजीव, अनादिमिथ्यादृष्टि भव्यजीव।

प्र.-4000 यहाँ सादि मिथ्यादृष्टि जीवों को क्यों ग्रहण नहीं किया है?

उत्तर- सादिमिथ्यादृष्टि जीव संसार में जनममरण करता हुआ एक भी परावर्तन पूरा नहीं करता क्योंकि सम्यग्दर्शन रूपी तीक्ष्ण तलवार से अनंतसंसार को छेद कर केवल अर्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव परिवर्तन शेष बचा है तब पूरा परिवर्तन कैसे करेगा? अतः यहाँ सादिमिथ्यादृष्टि को ग्रहण नहीं किया है।

प्र.-4001 भ्रमण करते हुये सम्यग्दर्शन को यह जीव क्यों प्राप्त नहीं करता है?

उत्तर- जैसे चक्कर लगाते समय नाड़ी का कंपन, हृदय की धड़कन और मन की चंचलता बढ़ जाती है। जिससे कुछ क्षण तक कुछ भी जानकारी में नहीं आता किंतु स्थिरता होने पर ही समझ में आता है ऐसे ही संसार में भ्रमण करते हुये सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता किंतु स्थिरता में ही प्राप्त होता है।

प्र.-4002 संसार भ्रमण किसे कहते हैं और भ्रमण करते हुए क्या प्राप्त करता है?

उत्तर- एक गति से दूसरी गति में जाने को या एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर के ग्रहण करने को संसार भ्रमण कहते हैं। संसार में कुछ व्यक्ति मार्गानुगामी, कुछ कुमार्गगामी तो कुछ भ्रमणशील होते हैं। गाथोक्त भ्रमण शब्द ही इस अर्थ को बतलाता है यदि भ्रमणशील प्राणी राजाश्रेणिक की तरह भूल सुधार कर ले तो रत्नत्रय के साथ साथ त्रैलोक्य पूज्य तीर्थंकर प्रकृति को भी बांधकर स्वयं को मोक्षमार्गी बना लेता है।

नोटः- यहाँतक 4002 प्रश्नोत्तरों में 140वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 141वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुखदुःख कैसे?

सम्मद्दंसणसुद्धं जाव दु लभदे हि ताव सुही।

सम्मद्दंसणसुद्धं जाव ण लभदे हि ताव दुही।।141।।

सम्यग्दर्शनं शुद्धं यावत्तु लभते हि तावत् सुखी।

सम्यग्दर्शनं शुद्धं यावन्न लभते हि तावत् दुःखी।।

जाव जब यह जीव **सुद्धं** शुद्ध **सम्मद्दंसण** सम्यग्दर्शन **लभदे** प्राप्त करता जीव **ताव हि** तभी **सुही** सुखी होता है और **सुद्धं** शुद्ध **सम्मद्दंसण** सम्यग्दर्शन **ण** नहीं **लभदे** पाता है **ताव** तभी तक **दुही** दुःखी होता है। वीतराग सम्यग्दर्शन शुद्ध और सराग सम्यग्दर्शन अशुद्ध होता है क्योंकि मोह के बंध, उदय में सरागता तथा मोह के बंध उदय और सत्त्व के अभाव में वीतरागता होती है।

प्र.-4003 सम्यग्दर्शन के भी शुद्ध और अशुद्ध भेद होते हैं क्या?

उत्तर- सम्यग्दर्शन अपने आप में विश्वास रूप होने से इसमें शुद्ध अशुद्धपना नहीं है किंतु साहचर्य से शुद्ध और अशुद्धपना कहा गया है। इस कारण सम्यग्दर्शन के शुद्ध और अशुद्ध ये दो भेद हो जाते हैं।

प्र.-4004 शुद्ध सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस सम्यग्दर्शन में चल मलिन अगाढ़ दोष, शंकाकांक्षादि पाँच अतिचार दोष और 25 मलदोष नहीं लगते हैं ऐसे उपशम और क्षायिक सम्यग्दर्शन को शुद्ध सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-4005 अशुद्ध सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर- सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चल मलिन अगाढ़ दोष, शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा,

अन्यदृष्टिस्तव तथा 25 मलदोषों के होने से वेदक सम्यग्दर्शन को अशुद्ध सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्र.-4006 वेदक सम्यग्दर्शन और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में क्या अंतर है?

उत्तर- सम्यक्त्व प्रकृति के उदय का अनुभव करना वेदकसम्यग्दर्शन और सर्वघाति 6 प्रकृतियों के उदयाभाव में होने वाला क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है अथवा वेदकपना औदयिकभाव और 6 प्रकृतियों के उदयाभाव में क्षायोपशमिक भाव है यही अंतर है।

प्र.-4007 चल दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- **नानात्मीय विशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं।**
लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं।।
स्वीकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते।
अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोपि चेष्टते।। जी.का. २५ की टीका

अर्थः- देवशास्त्रगुरु में, जीवादि 27 तत्त्वों में और निजात्म श्रद्धान में नाना प्रकार की अस्थिरता होने को चलदोष कहते हैं जैसे अपने द्वारा स्थापित जिनबिंबादि मेरे हैं और दूसरों के द्वारा बनवाये गये ये दूसरों के हैं ऐसा मानकर भेद रूप में भक्ति करना चल दोष है।

प्र.-4008 मलिन दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- **तदप्यलब्ध माहात्म्यं पाकात्सम्यक्त्वकर्मणः।**
मलिनं मलसंगेन शुद्ध स्वर्णमिवोद्भवेत्।। जी.का. २५ की टीका में।

अर्थः- सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि जीव धर्म और धर्मायतनों के प्रति शंकादि दोषों के कारण मलिन श्रद्धानी होता है जैसे सोना या स्वच्छ वस्त्र तैल धूली आदि के संसर्ग से मलिन हो जाता है।

प्र.-4009 अगाढ़ दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- **स्थान एव स्थितं कंपमगाढ़मिति कीर्त्यते।**
वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता।।
समेप्यनंतशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं।
देवोऽस्मै प्रभुरेषोस्या इत्यास्था सुदृशामपि।। जी.का. २५ की टीका में।

अर्थः- जैसे वृद्ध पुरुष कांपता हुआ भी लाठी को न छोड़ता है, न दृढ़ता से पकड़ता है, न गिरता है ऐसे ही सभी अरिहंत शक्तियों में समान होने पर भी शांति के लिये भगवान शांतिनाथ की, उपसर्ग निवारण के लिये भगवान पार्श्वनाथजी की आराधना करता है सो इसे ही अगाढ़ दोष कहते हैं।

प्र.-4010 शंकातिचारदोष किसे कहते हैं, कैसे उत्पन्न होता है और किसमें लगता है?

उत्तर- सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में चौथे से सातवें गुणस्थान तक श्रद्धान के विषय में यह सही है या गलत ऐसा मन में संदेह युक्त होने को शंकाअतिक्रम, शंकाव्यतिक्रम, शंकातिचार दोष कहते हैं। ठीक ऐसे ही कांक्षा आदि चारों में अतिक्रम आदि चारों को प्रत्येक में लगा लेना चाहिये।

प्र.-4011 ज्ञान और चारित्र में शंका कहाँ से कहाँ तक होती है?

उत्तर- बुद्धिपूर्वक चौथे गुणस्थान से लेकर 7वें गुणस्थान तक छद्मस्थों के देशघाति सर्वघाति ज्ञानावरण कर्मोदय से ज्ञेय पदार्थों में शंका उत्पन्न होती है और अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनकषाय के तीव्रोदय से चारित्र में शंका होती है फिर भी ये शंकायें मोक्षमार्ग का समूल विनाश नहीं करती हैं किंतु मलिनता अवश्य ही लातीं हैं और यह मलिनता अधिक समय तक

रुकने से सर्व विनाश कर देतीं हैं।

प्र.-4012 तो क्या सभी छद्मस्थों के ज्ञान में शंका होती है?

उत्तर- हाँ, सभी के अवश्य ही होती है। जैसे अनेक ऋद्धियों से संपन्न चार ज्ञान के धारी गणधरों को भी ज्ञेय पदार्थों के विषय में शंका होती है तभी तो शंका के समाधानार्थ केवली भगवान से प्रश्न पूंछते हैं।

प्र.-4013 कांक्षा अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- धर्म को धारण कर, पालन कर सम्यग्दर्शन के साधनों के माध्यम से सांसारिक विषयभोगों की, पदवी की, वैभव आदि की आकांक्षा को कांक्षा अतिचार दोष कहते हैं।

प्र.-4014 यह कांक्षा अतिचार दोष क्यों उत्पन्न होता है?

उत्तर- अपने पास में मनोनुकूल इष्ट भोगोपभोग की सामग्री न होने से या होते हुये भी भोगने में रुकावट बाधक कारण होने से, अतृप्ति, कमजोरी होने से पुनः प्राप्ति एवं तृप्ति के लिये माया लोभ कषायोदय से या सभी कषायों से यह कांक्षा दोष उत्पन्न हो जाता है या उत्पन्न कर लिया जाता है।

प्र.-4015 विचिकित्सा ग्लानि करना अतिचार किसे कहते हैं?

उत्तर- जुगुप्सा कषायोदय से श्रद्धान के विषय में उत्पन्न घृणा को विचिकित्सा अतिचार कहते हैं।

प्र.-4016 जुगुप्सा करने से क्या हानि होती है?

उत्तर- धर्म और धर्मायतनों में घृणा के कारण उनके पास में न जाने से उनसे प्राप्त होने वाले गुण कैसे प्राप्त होंगे? जुगुप्सा से स्वयं के दोषों का क्षालन न होने से उनके गुणों की प्राप्ति नहीं हो सकती है यही हानि है।

प्र.-4017 अन्यदृष्टि प्रशंसा अतिचार दोष किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यादृष्टियों की कुछ लौकिक कलाओं को देखकर, सुनकर मन में प्रसन्न होने को अन्यदृष्टि प्रशंसा दोष कहते हैं किंतु उनसे वैरविरोध करना उनकी निंदा करना, घृणा करना ऐसा अर्थ मत समझना।

प्र.-4018 अन्यदृष्टिस्तव किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग से बाह्य मिथ्यादृष्टियों की काय वचन से गुणकीर्तन करने को अन्य दृष्टिस्तव कहते हैं।

प्र.-4019 अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि स्तव में क्या अंतर है?

उत्तर- अन्यदृष्टि प्रशंसा में तो मिथ्यादृष्टियों के गुणों को देखकर सुनकर मन में प्रसन्न होना है और अन्यदृष्टि स्तव में वचन से गुणकीर्तन करना है अतः इन दोनों में मनकृत और वचनकृतपने का ही अंतर है।

प्र.-4020 क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में सदा काल ही ये दोष लगते हैं क्या?

उत्तर- नहीं, सम्यक्त्व प्रकृति का उदय सदाकाल रहता है पर जब अघट घटनायें घटतीं हैं या भयंकर उपसर्ग परीषहों के होने पर सहन करने की, जीतने की शक्ति न होने से दोष उत्पन्न हो जाते हैं। यदि सर्वकाल दोष उत्पन्न होते रहें तो संवर निर्जरा और धर्मध्यान कैसे और कब होगा? अतः सदा नहीं लगते हैं।

प्र.-4021 शुद्ध सम्यग्दर्शन का क्या फल है?

उत्तर- यद्यपि यहाँ सामान्य से शुद्ध सम्यग्दर्शन का फल सुखी होना कहा है सो यहाँ उत्कृष्टलब्धि

रूप परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि यह अप्रतिपाती है और सरागियों की अवस्था प्रतिपाती होने से वे अनेक दुःखों को भोगते हैं जो आगम से जाना जाता है क्योंकि जब सम्यग्दृष्टि जीव नरक में जाता है तो वहाँ वह अभव्यों की तरह दुःखी होता है अन्यथा उसके आर्तध्यान, रौद्रध्यान, अशुभ लेश्यायें बन नहीं सकती हैं। यदि दुःखी नहीं हो तो असाताकर्म का आश्रवबंध भी नहीं हो सकता है।

प्र.-4022 जघन्यलब्धिवाला सम्यग्दर्शन दुःख से नहीं बचाता है तो यह शुद्ध क्यों?

उत्तर- यद्यपि यह वर्तमान में दुःख से नहीं बचाता है फिर भी क्रमशः धीरे धीरे वृद्धि को प्राप्त होता हुआ भविष्य में उत्कृष्ट लब्धि रूप परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन होकर सुखी बनायेगा ही।

प्र.-4023 अशुद्ध सम्यग्दर्शन क्या एकमात्र दुःख ही प्राप्त कराता है?

उत्तर- नहीं, यह वर्तमान में कदाचित् दुःखी करता हुआ भी भविष्य में सुखी ही करता है या सुख प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है क्योंकि अशुद्ध से ही शुद्ध की प्राप्ति होती है ऐसा नियम है।

प्र.-4024 अशुद्ध सम्यग्दर्शन से क्या संसार का विच्छेद हो सकता है?

उत्तर- अशुद्ध सम्यग्दर्शन से संसार का विच्छेद न होकर विच्छेद के उपायों में सहायक होता है।

नोटः- यहाँतक 4024 प्रश्नोत्तरों में 141वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 142वीं गाथा का अर्थ प्रारंभ करते हैं।

दुःख सुख का कारण

किं बहुणा वयणेण दु सव्वं दुक्खेव सम्मत्तविणा।
सम्मत्तेण संजुत्तं सव्वं सोक्खेव जाण खु।।142।।

किं बहुना वचनेन तु सर्वं दुःखमेव सम्यक्त्वं विना।
सम्यक्त्वेन संयुक्तं सर्वं सौख्यमेव जानीहि खलु।।

बहुणा बहुत **वयणेण** कहने से **किं** क्या **सम्मत्त** सम्यक्त्व के **विणा** बिना **दु** तो **सव्वं** सभी जीव को **दुक्खेव** दुःखी ही हैं अतः **खु** निश्चयतः **सम्मत्तेण** सम्यक्त्व **संजुत्तं** सहित **सव्वं** सभी को **सोक्खेव** सुखी **जाण** जानो।

प्र.-4025 बहुत बोलने से क्या ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सम्यग्दर्शन की महिमा का बारबार वर्णन कर आये हैं अतः कहाँ तक कहा जाये ऐसा कहा है।

प्र.-4026 सम्यग्दर्शन के बिना जीव दुःखी होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- सम्यग्दर्शन के बिना वस्तुओं में यथार्थ विश्वास नहीं होता है फिर भी असाता कर्मानुसार परिणमन करने से दुःखी ही होता है क्योंकि साक्षात् दुःखानुभवकारक असाता वेदनीय कर्म है। जैसे सोने को पीतल या पीतल को सोना समझने से क्या दुःख होता है? नहीं, वह तो उसी अजानकारी में परिग्रहानंदी रौद्रध्यानी होने से प्रसन्न है और जानकारी हो जाये तो भी कदाचित् दुःखी होता है क्योंकि लोक में नामसमझ व्यक्ति भी साता के उदय से सुखी और कदाचित् असाता के उदय से सम्यग्दृष्टि जीव भी दुःखी होता है।

प्र.-4027 तो फिर मिथ्यादृष्टि जीव दुःखी होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ दुःख से मतलब शारीरिक, मानसिक, आगंतुक, बाल्य, यौवन आदि के दुःख न लेकर जन्म मरण के दुःखों को ग्रहण करना चाहिये क्योंकि इन दुःखों से बचने के लिये रत्नत्रय धर्म ही परम औषधि है। रत्नत्रय धर्म के बिना जन्म जरामृत्यु का विनाश न होने से मिथ्यादृष्टि जीव दुःखी होता है ऐसा कहा है।

प्र.-4028 समस्त सुखों की प्राप्ति रत्नत्रय धर्म से होती है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- अव्याबाध, अनंतसुख की प्राप्ति रत्नत्रय धर्म के बिना नहीं होती है और ऐसा सुख छद्मस्थों को प्राप्त नहीं होता है अथवा समस्त सुख से उत्कृष्ट अभ्युदय सुख और निःश्रेयस सुख को ग्रहण करना चाहिये।

नोटः- यहाँतक 4028 प्रश्नोत्तरों में 142वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 143वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

दीर्घ संसार का कारण?

णिक्खेव णय पमाणं सद्दालंकार छंद लहियाणं।

णाडय पुराण कम्मं सम्म विणा दीहसंसारं।।143।।

निक्षेपनयप्रमाणं शब्दालंकारं छंदशः लब्धं।

नाटकपुराणकर्मं सम्यक्त्वं बिना दीर्घसंसारः।।

णिक्खेव निक्षेप **णय** नय **पमाणं** प्रमाण **सद्दालंकार** शब्दालंकार **छंद** छंदज्ञान **णाडय** नाटक **पुराण** शास्त्र ज्ञान **कम्मं** क्रियाओं को **लहियाणं** प्राप्त करके भी **सम्मविणा** सम्यक्त्व के बिना **दीह** दीर्घ **संसारं** संसार है।

प्र.-4029 निक्षेप किसे कहते हैं?

उत्तर- अनिश्चय का निराकरण कर, निश्चय की ओर, निर्णय की ओर ले जाने वाले उपायों को निक्षेप कहते हैं अथवा समीचीन विषय में निर्णय पूर्वक स्थिरता प्राप्त कराये, क्षेपण कराये उसे निक्षेप कहते हैं।

प्र.-4030 नय किसे कहते हैं?

उत्तर- जो संशय विपर्यय और अनध्यवसाय को निकाल कर वस्तु का एकदेश ज्ञान कराये उसे या ज्ञाता के अभिप्राय को या प्रमाण से गृहीत विषयों में से किसी एक अंश के जानने के उपाय को नय कहते हैं।

प्र.-4031 प्रमाण किसे कहते हैं?

उत्तर- स्वपर चतुष्टयानुसार यथानुरूप समस्त द्रव्य गुण पर्यायों के जानने वाले को प्रमाण कहते हैं।

प्र.-4032 शब्द किसे कहते हैं, भेद और परिभाषा क्या क्या है?

उत्तर- स्वर व्यंजनों के मेल को या क्रियापदों को, कृदंत, तद्धित या अर्थवान पदों को ही शब्द कहते हैं। अनेक भेद हैं। संज्ञा- किसी व्यक्ति या वस्तु के नाम को संज्ञा कहते हैं। सर्वनाम- जो सभी नामों के साथ में प्रयोग किये जाते हैं। अव्यय- जो कभी भी परिवर्तन को प्राप्त नहीं होते हैं, हमेशा अविनाश स्वभावी हैं, तीनों लिंगों में भी जो परिवर्तन को प्राप्त न हो उन्हें अव्यय कहते हैं। क्रियापद- जो जीवादि की चलने, उठने बैठने, खाने पीने आदि कार्यों को बतलाये उसे क्रियापद कहते हैं। समास- अलग अलग शब्दों में प्रत्ययों का लोपकर संक्षेप में कहने वालों को समास कहते हैं। संधि- दो या अनेक पदों को प्रत्यय सहित मिला देने को संधि कहते हैं। कृदंत- धातुओं से, क्रियापदों से क्त, क्तवतु, शतृ, शानच आदि प्रत्ययों से बने पदों को कृदंत कहते हैं। तद्धित- संज्ञा आदि शब्दों से अण् आदि प्रत्यय लगाकर बनाये गये विशेष और भिन्न अर्थ वाले शब्दों को तद्धित कहते हैं।

प्र.-4033 शब्द ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- शब्दों का व्युत्पत्तिअर्थ, रूढ़िअर्थ, लोकव्यवहारअर्थ, देशभाषानुसार जानने को शब्दज्ञान

कहते हैं।

प्र.-4034 अलंकार किसे कहते हैं?

उत्तर- भोगोपभोग की शुभ या अशुभ चेतन अचेतन सामग्री में सौंदर्यकारक साधनों को अलंकार कहते हैं अथवा शुभ अशुभ शब्द रचना में लौल्यताकारक वचनों को अलंकार कहते हैं।

प्र.-4035 अलंकार ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- किसी वस्तु या चेतनाचेतन सामग्री का कहाँ कैसे किस रूपमें सौंदर्यता, प्रशंसा हो इसकी जानकारी को अलंकार ज्ञान कहते हैं।

प्र.-4036 छंद किसे कहते हैं और छंदज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर- गद्य पद्य रचना की, उच्चारण करने की, गाने की पद्धति को छंद कहते हैं और इस पद्य को, मंत्र को किस लय से बोला जाये, गाया जाये उसके ज्ञान को छंदज्ञान कहते हैं ।

प्र.-4037 नाटक किसे कहते हैं, किन हेतुओं से प्रयोग में लेना चाहिये?

उत्तर- किसी उत्कृष्ट या निकृष्ट, पुण्यात्मा या पापात्मा, सज्जन या दुर्जन व्यक्ति के जीवन में, परिवार, समाज में, देश में घटी हुई शुभाशुभ घटनाओं को पात्र रूप में बनाकर प्रजा के बीच में बताने को नाटक कहते हैं। वास्तव में ना+अटक = नाटक। हे भव्यजीवो! ऐसी घटनायें अनंतवार घट चुकी हैं अतः अब इसमें अटकने, रमने और मोहित होने के लिये शेष कुछ नहीं है या महापुरुषों की घटनायें उत्थान के लिये अथवा हीनाचारियों की पतन कराने वाली घटनाओं को देखकर, सुनकर उनसे बचने के लिए उपयोगी होने से देखने सुनने योग्य है किंतु पुनः भोगविलास के लिये, वैर विरोध के लिये प्रयोग नहीं करना चाहिये।

प्र.-4038 पुराण किसे कहते हैं?

उत्तर- महान पुरुषों के या नीच पुरुषों के उत्थान पतन संबंधी आख्यानों का कथन करने वाले ग्रंथों को पुराण कहते हैं क्योंकि इन पुराणों में इनकी ऐसी ही घटनायें घटी हैं सो इनकी दिनचर्याओं का वर्णन है।

प्र.-4039 कर्म के भेद और इनका क्या फल है?

उत्तर- बिना इच्छा या स्वेच्छा के इष्टानिष्ट कार्यों को कर्म कहते हैं। भेद तीन हैं। नामः- पापकर्म, पुण्यकर्म और शुद्धकर्म। ये कर्म आत्मा को पाप कर्मों से लिप्त करते हैं। पाप को घटाकर पुण्य को बढ़ाते हैं, पाप पुण्य को क्षय कर मोक्ष को दिलाते हैं अतः ये कर्म संसार और मोक्षफल के दाता हैं।

प्र.-4040 ये गाथोक्त सभी परिणाम क्या फल देते हैं?

उत्तर- गाथोक्त सभी परिणाम रत्नत्रय के बिना दीर्घसंसार को और रत्नत्रय के साथ में मोक्षफल देते हैं।

प्र.-4041 गाथोक्त सभी परिणामों के स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- गाथोक्त सभी परिणामों के स्वामी सभी संसारी, मोक्षमार्गी प्राणी, संयमी, असयंमी, प्रमादी, अप्रमादी जीव हैं। मोही जीव संसार के लिये और ज्ञानी जीव मोक्ष के लिये स्वामी हैं।

प्र.-4042 दीर्घ संसार किसे कहते हैं?

उत्तर- अभव्यजीव, दूरानुदूरभव्यजीव, अनादि मिथ्यादृष्टिजीव की अपेक्षा अनंतानंत संसार को दीर्घ संसार कहते हैं। निकट भव्य जीव और सादि मिथ्यादृष्टि जीव की अपेक्षा अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल को दीर्घ संसार या अनंतकाल कहते हैं और अवधिज्ञानी मनःपर्यायज्ञानियों का विषय होने से इसे असंख्यात वर्ष या मतिज्ञान श्रुतज्ञान का विषय न होने से भी असंख्यातकाल कहते हैं।

नोटः- यहाँ 4042 प्रश्नोत्तरों में 143वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 144वीं, 145वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुखी दुःखी कौन?

वसदी पडिमोवयरणे गणगच्छे समयसंघजाइकुले।
सिस्सपडिसिस्स छत्ते सुयजाते कप्पडे पुत्थे।।144।।
पिच्छे संत्थरणे इच्छासु लोहेण कुणइ ममयारं।
यावच्च अट्टरुद्दं ताव ण मुँचेदि ण हु सोक्खं।।145।।

वसति प्रतिमोपकरणे गणगच्छेसमयसंघजातिकुले।
शिष्यप्रतिशिष्यच्छात्रे सुतजाते कर्पटे पुस्तके।
पिच्छिकायां संस्तरे इच्छासु लोभेन करोति ममकारं।
यावच्च आर्तरौद्रं तावन्न मुच्यते न हि सौख्यम्।।

वसदी वसतिका **पडिमोवयरण** प्रतिमा, पीछी कमण्डलु आदि उपकरणों में **गणगच्छे** गण, गच्छ में **समयसंघ** शास्त्र संघ **जाइकुले** जातिकुल **सिस्सपडिसिस्सछत्ते** संयमी शिष्यप्रतिशिष्य, असंयमी छात्र, **सुयजाते** पुत्रपौत्र, **कप्पडे** हाथ पैर पोंछने वाले कपड़े में **पुत्थे** पोथी में और वेस्टनों में **पिच्छे** पीछी में **संत्थरणे** संस्तरादि **इच्छासु** इच्छाओं में **लोहेण** लोभ से **ममयारं कुणइ** ममत्व करने वाला **यावच्च** जब तक **अट्टरुद्दं** आर्त रौद्रध्यान **ण मुंचेदि** नहीं छोड़ता है **ताव सोक्खं ण हु** तब तक सुखी नहीं होता है।

प्र.-4043 वसतिका, गृह और गृहस्थ किसे कहते हैं?

उत्तर- स्वामित्व, ममत्व के बिना गुफा, कोटर, धर्मशाला, मंदिर, खुले या बंद स्थानादि को वसतिका कहते हैं। यदि गुफा आदि में मेरापन आ गया तो इसे घर/गृह कहते हैं व निवास करने वाले को गृहस्थ कहते हैं।

प्र.-4044 स्वयं के द्वारा बनवाई गई वसतिका में साधुजन क्या निवास कर सकते हैं?

उत्तर- **परकिय णिलयणिवासा।।51।।** उत्तरार्ध बो.पा. दूसरों के द्वारा बनवाई गई धर्मशाला आदि में गृहत्यागी साधुजन निवास करते हैं, स्वकृत आवास में नहीं क्योंकि आवासदान देना गृहस्थों का कार्य है।

प्र.-4045 वसतिका और घर मकान में क्या अंतर है?

उत्तर- अधिकारी और ममत्व भाव के बिना निवासस्थान को वसतिका और गृद्धता सहित निवासस्थान को घर कहते हैं। अतः इन दोनों में वैराग्य और राग जैसा अंतर है।

प्र.-4046 प्रतिमा(मूर्ति) किसे कहते हैं, भेद और नाम तथा इसे उपकरण क्यों कहा?

उत्तर- जिस किसी व्यक्ति या पशु पक्षी की प्रतिकृति आकार को प्रतिमा कहते हैं। चेतन अचेतन और इनकी प्रतिकृतियां प्राणियों के उपकार अपकार में सहायक होने से आ. श्री ने प्रतिमाजी को उपकरण कहा है। भेद दो हैं। नामः- अपने इष्ट की, आराध्य की, वीतराग, निर्विकार, सद्धर्मानुसार प्रतिकृति प्रतिमा को शुभउपकरण और विषयकषाय उत्पादक विकार रूप पापानुसार प्रतिकृति प्रतिमा को अशुभउपकरण कहते हैं। यहाँ मोक्षमार्ग का प्रसंग होने से नवदेवताओं की प्रतिमा को ग्रहण करना चाहिये।

प्र.-4047 श्रावकों की 11 प्रतिमाओं में और प्रतिकृति में क्या अंतर है?

उत्तर- श्रावकों की 11 प्रतिमायें अणुव्रत रूप चारित्रवृद्धि के अंश हैं जो त्रियोगों से पालन की जातीं हैं, इनसे कर्मों की असंख्यातगुणी निर्जरा, नवीन कर्मों का संवर होता है एवं धर्मायतनों की प्रतिकृति रूप प्रतिमायें अचेतन हैं, आराधनीय हैं, मोक्षमार्ग के लिए साधन स्वरूप हैं यही इनमें अंतर हैं।

प्र.-4048 महाव्रती साधुओं की भी क्या प्रतिमायें होती है?

उत्तर- हाँ, ''बारसविहेसुभिक्खु पडिमासु'' प्रतिक्रमण में अवश्य ही महाव्रती साधुओं की पालन करने योग्य 12 प्रतिमायें होती है जो इस प्रकार हैं। नामः- उत्तम संहननवाला मुनि किसी देश में उत्कृष्ट दुर्लभ आहार ग्रहण करने का नियम लेता है कि इस महिने के अंदर मुझे ऐसा आहार मिलेगा तो ग्रहण करूंगा अन्यथा नहीं ऐसी प्रतिज्ञा करना पहली प्रतिमा है। महिने के अंतिम दिन प्रतिमायोग धारण करता है तत्पश्चात् उस आहार से सौगुणा दुर्लभ आहार दूसरे महिने के अंदर मिलेगा तो ग्रहण करूंगा अन्यथा नहीं ऐसी प्रतिज्ञा करना दूसरी प्रतिमा है। इसी तरह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आहार 3 महिने के अंदर, 4 महिने के अंदर, 5 महिने के अंदर, 6 महिने के अंदर, 7 महिने के अंदर मिलेगा तो ग्रहण करूंगा अन्यथा नहीं क्रमशः ऐसी 3री, 4थी, 5वीं, 6वीं और 7वीं प्रतिमा है। फिर 3 दिन तक अवग्रह करना फिर 7दिन के भीतर ऐसा आहार ग्रहण करूंगा नहीं तो नहीं ऐसा संकल्प करना 8वीं प्रतिमा है फिर तीन ग्रास लेने का नियम 9मीं प्रतिमा, दो ग्रास लेने का नियम 10वीं प्रतिमा, एक ग्रास लेने का नियम 11वीं प्रतिमा फिर रातदिन प्रतिमायोग से रहना 12वीं प्रतिमा है तत्पश्चात् रात्रिप्रतिमायोग से स्थिर होकर प्रातःकाल केवलज्ञान प्राप्त करता है।

प्र.-4049 गण किसे कहते हैं, गच्छ किसे कहते हैं?

उत्तर- **गणः स्थविर संततिः** अ. 9 सू. 24 स. सि.। स्थविरों की संतति को गण कहते हैं। **तिपुरिसओगणो तदुवरिगच्छो** ध. 13। तीन पुरुषों के समूह को गण और इससे आगे मुनियों की परंपरा को गच्छ कहते हैं। **गच्छे सप्त पुरुष संताने** सात पुरुषों की परंपरा को अर्थात् सात पीढ़ी को गच्छ कहते हैं। मू.चा. पंचा. 389

प्र.-4050 संतति या परंपरा किसे कहते हैं?

उत्तर- पीढ़ी दर पीढ़ी को या शिष्य प्रति शिष्यों के समूह को संतति या परंपरा कहते हैं।

प्र.-4051 कुल किसे कहते हैं?

उत्तर- **दीक्षकाचार्य शिष्यसंस्त्यायः कुलम्-** स. सि. अ. 9 सू. 24 दीक्षाचार्य के शिष्य समुदाय को कुल कहते हैं। **लोकदुगुंच्छा रहितत्त्वेन जिनदीक्षा योग्यं कुलं भण्यते** लौकिक दोषों से, घृणा से रहित जिनदीक्षा के योग्य पात्रों की शुद्ध परंपरा को कुल कहते हैं। प्र. सा. ता.वृ. गाथा 203

प्र.-4052 समय, संघ एवं जाति किसे कहते हैं?

उत्तर- धर्म को समय कहते हैं। ऋषि मुनि यति अनगार के समूह को या दर्शनाराधना, ज्ञानाराधना, चारित्राराधना, तपाराधना के समूह को या मुनि आर्यिका क्षुल्लक क्षुल्लिका को चतुर्विध संघ कहते हैं और इनके समूह को जाति भी कहते हैं।

प्र.-4053 शिष्य किसे कहते हैं और प्रतिशिष्य किसे कहते हैं?

उत्तर- दीक्षाचार्य से दीक्षित साधकों को शिष्य कहते हैं और शिष्यों के शिष्य को प्रतिशिष्य कहते हैं।

प्र.-4054 छात्र किसे कहते हैं?

उत्तर- अध्ययन करने वाले साधकों को, श्रावक श्राविकाओं को छात्र छात्रा कहते हैं। ये अपने द्वारा भी दीक्षित हो सकते हैं और दूसरों के द्वारा भी दीक्षित हो सकते हैं।

प्र.-4055 सुयजात किसे कहते हैं?

उत्तर- पुत्र की संतान नातीपोते सुयजात और पुत्री की संतान धेवताधेवती को सुयाजात कहते हैं।

प्र.-4056 गृह परिवार के त्यागी मुनियों के नाती पोते कहाँ से आ गये?

उत्तर- मुनियों के अनेक भेद होने से कोई मुनि रागांश के कारण अपने शरीर संबंधी परिवार के प्रति मोहित होकर नाती पोतों के प्रति प्रेमभाव जागृत होने से ग्रंथकारजी ने उनके लिये कहा है

या अनेक साधुजन गृहस्थों जैसे रिश्ते मानकर संघ में वचनालाप करते हैं कि ये हमारे पिताजी है, काकाजी है, मामा, फूफा, चाचा, भतीजा आदि शब्दों को उच्चारण कर व्यवहार करने लगते हैं। ऐसा व्यवहार चतुर्विध संघों में देखा जा रहा है अतः पूर्व संस्कारों के कारण ऐसे रिश्ते हो जाते हैं।

प्र.-4057 मुनिजन वस्त्रों में, पुस्तकों में मोह को क्यों प्राप्त हो जाते हैं?

उत्तर- यह मेरा हाथ पैर पोंछने वाला वस्त्र है, आहार के बाद में दातागण शरीर को वस्त्रों से पोंछते हैं, दीर्घशंका लघुशंका आदि करने के बाद में श्रावकगण गीले हाथ पैर मुंह को पोंछते हैं, गर्मी के दिनों में पसीना पोंछते हैं, शास्त्रों के अछार होते हैं, स्वाध्याय के समय चौकी में कपड़ा बिछा देते हैं, धूल आदि के लग जाने पर साबुन सर्फ से भी धोते हैं या वस्त्रों के समान मुलायम सुंदर मनोहर चटाई घास आदि की शैय्या लगाकर सोने को, ओढ़ने को वस्त्र कहते हैं क्योंकि वस्त्र अनेक प्रकार के माने गये हैं जैसे घास के, पत्ते के, छाल के, कपास के, रेशम के, चर्म के, टेरीकॉट, टेरालीन के, जूट आदि। शास्त्रजी कागज में, ताड़पत्रों में, धातुओं में लिखे लिखाये जाते हैं, उकेरे जाते हैं, जीर्ण शीर्ण होने पर पुनः जिल्द बंधवाई जाती है, पुनः प्रकाशित कराई जाती है अतः इन कार्यों में मुनिजन पूर्वसंस्कारवश ममत्वपने को प्राप्त हो जाते हैं।

प्र.-4058 पास में होने पर भी बिना ममत्व के रक्षा कैसे कर सकते हैं?

उत्तर- धरोहर मानकर रक्षा करने से ममत्व भाव नहीं आता है क्योंकि धरोहर परत्व का सूचक है। जैसे बैंक के लोकर में आभूषण रखे हैं तो धरोहर का मालिक बैंक नहीं है केवल धरोहर मानकर ही रक्षा करता है वह केवल किराये का अधिकारी है, वस्तु का नहीं ऐसे ही आचार्य संघस्थ सभी साधकों की, सहायकों की जिनेंद्र की धरोहर मानकर ही रक्षा करते हैं, आहार औषधि वस्त्रादि की व्यवस्था करते कराते हैं। यदि माँ बाप जैसा पारिवारिक संबंध मानकर रक्षा व्यवस्था करने लगें तो दुष्कर्मों को बांधकर दुर्गति के पात्र बनते हैं और श्री जिनेंद्र की धरोहर मानकर ही संघ का संरक्षण संवर्धन करते हैं जिससे सद्गति के पात्र बनते हैं।

प्र.-4059 पीछी किसे कहते हैं इसमें कितने गुण होते हें और कौन धारण करते हैं?

उत्तर- मयूर पंखों से बनी हुई पीछी से त्रसजीवों की रक्षाकर प्राणी संयम पाला जाता है मोक्षमार्ग की रक्षा करते हुए मुनिव्रत पाला जाता है इसे प्रतिलेखन भी कहते हैं। मू.चा. अ.10 गा. 912 में भी कहा है।

रयसेदाणमगहणं मद्दव सुकुमालदा लघुत्तं च।
जत्थेदे पंच गुणा तं पडिलिहणं पसंसंति।। 97।। भ. आ.

अर्थः- 1. धूलि 2. पसीने को न पकड़ती हो 3. कोमल स्पर्श वाली हो 4. सुकुमार हो 5. हल्की हो ऐसी इन 5 गुणवाली प्रतिलेखना की महाव्रती मुनिजन प्रशंसा करते हैं।

प्र.-4060 मुनि इसे क्यों धारण करते हैं और इससे क्या लाभ है?

उत्तर- मुनिजन अहिंसामहाव्रत, संयमव्रत, धर्मरक्षणार्थ पीछी ग्रहण करते हैं। जैसे पीछी में ये गुण हैं वैसे ही गुण अपनी आत्मा में उत्पन्न करते हैं। यदि पीछी के समान परिणाम न हुए तो पीछी ग्रहण करना व्यर्थ है।

प्र.-4061 संस्तर किसे कहते हैं, कितने प्रकार के होते हैं, नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- विश्राम के स्थान को संस्तर कहते हैं। अनेक भेद हैं। जैसे पत्थर, मिट्टी, घास, पाटा, जूटादि।

प्र.-4062 गाथोक्त परिणामों में, साधनों में मुनिजन क्या करते हैं?

उत्तर- मुनिजन पार्श्वस्थादि की तरह भोगाकांक्षा पूर्वक लोभ से मूर्छाकर आर्तध्यान रौद्रध्यान करते हैं।

प्र.-4063 पार्श्वस्थ आदि ये पाँच मुनि कैसे होते हैं?

उत्तर- **पासत्थो य कुसीलो संसत्तोसण्ण मिगचरित्तो य।**
दंसणणाण चरित्ते अणिउत्ता मंद संवेगा।।995।। मू.चा. षडा.

अर्थ:- पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त, अवसन्न और मृगचारित्री ये पाँचों रत्नत्रय से पतित एवं मंदवैरागी होते हैं।

प्र.-4064 पार्श्वस्थमुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- **वसहीसु य पडिबद्धो अहवा उवयरणकारओ भणियो।**
पासत्थो समणाणं पासत्थो णाम सो होई।। मू.चा. षडा.

अर्थ:- वसतिकाओं में आसक्त, भोगोपभोग के उपकरणों को बनाने वाले और मुनियों के निकट में रहने वाले रत्नत्रय से पतित मुनि को पार्श्वस्थ मुनि कहते हैं।

प्र.-4065 कुशीलमुनि/पदभ्रष्टमुनि कैसे होते हैं?

उत्तर- **कोहादिकलुसिदप्पा वयगुणसीलेहि चावि परिहीणो।**
संघस्स अयसकारी कुसीलसमणो त्ति णायव्वो।। मू.चा. षडा.

अर्थ:- क्रोधादि कषायों से अपनी आत्मा को कलुषित करने वाले, व्रत गुण और शील से हीन, संघ को बदनाम करने वाले, अपयश फैलाने वाले कुशीलमुनि होते हैं।

प्र.-4066 संसक्त मुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- **वेज्जेण व मंतेण व जोइसकुसलत्तणेण पडिबद्धो।**
राजादी सेवंतो संसत्तो णाम सो होई।।995।। मू.चा. षडा.

अर्थ:- वैद्यशास्त्र, मंत्रशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र में कुशल होने से इनके द्वारा आजीविका चलाने में प्रतिबद्ध, राजा आदि की सेवा करने वाले संसारमार्गी मुनियों को संसक्त मुनि कहते हैं।

प्र.-4067 अवसन्नमुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- **जिणवयण मयाणंतो मुक्कधुरो णाणचरण परिभट्टो।**
करणालसो भवित्ता सेवदि ओसण्णसेवाओ।। मू.चा. षडा.

अर्थ:- जो जिनवचन को न जानते हुए चारित्र रूपी धुरा को छोड़ चुके हैं, ज्ञान और चारित्र से भ्रष्ट हैं, 13 प्रकार की क्रियाओं को पालने में आलसी विषयकषाय युक्त मुनि को अवसन्न मुनि कहते हैं।

प्र.-4068 मृगचारीमुनि किसे कहते हैं?

उत्तर- **आयरिय कुलं मुच्चा विहरइ एगागिणो य जो समणो।**
जिणवयणं णिंदंतो सच्छंदो होइ मिगचारी।। मू.चा. षडा.

अर्थ:- आचार्य संघ को छोड़कर एकाकी विहार करने वाले को, जिनवचनों की, जिनधर्म की निंदा करने कराने वाले को, स्वच्छंद चर्या करने वाले सांढ़ की तरह प्रवृत्तिवाले मुनि को मृगचारी मुनि कहते हैं।

प्र.-4069 आर्त रौद्रध्यान को छोड़ने के लिये क्या करना चाहिए?

उत्तर- आर्त रौद्रध्यान को छोड़ने के लिए भोगाकांक्षा पूर्वक विषयकषायों का त्याग करना चाहिए।

प्र.-4070 आर्त रौद्रध्यान के त्याग से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- आर्त रौद्रध्यान के त्याग से धर्मध्यान और शुक्लध्यान की प्राप्ति होती है और इन ध्यानों से आत्मसुख प्राप्त होता है। यदि आर्त रौद्रध्यान नहीं छोड़ा तो आत्मसुख प्राप्त नहीं हो सकता तथा

इन दुर्ध्यानों से इंद्रियसुखानुभव भी नहीं हो पाता है यही फल है।

प्र.-4071 क्या आत्म सुख के लिये आर्त रौद्रध्यान का त्याग करना जरूरी है?

उत्तर- आत्मसुख की प्राप्ति के लिये केवल इनका त्याग ही पर्याप्त नहीं है किंतु इनके त्याग के साथ साथ इतना और जरूरी है कि संसार शरीर भोगों से विरक्ति पूर्वक संयम सहित मुनिव्रत धारण करने से, निश्चल धर्मध्यान शुक्लध्यान से और घातियाकर्मों के क्षय से शाश्वत अव्याबाध आत्मसुख प्राप्त होता है।

नोटः- यहाँतक 4071 प्रश्नोत्तरों में 145वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 146वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कर्मों का क्षय कैसे?

मिहिरो महंधयारं मरुदो मेहं महावणं दाहो।

वज्जो गिरिं जहा विणासिज्जइ सम्मं तहा कम्मं।।146।।

मिहिरो महांधकारं मरुत् मेघं महावनं दाहः।

वज्रो गिरिं यथा विनाशयति सम्यक्त्वं तथा कर्म।।

जहा जैसे **मिहिरो** सूर्य **महंधयारं** अंधकार को **मरुदो** पवन **मेहं** मेघ को **दाहो** अग्नि **महावणं** महावन को **वज्जो** वज्र **गिरिं** पर्वत को **विणासिज्जइ** विनष्ट कर देता है **तहा** वैसे ही **सम्मं** यह सम्यग्दर्शन **कम्मं** अनादि सादि कालीन कर्मों को नष्ट कर देता है।

प्र.-4072 अनादिसादिकालीन कर्मों का क्षय किस उपाय से होता है?

उत्तर- दर्शनमोह की 7 प्रकृतियों के उपशम से उपशमसम्यग्दर्शन और क्षय से क्षायिकसम्यग्दर्शन होता है किंतु कृतकृत्य वेदकसम्यग्दर्शन से अनंत संसार रूप मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी आदि का क्षय होता है।

प्र.-4073 रत्नत्रय धर्म कर्मों का क्षय किस प्रकार से करता है?

उत्तर- जैसे सूर्योदय से महान अंधकार नष्ट हो जाता है, हवा से महामेघ कहीं के कहीं उड़कर चले जाते हैं, अग्नि से सारा जंगल जल जाता है, बिजली के गिरने से महान पर्वत के, पत्थर की शिला के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं ऐसे ही रत्नत्रय से अनादि एवं सादिकालीन समूल कर्मपिंड क्षय किये जाते हैं।

प्र.-4074 क्या सूर्योदय से अंधकार नष्ट हो जाता है, क्या भूत पर्याय वापिस आती हैं?

उत्तर- हाँ, होता ही है एक ही गुण की सप्रतिपक्षी अर्थपर्यायें प्रागभाव प्रध्वंसाभाव को प्राप्त होती रहतीं हैं पर व्यंजन पर्याय ऐसी नहीं है पुद्गल की व्यंजन पर्याय और अभव्यजीव की व्यंजन पर्याय अनादिअनंत है शुद्ध जीव की व्यंजन पर्याय सादिअनंत है तथा पुद्गल स्कंधों की अलग[2] व्यंजनपर्यायें एकसाथ एकसमय में एकस्थान पर अनेक नहीं रह सकती हैं किंतु एक व्यक्त और शेष अव्यक्त रहती हैं तभी तो सूर्यास्त होने पर या बादलों के आने पर प्रकाश को हटाकर अंधकार तथा अंधकार को हटाकर प्रकाश आ जाता है और जो ये प्रकाश अंधकार पर्याय वापिस आयीं हैं वे भूत पर्याय न होकर सादृशसामान्य हैं।

प्र.-4075 तो फिर यह उदाहरण क्यों दिया?

उत्तर- कुछ दृष्टांत एकदेश और कुछ दृष्टांत सर्वदेश घटित होते हैं अतः इस उदाहरण से यहाँ केवल इतना ही अर्थ इष्ट है कि वर्तमान में अंधकार पर्याय का अभाव हुआ है। भविष्य में अंधकार आयेगा या नहीं ऐसा अर्थ ग्रहण नहीं करना है किंतु आत्मा की विकारी पर्यायें समूल विनष्ट होने

पर पुनः वापिस नहीं आतीं।

प्र.-4076 कौन से उदाहरण एकदेश और सर्वदेश होते हैं?

उत्तर- जैसे गाय सींगवाली होती है पर सभी गायों में सींग नहीं पाये जाते या दीपक सर्वत्र प्रकाश करता है किंतु दीपक के नीचे अंधेरा होता है अतः ये उदाहरण एकदेश हैं और अग्नि उष्ण है आत्मा ज्ञाताद्रष्टा है ये उदाहरण सर्वदेश हैं क्योंकि ये सर्वकाल होते हैं।

प्र.-4077 हवा से ताड़ित मेघ की तरह क्या कर्म पुनः संबंध को प्राप्त हो जाते हैं?

उत्तर- हवा वायुकायिकजीव है तो मेघ जलकायिक जीव है ये दोनों एक दूसरे को ताड़ित कर भगा देते हैं पर समूल रूप से विनाश को प्राप्त नहीं होते हैं किंतु अनुकूल साधनों के मिलने पर पुनः वापिस आ जाते हैं ऐसे ही रत्नत्रय से समूल कर्मों का क्षय होने पर पुनः बंध को प्राप्त नहीं होते हैं।

प्र.-4078 जले हुए बीजवत् ही पुद्गल का द्रव्यपने से अभाव हो जाता है क्या?

उत्तर- नहीं, बीज के जलाने पर बीजांकुर नष्ट हो जाते हैं पर पुद्गलपने का अभाव नहीं होता है ऐसे ही भाव- विकारों के नष्ट होने पर भी जीवद्रव्य का अभाव नहीं होता है।

प्र.-4079 वज्रपात से पर्वत के टुकड़ों के समान क्या कर्मों के भी खंड[2] हो जाते हैं?

उत्तर- जैसे वज्रपात से पर्वत के टुकड़े[2] हो जाते हैं वैसे ही ध्यान से कर्मों के टुकड़े नहीं होते हैं किंतु निर्जरा होने पर ये कर्मस्कंध कदाचित् परमाणुपने को और कर्मपने का संस्कार बना रहा तो पुनः कर्मपने को भी प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि पंचपरावर्तन करते समय गृहीत, अगृहीत और मिश्रकर्म पुद्गलपिंड को अनंतवार ग्रहण करके छोड़ता है ऐसा कहा है किंतु भावों के क्षय होने पर भावों का अस्तित्व नहीं रहता है क्योंकि एक जीव के भावों का दूसरे जीवों के भावों के साथ में अत्यंताभाव भी है पर द्रव्यकर्मों का दूसरे जीवों के साथ में अत्यंताभाव नहीं है। जैसे जिन त्रस स्थावर जीवों ने जिन पुद्गल पिंडों को कर्म, नोकर्म रूप में भोगकर छोड़ा है उन्हीं पुद्गलपिंडों को पुनः चारों गतियों के जीव भी ग्रहण करते हैं तथा मनुष्यों ने उन पुद्गलपिंडों को मलमूत्र, धातु उपधातु रूप से परिणमा कर छोड़ दिया है तो उन पुद्गलपिंडों को पुनः मनुष्य पशुपक्षी भोजन रूप में ग्रहण कर लेते हैं अतः कर्म क्रमशः नोकर्म पिंड रूप और परमाणु भी बन सकते हैं।

प्र.-4080 कर्म क्षय हो जाते हैं तो क्या इनका पुद्गलपने से भी क्षय हो जाता है?

उत्तर- आत्मा से पृथक् होते समय इनका पुद्गलपने से क्षय न होकर कर्मपने से क्षय को प्राप्त होते हैं। इन दो **ततश्चनिर्जरा** और **तपसा निर्जरा च** सूत्रों से कर्मों की अवस्थायें कैसी होती हैं यह समझ सकते हैं।

नोट:- यहाँतक 4080 प्रश्नोत्तरों में 146वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 147वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यक् रतन की महिमा

मिच्छंधयाररहियं हियय मज्झम्मि य सम्मरयणदीवकलावं।

जो पज्जलइ स दीसइ सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं।।147।।

मिथ्यात्वांधकार रहितं हृदय मध्ये एव सम्यक्त्व रत्नदीप कलापं।

यो ज्वालयति सः पश्यति सम्यक् लोकत्रय जिनोद्दिष्टम्।।

जो जो **हिययमज्झम्मिय** मन में **मिच्छंधयाररहियं** मिथ्यांधकार रहित **सम्मरयणदीवकलावं** सम्यक्त्वरूपी रत्नदीपसमूह को **पज्जलइ** प्रज्ज्वलित करता है **स** वह **लोयत्तयं** तीनों लोकों को **सम्मं** भली प्रकार से **दीसइ** देखता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्रदेव ने कहा है।

प्र.-4081 यहाँ मिथ्यात्व को अंधकार की उपमा क्यों दी है?

उत्तर- जैसे लोक में घोर अंधकार होने से कुछ भी दिखाई नहीं देता ऐसे ही स्व पर और उभय में यथार्थ विश्वास न कर पाने से मिथ्यात्व को अंधकार की उपमा दी है। इन दोनों अंधकारों में इतना ही अंतर है कि बाह्यांधकार में केवल बाह्य वस्तुएं दिखाई नहीं देतीं तो मिथ्यात्वांधकार में स्व पर का प्रतिभास नहीं होता है। मिथ्यात्व अंधकार स्वयं का घातक होता हुआ साथ में आने वालों का भी घात करता है जैसे पत्थर की नाव डूबती और डुबाती है ऐसे ही यह मिथ्यादृष्टि जीव संसार में डूबता डुबाता है।

प्र.-4082 इन दोनों अंधकारों को समझने के लिये क्या उदाहरण है?

उत्तर- रंगीनचश्मा होने से बाह्य वस्तुयें रंगीन दिखाई देती हैं, दर्पण मलिन होने से अपना प्रतिबिंब मलिन दिखाई देता है ऐसे ही बाह्यांधकार चश्मा के समान है तो मिथ्यात्वांधकार दर्पण के समान है।

प्र.-4083 तो दोनों अंधकार हानिकारक हैं क्या?

उत्तर- व्यवहारधर्म व्रत समिति आदि गुणों को पालने के लिये बाह्यांधकार हानिकारक है तो आत्म साधना के लिये मिथ्यात्वांधकार हानिकारक है। अतः आत्मा का जितना पतन बाह्यांधकार से नहीं होता है उससे कई गुणा अधिक मिथ्यात्वांधकार से होता है। कदाचित् बाह्यांधकार में आत्मसाधना हो सकती है पर मिथ्यात्वांधकार में आत्म विराधना ही होती है, आत्मसाधना नहीं अतः दोनों अंधकार हानिकारक ही हैं।

प्र.-4084 सम्यग्दर्शन को दीपक क्यों कहा?

उत्तर- जैसे लौकिक अंधकार को प्रज्ज्वलित दीपक नष्ट कर देता है वैसे ही क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन मिथ्यात्वांधकार को नष्ट कर देता है इसलिए यहाँ सम्यग्दर्शन को दीपक कहा है।

प्र.-4085 इन दोनों प्रकाशों में क्या अंतर है?

उत्तर- प्रज्ज्वलित बाह्य दीपक से बाह्य वस्तुएं यथावत् दिखाई देती है जिससे धर्मात्मागण धर्माचरण को, व्यवहार धर्म को पालते हुए, धर्म प्रभावना करते हुए स्वपर कल्याण करते हैं किंतु सम्यग्दर्शन रूपी दीपक से सभी वस्तुऐं स्व स्व लक्षणों के द्वारा पृथक् पृथक् प्रतिभासित होती हैं यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-4086 लौकिक दीपक से क्या और कितना दिखाई देता है?

उत्तर- लौकिक दीपक से भौतिक पदार्थ, भोगोपभोग की और धर्म की सामग्री सीमित दिखाई देती है।

प्र.-4087 रत्नत्रय रूपी लोकोत्तर दीपक से क्या और कितना दिखाई देता है?

उत्तर- सर्वज्ञ को रत्नत्रय रूपी लोकोत्तर दीपक से समस्त चराचर पदार्थ दिखाई देते हैं और ऐसे ही अनंतानंत ज्ञेय पदार्थ हो जायें तो भी सबको जानने देखने की सामर्थ्य प्राप्त हो चुकी है किंतु छद्मस्थों के रत्नत्रय से सीमित चराचर पदार्थ जानकारी में अनुभव में आते हैं, संपूर्ण नहीं।

प्र.-4088 मिथ्यात्व अंधकार कहाँ पर रहता है और किस रूप में स्थित है?

उत्तर- द्रव्यमन पौद्गलिक होने से इसका स्थान तथा आकार हृदय में नियत है, स्थिर है, न सदसत् विचार करता है, विषयकषायों को, त्याग वैराग्य को, रत्नत्रय को और मिथ्यात्रय को प्राप्त नहीं होता है। हाँ, द्रव्यमन के माध्यम से सर्वांग में भावमन उत्पन्न होता है यह मिथ्यात्व रूपी अंधकार समस्त आत्मप्रदेशों में होने से आत्मा अपने स्वरूप को न देख पाता है और न अनुभव कर पाता है।

प्र.-4089 जब मिथ्यात्व अंधकार आत्मा में है तो सम्यक्त्व रूपी दीपक कहाँ पर है?

उत्तर- ये दोनों ही परस्पर में विरोधी पर्यायें शीतोष्णवत् एकसाथ आत्मा में व्यक्त रूप में नहीं रहतीं हैं किंतु मिथ्यात्व सम्यक्त्व को या सम्यक्त्व मिथ्यात्व को हटाकर सद्भावपने को प्राप्त होतीं हैं।

प्र.-4090 तो क्या ऐसा सर्वथा नियम है कि ये दोनों एकसाथ नहीं रह सकते हैं?

उत्तर- सर्वथा ऐसा नियम नहीं है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व दोनों तीसरे गुण. में मित्रवत् एकसाथ रहते हैं।

प्र.-4091 आदेश किसे कहते हैं?

उत्तर- **शत्रुवदादेशः-** जैसे शत्रु शत्रु को हटाकर आसन पर बैठता है ऐसे ही किसी वर्ण या प्रत्यय आदि के स्थान पर कुछ नये प्रत्यय आदि के होने को आदेश कहते हैं। जैसे **आदाय** में क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर ल्यप् आदेश हुआ। यहाँ क्त्वा को हटाकर ल्यप् आदेश हुआ है। आ+दा+य= आदाय।

प्र.-4092 आगम किसे कहते हैं?

उत्तर- शब्द या धातु के बीच या अंत में जो अक्षर या वर्ण और भी जुड़ जाते हैं उन्हें आगम कहते हैं। जैसे पयस् का पयांसि बना इसमें न् का बीच में आगम हुआ है। **मित्रवदागमः** मित्रवत् आगम होता है।

प्र.-4093 यहाँ सम्यग्दर्शन से तीनों लोक दिखाई देते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- क्षायिक उपयोग और परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन एकसाथ एकसमय में होने से समस्त ज्ञेय पदार्थ जाने देखे और विश्वास किये जाते हैं अतः अभेद विवक्षा में तीनों लोक भलीभांति दिखाई देते हैं ऐसा कहा है।

प्र.-4094 श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है तो सम्यग्दर्शन से दिखाई देते हैं ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि दृश् धातु का अर्थ देखना और विश्वास करना होता है अतः प्रसंगानुसार अर्थ लिया जाता है इसलिए यहाँ सम्यक्- भली प्रकार से, दर्शन- देखने को सम्यग्दर्शन कहते हैं ऐसा कहा है।

नोटः- यहाँतक 4094 प्रश्नोत्तरों में 147वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 148वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

आगमाभ्यास का फल?

पवयणसारब्भासं परमप्पज्झाणकारणं जाण।

कम्मक्खवणणिमित्तं कम्मक्खवणे हि मोक्ख सुहं।।148।।

प्रवचनसाराभ्यासं परमात्मध्यानकारणं जानीहि।

कर्मक्षपणनिमित्तं कर्मक्षपणे हि मोक्षसुखम्।।

पवयणसारब्भासं आगमाभ्यास से **परमप्पज्झाणकारणं** शुद्धात्मध्यान और यह **कम्मक्खवण** कर्मक्षय में **णिमित्तं** कारण तथा **कम्मक्खवणे** कर्मक्षय से हि ही **मोक्खसोक्खं** मोक्षसुख मिलता है ऐसा **जाण** जानो।

प्र.-4095 प्रवचन व प्रवचनसार किसे कहते हैं, इनका फल तथा क्या करना चाहिये?

उत्तर- अल्पज्ञ साधुओं और गृहस्थों के उपदेश को प्रवचन कहते हैं। इनके सदोष प्रवचन के निराकरणार्थ प्रवचन के साथ में ''सार'' पद जोड़ा है अतः पूर्ण निर्दोष प्रवचनसार जिनेंद्रोक्त ही हो सकता है अन्य वक्ताओं के सदोष प्रवचन संसार समुद्र से तारक पारक नहीं हो सकते हैं। सदोष प्रवचन अनेकांत विरोधी होने से कल्याणमार्ग के बाधक और घातक हैं अतः जिनोक्त प्रवचनसार का अभ्यास करना चाहिये।

प्र.-4096 प्रवचनसार का अर्थ आ. श्री कुंदकुंदजी कृत करने में क्या दोष है?

उत्तर- यहाँ प्रवचनसार पद से आ. श्री कुंदकुंदजी कृत प्रवचनसार के ग्रहण करने पर शेष समस्त

आगमों के अनभ्यास करने का प्रसंग आयेगा किंतु केवल एक ही शास्त्र से समस्त आगमों का हृदय और आचार्यों का अभिप्राय समझ में नहीं आ सकता है और मोक्षमार्ग की सिद्धि भी नहीं हो सकती है इसलिए जिनेंद्रोक्त प्रवचनसार के ग्रहण करने से समस्त आगम और गुरुओं पर भी विश्वास बन जाता है एवं जिनागम में आ. श्री कुंदकुंद कृत प्रवचनसार का भी ग्रहण हो जाता है केवल एक ग्रंथ और ग्रंथकर्ता में विश्वास होने से, शेष में अविश्वास होने पर मिथ्यात्वपने का भी प्रसंग आता है। कहा भी है-

पढमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्त णिद्दिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हु मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।।38।। भ.आ.
एक्कं पि अक्खरं जो अरोचमाणो मरेज्ज जिणदिट्ठं।
सो वि कुजोणि णिबुड्ढो किं पुण सव्वं अरोचंतो।।61।। भ.आ.
सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।।28।।

अर्थः- सूत्र में कहा गया जिसे एक भी पद और अक्षर नहीं रुचता है और शेष में रुचि होते हुये भी उसे निश्चय से मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये, मानना चाहिये। **अर्थः-** जिनेंद्र कथित एक भी अक्षर में अरुचिवाला जीव मरण कर कुयोनियों में डूबता है तब जिसे पूर्ण उपदेश नहीं रुचता है तो उसके संबंध में क्या कहना? वह तो सर्वत्र सभी कुयोनियों में जायेगा ही। **अर्थः-** समीचीन सूत्र से सम्यक् दिखलाये गये अर्थ का जब यह जीव श्रद्धान नहीं करता है तब उसी समय से ही यह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

प्र.-4097 कोई बलात् आ. श्री कृत प्रवचनसार को ग्रहण करें तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- यदि कोई बलात् आ. श्री कुंदकुंदकृत प्र.सार को ही ग्रहण करें तो प्रश्न हो सकता है कि इन आ. श्री के पहले प्रवचनसार नहीं था क्या? ''सार'' यानि पूर्ण निर्दोष प्रवचन वही है प्रवचनसार और इनके पहले प्रवचनसार न होने से आ. भगवंत आदि किसके अध्ययन करने की प्रेरणा करते थे? किसका अभ्यास करते थे आदि आपत्तियां हैं अतः समस्त द्वादशांगवाणी ही प्रवचनसार है।

प्र.-4098 प्रवचनसार के अभ्यास का क्या फल है?

उत्तर- प्रवचनसार के अभ्यास का फल परमात्मा का ध्यान करना है। परमात्मा अनादिकाल से है तो परमात्मा का ध्याता, परमात्मध्यान का कारण प्रवचनसार भी अनादिकाल से है। यदि परमात्मा का ध्यान करना चाहते हो तो जिनेंद्रोक्त एवं आ. श्री कुंदकुंद कृत प्रवचनसार का अभ्यास करो, चिंतन मनन करो।

प्र.-4099 प्रवचनसार का अभ्यास परमात्मध्यान का साधकतम कारण है क्या?

उत्तर- नहीं, प्रवचनसार का अभ्यास करना परमात्मध्यान का साधकतम कारण नहीं है। यदि साधकतम कारण माना जाये तो अभव्यजीव, दूरानुदूरभव्यमिथ्यादृष्टि, अनादि मिथ्यादृष्टि जीव 11 अंग 14 पूर्व या 11 अंग 9 पूर्व तक का अध्ययन कर लेता है, अभ्यास और साधना भी करता है अन्यथा नौग्रैवेयिक तक नहीं जा सकता है क्योंकि बिना अभ्यास के मुनिलिंग कैसे धारण किया? अनेकों को मार्गदर्शन कैसे देता है? बिना अभ्यास के घोर तप कैसे करता है? इतना सब कुछ होते हुये भी दर्शनमोह कर्म का उपशम, क्षय और क्षयोपशम न होने से सामान्य साधन कहा है साधकतम साधन नहीं क्योंकि प्रवचनसार का अभ्यास करने वाला व्यक्ति परमात्मा का ध्यान कर भी सकता है और नहीं भी ऐसा कहा है।

प्र.-4100 साधकतम साधन मान लिया जाये तो क्या आपत्ति है?

उत्तर- परमात्मध्यान के लिये प्रवचनसार के अभ्यास को साधकतमसाधन मान लेने पर मिथ्यादृष्टियों के, अभव्यों के भी धर्मध्यान मानने का प्रसंग आयेगा और धर्मध्यान सम्यग्दृष्टियों के ही होता है। मिथ्यादृष्टियों के परमात्मध्यान धर्मध्यान होने से मिथ्यात्व नहीं बन सकता अतः प्रवचनसार का अभ्यास परमात्मध्यान के लिये सामान्य साधन मानना चाहिये, साधकतम कारण नहीं।

प्र.-4101 तो फिर सर्वत्र सबके लिए सामान्य साधन मानने में क्या दोष है?

उत्तर- जो कार्य को उत्पन्न करने में सहायक हो उसे कारण कहते हैं इस नियमानुसार अभव्यों के, दूरानुदूर भव्यों के और अनादिमिथ्यादृष्टियों के सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिए प्रवचनसार का अभ्यास सर्वत्र सामान्य साधन भी नहीं है किंतु अनादि मिथ्यादृष्टि निकट भव्यों के और सादि मिथ्यादृष्टि जीवों के सामान्य साधन मानने में कोई दोष नहीं है।

प्र.-4102 परमात्मा का ध्यान कौन सा ध्यान है?

उत्तर- मोह की उत्तर प्रकृतियों में से कुछ के अभाव एवं कुछ के सद्भाव में परमात्मा का ध्यान करना धर्मध्यान तथा मोहकर्म का पूर्णतः क्षय उपशम होने से परमात्मा का ध्यान शुक्लध्यान कहलाता है।

प्र.-4103 परमात्मा के ध्यान का क्या फल है?

उत्तर- परमात्मध्यान से कर्मों का संवर, निर्जरा और क्षय होने से आत्मशुद्धि होती है यही फल है।

प्र.-4104 कर्मों का संवर निर्जरा होने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- घातियाकर्म रूपी मूलोत्तर प्रकृतियों का क्षय होने से आत्मा वीतरागता, सर्वज्ञता, हितोपदेशीपने को प्राप्त होती है और अघातियाकर्मों की पूर्ण निर्जरा से मोक्षपद की प्राप्ति होती है।

प्र.-4105 कर्मों के क्षय से कर्मवान आत्मा का क्षय क्यों नहीं होता है?

उत्तर- जैसे बीज को जला देने पर अंकुर, शाखा, फलों का अभाव होने से बीजांकुर की संतति नहीं चलती है किंतु पुद्गल द्रव्य का, रूपादि गुणों का और सामान्य अर्थ व्यंजन पर्यायों का अभाव नहीं होता है इनका अस्तित्व तो बना ही रहता है ऐसे ही द्रव्यकर्म एवं भावकर्मों का क्षय होने से चेतन द्रव्य गुण पर्यायों का अभाव नहीं होता है इनका अस्तित्व अनादिकाल से अनंतकाल तक रहेगा। संसारावस्था में अशुद्ध द्रव्य गुण पर्यायें होतीं हैं तो मुक्तावस्था में इनका अभाव है किंतु शुद्धात्म द्रव्य, गुण, पर्यायों का अस्तित्व बना ही रहता है। यदि आत्म द्रव्य का ही क्षय हो जाये तो संसार में अपना क्षय करने के लिये कौन सा बुद्धिमान तप करेगा? अतः स्वयं का अभाव करना किसी भी सज्जन को इष्ट नहीं है इसलिए ध्यान से विकारों का क्षय होता है आत्मा का नहीं।

नोटः- यहाँतक 4105 प्रश्नोत्तरों में 148वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 149वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

कर्मों का क्षय कैसे?

धम्मज्झाणब्भासं करेइ तिविहेण भाव सुद्धेण।

परमप्पज्झाणं चेतो तेणेव खवेइ कम्माणि।।149।।

धर्मध्यानाभ्यासं करोति त्रिविधेन भावशुद्धेन ।

परमात्मध्यानं चित्तो तेनैव क्षपयति कर्माणि।।

जो **तिविहेण** त्रियोगों से **भावसुद्धेण** भाव की शुद्धिपूर्वक **धम्मज्झाणब्भासं** धर्मध्यानाभ्यास **करेइ** करता है सो **तेणेव** उसीसे उसका **परमप्पझाणं चेतो** शुक्लध्यान में लगा चित्त **कम्माणि** कर्मों का **खवेइ** क्षय करता है।

प्र.-4106 ध्याता किसे कहते हैं?

उत्तर- **वैराग्यं तत्त्व विज्ञानं नैर्ग्रंथं समभावना।**

जयः परीषहाणं च पंचैते ध्यान हेतवः।।42।। ज्ञानांकुश

अर्थः- ध्याता वैराग्यवान, तत्त्वों का ज्ञाता, अहिंसादि व्रतों का पालक, पाँचों पापों का त्यागी, निर्ग्रंथपना, क्षमावान, उपसर्ग परीषहों का विजेता मोक्षमार्ग के योग्य धर्मशुक्लध्यानों को करने वाला ध्याता होता है।

प्र.-4107 ध्याता वैराग्यवान होना चाहिए ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- संसार शरीर और भोगों का अनुरागी, प्रीतिवान ध्याता संसार के हेतुभूत आर्तरौद्रध्यानी होगा और वैरागी है तो मोक्ष के निमित्तभूत धर्मध्यानी शुक्लध्यानी होगा अतः सम्यक्ध्याता वैराग्यवान होना चाहिये।

प्र.-4108 ध्याता तत्त्वज्ञानी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- तत्त्वज्ञ ध्याता जिस लौकिक लोकोत्तर, सत् असत् तत्त्वों का जानकार होगा उसीका ध्यान करेगा। प्रमाण, नय, निक्षेप से सिद्ध तत्त्वज्ञ ध्याता सम्यक् तत्त्वज्ञानी और प्रमाण नय निक्षेप से दूषित, कलंकित तत्त्वज्ञ मिथ्यातत्त्वज्ञानी ध्याता होता है अतः सम्यक् तत्त्वज्ञानी मोक्ष के लिये तो मिथ्या तत्त्वज्ञानी संसार के लिये ध्यान करता है अतः मोक्षार्थ ध्याता सापेक्ष तत्त्वज्ञानी होना चाहिये।

प्र.-4109 ध्याता निर्ग्रंथ हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- हिंसादि पापों का धारक, कारक अव्रती, असंयमी व्यक्ति आत्मध्यान न कर दुर्ध्यान करेगा। पापों का त्यागी, निर्ग्रंथ, निर्विकारी सम्यक्ध्याता ही धर्मध्यान शुक्लध्यान करेगा सो ध्याता निर्ग्रंथ हो तभी निराकुलतामय ध्यान कर पायेगा अन्यथा पापवान सग्रंथ होने से मिथ्या ध्याता कहलायेगा।

प्र.-4110 ध्याता समभाव वाला हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे स्वच्छ जल पेय एवं उपयोगी होता है ऐसे ही अनेक अनुकूल प्रतिकूल अवस्थाओं में निर्विकार मन वाला व्यक्ति ही सही ध्याता होता है इसलिये सम्यक्ध्याता समभाव वाला होना चाहिये ऐसा कहा है।

प्र.-4111 उपसर्ग परीषहों को जीतने वाला हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- उपसर्ग परीषहों के आने पर मन विचलित होने से, उपयोग में कर्मठता न होने से क्या वह समीचीन आत्मध्यान कर सकता है? नहीं सो उपसर्ग परीषहों के आने पर कर्मठ व्यक्ति ध्यान में स्थिर रहेगा अतः ध्याता कर्मठ मन वाला होना चाहिये ऐसा कहा है।

प्र.-4112 कायर व्यक्ति क्या कर्मठता को प्राप्त हो सकता है?

उत्तर- नहीं, जैसे कमजोर कुत्ता मारक के सामने पूंछ हिलाता हुआ दीनता धारण करता है ऐसे ही कमजोर हृदय वाला कायर ध्याता आक्रामकों के सामने झुक जाने से दृढ़ता पूर्वक ध्यान नहीं कर पाता अतः मोक्षमार्गस्थ ध्याता कर्मठ होना चाहिये, कायर नहीं।

प्र.-4113 ध्याता अहिंसा आदि व्रतों का धारक पालक हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि ध्याता अहिंसा आदि व्रतों का धारक पालक नहीं है तो अव्रती असंयमी विषयभोगों में, कषायों में लंपटी होने से संवरनिर्जरा और मोक्ष के निमित्तभूत ध्यान नहीं कर सकता है। अतः संयमी होना चाहिए।

प्र.-4114 ध्याता हिंसादि पापों का त्यागी हो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- यदि ध्याता हिंसादि पापों में लिप्त है तो वह दुर्ध्यान ही करेगा क्योंकि अशुभ परिणामों

से, कार्यों से धर्मध्यान नहीं हो सकता है अतः ध्याता हिंसादि पापों का त्यागी हो ऐसा कहा है।

प्र.-4115 ध्याता सभी प्रकार के हिंसादि पापों का त्यागी होना चाहिए क्या?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही, समय के अनुसार उत्तमध्यान के लिए सभी प्रकार के हिंसादि पापों का त्यागी होना चाहिए अथवा अनुत्तम ध्यान के लिए यथायोग्य सभी हिंसादि पापों का त्यागी होना चाहिये।

प्र.-4116 हीन संहनन वालों के ध्यान के ये पाँचों कारण क्या वर्तमान में हो सकते हैं?

उत्तर- उत्तम संहनन वालों के उत्तम ध्यान और हीन संहननवालों के हीनध्यान होता है। जिन जीवों के जैसा द्रव्य और भाव संहनन होगा वैसा ही उनके उतनी ही मात्रा में शुभाशुभ ध्यान होता है। द्रव्यसंहनन हड्डियों को कहते हैं और ये हड्डियां मनुष्य तिर्यंचों के होती है, देवनारकियों के नहीं। भाव संहनन समस्त संसारी जीवों के होता है और द्रव्यसंहनन द्वींद्रिय जीवों से पचेंद्रिय तक मनुष्य और तिर्यंचों के होता है अतः इन सभी जीवों के ध्यान पाया जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि मोक्ष और मोक्षमार्ग के निमित्त धर्मध्यान शुक्लध्यान पंचेंद्रिय, पर्याप्तक, आर्य खंडोत्पन्न द्रव्य से पुरुषवेदी और भावों से तीनों वेद वाले मनुष्यों के मुनिदीक्षा लेने पर होते हैं। हाँ, यदि मुनिदीक्षा केवल उत्तम संहननधारियों के ही होती तो तुम्हारा कहना सही हो जाता सो ऐसा नहीं है क्योंकि मुनिदीक्षा छहों संहनन वाले धारण करते हैं ऐसा कहा भी है।

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा।
भावंति भव्व पुरिसा कम्मक्खय कारणे भणिया ।।५३।। बोध.

जिनमार्ग में मुनिदीक्षा छहों संहनन वालों के कही है जो कर्मों को क्षय करने में कारण है और ऐसी दीक्षा को भव्यपुरुष ही धारण करते हैं अतः वर्तमान में गृहस्थ और मुनियों के यथासंहननानुसार ध्यान होता है।

प्र.-4117 बिना संहननधारियों के भी क्या ध्यान हो सकता है?

उत्तर- हाँ, द्रव्यसंहनन के बिना भावसंहनन वाले देवनारकियों के आर्तरौद्र और धर्मध्यान होता है।

प्र.-4118 ''परमप्पज्झाण'' पद का क्या अर्थ है?

उत्तर- इस पद के दो अर्थ हैं- 1. परमोत्कृष्ट परमात्मा का ध्यान 2. अपनी ही उत्कृष्ट शुद्धात्मा का ध्यान।

प्र.-4119 इन ध्यानों का क्या फल है?

उत्तर- ये दोनों धर्म और शुक्लध्यान मोक्ष के हेतु होने से कर्मों का क्षय होना ही इनका फल है।

प्र.-4120 कर्मों का क्षय कितने प्रकार से होता है और इनमें क्या अंतर है?

उत्तर- कर्मों का क्षय दो प्रकार से होता है। 1. उदयाभावीक्षय 2. सत्त्व से क्षय होना। उदयाभाव स्वरूप क्षय तो पुनः उदय में आ सकता है किंतु समीचीन ध्यानों के द्वारा सत्त्व से क्षय होकर पुनः बंध को प्राप्त नहीं होते हैं अतः उदय में आने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है यही इनमें अंतर है।

प्र.-4121 कर्म प्रकृतियां सत्त्व से क्षय होने पर पुनः बंध को प्राप्त हो सकती है क्या?

उत्तर- हाँ, उत्कृष्ट ध्यानों के द्वारा जो कर्म प्रकृतियां समूल क्षय को प्राप्त हुई हैं वे पुनः नहीं बंधतीं हैं किंतु अनंतानुबंधी कषायों की विसंयोजना होने पर पुनः संयोजना को, अस्तित्त्वपने को प्राप्त हो जाती हैं ऐसे ही आहारक चतुष्क, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वेलनाकरण के द्वारा सत्त्व से नष्ट होकर पुनः बंधतीं हैं सो ऐसे सत्त्व के क्षय से क्या प्रयोजन? किंतु सत्त्व से क्षय होने का महत्त्व तो उत्कृष्ट ध्यान से है।

नोटः- यहाँतक 4121 प्रश्नोत्तरों में 149वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 150वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मार्गदर्शक

जिणलिंगधरो जोई विराय सम्मत्तसंजुदो णाणी।

परमोवेक्खाइरियो सिवगइपहणायगो होइ।।150।।

जिनलिंगधरो योगी विराग सम्यक्त्वसंयुतो ज्ञानी।

परमोपेक्षाचार्यः शिवगतिपथनायको भवति।।

जिणलिंगधरो जिनलिंगी **जोई** योगी **विरायसम्मत्त** वैराग्य, सम्यक्त्व **संजुदो** सहित **णाणी** ज्ञानी **परमोवेक्खा** परमोपेक्षा संयमधारी **आइरियो** आचार्य **सिवगइपहणायगो** मोक्षमार्ग का नेता **होइ** होता है।

प्र.-4122 जिनमुद्रा किसे कहते हैं?

उत्तर- **दढसंजममुद्दाए इंदियमुद्दाकसायदढमुद्दा।**

मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया।।18।। बो.पा.

अर्थः- दृढ़ता से संयम धारण करना सो संयममुद्रा है, इंद्रियों को विषयों से विमुख रखना सो इंद्रियमुद्रा है, कषायों के वशीभूत न होना सो अकषाय मुद्रा है, ज्ञान के स्वरूप में स्थिर होना सो ज्ञानमुद्रा है। जैनशास्त्रों में ऐसी जिनमुद्रा कही गई है।

प्र.-4123 जिनमुद्रा और मुनिमुद्रा में क्या अंतर है?

उत्तर- पूर्ण निर्ग्रंथ होने से इन बाह्यमुद्राओं में कोई अंतर नहीं है किंतु अंतरंग में घातियाकर्मों के अभाव और सद्भाव की अपेक्षा, मुनियों के पीछी कमंडलु होता है और जिनेंद्र के नहीं यही अंतर है।

प्र.-4124 योगी एवं भोगीजन कैसे होते हैं?

उत्तर- योगीजन रत्नत्रयधारी होते हैं और भोगीजन संयम सहित रत्नत्रय के बिना होते हैं।

प्र.-4125 ''विराय'' किसे कहते हैं?

उत्तर- संसार शरीर भोगों से उदासीन आत्मसाधक को, सकलचारित्री को विराय/ वैरागी कहते हैं।

प्र.-4126 ''सम्मत्त संजुदो'' किसे कहते हैं?

उत्तर- योगीजन सम्यग्दृष्टि ही होते हैं क्योंकि बिना सम्यग्दर्शन के कोई आत्मसाधना नहीं कर सकता है।

प्र.-4127 आचार्य क्या करते हैं और गाथानुसार किसके धारक हैं?

उत्तर- जो स्वयं की आत्मसाधना से स्वयं के दोषों का क्षालन कर आत्मशुद्धि करते हैं या स्वयं पंचाचार पालन करते हुए शिष्यों से करवाते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं तथा वे परमोपेक्षा संयमधारी हैं।

प्र.-4128 परमोपेक्षा संयम किसे कहते हैं?

उत्तर- बाह्यचर्या का त्याग कर उभयश्रेणी में निश्चल ध्यानावस्था को परमोपेक्षा संयम कहते हैं।

प्र.-4129 आचार्य मुद्रा किसे कहते हैं?

उत्तर- **तव वय गुणेहि सुद्धो जाणदिपिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।**

अरहंतमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य ।।17।। बोध.

अर्थः- जो तप, व्रत और मूलोत्तर गुणों से विशुद्ध हैं तात्कालिक प्राप्त शास्त्रों से ज्ञेय पदार्थों को जानते देखते हैं, शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं ऐसे अरिहंत मुद्राधारी आचार्य दीक्षा शिक्षा (प्रायश्चित्त) देते हैं।

प्र.-4130 दीक्षा किसे कहते हैं और यह दीक्षा कल्याणकारी है या अकल्याणकारी?

उत्तर- **दीक्षा क्षणान्तरात्पूर्वं ये दोषा यदि संभवाः।**

ते पश्चादपि दृश्यन्ते तन्न सा मुक्तिकारणम्।।22।। य.ति.अ. 6 आ. श्री. सोमदेव

अर्थः- पतन से बचाकर उत्कृष्टमार्गी बनाकर विकारों को क्षय कराने वाली पद्धति को दीक्षा कहते हैं। यह कल्याणकारी ही है, अकल्याणकारी नहीं। हाँ, इतना अवश्य है कि दीक्षा के पहले जो दिनचर्या बिगड़ी हुयी थी यदि वही दिनचर्या दीक्षा के बाद भी रही तो फिर वह दीक्षा केवल कष्टदायक ही होगी।

प्र.-4131 मन वचन काय के बिना भी ध्यान होता है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही योगों के बिना व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान होता है। **त्र्येकयोग काययोगायोगानाम्।।** 40 त. अ. 9 इस सूत्र में **अयोगानाम्** पद के द्वारा सूचित किया कि योग के बिना भी ध्यान होता है।

प्र.-4132 क्या सिद्ध भगवंत भी ध्यान करते हैं?

उत्तर- जब छद्मस्थ ध्यान के बाहर हुआ कि पतन को प्राप्त होता है तो सिद्ध भी यदि ध्यान के बाहर हुए तब पतन को प्राप्त क्यों न होंगे? ध्यान चारित्र गुण की पर्याय है क्योंकि पर्याय के बिना पर्यायी, अर्थक्रिया के बिना अर्थवान् पदार्थ का अस्तित्व रह नहीं सकता है। **तद्भावः परिणामः।।** अ.5.सू. 42 द्रव्य गुण का जो भाव है वही पर्याय है। सिद्धों में ध्यान क्षायिकभाव स्वरूप है। क्षायिकभाव के नौ भेद हैं सिद्धों में क्षायिकभाव का अभाव न होकर सद्भाव है। क्षायिकभाव सादिअनंत भंगवाला है इसलिये स्वभाव में ध्यान है तभी तो वो अनंतानंत काल तक अपने स्वभाव में ठहरे रहेंगे कारण चारित्र और ध्यान की परिभाषा ही ऐसी है कि आत्म स्वभाव में लीन होना स्थिर होना ही शुद्ध चारित्र है शुद्ध ध्यान है।

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि।

दोण्णं अणण्ण भूदं भावं समणापरूविंति।। 12।। पं. का.

अर्थः- पर्याय के बिना द्रव्य और द्रव्य के बिना पर्याय नहीं होती है ये दोनों अनन्यभूत हैं ऐसा सर्वज्ञ प्रभु महामुनि प्ररूपण करते हैं।

प्र.-4133 क्या अर्थपर्याय का त्रिकाल अस्तित्व है?

उत्तर- भूत भाविकाल की अर्थपर्याय का वर्तमान में अस्तित्व न होने से या प्रागभाव प्रध्वंसाभाव होने से अस्तित्व विहीन है क्योंकि अर्थपर्याय का काल ही एक समय का है और शुद्ध व्यंजनपर्याय सादिअनंत होने से वर्तमान में भी मौजूद है एवं भूत में थी और भविष्य में अनंतकाल तक रहेगी।

प्र.-4134 सिद्धों में ध्यान पर्याय का अभाव क्यों नहीं होता है?

उत्तर- यह नियम सर्वथा नहीं है कि कार्य के सम्पन्न होने पर कारण का अभाव हो जाना चाहिये। यदि ऐसा माना जाये तो प्रकाश रूपी कार्य के होने पर कारण रूपी दीपक का अभाव हो जाना चाहिये पर होता नहीं है। भिन्न भिन्न द्रव्यों के कार्य कारण संबंध में कार्य के सम्पन्न होने पर कारण का अभाव हो जाता है सो यह नियम निमित्त नैमित्तिक संबंध में लग सकता है उपादान उपादेय संबंध में नहीं अतः सिद्धों में ध्यान का अस्तित्व है अन्यथा चारित्रगुण को अर्थक्रिया के बिना अपरिणामी मानने का प्रसंग आयेगा।

प्र.-4135 कारण के अनुसार ही कार्य होने का नियम है या नहीं?

उत्तर- ऐसा सर्वथा नियम नहीं है। यदि ऐसा नियम माना जाये तो मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि कार्य के उत्पन्न होने के क्षण में कारण अशुद्ध होने पर भी कार्य शुद्ध होता है। जैसे

सरागता के अभाव में वीतरागता, अल्पज्ञता के अभाव में सर्वज्ञता और संसार के अभाव में मोक्षा होना भिन्न कार्य होते हैं आदि। अतः कारण से भिन्न भी कार्य देखे जा रहे हैं। इसलिए कारणानुसार ही कार्य होने का सर्वथा नियम नहीं है।

प्र.-4136 तो फिर सर्वत्र ऐसा ही नियम मानने में क्या दोष है?

उत्तर- कार्य होने के पूर्व समय के पहले तक कारण के अनुसार कार्य होने का नियम है सो यह स्वस्थान संक्रमण की अपेक्षा समझना चाहिये, परस्थान संक्रमण की अपेक्षा नहीं क्योंकि परस्थान संक्रमण की अपेक्षा भी कारण से भिन्न कार्य हुआ करते हैं।

नोटः- यहाँतक 4136 प्रश्नोत्तरों में 150वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 151वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यक्त्व से सुख

कामदुहिं कप्पतरुं चिंतारयणं रसायणं परमं।
लद्धो भुंजइ सोक्खं जं इच्छियं जाण तह सम्मं।।151।।

कामधेनुं कल्पतरुं चिंतारत्नं रसायनं परमं।
लब्ध्वा भुंक्ते सुखं यदेच्छ जानीहि सम्यक्त्वम्।।

जं जैसे **कामदुहि** कामधेनु **कप्पतरुं** कल्पवृक्ष **चिंतारयणं** चिंतामणिरत्न और **परमं** श्रेष्ठ **रसायणं** रसायन **लद्धो** पाकर **इच्छियं** इच्छित **सोक्खं** सुख **भुंजइ** भोगता है **तह** वैसे ही **सम्मं** सम्यक्त्व से उत्तम सुख, मोक्षसुख भोगता है ऐसा **जाण** जानो।

प्र.-4137 कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिंतामणिरत्न किसे कहते हैं?

उत्तर- **कामधेनु-** दूध से दही, मट्ठा, मक्खन, घी आदि इष्ट सुखद सामग्री देने वाली गाय को कहते हैं। **कल्पवृक्ष-** जीवन के उपयोगी मनोनुकूल भोगोपभोग सामग्री देने वाले 10 प्रकार के वृक्षों को कहते हैं। **चिंतामणिरत्न-** विचारानुसार फल प्रदान करने वाले रत्न को कहते हैं।

प्र.-4138 ये तीनों किस प्रकार से फल प्रदान करते हैं तथा भोक्ता कैसे भोगते हैं?

उत्तर- कामधेनु पुरुषार्थ करने पर दूध प्रदान करती है। कल्पवृक्ष याचना करने पर इष्टसामग्री देते हैं। चिंतामणि रत्न चिंतित वस्तु को देता है। भाग्य और पुरुषार्थ दोनों अनुकूल होने से भोक्ता फल भोगते हैं।

प्र.-4139 परम रसायन किसे कहते हैं?

उत्तर- पूर्ण निर्दोष तीक्ष्ण औषधि को रसायन कहते हैं जिसमें केवल एकमात्र तथ्य का ही संग्रह होता है निस्सार तत्त्व नहीं होता है जैसे गन्ने में रस सार होता है शेष छिलके आदि निस्सार होते हैं। यद्यपि जड़, छिलके, पत्ते, फूल आदि के बिना रस नहीं होता है पर रस ही सार है शेष निस्सार है ऐसे ही औषधियों के रस को ग्रहण कर शेष छिलके आदि के अलग कर देने को रसायन कहते हैं।

प्र.-4140 ये चारों किस गति के प्राणी हैं तथा जीव हैं या अजीव?

उत्तर- कामधेनु तिर्यंचगति का पंचेंद्रियजीव है, कल्पवृक्ष आधार आधेय की अपेक्षा एकेंद्रिय पृथ्वीकायिक स्थावरजीव कहते हैं वास्तव में कल्पवृक्ष वनस्पतिकायिक ही होते हैं। चिंतामणि रत्न पृथ्वी का पिंड है। रसायन औषधि अचेतन पृथ्वी और वनस्पति के रस हैं।

प्र.-4141 जब ये जड़ वस्तुएं हैं तो इनके माध्यम से सुख दुःख कैसे हो सकते हैं?

उत्तर- अधिकरणं जीवाजीवाः। त. सू. अ. 6 सू. 7 जीव और अजीव पदार्थों के माध्यम से आश्रव बंध संवर निर्जरा तथा उपकार, अपकार जीव को प्राप्त होता है सो ऐसे ही सुख दुःख भी प्राप्त होते हैं अन्यथा संसारमार्ग मोक्षमार्ग, पुण्य पाप, सुख दुःख, शत्रु मित्र की व्यवस्था नहीं बन सकती है।

प्र.-4142 भिन्न वस्तुओं से सुख दुःख प्राप्त होते हैं तो अभिन्नता से क्या प्राप्त होते हैं?

उत्तर- जब भिन्न वस्तुओं के माध्यम से सुख दुःख प्राप्त होते हैं तो अभिन्न वस्तु स्वरूप आत्मा अपने निज गुणधर्मों से अनंतगुण सम्पन्न आत्मा शुद्ध रूप में परिणमन करती हुई सिद्धानंद को प्राप्ति होती है।

प्र.-4143 यहाँ गाथा में सम्यग्दर्शन की महिमा क्यों बताई, क्यों गाई?

उत्तर- **अर्पितानर्पित सिद्धेः॥३२॥** सूत्रानुसार वक्ता जिसको कहना चाहता है वह अर्पित प्रधान और जिसे नहीं कहना चाहता है वह अनर्पित अप्रधान इस नियमानुसार यहाँ सम्यग्दर्शन की महिमा बताई जा रही है।

प्र.-4144 सम्यग्दृष्टि जीव किस फल को चाहता है?

उत्तर- सम्यग्दृष्टिजीव वास्तव में एकमात्र आत्मसुख मोक्षपद को ही चाहता है, दूसरा नहीं क्योंकि पूर्वबद्ध कर्मोदयानुसार परिणत होने के कारण कदाचित् विषयसुख को, राज्य वैभव, परिवार आदि को चाहता है अथवा श्रद्धान ज्ञान की अपेक्षा सांसारिक सुख को नहीं चाहता किंतु चारित्र की हीनता और कषायों का प्रबल उद्रेक होने से परिग्रह का संवर्धन संरक्षण करता है अन्यथा राज्य एवं राज्य की व्यवस्था क्यों करेगा? विवाह तथा संतान पैदा क्यों करेगा? करता है तभी तो उस अव्रती, अणुव्रती सम्यग्दृष्टि के आर्तध्यान रौद्रध्यान होता है, मुनियों के भी निदान के बिना तीन आर्तध्यान उत्पन्न हो जाते हैं। यदि इनके विषयाकांक्षा नहीं होती है तो न ये ध्यान बन सकते हैं, न आहारादि संज्ञायें कार्य रूप में हो सकतीं हैं पर ये अवस्थायें कषायों के तीव्रोदय में होती है किंतु मंदोदयावस्था में कभी भी नहीं हो सकतीं हैं।

प्र.-4145 सम्यग्दर्शन का या रत्नत्रय का क्या फल है?

उत्तर- सम्यग्दर्शन तथा रत्नत्रय का उत्कृष्ट सर्वश्रेष्ठ मोक्षफल चरमशरीरी को ही प्राप्त होता है किंतु अचरमशरीरी होने से भोगभूमि के उत्तम सुखों को, वैमानिक देवपद को तथा मनुष्यों के उत्कृष्ट पद संबंधी सुखों को प्राप्त कर तद्भव में या भवांतरों में अनंत आत्मसुख को प्राप्त करता है। यही इनका फल है।

नोटः- यहाँतक 4145 प्रश्नोत्तरों में 151वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 152वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

रयणसार का फल

सम्मत्तणाणवेरग्ग तवो भावं णिरीहवित्तिचरित्तस्स।

गुणसीलसहावं उप्पज्जइ रयणसारमिणं॥152॥

सम्यक्त्वं ज्ञानं वैराग्यतपोभावं निरीहवृत्तिचारित्रं ।

गुणशीलस्वभावं उत्पादयति रत्नसारोऽयम्॥

रयणसारमिणं यह रयणसार ग्रंथ **सम्मत्तणाण** सम्यक्त्व, ज्ञान, **वेरग्गतवोभावं** वैराग्य, तप, भाव **णिरीहवित्ति** वीतराग **चरित्तस्स** चारित्र **गुणसीलसहावं** गुण शील स्वभाव को, **उप्पज्जइ** उत्पन्न करता है।

प्र.-4146 इस ग्रंथ का नाम रयणसार क्यों रखा, कितने प्रकार का है, नाम कौन[2] हैं?

उत्तर- संसार में भ्रमण कराने वाले रागद्वेष मोह के उत्पादक लौकिक चेतनाचेतन रत्नों का निराकरण, आत्मसिद्धि में साधकतम साधन रत्नत्रय का, गृहस्थ और मुनिधर्म का वर्णन होने से आ. श्री जी ने इसका नाम रयणसार रखा है। दो भेद हैं- नामः- द्रव्यरयण- सार और भाव रयणसार। द्रव्य

रयणसार वचनात्मक है, बाह्यक्रियात्मक है और भावरयणसार भावात्मक है, केवल ध्यान स्वरूप है।

प्र.-4147 जब रयणसार के दो भेद हैं तो किसका अध्ययन करना चाहिये?

उत्तर- यथावसर दोनों प्रकार के रयणसार का अध्ययन करना चाहिए। ध्यानकाल में भावात्मक रयणसार का और शेष समय में वचनात्मक रयणसार का अध्ययन करना चाहिये या द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अशुद्धि होने पर मौनपूर्वक भावात्मक रयणसार का और जब इनकी शुद्धि हो तो वचनात्मक भावात्मक रयणसार का स्वाध्याय करना चाहिये किंतु स्वाध्याय अवश्य ही करना चाहिये।

प्र.-4148 ध्यान और सामायिक में क्या अंतर है?

उत्तर- गुणस्थानानुसार अनुकूल प्रतिकूल अवस्थाओं में माध्यस्थ भाव होना सामायिक हमेशा मौजूद है किंतु नाना विकल्पों को समाप्त कर किसी एक ज्ञेय हेय उपादेय तत्त्व में या ध्येय तत्त्व में मन को केंद्रित कर स्थिर होने को ध्यान कहते हैं यही इन दोनों में अंतर है या एक ही परिणाम के विवक्षावश दो नाम हैं।

प्र.-4149 यदि समझ में नहीं आता हो तो क्या करना चाहिए?

उत्तर- समझ में नहीं आता है इस बहाने से स्वाध्याय नहीं करना मूर्खता का लक्षण है। क्या लौकिक पढाई, घर, व्यापारव्यवहार, पत्रिकाओं की वार्तायें सब समझ में आती हैं? बचपन में रोते, पिटते, चिल्लाते, आँसु गिराते हुये पढते थे, मार के भय से रट लेते थे जब थोड़ा समय गुजरा आगे बढ़े तो धीरे[2] समझ में आने लगा ऐसे ही एक दो बार पढ़ने से समझ में नहीं आयेगा किंतु बार बार अध्ययन करने पर समझ में आयेगा तभी तो धर्माचार्यों ने स्वाध्याय के वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश भेद बताये हैं।

प्र.-4150 इस रयणसार ग्रंथ का स्वाध्याय करने से क्या क्या प्राप्त होता है?

उत्तर- इस रयणसार ग्रंथ का स्वाध्याय करने से मोक्षमार्गस्थ नाना गुण प्राप्त होते हैं।

प्र.-4151 ये गाथोक्त भाव किस रयणसार के स्वाध्याय से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- वचनात्मक रयणसार के स्वाध्याय से भावरयणसार और भावरयणसार से उपरोक्त भाव उत्पन्न होते हैं अतः उत्तम भावों की प्राप्ति के लिये इसका स्वाध्याय करना ही चाहिये क्योंकि द्रव्य से स्वाध्याय करने पर भाव पैदा होंगे ही होंगे। देर हो सकती है अंधेर नहीं, धैर्य रखो क्योंकि धैर्य का फल मीठा होता है।

प्र.-4152 क्या मिथ्यात्व पूर्वक श्री रयणसारजी का स्वाध्याय कर सकते हैं?

उत्तर- द्रव्य मिथ्यात्व का त्याग करने पर परिणाम अत्यंत सरल और निर्मल हुए, देव शास्त्र गुरु के प्रति अनन्य श्रद्धाभक्ति जागृत हुई, समर्पणभाव उत्पन्न हुआ, बाद में विशेष प्रायोग्यलब्धि और कारणलब्धि के होने पर अंत में रत्नत्रय परिणाम उत्पन्न हुए अतः श्री र.सा. का स्वाध्याय भद्र परिणामी विशेष मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव भी करते हैं। यदि सामान्य व्यक्ति स्वाध्याय करते हैं तो विशेष परिणाम उत्पन्न होते हैं तथा विशेष परिणाम वाले स्वाध्याय करते हैं तो विशेषता और भी अधिक मात्रा में उत्पन्न होती है।

प्र.-4153 विशेष मिथ्यादृष्टि पद से किसको ग्रहण करना चाहिए?

उत्तर- द्रव्य मिथ्यात्व का त्याग करने वाला देव शास्त्र गुरु का भक्त भावमिथ्यादृष्टि ग्रहण करना चाहिये क्योंकि यह जीव थोड़े ही समय में लब्धियों को पाकर रत्नत्रय प्राप्त करेगा।

नोटः- यहाँतक 4153 प्रश्नोत्तरों में 152वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 153वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

रत्नत्रय में सब कुछ है

रयणत्तयमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।
संघो गुण संघादो समयो खलु णिम्मलो अप्पा।।153।।

रत्नत्रयमेव गणः गच्छः गमनस्य मोक्षमार्गस्य।
संघो गुणसंघातः समयः खलु निर्मलः आत्मा।।

रयणत्तयमेव रत्नत्रय ही **गण** गण है **मोक्खमग्गस्स** मोक्षमार्ग में **गमणस्स** गमन **गच्छं** गच्छ है **गुणसंघादो** गुणों का समूह **संघ** संघ है **खलु** निश्चय से **णिम्मलो** निर्मल **अप्पा** आत्मा ही **समयो** समय है ऐसा जानो।

प्र.-4154 जब रत्नत्रय ही आत्मा है तो आत्मवस्तु को अनंत धर्मात्मक क्यों कहा?

उत्तर- यहाँ गुणगुणी या पर्याय पर्यायी में अभेद कर आत्मप्रवाद की अपेक्षा कथन किया है कि रत्नत्रय ही गणगच्छ आत्मस्वरूप है या अनंतगुणों का और त्रिकाली अनंतानंत पर्यायों का समूह ही आत्मस्वभाव है।

प्र.-4155 भूतभावी अर्थव्यंजन पर्यायों का अस्तित्त्व न होने से उसे द्रव्य क्यों कहा?

उत्तर- यद्यपि भूतभावी अर्थव्यंजन पर्यायों का वर्तमान में अस्तित्त्व नहीं है फिर भी तत्तत् पर्यायों का अस्तित्त्व था और रहेगा इसलिए शक्ति और व्यक्त पर्यायों के समूह को द्रव्य कहा है।

नोटः- यहाँतक 4155 प्रश्नोत्तरों में 153वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 154वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

रयणसार ग्रंथ का अविश्वाशी कौन?

गंथमिणं जो ण दिट्ठइ ण हु मण्णइ ण हु सुणेइ ण हु पढइ।
ण हु चिंतइ ण हु भावइ सो चेव हवेइ कुद्दिट्ठी।।154।।

ग्रथमिमं यो न पश्यति न हि मन्यते न हि शृणोति न हि पठति।
न हि चिंतयति न हि भावयति स चैव भवति कुदृष्टिः।।

जो जो **गंथमिणं** इस रयणसार ग्रंथ को **ण** न **दिट्ठइ** देखता है **ण हु** न **मण्णइ** मानता है **ण हु** न **सुणेइ** सुनता है **ण हु** न **पढइ** पढ़ता है **ण हु** न **चिंतइ** सोचता है **ण हु** न **भावइ** भाता है **सो चेव** वही **कुद्दिट्ठी** मिथ्यादृष्टि **हवेइ** है।

प्र.-4156 इस ग्रंथ को जो नहीं देखता है वह मिथ्यादृष्टि है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जब किसीके मन में किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति घृणा पैदा हो जाती है तो वह उसे देखना नहीं चाहता है ऐसे ही घृणावान व्यक्ति इस र.सा. को नहीं देखना चाहता है तो इसको नहीं मानने का क्या कारण है? क्या इसमें कोई गलत बात है या जिनेंद्र, आर्षप्रणीत नहीं है? आचारांग व उपासकाध्ययनांग में जो वर्णन है उसमें से ही इस रयणसार में थोड़ा सा कथन किया है फिर घृणा क्यों? अतः ग्लानि दोष के कारण जो इसे न देखता है, न देखने योग्य मानता है उसे घृणा युक्त मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-4157 इस रयणसार को न मानने वालों को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- लोक व्यवहार में किसी व्यक्ति के संबंध में यह झूठा है ऐसा अपने मन में विश्वास हो जाये तो प्रसंग आने पर कह देते हैं कि हम इसको न मानते हैं न विश्वास करते हैं तभी तो अनेक पोथी पंडितवर्ग यह रयणसार ग्रंथ असत्य है, गलत है ऐसा विश्वास होने से नहीं मानते हैं इसलिए इन्हें मिथ्यादृष्टि कहा है।

प्र.-4158 इस रयणसार ग्रंथ के विषय को न सुनने वाले को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- लोक में जिसे अपन धोखेबाज दगाबाज समझ लेते हैं तो उसका नाम और उसके मुंह से निकले वचन को भी नहीं सुनना चाहते हैं और कह भी देते हैं कि इसका नाम मत लो इसकी आवाज भी हम नहीं सुनना चाहते हैं ऐसे ही हीनाचारी, अश्रद्धानी, अविवेकी पोथीपंडित व्यक्ति इस रयणसार को या इसके विषय को धोखेबाज जैसा समझकर सुनना नहीं चाहते हैं सो उन्हें मिथ्यादृष्टि जानना चाहिये ऐसा कहा है।

प्र.-4159 इस रयणसार ग्रंथ को न पढ़ने वालों को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा है?

उत्तर- अपनी दुर्भावना के कारण जिनेंद्रोक्त रयणसार को गलत समझकर अध्ययन नहीं करता है अतः वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि इसने सही गलत का निर्णय ही नहीं किया किंतु दूसरों के कहने से विश्वास कर लिया है जैसे लोक में कौवा कान ले गया, कान तो देखा नहीं किंतु बोलने वालों के साथ में चिल्लाने लगा कि कौवा कान ले गया ऐसे ही किसी चारित्रहीन पंडित ने बोल दिया कि यह रयणसार गलत है, नहीं पढ़ना चाहिए सो ऐसा ही करने लगा अतः इसमें पौर्वापर्य विचार करो कि इसमें क्या गलती है? क्या आ. श्री कुंदकुंद या अन्य दिगंबराचार्य गलत लिख सकते हैं जो अविश्वास बना लिया है। कुंदकुंद की वाणी पर अविश्वास करना ही हानिकारक है। रयणसार ग्रंथ में संदेह करना माँ बाप पर संदेह करने के बराबर है।

प्र.-4160 इस रयणसार ग्रंथ का चिंतन न करने वाले को मिथ्यादृष्टि क्यों कहा?

उत्तर- इसमें गृहस्थधर्म और मुनिधर्म को कहने की प्रतिज्ञा की व प्रतिज्ञानुसार ही कथन किया है। जो अपने को मोक्षमार्गी माने पर मोक्षमार्ग का चिंतन न करें तो वह आज्ञाविचयधर्मध्यानी कैसा? वह नियमतः आर्तरौद्रध्यानी ही होगा। यदि कोई पिताजी को माने और उनकी बात को न माने, न आचरण में लाये तो वह आज्ञापालक पुत्र कैसा? वह तो कुपुत्र ही है अतः कुपुत्रवत् इसे मिथ्यादृष्टि कहा।

प्र.-4161 जो इस ग्रंथ की भावना नहीं करता है वह मिथ्यादृष्टि है ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- इस रयणसारानुसार अपनी दिनचर्या बनाने से आत्महित होता है किंतु मिथ्यामोह के कारण दूसरों के बहकाने से इसकी भावना नहीं करता है सो वह इसमें कथित विषय को न समझ पायेगा, न प्राप्त कर पायेगा क्योंकि जब किसी वस्तु को समझा नहीं है तो उसको प्राप्त करने के लिये क्यों उपाय करेगा? जैसे भोजन करने की इच्छा है तो वह भोजन की तलाश कर ग्रहण कर लेता है ऐसे ही इस ग्रंथ की भावना करेगा तो प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ भी करेगा सो भावना न करने वालों को मिथ्यादृष्टि कहा है।

नोटः- यहाँतक 4161 प्रश्नोत्तरों में 154वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 155वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अंतिम मंगलाचरण का फल

इदि सज्जणपुज्जं रयणसारगंथं णिरालसो णिच्चं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं ठाणं।।155।।

इति सज्जनपूज्यं रत्नसारं ग्रंथं निरालसो नित्यं।
यः पठति श्रृणोति भावयति सः प्राप्नोति शाश्वतं स्थानम्।।

इदि इस प्रकार **सज्जणपुज्जं** सज्जनों से पूज्य **रयणसारगंथं** रयणसार को **जो** जो **णिरालसो** निरालसी **णिच्चं** नित्य **पढइ** पढता है **सुणइ** सुनता है **सो** वह **भावइ** ध्याता **सासयं** शाश्वत **ठाणं** मोक्ष को **पावइ** पाता है।

प्र.-4162 सज्जन किसे कहते हैं?

उत्तर- समीचीन रत्नत्रय के, संयम के, चारित्र के धारक गणधरादि श्रुतकेवली महामुनियों को या मोक्षमार्गी अव्रती अणुव्रती और महाव्रतियों को या समीचीन गुणधारकों को सज्जन कहते हैं।

प्र.-4163 लोकव्यवहार में सज्जन किसे कहते हैं?

उत्तर- लोकव्यवहार में सत्यवादी, नीतिनियम पालकों को, न्यायवान गुणवानों को सज्जन कहते हैं।

प्र.-4164 रयणसार ग्रंथ सज्जनों द्वारा क्यों पूज्य है?

उत्तर- यह रयणसार ग्रंथ लौकिक और लोकोत्तर सज्जनों के द्वारा पूज्य है क्योंकि यह मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करता है आत्म सुख शांति को प्राप्त कराता है इसलिये सर्वकाल सर्वत्र पूज्य है।

प्र.-4165 रयणसार ग्रंथ कैसा है और इसको पढ़ने, सुनने वाला कैसा होना चाहिये?

उत्तर- यह रयणसार ग्रंथ रत्नत्रय धर्म का, मोक्षमार्ग का, पापों को नाश करने के उपाय का प्रतिपादन करने वाला है अतः अध्येता श्रोता आलस्य का त्यागी होना चाहिये।

प्र.-4166 अध्येता और श्रोता को आलस्य का त्यागी कब तक के लिये होना चाहिए?

उत्तर- अध्येता और श्रोताओं में जब तक ये अध्येतापने और श्रोतापने के लक्षण विद्यमान हैं तब तक उसे हमेशा के लिये निरालसी होना चाहिये क्योंकि जब लोकव्यवहार में कदाचित् आलस्य आ जाये तो कार्य करते हुये भी समझ में नहीं आता, न सफलता प्राप्त होती है तो आत्मकार्य में आलसी प्रमादीजीव कैसे सफलता प्राप्त कर सकता है? अतः जो व्यक्ति कुछ नया प्राप्त करना चाहता है, समझना चाहता है तो उसे सतत सावधान रहना चाहिये। यदि पढ़ने वाला आलसी है तो पढ़ता हुआ भी समझ में नहीं आयेगा। इसी तरह वक्ता सही समझा रहा है पर श्रोताओं को कुछ भी समझ में नहीं आता, न आ सकता है जैसे चंचल मन वाला व्यक्ति भोजन करता हुआ भी स्वाद का आनंद नहीं पाता ऐसे ही चंचल मन वाला अध्ययन करता हुआ प्रवचन सुनता हुआ भी तत्त्वज्ञान प्राप्त न कर पाता है, न आनंद ले पाता है।

प्र.-4167 अध्येता श्रोता वक्ता आदि तत्त्वज्ञानियों को अब क्या करना चाहिये?

उत्तर- तत्त्वज्ञानी यदि ध्यान में प्रवेश नहीं करेगा तो उसका तत्त्वज्ञान विस्मरण हो जायेगा यहाँ तक की जड़मूल से विनाश को प्राप्त हो जायेगा अतः तत्त्वज्ञान को स्थिर करने के लिये निरंतर भावना करना चाहिये ध्यान करना चाहिये तभी इसका संस्कार मजबूत रहेगा और भवांतर तक साथ में चला जायेगा।

प्र.-4168 ऐसा करने से क्या प्राप्त होगा और इसका क्या स्वभाव है?

उत्तर- शाश्वत स्थान, मोक्षपद को प्राप्त होगा यह मोक्षस्थान ध्रुव, अचल, अनुपम है अतः सिद्ध शुद्धात्मा ऐसे स्थान को प्राप्त होता है।

नोटः- यहाँतक 4168 प्रश्नोत्तरों में 155वीं गाथा का अर्थ हुआ अब क्षेपक की 1ली गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यग्दृष्टियों के 77 गुण

उहयगुणवसणभयमलवेरग्गाइचार भत्तिविग्घं वा।

एदेसत्तत्तरिया दंसणसावयगुणा भणिया।।1।।

उभयगुणव्यसनभयमलवैराग्यातिचारभक्तिविघ्नानि वा ।

एते सप्तसप्ततिः दर्शनश्रावकगुणाः भणिताः।।

उहयगुण दोनों गुण 8 मूलगुण, 12 उत्तरगुण **वसणभयमलवेरग्गाइचार** 7 व्यसन, 7 भय, 25

मलदोष से रहित, 12 वैराग्य भावना युक्त, 5 अतिचार रहित **वा** और **भत्तिविग्घं** 1 निर्विघ्न भक्ति, **एदे** ये **सत्तत्तरिया** 77 **दंसण** जैनधर्म में **सावय** अव्रती सम्यग्दृष्टि और अणुव्रती सम्यग्दृष्टि श्रावकों के **गुणा** गुण **भणिया** कहे गए हैं।

प्र.-4169 आठ मूलगुण और 12 उत्तरगुणों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **8 मूलगुणः-** 3 मद्य मांस मधु का त्याग, 4. पंचोंदुंबर फलों का त्याग 5. पंचपरमेष्ठियों की भक्ति 6.रात्रिभोजनत्याग 7. जीवदया 8. पानी छानकर पीना। **12 उत्तरगुणः-** 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत, 4 शिक्षाव्रत।

प्र.-4170 सप्त व्यसन और सप्त भयों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **सप्त व्यसनः-** 1. जुआखेलना 2. मांसभक्षणकरना 3. शराब पीना 4. शिकारखेलना 5. चोरीकरना 6. परस्त्रीसेवन करना 7. वेश्यागमन करना। **सप्तभयः-** 1. इहलोकभय 2. परलोकभय 3. अत्राण भय 4. आकस्मिक भय 5. अगुप्तिभय 6. वेदनाभय 7. मरणभय।

प्र.-4171 पच्चीस मलदोष कौन कौन हैं?

उत्तर- 1. शंका करना 2. कांक्षा 3. विचिकित्सा 4. मूढ़दृष्टि 5. अनुपगूहन 6. अस्थितिकरण 7. अवात्सल्य 8. अप्रभावना 9. ज्ञानमद 10. पूजामद 11. जातिमद 12. कुलमद 13. बलमद 14. ऋद्धि मद 15. तपमद 16.शरीरमद 17. कुदेव अनायतन 18. कुशास्त्र अनायतन 19.कुगुरु अनायतन 20. कुदेवभक्त अनायतन 21. कुशास्त्रभक्त अनायतन 22. कुगुरुभक्त अनायतन 23. देवमूढ़ता 24. गुरुमूढ़ता 25. लोकमूढ़ता।

प्र.-4172 बारहभावना, 5 अतिचार के नाम कौन[2] हैं एवं निर्विघ्नभक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- **बारह भावनाः-** 1. अनित्यभावना 2. अशरणभावना 3. संसारभावना 4. एकत्वभावना 5. अन्यत्वभावना 6. अशुचिभावना 7. आश्रवभावना 8. संवरभावना 9. निर्जराभावना 10. लोकभावना 11. बोधिदुर्लभभावना 12. धर्मभावना। **अतिचारः-** 1. शंकातिचार 2. कांक्षातिचार 3. विचिकित्सातिचार 4. अन्यदृष्टिप्रशंसाअतिचार 5. अन्यदृष्टिस्तवअतिचार। **निर्विघ्नभक्तिः-** विघ्नबाधा रहित निर्दोषभक्ति करना। 8+ 12+ 7+ 7+ 25+ 12+ 5+1 = 77 ये सम्यग्दृष्टि के गुण होते हैं।

नोटः- यहाँ तक 4172 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 1ली गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 2री गाथा का अर्थ करते हैं।

पूजादानादि के द्रव्य हरण का फल

इच्छियफलं ण लब्भइ जइलब्भइ सो ण भुंजदे णियदं।

वाहीणमायरो सो पूयादाणाइ दव्वहरो।।2।।

इच्छितफलं न लभते, यदि लभते स न भुंक्ते नियतम्।

व्याधीनामाकरः सः पूजा दानादि द्रव्यहरः।

पूयादाणाइ- पूजादानादि के **दव्वहरो** द्रव्य का हर्ता, **इच्छियफलं** इच्छित फल को **ण** नहीं **लब्भइ** पाता **जइ** यदि **लब्भइ** पाता है तो **सो** वह **वाहीणमायरो** व्याधि सहित होने से **णियदं** नियमतः **भुंजदे** भोग **ण** नहीं पाता।

प्र.-4173 धर्मादाद्रव्य हर्ता को क्या क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- धर्मादाद्रव्य हरने वाला व्यक्ति सर्वप्रथम भोगोपभोग की सामग्री को चाहता हुआ भी प्राप्त नहीं कर पाता कदाचित् सामग्री मिल भी जाये तो अनेक बीमारियों के कारण इंद्रियसुख का आनंद नहीं ले पाता।

प्र.-4174 धर्मादाद्रव्य खानेवाला कौन सा फल प्राप्त करता है?

उत्तर- जैसे किसान खेत में बोने का बीज खा ले तो क्या बोयेगा और बिना बोये क्या फल पायेगा? कुछ भी नहीं ऐसे ही धर्मादाद्रव्य खानेवाला व्यक्ति भविष्य में चाहता हुआ भी चेतन अचेतन सामग्री नहीं पाता।

नोटः- यहाँतक 4174 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 2री गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 3री गाथा का अर्थ करते हैं।

विघ्न डालने का फल

णिरयतिरियाइ दुग्गदि दलिद्द वियलंग हाणि दुक्खाइं।

देव गुरु सत्थ वंदण, सुयभेयं सज्झाय विग्घ फलं।।3।।

नरक तिर्यग्दुर्गति दारिद्र्य विकृतांग हानि दुःखानि।

देव गुरु शास्त्र वंदना- श्रुतभेद- स्वाध्याय विघ्न फलं।।

देवगुरुसत्थवंदण देव गुरु शास्त्र के वंदन में **सुयभेय-** द्रव्य श्रुतभेद में **सज्झाय** स्वाध्याय में **विग्घफलं** विघ्न करने से **णिरयतिरियाइ** नरक तिर्यंच **दुग्गइ** ये दो दुर्गति **दलिद्द** दारिद्र्य **वियलंग** शारीरिक अंगों की **हाणि** हानि **दुक्खाइं** दुःखादि ये फल प्राप्त होते हैं।

प्र.-4175 देव शास्त्र गुरु के वंदन में कैसे विघ्न डाला जाता है?

उत्तर- कोई साधक देव शास्त्र गुरु की वंदना कर रहा है तो बीच में आकर खड़े हो गये, बैठ गये, जोर जोर से पाठ करने लगे, पूजा बोलने लगे या वार्तालाप, हंसी मजाक करने लगे जिससे उस वंदक का, पूजक का मन विचलित होकर धर्मकार्य से हट गया अतः अविवेकता और कषायवश विघ्न डाला जाता है।

प्र.-4176 श्रुत में भेद और स्वाध्याय में विघ्न कैसे डाला जाता है?

उत्तर- सम्यक् सापेक्ष जिनागम में निरपेक्ष कथन करना, चिंतन करना श्रुत में भेद डालना है और स्वाध्याय के समय में या मध्य में बिना प्रसंग के शंका प्रतिशंका वार्तालाप करना, हंसी मजाक करना, विकथायें करना, अंधकार उत्पन्न करना, शास्त्रादि छिपा देना, लड़ाई झगड़ा करना आदि से विघ्न डाला जाता है।

प्र.-4177 धर्मकार्यों में विघ्न डालने से क्या फल प्राप्त होता है?

उत्तर- धर्मकार्यों में विघ्न बाधा डालने से दुर्गति की प्राप्ति होती है और जिनधर्म कार्यों में बिघ्नबाधायें उपस्थित की हैं तो वे धर्मकार्य अपने को भवभवांतरों में भी प्राप्त नहीं होते। यही फल है।

नोटः- यहाँतक 4177 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 3री गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 4थी गाथा का अर्थ करते हैं।

सम्यक्त्व की हानि का कारण

कुतव कुलिंग कुणाणी कुवय कुसील कुदंसण कुसत्थे।

कुणिमित्ते संथुय थुइ पसंसणं सम्म हाणि होइ णियमं।।4।।

कुतपः कुलिंग कुज्ञानि कुव्रत कुशील कुदर्शन कुशास्त्रे।

कुनिमित्ते संस्तुत स्तुतिः प्रशंसनं सम्यक्त्वहानिर्भवति नियमेन।।

कुतव मिथ्यातप करने **कुलिंग** मिथ्याभेष धारण करने **कुणाणी** मिथ्याज्ञानीपने **कुवय** मिथ्याव्रत **कुसील** मिथ्यास्वभाव **कुदंसण** मिथ्यादर्शन **कुसत्थे** मिथ्याशास्त्र और **कुणिमित्ते** मिथ्या निमित्तों

की **संथुय** संस्तुति **थुइ** स्तुति **पसंसणं** प्रशंसा करने से **णियमं** नियमतः **सम्महाणि** सम्यग्दर्शन की हानि **होइ** होती है।

प्र.-4178 मिथ्यातप, मिथ्याभेष, मिथ्याज्ञानी, मिथ्याव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्वोदय सहित अनशनादितप करने को **मिथ्यातप**, मिथ्यात्व पूर्वक विकारोत्पादक रक्षक, वर्धक मुद्रा को **मिथ्याभेष**, मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय युक्त मतिश्रुतावधि ज्ञानी को **मिथ्याज्ञानी** तथा मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय युक्त व्रत पालन को **मिथ्याव्रत** कहते हैं।

प्र.-4179 कुशील, मिथ्यादर्शन, मिथ्याशास्त्र, मिथ्यानिमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर- अनंतानुबंधी आदि विषयकषाय रूप परिणामों को कुशील, मोक्षमार्गस्थ धर्मायतनों में अविश्वास को मिथ्यादर्शन, मिथ्यात्रयी मनुष्य वक्ताओं के द्वारा उपदिष्ट लिखित कथन को मिथ्याशास्त्र और संसार के कारणभूत विषयकषायों, शृंगारालंकार के उत्पादक साधनों को मिथ्यानिमित्त कहते हैं।

प्र.-4180 संस्तुति, स्तुति और प्रशंसा किसे कहते हैं और इनका फल क्या है?

उत्तर- लौकिक व्यक्ति और वस्तुओं की वचन से विशेष गुणगान को संस्तुति, सामान्य स्तवन को स्तुति व मन में प्रसन्न होने को प्रशंसा कहते हैं। इन अनायतनों की सेवा करने से सम्यक्त्व की हानि होती है।

नोटः- यहाँतक 4180 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 4थी गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 5वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

मोक्षसाधक निकट भव्य

कतकफल भरिय णिम्मल जलं ववगय कालिया सुवण्णं च।

मलरहिय सम्मजुत्तो भव्ववरो लहइ लहु मोक्खं।।5।।

कतकफल भृत निर्मल जलं व्यपगत कालिकं सुवर्णं च ।

मलरहित सम्यक्त्वयुतो भव्यवरो लभते शीघ्रं मोक्षम् ।।

कतकफल निर्मली से **भरिय-** मिश्रित **णिम्मल जलं** निर्मलजल के समान **कालिया ववगय** किट्टकालिमा रहित **सुवण्णं** शुद्ध स्वर्णवत् **मलरहिय** निर्दोष **सम्मजुत्तो** सम्यग्दृष्टि **भव्ववरो** भव्योत्तम प्राणी **लहु** शीघ्र ही **मोक्खं** मोक्ष को **लहइ** प्राप्त करता है।

प्र.-4181 मलिन जल, स्वर्ण और भव्यजीव स्वच्छ कैसे होते हैं?

उत्तर- मलिन जल में फिटकरी डालने से कीचड़ नीचे बैठने से पानी स्वच्छ हो जाता है। किट्टकालिमा सहित स्वर्णपाषाण को 16 बार मात्रानुसार तपाकर, छानकर अलग करने से स्वर्ण स्वच्छ हो जाता है ऐसे ही निर्मलसम्यग्दर्शन सहित निकटभव्यजीव ध्यानसाधना से कर्मों को क्षय कर शुद्ध स्वच्छ हो जाता है।

नोटः- यहाँतक 4181 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 5वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 6वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

उभयजीवों का समय?

सम्माइट्ठी कालं बोलइ वेरग्ग णाण भावेण।

मिच्छाइट्ठी वांछा दुब्भावालस्स कलहेहिं।।6।।

सम्यग्दृष्टिः कालं गमयति वैराग्य ज्ञान भावेन।

मिथ्यादृष्टिः वांछादुर्भावालस्यकलहैः।।

सम्माइट्ठी सम्यग्दृष्टिजीव **वेरग्ग** वैराग्य **णाणभावेण** ज्ञान भाव से और **मिच्छाइट्ठी** मिथ्यादृष्टि **वांछा** आकांक्षा **दुब्भावालस्स** दुर्भावना, आलस्य और **कलहेहिं** कलह में **कालं** अपने समय को **बोलइ** बिताता है।

प्र.-4182 सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव अपने अपने समय को कैसे व्यतीत करते हैं?

उत्तर- सम्यग्दृष्टिजीव अपने अमूल्य समय को वैराग्य, विवेक और ध्यानाध्ययन में तथा मिथ्यादृष्टिजीव अपने अमूल्य समय को दुर्भावना, आलस्य, वैरविरोध एवं अविवेकता पूर्वक व्यतीत करते हैं।

प्र.-4183 ज्ञान और विवेक में क्या अंतर है?

उत्तर- सामान्यतया इन दोनों में कोई अंतर नहीं है फिर भी गुणदोषों को स्व स्व लक्षणों से अलग[2] जानना ज्ञान है और चरणक्रिया पूर्वक हानिकारक को छोड़ना तथा लाभदायक को ग्रहण करना विवेक है।

प्र.-4184 ज्ञान और विवेक में यह अंतर क्यों किया?

उत्तर- आजकल अनेक पोथीपंडित सभी प्रकार के तत्त्वातत्त्वों को, गुणदोषों को, हिताहित को जानते हैं, शब्दज्ञानी हैं किंतु इस तथ्य को अपने जीवन में नहीं उतारते हैं अतः अंतर स्पष्ट है।

नोटः- यहाँ तक 4184 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 6वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 7वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

सुगति और दुर्गति का कारण

सम्मत्तगुणाइ सुग्गइ मिच्छादो होइ दुग्गई णियमा ।

इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुच्चइ तं कुणहो ।।7।।

सम्यक्त्वगुणतः सुगतिः मिथ्यात्वतो भवति दुर्गतिर्नियमात् ।

इति जानीहि किमिह बहुना यत्तुभ्यं रोचते तत्कुरु।।

णियमा नियमतः **सम्मत्तगुणाइ** सम्यक्त्वादि गुणों से **सुग्गइ** सुगति और **मिच्छादो** मिथ्यात्व से **दुग्गई** दुर्गति **होइ** होती है **इदि** ऐसा **जाण** जानो **इह** यहाँ **बहुणा** अधिक कहने से **किं** क्या लाभ **जं** जो **ते** तुम्हें **रुच्चइ** अच्छा लगे **तं** वह **कुणहो** करो।

प्र.-4185 सुगति और दुर्गति से यहाँ क्या मतलब है?

उत्तर- यहाँ सुगति का मतलब सुंदरगति मोक्षगति अथवा देवगति मनुष्यगति और दुर्गति का मतलब नरक तिर्यंचगति या चतुर्गति दुःख रूप संसार क्योंकि सम्यक्त्वादि मोक्षमार्ग होने से मोक्षफल को ही देते हैं और गति के 8 भेदों में से मोक्ष को भी एक गति कहा है इसलिए सुगति का अर्थ मोक्ष किया है एवं 7गतियां आश्रव बंध रूप होने से पुण्यपाप के फल हैं।

नोटः- यहाँतक 4185 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 7वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 8वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

संसार समुद्र से पार कैसे?

मोह ण छिज्जइ अप्पा दारुणकम्मं करेइ बहुवारं ।

ण हु पावइ भवतीरं किं बहुदुक्खं वहेइ मूढमई ।।8।।

मोहं न छिनत्ति आत्मा दारुणकर्मं करोति बहुवारं।

न हि प्राप्नोति भवतीरं किं बहुदुःखं वहति मूढमतिः।।

मूढमई- मूढ़मति **अप्पा** आत्मा **मोह** मोह का **छिज्जइ** क्षय **ण** नहीं करता है किंतु **बहुवारं** अनेक

बार **दारुणकम्मं** दारुण कर्म को **करेइ** करता हुआ भी **हु** वास्तव में **भवतीरं** संसार का किनारा **ण** नहीं **पावइ** पाता है अतः हे मूर्ख मोक्ष के निमित्त **बहुदुक्खं** अनेक दुःखों को **किं** क्यों **वहेइ** ढोता है?

प्र.-4186 मोक्षमार्गी बनने के पहले क्या करना चाहिये?

उत्तर- संयमी मोक्षमार्गी बनने के पहले मोक्षमार्ग घातक संयमघातिकर्मों का क्षय करना चाहिये।

प्र.-4187 मोक्षमार्गी को कर्म क्षय करने के लिए क्या करना चाहिये?

उत्तर- मोक्षमार्गी को अपना अंतरंग बहिरंग बलवीर्य न छिपाकर अनेक प्रकार के अंतरंग बहिरंग तप से नवीन कर्मों का संवर करते हुए पूर्वबद्ध कर्मों का क्षय कर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

प्र.-4188 इस क्रम का उल्लंघन करने से क्या फल प्राप्त होगा?

उत्तर- हे मूर्ख! इस क्रम के उल्लंघन से संसार में अनेक दुःख उठाने पड़ेंगे अतः सोचो, समझो, जागो।

नोटः- यहाँतक 4188 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 8वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ अब 9वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

धर्मियों के प्रति पापियों की दृष्टि

चम्मट्ठिमंसलवलुद्धो सुणहो गज्जए मुणिं दिट्ठा।
जह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठा।। 9।।

चर्मास्थिमांसलवलुब्धः शुनकः गर्जति मुनिं दृष्ट्वा।
यथा पापिष्ठः स धर्मिष्ठं दृष्ट्वा स्वकीयार्थः।।

जह जैसे **चम्मट्ठिमंसलव** चर्म, अस्थि, मांस का **लुद्धो** लोभी **सुणओ** कुत्ता **मुणिं** मुनि को **दिट्ठा** देखकर **गज्जए** भोंकता है वैसे ही **सो** वह **पाविट्ठो** पापी **धम्मिट्ठं** धर्मात्मा को **सगीयट्ठा** अपने समान **दिट्ठा** देखता है।

प्र.-4189 धर्मात्माओं को देखकर पापी क्या करता है?

उत्तर- जैसे कुत्ता मांसादि पिंड को देखकर सामने आये हुए दूसरे कुत्तों को भगाकर मांस खाने को झपटता है ऐसे ही नवीन संप्रदायी एकांती निश्चयाभासी पापी जैन हो तो भी धर्मात्माओं, साधुओं को देखकर रक्षकों को हटाकर उपसर्गपरीषह करने लगता है।

प्र.-4190 धर्मात्मा किसे कहते हैं?

उत्तर- मिथ्यात्व अन्याय अभक्ष्य के त्याग पूर्वक देव शास्त्र गुरु के भक्त को धर्मात्मा कहते हैं।

नोटः- यहाँतक 4190 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 9वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 10वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

पात्र और अपात्र

दंसणसुद्धो धम्मज्झाणरदो संगवज्जिदो णिसल्लो।
पत्तविसेसो भणियो ते गुणहीणो दु विवरीदो।। 10।।

दर्शनशुद्धो धर्मध्यानरतः संगवर्जितो निःशल्य।
पात्रविशेषो भणितः तैर्गुणैः हीनस्तु विपरीतः।।

दंसणसुद्धो सम्यग्दर्शन से शुद्ध **धम्मज्झाणरदो** धर्मध्यान में रत **संगवज्जिदो** परिग्रह त्यागी **णिसल्लो** निःशल्य **पत्तविसेसो** पात्र विशेष **भणियो** कहे हैं **दु** और उनसे विपरीत **ते** वे **गुणहीनो** रत्नत्रयगुण हीन **विवरीदो** अपात्र कहे हैं।

प्र.-4191 पात्रविशेष और अपात्रविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर- रत्नत्रय से शुद्ध, धर्मध्यानी, परिग्रह एवं शल्यत्यागी मुनि को उत्तम पात्रविशेष तथा मिथ्यादृष्टि, आर्तरौद्रध्यानी, विषयकषायों, शृंगारालंकार में, आरंभपरिग्रह में शल्यवान को अपात्र विशेष कहते हैं।

प्र.-4192 गुणहीन व्यक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर- यद्यपि गुणों के बिना द्रव्य और द्रव्य बिना गुण नहीं होते ऐसे ही वर्तमान पर्याय के बिना द्रव्यगुण और द्रव्यगुण के बिना पर्याय नहीं होती फिर भी भूतभावि पर्यायों का अस्तित्व न होने से इनके बिना द्रव्य रहता है अतः वर्तमान में साधक के अंदर समीचीन गुणपर्याय न होने से इसे गुणहीन कहते हैं। ऐसा व्यक्ति न श्रावक है न साधु, निंदा का, आदरसम्मान का भी पात्र नहीं है।

नोटः- यहाँतक 4192 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 10वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 11वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

विवेकवान दाता

सम्माइगुणविसेसं पत्तविसेसं जिणेहिं णिद्दिट्ठं
तं जाणिऊण देइसु दाणं जो सोउ मोक्खरओ।। 11।।

सम्यक्त्वादिर्गुणविशेषः पात्रविशेषो जिनैर्निर्दिष्टः।
तं ज्ञात्वा दीयतां दानं यः सोऽपि मोक्षरतः।।

जिणेहिं जिनेंद्र ने **सम्माइ** सम्यक्त्वादि **गुणविसेसं** विशेष गुणवाले **पत्तविसेसं** पात्र विशेष **णिद्दिट्ठं** कहे हैं **जो** जो **तं** उन्हें **जाणिऊण** जानकर **दाणं** दान **देइसु** देता है **सोउ** वह भी **मोक्खरओ** मोक्ष में रत है।

प्र.-4193 उत्तम पात्र को देखकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- मोक्षमार्गी उत्तमपात्र मुनिआर्यिकाओं को धर्मध्यान के योग्य दान देकर सेवा करना चाहिये।

प्र.-4194 मध्यम जघन्य पात्र को देखकर क्या करना चाहिये?

उत्तर- मोक्षमार्गस्थ मध्यम जघन्य पात्र को देखकर इनके पदानुसार धर्मानुकूल साधन सामग्री देकर मोक्षमार्ग में और व्यवहार दिनचर्या में सहायक बनना चाहिये जिससे स्व पर का धर्मसाधन होता रहे।

नोटः- यहाँतक 4194 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 11वीं गाथा का अर्थ हुआ अब 12वीं गाथा का अर्थ करते हैं।

अनात्मज्ञ बहिरात्मा

जं जं अक्खाणसुहं तं तं तिव्वं करेइ बहु दुक्खं।
अप्पाणमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा ।।12।।

यद्यदक्षाणां सुखं तत्तत्तीव्रं करोति बहुदुःखं।
आत्मानमिति न चिंतयति स एव भवति बहिरात्मा।।

जं जं जो जो **अक्खाणसुहं** इंद्रियसुख हैं **तं तं** वे वे **बहु तिव्वं** अति तीव्र **दुक्खं** दुःख **करेइ** करते हैं ऐसा जो **अप्पाणमिदि** आत्मा का **चिंतइ** चिंतन **ण** नहीं करता है **सो चेव** वही **बहिरप्पा** बहिरात्मा **हवेइ** है।

प्र.-4195 इंद्रियविषय कैसे हैं और कैसे नहीं?

उत्तर- क्रमशः सातासाता के उदय से सुखानुभव दुःखानुभव होता है अतः इंद्रियसुख दुःख ही है।

प्र.-4196 इंद्रियविषय को सुख और दुःख रूप में चिंतन करने वाला कौन है?

उत्तर- इंद्रियविषय को आत्मसुख रूप में अनुभव करने वाला बहिरात्मा और दुःख रूप में अनुभव करने वाला अंतरात्मा होता है। दोनों प्रकार के चिंतन से परमात्मा होता है।

प्र.-4197 भोगभूमिजों में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता कब आती है?

उत्तर- उत्तम भोगभूमिजों में 21 दिन, मध्यम भोगभूमिजों में 35 दिन के बाद एवं जघन्य भोगभूमिजों में 49 दिन के बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता आती है। ति.प. अ. 4 गा. 384, 403, 411

प्र.-4198 सहारनपुर में एक श्राविका बोली कि महाराज पीछी लगाकर आशीर्वाद दो?

उत्तर- हमने (वासुपूज्यसागर ने) पीछी लगाये बिना आगे पैर लंबे कर कहा कि पहले पैर स्पर्श करो तब बाद में हम पीछी लगाकर आशीर्वाद देंगे। उन बहनजी ने कहा हम चरण स्पर्श नहीं करेंगे। हमने उनसे पूंछा क्यों चरणस्पर्श नहीं करोगी? बहनजी बोली हमारे ब्रह्मचर्य में दोष लगता है तब हमने कहा कि जब आपको चरण छूने से ब्रह्मचर्य में दोष लगता है तो हमें भी पीछी स्पर्श कराने में दोष क्यों नहीं लगेगा? इस पर हमने उनसे कहा कि जब गुरुओं के चरण छूने से पतिव्रत में, ब्रह्मचर्य में दोष लगता है तो आसपास वालों को, समाजवालों को, डॉक्टरों को बाजारों में जब पुरुषों को छूती हो तो उस समय आपको दोष नहीं लगता है, क्या स्फटिक को छूने से काला धब्बा लगता है, कोयले को छूने से नहीं? यह कैसी विडम्बना?

प्र.-4199 औदारिक काययोग और औदारिक शरीर में क्या अंतर है?

उत्तर- औदारिक काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों में कंपन होना काययोग है और औदारिक शरीर नाम कर्मोदय से औदारिकशरीर प्राप्त होता है। औदारिक काययोग 13वें गुणस्थान के अंतिम समय में समाप्त हो जाता है जबकि औदारिक शरीर 14वें के अंत में समाप्त होता है अतः दोनों अलग अलग हैं, एक नहीं।

प्र.-4200 औदारिक काययोग और औदारिक शरीर को एक मानने में क्या आपत्ति है?

उत्तर- सर्व प्रथम यही आपत्ति है कि इन दोनों को एक मानने पर या तो ये दोनों एक ही साथ एक ही स्थान में और एक ही समय में विनाश को प्राप्त होंगे या दोनों का सद्भाव बना रहेगा तब ऐसा होने से अयोगी गुणस्थान का अभाव हो जायेगा क्योंकि 13वें गुणस्थान के अंत में योग के अभाव होते ही औदारिक शरीर का भी अभाव होगा या 14वें गुणस्थान के अंत तक औदारिक शरीर और काययोग का सद्भाव होने से आत्मप्रदेशों में कंपन होने के कारण अयोगकेवली अवस्था नहीं बनेगी इससे भी 14वें गुणस्थान का अभाव ही होगा तथा दोनों का लक्षण और कार्य भिन्न भिन्न होने से ये कभी भी एक न होकर अलग अलग ही रहेंगे अतः एक मानना ही आपत्ति है तभी अयोगीअवस्था बन सकती है।

प्र.-4201 स्वभाव और लक्षण में क्या अंतर है?

उत्तर- अनंत संख्या वाले स्वभाव स्वपर सापेक्ष होकर सभी में होते हैं किंतु लक्षण पृथक् करने वाला होता है। यही इन में अंतर है। सभी वस्तुओं के पृथक् पृथक् लक्षण होने से ही संकर व्यतिकर दोष नहीं आता।

प्र.-4202 क्या महाव्रतीजन सबके हाथ से आहार ग्रहण कर सकते हैं?

उत्तर- नहीं, सबका आहार तो ले सकते हैं किंतु सबके हाथ से नहीं क्योंकि चारों वर्णवालों की और पशुओं की दूध आदि सामग्री भी आहार में लेते हैं। कारण 108 कोटियों से दान दिया जाता है।

प्र.-4203 यह रयणसार आ. श्री कुंदकुंद के नाम पर किसी और ने लिखा है क्या?

उत्तर- यह ग्रंथ आ. श्री कुंदकुंदजी कृत ही है क्योंकि ऐसा ही कथन इनके अनेक दूसरे ग्रंथों में भाषा परिवर्तन होने पर भी भाव में एकरूपता पाई जाती है। इसमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं है अथवा शंकाकार की मान्यतानुसार किसी और ने आ. श्री कुंदकुंद के नाम पर लिखा है तो शंकाकार को यह भी बताना चाहिए कि इसमें कौन सी गाथा जिनधर्म के और आ. श्री कुंदकुंद के विरुद्ध है? जब आचारांग, उपासका- ध्ययनांग और आत्मप्रवाद के अनुकूल है तब यथार्थ प्रमाण मानकर ही विश्वास करना चाहिये अथवा यदि किसी अन्य ने इस रयणसार ग्रंथ की रचना

की है तो वह ग्रंथकर्ता असंयमी है या संयमी, अप्रमाणता क्या?

प्र.-4204 यदि ऐसा है तो आ. श्री के अन्य ग्रंथों के समान इसमें प्रौढ़ता क्यों नहीं है?

उत्तर- वक्ता की भाषा में प्रौढ़ता और सरलता कदाचित् उत्तम, मध्यम, जघन्य श्रोताओं के अनुसार होती है। यदि श्रोतागण भाषा और विषय में गहन प्रवेश कर चुके हैं तो वक्ता भी सूक्ष्म और गहन विषय प्रतिपादन करते हैं तथा श्रोतागण स्थूल व मंद क्षयोपशम वाले हैं तो वक्ता उनको विषय में प्रवेश कराने के लिए स्थूल प्रचलित सामान्य भाषा में विषय प्रतिपादन करते हैं जिससे श्रोता जिनधर्म में विश्वासी बने रहें तथा अपनी दिनचर्या, आचारविचार, रोटीबेटी व्यवहार यथवत् बनाये रक्खें, बिगाड़े नहीं।

प्र.-4205 अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय कहाँ तक होता है?

उत्तर- सामान्यतः इसका उदय पंचम गुणस्थान पर्यंत ही होता है किंतु विशेषतः उपशमश्रेणी के चारों गुणस्थानों में तद्भवमरण की अपेक्षा उदय आता ही है यदि इसका उदय नहीं आये तो देवों में जनम बन नहीं सकता क्योंकि देवों में अपर्याप्त अवस्था में एकमात्र असंयम ही होता है अतः उपशमश्रेणी के गुणस्थानों में समाधिमरण से संयम का अभाव तथा असंयम के उत्पाद का एक ही समय में होने से तत्क्षण एक ही समय में देवगति के योग्य कर्मों का उदय हो जाता है यानि विशेषतः अप्रत्याख्यानावरण का उदय 11वें गुणस्थान तक भी हो जाता है सो यह कथन आयुक्षय की अपेक्षा समझना चाहिये।

प्र.-4206 भव्यवरजीव शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है ऐसा क्यों कहा? (क्षे.गा.5)

उत्तर- चरमशरीरी महामुनि का अभी जीवनकाल बहुत है किंतु भयंकर उपसर्ग परीषह के होने पर प्रमत्तदशा में आयुकर्म की उदीरणा करते[2] जब केवल अंतर्मुहूर्तकाल शेष जीवन बचा तब क्षपक श्रेणी आरोहण कर क्रमशः गुणस्थानानुसार घातिअघाति कर्मों को क्षय कर अंतकृतकेवली हो मोक्ष प्राप्त करता है अतः भव्यवरजीव शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है, सामान्य भव्य नहीं ऐसा कहा है।

प्र.-4207 भव्य के साथ "वर" विशेषण क्यों लगाया तथा भव्यवर किसे कहते हैं?

उत्तर- दूरानुदूर भव्य के निषेध के लिए भव्य के साथ "वर" विशेषण लगाया है अन्यथा दूरानुदूरभव्य भी मोक्ष प्राप्त कर लेगा तथा श्रेष्ठ भव्यजीव ही निकटभव्य होता है, शेष नहीं।

प्र.-4208 सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीव अपना समय ऐसा क्यों व्यतीत करते हैं?

उत्तर- जन्म परंपरागत इनका यह स्वभाव है। जैसे चंद्रमा का शीतल और सूर्य का गर्म होना।

प्र.-4209 यह जीव उपसर्ग परीषहों को सहन करता हुआ भी मोक्ष क्यों नहीं पाता?

उत्तर- संसार के बीजभूत अविश्वास, अविवेकता और विषयकषाय रूप परिणामों को छेदे बिना अनेक कष्टों को भोगता हुआ भी मोक्ष प्राप्त नहीं करता। जैसे कुछ शराबी शराब के नशे में चकचूर हो अविवेकी नदी पार करने चले पर नदी में अथाह पानी होने के कारण उस पार कैसे पहुंचे कुछ देर सोचते रहे पर थोड़ी ही देर में उन शराबियों को पास में बिना नाविक के नाव दिख जाती है वे सभी अत्यधिक प्रसन्न होते हुए नाव के पास गये तथा नाव पर सवार हो चलाने लगे और चलाते चलाते रात्रि समाप्त होते ही कुछ कुछ उजेलाा दिखने लगा था तब सोचते हैं कि अब तो अपन किनारे पर आ पहुंचे किंतु नशा के उतरते ही जैसा का तैसा स्थान देखते हैं अरे! क्या हुआ रात्रिभर परिश्रम करते रहे पर किनारा प्राप्त नहीं हुआ क्या कारण है? चारों तरफ खोज करते हुए नाव का बंधन मिल जाता है अतः परिश्रम करते हुए भी बंधन न खोलने से किनारा प्राप्त नहीं हुआ ऐसे ही संसार के मूल कारण मिथ्यात्रय न छोड़ने से मोक्ष न मिला। (क्षे.गा.6)

प्र.-4210 पापोपदेश अनर्थदंड के कितने भेद हैं? (प्र. 3904 संबंधी)

उत्तर- हिंसादि पापों के, सप्तव्यसनों के, आरंभ परिग्रह आदि के, वैरविरोधादि के उत्पादक पाप प्रकृतियों के कारणभूत वचनों के भेदानुसार पापोपदेश अनर्थदंड के असंख्यात भेद हैं क्योंकि वचन

भी प्राणियों के पतन में कारण हैं जो सूत्रकार ने अधिकरणं जीवाजीवाः के द्वारा प्रतिपादन किया है।

प्र.-4211 हिंसादान अनर्थदंड के कितने भेद हैं?

उत्तर- स्वपर द्रव्यभाव प्राणों के घातक चेतन अचेतन साधनों के ग्रहण करने कराने के भेदों के बराबर हिंसादान अनर्थदंड के संख्यात असंख्यात भेद हैं। जैसे कषायवश वचन से किसीको देखने से रोक देना।

प्र.-4212 अपध्यान अनर्थदंड के कितने भेद हैं?

उत्तर- रागद्वेषादि भावों से प्राणियों को दुःखी करने के लिए नाना प्रकार से अनिष्टकारी विचारों के माध्यम से निष्प्रयोजन कर्मबंधक भावों के असंख्यात अनंत भेद हैं क्योंकि इस अपध्यान में विधि और निषेध पूर्वक यह दुःखी हो जाये। जैसे इसका अत्यंत निकट प्रिय मर जाये या इच्छानुकूल वस्तु प्राप्त न हो।

प्र.-4213 दुःश्रुति अनर्थदंड के कितने भेद हैं?

उत्तर- सुनने योग्य असंख्यात शब्दों के द्वारा मोक्षमार्ग के विरुद्ध आत्मघातक परघातक नाना प्रकार के शब्दों के सुनने सुनाने के भेदानुसार दुःश्रुति अनर्थदंड के संख्यात असंख्यात भेद हैं।

प्र.-4214 प्रमादचर्या अनर्थदंड के कितने भेद हैं?

उत्तर- विषयकषाय पूर्वक असावधानी से मन वचन काय की क्रियाओं के बराबर प्रमादचर्या अनर्थदंड के भेद हैं क्योंकि इन अनर्थदंडों के द्वारा चतुर्गतियों में भ्रमण करने के लिए कर्मों का आश्रवबंध होता है।

प्र.-4215 तो क्या इन पाँच नामों के अलावा और भी भेद हो सकते हैं?

उत्तर- नहीं, अनर्थदंडों के असंख्यात लोक प्रमाण भेदप्रभेद होने पर भी मनवचनकाय के द्वारा वे सभी अनर्थदंड इन पाँचों में अंतर्भाव को प्राप्त हो जाते हैं फिर भी मात्रानुसार भेद हैं ही, नामों में भेद नहीं हैं।

प्र.-4216 छेदोपस्थापना संयम किसे कहते हैं, भेद और स्वामी कौन कौन हैं?

उत्तर- की हुई प्रतिज्ञा में या उत्पन्न हुई उत्कृष्ट निर्मलता में कुसंगति के या दुर्भाग्यवशात् सदोष चर्या और परिणामों को निकालकर, दूरकर पुनः पूर्व निर्दोष अवस्था के प्राप्त करने को छेदोपस्थापना संयम कहते हैं। दो भेद हैं। बाह्यचर्या संबंधी एवं निर्विकल्प ध्यान संबंधी। स्वामीः- 6वें गुणस्थान से 9वें गुणस्थान तक।

प्र.-4217 बाह्यचर्या संबंधी छेदोपस्थापनासंयम किसे कहते हैं?

उत्तर- मुनियों के मूलगुणों में उत्पन्न हुए अतिचार अनाचार दोषों को दूरकर दीक्षाकाल में कुछ समय कम करने को या कुछ भी त्याग कराकर पुनः उसी अवस्था में स्थापित करने को बाह्यचर्या संबंधी छेदोपस्थापना संयम कहते हैं। इसके स्वामी मुख्यतः प्रमत्तमुनि हैं और गौणतः अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि हैं।

प्र.-4218 निर्विकल्पध्यान संबंधी छेदोपस्थापनासंयम किसे कहते हैं?

उत्तर- उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणीवाले मुनियों के 8वें 9वें गुणस्थान में उत्पन्न हुए कषायकर्म और इसके वेदनपरिणामों को प्रध्वंसाभाव कर शुद्ध निर्मल परिणामों में स्थिर होने को यह संयम कहते हैं।

नोटः- यहाँ तक 4218 प्रश्नोत्तरों में क्षेपक की 12वीं गाथा का अर्थ पूर्ण हुआ।

चूलिका

प्र.-1 चूलिका किसे कहते हैं?

उत्तर- जिसमें उक्त/कहे हुए, अनुक्त/ बिना कहे हुए और विशेष कथन हो उसे चूलिका कहते हैं।

प्र.-2 यदि स्त्रियाँ अभिषेक नहीं करतीं हैं तो इंद्राणी और देवांगनायें क्यों करती हैं, माँ के पास से इंद्राणी तीर्थंकर बालक को लेकर क्यों आती है, श्रृंगार क्यों करती है तथा श्राविकाओं ने, स्त्रियों ने अभिषेक किया है ऐसा किन किन शास्त्रों में वर्णन है?

उत्तर- तीर्थंकर बालक को माँ के पास से लाना, वस्त्राभूषण धारण कराना इंद्राणी का ही कार्य है, इंद्र का नहीं। तभी तो पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं के समय में जिसने बोलियों में ज्यादा पैसा दिया है उन्हीं श्रावक श्राविकाओं में, इंद्र इंद्राणियों की, देवदेवांगनाओं की मंत्रों के द्वारा स्थापना कर इन्हीं के द्वारा पंचकल्याणक की सारी क्रियायें संपन्न कराईं जातीं हैं। अभिषेक के बाद में शरीर को स्पर्श किये बिना शरीर पोंछना वस्त्राभूषण धारण कराना बन नहीं सकता शरीर को स्पर्श करना ही पड़ेगा जबकि अभिषेक दूर से किया जाता है यदि आप अभिषेक करने में पाप मानते हो तो प्रतिष्ठाओं में भी माता के पास से तीर्थंकर कुमार को इंद्र ही लाये, सारी की सारी विधि इंद्र ही करे इन्द्राणी नहीं फिर बोलियां भी केवल इन्द्र की, देवों की लगाओ इंद्राणी की, देवांगनाओं की नहीं। कुछ प्रमाण निम्न प्रकार है।

गृहीत गंध पुष्पादि प्रार्चना सपरिच्छदा।
अथैकदा जगामैषा प्रातरेव जिनालयम्।।55।।
त्रिपरीत्य ततः स्तुत्वा जिनाश्च चतुराशया।
संस्नाप्य पूजयित्वा च प्रयाता यति संसदि।।56।। जिनदत्त. सर्ग 1 आ.गुणभद्र

अर्थ- एक दिन की बात है। सेठानी जवंजसा स्नान आदि से शुद्ध होकर दासदासियों के साथ प्रातःकाल ही जिनेंद्र देव के दर्शन के लिये गई। वहाँ पहुँचकर उसने पहले तो तीन प्रदक्षिणाऐं दी और बाद में स्तुति पूर्वक अभिषेक किया, पूजा की और फिर बाद में मुनियों की सभा में गई। हि. श्रीलाल जैन पेरा 2

तदा वृषभसेना च प्राप्य राज्ञी पद महत्।
दिव्यां भोगान्प्रभुंजानां पूर्वपुण्य प्रसादतः ।।38।।
पूज्यंति जगत्पूज्यान् स्वर्गापवर्गदान्।
द्विर्यैरष्ट महा द्रव्यैः स्नपनादिभिरुज्वलैः।।39।।आराधना. भाग 3 पृ. 412

अर्थ- पूर्व पुण्य के प्रसाद से वृषभसेना ने पटरानी पद को प्राप्त करके स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले जिनेंद्र भगवान की जलादि से अभिषेक पूर्वक अष्टद्रव्य से पूजा की। औषधिदान की कथा नं. 110

अत्यंत सुकुमारस्य जिनस्य सुरयोषितः।
शच्याद्याः पल्लव स्पर्श सुकुमारकरास्ततः।।172।।
दिव्यामोद समाकृष्टषट्पदौधानुलेपनैः।
उद्वर्तयन्त्यस्ताः प्रापुः शिशुः स्पर्श सुखं नवम्।।173।।
ततो गंधोदकैः कुंभैरभ्यषिंचन् जगत्प्रभुम्।
पयोधरभरानम्रास्ता वर्षा इव भूभृतम्।।174।। हरि. सर्ग8 आ. जिनसेन

अर्थ- जिनके हाथ पल्लवों के समान अत्यंत सुकुमार थे ऐसे इंद्राणी आदि देवियों ने अतिशय सुकुमार जिन बालक को अपनी दिव्य सुगंधि से भ्रमर समूह को आकृष्ट करने वाले अनुलेपन से उबटन किया और इस तरह उन्होंने जिन बालक के स्पर्श से समुत्पन्न नूतन सुख प्राप्त किया। मेघों के भार से नम्रीभूत वर्षाऋतु जैसे पर्वत का अभिषेक करती है उसी प्रकार स्तनों के भार से

नम्रीभूत इन्द्राणी और देवियों ने सुगंधित जल से भरे कलशों द्वारा भगवान का अभिषेक किया। पृ. 159 हि. अनु. पं. पन्नालालजी। साहित्याचार्य सागर

इत्युक्तौ नोदयाद्वेगात्सारथी रथमाप सः।
जिनवेश्म तस्मास्थाप्य तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणाम्।।20।।
क्षीरेक्षुरसधारोघैर्घृत दध्युदकादिभिः।
अभिषिंच्य जिनेंद्रार्चामर्चितां नृ सुरासुरैः।।21।। हरि. सर्ग 22 आ. जिनसेन

अर्थ- गंधर्वसेना के कहते ही सारथी ने रथ हांका और जिनमंदिर के पास खड़ा कर दिया। रथ से उतरकर कुमार और गंधर्वसेना मंदिर में प्रवेश कर प्रभु की तीन प्रदक्षिणा दी तथा पंचामृतअभिषेककिया। पृ. 320

ततः सुरपतिस्त्रियो जिनमुपेत्यशच्यादयः सुगंधितनु पूर्वकैर्मृदुकराः समुद्वर्तनम्।
प्रचक्रुरभिषेचनं शुभपयोभिरुच्चैर्घटैः पयोधरभरैर्निजैरिव समं समावर्जितैः।।54।। पृ. 485

अर्थ- कोमल हाथों को धारण करने वाली शची आदि देवांगनाओं ने आकर सुगंधित द्रव्यों से भगवान का उबटन किया और अपने ही स्तनों के समान सुशोभित एक साथ उठाये हुये शुभ जल से परिपूर्ण कलशों के द्वारा उनका अभिषेक किया। हरि. सर्ग 38।

प्रतिमां च प्रवेश्यैनां पूर्व देशे व्यतिष्ठपत्।
आनर्च च विचित्राभिः सुमनोभिः सुगंधिभिः।।193।। पद्म. पर्व 17

अर्थ-अरिहंत भगवान की प्रतिमा को आर्यिका माताजी के संबोधन से सम्यग्दृष्टि कंकोदरी ने पूर्व स्थान पर विराजमान कर नाना प्रकार के सुगंधित फूलों से पूजा की। आगे इसीमें 289 -290 और 303 को देखना।

इंद्राणीप्रमुखा देव्यः सद्गंधैरनुलेपनैः।
चक्रुरुद्वर्तनं भक्त्या करैः पल्लवकोमलैः।।186।।
महीध्रमिव तं नाथं कुंभैर्जलधरैरिव।
अभिषिंच्य समारब्धाः कर्तुमस्य विभूषणम्।।187।। पद्म. पर्व 3 पृ. 45

अर्थ- इंद्राणी आदि देवियों ने पल्लवोंवत् कोमल हाथों के द्वारा समीचीन गंध सहित अनुलेपन से भगवान का उद्वर्तन किया। जैसे मेघों के द्वारा किसी पर्वत का अभिषेक होता है वैसे विशाल ही कलशों से प्रभु का अभिषेक कर आभूषण पहनाने के लिये तत्पर हुईं।

कारयन्ती जिनेंद्रार्चाश्चित्रा मणिमयीर्बहूः।
तासां हिरण्यमयान्येव विश्वोपकरणान्यपि।।173।।
तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती।
मुहुः स्तुतिभिरर्थ्याभिः स्तुवतीभक्तितोऽर्हतः।।174।। आदि पर्व 43

अर्थ- उस सुलोचना ने श्री जिनेंद्र देव की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमायें बनवायी थी और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण के ही बनवाये थे, प्रतिष्ठा और अभिषेक के बाद में प्रतिमाओं की महापूजा करती थी, अर्थ पूर्ण स्तुतियों के द्वारा श्री अरिहंत देव की भक्ति पूर्वक स्तुति करती थी आदि।

तस्मिन् विधाय महती मुपवास पूर्वां,
पूजां जगत्विजयिनो जिनपुंगवस्य।
स्नानं समीहित निमित्त मधस्तदीय,
बिंबस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्या।।६१।। चंद्र. काव्य सर्ग 3 पृ. 32

अर्थ- उपवास पूर्वक अष्टाह्निका पर्व में जगत्विजयी जिनेंद्र भगवान की महापूजा करने के पश्चात्

अभीष्ट सिद्धि के लिये जिनबिंब का अभिषेक अपनी पटरानी के साथ किया। आ. वीरनंदी

चरुभिः पंचवर्णैश्च ध्वजमाल्यानुलेपनैः।
दीपैश्च बलिभिश्चूर्णैः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः।।141।। वरांग. सर्ग 15

अर्थ- वे राजा वरांग की रानियां प्रतिदिन पवित्र नैवेद्य, पंचरंगी पुष्प, ध्वजा, माला, अभिषेक, अनुलेपन, दीप, चूर्ण किये गये चंदनादि के द्वारा वीतराग प्रभु की पूजा कर प्रसन्न होतीं थीं।

अथैकदा सुता सा च सुधीर्मदनसुंदरी।
कृत्वा पंचामृतैः स्नानं जिनानां सुखकोटिदम्।।८०।। श्रीपाल. सर्ग 2

अर्थ- एक दिन वह सुधी मदनसुंदरी करोड़ों सुखों को देनेवाले जिनबिंबों का पंचामृताभिषेक करके। आ. सकलकीर्ति कृत। अधि. 3 गा. 65, 96 में पंचामृताभिषेक मदनसुंदरी ने किया ऐसा कहा है।

प्र.3- तीर्थंकर बालक को काजल कौन लगाती है?

उत्तर- तीर्थंकर बालक को काजल बुआ लगाती है तभी तो प्रतिष्ठाओं में बोली लगाकर बुआ से काजल लगवाया जाता है और यह व्यवहार केवल कर्मभूमिज मनुष्यों में ही होता है, भोगभूमि में, तिर्यंचों में, देवों में नहीं और बुआ में न किसीकी स्थापना की जाती है अतः मनुष्यनी बुआ ही काजल लगाने का नैगाचार करती है और जब आँखों में काजल लगा सकती है तो अभिषेक क्यों नहीं कर सकती? यदि अभिषेक करने में दोष है तो पैसा कमाने के लिये बुआ की बोली क्यों लगाते लगवाते हो इसमें पाप क्यों नहीं?

प्र.4- इंद्राणी देवांगनाओं ने या श्राविकाओं ने जन्म कल्याणकाभिषेक कर लिया सो ठीक है किंतु मुनि या तीर्थंकरकेवली का अभिषेक तो होता नहीं फिर क्यों करना पड़े?

उत्तर- यदि ऐसा है तो आप भी तीर्थंकर बालक का श्राविकाओं, इंद्राणी और देवांगनाओं से जन्माभिषेक करा लो तब मना क्यों करते हो? तीर्थंकरकेवली का अभिषेक श्रावकश्राविका, इंद्रइंद्राणी देवदेवांगनायें भी नहीं करती हैं न करते हैं किंतु अकृत्रिम चैत्यालयों में तीर्थंकर और सिद्धप्रतिमाओं का देवगति के जघन्यपात्र श्रावकश्राविकायें और मनुष्यगति के जघन्य मध्यमपात्र अणुव्रती श्रावकश्राविकायें अभिषेक करते हैं ऐसा शास्त्रों में पढ़ा जाता है, वर्तमान में भी अनेक शहरों में करते, करतीं हैं तो क्या दोष है?

प्र.-5 इंद्राणी, देवांगनाओं, श्राविकाओं ने जन्माभिषेक किया है इसका क्या प्रमाण है?

उत्तर- हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, महापुराण, वरांगचरित्र, जिनदत्तचरित्र, श्रीपालचरित्र, आ.कथा कोश।

प्र.-6 ये पुराणग्रंथ मूलसंघ आचार्यों के न होने से अमान्य हैं, अप्रमाण हैं?

उत्तर- पद्मपुराण के कर्ता आ. रविषेण सेनसंघ के, वरांगचरित्र के कर्ता आ. जटासिंहनंदी 7वीं शताब्दी के, हरिवंशपुराण के कर्ता आ. जिनसेन 8वीं शताब्दी के, महापुराण के कर्ता आ. जिनसेन, जिनदत्तचरित्र के कर्ता गुणभद्र ये दोनों आ. श्री वीरसेन के शिष्य प्रतिशिष्य हैं, जो 9वीं शताब्दी के हैं। इन सभी का प्रमाण जै.सि.को. भाग 1 के इतिहास नाम के अध्याय में पृ. 309 से 348 तक है।

प्र.-7 क्या मूलसंघ आचार्यों ने इनको अभिषक करने का विधान किया है?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही ये सभी ग्रंथकर्ता मूलसंघ के ही आचार्य थे तथा और भी प्रमाण मिल जायेंगे।

प्र.-8 ये पुराणग्रंथ विरुद्ध कथन करने वाले होने से अप्रमाण क्यों नहीं हैं?

उत्तर- यदि हरिवंशपुराणादि ग्रंथ मूलसंघ आचार्यों के न होने से अप्रमाण, मिथ्या हैं तो ये ग्रंथ और ग्रंथकर्ता मिथ्याशास्त्र तथा मिथ्यागुरु अनायतन कहलाये और ये अनायतन होने से जिनमंदिर में जिनागम मानकर विराजमान क्यों करना, शास्त्रदान मानकर मोक्षमार्गियों को क्यों देना, धर्मग्रंथ

मान क्यों प्रकाशन करना कराना, यदि करते कराते हो तो क्या अनायतनसेवा, अनायतनदान देना न कहलाया मिथ्यात्वाराधना, मूढ़तायें न हुई क्योंकि सम्यग्दृष्टि धर्म के निमित्त मिथ्यासामग्री का दान नहीं देता। यदि ये ग्रंथ व ग्रंथकर्ता अप्रमाण, प्रमाणाभास हैं तो अभी वर्तमान में भी आचार्य श्री शांतिसागरजी दक्षिणवाले और आचार्य आदिसागरजी इन दोनों की शिष्य परंपरायें भी प्रमाणाभास, जैनाभास कहलायेंगीं क्योंकि ये परंपरायें उन्हीं ग्रंथों का अनुसरण कर रहीं हैं तब वर्तमान के इन्हीं परंपराओं में दीक्षित हुए कुछ साधुवर्ग अपने आपको और अपने गुरु को, गुरु के गुरु को क्या जैनाभास सिद्ध नहीं करेंगे?

प्र.-9 मूलसंघ की परिभाषा तथा मूलसंघ के भेद का कारण व नाम कौन[2] है?

उत्तर- ध. प्र. पृ. 12 भगवान वीर के निर्वाण के पश्चात् गौतम गणधर से लेकर अर्हद्बलि तक उनका मूलसंघ अविच्छिन्न रूप से चलता रहा। महावीर की अखंड परंपरा को ही मूलसंघ कहा है। **भेद का कारणः-** पंचवर्षीय युग प्रतिक्रमण के अवसर पर महिमानगर जि. सितारा में सौ योजन तक के साधु सम्मिलित हुए उनकी भावनाओं पर से आ. अर्हद्बलि ने जान लिया कि अब पक्षपात का जमाना आ गया है अतः उन्होंने नंदि, वीर, अपराजित, देव, पंचस्तूप, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, सिंह, चंद्र आदि नामों से भिन्न भिन्न संघ स्थापित किये जिसमें एकत्व अपनत्व की भावना से खूब धर्मवात्सल्य और धर्मप्रभावना बढ़े।

इस प्रकार विवाद उठानेवालों के लिए निम्न प्रश्न हैं जिसका उत्तर सप्रमाण हमें देवें

प्र.-1 क्या कहीं पर मूलसंघाचार्यों ने स्त्रियों को अभिषेक करने के लिए मना किया है, कोई एकाद प्रमाण बताओ? वे ग्रंथ, ग्रंथकर्ता कबके हैं, कौन हैं, इनकी परंपरा क्या है आदि पूर्वापर विचार कर स्पष्ट बताओ?

प्र.-2 पूर्वकृत शास्त्रों में कुछ नाना संघ परंपराओं के नाम पढ़े, सुने जाते हैं, इन सभी आचार्यों की दीक्षाविधि, संस्कारविधि, उपकरणदान मूलोत्तरगुणों के धारण पालन करने में और इनकी मुनिमुद्रा में क्या अंतर है? इनका आक्षेप कर्ताओं को शास्त्रों से, समर्थ सयुक्तिक वाक्यों से समाधान करना चाहिये। यदि समाधान नहीं करना है तो धर्म की, समाज की शक्ति को तोड़ने में अपनी शक्ति का प्रयोग क्यों करना, समाज में जहर क्यों घोलना?

प्र.-3 आ. देवसेन ने दर्शनसार में, नीतिसार में काष्ठासंघ, यापनीसंघ, द्राविड़संघ, माथुरसंघ को जैनाभास कहा है तो क्या इनके अलावा और भी जैनाभासी संघ हैं? इनको जैनाभासी संघ कहने में क्या हेतु है या केवल कल्पना मात्र ही है? अथवा जो जैन शराब का, विधवाविवाह, तलाकविवाह, गर्भपात, वेश्याकर्म आदि कर, करा रहे हैं तो क्या ये जैनाभासी नहीं हैं? क्या इनको भ. महावीर के अनुयायी यथार्थ जैन कह सकते हैं?

यदि स्त्रियों के द्वारा जिनप्रतिमा का अभिषेक किया जाना सदोष है तो उनके द्वारा शास्त्र स्पर्श करना, वांचना, पूजापाठ करना, मंदिर में प्रतिमाओं के निकट में जाना, वहाँ सामायिक करना, आहारसामग्री तैयार करना, आहार देना निर्दोष क्यों? चंदनबाला ने महावीर स्वामी की नवधाभक्ति क्यों की? आहार क्यों दिया? श्रवणबेलगोल में भगवान बाहुबली की प्रतिमा की प्रतिष्ठा के बाद प्रथम अभिषेक किसने किया था। क्या वह बुढ़िया मूलसंघ की थी या अन्य किसी संघ की थी? क्या देवांगनाओं में संघ का विभाग किया गया है? क्या स्त्रियों के, माताबहनों के शरीर की रचना क्षणक्षण में बदलती रहती है? बालवृद्धा क्या ये भी अशुद्ध होती है, अशुद्धि का क्या अर्थ हैं या यौवनवती सर्वकाल अशुद्ध रहतीं हैं तो इनसे आहार के समय कायशुद्धि क्यों बुलवाते हो और ये क्यों बोलती हैं? यदि झूंठ बोलतीं हैं तो दाता के 7 गुणों में सत्य बोलना कहा है वह कहाँ रहा? झूंठ बुलवाकर आहार लेना क्या उत्पादन दोष नहीं है? जो दोष आपको महिलाओं के शरीर में दिख रहे हैं वे क्या पुरुषों के शरीर में धातुउपधातुयें होने से पुरुषों के शरीर में दोष क्यों नहीं

दिख रहे हैं इस परीक्षा में चुप्पी क्यों? कर्मभूमिज स्त्रीपुरुषों के औदारिकशरीर में धातुउपधातुयें बराबर होने से जीवराशी भी बराबर होने से अंतर क्यों दिखाई दे रहा है, केवल बाह्य रचना में अंतर है तो क्या सर्वत्र अंतर है? प्रथमानुयोग संबंधी शास्त्रपुराणों को चरित्र ग्रंथों को नहीं मानना यह क्या दृष्टिवाद अंग की अवमानना नहीं है? अवर्णवाद नहीं है? शलाका, महापुरुषों के जीवनवृत्त को सुनने मानने, विश्वास न करने से उपदेश सम्यग्दर्शन कैसे होगा? इन शास्त्र और गुरुओं में प्रश्नचिह्न लगाना ही अपनी मुद्रा में प्रश्नचिह्न लगाना है तथा यदि समाचार विधि को ब्रह्मचर्यव्रत के अधिकार में लगाया जाय तो जैसे बिलोम क्रम से आर्यिकादि को आचार्य से 5 हाथ, उपाध्याय से 6 हाथ, साधु से 7 हाथ दूर रहकर क्रियाकर्म करने को कहा है वैसे ही क्षुल्लकों, ब्रह्मचारियों और पत्निव्रत वालों से, आर्यिका, श्राविकादि पतिव्रत वालों को कितनी दूर रहना चाहिये? फिर इसी हिसाब से कमरे को, चौके को? दीक्षा शिक्षा, प्रायश्चित्तादि के लिए स्थान बनाना बनवाना चाहिये अन्यथा नियम का उल्लंघन करने पर सभी व्यभिचारी हो जायेंगे कोई भी बालकबालिकायें अध्ययन करने वाले ब्रह्मचर्यव्रती न होकर कुचारित्री हो जायेंगे।

प्र.-10 गुरुओं के चरणस्पर्श करते हुए माता बहनों को व आर्यिकाओं के चरण स्पर्श करते हुए श्रावकों को ब्रह्मचर्य में या पतिव्रत में दोष लगता है क्या?

उत्तर- नहीं, यदि गुरुओं के और आर्यिका माताओं के पतिपत्नि मानकर नहीं किंतु परमपूज्य धर्मायतन उत्तम पात्र मानकर चरणस्पर्श करने में ब्रह्मचर्यव्रत में, पतिपत्निव्रत में दोष लगता है तो तुम्हारी माँ, पत्नि ने पति के अलावा शेष सगेसंबंधी, अडोसपडोस, डॉक्टरादि को स्पर्श किया या इनके द्वारा स्पर्श किये जाने पर पतिव्रत में दोष लगने से कितने पति हो गये, क्या इसकी गणना कर सकते हो? आचार्यों ने ब्रह्मचर्य का कथन करते समय माताबहन पुत्री या पितापुत्र भाई के समान देखने को, विचार करने को कहा है अब बताओ कि इस संबंध वाले सज्जन किस प्रकार दिनचर्या का पालन करते हैं। यदि बिना कामवासना के व्यवहार करने वालों को भी ब्रह्मचर्य व्रत में दोष लगने लगें तो सभी व्यभिचारी हो जायेंगे।

प्र.-11 आजकल मुनिवर्ग हीनाचार प्रवृत्ति क्यों कर रहे हैं?

उत्तर- आजकल मुनिवर्ग अपने पतन के लिए हीनाचार अनाचार का पालन नहीं कर रहे। इस समय पंथवाद की रटन से, पंथवाद के नशा में चकचूर ये सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि। यदि सम्यग्दृष्टि हैं तो ये निर्विचिकित्सितअंग का पालन कैसे कर रहे हैं या केवल सम्यग्दृष्टि बनने का चोला धारण कर दंभ भर रहे हैं? इन बनावटी सम्यग्दृष्टियों को राजा उद्दायन की परीक्षा करने के लिए जिस प्रकार वासवदेव ने चर्या की थी उसका निष्पक्ष होकर अध्ययन कर अपना जीवन सुधारना चाहिये क्योंकि जिसने गृहस्थ में रहकर जैसा आचारविचार का पालन किया है वैसा ही साधु बनकर करेगा। यदि हे चोलाधारी! तेरे को उत्कृष्ट साधु बनना है तो उत्कृष्टचर्या का पालन कर और निकृष्टसाधु बनना है तो हीनाचार अनाचार का पालन कर, जैसा बनना है वैसा कर। देख यदि किसी गृहत्यागी की अनाचार प्रवृत्ति को देखकर उसके धर्मउपकरणों को बलात् छीनकर कपड़े पहना देता है तो सुन जो गृहस्थ शराब पी रहे है अंडामांसादि सप्तव्यसन सेवन करते हुए, विधवाविवाह, गर्भपात करते करा रहे हैं जो ये कार्य जिनधर्म के, जिनाज्ञा के सर्वथा विरुद्ध हैं, अनाचाररूप हैं उनको नंगा करेगा क्या? तूने कितनों के कपड़े निकाले हैं अतः स्थिर मन से मदांधपने से दूर होकर सोच व्यर्थ में नीचगोत्र का कर्मबंध मत कर।

प्र.-12 गोत्रकर्म किसे कहते हैं, भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- जिस रजोवीर्य से उत्पन्न वर्तमानकालीन शरीर में तथा आचारविचारों में मुनिपद धारण करने की योग्यता है उसे गोत्रकर्म कहते हैं। दो भेद हैं। नामः- उच्चगोत्र और नीचगोत्र या शरीर और आचरण संबंधी। शरीर संबंधी गोत्रकर्म की व्यवस्था भवांतर से प्राप्त कुलों में होती है यह

जीवन पर्यंत रहती है, इसमें परीवर्तन नहीं होता है तथा आचरण संबंधी गोत्रकर्म की व्यवस्था तात्कालिक दिनचर्या से होती है जो अंतर्मुहूर्त में भी बदल सकती है। जैसे अंजनचोर, गजकुमार, विद्युत्चर, चिलात पुत्र आदि।

प्र.-13 आचरण संबंधी उच्च नीचगोत्र किसे कहते हैं?

उत्तर- मोक्षमार्ग तथा उच्चगति के योग्य सातिशय पुण्यबंध के कारण ऐसे मूलोत्तर गुणों का, षडावश्यकों का, अन्याय अभक्ष्य के त्याग स्वरूप या स्वाभाविक श्रेष्ठाचरण को उच्चगोत्र कहते हैं एवं इससे विरुद्ध दिनचर्या को, मकारों के सेवन करने को रात्रिभोजन, अनछना पानी पीने को, ऐसे पानी से तैयार किये गये भोजन करने को, आलु, मूली गाजर, शकरकंदी, अरवी/घुईयां आदि अनंतकायिक वनस्पति खाने को, अमर्यादित अचारमुरब्बा, बड़ी, पापड़, औषधि आदि के सेवन, प्रयोग में लाने को नीचगोत्र कहते हैं क्योंकि यह सभी आचरण नीच ही है। इससे एकमात्र नीचगोत्रकर्म का ही आश्रवबंध होता है। **उच्चंणीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं**॥13॥ क.कां.। उच्च आचरण-उच्चगोत्र, नीच आचरण-नीचगोत्र।

प्र.14- जैनधर्म हिंदुधर्म की या सनातन धर्म की शाखा है क्या?

उत्तर- नहीं, कभी भी त्रिकाल में भी जैनधर्म हिंदुधर्म या सनातनधर्म की शाखा उपशाखा नहीं है क्योंकि यदि जैनधर्म को इन अन्य धर्मों की शाखा उपशाखा माना जाय तो जैसे जैनधर्म के नीतिनियम, धर्माचरण, पूजापाठ एकमात्र मोक्ष के, संसारबंधन को छेदने के/ क्षय करने के उद्देश से किये जाते हैं वैसे ही अन्य धर्मों के नहीं। अन्यधर्मों के कार्यकलाप स्वर्ग आदि के लिए राज्यवैभव के लिए, कदाचित् मोक्ष मानकर भी पुनरागमन के लिए किये जाते हैं अतः जैनधर्म और अन्य धर्मों में कार्यकारण सर्वथा भिन्न भिन्न होने से जैनधर्म एकमात्र हर तरह से स्वतंत्र धर्म है अन्यथा जैसे नीमवृक्ष की जड़ से लेकर फूल, फल पर्यंत कडुआ स्वभाव होता है ऐसे ही सभी धर्मों को परस्पर में एकदूसरे की शाखाप्रतिशाखा मानने पर एक ही उद्देश होना चाहिये था या हिंदुस्तान के निवासी प्रवासी होने से जैन भी हिंदुस्तानी/ हिंदु हैं किंतु धर्मानुसार नहीं।

प्र.-15 पुत्रमुख देखे बिना अविवाहित आप सभी की सद्गति कैसे हो सकती है?

उत्तर- हाँ, इसमें प्रश्न क्यों, भीष्म पितामह और सुखदेवजी की क्या इनकी दुर्गति हुई है क्योंकि ये भी अविवाहित अखंड बालब्रह्मचारी थे। यदि इनकी सद्गति हुई है तो हम सभी की दुर्गति क्यों? इसमें पक्षपात क्यों? पाप से, अधर्म से दुर्गति और पुण्य से, धर्म से सुगति होती है यह सर्वत्र सदा शाश्वत नियम है।

प्र.-16 क्या भगवान की भी पत्नि होती है?

उत्तर- इस प्रश्न का उत्तर आप ही दो क्या भगवान पद संन्यास आश्रम धारण करने के पहले प्राप्त होता है या बाद में बताओ या भगवान बड़े होते हैं या गुरु? यदि संन्यास आश्रम के बाद तप के माध्यम से भगवान पद की प्राप्ति होती है तो जब वानप्रस्थाश्रम में सभी आरंभ परिग्रह का, परिवार का, सगेसंबंधियों का त्याग कर संन्यास आश्रम स्वीकार किया तब भगवान की पत्नि कैसे हो सकती है क्योंकि कामवासना पूर्वक ही पत्नि अंगीकार की जाती है, बिना विकार के नहीं अतः जब संन्यास आश्रम धारियों की पत्नि नहीं होती है तो भगवान की पत्नि नहीं हो सकती है फिर भी भगवान की पत्नि का व्यवहार लोक में प्रचलित है वह देश के राजा को भगवान मानकर ऐसा व्यवहार किया जाता है। संस्कृत शब्दकोश नाममाला गा.10 में राजा के पर्यायवाची नाम ईश्वर, प्रभु, विभु, इन, इंद्र, पति, स्वामी, नाथ, परिवृढ़, ईशान, अधिप, भर्तृ आदि कहे हैं।

प्र.-17 धर्मदीक्षा शिक्षागुरु की पत्नि होती है क्या?

उत्तर- नहीं, संन्यास आश्रम वाले सर्वदा सर्वत्र जैन नग्नदिगंबर धर्म दीक्षा शिक्षा गुरु की पत्नि नहीं

होती है किंतु इन आश्रमों के बिना शेष धर्मदीक्षा शिक्षा गुरुओं की पत्नि हो सकती है।

प्र.-18 क्या भगवान की प्रतिमा का जल से ही अभिषेक करना चाहिये या दूध से?

उत्तर- आगमानुसार दोनों से ही अभिषेक करना चाहिये, कोई दोष नहीं है किंतु कोई पंथवादानुसार कषायवश केवल जल से ही अभिषेक करना चाहिये ऐसा आग्रह करें तो अनछने पानी की एक बूंद में वैज्ञानिकों के मतानुसार 36450 त्रसजीव और आगमानुसार असंख्यातासंख्यात स्थावरजीव हैं अनछना जल छना जल सर्वत्र सदाकाल सचित्त है तथा अग्नि से गर्म करने पर या किसी तीक्ष्ण पदार्थ के मिलाने से अचित्त हो जाता है और दूध दही घी सर्वत्र सदाकाल अचित्त है तथा मर्यादा के अंदर घड़ेभर दूध में कितने जीव हैं? एक भी जीव नहीं है किंतु शुद्ध पुद्गल तरलपिंड है सो तीर्थंकरों ने मुनि अवस्था में दूध का आहार लिया और आज भी मुनिजन आहार में लेते हैं यदि दूध दूषित है तो शुद्धि बोलकर आहार में क्यों देते हो अतः अहिंसानुसार दूध से ही अभिषेक करना चाहिये और पानी से भी फिर भी हठवाद सर्वत्र हानिकारक है। यदि अपन ही प्राचीन प्रामाणिक आर्षवाक्यों में संदेह कर प्रश्नचिह्न लगायेंगे तो अन्यमतियों से जिनधर्म, जिनागम, जिनगुरुओं की रक्षा कैसे करेंगे? श्री अजितनाथ दि. जैन मंदिर, भूलेश्वर, महाराष्ट्र से आये श्रावक ने सन् 1989 में मुंबई, सुखानंद धर्मशाला में यह चर्चा की थी।

प्र.-19 आत्महत्या किसे कहते हैं?

उत्तर- जब यह संसारी मोही विषयकषायी स्त्रीपुरुषादि सांसारिक आधि, व्याधि, उपाधि से, नाना लौकिक, पारिवारिक, व्यापारिक, सामाजिक, मानापमान की समस्याओं से, धनादि के अभाव रूप आपत्तिओं से जूझता हुआ जब कोई यथेष्ट समाधान प्राप्त नहीं होता है तब अन्य रास्ता समझ में न आकर केवल मृत्यु को ही अंगीकार करता है सो इसमें स्व पर हित का भाव न होने के कारण इसे आत्महत्या कहते हैं।

प्र.-20 आत्महत्या कैसे करता है?

उत्तर- कमजोर मनवाला कोई जहर खाकर, कोई फांसी लगाकर, कोई ट्रेन, बस आदि के नीचे आकर, पानी में डूबकर, अग्नि में जलकर, पहाड़ या छत आदि ऊंचाई से गिरकर आदि तरीकों से आत्महत्या करता है।

प्र.-21 नरक और स्वर्ग में जाकर जीव क्या करते हैं?

उत्तर- नरक में जाकर जीव पापों का क्षय करते हैं तो स्वर्ग में जाकर पुण्य का क्षय करते हैं। सो कैसे जब जीवों पर विशेष संकट आता है तो उस समय अपने दुष्कर्मों की निंदागर्हा, पश्चाताप करता हुआ पूज्यों का स्मरण करके पापकर्मों के स्थिति अनुभागबंध को घटाकर पुण्य को बढ़ाता है तथा जब विशेष पुण्य का उदय होता है तब विषयभोगों में आसक्त हो अपने सत्कर्तव्यों को भूल जाता है एवं न सत्कर्तव्य को याद करता है तब पुण्य के स्थिति अनुभागबंध को घटाकर पाप को बढ़ाता है। इसी कारण नारकी जीव मनुष्यों में आकर उत्तमसुख वैभव और देव मरकर एकेंद्रियों में या तिर्यंचों में भी पैदा हो दुःख पाता है।

प्र.-22 आ. श्री समंतभद्रस्वामी क्या सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट हुए थे या सकलचारित्र से?

उत्तर- आ. श्री ने सकलचारित्र रूपी मुनिपद को छोड़ा था सम्यक्चारित्र को, मोक्षमार्ग को नहीं।

प्र.-23 चारित्र भ्रष्ट मोक्ष प्राप्त कर सकता है, दर्शन से भ्रष्ट नहीं सो ऐसा क्यों कहा?

उत्तर- जैसे चारित्र भ्रष्ट पुनः चारित्र को धारण पालन कर मोक्ष प्राप्त करता है ऐसे ही दर्शन भ्रष्ट दर्शन को अंगीकार कर मोक्ष प्राप्त करता है ऐसा नहीं है कि सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट हो और सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट न हो क्योंकि अनंतानुबंधी कषाय एवं मिथ्यात्व के उदय में आये बिना सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट नहीं

हो सकता है अतः मोक्षमार्ग में एक से भ्रष्ट होने पर शेष दो से भ्रष्ट होता ही है। एक सम्यक् और दो मिथ्या हो ऐसा नहीं है अतः एक के समीचीन होने पर दो समीचीन होते ही हैं क्योंकि अनिवृत्तिकरण परिणामों से एक ही समय में एकसाथ दर्शनमोहनीय व अनंतानुबंधी चारित्रमोहनीय का उदयाभाव या सत्त्व का अभाव होता ही है।

प्र.-24 असंयम को संयममार्गणा में क्यों ग्रहण किया है?

उत्तर- संयममार्गणा का अर्थ है जीव की खोज करना अतः असंयम के माध्यम से भी जीव की खोज होती है। अन्यथा अत्याचारी, अनाचारी, पापी, व्यसनी आदि से संसारी जीव की जानकारी नहीं हो सकती है कि यह भी जीव है इसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, नहीं तो बिना असंयम के कषायों का अस्तित्व बन नहीं सकता व कषायों का सद्भाव न होने से सांपरायिक आश्रवबंध के अभाव में संवर निर्जरा मोक्ष भी नहीं बन सकता अतः एकेंद्रिय, विकलत्रय, असंयमी, अव्रती भव्य अभव्य, सैनी, असैनी जीवों की पहंचान के लिए असंयम मार्गणा का होना अवश्यंभावी है। (प्र 2007 संबंधी)

प्र.-25 आचार्य संघ में आर्यिकाओं का, ब्रह्मचारिणी बहनों का रहना दोष क्यों है?

उत्तर- नहीं, सभी आचार्यों के संघ में आर्यिकाओं का रहना दोष नहीं है, निर्दोष है। जिनकी दिनचर्या, मन दूषित है, मनोबल कमजोर है या कामवासना युक्त है उनके साथ में आर्यिकाओं का, ब्रह्मचारिणी आदि का रहना दोष युक्त है किंतु जो आचार्य हर प्रकार से दृढ़धर्मी हैं उनके साथ में रहना कोई दोष नहीं है।

प्र.-26 यदि इनका संघ में रहना सर्वथा निषेध है तो इनका प्रतिक्रमणादि कैसे होगा?

उत्तर-

पियधम्मो दढधम्मो संविग्गोऽवज्जभीरु परिसुद्धो।
संगहणुग्गहकुसलो सददं सारक्खणाजुत्तो।।183।।
गंभीरो दुद्धरिसो मिदवादी अप्पकोदुहल्लो य।
चिरपव्वइदो गिहिदत्थो अज्जाणं गणधरो होदि।।184।। मू.चा. समाचार. अ.4

अर्थ- जो धर्मप्रेमी, दृढधर्मी, संवेग सहित पापभीरु, शुद्धाचरण वाले हैं, शिष्यों के संग्रहानुग्रह में कुशल हैं, पापों के त्यागी, गंभीर, स्थिरचित्त, मितवादी, किंचित् कुतूहल के भी त्यागी हैं, चिरदीक्षित हैं, तत्त्वज्ञ ऐसे आर्यिकाओं आदि के गणधर होते हैं। इस शताब्दी में जो आचार्य या पंडितवर्ग आचार्यसंघ में आर्यिकाओं के रहने का सर्वथा निषेध करते हैं उनको इन गाथाओं पर विचार करना चाहिये तथा जिनका मनोबल दिनचर्या कमजोर, चपल और दूषित होने से उनके संघ में आर्यिकाओं आदि का निषेध करना ठीक है किंतु सभी को निषेध है ऐसा अर्थ मत समझना।

प्र.-27 अपनी सेवा के लिए आचार्य संघ में ब्रह्मचारिणी बहनें रख सकते हैं क्या?

उत्तर- यह तो आचार्यसंघ में आर्यिकाओं के निषेध करने वालों को सोचना चाहिये कि रह सकतीं हैं या नहीं। अपनी सेवा के लिए संघ में रखना योग्य है और दीक्षा देकर अलग करना क्या न्याय है?

प्र.-28 कुशीलमुनियों के भेद और नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- हाँ, दो भेद हैं। 1.भावलिंगी मोक्षमार्गी कुशीलमुनि 2. पदभ्रष्ट कामी भोगी कुशीलमुनि।

प्र.-29 तीर्थंकर प्रकृतिवाले प्रमत्त मुनियों के 28 मूलगुण क्या निर्दोष पलते हैं?

उत्तर-नहीं, प्रमाद रूप में परिणमन होने से मूलगुणों का निर्दोष पालन नहीं होता है। यदि मूलगुणों का पालन निर्दोष होता है ऐसा माना जाये तो छह प्रकार के अंतरंगतपों में से प्रथम तप आलोचना प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त का आचरण क्यों करते हैं और इसका आचरण किये बिना क्या आगे के

अंतरंगतप हो सकते हैं? बिना अंतरंग तप ध्यान के संवर निर्जरा मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। बहिरंग विराधना की अपेक्षा अंतरंग विराधना ही प्रधान है अतः तीर्थंकर प्रकृतिवालों के बहिरंग विराधना नहीं होने पर भी प्रमाद के कारण अंतरंग विराधना होती ही है सो गलती करने वालों को ही प्रायश्चित्त करना पड़ता है सो इनके 28 मूलगुणों का पालन निर्दोष न होकर सदोष होता है जो कर्मसिद्धांत से सूक्ष्मतः जाना जाता है।

प्र.-30 क्या ये महामुनि प्रतिक्रमण करते हैं?

उत्तर- हाँ, इनके मूलगुणों की भावात्मक विराधना होने से भावात्मक अंतरंगतप प्रतिक्रमण करते हैं क्योंकि त.सू. अ. 9 सू. 22 में प्रायश्चित्त अंतरंग तप के 9 भेदों में दूसरा तप प्रतिक्रमण कहा है।

प्र.-31 पूजादान आदि छह कर्तव्य अणुव्रतियों के हैं या अव्रतियों के भी?

उत्तर- ये षडावश्यक कर्तव्य सभी श्रावक श्राविकाओं के हैं क्योंकि उपासकाध्ययनांग और क्रियाविशालपूर्व में समस्त क्रियाओं का वर्णन है। यदि इन क्रियाओं को केवल व्रतियों की माना जाय तो अव्रतियों की क्या कोई धर्मचर्या ही नहीं होती है। इनके बिना असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा कैसे हो सकती है?

प्र.-32 इन दोनों की चर्या समान होने से फिर इनमें क्या अंतर रहा?

उत्तर- बाह्य आवश्यक चर्या में अंतर नहीं होने पर भी गुणस्थानों में अंतर होने से आश्रव बंध संवर और निर्जरा में तथा विशुद्धि अविशुद्धि की अपेक्षा भी असंख्यातगुणा अंतर हो जाता है।

प्र.-33 क्या इंद्रियों के सभी विषय प्रमाद रूप होते हैं?

उत्तर- इंद्रियों के द्वारा ग्रहण किये गये जो विषय अनंत संसार को बढ़ाने वाले, भ्रमण कराने वाले हैं वे सभी प्रमाद रूप हैं किंतु जो विषय संसार को छेदने में सहायक हैं वे रत्नत्रय की उत्पत्ति, वृद्धि, मोक्षफलदाता हैं।

प्र.-34 क्या रात्रि में मुनियों के सामने आर्यिकायें श्राविकायें आदि जा सकतीं हैं?

उत्तर- हाँ, कोई दोष नहीं हैं क्योंकि समवशरण की 12 सभाओं के मध्य में विराजमान हो तीर्थंकर प्रभु रात्रि में धर्मोपदेश देते हैं तो उस समय चतुर्विध मुनिसंघ होता ही है तब सामने जाने न जाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता है किंतु जिसके मन में दुर्भावना है उसके लिए क्या रात्रि या दिन सर्वत्र सदा दोष ही है।

प्र.-35 नारायण, प्रतिनारायण, राज्यपद, मुनिपदधारी ये पुण्यजीव हैं या पापीजीव?

उत्तर- बाह्यपद और लौकिक वैभव, पूज्यता आदि के कारण ये महापुरुषार्थी पुण्यजीव हैं किंतु गुणस्थान एवं विषयाभिलाषा, पदाभिलासा और बड़प्पन आदि आकांक्षा के कारण पापी जीव हैं।

प्र.-36 इस शताब्दी में किन श्रावक और साधुओं को जैनाभासी मिथ्यादृष्टि कहा जाय?

उत्तर- यदि हरिवंशपुराण, आदिपुराण, पद्मपुराण आदि ग्रंथ और ग्रंथकर्ताओं को जैनाभासी माना जाय तो इन ग्रंथों में पंचामृत अभिषेक करना, श्राविकाओं, माँबहनों के द्वारा अभिषेक करना, हरे फल पुष्प, नैवेद्य चढ़ाना, दीप जलाना, धूपदहन करना आदि के आज्ञापालक आ. श्री अंकलीकर आदिसागरजी, आ. श्री शांतिसागरजी (दक्षिणवाले) की परंपरा वाले श्रावक एवं साधुओं को जैनाभासी मानने का प्रसंग आयेगा। यदि भट्टारक परंपराओं को जैनाभासी माना जाय तो कषायपाहुड के कर्ता आ. गुणधरजी, आ. धरसेनजी को तथा भट्टारकों कृत शास्त्रों को, प्रतिष्ठित प्रतिमाओं को तथा इनके भक्त भी जैनाभासी कहलायेंगे या इनका विरोध करनेवाले, निषेध करनेवाले, दोषारोपण करने वाले जैनाभासी कहलायेंगे तथा ऐसा करने पर जैनाभासी प्रतिमा और शास्त्रों को मंदिर से

अलग कर देना चाहिये व इनको न दान देना चाहिए, न इनसे लेना चाहिये, न इनको धर्मायतन मानकर परिचर्या करना चाहिये।

प्र.-37 तीन और आठ शल्यों में मायाशल्य कही है फिर दोनों में क्या अंतर है?

उत्तर- 3 शल्यों में जो मायाशल्य कही है वह आदि की दो चौकड़ी कषायोदय से होती है और 8 शल्यों में जो माया शल्य कही है वह चारों चौकड़ी कषायोदय से होती है या तीनों शल्य अव्रती की अपेक्षा और 8 शल्य मुनियों की अपेक्षा से कहीं हैं यही अंतर है।

प्र.-38 श्री आदिनाथ मुनिराज को 7 महिने 8 दिन तक आहार क्यों नहीं मिला?

उत्तर- मूक प्राणियों का भोजन बंद कराने से स्वयं को इतने दिन तक आहार नहीं मिला।

प्र.-39 ऐसी क्या क्रूरता थी जो इतनी स्थितिअनुभाग बंध वाला कर्म बंधा?

उत्तर- केवल लोक में क्रोधकषाय की क्रूरता ही प्रचलित है किंतु कर्मग्रंथों में क्रोध मान माया लोभ की क्रूरता एक ही समान बतलाई है तभी तो त. सू. में बहुतारंभ परिग्रह से नरकायु का आश्रव होना कहा है। यदि लोभ के परिणामों को क्रूरता नहीं कहा जाय तो नरकायु का आश्रवबंध नहीं हो सकता है और मूक प्राणियों के भोजनपान में बाधा डालने से स्वयं में लाभांतराय, भोगांतरायकर्म का तीव्र बंध हुआ जिसके उदय में आने पर स्वयं को भोजन का लाभ और भोजन का भोग प्राप्त नहीं हो पाया।

प्र.-40 तो क्या आदिनाथ के नरकायु के योग्य क्रूरता थी?

उत्तर- नहीं, नरकायु के योग्य क्रूरता मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायोदय से होती है किंतु आदिनाथ के प्रत्याख्यानावरणीय कषायोदय से उत्पन्न क्रूरता सर्वघाती रूप थी , देशघाती नहीं।

प्र.-41 एक सज्जन बोले कि आपके दर्शनार्थ न आ पाने से आपको कष्ट हुआ होगा?

उत्तर- नहीं, क्योंकि हमारे दर्शनार्थ सभी नारकी, देव, तिर्यंच, भोगभूमिज, कुभोगभूमिज, मलेच्छखंडोत्पन्न एवं आचारविचार विहीन आदि अक्षयअनंत जीवराशि नहीं आती है। मनुष्यों में भी जैन 5% ही आ पाते हैं तब दुःख नहीं होता है तो यदि आप नहीं आये तब क्यों दुःख होगा? अतः हमको तो परीषह जीतना है।

प्र.-42 संवरतत्त्व कौन सा भाव है?

उत्तर- संवरतत्त्व औपशमिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव है, शेष दो भाव रूप नहीं है।

प्र.-43 निर्जरा तत्त्व कौन सा भाव है?

उत्तर- अकामनिर्जरा, सविपाकनिर्जरा औदयिकभाव है और सकामनिर्जरा, अविपाकनिर्जरा औपशमिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, क्षायिकभाव है, पारिणामिकभाव रूप नहीं।

प्र.-44 मोक्षतत्त्व कौन सा भाव है?

उत्तर- मोक्षतत्त्व क्षायिकभाव है, शेष चार भाव रूप नहीं हैं।

प्र.-45 गुण कौन सा भाव है?

उत्तर- नित्य, ध्रौव्यादि निर्निमित्तिक अनंतगुण पारिणामिकभाव है और चर्या संबंधी गुण शेष भाव हैं।

प्र.-46 देश और समाज का सुधार कैसे हो?

उत्तर- देश में हमेशा देश सुधार के लिए आंदोलन होते रहते हैं पर सुधार नहीं हो पा रहा है क्योंकि इस समय जगह जगह शराब के ठेके, मांस की दुकाने, पशुपक्षी और मनुष्यों की हत्यायें, रिश्वतखोरी, शट्टाबाजी, माताबहनों पर बलात्कार, धूम्रपान, बेरोजगारी आदि सरकार के द्वारा कराया जा रहा

है तब सुधार कैसे हो सकता है? भ्रष्टाचार त्याग के नारे लगाये जाते हैं किंतु सफलता नहीं मिल रही है क्योंकि भ्रष्टाचार को त्यागे बिना सुधार नहीं हो सकता है अर्थात् त्याग से ही भ्रष्टाचार दूर हो सकता है ऐसे ही समाज में समाज के सुधार के लिए निरंतर पत्रिकाओं में या जबानी वार्तायें निकलती रहतीं हैं परंतु तद्रूप में अमल न होने से सुधार नहीं हो रहा है, दिनप्रतिदिन अत्याचार अनाचार और उपर्युक्त कार्य बढ़ते जा रहे हैं जिससे सभी असुरक्षितपने का अनुभव कर रहे हैं। इसी प्रकार जैनसमाज में शिथिलाचार को रोकने के लिए खूब प्रयास किये जा रहे हैं पर बोलने वाले ही शिथिलाचार में आकंठ डूबे हुए हैं तब कैसे दूर हो?

प्र.-47 सदाचार सद्विचार क्या मोक्षमार्ग है?

उत्तर- सर्वघाति या सर्वघाति देशघाति मोहनीय के अभाव में यदि सदाचार सद्विचार हैं तो मोक्षमार्ग है इसीका नाम रत्नत्रय है किंतु इस मोहोदय में सदाचार सद्विचार कदाचित् मोक्षमार्ग की भूमिका बना सकते हैं, स्वर्गादि सुख के साधन भी बन जाते हैं और लोक में अनेक उत्तम विशेषतायें भी प्राप्त हाती हैं अतः सदाचारसद्विचार या मानवता के बिना मनुष्य का जीवन गंध हीन पुष्प के समान है।

प्र.-48 शिथिलाचार और भ्रष्टाचार में क्या अंतर है?

उत्तर- जाति कुल और धर्म की मर्यादा में या की हुई प्रतिज्ञा में उत्पन्न हुए अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार दोषों का नाम शिथिलाचार है एवं अनाचारदोष होना भ्रष्टाचार है यही इन दोनों में अंतर है।

प्र.-49 शिथिलाचार और भ्रष्टाचार की उत्पत्ति का क्या कारण है?

उत्तर- वीर्यांतराय कर्म और सर्वघाति देशघाति मोहोदय ही इनकी उत्पत्ति का अंतरंग मुख्य कारण है व बहिरंग कारण द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, बाह्य लौकिक भौतिक शिक्षा, संगति, संस्कार कारण है।

प्र.-50 शिथिलाचार और भ्रष्टाचार किसे कहते हैं?

उत्तर- मकारों का सेवन, सप्तव्यसनों का सेवन, धर्मनीतिनियमों के विरुद्ध दिनचर्या करना, कंदमूल, अनछना पानी पीना, अनछने पानी से तैयार की हुई सामग्री का सेवन करना, पशुपक्षियों के शरीर से उत्पन्न धातुउपधातुओं से निर्मित शृंगारालंकार का प्रयोग करना आदि को किंचित् एकादबार क्षम्य अपराध को शिथिलाचार तथा अनेकबार अक्षम्य अपराध को भ्रष्टाचार कहते हैं।

प्र.-51 भावमन चेतन कैसे और भावमनोयोग अचेतन कैसे?

उत्तर- ज्ञान गुण का परिणमन होने से भावमन चेतन है क्योंकि आत्मा के अनंत गुणों में केवल ज्ञानगुण ही चेतन है, शेष सभी अचेतन हैं और भावमनोयोग अचेतन है कारण कि आत्मप्रदेश अचेतन हैं। यदि आत्मप्रदेश चेतन हो जाये तो सभी प्रदेशों में ज्ञाता दृष्टापने का प्रसंग आयेगा जो स्वमत विरोध है।

प्र.-52 आहार लेना क्या ऐषणा समिति है?

उत्तर- नहीं, यह आहार संज्ञा है जो माया व लोभ कषाय पूर्वक होने से पापरूप ही है, अशुभ ही है,

प्र.-53 तो फिर ऐषणासमिति क्या है तथा इसका क्या फल है?

उत्तर- जो आहार करते समय सावधानी है, लोलुपता नहीं है, मुनीमवत् निरीहवृत्ति है वह ऐषणा समिति मूलगुण है, असंख्यात गुणश्रेणी कर्मो की निर्जरा का कारण है और पापकर्मो के संवर का भी कारण है।

प्र.-54 संघ में चैत्यालय न होने से क्या दोष है?

उत्तर- संघस्थ साधुगण, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी, अव्रती श्रावक श्राविकायें विहार के समय अभिषेकपूजा, आरती, स्तुति, वंदना आदि आवश्यक कर्तव्य का, देवदर्शन मूलगुण का, जिनागम

की आज्ञा का पालन कैसे करेंगे? अतः इनका पालन नहीं कर पाना ही दोष है। आज्ञाव्यापादनी सांपरायिकाश्रव की क्रिया है।

प्र.-55 संघ में चैत्यालय होना आसादना दोष क्यों नहीं है?

उत्तर- नहीं, सावधानी और विवेक होने से संघ में चैत्यालय होना, रखना कोई आसादना दोष नहीं है किंतु अनेक गुणों का, कर्तव्यों का पालन होना ही गुण है। हाँ, यदि विषयकषायों से परिणत हुये तो अवश्य ही दोष लगेगा। यदि संघ में चैत्यालय रखना दोष ही है तो जिनवाणी/ शास्त्र भी रखना दोष क्यों नहीं है?

प्र.-56 केवलज्ञान क्या सभी को युगपत् जानता है या क्रम से?

उत्तर- हाँ, द्रव्य और गुणों को युगपत् जानता है और पर्यायों को क्रम से जानता है।

प्र.-57 पर्यायों को क्रम से जानने के लिए तो अनंतानंत काल लगेगा?

उत्तर- हाँ, अवश्य ही है। जबतक ये पर्यायें द्रव्य और गुणों में शक्तिरूप है तबतक अक्रम से जानते है तथा जब व्यक्त होतीं हैं तब उन्हें क्रम से जानते हैं क्योंकि गुण अक्रमवर्ती एवं पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं।

प्र.-58 तो फिर केवलज्ञान युगपत जानता है ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर- द्रव्य और गुणों की अपेक्षा युगपत् जानता है इसलिए ऐसा कहा जाता है।

प्र.-59 एक समय में एक ही पर्याय व्यक्त होती है या अनेक?

उत्तर- एक समय में एक गुण की एक ही पर्याय व्यक्त होती है, शेष अनंतानंत पर्यायें अव्यक्त रहतीं हैं। जब अनंत गुण हैं तो एक समय में सभी गुणों की एक साथ अनंत पर्यायें व्यक्त रहतीं हैं। यदि ऐसा नहीं माना जाये तो जिस गुण की पर्याय व्यक्त नहीं होगी वह गुण अपरिणामी बना रहेगा और अपरिणामी रहने से अव्याप्ति दोष भी आ जायेगा अतः अनंत पर्यायें भी एक समय में व्यक्त रहतीं हैं। इन सभी व्यक्त पर्यायों को भी एक समय में युगपत् जानता है तभी तो श्रुतज्ञान और केवलज्ञान को एकसमान कहा है।

प्र.-60 पर्यायों को भी सर्वथा युगपत् जानता है ऐसा मानने में क्या दोष है?

उत्तर- हाँ, दोष ही है, यदि पर्यायों को भी सर्वथा युगपत् जानता है तो केवली ने पर्यायों को क्रमवर्ती क्यों कहा? अतः पर्यायों को केवली भगवान क्रम और अक्रम से जानते हैं। इस कारण केवली भगवान क्रम को क्रम रूप में, अक्रम को अक्रम रूप में, शक्ति को शक्ति रूप में, व्यक्त को व्यक्त रूप में जानते हैं।

प्र.-61 पर्यायें कितने प्रकार की होतीं हैं?

उत्तर- दो प्रकार की होतीं हैं। नामः- कर्मनिरपेक्ष एवं कर्मसापेक्ष। **कर्मनिरपेक्ष** की अपेक्षा दो भेद- **शक्तिपर्याय-** गुण और द्रव्यों में परिणमन करने की योग्यता शक्तिपर्याय। **उपयोगपर्यायः-** जब वह योग्यता व्यक्त होगी तब उपयोग पर्याय अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनंतगुणों में ये अवस्थायें होतीं हैं। **कर्मसापेक्ष** की अपेक्षा 3 भेदः- **शक्तिपर्यायः-** संसारावस्था में मलिन गुण और द्रव्यों में जो स्वभाव और विभाव रूप पर्यायों में परिणमन करने की योग्यता। जैसे अनादि, नित्यनिगोदिया जीवों में तीर्थंकरपद को प्राप्त करने की योग्यता है। **लब्धिपर्यायः-** जब यही जीव निगोदपर्याय से निकलकर मनुष्य होकर रत्नत्रय प्राप्त कर तीर्थंकरप्रकृति का बंध कर लेगा तब लब्धि रूप कर्म सापेक्ष पर्याय कहलायेगी। **उपयोगपर्यायः-** जब वह तीर्थंकर प्रकृति केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद समवशरण या गंधकुटी में उदय में आकर भव्यों को मोक्षमार्ग बतलायेगी, दिव्यध्वनि द्वारा मार्गदर्शन होगा तब उपयोग पर्याय कहलायेगी।

प्र.-62 प्रक्षाल और अभिषेक में क्या अंतर है?

उत्तर- अभिषेक में तो प्रतिमाजी के ऊपर जलादि से सर्वांग में धारा छोड़ी जाती है, स्पर्श नहीं किया जाता है और प्रक्षाल में गीले, सूखे कपड़े से प्रतिमाजी को हाथ से रगड़ते हुए पोंछा जाता है, स्पर्श किया जाता है यही अभिषेक और प्रक्षाल में अंतर है।

प्र.-63 जाप, ध्यान, संक्रांति, धर्मध्यान, शुक्लध्यान किसे कहते हैं व अंतर क्या है?

उत्तर- जापः- ''णमो अरिहंताणं'' इस पद का गणना पूर्वक चिंतन करने को जाप कहते हैं। ध्यानः- इसी पद का बिना गणना के चिंतन कर स्थिर होने को ध्यान कहते हैं। संक्रांतिः- अपने ज्ञान के क्षयोपशमानुसार णमो अरिहंताणं का ध्यान करते हुए पूर्ण चिंतन करने के बाद इसको बदल कर णमो सिद्धाणं आदि बीजपदों का चिंतन करने को, बदलने को व्यंजनसंक्रांति कहते हैं। धर्मध्यानः- चौथे से दसवें गुणस्थान तक सरागी अव्रती, अणुव्रती, महाव्रतियों का सविकल्प या निर्विकल्प सहित इसी पद का चिंतन करने को धर्मध्यान कहते हैं। शुक्लध्यान :- णमो अरिहंताणं पद का मोहकर्म के क्षय या उपशम के बाद स्थिरता पूर्वक मणिप्रभा के समान चिंतन कर स्थिर होने को शुक्लध्यान कहते हैं। इन सभी में विषय की अपेक्षा अंतर न होने पर भी आगे आगे विशुद्धि, संवर और निर्जरा की अपेक्षा अंतर तारतम्यता से जानना चाहिये।

प्र.-64 आहारादि चारों संज्ञायें क्या सर्वकाल होतीं हैं या क्वचित् कदाचित्?

उत्तर- आहार, भय और परिग्रह ये तीनों संज्ञायें कभी कभी होतीं हैं, मैथुनसंज्ञा सर्वकाल होती है क्योंकि असातावेदनीय कर्म, भयकषाय और लोभकषाय की उदीरणा सर्वकाल नहीं होती है कारण इनकी प्रतिपक्षी प्रकृतियों की उदीरणा होने से इन असातावेदनीय आदि तीनों की उदीरणा नहीं होती है तब कारण न होने से इनके कार्य स्वरूप संज्ञाओं की उत्पत्ति नहीं होती है क्योंकि निमित्ताभावे नैमित्तकाभावात् ऐसा कहा है। वेदकर्म की प्रतिपक्षी प्रकृति न होने से मैथुनसंज्ञा सर्वकाल बन जाती है।

प्र.-65 प्रतींद्र कैसे व कितने होते हैं और 100 इंद्रों के नाम कौन कौन हैं?

उत्तर- **एक्केक्का पडिइंदा एक्केक्काणं हवंति इंदाणं।**
ते जुवराय रिद्धीए वड्ढंते आउ परियंतं।।218।। ति.प. अधि. -8

आज्ञारूपी ऐश्वर्य के बिना शेष वैभव में युवराजवत् प्रतींद्र होते हैं। ये सभी इंद्रों के बराबर 49 होते हैं। भवनवासी इंद्रों के नाम- चमर, भूतानंद, वेणु, पूर्ण, जलप्रभ, घोष, हरिषेण, अमितगति, अग्निशिखी, वेलम्ब ये 10 दक्षिणेन्द्र हैं तथा वैरोचन, धरणानंद, वेणुधारी, वशिष्ठ, जलकान्त, महाघोष, हरिकांत, अमितवाहन, अग्निवाहन, प्रभंजन ये 10 उत्तरेंद्र हैं। इस प्रकार दक्षिणेंद्र और उत्तरेंद्रों को मिलाकर 20 इंद्र होते हैं। व्यंतरवासी इंद्रों के नाम- किंपुरुष, सत्पुरुष, महाकाय, गीतरति, मणिभद्र, भीम, स्वरूप, काल ये 8 दक्षिणेंद्र हैं तथा किन्नर, महापुरुष, अतिकाय, गीतयशा, पूर्णभद्र, महाभीम, प्रतिरूप, महाकाल ये 8 उत्तरेंद्र हैं। इस प्रकार दक्षिणेंद्र और उत्तरेंद्रों को मिलाकर 16 इंद्र होते हैं। वैमानिक इंद्रों के नाम- सौधर्म, ईशान, सनतकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तव, शुक्र, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये 12 इंद्र होते हैं। ज्योतिषी देवों में चंद्रमा इंद्र ये सभी मिलाकर 49 इंद्र + 49 प्रतींद्र = 98 तथा मनुष्यों में चक्रवर्ती या यथासंभव राजा ही इंद्र है, तिर्यंचों का इंद्र शेर है। 98 + 2 = 100।

प्र.-66 आठों कर्मों के निमित्त से कौन कौन से भाव होते हैं?

उत्तर- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतरायकर्म के निमित्त से औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव। मोहनीयकर्म के निमित्त से औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव। वेदनीय, नाम, गोत्र, आयुकर्म के निमित्त से औदयिकभाव और क्षायिकभाव होते हैं।

प्र.-67 अशुभयोग कहाँ से कहाँ तक होता है?

उत्तर- बुद्धिपूर्वक पहले से छठवें गुण.तक तथा अबुद्धिपूर्वक पहले से दसवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.-68 शुभयोग कहाँ से कहाँ तक होता है, कैसे?

उत्तर- पहले से 13वें गुणस्थान तक होता है क्योंकि शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य। त.सू. 3 अ.6 शुभ योग से पुण्य का आस्रव होता है और सयोगकेवली के सातिशय पुण्य प्रकृति सातावेदनीयकर्म का आस्रव होता है। यह आस्रव कार्य है तथा शुभयोग कारण है। कार्य लिंगं ही कारणं। आ.मी 68। कार्य कारण का नियामक है, कारण नहीं।

प्र.-69 योग और उपयोग में क्या अंतर है?

उत्तर- योग जड़ है, अचेतन है, परिस्पंदात्मक है और नामकर्म के निमित्त से होता है। उपयोग चेतन है, अनादिअनंत है, स्वाभाविक है, निर्निमित्तक है आदि अनेक प्रकार के और भी अंतर हो सकते है।

प्र.-70 आचार्यों को कर्तव्य पालन के नीतिनियम क्यों उकेरने/ लिखने पड़े?

उत्तर- जैसे लोक में जब सभी ईमानदार, सज्जन थे तब घरों में किवाड़, ताला लगाने की जरूरत नहीं थी किंतु जब बुरी नियत वाले व्यक्ति चोरी डाका डालने लगे तब घरों में किवाड़ ताला लगाने लगे ऐसे ही जब सभी श्रावक श्राविकायें अपनी नित्य आवश्यक क्रियाओं का सतत पालन करते थे तब उस समय आचार्यों को ग्रंथों में नीतिनियम लिपिबद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ी किंतु जब गृहस्थगण प्रमादी होकर अपनी आवश्यक क्रियाओं को पालन करना छोड़ने लगे तब ग्रंथकर्ता आचार्यों को तात्कालिक योग्य सामग्री ग्रहण कर उनमें उकेरना/ लिखना पड़ा। ऐसा मत समझना कि विधान नहीं करनेवाले आचार्यों को गृहस्थ संबंधी मोक्षमार्गस्थ सत्क्रियायें अमान्य थी और बाद में आचार्यों को मान्य हुईं तब विधान करना पड़ा ऐसा होने से कुछ पूर्वाचार्य ग्रंथकर्ताओं को क्या उपासकाध्ययन पूर्व और क्रियाविशालपूर्व अमान्य था? यदि अमान्य था तो वे ग्रंथकर्ता आचार्य परमेष्ठि कैसे हो सकते हैं? तीर्थंकर और इनकी वाणी पर विश्वास करने वाले न होने से मोक्षमार्गी न होने के कारण भव्यों के तारक नहीं हो सकते हैं।

प्र.-71 पूर्वग्रंथकर्ताओं पर आक्षेप करने वाले पंडितवर्ग जीवित होते तो इनसे प्रश्न किया जाता कि आप सभी अनेक मतमतांतरों के जानकार हैं तब आपमें किस मत का प्रभाव पड़ा है जो उनकी मान्यताओं को जिनेंद्र मान्यता कहकर शास्त्रों में लिखा?

उत्तर- अन्यमतों के नीतिनियमों को हमने जिनेंद्रमत समझकर ना आत्मसात् किया है, ना शास्त्रों में प्रतिपादन किया है क्योंकि हम पंडितवर्ग राजा वसु के वंशज नहीं हैं और जिन्होंने अन्यमतों की मान्यताओं को जिनेंद्र मान्यता नाम देकर धर्मसभाओं में, शास्त्रों में प्रतिपादन किया है उन्होंने यहीं पर नाना प्रकार के परिवार संबंधी, शरीर संबंधी आदि दुःखों को भोगकर दुर्मरण कर दुर्गति के पात्र हुए क्योंकि इन आक्षेपकर्ताओं ने केवली का, जिनागम का अवर्णवाद कर अपने दिगंबराचार्यों को झूंठ बोलने वाला, चोरी करने वाला सिद्ध किया है कारण जैसे आचार्य रविषेण ने श्वेतांबरों के पउमचरिय का संस्कृत में यथावत् अनुवाद कर अपने नाम से पदमपुराण लिखा। अनेक वैदिक दर्शन और ब्राह्मणों के क्रियाकांडों को ग्रहण कर जिनेंद्र के नाम पर जिनवाणी कहकर महापुराण आदि शास्त्रों में लिपिबद्ध किया है? झूंठ और चोरी पाप को त्याग कर दिगंबर जैन साधु मोक्षमार्गी सत्य और अचौर्य महाव्रती होते हैं। वेदांती भारत में कब से आये और इनका जैनों पर प्रभाव पड़ना कब से प्रारंभ हुआ? राजा भरत ने ब्राह्मण संज्ञा किसको दी थी तथा अहंकारी इन ब्राह्मणों की कौन सी क्रियाओं को जिनागम में प्रतिपादन आचार्यों ने किया हैं?

प्र.72 सोला किसे कहते हैं?

उत्तरः- दाता के 7 गुण और नवधभक्ति को मिलाकर 7+9= 16 इनके जोड़ को सोला कहते हैं।

प्र.73 सोला का भोजन कौन[2] करते हैं और ऐसा सोला का भोजन कौन किसको देते हैं?

उत्तरः- ऐसे सोला का भोजन चरणानुयोगानुसार उत्तम मध्यम और जघन्य पात्र करते हैं तथा जघन्य और मध्यम पात्र ऐसे सोला का भोजन उत्तम मध्यम व जघन्यपात्र को देते हैं।

प्र.-74 ये तीनों पात्र कौन कैसे होते हैं?

उत्तरः- ये तीनों पात्र मोक्षमार्ग के गुणों से युक्त मुनि, उपाध्याय, आचार्य, आर्यिका उत्तमपात्र हैं। दर्शनप्रतिमा से लेकर उद्दिष्टत्याग प्रतिमा पर्यंत 11 भेद वाले मध्यमपात्र और मोक्षमार्गी अव्रती सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र होते हैं। हरतरह से सदाचारी सद्विचारी होते हैं।

प्र.-75 सोला का भोजन करने का नियम कौन देते हैं और कौन लेते हैं?

उत्तरः- गुरुजन ऐसे सोले का भोजन करने का नियम उत्तम, मध्यम, जघन्यपात्र तथा मोक्षमार्ग में आने, लगने वालों को देते हैं और लेने वाले बोलते हैं कि हमने यह नियम उन महाराज श्री से, आर्यिका श्री आदि उत्तम त्यागीव्रती से लिया है और पालते भी हैं।

प्र.-76 ऐसे सोले का भोजन क्यों करते हैं और ऐसा नियम गुरुजन क्यों देते हैं?

उत्तरः- जिनेंद्र की, आगम की तथा गुरुओं की आज्ञा का पालन करने के लिए, अपने रत्नत्रयधर्म की रक्षा के लिए, धर्म की प्रभावना के लिए, तन मन धन और आत्मरक्षा के लिए ऐसा भोजन करते हैं तथा इन्हीं हेतुओं के पालने के लिए गुरुजन ऐसा नियम देते हैं।

प्र.-77 ऐसा भोजनपान करने, न करने से क्या लाभ या हानि है?

उत्तरः- ऐसा सोला का भोजन करने से तन मन और धर्म की रक्षा होती है। जिनधर्म की और आत्मधर्म की प्रभावना होती है, स्वयं की प्रसिद्धि होती है। भोगियों के, योगियों के द्वारा भी गुणकीर्तन किया जाता है। भोगीजन भी इनकी चर्या को देखकर, सुनकर संसार शरीर भोगों से विरक्त होकर धर्म में, धर्मात्माओं में प्रीति को प्राप्त कर मोक्षमार्गी बन जाते हैं आदि अनेक लाभ हैं। बिना सोला का भोजनपान करने से अनेक प्रकार से तन मन धन और धर्म की हानि को प्राप्त कर दुर्गतियों में जाकर कष्ट भोगते हैं, सर्वत्र धर्मात्माओं के, सज्जनों के बीच में निंदा को, अपमान को प्राप्त होते हैं आदि हानि है।

प्र.-78 अव्रती, अणुव्रती वस्त्रधारी और आर्यिकाओं को आहार सोला का देना चाहिये या बिना सोला का?

उत्तरः- इन सभी को मोक्षमार्गानुकूल चरणानुयोगानुसार सोला का ही आहार देना चाहिये, बिना सोला का नहीं क्योंकि बिना सोला का आहार संसारवर्धक, पाप का, दुःख का कारण होने से नहीं देना चाहिये।

प्र.-79 यदि आपने अव्रती, अणुव्रती और आर्यिकाओं को सोला का आहार दिया तो आपने इनकी नवधाभक्ति की क्या ऐसा दोष नहीं आता है क्योंकि सोला में आपने नवधाभक्ति ग्रहण की है?

उत्तरः- नहीं, दोष आता है तो आने दो किंतु हम इन वस्त्रधारियों की न पादप्रक्षालन करते हैं, न पूजा करते हैं, न प्रदक्षिणा लगाते हैं।

प्र.-80 तो फिर आपने इनको सोला का आहार कैसे दिया क्योंकि सोला में पादप्रक्षालन और अर्चना भी है?

उत्तरः- हमने इन वस्त्रधारियों को सोला का आहार तो कराया पर इनका पादप्रक्षालन और अर्चना नहीं की ऐसा हमारा नियम है।

प्र.-81 यदि पादप्रक्षालन और अष्टद्रव्य से अर्चना नहीं की तो सोला का आहार कैसे

कराया यह तो बिना सोला का कहलाया?

उत्तरः- इन मोक्षमार्गियों को बिना सोला का आहार तो नहीं देंगे, देंगे तो सोला का ही पर पादप्रक्षालन और पूजन नहीं करेंगे ऐसी हम लोगों को प्रतिज्ञा दी गई है।

प्र.-82 इन वस्त्रधारियों को आहार सोला का दे रहे हो और मुंह से पादप्रक्षालन, पूजन करने को मना कर रहे हो ऐसा यह आपका स्पष्टतः स्ववचन बाधित दोष नहीं है या मयाचार नहीं है क्या? या अहंकार का सूचक नहीं है अथवा चौदह प्रकार से आहार देते हैं ऐसा कहो?

उत्तरः- इन सभी को चौदह प्रकार से आहार देते हैं ऐसा हम नहीं बोल सकते हैं।

प्र.-83 तो फिर इन उपर्युक्त पात्रों की नवधाभक्ति करने का निषेध क्यों करते हो?

उत्तरः- नवधाभक्ति केवल निर्ग्रंथमुनियों की ही की जाती है, शेष की नहीं ऐसा हम सभी को समझाया और नियम दिया गया है।

प्र.-84 यदि ऐसा है तो आप इन वस्त्रधारियों की पड़गाहन, उच्चस्थान, नमस्कार, मन वचन काय और आहारजल शुद्ध है इतनी सात भक्ति क्यों करते हो, ये भी मत करो?

उत्तरः- मोक्षमार्गस्थ उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों की नवधभक्ति करते हुए भी इन प्रश्नों को सुनकर मौन क्यों? स्पष्ट बोलो। आप इन तीनों पात्रों की नवधाभक्ति करते हुए भी मुंह से मना करते हो यह क्या आपके वचनों में पूर्वापर दोष नहीं है? पूज्य आर्यिका माताओं के दर्शन करने खाली हाथ जाते हो या अर्घ, पुंज लेकर जाते हो? चातुर्मास के लिए या अपने गांव की तरफ विहारार्थ निवेदन करने के लिए ऐसे ही जाते हो या कुछ लेकर जाते हो? क्या नेताओं के पास, डाक्टरों के पास मंत्रतंत्र ज्योतिषियों के पास खाली हाथ तो जाते नहीं हो और धर्मायतनों के पास खाली हाथ जाने से क्या मिलेगा? आहार के समय पूजा अर्चना करने को मना कर रहे हो और दोष समय में समुच्चय अर्घ चढ़ाकर दर्शन कर लेते हो यह कैसा न्याय है? तीर्थंकरों की, गणधरों की, अंगपूर्वधारियों की तथा परंपरागत आरातीय आचार्यों की आज्ञानुवर्ती शिष्य शिष्यायें आज्ञा का पालन करते थे, करतीं थीं।

तिविहे पत्तह्मि सया सद्धाइ गुणेहि संजुदो णाणी।
दाणं जो देदि सयं णव दाण विहीहि संजुत्तो।।360।।

अर्थः- श्रद्धा आदि गुणों से युक्त जो ज्ञानी श्रावक सदा तीन प्रकार के पात्रों को नवधाभक्ति के साथ स्वयं दान देता है उसके तीसरा अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत होता है के प्रकरण में उत्तम मध्यम जघन्य पात्रों की नवधाभक्ति करने को कहा है तथा अभीतक आहारदातागण उक्त पात्रों की श्रनवधाभक्ति से आहार देते थे। इस प्रकार आर्षग्रंथों में इनकी नवधाभक्ति का स्पष्ट विधान पाया जा रहा है किंतु निषेध करने वालों को कोई एकाद पुरातन आर्षग्रंथों का प्रमाण देकर बतलाना चाहिये कि इन श्री आचार्य महोदय ने इनकी नवधाभक्ति करने का निषेध किया है। अभी कुछ समय से कुछ बुद्धिजीवी इनकी नवधाभक्ति करने का निषेध करने लगे हैं सो यह हुंडावसर्पिणीकाल के पंचमकाल की महिमा है। ये पापकार्यों के त्याग का नियम देते नहीं किंतु देवशास्त्रगुरुओं की आज्ञा का विरोध कर सदाचार के त्याग का नियम देने लगे हैं सो यह कानजी मत तथा टोडरमल स्मारक वालों के समान ही जिनधर्म के घातक हैं ऐसा समझना चाहिये। उसीका प्रतिपादन कार्तिकेयानुप्रेक्षा में धर्मानुप्रेक्षा हिन्दी टीका पं. कैलासचंदजी

प्र.-85 तब सोला का वास्तविक अर्थ क्या है?

उत्तर वास्तव में सोला का अर्थ है हर तरह से आहार की शुद्धि, यह सोला वाक्य संख्यावाची न

होकर संज्ञा का वाचक है जो सर्वत्र प्रचलित है, निर्दोष है तथा संख्यावाची मानने पर ऐसा अर्थ करने वालों पर ही प्रश्नों की वर्षा होती है तब इन प्रश्नों का समाधन करने में मौन रह जाते हैं।

प्रारंभकालः- ता. 8/12/2010 बुधवार सायंकाल 4-30 अगहन सुदी तीज वि. सं. 2067 पार्श्वविहार पटपडगंज दिल्ली।

समाप्ति कालः- माह वदी 3 गुरुवार ता. 12.1.2012 स्टेट रामपुर यु.पी. पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर, फूटामहल।

इति रयणसार ग्रंथोऽयं समाप्तः

अनुवादक

आचार्य श्री वासुपूज्यसागरजी महाराज।

इत्यलम्

परिशिष्ट

र.सा. की मूल गा. के भाव साम्य तथा विषय स्पष्टीकरण के लिये संकलित अवतरण-

गा. क्रं. 1 आ. श्री कुंदकुंद श्री वर्द्धमान को नमन करके सागार और अनगारधर्म को कहते हैं क्योंकि जिनेंद्र नमन मंगलरूप और कर्म क्षय में कारण है। गा. में **वोच्छामि** पद जिनवाणी की प्रामाणिकता को ध्वनित करता है अर्थात् आ. र.सा. के वक्ता मात्र हैं, निर्माता नहीं। जो उपदेश तीर्थंकरों, पूर्वाचार्यों से परंपरागत प्रवर्तित है उसे ही आचार्य अपने शब्दों में कह रहे हैं।

मंगलं हि कीरदे पारद्धकज्जविग्धयरकम्मविणासणट्ठं। तं च परमागमुवजोगादो चेव णस्सदि। ण चेदमसिद्धं। सुहसुद्ध परिणामे हि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो। उक्तं च- ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।

भावो दु पारिणामिओ करणोभयवज्जिओ होइ।।1।। क.पा. पु. 1 पृ. 5 का. 2 मंगलविचार

आरंभ किये हुए कार्य निर्विघ्न हो इस हेतु मंगल किया जाता है और वे बाधक कर्म परमागम के उपयोग से ही नष्ट हो जाते हैं। यह बात असिद्ध भी नहीं हैं क्योंकि शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मक्षय न माना जाय तो उनका क्षय होगा ही नहीं। कहा भी है- "औदयिक भावों से कर्मबंध, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावों से मोक्ष होता है परंतु पारिणामिक भाव बंध और मोक्ष इन दोनों का कारण नहीं है। आ. श्री वीरसेन

यागमंडलविधान **मंगं लाति मलं च गालयति यन्मुख्यं ततो मंगलं।**

देवोऽर्हन्वृष मंगलोऽभिविनुतस्तैर्मंगलैः साधुभिः।। प्र.ति. परि.7 गा. 9

गा. 2 **तदो मूलतंतकत्ता वड्ढमाण भडारओ, अणुतंतकत्ता गोदमसामी, उवतंतकत्तारा भूतबलि पुप्फयंतादयो 'वीयरागदोसमोहा मुणिवरा। 'किमर्थं कर्त्ता प्ररूप्यते? शास्त्रस्य प्रामाण्यदर्शनार्थं।' वक्तृप्रामाण्याद् वचनप्रामाण्यमिति न्यायात्। 1/1/1 ध.टी. 73**

दोण्ह वि णयाण भणियं जाणई णवरं तु समयपडिबद्धो।

ण दु णय पक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो।।143।। स.सा.

गा.क्र. 5 **सम्यग्दर्शन शुद्धः संसार शरीर भोगनिर्विण्णः।**

पंच गुरुचरणशरणो दार्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः।।137।। समंतभद्र रत्नकरंड

7 भय- इहलोक भय, परलोक भय, व्याधि भय, मरण भय, अगुप्ति भय, अरक्षक भय, आकस्मिक भय ।

सप्तांगराज्य-राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, किला, सैन्य।

'प्रपङ्कमग्ना करिणी सुदुःखिता, वियच्चरासादितपंचसत्पदा।

भवान्तरे सा भवतिस्म, जानकी, ततो वयं पंचपदेष्वधिष्ठिताः।।7।। पु. कोष क.नं.15

—कीचड़ में फँसी दुःखी हथिनी विद्याधर द्वारा पंचनमस्कार पद सुनने मात्र से आगामी भव में सीता उत्पन्न हुई। इसलिये हमें णमोकार मंत्र में स्थिर होना चाहिये।

सम्मादिट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।

सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका।।243।। समयसार

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।

मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो।।83।। भावपाहुड

गा. क्र. 13 **'भेको विवेक विकलोऽप्यजनिष्ट नाके,**
दन्तैर्गृहीतकमलो जिनपूजनाय।
गच्छन् सभां गजहतो जिनसन्मतेः स,
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि।।3।। पु.क.को. अ.1 क.3

जिन वर्द्धमान की धर्मसभा में जिनपूजन के लिये दांतों में कमल पुष्प लेकर जाने वाला विवेकहीन मेंढक, हाथी के पैरों तले मरकर महा ऋद्धिधारी स्वर्गी हुआ। अतः पूजा की भावना के महान फल को विचार कर मैं नित्य ही जिनपूजन करता हूँ।

गा.क्र. 14- **भुक्ति मात्र प्रदाने हि का परीक्षा तपस्विनां।**
ते सन्तः सन्त्वसंतो वा गृही दानेन शुद्धयति।।361।। य.ति.च. अ.8 पृ.354
''सत्पात्रेषु यथाशक्ति दानं देयं गृहस्थितैः।
दानहीना भवेत्तेषां निष्फलैव गृहस्थिता।।31।। पद्म.पंच विं. अ.6
विन्यस्यैदंयुगीनेषु प्रतिमासु जिनानिव।
भक्त्या पूर्वमुनीनर्चेत्कुतः श्रेयोऽतिचर्चिनाम्।।64।। सा.ध. अ.2

गा.क्र. 16 **'ख्यातः श्री वज्रजंघी विगलिततनुका जाताः सुवनिता,**
तस्य व्याघ्रो वराहः कपिकुलतिलकः क्रूरो हि नकुलः।
भुक्त्वा ते सारसौख्यं सुरनरभवने श्रीदानफलत-
स्तस्माद्दानं हि देयं विमलगुणगणैर्भव्यैः सुमुनये।।2।। पु. क. अ.6 क.43

प्रसिद्ध राजा वज्रजंघ रानी श्रीमती व्याघ्र, वराह, कपिकुलतिलक वानर और क्रूर नकुल मुनिदान के फल से सुर नरलोक में उत्तमसुखों को भोगकर मोक्षगामी हुए। अतएव निर्मल गुणों के धारक भव्य जीवों के द्वारा उत्तम मुनियों को दान देना चाहिये।

गा. क्र. 19 नवनिधिः- काल, महाकाल, पांडु, मानव, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगल, माना रत्न।

चौदहरत्नः- पवनंजयघोड़ा, विजयगिरिहाथी, भद्रमुखगृहपति, कामवृष्टि, अयोद्ध सेनापति, सुभद्रा पटरानी, बुद्धिसमुद्र पुरोहित ये 7 जीवरत्न। छत्र, तलवार, दंड, चक्र, काकिणीरत्न चिंतामणि, चर्मरत्न ये 7 अजीव रत्न। -तिलोयपण्णत्ति, 4, 1377-79, 1384

गा. क्र. 32 **तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनं।**
अनाथदीन कृपण भिक्षादि प्रतिबोधनम्।।55।।
बधबंधनिरोधैश्च नासिकाच्छेदकर्तनम्।
प्रमादाद्देवतादत्त नैवेद्यग्रहणं तथा।।56।।
निरवद्योपकरणपरित्यागो वधोऽङ्गिनाम्।
दानभोगोपभोगादि प्रत्यूहकरणं तथा।।57।।
ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा।
इत्येवमंतरायस्य भवन्त्याश्रवहेतवः।।58।। त.सार अ.4
ये जिनेंद्रं न पश्यन्ति पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां तेषां धिक् च गृहाश्रमम्।।15।। पद्मनंदि अ.6 पृ. 166

गा.क्र. 42 वाणर पुरिसोसि तुमं णिरत्थयं वहसि बहुदंडाइं।

जो पायवस्स सिहरे न करेसि कुडिं पडालिं वा।।

नविसि ममं मयहरिया, नविसि ममं सोहिया व णिद्धा वा।

सुघरे अच्छसु विघरा जावट्टसि लोग तत्तीसु।।''

वर्षाकाल में शीत से कंपायमान एक वानर को देखकर किसी चिड़िया ने कहा - पुरुष के समान हाथ पैर होकर भी तुम इस वृक्ष पर कोई कुटिया क्यों नहीं बना लेते? यह उपदेश सुनकर वानर को क्रोध आते ही चिड़िया के घोंसले को तिनका तिनका कर हवा में उछाल दिया फिर बोला - हे सुघरे, अब तू भी बिना घर के रह। कहा भी है- **''सीख दीजिये वाहि को जाहि सीख सुहाय। सीख जु दीन्हीं वानरा घर चिड़िया को जाय।।''**

गा.क्र. 47 **मोह महामद पियो अनादि, भूलि आपको भरमत वादि।।3।।** -छ.ढा. ढा.1

गा.क्र. 80 **दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।**

भावियसहावपुरिसो विसएसु विरच्चए दुक्खं 65।। मो.प्रा.

गा.क्र. 82 **भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।**

तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।76। मो.पा.

अज्ज वि तिरयण सुद्धा अप्पा झाएवि लहदि इंदत्तं।

लोयंतिय देवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।77।। मो.पा.

गा.क्र. 92 **जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।**

जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।31।। मो.पा.

गा.क्र. 95 गुरुकुल' -मूलाचार अ.4 गा. 9, प्रवचनसार अ.3 गा. 3

गा. क्र. 105 **उत्तमपत्तं भणियं सम्मत्तगुणेण संजदो साहू।**

सम्मादिट्ठी सावय मज्झिमपत्तो हु विण्णेओ।।

णिद्दिट्ठो जिणसमये अविरदसम्मो जहण्णपत्तोत्ति।

सम्मत्तरयणरहिओ अपत्तमिदि संपरिक्खेज्जो।।''-आ.कुंदकुंद. द्वादश. 17-18

गा. क्र. 108 **जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।**

मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।15।। मोक्षपाहुड

गा.क्र. 112 **तत्प्रतिप्रीति चित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।**

निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्।।23।। पद्म.पंच. अ.4

गा.क्र.155 **जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं।।106।।** मोक्षप्राभृत

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं।।165।। भावपाहुड

जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिव्वाणं।91।। द्वादशानुप्रेक्षा,

गा.क्र. 124 **अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरप्पा हु अप्पसंकप्पो।**

कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो।।5।। मोक्षपाहुड,

गा.क्र. 132 **जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंद्दो णिम्ममो णिरारंभो।**

आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं।।12।। मोक्षपाहुड,

गा. क्र. 135 **त्याज्यं मांसं च मद्यं च मधूदुम्बर पंचकम्।**

अष्टौ मूलगुणाः प्रोक्ता गृहिणो दृष्टिपूर्वकाः।।23।।

अणुव्रतानि पंचैव त्रिःप्रकारं गुणव्रतम्।

शिक्षाव्रतानि चत्त्वारि द्वादशेति गृहिव्रते।।24।। पद्म. अ. 5

गा.क्र. 138 **णाणं झाणं जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं।**

सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं।।37।। शीलपाहुड

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुए हि।

तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण।।53।। मोक्षपाहुड

गा.क्र. 139 **णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।**

सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं।।31।। दंसणपाहुड

कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं

जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण।।34।। भावपाहुड

गा.क्र. 143 **बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण।**

एक्कु जि अक्खर तं पढहु शिवपुर गम्मइ जेण।।

अरे ! तालु को सुखाने वाले बहुतशास्त्रों को पढने से क्या? एक ही अक्षर को स्वपर भेदविज्ञान बुद्धि से पढ़ जिससे मोक्ष प्राप्ति सुलभ हो।

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।

णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।।23।। सूत्रपाहुड

गा.क्र. 152 **जं णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्तं संजमं तवं णाणं।**

तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि संतिभावेण।।26।। बोधपाहुड

गा.क्र. 153 **जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।**

सो पावइ परममयं झायंतो अप्पयं सुद्धं।।43।। मोक्षपाहुड

'शंकाकांक्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः।'' त.सू. 23 अ. 7

गा.क्र. 113 **'रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विराग संपत्तो।**

एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।।150।। समयसार

गा.क्र. 69 **पंच वि इंदिय मुंडा वचमुंडा हत्थपाय मण मुंडा।**

तणु मुंडेण वि सहिया दस मुंडा वण्णिया समये।।121।। मू.चा. अ.3

गा.क्र. 36 **'ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽन्जसा जिनम्।**

न किंचिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयोः।।44।। सा.धर्मा. अ. 2

जो भक्ति से शास्त्रों की और जिनेंद्र की नित्य पूजा करते हैं क्योंकि आप्त और श्रुतदेवी में कोई अंतर नहीं हैं।

गा.क्र. 151 **णिग्गंथमोहमुक्का वावीसपरीसहा जियकसाया।**

पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।।80।। मोक्षपाहुड

गा.क्र. 52 **सम्मगुण मिच्छदोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।**

जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएणं तु।।96।। मोक्षपाहुड

गा.क्र. 73 धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता।
देवो ववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाणं ।24।। बोधपाहुड

गा.क्र. 78 जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि।
अण्णाणी तावदु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो।।69।। समयसार

गा.क्र. 80 पुत्त कलत्त णिमित्तं अत्थं अज्जयदि पापबुद्धीये।
परिहरदि दयादाणं सो जीवो भमदि संसारे।।30।। अनुप्रेक्षा

गा.क्र. 83 मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्ति पचोदिदेण मया।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं।।173।। पंचास्तिकाय

गा. क्र. 84 असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं।।45।। द्र.सं.

गा.क्र. 95 आपिच्छ बंधुवग्गं विमोइदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं।।2।। प्रवचनसार, 3

गा.क्र. 107 चरण करणप्पहाणा ससमय परसमय मुक्कवावारा।
चरण करणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण याणंति।। सन्मतिसूत्र 3,6,7

गा.क्र. 108 निश्चयमबुध्यमानो यो निश्चय तस्तमेव संश्रयते।
नाशयति करणचरणं स बहिः करणालसो बालः।।50।। पु.सि.

गा. क्र. 110 किं काहदि वणवासो कायकलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स।।124।। नियमसार

गा.क्र. 119 सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जे इंदियेहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा।।76।। प्रवचनसार

गा.क्र. 125 अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा।।150।। नियमसार

गा.क्र. 127 असमग्रं भावयतो रत्नत्रयमस्ति कर्मबन्धो यः।
स विपक्षकृतोऽवश्यं मोक्षोपायो न बन्धनोपायः।।211।। पु.सि.

गा.क्र. 133 देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू।।56।। भावपाहुड

गा.क्र. 150 भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीय णियरं णासइ भावेण दव्वेण।।54।। भावपाहुड

गा.क्र. 132 रयणत्तयं पि जोइ आराहइ जो हु जिणवरमएण।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो।।36।। मोक्षपाहुड

गा.क्र. 4 जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं।। 20।। दंसणपाहुड

पार्श्वरत्न प्रश्नोत्तरी टीकाग्रंथ

अनुवादक का मंगलाचरण

सदा वीर प्रभु देव हैं संमुख रहत गणेश।
पाँच देव रक्षा करें सिद्ध शास्त्र गुरवेश।।
पंच परम गुरु को नमूं जिनवाणी मन धार।
तत्त्वों को धारण करुं कर्मों का हो क्षाल।।

अर्थ- महावीर वर्धमान तीर्थंकर अरिहंत प्रभु, गणधर, सिद्ध परमेष्ठी, जिनवाणी, दीक्षाशिक्षादायक गुरु आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी ये पाँच धर्मायतन सम्मुख रहकर हमारी हमेशा रक्षा करें। कर्मों को क्षय करने के लिए जिनवाणी और तत्त्वों को हृदय में धारण कर पाँचों परमेष्ठियों एवं समस्त धर्मायतनों को नमस्कार करता हूँ।

ग्रंथकार का मंगलाचरण

णमिऊण वड्ढमाणं परमप्पाणं जिणं तिसुद्धेण।
वोच्छामि रयणसारं सायारणयार धम्मीणं ।।1।।
नत्त्वा वर्द्धमानं परमात्मानं जिनं त्रिशुद्ध्या।
वक्ष्ये रत्नसारं सागारानगार धर्मिणम्।।१।।

परमप्पाणं परमात्मा **वड्ढमाणं** वर्द्धमान **जिणं** जिनको **तिसुद्धेण** मनवचनकाय की शुद्धि पूर्वक **णमिऊण** नमस्कार कर **सायारणयार** गृहस्थ और मुनि **धम्मीणं** धर्मयुक्त **वोच्छामि** मैं आ. कुंदकुंद **रयणसारं** रत्नसार ग्रंथ को कहूँगा।

सम्यग्दृष्टि कौन?

पुव्वं जिणेहिं भणियं जहट्ठियं गणहरेहिं वित्थरियं।
पुव्वाइरियक्कमजं तं बोल्लई सो हु सद्दिट्ठी।।2।।
पूर्वं जिनैः भणितं यथास्थितं गणधरैः विस्तरितं।
पूर्वाचार्यक्रमजं तत् कथयति सः खलु सद्दृष्टिः

पुव्वं पूर्व में **जिणेहिं** सर्वज्ञ **भणियं** कथित **गणहरेहिं** गणधरों से **वित्थरियं** विस्तृत **पुव्वाइरियक्कम. जं** पूर्वाचार्यानुसार **जहट्ठियं** यथास्थित **तं** जो उसे **बोल्लइ** बोलता है **सो** वह हु निश्चय से **सद्दिट्ठी** सम्यग्दृष्टि है।

अर्थ- पूर्व काल में/ भूतकाल में सर्वज्ञ के द्वारा कहे हुए गणधरों से विस्तृत, पूर्वाचार्यों के क्रम से प्राप्त उपदेश को जो ज्यों का त्यों बोलता है वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के तीसरे काल के अंतिम चरण में और चौथे काल के अंतिम चरण तक भगवान आदिना. थ से लेकर महावीर पर्यंत चौबीस तीर्थंकरों ने तथा भूतकालीन अनंतानंत चौबीस तीर्थंकरों ने, केवलज्ञानियों ने चराचर पदार्थों को यथावत् जानकर वचनों के द्वारा, दिव्यध्वनि के द्वारा भव्यजीवों को यथावत् मोक्षमार्ग से संबंधित 27तत्त्वों का उपदेश दिया है और गणधरों ने इसीका प्रमाण नय निक्षेपों के द्वारा निर्णय कर विस्तार किया है। इसी तरह पूर्वाचार्यों ने क्रमशः जैसा का तैसा कहा है वैसा ही जो उच्चारण करता है वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

मिथ्यादृष्टि कौन?

मदि सुद णाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लइ जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होइ कुदिट्ठी ण होइ जिणमग्गलग्गरओ।।3।।
मतिश्रुतज्ञानबलेन तु स्वच्छंदं कथयति जिनोपदिष्टमिति।
यः स भवति कुदृष्टिर्न भवति जिनमार्गलग्नरतः।।

इदि इस प्रकार **जो** जो व्यक्ति **मदिसुदणाणबलेण** मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के बल से **जिणुद्दिट्ठं** सर्वज्ञ कथित तत्त्व को **सच्छंदं** स्वेच्छानुसार **बोल्लइ** बोलता है **सो** वह **जिणमग्गलग्गरओ** मोक्षमार्ग में लगा हुआ होने पर भी **ण होइ** मोक्षमार्ग में रत नहीं है **दु** किंतु वह **कुद्दिट्ठी** मिथ्यादृष्टि **होइ** होता है।

सम्यग्दर्शन और इसके भेद

सम्मत्तरयणसारं मोक्खमहारूक्खमूलमिदि भणियं।
तं जाणिज्जइ णिच्छयववहारसरूवदो भेयं।।4।।
सम्यक्त्वरत्नसारं मोक्षमहावृक्षमूलमिति भणितं।
तज्ज्ञायते निश्चय व्यवहार स्वरूपतो भेदम्।।

सम्मत्तरयणसारं अनंत रत्नों में सारभूत सम्यक्त्व को **मोक्खमहारूक्खमूलं** मोक्षरूपी महान वृक्ष का मूल है **इदि भणियं** ऐसा कहा है **तं** उसको **णिच्छय ववहारसरूवदो** निमित्त या पर्याय की अपेक्षा निश्चय व्यवहार के **भेयं** भेद से **जाणिज्जइ** दो प्रकार का जानो।

शुद्ध सम्यग्दृष्टि का लक्षण

भय विसण मलविवज्जिय संसार सरीर भोग णिव्विण्णो।
अट्ठ गुणंग समग्गो दंसण सुद्धो हु पंचगुरु भत्तो।।5।।
भयव्यसनमलविवर्जितः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
अष्टगुणाङ्ग समग्रः दर्शनशुद्धः खलु पंचगुरुभक्तः।।

दंसणसुद्धो शुद्ध सम्यग्दृष्टि हु ही **भयविसणमल विवज्जिय** 7 भय, 7 व्यसन और 25 मलदोष रहित **संसारसरीरभोग णिव्विण्णो** संसार, शरीर और भोगों से विरक्त **अट्ठगुणंगसमग्गो** 8 गुण और 8 अंगों से परिपूर्ण **पंचगुरूभत्तो** पंचपरमेष्ठी गुरु का भक्त होता है।

सम्यग्दृष्टि किस फल को?

णियसुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावत्थ वज्जिओ णाणी।
जिणमुणिधम्मं मण्णइ गयदुक्खो होइ सद्दिट्ठी।।6।।
निजशुद्धात्मानुरक्तः बहिरात्मावस्थावर्जितो ज्ञानी ।
जिनमुनिधर्मं मन्यते गतदुःखो भवति सद्दृष्टिः ।।

णाणी ज्ञानी **णियसुद्धप्पणुरत्तो** निजशुद्धात्मानुरागी **बहिरप्पावत्थवज्जियो** बहिरात्मावस्था का त्यागी **जिण मुणिधम्मं** जिनमुनिधर्म को **मण्णइ** मानने वाला **गयदुक्खो** दुःखों से रहित **सद्दिट्ठी** सम्यग्दृष्टि **होइ** होता है।

निर्दोष सम्यग्दृष्टि

मय मूढ मणायदणं संकाइ वसण भय मईयारं।
जेसिं चउदालेदे ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।
मद मूढमनायतनं शंकादि व्यसन भयमतीचारं।
येषां चतुश्चत्वारिंशत् एतानि न संति ते भवंति सद्दृष्टयः।।

जेसिं जिनके **मयमूढमणायदणं** 8 मद, 3 मूढ़ता, 6 अनायतन, **संकाइवसणभयमईयारं** शंकादिक 8 दोष, 7 व्यसन, 7 भय और 5 अतिचार ये **चउदालेदे** 44 दोष **ण** नहीं **संति** हैं **ते** वे **सद्दिट्ठी उपशम**सम्यग्दृष्टि या क्षायिकसम्यग्दृष्टि **होंति** होते हैं।

मोक्षसुख के पात्र?

देव गुरु समय भत्ता संसार सरीर भोग परिचत्ता।
रयणत्तय संजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।।8।।
देव गुरु समय भक्ताः संसार शरीर भोग परित्यक्ताः।
रत्नत्रय संयुक्तास्ते मनुष्याः शिवसुखं प्राप्ताः।।

देवगुरुसमयभत्ता देव, गुरु, शास्त्र या मोक्षमार्गस्थधर्मों के भक्त **संसारसरीरभोगपरिचत्ता** संसार, शरीर, भोगों के त्यागी **रयणत्तय संजुत्ता** रत्नत्रय से युक्त **ते** वे **मणुया** मनुष्य **सिवसुहं** मोक्षसुख को **पत्ता** प्राप्त करते हैं।

मोक्ष और संसार का हेतु

दाणं पूया सीलं उववासं बहुविहंपि खवणं पि।
सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीह संसारं।।9।।
दानं पूजा शीलं उपवासः बहुविधमपि क्षपणमपि।
सम्यक्त्वयुतं मोक्षसुखं सम्यक्त्वं विना दीर्घसंसारः।।

सम्मजुदं सम्यग्दर्शन सहित **दाणं** दान **पूया** पूजा **सीलं** शील **उववासं** उपवास **बहुविहंपि** अनेक. विध **खवणं** व्रत नियमादि **मोक्खसुहं** मोक्ष के हेतु कहे हैं और **सम्मविणा** सम्यक्त्व के बिना **दीहसंसारं** दीर्घसंसार के हेतु कहे हैं।

श्रावकधर्म और मुनिधर्म का वर्णन

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं जइ धम्मे तं विणा तहा सो वि।।10।।
दानं पूजा मुख्यः श्रावकधर्मे न श्रावकाः तेन विना।
ध्यानाध्ययनं मुख्यो यतिधर्मे तं विना तथा सोऽपि।।

सावयधम्मे श्रावकधर्म में **दाणं** दान **पूया** पूजा मुख्य है **तेण** उसके **विणा** बिना **सावया** श्रावक **ण** नहीं है **तहा** और **जइधम्मे** मुनिधर्म में **झाणाज्झयणं** ध्यान अध्ययन **मुक्खं** मुख्य है **तं** उसके बिना **सो** मुनिपना नहीं है।

बहिरात्मा जीव की दिनचर्या

दाणु ण धम्मु ण चागु ण भोगु ण बहिरप्प जो पयंगो सो।
लोह कसायग्गि मुहे पडियो मरियो ण संदेहो।।11।।
दानं न धर्मः न त्यागो न भोगो न बहिरात्मज्ञो यः पतंगः सः।
लोभकषायाग्निमुखे पतितः मृतो न संदेहः।।

जो दाणु ण जो जिनेंद्र के मतानुसार दान नहीं करता है **धम्मु ण** धर्म नहीं करता है **चागु ण** त्याग नहीं करता है **भोगु ण** न्याय पूर्वक भोग नहीं भोगता है **सो** वह **बहिरप्पजो** बहिरात्मा **पयंगो** पतंगा **लोहकसायग्गि मुहे** लोभ कषायाग्नि के मुख में **पडियो** पड़ कर **मरियो** मरता है इसमें कोई **संदेहो** संदेह **ण** नहीं है।

शक्त्यनुसार कर्तव्य पालन

जिणपूया मुणिदाणं करेइ जो देइ सत्तिरूवेण।
सम्माइट्ठी सावयधम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ ।।12।।
जिनपूजां मुनिदानं करोति यो ददाति शक्तिरूपेण।
सम्यग्दृष्टिः श्रावकधर्मी स भवति मोक्षमार्गरतः।।

जो जो **सत्तिरूवेण** तन मन धन की सामर्थ्यानुसार **जिणपूया** जिनपूजा **करेइ** करता है **मुणिदाणं** मुनियों को आहारादि दान **देइ** देता है **सो** वह **मोक्खमग्गरओ** मोक्षमार्ग में रत **धम्मी** धर्मात्मा **सम्माइट्ठी** सम्यग्दृष्टि **सावय** अव्रती अणुव्रती श्रावक होता है।

पूजा और दान का उत्कृष्ट फल

पूयफलेण तिलोए सुरपुज्जो हवेइ सुद्धमणो।
दाणफलेण तिलोए सारसुहं भुंजदे णियदं।।13।।
पूजा फलेन त्रिलोके सुरपूज्यो भवति शुद्धमनः।
दानफलेन त्रिलोके सारसुखं भुंक्ते नियतम्।।

सुद्धमणो शुद्ध मनकृत **पूयफलेण** पूजा के फल से **तिलोए** तीनों लोकों में, **सुरपुज्ज** देवों से पूज्य **हवेइ** होता है और **दाणफलेण** दान के फल से **तिलोए** त्रिलोक में **णियदं** निश्चित **सारसुहं** श्रेष्ठ सुख को **भुंजदे** भोगता है।

यह पात्र है या अपात्र?

दाणं भोयणमेत्तं दिण्णइ धण्णो हवेइ सायारो।
पत्तापत्तविसेसं संदंसणे किं वियारेण ।।14।।
दानं भोजनमात्रं दीयते धन्यो भवति सागारः।
पात्रापात्रविशेषं संदर्शने किं विचारेण?।।

सायारो गृहस्थ **भोयणमेत्तं** आहार मात्र **दाणं** दान **दिण्णइ** देने से **धण्णो** धन्य **हवेइ** हो जाता है **संदंसणे** मोक्षमार्गस्थ मुद्रा के साक्षात्कार होने पर **पत्तापत्तविसेसं** यह पात्र है या अपात्र ऐसे **वियारेण** विचारों से **किं** क्या प्रयोजन है?

सुपात्रदान का फल

दिण्णइ सुपत्तदाणं विसेसदो होइ भोगसग्गमही।
णिव्वाणसुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं ।।15।।
दीयते सुपात्रदानं विशेषतो भवति भोगस्वर्गमही।
निर्वाणसुखं क्रमशः निर्दिष्टं जिनवरेंद्रैः ।।

सुपत्तदाणं सुपात्र को दान **दिण्णइ** देने से **विसेसदो** विशेषतः **भोगसग्गमही** भोगभूमिज, स्वर्गीय **होइ** होता है और **कमसो** क्रमशः **णिव्वाणसुहं** निर्वाणसुख पाता है ऐसा **जिणवरिंदेहिं** सर्वज्ञ केवली भगवान जिनेंद्र देव ने **णिद्दिट्ठं** कहा है।

अर्थ- यहाँ ग्रंथकार महोदय ने विपाकविचय धर्मध्यान और इसका फल बतलाया है।

सप्तक्षेत्रों में दिये गये दान का फल

इह णिय सुवित्तवीयं जो ववइ जिणुत्त सत्तखेत्तेसु।
सो तिहुवण रज्जफलं भुंजदि कल्लाण पंचफलं ।।16।।
इह निज सुवित्तबीजं यो वपति जिनोक्त सप्तक्षेत्रेषु ।

स त्रिभुवन राज्यफलं भुनक्ति कल्याण पंचफलम् ।।

इह यहाँ **जो** जो **णिय** निज **सुवित्तवीयं** न्यायनीति से कमाये गये सुवित्तबीज को **जिणुत्त** जिनोक्त **सत्तखेत्तेसु** 7 क्षेत्रों में **ववइ** बोता है **सो** वह **तिहुवण** त्रिभुवन के **रज्जफलं** राज्य एवं **कल्लाण पंचफलं** पंचकल्याणक फल को **भुंजदि** भोगता है।

उत्तम दान का फल

खेत्तविसेसे काले ववियं सुबीयं फलं जहा विउलं।
होइ तहा तं जाणहि पत्तविसेसेसु दाणफलं ।।17।।
क्षेत्र विशेषे काले उप्तं सुबीजं फलं यथा विपुलं।
भवति तथा तज्जानीहि पात्रविशेषेषु दानफलम् ।।

जहां जैसे **खेत्तविसेसे काले** उत्तम क्षेत्र, उत्तम समय में **सुबीयं** सुबीज **ववियं** बोने से **विउलं** विपुल **फलं** फल **होइ** होता है **तहा** वैसे ही **पत्तविसेसेसु** यथाजात रूपधारी महाव्रती मुनि आर्यिका रूपी उत्तम पात्रों में दिये गये **दाणफलं** दान का फल **जाणहि** जानो।

सुपात्रदान का फल

मादु पिदु पुत्त मित्तं कलत्त धणधण्ण वत्थु वाहणं विहवं।
संसारसारसोक्खं सव्वं जाणउ सुपत्तदाणफलं ।।18।।
मातृ पितृ पुत्र मित्रं कलत्रधनधान्यवास्तुवाहनविभवं।
संसारसारसौख्यं सर्वं जानातु सुपात्रदानफलं।।

मादु- माता **पिदु** पिता **पुत्त** पुत्र **मित्तं** मित्र **कलत्त** स्त्री **धणधण्ण** धनधान्य **वत्थु** घर **वाहणं** वाहन **विहवं** वैभवादि **संसारसारसव्वं सोक्खं** संसार के सभी उत्तमसुख **सुपत्तदाणफलं** सुपात्रदान का फल **जाणउ** जानो।

सुपात्रदान से चक्रवर्ती पद

सत्तंगरज्ज णव णिहि भंडार छडंग बल चउद्दह रयणं।
छण्णवदि सहस्सेत्थि विहवं जाणउ सुपत्तदाणफलं ।।19।।
सप्तांग राज्य नवनिधि भण्डार षडंगबल चतुर्दशरत्नानि।
षण्णवति सहस्त्र स्त्री विभवो जानातु सुपात्रदान फलम्।।

सत्तंगरज्ज सप्तांग राज्य **णवणिहि भण्डार** नवनिधि का खजाना **छडंगबल** षडंगसेना **चउद्दह रयणं** 14 रत्न तथा **छण्णवदिसहस्सेत्थि** 96000 रानियां **विहवं** वैभव **सुपत्तदाणफलं** सुपात्रदान का फल **जाणउ** जानो।

सुपात्रदान का फल

सुकुल सुरूव सुलक्खण सुमइ सुसिक्खा सुसील चारित्तं।
सुहलेस्सं सुहणामं सुहसादं सुपत्तदाणफलं।।20।।
सुकुलं सुरूपं सुलक्षणं सुमतिः सुशिक्षा सुशीलं चारित्रं।
शुभलेश्या शुभनामः शुभसातं सुपात्रदानफलम्।।

सुकुल सुकुल **सुरूव** सुरूप **सुलक्खण** सुलक्षण **सुमइ** सुबुद्धि **सुसिक्खा** सुशिक्षा **सुसील** सुस्वभाव **चारित्तं** सुचारित्र **सुहलेस्सं** शुभलेश्या **सुहणामं** शुभनाम **सुहसादं** सुखसाता **सुपत्तदाण फलं** ये उत्तमदान के फल हैं।
अर्थ- यहाँ आ. श्री ने प्रकारांतर से बोधिदुर्लभ भावना को कहा है **सो कैसे?** बताते हैं।

प्रसाद ग्रहण करने का फल

जो मुणिभुत्तविसेसं भुंजइ सो भुंजइ जिणुवदिट्ठं।
संसारसार सोक्खं कमसो णिव्वाणवर सोक्खं।।21।।
यो मुनिभुक्तविशेषं भुंक्ते स भुंक्ते जिनोपदिष्टं।
संसारसारसौख्यं क्रमशो निर्वाणवरसौख्यम्।।

जो जो **मुणिभुत्तविसेसं** मुनियों के आहार से बचे भोजन को **भुंजइ** खाता है **सो** वह **कमसो** क्रमशः **संसार सार सोक्खं** इंद्रियसुख और **णिव्वाणवरसोक्खं** मोक्षसुख को **भुंजए** भोगता है ऐसा **जिणुवदिट्ठं** जिनेंद्र भगवान ने कहा है।

प्रकृत्यनुसार आहारादि देना

सीदुण्ह वाउविउलं सिलेसिमं तह परीसहव्वाहिं।
कायकिलेसुववासं जाणिज्जे दिण्णए दाणं ।।22।।
शीतोष्णवातपित्तलं श्लेष्मं तथा परीषहव्याधिं ।
कायक्लेशं उपवासं ज्ञात्वा दीयते दानम्।।

सीदुण्ह शीतोष्ण **वाउविउलं** वात पित्त **सिलेसिमं** कफ प्रकृतिवाले **तह** तथा **परीसहव्वाहिं** परीषह व्याधि **कायकिलेस** कायक्लेश और **उववासं** उपवास को **जाणिज्जे** जान कर **दाणं** दान **दिण्णए** देना चाहिए।

आहारादि दानों के भेद

हिय मियमण्णं पाणं णिरवज्जोसहिं णिराउलं ठाणं।
सयणासणमुवयरणं जाणिज्जा देइ मोक्खरओ।।23।।
हितमित मन्नं पानं निरवद्यौषधि निराकुलं स्थानम्।
शयनासनमुपकरणं ज्ञात्वा ददाति मोक्षरतः।।

मोक्खरओ मोक्षरत साधकों को **हियमियं** हितमित **अण्णं पाणं** अन्नपान **णिरवज्जोसहिं** निर्दोष औषधि **णिराउलं** निराकुल **ठाणं** स्थान **सयणासणमुवयरणं** शयनासन उपकरण **जाणिज्जा** जानकर **देइ** देता है।

मुनियों की वैय्यावृत्ति कैसे करना?

अणयाराणं वेज्जावच्चं कुज्जा जहेह जाणिज्जा।
गब्भब्भमेव मादाव्व णिच्चं तहा णिरालसया।।24।।
अनगाराणां वैय्यावृत्यं कुर्यात् यथेह ज्ञात्वा।
गर्भार्भकमेव माता इव नित्यं तथा निरालसका।।

जहा जैसे **मादा** माता **गब्भब्भमेव व्व** गर्भस्थ शिशु की **णिच्चं** नित्य **णिरालसया** आलस्य छोड़कर **वेज्जावच्चं** सेवा करती है **तहा** वैसे ही **इह** यहाँ **अणयाराणं** मुनियों की सेवा निरालसी होकर स्थिति को **जाणिज्जा** जानकर **कुज्जा** करनी चाहिये।

दान कुदान की शोभा

सप्पुरिसाणं दाणं कप्पतरूणं फलाण सोहं वा।
लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सवं जाणे।।25।।
सत्पुरुषाणां दानं कल्पतरूणां फलानां शोभेव।
लोभीनां दानं यदि विमानशोभा शवं जानीहि।।

सप्पुरिसाणं सत्पुरुषों का **दाणं** दान **कप्पतरूणं** कल्पवृक्ष के **फलाण** फलों की **सोहं** शोभा **वा** सदृश **जइ** और **लोहीणं** लोभियों का **दाणं** दान **सवं** शव की **विमाणसोहा** पालकी के समान **जाणे** जानना चाहिये।

सत्पात्र से अनभिज्ञ अविवेकी

जसकित्ति पुण्णलाहे देइ सुबहुगंपि जत्थ तत्थेव।
सम्माइ सुगुणभायण पत्तविसेसं ण जाणंति।।26।।
यशः कीर्तिपुण्यलाभाय ददाति सुबहुकमपि यत्र तत्रैव।
सम्यक्त्वादिसुगुणभाजनपात्रविशेषं न जानन्ति।।

लोभी पुरुष **जसकित्तिपुण्णलाहे** लौकिक यशकीर्ति और पुण्य प्राप्ति के लिये **सुबहुगंपि** अनेकविध दान **देइ** देते हैं वे **सम्माइ** सम्यक्त्वादि **सुगुणभायण** उत्तम गुणवान **पत्तविसेसं** पात्रविशेष को **ण** नहीं **जाणंति** जानते हैं।

लोभाधीन दान का फल

जंतं मंतं तंतं परिचरियं पक्खवायपियवयणं।
पडुच्च पंचमयाले भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स।।27।।
यंत्रं-मंत्रं-तंत्रं परिचर्यां पक्षपातप्रियवचनं।
प्रतीत्य पंचमकाले भरते दानं न किमपि मोक्षाय।।

जंतं मंतं तंतं यंत्र, मंत्र तंत्र **परिचरियं** सेवा **पक्खवाय** पक्षपात **पियवयणं** प्रिय वचनादि से **पडुच्च** विश्वास कर **पंचमयाले** वर्तमान में **भरहे** भारत में **किं पि** कोई भी **दाणं** दान **मोक्खस्स** मोक्ष का कारण **ण** नहीं है।

दानफल में अंतर

दाणीणं दालिद्दं लोहीणं किं हवेइ महसिरियं।
उहयाणं पुव्वज्जिय कम्मफलं जाव होइ थिरं।।28।।
दानीनां दारिद्र्यं लोभीनां किं भवति महैश्वर्यं।
उभयोः पूर्वार्जित कर्मफलं यावत् भवति स्थिरम्।।

दाणीणं दानियों के **दालिद्दं** निर्धनता और **लोहीणं** लोभियों के **महसिरियं** महान वैभव **किं** क्यों **हवेइ** है? **उहयाणं** उन दोनों के **पुव्वज्जिय** पूर्वकृत **कम्मफलं** कर्मफल **जाव** जब तक **थिरं** स्थिर **होइ** होता है तभी तक यह विषमता पाई जाती है।

सुखदुःख का कारण

धणधण्णाइ समिद्धे सुहं जहा होइ सव्वजीवाणं।
मुणिदाणाइसमिद्धे सुहं तहा तं विणा दुक्खं।।29।।
धनधान्यादि समृद्धे सुखं यथा भवति सर्वजीवानां।
मुनिदानादि समृद्धे सुखं तथा तं विना दुःखम्।।

जहा जैसे **धणधण्णाइ** धन धान्यादिक की **समिद्धे** समृद्धि से **सव्वजीवाणं** सब जीवों को **सुहं** सुख **होइ** होता है **तहा** वैसे ही **मुणिदाणाइ** मुनिदानादि की **समिद्धे** समृद्धि से **सुहं** सुख होता है **तं** उस धनधान्यादि और उत्तम पात्रों के **विणा** बिना लौकिक और लोकोत्तर शरीरधारियों को **दुक्खं** दुःख होता है।

निष्फलता का कारण

पत्तविणा दाणं य सुपुत्तविणा बहुधणं महाखेत्तं।
चित्तविणा वयगुणचारित्तं णिक्कारणं जाणे।।30।।
पात्रविना दानं च सुपुत्रविना बहुधनं महाक्षेत्रं।
चित्तविना व्रतगुणचारित्रं निष्कारणं जानीहि।।

पत्तविणा पात्र के बिना **दाणं** दान **य** और **सुपुत्तविणा** सुपुत्र के बिना **बहुधणं** बहुत धन **महाखेत्तं** बड़े खेत तथा **चित्तविणा** भाव के बिना **वयगुणचारित्तं** व्रत, गुण, चारित्र को **णिक्कारणं** निष्फल **जाणे** जानो।

धर्मादा द्रव्य के भोगने का फल

जिण्णुद्धार पइट्ठा जिणपूया तित्थवंदणं सेसधणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ जिणुद्दिट्ठं णिरयगइ दुक्खं।।31।।
जीर्णोद्धारप्रतिष्ठा जिनपूजा तीर्थवंदनं शेषधनं।
यो भुंक्ते स भुंक्ते जिनोपद्दिष्टं नरकगतिदुःखम्।।

जो जो **जिण्णुद्धार पइट्ठा** जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठा **जिणपूया** जिनपूजा **तित्थवंदणं** तीर्थक्षेत्र वंदन से **सेसधणं** बचे धन को **भुंजइ** भोगने वाला **णिरयगइ दुक्खं** नरक के दुःख को भोगता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** सर्वज्ञ ने कहा है।

धर्मादाद्रव्य की चोरी का फल

पुत्त कलत्तविदूरो दालिद्दो पंगु मूक बहिरंधो।
चांडालाइकुजाई पूयादाणाइ दव्वहरो।।32।।
पुत्रकलत्रविदूरो दारिद्रः पंगु मूकः बधिरोऽन्धः।
चांडालादिकुजातिः पूजादानादिद्रव्यहरः।।

पूयादाणाइ पूजा दानादि के **दव्वहरो** द्रव्य का हर्ता **पुत्तकलत्तविदूरो** पुत्र स्त्री रहित **दालिद्दो** दारिद्री **पंगु** लंगडा **मूक** गूंगा **बहिरंधो** बहरा अंधा और **चांडालाइ** चांडालादि **कुजाई** कुजातियों में उत्पन्न होता है।

धर्मादाद्रव्य अपहरण का फल

गयहत्थपायणासिय कण्णउरंगुलविहीणदिट्ठीए।
जो तिव्वदुक्खमूलो पूयादाणाइ दव्वहरो।।33।।
गतहस्तपादनासिक कर्णोर्वंगुल विहीनो द्दष्ट्या।
यस्तीव्रदुःखमूलः पूजा दानादि द्रव्यहरः।।

जो जो **पूयादाणाइ** पूजादानादि के **दव्वहरो** द्रव्यहर्ता **तिव्वदुक्खमूलो** तीव्र दुःखों के मूल **गयहत्थपायणासिय** हाथ पैर, नाक, **कण्णउरंगुल** कान, छाती और अंगुली आदि **विहीणदिट्ठीए** द्दष्टिहीन अवस्थाओं को पाते हैं।

अनेक रोग कैसे?

खयकुट्ठ मूलसूलो लूय भयंदरजलोयरक्खि सिरो।
सीदुण्हवाहिराई पूयादाणंतराय कम्मफलं।।34।।
क्षयकुष्ठमूलशूललूता भगंदरजलोदराक्षिशिरः।
शीतोष्णव्याधिराजिः पूजादानांतरायकर्मफलम्।।

खयकुट्ठमूलसूलो क्षय, कुष्ठ, मूल, शूल, **लूयभयंदर** लूता रोग, भगंदर, **जलोयरक्खिसिरो** जलोदर, नेत्र, शिर, **सीदुण्ह** शीतोष्ण, **वाहिराई** व्याधिराजादि **पूयादाणंतराय** पूजादान में अंतराय **कम्मफलं** करने के फल हैं।

वर्तमान के मनुष्य

सम्मविसोही तव गुण चारित्त सण्णाण दाण परिहीणं।
भरहे दुस्समयाले मणुयाणं जायदे णियदं ॥35॥
सम्यक्त्वविशुद्धिस्तपोगुणचारित्रसज्ज्ञानदानपरिहीनां।
भरते दुःषमकाले मनुजानां जायते नियतम्॥

भरहे भरतक्षेत्र **दुस्समयाले** पंचमकाल में **णियदं** निश्चय से **मणुयाणं** मनुष्य **सम्मविसोही** सम्यग्दर्शन की विशुद्धि **तवगुणचारित्त** तप, मूलगुण, चारित्र, **सण्णाणदाण** सम्यग्ज्ञान दान से **परिहीणं** हीन **जायदे** होते हैं।

दानहीन दाताओं की अवस्था

ण हि दाणं ण हि पूया ण हि सीलं ण हि गुणं ण चारित्तं।
जे जइणा भणिया ते णेरइया कुमाणुसा तिरिया होंति ॥36॥
न हि दानं न हि पूजा न हि शीलं न हि गुणो न चारित्रं।
ये यतिना भणितास्ते नारका कुमानुषाः तिर्यंचः भवन्ति॥

जे जो **दाणं** दान **ण हि** नहीं देते **पूया** पूजा **ण हि** नहीं करते **सीलं** शील **ण हि** नहीं पालते **गुणं** गुणों को **ण** नहीं धारते **चारित्तं** चारित्र **ण हि** नहीं पालते **ते** वे अगले जन्म में **णेरइया** नारकी **कुमाणुसा** हीनाचारी मनुष्य और **तिरिया** तिर्यंच **होंति** होते हैं ऐसा **जइणा** जिनेंद्र तीर्थंकरों ने **भणिया** कहा है।

अविवेकी मिथ्यादृष्टि

णवि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं य पुण्णपावं हि।
तच्चमतच्चं धम्ममधम्मं सो सम्मउमुक्को ॥37॥
नापि जानाति कार्यमकार्यं श्रेयोऽश्रेयश्च पुन्यपापं हि।
तत्त्वमतत्त्वं धर्ममधर्मं स सम्यक्त्वोन्मुक्तः॥

य जो **कज्जमकज्जं** कार्याकार्य **सेयमसेयं** श्रेयाश्रेय **पुण्णपावं** पुन्यपाप **तच्चमतच्चं** तत्त्वातत्त्व **धम्ममधम्मं** धर्माधर्म को **हि** निश्चय से **णवि** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** वह **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्को** उन्मुक्त है।

मिथ्यादृष्टि कौन?

णवि जाणइ जोग्गमजोग्गं णिच्चमणिच्चं हेयमुवादेयं।
सच्चमसच्चं भव्वमभव्वं सो सम्मउमुक्को॥38॥
नापि जानाति योग्यमयोग्यं नित्यमनित्यं हेयमुपादेयं।
सत्यमसत्यं भव्यमभव्यं स सम्यक्त्वोन्मुक्तः॥

जो **जोग्गमजोग्गं** योग्यायोग्य **णिच्चमणिच्चं** नित्यानित्य **हेयमुवादेयं** हेयोपादेय **सच्चमसच्चं** सत्यासत्य और **भव्वमभव्वं** भव्याभव्य को **णवि** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** वह **सम्म** सम्यक्त्व से **उमुक्को** उन्मुक्त है।

कुसंगति का फल एवं त्याग

लोइयजणसंगादो होइ मइमुहर कुडिलदुब्भावो।
लोइयसंगं तम्हा जोइवि तिविहेण मुंचाहो।।39।।
लौकिकजनसंगात् भवति मतिमुखरकुटिलदुर्भावः।
लौकिकसंगं तस्मात् दृष्ट्वा त्रिविधेन मुंचतात्।।

लोइयजण लौकिक जन **संगादो** संगति से **मइमुहर** मन चपल **कुडिल** कुटिल और **दुब्भावो** दुर्भावना युक्त **होइ** हो जाता है **तम्हा** अतः **लोइयसंगं** कुसंगति को **जोइवि** जानकर **तिविहेण** त्रियोगों से **मुंचाहो** छोड़ो।

मिथ्यादृष्टि कौन?

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मइरदो विरुद्धो सो जीवो सम्मउम्मुक्को।।40।।
उग्रस्तीव्रो दुष्टो दुर्भावो दुःश्रुतो दुरालापः।
दुर्मतिरतो विरुद्धः स जीवो सम्यक्त्वोन्मुक्तः।।

जो **उग्गो** उग्र **तिव्व** तीव्र **दुट्ठो** दुष्ट स्वभावी **दुब्भावो** दुर्भावना युक्त **दुस्सुदो** दुःश्रुत **दुरालावो** दुष्टभाषी **दुम्मइरदो** दुर्मति में रत **विरुद्धो** विरुद्ध स्वभाव वाला है **सो** वह जीव **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्को** उन्मुक्त है।

मिथ्यादृष्टियों के परिणाम

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो अणिट्ठपिसुणो सगव्वियोसूयो।
गायणजायणभंडण दुस्सण सीलो दु सम्मउम्मुक्को।।41।।
क्षुद्रो रुद्रो रुष्टो अनिष्टः पिशुनः सगर्वितोऽसूयः।
गायक याचक भंडक दूषक शीलस्तु सम्यक्त्वोन्मुक्तः।।

दु जो **खुद्दो** क्षुद्र **रुद्दो** रौद्र **रुट्ठ** रुष्ट **अणिट्ठ** अनिष्ट **पिसुणो** चुगलखोर **सगव्विय** घमंडी **असूयो** ईर्ष्यालु **गायण** गायक **जायण** याचक **भंडण** झगड़ालु **दुस्सणसीलो** दोषस्वभावी आदि इन परिणामों वाले जीव **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्को** उन्मुक्त हैं, मिथ्यादृष्टि हैं।

जिनधर्मनाशक मनुष्य

वाणर गद्दह साणगय वग्घ वराहकराह।
पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।।42।।
वानर गर्दभ श्वान गज व्याघ्र वराह कच्छपाः।
पक्षि जलौक स्वभावो नरः जिनवर धर्म विनाशकः।।

वाणर बंदर **गद्दह** गधा **साण** कुत्ता **गय** हाथी **वग्घ** वाघ **वराह** शूकर **कराह** कच्छप **पक्खि** पक्षी **जलूय** जोंक **सहाव** स्वभाव वाले **णर** मनुष्य **जिणवर** जिन **धम्म** धर्म के **विणासु** विनाश करने वाले हैं।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।
तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुद्दिट्ठं ।।43।।
सम्यक्त्वं विना सज्ज्ञानं सच्चारित्रं न भवति नियमेन।
ततो रत्नत्रयमध्ये सम्यक्त्वगुणोत्कृष्ट इति जिनोपदिष्टम्।।

णियमेण नियमतः **सम्मविणा** सम्यक्त्व के बिना **सण्णाणं** ज्ञान और **सच्चारित्तं** चारित्र **ण** सम्यक् नहीं **होइ** होते हैं **तो** अतः **रयणत्तय मज्झे** रत्नत्रय में **सम्मगुणक्किट्ठमिदि** सम्यक्त्व श्रेष्ठ है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्रप्रभु ने कहा है।

मिथ्यात्व का फल

तणुकुट्ठी कुलभंगं कुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।
दाणाइ सुगुणभंगं गइभंगं मिच्छत्तमेव हो कट्ठं।।44।।
तनुकुष्टी कुलभंगं करोति यथा मिथ्यात्वमात्मनोऽपि तथा।
दानादिसुगुणभंगं गतिभंगं मिथ्यात्वमेव अहो! कष्टम्।।

जहा जैसे **तणुकुट्ठी** शरीर का कोढ़ी **कुलभंगं** अपने जातिकुल को दूषित **कुणइ** करता है अर्थात् इसके माँबाप, नानानानी भी कोढ़ी होंगे ऐसा लोक में कहा जाता है **तहा** वैसे ही **मिच्छमप्पणो** मिथ्यात्व अपने **दाणाइ** दानादि **सुगुणभंगं वि** सद्गुणों को भी तथा **गइभंगं** सद्गति को विनाश कर देता है **हो** अहो **मिच्छत्तमेव** ऐसे मिथ्यात्व के लिए **कट्ठं** कष्ट है, आश्चर्य है।

आगम के बिना समीचीनता कैसे?

देवगुरुधम्मगुणचारित्तं तवायार मोक्खगइभेयं।
जिणवयणसुदिट्ठिविणा दीसइ किह जाणए सम्मं।।45।।
देवगुरुधर्मगुणचारित्रं तपाचारं मोक्षगतिभेदं।
जिनवचनसुदृष्टि विना दृश्यते कथं ज्ञायते सम्यक्त्वम्।।

देवगुरुधम्म देव, गुरु, धर्म, **चारित्तं तवायार** चारित्र, तपाचार **मोक्खगइभेयं** मोक्षगति के भेदों को **जिणवयण** जिनवचन रूपी **सुदिट्ठि विणा** सुदृष्टि बिना **सम्मं** यथार्थ **किह** कैसे **दीसइ** देख और **जाणए** जान सकता है?

मोही जीव की योगक्रिया

एक्कु खणं ण विचिंतइ मोक्खणिमित्तं णियप्पसाहावं।
अणिसं करेय पावं बहुलालावं मणे विचिंतेइ।।46।।
एकं क्षणं न विचिंतयति मोक्षनिमित्तं निजात्मस्वभावं।
अनिशं करोति पापं बहुलालापं मनसि विचिंतयति।।

मोक्ख मोक्ष के **णिमित्तं** निमित्त **एक्कु** एक **खणं** क्षणमात्र भी **णियप्प** निजात्म **साहावं** स्वभाव का **विचिंतइ** चिंतन **ण** नहीं करता है किंतु **अणिसं** सतत **करेय पावं** काय से पाप करता है **बहुलालावं** पाप के लिए बहुत बोलता है और **मणे** मन में **विचिंतेइ** पाप का ही चिंतन करता है।

अनात्मज्ञ

मिच्छामइ मयमोहासवमत्तो बोलए जहा भुल्लो।
तेण ण जाणइ अप्पा अप्पाणं सम्मभावाणं ।।47।।
मिथ्यामतिमदमोहासवमत्तः वदति यथा विस्मृतः।
तेन न जानाति आत्मा आत्मानं साम्यभावान्।।

जहा जैसे **भुल्लो मत्तो** भुलक्कड़ **बोलए** बोलता है वैसे ही **मिच्छामइ** कुमतिज्ञानी **मय** मद **मोहासव** मोहमदिरा से **तेण** मत्त हुआ **सम्मभावाणं** साम्यभाव रूपी **अप्पा** अपनी **अप्पाणं** आत्मा को **ण** नहीं **जाणइ** जानता है।

उपशमभाव की महिमा

पुव्वट्ठियं खवइ कम्मं पविसुदु णो देइ अहिणवं कम्मं।

इहपरलोयमहप्पं देइ तहा उवसमो भावो।।48।।
पूर्वस्थितं क्षपयति कर्मं प्रवेष्टं न ददाति अभिनवं कर्मं।
इहपरलोकमाहात्म्यं ददाति तथा उपशमो भावः।।

उवसमोभावो उपशमभाव **पुव्वट्ठियं** पूर्वस्थित **कम्मं** कर्मों को **खवइ** क्षय करता है **अहिणवं** नवीन **कम्मं** कर्मों का **पविसुदु** आश्रव **णो** नहीं होने **देइ** देता अर्थात् नवीन कर्मों का संवर करता है **तहा** तथा **इहपरलोय महप्पं** उभयलोक में माहात्म्य **देइ** देता है।

वर्तमान के मनुष्य

अज्जवसप्पिणि भरहे पउरारुद्दट्टज्झाणयादिट्ठा।
णट्ठा दुट्ठा कट्ठा पापिट्ठा किह्ण णील काऊदा।।49।।
अद्यावसर्पिणीभरते प्रचुरा रौद्रार्तध्याना द्रष्टाः।
नष्टाः दुष्टाः कष्टाः पापिष्ठाः कृष्णनीलकापोताः।।

अज्जवसप्पिणि आज अवसर्पिणी काल **भरहे** भरतक्षेत्र में **पउरा** अधिकतर **रुद्दट्टज्झाणया** रौद्रध्यानी आर्तध्यानी **णट्ठा** नष्ट **दुट्ठा** दुष्ट **कट्ठा** कष्टमय **पापिट्ठा** पापी **किह्णणील काऊदा** अशुभलेश्या वाले **दिट्ठा** देखे जा रहे हैं।

वर्तमान में सुलभ और दुर्लभ कौन?

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमयाले मिच्छपुव्वया सुलहा।
सम्मत्त पुव्व सायार णयारा दुल्लहा होंति।।50।
अद्यावसर्पिणीभरते पंचमकाले मिथ्यात्वपूर्वकाः सुलभाः।
सम्यक्त्वपूर्वकाः सागारानगारा दुर्लभा भवंति।।

अज्जवसप्पिणि भरहे पंचमयाले आज अवसर्पिणी काल के पंचमकाल में भरतक्षेत्र के आर्यखंड में **मिच्छपुव्वया** मिथ्यादृष्टिजीव **सुलहा** सुलभ हैं और **सम्मत्तपुव्व** सम्यग्दृष्टि **सायारणयारा** गृहस्थ और मुनि **दुल्लहा** दुर्लभ **होंति** हैं।

निष्प्रमाद धर्मध्यान

अज्जवसप्पिणि भरहे धम्मज्झाणं पमादरहिदोत्ति।
होदि त्ति जिणुवद्दिट्ठं ण हु मण्णइ सो हु कुदिट्ठी ।।51।
अद्यावसर्पिणीभरते धर्मध्यानं प्रमादरहितमिति।
भवेदिति जिनुद्दिष्टं न हि मन्यते सः हि कुदृष्टिः।।

अज्जवसप्पिणि भरहे आज अवसर्पिणीकाल के पंचमकाल भरतक्षेत्र में **पमादरहिदोत्ति** अप्रमात्त गुणस्थानवर्ती **धम्मज्झाणं** धर्मध्यान **होदि त्ति** होता है ऐसा **ण हु** नहीं **मण्णइ** मानने वाला **सो** वह **कुदिट्ठी** मिथ्यादृष्टि है ऐसा **जिणुवद्दिट्ठं** जिनेंद्र ने कहा है।

स्वेच्छानुसार चर्या

असुहादो णिरयाऊ सुहभावादो दु सग्गसुहमाओ।
दुहसुहभावं जाणइ जं ते रुच्चेइ तं कुज्जा।।52।
अशुभतो नरकायुष्य शुभभावतस्तु स्वर्गसुखमाः।
अशुभशुभभावं जानीहि यत्तुभ्यं रोचते तत्कुरु।।

असुहादो अशुभभावों से **णिरयाऊ** नरकायु **दु** और **सुहभावादो** शुभभावों से **सग्गसुहमाओ** स्वग. सुख मिलता है अतः **दुहसुहभावं** दोनों भावों को **जाणइ** जानकर **जं** जो **ते** तुम्हें **रुच्चेइ** रुचे **तं** वह **कुज्जा** करो, बहुत कहने से क्या? हम कहाँ तक कहें?

अशुभ भाव

हिंसाइसु कोहाइसु मिच्छाणाणेसु पक्खवाएसु।
मच्छरिएसु मएसु दुरिहिणिवेसेसु असुहलेसेसु ।।53।।
विकहाइसु रुद्दट्टज्झाणेसु असूयगेसु दंडेसु।
सल्लेसु गारवेसु खाईसु जो वट्टए असुहभावो।।54।।
हिंसादिषु क्रोधादिषु मिथ्याज्ञानेषु पक्षपातेषु।
मत्सरितेषु मदेषु दुरभिनिवेशेषु अशुभलेश्यासु।।
विकथादिषु रौद्रार्त्तध्यानेषु असूयकेषु दंडेषु।
शल्येषु गारवेषु ख्यातिषु यो वर्तते अशुभभावः।।

हिंसाइसु हिंसादि पापों में **कोहाइसु** क्रोधादि कषायों में **मिच्छाणाणेसु** मिथ्याज्ञान में **पक्खवाएसु** पक्षपात में **मच्छरिएसु** मात्सर्य भावों में **मएसु** मदों में **दुरिहिणिवेसेसु** दुरभिप्रायों में **असुहलेसेसु** अशुभ लेश्याओं में **विकहाइसु** विकथाओं में **रुद्दट्टज्झाणेसु** रौद्रध्यान आर्तध्यानों में **असूयगेसु** ईर्ष्या में **दंडेसु** त्रिदंडों में **सल्लेसु** शल्यों में **गारवेसु** गारवों में **खाईसु** ख्याति पूजा लाभ में **जो वट्टए** चर्या करना **असुहभावो** अशुभ भाव है।

शुभभाव

दव्वत्थिकाय छप्पणतच्चपयत्थेसु सत्तणवएसु।
बंधणमोक्खे तक्कारणरूवे बारसणुवेक्खे।।55।।
रयणत्तयस्सरूवे अज्जाकम्मे दयाइसद्धम्मे।
इच्चेवमाइगो जो वट्टइ सो होइ सुहभावो।।56।।
द्रव्यास्तिकाय षट् पंच तत्त्व पदार्थेषु सप्त नवकेषु।
बंधन मोक्षे तत्कारण रूपे द्वादशानुप्रेक्षासु।।
रत्नत्रय स्वरूपे आर्य कर्मणि दयादि सद्धर्मे।
इत्येवमादिके यो वर्तते स भवति शुभभावः।।

जो जो जीव **दव्वत्थिकाय छप्पण** 6 द्रव्य, 5 अस्तिकाय **तच्चपयत्थेसु सत्तणवएसु** 7 तत्त्व, 9 पदार्थों में **बंधण मोक्खे** बंध मोक्ष में **तक्कारणरूवे** बंध का कारण आश्रव और मोक्ष के कारण संवर निर्जरा में, **बारसणुवेक्खे** द्वादशानुप्रेक्षाओं में, **रयणत्तयस्सरूवे** रत्नत्रय में **अज्जाकम्मे** आर्य श्रेष्ठ कर्मों में **दयाइसद्धम्मे** दया आदि सद्धर्म **इच्चेवमाइगो** इत्यादिक में **वट्टइ** प्रवृत्ति करना **सो** वह **सुहभावो** शुभभाव **होइ** होता है।

बहिरात्मा की चर्या

धरियउ बाहिरलिंगं परिहरियउ बाहिरक्खसोक्खं हि।
करियउ किरियाकम्मं मरियउ जंमियउ बहिरप्पजिऊ ।।57।।
धृत्वा बाह्यं लिंगं परिहृत्य बाह्याक्षसौख्यं हि।
कृत्वा क्रियाकर्मं म्रियते जायते बहिरात्माजीवः।।

बहिरप्पजिऊ बहिरात्माजीव **बाहिरलिंगं** बाह्य लिंग **धरियउ** धारणकर **बाहिरक्खसोक्खं** इंद्रियसुख को **परिहरियउ** छोड़कर **किरियाकम्मं** क्रियाकांड **करियउ** करता हुआ **जंमियउ मरियउ** जनम मरण करता है।

मोक्षसुख कैसे?

मोक्खणिमित्तं दुक्खं वहेइ परलोयदिट्ठि तणुदंडी।

मिच्छाभावं ण छिज्जइ किं पावइ मोक्खसोक्खं हि।।58।।
मोक्षनिमित्तं दुःखं वहति परलोकदृष्टिः तनुदंडी।
मिथ्यात्वभावं न छिनत्ति किं प्राप्नोति मोक्षसौख्यं हि।।

परलोयदिट्ठि परलोक का लोलुपी **तणुदंडी** काय को कृष करने वाला बहिरात्मा **मोक्खणिमित्तं** मोक्ष के निमित्त **दुक्खं** दुःख **वहेइ** उठाता हुआ **मिच्छाभावं** मिथ्याभाव को **ण** नहीं **छिज्जइ** छोड़ता है **किं** तो क्या **हि** निश्चय से **मोक्खसोक्खं** मोक्षसुख को **पावइ** प्राप्त कर सकता है? अर्थात् नहीं।

क्या बाह्यचर्या से आत्मलाभ?

ण हु दंडइ कोहाइं देहं दंडेइ कहं खवइ कम्मं।
सप्पो किं मुवइ तहा वम्मीए मारिए लोए।।59।।
न हि दंडयति क्रोधादीन् देहं दंडयति कथं क्षपेत् कर्म।
सर्पः किं म्रियते तथा वल्मीके मारिते लोके।।

यह साधु **कोहाइं** क्रोधादि कषायों को **दंडइ** दंडित **ण** न कर **देहं** शरीर को **हु** ही **दंडेइ** दंड देता है तो इससे **कम्मं** कर्मों का **खवइ** क्षय **कहं** कैसे कर सकता है **तहा** जैसे **लोए** लोक में **वम्मीए** सर्पबिल को **मारिए** मारने से **किं** क्या **सप्पो** साँप **मुवइ** मर सकता है? नहीं।

संयत और असंयत कब?

उवसमतवभावजुदो णाणी सो भावसंजदो होई।
णाणी कसायवसगो असंजदो होइ सो ताव ।।60।।
उपशमतपभावयुतो ज्ञानी स भावसंयतो भवति।
ज्ञानी कषायवशगोऽसंयतो भवति स तावत्।।

जबतक **सो** वह **णाणी** ज्ञानी **उवसमतवभावजुदो** उपशम तपभाव सहित है **ताव** तब तक **भावसंजदो** भाव संयत **होई** होता है और **कसायवसगो** कषाय के वशीभूत हुआ ज्ञानी **असंजदो** असंयत **होइ** होता है।

ज्ञानमद वाला अज्ञानी

णाणी खवेइ कम्मं णाणबलेणेदि बोल्लए अण्णाणी।
वेज्जो भेसज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाही।।61।।
ज्ञानी क्षपयति कर्म ज्ञानबलेनेति वदति अज्ञानी।
वैद्यो भैषज्यमहं जानामीति नश्यते व्याधिः।।

णाणी ज्ञानी **णाणबलेण** ज्ञानबल से **कम्मं** कर्मों का **खवेइ** क्षय करता है **इदि** ऐसा **बोल्लए** वक्ता **अण्णाणी** अज्ञानी है जैसे **अहं भेसज्जं वेज्जो** मैं वैद्य हूँ औषधि का और रोग का **जाणे** ज्ञाता हूँ केवल इतने मात्र से क्या **वाही** व्याधि **णस्सदे** नष्ट हो सकती है?

औषधि क्या है

पुव्वं सेवइ मिच्छामल सोहणहेउ सम्मभेसज्जं।
पच्छा सेवइ कम्मामय णासण चरिय सम्मभेसज्जं ।।62।।
पूर्वं सेवय मिथ्यात्वमलशोधनहेतुः सम्यक्त्वभैषजं।
पश्चात् सेवय कर्मामयनाशनं चारित्रं सम्यग्भैषजम्।।

पुव्वं सर्व प्रथम **मिच्छामल** मिथ्यात्व रूपी मल के **सोहणहेउ** शोधनार्थ **सम्म** सम्यक्त्व रूपी **भेसज्जं** औषधि **सेवइ** सेवन करो **पच्छा** पश्चात् **कम्मामय** कर्म रूपी व्याधि के **णासण** नाश के लिये **सम्मचरिय** सम्यक्चारित्र रूपी **भेसज्जं** औषधि का **सेवइ** सेवन करो।

अज्ञानी और ज्ञानी के फल में अंतर

अण्णाणी विसय विरत्तादो जो होइ सयसहस्सगुणो।
णाणी कसाय विरदो विसयासत्तो जिणुद्दिट्ठं ।।63।।
अज्ञानी विषयविरक्तात् यो भवति शतसहस्रगुणः।
ज्ञानी कषायविरतो विषयासक्तः जिनोद्दिष्टम्।

विसयविरत्तादो विषयों से विरक्त **कसायासत्तो** कषायासक्त **अण्णाणी** अज्ञानी जो फल पाता है उससे **कसायविरदो** कषायों से विरक्त तथा **विसयासत्तो** विषयासक्त **णाणी** ज्ञानी **सयसहस्सगुणो** लाख गुणा फल पाता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्र भगवान ने कहा है।

समर्पण की निरर्थकता

विणओ भत्तिविहीणो महिलाणं रोयणं विणा णेहं।
चागो वेरग्गविणा एदेदो बारिया भणिया।।64।।
विनयो भक्तिविहीनः महिलानां रोदनं विना स्नेहं।
त्यागो वैराग्यं विना एते वारिताः भणिताः।।

भत्तिविहीणो भक्ति के विना **विणओ** विनय **णेहं** स्नेह के **विणा** बिना **महिलाणं** स्त्रियों का **रोयणं** रुदन और **वेरग्ग** वैराग्य के **विणा** बिना **चागो** त्याग आदि **एदेदो** ये सभी **बारिया** सम्यक् विशेष फल न देने वाले **भणिया** कहे गए हैं।

फलहीन साधु

सुहडो सूरत्त विणा महिला सोहग्गरहिय परिसोहा।
वेरग्गणाण संजमहीणा खवणा ण किंवि लब्भंते।।65।।
सुभटः शूरत्वं विना महिला सौभाग्यरहिता परिशोभा।
वैराग्यज्ञानसंयमहीना क्षपणा न किमपि लभंते।।

सूरत्त शूरता के **विणा** बिना **सुहड** सुभट **सोहग्ग** सौभाग्य **रहिय** बिना **महिला** स्त्री की **परिसोहा** शोभा और **वेरग्गणाण** वैराग्य ज्ञान **संजम** संयम के **हीणा** बिना **खवणा** क्षपक **किंवि** कुछ भी उत्कृष्ट निर्दोष उत्तम फल **ण** नहीं **लब्भंते** पाते।

कुफल का स्वामी

वत्थु समग्गो मूढो लोही लब्भइ फलं जहा पच्छा।
अण्णाणी जो विसयासत्तो लहइ तहा चेव।।66।।
वस्तुसमग्रो मूढो लोभी लभते फलं यथा पश्चात्।
अज्ञानी यो विषयासक्तो लभते तथा चैव।।

जहा जैसे **मूढो** मूर्ख **लोही** लोभी **समग्गो** संपूर्ण **वत्थु** वस्तुओं को **लब्भइ** प्राप्त कर **फलं** फल चाहता है **तहा चेव** वैसे ही **पच्छा** पश्चात् **अण्णाणी** अज्ञानी **विसयासत्तो** विषयासक्त **फलं लहइ** फल प्राप्त करता है।

अर्थ- जैसे नपुंसक सर्वांग सुंदर पत्नी को प्राप्त करके भी कामसुख का अनुभव नहीं कर पाता तथा मूर्ख लोभी प्राणी सामग्री प्राप्त करके भी सुख का अनुभव नहीं कर पाता वैसे ही अज्ञानी अजानकार होने से वस्तु को प्राप्त करके भी उसका आनंद नहीं ले पाता।

सुफल का स्वामी?

वत्थु समग्गो णाणी सुपत्तदाणी फलं जहा लहइ ।
णाणसमग्गो विसयपरिचत्तो लहइ तहा चेव।।67।।

वस्तुसमग्रो ज्ञानी सुपात्रदानी फलं यथा लभते ।
ज्ञानसमग्रो विषयपरित्यक्तो लभते तथा चैव।।

जहा जैसे **सुपत्तदाणी** सुपात्रदानी **णाणी** ज्ञानी **समग्गो** संपूर्ण **वत्थु** वस्तुरूपी **फलं** फल को **लहइ** प्राप्त करता है **तहा** वैसे **चेव** ही **विसयपरिचत्तो** विषयों का त्यागी **णाणी** ज्ञानी **समग्गो** संपूर्ण लोकोत्तर फल को पाता है।

निर्लोभपने का उपाय

भू महिला कणयाई लोहाहि विसहरो कहं पि हवे।
सम्मत्तणाणवेरग्गोसहमंतेण सह जिणुद्दिट्ठं।।68।।
भूमहिलाकनकादि लोभाहिविषधरो कथमपि भवेत्।
सम्यक्त्वज्ञानवैराग्यौषधिमंत्रेण सह जिनोद्दिष्टम्।।

भू भूमि, **महिला** स्त्री **कणयाई** स्वर्ण आदि के **लोहाहि** लोभ रूपी **विसहर** विषधर सर्प **कहं पि हवे** कैसे नष्ट होवे? सुनो **सम्मत्त णाण** सम्यक्त्व, ज्ञान **वेरग्गोसह** वैराग्य रूपी औषधि और **मंतेण** मंत्र के **सह** द्वारा नष्ट होता है **जिणुद्दिट्ठं** ऐसा जिनेंद्रदेव ने कहा है।

बाह्य मुंडन के भेद और फल

पुव्वं जो पंचेंदिय तणु मणुवचि हत्थ पाय मुंडाउ।
पच्छा सिरमुंडाउ सिवगइ पहणायगो होइ।।69।।
पूर्वं यः पंचेंद्रिय तनु मनो वचो हस्त पाद मुंडः।
पश्चात् शिरोमुंडः शिवगति पथनायको भवति।।

जो जो दीक्षार्थी **पुव्वं** पहले **पंचेंदिय** पाँचों इंद्रियों को **तणु मणु वचि** शरीर, मन, वचन, **हत्थपाय** हाथ पांव का **मुंडाउ** मुंडन करने के **पच्छा** बाद में **सिरमुंडाउ** दाढ़ी मूंछ और सिर का लुंचन करने वाला **सिवगइ** मोक्षमार्ग का **पहणायगो** नेता **होइ** होता है।

कुमार्गगामी कौन?

पतिभत्तिविहीण सदी भिच्चो य जिणभत्तिहीण जइणो।
गुरुभत्तिहीण सिस्सो दुग्गइ मग्गाणुलग्गओ णियमा।।70।।
पतिभक्तिविहीना सती भृत्यश्च जिनभक्तिहीनो जैनः।
गुरुभक्तिहीनः शिष्यो दुर्गतिमार्गानुलग्नो नियमात्।।

पतिभत्ति पतिभक्ति से, **विहीण** विहीन **सदी** सती **भिच्चो** और नौकर **जिणभत्ति** जिनेंद्र भक्ति से **हीण** हीन **जइणो** जैन **य** और **गुरुभत्तिहीण** गुरुभक्ति से हीन **सिस्सो** ये शिष्य **णियमा** नियम से **दुग्गइ** दुर्गति के **मग्गाणुलग्गओ** मार्ग में लगे हुये हैं।

भक्ति बिना सब शून्य

गुरुभत्तिविहीणाणं सिस्साणं सव्वसंगविरदाणं।
ऊसर खेत्ते ववियं सुबीयसमं जाण सव्वणुट्ठाणं।।71।।
गुरुभक्तिविहीनानां शिष्याणां सर्वसंगविरतानां।
ऊषरक्षेत्रोप्तसुबीजसमं जानीहि सर्वानुष्ठानम्।।

गुरुभत्ति गुरुभक्ति **विहीणाणं** विहीन **सव्वसंग** सर्व परिग्रह **विरदाणं** त्यागी **सिस्साणं** शिष्यों के **सव्वणुट्ठाणं** सभी अनुष्ठान **ऊसर खेत्ते** ऊसर खेत में **ववियं** बोये हुये **सुबीयसमं** उत्तम बीज के समान **जाण** जानो।

गुरुभक्ति बिना चर्या?

रज्जं पहाणहीणं पति हीणं देसगामरट्ठबलं।
गुरुभत्तिहीण सिस्साणुट्ठाणं णस्सदे सव्वं।।72।।
राज्यं प्रधानहीनं पतिहीनं देशग्रामराष्ट्रबलं।
गुरुभक्तिहीनशिष्यानुष्ठानं नश्यति सर्वम्।।

पहाणहीणं राजा के बिना **रज्जं** राज्य **पतिहीणं** सेनापति के बिना **देसगामरट्ठबलं** देश, ग्राम, राष्ट्र, सेना और **गुरुभत्ति** गुरुभक्ति के **हीण** बिना **सिस्साणुट्ठाणं** शिष्यों के अनुष्ठान **सव्वं** सभी **णस्सदे** नष्ट हो जाते हैं।

कैसी चर्या व्यर्थ है?

सम्मत्तविणा रुई भत्तिविणा दाणं दयाविणा धम्मो ।
गुरुभत्तिहीणतवगुणचारित्तं णिप्फलं जाण ।।73।।
सम्यक्त्वं विना रुचिं भक्तिं विना दानं दयां विना धर्मं।
गुरुभक्तिहीनतपगुणचारित्रं निष्फलं जानीहि।।

सम्मत्तविणा सम्यक्त्व बिना **रुई** रुचि **भत्तिविणा** भक्ति बिना **दाणं** दान **दयाविणा** दया बिना **धम्मो** धर्म और **गुरुभत्ति** गुरुभक्ति से **हीण** हीन शिष्यों के **तवगुणचारित्तं** तपगुणचारित्र **णिप्फलं** निष्फल **जाण** जानो।

मूर्ख चर्या

हीणादाण वियार विहीणादो बाहिरक्खसोक्खं हि।
किं तजियं किं भजियं किं मोक्खं दिट्ठं जिणुद्दिट्ठं।।74।।
हीनादानविचारविहीनात् बाह्याक्षसुखं हि।
किं त्यक्तं किं भक्तं किं मोक्षो दृष्टो जिनोद्दिष्टः।

हीणादाण वियार हेयोपादेय विचार से **विहीणादो** शून्य **बाहिरक्खसोक्खं** बाह्येंद्रिय सुखभोगी **हि** निश्चय से **किं तजियं** क्या त्याज्य है **किं भजियं** क्या ग्राह्य है **किं मोक्खं** क्या मोक्ष है **दिट्ठं** ऐसा किसने देखा है इस प्रकार संदेह युक्त मूर्खजीव विचार करता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्र देव ने कहा है।

कर्मक्षय का कारण

कायकिलेसुववासं दुद्धरतवयरण कारणं जाण।
तं णियसुद्ध सरूवं परिपुण्णं चेदि कम्मणिम्मूलं।।75।।
कायक्लेशोपवासं दुर्धरतपश्चरणकारणं जानीहि।
तन्निजशुद्धस्वरूपं परिपूर्णं चेति कर्मनिर्मूलम्।।

कायकिलेसुववासं कायक्लेश और उपवास **दुद्धर** कठोर **च** और **परिपुण्णं** परिपूर्ण **तवयरण** तपश्चरण को **तं णिय** निज **सुद्धसरूवं** शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने में **चेदि** ऐसा **कम्मणिम्मूलं** कर्म क्षय का **कारणं** कारण **जाण** जानो।

बाह्य भेष से क्या?

कम्मु ण खवेइ जो हु परबम्हु ण जाणेइ सम्मउम्मुक्को।
अत्थु ण तत्थु ण जीवो लिंगं घेत्तूण किं करई।।76।।
कर्मं न क्षपयति यो हि परब्रह्मं न जानाति सम्यक्त्वोन्मुक्तः।

अत्र न तत्र न जीवो लिंगं गृहीत्वा किं करोति?॥

जो जो **सम्मउम्मुक्को जीवो** मिथ्यादृष्टिजीव **हु परबम्हु** परमब्रह्म को **ण** नहीं **जाणेइ** जानता है वह **कम्मु** कर्मों का **खवेइ** क्षय **ण** नहीं कर सकता है **अत्थु ण** मिथ्यादृष्टि जीव न इसलोक में धर्मात्मा है और **तत्थु ण** न परलोक में भी धर्मात्मा होगा तो **लिंगं** इस मुनिलिंग को **घेत्तूण** ग्रहण कर **किं** क्या **करई** कर सकता है?

साधुपद से क्या?

अप्पाणं पि ण पिच्छइ ण मुणइ ण वि सद्दहइ ण भावेई।
बहुदुक्ख भार मूलं लिंगं घेत्तूण किं करई।।77॥
आत्मानमपि न पश्यति न जानाति नापि श्रद्दधाति न भावयति।
बहुदुःखभारमूलं लिंगं गृहीत्वा किं करोति?।

जो **अप्पाणं** आत्मा को, **पि** भी, **ण** न **पिच्छइ** देखता **ण** न **मुणइ** जानता **ण वि** न ही **सद्दहइ** श्रद्धान करता है और **ण** न **भावेई** भावना करता है तो **बहुदुक्खभार मूलं** अनेक दुःखों के कारणभूत **लिंगं** वेष को **घेत्तूण** धारण कर **किं** क्या **करई** कर सकता है?

आत्मभावना क्यों?

जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो ताव।
तेण अणंत सुहाणं अप्पाणं भावए जोई ।।78॥
यावन्न जानाति आत्मा आत्मानं दुःखमात्मनस्तावत्।
तेन अनंतसुखमात्मानं भावयेद् योगी।

जाव जबतक **अप्पा** जीव **अप्पाणं** अपनेको **ण** नहीं **जाणइ** जानता है **ताव** तबतक **दुक्खमप्पणो** दुःख का अनुभव होता है **तेण** अतः **जोई** हे योगी **अणंतसुहाणं** अनंतसुखी **अप्पाणं** आत्मा का **भावए** चिंतन करे।

निर्वाण की प्राप्ति क्यों नहीं?

णियतच्चुवलद्धिविणा सम्मत्तुवलद्धि णत्थि णियमेण।
सम्मत्तुवलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि णियमेण ।।79॥
निजतत्त्वोपलब्धिं विना सम्यक्त्वोपलब्धिर्नास्ति नियमेन।
सम्यक्त्वोपलब्धिं विना निर्वाणं नास्ति नियमेन॥

णिय तच्चुवलद्धि निजात्मप्राप्ति **विणा** बिना **णियमेण** नियमतः **सम्मत्तुवलद्धि** सम्यक्त्वोपलब्धि **णत्थि** नहीं होती और **सम्मत्तुवलद्धि विणा** इसके विना **णियमेण** नियमतः **णिव्वाणं** निर्वाण **णत्थि** नहीं होता है।

किसके बिना किसकी शोभा नहीं?

साल विहीणो राओ दाणदयाधम्मरहिय गिहि सोहा ।
णाणविहीणतवोवि य जीवविणा देहसोहा णो।।80॥
सालविहीनो राजा दानदयाधर्मरहितगृहिशोभा।
ज्ञानविहीनतपोऽपि च जीवं विना देहशोभेव॥

सालविहीणो दुर्ग के बिना **राओ** राजा की **दाणदयाधम्मरहिय** दान दयाधर्म के बिना **गिहि** गृहस्थ की **जीवविणा** जीव के बिना **देहसोहा** देह की शोभा, **णो** नहीं होती है **य** और वैसे ही **णाणविहीण** ज्ञान विहीन **तवो** तप की **वि** भी **सोहा** शोभा नहीं होती।

अज्ञानी के विचार

मक्खि सिलिम्मि पडियो मुवइ जहा तह परिग्गहे पडियो।
लोही मूढो खवणो कायकिलेसेसु अण्णाणी।।81।।
मक्षिका श्लेष्मणि पतिता म्रियते यथा तथा परिग्रहे पतितः।
लोभी मूढः क्षपणः कायक्लेशेषु अज्ञानी।।

जहा जैसे **सिलिम्म** कफ में **पडियो** पड़ी **मक्खी** मक्खी **मुवइ** मरती है **तह** वैसे ही **परिग्गहे** परिग्रहासक्त **लोहीमूढोअण्णाणी- खवणो** लोभी मूर्ख अज्ञानी साधु **कायकिलेसेसु पडियो** कायक्लेश में पड़कर मरता है।

मोक्ष क्यों नहीं?

णाणब्भासविहीणो सपरं तच्चं ण जाणए किं वि।
झाणं तस्स ण होइ हु जाव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खं।।82।।
ज्ञानाभ्यासविहीनः स्वपरं तत्त्वं न जानाति किमपि।
ध्यानं तस्य न भवति हि तावन्न कर्मं क्षपयति न हि मोक्षः।।

णाणब्भासविहीणो ज्ञानाभ्यास के विना जीव **सपरं** स्व पर **तच्चं** तत्त्व को, **किं वि** कुछ भी **ण** नहीं **जाणए** जानने से **तस्स** उसके **झाणं** शुक्लध्यान **हु** ही **ण** नहीं **होइ** होता है और **जाव** जब तक शुक्लध्यान न होने से **कम्मं** कर्म का **खवेइ** क्षय **ण** नहीं होता है और तभी तक **हु** नियम से **मोक्खं** मोक्ष **ण** नहीं होता है।

प्रवचनसार का अभ्यास क्यों?

अज्झयणमेवझाणं पंचेंदिय णिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचमयाले पवयणसारब्भासमेव कुज्जाओ।।83।।
अध्ययनमेवध्यानं पंचेंद्रियनिग्रहो कषायस्यापि।
ततः पंचमकाले प्रवचनसाराभ्यासमेव कुर्यात्।।

पंचमयाले पंचमकाल में **अज्झयणमेव** अध्ययन ही **झाणं** ध्यान है क्योंकि इससे **पंचेंदियणिग्गहं** पाँचों इंद्रियों और **कसायं** कषायों का **पि** भी निग्रह होता है **तत्तो** इसलिए **पंचमयाले** इस अवसर्पिणी काल के पंचमकाल में **पवयणसारब्भासमेव** प्रवचनसार का अभ्यास ही **कुज्जाओ** करना चाहिये।

जिनेंद्र ने क्या कहा है

पावारंभणिवित्ती पुण्णारंभे पउत्तिकरणं वि।
णाणं धम्मज्झाणं जिणभणियं सव्वजीवाणं।।84।।
पापारंभनिवृत्तिः पुण्यारंभे प्रवृत्तिकरणमपि।
ज्ञानं धर्मध्यानं जिनभणितं सर्वजीवनाम्।।

पावारंभणिवित्ती पापारंभ से निवृत्ति **पुण्णारंभे** पुण्यकार्यों में **पउत्तिकरणं** प्रवृत्ति करना **वि** भी **णाणं** ज्ञान और **धम्मज्झाणं** धर्मध्यान को **सव्वजीवाणं** सबके लिये मुक्ति का कारण **जिणभणियं** जिनेंद्र ने कहा है।

ज्ञानाभ्यास के बिना जीव की दशा

सुदणाणब्भासं जो ण कुणइ सम्मं ण होइ तवयरणं।
कुव्वंतो मूढमई संसारसुहाणुरत्तो सो।।85।।
श्रुतज्ञानाभ्यासं यः न करोति सम्यक् न भवति तपश्चरणं।
कुर्वन् यदि मूढमतिः संसारसुखानुरक्तः सः।।

जो जो **सुदणाणब्भासं** श्रुतज्ञानाभ्यास **ण** नहीं **कुणइ** करता है उसके **सम्मं** सम्यक् **तवयरणं** तप **ण** नहीं **होइ** होता है **सो** वह **मूढमई** मूर्ख **कुव्वंतो** तप करता हुआ भी **संसारसुहाणुरत्तो** संसारसुख में अनुरक्त है।

मुनिराज ऐसे

तच्च वियारण सीलो मोक्खपहाराहण सहावजुदो।
अणवरयं धम्मकहा पसंगओ होइ मुणिराओ।।86।।
तत्त्वविचारणशीलो मोक्षपथाराधनास्वभावयुतः।
अनवरतं धर्मकथाप्रसंगतो भवति मुनिराजः।।

तच्चवियारणसीलो तत्त्वों के चिंतक **मोक्खपहाराहणसहावजुदो** मोक्षपथाराधना स्वभाव से युक्त तथा **अणवरयं** अनवरत **धम्म- कहापसंगओ** धर्मकथा सहित **मुणिराओ** मुनिराज **होइ** होते हैं।

निषेध और विधि में मुनि का स्वरूप

विकहाइविप्पमुक्को आहाकम्माइ विरहियो णाणी।
धम्मुद्देसण कुसलो अणुपेहा भावणाजुदो जोई।।87।।
विकथादिविप्रमुक्तः अधःकर्मादि विरहितो ज्ञानी।
धर्मदेशनाकुशलोऽनुप्रेक्षा भावनायुतो योगी।।

विकहाइ विकथाओं के **विप्पमुक्को** त्यागी **आहाकम्माइ** अधःकर्म के **विरहियो** त्यागी **धम्मुद्देसण** धर्मोपदेश में **कुसल** कुशल तथा **अणुपेहा भावणा** द्वादशानुप्रेक्षाओं से **जुदो** युक्त **णाणी** ज्ञानी **जोई** मुनि होते हैं।

मुनिराज कैसे?

णिंदावंचणदूरो परीसह उवसग्ग दुक्ख सहमाणो।
सुह झाणज्झयणरदो गयसंगो होइ मुणिराओ।।88।।
निंदावंचनदूरः परीषहोपसर्गदुःखसहमान।
शुभध्यानाध्ययनरतो गतसंगो भवति मुनिराजः।।

जो **णिंदा** निंदा **वंचण** वंचना से **दूरो** दूर हैं **परीसह** परीषह **उवसग्ग** उपसर्ग के **दुक्ख** दुःख **सहमाणो** सहते हैं और **गयसंगो** अपरिग्रही **मुणिराओ** मुनि **सुह** शुभ **झाणज्झयण** ध्यान अध्ययन में **रद** रत **होइ** होते हैं।

मुनिराज कैसे?

अवियप्पो णिद्दंदो णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो।
णिम्मल सहावजुत्तो जोई सो होइ मुणिराओ।।89।।
अविकल्पो निर्द्वंदो निर्मोहो निष्कलंको नियतः।
निर्मल स्वभावयुक्तो योगी स भवति मुनिराजः।।

जो **अवियप्पो** निर्विकल्प, **णिद्दंदो** निर्द्वन्द्व **णिम्मोहो** निर्मोही **णिक्कलंकओ** निष्कलंक **णियदो** नियत **णिम्मलसहाव** निर्मल स्वभाव से **जुत्तो** युक्त हैं **सो** वे **जोई** योगी **मुणिराओ** मुनिराज **होइ** होते हैं।

निर्वाणसुख किसको नहीं?

तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो मिच्छभावसंजुत्तो।
सव्वण्हूवएसो सो णिव्वाणसुहं ण गच्छेई।।90।।
तीव्रं कायक्लेशं कुर्वन् मिथ्यात्वभावसंयुक्तः।

सर्वज्ञोपदेशो स निर्वाणसुखं न गच्छति।।

मिच्छाभाव संजुत्तो मिथ्यादृष्टि जीव **तिव्वं** तीव्र **कायकिलेसं** कायक्लेशतप **कुव्वंतो** करता हुआ भी **सो** वह **णिव्वाणसुहं** निर्वाण सुख को **ण** नहीं **गच्छेइ** प्राप्त करता है ऐसा **सव्वण्हूवएसो** सर्वज्ञ का उपदेश है।

मलिनता में शुद्धात्मदर्शन नहीं

रायाइमलजुदाणं णिय अप्पारूवं ण दिस्सए किं वि।
स मलादरिसे रूवं ण दिस्सए जह तहा णेयं।।91।।
रागादिमलयुक्तानां निजात्मरूपं न दृश्यते किमपि।
समलादर्शे रूपं न दृश्यते यथा तथा ज्ञेयम्।।

जह जैसे **स मलादरिसे** मलिन दर्पण में **रूवं** रूप **ण** नहीं **दिस्सए** दिखाई देता **तहा** वैसे ही **रायाइ** रागादि मल से **मलजुदाणं** मलिन मनवालों के द्वारा **णिय** अपना **अप्पारूवं** शुद्धात्म स्वरूप **किं वि** कुछ भी नहीं **णेयं** जाना जाता।

ऐसी आत्मा दीर्घसंसारी

दंडत्तय सल्लत्तय मंडियमाणो असूयगो साहू।
भंडणजायणसीलो हिंडइ सो दीहसंसारे ।।92।।
दंडत्रय शल्यत्रय शोभायमानोऽसूयकः साधुः।
भंडन याचनशीलो हिंडते सः दीर्घसंसारे।।

जो **साहु** साधु **दंडत्तय** तीन दंडों से **सल्लत्तय** तीन शल्यों से **मंडियमाणो** शोभायमान **असूयगो** ईर्ष्यावान **भंडण** कलहवान और **जायणसीलो** याचनाशील है **सो** वह **दीह** दीर्घ, **संसारे** संसार में **हिंडइ** भ्रमण करता है।

मिथ्यादृष्टि साधु

देहादिसु अणुरत्ता विसयासत्ता कसायसंजुत्ता।
अप्पसहावे सुत्ता ते साहू सम्मपरिचत्ता।।93।।
देहादिषु अनुरक्ता विषयासक्ताः कषायसंयुक्ताः।
आत्मस्वभावे सुप्ता ते साधवः सम्यक्त्वपरित्यक्ताः।।

जो **देहादिसु** शरीरादि में **अणुरत्ता** अनुरक्त **विसयासत्ता** विषयासक्त **कसाय संजुता** कषायसहित **अप्पसहावे सुत्ता** आत्म स्वभाव में प्रमादी आलसी **ते** वे **साहू** साधु **सम्म** सम्यक्त्व के **परिचत्ता** त्यागी हैं, मिथ्यादृष्टि हैं।

जिनधर्म विराधक साधु

आरंभे धणधण्णे उवयरणे कंखिया तहासूया।
वयगुणसीलविहीणा कसायकलहप्पिया मुहरा।।94।।
संघविरोहकुसीला सच्छंदा रहिय गुरुकुला मूढा।
रायाइसेवया ते जिणधम्म विराहिया साहू।।95।
आरंभे धनधान्ये उपकरणे कांक्षितास्तथाऽसूया।
व्रतगुणशीलविहीनाः कषायकलहप्रियाः मुखराः।।
संघविरोधकुशीलाः स्वच्छंदा रहितगुरुकुला मूढाः।
राजादिसेवकाः ते जिनधर्मविराधकाः साधवः।।

आरंभे आरंभ में **धणधण्णे** धन धान्य में **उवयरणे** उपकरण के **कंखिया** इच्छुकों में **तहासूया** तथा

ईर्ष्यालु **वयगुणसील** व्रत, गुण, शील से **विहीणा** विहीन **कसायकलहप्पिया** कषाय, कलहप्रिय **मुहरा** मुखर **संघविरोहकुसीला** चतुसंघ विरोध स्वभावी **सच्छंदा** स्वच्छंद **गुरुकुलारहिय** गुरुकुल रहित **मूढा** अज्ञानी **रायाइसेवया** राजादि की सेवा करने वाले **ते** वे **साहु** साधु **जिणधम्म विराहिया** जिनधर्म के विराधक हैं।

सदोषी साधु

जोइसवेज्जामंतोवजीवणं वायवस्स ववहारं।
धणधण्णपडिग्गहणं समणाणं दूसणं होइ।।96।।
ज्योतिषर्विद्यामंत्रोपजीवनं वातकस्य व्यवहारं।
धनधान्यप्रतिग्रहणं श्रमणानां दूषणं भवति।।

जोइसवेज्जा ज्योतिषविद्या **मंतोवजीवणं** मंत्रविद्या से आजीविका चलाना **वायवस्स** भूत प्रेत का **ववहारं** व्यवहार कर **धणधण्ण** धनधान्य **पडिग्गहणं** लेना **समणाणं** श्रमणों का **दूसणं** दोष **होइ** है।

मिथ्यादृष्टि साधु

जे पावारंभरया कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता।
लोयववहारपउरा ते साहू सम्मउम्मुक्का।।97।।
ये पापारंभरताः कषाययुक्ताः परिग्रहासक्ताः।
लोकव्यवहारप्रचुराः ते साधवः सम्यक्त्वोन्मुक्ताः।।

जे जो **साहू** साधु **पावारंभरया** पापारंभ में रत **कसायजुत्ता** कषाय से युक्त **परिग्गहासत्ता** परिग्रह में आसक्त और **लोयववहारपउरा** लोकव्यवहार में/ लोकाचार में चतुर हैं सो **ते** वे **सम्म** सम्यक्त्व के **उम्मुक्का** त्यागी मिथ्यादृष्टि हैं।

कषायवान साधु

ण सहंति इयरदप्पं थुवंति अप्पाणमप्प माहप्पं।
जिब्भणिमित्तं कुणंति ते साहू सम्मउम्मुक्का।।98।।
न सहंते इतरदर्प स्तुवन्ति आत्मानमात्ममाहात्म्यं।
जिह्वानिमित्तं कुर्वन्ति ते साधवः सम्यक्त्वोन्मुक्ताः।।

जो **इयरदप्पं** परवैभव को, **सहंति ण** सहन न कर **अप्पाणं** अपना और **अप्पमाहप्पं थुवंति** अपनी महिमा गाते हैं, गुणगान करते हैं **जिब्भणिमित्तं** स्वादार्थ **कुणंति** श्रम करते हैं **ते** वे **साहु** साधु **सम्म** सम्यक्त्व से **उम्मुक्का** उन्मुक्त हैं।

आहार ग्रहण का हेतु

भुंजेइ जहा लाहं लहेइ जइ णाण संजम णिमित्तं।
झाणज्झयण णिमित्तं अणयारो मोक्ख मग्गरओ।।99।।
भुंक्ते यथालाभं लभते यतिः ज्ञानसंयमनिमित्तं।
ध्यानाध्ययननिमित्तं अनगारो मोक्षमार्गरतः।।

मोक्खमग्ग मोक्षमार्ग में **रओ** रत **अणयारो** साधु **जइ** यति **णाणसंजम** ज्ञान, संयम के **णिमित्त** निमित्त **झाणज्झयण** ध्यानाध्ययन के **णिमित्तं** निमित्त **जहा लाहं** चरणानुयोगानुसार कथित पद्धति से **भुंजेइ** भोजन **लहेइ** ग्रहण करता है।

मुनियों की आहारचर्या

उयरग्गिसमण मक्ख मक्खण गोयरि सब्भपूरण भमरं।

णाऊण तप्पयारे णिच्चेवं भुंजए भिक्खू।।100।।
उदराग्निशमनं अक्षम्रक्षणं गोचारं श्वभ्रपूरणं भ्रमरं।
ज्ञात्वा तत्प्रकारान् नित्यमेवं भुंक्ते भिक्षुः।।

भिक्खू मुनि **उयरग्गिसमणं** उदराग्निशमन **अक्खमक्खण** इंद्रिय स्निग्धता **गोयरि** गोचरी **सब्भूरण** श्वभ्रपूरण और **भमरं** भ्रामरी **तप्पयारे** आहारचर्या के भेदों को **णाऊण** जानकर **णिच्चेवं** नित्य ही **भुंजए** आहार ग्रहण करते हैं।

शरीर का पोषण कैसे?

रसरुहिरमंसमेदट्ठि सुकिलमलमुत्तपूयकिमिबहुलं।
दुग्गंधमसुइचम्ममयमणिच्च मचेयणं पडणं ।।101।।
बहुदुक्खभायणं कम्मकारणं भिण्णमप्पणोदेहो।
तं देहं धम्माणुट्ठाणकारणंचेदि पोसए भिक्खू।।102।।
रस रुधिर मांस मेदाऽस्थि शुक्र मल मूत्र पूय कृमि बहुलम्।
दुर्गंधमशुचिचर्ममयमनित्यमचेतनं पतनं।।101।।
बहुदुःखभाजनं कर्मकारणं भिन्नमात्मनोदेहः।
तं देहं धर्मानुष्ठानकारणं चेति पोषयेत् भिक्षुः।।102।।

देहो शरीर **रसरुहिरमंस** रस रक्त मांस **मेदट्ठिसुकिल** मेदा अस्थि शुक्र **मलमुत्तपूय** मलमूत्र पीब **किमिबहुलं** कृमियों से युक्त **दुग्गंधमसुइ** दुर्गंध अशुचि **चम्ममय** चर्ममय **अणिच्चमचेयणं** अनित्य अचेतन **पडणं** पतन शील **बहुदुक्खभायणं** अनेक दुःखों का पात्र **कम्मकारणं** कर्मों का कारण **अप्पणो भिण्णं** आत्मभिन्न **तं देहं** उस शरीर को **भिक्खू** मुनि **धम्माणुट्ठाणकारणं** धर्म का कारण **चेदि** जानकर **पोसए** पोषण करें।

सद्धेतु बिना आहार निष्फल

संजमतव झाणज्झयणविणाणए गेह्णये पडिग्गहणं।
वंचइ गिह्णइ भिक्खु ण सक्कदे वज्जिदुं दुक्खं।।103।।
संयमतपोध्यानाध्ययनविज्ञानाय गृह्णीयात् प्रतिग्रहणं।
वर्जयति गृह्णाति भिक्षुर्न शक्नोति वर्जितुं दुःखम्।।

भिक्खु मुनि **संजमतवझाणज्झयणविणाणए** संयम, तप, ध्यानाध्ययन, विज्ञान के हेतु **पडिग्गहणं** आहार को **गेह्णये** ग्रहण करें किंतु **वंचइ** इन हेतुओं के बिना यदि **गिह्णइ** आहार ग्रहण करता है तो वह **दुक्ख** सांसारिक जनम मरण आदि के दुःखों को **वज्जिदुं** छोड़ने में **सक्कदे** समर्थ **ण** नहीं होता है।

कषायवान व्यंतर साधु?

कोहेण य कलहेण य जायणसीलेण संकिलेसेण।
रुद्देण य रोसेण य भुंजइ किं विंतरो भिक्खू।।104।।
क्रोधेन च कलहेन च याचनाशीलेन संक्लेशेन।
रुद्रेण च रोषेण च भुंक्ते किं व्यंतरो भिक्षुः।।

भिक्खू जो मुनि **कोहेण य** क्रोध से **कलहेण य** कलह से **जायण सीलेण** याचना से **संकिलेसेण** संक्लेश से **रुद्देण** रौद्रता से **रोसेण** रोष से **भुंजइ** भोजन करता है तथा अन्य भी इसी प्रकार चर्या करता है तो वह **किं** क्या **य** साधु है या **विंतरो** व्यंतर?

साधुओं की आहारचर्या

दिव्वुत्तरण सरिच्छं जाणिच्चाहो धरेइ जइ सुद्धो।
तत्तायसपिंडसमं भिक्खू तह पाणिगयपिंडं।।105।।
दिव्योत्तरणसदृशं ज्ञात्वा अहो धारयति यदि शुद्धो ।
तप्तायस्पिंडसमं भिक्षु तथा पाणिगतपिंडम् ।।

जइ यति **तत्तायसपिंडसमं** तप्त लोहपिंडवत् **पाणिगय** हस्तगत **पिंडं** ग्रास को **सुद्धो** शुद्ध **जाणिच्चाहो** जानकर **दिव्वुत्तरण सरिच्छं** दिव्य नौकावत् जानकर **भिक्खू** मुनि **धरेइ** ग्रहण करता है **अहो** आश्चर्य है।

पात्रों के भेद

अविरद देस महव्वय आगम रुइणं वियारतच्चणहं।
पत्तंतरं सहस्सं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।106।।
अविरतदेशमहाव्रत आगमरुचीनां विचारतत्त्वानां।
पात्रांतरं सहस्त्रं निर्दिष्टं जिनवरेन्द्रैः।।

जिणवरिंदेहिं जिनेंद्रदेवों के द्वारा **अविरददेसमहव्वय** अविरत, देशविरत, महाव्रत, **आगम रुइणं** आगमरुचिक **वियारतच्चणहं** तत्त्व विचारक आदि **सहस्सं** हजारों पत्तंतरं पात्रों के भेद **णिद्दिट्ठं** कहे गये हैं।

उत्तम पात्र

उवसमणिरीहझाणज्झयणाइ महागुणा जहादिट्ठा।
जेसिं ते मुणिणाहा उत्तमपत्ता तहा भणिया।।107।।
उपशमनिरीहध्यानाध्ययनादि महागुणा यथा दृष्टाः।
येषां ते मुनिनाथा उत्तमपात्राणि तथा भणिताः।।

जहा यथा **जेसिं** जिनमें **उवसम** उपशम भाव **णिरीह** अनिच्छा **झाणज्झयणाइ** ध्यानाध्ययनादि **तहा** ऐसे और भी **महागुणा** महान गुण **दिट्ठा** देखे गये हैं **ते** वे **मुणिणाहा** मुनिनाथ **उत्तमपत्ता** उत्तम पात्र **भणिया** कहे हैं।

दीर्घ संसारी कौन?

ण वि जाणइ जिण सिद्ध सरूवं तिविहेण तह णियप्पाणं।
जो तिव्वं कुणइ तवं सो हिंडइ दीहसंसारे।।108।।
नापि जानाति जिनसिद्धस्वरूपं त्रिविधेन तथा निजात्मानं।
यस्तीव्रं करोति तपं सः हिंडते दीर्घसंसारे।।

जो जो **तिव्वं** तीव्र **तवं** तपस्वी साधु **जिण** जिनेंद्र **सिद्धसरूवं** सिद्ध **तह** तथा **णियप्पाणं** निजात्मा को **तिविहेण** त्रिविध से **ण वि** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** तो वह **दीहसंसारे** दीर्घसंसारी **हिंडइ** होता है।

रत्नत्रय से अनभिज्ञ?

णिच्छय ववहारसरूवं जो रयणत्तयं ण जाणइ सो।
जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं।।109।।
निश्चयव्यवहारस्वरूपं यो रत्नत्रयं न जानाति सः।
यत्करोति तन्मिथ्यारूपं सर्वजिनोद्दिष्टम्।।

जो जो **णिच्छयववहार** निश्चय व्यवहार **सरूवं** स्वरूप **रयणत्तयं** रत्नत्रय को **ण** नहीं **जाणइ** जानता है **सो** वह **जं** जो कुछ भी दिनचर्या का पालन **कीरइ** करता है **तं** वह **सव्वं** सब **मिच्छारूवं** मिथ्या रूप है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनदेव ने कहा है।

ये भव के बीज हैं

किं जाणिऊण सयलं तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।
सम्मविसोहिविहीणं णाणतवं जाण भवबीयं।।110।।
किं ज्ञात्वा सकलं तत्त्वं कृत्वा तपश्च किं बहुलं।
सम्यक्त्वविशुद्धिविहीनं ज्ञानतपं जानीहि भवबीजम्।।

सयलं संपूर्ण **तच्चं** तत्त्वों को **जाणिऊण** जानने से **च** और बहुलं अधिक **तवं** तप **किच्चा** करने से **किं** क्या? **सम्मविसोहि** शुद्ध सम्यक्त्व **विहीणं** बिना **णाण** ज्ञान **तवं** तप को **भवबीयं** भव का बीज **जाण** जानो।

संसार का बीज

वयगुणसीलपरीषहजयं च चरियं तवं छडावसयं।
झाणज्झयणं सव्वं सम्मविणा जाण भवबीयं।।111।।
व्रतगुणशीलपरीषहजयं च चारित्रं तपः षडावश्यकानि।
ध्यानाध्ययनं सर्वं सम्यक्त्वं विना जानीहि भवबीजं।।

वय व्रत **गुण** गुण **सील** शील **परीसहजयं** परीषहजय **चरियं** चारित्र **तवं** तप **छडावसयं** षडावश्यक **च** और **झाणज्यणं** ध्यानाध्ययनादि **सव्वं** इन सभी को **सम्म** सम्यक्त्व के **विणा** बिना **भवबीयं** भवबीज **जाण** जानो।

मिथ्याचारित्र से क्या?

खाई पूयालाहंसक्काराइ किमिच्छसे जोई।
इच्छसि जइ परलोयं तेहिं किं तुज्झ परलोयं।।112।।
ख्याति पूजां लाभं सत्कारादि किमिच्छसे योगिन्।
इच्छसि यदि परलोकं तैः किं तव परलोकम्।।

जोई हे योगी! **जइ** यदि **परलोयं** परलोक मोक्षपद **इच्छसि** चाहते हो तो **खाई** ख्याति **पूया** पूजा **लाहं** लाभ **सक्काराइ** सत्कारादि की **किमिच्छसे** इच्छा क्यों **किं** क्या **तेहिं** उनसे **तुज्झ** तेरा **परलोयं** परलोक सुधरेगा? नहीं।

शुद्धात्म रुचि का फल

कम्माद विहाव सहावगुणं जो भाविऊण भावेण।
णिय सुद्धप्पा रुच्चइ तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं।।113।।
कर्मात्मविभावस्वभावगुणं यो भावयित्वा भावेन।
निजशुद्धात्मा रोचते तस्य च नियमेन भवति निर्वाणम्।।

जो जो **कम्म विहाव य** कर्म विभाव और **आदसहावगुणं** आत्मस्वभाव को **भावेण** भाव से **भ. ाविऊण** भाकर **णिय** निज **सुद्धप्पा** शुद्धात्मा में **रुच्चइ तस्स** रुचि करता है उसको **णियमेण** नियमतः **णिव्वाणं** मोक्ष **होइ प्राप्त** होता है।

बहुत जानने से क्या?

मूलुत्तरुत्तरोत्तर दव्वादो भावकम्मदो मुक्को।

आसवबंधणसंवरणिज्जर जाणेइ किं बहुणा।।114।।
मूलोत्तरोत्तरोत्तरद्रव्यतो भावकर्मतो मुक्तः।
आस्रवबंधनसंवरनिर्जराः जानीहि किं बहुना।।

मूलुत्तरुत्तरोत्तरदव्वादो कर्मों के मूल उत्तर, उत्तरोत्तर द्रव्यकर्म **भावकम्मदो** भावकर्म **मुक्को** मुक्तजीव मोक्षतत्त्व **आसव** आश्रव **बंधण** बंध **संवर** संवर **णिज्जर** निर्जरा तत्त्व को **जाणे** जानो **किं बहुणा** अधिक कहने से क्या?

वैराग्य और राग की महिमा

विसयविरत्तो मुंचइ विसयासत्तो ण मुंचए जोई।
बहिरंतरपरमप्पाभेयं जाणेह किं बहुणा।।115।।
विषयविरक्तो मुच्यते विषयासक्तो न मुच्यते योगी।
बहिरंतः परमात्मभेदं जानीहि किं बहुना।।

विसयविरत्तो विषयविरक्त **जोई** योगी कर्मों को **मुंचइ** छोड़ता है **विसयासत्तो** विषयासक्त **ण** नहीं **मुंचइ** छोड़ता है इसलिये **बहिरंतर** बहिरात्मा अंतरात्मा और **परमप्पा** परमात्मा के **भेयं** भेदों को **जाणेह** जानो **बहुणा किं** अधिक कहने से क्या?

बहिरात्मा जीव

णिय अप्पणाण झाणज्झयण सुहामिय रसायणप्पाणं।
मोत्तूणक्खाणसुहं जो भुंजइ सो हु बहिरप्पा।।116।।
निज आत्मज्ञान ध्यानाध्ययन सुखामृत रसायनपानं।
मुक्त्वा अक्षाणां सुखं यो भुंक्तो स हि बहिरात्मा।।

णिय निज **अप्पणाण** आत्मज्ञान **झाणज्झयण** ध्यानाध्ययन रूपी **सुहामिय** सुखामृत **रसायणप्पाणं** रसायनपान को **मोत्तूण** छोड़कर **जो** जो **अक्खाणसुहं** इंद्रियसुख **भुंजइ** भोगनेवाला **हु** निश्चयतः **बहिरप्पा** बहिरात्मा है।

इंद्रिय सुख कैसा है?

किंपायफलं पक्कं विसमिस्सिद मोदमिव चारुसुहं।
जिब्भसुहं दिट्ठिपियं जह तह जाणक्खसोक्खं वि।।117।।
किंपाकफलं पक्वं विषमिश्रितमोदकमिव चारुसुखं।
जिह्वासुखं दृष्टिप्रियं यथा तथा जानीहि अक्षसौख्यमपि।।

जह जैसे **पक्कं** पक्व **किंपायफलं** किंपाकफल **विसमिस्सिद** विषमिश्रित **मोद मिव** मोदकवत् **चारू सुहं** सुंदर सुखाकरी **जिब्भसुहं** खाने में स्वादिष्ट **दिट्ठिपियं** देखने में प्रिय है **तह वि** वैसे ही **अक्खसोक्खं** इंद्रिय विषयसुख को **जाण** जानो।

बहिरात्मा जीव

देह कलत्तं पुत्तं मित्ताइं विहाव चेदणा रूवं।
अप्प सरूवं भावइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।118।।
देहं कलत्रं पुत्रं मित्रादि विभावचेतनारूपं।
आत्मस्वरूपं भावयति स हि भवेत् बहिरात्मा।।

जो व्यक्ति **देह** शरीर **कलत्तं** पत्नी **पुत्तं** पुत्र **मित्ताइं** मित्रादि और **विहावचेदणा रूवं** कर्मचेतना, कर्मफलचेतना को **अप्प सरूवं** आत्मस्वरूप **भावइ** भावना करता है तो **सो चेव** वही जीव

बहिरप्पा बहिरात्मा **हवेइ** होता है।

बहिरात्मा

इंदियविसय सुहाइसु मूढमई रमइ ण लहइ तच्चं।
बहुदुक्खमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा।।119।।
इंद्रियविषयसुखादिषु मूढमतिः रमते न लभते तत्त्वं।
बहुदुःखमिति न चिंतयति स चैव भवति बहिरात्मा।।

इंदियविसय इंद्रियविषय **सुहाइसु** सुख में **रमइ** रमता हुआ **मूढमई** मूर्ख **तच्चं** तत्त्व को **ण** नहीं **लहइ** पाता व **बहुदुक्खमिदि** इंद्रियसुख दुःख **ण** नहीं है ऐसा **चिंतइ** चिंतक **सो चेव** ही **बहिरप्पा** बहिरात्मा **हवेइ** होता है।

जीव की विषयों में रुचि

जेसिं अमेज्झमज्झे उप्पण्णाणं हवेइ तत्थ रुई।
तह बहिरप्पाणं बहिरिंदिय विसएसु होइ मई।।120।।
येषां अमेध्यमध्ये उत्पन्नानां भवति तत्र रुचिः।
तथा बहिरात्मानां बहिरिन्द्रियविषयेषु भवति मतिः।।

जेसिं जैसे **अमेज्झ मज्झे** विष्टा में **उप्पण्णाणं** उत्पन्न हुए कीड़े की **तत्थ** उसी विष्टा में **रुई** रुचि **हवेइ** होती है **तह** वैसे ही **बहिरप्पाणं** बहिरात्माओं की **बहिरिंदिय** बाह्येंद्रिय विषयों में **मई** मति **होइ** होती है।

मध्यम अंतरात्मा

सिविणे वि ण भुंजइ विसयाइं देहाइभिण्णभावमई।
भुंजइ णियप्परूवो सिवसुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो।।121।।
स्वप्नेऽपि न भुंक्ते विषयान् देहादिभिन्नभावमतिः।
भुंक्ते निजात्मरूपं शिवसुखरक्तस्तु मध्यमात्मा सः।।

देहाइभिण्ण देहादि से भिन्न **णियप्परूवो भावमई** निजात्मध्याता **सिविणे** स्वप्न में **वि** भी **विसयाइं** विषयों को **ण** नहीं **भुंजइ** भोगता है इसलिए **दु सो** वह **सिवसुहरत्तो भुंजइ** आत्मसुख भोगी **मज्झिमप्पो** मध्यम अंतरात्मा कहलाता है।

दुर्वासना की महिमा

मलमुत्तघडव्वचिरं वासिय दुव्वासणं ण मुंचेइ।
पक्खालिय सम्मत्तजलो यण्णाणम्मएण पुण्णो वि।।122।।
मलमूत्रघटवत् चिरवासितां दुर्वासनां न मुंचति।
प्रक्षालितसम्यक्त्वजलो यज्ज्ञानामृतेन पूर्णोऽपि।।

चिरं चिरकाल से **मलमुत्त** मलमूत्र से **वासिय** भरे हुए **घडव्व** घड़ेवत् **यण्णाणम्मएण** ज्ञानामृत से **पुण्णो** पूर्ण **सम्मत्तजलो** सम्यक्त्वजल से **पक्खालिय** धोने पर **वि** भी कदाचित् जघन्य मध्यम अंतरात्मा नारायण बलभद्रवत् **दुव्वासणं** दुर्गंध को **ण** नहीं **मुंचेइ** छोड़ता।

इंद्रियसुख कैसा?

सम्माइट्ठीणाणी अक्खाणसुहं कहं वि अणुहवइ।
केणा वि ण परिहारइ वाहिविणासणट्ठभेसज्जं।।123।।
सम्यग्दृष्टिः ज्ञानी अक्षाणां सुखं कथमपि अनुभवति।

केनापि न परिहारयति व्याधिविनाशार्थभैषजम्।।

जैसे **वाहि** व्याधि के **विणासणट्ठ** विनाशार्थ **भेसज्जं** औषधि सेवन की जाती है व्याधि के रहते **केणा वि** किसी भी प्रकार से औषधि **परिहारइ** छोड़ी **ण** नहीं जाती है ऐसे ही **सम्माइट्ठी** सम्यग्दृष्टि **णाणी** ज्ञानी कषायों की प्रबलता होने के कारण पुरुषार्थहीन होने से **अक्खाणसुहं** इंद्रियसुख का **अणुहवइ** अनुभव करता है किंतु **कहं वि** बीच में कैसे छोड़ सकता है?

आत्महित का क्रम

किं बहुणा हो तजि बहिरप्पसरूवाणि सयलभावाणि।
भजि मज्झिमपरमप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि।।124।।
किं बहुना अहो त्यज बहिरात्मस्वरूपान् सकलभावान्।
भज मध्यमपरमात्मानं वस्तुस्वरूपान् भावान्।।

हो अहो! **बहिरप्पसरूवाणि** बहिरात्मा रूपी **सयलभावाणि** सभी भावों को **तजि** छोड़कर **वत्थुसरूवाणि** वस्तुस्वरूप **मज्झिम** मध्यम अंतरात्मा होकर **परमप्पा भावाणि** परमात्मा को **भजि** भजो **बहुणा किं** बहुत कहने से क्या?

बहिरात्मा

चउगइ संसारगमणकारणभूयाणि दुक्खहेऊणि।
ताणि हवे बहिरप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि।।125।।
चतुर्गति संसारगमन कारणभूताः दुःखहेतवः।
ते भवन्ति बहिरात्मनः वस्तुस्वरूपाः भावाः।।

जो **चउगइ** चतुर्गति रूप **संसार** संसार में **गमणकारण भूयानि** भ्रमण के कारण और **दुक्ख** दुःख के **हेऊणि** हेतु हैं **ताणि** वे **वत्थुसरूवाणि** वस्तुस्वरूप **बहिरप्पा** बहिरात्मा के बहिर्मुखी **भावाणि** भाव होते हैं।

मोक्षमार्गस्थ आत्माओं के भेद

मोक्खगइगमणकारणभूयाणि पसत्थपुण्णहेऊणि।
ताणि हवे दुविहप्पा वत्थुसरूवाणि भावाणि।।126।।
मोक्षगतिगमनकारणभूताः प्रशस्तपुण्यहेतवः।
ते भवन्ति द्विविधात्मनः वस्तुस्वरूपाः भावाः।।

जो **मोक्खगइ** मोक्षमार्ग में **गमणकारणभूयाणि** गमन के कारणभूत और **पसत्थ पुण्ण** प्रशस्त पुण्य के **हेऊणि** हेतु हैं **ताणि** वे **दुविहप्पा** दो प्रकार की अंतरात्मा और सकलपरमात्मा के भेद से **वत्थुसरूवाणि** वस्तुस्वरूप **भावाणि** भाव **हवे** होते हैं।

हितोपदेशी कौन?

दव्वगुणपज्जएहिं जाणइ परसमय ससमयादि विभेयं।
अप्पाणं जाणइ सो सिवगइ पहणायगो होई।।127।।
द्रव्यगुणपर्यायैर्जानाति परसमयस्वसमयादिविभेदं।
आत्मानं जानाति सः शिवगतिपथनायको भवति।।

जो व्यक्ति **परसमय** परसमय **ससमयादि** स्व समयादि **विभेयं** भेदों को **दव्वगुण पज्जएहिं** द्रव्य गुण पर्यायों से **अप्पाणं** आत्मा को **जाणइ** जानता है **सो** वह **सिवगइ** शिवगति का **पहणायगो** पथनायक **होई** होता है।

स्वसमय परसमय

बहिरंतरप्पभेयं परसमयं भण्णए जिणिंदेहिं।
परमप्पा सगसमयं तब्भेयं जाणगुणट्ठाणे।।128।।
बहिरंतरात्मभेदः परसमयो भण्यते जिनेंद्रैः।
परमात्मा स्वकसमयः तद्भेदं जानीहि गुणस्थाने।।

जिणिंदेहिं जिनेंद्रदेव ने **बहिरंतरप्पभेयं** बहिरात्मा अंतरात्मा को **परसमयं** परसमय और **परमप्पा** परमात्मा को **सगसमयं** स्वसमय **भण्णए** कहा है तथा **तब्भेयं** उनके इन भेदों को **गुणट्ठाणे** गुणस्थानों में **जाण** जानो।

आत्मा के भेद

मिस्सोत्ति बाहिरप्पा तरतमया तुरिय अंतरप्पजहण्णा।
सत्तोत्तिमज्झिमंतरखीणुत्तरपरमजिणसिद्धा।।129।।
मिश्रः इति बहिरात्मा तरतमया तुर्ये अंतरात्मा जघन्यः।
सप्त इति मध्यमान्तः क्षीणोत्तरः परमाः जिनसिद्धाः।।

मिस्सोत्ति मिश्र गुणस्थान तक **बाहिरप्पा** बहिरात्मा **तुरिय** चौथे गुणस्थान वाले **जहण्णा अंतरप्प** जघन्य अंतरात्मा **सत्तोत्ति** पांचवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक **तरतमया** परिणामों की विशुद्धि की वृद्धिंगत होने से **मज्झिमंतर** मध्यम अंतरात्मा और **खीणुत्तर** बारहवें गुणस्थान वाले उत्तम अंतरात्मा तथा **परमजिणसिद्धा सयोगी अयोगी** जिन और सिद्ध परमात्मा हैं।

निषेध रूप में पथनायक

मूढत्तय सल्लत्तय दोसत्तय दंडगारवत्तयेहिं।
परिमुक्को जोई सो सिवगइपहणायगो होइ।।130।।
मूढत्रय शल्यत्रय दोषत्रय दंडगारवत्रयैः।
परिमुक्तो योगी सः शिवगति पथनायको भवति।।

जो **मूढत्तय** 3 मूढ़ता **सल्लत्तय** 3 शल्य **दोसत्तय** 3 दोष **दंड गारवत्तयेहिं** 3 दंड और 3 गारवों से **परिमुक्को** मुक्त **जोई** योगी **सो** ही **सिवगइ** शिवगति का **पहणायगो** पथनायक हितोपदेशी **होइ** होता है।

विधि रूप में धर्मनेता

रयणत्तय करणत्तय जोगत्तय गुत्तित्तय विसुद्धेहिं।
संजुत्तो जोई सो सिवगइ पहणायगो होइ।।131।।
रत्नत्रय करणत्रय योगत्रय गुप्तित्रय विशुद्धैः।
संयुक्तो योगी सः शिवगति पथनायको भवति।।

रयणत्तय सम्यग्दर्शन आदि 3 रत्न **करणत्तय** 3 करण **जोगत्तय** 3 योग **गुत्तित्तय** 3 गुप्ति और अनेक प्रकार की **विसुद्धेहिं** विशुद्धि **संजुत्तो** सहित **सो** वह **जोई** योगी **सिवगइ** शिवगति का **पहणायगो** पथनायक **होइ** होता है।

आप्तपना कैसे?

बहिरब्भंतरगंथ विमुक्को सुद्धोवजोय संजुत्तो।
मूलुत्तर गुण पुण्णो सिवगइ पहणायगो होइ।।132।।
बहिरभ्यंतर ग्रंथविमुक्तः शुद्धोपयोग संयुक्तः।

मूलोत्तर गुण पूर्णः शिवगति पथनायको भवति।।

बहिरब्भंतर बाह्याभ्यंतर **गंथ विमुक्को** घातिया कर्मोदय से संबंधित परिग्रहत्यागी वीतराग **सुद्धोवजोय संजुत्तो** शुद्धोपयोगी सर्वज्ञ एवं **मूलुत्तरगुणपुण्णो** मूलगुण और उत्तरगुण से पूर्ण **सिवगइ** मोक्ष का **पहणायगो** पथनायक हितोपदेशी **होइ** होता है।

सम्यग्दर्शन का फल

जं जाइ जरा मरणं दुह दुट्ठ विसाहि विस विणासयरं।
सिवसुह लाहं सम्मं संभावइ सुणइ साहए साहू।।133।।
यज्जाति जरा मरण दुःख दुष्ट विषाहि विष विनाशकरं।
शिवसुखलाभं सम्यक्त्वं संभावयति श्रृणोति साधकः साधुः।।

साहू हे साधु! **जं** उस **जाइजरामरणं** जन्मजरामरण **दुहदुट्ठविसाहि** दुःख रूपी दुष्ट सर्प के **विसविणासयरं** विष नाशक **सिवसुहलाहं** मोक्षसुखदायक **सम्मं** भली प्रकार से आप्त को या रत्नत्रय धर्म को **सुणइ** सुनो **संभावइ** भाओ और **साहए** साधो।

सम्यग्दर्शन का प्रभाव

किं बहुणा हो देविंदाहिंद णरिंदगणहरिंदेहिं।
पुज्जापरमप्पा जे तं जाण पहाव सम्मगुणं।।134।।
किं बहुना अहो देवेन्द्राहीन्द्रनरेन्द्रगणधरेन्द्रैः।
पूज्याः परमात्मानो ये तज्जानीहि प्रभावसम्यक्त्वगुणम्।।

हो अहो! **बहुणा** बहुत कहने से **किं** क्या **जे** जो **परमप्पा** वह परमात्मा **देविंदाहिंद** देवेंद्र नागेंद्र और मध्य के व्यंतरेंद्र, ज्योतिषेंद्र **णरिंदगणहरिंदेहिं** नरेंद्र और गणधरेंद्रों से **पुज्जा** पूज्य है **तं** वह सब **सम्मगुणं पहाव** सम्यक्त्व गुण का प्रभाव **जाण** जानो।

दुष्कर्मी का भोजन

भुत्तो अयोगुलोसइयो तत्तो अग्गिसिखोवमो यज्जे।
भुंजइ जे दुस्सीला रत्तपिंडं असंजतो।।135।।
भुक्तः अयोगोल सदृशस्तप्तः अग्निशिखोपमः यज्ञे।
भुनक्तिः यः दुश्शीलः रक्तपिंडः असंयतः।।

जो जो **दुस्सीला** कुत्सित स्वभाव वाला मनुष्य **यज्जे** यज्ञ में **अग्गिसिखोवमो** अग्निशिखावत् **तत्तो** तप्त **अयोगुलोसइयो** लोहे के गोले के समान **रत्तपिंडं** रक्तपिंड मांस को **भुंजइ** खाता है वह **असंजतो** असंयमी होता है।

कालदोष का फल

उवसमई सम्मत्तं मिच्छत्तबलेण पेल्लए तस्स।
परिवट्टंति कसाया अवसप्पिणि कालदोसेण।।136।।
उपशमकं सम्यक्त्वं मिथ्यात्वबलेन प्रेरयति तस्य।
प्रवर्तन्ते ही कषायाः अवसर्पिणीकालदोषेण।।

अवसप्पिणि अवसर्पिणी **कालदोसेण** कालदोष के कारण **मिच्छत्तबलेण** मिथ्यात्व के बल से **तस्स** उस **उवसमई** उपशम **सम्मत्तं** सम्यक्त्व को **पेल्लए** नष्टकर **कसाया** अनंतानुबंधी आदि सभी कषायें **परिवट्टंति** प्रवर्तित हो जातीं हैं।

श्रावकों की 53 क्रियायें

गुण वय तव सम पडिमा दाणं जलगालणं अणत्थमियं।
दंसण णाण चरित्तं किरिया तेवण्ण सावया भणिया।।137।।
गुणः व्रतः तपः सम प्रतिमा दानं जलगालनं अनस्तमितं।
दर्शन ज्ञान चारित्रं क्रियास्त्रिपंचाशत् श्रावकीयाः भणिताः।।

गुणवयतवसमपडिमादाणं 8 गुण, 12 व्रत, 12 तप, 1 समभाव, 11 प्रतिमा, 4 दान **जलगालणं** 1 पानीछानना **अणत्थमियं** 1 रात्रि भोजनत्याग **दंसणणाणचरित्तं** 3 रत्नत्रय ये **सावया** श्रावकों की **तेवण्णकिरिया** 53 क्रियाएं **भणिया** कहीं हैं।

ज्ञानाभ्यास की प्रेरणा

णाणेण झाणसिज्झी झाणादो सव्वकम्म णिज्जरणं।
णिज्जरणफलं मोक्खं णाणब्भासं तदो कुज्जा।।138।।
ज्ञानेन ध्यानसिद्धिर्ध्यानतः सर्वकर्मनिर्जरणं।
निर्जराफलं मोक्षः ज्ञानाभ्यासं ततः कुर्यात्।।

णाणेण ज्ञान से **झाणसिज्झी** ध्यान की सिद्धि **झाणादो** ध्यान से **सव्वकम्म** समस्त कर्मों की **णिज्जरणं** निर्जरा और **णिज्जरणफलं** निर्जरा का फल **मोक्खं** मोक्ष है **तदो** अतः आज्ञार्थक प्रयोग होने से **णाणब्भासं** ज्ञानाभ्यास **कुज्जा** अवश्य करो।

श्रुतज्ञानाभ्यास क्यों?

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेरग्गो।
सुदभावणेण तत्तिय तह्मा सुदभावणं कुणह।।139।।
कुशलस्य तपः निपुणस्य संयमः शमपरस्य वैराग्यं।
श्रुतभावनेन तत्त्रयं तस्माच्छ्रुतभावनां कुर्यात्।

कुसलस्स कुशल पुरुषार्थी के **तवो** तप **णिवुणस्स** निपुण व्यक्ति के **संजमो** संयम और **समपरस्स** समभावी के **वेरग्गो** वैराग्य होता है किंतु **सुदभावणेण** श्रुतभावना से **तत्तिय** तीनों होते हैं **तम्हा सुदभावणं** अतः श्रुताभ्यास **कुणह** करना चाहिये। श्रुतज्ञान से ही क्षपकश्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है यही श्रुताभ्यास की महिमा है।

संसारभ्रमण का कारण

कालमणंतं जीवो मिच्छत्तसरूवेण पंचसंसारे।
हिंडदि ण लहइ सम्मं संसारब्भमण पारंभो।।140।।
कालमनंतं जीवो मिथ्यात्व स्वरूपेण पंचसंसारे।
हिंडते न लभते सम्यक्त्वं संसारभ्रमण प्रारंभः।।

सम्मं सम्यक्त्व **लहइ** प्राप्त **ण** न होने से **मिच्छत्तसरूवेणजीवो** यह अभव्य मिथ्यादृष्टिजीव **कालमणंतं** अनंतकाल तक **पंचसंसारे** पंचविधसंसार में **हिंडदि** भ्रमण करता हुआ भी उसके **संसारब्भमण** संसारभ्रमण **पारंभो** बना रहता है।

सुखदुःख कैसे?

सम्मद्दंसणसुद्धं जाव दु लभदे हि ताव सुही।
सम्मद्दंसणसुद्धं जाव ण लभदे हि ताव दुही।।141।।
सम्यग्दर्शनं शुद्धं यावत्तु लभते हि तावत् सुखी।
सम्यग्दर्शनं शुद्धं यावन्न लभते हि तावत् दुःखी।।

जाव जब यह जीव **सुद्धं** शुद्ध **सम्मद्दंसण** सम्यग्दर्शन **लभदे** प्राप्त करता है **ताव हि** तभी **सुही** सुखी होता है और **सुद्धं** शुद्ध **सम्मद्दंसण** सम्यग्दर्शन **ण** नहीं **लभदे** पाता है **ताव** तभी तक **दुही** दुःखी होता है। वीतराग सम्यग्दर्शन शुद्ध और सरागसम्यग्दर्शन अशुद्ध होता है अथवा ग्यारहवें बारहवें गुणस्थान वाला वीतराग सम्यग्दर्शन और चौथे से दशवें तक सराग सम्यग्दर्शन होता है।

दुःख सुख का कारण

किं बहुणा वयणेण दु सव्वं दुक्खेव सम्मत्तविणा।
सम्मत्तेण संजुत्तं सव्वं सोक्खेव जाण खु।।142।।
किं बहुना वचनेन तु सर्वं दुःखमेव सम्यक्त्वं विना।
सम्यक्त्वेन संयुक्तं सर्वं सौख्यमेव जानीहि खलु।।

बहुणा बहुत **वयणेण** कहने से **किं** क्या **सम्मत्त** सम्यक्त्व के **विणा** बिना **दु** तो **सव्वं** सभी जीव **दुक्खेव** दुःखी ही हैं अतः **खु** निश्चयतः **सम्मत्तेण** सम्यक्त्व **संजुत्तं** सहित **सव्वं** सभी जीव **सोक्खेव** सुखी होते हैं ऐसा **जाण** जानो।

दीर्घ संसार का कारण?

णिक्खेव णय पमाणं सद्दालंकार छंद लहियाणं।
णाडय पुराण कम्मं सम्म विणा दीहसंसारं।।143।।
निक्षेपनयप्रमाणं शब्दालंकारं छंदशः लब्धं।
नाटकपुराणकर्म सम्यक्त्वं बिना दीर्घसंसारः।।

णिक्खेव निक्षेप **णय** नय **पमाणं** प्रमाण **सद्दालंकार** शब्दालंकार **छंद** छंदज्ञान **णाडय** नाटक **पु. राण** शास्त्र ज्ञान **कम्मं** क्रियाओं को **लहियाणं** प्राप्त करके भी **सम्मविणा** सम्यक्त्व के बिना **दीह** दीर्घ **संसारं** संसार है।

सुखी दुःखी कौन?

वसदी पडिमोवयरणे गणगच्छे समयसंघजाइकुले।
सिस्सपडिसिस्स छत्ते सुयजाते कप्पडे पुत्थे।।144।।
पिच्छे संत्थरणे इच्छासु लोहेण कुणइ ममयारं।
यावच्च अट्टरुद्दं ताव ण मुँचेदि ण हु सोक्खं।।145।।
वसति प्रतिमोपकरणे गणगच्छेसमयसंघजातिकुले।
शिष्यप्रतिशिष्यच्छात्रे सुतजाते कर्पटे पुस्तके।
पिच्छिकायां संस्तरे इच्छासु लोभेन करोति ममकारं।
यावच्च आर्तरौद्रं तावन्न मुच्यते न हि सौख्यम्।।

वसदी वसतिका **पडिमोवयरण** जिनेंद्रप्रतिमा, उपकरण में **गणगच्छे** गण, गच्छ में **समयसंघ** शास्त्र संघ **जाइकुले** जातिकुल **सिस्स पडिसिस्सछत्ते** संयमी शिष्यप्रतिशिष्य, असंयमी छात्र, **सुयजाते** पुत्रपौत्र, **कप्पडे** हाथ पैर पौंछने वाले कपड़ों में **पुत्थे** पोथी के वेस्टन में **पिच्छे** पीछी में **संत्थरणे** संस्तरादि **इच्छासु** इच्छाओं में **लोहेण** लोभ से **ममयारं कुणइ** ममत्व करने वाला साधु **यावच्च** जब तक **अट्टरुद्दं** आर्त रौद्रध्यान **ण मुंचेदि** नहीं छोड़ता है **ताव सोक्खं ण हु** तब तक सुखी नहीं होता है।

कर्मों का क्षय कैसे?

मिहिरो महंधयारं मरुदो मेहं महावणं दाहो।
वज्जो गिरिं जहा विणसिज्जइ सम्मं तहा कम्मं।।146।।

मिहिरो महांधकारं मरुत् मेघं महावनं दाहः।
वज्रो गिरिं यथा विनाशयति सम्यक्त्वं तथा कर्म।।

जहा जैसे **मिहिरो** सूर्य **महंधयारं** अंधकार को **मरुदो** पवन **मेहं** मेघ को **दाहो** अग्नि **महावणं** महावन को **वज्जो** वज्र **गिरिं** पर्वत को **विणसिज्जइ** विनष्ट कर देता है **तहा** वैसे ही **सम्मं** यह सम्यग्दर्शन **कम्मं** अनादि सादि कालीन कर्मों को नष्ट कर देता है।

सम्यक्त्व रतन की महिमा

मिच्छंधयाररहियं हियय मज्झम्मि य सम्मरयणदीवकलावं।
जो पज्जलइ स दीसइ सम्मं लोयत्तयं जिणुद्दिट्ठं।।147।।
मिथ्यात्वांधकार रहितं हृदय मध्ये एव सम्यक्त्व रत्नदीप कलापं।
यो ज्वालयति सः पश्यति सम्यक् लोकत्रय जिनोद्दिष्टम्।।

जो जो **हिययमज्झम्मिय** मन में **मिच्छंधयाररहियं** मिथ्यांधकार रहित **सम्मरयणदीवकलावं** सम्यक्त्वरूपी रत्नदीपसमूह को **पज्जलइ** प्रज्ज्वलित करता है **स** वह **लोयत्तयं** तीनों लोकों को **सम्मं** भली प्रकार से **दीसइ** देखता है ऐसा **जिणुद्दिट्ठं** जिनेंद्रदेव ने कहा है।

आगमाभ्यास का फल

पवयणसारब्भासं परमप्पज्झाणकारणं जाण।
कम्मक्खवणणिमित्तं कम्मक्खवणे हि मोक्ख सुहं।।148।।
प्रवचनसाराभ्यासं परमात्मध्यानकारणं जानीहि।
कर्मक्षपणनिमित्तं कर्मक्षपणे हि मोक्षसुखम्।।

पवयणसारब्भासं आगमाभ्यास से **परमप्पज्झाणकारणं** शुद्धात्मध्यान **कम्मक्खवण** कर्मक्षय में **णिमित्तं** कारण और **कम्मक्खवणे** कर्मक्षय से **हि** ही **मोक्खसोक्खं** मोक्षसुख मिलता है ऐसा **जाण** जानो।

कर्मों का क्षय कैसे?

धम्मज्झाणब्भासं करेइ तिविहेण भाव सुद्धेण।
परमप्पज्झाणं चेतो तेणेव खवेइ कम्माणि।।149।।
धर्मध्यानाभ्यासं करोति त्रिविधेन भावशुद्धेन ।
परमात्मध्यानं चित्तो तेनैव क्षपयति कर्माणि।।

जो **तिविहेण** त्रियोगों से **भावसुद्धेण** भाव की शुद्धिपूर्वक **धम्मज्झाणब्भासं** धर्मध्यानाभ्यास **करेइ** करता है सो **तेणेव** उसीसे उसका **परमप्पझाणं चेतो** शुक्लध्यान में लगा हुआ चित्त **कम्माणि** कर्मों का **खवेइ** क्षय करता है।

मार्गदर्शक

जिणलिंगधरो जोई विराय सम्मत्तसंजुदो णाणी।
परमोवेक्खाइरियो सिवगइपहणायगो होइ।।150।।
जिनलिंगधरो योगी विराग सम्यक्त्वसंयुतो ज्ञानी।
परमोपेक्षाचार्यः शिवगतिपथनायको भवति।।

जिणलिंगधरो जिनलिंगी **जोई** योगी **विरायसम्मत्त** वैराग्य, सम्यक्त्व **संजुदो** सहित **णाणी** ज्ञानी **परमोवेक्खा** परमोपेक्षा संयमधारी **आइरियो** आचार्य **सिवगइपहणायगो** मोक्षमार्ग का नेता **होइ** होता है।

सम्यक्त्व से सुख

कामदुहिं कप्पतरुं चिंतारयणं रसायणं परमं।
लद्धो भुंजइ सोक्खं जं इच्छियं जाण तह सम्मं।।151।।
कामधेनुं कल्पतरुं चिंतारत्नं रसायनं परमं।
लब्ध्वा भुंक्ते सुखं यदेच्छ जानीहि सम्यक्त्वम्।।

जं जैसे **कामदुहि** कामधेनु **कप्पतरुं** कल्पवृक्ष **चिंतारयणं** चिंतामणिरत्न और **परमं** श्रेष्ठ **रसायणं** रसायन **लद्धो** पाकर **इच्छियं** इच्छित **सोक्खं** सुख **भुंजइ** भोगता है **तह** वैसे ही **सम्मं** सम्यक्त्व से उत्तम सुख को भोगता है ऐसा **जाण** जानो।

रयणसार का फल

सम्मत्तणाणवेरग्ग तवो भावं णिरीहवित्तिचरित्तस्स।
गुणसीलसहावं उप्पज्जइ रयणसारमिणं।।152।।
सम्यक्त्वं ज्ञानं वैराग्यतपोभावं निरीहवृत्तिचारित्रं ।
गुणशीलस्वभावं उत्पादयति रत्नसारोऽयम्।।

रयणसारमिणं यह रयणसार ग्रंथ **सम्मत्तणाण** सम्यक्त्व, ज्ञान, **वेरग्गतवोभावं** वैराग्य, तप, भाव **णिरीहवित्ति** वीतराग **चरित्तस्स** चारित्र **गुणसीलसहावं** गुण शील स्वभाव को, **उप्पज्जइ** उत्पन्न करता है।

रत्नत्रय में सब कुछ है

रयणत्तयमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।
संघो गुण संघादो समयो खलु णिम्मलो अप्पा।।153।।
रत्नत्रयमेव गणः गच्छः गमनस्य मोक्षमार्गस्य।
संघो गुणसंघातः समयः खलु निर्मलः आत्मा।।

रयणत्तयमेव रत्नत्रय ही **गण** गण है **मोक्खमग्गस्स** मोक्षमार्ग में **गमणस्स** गमन **गच्छं** गच्छ है **गुणसंघादो** गुणों का समूह **संघ** संघ है **खलु** निश्चय से **णिम्मलो** निर्मल **अप्पा** आत्मा ही **समयो** समय है ऐसा जानो।

रयणसार ग्रंथ का अविश्वाशी कौन?

गंथमिणं जो ण दिट्ठइ ण हु मण्णइ ण हु सुणेइ ण हु पढइ।
ण हु चिंतइ ण हु भावइ सो चेव हवेइ कुदिट्ठी।।154।।
ग्रथमिमं यो न पश्यति न हि मन्यते न हि श्रृणोति न हि पठति।
न हि चिंतयति न हि भावयति स चैव भवति कुदृष्टिः।।

जो जो **गंथमिणं** इस रयणसार ग्रंथ को **ण** न **दिट्ठइ** देखता है **ण हु** न **मण्णइ** मानता है **ण हु** न **सुणेइ** सुनता है **ण हु** न **पढइ** पढ़ता है **ण हु** न **चिंतइ** सोचता है **ण हु** न **भावइ** भाता है **सो चेव** वही **कुदिट्ठी** मिथ्यादृष्टि **हवेइ** है।

अंतिम मंगलाचरण का फल

इदि सज्जणपुज्जं रयणसारगंथं णिरालसो णिच्चं।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं ठाणं।।155।।
इति सज्जनपूज्यं रत्नसारं ग्रंथं निरालसो नित्यं।
यः पठति श्रृणोति भावयति सः प्राप्नोति शाश्वतं स्थानम्।।

इदि इस प्रकार **सज्जणपुज्जं** सज्जनों से पूज्य **रयणसारगंथं** रयणसार को **जो** जो **णिरालसो** निरालसी **णिच्चं** नित्य **पढइ** पढता है **सुणइ** सुनता है **सो** वह **भावइ** ध्याता **सासयं** शाश्वत **ठाणं** मोक्ष को **पावइ** पाता है।

सम्यग्दृष्टियों के 77 गुण

उहयगुणवसणभयमलवेरग्गाइचार भत्तिविग्घं वा।
एदेसत्तत्तरिया दंसणसावयगुणा भणिया।।1।।
उभयगुणव्यसनभयमलवैराग्यातिचारभक्तिविघ्नानि वा ।
एते सप्तसप्ततिः दर्शनश्रावकगुणाः भणिताः।।

उहयगुण दोनों गुण 8 मूलगुण, 12 उत्तरगुण **वसणभयमलवेरग्गाइचार** 7 व्यसन, 7 भय, 25 मलदोष से रहित, 12 वैराग्य भावना युक्त, 5 अतिचार रहित **वा** और **भत्तिविग्घं** 1 निर्विघ्न भक्ति, **एदे** ये **सत्तत्तरिया** 77 **दंसण** जैनधर्म में **सावय अव्रती अणुव्रती** सम्यग्दृष्टि श्रावकों के **गुणा** गुण **भणिया** कहे गए हैं।

पूजादानादि के द्रव्य हरण का फल

इच्छियफलं ण लब्भइ जइलब्भइ सो ण भुंजदे णियदं।
वाहीणमायरो सो पूयादाणाइ दव्वहरो।।2।।
इच्छितफलं न लभते, यदि लभते स न भुंक्ते नियतम्।
व्याधीनामाकरः सः पूजा दानादि द्रव्यहरः।

पूयादाणाइ- पूजादानादि के **दव्वहरो** द्रव्य का हर्ता, **इच्छियफलं** इच्छित फल को **ण** नहीं **लब्भइ** पाता **जइ** यदि **लब्भइ** पाता है तो **सो** वह **वाहीणमायरो** व्याधि सहित होने से **णियदं** नियमतः उस सामग्री को **भुंजदे** भोग **ण** नहीं पाता।

विघ्न डालने का फल

णिरयतिरियाइ दुग्गदि दलिद्द वियलंग हाणि दुक्खाइं।
देव गुरु सत्थ वंदण, सुयभेयं सज्झाय विग्घ फलं।।3।।
नरक तिर्यग्दुर्गति दारिद्र्य विकृतांग हानि दुःखानि।
देव गुरु शास्त्र वंदना- श्रुतभेद- स्वाध्याय विघ्न फलं।।

देवगुरुसत्थवंदण देव गुरु शास्त्र के वंदन में **सुयभेय-** द्रव्य श्रुतभेद में **सज्झाय** स्वाध्याय में **विग्घफलं** विघ्न करने से **णिरयतिरियाइ** नरक तिर्यंच **दुग्गइ** ये दो दुर्गति **दलिद्द** दारिद्र्य **वियलंग** शारीरिक अंगों की **हाणि** हानि **दुक्खाइं** दुःखादि ये फल प्राप्त होते हैं।

सम्यक्त्व की हानि का कारण

कुतव कुलिंग कुणाणी कुवय कुसील कुदंसण कुसत्थे।
कुणिमित्ते संथुय थुइ पसंसणं सम्म हाणि होइ णियमं।।4।।
कुतपः कुलिंग कुज्ञानि कुव्रत कुशील कुदर्शन कुशास्त्रे।
कुनिमित्ते संस्तुत स्तुतिः प्रशंसनं सम्यक्त्वहानिर्भवति नियमेन।।

कुतव मिथ्यातप करने **कुलिंग** मिथ्याभेष धारण करने **कुणाणी** मिथ्याज्ञानीपने **कुवय** मिथ्याव्रत **कुसील** मिथ्यास्वभाव **कुदंसण** मिथ्यादर्शन **कुसत्थे** मिथ्याशास्त्र और **कुणिमित्ते** मिथ्या निमित्तों की **संथुय** संस्तुति **थुइ** स्तुति **पसंसणं** प्रशंसा करने से **णियमं** नियमतः **सम्महाणि** सम्यग्दर्शन की हानि **होइ** होती है।

मोक्षसाधक निकट भव्य

कतकफल भरिय णिम्मल जलं ववगय कालिया सुवण्णं च।
मलरहिय सम्मजुत्तो भव्ववरो लहइ लहु मोक्खं।।5।।
कतकफल भृत निर्मल जलं व्यपगत कालिकं सुवर्णं च ।
मलरहित सम्यक्त्वयुतो भव्यवरो लभते शीघ्रं मोक्षम् ।।

कतकफल निर्मली से **भरिय-** मिश्रित **णिम्मल जलं** निर्मल जल के समान और **कालिया ववगय** किट्ट कालिमा रहित शुद्ध **सुवण्णं** स्वर्ण के समान **मलरहिय** निर्दोष **सम्मजुत्तो** सम्यग्दृष्टि **भव्ववरो** भव्योत्तम प्राणी **लहु** शीघ्र ही **मोक्खं** मोक्ष को **लहइ** प्राप्त करता है।

उभयजीवों का समय?

सम्माइट्ठी कालं बोलइ वेरग्ग णाण भावेण।
मिच्छाइट्ठी वांछा दुब्भावालस्स कलहेहिं।।6।।
सम्यग्दृष्टिः कालं गमयति वैराग्य ज्ञान भावेन।
मिथ्यादृष्टिः वांछादुर्भावालस्यकलहैः।।

सम्माइट्ठी सम्यग्दृष्टिजीव **वेरग्ग** वैराग्य **णाणभावेण** ज्ञान भाव से और **मिच्छाइट्ठी** मिथ्यादृष्टि **वांछा** आकांक्षा **दुब्भावालस्स** दुर्भावना, आलस्य और **कलहेहिं** कलह में **कालं** अपने समय को **बोलइ** बिताता है।

सुगति और दुर्गति का कारण

सम्मत्तगुणाइ सुग्गइ मिच्छादो होइ दुग्गई णियमा ।
इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुच्चइ तं कुणहो ।।7।।
सम्यक्त्वगुणतः सुगतिः मिथ्यात्वतो भवति दुर्गतिर्नियमात् ।
इति जानीहि किमिह बहुना यत्तुभ्यं रोचते तत्कुरु।।

णियमा नियमतः **सम्मत्तगुणाइ** सम्यक्त्वादि गुणों से **सुग्गइ** सुगति और **मिच्छादो** मिथ्यात्व से **दुग्गई** दुर्गति **होइ** होती है **इदि** ऐसा **जाण** जानो **इह** यहाँ **बहुणा** अधिक कहने से **किं** क्या लाभ **जं** जो **ते** तुम्हें **रुच्चइ** अच्छा लगे **तं** वह **कुणहो** करो।

संसार समुद्र से पार कैसे?

मोह ण छिज्जइ अप्पा दारुणकम्मं करेइ बहुवारं ।
ण हु पावइ भवतीरं किं बहुदुक्खं वहेइ मूढमई ।।8।।
मोहं न छिनत्ति आत्मा दारुणकर्मं करोति बहुवारं।
न हि प्राप्नोति भवतीरं किं बहुदुःखं वहति मूढमतिः।।

मूढमई- मूढ़मति **अप्पा** आत्मा **मोह** मोह का **छिज्जइ** क्षय **ण** नहीं करता है किंतु **बहुवारं** अनेक बार **दारुणकम्मं** दारुण कर्म को **करेइ** करता हुआ भी **हु** वास्तव में **भवतीरं** संसार का किनारा **ण** नहीं **पावइ** पाता है अतः हे मूर्ख मोक्ष के निमित्त **बहुदुक्खं** अनेक दुःखों को **किं** क्यों **वहेइ** ढोता है?

धर्मियों के प्रति पापियों की दृष्टि

चम्मट्ठिमंसलवलुद्धो सुणहो गज्जए मुणिं दिट्ठा।
जह पाविट्ठो सो धम्मिट्ठं दिट्ठा सगीयट्ठा।। 9।।
चर्मास्थिमांसलवलुब्धः शुनकः गर्जति मुनिं दृष्ट्वा।
यथा पापिष्ठः स धर्मिष्ठं दृष्ट्वा स्वकीयार्थः।।

जह जैसे **चम्मट्ठिमंसलव** चर्म, अस्थि, मांस का **लुद्धो** लोभी **सुणओ** कुत्ता **मुणिं** मुनि को **दिट्ठा** देखकर **गज्जए** भोंकता है वैसे ही **सो** वह **पाविट्ठो** पापी **धम्मिट्ठं** धर्मात्मा को **सगीयट्ठा** अपने समान **दिट्ठा** देखता है।

पात्र और अपात्र

दंसणसुद्धो धम्मज्झाणरदो संगवज्जिदो णिसल्लो।
पत्तविसेसो भणियो ते गुणहीणो दु विवरीदो।। 10।।
दर्शनशुद्धो धर्मध्यानरतः संगवर्जितो निःशल्य।
पात्रविशेषो भणितः तैर्गुणैः हीनस्तु विपरीतः।।

दंसणसुद्धो सम्यग्दर्शन से शुद्ध **संगवज्जिदो** परिग्रह त्यागी **धम्मज्झाणरदो** धर्मध्यान में रत **णिसल्लो** निःशल्य **पत्तविसेसो** पात्र विशेष **भणियो** कहे हैं **दु** और उनसे विपरीत **ते** वे **गुणहीणो** रत्नत्रय से हीन **विवरीदो** साधु और श्रावक अपात्र कहे हैं।

विवेकवान दाता

सम्माइगुणविसेसं पत्तविसेसं जिणेहिं णिद्दिट्ठं
तं जाणिऊण देइसु दाणं जो सोउ मोक्खरओ।। 11।।
सम्यक्त्वादिर्गुणविशेषः पात्रविशेषो जिनैर्निर्दिष्टः।
तं ज्ञात्वा दीयतां दानं यः सोऽपि मोक्षरतः।।

जिणेहिं जिनेंद्र ने **सम्माइ** सम्यक्त्वादि **गुणविसेसं** विशेष गुणवाले **पत्तविसेसं** पात्र विशेष **णिद्दिट्ठं** कहे हैं **जो** जो **तं** उन्हें **जाणिऊण** जानकर **दाणं** दान **देइसु** देता है **सोउ** वह भी **मोक्खरओ** मोक्ष में रत है।

अनात्मज्ञ बहिरात्मा

जं जं अक्खाणसुहं तं तं तिव्वं करेइ बहु दुक्खं।
अप्पाणमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेइ बहिरप्पा ।।12।।
यद्यदक्षाणां सुखं तत्तत्तीव्रं करोति बहुदुःखं।
आत्मानमिति न चिंतयति स एव भवति बहिरात्मा।।
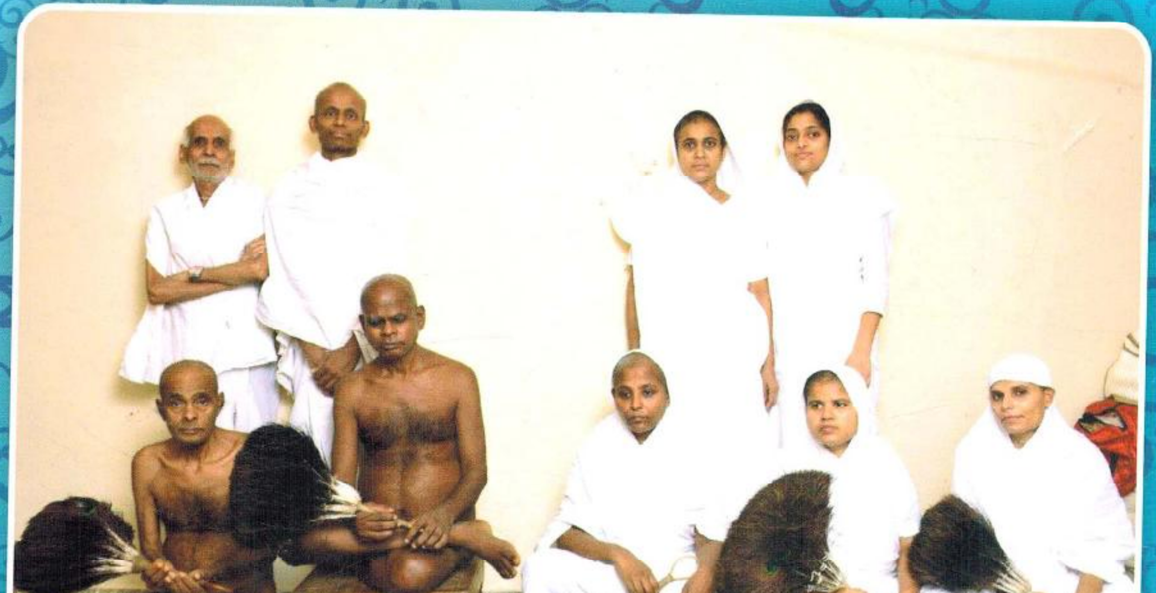
जं जं जो जो **अक्खाणसुहं** इंद्रियसुख हैं **तं तं** वे वे **बहु तिव्वं** अति तीव्र **दुक्खं** दुःख **करेइ** करते हैं ऐसा जो **अप्पाणमिदि** आत्मा का **चिंतइ** चिंतन **ण** नहीं करता है **सो चेव** वही **बहिरप्पा** बहिरात्मा **हवेइ है।**